सरस्वती, 1938

Part-II

डेरी-फ़ार्मिंग

लेखक, श्रीयुत एस० पी० केदार, आई० डी० डी०

भोजन आदि-काल से मनुष्य की सर्व-प्रथम और अनिवार्य आवश्यकता है। भूख का कष्ट सब कष्टों से अधिक और असह्य माना गया है। महारानी कुन्ती ने एक बार कृष्ण से कहा था कि बुढ़ापा, धन-हीनता और पुत्र-शोक तो क्लेशदायक हैं ही, परन्तु भूख का कष्ट सब कष्टों से बड़ा है। संसार में आज चारों तरफ़ अशान्ति की आग फैली हुई है और कभी-कभी तो इस आग में से युद्ध की गगन-चुम्बी प्रचण्ड लपटें विश्व की सुख-समृद्धि और मानव-सभ्यता के विनाश तक की आशङ्का पैदा कर देती हैं। परन्तु इस भीषण अग्नि-काण्ड का वास्तविक उत्पत्तिकरण भी तो पेट की बढ़ती हुई आग ही है। अस्तु।

इस पेट की आग को बुझाने अथवा भूख के क्लेश को मिटाने के लिए भोजन आदि की सामग्री पैदा करना तथा मनुष्य-समाज के व्यवहार के लिए खाद्य-पदार्थों का जुटाना एक आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण कार्य है। कृषक का अस्तित्व अन्नदाता के रूप में सब देशों में अनिवार्य और सर्वश्रेष्ठ समझा गया है और कहीं-कहीं तो वह जीवन-दाता तक कह कर पुकारा भी जाता है। एक अमेरिकन लेखक का कथन है कि "मनुष्योपयोगी भोजन की उत्पत्ति करना संसार में आवश्यक और श्रेष्ठतम उत्तरदायित्व है।"

जितने प्रकार के भोजन मनुष्य के व्यवहार में आते हैं उनमें दूध और दूध के पदार्थों को विशेष स्थान प्राप्त है। दूध वास्तव में सृष्टि के प्रारम्भकाल से सर्व-गुण-सम्पन्न होने के कारण सर्वोत्तम भोजन के रूप में चला आ रहा है। वर्तमान समय में विज्ञान-द्वारा उसकी विशेषताओं पर जो प्रकाश पड़ा है उससे तो वह एक आदर्श राष्ट्रीय भोजन समझा जाने लगा है। दूध के ये विशेष गुण ही उसकी उत्पत्ति और उचित सँभाल के कार्य को आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण बनाते हैं। अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति हूवर ने एक बार ज़ोरदार शब्दों में कहा था—

"अन्य प्रकार के खाद्य-पदार्थों की अपेक्षा डेरी-व्यवसाय के ऊपर ही न केवल सर्वसाधारण का स्वास्थ्य निर्भर है, वरन इसके ऊपर ही गोरी जातियों का विकास और उनकी वृद्धि भी स्थिर है।"

इस प्रकार आदर्श भोजन होने के कारण दूध की उत्पत्ति आदि का कार्य अपना एक विशेष स्थान रखता है। परन्तु इसके साथ ही व्यापारिक दृष्टि से भी यह धंधा अतुलनीय है। यहाँ हमें इस कार्य के इसी रूप पर प्रकाश डालना अभीष्ट है। संसार में डेरी-फ़ार्मिंग की लोक-प्रियता और इसके बढ़ते हुए कारबार को देखकर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। गत कुछ वर्षों से तो आस्ट्रेलिया, अफ़्रीका, योरप और अमरीका आदि देशों में इस व्यवसाय को सर्वोपरि स्थान दिया जाने लगा है।

कुछ समय हुआ अमरीका के एक पत्र में एक घटना का वर्णन छपा था। वहाँ के एक नगर में कुछ व्यक्ति बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। उनमें से एक ने अनायास ही प्रश्न किया कि अमरीका की सर्व-प्रधान उपज कौन-सी है। उत्तर में सबके सब झट से बोल उठे—"गेहूँ"। प्रश्नकर्ता ने सिर हिलाते हुए कहा—"ग़लत"। सबके पूछने पर उसने बतलाया कि "दूध अमरीका की सबसे बड़ी पैदावार है।" वहाँ की एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार डेरी-फ़ार्मिंग कार्य करनेवालों की संख्या, मूलधन के [illegible] और आय की दृष्टि से सब धंधों में एक प्रमुख व्यवसाय है। एक और रिपोर्ट में लिखा है कि गत वर्षों की मन्दी के समय में डेरी की वस्तुओं का मूल्य अन्य खाद्य-पदार्थों की अपेक्षा बहुत कम गिरा तथा उनमें लाभ की [illegible] भी अधिक रही। डेरी का काम करनेवालों ने खूब [illegible] कमाया और जिन परिवारों में गौवें पाली गईं [illegible] विशेष उन्नति हुई।

दूध-मक्खन आदि खाद्य-पदार्थ वास्तव में अ[illegible] के कृषकों की आय का मुख्य साधन हैं। अमरीका [illegible] अढ़ाई करोड़ उत्तम गौओं की सहायता से अधिक [illegible]

Contributed by: Prabhat Kumar

त्पत्ति के लिए संसार का शिरोमणि बन गया है। वहाँ तिवर्ष १०,००,००,००,००० गैलन दूध पैदा होता है, जसका मूल्य २,००,००,००,००० डालर के लगभग बैठता । कुछ वर्ष हुए वहाँ के कृषि-विभाग ने कृषकों वार्षिक आय का हिसाब लगाया था। इसमें पदार्थों का मूल्य भी सम्मिलित किया गया जो कृषक लोग अपने निजी व्यवहार में लाते थे। यह कुल आय एक वर्ष में ९३,४७० लाख डालर बैठी थी। इसमें अकेले गाय के दूध-द्वारा १७,९६० लाख डालर, अर्थात् १०० डालर में १९-२० डालर प्राप्त हुए। दूसरे नम्बर पर हाग (सूअर) था, परन्तु उसकी आय ४,२०० लाख डालर गाय की आय से कम रही। जितनी आय गेहूँ, मकई और जौ आदि अनाजों से हुई उससे तीन गुना गाय के दूध से प्राप्त हुई। कपास अमरीका का एक बड़ा धन्धा समझा जाता है। पर उससे भी गाय के दूध की आय तीन गुना अधिक रही। वहाँ की कई एक रियासतों जैसे विस्कनसन, न्यूयार्क आदि में तो कृषकों की लगभग आधी आय का श्रेय गाय को प्राप्त है। इस सारे विवरण से यह सिद्ध होता है कि गाय अमरीका में आय का एक सर्व-प्रधान साधन है। कितने आश्चर्य की बात है कि जिस देश में दो-ढाई सौ वर्ष पहले गौओं का प्रायः अभाव-सा था, आज वहाँ के निवासियों का एक तरह से वे मुख्य आधार बन गई हैं!

इसी प्रकार डेन्मार्क जो हमारे देश की मैसूर-रियासत के बराबर है, आज १,७२० लाख किलोज़ केवल मक्खन ही प्रतिवर्ष तैयार करके विदेशों को भेजता है। वहाँ का प्रत्येक कृषक दूध के धंधे को सबसे उपयोगी और लाभ-दायक समझता है। डेन्मार्क में आज दूध की १,३३५ डेरियाँ विद्यमान हैं, जिनमें बड़ी-बड़ी मशीनों के द्वारा काम होता है।

हालेंड भी डेन्मार्क की तरह छोटा-सा ही देश है। वहाँ पिछले कुछ ही वर्षों में डेरी के व्यवसाय में आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। इस समय वहाँ प्रतिवर्ष ४,००,००,००,००० किलोग्राम दूध की उत्पत्ति होती है और इस समय १३० बड़ी-बड़ी फ़ैक्टरियाँ काम कर रही हैं, जिनमें जमा हुआ दूध, मक्खन और पनीर तैयार होता है। वहाँ की अकेली एक कम्पनी 'लिजैम्फ़' में ६०० आदमी काम करते हैं और वर्ष में ६,०[illegible],००० टन दूध का ख़र्च होता है। वहाँ के दो और कारख़ाने जिनके नाम '[illegible]' और 'वैरीलिटल' हैं, प्रतिवर्ष अट्ठाइस लाख मन जमा हुआ दूध डिब्बों में तैयार करते हैं।

न्यूज़ीलेंड और आस्ट्रेलिया तो अपने मक्खन के लिए प्रसिद्ध ही हैं। भारतवर्ष के बाज़ारों में भी उनके यहाँ का मक्खन पर्याप्त मात्रा में आकर बिकता है। न्यूज़ीलेंड इस समय मक्खन के व्यवसाय में संसार में सर्वप्रथम माना जाता है। मक्खन की उपज और ख़र्च संसार के सभी देशों में आश्चर्यजनक रूप से बढ़ रहे हैं। अकेले अमरीका में ही एक वर्ष में दो अरब पौंड से ऊपर मक्खन बनता और व्यवहार में आता है। ग्रेटब्रिटेन में एक करोड़ चालीस लाख मन मक्खन बाहर से जाकर ख़र्च होता है। मक्खन के अतिरिक्त पनीर, पौडर्ड दूध और क्रीम, चाकोलेट आदि दूध के पदार्थों की भी पर्याप्त खपत हो रही है। जर्मनी, फ़्रांस, कनाडा, हालेंड, इँग्लेंड, स्विटज़लेंड आदि सब देशों में डेरी के व्यवसाय की उन्नति के लिए सब तरह से प्रयत्न किये जा रहे हैं। इनमें से कई एक देश जो पहले दूध और मक्खन आदि के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहते थे, अब उलटा इन पदार्थों को तैयार करके बाहर भेजने लगे हैं। फ़्रांस अब तक बाहर से मक्खन मँगवाता था, परन्तु पिछले एक-दो वर्षों से वह ख़ुद पाँच-छः हज़ार टन की निकासी करने लगा है।

पश्चिमी देशों में डेरी के व्यवसाय के विस्तार का इतने से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अमरीका के बेवर्ली नगर में हाल में ही एक दुग्ध-शाला बनी है, जिसकी इमारत पर बारह लाख रुपया व्यय हुआ है। उक्त दुग्ध-शाला में प्रतिदिन डेढ़ लाख पौंड दूध की सप्लाई करने का प्रबन्ध किया गया है। यह सब सप्लाई सील-बंद बोतलों में लोगों के घरों में की जानी निश्चित हुई है।

सुनते हैं, किसी समय भारतवर्ष में भी दूध-घी की नदियाँ बहती थीं। प्रसिद्ध यूनानी राजदूत मैगस्थनीज़ जो ईसा से २९७ वर्ष पूर्व इस देश में आया था, लिखता है—

"भारतवर्ष में दूध और मक्खन पर्याप्त मात्रा में होता था। जहाँ कहीं मैंने पानी माँगा, मुझे सदा दूध मिला।"

आज दुर्भाग्य से उसी देश में दूध, घी आदि का इतना भारी टोटा हो गया है कि साधारण समर्थ व्यक्तियों को भी उनका उपलब्ध होना सुलभ नहीं रहा। वास्तव में

यहाँ दूध-मक्खन की उत्पत्ति ही बहुत कम हो गई है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि प्रतिवर्ष [illegible] लाख रुपये के लगभग की ये वस्तुएँ विदेशों से मँगवाकर हमें अपनी आवश्यकतायें पूरी करनी पड़ती हैं।

कोई चाहे इसे समय का फेर कहे अथवा अपने भाग्य का दोष समझे, परन्तु सचाई यह है कि [illegible] लोगों के गोपालन-कार्य और दूध आदि के धंधे से विमुख और बेपरवा हो जाने के कारण ही आज अवस्था इतनी ख़राब हो गई है। यथार्थ में देखा जाय तो भारतवर्ष संसार के अन्य सब देशों की अपेक्षा गोपालन और डेरी-व्यवसाय के अधिक अनुकूल और उपयुक्त है। यहाँ ऐसी किसी भी वस्तु अथवा साधन की कमी नहीं है, जिसकी इस कार्य के लिए आवश्यकता होती है। बहुत-सी भूमि बिना काश्त के पड़ी है, बड़े-बड़े जंगल और मैदान चराई के लिए विद्यमान हैं, उपजाऊ खेतों में विविध प्रकार के जल-वायु के सहयोग से सब तरह का चारा उत्पन्न हो सकता है। प्रकृति के ये सब साधन यदि डेरी-फ़ार्मिंग के लिए विचारपूर्वक उपयोग में लाये जायँ तो इस देश में अवश्य ही एक बार फिर दूध-घी की नदियाँ बह निकलें।

यह तो प्रकट ही है कि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। परन्तु सच पूछा जाय तो कृषक लोग वर्तमान समय में खेती आदि के कार्य से पूरा और पर्याप्त आर्थिक लाभ नहीं उठा पाते। उसका मुख्य कारण यह है कि अन्न और कपास आदि जो वस्तुएँ पैदा की जाती हैं वे साधारण तया अधिक उपज और मन्दी के कारण बाज़ार में बहुत कम मूल्य पाती हैं। बेचारे कृषक अपने इस पैतृक पेशे को इसलिए नहीं छोड़ सकते कि उन्हें और कुछ करने या कहीं जाने का ठौर ही नहीं मिलता। परन्तु यहाँ लोग यदि डेरी के काम को आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर हाथ में ले लें तो कुछ वर्षों में ही इनका कायापलट हो सकता है।

आज से सौ वर्ष पूर्व बिलकुल यही अवस्था डेन्मार्क की थी। भारतवर्ष की तरह कृषि-प्रधान देश होने से वहाँ भी तीन चौथाई से अधिक भूमि खेती के काम में लाई जाती थी। शताब्दियों तक वहाँ के लोग अपने आस-पास के देशवालों के लिए अन्न उत्पन्न करके अपना निर्वाह करते रहे, परन्तु पिछली शताब्दी के अन्तिम वर्षों में उन्होंने देखा कि भारतवर्ष आदि से सस्ता अन्न जाने के कारण योरप की मंडियों में उनका माल खपना कठिन हो गया है। ग्रेट ब्रिटेन डेन्मार्कवालों के अन्न का सबसे बड़ा ग्राहक था। परन्तु भारतवर्ष से व्यापारिक सम्बन्ध क़ायम हो जाने पर यहाँ से अन्न मँगवाने में उसे अधिक लाभ और सुविधायें रहने लगीं। डेन्मार्कवालों ने इसका भी अनुभव किया कि लगातार अन्न पैदा करके बाहर भेजने से उनकी भूमि की उर्वरा-शक्ति बहुत कम हो गई है। स्थिति की भयानकता का आभास होते ही सरकार और जनता के सामूहिक प्रयत्नों से परिस्थिति के अनुकूल उपाय सोचा गया। वह उपाय 'डेरी-फ़ार्मिंग' अर्थात् गोपालन का धंधा था। इसके परिणाम स्वरूप कुछ ही वर्षों में डेन्मार्क के सारे कृषक इस व्यवसाय में दत्तचित्त होकर लग गये, जिससे १८८० से १९१७ तक अर्थात् ३७ वर्षों में ही वहाँ दूध, मक्खन और पनीर आदि की उत्पत्ति में ८५ प्रतिशत की वृद्धि हो गई।

उसी डेन्मार्क की यात्रा करने के पश्चात् श्रीयुत एस० डी० जोशी वहाँ की उन्नत अवस्था का सुन्दर चित्र खींचते हुए लिखते हैं कि "डेन्मार्क में न कोई बहुत अमीर है और न कोई बहुत ग़रीब। खेती का काम अत्यन्त प्रतिष्ठित समझा जाता है। मानव-जीवन की दो बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति हो गई है। एक तो धन लगाने और परिश्रम करने के साथ ही आय आरंभ हो जाती है और दूसरे कृषकों का सामाजिक जीवन बहुत आकर्षक बन गया है। सब लोग समझदार, उद्यमी और सुसंस्कृत हैं। उनकी आर्थिक स्थिति संतोषप्रद और रहन-सहन का ढंग बहुत अच्छा है।"

श्रीयुत जोशी डेन्मार्क की इस आश्चर्यजनक उन्नति के साधनों में "को-आपरेटिव डेरी-फ़ार्मिंग" को सर्व-प्रधान बतलाते हैं।

अवश्य ही यह सब कुछ इस देश में भी हो सकता है। डेरी का कार्य यथार्थ में भारतवर्ष में अधिक [illegible] रखता है। यहाँ के लोग बहुधा मांसाहारी न होने से अपने स्वास्थ्य और बल के लिए दूध-घी आदि खाद्य-पदार्थों पर ही निर्भर रहते हैं। आज इन वस्तुओं के अभाव के कारण ही सर्वसाधारण निर्बल-शरीर, कान्ति-

...और स्थायी तौर से रोगी बने हुए हैं। डेरी के व्यवसाय के विस्तार से दूध आदि अमृत-पदार्थ सबको सुगमता से और सस्ते दामों में उपलब्ध होंगे। कृषि-प्रधान देश होने से अच्छे और बलवान् बैलों की प्राप्ति भी यहाँ की एक बड़ी भारी समस्या है, जिसका एकमात्र हल भी गोपालन-कार्य है। इस कार्य की ओर सुचारु-रूप से ध्यान देने पर उत्तम बैलों का अधिक संख्या में मिलना भी सुलभ हो जायगा। तीसरे भूमि की उर्वरा-शक्ति को स्थिर रखने, वरन बढ़ाने तक में भी यह कार्य सहायक सिद्ध होगा। गाय का गोबर इत्यादि वास्तव में सर्वोत्तम खाद है। इसके अधिक और उचित व्यवहार से यहाँ की भूमि की उपजाऊ शक्ति में विशेष वृद्धि होगी। चौथे इस कार्य से देश की आर्थिक-दशा सुधरने में भी बड़ी सहायता मिलेगी। अस्सी लाख रुपया जो इस समय दूध-मक्खन आदि की क़ीमत के रूप में प्रतिवर्ष विदेशियों की जेब में चला जाता है, देश में ही बच रहेगा। वैसे भी सर्व-साधारण में दूध-मक्खन के अधिक सेवन के लिए जाग्रति-सी पैदा हो रही है। इससे भविष्य में इन पदार्थों की माँग बढ़ने की भी आशा की जा सकती है। ऐसा होने से अवश्य ही इस व्यवसाय की उन्नति होगी और यह कार्य करनेवालों की आय बढ़ेगी। मेरा तो यह भी विश्वासपूर्वक मत है कि आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर और नियमानुकूल इस व्यवसाय के ...त होने से इस देश से दूध-मक्खन आदि पदार्थ विदेशों को भी भेजे जा सकेंगे। यदि योरप के छोटे-छोटे देश अपने इन पदार्थों को यहाँ भेजने में समर्थ हो सकते हैं तो कोई कारण नहीं, हम भी उन्हीं के उपायों का अनुकरण करते हुए यहाँ से ये वस्तुएँ अन्य देशों को न भेज सकें। हमारे अपने निकट ही चीन, जापान, अरब, ईरान आदि अनेक देश हैं, जिनमें इन पदार्थों की पर्याप्त खपत हो सकती है।

इन दिनों भारतवर्ष में चारों तरफ़ बेकारी की आग फैली हुई है। यदि इस देश के नवयुवक डेरी के व्यवसाय की ओर ध्यान दें और ग्रामीण कृषकों के साथ मिलकर इसकी उन्नति के कार्य को हाथ में लें तो अपना और देश दोनों का बड़ा भारी भला कर सकते हैं। भारतवर्ष में बड़े से बड़े कार्य के लिए भी धन का अभाव नहीं हो सकता। अनेक सेठ साहूकारों के पास धन की अतुल राशि गड़ी पड़ी है। ऐसे आवश्यक और महत्त्वपूर्ण काम को प्रोत्साहन देना उनका परम कर्तव्य होना चाहिए। सरकार का भी इस सम्बन्ध में बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। जिस प्रकार अन्य देशों में इस व्यवसाय की उन्नति के लिए वहाँ की सरकारों ने सब तरह से सहयोग देते हुए इसका संरक्षण किया है, उसी प्रकार भारत-सरकार विशेष-कर प्रान्तों के वर्तमान कांग्रेस-मंत्री-मंडलों को भी करना उचित है। गोपालन अर्थात् डेरी के कार्य के समुचित विस्तार से यह देश एक बार फिर समृद्धि और ऐश्वर्य की प्राप्ति से धन-धान्य-पूर्ण हो जायगा। किसी अमरीकन ने ठीक लिखा है:—

"डेरी-फ़ार्मिंग कृषि-कार्य का आदर्श रूप है। इससे भूमि की उर्वरा-शक्ति का कम नाश होता है। मनुष्य को कुशलतापूर्वक काम करने का अवसर मिलता है। यह कार्य विशेष रूप से आनन्ददायक और अधिक लाभ पहुँचानेवाला है तथा इसके द्वारा लगातार नक़द आय होती है। यह व्यवसाय बड़ी मज़बूत नींव पर स्थिर है, अतएव उन्नति और समृद्धि का इससे प्राप्त होना निश्चित है।"

अथर्ववेद में इसी रहस्य का बड़ी सुन्दरता से थोड़े से शब्दों में वर्णन किया गया है—"अभिवर्धताम् पयसा अभि राष्ट्रेण वर्धताम्", अर्थात् जैसे-जैसे दूध की वृद्धि होती है, वैसे-वैसे राष्ट्र भी बढ़ता है।

हास्य-रस की एक कहानी

आँखों देखी बातें

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रनाथ 'अश्क', बी० ए०, एल-एल० बी०

एक दिन पंडित तेजभान और लाला झंडालाल की प्रतिद्वन्द्विता का जब ज़िक्र छिड़ा तब पंडित तेजभान जो उस दिन कुछ ख़ुश थे, यों कहने लगे—

झंडालाल से मेरी बहस की भी ख़ूब कही। प्रायः दोस्तों ने पूछा है कि जब भी हम इकट्ठे होते हैं, आख़िर इस तरह क्यों बरस पड़ते हैं? मैंने स्वयं इस बात पर बहुत विचार किया है और मैं इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हमें यह बीमारी विरासत में मिली है। आप लोग शायद न जानते हों। पंडित झंडालाल और मैं पास पास ही रहते हैं और जिस प्रकार झंडालाल मेरे प्रिय मित्र हैं उसी तरह झंडालाल के पूज्य पिता स्वर्गीय खंडालाल मेरे पिता जी के अभिन्न मित्रों में से थे और आज भी जब कभी मैं बचपन की बातें याद करता हूँ तब मुझे महसूस होता है कि उनमें और मेरे में भी यह प्रतिद्वन्द्विता किसी न किसी हद तक मौजूद थी। यदि झंडालाल के पूज्य पिता पटवारगीरी के ज़माने के अपने सनसनीदार अनुभवों का ज़िक्र करते तो मेरे पिता पोस्टमास्टरी के ज़माने की घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर और लाला खंडालाल की घटनाओं के मुक़ाबिले में और भी सनसनीदार बनाकर सुनाते। यदि लाला खंडालाल किसी गिरदावर या क़ानूनगो से अपनी टक्कर का और अपनी अक़्लमन्दी और निडरता से अपने विजयी होने का गर्व ले लहज़े में वर्णन करते तो मेरे पिता जी विनम्रतापूर्ण अभिमान के साथ अपनी निर्भीकता तथा विद्वत्ता की कहानी कहते और सुपरिंटेंडेंट या कम से कम हेड पोस्टमास्टर से अपने सफल द्वन्द्व का हाल सुनाना अपना फ़र्ज़ ख़याल करते। कहने का तात्पर्य यह है कि उनमें यह प्रतिद्वन्द्विता काफ़ी हद तक मौजूद थी। पर जहाँ उनमें यह दोष था, वहाँ एक गुण भी था। हम दोनों जब एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर बातें करते हैं तब हमारा उद्देश्य एक-दूसरे का रोब कम करना होता है, और अपनी इस कोशिश के फलस्वरूप हम दोनों का ही रोब कम हो जाता है। उनमें यह बात न थी। प्रतिद्वन्द्वी वे भी थे, एक-दूसरे से बढ़-चढ़कर बातें भी करते थे, पर उनकी हार्दिक इच्छा एक-दूसरे का प्रभाव कम करने की कभी न होती थी, बल्कि वे दोनों अपना रोब जमाते और यदि एक का रोब कुछ कम होता दिखाई देता तो दूसरा उसकी मदद को आ जाता। मैं तो लाख चाहता हूँ कि हम भी उनका अनुकरण करें, समय आ जाय तो एक-दूसरे का समर्थन करने से परहेज़ न करें, पर झंडालाल कमबख़्त में अपने स्वर्गीय पिता का बीसवाँ हिस्सा भी अक़्ल नहीं। मुझे आज भी याद है, एक बार उन्होंने इसी तरह के एक मौक़े पर मेरे पिता जी को एक कठिन परिस्थिति से निकाला था और यह झंडालाल, यह तो......ख़ैर छोड़ो, मैं आपको वह बात सुनाता हूँ। क्या अजीब दोस्त थे वे दोनों!

और इसी रौ में पंडित तेजभान अपने और अपने मित्र झंडालाल के स्वर्गीय पिता लाला खंडालाल का एक क़िस्सा सुनाने लगे। उन्होंने कहा—

झंडालाल के पिता लाला खंडालाल ने अपनी मक्खी ऐसी मूँछों को नाक और ओठों के बीच भींचते हुए कहना शुरू किया—जगाधरी के विस्तृत, बीहड़ जंगलों में एक बार मुझे अपने जीवन की सबसे विचित्र और रोमांचकारी घटना से दो-चार होना पड़ा और आज भी जब उसकी याद आती है तब बदन के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

बाहर वर्षा होने लगी थी और हम लाला खंडालाल के यहाँ ही रुक गये थे। झंडालाल और मैं तब बहुत छोटे थे। याद नहीं पड़ता, कोई त्योहार था या कोई और संस्कार जिसके कारण हम—मैं, पिता जी और माता जी—उनके घर गये थे। ख़ैर, सर्दी बढ़ गई थी,

इसलिए मैं तो झंडालाल के पास लिहाफ़ में जा बैठा। छोटा बलराम शायद सो गया था और हमारी दोनों बड़ी बहनें परे चारपाई पर बैठी थीं। उनके साथ ही अँगीठी के पास माता जी बैठी थीं। लाला खंडालाल के हाथ में हुक्के की नै थी और मेरे पिता शायद इस इन्तज़ार में थे कि वे अपनी बातों को पूर्ण विराम देकर एक-दो घूँट भर लें तो उन्हें भी गुड़गुड़ाने का मौक़ा मिले। बहरहाल कुछ ऐसी ही फ़िज़ा में लाला खंडालाल ने अपनी पत्नी की ओर एक नज़र देखकर यह कहा—वही बात सुनाने लगा हूँ जिसे सुनकर तुम इतना डर गई थीं कि मुझे कई दिनों तक घर से बाहर नहीं निकलने दिया था।

उनकी पत्नी अँगीठी में और कोयले डालती हुई ओठों में मुस्कराईं और फिर मेरी माता जी के पास जा बैठीं। तब लाला खंडालाल ने इस अन्दाज़ में जैसे उनका मस्तिष्क दुनिया के अनुभवों का ख़ज़ाना हो, कहना शुरू किया—यह उस ज़माने की बात है जब मैं जगाधरी में पटवारी बनकर गया ही था। वहाँ जंगल के रेंजर से मेरी गहरी दोस्ती हो गई। ख़ूब आदमी था वह। जगल के जीवन की ऐसी बातें सुनाता था, ऐसी दिलचस्प और ऐसी हैरान कर देनेवाली कि मेरे दिल में घने जंगल में जाकर वहाँ का जीवन देखने की आकांक्षा प्रबल हो उठती। कैसे चाँदनी रातों में वन का राजा वृक्षों जितनी ऊँची छलाँगें लगाता हुआ विचरता है, कैसे उसकी दहाड़ से जंगल गूँज उठता है, कैसे चीते, बाघ और बघेले स्वच्छन्द-स्वतन्त्र घूमा करते हैं! यह सब देखने की उत्कट इच्छा होती। वैसे तो एक-दो बार जब हमारे क़स्बे में सरकस आया था और उन्होंने शेर और चीतों को देखने का टिकट लगाया था तब नक़द इकन्नी ख़र्च करके हम दो बार उन हिंस्र जन्तुओं के दर्शन कर आये थे, पर जंगल की तो बात ही दूसरी होती है। एक दिन हमारे मित्र रेंजर ने हमें अपने साथ जंगल में ले जाने की इच्छा प्रकट की। तब जनाब झंडालाल की मा तो घबरा गईं—आख़िर अबला स्त्री हुईं न—पर मैं तो, आप जानते हैं, बचपन से ही निर्भीक हूँ। मेरी निडरता देखकर लोग-बाग मेरे पिता से कहा करते थे—भई ढंडालाल, तुम्हारा लड़का तो शेरों का दिल रखता है, इसे तुम सेना में भर्ती करा देना। लाला खंडालाल ने मेरे पिता के बाज़ू पर हाथ मारते हुए कहा, सच जानना भाई, यदि मैं सेना में भर्ती हो जाता तो 'लफ़्टैंटी' तो वह पड़ी थी, पर यहाँ तो भाग्य में जरीब खींचना बदा था।

एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर लाला खंडालाल ने फिर कहना आरम्भ किया—ख़ैर, हम झंडालाल की मा के लाख मना करने पर भी चल पड़े। घना जंगल, सूची-भेद्य अन्धकार और कंटकाकीर्ण मार्ग! रात तो चाँदनी थी, पर वृक्ष इतने घने थे कि प्रकाश की एक किरण भी नहीं दिखाई देती थी। तभी दूर कहीं शेर के गर्जने की गगनभेदी आवाज़ सुनाई दी। चिड़ियाघर के पिंजरे में बन्द शेर की आवाज़ और उस विस्तृत जगल की आज़ाद फ़िज़ा में बबर शेर की आवाज़ में कितना अन्तर है, यह कुछ अनुभव से ही पता चलता है। मैं काफ़ी मज़बूत दिल का आदमी हूँ, पर ज़रा दिल पर हाथ रखकर देखो, आज भी स्मरण-मात्र से कलेजा काँप रहा है।

मेरी बहन गेंदा और झंडालाल की बहन चम्पा में गुपचुप कुछ बातें हो रही थीं। जब लाला खंडालाल ने मेरे पिता का हाथ अपने दिल की धड़कन दिखाने के लिए खींचा तब मेरी बहन ने पूछा—क्यों तायाजी, हमने तो सुना है कि भारतवर्ष में बबर शेर मिलते ही नहीं और अब तो अफ़्रीका में भी उनका आधिक्य नहीं रहा। फिर जगाधरी तो पंजाब में ही........।

मेरे पिता का हाथ छोड़कर बीच में ही बात काटते हुए लाला खंडालाल ने कहा—बस, इसे कहते हैं पढ़-लिखकर भी मूर्ख रहना। अरे, मैं तब की बात कर रहा हूँ जब बबर शेरों की दहाड़ों से हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक के जंगल गूँजा करते थे। तब तो तू पैदा भी नहीं हुई थी। और उन्होंने अपनी कहानी जारी रखते हुए कहा—बस जनाब, उस बीहड़ जंगल में हम चले जा रहे थे। कभी हाथी की भयावह चिंघाड़, कभी शेर की भयानक दहाड़ और कभी भेड़ियों की डरा देनेवाली गुर्राहट। काफ़ी दूर चलकर हम ज़रा खुले मैदान में पहुँचे। सामने कुछ दूर पर एक बड़ा ऊँचा टीला बना हुआ था। सुना था, एक बार वहाँ कई हाथी मर गये थे। उसी रात बड़ा भारी तूफ़ान आया, जिससे जंगल के कई वृक्ष उन पर गिर पड़े। बाद को मिट्टी जम जाने से वह टीला बन गया।

अब उनकी अपनी लड़की को कुछ आशंका हुई, वह बोली—पिता जी, हमने तो सुना है कि हाथी इस प्रकार जहाँ-तहाँ नहीं मरा करते। किसी ख़ास जगह शांति से जाकर मरते हैं।

लाला खंडालाल झल्लाकर बोले—तुम्हें जिन बातों का पता नहीं उनमें बहस मत किया करो। परमात्मा की इच्छा के आगे क्या असम्भव है? आज वह चाहे तो सारा संसार ग़र्क़ हो जाय। हाथी बेचारे की बिसात ही क्या है? और बेज़ारी से सिर हिलाकर उन्होंने फिर कहना शुरू किया—उस मैदान में चाँद पूरी रोशनी से चमक रहा था। मैंने अंधकार से निकलकर ज़रा सुख की साँस ली। तभी कहीं समीप से ही शेर की दहाड़ आई और इसके साथ ही उसके झाड़ियाँ फलाँगने की आवाज़! मेरे तो हवास गुम हो गये। आप जानते हैं, मैं काफ़ी निडर हूँ, पर निडरता भी जगह जगह की होती है। फिर भी बाहर से मैंने अपना संयम बनाये रक्खा। लेकिन कब तक? रेंजर मेरी घबराहट ताड़ गया, बोला—वाह डर गये। अरे भाई! मेरे साथ होते हुए डर कैसा? इतने वर्षों से इन जंगलों में काम कर रहा हूँ। ये सब हिंस्र पशु तो मेरे मित्र हो गये हैं। मजाल है, कोई तुम्हें कुछ कहे। अपने पशु-ज्ञान से वे झट जान लेंगे कि तुम मेरे मित्र हो। कोई और शिकार होगा, जिसे देखकर शेर दहाड़ रहा है।

रेंजर ने अभी अपनी बात समाप्त भी न की थी कि बिजली की तेज़ी से बबर शेर मेरे पास से निकल गया। इतने पास से कि उसकी गर्दन के बाल मेरी कमीज़ की छोर से छूते गये। अब मुझे कुछ सान्त्वना मिली। रेंजर ने सत्य ही कहा था। वहाँ के सब पशु-पक्षी उसके मित्र थे। हम अभी शेर की ओर देख ही रहे थे, जो टीले की ओर तेज़ी से दहाड़ता-फलाँगता बढ़ा जा रहा था कि पीछे से शेरनी भी उसी तेज़ी से आई और मेरे बिलकुल पास से—इतना पास से कि उसका एक कान मेरी सलवार से छू गया—निकल गई। मैंने अपने प्रिय मित्र रेंजर से पूछा—ये दोनों किधर जा रहे हैं? उसने उत्तर दिया, अवश्य ही कोई शिकार होगा, चलो ज़रा आगे बढ़कर देखें।

मेरी उत्सुकता को तो पर लग रहे थे। हम उनके पीछे हो गये। ज़रा दूर जाने पर देखा कि एक भैंसा टीले के समीप वृक्ष की छाया में खड़ा है। छाया में होने के कारण दिखाई नहीं दे रहा था। यद्यपि रेंजर ने कहा था शेरनी के आगे बढ़ें और यद्यपि अब मेरे मन में भी डर का नाम तक न था, फिर भी मैंने वहीं से देखना उचित समझा। पशु आख़िर पशु ही है, बिल्ली को भी अधिक तंग करो तो पंजा मार देती है। फिर शेर तो शेर ही ठहरा।

हम वहीं, ज़रा दूर, एक वृक्ष की ओट में खड़े होकर देखने लगे।

× × ×

लाला खंडालाल ने यह कहकर हुक्क़ा गुड़गुड़ाया और फिर उसे मेरे पिता जी की ओर कर दिया। पर शायद कोयले बुझ गये थे, क्योंकि उनके बार बार ज़ोर से गुड़गुड़ाने पर भी धुआँ न निकला। तब लाला खंडालाल ने अपनी कहानी फिर शुरू की—

सिंह को आता देखकर भी भैंसा खड़ा रहा, भागा नहीं, हिला नहीं, जैसे मूर्तिमान् मृत्यु को देखकर उसके होश उड़ गये हों, जैसे उसे मौत ने सूँघ लिया हो। हमारे देखते देखते सिंह उस पर झपटा, और दूसरे क्षण रुधिर की धार भैंसे के शरीर से फ़ौवारे की तरह फूट निकली। एक और हमला हुआ और भैंसा धरती पर गिरकर तड़पने लगा। उसे ज़मीन पर गिराकर शेर ने अपनी प्रिय सिंहनी को ओर गर्वभरी दृष्टि से देखा। शेरनी ने सिर उठाकर हलकी सी गुर्राहट के साथ उसे शाबाशी दी। तब अभिमान के मद में झूमकर सिंह फिर भैंसे की ओर बढ़ा और उसने उसे अपने मज़बूत दाँतों से पकड़कर तोला। यह कहते हुए लाला खंडालाल ने मूँछों को मींजते हुए, सिर तनिक नीचा करके (मानो शेर की तरह भैंसे को पकड़कर) वज़न करते हुए, सिर हिलाया। सिर हिलाते समय लाला जी की टोपी पहले दायीं ओर, फिर बायीं ओर खिसकी और फिर जहाँ की तहाँ टिक गई।

उसे एक जैसा तोलकर लाला खंडालाल बोले—सिंह ने मृतक भैंसे को धरती पर रख दिया और सिंहनी की ओर एक बार देखकर, मानो बल प्राप्त करके उसने फिर उसे वहीं से पकड़ा और एक बार सिर झुकाकर ज्योंही ऊपर को फेंका, भैंसा ऐन टीले की चोटी तक जा पहुँचा और वह वहाँ से लुढ़क आया।

लाला जी की टोपी जो सिर को झटका देने के कारण भैंसे की तरह उछल गई थी, उनकी पत्नी ने उन्हें लाकर

इसलि— ा जी बोले—यह देखकर शेरनी का सब उल्लास जाता रहा। अपने वीर पति की इस असफलता पर उसे हार्दिक दुख हुआ और क्रोध से उसकी आँखों में आँसू भर आये। शेर की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखकर उसने उसे हटने के लिए कहा। सिंह लज्जा से सिर झुकाकर पीछे हट गया। तब शेरनी आगे बढ़ी। उसने भैंसे को उठाया, उसे उसी तरह तोला लालाजी, ने सिर हिलाकर बताया कि इस तरह तोला और उनकी टोपी ने बताया कि सचमुच उसने ठीक ही वज़न किया। फिर लाला जी तनिक ऊँची आवाज़ से बोले—तब शेरनी ने ज़रा सिर झुकाकर ज्योंही टीले की चोटी की तरफ़ ज़ोर से एक झटका मारा, दूसरे क्षण भैंसा टीले के पार था।

इस बार झटका देते समय लाला जी ने टोपी पर हाथ रख लिया था।

लाला जी बोले—तब एक रहस्य-भरी मुस्कान के साथ शेरनी ने सिंह की ओर देखा। सिंह अपनी पत्नी की इस बहादुरी पर ख़ुशी से बाग़ बाग़ हो गया, वह मुस्कराया और आगे बढ़कर उसने सिंहनी को चूम लिया।

× × ×

लाला खंडामल की कहानी सुनाकर पंडित तेजभान बोले—हमने समझा था कि छोटा बलराम सोया पड़ा है, पर कहानी ख़त्म होते ही बिस्तरे से उचककर उसने पूछा—फिर क्या हुआ? उसे शायद भैंसे की चिन्ता सता रही थी और मानो बच्चे के मन की बात को भाँपते हुए लाला खंडालाल ने कहा—तब शेर और शेरनी अपना शिकार खाने के लिए टीले के पार दौड़ गये।

तनिक खाँसकर पंडित तेजभान फिर बोले—कहानी सुनाकर लाला खंडालाल ने रोब के साथ हम सबकी ओर देखा और एक-दो बार मूँछों को मींजते हुए कहने लगे—यह घटना भी मुझे मरते दम तक याद रहेगी। जब झंडा की मा को मैंने यह बात सुनाई तब वह तो ऐसा डरी कि कई दिन तक उसे शेरों के स्वप्न आते रहे।

पंडित तेजभान ज़रा मुस्कराकर बोले—तब मालूम होता है कि हमारे पिता जी भी कुछ कहने के लिए आतुर हो रहे थे। एक बार हमारी माता जी की ओर देखकर और जैसे कुछ साहस पाकर उन्होंने कहना शुरू किया—झाँगा-भाँगा के बीहड़ और विस्तृत जगलों में जब मैं वहाँ पोस्टमास्टर था, मुझे भी बिलकुल ऐसी ही एक घटना से दो-चार होना पड़ा था। तुम तो जानते ही हो खंडालाल कि झाँगा-भाँगा का जंगल कितना बीहड़ और विकट है और हिंस्र पशुओं का वहाँ कितना आधिक्य है। एक बार हमारे एक मित्र जो बड़े नामी शिकारी थे, मेरे पास आकर ठहरे! उन्होंने सारा जङ्गल घूम डाला, कई भेड़ियों और चीतों का शिकार किया। पर बबर शेर का शिकार करने की उनकी इच्छा कभी पूरी न हुई। आम तौर पर इतवार के दिन छुट्टी होने के कारण मैं भी उनके साथ होता। बन्दूक़ चलाना तो मैं पहले से ही जानता था, पर हत्या के विचार से शिकार नहीं करता था। फिर तुम जानते हो, मुझे तो तीतर-बटेरों का शिकार पसन्द भी नहीं। आदमी क्या निरीह चिड़ियों को मारता फिरे! शिकार ही करना हो तो हिंस्र पशुओं का करे और इसी लिए जब जब अपने शिकारी मित्र के साथ गया, मैंने चीते को ही अपना शिकार बनाया। क्या बताऊँ? कई खालें इकट्ठी हो गई थीं, पर मित्र छोड़ें तब न। अब एक भी देखने को नहीं रही।

ख़ैर, एक दिन एक जङ्गली आदमी ने बबर शेर का पता दिया। बस, जनाब, उसी वक्त उसके शिकार का प्रबन्ध किया गया। जंगल के जिस भाग में शेर का पता मिला था, वहाँ एक काफ़ी ऊँचा टीला भी था। उसके पास एक वृक्ष के साथ लोहे की मोटी ज़ंजीर से एक भैंसा बाँधा गया। टीले की दाईं ओर मचान बनाया गया। जब रात ने संसार को अपने दामन में छिपा लिया तब हम दोनों बन्दूक़ें सँभाले बबर शेर के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। जाड़े के दिन थे, शरीर की नस-नस में चुभ जानेवाली सर्दी पड़ रही थी, अंग अंग शिथिल हो रहा था, पर शेर का कोई पता न था। आधी रात हो गई, चाँद निकल आया। तभी उसके क्षीण प्रकाश में हमने देखा कि शेर आ रहा है। हमने यह फ़ैसला कर लिया था कि गोली तभी चलायेंगे जब वह अपने शिकार को मार कर खाने लगे। फिर देखा कि शेरनी भी उछलती-फलाँगती हुई वृक्षों से निकली। शायद भैंसे की बू पाकर वे दोनों ही आये थे। भैंसे को देखकर शेर दहाड़ा और एक लम्बी छलाँग मार कर भैंसे पर झपटा। भैंसा 'म्हें म्हें' करके रह गया।

तनिक खाँस कर हमारे पिता जी ने फिर कहना शुरू किया—हम इस प्रतीक्षा में बैठे थे कि शेर और शेरनी भैंसे को मारकर खाने लगें तब एक ही साथ वे दोनों यमलोक को पहुँचाये जायँ। पर तुम तो जानते ही हो खंडालाल, बबर शेर अपने शिकार को मारकर एक-दम खाने नहीं लगता, पहले उसे उछालता है। जैसे बिल्ली चूहे के साथ खेलती है, वैसे ही वह भी खेलता है। बस जनाब, उस शेर ने भी उसे ज़मीन पर गिराकर अपने मज़बूत दाँतों में उसे पकड़ा और एक झटका देकर टीले की ओर फेंका, पर भैंसा ज़ंजीर से बँधा होने के कारण थोड़ी दूर जाकर लुढ़का आया। यह देखकर शेरनी क्रोध से बावली हो गई। शेर को पीछे हटा कर वह आगे बढ़ी और भैंसे को उठा कर उसने क्रोध से झटका देकर ज्यों ही टीले की ओर फेंका, भैंसे के साथ ही वृक्ष भी उखड़कर टीले के पार जा पड़ा।

कहानी सुना कर गर्व से सबकी ओर देखते हुए हमारे पिता जी ने कहा—तब यह सोचकर कि अब ये भाग जायँगे, हमने तड़ातड़ गोलियाँ चलाईं, पर हवा इतनी तेज़ थी कि गोलियाँ उड़ उड़कर दूसरी ओर चली गईं।

झंडालाल ने कहा—तब शेर भाग गये होंगे।

उन्होंने कहा—हाँ उस वक्त तो भाग गये, पर उसके बाद एक दिन शेर मेरे हाथ से मारा गया। शेरनी की क़िस्मत अच्छी थी कि बच निकली। और माता जी की ओर देखते हुए बोले—वही था, जिसकी खाल हमारे अँगरेज़ सुपरिंटेंडेंट की मेम ले गई थी। कितना बड़ा और भयानक था!

पंडित तेजभान बोले—हमारे पिता जी की कहानी के बाद एक क्षण के लिए क़मरे में निस्तब्धता छा गई। हमारे पिता ने यह बात सुनाकर गर्व से हमारी माता जी की ओर देखा, और मानों सारे कमरे पर और उसमें बैठे हुए सब प्राणियों पर उनका रोब छा गया। तब चम्पा को कुछ आशङ्का हुई। आख़िर वह हम सबसे बड़ी थी और विद्यालय की आठवीं श्रेणी में पढ़ती थी, मुस्कुराकर बोली—चाचा जी, यह तो आपने ग़प ही हाँक दी। भला यह कैसे हो सकता है कि भैंसे के साथ वृक्ष भी उखड़कर टीले के दूसरी ओर जा पड़े?

हमारे पिता जी बगलें झाँकने लगे।

तब लाला खंडालाल उनकी मदद को आ गये। लड़की को झिड़ककर बोले—पागल, जब मेरी बात सची है तब इनकी झूठी क्योंकर हो सकती है?

स्वप्न-सौदागर

लेखक, श्रीयुत बन्दे अली फ़ातमी

मैं स्वप्न बेचने आया हूँ
इस विश्व-स्वप्न-शाला में मैं उपहार नये कुछ लाया हूँ
मेरे जीवन में कौन आया
यह स्वप्न कि जिसकी परछाईं
किसने काकलि की थी याँ पर
है गूँज रही जिसकी झाईं
औ' ख़ुद भी अनुभव करता हूँ, मैं स्वयं किसी की छाया हूँ
मैं स्वप्न बेचने आया हूँ
उसको न जब कि मैं पाता हूँ
औरों को ही अपनाता हूँ
जो चाहे अपना मुझे कहे
'उससे' मैं सबका नाता हूँ
माया ने ममता सिखलाई मैं किसी सत्य को माया हूँ
मैं स्वप्न बेचने आया हूँ
वह स्वप्न कि जिसमें छिपे हुए
चौदहों भुवन, ब्रह्माण्ड अखिल
अवनी-अम्बर, पाताल अतल
सूरज-चन्दा, तारे झिलमिल
जिसमें 'समस्त' है व्याप्त वही रे मैं इक लघु युग-काया हूँ
मैं स्वप्न बेचने आया हूँ

भगवान् बुद्ध की जयन्ती

लेखक, पण्डित वेंकटेश नारायण तिवारी

आल इंडिया रेडियो लखनऊ से १४ मई को तिवारी जी ने इस लेख को ब्राडकास्ट किया था। सम्भवतः लखनऊ से हिन्दी का यह पहला ब्राडकास्ट है। वहाँ से अभी तक केवल उर्दू में ही ब्राडकास्ट होते रहे हैं। ब्राडकास्टवालों को यह न भूलना चाहिए कि इस प्रान्त की भाषा हिन्दी है। तिवारी जी जैसे हिन्दी के श्रेष्ठ लेखक के इस भाषण-द्वारा हिन्दी ब्राडकास्ट का श्रीगणेश करने के लिए हम रेडियोवालों को धन्यवाद देते हैं। ब्राडकास्ट के लेख कैसे होने चाहिए इसका यह एक आदर्श नमूना है।

वैशाख शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को हमें बहुत ही पवित्र पर्व समझना चाहिए, क्योंकि इसी तिथि में गौतम बुद्ध ने इस संसार को छोड़ा था। उनके पुजारियों की संख्या आज भी दुनिया में किसी और देवी-देवता या पैग़म्बर के अनुयायियों की तादाद से कहीं अधिक है। इस देश का तो भगवान् बुद्ध के साथ विशेष सम्बन्ध है। वे यहीं पैदा हुए और यहीं मरे। बहराइच ज़िले के लुम्बनी-वन में उनका जन्म हुआ और गोरखपुर-ज़िले के कसिया ग्राम में उन्होंने शरीर छोड़ा। गौतम बुद्ध न तो ईश्वरीय अवतार थे और न उन्होंने कभी अवतारी महा-पुरुष होने का दावा किया। उन्होंने अपने को कभी पैग़म्बर भी नहीं कहा। लेकिन आज दुनिया का बहुत बड़ा हिस्सा इन्हीं गौतम बुद्ध को ईश्वर मान कर पूजता है। चीन, जापान, तिब्बत, बर्मा, श्याम, लंका आदि देशों में बुद्ध के बताये हुए धर्म के अनुयायी हैं, और वे बौद्ध कहलाने में अपना गौरव मानते हैं। योरप और अमरीका में भी विद्वानों की अनुरक्ति बौद्ध-सिद्धान्तों के अध्ययन और मनन में दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। लेकिन जिस देश में बुद्ध पैदा हुए और जहाँ से बौद्ध-धर्म देश-देशान्तरों में फैला वहीं से बौद्ध-धर्म पिछले सात-आठ सौ साल से उठ गया। जहाँ की जनता सात-आठ सौ वर्ष पहले भगवान् बुद्ध को पूजती, उनके नाम को जपती और उनके बताये मार्ग का पथिक थी, वहीं की जनता आज बौद्ध-धर्म से मुँह मोड़ बैठी है और भगवान् बुद्ध का नाम तक लोगों को भूल गया है। यदि किसी को याद भी है तो वैसे ही जैसे किसी विदेशी का नाम हो। कितने दुख और अचरज की यह बात है, कितनी कृतघ्नता है कि हिन्दुस्तान अपने एक बहुत ही बड़े सपूत को इस तरह से भूल बैठे? जिसकी बदौलत दूर दूर देशों में हिन्दुस्तान की आज भी धाक जमी हुई है, उसी महापुरुष की कीर्ति-गाथा से हिन्दुस्तानी अपरिचित हों! इतिहास में अनेक भीषण, जघन्य पापों का ज़िक्र आया है, लेकिन वे सब बहुत ही साधारण मालूम होने लगते हैं, जब हम उनकी तुलना इस सर्वोच्च महापुरुष की स्मृति के प्रति अपनी उदासीनता के साथ करते हैं।

गौतम बुद्ध केवल महापुरुष ही नहीं थे, वे तो महा-पुरुषों के भी महापुरुष थे। मेरा नहीं, बल्कि विदेशियों का कहना है कि आर्य-जाति में गौतम बुद्ध के समान और कोई दूसरा आज तक नहीं पैदा हुआ। मेरी निश्चित धारणा है कि संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं पैदा हुआ

जो बराबरी करना तो दूर रहा उनके पास भी फटक सके। इस गणना में मैं न तो अवतारों और न पैग़म्बरों की गिनती करना चाहता हूँ। वे तो एक निराली ही कोटि में हैं। गौतम बुद्ध ने अपने को मनुष्य कहा और मनुष्यों की गिनती में वह कौन दूसरा पुरुष है जो प्रतिभा में, निर्द्वन्द्विता में, आचरण की पवित्रता और विचार की निर्मलता में गौतम बुद्ध के पास तक भी पहुँचने की हिम्मत कर सके। उनके व्यक्तित्व की विशालता, महत्ता, वीरता और गम्भीरता को देखकर अनायास ही मालूम हो जाता है कि ये महापुरुष अपने बड़प्पन में हिमालय की उच्चतम चोटी से टक्कर लेते हैं। बुद्ध ने वास्तव में मृत्यु को पराजित किया और निर्माण-पद के साथ ही साथ अमरत्व को अपना लिया। इसी लिए दिन पर दिन संसार भगवान् बुद्ध के बताये हुए मार्ग पर चलने के लिए बाध्य होता जायगा। इसी लिए, आओ, आज पूर्णमासी के दिन थोड़ी देर के लिए हम आपको उनकी जीवन-गाथा सुनायें और इस-प्रकार सब साथ मिलकर उनकी स्मृति पर अपनी श्रद्धांजलि की भेट चढ़ायें।

कहते हैं, आज से लगभग २,६०० वर्ष पहले नैपाल की तराई में कपिलवस्तु नाम का एक राज्य था। उसके राजा शुद्धोदन थे। वे राज्य के स्वामी न थे। उन दिनों कपिलवस्तु में पंचायती राज्य था। उसी पंचायत के सरपंच शुद्धोदन थे। इनके दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम महा-माया और दूसरी का महाप्रजावती था। दोनों ही बहनें थीं। चालीस वर्ष की अवस्था तक शुद्धोदन के कोई सन्तान नहीं हुई। उसके बाद उनके कुल में महामाया के गर्भ से गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। जन्म भी घर में नहीं हुआ। महामाया पति के घर से मायके जा रही थीं। मार्ग में लुम्बनी वन पड़ता था। वहीं रानी विश्राम के लिए ठहर गईं। थोड़ी देर के बाद पीड़ा शुरू हुई और एक शालवृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ। जन्म के सात दिन के बाद माता का निधन हो गया। मौसी विमाता रानी महाप्रजावती ने माता की मृत्यु के बाद बालक का पालन-पोषण किया।

दशरथ के भी शुद्धोदन के समान ही बहुत दिनों तक कोई सन्तान नहीं हुई थी। दशरथ के राम भी चौदह बरस तक वनवासी रहे थे। बुद्ध ने जब घर छोड़ा तब से फ़क़ीर होकर जंगलों की ख़ाक छानी। दशरथ के राम और शुद्धो-दन के बुद्ध दोनों ही बड़े घरों में पैदा हुए। दोनों ने ही ठाट-बाट को लात मारी और ग़रीबी का बाना लिया। दोनों ही अमर हैं और उन्हीं के कारण शुद्धोदन और दशरथ के नाम भी आज लोगों की ज़बान पर हैं। किसी ने ठीक कहा है कि हिन्दुस्तान में वही बड़ा होता है, उसी के हाथ में शक्ति आती है, जो लक्ष्मी को लात मार कर सांसारिक सुखों से मुँह मोड़ लेता है। यहाँ लक्ष्मी और शक्ति का मेल नहीं खाता। लक्ष्मी का वाहन तो उल्लू है।

भगवान् बुद्ध या गौतम बुद्ध का असली नाम सिद्धार्थ था। जन्म के बाद ज्योतिषियों ने बताया कि बालक यदि घर में रहा तो चक्रवर्ती राजा होगा और यदि घर छोड़ कर चला गया तो योगिराज कहलायगा। थोड़ी ही उम्र में उन्होंने विद्या प्राप्त कर ली थी और कहते हैं कि धनुर्विद्या में वे इतने कुशल थे कि कपिलवस्तु के उनके समकालीन लोग उनकी बराबरी नहीं कर सकते थे। लेकिन क्या बचपन में और क्या जवानी में, वे बहुत ही गम्भीर रहते थे। सांसारिक बातों से उन्हें अधिक रुचि न थी। संसार कैसे दुख से मुक्त हो, इसी उधेड़-बुन में वे सदा व्यस्त रहते थे।

सिद्धार्थ की यह चिन्ता कोई व्यक्तिगत चिन्ता न थी। उनके युग को ही यह बीमारी थी। चारों तरफ़ अशान्ति थी। प्रचलित धार्मिक विचारों और रूढ़ियों से लोगों की आत्माओं को तृप्ति नहीं होती थी। जंगलों में, पर्वतों की गुफाओं में, गाँवों की चौपालों में, ग़रीबों की झोपड़ियों में और राजाओं के महलों में एक अजीब हलचल मच रही थी। क्रान्ति के लक्षण चारों तरफ़ दृष्टिगोचर होते थे। प्रचलित धार्मिक संस्थाओं में अविश्वास ज़ोरों से बढ़ रहा था। आत्मा क्या है, संसार में दुख क्यों है, ईश्वर है या नहीं, है तो क्या है, आवागमन से छुटकारा मिल सकता है या नहीं, जन्म और मरण, रोग और बुढ़ापा का चक्र क्या सदा चलता ही रहेगा या उससे कभी मुक्ति भी सम्भव है? पशु-बलि, यज्ञ और कर्मकाण्ड, इनसे लोगों की श्रद्धा उठ गई थी। पुराने सोतों का पानी खारी मालूम होने लगा था। पुराने देवी-देवताओं से लोग विमुख होने लगे थे। नये सत्य की खोज उस युग की

विशेषता थी। खोज का नाम है चिन्ता। बुद्ध को भी बचपन से ही उन चिन्ताओं ने घेर रक्खा था। महापुरुष अपने युग की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि है, विचारधाराओं का प्रतिबिम्ब है। वह युग का जहाँ पुत्र है, वहाँ उसका निर्माता भी होता है। बचपन से ही सिद्धार्थ बेचैन थे, असन्तुष्ट थे, अतृप्त थे। गृहस्थी में रहते हुए भी गृहस्थी के न थे। घर में थे, लेकिन आँखों में चाह थी वन की। कुटुम्बियों के बीच में तो रहते थे, लेकिन चाह थी निर्जन की। शादी हुई, एक बच्चा भी हो गया। पत्नी का नाम यशोधरा था, पुत्र का राहुल। एक रात को बेचैनी इतनी बढ़ी कि घर काटने लगा और घरवाले वैरी दिखाई देने लगे। क्योंकि सिद्धार्थ जन्म से ही वन के पक्षी थे। गृहस्थी के पिंजड़े में वे कब तक बन्द रह सकते थे? आधी रात को उठे। सोती हुई पत्नी और सोते हुए दुधमुँहे बच्चे पर एक नज़र डाली और महल के बाहर हो गये। बाहर चेतक घोड़ा सजा खड़ा था, छन्दक सारथी पास ही खड़ा था। घोड़े पर सवार हो और छन्दक को साथ लेकर चल पड़े। ४५ मील चलने के बाद अनमा नदी के तीर पर पहुँचे। वहाँ सिद्धार्थ घोड़े से उतर पड़े, राजसी कपड़े उतार कर फेंक दिये और तलवार से केश काट डाले। छन्दक और चेतक से विदा होकर वे जंगल में विलीन हो गये। चलते चलते राजगृह जा पहुँचे। वहाँ उस समय राजा बिम्बिसार राज्य करते थे। अपने समय के नामी-गरामी धर्माचार्यों और सिद्धों से सिद्धार्थ मिले, लेकिन उन्हें कहीं शान्ति न मिली। उसके बाद ७ वर्ष तक लगातार घोर तपस्या की। तन सूखकर ठठरी हो गया। लेकिन जिस वस्तु की खोज में उन्होंने घर-बार छोड़ा था वह इतने घोर तप के बाद भी उनके हाथ न आई। तप इतना उग्र था कि वे बेहोश हो गये। अन्त में जब होश आया तब इस उग्र तप की निस्सारता का उन्होंने अनुभव किया और उसी समय उसे त्याग दिया। फिर निरंजना नदी में पहुँचे और वहाँ स्नान करने के बाद किनारे पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ गये। बैठे ही थे कि सुजाता नाम की एक अहीर की लड़की ने उन्हें वन-देवता समझकर खीर की भेंट चढ़ाई। उस खीर को खाने से उनके शरीर में बल आया। इसके बाद वे स[illegible] उसी पेड़ के नीचे बैठ गये। इस बार उनकी तपस्या सफल हुई। जिस बात की खोज के लिए वे घर से निकले थे वह उन्हें मिल गई। उन्हें जीवन-मरण की पहेली का रहस्य मालूम हो गया। वे साक्षात् 'बुद्ध' हो गये। उस घड़ी से सिद्धार्थ का नाम भी मिट गया। निरंजना नदी के तट से बुद्धत्व लाभ होने के बाद वे सारनाथ की तरफ़ चले।

वहाँ पहुँचकर अपने पूर्व-परिचित पाँच ब्रह्मचारियों को वह नया संदेश सुनाया जो उन्हें निरंजना नदी के किनारे पीपल के वृक्ष के नीचे प्राप्त हुआ था। इस महाउपदेश का नाम है 'धर्मचक्र-प्रवर्त्तन-सूत्र'। इसी में बुद्ध के सब सिद्धान्तों और उपदेशों का सार है। यही पाँच ब्रह्मचारी उनके शिष्य हुए। धीरे-धीरे उनके शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। साधु-संन्यासी और गृहस्थ बुद्ध के चरणों में आकर उपदेश लेने लगे। राजमहलों में भी उनके उपदेशों की गूँज पहुँची और अनेक राजा और उनकी रानियाँ उनके सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये। मगध के राजा बिम्बिसार और उनके पुत्र अजातशत्रु और कौशाम्बी के राजा उदयन की रानी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ८० वर्ष की अवस्था तक भगवान् बुद्ध साल के आठ महीने निरन्तर भ्रमण करने, उपदेश देने और पीड़ित आत्माओं की वेदना दूर करने में संलग्न रहे। उन्होंने करुणा का सागर बहा दिया और संसार पशुबलि के पाप से घृणा करने लगा। कर्म का अर्थ ही उन्होंने बदल दिया। बाहरी कर्मकाण्ड के स्थान में उन्होंने अन्तःकरण की निर्मलता को रक्खा और लोगों को बताया कि किसी देवी-देवता की उपासना से नहीं, किन्तु आत्म-शुद्धि के द्वारा ही मनुष्य परम पद को प्राप्त कर सकता है।

अन्त में ८० वर्ष की अवस्था में कुशीनार या कुशीनगर अथवा आधुनिक कसिया में उनका निधन हुआ। उस दिन निर्मल ज्ञान की एक अद्वितीय ज्योति बुझ गई। निर्मल विवेक और सर्वथा निर्द्वन्द्व दृष्टि का खम्भा टूट पड़ा। गीता का आदर्श स्थितिप्रज्ञ इस संसार से उठ गया। वह तेजपुंज जिसका प्रकाश दिग्दिगन्त को और भविष्य की अगणित सीढ़ियों को आलोकित कर रहा था, सदा के लिए उसी अनन्त सागर के गर्भ में समा गया, जिससे वह निकला था। उस दिन ऐसे पुरुष का निधन

हुआ जो बेजोड़ था, बेजोड़ है और बेजोड़ रहेगा। तब से जब से सृष्टि का क्रम बँधा और तब तक, जब तक सृष्टि का क्रम बँधा रहेगा।

समय तेज़ी से भाग रहा है। मिनट भी जल्दी जल्दी दौड़ रहे हैं, इसलिए संक्षेप में ही बुद्ध भगवान् के मूल सिद्धान्तों को सरसरी तौर से मैं ज़िक्र कर देना चाहता हूँ। भगवान् बुद्ध ने किसी नये धर्म की रचना नहीं की। उनके धर्म की रग रग से आर्य-संस्कृति झलकती है। उन्होंने कोई ऐसी बात नहीं कही जो उनसे पहले के आचार्य नहीं कह गये थे। लेकिन पुराने विचारों के ढेर से उन्होंने कुछ विचारों को चुन लिया और जो पहले प्रधान गिने जाते थे उनको गौण स्थान दे दिया और गौण बातों को प्रधान बना दिया। इतने ही उलट-फेर से उन्होंने पुरानी बातों में वह जान फूँकी और वह शक्ति भर दी जो न तो कभी मरेगी और न तो उसकी शक्ति ही कभी क्षीण होगी। वे ईश्वरवादी नहीं थे। ईश्वर है या नहीं, इसकी चिन्ता ने भी उन्हें कभी नहीं सताया। वेदों के उपासक न थे, वैदिक धर्म के कट्टर शत्रु थे और आत्मा और परमात्मा के झगड़ों में पड़ने से उन्होंने अपने शिष्यों को रोका। जातिपाँति के विरोधी थे। शूद्र और ब्राह्मण उनकी दृष्टि में समान थे। स्त्रियों के लिए यद्यपि उन्हें आदर था, लेकिन पुरुषों की गणना में उन्होंने उनको गौण स्थान दे दिया। गृहस्थी जंजाल है, यही मानकर उन्होंने अपने लड़के राहुल और अपनी स्त्री यशोधरा तक को संन्यास दिया। लालसा, मोह, मद, क्रोध, काम ही दुःख के मूल कारण हैं। इनसे निवृत्ति ही निर्वाण-पद तक पहुँचायगी। दूसरों की निःस्वार्थ सेवा, सम्यक् ज्ञान और सदाचार धर्म के मूल हैं। आवागमन के वे समर्थक थे। लेकिन निर्वाण के बाद आत्मा का विनाश होता है या नहीं, इस प्रश्न के विषय में बहुत कुछ मतभेद है। एक ओर उग्र तप के जहाँ वे विरोधी थे, वहाँ सांसारिक भोग-विलास को सब दुखों का कारण मानते थे। इसी लिए उन्होंने अपने मत को मध्यम मार्ग यानी बीचवाला मार्ग नाम दिया। देवी-देवताओं की अनुकम्पा से नहीं, किन्तु अपने पुरुषार्थ के बल पर पुरुष भवसागर पार करने में समर्थ होगा, यही उनका सिद्धान्त था। इसी में उनकी विशिष्टता है। इस प्रकार इस महापुरुष ने भगीरथ प्रयत्न से सच्ची खोज की, और सत्य को प्राप्त करने के बाद किसी निर्जन वन की गुफ़ा में जाकर वे नहीं बैठ रहे। अर्ध शताब्दी के लगभग गाँव गाँव पैदल घूमे, जिससे दूसरों की भी पीड़ा उसी दवा के उपयोग से शान्त हो जाय जिससे उनको शान्ति मिली थी। जब ८० वर्ष की आयु में उनका देहावसान हुआ तब वे अपने पीछे एक ऐसे जीवन का उदाहरण छोड़ गये जिसमें एक भी दाग़ नहीं, जो सब दृष्टियों से पूर्ण, अखंडित और अपूर्व है। एक अँगरेज़ लेखक ने उन्हें हिन्दू संस्कृति का श्रेष्ठतम कुसुम कहा है। मेरी दृष्टि में उनका जीवन मानवता की अन्तिम उच्चता की आशा है, और उस तक पहुँचना किसी दूसरे के लिए शायद ही सम्भव हो।

आह

लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह बी० ए० एल-एल-बी०

कहना है अगर कहो यों,
सुनना ही पड़े सभी को।
आँसू ऐसे बरसाना
घुलना ही पड़े सभी को।

हँसनेवाले रो देवें
सोनेवाले जग जावें
निकले जब आह तुम्हारी
हिलना ही पड़े सभी को॥

योरप में रंग भेद

लेखिका, श्री कुमारी पद्मावती चिन्नप्पा, डी० एस० एस० (लंदन)

जब मैं लंदन में थी तब कई एक मित्रों ने अपने पत्रों में मुझसे अनेक प्रश्न पूछे थे। उनमें कुछ प्रश्न तो एकदम स्वाभाविक थे, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति विदेश के बारे में कुछ न कुछ जानना ही चाहता है। पर कुछ प्रश्न ऐसे थे जिनको क़रीब क़रीब सभी ने मुझसे पूछा था। जब मैं भारतवर्ष लौटी तब मुझसे बहुतों ने उसी तरह के प्रश्न फिर किये। इन लोगों के प्रश्नों को यहाँ उद्धृत करती हूँ।

पहला प्रश्न—इँग्लेंड और अन्य योरपीय देशों में वहाँ के लोगों का भारतीयों के साथ कैसा बर्ताव है? रंग-भेद की बातें कहाँ कहाँ ज़्यादा प्रचलित हैं?

दूसरा प्रश्न—पाश्चात्य लोगों का वैवाहिक जीवन कैसा है? तलाक़ आदि की बातों के सुनने से मालूम पड़ता है कि वहाँ घरेलू जीवन में सुख नहीं है।

इसी प्रकार के और कई महत्त्व के प्रश्न किये गये हैं, पर केवल इन दो प्रश्नों की ही विवेचना की जाय तो एक बड़ा पोथा लिखना पड़ेगा। योरप के अपने तीन वर्ष के अनुभव में जो जो बातें नज़र आई हैं उनके आधार पर मैं यहाँ उक्त प्रथम प्रश्न पर अपना मन्तव्य प्रकट करूँगी।

श्री कुमारी पद्मावती चिन्नप्पा, डी० एस० एस० (लंदन)

हाँ, जब मैं स्वदेश में थी, मैंने रङ्ग की समस्या के बारे में बहुत सुन रक्खा था। मेरी भी धारणा वही थी, जो देश की आम जनता की है।

विदेश जानेवाले लोगों में विद्यार्थियों की संख्या अधिक है। रङ्गभेद का प्रश्न कालेजों और स्कूलों में नहीं उठता है। पर हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों से ही यह सुना गया है कि अँगरेज़ लोग हम लोगों से मेल-जोल नहीं करना चाहते। यह बात कुछ हद तक ठीक है। पर यह बात नहीं है कि इँग्लिश विद्यार्थी सिर्फ़ हमीं लोगों से नहीं मिलते हैं। वे अन्य देशों के विद्यार्थियों से भी। उदाहरणार्थ जो लोग नार्वे, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों से आते हैं उनसे भी—मिलने की उत्कण्ठा नहीं दिखाते। यह तो मेरी आँखों देखी बात है। वहाँ कालेज में हर देश के विद्यार्थियों के अलग अलग समूह बन जाते हैं जैसे कि अमेरिकन अलग, हिन्दुस्तानी अलग। विलायत में विदेश के विद्यार्थी लोग एक-दूसरे के प्रति जितनी मित्रता दर्शाते हैं, उतनी अँगरेज़ विद्यार्थी नहीं दिखाते। एक दिन मेरी एक हिन्दुस्तानी सहेली ने इस बात की शिकायत की कि उसके दर्जे में कोई भी छात्रा उससे बातचीत नहीं करती। उसको लंदन आये मुश्किल से दो महीने हुए थे। लंच खाते वक्त मैंने इस बात पर अपनी इँग्लिश सहेलियों को ख़ूब खरी-खोटी सुनाई। मैंने कहा कि आप लोग क्या कभी इस बात का ख़याल भी करती हैं कि हम विदेशी हैं, हम कितनी दूर से आई हैं, यहाँ अपना कहनेवाला कोई भी साथ नहीं है। ऐसी हालत में यदि आप लोग हमारे साथ मित्रता का बर्ताव न रक्खेंगी तो हमारे दिन यहाँ किस तरह कटेंगे? हम भारतीय अपने देश में विदेशियों के साथ इस तरह का व्यवहार कभी नहीं कर सकतीं। मेरा उलहना सुनकर सबने प्रतिवाद किया और कहा कि नहीं, यह बात नहीं है। हम लोग विदेशी विद्यार्थियों से ज़रूर बोलना चाहती हैं। पर हमें अपने आप जाकर बोलने से सङ्कोच मालूम पड़ता है। मैं यह सुनकर दंग रह गई। अँगरेज़ विद्यार्थी स्वभाव से सङ्कोची होते हैं। इसी कारण वे अपने आप दूसरे विद्यार्थियों से नहीं बोलते। वे रङ्गभेद की भावना नहीं दर्शाते हैं, न कभी ऐसा प्रसंग ही आया है। पब्लिक नाचगृहों में अँगरेज़ ललनायें कभी कभी भारतीयों के साथ नाचने से इनकार कर देती हैं। पर कालेजों में ऐसा प्रसंग नहीं आया है।

कालेज के होस्टलों में हिन्दुस्तानी विद्यार्थी भी रक्खे जाते हैं और जो बाहर रहना चाहते हैं उनको यूनिवर्सिटी-ब्यूरो से मकानों के पते दिये जाते हैं, ताकि उन्हें मकान प्राप्त करने में सहूलियत हो। लंदन में ब्यूरोवालों के पास उन मकानमालिकिनों के नाम संग्रह रहते हैं जो हिन्दुस्तानियों को अपने यहाँ रखती हैं। जो हिन्दुस्तानी विद्यार्थी उनके पास जाता है उसको वे उनके नाम-पते दे देते हैं, जिससे कोई हिन्दुस्तानी विद्यार्थी मकान की खोज में किसी ऐसे घर में न जा पहुँचे, जहाँ उसे अपमानित होकर लौटना पड़े। जो विद्यार्थी इस ब्यूरो की सहायता से मकान ढूँढ़ लेते हैं उनको वहाँ के रङ्ग-भेद का नग्नरूप नहीं दिखाई देता। कभी कभी हमारे विद्यार्थी समाचार-पत्रों में विज्ञापन पढ़कर बोर्डिंग हाउस या प्राइवेट मकान की खोज में जाते हैं। मकान के दरवाज़े को खटखटाने पर जब नौकरानी आकर खोलती है और हमारे वे नवयुवक जब यह पूछते हैं कि क्या मैं मकान की मालिकिन से मिल सकता हूँ, क्योंकि मैंने 'अख़बारों' में पढ़ा है कि यहाँ एक कमरा ख़ाली है, यदि नौकरानी सिखाई हुई होगी तो कुहक उठेगी कि अफ़सोस है कि वह कमरा उठ गया है। नवागन्तुक इसका अर्थ नहीं समझ पाता। वह नौकरानी के कथन को वेदवाक्य मानकर चला जाता है। (यह बात नहीं है कि हर मकान में नौकरानियाँ हों। अक्सर मालिकिनें ख़ुद आकर दरवाज़ा खोलती हैं। उनकी और नौकरानी की वेष-भूषा में प्रायः उतना अन्तर नहीं होता)। पर दूसरे दिन जब वह अख़बार में फिर छपा हुआ पढ़ता है कि उक्त कमरा ख़ाली है तब वह युवक चकरा जाता है और वह जान जाता है कि गौरांग ब्राह्मण काले अस्पृश्यों को अपने यहाँ जगह नहीं देते हैं। ऐसे घरों की कोई कोई नौकरानी इतनी धृष्ट होती है कि वह बेधड़क कह देती है, दुख है, हम रङ्गीन आदमियों को अपने यहाँ नहीं रखते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि नौकरानी के नई होने और अपनी मालिकिन की कारसाज़ी से परिचित न होने से किसी भारतीय युवक के पूछने पर सच बोल देती है कि हाँ, कमरा ख़ाली है। बैठिए। मैं मालिकिन को बुला लाती हूँ। पर जब वह मालिकिन से मिलकर लौटकर आती है तब उसका जवाब दूसरा होता है। वह यह कि मालिकिन कहती हैं कि कमरा ख़ाली नहीं है। कई मकान-मालिकिनें इतनी स्पष्ट एवं धृष्ट भी होती हैं और वे अपने विज्ञापन में लिख देती हैं कि रङ्गीन आदमी नहीं लिये जायँगे।

एक पारसी नवयुवक था। उसका रङ्ग भी काफ़ी सफ़ेद था। उसको साउथ केनासिंगटन में रहने की इच्छा हुई। यह एक फ़ैशनबुल मोहल्ला माना जाता है। वहाँ वह एक मकान-मालिकिन के पास गया। मालिकिन ने पहले उससे नाम, स्थान आदि के बारे में पूछा। अन्त में वे कहने लगीं—"हम हिन्दुस्तानियों को तो अपने यहाँ नहीं रखते, पर तुम एक शर्त पर रह सकते हो। वह यह कि किसी के पूछने पर यह कहना कि हम फ्रांस वा मिस्र देश के हैं"। उस हिन्दुस्तानी में अल्प-स्वल्प देशाभिमान बचा था। उसने वहाँ रहने से इनकार कर दिया।

एक विद्यार्थिनी को एक मकान की मालिकिन ने अपने यहाँ रखना स्वीकार कर लिया था। वह वहाँ एक सप्ताह तक रही भी। पर एक दिन मालिकिन घबराई हुई-सी आई और कहने लगीं कि आपको हमारा मकान ख़ाली कर देना पड़ेगा। क्योंकि मकान के अन्य लोग (गौरांग लोग) आपका यहाँ रहना पसन्द नहीं करते। आपको निकालने का मुझे बहुत रञ्ज है।

लंदन के रहनेवाले हिन्दुस्तानी इस तरह की घटनाओं से भली भाँति परिचित हैं। कभी कभी ऐसा हुआ है कि हमारे भारतीय एक होटल के बाद दूसरे में गये, पर उन्हें 'ख़ाली नहीं है' यही जवाब सर्वत्र सुनाई दिया। कभी कभी उनको ऐसा भी अनुभव हुआ है कि उनकी आँखों के सामने गोरे को तो कमरा मिल गया है और वे

कोरे लौटा दिये गये हैं। ऐसी दशा में वे ख़ून का घूँट पीकर रह जाते हैं।

आक्सफ़ोर्ड और कैम्ब्रिज में भी हिन्दुस्तानियों के हर मकान में कमरे नहीं मिलते हैं। स्कॉटलेंड में तो और भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

पर इन उदाहरणों से यह नहीं समझना चाहिए कि भारतीयों का जीवन विलायत में सुखकर नहीं है। नवागन्तुक इस तरह के अपमान के बवण्डर में अक्सर पड़ जाते हैं। पर कुछ दिन रहने के बाद वे जान जाते हैं कि कहाँ उनकी माँग है और कहाँ नहीं है।

अच्छा तो हिन्दुस्तानियों को विलायत में कौन-से लोग अपने अपने घरों में जगह देते हैं। अधिकतर वे ही मकान-मालिकिनें अपने यहाँ हिन्दुस्तानियों को जगह देती हैं जिनको पैसे की सख़्त ज़रूरत रहती है और ये लोग ज़्यादातर मज़दूर लोग होते हैं। कितने विद्यार्थी और विद्यार्थिनियाँ क़साइयों, नाइयों वा होटल के बेरों के घरों में रह चुकी हैं और आज भी रह रही हैं। इस तरह के लोगों के घरों में वे ही भारतीय रहते हैं जो ज़्यादा पैसे नहीं ख़र्च कर सकते या ख़र्च करना नहीं चाहते। दूसरी कोटि की वे मकान-मालिकिनें हैं जो धर्मात्मा होती हैं। वे सोचती हैं कि प्रभु ईसा की दृष्टि में सब बराबर हैं। इस तरह की मकान-मालिकिनें कभी कभी मध्यम वर्ग तक की होती हैं। जो अन्य मध्यम वर्ग की अपने यहाँ भारतीयों को ठहरा लेती हैं वे अन्तर्राष्ट्रीय विचारवाली होती हैं। इस तरह की देवियाँ हमारा सिर मूँड़ने में कोई क़सर बाक़ी नहीं रखतीं। यह तो अपना अनुभव है। मुझे कुछ पते 'इण्डिया-हाउस' से मिले थे। वहाँ के कर्मचारियों की सहायता से एक देवी जी को टेलीफोन करके उनसे मिलने का वक़्त निश्चय किया। वे इतनी ख़ातिर करनेवाली निकलीं कि टेलीफ़ोन पर ही मुझे चाय के लिए निमन्त्रित कर दिया। मैं उनके घर पहुँची। घर की स्थिति निस्सन्देह अत्यधिक रमणीक थी। पास टेनिस के कोर्ट भी थे। उनका घर सुप्रसिद्ध हैमस्टेड हीथ में था। मकान-मालिकिन बहुत तपाक के साथ मिलीं। बड़ी सुशिक्षिता थीं। उनकी लाइब्रेरी को देखकर उनकी रुचि आँकी जा सकती थी। साथ ही ड्राइंङ्गरूम में बहुत उत्कृष्ट कोटि के चित्र टँगे हुए थे। एक बढ़िया पियानो भी रक्खा था। चाय बहुत अच्छी पिलाई। ख़ैर, हम लोग (मेरे एक मित्र भी साथ थे) अपने मतलब की बातें करने लगे। उन्होंने मुझे कमरा दिखाया। वह इतना छोटा था कि उसमें एक चारपाई ही अच्छी तरह आ सकती थी। उन्होंने अत्यधिक स्वाभाविक स्वर से कहा कि साढ़े चार गिन्नी प्रतिसप्ताह देना पड़ेगा। इस रक़म के सुनते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये। जब उनका मकान छोड़कर हम लौट रहे थे, मेरे मित्र ने कहा—आख़िर उस बढ़िया कार्पेट पर पैर रखने, लाइब्रेरी की किताबों पर नज़र डालने और उन दिव्य चित्रों को निहारने के लिए भी तो कुछ पैसे देने चाहिए न! इस तरह हमारे ऊपर अमीरपन की मादकता लानेवाली देवियाँ वहाँ इधर-उधर दिखाई देती हैं।

इन प्राइवेट मकानों के अतिरिक्त बोर्डिंग-हाउस भी हैं, जिनके मालिक भी अधिकतर स्त्रियाँ ही होती हैं। इनमें भी वही बात है जो प्राइवेट मकानों में है।

अब रही होटलों की बात। लंदन में जितने प्रसिद्ध होटल हैं, वहाँ रङ्ग का प्रश्न नहीं उठता, जैसे डोर्चेस्टर, ग्रोवनर हाउस, सेवाय होटल। इन होटलों की आमदनी हमारे देशी महाराजाओं से होती है। इनमें हमारे कई एक महाराजाओं के लिए कमरे रिज़र्व रहते हैं। साधारण हिन्दुस्तानी तो ऐसी जगहों में रहने की कल्पना भी नहीं कर सकता। मध्यम श्रेणी के और मध्यम, कनिष्ठ दर्जे के होटलों में अधिकतर यही अड़ंगा रहता है। इन होटलों में भी दो विभाग होते हैं। एक में गोरे लोग और दूसरे में मिश्रित। यहीं गड़बड़ हो जाता है। आख़िर हम लोग करें भी क्या? दो होटल एक दूसरे के सामने खड़े हुए हैं। एक में काले लोगों को जगह मिलती है और दूसरे में नहीं।

इँग्लेंड में कई ऐसे स्नान करने और तैरने के तालाब हैं, जहाँ रङ्गीन आदमियों को आने नहीं देते। चेरिंग-क्रास के पास एक तालाब है। वहाँ दो वर्ष पूर्व इस बात के ऊपर काफ़ी झगड़ा मच चुका है और कई नाचने के क्लबों में काले आदमी नहीं जा सकते। यह भी होता है कि मोटर-बसों में और रेल में कई लोग भारतीयों के साथ बैठना पसन्द नहीं करते। जैसे मैं पहले लिख चुकी हूँ, अँगरेज़ लोग संकोची प्रकृति के जीव हैं, इसलिए स्पष्टतया मुँह नहीं खोलेंगे, पर कितने स्नानगृह एवं डान्सिंग क्लब हैं, जहाँ भारतीय जा सकते हैं। लंदन इतना बड़ा शहर है और उसमें इस तरह की घटनायें घटने पर भी न घटने के बराबर हैं। पर लंदन के बाहर जाने पर छोटे छोटे शहरों में रङ्गभेद की बातें ज़्यादा महसूस होती हैं।

फ़्रांस में रङ्गभेद का प्रश्न ही नहीं आता। फ्रेंच लोगों को पैसे से मतलब है। और फ़्रांस को बहुत वर्षों से अफ़्रीका के निवासियों से वास्ता पड़ा है। कितने नीग्रो हैं, जो फ़्रांसीसी तरुणियों से शादी कर वहीं बस गये हैं। फ्रेंच लोग गुणग्राही होते हैं।

जर्मनी में रङ्गभेद है और नहीं भी है। हिटलर के कारण लोग जाति की कुछ परवा करने लगे हैं। मैंने हिन्दुस्तान की पत्रिकाओं में एक-आध लेख पढ़े थे। उनके आधार पर यही निकलता है कि वहाँ रङ्गभेद का प्रश्न ज़बर्दस्त है। हाँ, शादी के बारे में ऐसा हो सकता है, पर मुझे इतना कहना है कि बड़े बड़े शहरों में नहीं है। यदि छोटे छोटे शहरों में है तो मामूली बात है।

नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क में रङ्गभेद का प्रश्न नहीं उठता है और वहाँ रहनेवाले भारतीयों की काफ़ी क़द्र होती है, पर वहाँ प्रवासी भारतीय भी इने-गिने ही हैं। इटली, आस्ट्रिया, हंगेरी और ज़ेकोस्लोवेकिया और योरप के अन्य पूर्वी देशों में यह प्रश्न नहीं उठता। दक्षिण-योरप एवं पूर्व-योरप में लोग इतने गोरे भी नहीं होते जितने उत्तरी एवं पश्चिमी योरप में होते हैं। कभी कभी पूर्व-योरप एवं दक्षिण-इटली के रहनेवालों को देखकर भ्रम हो सकता है कि वे भारतीय तो नहीं।

आख़िर में इतना कहा जा सकता है कि इँग्लेंड में सबसे अधिक रङ्ग का झगड़ा है। वह तो तब तक रहेगा जब तक हम ग़ुलाम रहेंगे। पर इँग्लेंड में भद्रपुरुष एवं भद्र महिलाओं की कमी नहीं है। भारतीयों के विनोदार्थ बहुत अन्तर्राष्ट्रीय क्लब हैं। क्वेकरों का इस सम्बन्ध में नाम लेना अनिवार्य होगा। ये लोग अत्यधिक अन्तर्राष्ट्रीय विचारवाले होते हैं। इस तरह के लोगों की वहाँ कमी नहीं है। कुछ ऐसे लोग भी हैं जो आधुनिक विचार के होते हैं। ये लोग रङ्गीन आदमियों से मिलना अपनी शान समझते हैं—कम-से-कम यह दिखाने को कि उनके विचार कितने परिमार्जित हैं।

अभिलाषा

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल

यदि फिर मैं बालक हो जाऊँ।
भूल जगत का सारा संकट,
बाल-लोक में ही खो जाऊँ

सम्पति-तरणी पार निकलती,
या जाती भँवरों में ही घिर;
भव-सागर में कौन तैरता,
कौन डूबता, मुझको क्या फिर?
मैं तो जलधि किनारे खेलूँ
चुन चुन बना सीप की माला,
निज दुनिया का बनूँ विधाता,
बना-गिरा मिट्टी की शाला।
जब मन आवे, रोऊँ-गाऊँ,
यदि फिर मैं बालक हो जाऊँ।

घूमूँ मा की उँगली पकड़े,
विमल चाँदनी में निधि-तट पर,
राग-द्वेष की लहरों के सँग,
दे दे ताली नाचूँ जी भर।
हो सुख दुख के परे भुला दूँ
जननि-प्रेम में अपने मन को,
बे-फ़िक्री की नींद सुलाऊँ,
मात-गोद में अपने तन को।
जगदम्बा के दर्शन पाऊँ,
यदि फिर मैं बालक हो जाऊँ।

एकांकी नाटक—

? ? ?

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

पात्र —
विजयसिंह—एक पराजित सरदार।
दुर्गा—सरदार की लड़की।
भीखा—एक भील।
रोसू—भीखा का लड़का।

(समय—सायंकाल के पाँच बजे)

(अरावली की पहाड़ी पर एक मंदिर का भग्नावशेष। उस मंदिर की सीढ़ियाँ उतरकर एक झुरमुट में एक गुफा है। द्वार पर एक टूटी-सी चटाई है। उस पर एक वृद्ध लेटा है, जिसके शरीर में कई जगह घाव के चिह्न हैं। कुछ घाव ताज़े भी हैं। बूढ़े की आयु ५० साल, शरीर गठा हुआ, रंग साँवला, क़द ठिंगना, माथा ऊँचा, आँखें धँसी हुई, परन्तु तीव्र, गलपुटे की हड्डी उभरी हुई, दाढ़ी कानों से बँधी हुई, मूछें घनी, कानों में लुरकियाँ पड़ी हुई हैं, जिनके हीरे चमक रहे हैं। शरीर में सफ़ेद अँगरखा पहने, कमर में एक तलवार, घुटनों तक राजपूती ढंग की धोती है। एक पत्थर का सिरहाना बनाये लेटा है। अस्त होनेवाले सूर्य की किरणें झाड़ी से छनकर उसके मुँह पर गिर रही हैं। चेहरे पर उदासी छाई हुई है। कभी-कभी गहरी साँस खींचकर उठ बैठता है, फिर लेट जाता है। कभी कभी हाथ से मक्खियाँ उड़ाकर मूँछ और दाढ़ी सँभालता है। बिखरे हुए बाल एक ओर करने लगता है। कभी चटाई से तिनका तोड़कर कान कुरेदने लगता है। कुछ मन ही मन कुड़बुड़ाता है, फिर चुप हो जाता है।)

वृद्ध (एकाएक ऊँची आवाज़ में)—दुर्गा, ओ दुर्गा बेटी! कहाँ गई री? क्या अभी......अरी क्या अभी तक नहीं हुआ? (झाड़ी के पश्चिम की ओर से दौड़ती हुई सोलह साल की एक लड़की आ जाती है। सुन्दर भरा हुआ मुख, सुर्ख़ गाल, पतले होठ, लम्बी नाक, बड़ी बड़ी आँखें, दमकता हुआ थोड़ा [illegible]था घुँघरवाली बिखरी हुई लटें, लाल रंग की धोती कुछ कुछ मराठी ढंग से बँधी हुई है, जिससे छाती का उभार दब गया है। गोल गोल बाहें बाहर निकली हुई हैं।)

दुर्गा—अभी कहाँ हो पाया पिता जी।

वृद्ध—इतनी देर हो गई। गला सूखा जा रहा है।

दुर्गा—दूध हाँड़ी में रखकर जैसे ही मैं लकड़ी बीनने गई, लौटकर क्या देखती हूँ कि एक जंगली बिल्ली दूध पी रही है। फिर बकरियाँ दुहकर और दूध औटाया है।

वृद्ध—हाँ बेटी, ज़रा जल्दी करो। मेरा गला सूखा जा रहा है। (अपना गला मसलते हुए) ज़रा सी देर में क्या से क्या हो गया? ठीक है, अभी जीना होगा। जीऊँगा। कौन जानता था, विजयसिंह को ये दिन भी देखने होंगे। (लड़की लौट जाती है) दुर्जन, उस दुष्ट दुर्जन ने कैसा बदला लिया? गला सूख रहा है (डिबिया में से बची हुई अफ़ीम सब एक बार ही मुँह में रखता हुआ) थोड़ी देर में जैसे सब समाप्त हो गया। आँखों में आँसुओं के घड़े भरकर इस बुढ़ापे को, इस पहाड़-सी ज़िन्दगी को काटना ही पड़ेगा। दुर्गा, ओ दुर्गा!

दुर्गा—आई पिता जी।

वृद्ध—रहने दे बेटी। (अफ़ीम की पिनक में झूमने लगता है)

(एक भील लड़के का प्रवेश)

लड़का—सरदार, भीखा पकड़ा गया। भीखा पकड़ा गया। उन्होंने उसे पकड़कर ख़ूब मारा और बाँध लिया है। (दुर्गा दूध की हाँड़ी और पत्तों का बना हुआ एक दोना लिये आती है।)

दुर्गा—भीखा कैसे पकड़ा गया रे!

वृद्ध—(एकदम चिल्लाकर) ठहरो दुष्टो, ठहरो तो सही (उठकर खड़ा हो जाता है, फिर गिर पड़ता है। दुर्गा उसे सँभाल कर लिटा देती है)।

दुर्गा—आप शान्त होकर लेट जाइए पिता जी।

वृद्ध—(आँखें खोलकर) छोड़ तो दे बेटी। (तलवार की मूठ पर हाथ रखकर) उस दुर्जन को अब मैं मारे बिना नहीं छोड़ूँगा।

दुर्गा—पिता जी, मैं दूध ले आई हूँ। भीखा को दुर्जन ने पकड़ लिया है। यह उसका लड़का आया है कहने।

वृद्ध—(स्वस्थ होकर) क्या कहा? भीखा आया है?

दुर्गा—भीखा पकड़ा गया। दुर्जन ने उसे पकड़ लिया है।

लड़का—हाँ सरदार, मेरे बाप को राव दुर्जनसिंह ने पकड़ लिया है। वह उसको मार मार कर तुम्हारा पता पूछ रहा है।

वृद्ध—मेरा पता पूछ रहा है?

दुर्गा—(लड़के से) तो क्या उसने हमारी जगह बता दी?

लड़का—नहीं बाई, वह मार खाकर भी कह रहा था, मैं नहीं जानता।

वृद्ध—पर मुझे अफ़ीम तो मिलनी ही चाहिए। बिना अफ़ीम के मैं कैसे जीऊँगा बेटी?

दुर्गा—दूध तैयार है। (दोने में दूध उँड़ेलकर वृद्ध को देती है, वृद्ध दूध लेकर पीने लगता है) हाँ, रोसू, तो भीखा ने क्या हमारा पता नहीं बताया?

लड़का—नहीं बाई, उन्होंने उसे बुरी तरह मारा। फिर भी नहीं।

दुर्गा—दुर्जन ने उससे क्या कहा? तुम लोग उस दुष्ट के पास क्यों गये?

लड़का—भीखा को तुमने अफ़ीम लेने भेजा था। गाँव में किसी के पास भी अफ़ीम नहीं थी। फिर हम नाहरसिंह के पास गये। उससे (वृद्ध की ओर इशारा करके) इनका नाम लेकर अफ़ीम माँगी। उस दुष्ट ने हमें भीतर ले जाकर बिठाया और चुपचाप दुर्जनसिंह को बुला लिया। उसने आते ही भीखा को पकड़ लिया और ख़ूब मारा। भीखा ने मुझे आँखों से भाग जाने को कहा। मैं वहाँ से सरककर एक खम्भे की आड़ में हो गया और अपने बाप की मार को देखने लगा।

वृद्ध—पर अफ़ीम तो मिलनी ही चाहिए। मैं उसके बिना कैसे जीऊँगा?

दुर्गा—दुर्जन क्या कह रहा था?

लड़का—वह उसे मार मारकर तुम्हारा पता पूछ रहा था।

दुर्गा—(चौंककर) मेरा?

लड़का—हाँ, वह तुम्हारा नाम ले लेकर उसे मार रहा था।

दुर्गा—पिता जी का या मेरा!

लड़का—तुम्हारा बाई।

दुर्गा—(सुन्न-सी होकर) क्यों, मेरा नाम क्यों ले रहा था?

लड़का—(चुप हो जाता है)।

वृद्ध—(अफ़ीम की पिनक से चैतन्य होकर) उस दुर्जन को मैं मार डालूँगा बेटी। पर अफ़ीम...भीखा अभी नहीं लौटा?

दुर्गा—भीखा को दुर्जन ने पकड़ लिया है।

वृद्ध—चलो जाने दो। अफ़ीम तो ले आया है न? (फिर चुप)।

लड़का—बाई!

दुर्गा—क्या है रे?

लड़का—ये सब लोग तुम्हारे पीछे पड़े हैं। तुम्हें...बुरी बात कह रहे थे।

दुर्गा—(शिथिल-सी होकर) जानती हूँ रोसू। (आँखों में आँसू भर आते हैं)।

लड़का—तो फिर मैं बकरियाँ फेर लाऊँ, नहीं तो कोई बाघ खा जायगा।

दुर्गा—जा।

लड़का—(जाते जाते ठहरकर) बाई!

दुर्गा—हाँ रोसू, कह। क्या है?

लड़का—(आँखों में आँसू भरकर खड़ा रह जाता है)।

दुर्गा—अरे! रोता क्यों है?

लड़का—(चुप)।

दुर्गा—(रोसू के पास जाकर उसके कन्धे पर हाथ रखकर) क्या बात है?

लड़का—दुर्जन तुम्हारा......।

दुर्गा—दुर्जन मेरा क्या..रोसू? (आँखें डबडबा आती हैं)।

लड़का—तुम्हें बड़ा दुख है बाई!

दुर्गा—चुप (दूसरी ओर को मुँह फेर लेती है)।

वृद्ध—अब मैं नहीं जी सकता। बेटी दु[illegible], मेरी अफ़ीम का कोई प्रबन्ध करो।

दुर्गा—पिता जी!

वृद्ध—बेटी, तुम जानती हो, मेरा सब कुछ चला गया।

आज वेहाल होकर भागकर यहाँ अरावली के इस जंगल में पड़ा हूँ। कौन-सा अपमान, कौन-सी लांछना, कौन-सी व्यथा, कौन-सा दुःख मैं नहीं झेल रहा हूँ? मेरी सारी जागीर आज छिन चुकी है। दाने दाने को मोहताज हूँ। तुम्हारी भी क्या दुर्दशा है। (गला भर आता है) मेरी वेटी, (चुप होकर करवट वदल लेता है)।

लड़का—वाई !

दुर्गा—जा वकरियाँ घेर ला। साँझ हो रही है।

लड़का—अच्छा !

दुर्गा—जा (धीरे धीरे चला जाता है)।

वृद्ध—(करवट वदलकर) वेटी, मैं अपनी और तुम्हारी दशा अच्छी तरह जानता हूँ। आज तुम्हारी मा को मरे दस साल हो गये। मैंने दूसरा व्याह नहीं किया, तुम्हें आँखों का तारा समझकर केवल तुम्हारे सहारे ज़िन्दगी की कड़वी घड़ियों का ज़हरीला घूँट पीकर जीता रहा हूँ। केवल एक ही व्यसन है मुझमें। वह है अफ़ीम। आज उसने भी जवाव दे दिया। हा ! (वेचैनी से करवटें वदलने लगता है दूध का एक घूँट मुँह में लेकर) अफ़ीम के विना मैं नहीं जी सकूँगा—नहीं जी सकूँगा।

दुर्गा—(चुप रहती है)

वृद्ध—(वेचैनी से) मेरी अफ़ीम का प्रवन्ध करो वेटी।

दुर्गा—(कुछ देर वाद) पर दुर्जन को आप जानते ही हैं।

वृद्ध—हाँ जानता हूँ। जानता क्यों नहीं हूँ? फिर भी जी नहीं मानता। मुझे अफ़ीम चाहिए। तुम दुर्जन के पास......।

दुर्गा—(चौंककर) क्या कहा ?

वृद्ध—पिता का जीवन है।

दुर्गा—इधर लड़की का सतीत्व। विजयसिंह की लड़की का......।

वृद्ध—पर मुझसे नहीं रहा जायगा। मुझे अफ़ीम चाहिए।

दुर्गा—आपका ही वताया हुआ आज धर्म का वन्धन...।

वृद्ध—धर्म परिस्थितियों का दास है। जिन मर्यादाओं में वँधकर हमने धर्म को, समाज को वनाया है जव वही नहीं रहतीं तव धर्म को क्या करूँ !

दुर्गा—पर धर्म इतनी जल्दी छोड़ देने की चीज़ भी तो नहीं है। यह आपने ही तो मुझे वताया है। पगडंडी से हटते ही कन्या का जीवन मृत्यु का ग्रास वन जाता है। जीवन में कलंक तो मानो वह अपने अंचल में छिपा कर लाई है। जिस दुर्जन ने मेरे पीछे आपकी जागीर छीन ली, आपको दो कौड़ी का न रक्खा और आपने मेरी मर्यादा की रक्षा के लिए सर्वस्व त्याग कर दिया, आज ज़रा से व्यसन के पीछे मुझे उसी के पास जाने की आज्ञा दे रहे हैं पिता जी !

वृद्ध—तुम ठीक कहती हो वेटी। तर्क केवल तर्क करने के लिए ही होता है। पर धर्म पर दृढ़ रहते हुए भी उसने मेरी कोई रक्षा नहीं की। मैं आज अशान्ति का कंकाल, अपवित्रता का उद्गार, अत्याचार का पुंज होकर अपनी एकमात्र धर्म की प्रतिमा को लेकर विश्वास को कन्धे पर उठाये घूम रहा हूँ। तुम्हीं कहो।

दुर्गा—आपकी लड़की होकर मैं आपको दोषी नहीं ठहराना चाहती। प्ररन्तु आपकी सिखाई हुई इतना तो जानती ही हूँ कि धर्म का वोझ संसार के सवसे वड़े भार में से एक है। उसे सँभालने के लिए मनुष्य की सम्पूर्ण शक्ति की ज़रूरत है। जीवन में सतर्कता होने पर ही वह रह सकता है। व्यसनी, झूठा, चंचल उसकी रक्षा नहीं कर सकता। मानों ईश्वर ने केवल यही एक थाती देकर उसे संसार में भेजा है परीक्षा के लिए।

वृद्ध—तुम क्या कहती हो कि मैं मर जाऊँ। धर्म ऊँचा है सही, पर जीकर ही तो धर्म की रक्षा हो सकती है। तुम जाओ, मैं मानता हूँ, यह वड़ा कठोर है, किन्तु...।

दुर्गा—ठीक है, मैं भूल रही थी। जिस पिता ने मुझे पाल-पोसकर इतना वड़ा किया, जिसने अपना सर्वस्व देकर पुत्री की रक्षा की, वही स्वार्थ को धर्म समझ-कर उसकी रक्षा नहीं करती। मेरी भूल है। मैं जानती हूँ। गाँव में सव मेरे शत्रु हैं। दुर्जन निःशंक होकर मुझ पर अत्याचार करे। सव सहूँगी। पिता जी, इधर वीस वीस कोस तक और कोई गाँव नहीं है, केवल वहीं जाकर दुर्जनसिंह से आपके लिए अफ़ीम लाऊँगी। पिता के जीवन की रक्षा करूँगी।

(एकदम एक ओर से चली जाती है, दूसरी ओर से भीखा का प्रवेश)

भीखा—अन्नदाता मैं आ गया। अफ़ीम भी ले आया हूँ। उन्होंने पकड़कर मुझे वहुत मारा, आपका पता पूछ रहे थे। मैं भला क्यों वताने लगा। प्राण भी चले जाते तो मैं आपके रहने की जगह न वताता। हम भील लोग चाहे जितने नीच हों, पर दास-धर्म का पालन तो जानते ही हैं।

वृद्ध (चौंककर) अरी दुर्गा, (सामने देखकर) तू भीखा ! दुर्गा कहाँ है ?

भीखा—दुर्गा ?

वृद्ध—हाँ, दुर्गा कहाँ गई ?

(रोसू का प्रवेश)

लड़का—अन्नदाता जी, वाई गाँव की ओर गई है। मैंने पूछा, मैं भी चलूँ, पर उन्होंने न माना।

वृद्ध—गई ? (उठकर खड़ा हो जाता है) गई ? दुर्गा चली गई ? चली गई। मेरी वेटी दुर्गा......(गिरकर वेहोश हो जाता है)

दोनों—(एक-दूसरे से) क्या हुआ सरदार को ?

दोनों— न जाने।

(पर्दा गिरता है)

आकांक्षा

लेखक, श्रीयुत हरशरण शर्मा

मानवता का हो चिर-विकास,
फैले मन में प्रत्यय-परिमल।
वसुधा पर स्वर्ग उतर आवे,
खेले उसमें मानव प्रतिपल॥

प्रेम-सुधा से सावित होकर,
धवल वनें उर के कोमल-कन।
जिनमें सुख-दुख की छाया का
नृत्य देख पावें जग-लोचन॥

प्राणों के गुंजन से मिलकर,
आशा का कूक उठे कोयल।
अन्तर में प्रतिध्वनि छा जावे,
आहों में गरज उठें वादल॥

सुख की छाया में पुलकित हों
उल्लास चपल उत्साह प्रवल।
दुख की छाया को सींच-सींच,
कर वहे अश्रु-गंगा अविरल॥

दोनों के छाया-चित्रों से,
अनुभूति हृदय में भर जावे।
मानव खेकर उसमें तरणी,
सुख-दुख के पार उतर जावे॥

[हरि की पैड़ी पर यात्रियों के स्नान का एक दृश्य ।

हरिद्वार का कुम्भ

लेखक, श्रीयुत लाल चन्द्रकीर्तिसिंह जी 'दयावान्'

ई कुछ भी कहे, किन्तु अपने राम तो यही कहेंगे कि इस कठिन-कराल कलि-काल में हमारे सनातन-धर्म एवं तीर्थों का जितना प्रचार रेलवे कम्पनियाँ कर रही हैं, उतना क्या, उसका आधा भी, पण्डे-पुरोहित, पण्डित-पौराणिक प्रभृति नहीं कर पाते ।

शरद् शिशिर में परिवर्तित हो रहा था, तभी से हरिद्वार के कुम्भ के सम्बन्ध में ईस्ट इंडियन रेलवे के प्रचार-विभाग की विज्ञापनबाज़ी आसमान से बाज़ी लगा रही थी । हवाई जहाज़ों तक से नोटिसों की वृष्टि की जाती थी । इधर विज्ञापनों की भरमार तो उधर चमत्कृत चित्रों का चमत्कार । एक ओर हैण्डबिलों-पैम्फ़्लेटों की प्रचुरता तो दूसरी ओर बदरीनारायण-हरिद्वार से संबन्धित फड़फड़ाते हुए फ़िल्मों की फेरी के दौरे दर-दर दूर तक हो रहे थे । ४-४ आने तक में बिकनेवाले ऐसे आकर्षक सर्वाङ्ग-सुन्दर पैम्फ़्लेट प्रकाशित किये गये थे जिन्हें पढ़कर कभी न जानेवाले भी हरिद्वार जाने की इच्छा कर लें ।

इन उपर्युक्त प्रलोभनों के पाश से तो अपने राम को मुक्ति ही मिली रही, क्योंकि हरिद्वार में महीनों रह चुके थे और महान् मेलों, जनाकीर्ण जगहों में अपनी एकान्त-प्रियता पर पाला पड़ जाता है । जाने की इच्छा न हुई, किन्तु जब राम-नवमी सर्वथा समीप आ गई, ६।४।३८ को हरिद्वार की हवा ने हृदय को हिला ही दिया और उसी

दिन सायंकाल प्रयाग से प्रस्थान कर १० बजे रात को लखनऊ व वहाँ गाड़ी बदल कर ७ के ब्राह्म मुहूर्त में अयोध्या पहुँचे ।

अयोध्या

यहाँ भी पिछली राम-नवमी के मेलों से इस वर्ष अधिक मेला माना गया । राम नवमी के दिन सरयू का सम्पूर्ण सुविस्तृत क्षेत्र जनाकीर्ण था । मन्दिरों की महिमा तो कुछ पूछिए ही नहीं । नागेश्वरनाथ, हनुमान-गढ़ी, जन्म-भूमि आदि अधिक प्रसिद्ध प्रमुख मन्दिरों के धक्कमधुक्कों में पड़ जाने से देवता-पितर भले ही न भागें, पर भक्ति-भावना तो भावुक भक्त की भी भाग ही निकलती थी और प्राण रक्षा की चिन्ता में देवाराधन—ईश्वर-स्मरण का विस्मरण होने लगता था । कितने ही कुचलकर महामोक्ष की सायुज्य-साधना सम्प्राप्त करते थे । जन्म के समय तो जन्म-भूमि के धक्कों से धराशायी होते-होते बचा और वह भी राम जी की ही कृपा से । हनुमान-गढ़ी की स्वर्गारोहण सी सीढ़ियों में तो कितने ही कुचल गये व वैकुण्ठवासी हुए ।

अयोध्या के मन्दिरों में हमें काले राम के मन्दिर की व्यवस्था जिसमें राम आदि की सम्पूर्ण मूर्तियाँ काले पत्थर की हैं, सर्वोत्तम प्रतीत हुई । यहाँ की मूर्तियाँ प्राचीन हैं । जिस मन्दिर में थीं, वहाँ मस्जिद के बन जाने से ये सरयू के रेत में गड़ी पाई गई थीं । अब जिस मन्दिर में विराजमान हैं उसका प्रबन्ध महाराष्ट्रीय लोगों के हाथ में है ।

जन्म-भूमि के टीले पर भी मन्दिर ढहाकर मस्जिद बना दी गई है । मस्जिद के ही बाहरी आँगन के कोने में टीन की छत के नीचे एक छोटी-सी राममूर्ति विराजती है, जहाँ राम-जन्मोत्सव मात्र मना लिया जाता है ।

यात्रा

अयोध्या का दर्शन कर ११ को देहरा-एक्सप्रेस से हरिद्वार पहुँचने को स्टेशन पर आये । अपने आते ही एक्सप्रेस भी आगई । उसमें यात्री वैसे ही भरे थे, जैसे गोदामों में बोरे भर दिये जाते हैं । अतः आगे बढ़ने को साहस ही न हुआ ।

हरिद्वार के यात्रियों से अयोध्या-स्टेशन का सम्पूर्ण सुविस्तृत क्षेत्र भरा हुआ था । स्टेशन से स्पेशल ट्रेनें छूट रही थीं । तुरन्त ही 'मेला-रैक' लिखे डिब्बोंवाली एक लम्बी ख़ाली ट्रेन आ लगी । ट्रेन आई ख़ाली, पर उसके सर्वथा स्थिर होने के प्रथम ही सबल यात्री उसके ठहरते-ठहरते तक विद्युद्वेग से घुसकर उसे भी बोरों का गोदाम बना दिया ।

अपने राम इण्टर के थे, फिर भी अपार युद्ध, करारी कशमकश करने पर किसी क़दर इण्टर के एक डिब्बे में प्रवेश पाया, पर प्रबल प्रतियोगिता के प्रहार से हाथ-पैर छिल करके ही रहे । खिड़की के ही मार्ग से सामान के माफ़िक़ साथियों को भी खींचा और लगे सब लोग खड़े ही खड़े यात्रा करने ।

खिड़की के पास मुँह रखने पर भी दम घुटता था । राम जाने, बीचवालों पर क्या बीत रही थी । दुर्बल तो दबे ही हुए थे । हमारे इण्टर के कम्पार्टमेण्ट में २-१ सबल स्थूलकाय यात्री बेहोश तक हो गये ।

जब बुतानेवाले के ही कपड़ों में आग लगी हो और वह बजाय अपने कपड़ों की आग बुताने के दूसरों के कपड़ों की आग बुताने को प्रयत्नशील हो तो उसे मनुष्य-कोटि से ऊपर देवता कहना असंगत न होगा ।

दो दयालु ब्राह्मण बिहार से हरिद्वार जा रहे थे । इन्हें भी कम कष्ट न था, पर बेचारों ने अपने स्थान में उन बेहोश यात्रियों को बिठाया और आप हम लोगों की तरह खड़े-खड़े यात्रा करने लगे । इतना ही नहीं, उस कठिन कशमकश में भी अपनी पुटकियों को ढूँढ़ा-खोला । पान, पुदीना, पिपरमिण्ट, पानी, अमृतधारा आदि के उपचारों से घंटों उन विक्षिप्त व्यक्तियों की सेवा-शुश्रूषा की । तब कहीं उन्हें चेतना आई । यह एक उदाहरण है । इस यात्रा के सम्पूर्ण सुख इसी घटना से मिलते-जुलते हैं ।

जितने यात्री इस स्पेशल ट्रेन में आ सके थे, उसके अनेक गुना अधिक तो अभी अयोध्या-स्टेशन का ही सेवन कर रहे थे ।

हमारी स्पेशल गाड़ी अयोध्या से चली थी ११ को ४ बजे सायंकाल और हरिद्वार पहुँची १३ को ८ बजे प्रातःकाल ! लगभग पौने चार सौ मील की यात्रा ३६ घंटों में किस प्रकार कटी, यह उस ट्रेन के यात्री ही बता सकते हैं ।

ट्रेन बहुत लम्बी होने एवं इंजन के शक्तिशाली न होने से एक तो स्पेशल की गति ही कम थी, दूसरे आगे

[साधुओं के हवन का एक दृश्य।]

भी अनेक स्पेशलों के होने से मुक्त मार्ग ही मिलना मुश्किल होता था। घंटों हमारी स्पेशल गाड़ी यत्र-तत्र स्टेशनहीन स्थानों पर भी पड़ी रहती थी।

ब्लैक-होल से बन्द डिब्बों के यात्री तृषा की त्राहि-त्राहि करते पानी ही पानी चिल्लाते थे पर धन्य हैं धर्मात्मा परोपकारी पुरुषों को, जिनके प्रबल-परिश्रम से अनेक स्थानों में स्वयंसेवक पानी पिलाते पाये जाते थे।

खेद के साथ आश्चर्य है कि जिस रेलवे ने यात्रियों को आकर्षित करने के लिए महीनों पहले से प्रचार किया था उसकी ओर से पानी पिलाने तक का पर्याप्त प्रबन्ध न था।

जिस स्टेशन पर हमारी स्पेशल ट्रेन पहुँचती थी, वहाँ की सम्पूर्ण खाद्य-सामग्री शीघ्रातिशीघ्र वैसे ही सफ़ाचट हो जाती थी, जैसे विस्तृत वानरों के आक्रमण से झोली के थोड़े से चने चुक जाते हैं।

देवता-पितर मनाते येन-केन प्रकारेण १३ को ८ बजे प्रातःकाल हरिद्वार की हवा लगी।

हरिद्वार

रेलवे ने इसी कुम्भ के लिए हरिद्वार के प्लेटफ़ार्म एवं स्टेशन के घेरे को मीलों लम्बा बना दिया था, अतः उतरने-निकलने में धक्कमधक्का नहीं हुआ। देखा कि अपार पारावार-सम जन-स्रोत उमड़ा चला जा रहा है।

आज ही कुम्भ का प्रसिद्ध पर्व था। सामान और साथियों को मुसाफ़िरख़ाने में छोड़ अपने राम प्रधान कोतवाली पहुँचे। हरिद्वार का नया बना विशाल नक़्शा देखा। इन्क्वायरी-आफ़िस से आवश्यक ज्ञातव्य ज्ञानार्जन किया, पर फ़ैसला यही रहा कि किसी भी धर्मशाला अथवा किसी भी घर में अधिक से अधिक भाड़ा-किराया देने पर भी एक व्यक्ति तक को भी स्थान प्राप्त हो सकना असम्भव ही है, क्योंकि सब स्पेशल ट्रेन के ही माफ़िक भरे पड़े हैं।

सब ओर से निराश हो, स्टेशन से साथी-सामान लेकर, रोड़ी-प्रायद्वीप पहुँचे। सामान और नौकर वहीं छोड़कर भारी भीड़-भरकम टीड़ी-दल से भी अगर जन-समूह को चीरते हुए, प्रबल परिश्रम के पश्चात्, 'हरि की पैड़ी' पहुँच पाये।

गंगा-गर्भ में गोता लगाने-लगने पर मार्गजनित कठिन क्लान्ति और सम्पूर्ण श्रम-शैथिल्य हरिद्वार की हवा में विलीन हो गया। राजा बिड़ला के क्लाकटावर की घड़ी को देखते हुए १० से १२ तक पूरे पूरे घंटे अविराम स्नान करने पर कँपकँपी आ गई तब लौटे और नौकर-साथियों को लेकर पुनः 'हरि की पैड़ी' पहुँचे और फिर लगे स्नान करने।

शाही

४ बजे सायंकाल से साधुओं की समुद्रवत् सेनायें जिसे पंजाबी 'शाही' कहते हैं, स्नानार्थ आने लगीं।

नग्न-दिगम्बर आये। इन्हें स्नान करने में सबसे सुन्दर सुविधा हुई। न कोई वस्त्र उतारना था, न फींचना था। स्नान में कोई अड़चन ही नहीं थी।

इस बार हरिद्वार में इन दिगम्बरों को लँगोटी लगा कर नहलाने की चर्चा चल रही थी, पर नागाओं ने नये नियम को नहीं माना।

अस्तु, निर्वाणी निकले, निरञ्जनी निकले। एक-एक करके सभी सातों अखाड़े निकले। अपने-अपने हाथी-घोड़े, ऊँट-पालकी, मोटर-रथ, सोना-चाँदी, ध्वजा-पताकाओं आदि का सभी सन्त-समूहों ने, सम्पूर्ण साधु-सेनाओं ने पर्याप्त-पूर्ण प्रदर्शन किया।

सबसे विस्तृत बड़ा, टीड़ियों को भी मात देनेवाला, दीर्घ दल 'जय सिय राम' कहते जानेवाले वैरागी साधुओं का था। ये चीन की ओर से चढ़ाई करते तो जापान को जीत लेने भर को पर्याप्त थे।

इसी प्रकार अर्द्ध निशा-पर्यन्त साधु-सेनाओं की 'शाही' एक मार्ग एवं एक पुल से आती एवं दूसरे पुल तथा दूसरे मार्ग से जाती रहीं।

भावुक भक्त तो अन्न-जल छोड़ कर भी साधु-सेनाओं का दर्शन करते हुए दिन भर बैठे रहे। सहस्राधिक साधु-स्नेही, अधिकाधिक भाड़ा-किराया देकर भी, साधु-सेना निकलने के मार्ग में, प्रातःकाल से ही डटे बैठे थे। अनेक अनुरागी तो एक सन्त-समूह के निकल जाते ही, उस धरातल की धूल घर ले जाने को बाँध लेते थे।

इस बार हरिद्वार में कुम्भ के मेले की सबसे अधिक चहल-पहल १३।४।३८ को अर्थात् साधु-संन्यासियों की सुविस्तृत सेना के निकलने, स्नान करने एवं लौटने के समय रही थी।

जनता के ज़बर्दस्त ज्वार का ज़िक्र इतने से ही समझिए कि 'रज होइ जात पषाण पवारे' वाली चर्चा चरितार्थ होती थी

प्रबन्धक

इतने पर भी प्रबन्धकों की प्रबन्ध-पटुता की प्रशंसा न करना कृतघ्नता कही जायगी।

इस बार के हरिद्वारी मेले में ७५ प्रतिशत पञ्जाब की, शेष २५ प्रतिशत में अन्यान्य प्रान्तों की जनता जमा हुई थी। पञ्जाब के पश्चात् अन्य प्रान्तों के यात्रियों से अधिक संयुक्त-प्रदेश के ही लोग थे। पर मदरासी तो ढूँढ़ने से ही देखे जा सकते थे और उनकी संख्या इस महान् मेले में दाल में नमक से भी कम थी। बङ्गालियों की 'हरे कृष्ण, हरे रामो' की कीर्तन-ध्वनि अलबत्ता यत्र-तत्र अनेक स्थानों में कर्णगोचर होती थी।

इसी प्रकार स्वयंसेवक-दल भी प्रान्त-प्रान्त से आये थे, पर पञ्जाब के महावीर-दल के स्वयंसेवक ७५ प्रतिशत थे। महावीर-दल के स्वयंसेवकों को पञ्जाबी लोग 'वीरजी' के नाम से संबोधित करते थे।

सम्पूर्ण स्वयंसेवकों की संख्या १४ सहस्र के लगभग थी और यू० पी० के ४८ में से अधिकांश ज़िलों से आई हुई पुलिस की संख्या भी छः सहस्र के लगभग पहुँचती थी। इस प्रकार इन २० सहस्र के लगभग प्रबन्धक प्राणियों में रोड़ी-अग्निकाण्ड के प्रथम इतना सुन्दर और श्लाघनीय सहयोग था कि देखते ही बनता था।

यात्री-यूथ

७ लाख के लगभग यात्री किराया देकर और १ लाख के लगभग बिना टिकट के कुल ८ लाख के लगभग तो रेलवे-द्वारा ही हरिद्वार पहुँचे थे। शेष मोटरों-बसों, ताँगों-इक्कों, हाथियों-घोड़ों, ऊँट-बैल-गाड़ियों, नावों आदि से एवं पैदल पहुँचनेवालों की संख्या भी ४.५ लाख के लगभग थी।

इस प्रकार १२।१३ लाख के लगभग, बम्बई की जन-संख्या के बराबर, जन-समूह को हरिद्वार की तङ्ग-घाटियों में बैठने तक को स्थान ढूँढ़े नहीं मिलता था। गङ्गा के किनारे-किनारे प्रायः १५ मील की लम्बाई में यह सब फैला हुआ था।

हरिद्वार के पिछले ४।५ कुम्भों को अपनी आँखों देखे हुए लोग कहते थे कि हरिद्वार में इससे प्रथम इतने अधिक यात्री किसी भी कुम्भ में नहीं एकत्र हुए थे।

प्रयाग व हरिद्वार

कहा जाता है कि प्रयाग के पिछले कुम्भ में ४० लाख के लगभग लोग आये थे। परन्तु प्रयाग का हरिद्वार से अत्यधिक अन्तर है।

प्रयाग भारत के मध्य में है, हरिद्वार मैदान के अन्तिम सीमा में। प्रयाग प्रान्त की अर्द्ध राजधानी होने का गर्व करता है, हरिद्वार केवल तपोभूमि होने का। प्रयाग की जन-संख्या पौने २ लाख से भी अधिक है, हरिद्वार की १० हज़ार से भी कम। प्रयाग में इतने बड़े-बड़े मैदान ख़ाली पड़े हैं, जितने कदाचित् ही किसी अन्य नगर में हों, पर हरिद्वार-क़स्बे की चौड़ाई कहीं-कहीं १०।२० गज़ ही रह जाती है। वह तो गङ्गा की तङ्ग घाटी में किनारे ही किनारे बसा है।

फिर प्रयाग पहुँचने को ४।५ प्रधान रेल-मार्ग, हावड़ा-दिल्ली तक दोहरी रेल लाइन व ४।५ मुख्य मोटर-मार्ग और ३ ज़बर्दस्त जल-मार्ग हैं इसी-लिए महान् मेलों में भी प्रयाग पहुँचने, प्रयाग में ठहरने एवं प्रयाग से प्रयाण करने में हरिद्वारवाली हाय-हाय नहीं मचती।

[अखाड़ेवालों का एक हाथी। मेले में जलूस के समय ऐसे अनेक हाथी प्रत्येक अखाड़े के साथ चलते हैं।]

इसके प्रतिकूल हरिद्वार का रेल-मार्ग एक ही मानना पड़ेगा, वह भी लक्सर से हरिद्वार तक और केवल सिङ्गल ही लाइन का। उसी से ख़ाली ट्रेनें जायँ और भरी लौटें। कहने को ऋषिकेश व देहरादून रेलवे के टरमिनस

स्टेशन अवश्य हैं, पर ये एक तो हरिद्वार के सर्वथा समीप हैं, दूसरे जिस ओर ये हैं, उधर पर्वतीय प्रान्त होने से आबादी नाम-मात्र ही है। हरिद्वार के ९५ प्रतिशत यात्री तो मैदान की ओर से ही आते हैं, जिन सबों को एक ही संकुचित मार्ग लक्सर लाँघ करके ही जाना व आना पड़ता है।

मैदान की ओर से हरिद्वार जाने को मोटर-मार्ग भी केवल एक ही है। जल-मार्ग भी सर्वथा संकुचित है। पर्वतीय प्रवाह होने से गङ्गा यहाँ नौका-सञ्चालन-योग्य नहीं है। नहर-गङ्ग है तो उसकी सङ्कीर्ण वेगवती धारा में भगीरथ प्रयत्न करने पर ही नाव चढ़ाई जा सकती है। वह भी पब्लिक को आज्ञा प्राप्त होती हो किंवा नहीं, ठीक नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

प्रबन्ध

गङ्गा के उभय तटों एवं डेल्टाओं पर भी सुविस्तृत साधुओं के अखाड़े मीलों की लम्बाई में फैले पड़े थे। गङ्गा की अनेक धारायें पार करने को दर्ज़नों कच्चे व २-३ पक्के पुल थे, जो सब सुविधाजनक थे। रोड़ी-प्राय-द्वीप तो प्रायः सब ओर के सेतुओं से सम्बन्धित था।

हाँ तो, इतने सुविशाल जन-समूह की सेवा समस्त स्वयंसेवकों ने सम्पूर्ण शक्ति समर्पित करके की। इन वीर-व्रतियों ने अपने कष्टों को कष्ट न समझकर अपार यात्रियों की सेवा में सम्पूर्ण शक्ति समर्पित कर रक्खी थी।

कुम्भ के दिन (१३।४।३८) मुख्य मेला-क्षेत्र के अन्तर्गत कदाचित् ही कोई मुख्य मार्ग ऐसे बच रहे हों, जहाँ आद्यन्त सड़कों में स्वयंसेवकों की क़तारें खड़ी न पाई गई हों।

ये स्वयंसेवक सब प्रकार से भारी भीड़-भरकम को सँभालते और उस पर नियमित नियन्त्रण रखते थे। जहाँ के लिए दोहरे मार्ग थे, वहाँ एक से जाने तथा दूसरे से लौटने देते थे। जहाँ के लिए एक ही मार्ग था, वहाँ अपनी लम्बी क़तार से सड़क को दो भागों में विभक्त कर देते थे। यात्रियों को अपनी बाईं ओर से जाना और बाईं पटरी से ही वापस लौटना पड़ता था।

इसी प्रबन्ध-पटुता का परिणाम था कि सर्वथा सङ्कीर्ण स्थान में १०।१२ लक्ष जनता के टूट पड़ने पर भी अयोध्या के मन्दिर, स्टेशन एवं स्पेशल ट्रेनवाला धक्कम-धक्का व कशमकश यहाँ न थी।

जनता के ज़बर्दस्त जमाव के पैमाने से, इतने सङ्कीर्ण स्थान में, इतने अधिक यात्रियों का स्नान, दिन-रात निरन्तर होते रहने पर भी, जिस 'हरि की पैड़ी' के घाट पर, एक दिन के स्नान में ४३० यात्रियों के कुचल कर मर जाने का रिकार्ड है, वहाँ भी १५।२५ से अधिक के दबने-कुचलने का समाचार नहीं सुना गया।

इसी प्रकार अन्यान्य प्रबन्धों में भी सर्वत्र स्वयंसेवक एवं पुलिस तैनात पाई जाती थी। स्वयंसेवक-दल तो भूले-भटके लोगों को उनके साथियों से मिलाने, खोये हुए लोगों का पता लगाने, अपार जन-समूह को पानी पिलाने, भूखों को भोजन और चना-चबेना देने, बीमारों को ओषधियाँ देने, अस्पताल पहुँचाने, एम्बुलेन्स-ठेला ठेलने, लाशों की अन्त्येष्टि-क्रिया करने तथा अन्य अनेक सेवाओं में सम्पूर्ण शक्ति से संलग्न देखे जाते थे।

सम्पूर्ण स्वयंसेवकों में सेवा-भाव भरा पाया जाता था और बड़े-छोटे सब अपनी सम्पूर्ण शक्ति लोक-समूह की सेवा में समर्पित किये हुए थे।

इस महान् मेले में सेवा-समितियों के कार्यालय भी अनेकानेक थे। जिधर जाइए, सेवा-समिति के दफ़्तर मिलते ही जाते थे। इसी प्रकार पुलिस के भी कई बड़े व अनेकानेक छोटे कैम्प थे।

अश्वारोही एवं रक्षित पुलिस का सबसे बड़ा कैम्प मायापुर में था और कार्यालय कोतवाली में।

सेवा-समितियों के कार्यालयों एवं पुलिस के कैम्पों में खोये हुए यात्रियों के नाम, पते, हुलिया आदि लिखाई जाती थी। प्रायः प्रत्येक कार्यालयों-कैम्पों में झुण्ड के झुण्ड लोग अपने खोये हुए साथियों की रिपोर्ट लिखाने को एक-दूसरे की प्रतीक्षा करते खड़े पाये जाते थे। इसी प्रकार प्रायः प्रत्येक कार्यालयों-कैम्पों में ऐसी रि[illegible] से सैकड़ों पृष्ठों के रजिस्टर भरे पाये जाते थे। [illegible] नहीं, कितने सहस्रों की संख्या में लोग खो जाते थे, पर प्रायः मिल भी जाते थे।

सरकारी दवाख़ाने भी सर्वत्र थे, पर इनमें से अधिकांश में केवल कॉलरा के ही रोगी प्रवेश पाते थे। धर्मार्थ ओषधियाँ देनेवाले और औषधालय भी अनेक
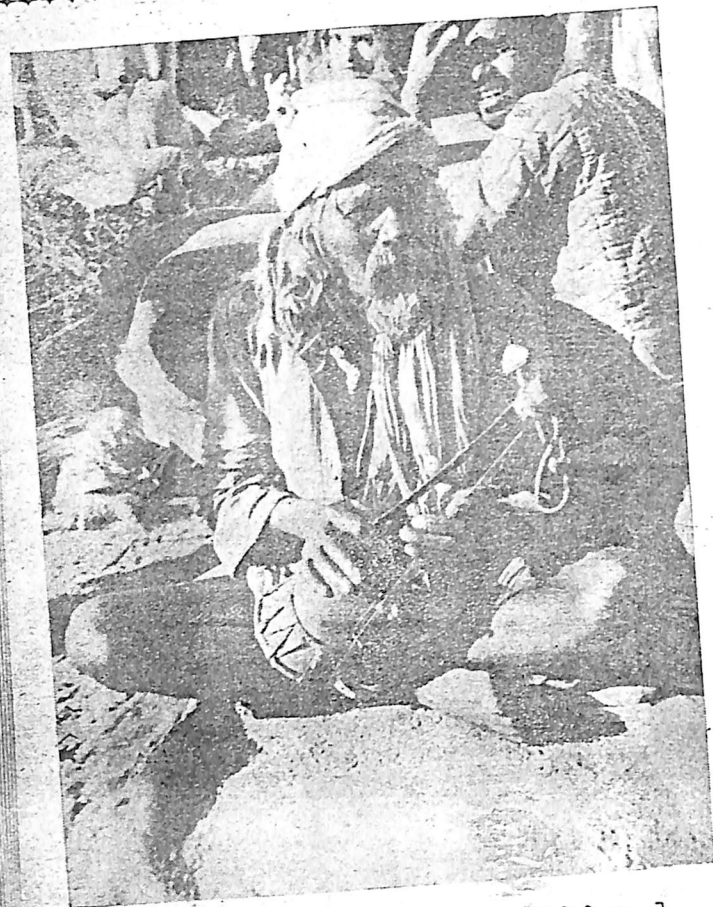
[हरिद्वार के मेले में अड्डा जमानेवाले हज़ारों साधुओं में से एक।]

थे। कुछ विभिन्न सेवा-समितियों के, कुछ गङ्गा-सभा के एवं शेष बाबा काली कमलीवाले की परम प्रशंसनीय परोपकारी संस्था से सञ्चालित थे। ऋषि-कुल एवं गुरु-कुल भी अपने धर्मार्थ औषधालय खोल रक्खे थे।

पानी पिलाने को भी अनेक विशालकाय केन्द्र थे, जिनमें से अधिकांश काली कमलीवाले के ही थे। धार्मिक संस्था हो तो ऐसी हो।

अनेक सिनेमा-घरों, नाटक-घरों, मनोरञ्जन के विविध साधनों के अतिरिक्त अनेक धर्मोपदेशकों के प्रकाण्ड पण्डालों, कीर्तन-कार्यालयों एवं स्वदेशी प्रदर्शनी आदि से मेला सर्वांग सुसज्जित था।

मेला महीनों का था, अतः मेले के मध्य में ही अनेक सभा-समितियों के अधिवेशन, उत्सव आदि उत्साह से मनाये गये, जिनमें से गुरु-कुल के वार्षिकोत्सव का सभापतित्व संयुक्तप्रान्त के प्रधान मन्त्री माननीय पन्त जी ने किया था। आपका दीक्षान्त भाषण आपकी योग्यता के अनुसार ही उत्तम हुआ। सनातन-धर्म-सभा का समारोह भी विशालता से सम्पन्न हुआ।

बृहद् वाचनालय

सर्वत्र गये, सब कुछ देखा, सब कुछ सुना, पर अपनी आत्मा को जो आनन्द भीमगोड़े के 'फ्री रीडिंगरूम' में सुलभ होता रहा वह अन्यत्र कहीं भी नहीं।

प्रयागस्थ भारतीभवन एवं पब्लिक लाइब्रेरी तो अपने नगर की संस्थायें हैं। काशी की कारमायकल एवं क्वीन्स कालेज तथा हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रकाण्ड पुस्तकालयों और बड़ोदा के विशालकाय राजकीय पुस्तकालय में भी पढ़ने का अवसर उपलब्ध हुआ है। हिन्दुस्तान के सबसे बड़े शाही किताब-घर कलकत्ते की इम्पीरियल लाइब्रेरी का तो अब भी मेम्बर हूँ व वहाँ महीनों पढ़ने पहुँचता रहा हूँ, पर जो सुख-शान्ति भीमगोड़े के इस अस्थायी बृहद् वाचनालय में प्राप्त हुई वह अन्यत्र कहीं भी नसीब नहीं हुई थी।

अपना तो अनुमान भी नहीं था कि हमारे साधु-संन्यासी समाज-सेवा का ऐसा सामयिक साधन सोच भी सकते होंगे और हरिद्वार में इतना विशालकाय बृहद् वाच-

नालय बना होगा, पर जब गये और देखा तब दङ्ग रह गये और उस दिन से जब तक हरिद्वार में रहे, रोड़ी-प्रायद्वीप के प्रवासी रहने पर भी, प्रतिदिन सन्ध्या का समय भीमगोड़े के सुविशाल सरस्वती-मन्दिर को ही समर्पित करते रहे।

यह बृहद् वाचनालय जगद्गुरु श्रीचन्द्र उदासीन एवं उनकी उपदेशक-सभा की ओर से खोला गया था। इसके प्रबन्धक हैदराबाद (सिंध) के निवासी महात्मा पूर्णदास जी उदासीन थे।

जैसा आपका शरीर सुदीर्घ है, वैसी ही आपकी सरलता, सुशीलता, सौजन्यादि भी सर्वथा श्लाघनीय है।

भीमगोड़े में गङ्गा-धारा के समीप समान धरातल पर दीर्घाकार हाता था। इसका द्वार बहुत ही ऊँचा-पूरा, ध्वजा-पताका एवं विद्युद्वल्बों से सुसज्जित था। इसी कम्पाउण्ड के केन्द्र में एक बहुत ही विशालकाय शामियाना सजा था। इसी से मिलता हुआ चिकनी चटाइयों का एक प्रकाण्ड पण्डाल बना था। इस महान् मण्डप के भीतर ७८ सौ कुर्सियों का स्थान था। बीचोबीच ८-१० फ़ुट चौड़ा पूरी लम्बान तक नक़ली टेबिल बनाया गया था। इसके पाये पृथ्वी में गड़े थे और ऊपर पतले तख़्ते जड़ दिये गये थे। पूरा टेबिल स्वच्छ खादी के धवल वस्त्र से ढँका था। इस पर दो हरी पट्टियाँ टेबिल की पूरी लम्बाई को ३ भागों में विभक्त करती थीं। पण्डाल की पूरी छत चिकनी चटाइयों, चित्ताकर्षक बन्दनवारों एवं घनीभूत विद्युद्वल्बों से चमचमाती रहती थी।

जिधर जिस भाषा की पत्र-पत्रिकायें प्रस्तुत रहतीं, उधर उन भाषाओं के नाम एवं उपानुक्रमण में मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक, दैनिक आदि के नामवाले बोर्ड भी लगे थे।

वहाँ धर्मार्थ औषधालय एवं पानी पिलाने का भी पर्याप्त प्रबन्ध था और गेट के ऊपर तथा पण्डाल के भीतर अनेक लाउड-स्पीकर लगे थे।

पत्र तो कदाचित् ही किसी भी भाषा के ऐसे रहे हों जो इस बृहद् वाचनालय में न प्राप्त हो जायँ। रीवाँ का 'प्रकाश' पत्र भी जो सर्वथा प्रान्तीय ही है, यहाँ प्राप्त हो जाता था; फिर प्रसिद्ध पत्र तो प्राप्त हो जाने ही चाहिए।

प्रायः सभी भाषाओं के पत्रों की प्रचुरता थी। दैनिक

पत्रों की संख्या सैकड़े के समीप पहुँचती रही होगी। सम्पूर्ण पत्रों की संख्या तो ७८ सौ से भी ऊपर रही होगी।

गंगा-घोष की मधुरध्वनि व सिनेमा-घरों से भी उत्तमोत्तम कर्णप्रिय, श्रुतिमधुर, सुन्दर सङ्गीत सुनानेवाले रिकार्डों के गाने लाउड-स्पीकरों-द्वारा प्रत्येक पाठक के कर्णों से हृदयपर्यन्त सुखद शान्ति भरते रहते थे और इधर आँखें, मनोवाञ्छित ज्ञानार्जन में गम्भीर गोते लगाती रहती थीं। तब सम्पूर्ण क्लान्ति को हरनेवाली इस सुखद शान्ति को स्वर्गीय कैसे न कहा जाय?

पीड़ा

दिन के पीछे रात व सुख के पीछे दुःख का होना नैसर्गिक नियम-सा निर्धारित है।

१३ तक कॉलरा था ही नहीं। १४ को १ व १५ को २५ कॉलरा-केस हुए। फिर १६ से तो दो-ढाई सौ कॉलरा-कवलित केस होने लगे।

१५ को मध्याह्नोत्तर में रोड़ी-प्रायद्वीप का भीषण भयावह एवं अद्वितीय अग्नि-काण्ड हुआ।

इसी रोड़ी-टापू के उत्तरीय भाग में उपस्थित कलकत्ता, कानपुर, कराची, लाहौर, अमृतसर, दिल्ली, बम्बई, अहमदाबाद और अजमेर आदि से आई हुई बड़ी-बड़ी लगभग ५०० के दूकानें १५।२५ मिनटों के भीतर ही अपनी ही आँखों भस्मीभूत होते देखा व देख कर रोया था।

रोड़ी-प्रायद्वीप के ज्वालामुखी बननेवाले उत्तरीय अञ्चल के अन्तर्गत ही लेखक भी था। मध्याह्न के भोजन की थाली फेंक कर नील-धारा में घसने से ही प्राणरक्षा हुई थी।

प्रायः ५०० फ़ुट के लगभग ऊँची उठती हुई अग्नि-शिखायें, लपटों की लहरें लेखक के लिए पूर्ण प्रलय का पर्व थीं। उस प्रलयङ्करी प्रवाह के वर्णनार्थ पर्याप्त शब्द का प्राप्त हो सकना ही असम्भव है।

कहा केवल इतना ही जा सकता है कि—

"गिरा अनयन, नयन बिनु बानी।"

जो बच गये उन्हें वह अपनी आँखों देखा प्रचण्ड प्रलय-काण्ड का भीषण दृश्य आजीवन स्मरण रहेगा और उस भूत भावना में गोते लगाने पर भय-भीति की भी भरमार होती रहेगी। क्षण-मात्र में अनेकानेक लखपती दीवालिये बन गये। इसी आग्नेय प्रलय के पश्चात् पुलिस

नहीं करती। उधर पुलिसवालों ने उस रक़म के ज़बर्दस्ती छीन लिया। बस, यहीं से मुड़फुटौवल आरम्भ हुई।

कांग्रेस सरकार न होती और विशेषतया आकस्मिक योग से प्रधान मन्त्री पन्त जी ठीक दुर्घटना के समय घटनास्थल पर न पहुँच पाये होते तो उत्तेजित जनता-द्वारा बेहद बग़ावत व पुलिस की फ़ायरों से हत्यायें भी हद तक पहुँचतीं।

फ़ायर-ब्रिगेड का इञ्जन सिर्फ़ एक था, वह भी अमृतसर सेवा-समिति का, पर वह अग्नि बुझाने में सफल हो सकता था, न कि ज्वालामुखी का विस्फोट शान्त कर सकता था।

दर्ज़नों बड़े बड़े बुक्सेलरों के विशाल बुक-स्टाल भी आये थे। 'लहरी' व 'गीता' प्रेस आदि की दूकानें तो ख़ाक हो कर ही रहीं। एक-एक में ५०-५० हज़ार रुपये के मूल्य की किताबें ख़ाक हो गईं।

सौभाग्य से केवल 'सुधा', 'माधुरी' एवं पुस्तक-भवन की पुस्तकें बच गईं।

[हरिद्वार रेलवे स्टेशन का एक दृश्य।]

क़ै-दस्त के वीभत्स शोर-गुल ने तो लोगों के ऐसा भयभीत कर दिया कि क्रमशः महीने दो महीने में जितने यात्री आकर उपस्थित हो सके थे, सब साथ ही भाग निकलने को खड़े हो गये। पर भाग कर जाते कहाँ? जिस द्वार से जनता जा सकती थी वह तो एक नियमित-निश्चित संख्या ही निकाल पाता था।

एवं स्वयंसेवकों में मार-पीट मची और हताहतों की संख्या सैकड़े के समीप पहुँची।

भस्मीभूत दूकानों में से एक स्वयंसेवक एक जलता-बलता ट्रङ्क खींच सका। उसके अन्दर कुछ हज़ार रुपये निकले। स्वयंसेवक इस रक़म को अपने निरीक्षण में रखना चाहते थे। जनता भी यही चाहती थी, क्योंकि जनता स्वयंसेवकों के बराबर पुलिस का विश्वास

फलतः जन-समूह की बाढ़ ऐसी बढ़ी कि विस्तृत स्टेशन के चारों ओर का विस्तीर्ण क्षेत्र प्रस्थानित प्राणियों

से पट गया। मीलों तक की सड़कें तो प्रस्थानित प्राणियों से ऐसी पटी थीं कि स्वयंसेवक प्यासे प्राणियों को पानी पिलाने के लिए उस भारी भीड़ के भीतर घसना चाहते थे तो उन्हें पैर रखने तक को भी ख़ाली स्थान न मिलता था। दुर्दशा यह थी कि मनुष्य से मनुष्य सटे ही भर न थे, व्यक्ति पर व्यक्ति लदे भी थे।

दिन भर की धधकती धूप व रात भर की बर्फ़ीली वायु-जनित ओस-ठण्डक सब यात्रियों के सिर पर थी।

खाद्य-सामग्री एवं पानी तक भी न पहुँच पानेवाले यात्रियों को एक आधार स्वयंसेवकों-द्वारा दिया गया चना-चबेना व उनकी बाल्टी का पानी ही भर था। पूरे सप्ताह पर्यन्त यही दुर्दशा देखी गई।

अनेक कॉलरा से एवं कुछ स्टेशन के भीतर प्रवेश पाने की प्रबल प्रतियोगिता में काल-कवलित होते थे। इतना ही नहीं, एक दिन रेलगाड़ी के कुछ डिब्बे भी यात्री-यूथ पर चढ़ दौड़े और इस दुर्घटना के घटित होने से भी हताहतों की संख्या सैकड़े के समीप पहुँची।

रेलवे ने स्टेशन के सुविस्तृत क्षेत्र के भीतर अनेकानेक आकाश-स्पर्शी स्तम्भों पर लाउड-स्पीकर लगा रक्खे थे। जिनके द्वारा ग्रामोफोन के रिकार्ड सुनाये जाते थे, पर दारुण दुःख, कठिन कष्ट के काल में सुमधुर सङ्गीत भी कर्ण-कटु बन कर काटने दौड़ता था।

यात्रियों को जो वापसी टिकट मिले थे उनमें हाथी, घोड़ा, फरसा, बल्लम आदि अनेक चिह्नों में से किसी एक का लाल चित्र बना रहता था और यही चित्र स्टेशन के विभिन्न फाटकों पर भी लटक रहे थे। समय-समय पर लाउड स्पीकरों के द्वारा रेलवे कण्ट्रोलर आफ़िस से दी गई सूचना-ध्वनि भी सुनाई पड़ जाती थी। यथा—अमुक चिह्न के टिकटवाले अमुक लाइन के मुसाफ़िर फ़लाँ निशान व नम्बरवाले फाटक पर पहुँचें। स्पेशल ट्रेन तैयार है। अमुक नामधारी फ़र्स्ट क्लास-यात्री के साथी अमुक नामधारी जो भूले-भटके लापता हैं, फ़र्स्ट क्लास-गेट पर आवें, उन्हें मार्ग मिलेगा। आदि-इत्यादि।

समय-समय पर चन्द मिनिटों के लिए ही फाटक खुलते थे तब यात्री-यूथ उस पर वैसा ही गिरता था, जैसे प्रचण्ड प्रवाहपूर्ण पहाड़ी नाला किसी कुण्ड में गिरता है। फलतः कुछ कुचल कर रहते थे।

स्टेशन की चहारदीवारी आदम-क़द से कम ऊँची नहीं थी। इसके सिवा उसके ऊपर पैर न रक्खा जा सके इसके लिए उसमें शीशे के टुकड़े जड़े हुए थे। तिस पर भी ३।४ फ़ुट और ऊँचे तक कटीले तार लगे हुए थे।

परन्तु 'मरता क्या न करता'। सबल यात्री इस अजेय दीवार के ऊपर-नीचे पुटकियाँ रखकर फाँदते देखे जाते थे। इसलिए समूची दीवार पर बूट पहने पुलिस के आदमी खड़े किये गये।

बहुत-से पैसेवाले यात्री जो रिटर्न टिकट लिये थे और जिन्हें जाना था पूर्व, पैसे का मोह छोड़ चौगुना-पँचगुना तक किराया देकर मोटरों बसों से पश्चिम और सहारनपुर-अम्बाला आदि पहुँचे।

कई सौ की संख्या में मोटर व बसें मनमाना चौगुना-पँचगुना किराया ले-लेकर दौड़ लगा रही थीं। इधर स्पेशल ट्रेनें भी २४ घण्टे के भीतर ५०।६० तक छूटती थीं, फिर भी इतनी भारी भीड़ थी कि आदमियों से पटी पटरी, मीलों लम्बी सड़क, ख़ाली होते होते हफ़्ते भर लग गया।

रेलवे

आये दिन हरिद्वार में मेले होते ही रहेंगे। प्रबल प्रोपेगैण्डा रेलवे करती है और अधिकाधिक आय का लाभ भी वही उठाती है। अस्तु, ईस्ट इण्डियन रेलवे को चाहिए कि लक्सर से हरिद्वार तक डबल लाइन बनवाने में विलम्ब न करे। बहुत व्यय भी नहीं; क्योंकि फ़ासला थोड़ा ही है। सिङ्गल लाइन से जितने समय में जितनी स्पेशल ट्रेनें छोड़ी जा सकती थीं, डबल लाइन बन जाने पर, उतने ही समय में उसकी दूनी स्पेशल ट्रेनें छोड़ी जा सकेंगी, क्योंकि एक लाइन से भरी गाड़ियों का जाना व दूसरी से ख़ाली गाड़ियों का आना जारी रहेगा।

मेला-प्रबन्धक बोर्ड

इतने बड़े महान् मेला में भी आग बुझाने के साधन फ़ायर ब्रिगेड आदि का अभाव अत्यधिक अनुभवहीनता प्रकट करता है। भविष्य में सबसे अधिक सावधानी अग्नि-उत्पात न होने देने के विषय में ही रखनी चाहिए और आग बुझाने के पर्याप्त प्रबन्ध में सबसे अधिक रुपया लगाना चाहिए।

स्वास्थ्य-विभाग

हरिद्वार के हर मेले में कॉलरा का सदा प्रकोप हो

जाता है। अतएव हरिद्वार पहुँचनेवाले प्रत्येक यात्री के टीका लगा देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

वीर बन्धु

निस्तब्ध निशा में भी स्वयंसेवक लोग हाथों में बाल्टियाँ लटकाये अपने सुदूर कैम्पों से स्टेशन जाते हुए यात्रियों को मना करते जाते थे कि—भाई साहब, अभी स्टेशन न आना, अभी वहाँ बेहद तक़लीफ़ है। उन सुकुमार कुमारों एवं उत्साही नवयुवकों ने अपने कोमल करों से यात्रियों की जो सेवायें की हैं वे अमूल्य हैं। उन लोगों की विनयशीलता कभी भुलाई नहीं जा सकती।

पुनः प्रयाग

निरन्तर दिन गिनते हुए २१ को हरिद्वार छोड़ सकने को कुछ सुविधा सुलभ हुई। स्टेशन पहुँचे। किसी क़दर करारी कशमकश करने के बाद अपने इण्टर में प्रवेश पाया। रात ब्लैक-होल में ही व्यतीत हुई। अनेक यात्री तो खड़े ही थे।

हमारी यह ट्रेन देहरा-एक्सप्रेस की डुप्लीकेट थी, अतः २१ को रात को १२ बजे चलकर २२ को १२ बजे मध्याह्न में लखनऊ पहुँच गये।

जिस यात्रा को पूरा करने में ३६ घण्टे लगे थे, उसी मार्ग को १२ घण्टे में तय कर लेने से सन्तोष हुआ।

लखनऊ में उस दिन शिया-सुन्नियों में ताक़त की आज़माइश हो रही थी, बेहद मुड़फुटौल मची थी, फिर भी ३ रोज़ लखनऊ में ठहरे। २५ की रात को चलकर २६ के प्रातःकाल पुनः प्रयाग पहुँच गये और हरिद्वार को नहीं तो कम-से-कम हरिद्वार के कुम्भ को सदा के लिए प्रणाम किया।

कुम्भ की कथा

कुम्भ की कथा कदाचित् कोई कोई न जानते हों, अतः इस पौराणिक प्रसङ्ग की चर्चा यहाँ अप्रासङ्गिक न होगी।

(१)

पुरा प्रवृत्ते देवानां दैत्यैः सह महारणे।
समुद्रमथनात्प्राप्तं सुधाकुम्भं तदा सुरैः॥

(२)

तस्मात्कुम्भात्समुत्क्षिप्तः सुधाविन्दुर्महीतले।
यत्र यत्रापतत्तत्र कुम्भपर्व प्रकल्पितम्॥

(३)

पृथिव्यां कुम्भपर्वस्य चतुर्धा भेद उच्यते।
चतुःस्थले च पतनात् सुधाकुम्भस्य भूतले॥

(४)

गङ्गाद्वारे प्रयागे च धारागोदावरी-तटे।
कलशाख्यो हि योगोऽयं प्रोच्यते शङ्करादिभिः॥

(५)

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भो विधृतो विष्णुना स्वयम्॥

आशय

सात्त्विक (आत्म-बल) एवं राजस (शरीर-बल) वाली, दोनों प्रधान शक्तियाँ, अर्थात् देव एवं दानव, दोनों दल सहयोग कर, सुविस्तृत सागर के गम्भीर गर्भ का आलोडन (मन्थन) किया तब अनेकानेक उत्तमोत्तम उपकरणों के अतिरिक्त अमर बना देनेवाला अमृत भी उपलब्ध हुआ, जिसे अधिक पाशविक बलवाला दैत्य-दल छीन लेना चाहता था। अस्तु—

देव-दलवाले अमृत-कुम्भ को लेकर भगे और इधर इस भू-मण्डल का सबसे सुदीर्घ अद्वितीय युद्ध देवासुर-संग्राम आरम्भ हो गया, जो १२ वर्ष पर्यन्त चलता रहा।

तब तक अमृत-घट को देवताओं ने एक के अनन्तर दूसरे, बिल्ली के बच्चे के माफ़िक, १२ स्थानों में छिपाते फिरे, जिनमें से ४ स्थान तो इसी भू-मण्डल में हैं—१ हरिद्वार, २ प्रयाग, ३ उज्जैन एवं ४ नासिक। शेष इस पृथ्वी पर बचत न[illegible] अन्य ८ गोलकों (लोकों) में भी कुछ-कुछ काल के लिए अमृत-कुम्भ को छिपाते और वहाँ भी दैत्य-दानवों का दौरा हो जाने पर पुनः कुम्भ लिये भागते फिरते थे।

इस कथानक से यह स्पष्ट होता है कि एक स्थान पर छिपाते थे और जब वहाँ दैत्य-दल आक्रमण कर देता था तब उस अमृत-घट को स्थानान्तरित करने के लिए शीघ्रातिशीघ्र उठाते-लेते, दौड़ते-भागते तथा दैत्य-दानवों से अज्ञात स्थान को ले जाते और दूसरे आक्रमण की अवधि-पर्यन्त वहाँ छिपाये रहते थे।

जो कुछ हो, इसी भगदड़ की भड़भड़ में रखते-उठाते लेते-भागते समय अमृत-घट के छलक जाने से कुछ सुधा-विन्दु पृथ्वी पर पतित हो जाते थे। इसी प्रकार अमृत-

कुण्ड के ४ बार छलकने से भारतवर्ष के उपर्युक्त ४ स्थानों को सुधा-सिञ्चित होने का सौभाग्य सुलभ हुआ है।

जब जिस समय जिस स्थान पर कुम्भ से अमृत-विन्दु गिरे, उस समय ग्रह-नक्षत्रों का तान-वितान, खगोलीय नक़शा जैसा था, वैसा ही पुनः प्रस्तुत होने पर, वहाँ उस स्थान पर कुम्भ का पर्व पड़ा माना जाता है, जो १२ वर्ष के बाद क्रमशः आता है।

(१)

मेषराशिगते सूर्ये कुम्भराशिगते गुरौ।
गङ्गाद्वारे तदा कुम्भो जायतेऽवनिमण्डले॥

पाठान्तर

पद्मिनीनायको मेषे कुम्भराशिगतो गुरुः।
गङ्गाद्वारे भवेद् योगः कुम्भनामा तदोत्तमः॥

(२)

मकरे च दिवानाथे वृषजे च बृहस्पतिः।
कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्रयागे चातिदुर्लभः॥

(३)

घटे गुरुः शशी सूर्यः कुह्वां दामोदरे यदा।
उज्जयिन्यां तदा कुम्भो जायते खलु मुक्तिदः॥

(४)

कर्के गुरुस्तथा भानुश्चन्द्रश्चन्द्रक्षयस्तथा।
गोदावर्यांस्तदा कुम्भो जायतेऽवनिमण्डले॥

बृहस्पति जब कुम्भ-राशि के होते हैं तब मेष-राशि का सूर्य होने से हरिद्वार में और बृहस्पति जब वृष-राशि के होते हैं तब मकर-राशि का सूर्य होने से कुम्भ-पर्व प्रयाग में पड़ता है। इसी प्रकार—

कार्तिक में तुला-राशि के सूर्य, चन्द्र, गुरु का संयोग अमावस्या में होने पर उज्जयिनी में और अमावस्या में कर्क-राशि के गुरु, सूर्य, चन्द्र होने से गोदावरी (नासिक) में कुम्भ का पर्व होता है।

इस प्रकार १२ वर्ष व्यतीत हो जाने पर उपर्युक्त ४ स्थानों में से, क्रमशः किसी एक स्थान में, कुम्भ का क्रम आ उपस्थित होता है।

कुम्भ के सम्बन्ध में यह है ,ज्योतिष की ज्योति एवं भारतीय भावनाओं-भावुकताओं की भव्य परम्परा।

अब आधुनिक भौतिक विज्ञानवाले जड़-वादी प्रत्यक्ष-वाद के दृष्टि-कोण से शङ्का समुत्पन्न करें तो उनके समुचित समाधान के अर्थ इस सीमित ज्ञानवाले लेखक की पहुँच में कोई प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त नहीं है। अस्तु—

कहना केवल इतना ही है कि—"विश्वासं फल-दायकम्।"

कुम्भपर्व पर स्नानादि का फल धार्मिक ग्रन्थों के अनेक स्थलों पर उद्धृत हैं। जैसे—

(१)

सहस्रं कार्तिके स्नानं माघे स्नानशतानि च।
वैशाखे नर्मदाकोटिः कुम्भस्नानेन तत्फलम्॥

(२)

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
लक्षं प्रदक्षिणा पृथ्व्याः कुम्भस्नानेन तत्फलम्॥

(वि० पु०)

मेरी साहित्यिक तीर्थ-यात्रा

लेखक, श्रीयुत राजबहादुर लमगोड़ा, एम० ए०, एल-एल० बी०

रायबरेली ज़िले का वह छोटा सा गाँव दौलतपुर जहाँ आचार्य्य द्विवेदी जी रहते हैं साहित्यिकों का तीर्थ हो रहा है, पर मार्ग इतना कष्टप्रद है कि दर्शन के अत्यन्त इच्छुक प्रेमी जन ही पहुँच पाते हैं। श्री लमगोड़ा जी ऐसे ही व्यक्तियों में हैं। इस लेख में आपने आचार्य्य द्विवेदी जी के ग्राम-जीवन का चित्रण इतने सजीव और सुन्दर ढङ्ग से किया है कि जैसा अब तक किसी साहित्यिक यात्री से नहीं बन पड़ा है। आशा है, पाठकों को इस लेख में विशेष आनन्द मिलेगा।

न्दी के साहित्यिक क्षेत्र में आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व महान् व्यक्तित्व है। नई हिन्दी के निर्माण में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद द्विवेदी जी का नाम बिना किसी पसोपेश के लिया जा सकता है। आज-कल के किसी भी प्रसिद्ध हिन्दी-कवि या लेखक की जीवनी देखिए तो आपको उसके साहित्यिक विकास में श्री द्विवेदी जी का हाथ निश्चय ही दिखेगा। स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी ठीक ही कहते थे कि वे केवल साहित्यकार नहीं, बल्कि साहित्यकारों के निर्माता भी हैं। इसका अनुभव मुझे भी है। लगभग दस साल हुए, उन्होंने बिना किसी पूर्व-परिचय के मेरे यहाँ पधारने की कृपा की और मेरी रामायणी व्याख्याओं के विषय में वे शिक्षायें दीं जिनका उल्लेख मैंने 'कल्याण' में प्रकाशित अपनी लेख-माला के प्रारम्भ में किया है। उनके तीन उत्साहप्रद कृपा-पत्रों को अपनी जान से भी बढ़कर समझते हुए सुरक्षित किये हुए हूँ, जिन्हें मैं अपनी विश्व-विद्यालयवाली डिग्रियों से भी अधिक आदर की दृष्टि से देखता हूँ। वस्तुतः आचार्य का गुण ही यह है कि वह औरों को भी साहित्यकार बना सके। पर समय की प्रगति देखिए कि अभी हाल में हिन्दू-विश्वविद्यालय तथा प्रयाग-विश्वविद्यालय ने 'डाक्टर' की डिग्रियाँ बड़ी उदारता एवं प्रचुरता से बाँटीं, पर आचार्य जैसे सबसे बड़े अधिकारी को किसी ने न पूछा! सच पूछिए तो ऐसे महान् व्यक्ति को 'डाक्टर' बनाना स्वयं विश्व-विद्यालय की महत्ता का हेतु हो सकता है। यों तो आचार्य जी के विचार विचित्र हैं। कई वर्ष हुए, मैंने इस बारे में एक लेख लिखा था। जब वे मेरे यहाँ पधारे तब कहा कि मुझे तुम्हारा लेख देखकर दुख हुआ। यह आँग्ल शिक्षा का प्रभाव है कि तुम भी 'डाक्टर' को 'आचार्य' से बेहतर समझते हो। भई! मेरी राय में तो मेरी साहित्य-सेवा के बदले में जो उपाधि तुम जैसे साहित्यकारों ने मुझे दे डाली है वह विश्व-विद्यालयों की बनावटी डिग्रियों से अधिक प्रिय है।

जभी से यह इरादा था कि मैं आचार्य जी के आश्रम (दौलतपुर, ज़िला रायबरेली) में स्वयं जाकर मुलाक़ात की वापसी का नैतिक कर्तव्य पूरा करूँ। पर हूँ गृहस्थी के तेली का बैल, जो अपने कोल्हू के गिर्द ही घूमता रहता है। फिर बीमारी ने और भी मजबूर कर दिया। तीन वर्ष हुए कि एक बार तो सब लोग मेरी ज़िन्दगी से ही निराश हो बैठे थे। अब स्वास्थ्य की दशा न कहने योग्य है—न सरदी की बर्दाश्त, न गरमी की। अस्तु, मामला टलता ही रहा। हाल में मेरे सहकारी श्री इक़बाल वर्मा 'सेहर' के आग्रह पर मैं इस साहित्यिक तीर्थ-यात्रा के लिए तैयार हो गया। पर शुभ कार्य में बाधा भी होती है। दो-चार दिन पहले से 'सेहर' जी की कमर और पैर में दर्द पैदा हो गया और हमारी आशाओं पर फिर पानी फिरता हुआ दिखाई दिया। पर सेहर जी हिम्मत न हारे और वैसी दशा में भी तैयार हो गये। हम लोग १५ अप्रैल ३८ को ४½ बजे सुबह फ़तेहपुर से इक्के पर चल दिये।

वह समय बड़ा सुहावना था। चार-पाँच कोस तक उसका आनन्द उठाते और बसन्तऋतु की बढ़िया हवा खाते एक निमग्नता की-सी दशा में हम लोग चले गये। मेरे मस्तिष्क में वे विचार आ रहे थे जिन्होंने वैदिक ऋषियों को उषा की प्रशंसा में तल्लीन कर दिया था। एक सुन्दर कुमारी लाल ओढ़नी ओढ़े पूर्वी क्षितिज में अपनी सौन्दर्य-छटा छिटका रही थी। आगे बढ़कर जब ग्रैण्डट्रंक-रोड छोड़ी तब राह भूल गये। कुछ चक्कर काटते हुए लहँगी गौज़ा (जहाँ घाट से गंगा पार करनी पड़ती है) के क़रीब पहुँचे तब एक भलेमानस ने ठीक राह बताई। हमने किसी तरह वहाँ पहुँच कर ठाकुर चन्द्रपाल-सिंह मुख़्तार के घर पर इक्का खड़ा किया। उनके पक्के और सुडौल कमरे पर काँग्रेस का तिरंगा झंडा लहराता हुआ बहुत भला लगता था। अतिथि-सत्कार की पुरानी बात वहाँ अब भी मौजूद थी। इक्का वहीं छोड़ा और हम लोग गङ्गा-पार जाने को रवाना हो गये। पहले एक सोता मिला, जो किसी छोटी नदी से कम न था—जाँघों के ऊपर तक पानी और किसी डोंगी का पता नहीं। ठाकुर साहब के चचा राह दिखाने को साथ थे। हमने डोंगी की बात कही तब हँसकर बोले—"बाबू जी, हम गँवार आदमी हैं सही, पर दुनिया में पहले चार तरह के लोग थे। एक जोड़ा ईमान अली और बरकत अली का जो सगे भाई थे। दूसरा वैसा ही जोड़ा बेईमान अली और मतलब अली का। पहले ईमान अली का स्वर्गवास हुआ और उनके न रहने पर बरकत-अली भी चल बसे। अब बाक़ी दोनों रह गये हैं। घाट के ठेकेदार को अपने मतलब से मतलब। मुसाफ़िरों को तकलीफ़ हो या आराम।" अस्तु। किसी प्रकार १½ मील रेत और कटरी चलकर घाट पर पहुँचे। वहाँ एक मल्लाह और एक नाव थी। न निर्ख़नामे की तख़्ती, न मुसाफ़िरों के आराम की जगह! पार होते होते धूप बढ़ गई। किनारे की एक कुरिया में जाना चाहा तब केवट ने मना किया कि वहाँ पशु बाँधे जाते हैं। हमने तपती हुई धूप में नाव पर ही बैठ कर खाना खाया। वहाँ कोई ज़िम्मेवार आदमी न था, अतः उतराई भी दूनी ली गई और कष्ट भी हुआ। हम फिर चल पड़े। दोपहर होती जा रही थी और अभी

आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी

ढाई-तीन मील चलकर दौलतपुर पहुँचना था। बेचारे सेहर जी को पीड़ा की तकलीफ़ और शिकायत अलग थी। मेरा उत्तर था कि भई, यदि तीर्थ-यात्रा में कष्ट न हो तो फिर लुत्फ़ ही क्या? वही कष्ट तो हमारे भावों का परीक्षक है!

हम १२ बजते-बजते द्विवेदी जी के घर पर पहुँचे। बाहर नीम की घनी छाया थी। मुझे तो ऐसा जान पड़ा कि किसी वानप्रस्थी के आश्रम में आ गये हैं। दो मकान बराबर-बराबर थे। ईंटें लाल रँगी हुई और उनके गिर्द सफ़ेद टीप थी। मुझे तो पुरानी चित्रकारी का मज़ा आ गया, जिसमें ईंटें सुन्दरता से पृथक् पृथक् दिखाई जाती थीं। सफ़ाई ऐसी थी कि कहीं तिनके का पता नहीं था। लाइब्रेरी में १० अलमारियाँ पुस्तकों से ठसाठस भरी हुई थीं, परन्तु गर्द-ग़ुबार से साफ़ और तरतीब से चुनी हुई थीं। एक अँगरेज़ का कथन याद आ गया कि कवि या लेखक को पहले अपना ही जीवन सुसंगठित करना चाहिए। अन्दर जाकर प्रणाम किया और चरण छुए। वयोवृद्ध आचार्य ने उठकर प्रेम और प्रसन्नता से पीठ पर हाथ फेरा। हमें यात्रा के सारे कष्ट भूल गये।

उनकी हास्यप्रियता बराबर बनी हुई है। खाने का सवाल

हुआ और जब हमने कहा कि खाना तो गंगास्नान कर वहीं
खा चुके हैं तब हँसकर बोले कि क्या फ़क़ीर की मेहमा-
नदारी पर भरोसा न था। अच्छा, अब यह बताओ कि कुछ
हमारे लिए भी बचाया कि सब खा गये। मेरा उत्तर
था कि देवता के नैवेद्य का सामान अलग है। द्विवेदी
जी फिर हँसे और हमसे बग़लवाले मेहमान-घर में जाकर
आराम करने को कहा। इस घर की सफ़ाई और सादगी
ने भी मुझ-से बे-परवा और बे-तरतीब आदमी को मोहित
कर लिया, पर सेहर जी तो यही कह रहे थे कि मैं भी
अपने हथगाँव (ज़िला फ़तेहपुर) के घर के ऊपरी
हिस्से पर जहाँ मैं रहता हूँ, प्रायः ऐसी ही सफ़ाई और
तरतीब रखने की कोशिश करता हूँ। मैंने मुस्कराते हुए
जवाब दिया कि आख़िर तुम भी तो कवि हो। अस्तु, हम
इतना थक गये थे कि शीघ्र ही सो गये और पाँच बजे
शाम से पहले न उठ सके।

उठकर आये तब द्विवेदी जी के कमरे में गाँव की
सरकारी पंचायत हो रही थी। द्विवेदी जी सरपंच हैं।
कोई मामला पेश था। हमें दिलचस्पी न थी, अतः अलग
बैठे देखते रहे। मैं सोच रहा था कि जीवन का आदर्श
यहाँ भी वही है जो शेक्सपियर का था कि जब साहित्यिक
जीवन से अवकाश मिला तब अपने छोटे से गाँव की ही
शरण ली और उसी की सेवा करना अपना फ़र्ज़ समझा।
इतने में पंचायत ख़त्म हुई। लोग जाने लगे। एक साधा-
रण देहाती से द्विवेदी जी को यह कहते सुना कि भई,
तुम आज मुझसे नाराज़ तो नहीं हो गये? इस बड़े
बुज़ुर्ग का यह वाक्य मेरे दिल में बैठ गया। बड़े-छोटे का
कृत्रिम विभाग तो वहाँ जान ही न पड़ता था। इन्हीं
विचारों के सन्नाटे में मैंने द्विवेदी जी को मुबारकबाद दी
कि आप धन्य हैं जो इस ७६ वर्ष की आयु में भी अपने
ग्राम-सुधार के काम में इतनी दिलचस्पी लेते हैं। उन्होंने
मुस्कराते हुए कहा कि हाँ भई, यहाँ स्कूल और डाक-
घर खुलवाया। औषधालय भी है और पंचायत और मवे-
शीख़ाना भी। पर जानते हो कि इन सेवाओं के बदले
मुझे क्या उपनाम मिला है? मैंने कहा कि आपके सभी
प्रशंसक ही होंगे और शायद मेरे मुँह से 'ग्रामसेवक' शब्द
निकलना चाहता था कि वे बोल उठे—भई! देहाती
ज़िंदगी उतनी साफ़-सुथरी नहीं है जितना तुम शहरवाले
समझते हो। यहाँ ईर्ष्या और पार्टीबन्दी का बाज़ार गर्म है।
मुझे जो उपनाम मिला है वह है 'दुबौना...'। आह!
मेरा वह सब ख़याल ख़्वाब हो गया और मनुष्य अपनी
सारी स्वार्थपरता लिये हुए सामने आ गया। बर्नार्ड शा की
बात याद आई कि इस समय आज़ादी के मानी यह
हैं कि हम तो जो चाहें वह करें, पर औरों को वैसी
आज़ादी न हो। द्विवेदी जी ने कहा—भई, पंचायत से अब
किसी को वैसे अत्याचार का मौक़ा नहीं मिलता और मवे-
शीख़ाने से औरों के खेत चरा लेने की आज़ादी कहाँ?
मैंने हँसकर कहा कि द्विवेदी जी, पहले लोगों ने ईर्ष्या
से ही हरिश्चन्द्र को 'भारतेन्दु' कहना शुरू किया था। वे
बोले—नहीं भई, यह गाढ़ी कमाई है। इसे कैसे खोऊँगा?
लमगोड़ा जी, जो काम करता हूँ, इच्छा यही रहती है कि
सम्पूर्ण हो। वकील की मदद तो मिलती नहीं, क्योंकि
पंचायत-क़ानून में वकील की इजाज़त ही नहीं है। परन्तु
देखिए, मेरी अलमारी में फ़ौजदारी और दीवानी की
पुस्तकें मौजूद हैं। यहाँ छोटे-मोटे मुख़्तारों को इजाज़त
होती तो अच्छा था। मैंने हँसकर कहा—द्विवेदी जी,
काटजू साहब तो ख़ुद वकील होकर वकीलों की हस्ती
ही मिटा देना चाहते हैं। उत्तर मिला—यह
ग़लती है।

द्विवेदी जी के घर के सामने एक सुन्दर तिदरी है,
जिस पर बेल-बूटे बने हुए हैं। कुछ संस्कृत-श्लोक भी लिखे
हैं। उन्होंने कहा—वह देखो मेरा ख़ब्त! अपनी स्त्री
के स्मारक में ग़रीबी का इतना पैसा ख़र्च कर दिया। एक
ओर सरस्वती, दूसरी ओर लक्ष्मी और बीच में धर्मपत्नी
जी की मूर्ति है। लक्ष्मी का उपासक मैं कभी नहीं था।
२००) मासिक से अधिक की नौकरी छोड़कर २३) मासिक
पर 'सरस्वती' का सम्पादक होना स्वीकार किया।
धर्मपत्नी को ऐसा दुःख हुआ था कि दो दिन खाना न
खाया। हाँ, मैंने सरस्वती की आराधना अवश्य की है।
भई, यह ख़ब्त है। तुमने मुझसा ख़ब्ती और कहीं देखा
है? मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैंने कहा—आचार्य-
वर, शाहजहाँ भी ऐसा ही ख़ब्ती था। उसने मृत्यु पर
प्रेम को विजयी बनाने के लिए ही 'ताजमहल' की तैयारी
में कितना रुपया लगा दिया। द्विवेदी जी हँस दिये और
बोले—एक बात और देखी है कि हातेवाले जँगले में ताला

क्यों पड़ा है? मैंने प्रश्नात्मक दृष्टि डाली। वे बोले—
आह, दुनिया मुहब्बत की क़द्र क्या जाने? लोगों ने यह
कहना शुरू किया कि 'दुबौना' अपनी स्त्री को देवी बना-
कर पुजाना चाहता है। इसी लिए मैंने ताला डाल रक्खा
है। मैं सोचने लगा कि संसार की दृष्टि कितनी संकीर्ण है,
पर साथ ही इस शुद्ध सुन्दरता के उपासक के दिल का
नक़्शा भी सामने आ गया। आचार्य जी की ४२ वर्ष की
आयु में धर्मपत्नी का स्वर्गवास हुआ था। अब वह आयु
७५-७६ वर्ष है। मानो बीच के सारे वर्ष इसी प्रेम-निर्वाह
के भावों पर निछावर कर दिये गये। मुझे तो हर तरफ़
आचार्य जी की साहित्यिक सरलता की ही छटा देख पड़ी,
जो प्रेम एवं सौन्दर्य के प्रभावों से परिपूर्ण थी। कृत्रिमता
का कहीं लेश नहीं था।

सेहर जी ने अपनी नई पुस्तक 'रुबाइयात-ख़ैयाम' के
पद्यबद्ध अनुवाद की एक प्रति आचार्य जी को भेंट की
थी। कहते थे कि बच्चों को वह पुस्तक बहुत पसंद आई।
छपाई आदि तो इंडियन-प्रेस की विशेषता है ही। अनुवाद
भी अच्छा है। फ़ारसी-कवि के भावों को बड़ी सादगी
और सफ़ाई से पेश किया है।

मेरे रामायणी लेखों के बारे में उन्हें यह सुनकर
आश्चर्य हुआ कि उन्हें पुस्तकरूप में छापने को कोई
प्रकाशक तैयार नहीं, और हिन्दी मासिक भी खोज-सम्बन्धी
लेखों को छापने से प्रायः हिचकते हैं। बोले—हिन्दी ने
ऐसे लेखों का आदर करना अभी नहीं सीखा। वहाँ ग्राहक
की अधिक चिन्ता है। परन्तु यदि हिन्दी मासिक ५ प्रति-
शत पृष्ठ भी ऐसे लेखों के लिए अलग नहीं करेंगे तो
साहित्यिक खोज का क्या हाल होगा?

हमें यह सुनकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि आचार्य जी
'हिन्दुस्तानी एकाडमी' के सदस्य नहीं हैं। पूछने पर
कहा—भई, कान्फ़रेन्स का हाल 'लीडर' में पढ़ लेता हूँ।
मुझे तो बुलावा भी नहीं आता। वहाँ तो बड़ों की पूछ
है। मैं कोई 'डाक्टर' थोड़ा हूँ। मैं तो हूँ हिन्दी का
एक ग्रामीण सेवक और वह है 'एकाडमी'!

द्विवेदी जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं। नींद न आने की
बड़ी शिकायत है। शाम से ही सो जाने की कोशिश करते
हैं। उस दिन भी वे ८ बजे रात के क़रीब हम लोगों से
क्षमा-प्रार्थना कर भीतर चले गये। तब उनके भानजे
पंडित कमलाकिशोर त्रिपाठी से बातें होने लगीं। यही
द्विवेदी जी के अकेले वारिस हैं—नवयुवक, सुन्दर, सरल
और सुशील। उनके अतिथि-सत्कार का क्या कहना?
हर काम को नौकर से पहले करना चाहते थे। 'होमियो-
पैथी' से जनता की सेवा करते रहते हैं, जिसमें उन्हें दिन-
रात का ख़याल नहीं रहता।

हम लोग दूसरे ही दिन सवेरे बैलगाड़ी से वापस हुए।
फिर वही वसन्तऋतु का मनोमोहक दृश्य था और वही
सुगन्धित वायु के शीतल झकोरे। मैं गुनगुना रहा था—

पंछी बोलन लगे राह चलन लागी राम-नाम की बेरा,
सवेरे उठो!
बैल चढ़े भोला डमरू बजावैं आगे गौरादेई का डोला,
सवेरे उठो!

गंगा की कटरी आगई। वहाँ गाड़ी की कोई राह तक
नहीं। झाऊ की झाड़ियों में ऊँची-नीची ज़मीन को पार
करते और घाट के ठीकेदार को कोसते चले जाते थे।
यदि कुछ झाऊ काट डाली जाती तो क्या सौ-दो सौ का
ख़र्च था? फिर गाड़ियों की लीक आप ही बन जाती।
लौटते समय भी घाट पर कोई ज़िम्मेवार आदमी न था,
जिससे कुछ कहा जाता। घाट और रास्ता कुछ बेहतर हो
सकता है और होना चाहिए, क्योंकि आचार्य जी के दर्श-
नार्थ बहुधा बड़े बड़े कवि और लेखक इधर आया ही
करते हैं और यही मुक़ाम यानी लहँगी-घाट दौलतपुर के
सबसे ज़्यादा नज़दीक है। अभी कुछ ही दिन पूर्व श्री
मैथिलीशरण गुप्त और पंडित दुलारेलाल भार्गव वहाँ
गये थे।

वापसी में ठाकुर चन्द्रपालसिंह मुख़्तार के पिता [illegible]
जी ने खाने का सामान कर रक्खा था। हम लोग [illegible]
किनारे ही नहाकर द्विवेदी जी के घर का 'प्रसाद' खा [illegible]
थे। पर ठाकुर साहब किसी तरह न माने। उ[illegible]
घर के घी की बनी हुई गर्म पूरियाँ और घर के शुद्ध [illegible]
में वह मज़ा आया कि जी तृप्त हो गया। लौटते हुए [illegible]
लोग कल्यानपुर होकर आये, जो ग्रैण्ड-ट्रंक-रोड पर [illegible]
से २ मील पर है और जहाँ से कंसपुर-गुगौली ई० आई०
आर० लगभग मील भर होगा। धूप बड़ी तेज़ हो गई थी।
राह में एक बरौरा नामक गाँव है, जहाँ सड़क के किनारे
कुएँ पर एक जनेउधारी महाशय पानी खींच रहे थे। सेहर

जी ने जाकर पानी पिला देने को कहा। पर वे 'हम पानी नहीं दे सकते' कहकर तर्पण में लग गये। यह देखकर दुःख हुआ कि वे गर्मी में एक प्यासे मनुष्य को पानी पिलाने की अपेक्षा एक अदृश्य अस्तित्व के तर्पण में पानी लुढ़काना अधिक आवश्यक समझते थे! परन्तु उसी समय कुएँ पर खड़े हुए एक दूसरे ग़रीब देहाती ने अपना भरा हुआ डोल आगे बढ़ा दिया। हम लोगों ने पानी पिया और यह सोचते हुए चल दिये कि देवता के निकट वह तर्पण अधिक स्वीकृत होने योग्य था या वह मानवोचित कार्य जिसने दो तृपित मनुष्यों को तृप्ति और शान्ति दी। स्मरण रहे कि मैं स्वयं सनातनधर्मी हूँ और दैनिक तर्पण करने का आदी।

पुकार

लेखक, श्रीयुत अंचल

फिर महा उन्मत्त कर दो आ मरण की मूर्ति आकर

(१)

फिर विरह-गाथा बजी नीला पड़ा अम्बर पिपासित
दीप्त चंचल छन्द किसके कर रहे ये अंग अवसित
आज झंझानल चले जल जल निकल वंशी भरी सी
फिर पवन प्रतिकूल आया योग रे! लेकर विनाशी
शेष है कितनी तृषा कितना अभी अवशेष जीवन
घोर तम आनत निशा जलता चले कब तक विकल मन
आज प्यासे प्राण अगवानी सजा लें लुब्ध कातर
फिर महा उन्मत्त कर दो आ मरण की ज्योति आकर

(२)

एक सपने में सतत पागल न जलना आज कैसा
शून्य हाहाकार सागर सा महा वरदान प्यासा
एक स्वर-लहरी उड़ी अज्ञात चंचल स्वर लगाये
आज अन्तर की सजल लपटें चलीं अतृप्ति पाये
एक मीठी भूल नादानी चपल आकुल दृगों की
इस मधुर चढ़ती जवानी में अरे यह प्यास जी की
ढल रहे सूने विजन कितनी महातृष्णा लगाकर
फिर महा उन्मत्त कर दो ओ कसक साकार आकर

(३)

मैं पथिक उद्दाम पी डालूँ लगन का पुण्य पावस
यह महासागर जलन का यह प्रलय पुलकित अमावस
पी गया जाने न कितने मैं हलाहल के बवन्डर
प्राण! सह लूँगा तुम्हारा प्रज्वलित अपरूप तत्पर
आज ओ रे मधुव्रती! फेनिल रुधिर चन्दन लगाये
किस विपथगा के लिए कसमस जुनूनों को जलाये
आज आगमनी बजे प्रति रोम में चितवन सजाकर
फिर महा उन्मत्त कर दो ओ गरल की पीर आकर

भूपति की सतसई

लेखक, श्रीयुत व्रजकिशोर मिश्र, एम० ए०

भूपति-सतसई अभी तक हिन्दी का एक अप्राप्य ग्रंथ था। उसे प्रकाश में लाने का श्रेय हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान पंडित कृष्ण-विहारी मिश्र को है। इस लेख में उनके पुत्र ने उक्त ग्रंथ का अच्छा परिचय दिया है।

अवध में अमेठी नाम का एक तालुक़ा है। यहाँ के राजे बड़े गुणग्राही और कवियों के आश्रयदाता ही नहीं रहे हैं, वरन उनमें से कुछ अच्छे कवि भी हुए हैं। जायसी और उदयनाथ 'कवीन्द्र' ने वहीं रह कर अपनी कविता की रचना की थी। कवीन्द्र राजा गुरुदत्तसिंह 'भूपति' के आश्रित थे और भूपति जी स्वयं अच्छे कवि थे।

यद्यपि भूपति जी के जन्म-मरण की ठीक तिथि ज्ञात नहीं है, तथापि उनके सम्बन्ध में इतना निश्चय रूप से मालूम है कि वे १८ वीं सदी के अन्त और १९ वीं के प्रारम्भ में वर्तमान थे। अपनी 'सतसई' की रचना उन्होंने १७९१ विक्रमीय में की थी जैसा कि निम्नलिखित दोहे से स्पष्ट है—

"सत्रहशत एकानवे कातिक सुदि बुधवार।
ललित तृतीया में भयो सतसैया-अवतार ॥"

उनके बनाये 'रसदीप' नाम के एक दूसरे काव्य-ग्रन्थ का उल्लेख सभा की खोज की रिपोर्ट (१९०३-१९०४) में हुआ है। इसका रचना-काल संवत् १७९९ बताया गया है। १८०० विक्रमी के लगभग अवध के नवाब सफ़दरजंग ने उनके ऊपर आक्रमण किया था और उस युद्ध में उन्होंने बड़ी वीरता दिखलाई थी। कवीन्द्र जी ने बड़े ओजपूर्ण शब्दों में इस युद्ध का वर्णन किया है—

"समर अमेठी के सरोस गुरुदत्तसिंह,
सादत की सेना समसेरन सों भानी है;
भनत 'कवीन्द्र' काली हुलसी असीसन को,
सीसन को ईस की जमाति सरसानी है।
तहाँ एक जोगिनी सुभट खोपरी लै उड़ी,
सोनित पियत ताकी उपमा बखानी है;
प्यालो लै चिनी को छकी जोबन तरंग मानो,
रंग हेत पीवत मजीठ मुगलानी है ॥"

इन बातों से स्पष्ट है कि भूपति जी १९वीं सदी के प्रथम चतुर्थांश में वर्तमान थे।

इस प्रकार भूपति जी उस समय हुए थे जब शृंगार-रस की कविता का पूर्ण विकास हो चुका था। देव, दास, रसलीन और घनानन्द जैसे प्रौढ़ आचार्य और रसवादी कवि उस समय वर्तमान थे। विहारी, रहीम और मतिराम जैसे कवियों की सूक्ष्म-दर्शिता और भाषा-माधुर्य के आदर्श स्थापित हो चुके थे। विहारी, वृन्द और रसनिधि आदि ने आर्या और गाथा-सप्तशती के आदर्श पर जिस पथ का अनुसरण किया था वह भी पूर्णता को पहुँच चुका था। दोहा छन्द गेय न होने पर भी प्रतिभा-प्रदर्शन का एक सुन्दर साधन था। विहारी ने इसके द्वारा अच्छा उदाहरण उपस्थित किया था। उन्हीं के पथ का भूपति जी ने भी अनुसरण किया। विहारी के ही समान उन्होंने भी अपनी 'सतसई' की रचना मुक्तक में की। उसमें केवल विविध विषयों का ही समावेश किया गया है, यद्यपि वे विषय भिन्न भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत रक्खे गये हैं।

शीर्षकों में कोई नवीनता नहीं है। हाँ, अन्त में अन्योक्ति, लोकशिक्षा, शान्तरस आदि के शीर्षकों में ऐसे दोहे हैं जो शृंगाररस से सम्बन्ध नहीं रखते। वस्तुतः इस ग्रन्थ में शृंगाररस का ही प्राधान्य है। ग्रन्थ के कुछ शीर्षक निम्नलिखित हैं—

नेत्र-संलग्नता, हार, पायल, बावली, सुषमा, बाँसुरी, हास्य, नृत्य, चन्द्रोदय, प्रभात, दूती, ऋतु-वर्णन आदि।

सफल कवि की कुशलता का परिचायक उसका संक्षेप में भाव-प्रदर्शन करना है। जो कवि दोहे जैसे छोटे छन्द में सफलता-पूर्वक भाव-प्रदर्शन कर सकता है उसके भाषा-सम्बन्धी अधिकार पर तो कोई शङ्का ही नहीं की जा सकती है।

भूपति-सतसई में व्रजभाषा का प्रयोग सुचारुरूप से किया गया है। विदेशी शब्दों को छाँट-छाँट कर बाहर कर देने की प्रवृत्ति उसमें नहीं देख पड़ती है। फ़ानूस, कज्जाक, करामात, वास्ते, गिरह, खाक, कहर, दरियाव, अमल इत्यादि शब्दों का प्रयोग बड़ी स्वच्छन्दता के साथ किया गया है। घरम (घर्म = घाम), ऊरू (उरु = जंघा), पालास

(पलास = टेसू) आदि कुछ ऐसे शब्द हैं, जो संस्कृत से विकृत होकर इस रूप में आ गये हैं। एक-आध स्थलों पर 'लोगाई' (स्त्री) जैसे ग्राम्य शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु एक तो इस प्रकार के स्थल बहुत कम हैं, दूसरे इस प्रकार के तोड़-मरोड़ थोड़ा-बहुत सभी कवि करते हैं।

शृंगार-रस की प्रधानता के कारण प्रायः सम्पूर्ण ग्रन्थ में कोमलावृत्ति का प्रस्तार है। कवि को शब्दालङ्कार का शौक़ उतना ही प्रतीत होता है, जितना अर्थालङ्कार का। यमक और श्लेष सम्पूर्ण ग्रन्थ में पग पग पर प्राप्य हैं, यहाँ तक कि ग्रन्थ का प्रारम्भ ही यमक से हुआ है—

विघन विनासन है सदा, गणपति को शुभ नाम।
लोक लोक में धाम है, लोक लोक में धाम॥

इसी प्रकार—

"पाइ निकट बहु कुसुम सर, करत कुसुम सर जोर।"
और "कानन बाजति बाँसुरी, कानन जारति आनि।"
में 'कुसुम सर' और 'कानन' शब्दों का श्लेषमय प्रयोग हुआ है। "कुसुम सर" का अर्थ है 'पुष्प-मय तड़ाग' और 'कामदेव' और 'कानन' का अर्थ है 'वन' और 'कान'। ऐसे उदाहरण पुस्तक की प्रायः प्रत्येक पंक्ति में देखने को मिल सकते हैं।

इसी प्रकार एक चमत्कार-पूर्ण उक्ति और देखिए—

तिय के लगत समीर है, मध्य वरण वरहीन।
वरही वरही बोलि कै, करी बात वर छीन॥

'समीर' शब्द के मध्य-वर्ण को निकाल देने से 'सर' अर्थात् 'बाण' शेष रह जाता है। नायिका को 'वरही' (मयूर) की वाणी 'शर' के समान लग रही है। वियोग-शृंगार के उद्दीपन के रूप में मयूर-ध्वनि को कवि ने रक्खा है और एक चमत्कार-पूर्ण ढंग से उसको कहा है।

अर्थालङ्कार में कवि ने विविध अलङ्कारों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। अन्योक्तियाँ भी काफ़ी अधिक हैं। यहाँ अलङ्कारों के दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे—

कच सिवार पंकज नयन, राजति भुजा मृनाल।
पावत पार न मीन मन, सरस रूप को ताल॥

कवि ने रूपक-द्वारा अपनी नायिका को रूप का सरोवर प्रमाणित किया है। अलङ्कार के साथ साथ कवित्व का भी दोहे में [illegible]वेश है। सचमुच ऐसे 'रूप-सरोवर' को तैर कर पार कर जाना कठिन है, जिसमें पग-पग पर उलझने की सामग्री प्रस्तुत हो।

और भी—

तियनासा मोती लखे, उपमा और निमुन्द।
मनो प्रकट ससि सों भयो, मंजु अमी को बुन्द॥

कविगण चन्द्रमा में अमृत की स्थिति मानते हैं। नायिका के मुखचन्द्र पर जो मोती स्थित है वह मानो अमृत-बिन्दु ही है। यह एक सुन्दर उत्प्रेक्षा है। इसी प्रकार भ्रम, सन्देह, मीलित, उन्मीलित आदि के भी उदाहरण देखिए—

नथ दुर मुकता तिय बदन, परसत परम प्रकास।
मानहु ससि भ्रम नखत वर, तजि आयो नभवास॥

आकाश के एक तारे को भ्रम हुआ कि चन्द्रदेव तो पृथ्वी पर विराजमान हैं, फिर मेरा भी वहीं चल कर रहना उचित है, अतएव वह नायिका के मुख पर आ जमा। रत्ती भर भी सन्देह उसे न रहा, उसे निश्चय हो गया कि यह नायिका का मुख नहीं, वरन चन्द्र ही है। उधर देखिए, बेचारे भ्रमर को बड़ी परेशानी है—

तिय नक मोती के लखत, अलिमन परि फरफन्द।
अमल कमल के कोष मैं, किधौं बुन्द मकरन्द॥

बेचारा निश्चय नहीं कर पा रहा है कि यह मकरन्द-बुन्द-मण्डित कमल है अथवा कुछ और। सन्देह दूर नहीं होता।

पहिरे बिन पहिरे रहो, सखि तुम चंपकहार।
जान्यो जात सुवास बस, अँगदुति मिलि सुकुमार॥

हे सखी, तुम्हारा चम्पक-हार पहनना न पहनना बराबर है। तुम्हारे चम्पक वर्ण में वह इस प्रकार मिल जाता है कि उसका अस्तित्व ही लक्षित नहीं होता; हाँ, उसकी सुवास अवश्य ही उसकी उपस्थिति का पता देती है।

मीलित और उन्मीलित का यह उदाहरण तुलसीदास के एक बरवै से बहुत कुछ मिलता-जुलता है—

चम्पक हरवा अँग मिलि, अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ॥

फिर भी भूपति जी ने उसी भाव का निर्वाह अपने दोहे में सुन्दरता के साथ किया है।

अन्योक्ति की ओर भूपति जी ने कुछ अधिक ध्यान दिया है और कुछ अन्योक्तियाँ सुन्दर भी बन पड़ी हैं। वास्तव में अन्योक्ति उपदेशात्मक काव्य है। उपस्थित व्यक्ति को कुछ शिक्षा देने के लिए कवि किसी दूसरे व्यक्ति

या वस्तु का आश्रय लेकर जिस विधि से अपना कथन करता है उसे 'अन्योक्ति' कहते हैं। भूपति जी के पहले बिहारी-लाल जी ने और बाद में बाबा दीनदयालु गिरि ने अन्यो-क्तियाँ सुन्दर कही हैं। भूपति जी के समकालीन रहीम ने भी अच्छी अन्योक्तियाँ कही हैं।

किसी महान् व्यक्ति के आस-पास कोई दुष्ट चाटुकार स्वार्थवश मँडराया करता है। स्वार्थ-साधना के लिए वह उसकी 'जी-हुज़ूरी' करता है और संयोगवश उस महान् व्यक्ति की कृपादृष्टि का अधिकारी हो जाता है। कवि विष को लक्ष्य करके अन्योक्ति करता है। उसका तात्पर्य है कि हे महानुभाव आप इस दुष्ट का आदर न करें. यह आपको हानि के सिवा लाभ कभी नहीं पहुँचावेगा। देखिए, भगवान् शंकर ने विष का आदर करके उसे कण्ठ में धारण किया था, किन्तु परिणाम क्या हुआ? उनका कण्ठ सदैव के लिए काला पड़ गया—

आदर करि राखो कितो, करिहै औगुन संठ।
हर राखो विष कंठ में, कियो नील वै कंठ॥

'संठ' शब्द का प्रयोग यद्यपि कुछ ग्राम्य है, फिर भी उसे अनुपयुक्त नहीं कह सकते—विष के लिए उसका प्रयोग ठीक ही है।

किसी भलेमानस ने अपने चारों ओर दुष्टों का ऐसा जमघट लगा रक्खा है कि कोई दीन प्रार्थी उसके पास तक पहुँच ही नहीं पाता। वे दुष्ट बीच में ही उसे ऐसा तंग करते हैं कि बेचारा भाग खड़ा होता है। इसी को लक्ष्य करके कवि कल्पवृक्ष को लेकर अन्योक्ति करता है—

अंगन होत छत छुवत ही, बसन जातु है फाटि।
सुरतरु तोहि न चाहिए, काँटन की बरवाटि॥

हे कल्पवृक्ष, तुझे अपने चारों ओर ऐसे कण्टक न एकत्र करने चाहिए जिनके स्पर्शमात्र से ही हम दुखियों के शरीर क्षत-विक्षत हो जायँ और वस्त्र फट जाय।

मकरन्द का पान मधुकर कमल-कोष में ही कर सकता है, यदि वह उसकी खोज में करील की कण्टकाकीर्ण डालों से जा उलझे तो उसमें किसी का क्या दोष? यदि मनुष्य जानबूझ कर अच्छी वस्तु छोड़कर बुरी के लिए भटके तो उसमें कोई क्या कर सकता है?

पंकज भयो मरंद रस, मधुकर नई बहार।
सो रस चाहत मूढ़ फिरि, इन करील की डार॥

प्रायः अन्योक्तियों का विषय कुसंग से ही सम्बद्ध रहता है। इस 'अन्योक्ति' शीर्षक में कुछ दोहे नीति के भी हैं जो यदि 'लोकशिक्षा' के शीर्षक में होते तो अधिक उपयुक्त होता, क्योंकि अन्योक्ति का उनमें अभाव है—

जाकी जौन परी हिये, नहिं छूटै वह बाक।
जटित हेम के साज गज, तऊ चढ़ावत खाक॥

एक साधारण तथ्य को दूसरे विशेष तथ्य से पुष्टि होने के कारण इस दोहे में अर्थान्तरन्यास अधिक स्पष्ट जान पड़ता है। इसी प्रकार—

छोटी संगति के मिले, होति छोटिये बात।
ससि राख्यो सस अंक में, सो कलंक ठहरात॥

इस दोहे में भी वही बात है। यद्यपि इसे अन्योक्ति कह सकते हैं, किन्तु प्रधानता अर्थान्तरन्यास की ही है। 'शशि' के स्पष्ट कथन के कारण यह 'अन्योक्ति' से कुछ दूर जान पड़ता है।

यद्यपि भूपति जी चमत्कारवाद की ओर कुछ अधिक झुके हुए हैं, तथापि उसी के साथ साथ वे एक सहृदय कवि भी हैं।

गोपिकायें वृन्दावन में पुष्पचयन कर रही हैं। पुष्पों से उनके शरीर और हाथ शोभायमान हो रहे हैं। अचानक सम्मोहिनी वंशी-ध्वनि को सुनकर सबकी सब जड़-वत् रह जाती हैं। कुछ समय के लिए उनके शरीर चेतना-हीन हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मायामय श्रीकृष्ण ने वृन्दावन के कुञ्जों को स्वर्ण-लताओं के पुष्पित-पल्लवित कुञ्जों में परिवर्तित कर दिया है। तन्वी गोपिकायें हाथ में पुष्प लिये हुए नीरव खड़ी हैं। ऐसे समय में उनकी स्वर्णलता से उपमा बहुत ही ठीक उतरती है। देखिए—

बंसी-रव सुनि जकि रही, गहि प्रसून तिय पुंज।
कनकलता जुत हरि कियो, जनु वृन्दावन कुंज॥

यद्यपि नायिका ने अनेक प्रकार के रत्नाभरणों से अपना शृङ्गार किया है, तथापि उसकी सुन्दरता अपने चरमोत्कर्ष पर न पहुँच सकी—उसमें वह गम्भीरता और शान न आ सकी जो सागर की सुन्दरता में होती है। कारण यही था कि सागर के समान विस्तृत और सीमाहीन रूप तो तभी होगा जब उसमें मुक्तावलि का समावेश होगा—विविध रत्न तो खानों से भी प्राप्य हैं, किन्तु मुक्ता केवल

सागर की ही सम्पत्ति है। अतएव मुक्तामाल धारण करते ही नायिका के रूप का सिन्धु हो जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं, वरन स्वाभाविक ही है—

विविध रतन आभरन सों, सजि सजि सकल सिंगार।
रूप-सिंधु तिय होति है, पहिरत मुकुताहार॥

वास्तव में सागर का सागरत्व मोतियों के धारण करने में ही है और कवि ने उसको प्रदर्शित करके अपनी दूर की सूझ का परिचय दिया है।

प्राची में अरुणोदय हो रहा है, किन्तु अन्धकार का साम्राज्य अभी पूर्णतया तिरोहित नहीं हुआ है। आकाश में कुछ तारे अभी झलमला रहे हैं। बड़ा ही सुन्दर दृश्य है। कवि ऐसे समय के आकाश की उपमा वस्त्र से देता हुआ कहता है कि यह आकाशरूपी साड़ी प्राची वधू के शरीर पर बहुत ही सुन्दर लगती है—

अलप अरुन छवि अलप तम, अलप नखत दुति जाल।
लियो विविध रंग नभ बसन, जनु प्राची वर बाल॥

वास्तव में कवि की सुरुचि सराहनीय है और उसी के साथ कवि का सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण भी प्रशंसा के योग्य है। प्राची की साड़ी का रंग कितना नेत्ररञ्जक है, यह वही समझेंगे जिन्होंने उसकी सुन्दरता को स्वयं देखा है। हाँ, शृंगार-काल का परोक्ष प्रभाव कवि के नायिका-वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है।

इसी शृंगार-काल के प्रभाव का एक और कुफल भी सतसई में हमारे सम्मुख आता है और वह है वर्णनों की अश्लीलता। कुछ दोहे सुरुचि की सीमा को पार कर गये हैं। उनका उदाहरण देना उचित नहीं है।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कई कवियों के हृदय में अलग अलग वही भाव उठता है और उसको वे अपनी अपनी रुचि के अनुसार भाषा आदि में व्यक्त करते हैं। पूर्ववर्ती कवि के भावों को परवर्ती कवि की कविता में पाकर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि उसने 'चोरी' ही की है। और चोरी भी उसे कहते हैं जिसमें चोर चुराये हुए माल को छिपा न सके। यदि वह चोरी के भाव को अपना बनाकर पूर्ववर्ती कवि से भी अधिक सुन्दर रूप में रख सके तो उसे चोरी नहीं कह सकते। प्रायः ऐसा भी होता है कि जिस कवि की रचना हम सबसे अधिक पसन्द करते हैं उसके भाव हमारे अपने जीवन के अंग हो जाते हैं और हम उनसे अपने को अलग नहीं कर सकते, फलतः उनका हमारी कविता में आ पड़ना अनिवार्य हो जाता है। बिहारी, मतिराम, रहीम आदि पूर्ववर्ती कवियों का पर्याप्त प्रभाव भूपति जी पर पड़ा है और उनकी कविता के कुछ भाव भूपति जी की रचना में पाये जाते हैं। दो-चार ऐसे सदृश भाव हम यहाँ पर देते हैं—

जेहि सिरीख कोमल कुसुम, लियो सुरस सुख मूल।
क्यों मन तृसे अलि रहै, चूसे रूसे फूल॥

भूपति जी ने भ्रमर को लेकर अन्योक्ति की है कि जिस भ्रमर ने सिरीष के कोमल पुष्प का सुमधुर मकरन्द पान किया है वह भला रूस (पौधा-विशेष, जिसके श्वेत पुष्प में मीठा रस रहता है) के फूलों को चूसकर कैसे सन्तुष्ट हो सकता है?

उपर्युक्त दोहे में बिहारी की छाया स्पष्ट जान पड़ती है, यद्यपि विषय बदल दिया गया है। देखिए—

तो रस राँच्यौ आन बस, कहौ कुटिल मति कूर।
जीभ निबौरी क्यों लगै, बौरी चाखि अँगूर॥

कविवर बिहारी ने अपने दोहे में वैपरीत्य की भावना को अधिक स्पष्ट कर दिया है। अंगूर और निबौली (नीम का फल) में "राजा भोज और गंगू तेली" के समान अन्तर कहा जा सकता है, किन्तु सिरीष-पुष्प और रूस के फूल में यह बात नहीं कही जा सकती। वास्तव में मधुर तो दोनों हैं ही, हाँ, कोमलता में अवश्य सिरीष उत्कृष्ट है।

कोऊ नहिँ बरजै तुम्हैं, जित तित आवत जात।
यह कहिकै जलजुत भये, तुरत नयन जलजात॥

भूपति जी की मानिनी नायिका का चित्रण पर्याप्त मात्रा में सफल है।

रहीम जी का एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

कमोदिनी जलहर बसै, चन्दा बसै अकास।
जो जाही सों रमि रह्यौ, सो ताही के पास॥

भूपति जी ने इसी भाव की टीका सी की है—

दूरि रहे नहिं कछु घटै, भये प्रेम सों पूर।
कहुँ मयूर कहुँ मेघ है, कहुँ सरोज कहुँ सूर॥

भूपति जी की उक्ति सुन्दर है, पर रहीम के भावों में चन्दकुमुदिनी के समावेश के कारण कोमलता की भावना अधिक है। भाषा भी रहीम की अधिक प्रवाहयुक्त है।

मेरे पितामह पूज्यपाद स्वर्गीय पंडित युगलकिशोर जी मिश्र 'व्रजराज' भूपति जी के परवर्ती कवि थे। भूपति जी के एक दोहे का भाव उनके एक कवित्त में भी मिलता है। भूपति जी ने होली का वर्णन किया है—

उड़त पराग अबीर बहु, अलि गावत गहि चोज।
लता तरुनि तरु तरुन मिलि, सजत फागु जनु रोज॥

ऐसी ही प्राकृतिक होली के वर्णन में व्रजराज जी की एक उक्ति देखिए—

'पौन तरु डार लगि प्रगट सितार धुनि,
चटक गुलाबन मृदंग ताल तोरी है।
उड़न गुलाल पिचकीन की चलन चारु,
राग पुहुपनि मकरन्द छवि छोरी है॥
गुञ्जन अलीन की अलीन सुरबीन गान,
तान कोकिलान राग फाग चहुँ खोरी है।
आज 'व्रजराज' ऋतुराज पिय प्यारे साथ,
सुखमा प्रकृति प्यारी खेलि रही होरी है॥"

सहृदय पाठक स्वयं तुलना कर लें।

अपने पूर्ववर्ती चमत्कारवादी कवियों का अनुसरण करने के कारण कहीं कहीं भूपति जी ने भी चमत्कारवाद की ओर कुछ विशेष ध्यान दिया है और इस कारण कहीं कहीं पर कविता के स्थान पर खिलवाड़-सी कर गये हैं—

तू सखि बात न पावली, कहति बावली बात।
भई जावली बावली, अब फूले जलजात॥

इत्यादि पढ़कर किसी भी रस का संचार नहीं होता, हाँ बिहारी के—

रस सिंगार मंजन किये, कंजन भंजन दैन।
अंजन-रंजन हूँ बिना, खंजन गंजन नैन॥

की नक़ल करने का निष्फल प्रयास अवश्य जान पड़ता है।

इसी प्रकार श्लेष और यमक भी अनेक स्थलों पर कविता को कुण्ठित करते हैं—

"जगत भुलान्यो रूप को, जगत भुलान्यो रूप।"
"बाललता लखि लीन हरि, बाल लता लखि लीन।"
"भये बिबुध दृग हाल है, भये बिबुध दृग हाल।"
'याको ओर न ओर है, याको ओर न ओर।"

इत्यादि में कवित्व की मात्रा कितनी है, यह पाठक स्वयं अनुमान कर लें।

परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि भूपति जी सुकवि थे। उनकी कविता पर विचार करते समय हमको उनके समय को नहीं भूलना चाहिए। उन्होंने रीति-प्रणाली पर लक्षण-ग्रन्थ की रचना नहीं की, इसे हम एक प्रकार से उनकी मौलिकता कह सकते हैं, यद्यपि बिहारी का आदर्श उनके सम्मुख था।

उनकी सतसई उनके स्वभाव और चरित्र के ऊपर भी कुछ प्रकाश डालती है। प्रायः कवि का चरित्र उसकी कविता में प्रतिबिम्बित हो ही जाता है, और जब भूपति जी कहते हैं—

गेह नेह बिन काम को, जो बसि तीरथराज।
कितक राजधन राज कित, जो मन श्री व्रजराज॥

तब हमको उनकी निरभिमानिता का स्पष्ट परिचय मिल जाता है। इसी प्रकार कुसंग और दुर्व्यसनों की निन्दा के द्वारा उनके चरित्र का भी परिचय मिलता है। वारुणी (मदिरा) की निन्दा उन्होंने बड़े ही चमत्कार-पूर्ण ढंग से की है। उनके राजसी ठाट में वह सम्मिलित नहीं थी—

भटकाये भटको नहीं, करो न ऐसो रंग।
अस्त होत भगवन्त को, करत वारुणी संग॥

'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः' के अनुसार सूर्य के अस्त होने के समय वारुणी अर्थात् पश्चिम दिशा का संग करना पड़ जाता है; इसलिए सावधान! भटको नहीं, कुपथ से दूर रहो। यदि वारुणी के संसर्ग में पड़े तो विनाश दूर नहीं है।

'भूपति-सतसई' की एक हस्तलिखित प्रति हमारे निजी पुस्तकालय में वर्तमान है और उसी के अनुसार हमने इस लेख में दोहों के पाठ रक्खे हैं। हमारे यहाँ से प्रकाशित 'साहित्यसमालोचक' में यह ग्रंथ प्रकाशित भी हो चुका है।

शनि की दशा

अनुवादक, पण्डित ठाकुरदत्त मिश्र

उन्तालीसवाँ परिच्छेद

तृप्ति

सेफाली के साथ वासन्ती के कमरे में आकर सन्तोष ने देखा तब वह छटपटा रही थी। उसके यन्त्रणा से कातर मुख की ओर ताककर सन्तोष कहने लगा—बड़ा कष्ट हो रहा है।

वासन्ती ने कहा—नहीं, कोई वैसा कष्ट नहीं है।

कमीज़ की आस्तीन सिकोड़कर सन्तोष ने कोहनी के पास तक मोड़ दिया। तब उसने साबुन से हाथ धोये। एक बर्तन में गरम जल रक्खा हुआ था। उसमें उसने अपने अस्त्र डाल दिये और वासन्ती के घाव की पट्टी खोलने लगा। पट्टी खुल जाने पर घाव की परीक्षा करके सन्तोष ने कहा—अभी इसके भीतर काँच है, इसी लिए पीड़ा हो रही है। देखना, मैं इसे कैसी सफ़ाई से निकालता हूँ। सेफाली, देखेगी तू। डाक्टरी सीख ले न।

मुस्कुराती हुई सेफाली ने कहा—अपनी डाक्टरी तुम अपने ही पास रक्खे रहो भैया। मुझे उसकी ज़रूरत नहीं है। तुम्हें यदि घाव में चीर-फाड़ करनी हो तो बतला दो, मैं चली जाऊँ।

स्नेहपूर्ण कटाक्ष से बहन की ओर ताकते हुए सन्तोष ने कहा—घाव को ज़रा-सा काटना तो होगा ही। उसमें से काँच के टुकड़े निकालने हैं न। यही शायद तेरी वीरता है! तेरी भाभी तुझे बहुत वीर समझती है।

"यह सब रहने दो भैया। मैं जाती हूँ।"

सेफाली को भागती देखकर अनिल ने ऊँचे स्वर से कहा—तो विनय को बुला दो।

वासन्ती उस समय अपनी अवस्था को भूल-सी गई थी। उसने सारे अभिमान-अत्याचार, अपमान और अन्याय को दूर करके, लज्जा का परित्याग करके ज्ञान-शून्य भाव से अपने शीतल हाथों में सन्तोष के दोनों ही हाथ ले लिये। स्वामी की ओर ताकती हुई अनुनयपूर्ण स्वर में उसने कहा—मुझसे कटवाया न जायगा।......विनय बाबू को न बुलाइए......कहीं मैं चिल्लाने न लगूँ।

बाह्य ज्ञान से शून्य पत्नी की ओर अनिमेष दृष्टि से ताकते हुए सन्तोष ने कहा—डरने की कोई बात नहीं है। दर्द न करेगा। देखना, कितनी सफ़ाई से मैं काँच के सा[illegible] टुकड़े निकाले देता हूँ। तुम्हें मालूम तक न हो पावेगा।

वासन्ती के हाथ के स्पर्श के कारण सन्तोष के शरी[illegible] में न जाने कौन-सी ऐसी बात हो गई। दीर्घकाल के रोग[illegible] के समान उसका शरीर और मन अवसन्न हो उठा। [illegible] भी वासन्ती का हाथ ठेल देने की इच्छा आज उसे न[illegible] हो रही थी। वह तो इसी स्पर्श का भिखारी था। [illegible] स्पर्श प्राप्त करने की उसे आशा ही नहीं रह गई थी।

सन्तोष और वासन्ती प्रेमपूर्वक एक-दूसरे का हा[illegible] पकड़े ही हुए थे। बाहर से चमेली और सुषमा भी उ[illegible] कमरे की ओर चली आ रही थीं। जब वे दोनों दरवा[illegible] से कुछ दूर थीं तभी वासन्ती की दृष्टि उन पर पहुँच ग[illegible] उन दोनों को आती देखकर आश्चर्य में आकर वह क[illegible] लगी—यह क्या? दीदी?

अग्नि-परी और वायु-दूत

[चित्रकार—श्रीवाणीकान्तदास

सन्तोष के हाथों से अपने हाथ छुड़ा लेना उस समय भी वासन्ती को भूल गया।

सन्तोष ने उतावली के साथ अपना हाथ छुड़ाकर जैसे ही पीछे की ओर देखा, चमेली पर उसकी दृष्टि पड़ी। वह कहने लगा—वाह, चमेली तुम आ गई। कब आई हो?

चमेली के पीछे ही पीछे गेरुआ वस्त्र पहने आती हुई सुषमा की ओर देखकर चकित भाव से सन्तोष ने कहा—यह क्या? सुषमा? तुम हो?

वासन्ती जो सन्तोष के हाथ पकड़े हुए थी, वह चमेली और सुषमा के दृष्टि-पथ पर पड़ने से न बच सका।

स्थिर कण्ठ से सुषमा ने कहा—हाँ सन्तोष भाई, आप तो अच्छी तरह से हैं न? यह कहकर वह वासन्ती के पास जाकर खड़ी हो गई। घूँघट की आड़ से वासन्ती ने चमेली से कहा—सुषमा दीदी को किस तरह पकड़ ले आई हो?

चमेली ने कहा—बाबू जी बड़ी कठिनाई से इन्हें अपने साथ में ले आये हैं। बाबू दुनीचंद के एक मुक़द्दमे के सिलसिले में वे कलकत्ता गये थे। लौटते समय सुषमा दीदी के यहाँ जाकर उन्हें पकड़ ले आये। बाबू जी कहते थे कि ये किसी तरह आ ही नहीं रही थीं। बहुत कुछ कह सुनकर तो थोड़े दिनों के लिए यहाँ इन्हें ले आये हैं। ज़रा देख तो। इनकी सूरत कैसी हो गई है? यही देखकर तो बाबू जी ने इन्हें साथ में ले आने के लिए और ज़ोर दिया। तुझे क्या हो गया वासन्ती? पत्थर बटोरने का शायद तुझे और समय नहीं मिल सका? तू सदा इसी तरह की रहेगी। भागी जी भी आई हैं।

बड़ी देर तक चुप रहने के बाद जब थोड़ा-बहुत सङ्कोच दूर हुआ तब सन्तोष ने कम्पित कण्ठ से सुषमा से कहा—बाबू जी कहाँ हैं?

सुषमा ने शान्त कण्ठ से कहा—बाबू जी तो मा के बाद ही भैया के पास चले गये।

मा के सम्बन्ध की बात मुँह से निकलते ही सुषमा की आँखें आँसू से भीग गईं। वह और कुछ न कह सकी। सन्तोष भी कुछ समय तक हक्का-बक्का-सा होकर खड़ा रहा। बाद को वह कहने लगा—अब देर करना ठीक न होगा। एक बार पैर देखना होगा।

वासन्ती ने डर के मारे सुषमा के कन्धे में अपना मुँह छिपा लिया। चमेली ने भी समीप जाकर वासन्ती के काँपते हुए दोनों पैरों को ज़ोर से पकड़ लिया।

चीर-फाड़ के काम में सन्तोष बहुत ही निपुण था। इसलिए मुलायम हाथ से उसने काँच के सभी टुकड़े निकाल लिये। तब उसने घाव को एक बार और बहुत ध्यान से देखा। बाद को उसने धोकर उसमें दवा लगाई और पट्टी बाँध दी। इस प्रकार वासन्ती के पैर की चिकित्सा से निवृत्त होकर सन्तोष उसके कमरे से बाहर निकल गया।

वासन्ती के पैर की पीड़ा ... कुछ शान्त हो गई। काँच के टुकड़े निकालते समय भी उसे किसी प्रकार का क्लेश नहीं हुआ था। स्वामी की इस दया के लिए वह उसके प्रति मन ही मन बहुत ही कृतज्ञ हो उठी।

सन्तोष के कमरे से चले जाने पर तुरन्त ही सुजाता आ पहुँची। वह सुषमा को अपने कमरे में बुला ले गई। तब वासन्ती के पास चमेली ने बैठकर शान्ति की एक साँस ली और मुस्कराती हुई कहने लगी—कहो जी, राधारानी के द्वार पर मदनमोहन कितने दिनों से फेरी लगा रहे हैं?

वासन्ती ने लज्जित कण्ठ से कहा—कहाँ? मेरी समझ में तो कोई ऐसी बात नहीं आ रही है?

चमेली ने हाथ से पकड़कर वासन्ती का नीचे की ओर झुका हुआ मुँह उठाया और कहने लगी कि इस तुम्हारे न समझने में से ही जयदेव की कविता का काम भैया निकाल लेंगे। इस परिस्थिति में भी क्या ज्ञान रह जाता है?

चमेली की बात काटती हुई वासन्ती कहने लगी—जाइए, आप भी बहुत वाहियात हैं।

"अब तो वाहियात हूँगी ही। और उस दिन की सब बातें शायद याद नहीं हैं। तुम्हारा क्या दोष है भाई? यह घोर कलि है न! मैं मरती हूँ उनके लिए और वे यह शुभ समाचार तक सुनाने को तैयार नहीं हैं। तुम लोगों का दोष तो कोई देखेगा नहीं, इधर ज़रा भी त्रुटि हो जाने पर ननँदी बैरिनि की उपाधि मिल जायगी।"

वासन्ती कहने लगी—आपसे बात में पार न पा सकूँगी। आपकी जो इच्छा हो वही कहिए। मैं हार

माने ले रही हूँ। अच्छा यह तो बतलाओ कि सुषमा दीदी की इस तरह की शकल कैसे बन गई है दीदी। फूफा जी ने उन्हें यहाँ लाकर बड़ा अच्छा काम किया है।

एक बहुत ही हल्की सी आह भरकर चमेली ने कहा—आहा, उस बेचारी को देखने पर बड़ा दुःख होता है। क्या वह हम लोगों के साथ कुछ समय तक रहेगी? बाबू जी के बहुत कहने-सुनने पर वह कुल आठ दिन के लिए आई है। बहुत रहेगी तो दो दिन और। चेहरा देखकर बाबू जी कहते थे कि अधिक समय तक यह जीवित न रह सकेगी। इलाहाबाद में बाबू जी ने मन्मथ बाबू से इसके स्वास्थ्य की परीक्षा करवाई थी। वे कहते थे कि कोई विशेष प्रकार का आघात लगने के कारण इसका हार्ट (हृदय) बहुत ख़राब हो गया है। देखती नहीं हो, चेहरा कैसा पीला पड़ गया है, मानो शरीर में रक्त ही नहीं रह गया है। मा की मृत्यु होते ही सुषमा दीदी मानो बहुत अधिक कातर हो उठी हैं।

इतने में मुस्कराती हुई सुषमा ने आकर कहा—वासन्ती रोती क्यों है?

चमेली ने कहा—मन्मथ बाबू की सब बातें बतला दी हैं, इसी लिए ये—

चमेली की ओर ताकती हुई सुषमा कहने लगी—इतना भोजन तो पचा लेती हो, किन्तु बात तुम्हारे पचाये न पच सकी।

चमेली से यह बात कह कर सुषमा वासन्ती का आँसुओं से भीगा हुआ मुख अञ्चल से पोंछने लगी। बाद को भर्राई हुई आवाज़ से वह कहने लगी—इस तरह की पगली तो मैंने और कहीं नहीं देखी। डाक्टर ने कह दिया तो क्या मैं अभी मरी ही जा रही हूँ। तुम लोगों को जलाने-भूनने के लिए अब भी मैं बहुत दिनों तक बची रहूँगी। ठहरो, पहले मेरी तपस्या सिद्ध हो जाय, अन्नपूर्णा के द्वार पर भँगेड़ी पशुपति को भिक्षा-पात्र लिये हुए खड़ा देख लूँ। तब तेरी दीदी को मरने में शान्ति मिल सकेगी?

वासन्ती और चमेली दोनों ही अत्यधिक श्रद्धा के साथ सुषमा के मुँह की ओर ताकती रहीं। उन दोनों ने देखा कि मानो सुषमा के मुख पर बहुत दिनों के बाद आज तृप्ति का भाव विराजमान हो रहा है। चमेली मन ही मन सोचने लगी कि सुषमा दीदी का हृदय कितना अधिक विशाल है। उनके समान कोई धनी भी नहीं है, कोई दीन भी नहीं है। उन्होंने संसार में अपने आपको बिलकुल मिला दिया है, वे सुख-दुःख की अवस्था को पार कर गई हैं। अनाथों और असहायों के दुःख को अपना ही दुःख समझती हैं। उनके हृदय में चाहे कितना ही बड़ा अभाव क्यों न हो, किन्तु किसी प्रकार की भी व्यथा उनके हृदय को पीड़ित न कर सकेगी।

एक ज़ोर की आह भर कर वासन्ती ने चमेली से कहा—दीदी, क्या मेरी शनि की दशा व्यतीत हो जायगी?

वेदना की रेखा से अङ्कित वासन्ती के मुँह की ओर ताकती हुई चमेली ने कहा—तू तो रानी होगी वासन्ती! इस समय तेरी बृहस्पति की दशा आ गई है।

इतना कहकर चमेली ने वासन्ती के मुख-मण्डल पर एक चुम्बन अङ्कित कर दिया। इतने में ताई जी ने आकर वासन्ती से कहा—क्या तू सदा ही इसी तरह अल्हड़ बनी रहेगी। देख न कितना कष्ट पा रही है। जो भी हो, आज अपनी लाड़िली के पास भैया को देख लिया, बस मेरा हृदय शीतल.........किन्तु हाय, यह बात मेरे देवर न.........। उनसे और न कहा गया। आँसुओं की प्रबल धारा ने उनका कण्ठ रुद्ध कर दिया।

यह देखकर सुषमा बढ़ी। वृद्धा को सान्त्वना देती हुई वह कहने लगी—वासन्ती पारस-पत्थर है ताई जी, उसके पास जो आवेगा वही सोना हो जायगा।

चालीसवाँ परिच्छेद

जाने में बाधा

आठ-दस दिन बीत गये। वासन्ती कुछ कुछ अच्छी हो चली थी। परन्तु उसके घाव की पट्टी उस समय भी नहीं खुली थी। अभी तक वह ठीक से चल भी नहीं पाती थी। कल ही सुषमा के जाने की बात थी, इसलिए वासन्ती के अत्यन्त आग्रह से बुआ जी देहरादून के सभी दर्शनीय स्थान उसे दिखलाने के लिए गई थीं।

सन्ध्या के अस्पष्ट अन्धकार में सन्तोष वासन्ती के कमरे में आकर खड़ा हुआ। घूमने जाने से पहले चमेली

आकर कह गई थी—भैया, भाभी जी को दवा खिला दीजिएगा। वे अपनी इच्छा से न खायँगी।

कमरे में पैर रखते ही सन्तोष ने देखा कि नयनसिंह की मा कमरे का आधा फ़र्श दख़ल किये हुए कुम्भकर्णी निद्रा में मग्न है और उसकी नासिका के गर्जन से सारा कमरा गूँज रहा है। एकाएक न जाने कैसी एक प्रकार की तीव्र दुर्गन्धि आकर सन्तोष की नासिका में प्रविष्ट हुई। उतावली के साथ उसने जेब से यूकलिप्टस (एक प्रकार का सुगन्धित पदार्थ) लगा हुआ रूमाल निकाला और उसे नाक से लगाते हुए अर्द्धोच्चारित स्वर से कहने लगा—बाप रे! इस तरह की दुर्गन्धि में क्या आदमी ठहर सकता है? पता नहीं, तुमसे कैसे लेटे रहा जाता है यहाँ। मैं देखता हूँ कि गूँगी तो तुम बहुत दिनों से हो, क्या उसके साथ ही साथ नाक भी बन्द हो गई है?

वासन्ती के मन में आ रहा था कि एक बार पूछूँ कि मेरा यह जो गूँगापन है, क्या मेरी अपनी इच्छा का फल है। साथ ही वह यह भी कह देना चाहती थी कि ये जो मैले-कुचैले और तेल से भीगे हुए बिस्तरे हैं, जिनमें से दुर्गन्धि निकल रही है इनसे मेरा विशेष रूप से परिचय है। जब से मैंने जन्म ग्रहण किया है तभी से विश्वपिता ने मेरे अदृष्टसूत्र में इस प्रकार के बिस्तरों को ही ग्रथित कर दिया है। इनसे मेरा छुटकारा कहाँ है? परन्तु वह कुछ नहीं बोली। अन्त में निरुपाय होकर सन्तोष ने नौकरानी को बाहर जाने को कह दिया।

नौकरानी कमरे से निकल कर चली गई। तब सन्तोष ने मेज़ पर से शीशी उठाई, उसमें से गिलास में दवा उँड़ेली और वासन्ती की ओर बढ़े। तब उन्होंने देखा कि वासन्ती चारपाई पर से उतर कर खड़ी है। तब सन्तोष ने वासन्ती से कहा—अभी इतना हिलो-डुलो मत। मैं तो दवा दे ही रहा हूँ। तुम्हें चारपाई पर से उतरने की क्या ज़रूरत है?

वासन्ती ने लज्जित कण्ठ से कहा—आपको तो यह सब करने की आदत नहीं है। दीजिए। मैं ही सब किये लेती हूँ।

पत्नी के सूखे हुए साथ ही लज्जा से अरुण मुख की ओर देखकर सन्तोष ने कम्पित स्वर में कहा—वासन्ती, क्या अब भी—प्रायश्चित्त—समाप्त नहीं हुआ? अब मुझे क्यों क्लेश दे रही हो? आज मैं तुम्हारे साथ अपना आख़िरी हिसाब-किताब करने आया हूँ।—सुनो—वासन्ती, तुम्हारे साथ विवाह करके मैंने जो तुम्हारे जीवन को नष्ट किया है, आज उसके लिए—

आन्तरिक वेदना के कारण सन्तोष का कण्ठ रुद्ध होता जा रहा था। वह इतने शब्द बड़ी कठिनाई से निकाल सका।

वासन्ती के जी में आया कि खरा जवाब दे दूँ। इनसे पूछूँ कि क्या आज बढ़िया से बढ़िया रस और पाक का प्रयोग करके मेरे उस खोये हुए जीवन को लौटालने आये हो। किन्तु ज़बान लड़ा लड़ा कर बहस करना उसके स्वभाव के विरुद्ध था, अतएव उसने कोई भी बात मुँह से न निकलने दी।

सन्तोष कुछ क्षण तक पत्नी के अविचलित और मौन मुख की ओर दृष्टि स्थिर किये रहा। बाद को कम्पित कण्ठ से वह कहने लगा—वासन्ती, मैं बहुत दिनों से ऐसा ही एक अवसर खोजता फिरता था। शायद तुम इसे पागल का प्रलाप समझ कर उड़ा देना चाहोगी। किन्तु फिर भी मैं कहता हूँ। मैं जो भी होऊँ, मैंने तुम्हारे साथ विश्वास-घातकता नहीं की, इस बात का इच्छा करने पर ही तुम विश्वास कर सकती हो।

उत्तेजना के कारण उसका कण्ठ रुद्ध हो आया।

इसके उत्तर में भी वासन्ती ने मुँह से कोई बात नहीं निकाली। उसे इस तरह मौन देखकर सन्तोष ने फिर कहा—बहुत दिनों की बहुत-सी बातें हृदय में जमी हैं। आज वे रोके नहीं रुकती हैं। वासन्ती, यदि तुमने निर्दय, हृदयहीन स्वामी को क्षमा कर दिया हो तो सुनो तुमसे थोड़ी-सी बातें कह जाना है।

संशयपूर्ण कण्ठ से वासन्ती ने कहा—आप जाइएगा कहाँ?

सन्तोष ने कहा—मैं कहाँ जाऊँगा, यह कुछ अभी तक निश्चय नहीं है। किन्तु जाऊँगा। मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया है, इसके लिए मुझे क्षमा कर दो। मैंने सोचा था कि मैं तुमसे कभी प्रेम न कर सकूँगा। किन्तु—किन्तु, आज कुछ महीनों से मैं यह अच्छी तरह समझ रहा हूँ कि मैं तुम्हें—। शायद तुम्हें मालूम होगा कि कालेज में पढ़ते समय मैंने एक दूसरी बालिका से प्रेम किया था।

वह बालिका और कोई नहीं, सुषमा है। मेरे और सुषमा के प्रेम में मुख्य बाधक हुए पिता जी। पिताजी से बदला लेने की मेरे हृदय में इच्छा उत्पन्न हुई और उसके लिए मैंने प्रयत्न किया। परन्तु इस सिलसिले में तुम्हारे ऊपर मैंने जो अन्याय और अत्याचार किया है उसे मैं अस्वीकार नहीं कर सकता।

उस समय वासन्ती की एक एक धमनी में रक्त की धारा मानो थिरक थिरक कर नाच रही थी। उसने एक प्रकार के अपूर्व सुख का अनुभव किया, जिसके कारण पुलकित होकर वह अपने आपको भूल गई। जिस पवित्र प्रेम के झरने की धारा से अपने पिपासा से जलते हुए अन्तःकरण को सींचकर हरा करने के लिए उसका समस्त देह-मन और प्राण व्याकुल हुआ जा रहा था, जिस असहनीय जीवन-संग्राम में वह अपने आपको परास्त समझ रही थी, आज इतने दिनों का अत्याचार, अवहेलना और अविचार, सभी कुछ स्वामी के मन का व्याकुल भाव देखकर तूफ़ान के सामने पड़ी हुई धूलि-राशि के समान किसी महाशून्य में मिल गया। जो वाणी सुनने के लिए वह चिर-दिन से लालायित थी, आज उसी वाणी ने एक ऐसे अज्ञात पुलक की सुधा-धारा से उसके देह-मन-प्राण को सिञ्चित कर दिया, जिसे वासन्ती अनुभव न कर सकी। क्या निराशा से भरे हुए उसके जीवन की रात्रि का अन्त हो चला था? क्या सचमुच उसके लिए उषाकाल आ गया था? क्या आज सचमुच उसके नव-जागरण का शुभ-मुहूर्त था? क्या सचमुच ही इन्द्रदेव अपहरण की हुई समस्त सम्पत्ति लेकर चिरकाल से उपेक्षित की गई वासन्ती के द्वार पर खड़े थे? क्या यह मरुभूमि की मरीचिका थी? वासन्ती की समझ में ही कोई बात नहीं आ रही थी। वह मन ही मन कहने लगी—हे हृदय के देवता, क्या व्यर्थ नारी-जीवन के तीव्र हाहाकार ने सचमुच तुम्हारे चरण-तल का स्पर्श किया है? यह कैसी आशातीत करुणा है नारायण?

जिस अज्ञात आशङ्का से वासन्ती का मन शङ्कित हो उठा था, स्वामी की बात से मन के मेघ कट जाने पर वासन्ती ने अनुभव किया कि इसमें केवल विसर्जन के बाजे ही नहीं हैं, बल्कि आवाहन के मन्त्र भी हैं।

पत्नी को निरुत्तर देखकर वेदना के मारे सन्तोष का हृदय भार से आक्रान्त हुआ जा रहा था। वह फिर कहने लगा—तुम्हारे हृदय को मैंने बड़ा क्लेश दिया है। उसके लिए स्वयं भी बहुत कष्ट सहन किया है। वह सब बातें लज्जा के कारण आज तक मैं तुमसे कह नहीं सका। आज सारी बातें तुमसे कह देने पर हृदय की व्यथा बहुत कुछ हल्की हो गई। अब जहाँ तक मैं समझता हूँ, तुम यह विश्वास कर सकोगी कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ। और तुम......तुमने मेरे सारे—

वेदना के मारे उसका कण्ठ रुद्ध हो गया।

कुछ देर के बाद सन्तोष जब स्वाभाविक अवस्था में आया तब उसने वासन्ती के काँपते हुए दोनों हाथों को अपने शीतल हाथ में लेकर आँसू से रुँधे हुए कण्ठ से कहा—तुम्हारी अनुमति के बिना मैंने तुम्हारा स्पर्श किया है, इसके लिए मुझे क्षमा करना। मेरे मन की अवस्था को समझकर इस धृष्टता के लिए मुझे क्षमा कर दो। सम्भव है कि अब हमारी तुम्हारी भेट न हो। आज तुम मुझसे लज्जा न करो। वासन्ती, इस समय मेरी एक कामना है। मैं तुम्हारे मुँह से सुनकर जाना चाहता हूँ कि तुम मुझसे घृणा नहीं करती हो, साथ ही तुमने मुझे क्षमा कर दिया है। इस तरह अब मुझे भूल में न डाले रहो।

दोनों ही नेत्रों में आँसू भरे हुए वासन्ती उस समय शान्त भाव से खड़ी थी। स्वामी के वेदना-मिश्रित मुख पर अचञ्चल दृष्टि निबद्ध करके अकम्पित कण्ठ से वह कहने लगी—आपने अपराध किया है दीदी के प्रति, आप उनसे क्षमा माँगिए। और—और—

सन्तोष जिस हाथ से वासन्ती के हाथ पकड़े हुए था वह ज़ोर से काँप रहा था, इससे वासन्ती उसकी मानसिक अवस्था का अनुभव कर रही थी। वह जो कुछ कहने जा रही थी वह उससे कहा न गया। मुँह भर हँसी लिये हुए कमरे में आकर सुषमा ने पुकारा—यह क्या वासन्ती! सन्तोष भाई!

सुषमा को जाती देखकर सन्तोष ने रुद्धकण्ठ से कहा—चकित क्यों हो उठी हो सुषमा? जाओ नहीं। तुमसे हम लोगों को—मुझे कुछ कहना है।

धीर और शान्त कण्ठ से सुषमा ने कहा—मुझसे!

सन्तोष ने कहा—हाँ तुमसे। सुषमा, इतने वर्षों के बाद रोम रोम से मैं तुम्हारी बात का अनुभव कर सका हूँ। पिताजी के आशीर्वाद, तुम्हारी भविष्य-वाणी और वासन्ती की व्याकुलता ने सचमुच मुझे सत्य-पथ पर लाकर खड़ा कर दिया। मुझे—क्षमा—क्षमा कर दो सुषमा।

पृथिवी-तल पर दृष्टि निबद्ध किये हुए सुषमा ने संयत कण्ठ से कहा—इस तरह की बात कहकर मुझे अपराधिनी न बनाइए सन्तोष भाई। अपराधी तो आप नहीं हैं। उस अनुपात से तो मैंने ही बल्कि आपके प्रति अधिक अपराध किया है। आप मेरे दीक्षादाता गुरु हैं।

वासन्ती के पास से दो पग पीछे की ओर हटकर सन्तोष ने कहा—गुरु? क्या कहा तुमने? मैं तुम्हारा—

"हाँ सन्तोष भाई, आप मेरे गुरु हैं। वासन्ती को यदि आप इस तरह न रखते तो सम्भव था कि मैं आप लोगों को इतना अधिक न पहचान पाती। इसी से कहती हूँ कि मुझे मुक्ति का मार्ग दिखानेवाले आप ही हैं। नारी-मात्र ही दुर्बल हैं, सदा से ही पराधीन हैं, विशेषतः हिन्दू के घर में। कारण, जिसके समीप आजन्म के लिए उन्हें बन्धन स्वीकार करना पड़ता है, जिसके सुख-दुख को उन्हें अपने सुख-दुख के साथ जोड़ रखना होता है, उसी अज्ञात सागर में कूदते समय हिन्दू नारी जो अचल, अटल और अनन्त विश्वास लेकर आती है, दूसरी जाति की स्त्रियों के समान अपने भावी जीवन के संगी को देखने या उससे परिचय प्राप्त करने का अवसर तो उन्हें मिलता नहीं। यह सरल, गम्भीर विश्वास—प्रथम जीवन का भय, भक्ति, श्रद्धा जिनके चरणों में हम अर्पित कर देती हैं वे ही यदि स्वार्थ के लिए अन्धे हो जायँ और हमारी इस श्रद्धाञ्जलि को पैर से ठुकरा दें तो हम कहाँ जायँ? ऊपरी ही तड़क-भड़क हर एक आदमी देखता है, भीतर की ख़बर रखनेवाले कितने आदमी हैं, क्या यह आप बतला सकते हैं? वासन्ती के दुर्भाग्य ने ही मुझे संसार में इस प्रकार दृढ़ बनाया है और उसके इस दुर्भाग्य के कारण आप हैं। इसी लिए मैं कह रही हूँ कि आपने ही मुझे नारी के वास्तविक मार्ग का पता बतलाया है।

कमरे में जो बत्ती जल रही थी, उसके प्रकाश में सुषमा की पवित्र गौरवमण्डित तपस्विनी मूर्ति की ओर ताक कर सन्तोष ने अनुताप मिश्रित कण्ठ से कहा—तुम्हें मैं पहचान नहीं सका हूँ, तुम्हारा दान तिरस्कार करके लौटाल दिया है, इससे मेरे मन को बड़ा कष्ट मिला है। दो, सुषमा, आज मैं तुम्हारा दान आदर के साथ ग्रहण करता हूँ।

सुषमा ने उस समय आगे बढ़ कर वासन्ती के तुषार के समान शीतल दोनों ही हाथों को सन्तोष के काँपते हुए हाथों पर रख कर शान्त कण्ठ से कहा—तो आज मेरी बहन को ग्रहण कीजिए सन्तोष भाई। अपनी तपस्या की सिद्धि मैं आपको दिये जा रही हूँ। वासन्ती को आपको सौंपकर आज मैं निश्चिन्त भाव से लौट कर अपने आश्रम में जा सकूँगी। आप इतने महान् हैं, यह समझ कर ही मैं उस दिन वासन्ती को लेकर आपके पास गई थी। होगा, उन सब बातों की अब आवश्यकता नहीं है। आप जानते नहीं कि आपका प्रेम प्राप्त करना किस नारी की साधना का फल है!

इतना कहकर सुषमा कमरे से निकल कर चली गई। भूतत्त्व के ज्ञाता जिस प्रकार तीक्ष्ण दृष्टि निक्षेप करके पृथिवी के तल-देश तक को भेद कर उसके प्रकृत तथ्य का निर्णय कर लेते हैं, उसी तरह सन्तोष के मन में भी आया कि यदि किसी प्रकार इस पाषाणी किन्तु धरित्रीरूपिणी सुषमा के हृदय के अन्तस्तल की परीक्षा करके एक बार देख सकता! किन्तु न जाने क्या सोच कर उसने अपनी अबाध्य इन्द्रियों को प्रबल भाव से क़ाबू में कर रक्खा। मन ही मन उसने कहा—तुम्हारा वह स्थान अक्षय हो सुषमा।

कुछ क्षण तक स्तब्धभाव से खड़ा रहने के बाद सन्तोष ने फिर कर देखा तो वासन्ती भूमि में दृष्टि गड़ाये खड़ी थी, उसके दोनों कपोल आँसुओं से भीगे हुए थे। वह मानों स्वप्न से अभिभूत थी, अपने आपको भूल-सी गई थी।

सन्तोष ने धीरे-धीरे वासन्ती के कन्धे पर अपने शिथिल हाथों को रख दिया और व्यथित कण्ठ से कहने लगा—कुछ तो कहा नहीं। अब मुझे आज्ञा दो वासन्ती, मैं चलूँगा। अब मैं तुम्हारी दृष्टि के सामने रह कर तुम्हारी यन्त्रणा न बढ़ाऊँगा—मैं ही तुम्हारी दुर्दशा का कारण हूँ।

सन्तोष बराबर कहता गया। वह कहने लगा—वासन्ती, यह मेरे निष्ठुर जीवन का सन्ध्या-काल है। अब मैं किसी अनिर्दिष्ट पथ की ओर यात्रा कर रहा हूँ, इसलिए पाथेय के रूप में अपने अकृतज्ञ स्वामी को कुछ ऐसी चीज़ दो जिससे अकेले मार्ग में चलते समय अभाव की पीड़ा मेरे मन को व्यथित न कर सके। बीच बीच में एक एक बार मुझे तुम्हारा दिया हुआ वह पाथेय यह भी स्मरण करा दे कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया है। एक दिन इसी तरह की अशुभ सन्ध्या में तुम्हारे हृदय के व्याकुल आह्वान की उपेक्षा करके दूसरे मार्ग पर गया था, आज फिर उसी तरह की सन्ध्या में तुम्हारे आह्वान के बिना ही तुम्हारे पास प्रायश्चित्त करने के लिए, क्षमा माँगने के लिए, आया हूँ। यदि तुमने मुझे क्षमा कर दिया हो तो उसके चिह्न के रूप में मुझे ऐसा कुछ दो जो मुझे इस नेत्र के अन्तिम निमेष तक उज्ज्वल ध्रुवतारा के समान स्थिर रक्खे—जिससे वह अन्त तक मुझे खींच कर ले जा सके। बोलो, समय नहीं—

स्वल्पभाषिणी, लज्जिता वासन्ती किस तरह यह बतलाती कि सुदीर्घ सात वर्ष उसने कितने व्याकुल भाव से व्यतीत किये हैं, शून्य शय्या पर पड़ी पड़ी कितनी रातें उसने जाग कर काटी हैं और देवादिदेव के चरणों में कातर प्रार्थना करते ही करते अपना तकिया भिगोया है। हाय, वासन्ती का तो सभी कुछ जा चुका है, उस बेचारी के पास आज है ही क्या, जो नूतन करके आज स्वामी को देती? उसकी सुख से शिथिल देह-रूपी लता मानो गिरती जा रही थी, वक्ष का स्पन्दन स्थिर हुआ जा रहा था, कण्ठ भाषा से वञ्चित हुआ जा रहा था, प्रबल अश्रुधारा से गण्डस्थल डूबा जा रहा था, कम्पित चरणों से लड़खड़ाती लड़खड़ाती वह सन्तोष के समीप आई और उसके चरणों पर मस्तक रखकर व्याकुल-कण्ठ से बोल उठी—आप मुझे क्षमा कीजिए। आप कहाँ जायँगे, मुझे परित्याग करके—

उत्तीर्ण सहारा के उपकण्ठ में जो शीतल निर्झर-वारि सन्तोष के पिपासित कण्ठ को आर्द्र करके उछलता आ रहा था, आज फिर वह उसकी उपेक्षा नहीं कर सका।

इति

स्मृति-गीत

लेखक, श्रीयुत नर्मदाप्रसाद खरे

आज किसका ध्यान आया?
नयन में बरसात मचली, प्राण में मधुमास छाया॥

एक सुन्दर मधुर सुधि ले,
आज फिर मधु-पवन डोली,
हृदय में अनुराग भरकर,
कुसुम-दल ने आँख खोली,
वेदना का सिन्धु लेकर कोकिला ने गान गाया।
आज किसका ध्यान आया?

वह तुम्हारा हास पाकर,
खिल उठी सुकुमार बेला,
छा गया उल्लास जग में,
रो उठा पर मैं अकेला,
आज शीतल इन्दु भी क्यों हृदय में अनुताप लाया।
आज किसका ध्यान आया?

वह युगों का स्नेह पाकर,
जल रही है रूप-ज्वाला,
शलभ ने सर्वस्व देकर,
प्रेम का पाया उजाला,
मृत्यु ही चिर-मिलन सुख है, आज अब मैं जान पाया।
—आज किसका ध्यान आया?

मेरी कुल्लू-यात्रा

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

(३)

रोहटाङ्ग के आगे उतराई आरम्भ हो जाती है। अगला पड़ाव ६ मील पर कोकसर है। रोहटाङ्गला के एक ओर—मनाली की ओर—तो मकई पकी खड़ी है और दूसरी ओर—कोकसर की ओर—जौ पके हुए हैं। एक ही काल में ये दो अनाज मैदानों में नहीं होते। रोहटाङ्ग पर खड़े होकर देखने से जहाँ एक ओर व्यास नदी दीखती है, वहाँ दूसरी ओर चन्द्र-भागा भी दिखाई देती है। यह पर्वत-शिखर प्रायः सदा ही मेघाच्छादित रहता है। हम वहाँ थोड़ी देर विश्राम करके और थोड़े से सेब खाकर राहला को वापस लौट पड़े। श्री इन्द्रसिंह आगे कोकसर देखने चले गये। लौटते समय ज़ोर का पानी बरसने लगा। रास्ते में भारी फिसलन हो गई। गार्गी एक जगह बुरी तरह से फिसली! इससे उसके चोट लग गई। पानी से वस्त्र भीग गये। रास्ता बड़ा सँकरा था, साथ ही फिसलकर चट्टान के नीचे खड्ड में गिर पड़ने का भी डर था। शीतल पवन शरीर को चीरती जा रही थी। बड़ी कठिनाई से वापस राहला पहुँचे। परन्तु खाने के लिए यहाँ कुछ नहीं था। बहुत यत्न करने पर चार आने सेर के हिसाब से कुछ दूध मिला। उसे थोड़ा थोड़ा पिया तो कुछ शान्ति हुई। जब ज़रा पानी थमा तब मनाली के लिए चले। परन्तु कुछ ही देर बाद फिर वर्षा होने लगी। जैसे-तैसे करके रात को ७½ बजे मनाली पहुँचे। परन्तु बादलों और वृक्षों के कारण अँधेरा इतना अधिक था कि गिरने का डर रहता था। मनाली पहुँचकर होटल में भोजन किया और आराम से सोये।

कल के थके होने के कारण ९ सितम्बर को सवेरे देर से उठे। आज भी बूँदा-बाँदी हो रही थी। कल की चोट के कारण गार्गी को ज्वर हो गया, इसलिए आज यहीं विश्राम किया।

१० सितम्बर १९३७ को सवेरे ६ बजे कुल्लू को वापस लौटे। अब सारा रास्ता उतराई ही उतराई था। सायंकाल ४ बजे कुल्लू पहुँच गये।

११ सितम्बर १९३७ को कुल्लू में विश्राम किया। यद्यपि सारी रात वर्षा होती रही, तो भी यहाँ सरदी मनाली से कम थी। काँगड़ा वेली रेलपथ योगेन्द्रनगर तक है, परन्तु नार्थ वेस्टर्न रेलवे की आऊट एजंसी कुल्लू में भी है। यहाँ से फलों के पार्सल इसी एजंसी के द्वारा बाहर भेजे जाते हैं। रेलवे ने लाहौर आदि दो एक स्थानों के लिए फलों का भाड़ा विशेष रूप से कम रख छोड़ा है। दस सेर फल का भाड़ा लाहौर के लिए केवल ।।=) लगता है। सेब का भाव प्रायः इस प्रकार रहता है—बन्दरौल के विशेष सेब लगभग २२ रुपये मन, मनाली में बैनन के बग़ीचे के सेब कोई १०-१२ रुपये मन, सामान्य सेब ५-६ रुपये मन, और साधारण सेब ३-३।। रुपये मन। मैदानों में जैसे कच्चे आमों को काट कर सुखा लेते हैं, वैसे यहाँ सेबों को भी काट कर सुखाते हैं। ये सूखे सेब चार आने से आठ आने पौण्ड तक मिलते हैं। बड़े स्वादिष्ठ होते हैं। इनको तरकारी की तरह राँध कर खाते हैं। आज यहाँ दिन भर पानी बरसता रहा। बाज़ार में अबोहर के प्रसिद्ध हिन्दी-प्रचारक संन्यासी स्वामी केशवानन्द जी के दर्शन हुए। वे भी भ्रमणार्थ इधर आये थे।

१२ सितम्बर १९३७ रविवार को कुल्लू में बूँदा-बाँदी होती रही, परन्तु पता लगा कि मनाली में बहुत वर्षा हुई है और सामने के पर्वतशिखर बर्फ़ से ढँक गये हैं। हम सायंकाल कुल्लू (अखाड़ा) से चलकर भूँतर आ गये और सराय में डेरा किया। एक सराय सुलतानसिंह कम्पनी की नदी के पार भी है और वह इस बाज़ारवाली सराय से अच्छी है। परन्तु दूर होने के कारण हमने नदी के इस पार ही रहना अच्छा समझा। रात्रि के भोजन के लिए श्रीयुत सालिग्राम दूकानदार ने अपने यहाँ न्योता दिया।

मणिकरण—१३ सितम्बर १९३७ को सवेरे उठकर मणिकरण के लिए पैदल प्रस्थान किया। वहाँ मोटर-लारी कुछ नहीं जाता। मणिकरण जाने के लिए व्यास नदी को पुल-द्वारा पार करके बायें तट पर जाना पड़ता है। आगे का रास्ता पार्वती नदी के किनारे किनारे है। रास्ते में ऊँचे-ऊँचे ढङ्ग (अत्यन्त ढालू चट्टानें) हैं। अनेक स्थानों पर

[कुल्लू का एक मनुष्य जिसे जौहड़ का मैला पानी पीने से गले के फूलने (गलगंड) का रोग हो रहा है। पंजाबी में इस रोग को गिल्हड़ कहते हैं। इसके गले के नीचे दो गलगंड लटक रहे हैं।]

सड़क केवल ६ फ़ुट चौड़ी है। उसके एक ओर बादलों से ढँके हुए सैकड़ों फ़ुट ऊँचे पर्वत हैं और दूसरी ओर सैकड़ों फ़ुट नीचे गहरी खाई में पार्वती नदी बह रही है। सड़क पर खड़े होकर नीचे देखने पर सिर चकराने लगता है, दृष्टि घूमती है। पार्वती हँसती, खेलती, उछलती-कूदती, पर्वतों से टकराती, अठखेलियाँ करती हुई द्रुतगति से दौड़ी चली जाती है। रास्ते में पानी बरसने लगा। इससे मार्ग कर्दममय हो गया। पाँव फ़िसल फिसल पड़ता था। आज मालूम हुआ कि चप्पल पहनकर पहाड़ पर नहीं आना चाहिए। चप्पल एक तो फ़िसलती बहुत है, दूसरे इसमें कीच और कङ्कड़ जल्दी भर जाते हैं। १३ मील चलकर हम कोई १½ बजे 'जरी' के पड़ाव पर पहुँचे।

जरी में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की एक टूटी-सी सराय है। इसी में डेरा किया। कारण यह कि वर्षा अधिक होने लगी थी, जिससे यात्रा करना कठिन था। जरी में आटा-दाल तो मिल जाता है, परन्तु दूध-मिठाई नहीं। रात को सराय की छत टपकने से बहुत कष्ट हुआ। सारी रात पानी बरसता रहा।

मंगलवार १४ सितम्बर १९३७ को थोड़ा थोड़ा पानी बरस रहा था। हम अपना असबाब यहीं छोड़कर मणिकरण के लिए पैदल चल पड़े। मणिकरण जरी से ८ मील है। हम पानी बरसते में ही कोई १२ बजे वहाँ जा पहुँचे। रास्ता पार्वती के बायें तट के साथ साथ था। कोई एक मील इधर से ही मणिकरण के गरम जल के झरनों से उठनेवाली भाफ के घने बादल दीखने लगते हैं। रास्ते में एक जगह दो बड़ी चट्टानों के बीच में से होकर पार्वती निकली है। वहाँ इसका पाट इतना छोटा है कि मनुष्य छलाँग मारकर पार कर सकता है, परन्तु पानी का ज़ोर इतना अधिक है कि देखकर डर लगता है। मणिकरण में कोई सराय या धर्मशाला नहीं। वह एक छोटा-सा गाँव है। पत्थरों का बना हुआ है। हम शंकरलाल पुरोहित के यहाँ ठहरे।

मणिकरण एक प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ ग़रम पानी के झरने हैं। इनमें से कुछ तो पार्वती नदी के ठीक तट पर हैं। पार्वती का पानी हिम के समान शीतल है। परन्तु उससे एक ही दो फ़ुट के अन्तर पर झरनों का पानी इतना गरम है कि उसमें हाथ डालें तो वह जल जाता है। लोग दाल-चावल देगची में बन्द करके इन झरनों में रख आते हैं। वे अपने आप पक जाते हैं और चाहे जितनी देर पड़े रहें, जलते बिलकुल नहीं। कारण यह कि जल का ताप-मान एक समान रहता है, बढ़ता नहीं। शङ्करलाल जी की माता ने हमारे लिए इसी गरम झरने में दाल-चावल बनाये। खाने में ये बड़े स्वादिष्ठ थे।

इन प्राकृतिक झरनों के अतिरिक्त मणिकरण में लोगों ने स्नान करने के लिए बड़े बड़े कुण्ड भी बना रक्खे हैं। इनमें गरम पानी में ठंडा पानी मिलाकर उसे गुनगुना बनाया गया है। कुण्ड में प्रवेश करते समय पहले शरीर को पानी चुभता-सा जान पड़ता है। भीतर घुसने को मन नहीं होता। परन्तु एक बार डुबकी लगा लेने पर फिर

यही जी चाहता है कि पानी में ही बैठे रहें, बाहर न निकलें। इस गुनगुने पानी में शरीर को बड़ा सुख मिलता है।

मणिकरण-निवासियों ने गरम पानी की नहरें अपने मकानों में फ़र्श के नीचे से निकाली हैं। इससे मकान गरम रहता है और वर्षाकाल में भी गुड़-शक्कर और नमक आदि पदार्थों को सील नहीं होती।

मैं पहले भी एक बार यहाँ १० आश्विन संवत् १९७९ को आया था। आज ३० भाद्रपद संवत् १९९४ है। तब श्री रुद्रमणि पुरोहित से मिला था। उस समय गरम पानी का एक झरना २-३ इंच उछलता था। परन्तु अब वह बिलकुल बन्द हो चुका है। वापस लौटने से पूर्व मेरे मन में श्री रुद्रमणि से मिलने की लालसा हुई। मैं उनसे मिलने गया और उनकी बही में उस समय का लिखा हुआ अपना विवरण देखा। तबीअत पर एक चोट सी लगी। उस समय मेरे साथ मेरा एकमात्र पुत्र और उसकी माता थी। आज वे दोनों इस संसार में नहीं। उनकी मृत्यु से मेरा हृदय बुझ-सा गया था। घर से बाहर निकल कर सैर करने को मन ही नहीं होता था। आज १५ वर्ष के बाद बड़ी मुश्किल से तबीअत में उमंग आई तब इधर आया। रात्रि का भोजन बनवाकर हमने साथ ले लिया और कोई ३ बजे मणिकरण से जरी को लौट पड़े। सारा दिन पानी बरसता रहा। अँधेरा होने पर जरी पहुँचे। रात में वहीं विश्राम किया। सारी रात वर्षा होती रही।

१५ सितम्बर १९३७ बुधवार। सवेरे वर्षा हो रही है। कोई ९ बजे चलकर लगभग ३ बजे पानी बरसते में भूँतर पहुँचे। कई दिन से निरन्तर वर्षा होती रहने से पार्वती मदमाती होकर भयंकर शब्द करती हुई दौड़ रही थी। रास्ते में जो भी पेड़-पत्थर उसे मिलता है उसे उठाकर बहा ले जाती है। रास्ता कीचड़ से भर रहा है। खड्ड पर्वत पर से बड़े ज़ोर के साथ सड़क पर गिर रहे हैं। पहाड़ी मकानों की खपरैली छतों पर सुनहरे रंग के मक्की के भुट्टे रक्खे हुए बड़े सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। वर्षा से इनकी कुछ हानि नहीं होती। भूँतर में व्यास के बायें तट पर श्री जगतराम जी फ़ारेस्ट-रेंजर के यहाँ ठहरे। इन्होंने हमारा बड़ा आतिथ्य-सत्कार किया।

रात्रि को चमकनेवाली बूटियाँ

श्री जगतराम जी ने मुझे बताया कि मणिकरण से ९ मील आगे 'पुलगा' नाम का पड़ाव है, फिर उससे ६ मील आगे क्षीरगङ्गा नाम की नदी है। इसके पानी का रङ्ग सफ़ेद है और उसमें कुछ चिकनाई भी है। उससे आगे मानतलाई के पहाड़ों की ऊँची ऊँची जोतें (पर्वत-श्रेणियाँ) हैं। रात को जगमगानेवाली बूटियाँ उन पर उत्पन्न होती हैं। भेड़-बकरी चरानेवाले 'गद्दी' ही प्रायः उनको देखते हैं। मैंने पूछा, आपने कभी देखी है। उन्होंने उत्तर दिया कि मैंने पहाड़ पर तो जलती नहीं देखीं, परन्तु एक साधु के पास देखी हैं। मैंने पूछा, वे कैसी थीं। उन्होंने उत्तर दिया, उन्हें उसने डिबिया में बन्द कर रक्खी थीं और अँधेरे में चमकती थीं। उनके नौकर ईश्वर ने भी कहा कि मैंने भी 'जरी' में एक साधु के पास चमकनेवाली बूटी देखी थी।

वहाँ चमकनेवाली बूटियों के सम्बन्ध में बड़ी विचित्र बातें प्रसिद्ध हैं।—'काला पञ्जा' नाम की एक ऐसी ही बूटी होती है। उसको दिन में ढूँढ़ना बहुत कठिन है। कूक चिड़िया नाम का पक्षी दूसरे पक्षी के घोंसले में अण्डा देकर अपना बच्चा उस पक्षी से पलवाता है। बूटी के खोजी उस बच्चे की टाँग में ताँबे का तार बाँध देते हैं। तब कूक चिड़िया वन से काला पञ्जा लाकर उससे उस तार को झट काट डालती है। बच्चा तो उड़ जाता है, परन्तु काला पञ्जा घोंसले में ही पड़ा रह जाता है। तब वे खोजी उसे उठा लाते हैं। काला पञ्जा की पहचान यह है कि यदि वह पानी में फेंकी जाय तो वह साँप के आकार की बन जाती है।

रात को चमकनेवाली तीन बूटियाँ होती हैं। उनमें से मध्यवर्ती बूटी के सिर पर मुकुट-सा चमकता है। उस बूटी को राजा कहते हैं। उसके दायें और बायें की दोनों बूटियाँ कुछ छोटी होती हैं। रात में चमकने पर ही राजा बूटी पहचानी जाती है। उसके मुकुट को निशाना बनाकर रात को उस पर गोली मारी जाती है। तब सवेरे उसे उखाड़कर घर ले आते हैं। कहते हैं, कोई साधु एक कुष्ट-रोगी फ़ारेस्ट-रेंजर को साथ लेकर इस बूटी को लेने गया। रात को राजा बूटी के मुकुट को गोली का निशाना बनाने के बाद वे सवेरे उसे उखाड़ लाये। साधु ने राजा बूटी की
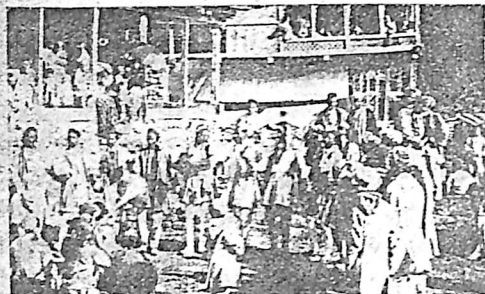
[कुल्लू में एक मेले का दृश्य।]

जड़ को छीलकर उबाला और रेंजर से पीने को कहा। परन्तु वह जड़ पानी में पड़ते ही कीड़ा-सा बन गई। इसलिए रेंजर ने पीने से इनकार कर दिया। तब साधु उसे पी गया। साधु का शरीर फूल गया और फटकर उसमें से एक बारह वर्ष का बालक निकला। यह देख रेंजर ने पास पड़ा हुआ छिलका उठाकर खा लिया। इससे उसका कुष्ट दूर हो गया। इन कहानियों में कितना सत्यांश है। सो मैं नहीं कह सकता।

१६ सितम्बर १९३७ वृहस्पतिवार। सवेरे वर्षा हो रही है। आठ दिन से निरन्तर रोज़ पानी बरसता है। आज भी दिन भर पानी बरसा किया। व्यास में बाढ़ आ रही है। पुल से कुछ ही फ़ुट नीचे तक पानी चढ़ आया है। शहतीर और बड़े बड़े वृक्ष तिनकों की तरह तैरते चले आ रहे हैं। यदि यह नदी न हो तो इन पर्वतों पर उगनेवाले पेड़ मनुष्य के कुछ काम न आ सकें। रात को वर्षा बन्द हुई।

१७ सितम्बर १९३७ शुक्रवार को ९ दिन पीछे सूर्य भगवान् के दर्शन हुए। अब हम घर लौटने की सोचने लगे। परन्तु मालूम हुआ कि बजौरा के आगे दो मील पर सड़क टूट गई है। औट के पहले दो-तीन स्थानों पर सड़क इतनी ख़राब हो गई है कि खचर-घोड़ा नहीं गुज़र सकता। तब दुलची कण्ठी होकर कटौला के रास्ते जाने का विचार हुआ। परन्तु पता लगा कि वह भी टूट गया है। इसलिए बरबस यहीं रुकना पड़ा।

१८ सितम्बर १९३७ शनिवार। आकाश निर्मल है परन्तु लारी की सड़क पर जगह जगह मिट्टी-पत्थर के बड़े बड़े ढेर पहाड़ से गिरे हुए हैं, इससे रास्ता बन्द है। पता लगा कि कटौले के रास्ते दो-तीन जगह खचर पर से भार उतारकर जाना पड़ेगा, क्योंकि लदा हुआ खचर नहीं जा सकता। आज भी भूँतर में ही रुकना पड़ा। फलतः १९ सितम्बर १९३७ रविवार को चलने का निश्चय हुआ। भूँतर से बजौरा तीन मील है और वहाँ कुल्लू-उपत्यका की सीमा है। इसलिए इस सुन्दर उपत्यका को छोड़ने के पहले मैं इसके सम्बन्ध की थोड़ी-सी और मनोरञ्जक तथा आवश्यक बातें बता देना चाहता हूँ।

कुल्लू के लोग

कुल्लू-उपत्यका में कनैत और कोली-जाति की ही अधिक संख्या है। ये ही यहाँ के आदिम निवासी समझे जाते हैं। ब्राह्मण, राजपूत और दूसरे लोग पीछे से आकर बसे हैं। सारी जन-संख्या, गत मनुष्य-गणना के अनुसार, ७८,६४७ है। अधिकतर लोग हिन्दू हैं। लाहूल और सपित्ती में बौद्ध भी बसते हैं। मुसलमान और ईसाई भी पाये जाते हैं। परन्तु इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। हाँ, मुसलमानों की संख्या दिन पर दिन बढ़ रही है।

रूप-रंग और आकार-प्रकार की दृष्टि से ये लोग दो प्रकार के हैं। एक तो मङ्गोल-जाति से मिलते हैं और दूसरे आर्य-जाति से। मङ्गोल लोगों की नाक मोटी और बैठी हुई-सी है। आर्य-जाति के लोग सुन्दर और सुदृढ़ हैं। मैंने एक मोची की दो स्त्रियाँ देखीं। वे दोनों सगी बहनें थीं। उनका क़द ख़ूब लम्बा और रंग-रूप बहुत सुन्दर था। लोग प्रायः भोले-भाले और ईमानदार हैं। चोरी बहुत ही कम होती है। लोगों को नृत्य और गान का बड़ा शौक़ है। वे फूलों पर मरते हैं। दरिद्रता और अविद्या बहुत है। यहाँ स्त्री भी अपने पति को तलाक़ देकर दूसरे पुरुष से विवाह कर सकती है। लोगों का भोजन प्रायः कोदरा, आलू, कचालू, चीणा, कंगनी, मकई, काठू, चानलू, मांस और जौ तथा चावल की मदिरा है। इनके मकान दो-तल्ले व तीन-तल्ले होते हैं, परन्तु बहुत तंग, अँधेरे और गन्दे। उनमें प्रवेश करने पर दुर्गन्ध आती है।

कुल्लू के रीति-रवाज

किसी के यहाँ मृत्यु हो जाय तो पड़ोस के सभी लोग इकट्ठे हो जाते हैं। वे अन्त्येष्टि-संस्कार के व्यय को पूरा करने के लिए दो आने से लेकर आठ दस रुपये तक घरवालों को चन्दा देते हैं। इससे मृतक के सम्बन्धियों का आर्थिक भार बहुत हलका हो जाता है। यह चन्दा कोई भिक्षा नहीं, वरन एक रीति के रूप में अनिवार्य है। इसका अर्थ यह भी नहीं समझा जाता कि घरवाले निर्धन हैं। मृत्यु हो जाने के बाद पड़ोसी और सम्बन्धी दस-पन्द्रह दिन तक मृतक के घर रात को आकर सोते हैं। कई दिन में भी आकर पूछ-ताछ कर जाते हैं। यदि खेती-बारी का काम अधूरा पड़ा रह गया हो तो सब मिलकर उसे पूरा करा देते हैं।

सामाजिक जीवन को मधुर बनाने के लिए कुल्लूवालों में और भी अनेक रीतियाँ प्रचलित हैं, जिनसे भ्रातृभाव और प्रेम बढ़ता है। भाद्रपद, आश्विन, माघ और कई दूसरे मासों की संक्रांति को पड़ोसी और सम्बन्धी मिलकर एक-दूसरे के यहाँ भोजन करते हैं। प्रत्येक स्त्री और पुरुष को सभी पड़ोसियों और सम्बन्धियों के यहाँ थोड़ा थोड़ा खाना अनिवार्य है। नई फ़सल के अन्न का तब तक सेवन नहीं किया जाता जब तक उस अन्न से तैयार किये खाद्य का पड़ोसियों और सम्बन्धियों को ज्योनार न खिला लिया जाय।

कुल्लू में पर्दा-प्रथा बिलकुल नहीं। प्रत्येक जाति की स्त्रियाँ नंगे मुँह इधर-उधर जाती-आती हैं। ये बड़ी परिश्रमी और बलवती होती हैं। घर का और खेती का सारा काम और प्रबन्ध इनके हाथ में होता है। स्त्री घर की स्वामिनी होती है। वह अपने पति पर शासन करती है।

कुल्लूवालों का देवी-देवताओं पर बड़ा विश्वास है। भूत, प्रेत, चुड़ैल, राक्षस और देवता से बहुत डरते हैं। घर में कोई बीमार हो जाय, गाय दूध कम दे, दूध से मक्खन कम निकले, भेड़-बकरियों को कोई रोग हो जाय, पानी न बरसे, पुत्र न उत्पन्न हो, अथवा फ़सल अच्छी न हो, तो यह सब देवताओं के कोप का परिणाम समझा जाता है। देवता के कोप को शान्त करने के लिए बकरे काटे जाते हैं।

कुल्लू का व्यापार

कुल्लू-उपत्यका में देवदारु, वन, कोइश, चील, कैलो, कायल, खनेर, शीशम और तूस के पेड़ों के सघन वन हैं। इनकी लकड़ी काटकर व्यास नदी के द्वारा मैदानों में पहुँचाई जाती है। यहाँ घोड़े-टट्टू भी अच्छे होते हैं। इनका मूल्य प्रायः ५०) से लेकर २५०) तक होता है। परन्तु ये घोड़े केवल पहाड़ी प्रान्त में ही काम दे सकते हैं, मैदानों की गरमी ये नहीं सहन कर सकते। कम्मल और पट्टियाँ भी कुल्लू में बहुत बनती हैं। प्रत्येक स्त्री शीतकाल में कम से कम तीन-चार कम्मल तैयार कर लेती है। ये कश्मीर के कम्मलों से सस्ते बिकते हैं। इनका मूल्य चार-पाँच रुपये से लेकर पन्द्रह रुपये तक होता है। कुल्लू में अफ़ीम भी बहुत तैयार होती है। इनके अतिरिक्त कड़ू, पतीश, बनफ़सा, गुच्छियाँ, सरसों, लाल मिरच, राई, मेथी, धनियाँ, उड़द, चना, चकोर, तीतर, मधु और चाय भी यहाँ से बाहर भेजी जाती हैं। मधु-मक्खिकाओं के छत्ते लोगों ने घरों में लगा रक्खे हैं।

कुल्लू में शिकार भी बहुत है, पर उसके लिए लायसंस लेना पड़ता है। व्यास नदी में ट्राउट नाम की एक अँगरेज़ी मछली पाली गई है। इसके शिकार के लिए लोग बम्बई तक से आते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ निम्नलिखित पशु-पक्षी पाये जाते हैं—

काला रीछ, लाल रीछ, बराघ या चीता, टङ्गरोल, म्याटो, यामू, कस्तूरा, जंगली बकरी या गोरल, कथं, कङ्कड़, मुनाल, जीर जुराना, कलीशा, चमन, सुम ककड़ी, चकोर, शुङ्कल, तीतर। कुल्लू में नाले बहुत हैं। उन्हीं में अधिकतर शिकार पाया जाता है। पहली मार्च से १५ सितम्बर तक पक्षियों के शिकार की आज्ञा नहीं। रीछ का शिकार प्रत्येक ऋतु में हो सकता है। जगतसुख नाले में लाल रीछ मिलता है।

कुल्लू के मेले

कुल्लू का दशहरा बहुत प्रसिद्ध है। नवरात्र के अनन्तर शुक्ल पक्ष की दशमी को आरम्भ होकर पूर्णमासी के दिन समाप्त होता है। अन्तिम दिन ढालपुर के मैदान से उतर कर व्यास नदी के दायें तट पर पाँच पशुओं की बलि दी जाती है। इसमें भैंसे का वध बड़ा करुणाजनक होता है।

पौष में देहाती लोग दीवाली मनाते हैं। ये रात्रि के समय मन्दिरों में एकत्र होते हैं। फिर ढोल बजाते हुए और अश्लील गालियाँ बकते हुए गाँव का चक्कर काटते हैं। इन गालियों को जरू कहते हैं। नगर की यह दीवाली

[रावगी नाले का जल-प्रपात ।]

विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यह नगर-गनेड़ कहलाती है।

नगर-गनेड़ में एक मनुष्य के सिर पर मेंढे के सींग लगाये जाते हैं। फिर उसे मूसल पर बैठाकर कंधों पर उठा लिया जाता है। उसे लिये और गालियाँ गाते गाँव में फिरते हैं। इन लोगों की धारणा है कि ऐसा करने से योगिनी का प्रभाव दूर हो जाता है। अन्तिम दिन रस्सा खींचा जाता है। दो दल रस्से के सिरे को पकड़कर दौड़ते हैं। जो दल निर्दिष्ट स्थान पर पहले पहुँच जाय उसे जीता हुआ समझा जाता है।

काहेनका

काहेनका का उत्सव विशेष मन्दिरों में मनाया जाता है। एक स्थान पर चार खम्भे गाड़े जाते हैं। उन पर कपड़ा ताना जाता है। इसके नीचे एक ढोलकी, एक मेंढे का सिर और कुछ अनाज रक्खा जाता है। एक स्त्री और एक पुरुष वहाँ विशेष रूप से बैठे रहते हैं। ये नड़ कहलाते हैं। स्त्री को सीता कहते हैं। लोग मन्दिर के देवता और इन दोनों को लेकर नाचते हुए नियत स्थान पर पहुँचते हैं। नड़ के मुँह में रुपया दिया जाता है। यह मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है। तत्पश्चात् उसे फिर वहीं लौटा लाया जाता है। 'चेला' (ओझा) मूर्च्छित नड़ पर पानी के छींटे मारता है और उसे होश में लाता है। तत्पश्चात् बकरा या मेंढा काटा जाता है।

बानकश

यह एक बड़ी क्रूरता का उत्सव है। जब किसी घर में कोई बीमार हो जाय या किसी दूसरे प्रकार की हानि हो जाय तो ये लोग समझते हैं कि घर में किसी बुरी आत्मा का प्रभाव हो गया है और घर में बान लगा है। तब ये निकट के देवता को लाते हैं और एक बकरा लेकर बड़े ज़ोर-शोर से ढोल पीटते हैं। बकरे को मकान के प्रत्येक कोने में ले जाते हैं और उसकी पीठ के बालों को पकड़ पकड़ कर नोचते और झटके देते हैं। बेचारा अधमुआ हो जाता है। जब सब जगह घुमा चुकते हैं तब घसीट कर दूर ले जाते हैं और वहाँ उसका सिर उतार देते हैं। इसे बानकश कहते हैं।

कुल्लू की भाषा

कुल्लू की भाषा पंजाबी भाषा से अलग है। यह संस्कृत से अधिक मिलती है। कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं :—

कुल्लू की भाषा	संस्कृत
न्याओं	न्याय
श्याल	शृगाल
हौं	अह
शेता	श्वेत
घोरनी	घरनी
उतक	उदक
लोगड़	लगुड़
हिऊँ	हिम
वृष	वृष
श्लाघा	श्लाघा
रश्मि	रश्मि
दुर्ग	दुर्ग

कुल्लू की भाषा के कुछ वाक्य भी देखिए—

मैं जाता हूँ—हौं गैलो।

हम जाते हैं—आसे चौले।

तू जाता है—तो चौलू।

तुम जाते हो—तोसे चौले।

वह जाता है—सौ चौलू।

आपका क्या नाम है?—तोसरा की नासा।

आप कहाँ से आये हैं?—तूसे कोए न आए?

कुल्लू का कौन-सा रास्ता है?—कोलोरी वृत कुन सा?

मेरी बन्दूक़ लाओ—मेरी तूपक आनय।

प्यास लगी—शोख लगी।

आराम करो—विशाँ (विश्राम) केरा।

ईश्वर का नाम लो—परमेसरे रा ना लेआ।

झूठ मत बोलो। इससे संसार में प्रेम पैदा होगा—
झूठ मौत बोल दे। प ऊई संगे संसार न प्रेम होला।

कुल्लू की कुछ अद्भुत वस्तुएँ

श्रीयुत सबजीत का कहना है कि—

(१) कुल्लू के कुछ नालों में ऐसे लंगूर पाये जाते हैं, जिनका क़द मनुष्य के बराबर है। इनका रंग सफ़ेद, मुँह काला और दाढ़ी सफ़ेद तथा लंबी होती है। आमोद-प्रमोद के लिए वन के बीच समतल भूमि पर ये क़द के लिहाज़ से एक-दूसरे का हाथ पकड़ चक्राकार खड़े हो जाते हैं। बड़े लंगूर मध्य में बैठ जाते हैं और 'बों बों' का शब्द करते हैं। तब चक्कर बाँध कर खड़े लंगूर सिर को विशेष ढंग से झुलाकर नृत्य करते हैं।

(२) दुर्गम पर्वतों के बीच कई ऐसे नाले हैं जिनमें अभी तक सभ्य मनुष्य का पाँव नहीं गया। वहाँ जंगली मनुष्य मिलते हैं। उनकी गुज़र वन-पशुओं पर है। उनका क़द मध्यम परन्तु शरीर बलिष्ठ होता है। सारे तन पर बाल होते हैं। एक मर्तबा कुछ शिकारी एक ऐसी जगह पहुँच गये जहाँ उनकी दृष्टि दो जङ्गली मनुष्यों पर पड़ी। उनमें से एक तो लेटा हुआ था और दूसरा उसके जूएँ निकाल रहा था। शिकारियों को देखते ही वे छलाँगें मारते हुए भाग गये। शिकारियों ने पीछा किया तब एक गुफा में उन्हें बड़ी बड़ी हड्डियाँ और पंख बिखरे हुए मिले। संभवतः यह उनका निवास-स्थान था।

(३) राहला और कोठी के बीच सड़क के किनारे एक पत्थर के नीचे छिद्र है। उसमें से बड़े ज़ोर की हवा निकलती है। इस हवा के निकलने का रहस्य मालूम नहीं हुआ।

(४) रोहटाङ्ग से छः मील के अन्तर पर एक पानी का सरोवर है। उसमें यदि कोई तिनका पड़ जाय तो लाल-पीले रङ्ग की छोटी छोटी चिड़ियाँ उसे फ़ौरन उठाकर ले जाती हैं।

(५) राहले से दो मील ऊपर रोहटाङ्ग पर एक पत्थर है। उसके नीचे दो-तीन साँप और छिपकलियाँ हैं। लोग उनका दर्शन करते और दूध-पेड़े चढ़ाते हैं। ये साँप काटते नहीं। कभी कभी छिपकली साँप पर सवार हो जाती है। यह दर्शन बड़ा शुभ समझा जाता है।

(६) मनाली और कलाथ के बीच कलौएट नाम का एक वन है। इसके टुकड़ा नं० ३ की बुरजी नं० ४ के निकट एक चट्टान पर केलो का एक वृक्ष है। इसे जुमलो (जमदाग्नि?) की केलो कहते हैं। इसका घेरा २० फ़ुट, छतर ११० फ़ुट और उँचाई ७० फ़ुट है। इसकी आयु एक सहस्र वर्ष कूती जाती है।

राज्य-प्रबन्ध

कुल्लू में कतिपय ग्रामों को मिलाकर एक फाटी बनाई गई है। इसमें एक नम्बरदार और एक चौकीदार रहता है। ये ग्रामवासियों के कुशल-क्षेम की सूचना सरकार में देते हैं। इनके अतिरिक्त भूमि-सम्बन्धी झगड़े मिटाने के लिए एक एक पटवारी नियुक्त है। कतिपय फाटियों को मिलाकर एक कोठी बनाई गई है। इसमें एक "नेगी" नियत रहता है। फाटी के नम्बरदार और चौकीदार इसके अधीन होते हैं। यह भूमि का लगान इकट्ठा करके राजकीय कोश में दाख़िल करता है। कतिपय कोठियाँ मिलकर 'वज़ारत' बनती है। वज़ारतों को मिलाकर तहसील बनती है। इसमें तहसीलदार, नायब तहसीलदार आदि होते हैं। इन सबका उच्च पदाधिकारी असिस्टेण्ट कमिश्नर कुल्लू में रहता है।

वापसी

१९ सितम्बर को सवेरे दुलची कण्ढी के रास्ते मंडी के लिए चल पड़े। परन्तु बजौरे से आगे तीन मील जाकर फिर वापस आना पड़ा। कारण यह कि आगे रास्ता ल्हासों के गिरने से रुका हुआ था। तब बजौरा से औट को चले। यहाँ भी तीन जगह रास्ता बहुत ख़राब था। मज़दूरों की

सहायता से खचर के मुश्किल से लँघाया। सायंकाल औट पहुँचे, और रात्रि को देवी शब्बो के चौवारे में रहे। सड़क टूट जाने से औट में खाद्य पदार्थों का अभाव-सा हो रहा था। भूँईंतर से डी० ए० वी० हाई स्कूल लाहौर के मास्टर रामप्रताप भी सपत्नीक हमारे साथ आये थे। उनको यहाँ बच्चे के लिए दूध मिलना कठिन हो गया। ६ दिन निरन्तर वर्षा होते रहने के कारण वे रोहटाङ्ग और मणिकरण भी नहीं जा सके थे।

२० सितम्बर १९३७ सोमवार को हम औट से पण्डोह को चले। परन्तु रास्ते में $\frac{१}{२}$७ और $\frac{१}{१}$७ मील के बीच एक जगह सड़क बहुत बुरी तरह से टूट गई थी। ५५ फ़ुट गहरा डङ्गा (पत्थरों को चुनकर बनाया हुआ पुल का खम्भा) गिर गया था। नीचे आशा नदी बह रही थी और ऊपर पर्वत की ऊँची चट्टान खड़ी थी। इससे कोई १० फ़ुट चौड़ी और ५५ फ़ुट गहरी खाई हो गई थी। इसको पार करना, विशेषतः खचर-टट्टू के लिए बहुत कठिन था। इसलिए वहाँ आकर रुक जाना पड़ा। खच्चर को तो हमने इधर ही ठहरा दिया, परन्तु असबाब को उठाकर खाई के दूसरी ओर ले गये। पण्डोह यहाँ से ५ मील था। इसलिए लड़कों और लड़कियों को तो हमने पैदल रवाना कर दिया ताकि पण्डोह में जाकर विश्राम करें, परन्तु मैं और श्री इन्द्रसिंह साँझ तक असबाब के पास बैठे रहें। हमें आशा थी कि कुली मिल जायँगे तो उन्हीं पर असबाब पण्डोह पहुँचा देंगे। परन्तु कुली वहाँ कहाँ! यहाँ मनाली के श्रीयुत हर्बर्ट बैनन से भेंट हुई। उनके अतिरिक्त सेंट स्टीवन्स कालेज, दिल्ली के एक अँगरेज़ प्रोफ़ेसर, काँगड़े के पादरी-साहब और दो एक अन्य सज्जनों की एक मंडली भी मिली। ये लोग लद्दाख से भी परे से बीस हज़ार फ़ुट ऊँची चोटियाँ पार करके आये थे। सायंकाल कोई ६ बजे पण्डोह से लारी आई। उसमें असबाब लेकर हम रात को पण्डोह पहुँचे। ५ मील का दो मनुष्यों का किराया ।≡)॥ लगा। पण्डोह में फिर भूपचन्द जी के ही अतिथि हुए। उन्होंने सत्कार करने में पराकाष्ठा दिखला दी।

कुल्लू-महिमा

सड़क टूट जाने के कारण कई दिन निकम्मा बैठना पड़ा था। थकान सब उतर गई थी।

२१ सितम्बर १९३७ मङ्गलवार पण्डोह ही ठहरना पड़ा, क्योंकि खच्चरवाला नहीं आ सका।

२२ सितम्बर १९३७ बुधवार को निक्का खच्चर लेकर ९ बजे पण्डोह आ पहुँचा। आज लारी भी चलने लगी। हम ९½ बजे पण्डोह से चलकर कोई १½ बजे मण्डी पहुँचे। श्री भूपचन्द जी की माता ने साथ लेने के लिए हमें भोजन बना दिया था, वह मण्डी पहुँच कर खाया।

होशियारपुर का दूसरा मार्ग

आते समय हम योगेन्द्रनगर से मण्डी आये थे, परन्तु लौटते समय हमने होशियारपुर का दूसरा ही मार्ग पकड़ा। मण्डी से ६ मील के अन्तर पर नागचलाह नाम का एक स्थान है। वहाँ पानी का एक बहुत बड़ा सरोवर (चलाह) है। पन्द्रह वर्ष पहले जब मैं यहाँ आया था तब चूड़ामणि और कमला नाम के दो भाई-बहन बालक मिले थे। उनसे आटा दाल और लकड़ी लेकर हमने भोजन बनाया था। उनसे मिलने की मुझे बड़ी लालसा थी। उन दिनों उनकी दूकान एक टूटी-फूटी झोंपड़ी थी। परन्तु अब देखा तो वहाँ बड़ी सुन्दर दूकानें बनी हुई थीं। पूछने पर मालूम हुआ, दोनों बालक अब जवान हो चुके हैं। कमला अपने ससुराल में है, चूड़ामणि कई बच्चों का बाप है। इस समय उसकी भार्या घर पर थी, वह आप कहीं बाहर गया था। नागचलाह से २ मील आगे भङ्गरौट्टू नाम का स्थान है। वहाँ मेरे एक मित्र श्री लक्ष्मणदास दूकान करते हैं। उनसे मिले बरसों हो गये थे इसलिए आज रात को उन्हीं के यहाँ विश्राम किया। उन्होंने और उनकी धर्मपत्नी ने हमारा खूब आतिथ्य-सत्कार किया। मुन्नी (सुशीला) को रास्ते में उलटी, हिचकी और दस्त की तकलीफ़ हो गई थी। डर था कि वह यहाँ तक पैदल पहुँच भी सकेगी या नहीं। परन्तु ईश-कृपा से उसकी तबीअत सुधर गई और हम निश्चिन्त होकर सोये।

२३ सितम्बर १९३७ बृहस्पतिवार सवेरे भङ्गरौट्टू से चले। भङ्गरौट्टू का सारा इलाका 'बल्ह' कहलाता है। यह पर्वत पर एक बहुत बड़ा समतल क्षेत्र है। यहाँ मैदानों की ही तरह फ़सलें होती हैं। चलते समय मालूम नहीं होता कि हम पहाड़ में घूम रहे हैं या मैदानों में फिर रहे हैं। भङ्गरौट्टू से १½ मील पर रत्ती खड्ड मिला।

यहाँ से एक रास्ता सुकेत से होकर शिमला को गया है। हमारा रास्ता दूसरा था। यहाँ से चढ़ाई शुरू हो जाती है। समतल क्षेत्र समाप्त हो जाता है। तीन मील चलने पर गलमादेवी नामक स्थान मिला। गलमादेवी से आगे ६ मील पर कलखर नाम की जगह है। यहाँ तक ९ मील बराबर चढ़ाई ही चढ़ाई है। रास्ते में दूकानें तो कई जगह मिलीं, परन्तु सब उजड़ी हुई थीं। पूछने पर मालूम हुआ कि जब से मोटरलारी चलने लगी है तब से ये दूकानें बर्बाद हो गई हैं। रास्ते में कोई मुसाफ़िर उतरता ही नहीं। इसलिए दूकानदारों की कोई बिक्री नहीं होती। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि मोटरलारी देश की बड़ी भारी हानि कर रही है। जब लोग पैदल या घोड़े पर यात्रा करते थे तब दूकानदारों को और घास-लकड़ी बेचनेवालों को आय हो जाती थी। बहुत-से देश-बंधुओं का पेट पलता था। अब मोटरलारी से सारा रुपया विदेश को चला जाता है। लोग किस्तों पर लारी ख़रीदते हैं। जितने काल में उनकी किस्तें पूरी होती हैं उतने काल में लारी घिसकर लोहे की ठठरी रह जाती है। मैंने पूछकर देखा है, लारीवालों को कुछ भी लाभ नहीं। पंजाब के कई सिक्खों ने अपनी ज़मीनें बेचकर कलकत्ते में लारियाँ बनाई हैं। परन्तु कुछ भी लाभ न होने के कारण कंगाल हो गये हैं और अब पंजाब भी वापस नहीं आ सकते। राष्ट्र का प्रचुर धन इन मोटरों के कारण व्यर्थ ही विदेश को जा रहा है और देश में दरिद्रता बढ़ रही है। मोटरलारियों ने लोगों को आलसी बना दिया है। जो पहाड़ी मनुष्य पहले तीस-पैंतीस मील की यात्रा को एक साधारण-सी बात समझते थे, अब सात-आठ मील जाने के लिए भी मोटर की प्रतीक्षा में चार-चार घंटे बैठे रहते हैं। ये लोग पाँच आने प्रतिदिन से अधिक नहीं कमा सकते और चाहें तो एक दिन में पैदल २० मील आसानी से चल सकते हैं, परन्तु अब ये पैदल न चलकर २० मील लारी में जाते हैं और इसके लिए अपनी तीन दिन की कमाई पन्द्रह आने भाड़े के रूप में दे देते हैं। जहाँ समय बहुमूल्य हो, वहाँ मोटर में यात्रा करके समय बचाना बुद्धिमत्ता है, परन्तु जहाँ समय का मूल्य कुछ भी नहीं, वहाँ मोटर की सवारी में धन का व्यय करना मूर्खता नहीं तो और क्या है!

कलखर में एक दूकान मिली। दूकानदार का नाम था मुकुन्दलाल। यहाँ दूध और फल भी थे। कलखर से रुआलसर को पगडंडी जाती है। रुआलसर एक तीर्थ-स्थान है। यहाँ एक प्राकृतिक सरोवर में घास-फूस के टीले तैरते हैं। एक बौद्ध-मन्दिर भी है। यहाँ से इसका अन्तर तीन मील है। मैं १५ वर्ष पहले इसे देख चुका हूँ। श्री इन्द्रसिंह, नरेन्द्र और रणवीर ये तीनों इसे देखने चले गये। लड़कियाँ और खचरवाला अभी पीछे ही थे। मैं दूकान में उनकी प्रतीक्षा करने को बैठ गया। जब वे आ गईं तब चाय बनाकर पी। नौ मील की चढ़ाई चढ़ने से लड़कियाँ थक गई थीं। इसलिए कुछ देर यहाँ विश्राम किया। इतने में श्री इन्द्रसिंह आदि भी रुआलसर देखकर आ गये। तब हम सब आगे चले। कोई आधा मील तक और चढ़ाई थी। उसके बाद उतराई आरम्भ हो गई। सिकन्दरे की धार (पर्वत-श्रेणी) और सीर खड्ड को लाँघकर सायंकाल 'जाहू की हट्टी' नामक स्थान में जा पहुँचे। यह जगह गलमादेवी से १६ मील थी। इससे एक मील पहले सीर खड्ड के पार भाम्बला नामक स्थान था। वह मण्डी-राज्य की सीमा है। जाहू की हाट काङ्गड़ा-ज़िला के अन्तर्गत ब्रिटिश इलाका है।

जाहू में श्री पूर्णचन्द नाम के एक सज्जन ने हमें अपने मकान का सुन्दर बराण्डा रहने के लिए दिया। यहाँ एक सराय तो थी, परन्तु एक तो वह गन्दी थी, दूसरे खाद्य-पदार्थों की दूकान से दूर थी, इसलिए हमने उसमें ठहरना उचित न समझा। जाहू में शिवराम नाम का एक व्यक्ति यू० पी० की एक स्त्री लाया हुआ है। इस स्त्री को लोग पूर्बन (अर्थात् पूर्व की) कहकर पुकारते हैं। ये दोनों पति-पत्नी होटल का काम करते हैं। कोई मुसाफ़िर आ जाय तो उसे रोटी बना देते हैं। इनका कोई नियमपूर्वक भोजनालय नहीं। हमने भी इन्हीं से भोजन बनवाकर खाया।

यहाँ एक ऐसा दृश्य देखने को मिला जिससे मेरे हृदय पर चोट-सी लगी। मैं भोजन करके ढाबे से नीचे सड़क पर आया तो क्या देखा कि एक व्यक्ति सड़क में ढाबे की दीवार से कुछ अन्तर पर सिकुड़ा हुआ बैठा है। मैं समझा, कोई चोर अँधेरे में छिपा है। मैंने उसे डाँटकर पूछा, तुम कौन हो और यहाँ इस प्रकार

दबक कर क्यों बैठे हो। उसने कहा, मैं मुसाफ़िर हूँ और ढाबे से भोजन ख़रीदने आया हूँ। मैंने कहा, फिर इस प्रकार मिट्टी में सड़क पर क्यों बैठे हो! उठकर ऊपर ढाबे में जाओ और भोजन ले लो। वह बोला, मैं 'बाहर का' हूँ। पहले तो मैं इसका कुछ अर्थ न समझा। फिर पता लगा कि वह अवर्ण है। मैंने ढाबेवाले से कहा, इस मनुष्य को तुम ऊपर क्यों नहीं आने देते। वह बोला, यह नीच जाति है। मैंने कहा, तुम अपने कपड़ों और इसके कपड़ों की ओर तो देखो। तुम्हारे कपड़े कितने गन्दे हैं और इसके कितने साफ़ हैं। मैला खानेवाला कुत्ता तुम्हारे चौके में फिर रहा है और इसे मनुष्य-प्राणी को तुम अपने निकट तक नहीं आने देते! परन्तु मेरी अपील का उस पर कुछ असर न हुआ। वह इतना ही बोला कि आप जो कहते हैं वह भी ठीक है, परन्तु हमारे यहाँ ऐसा ही रवाज है। आपके लाहौर-अमृतसर की दूसरी बात है। रात्रि को मैंने तथा श्री इन्द्र-सिंह ने यहाँ के रईस श्री पूर्णचन्द दूकानदार से जात-पाँत की बुराइयों के सम्बन्ध में ख़ूब बात-चीत की और उन्हें अपना साहित्य दिया। उन्होंने हमारे विचारों का अभि-नन्दन किया।

२४ सितम्बर १९३७ शुक्रवार सवेरे ही चल पड़े। एक मील तक चढ़ाई थी। पर्वत चील के पेड़ों से भरे हुए थे! यहाँ से १८ मील पर शुक्र खड्ड की दूकानें हैं। खड्ड कोई एक मील चौड़ा है। इसमें पत्थर ही पत्थर भरे हैं। शुक्र खड्ड से कोई ३ मील पहले बहोटा एक अच्छी जगह है। यहाँ होटल है, हलवाई की दूकान है, दूध मिल जाता है। यहाँ से शिमला को सड़क जाती है। शिमला यहाँ से ७५ मील है। हम शुक्र खड्ड को पार कर उसके दूसरे किनारे पर ठहरे। मोची से जूतों की मरम्मत कराई। यहाँ दूध मिल जाता है। रात को बहुत जाड़ा लगा।

२५ सितम्बर १९३७ शनिवार। कल धूप में चलने से बड़ी थकावट हो गई थी। इसलिए अब रात रात में ही सफ़र तय करने का निश्चय किया। सवेरे पौने दो बजे चल पड़े। पहले कुछ दूर तक चढ़ाई थी, क्योंकि रात हम खड्ड के किनारे ठहरे थे। इसके बाद उतराई शुरू हो गई। पर्वत हरे-भरे थे। चील और पारिजात पुष्प के पेड़ जगह जगह उगे हुए थे। पहले बमलू का खड्ड मिला, फिर ७ मील पर बड़सर का थाना। इसके बाद ५ मील चलने पर लढियानी आई। यहाँ दूध मिलता था और एक छोटा-सा ढाबा भी था। इसके आगे लूण खरी खड्ड और उसके आगे, लढियानी से तीन मील के अन्तर पर, बेई का पड़ाव मिला। निर्बलता के कारण हमारा असबाब का टट्टू रास्ते में गिर पड़ा। इसलिए हमें देर हो गई और कोई १० बजे बेई पहुँच सके। यहाँ दूध और आटा-दाल सब मिलता है। यहाँ पर्वत पर चील के पेड़ इतनी अधिक संख्या में हैं कि यहाँ यदि क्षयपीड़ितों के लिए आतुरा-लय बनाया जाय तो बहुत अच्छा हो। अनेक स्थानों पर सरकार ने राल के भाण्डार बना रक्खे हैं। यहाँ चील के पेड़ों में से टपका हुआ रस टीन के पीपों में बन्द करके रक्खा रहता है।

इधर छूत-छात और जात-पाँत का बड़ा ज़ोर है। एक जगह हमने दूकानदार से लेकर दूध पिया। उसने हमारा जूठा गिलास माँजने से इनकार कर दिया। अमेरिका आदि देशों में ईमानदारी का कोई भी काम बुरा नहीं समझा जाता। वहाँ लोग श्रम की प्रतिष्ठा को समझते हैं। वहाँ प्रोफ़ेसर तक फालतू समय में टट्टी साफ़ करने का काम करके पैसे कमा लेते हैं और इसे समाज कोई ऐब नहीं समझता। परन्तु भारत में जात-पाँत ने श्रम के गौरव को गिरा दिया है। यहाँ झाड़ू देना, बर्तन माँजना, टट्टी साफ़ करना, पानी भरना, बर्तन बनाना, क्षौर करना, तेल निका-लना आदि कामों को नीच समझा जाता है। इनको करने-वाले मनुष्यों को शूद्र कहकर दुतकारा जाता है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि जब तक जात-पाँत और छूत-छात का निवारण करनेवाले क़ानून नहीं बनेंगे तब तक ये सामाजिक कुरीतियाँ दूर न होंगी। सती की प्रथा, पुत्रियों की हत्या की प्रथा और विधवा-विवाह का निषेध आदि कुरीतियाँ कभी दूर न होतीं यदि ये क़ानून-द्वारा बन्द न की जातीं। यह क़ानून होना चाहिए कि जो मनुष्य दूध बेचे उसे अपने ग्राहकों के जूठे बर्तन भी साफ़ करने पड़ेंगे। श्री इन्द्रसिंह उस दूकानदार के साथ लड़ने को तैयार थे और जूठे बर्तन वैसे के वैसे छोड़कर चलने लगे थे, परन्तु दूका-नदार को अविद्यान्धकार में ठोकरें खाता समझ मैंने सूर्यबली से बर्तन साफ़ करा दिये।

२६ सितम्बर १९३७ रविवार को धूप से बचने के लिए सवेरे १ बजे बेई से चले। ६ मील पर उर्स या निगाहा नामक स्थान मिला। उसके आगे ५ मील चलकर हम ऊना में आ पहुँचे। यहीं हमें सूर्य निकला। रास्ते में पत्थरों से भरे तीन चार सूखे खड्ड मिले। धूप होती तो इस शुष्क पथरीले मार्ग को तय करना अति कठिन हो जाता। रात की ठण्डक में आसानी से ११ मील निकल आये। ऊना में हाथ-मुँह धोकर थोड़ा थोड़ा दूध पिया और चल पड़े। ऊना से पण्डोगा ७ मील पर था। हम कोई ९½ बजे वहाँ पहुँच गये। ऊना और पण्डोगा के बीच २ मील चौड़े पाट की सुआँ नदी मिलती है। इसमें हमने स्नान किया। पण्डोगा में रोटी बनवाई। फिर थोड़ा विश्राम करने के बाद आगे चल पड़े और १४ मील चलकर रात को ८ बजे पुरानी बस्ती पहुँच गये। इस प्रकार आज ३२ मील यात्रा की। श्री इन्द्रसिंह को २७ सितम्बर को दफ़्तर में पहुँचना था, इसलिए वे तड़के उठकर होशियार-पुर से लाहौर के लिए रेल पर सवार हो गये और हम कुछ दिन गाँव में विश्राम करके ४ आक्टोबर को लाहौर आ गये। इस प्रकार भगवत्कृपा से हमारी यह पर्वत-यात्रा सकुशल समाप्त हुई।

मैंने अपना यह यात्रा-वृत्तान्त इस दृष्टि से लिखा है कि मेरी स्थिति के दूसरे यात्री को भी अपनी कुल्लू-यात्रा में सहायता मिल सके।

शंघाई में शान्ति

लेखक, पंडित अनूप शर्मा, एम० ए०, एल-टी०

(सारे दिन बम-वर्षा के अनन्तर शंघाई का नगर जापानियों-द्वारा ध्वस्त और विजित किया गया। जापान की विजयोन्मत्त सेना ने संध्या के समय नगर में प्रवेश किया। रात्रि के समय युद्ध का अवसान हुआ। प्रस्तुत कविता में कवि ने आधुनिक बम-वर्षा तथा सामयिक रण-स्थल का जीता-जागता चित्र खींचा है। युद्ध की विभीषिका का दिग्दर्शन, 'शान्ति' की स्थापना तथा रात्रि में महात्मा सनयात सेन की आत्मा का प्रादुर्भाव होकर युद्ध-स्थल का निरीक्षण और उनकी भविष्य-वाणी, एक बड़े महत्त्व की चीज़ है। कवि ने हृदय कँपा देनेवाली आधुनिक युद्ध-योजना का वर्णन अच्छे ढंग से किया है।)

सारे दिवस अशान्त वायु-मंडल के ऊपर।
भर्राये नभ-यान निधनकर पातित भू पर।
ऐसा कलुषित धूम नभो-मंडल में छाया।
फाटक ही पै फटी घोर हाटक-दृग-माया।
शान्ति-सरोवर-मध्य नगर सरसीरुह-सा था।
मँडराये क्यों मधुप मृत्यु की गाकर गाथा?
अहो मनुजते! उड़ी उच्च ऊपर जितनी तू।
अधोपतित ही हुई आज भू पर उतनी तू।
घोषित होता सकल व्योम में दुरित दुराग्रह।
करता जीवन खड़ा अबल अक्रिय सत्याग्रह।

जनता सब असहाय हाय! बालक-सम-निर्बल;
झेल रही अभिमन्यु-सदृश सब सेनापति-बल।
उड़े बैंक के वृन्द, उड़े विद्यालय सारे।
उड़े विशाल निकेत, उड़े नभ-यान प्रचारे।
उड़े धाम के धाम, उड़े जन-प्राण-पखेरू।
शोणित ऐसा बहा, वही द्रव होकर गेरू।
हुआ सभ्यता का अकाल कंकाल नगर सब।
गिरे विशाल निवेश गये अबला-शिशु भी दब।
वह गंधक की गंध अंध करती जनता को।
उड़ा धूम बारूद विजित कर श्याम निशा को।

लक्ष-लक्ष नर निहत खाइयों में यों सोये।
पड़े अवलता का कलंक शोणित से धोये।
कड़ कड़ करती कड़क महाघातक मशीनगन।
भर्राहट कर रहे गगन में व्योम-यान-गण।
बरस रहीं गोलियाँ भूमि से आसमान को।
गोले बरसे प्रलय छिपाते भासमान को।
विविध प्रान्त के लोग क्रान्त हो शान्त हुए सब।
पड़ी लोथ पर लोथ गये उड़ ग्राम-गेह अब।

× × ×
× × ×

अस्ताचल पर तपन प्रकंपित दीधितिमाला।
हुआ ताम्र के रंग छिपाकर सकल उजाला।
वासर का कर अंग-भंग यों अस्त हुआ है।
यथा युगान्त त्रिलोक शोक में व्यस्त हुआ है।
हुआ निशा-मुख रक्त रात्रि बन गई कालिका।
मृतक-समूह सवार हुई वह मुंड-मालिका।
आद्या थी जो कभी आज बन गई अंतिका।
महाकाल के निकट पुरी अथवा अवन्तिका।
यह दिन ऐसा कुदिन महा दुर्दिन-सम आया।
किलक कालिका बनी भव्य भूतेश्वर-छाया।
मातायें सब कूट कूट वक्षस्थल रोईं।
वधुएँ विधवा हुईं हाय! निर्जलदृग सोईं।
शुष्क-अधर शिशु मरे नगर में शान्ति समाई।
ज्ञानीजन! यह लखो ज्ञान-विज्ञान-कमाई।
बिखर पड़ी सो आज धरातल शंघाई के।
मलवे में दब गई, गई तल में खाई के।
जब कुछ दिन के बाद यहाँ महि-शोधन होगा।
मृत आत्माओं का सयत्न उद्बोधन होगा।
तब निकलेगी यहाँ वही विज्ञान-कमाई।
करके जिसको अब प्रशान्त हैं निष्पन-भाई।
टूटे अस्त्र विदीर्ण वस्त्र जर्जरित जरा में।
कुछ इनके अतिरिक्त मिलेगा नहीं धरा में।
केवल सूखे हाड फावड़े में आवेंगे।
फट कपाल के कोष बिखर भू पर जावेंगे।

× × ×
× × ×

वर्धमान अब हुई निशा, मृत भट सोते हैं।
ओस-बुन्द के व्याज आज तारे रोते हैं।
उठा क़ब्र से प्रेत, जीव सनयात सेन का।
अब न गगन में शेष-घोष है एर-प्लेन का।
सारा नगर प्रशान्त मृत्यु की गोद सो रहा।
नीरवता का ओर-छोर में नृत्य हो रहा।
हाँ, केवल भट यत्र-तत्र दुःसह दुख-पीड़ित।
पड़े कराह रहे भू पर सब भाँति निपीड़ित।
"हाय! प्रेयसी" कह करवट अंतिम ली भट ने।
आनन को ढँक लिया मृत्यु के भीषण पट ने।

देखो कहीं स्वकीय ढूँढ़ती हैं विधवायें।
निर्बल कर से खोज रहीं निज सुत अबलायें।
कंपित चरण अनेक प्रकंपित कर से मायें।
रोतीं छाती कूट देखकर दायें-बायें।
यत्र-तत्र सनयात सेन ने सुना करुण स्वर।
महा-मर्म्म-वेधन-कर दुख-प्रद अति भीषण खर।

सुनो, रो रही दूर कौन यह सुन्दर नारी।
कहीं पा गई स्व-पति यत्न करके वह भारी।
देख रक्त-रंजित आनन अपना तन भूली।
धाड़ मार कर रुदन कर रही विपति अतूली।
बहुत खोज के बाद मिला है वक्षस्थल सो।
केशों का उपधान रहा कुछ पहले कल जो।
बड़े यत्न के बाद मिला वह है कर प्यारा।
एक मात्र जो रहा सदैव अपार सहारा।

धूलि-धूसरित देह देखकर धाड़ मारकर।
विपदा रो ही पड़ी धैर्य-अंबोधि पारकर।
रोदन सुन सनयात सेन का कँपा कलेजा।
इसके पति को अहो! समर में किसने भेजा?

इस रमणी का विरह-प्रलय इतना घातक है।
जैसे जल के स्थान करक पाता चातक है।
हिय में श्वास-समीर, नयन घन घुमड़ रहा है।
करुणा पारावार कंस में उमड़ रहा है।

शिशु गोदी में पड़ा-पड़ा रोता अजान है।
पिता कहाँ को गया स्वप्न में भी न ज्ञान है
माता उसको देख देख आगे बढ़ती है।
यथा भीति निज मत्र मृत्यु के ढिग पढ़ती है।

जीवित रमणी मृतक सुभट के मध्य सुप्त शिशु।
जीवन-मरण-विभाग होगये हैं निद्रा मिष।

× × ×
× × ×

देख दृश्य सनयात सेन का भी दिल दहला।
याद आ गया उन्हें वचन अपना वह पहला।
बोल उठे रोदन-तत्पर उस सुकुमारी से।
ढाड़स देकर बोल उठे विधवा नारी से—
"धन्य धन्य तव धव, स्वदेश-हित प्राण त्यागकर।
गया अनृत को छोड़ सत्य के धाम भागकर।
परम उच्च आदर्श मनुजता का पालनकर।
हुआ देश के हेतु वीर मरने को तत्पर।
होकर परम स्वतंत्र लड़ा स्वाधीन भाव से।
हँस हँस खेला समर-मध्य चौगुने चाव से।
निराकार हो गया अपरिचित अवकाशों में।
उसे खोजती खड़ी बावली! क्यों लाशों में।
अविदित नर को विदित सत्य शोधन करता है।
वही अमर है जो स्वदेश के हित मरता है।
कैसे-कैसे वीर भूमि पर मरे पड़े हैं।
सब स्वदेश के अंक सीस को धरे पड़े हैं!
पा स्वदेश की भूमि पड़े वक्षस्थल ताने।
प्राण उड़ गये कहाँ एक जगदीश्वर जाने!
अब न समर की हाँक जगा सकती है इनको।
क्या प्रभात की सूर्य-रश्मि लगती है इनको?
इनकी कीर्ति अनूप सकल इतिहास पार कर।
अमर काव्य के घाट सुभट गण को उतार कर।
फैलेगी सब ओर देश आंदोलित होगा।
विहगों से यह शून्य विटप कल्लोलित होगा।
आज यहाँ पर महामृत्यु का नृत्य हुआ है।
पहले कभी न हुआ, अहो वह कृत्य हुआ है।
यह भीषण संहार नगर का नगर नष्ट है।
देख देख यह कलुष कष्ट को हुआ कष्ट है।
नगर रुधिरमय हुआ रक्त के बहे पनारे।
हा! अलक्त हो रहे नदी के उभय किनारे।

चिल्लाईं नारियाँ अभ्र के कान फोड़कर।
वायु-यान सँग उड़े प्राण भट-देह छोड़कर।
संगीनों पर विद्ध देख बालक मातायें।
रो रो संज्ञा-हीन हुईं निर्बल अबलायें।
हाय! दीन की आह न हरि भी सह सकते हैं।
देखें कैसे शत्रु नग्नता निज ढँकते हैं?
मरे पड़े जो वीर यहाँ निज देश-हेतु हैं।
पारतन्त्र्य के राहु, त्याग के उच्च केतु हैं।
बुद्धिवाद यों भले क्षणिक सिद्धान्त बघाड़े।
किन्तु सदा चारित्र्य-शक्ति आती है आड़े"।

× × ×
× × ×

इतना कहकर मौन हुए सनयात अन्त में।
देखें होगा किस प्रकार का प्रात अन्त में।
रक्तबीज से विपुल वीर भू पर जनमेंगे।
फिर सब सुभट-समूह जागकर लोहा लेंगे।
जब तक दो में एक मरेगा नहीं समर में।
तब तक जाती मही रहेगी काल-कवल में।
बजता तब तक शंख रहेगा रण-सज्जा का।
पृथ्वी का परिधान-पटल होगा मज्जा का।
तब तक आहत सुभट! श्रमित हो, अब सो लो तुम।
क्यों अचेत हो पड़े, उठो पेटी खोलो तुम।
नहीं मृत्यु के अंक नींद में सोते हो।
घावों के मिष हँसो, लहू से भू धोते हो।
हुई महान् पवित्र भूमि सब चीन देश की।
गाथा रही अशेष अहो इस नाम-शेष की।
यों ही सातों गगन सदा चलते रहते हैं।
भले-बुरे फल समय-विटप फलते रहते हैं।
आज शान्ति है, आज निधन है, आज निलय है।
आज क्रान्ति है, आज मृत्यु है, आज प्रलय है।
कल सक्रिय सब देश समुच्च समुच्चय होगा।
क्षय का अक्षय ज्ञान-कोष कल यों क्षय होगा।
जलद-पटल को त्याग यथा शशि-किरण निकलती।
अथवा तम अपहाय मरीचि तपन की चलती।
सकल लोक अलोक ओकमय हो जाता है।
पारतन्त्र्य आलस्य कलुष क्षय हो जाता है।

चित्र-संग्रह

मदरास के प्रीमियर श्री राजगोपालाचारियर अपने कार्यालय में।

वर्षा में कलकत्ते की कार्नवालिस स्ट्रीट का दृश्य।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू लन्दन पहुँच गये हैं। मार्ग में उन्होंने स्पेन का युद्ध-क्षेत्र देखा और पेरिस से ब्राडकास्ट किया।

रायसाहब पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी जो संयुक्त-प्रान्त के एजूकेशन एक्सपेंसन आफ़िसर नियुक्त हुए हैं।

श्री एच० बमफ़ोर्ड, आई० सी० एस० जो मध्य-प्रान्त

महात्मा गांधी और सुभाषचन्द्र बोस—यह चित्र पिछली बार महात्मा जी के कलकत्ता जाने के समय लिया गया था।

महाराव राजा क..लाकरसिंह जी.कसौटा (बारा)। आप

द्वितीय बङ्गाल म्युज़िक कान्फ़रेंस में भाग लेनेवाले कुछ प्रमुख व्यक्ति।

पण्डित शम्भूनाथ मिश्र (लखनऊ) नृत्यकार

मिस कमलेश कुमारी (न्यू थियेटर्स)

कुमारी वत्सला कुंटीकर संगीतज्ञ

कुमारी अरुणा बागची

दुर्गा खोटे शालीन की प्रतिमा में
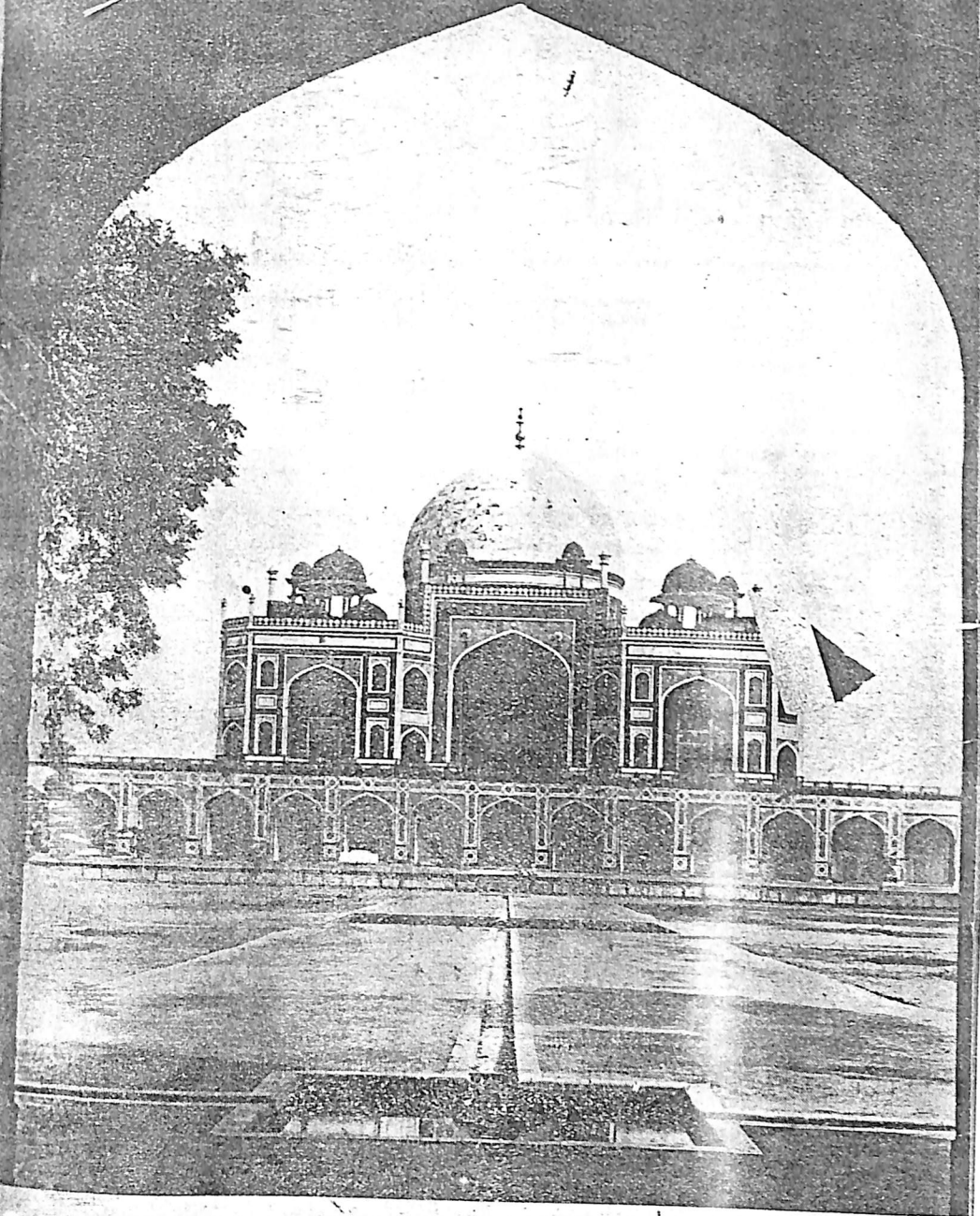
हुमायूँ का मक़बरा (दिल्ली) कहा जाता है कि ताजमहल बनानेवालों के सामने यही नमूना था।

जाग्रत नारियाँ

स्वाधीनता की भावना

लेखिका, श्रीमती अनूपदेवी

मैं ने बहुत लोगों को यह कहते हुए सुना है कि मनुष्य के जीवन में १४-१५ वर्ष की अवस्था एक जोखिम की अवस्था होती है। उस अवस्था में वह बचपन व युवावस्था के बीच में होता है, इस कारण उसकी गिनती न तो पहले में और न दूसरे में की जाती है। यह बात लड़कों के लिए तथा विदेशीय लड़कियों के लिए भले ही सत्य हो, परन्तु आधुनिक भारतीय लड़कियों के लिए तो कदापि सत्य नहीं। मैं यह कहने का साहस इसलिए कर रही हूँ कि मैं इस समय सत्रह वर्ष की हूँ और मुझे इसका अपना अनुभव है। उदाहरण लीजिए।

एक दिन किसी ने कोई हँसी की बात कही और मैंने ज़ोर से हँस दिया। बस, माता जी ने कहना शुरू किया—इतनी बड़ी हो गई है, पर अभी तक हँसने तक का शऊर नहीं आया। कोई इतने ज़ोर से भी हँसता है! ......और न जाने क्या क्या सबके सामने कहा। उनकी बातें मुझसे न सही गई और मैं कमरे में जाकर जी भर कर रोई। इसके बाद मैंने निश्चय किया कि अब कभी मैं इस तरह न हँसा करूँगी। परन्तु इसमें भी मेरी बचत न हुई। एक दिन सब लोग बैठे बातें कर रहे थे। मैं कोई बड़ों की-सी बात कह बैठी। बस, फिर डाँट पड़ी—बढ़ बढ़ कर क्यों बातें करती है? तुझे अपनी उम्र का ख़्याल नहीं

[श्रीमती यशोधरा दासप्पा जिन्होंने मैसूर-लेजिस्लेटिव असेम्बली के चुनाव में अपने विरोधी को भारी बहुमत से हराया।]

है? इत्यादि इत्यादि। अब तो मेरी समझ में ही न आ[illegible] कि मुझे किस प्रकार का बर्ताव रखना चाहिए। फिर मैंने

[बीटी स्टार्क (वायना आस्ट्रिया) की एक तेज़ महिला हैं। ये घोड़े पर सवार होकर विश्व-भ्रमण करने निकली हैं। ये ऐसी ऐसी जगहों में गई हैं जहाँ रेल या सड़क नहीं जाती। साइबेरिया, मंचूरिया आदि की सैर करने के बाद ये भारत आई। इलाहाबाद आने पर ये हमारे कार्यालय में भी पधारी थीं।]

सोचा कि बड़ों ने कहा है कि सब में भली है चुप। फलतः मैंने बात करना बहुत कम कर दिया है। फिर भी फटकार पड़ती ही रहती है कि हर समय मुँह में गुड़ की डली लिये बैठी रहती है। बात नहीं करती!

यह आयु ऐसी होती है जिसमें रोचक पुस्तकें पढ़ने की प्रबल इच्छा होती है। परन्तु जब यह कहा जाता है कि तुम्हें उपन्यास इत्यादि नहीं पढ़ने चाहिए तो यही मन करता है कि कभी कोई पुस्तक ही हाथ में न लूँ और जब मन पढ़ने को बहुत ललचा उठता है तब बड़ों की चोरी से वैसी पुस्तकें पढ़ ही लेती हूँ, जो सर्वथा अनुचित है।

जब मैं कॉलेज से आती हूँ या जिस दिन छुट्टी होती है तब पलँग पर लेट कर इच्छित पुस्तक पढ़ने में बहुत सुख मिलता है। परन्तु इच्छित पुस्तक बहुत अनुनय-विनय करने पर ही हाथ आती है।

परन्तु इतिश्री यहीं नहीं होती। जहाँ किसी ने कोई बात करनी शुरू की कि हमसे खिसकने को कहा जाता है। यह तो सभी समझ सकते हैं कि इसमें कितनी आत्मग्लानि होती है। परन्तु जब हम ऐसे बहानों से हटाई जाती हैं कि देखना महाराज ने खाना तैयार कर लिया या नहीं अथवा भैया ने नहा लिया तथा इसी प्रकार के अनेक बेतुके बहानों से, तब हमें बुरा लगता है। उस समय हम यही सोचती हैं कि क्या हम बच्ची हैं जो हमारे सामने बातें [illegible]एक-[illegible]ले

[डाक्टर मिस एल० पी० पाठक। ये उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत गई हैं।]

[लेडी इमाम (स्वर्गीय सरअली इमाम की पत्नी) जिनके सभानेतृत्व में पटना में अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन हुआ।]

करने में कुछ हर्ज है, परन्तु बड़े दर्पण में देखने से तो ऐसा नहीं प्रतीत होता। कभी हमारे अचानक कमरे में प्रवेश करने पर लोग चुप हो जाते हैं। उस समय ऐसा लगता है, मानो हमने चोरी की है। ऐसे व्यवहारों से हमें बहुत दुख होता है और हम अपने को धिक्कारती हैं। किसी किसी अवसर पर तो इस सीमा तक पहुँच जाती हैं कि इस नीच तथा व्यर्थ के जीवन को अन्त करने की इच्छा होने लगती है।

मैं अपना एक और उदाहरण यहाँ देती हूँ। मुझे टेनिस तथा तैरना सीखने का शौक़ है। परन्तु इसमें भी ऊट-पटाँग बाधा डाली गई और मैं अपना शौक़ पूरा नहीं कर सकी। जब मैं अपने भाई के साथ लड़कों के से खेल खेलने लगती हूँ तब वह भी किसी को अच्छा नहीं लगता। अब की सर्दियों की बात है। मैंने क्रिकेट खेलना आरम्भ किया। एक दिन भाग्यवश गेंद पकड़ते हुए हाथ से फिसलकर गेंद होठ पर लग गई और थोड़ा-सा ख़ून भी निकल आया। बस, इतना बहाना मिलने की देर थी, खेल बन्द कर दिया गया और मैं देखती रह गई। उसके बाद फिर मुझे कुछ खेलने को न मिला। अब भला कोई बतावे कि यह व्यवहार मुझे बुरा लगेगा या नहीं।

वस्तुतः उपर्युक्त अवस्था में लड़कियाँ डाँट खाने को बचा व काम करने को बड़ी मानी जाती हैं। घर का कोई भी काम हो उनके सिर मढ़ दिया जाता है, चाहे उन्हें और भी कितना काम करना क्यों न हो। वे तो घर के कोल्हू के बैल के समान होती हैं, बस बोलो मत। काम किये जाव, तभी तक ख़ैरियत है।

प्रश्न यह है कि यह व्यवहार और ऐसी रोक-टोक उपर्युक्त अवस्था की लड़कियों के लिए क्या वाञ्छनीय है। जब आज उन्हें स्वाधीन भावना की शिक्षा दी जाती है और उनसे आदर्श गृहिणी बनने को कहा जाता है तब उनके विकास के मार्ग में इस तरह की बाधायें क्यों डाली जाती हैं। आशा है, ऐसी लड़कियों के संरक्षक इस दिशा में भी अपना दृष्टि-कोण बदलेंगे।

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—जापान ब्रिटेन की छाती पर—अनुवादक, श्रीयुत अग्निहोत्री, प्रकाशक, एन० एल० सिंघाई, देवरी, सागर, सी० पी० हैं। मूल्य १।) है।

२—जीवनादर्श—लेखक व प्रकाशक, पण्डित ज्योतिःशरण रतूड़ी, गोदी निवास, टिहरी, गढ़वाल-राज्य हैं। मूल्य १) है।

३-५—गुरुकुल कांगड़ी की ३ पुस्तकें—

(१) अपने देश की कथा—श्रीयुत सत्यकेतु विद्यालंकार और मूल्य ॥) है।

(२) वेद-गीताञ्जलि—मूल्य २) है।

(३) विज्ञान-प्रवेशिका—(भाग पहला) लेखक, श्रीयुत यज्ञदत्त विद्यालंकार और मूल्य १) है।

६—एक कोना—लेखक, श्रीयुत रघुनाथसिंह, प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी, ज्ञानवापी, काशी हैं। मूल्य २) है।

७—प्रकाश-चिकित्सा—लेखक, डाक्टर सुधीरकुमार मुकर्जी, एम० एस-सी०, डी० फ़िल०, प्रयाग-विश्वविद्यालय, प्रयाग हैं।

८—वीर लक्ष्मण—लेखक, श्रीयुत हवलदारीराम गुप्त, प्रकाशक, हलधर एण्ड सन्स, पुरलिया हैं। मूल्य ।॥) है।

९—पुरोगामी विचार—अनुवादक, चौधरी किशनलाल अमैनी, प्रकाशक, पुरोगामी-विचारमाला, न्यू इतवारी रोड, नागपुर शहर हैं। मूल्य ॥) है।

१०-११—सस्ता साहित्य-मण्डल, दिल्ली, की २ पुस्तकें—

(१) हमारे गाँवों की कहानी—लेखक, स्वर्गीय प्रोफ़ेसर रामदास गौड़, एम० ए० और मूल्य ॥) है।

(२) भारत का नया शासन-विधान—लेखक, श्रीयुत हरिश्चन्द्र गोयल, बी० एस-सी० और मूल्य ।॥) है।

१२—शारदा-एक्ट—लेखक, श्रीयुत कुँअर चाँदकरण शारदा, प्रकाशक, शारदा-पुस्तकालय, अजमेर हैं। मूल्य ।) है।

१३—काव्य और संगीत—लेखक, पण्डित लक्ष्मीधर बाजपेयी, प्रकाशक, लक्ष्मी-आर्ट-प्रेस, दारागञ्ज, प्रयाग हैं। मूल्य ।=) है।

१४—विज्ञान या साइंस—लेखक, श्रीयुत शालग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय-औषधालय, ऐबट-रोड, लखनऊ हैं।

१५—मधु-दूती—लेखक, श्रीयुत प्रियव्रत शर्मा, प्रकाशक, काव्यकुञ्ज-पुस्तकापुर, खगौल (पटना) हैं। मूल्य ।) है।

१—प्रयाग-प्रदीप—लेखक, श्रीयुत शालिग्राम श्रीवास्तव, प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, हैं। पृष्ठ-संख्या ३३४ और मूल्य ३॥) है।

यह पुस्तक प्रयागनगर तथा प्रयाग अर्थात् इलाहाबाद-ज़िले का एक प्रकार का इतिहास है। इसमें पौराणिक-काल से लेकर वर्तमानकाल तक के प्रयागनगर तथा ज़िले के ऐतिहासिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा नीतिक आदि साधारण जीवन के प्रायः सभी मुख्य-मुख्य विषयों का एक क्रम से समावेश किया गया है। लेखक महोदय ने हिन्दी, उर्दू-फ़ारसी तथा अँगरेज़ी की कितनी ही महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक पुस्तकों का अवलोकन करके तथा ज़िले के विभिन्न भागों में घूमकर इस पुस्तक की सामग्री एकत्र की है और इसे अधिक से अधिक ज्ञातव्य विषयों से पूर्ण तथा प्रामाणिक बनाने में अपनी शक्ति भर कुछ उठा नहीं रक्खा। हर्ष का विषय है कि उन्हें इस कार्य में समुचित सफलता मिली है।

इसमें इस नगर तथा ज़िले के धार्मिक तथा ऐतिहासिक स्थानों एवं घटनाओं का विवरण दिया गया है, वर्तमान युग की लोकोपकारी तथा व्यापारिक संस्थाओं तथा व्यक्तियों का रोचक परिचय भी लिखा गया है,

प्रयागनगर तथा ज़िले के साहित्य-सेवियों और उनकी कृतियों तथा साहित्यिक संस्थाओं का भी उल्लेख किया गया है। नगर तथा ज़िले के राजा-रईसों, सेठ-साहूकारों तथा ज़मींदार-ताल्लुक़ेदारों के घरानों का तो इसमें संक्षिप्त इतिहास ही संगृहीत कर दिया गया है।

इस ज़िले के निवासियों, विशेषतः कृषकों की वास्तविक अवस्था से पाठकों को परिचित कराने के लिए लेखक महोदय ने ज़िले की भिन्न भिन्न तहसीलों में निवास करनेवाले कृषकों के सम्बन्ध के आँकड़े सरकारी बन्दोबस्त की रिपोर्टों तथा इस सम्बन्ध के अन्य काग़ज़ों से खोज कर उद्धृत कर दिये हैं। इनसे यह भली भाँति मालूम हो जाता है कि इस ज़िले में किस किस प्रकार के और कितने किसान तथा ज़मींदार हैं और उनकी कैसी अवस्था है। किस तहसील में किस जाति के कितने लोग रहते हैं और वहाँ किस जाति का बहुमत या अल्पमत है, इसका भी दिग्दर्शन कराने का लेखक महोदय ने प्रयत्न किया है। ज़िले के किस भाग में किस प्रकार की बोली बोली जाती है, इसका भी विश्लेषण इस पुस्तक में संक्षेप में किया गया है। यहाँ की किस जाति में किस प्रकार की विधि-व्यवस्था तथा नियम-पद्धति आदि प्रचलित हैं, इनका भी इसमें वर्णन है। इस प्रकार पुस्तक के सर्वाङ्गपूर्ण होने में मतभेद की गुंजाइश नहीं है।

परन्तु ऐसी खोजपूर्ण पुस्तक में कुछ भूलें हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है, जैसे—पृष्ठ २०० पर लिखा है—गंगापार और यमुनापार में दो सेर की पंसेरी और चार सेर का धरा होता है तथा मन केवल १६ सेर का ही माना जाता है। परन्तु गंगापार के नवाबगंज-परगना में जो मन प्रचलित है वह शहर के लगभग ४२ सेर के बराबर है। इसी प्रकार हलवाहों की मज़दूरी के सम्बन्ध में लिखा गया है—गङ्गापार में जो हलवाहे स्थायी नौकर हैं वे सेर भर मोटा अन्न रोज़ पाते हैं। परन्तु यह ठीक नहीं है। गङ्गापार की तहसील सोराम में हलवाहों की मज़दूरी की दर छः पाव रोज़ाना है, जो शहर के लगभग दो सेर के बराबर होता है। इन छः पावों के सिवा हलवाहों को पाव-डेढ़ पाव चबैना भी दिया जाता है। मज़दूरी की क़रीब क़रीब यही दर अस्थायी हलवाहों के लिए भी है। परन्तु जो स्थायी होते हैं उन्हें प्रतिवर्ष फ़सल तैयार होने पर खलिहान और तरी के रूप में भी कुछ अन्न मिला करता है।

पृष्ठ नं० १६९ में ब्याज की दर के सिलसिले में लिखा गया है—कहीं कहीं नौ-दसी का रवाज है। अर्थात् जो कोई ९) उधार लेता है उसको दस महीने में १०) महाजन को देना पड़ता है। परन्तु नौ-दसी प्रायः केवल दो ही चार रोज़ के लिए लड़कों के विवाह के समय चला करती है। ग़रीब लोग महाजनों से विवाह-सम्बन्धी प्रबन्ध के लिए रुपये ले लिया करते हैं, और विवाह में जो रुपया मिलता है उसमें से हर नौ रुपयों के स्थान पर दस रुपये दे दिया करते हैं। यदि लड़के के विवाह में महाजन को देने भर के लिए रुपये न मिल सके तो उस दिन नौ-दसी के हिसाब से जितने रुपये निकलते हैं, उन पर नियमित ब्याज चलता है।

पृष्ठ नं० १०७ पर लिखा है—वधू के घर पर दूसरे दिन रात को कच्चा तथा तीसरे दिन पक्का भोजन बारात को खिलाया जाता है। परन्तु ब्राह्मणों के यहाँ विवाह में किसी दिन भी कच्चा भोजन बारात को नहीं खिलाया जाता। इसके अतिरिक्त इस ज़िले की प्रायः सभी जातियों में बारात को दो ही रात टिकाने की प्रथा है, इस प्रकार तीसरी रात को खिलाने का कोई प्रश्न ही नहीं आता। सम्भव है कि शहर के कायस्थों या इसी प्रकार की अन्य जातियों में कुछ ऐसी प्रथा हो।

इस प्रकार हिन्दी के साहित्यिकों आदि का आवश्यक सावधानी से उल्लेख नहीं किया गया है, जिससे वह अधूरा ही रह गया है। लेखक महोदय को तो यह अंश और भी अधिक छान-बीन के साथ लिखना चाहिए था।

परन्तु इन कुछ मतभेद की बातों से इस पुस्तक की उपादेयता में ज़रा भी अन्तर नहीं आता और उसका महत्त्व अक्षुण्ण बना रह जाता है। वस्तुतः साहित्यिक क्षेत्र से बिलकुल पृथक् रहकर भी श्रीवास्तव जी ने जो इतना सुन्दर ग्रन्थ लिखा है उसके लिए वे हिन्दी-भाषा-भाषियों की बधाई तथा कृतज्ञता के पात्र हैं। हिन्दी-प्रेमियों को, विशेषकर इलाहाबाद के निवासियों को इस पुस्तक का संग्रह कर इससे लाभ उठाना चाहिए।

—ठाकुरदत्त मिश्र

२—श्री श्री सद्गुरुसंग—खण्ड १—लेखक, स्वर्गीय श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अनुवादक, पंडित लल्लीप्रसाद पाण्डेय, प्रकाशक श्री गौराङ्गता, २० दमीहाटास्ट्रीट, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता हैं। साइज़ सुपर रायल, सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २०८+१६ और मूल्य सजिल्द का १॥) है।

श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी जी को उनके मझले भाई ने दस वर्ष की अवस्था से ही डायरी लिखने की आदत डाल दी थी। अतएव जब ब्रह्मचारी जी ने श्री श्री विजय कृष्ण गोस्वामी प्रभु से भेंट की और दीक्षा लेकर उनके शिष्य बन गये तब नित्य अपने गुरु के चरित्रों और अपने ऐहलौकिक तथा पारमार्थिक अनुभवों का उल्लेख भी वे अपनी डायरी में करते रहे। यह क्रम उन्होंने अपने गुरु के स्वर्गारोहण के समय तक जारी रक्खा। तदनन्तर गुरु भाइयों के आग्रह से गुरु के गुणगानरूप इस चौदह वर्ष की डायरी को उन्होंने ५ भागों में बङ्ग-भाषा में प्रकाशित किया। उनका कहना था कि गुरुदेव के चरित्रों का पूरा उल्लेख कर उनका जीवन-चरित्र लिखना असम्भव है। अतएव डायरी ही प्रकाशित करना सरल समझा।

इस डायरी की लेखनशैली बहुत अच्छी है। सभी बात ऐसे रोचक ढंग से इसमें दी हैं कि एक बार पढ़ना शुरू करने पर बिना अन्त तक पढ़े मन नहीं मानता। एक उत्कृष्ट उपन्यास के प्लाट से सैकड़ों गुनी अधिक रोचक और मनोरञ्जक घटनायें इसमें मिलेंगी। अतएव कम से कम इसी दृष्टि से इस पुस्तक का पढ़ना प्रत्येक साहित्य-प्रेमी का कर्तव्य है। पाण्डेय जी की अनुवाद करने की शैली भी बड़ी सराहनीय है। भाषा रोचक, गढ़ी हुई और भावों को पूर्णतया स्पष्ट करनेवाली है।

जो बातें हम लोग सिद्धों और महात्माओं के सम्बन्ध में पढ़ते और सुनते चले आये हैं उन सभी बातों का, सिद्धियों और चमत्कारों का इस पुस्तक में उल्लेख है। शिष्य ने गुरु के सम्बन्ध में श्रद्धाभक्ति-वश होकर जो कुछ देखा और अनुभव किया उसी को लेखबद्ध भी किया है। इसलिए उन बातों के सत्यासत्य के सम्बन्ध में कुछ कहना मुश्किल है।

साधकों को इस पुस्तक के पढ़ने से यह मालूम हो जायगा कि पूर्ण ब्रह्मचर्य और मानसिक शुद्धता प्राप्त करने के लिए कितना घोर प्रयत्न करना पड़ता है, कितना सावधान रहना पड़ता है और मार्गानुसरण में कितने अध्यवसाय और दृढ़ता की आवश्यकता है।

योगसाधन का भी अनेक स्थानों पर उल्लेख है। त्राटक करनेवालों को जो अनुभव प्राप्त होते हैं वह भी विस्तृत रीति से बतलाये गये हैं। परन्तु कुछ अधिक गहरे अनुभवों का इससे पता नहीं चलता।

दीक्षा लेना और गुरु बनाना किस लिए आवश्यक है, यह पुस्तक में लिखी हुई घटनाओं से भली भाँति मालूम हो जायगा।

आशा है, इस सुन्दर पुस्तक के शेष खण्ड भी प्रकाशक महोदय शीघ्र प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे।

—(प्रोफ़ेसर) गोपालस्वरूप भार्गव, एम० ए०

३—कल्पलता—लेखक, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', प्रकाशक, गङ्गाग्रन्थागार, ३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ हैं। पृष्ठ-संख्या २२५ और मूल्य १॥) है।

यह हिन्दी के महारथी श्रीमान् हरिऔध जी की फुटकर रचनाओं का संग्रह है। सारी कवितायें २० शीर्षकों में एकत्र की गई हैं। कुल १४४ कवितायें हैं जो विभिन्न विषयों की हैं। उपाध्याय जी की सरस रचनाओं के सम्बन्ध में हमें कुछ कहने का अधिकार नहीं है। उन्होंने अपने सुदीर्घ जीवन-काल में अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाओं से हिन्दी के भाण्डार को बढ़ाया ही नहीं है, किन्तु उसे गौरवान्वित किया है। ऐसी दशा में हम सभी लेखकों में अपने इन महारथी कवि के प्रति तथा उनकी रचनाओं के प्रति आदर का भाव होना सर्वथा स्वाभाविक है। उनके इस नये संग्रह के प्रति भी हमारा ऐसा ही भाव है और कविता-प्रेमियों से हमारा अनुरोध है कि उपाध्याय जी के इस नये संग्रह का संग्रह कर उन्हें इसका अवलोकन करना चाहिए। इस संग्रह की भूमिका पंडित रामशङ्कर शुक्ल 'रसाल' ने लिखी है। उन्होंने उसमें एक जगह लिखा है कि 'उर्दू-शायरी में ऐसी अनेक पंक्तियाँ मिलती हैं, जिनके अकेले पढ़ने या सुनने से यथेष्ट आनन्द प्राप्त हो जाता है। खड़ी बोली की रचनाओं में से ऐसी पंक्तियाँ निकाली ही नहीं जा सकतीं और यदि कहीं मिलीं भी तो बहुत ही अल्प संख्या में।... हाँ, प्राचीन व्रज-भाषा कविता में ऐसी पंक्तियाँ बहुत मिलती हैं।' रसाल जी को जानना चाहिए कि खड़ी बोली

के कवि विषय और भाव के कवि हैं, 'कोरे अच्छी पंक्तियाँ' लिखने के कवि नहीं हैं।

४—यौवन के आँसू- लेखक, श्रीयुत गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र', प्रकाशक, चाँद-प्रेस, चन्द्रलोक, इलाहाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ४४१ और मूल्य ४) है। पुस्तक सजिल्द है।

इस पुस्तक की भूमिका के लेखक डाक्टर श्रीनेत का कहना है कि 'वही राष्ट्र राष्ट्र कहलाने का दावा पेश कर सकता है, जिसके पास अपने युवक तथा अपनी युवतियों का अक्षय स्वास्थ्य है।' इधर 'भारतीय युवक-समाज का स्वास्थ्य तरस खाने और रहम करने की चीज़ है।' यही सब जानकर इन्द्र जी ने यह पुस्तक लिखी है और यह वादा किया है कि 'वीर्य और रज के महत्त्व के न समझते हुए उसके साथ ठठोली करनेवाले युवक तथा उन्हीं के साथ शामिल होनेवाली युवतियों के इन पृष्ठों में वह महामंत्र मिलेगा जो उनके जीवन में सच्चे यौवन और उसके शरणागत सुखों के उनके पैर तले बखेर देगा।' जब एक डाक्टर की यह राय है तब हम इस पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह सकते। तथापि इतना तो ज़रूर ही कह सकते हैं कि इस विषय की जो और पुस्तकें हिन्दी में अब तक लिखी गई हैं, वैसी ही यह भी एक पुस्तक है और इसमें भी उन्हीं की तरह सभ्यों की भाषा में कामशास्त्र-सम्बन्धी बातें तथा तदनुकूल यौवन के स्थिर रखनेवाले डाक्टरी, हिकमतें और वैद्यक के आवश्यक नुसख़े बताये गये हैं। जिन लोगों के ऐसी पुस्तकों से अनुराग है उन्हें इस पुस्तक का भी रस लेना चाहिए।

५—गाँवों की ओर—लेखक, श्रीयुत जगदीशनारायण, प्रकाशक, युगान्तर-प्रकाशन-समिति, बाँकीपुर, पटना हैं। पृष्ठ-संख्या २०८ और मूल्य १।) है।

इधर जब से देश में ग्रामोद्धार की चर्चा छिड़ी है, उसके सम्बन्ध में अनेक योजनायें सुझाई जाने लगी हैं तथा अनेक लोगों ने उसके सम्बन्ध में पुस्तकें भी लिखी हैं। हिन्दी के लेखक भी इस सम्बन्ध में पीछे नहीं हैं और हिन्दी में भी इस विषय की कतिपय पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। यह पुस्तक भी एक वैसी ही पुस्तक है। इसमें भी ग्रामीणों की दुरवस्था की चर्चा की गई है तथा उन्हें उपदेश किया गया है कि वे अपनी खेती तथा स्वास्थ्य का सुधार करें एवं अपने बेकार समय में ऐसा कोई धन्धा भी करें जिससे उनकी आय में वृद्धि हो। ग्राम-सुधार का कार्य करनेवाले लोग इस पुस्तक से विशेष लाभ उठा सकते हैं। यद्यपि इसकी रचना बिहार की परिस्थिति के दृष्टि में रखकर की गई, तथापि अन्य प्रान्तवाले भी इससे लाभान्वित हो सकते हैं।

✓६—दोषी कौन अथवा विद्या-मन्दिर (उपन्यास)—लेखक, श्रीयुत शम्भूरत्न दुबे, बी० ए० एल-एल० बी०, प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, बाज़ार सीताराम, दिल्ली हैं। पृष्ठ-संख्या २४५ और मूल्य २॥) है।

यह एक उपन्यास है। इसमें एक पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त युवक और एक पाश्चात्य सभ्यता में ढली हुई भारतीय युवती की कथा लिखी गई है। युवक अशोककुमार विलायत से डाक्टरी की उपाधि प्राप्त करके भारत में वापस आया। विज्ञान उसका प्रिय विषय था और इसी में उसने सर्वप्रथम उत्तीर्ण होकर डाक्टरी की उपाधि प्राप्त की। उसके भारत आने के पूर्व ही उसके परिवार के सब लोग स्वर्गवासी हो चुके थे। केवल गोपी नामक एक बूढ़ा नौकर था। उसने अशोक के उसके पिता का अन्तिम सन्देशा कह सुनाया। अशोक के बम्बई के एक विश्वविद्यालय में १२००) मासिक की नौकरी मिल गई। एक दिन प्रिंसपल के आज्ञानुसार डाक्टर अशोक के भारतीय और पाश्चात्य स्त्रियों की समस्या पर व्याख्यान देना पड़ा। अशोक के इस विषय का कुछ भी अनुभव न था, पर उसने इस सम्बन्ध में अपना जो विचार प्रकट किया वह विद्यालय की युवतियों की आलोचना का विषय हो गया। वहाँ के एक रईस तारकनाथ की लड़की शालिनी तो अशोक पर मुग्ध ही हो गई और उसने अपनी वाक्पटुता से अशोक के अपने प्रेम में फाँस लिया। जाति-पाँति और माता-पिता की अवहेलना करके इस लड़की ने अशोक से शादी कर ली। उसने अशोक से कहा था कि उसके सगे-सम्बन्धी कोई नहीं हैं। अशोक ने सारा प्रबन्ध और अपना वेतन शालिनी को सौंप दिया और स्वयं अपने विज्ञान की खोज के काम में लग गया। शालिनी के अशोक के इस आचरण से थोड़े दिनों में महान् असन्तोष हुआ और अपने आमोद-प्रमोद के लिए उसने एक क्लब से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। इस बीच में उसमें तमाम तरह की बुराइयाँ आ गईं। डाक्टर उमेशचन्द्र से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया।

साथ ही उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उस पर क़र्ज़ का भी भार लद गया। अब वह डाक्टर अशोक से केवल ऊपरी ही प्रेम करती थी। अशोक के ये बातें मालूम थीं, पर वह इसके निपटारे का मार्ग न निकाल सका। एक दिन विद्यालय में उसका मुँह विज्ञान का अभ्यास करते समय जल गया और वह बेहोश होकर गिर पड़ा। होश आने पर वह अस्पताल भेजा गया। गोपी बराबर उसकी सेवा में लगा था, पर शालिनी वहाँ कभी कभी जाकर अशोक के जली-कटी सुनाकर चली आती थी।

अशोक अच्छा हो गया, पर उसका चेहरा ख़राब हो गया था। इससे शालिनी उससे घृणा करने लगी और डाक्टर उमेश के कथनानुसार उसने तलाक़ की तैयारी करनी शुरू कर दी। इस बीच में अशोककुमार शालिनी-द्वारा अपने के कुरूप कहे जाने पर विज्ञान के सहारे अपने चेहरे के सुन्दर बनाने का उद्योग करने लगा। उसने रात में चन्द्रमा के प्रकाश में खिलनेवाले वृक्षों की सहायता से सोमरस तैयार किया। जब उसने उसे पिया तब उसका चेहरा चन्द्रमा की तरह प्रकाशमान हो उठा और चेहरे के धब्बे ग़ायब हो गये। पर चन्द्रमा के प्रकाश के न रहने पर उसका मुख फिर ज्यों का त्यों हो जाता था। अशोक भी उजाले पक्ष में विधानचन्द्र के नाम से उस क्लब में आने-जाने लगा। उसकी सुन्दरता पर शालिनी मुग्ध हो गई और उसने उमेश का साथ छोड़कर विधानचन्द्र के साथ अपनी शादी करने का निश्चय किया। वह विधानचन्द्र की बातों में आकर अशोक को मार डालने पर भी राज़ी हो गई। उसने एक रात को अशोक से प्रार्थना की कि वह बँगले में रहे। अशोक ने उसकी बात मान ली। शालिनी पिस्तौल लेकर अशोक के मारने के लिए जा रही थी, पर उसने देखा कि वह विधानचन्द्र हैं! थोड़ी देर में विधानचन्द्ररूपी अशोक अपनी असली शकल में चन्द्रमा के प्रकाश के न रहने पर हो गया और शालिनी लज्जित होकर सदा के लिए अशोक की सहचरी बन गई। यही इस उपन्यास का कथानक है।

इसके पढ़ने के बाद पाठक के हृदय में पाश्चात्य सभ्यता की ओर जानेवाली शिक्षित युवक-युवतियों के आचरण का चित्र खिंच जाता है। पाश्चात्य सभ्यता की धून से शालिनी जैसी युवती अपने जीवित माता-पिता को मृतक बताने, अपने पति को वासना की पूर्त्ति के लिए छलने और उसकी हत्या करने में ज़रा भी संकोच नहीं करती। इस उपन्यास को पढ़ जाने के बाद पाश्चात्य सभ्यता की बुराइयाँ स्पष्ट सामने आ जाती हैं। शिक्षित युवक-युवतियों को इसे पढ़कर लाभ उठाना चाहिए।

७—अभिनव हिन्दीव्याकरण—लेखक, पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, प्रकाशक, श्रीयुत उपेन्द्रनारायण वाजपेयी, १०२, मुक्तराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। पृष्ठ-संख्या २२० और मूल्य १) है।

श्रीमान् वाजपेयी हिन्दी के व्याकरण के माने हुए विद्वान् हैं। आपका यह अभिनव व्याकरण अपने नाम के अनुसार ही है। सम्पूर्ण पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में वर्णविचार, द्वितीय में शब्दविचार और तृतीय में वाक्यरचना-विचार का विस्तृत विवरण है। पुस्तक के आरम्भ में कुछ आवश्यक पारिभाषिक नोट दे दिये गये हैं, जिनकी सहायता से विद्यार्थियों के व्याकरण का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने में पूरी मदद मिल सकती है। इस पुस्तक में व्याकरण के सभी विषयों का सम्यक् वर्णन किया गया है, परन्तु लिंग और कारकों के चिह्नों के समझाने में विशेष रूप से प्रयत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा सरल और बोधगम्य है। व्याकरण के विद्यार्थियों के इस पुस्तक से अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

८—पशु-चिकित्सा—लेखक, श्रीयुत राधेप्रसाद वर्मा, प्रकाशक, किसान-हितकारी-पुस्तक-माला, छपरा हैं। पृष्ठ-संख्या १३५ और मूल्य ॥।)

इस पुस्तक में मवेशियों की बीमारियों और उनकी दवाइयों का वर्णन है। पढ़े-लिखे किसान इसको पढ़ कर पशुओं की बीमारियों के बहुत कुछ पहचान सकते हैं और उनकी दवा भी कर सकते हैं। इसमें दवाइयाँ भी अधिकतर ऐसी ही लिखी गई हैं जो देहात में सुलभ हैं। इसमें गाय, बैल, भैंस, बकरा, बकरी, घोड़ा, हाथी और कुत्ते आदि के रोगों की दवाइयाँ लिखी गई हैं। इसकी भाषा सरल और बोलचाल की है। किसानों के काम की पुस्तक है।

/ ९—विचित्र जीव-जन्तु—लेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल दीक्षित हैं। पृष्ठ-संख्या ९८ और मूल्य ॥) है। मिलने का पता—गंगा-ग्रंथागार, लखनऊ है।

इस छोटी-सी पुस्तक में दुनिया के १५ विचित्र जानवरों का रोचक वर्णन किया गया है। इसके पढ़ने से बालकों को इनके सम्बन्ध की बहुत-सी बातें मालूम हो जायँगी और वे उनकी भविष्य की जानकारी के लिए सहायक होंगी। पुस्तक की भाषा सरल तथा बालकों के लिए बोधगम्य है। बालकों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

१०—स्वास्थ्य-शिक्षा—लेखक, प्रोफ़ेसर दयाशंकर पाठक गोल्ड मेडेलिस्ट हैं। पृष्ठ-संख्या २६० और मूल्य १॥) है। पता—जयपुर प्रिंटिंग वर्क्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर सिटी।

इस पुस्तक के द्वारा अच्छी अच्छी कसरतों का अभ्यास किया जा सकता है और एक कमज़ोर मनुष्य भी अपने स्वास्थ्य को आसानी से सुधार सकता है। पुस्तक की भाषा सरल और बोल-चाल की है। कम पढ़े-लिखे लोग भी इससे लाभ उठा सकते हैं। व्यायाम-प्रेमी सज्जनों को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। 'सरस्वती' के ग्राहकों के लिए एक विशेष सुविधा यह है कि उनको यह पुस्तक आठ आने में ही मिल जायगी।

११—नवीन भारतीय शासन-विधान (दो भाग)—लेखक, श्रीयुत रामनारायण यादवेन्दु, बी० ए० एल-एल० बी०, प्रकाशक, नवयुग साहित्य-निकेतन, आगरा हैं। पृष्ठ २७० और मूल्य २) है।

इस पुस्तक में भारत के नये शासन-विधान का विवरण सरल हिन्दी में दिया गया है। सम्पूर्ण पुस्तक दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में प्रान्तीय स्वराज्य का वर्णन है। इसमें प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के मंत्रियों और गवर्नरों के अधिकार बताये गये हैं तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा की रचना के सिद्धान्त आदि पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय भाग में संघ-शासन की चर्चा की गई है। इसमें देशी राज्यों के सम्बन्ध की, संघीय कार्यकारिणी, संघीय शासन-प्रबन्ध, और भारत की सेना आदि की बातों का विवरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में व्यवस्थापक-विषय-सूची दी गई है। यद्यपि लेखक महोदय ने पुस्तक को यथाशक्ति सरल लिखने का प्रयास किया है, पर विषय और क़ानूनी शब्दों की दुरूहता से भाषा कुछ कठिन हो गई है। परन्तु इसका विषय-विभाजन इस ढंग से किया गया है कि वर्णित विषय आसानी से समझ में आ जाता है। जो लोग अंगरेज़ी नहीं जानते हैं वे इस पुस्तक के द्वारा नये शासन-विधान की आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे लोग जो देश की राजनीति से प्रेम रखते हैं उन्हें तो इस पुस्तक का अवश्य ही संग्रह करना चाहिए।

—गंगासिंह

१२—मंगलघट—लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव झाँसी हैं। मूल्य २) है।

महाकवि गुप्त जी की फुटकर रचनाओं का यह एक विशाल संग्रह है। इसकी कवितायें गुप्त जी के जीवनकाल में भिन्न भिन्न समय में लिखी गई हैं और इसमें सभी तरह की कवितायें हैं, अधिकांश कवितायें जनता की रुचि के अनुकूल हैं। गुप्त जी जो कुछ भी लिखते हैं उस सबमें उनका व्यक्तित्व बोलता है और उनकी परिमार्जित, विशुद्ध और प्रांजल भाषा सदैव उनकी प्रतिभा का परिचय देती चलती है। हमारा यह विश्वास है कि हम प्रतिभाशाली महाकवि के साथ अन्याय नहीं कर रहे हैं जब यह कहते हैं कि यह संग्रह आज से २०-२५ साल पहले की काव्यधारा का प्रतीक है जब हिन्दी-संसार में कविता का आज का-सा मर्मस्पर्शी, हृदय को बेचैन कर देनेवाला स्वरूप नहीं स्थिर हो पाया था। कदाचित् उस समय 'वर्ग' और 'जनता' में भी कोई विशेष अन्तर न था। यही कारण है कि महाकवि की इन रचनाओं में जहाँ एक ओर अखिल भारतवर्षीय चीज़ें हैं, वहाँ कुछ साधारण कृतियाँ भी हैं। फिर भी महाकवि के जीवन की परिपूर्ण सादगी और सरलता से ओत-प्रोत ये प्रौढ़ कवितायें पाठकों की एक बड़ी जमात का मनोरंजन कर सकेंगी।

इस छोटी-सी पुस्तक में दुनिया के १५ विचित्र जानवरों का रोचक वर्णन किया गया है। इसके पढ़ने से बालकों को इनके सम्बन्ध की बहुत-सी बातें मालूम हो जायँगी और वे उनकी भविष्य की जानकारी के लिए सहायक होंगी। पुस्तक की भाषा सरल तथा बालकों के लिए बोधगम्य है। बालकों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

१०—स्वास्थ्य-शिक्षा—लेखक, प्रोफ़ेसर दयाशंकर पाठक गोल्ड मेडेलिस्ट हैं। पृष्ठ-संख्या २६० और मूल्य १॥) है। पता—जयपुर प्रिंटिंग वर्क्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर सिटी।

इस पुस्तक के द्वारा अच्छी अच्छी कसरतों का अभ्यास किया जा सकता है और एक कमज़ोर मनुष्य भी अपने स्वास्थ्य को आसानी से सुधार सकता है। पुस्तक की भाषा सरल और बोल-चाल की है। कम पढ़े-लिखे लोग भी इससे लाभ उठा सकते हैं। व्यायाम-प्रेमी सज्जनों को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। 'सरस्वती' के ग्राहकों के लिए एक विशेष सुविधा यह है कि उनको यह पुस्तक आठ आने में ही मिल जायगी।

११—नवीन भारतीय शासन-विधान (दो भाग)—लेखक, श्रीयुत रामनारायण यादवेन्दु, बी० ए० एल-एल० बी०, प्रकाशक, नवयुग साहित्य-निकेतन, आगरा हैं। पृष्ठ २७० और मूल्य २) है।

इस पुस्तक में भारत के नये शासन-विधान का विवरण सरल हिन्दी में दिया गया है। सम्पूर्ण पुस्तक दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में प्रान्तीय स्वराज्य का वर्णन है। इसमें प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के मंत्रियों और गवर्नरों के अधिकार बताये गये हैं तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा की रचना के सिद्धान्त आदि पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय भाग में संघ-शासन की चर्चा की गई है। इसमें देशी राज्यों के सम्बन्ध की, संघीय कार्य-कारिणी, संघीय शासन-प्रबन्ध, और भारत की सेना आदि की बातों का विवरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में व्यवस्थापक-विषय-सूची दी गई है। यद्यपि लेखक महोदय ने पुस्तक को यथाशक्ति सरल लिखने का प्रयास किया है, पर विषय और क़ानूनी शब्दों की दुरूहता से भाषा कुछ कठिन हो गई है। परन्तु इसका विषय-विभाजन इस ढंग से किया गया है कि वर्णित विषय आसानी से समझ में आ जाता है। जो लोग अँगरेज़ी नहीं जानते हैं वे इस पुस्तक के द्वारा नये शासन-विधान की आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे लोग जो देश की राजनीति से प्रेम रखते हैं उन्हें तो इस पुस्तक का अवश्य ही संग्रह करना चाहिए।

—गंगासिंह

१२—मंगलघट—लेखक, श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव झाँसी हैं। मूल्य २) है।

महाकवि गुप्त जी की फुटकर रचनाओं का यह एक विशाल संग्रह है। इसकी कवितायें गुप्त जी के जीवनकाल में भिन्न भिन्न समय में लिखी गई हैं और इसमें सभी तरह की कवितायें हैं, अधिकांश कवितायें जनता की रुचि के अनुकूल हैं। गुप्त जी जो कुछ भी लिखते हैं उस सबमें उनका व्यक्तित्व बोलता है और उनकी परिमार्जित, विशुद्ध और प्रांजल भाषा सदैव उनकी प्रतिभा का परिचय देती चलती है। हमारा यह विश्वास है कि हम प्रतिभाशाली महाकवि के साथ अन्याय नहीं कर रहे हैं जब यह कहते हैं कि यह संग्रह आज से २०-२५ साल पहले की काव्यधारा का प्रतीक है जब हिन्दी-संसार में कविता का आज का-सा मर्मस्पर्शी, हृदय को बेचैन कर देनेवाला स्वरूप नहीं स्थिर हो पाया था। कदाचित् उस समय 'वर्ग' और 'जनता' में भी कोई विशेष अन्तर न था। यही कारण है कि महाकवि की इन रचनाओं में जहाँ एक ओर अखिल भारतवर्षीय चीज़ें हैं, वहाँ कुछ साधारण कृतियाँ भी हैं। फिर भी महाकवि के जीवन की परिपूर्ण सादगी और सरलता से ओत-प्रोत ये प्रौढ़ कवितायें पाठकों की एक बड़ी जमात का मनोरंजन कर सकेंगी।

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर २४, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २५ जुलाई तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २५ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध-पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१—परमेश्वर। ४—कुबेर

८—सभ्य समाज का कार्य इसके बिना नहीं चल सकता।

१०—इससे किसान की हैसियत का पता चलता है।

११—स्नान करनेवालों में इसके प्रेमी बहुत मिलेंगे।

१२—थोड़ी बहुत रज़ामंदी।

१५—बीमारी में बहुत-से लोग इसका सहारा लेते देखे गये हैं।

१६—रुदन का उलटा। १८—नमक।

२०—बहुत-से यन्त्र इसी से चलते हैं। २१—नया।

२२—सूर्य्य देवता का एक नाम।

२५—इससे गति का बोध होता है। २८—जंगलीपन।

२९—क्षत्रियों की एक जाति।

३०—ग़रीबी भी इसका एक कारण है। ३१—प्यारा।

३३—आजकल के लोग......घर बहुत पसन्द करते हैं।

३४—इसके टेढ़ेपन में भी एक अजीब सौंदर्य्य होता है।

ऊपर से नीचे

१—एक अवस्था जिसमें जीवन भार मालूम होता है।

२—अखंड प्रवाह।

३—कलङ्क ही इसकी शोभा है।

५—पल।

६—इसके साधने से सब कुछ सध सकता है।

७—पुराने कवियों ने इसका अच्छा वर्णन किया है।

९—ऐसा गुण होने पर कार्य्य में सफलता नहीं मिलती।

१३—रथ पर चढ़कर लड़नेवाला।

१४—एक महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रंथ।

१५—शिव के उपासक इससे अपरिचित नहीं।

१७—स्वप्न १८—लङ्का

१९—असह्य

२१—इसका प्रवाह रोकना ख़तरे का काम है।

२३—हवलदार को यहाँ बैठाते नहीं बना।

२४—नया पत्ता। २७—राजा।

३०—एक प्रातःस्मरणीय देवी।

३२—इसके बिना संगीत व्यर्थ है।

अपनी यादगार के लिए वर्ग २४ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० २३ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २३ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

१ प	द	■	२ भ	३ स	म	■	४ प	र	५ ला
ठ	■	६ आ	य	सु	■	७ गि	रा	■	ल
८ न	९ उ	का	■	र	■	१० न	या	■	सी
■	वा	र	■	■	११ सू	ना	■	१२ खों	■
१३ भ	ल	■	१४ रं	१५ ग	त	■	१६ ढ	च	१७ र
ला	■	१८ स	क	र	ना	■	र	■	जा
१९ ई	२० शा	न	■	मी	■	२१ वा	का	२२ र	ई
■	२३ री	स	ना	■	२४ चा	चा	■	ज	■
२५ ह	रि	नी	■	२६ मं	ग	ल	■	२७ धा	क
२८ ठी	क	■	२९ स	ग	री	■	३० पु	नी	त

वर्ग नं० २३ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २३ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। १, २, ३ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ______

पता ______

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म २० जुलाई के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २४
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

इस लाइन से काटिए

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

वर्ग नं० २४ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

वर्ग नं० २४ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

वर्ग नं० २४ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को छोड़ दें। जो दो भेजें उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ ८६ पर देखिए।

श्रीगंगानगर
७-६-३८

श्रीमान् सम्पादक जी, सप्रेम नमस्कार।

कानपुर से भाई रामभजन तिवारी ने जो वर्ग नं० २१ पर शङ्कायें भेजी हैं उनके उत्तर में अपने विचार भेजता हूँ। मैंने अपनी वर्गपूर्ति 'सरस्वती' में छपे हुए जवाब के अनुसार नहीं की थी। किन्तु बाद में प्रत्येक पहलू से विचार करने पर मुझे वर्ग-निर्माता का उत्तर ही ठीक और युक्ति-संगत जान पड़ा।

१—"हर—घर"

बायें से दाहिने १३ नं० पर संकेत है, "...रोज़ देर से पहुँचनेवाले को प्रायः नित नये बहाने ढूँढ़ने पड़ते हैं।" यदि वाक्य को ध्यानपूर्वक पढ़ें तो यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ "रोज़" शब्द अव्यय की तरह प्रयुक्त हुआ है न कि संज्ञा की तरह। अव्यय होने पर "रोज़" का अर्थ होता है प्रतिदिन यानी हर रोज़। अब यदि हम इसके साथ "हर" शब्द लगावें तो वाक्य ऐसा अर्थ देगा "हर प्रतिदिन देर से पहुँचने......पड़ते हैं।" अतः 'हर' शब्द तो यहाँ बिलकुल ही अनुपयुक्त है। इससे तो 'घर' ही ज़्यादा ठीक है।

२—"हरवाहा—घरवाला"

नं० १३ ऊपर से नीचे देखिए। संकेत है—"कठिन मालकिन प्रायः इसके नाक में दम कर देती है।"

"मालकिन" का अर्थ होता है गृहस्वामिनी या घर-वाली यानी पत्नी। व्याकरण के अनुसार यह रूढ़ शब्द है; अतएव इसका वही अर्थ लिया जायगा जो कि रूढ़ि के अनुसार चला आता है। अतः स्पष्ट है कि "कठिन माल-किन" यानी कठोर स्वभाववाली घरवाली 'घरवाले' के ही नाक में दम कर सकती है न कि "हरवाहे" के।

३—"हाल—लाल"

बायें से दाहिने २४ नम्बर पर संकेत है, "परमात्मा न करे किसी का........बुरा हो।"

यद्यपि यह बात ठीक है कि 'बुरा हाल' का मुहावरा है। किन्तु तिवारी जी ने ध्यान से यह नहीं देखा कि "बुरा" शब्द रिक्त स्थान पर प्रयुक्त होनेवाले शब्द के बाद में है। यदि संकेत "परमात्मा न करे किसी का बुरा......हो" ऐसा होता तो 'हाल' शब्द के अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता था। किन्तु वर्तमान संकेत के अनुसार "हाल" से "लाल" शब्द ज़्यादा ज़ोरदार है। क्योंकि कुपुत्र का होना भी मनुष्य के लिए एक बड़ी भारी आपत्ति है। किसी संस्कृत कवि ने कहा है :—

> अजात-मृत-मूर्खाणां वरमाद्यौ न चान्तिमः।
> सकृद् दुःखकराबाद्यौ अन्तिमस्तु पदे पदे॥

अर्थात्—न उत्पन्न हुआ पुत्र, मरा हुआ पुत्र, और मूर्ख पुत्र (कपूत) इनमें पहले दो अच्छे हैं अन्तिम नहीं। क्योंकि वे दोनों तो सिर्फ़ एक बार ही दुख देते हैं किन्तु मूर्ख तो क़दम-क़दम पर दुख देता रहता है।

भवदीय—
सुखवासीलाल दुबे
श्रीगङ्गानगर (बीकानेर स्टेट)

हताश हर्गिज़ नहीं

मुझे आपकी पहेलियों से काफ़ी दिलचस्पी है और तभी अधिकांश वर्गों में भाग भी लेता रहा हूँ। यह बात नहीं कि मैंने कोई पुरस्कार न पाया हो; पर, हाँ; तगड़ा-सा इनाम पाने में समर्थ अवश्य नहीं हो पाया हूँ। इससे मैं हताश हर्गिज़ नहीं हुआ हूँ बल्कि मैंने तो आपको हराने और प्रथम पुरस्कार जीतने का क़सद-सा कर रक्खा है।

—हरिकृष्ण कपूर, बैंकर्स एण्ड रईस, पिलानी
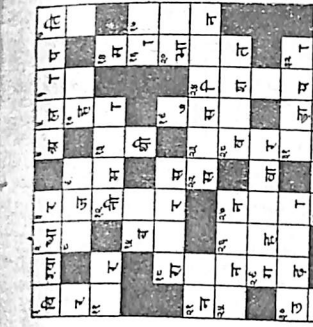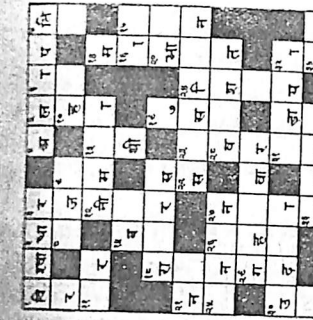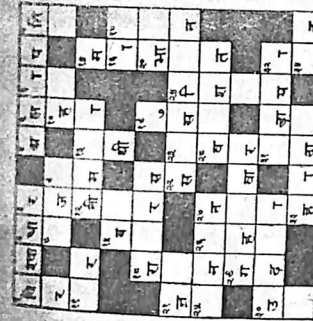
आवश्यक सूचनायें
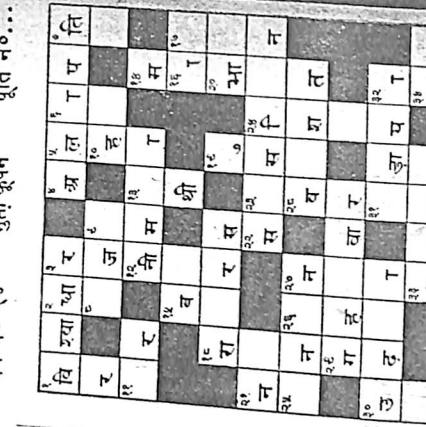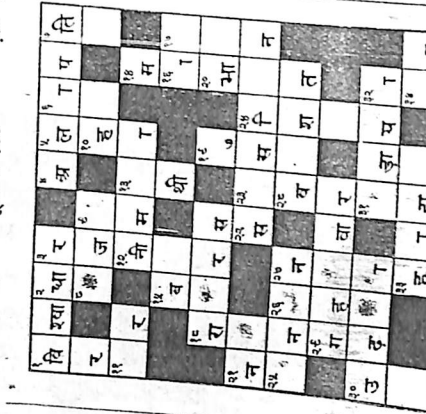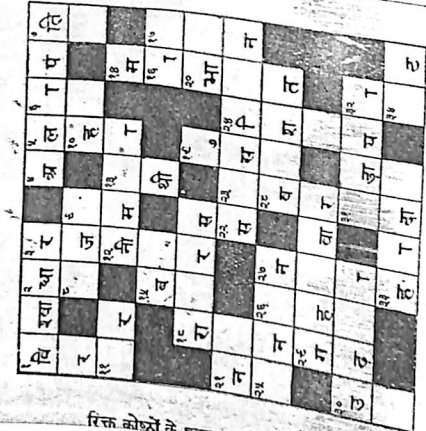
(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० २४ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर २४ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २७ जुलाई सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।
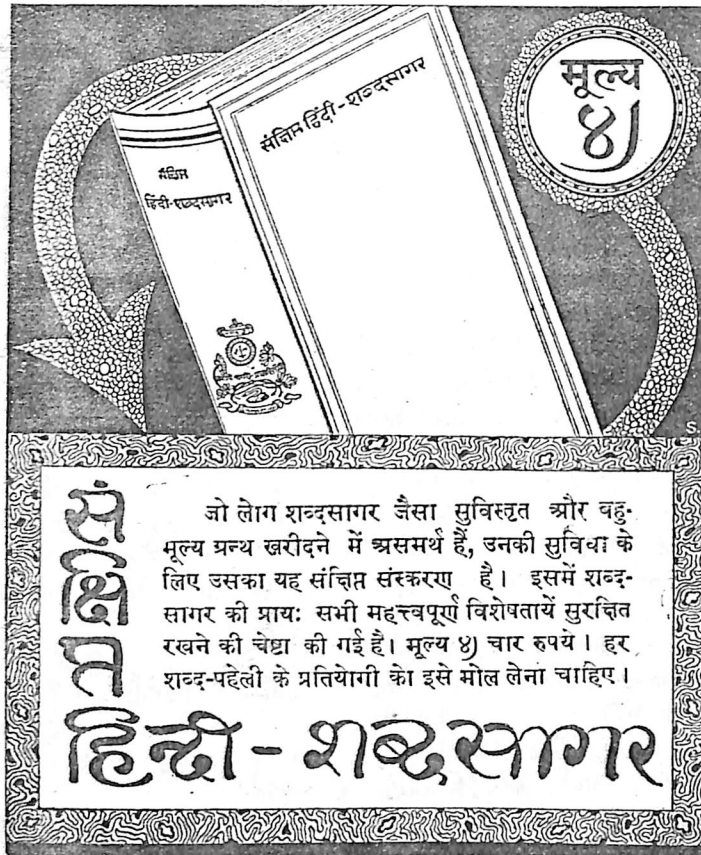
जिना बनाम जवाहर

लेखक, पण्डित मोहनलाल नेहरू

बाज़ कहानियाँ हमेशा के वास्ते सच होती हैं। एक कहानी है कि एक पण्डित ने एक कविता रची और विज्ञापन किया कि जो कोई मुझे इसका मतलब समझा देगा उसे दस हज़ार रुपये का पुरस्कार दूँगा। पूछा गया कि कहाँ से लाकर दोगे। उसने कहा कि देना तो तब पड़ेगा जब मैं उसे समझूँ भी, समझनेवाला तो मैं ही हूँ। सारांश यह कि समझौता तभी हो सकता है जब दोनों तरफ़ से वैसी नीयत हो।

जिना-जवाहरलाल का जो पत्र-व्यवहार गत जनवरी से अप्रैल तक हुआ वह अभी प्रकाशित हुआ है। यह पत्र-व्यवहार उक्त पण्डित जी की कहानी का दूसरा संस्करण है। जिना महोदय एक वक्तव्य प्रकाशित करते हैं, जिसमें कांग्रेस को बुरा कहने के पश्चात् वे जवाहरलाल जी को 'चैलेंज' करते हैं। जब जवाहरलाल उनसे दबी ज़बान पूछते हैं कि आप कृपया यह तो साफ़-साफ़ बता दें कि कांग्रेस और मुस्लिमलीग के उद्देश्यों में क्या भेद है और किस बात का उन्हें चैलेंज दिया गया है। जिना जी बिगड़ खड़े होते हैं और बिना किसी बात को साफ़ किये यह कह देते हैं कि पत्र-द्वारा इन बातों पर वाद-विवाद नहीं हो सकता। परन्तु जवाहरलाल हार न मान कर फिर उन्हें एक लम्बा-चौड़ा पत्र भेजते हैं और समझाने की कोशिश करते हैं कि जिन-जिन बातों पर कांग्रेस और लीग में मतभेद है यदि वे टाँक ली जायँ और एक-दूसरे का मतलब साफ़ मालूम हो जाय तो वाद-विवाद होकर समझौता हो सकता है। वे इस बात का विश्वास दिलाने की भी कोशिश करते हैं कि कांग्रेस पूरी तरह से ठीक शिकायतों को दूर करने में सहायता देगी, मगर इस पत्र में वे यह भी किसी सिलसिले में लिख देते हैं कि कांग्रेस तो सिवा अँगरेज़ी साम्राज्य के किसी से लड़ती नहीं, इस वास्ते आपका यह कहना कि आप कांग्रेस और उसके नेताओं से लड़ रहे हैं, शायद ठीक नहीं है, इस पत्र में ही नहीं, हर पत्र में दबी ज़बान से जिना महोदय से प्रार्थना की गई है कि वे लीग की तरफ़ से जो कहा गया है और कांग्रेस की तरफ़ से उस पर विरोध किया गया है वह सब टाँक दें ताकि उन सब पर विचार हो सके और समझौते की कोशिश की जा सके। मगर जितनी ही दबी ज़बान से (जो ख़ुशामद की हद तक पहुँचती है) जवाहरलाल जी की तरफ़ से प्रार्थना की गई है, उतनी ही कड़ी ज़बान से उसका उत्तर मिला है, यहाँ तक कि आख़िर में यह कहा गया है कि "क्या तुमने हमारी चौदह माँगें नहीं पढ़ीं, क्या तुमने मुसलमान अख़बारों में जो माँगें छपी हैं नहीं देखीं, न देखी हों तो देख लो! हम उनकी कापियाँ भेजते हैं।" हमें दुख है कि जवाहरलाल इस पर भी न समझे। शायद समझकर उन्होंने यह चाहा कि एक कोशिश और कर लें, शायद तीर लग जाय। उन्होंने बड़े परिश्रम से उन माँगों को नम्बरवार एकत्र किया। हम तो कहेंगे कि फ़िज़ूल मेहनत की। उस पत्र और अख़बारों के लेखों से ही यह स्पष्ट था कि यदि वे सब बातें कांग्रेस ही नहीं, सारा समाज भी मंज़ूर कर ले तो भी लीग को इतमीनान न होगा। क्योंकि वहाँ न तो इसकी ग़रज़ है, न जो उसके उच्च अधिकारी हैं वे वास्तव में मुसलमान-जनता के प्रतिनिधि ही हैं। और नई माँगें आस्तीन में से निकल पड़ेंगी, और माँगें भी क्या? वही मुर्ग़ी की एक टाँग कि 'मुसलमानों को यह हक़ हो वह हक़ हो' उन्हें नौकरियाँ चाहिए, सीटें चाहिए, अज़ान कहने का हक़ चाहिए, मज़हबी बातों में रोक-टोक न हो, गायकुशी का हक़ हो इत्यादि। जैसे इन बातों की आज तक उन्हें रोक ही रही है! कौन-सा महकमा ऐसा है जहाँ मुसलमान दाख़िल नहीं हो सकता या अपनी जन-संख्या के हिसाब से ज़्यादा जगहें नहीं पाये हैं। संयुक्त-प्रान्त के बाज़ महकमों में मुसलमान आधे से भी कहीं अधिक हैं! हिन्दू-सभा तक इस पर कुछ नहीं बोलती, गायकुशी तक पर झगड़ा उस वक़्त तक नहीं होता जब तक वह डंके की चोट पर केवल झगड़ा मचाने को नहीं की जाती।

हिन्दू या ईसाई या कोई भी दूसरी जाति मुसलमानों की मज़हबी बात में बाधा नहीं डालती, न आज तक डाली है। समालोचक ने अपनी आँखों से देखा है कि ३०-३५ वर्ष पहले मुहर्रम में अधिकतर हिन्दू ही ताज़ियों पर रेवड़ी और पैसे चढ़ाते। और मुहर्रम में पूरा भाग

लेते थे। हिन्दुओं में प्रत्येक धर्म को अपना लेने की आदत पुराने ज़माने से चली आई है और अब जो ताज़ियों पर रेवड़ी-पैसे चढ़ाना कम हो गया है वह केवल इस डर से कि कोई उपद्रव न खड़ा हो जाय और वे वहीं सेत-मेत मार खा जायँ। यह कभी सुनने में नहीं आया कि किसी हिन्दू ने कभी किसी के बाजा बजाने वा ताज़िया उठाने से रोका हो। फिर भी मुसलमान अख़बारों का लिखना है कि ऐसा होता है। मुसलमान क्या, किसी के धर्म में हस्तक्षेप करना अच्छा नहीं। मुसलमान के वैसा ही हक़ अपने धर्म के पालन का होना चाहिए जैसा हिन्दू या ईसाई या मूसाई के। परन्तु लीग की तरफ़ से केवल एक ही तरफ़ हक़ है, दूसरी तरफ़ नहीं। गत २५ वर्षों में जो-जो माँगें मुसलमानों की तरफ़ से नई पैदा हुई हैं उन्हें बहुत कुछ झगड़ा मिटाने के कांग्रेस ने मंज़ूर करा भी दिया, मगर वहाँ तो कलाई छूते ही पहुँचा पकड़नेवाली बात है। वही जिना महोदय और उनके अनुयायी अख़बार उठाये हैं। वे अपनी माँगें पेश कैसे करें? इसी वास्ते जवाहरलाल जी की ख़ुशामद के उत्तर में जिना महोदय क्रोध प्रकट करने के सिवा और कर भी क्या सकते थे?

फिर भी जवाहरलाल जी ने उनकी तरफ़ से माँगों का सारांश निकालकर उन्हें समझाने की कोशिश की, मगर समझनेवाला जब समझने पर तैयार हो भी। उत्तर में जिना महोदय ने साफ़ कह दिया कि "यह तो तुम्हारी मन-गढ़ंत है और तुम मेरे मुँह में वे बातें रखते हो जो तुम पैदा करते हो।" फिर भी अपनी माँगें इस तरह बताईं कि कोई समझ न सके। "मुसलमानों के दिमाग़ों में हलचल के बहुत-से कारण हैं।" वे क्या बातें हैं जो हलचल मचाये हैं, ४ महीने की चिट्ठियों के आदान-प्रदान में एक बार भी प्रकट नहीं की गईं।

जवाहरलाल जी के पत्र पढ़कर कोई भी यह कहेगा कि हर पंक्ति में जिना महोदय की ख़ुशामद की गई है और उत्तर में डाँट-डपट के सिवा कुछ नहीं मिला है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जवाहरलाल ने बड़े ज़ब्त से काम लिया, मगर किस काम का ऐसा ज़ब्त जो सारी कांग्रेस को बदनाम करे। अन्तिम पत्र में तो जिना महोदय ने कहा है कि "तुम्हारे पत्र से तुम्हारी शेख़ी या अभिमान टपकता है और कांग्रेस की लड़ाई की नीयत साफ़ मालूम होती है" और वह इस वास्ते कि "तुम मुस्लिम-लीग के जातीय संस्था समझते हो।" वाह! उलटा चोर कोतवाल को डाँट।

जब जवाहरलाल जी ने अपना प्रोग्राम बनाया था कि मुसलमानों में प्रचार कर कांग्रेस में उन्हें सम्मिलित करने की कोशिश की जायगी तब जनता में एक आशा की रेखा फैल गई थी। हिन्दूसभा तक ने इस वक्तव्य पर हर्ष प्रकट किया होगा। हिन्दू-जनता यह जानती है कि मुस्लिम-लीग न तो मुसलमान-जनता का प्रतिनिधि है, न उसके नेता या कार्यकारिणी के सदस्यों में एक भी ऐसा है जिसने मुसलमानों के वास्ते एक भी क़ुर्बानी की हो, इस वास्ते उसे इस प्रोग्राम से बड़ी आशा हुई थी। फिर न मालूम कौन-सी बुरी सायत पर जिना महोदय से समझौते का विचार पैदा हुआ! जितने दफ़े कांग्रेस या किसी नेता ने मुस्लिम-लीग को पास लाने की कोशिश की, उतनी ही दफ़े केवल गाली ही नहीं खाई, बरन वह और दूर चली गई और उसे प्रचार का मौक़ा मिला कि कांग्रेस समझौता नहीं चाहती। क्या अब भी कांग्रेसी नेता नहीं समझेंगे?

कितने ही मुसलमान नेताओं ने इस समझौते पर विरोध प्रकट किया है। कांग्रेसी मुसलमान तो कहते ही हैं। दूसरी मुसलमान-संस्थाओं को लीग बिलकुल धता ही बताया चाहती है। यदि लीग-कांग्रेस में एकता हो भी जाय तो दूसरी मुसलमान-पार्टियाँ कांग्रेस का अवश्य विरोध करेंगी और यह मानना पड़ेगा कि उनका विरोध न्याय-संगत होगा। एक तरह से ऐसे विरोध की सूचना भी कुछ लोग दे चुके हैं।

कांग्रेसी नेताओं को यह न भूलना चाहिए कि मुसलमानों में जाग्रति पैदा हो चुकी है और लगभग आधे मुसलमान संयुक्त-प्रान्त तक में कांग्रेस के साथ हैं। झाँसी, बिजनौर, मुरादाबाद, सहारनपुर और बुलंदशहर के [illegible] चुनावों से यह साबित हो चुका है, जहाँ कांग्रेसी मुसलमानों को १६,७५६ वोट और लीगी मुसलमानों को १५,८[illegible] वोट मिले। इन सब चुनावों में लीग ने 'मुसलमान-धर्म ख़तरे में है' की पुकार उठाई थी। ज़रा कांग्रेसी नेता ध्यान तो दें।
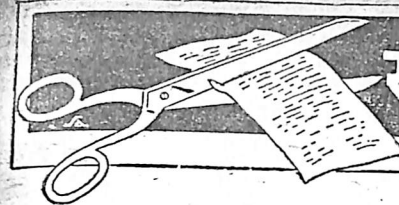
महात्मा गांधी की शान्ति-सेना की योजना

मुस्लिमलीग का अनियंत्रित साम्प्रदायिक प्रचार दिन पर दिन ज़ोर पकड़ता जा रहा है। अभी उस दिन राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस पर भी पत्थर फेंके गये। यही अवस्था रही तो दंगों का ख़तरा बना ही रहेगा। संभवतः यह बात महात्मा गांधी के भी ध्यान में है। इसी लिए उन्होंने दंगों को रोकने के लिए एक शान्ति-सेना खड़ी करने का प्रस्ताव किया है। इस सम्बन्ध में महात्मा जी ने 'हरिजन' में जो लेख लिखा है उसे यहाँ हम उद्धृत करते हैं—

कुछ समय पहले मैंने स्वयंसेवकों की एक ऐसी सेना बनाने की तजवीज़ रक्खी थी जो दंगों, ख़ासकर साम्प्रदायिक दंगों को शान्त करने में अपने प्राणों तक की बाज़ी लगा दे। विचार यह था कि यह सेना पुलिस का ही नहीं, बल्कि फ़ौज तक का स्थान ले ले। यह बात बड़ी महत्त्वाकांक्षा-पूर्ण मालूम पड़ती है। शायद यह असम्भव भी साबित हो। फिर भी, अगर कांग्रेस की अपनी अहिंसात्मक लड़ाई में कामयाबी हासिल करनी हो तो उसे ऐसी परिस्थितियों का शान्तिपूर्वक मुक़ाबला करने की अपनी शक्ति बढ़ानी ही चाहिए। साम्प्रदायिक दंगे राजनैतिक दिमाग़वालों के द्वारा खड़े किये जाते हैं। जो लोग इनमें भाग लेते हैं उनमें से ज़्यादातर उन्हीं के प्रभाव में रहते हैं। इन भद्दे साम्प्रदायिक दंगों को शान्तिपूर्वक रोकने के उपाय निकालना कांग्रेसियों की बुद्धि से परे की बात निश्चय ही नहीं होनी चाहिए। यह मैं बिना इस बात का कोई ख़याल किये कहता हूँ कि कोई साम्प्रदायिक समझौता हो या न हो, यह नहीं हो सकता कि कोई दल हिंसात्मक साधनों से ज़बर्दस्ती समझौता कराये; ऐसा समझौता संभव भी हो तो उसकी उस काग़ज़ जितनी भी क़ीमत नहीं होगी, जिस पर शायद वह लिखा जाय। क्योंकि ऐसे समझौते के पीछे आपस की समझदारी का कोई बल नहीं होगा। नतीजा यह होगा कि समझौता हो जाने के बाद भी यह आशा करना बहुत बड़ी बात होगी कि कोई साम्प्रदायिक दंगा कभी होगा ही नहीं।

इसलिए हमें देखना चाहिए कि जिस शान्ति सेना की हमने कल्पना की है उसके सदस्यों की क्या योग्यतायें होनी चाहिए।

(१) शान्ति-सेना का सदस्य पुरुष हो या स्त्री, अहिंसा में उसका जीवित विश्वास होना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब ईश्वर में उसका जीवित विश्वास हो। अहिंसक व्यक्ति तो ईश्वर की कृपा और शक्ति के बग़ैर कुछ कर ही नहीं सकता। इसके बिना उसमें क्रोध, भय और बदले की भावना रखते हुए मरने का साहस नहीं होगा। ऐसा साहस तो इस श्रद्धा से ही आता है कि सबके हृदयों में ईश्वर का निवास है, और ईश्वर की उपस्थिति में किसी भी भय की ज़रूरत नहीं। ईश्वर की सर्वव्यापकता के ज्ञान का यह भी अर्थ है कि जिन्हें विरोधी या गुण्डे कहा जा सकता हो उनके प्राणों का भी हम ख़याल रक्खें। यह इरादतन दस्तन्दाज़ी उस समय मनुष्य के क्रोध को शान्त करने का एक तरीक़ा है, जब कि उसके अन्दर का पशु-भाव उस पर हावी हो।

(२) शान्ति के इस दूत में दुनिया के सभी ख़ास-ख़ास धर्मों के प्रति समान श्रद्धा होना ज़रूरी है। इस प्रकार अगर वह हिन्दू हो तो वह हिन्दुस्तान में प्रचलित अन्य धर्मों का आदर करेगा। इसलिए देश में माने जानेवाले विभिन्न धर्मों के सामान्य सिद्धान्तों का उसे ज्ञान होना चाहिए।

(३) यह काम अकेले या जत्थों में हो सकता है। इसलिए किसी को संगी-साथियों के लिए इन्तज़ार करने की ज़रूरत नहीं। फिर भी आदमी स्वभावतः अपनी बस्ती में से कुछ साथियों को ढूँढ़कर स्थानिक सेना का निर्माण करेगा।

(४) शान्ति का यह दूत व्यक्तिगत सेवा-द्वारा अपनी बस्ती या किसी चुने हुए क्षेत्र में लोगों के साथ ऐसे

सम्बन्ध स्थापित करेगा जिससे जब उसे भद्दी स्थितियों में काम करने पड़े तो उपद्रवियों के लिए वह बिलकुल ऐसा अजनबी न हो जिस पर वे शक करें या जो उन्हें नागवार मालूम पड़े।

(५) यह कहने की तो ज़रूरत ही नहीं कि शान्ति के लिए काम करनेवाले का चरित्र ऐसा होना चाहिए जिस-पर कोई अँगुली न उठा सके और वह अपनी निष्पक्षता के लिए मशहूर हो।

(६) आम तौर पर दंगों से पहले तूफ़ान आने की चेतावनी मिल जाया करती है। अगर ऐसे आसार दिखाई दें तो शान्ति-सेना आग भड़क उठने तक का इन्तज़ार न कर तभी से परिस्थिति को सँभालने का काम शुरू कर दे जब से उसकी सम्भावना दिखाई दे।

(७) अगर यह आन्दोलन बढ़े तो कुछ पूरे समय काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओं का इसके लिए रहना अच्छा होगा, लेकिन यह बिलकुल ज़रूरी नहीं कि ऐसा ही हो। ख़याल यह है कि जितने भी अच्छे स्त्री-पुरुष मिल सकें उतने रक्खे जायँ। लेकिन वे तभी मिल सकते हैं जब स्वयं-सेवक ऐसे लोगों में से मिलें जो जीवन के विविध कार्यों में लगे हुए हों, पर उनके पास इतना अवकाश हो कि अपने इलाक़ों में रहनेवाले लोगों के साथ मित्रता के सम्बन्ध पैदा कर सकें तथा उन सब योग्यताओं को रखते हों जो शान्ति-सेना के सदस्य में होनी चाहिए।

(८) इस सेना के सदस्यों की एक ख़ास पोशाक होनी चाहिए जिससे कालांतर में उन्हें बिना किसी कठिनाई के पहचाना जा सके।

ये सिर्फ़ आम सूचनाएँ हैं। इनके आधार पर हर एक केन्द्र अपना विधान बना सकता है।

कहीं कोई झूठी उम्मीदें न बाँध बैठें, इसलिए कार्य-कर्त्ताओं को मुझे यह चेतावनी ज़रूर दे देनी चाहिए कि शान्ति-सेना के निर्माण में मैं कोई अमली भाग न ले सकूँगा। इसके लिए मेरे पास न तो वैसा स्वास्थ्य है, न शक्ति और न समय ही है। मेरे लिए तो आज उन्हीं कामों को करना भारी पड़ रहा है जिन्हें छोड़ने की मुझे हिम्मत नहीं होती। मैं तो केवल चिट्ठी-पत्री या लेखों के द्वारा ही रास्ता दिखा सकता या सूचनायें दे सकता हूँ। इसलिए जो लोग इस विचार को पसन्द करें और अपने में इसे करने की योग्यता महसूस करें, ख़ुद उन्हीं को यह काम उठाना चाहिए। यह मैं जानता हूँ कि इस प्रस्तावित शान्ति सेना की संभावना ख़ूब है और यह विचार ऐसा है जिस पर बड़ी अच्छी तरह अमल किया जा सकता है।

श्री जिन्ना के साथ पत्र-व्यवहार

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू और राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस का श्री जिन्ना के साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ था वह प्रकाशित हो गया है। 'आज' ने अपने एक अग्रलेख में इस पत्र-व्यवहार की निःसारता पर खेद प्रकट करते हुए लिखा है—

इन पत्रों को देखने के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि पण्डित जवाहरलाल तथा गांधी जी ने श्री जिन्ना से पत्र-व्यवहार निरर्थक ही किया। हम जब श्री जिन्ना के पत्रों को पढ़ते हैं और दूसरी ओर गांधी जी और जवाहरलाल जी के पत्रों को देखते हैं तो हृदय को गहरी ठेस लगती है।

हम समझने में असमर्थ हो रहे हैं कि इससे कौन-सा विशेष लाभ हुआ। एक बात अवश्य हुई। वह यह कि श्री जिन्ना की मनोवाञ्छा पूरी हुई और एक ऐसे व्यक्ति को, जिसकी उपेक्षा करना ही उचित था, अकारण महत्त्व मिल गया। इन पत्रों से मालूम होता है कि श्री जिन्ना के मस्तिष्क में केवल एक बात काम कर रही थी और वह यह कि किसी प्रकार हम पण्डित जवाहरलाल तथा गांधी जी जैसे व्यक्तियों को जिनको आज अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में स्थान प्राप्त है, नीचा दिखावें और उनके साथ ऐसा व्यवहार करें जिसे देखकर संसार यह समझे कि इन लोगों को श्री जिन्ना के सामने झुकना पड़ा। जिन्ना ने समझा है कि इसी प्रकार वे संसार में महत्त्व पा सकेंगे। आपके पत्रों की दूसरी विशेषता यह है कि आप सौजन्यपूर्ण शब्दों का प्रयोग करना और साधारण भलमन्सी का बर्ताव करना भी नहीं जानते। एक एक शब्द से उद्दण्डता, निन्दनीय दम्भ और उपहास अहंकार प्रकट होता है। तीसरी विशेषता यह है कि आप उन प्रश्नों को जिन्हें हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का मूल कहा जाता है, सामने रखने से सर्वदा अपने को बचाते रहे हैं। व्यंग्य, कटाक्ष और कुटिलतापूर्ण भावों से भरे हुए एक एक

वाक्य श्री जिन्ना के असली स्वरूप को प्रकट कर रहे हैं। इन पत्रों को देखने के बाद हमारी वह धारणा दृढ़तर हो गई, जिसे हम बार बार इन स्तम्भों में प्रकट कर चुके हैं। हम अनेक बार कह चुके हैं कि श्री जिन्ना उन व्यक्तियों में हैं जो धूल में रस्सी बट करके भी अपनी लीडरी क़ायम करना जीवन का एकमात्र लक्ष्य समझते हैं। हम यह भी कह चुके हैं कि आप कोई न कोई झगड़ा पैदा करके भी उसका अस्तित्व इसलिए बनाये रखना चाहते हैं ताकि आपकी पूछ होती रहे। वस्तुतः हिन्दू-मुसलमानों में सम-झौता कराने का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि श्री जिन्ना और उनके अनुयायी समझौता चाहते ही नहीं। वे लड़ाई चाहते हैं, साम्प्रदायिकता को भड़काना चाहते हैं और काल्पनिक प्रश्नों को उत्पन्न करके एक समस्या खड़ी कर देना चाहते हैं ताकि उनका रङ्ग जम जाय।

विश्वसाहित्य और उसके निर्माता

'कर्मवीर' में विश्वसाहित्य और उसके निर्माताओं के सम्बन्ध में 'एक जिज्ञासु विद्यार्थी' ने एक बहुत ही ज्ञातव्य और मनोरञ्जक लेख प्रकाशित कराया है। नीचे हम उसके कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

जब जर्मन कवि श्री हिटलर ने ७०वीं जन्म-तिथि पर रोम्याँ रोलाँ की ओर से बधाई का पत्र पाया तब उन्होंने उसके जवाब में लिखा—

"हम बहुत-से अंशों में एक-दूसरे से आत्मिक तौर पर सम्बद्ध हैं। और हमारे लेखन तथा जीवन में भी कितनी चीज़ें एक-सी हो चली हैं। मेरी पत्नी ने जब तुम्हारा 'जान क्रिस्टोफ़र' पढ़ा, वह एक-दम चिल्ला पड़ी—आश्चर्यजनक! यह तो बिलकुल ऐसे लिखी गई मानो तुम्हीं ने यह पुस्तक लिखी हो!!"

× × × ×

"यह केवल सम्पादन-कला थी जिसने मेरा मनो-जगत् तैयार किया, जिसने मुझे मानव पदार्थ में वह परखने की समझ दी जहाँ से राजनीति के सूत्र जन्म लेते हैं और सबसे अधिक इस पत्र कला ही की बदौलत हुआ कि मैंने कठोर श्रम कर सकने का वरदान पाया।" आज के इटाली के तानाशाह मुसोलिनी की अपने गत पत्रकार-जीवन के संस्मरण की ये पंक्तियाँ हैं। जब मुसोलिनी 'अवन्ती' के सम्पादक थे तब उसने अपने घर पर एक बोर्ड पर यह लिख रक्खा था—

"जो सदा मेरे पास अन्दर आ जाया करते हैं वे निस्सन्देह मुझे सम्मान देते हैं, परन्तु जो मेरे पास नहीं आते वे मुझे सुख पहुँचाते हैं।"

× × × ×

महात्मा लेनिन ने मरने से दो दिन पहले अपनी पत्नी से कोई कहानी सुनाने को कहा। उसने 'लव आफ़ लाइफ़' नामक एक सामयिक कथा कही;—घने बर्फ़ीले स्थान में जहाँ कोई प्राणी पैर तक रखने की हिम्मत नहीं कर सकता, एक भूख से मरता हुआ बीमार आदमी एक बड़ी नदी में बन्दरगाह बनाने का असफल प्रयत्न किया चाहता है। उसकी शक्ति ख़तम हो चुकी। चल वह नहीं सकता, पर रेंगता है और लो, उसके बाज़ू से ही भूखों मरता एक भेड़िया आ निकला। दोनों में ख़ूँख़ार द्वन्द्व हुआ, पुरुष जीत जाता है। यों, आख़िर अधमरा होकर वह जीवन-यात्रा समाप्त कर गया।

कहते हैं, लेनिन ने अपने प्राणपखेरू उड़ते उड़ते तक यही कहानी बार बार सुनी और उसकी मौत बड़ी प्रसन्नता से हुई!

× × × ×

विज्ञान के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए दृष्टिकोण ने सभ्यता और बर्बरता को नज़दीक ही नहीं ला खड़ा कर रक्खा है, बरन बर्बरता ही सभ्यता करार दे दी गई है। विद्वान् अँगरेज़ विचारक श्री बर्ट्रेन्ड रसेल लिखते हैं—आज भी बिलकुल मजे हुए सभ्य और शरीफ़ अँगरेज़ लोग अफ़्री-क़नों को इतना अधिक कोड़ों से पीटते हैं कि वे पीड़ा से घंटों अबोली अवस्था में पड़े रहकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर जाते हैं। आधुनिक सभ्य जगत् का यह आदर्श चित्र है!

× × × ×

"इँग्लैंड, जर्मनी, फ़्रांस और बेलजियम में कोई बुक-स्टाल ऐसा नहीं देखा गया जिसमें अपने अपने वहाँ की भाषाओं में अनूदित रवीन्द्रनाथ ठाकुर की पुस्तकें नहीं देखी गई।" लीडर के विद्वान् सम्पादक श्री चिन्तामणि जी अपनी पुस्तक "इंडियन पालीटिक्स सिन्स म्यूटिनी" में लिखते हैं—"एक नार्वे के सज्जन ने जिनके साथ मुझे पेरिस

से वर्सैलीज़ जाने का संयोग हुआ— बताया कि टैगोर का नाम हमारे देश में पारिवारिक नाम हो गया है ! उसने भाषावेश में यह भी प्रकट किया कि टैगोर के देशवासी तो सर्वश्रेष्ठ विद्वान् होते होंगे। जब मैंने उससे कहा कि निरक्षरता हमारे देश का महापाप है तब वह आश्चर्य से बोल उठा—क्या टैगोर के देशवासी और निरक्षर !! नहीं, झूठ; हो नहीं सकता !

'ये पत्थर हमें पथ से विचलित न कर सकेंगे'

श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस और उनके १५ साथियों पर मुस्लिमलीगवालों ने उनके टिपरा के दौरे में पत्थर फेंके थे। इस सम्बन्ध में घटना के बाद ही एक सभा में भाषण करते हुए उन्होंने जो कहा है उसका सारांश हम नीचे उद्धृत करते हैं—

चूँकि टिपरा एक ऐसा ज़िला है जहाँ अधिक से अधिक मुस्लिम कांग्रेसी विचार के हैं इसलिए मेरे वहाँ आने पर उन लोगों ने (मुसलमानों ने) तैयार किये जानेवाले प्रोग्राम में विशेषरूप से भाग लिया। इस बात से मुस्लिमलीगवालों को बड़ी जलन हुई और उन लोगों ने मेरे स्वागत में विघ्न डालने के प्रयत्न किये। जहाँ मेरे स्वागत के लिए जनता की अपार भीड़ लगी हुई थी उसके पृष्ठ भाग पर केवल काले झण्डे लिए कुछ शरारती मुस्लिम खड़े हुए थे, जिससे यह साफ़ प्रकट होता था कि प्रान्त के इस भाग में कितने व्यक्ति मुस्लिमलीग के अनुयायी हैं। आज सवेरे 'ब्राह्मण-बरिया' की ओर से मेरा जो स्वागत हुआ वह टिपरा के पूर्व-परम्परा के अनुकूल था और इसको देखकर मुस्लिमलीगवालों को इतना अधिक क्षोभ हुआ कि वे वस्तुतः बौखला उठे और जब जलूस, जिसके मध्य में मेरी मोटरगाड़ी थी, स्टेशन-रोड से होकर आगे बढ़ा तब मुस्लिमलीगवालों की एक भीड़ ने जलूस पर ईंट-पत्थर फेंकना आरम्भ कर दिया, जिसके कारण हम लोगों में से १५ व्यक्ति घायल हो गये। इस प्रकार के गुण्डेपन से मुस्लिमलीग-द्वारा प्रचारित किये आपत्तिजनक कार्यों की हद हो गई। इस तरह के आपत्तिजनक कार्य इधर कुछ दिनों से मुस्लिमलीगवाले टिपरा-ज़िले में कर रहे हैं। वे लोग कांग्रेसी मंत्रियों के विरुद्ध सरासर झूठा प्रोपेगेण्डा कर रहे हैं, जिनके द्वारा वे यह प्रचारित करते हैं कि कांग्रेसी मंत्रिमंडल अपने अपने प्रान्तों में मुसलमानों के प्रति दुर्व्यवहार कर रहे हैं।

मैं देखता हूँ कि भारत के कुछ प्रान्तों में स्थिति इतनी गम्भीर हो गई है कि इसके लिए मुझे चेतावनी देना आवश्यक हो गया है। मैं इस प्रकार के कार्यों से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों से यह साफ़ साफ़ कह देना चाहता हूँ कि ईंट-पत्थर फेंकने तथा दंगे से हम लोग अपने आधारभूत सिद्धान्तों तथा नीतियों से अथवा उस मार्ग से जिसको हम लोगों ने अपने लिए निर्धारित किया है, विचलित नहीं हो सकते। यों कहिए कि हम लोगों पर फेंके जानेवाला एक एक पत्थर हमारे इच्छित ध्येय की प्राप्ति के मार्ग में सफलता के चिह्न होंगे। कांग्रेस में कार्य करनेवाले अपने सहकारियों को मैं एक सलाह देना चाहता हूँ। भय है कि ज्यों-ज्यों जनता की शक्ति नित्य प्रति बढ़ रही है उसी के अनुपात से मुस्लिमलीगवाले हताश होने लगे हैं और वे उसी प्रकार पागल हो उठेंगे जैसा कि वे ब्राह्मण-बरिया में पागल हो गये थे। किन्तु हम लोगों को उनके रोष का मुक़ाबिला शान्ति से, उनके गुण्डेपन का मुक़ाबिला अपनी सहिष्णुता से, उनकी घृणा का मुक़ाबिला अपने प्रेम से करने का संकल्प कर लेना चाहिए। ऐसा करने से ही हम लोग अपने सत्य तथा अहिंसा धर्म के प्रति अपने को सच्चा प्रमाणित कर सकेंगे।

कल ब्राह्मण-बरिया के कुछ स्थानीय मुसलमानों के द्वारा जलूस में ईंट-पत्थर फेंके जाने के उपरान्त जो वक्तव्य प्रकाशित किया उसके अनन्तर मैंने एक सार्वजनिक सभा में भाषण किया, जो मेरे चटगाँव के दौरे के समय की सबसे विराट् सभा थी। उस सभा की उपस्थिति काफ़ी अच्छी थी और वहाँ एकत्र होनेवाले व्यक्तियों में आगे मुस्लिम थे। उस समय मैंने यह अनुभव किया कि कुछ मुस्लिमवर्ग यह क्यों इच्छा रखते हैं कि मैं ब्राह्मण-बरिया का दौरा न करूँ तथा वे लोग कांग्रेस-प्रोपेगेण्डा से इतना क्यों घबरा गये हैं। मुझे कुछ ऐसे परचे दिखाये गये जो उन मुसलमानों के द्वारा वितरित किये गये थे। उन परचों में कांग्रेस के विरुद्ध झूठे तथा कुत्सित आरोप लगाये गये थे। एक परचे में लिखा गया था कि कांग्रेस ९ करोड़ मुसलमानों को ग़ुलाम बनाकर 'हिन्दू-राज' स्थापित करने पर तुली है। समस्त कांग्रेसी सरकारवाले प्रान्तों में मुसलमानों का जीवन, जायदाद, धर्म तथा मर्यादा भारी ख़तरे में पड़ गई है। उन परचों में आगे कहा गया था कि बङ्गाल-असेम्बली ने जो हाल में ही आराज़ी-बिल पास किया है उसे कार्यान्वित होने देने की ज़िम्मेदारी कांग्रेस पर ही है। मैं मुस्लिमलीगवालों को चुनौती देता हूँ कि वे उक्त बिल-सम्बन्धी इन झूठे आरोपों को प्रमाणित करें। यह केवल बङ्गाल-मन्त्रिमण्डल की दुर्बलता है, जिसके कारण उक्त बिल पर गवर्नर की स्वीकृति नहीं प्राप्त हो रही है। यदि बङ्गाल के मन्त्रिमण्डल में बहादुरी हो जैसा कि युक्त-प्रान्त तथा बिहार के मन्त्रिमण्डलों ने दिखाई है, तो निश्चय ही बङ्गाल के गवर्नर उक्त बिल को अस्वीकृत करने का साहस न करेंगे। कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों के विरुद्ध किये गये झूठे आरोपों के सम्बन्ध में मैंने उपस्थित जनता का ध्यान दिलाया कि कुछ महीने पूर्व मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने बङ्गाल-मन्त्रिमण्डल को उन आरोपों को सत्य प्रमाणित करने के लिए चुनौती दी थी। किन्तु अब तक उसकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिल सका है।

शराबबन्दी का प्रभाव

मद्रास-सरकार की ओर से सलेम ज़िले में शराबबन्दी का काम जारी है। थोड़े ही समय में इसका जो प्रभाव देखा गया है वह आनन्दवर्धक है। लोगों की आर्थिक स्थिति सुधरी है और उनके सुख और आनन्द में वृद्धि हुई है। इस सम्बन्ध में मद्रास-सरकार ने एक विज्ञप्ति भी प्रकाशित की है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

लोगों के जीवन पर आर्थिक प्रभाव बदस्तूर अच्छा रहा है। एक रेवेन्यू डिविज़नल अफ़सर ने रिपोर्ट की है कि शराबबन्दी के कारण क़िस्त की वसूली में आसानी मालूम हुई है। कुछ गाँव जो पहले हुल्लड़बाजी के लिए बदनाम थे, अब ख़ामोश और शान्त हैं। स्त्रियों व बच्चों की स्थिति में सुधार बदस्तूर जारी है।

मितव्ययिता या किफ़ायतसारी का आन्दोलन फैल गया है और बाँटी जानेवाली हुण्डीपेटियों की तादाद बढ़ गई है। कलक्टर लिखते हैं—कई एक गाँवों में मितव्ययिता-दिवस मासिक त्योहार से बनते जा रहे हैं। इन मौक़ों पर भजन, नाटक, ग्रामीण खेल और दूसरे मनोरञ्जन की व्यवस्था की जाती है और इनसे मितव्ययिता को प्रोत्साहन देने और मद्यपान की ओर से ध्यान हटाकर दूसरी चीज़ों की ओर आकर्षण होने का दुहरा काम सधता है।

ग्राम-जीवन को ख़ुशनुमा बनाने के प्रयत्न किये गये। रासीपुरम् के ग्रामोद्धार-स्कूल का जो इस समय चालू है, मुख्य उद्देश्य ऐसे नौजवान तैयार करना है जो गाँवों में अच्छे-अच्छे मनोरञ्जनों की व्यवस्था कर सकेंगे। सिनेमाओं की तादाद बढ़ रही है और लोगों की आमद तरक़्क़ी पर है, और जब रेडियो लग जायँगे तब वे शाम के उस समय को भी ख़ुशगवार बना देंगे, जो पुराने पियक्कड़ों के लिए मुश्किल से गुज़रता है। जगह जगह चलते-फिरते नाटकों में वृद्धि होने की भी इत्तिला मिली है। पोथनूर में पहले के एक ताड़ी के दूकानदार ने उसी जगह, जहाँ पहले उसकी दूकान थी, एक सिनेमा खोला है। यह एक गश्ती शामियाना तम्बू—है, और इसलिए वहाँ के लोगों के उकता जाने पर उसे दूसरी जगह ले जाने की सोचता है। स्पेशल डेवलपमेण्ट अफ़सर ने कुछ केन्द्रों में सैर करने के लिए बाग़ और वाचनालय खुलने की इत्तिला दी है।

मीठी ताड़ी के चुआने का मौसम ख़त्म होनेवाला है, और चुआने पर अत्यन्त सफलतापूर्वक नियन्त्रण रक्खा जा सकता है। ग़ैरक़ानूनी तौर पर शराब बनाये जाने के कोई ऐसे आसार दिखाई नहीं दिये जो किसी प्रकार भय के कारण हों, और ज़िले में शराब का ख़र्च नगण्य-सा रहा है। लेकिन दूसरी तरफ़ गाँजे पर नियंत्रण रखना बहुत मुश्किल साबित हुआ। ख़ुशक़िस्मती से शराब के पुराने पियक्कड़ों के मुक़ाबिले में गँजेड़ियों की तादाद बहुत कम है। यह तो समय ही बतलायगा कि गाँजे का पीना बिलकुल बन्द कर देना सम्भव है या नहीं।

एक पादरी का मर्मस्पर्शी पत्र

विलायत में 'फ्रेंड्स आफ़ इण्डिया' सोसाइटी नाम की जो समिति है उसके मुख-पत्र 'इण्डिया-बुलेटिन' के मई के अंक में भारत-हितैषी रेवरेण्ड जार्ज एच० जोन्स की एक चिट्ठी छपी है। उसका आशय हम 'आज' से उद्धृत करते हैं—

मैं क़रीब ५० शहरों और गाँवों में घूमा हूँ, सर्वत्र एक ही लक्षण देखा है। सब जगह अधभूखे, और घोर दरिद्रता तथा रोग व्याधिग्रस्त और मरणासन्न किसान मिले हैं। साम्राज्यवाद ने करोड़ों ग्रामवासियों का रक्त चूस लिया है। इस साल अच्छी फ़सल नहीं हुई है, आम और महुआ की फ़सलें नष्ट हो गई हैं, इसलिए कम से-कम इस प्रदेश में कुछ अकाल पड़ सकता है। कर वसूल करनेवाले सात (?) फ़सलों को पूरी फ़सल मानकर उसी के अनुसार कर लगाते हैं। जो लोग पूरी फ़सल पाते हैं उनसे पूरा कर वसूल किया जाता है। जो कुछ कम फ़सल पाते हैं उनसे कुछ कम कर वसूल किया जाता है। इसके बाद मालगुज़ार को भी एक अंश देना पड़ता है। बाद को जो बचता है वही खाकर किसान और उसके बाल-बच्चे धूप में जलकर, धूल से नहाकर, मिट्टी खोदकर कुछ जीविकोपार्जन करते हैं। बेहद ख़र्च रखनेवाली सरकार उनका सर्वस्व ले जाती है, उन्हें कुछ भी नहीं देती—यहाँ तक कि स्कूल भी नहीं।

तब भी ये लोग (साम्राज्यवादी) गर्व करेंगे कि हम लोग हिन्दुस्तान की भलाई के लिए हिन्दुस्तान पर हुकूमत करते हैं। मगर वह भलाई क्या है? रोग, दरिद्रता, अज्ञानता, क़र्ज़ का बोझ, दासता और अनाहार। सब स्कूल शहरों में ही हैं। जिनकी हैसियत कुछ अच्छी है उन्हीं के लिए स्कूल हैं। डाकघरों से किसानों का कुछ विशेष लाभ नहीं होता। पहले तो ये लोग निरक्षर हैं, फिर विलायत को एक चिट्ठी भेजने में जो दस पैसा महसूल लगता है उसे ख़र्च करने की शक्ति भी इनमें नहीं है। यह दस पैसा उनकी एक दिन की कमाई है। सड़कों के पास जो गाँव हैं उनको मोटरगाड़ियाँ धूल से भरकर उनमें रोग का कोप और बढ़ा देतीं और भोंपे की विकट आवाज़ से बच्चों को डरा देती हैं। और कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो हिन्दुस्तान को देने का गर्व विदेशी शक्ति कर सके। हाँ, और एक चीज़ है—रेल। मगर रेल पर चढ़ने के लिए किसानों के पास पैसा नहीं है और अगर पैसा जुटता भी है तो खाँचे के मुर्ग़ों की तरह तले-ऊपर धक्का खाते हुए उन्हें गाड़ी में बैठना पड़ता है। उधर गाड़ी के डिब्बों में ख़ुश करने और आराम देनेवाली कोई चीज़ नहीं। स्टेशनों पर तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों के बैठने के लिए आसन नहीं, विश्रामागार नहीं—हालाँकि तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों की संख्या ही अधिक होती है। अधिकतर देहातियों को देखने से यही मालूम होता है कि ये लोग इस युग के आदमी नहीं हैं—किसी प्राचीन युग के नमूने हैं। उनका चाल-व्यवहार, बुद्धि-विचार, आदर्श और खेती की प्रणाली योरप के मुक़ाबले कई सदी पहले की है। उनकी अवस्था सुधारने के लिए एक प्रकार से असाध्य उपाय करना होगा। यह अवस्था अँगरेज़ों के लिए—ख़ास कर जो अँगरेज़ अपने को मानव-सेवक समझते हैं उनके लिए—चुनौती-स्वरूप है।

बैलगाड़ी पर घूमना, लोगों से जान-पहचान करना, हिन्दी-शिक्षा, सूत कातना और हिन्दुस्तानियों का आचार-व्यवहार जानना अब तक यही मेरा काम है। मैंने अनेक स्कूल देखे हैं। कांग्रेस के नियन्त्रण में हर एक ज़िले में तथाकथित अनिवार्य शिक्षा जारी हुई है। कम-से-कम कुछ काम तो हुआ है। मगर शिक्षा के लिए प्रायः कहीं कोई मजबूर नहीं किया जाता, क्योंकि ऐसा करना असम्भव है। जो हो, लिखने-पढ़ने के लिए लड़कों में बड़ा शौक़ है। मैंने देखा कि फटे और मैले कपड़े पहने दुबले-पतले शरीर मगर चमकती आँखोंवाले लड़कों के दल स्लेट और पेंसिल का टुकड़ा लेकर मिट्टी के दालान में बैठे हिन्दी-वर्णमाला सीख रहे हैं। यह मिट्टी का दालान ही उनका स्कूल है। कितनी ही जगह स्थायी स्कूल भी बन गये हैं, मगर उन स्कूलों में रोशनी और हवा नहीं आती।

लड़कों के साथ हम लोगों ने खेलकूद की है। वे खेलकूद ख़ूब पसन्द करते हैं। हम लोगों ने साधारण व्यायाम दिखाया है, सार्वजनिक सभायें की हैं और उनमें रोशनी और हवावाले अच्छे मकान, सफ़ाई, उपयुक्त आहार, मच्छड़-मक्खियों के उपद्रव, पोटाश और कुनैन के व्यवहार और कांग्रेस का समर्थन तथा खादी का व्यवहार इत्यादि विषयों पर उनके सामने व्याख्यान दिये हैं। कभी कभी दो-तीन सौ किसानों ने गाँव के बाज़ार में चँदवे के नीचे बैठकर हमारे व्याख्यान सुने हैं। पुलिस ने हमारे व्याख्यानों की लम्बी रिपोर्टें ली हैं, मगर हम लोग बढ़ते जा रहे हैं। इस देश में जो लोग सबसे ग़रीब हैं उनके लिए स्वाधीनता बहुत आवश्यक है। मैं एक आदर्श गाँव बसाना चाहता हूँ। उसमें ग्रामोन्नति के सब मार्ग दिखलाये जायँगे।

हमें सब प्रकार की सहायता आवश्यक है। अँगरेज़ लोग हिन्दुस्तान से जो कुछ ले गये हैं उनमें से कुछ अगर फ्रेंड्स आफ़ इण्डिया सोसायटी हमारी चेष्टा में सहायता करने के लिए लौटवा दे तो बड़ा काम हो। पहले ज़मीन, औज़ार, बीज आदि ख़रीदने के लिए रुपये की ज़रूरत है। उसके बाद का ख़र्च अपने आप चल जायगा।

मगर इस कठिन काम में कौन सहायता करेगा? जिससे जो कुछ भी मिलेगा उससे मुर्दे के समान जीवित कुछ किसानों की रक्षा में सहायता होगी।

कानपुर के मिल-मालिकों और मज़दूरों की अपील

कानपुर की मज़दूर-जाँच-कमिटी की रिपोर्ट पर प्रान्तीय सरकार ने अपना अन्तिम निर्णय दे दिया है। यह निर्णय ऐसा है जो मिल-मालिक और मज़दूर दोनों को मान्य होना चाहिए। प्रान्त के इस व्यवसायी नगर की हित की दृष्टि से यह मुनासिब है कि दोनों इस निर्णय को स्वीकार कर लें और झगड़े का अन्त कर दें। निर्णय की कुछ मुख्य बातें हम नीचे देते हैं—

मज़दूरी में वृद्धि करने का प्रस्ताव

कमिटी ने मज़दूरी में वृद्धि किये जाने के जो प्रस्ताव किये हैं उनके अनुसार कानपुर की आम मज़दूरी की दर में १० और १२ प्रतिशत के बीच वृद्धि हो जानी चाहिए। युक्त-प्रान्तीय सरकार यह समझती है कि यदि कमिटी के प्रस्ताव स्वीकार कर लिये जायँ तो उसने जो तख़मीना लगाया है उससे कम ही बोझ कानपुर के कपड़े के उद्योग पर पड़ेगा। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मज़दूरी की आम दर में वृद्धि कर देने के बाद भी कानपुर और बम्बई की मज़दूरी की दरों में वही विषमता रहेगी जो इस समय है। उपर्युक्त बातों को मद्दे नज़र रखते हुए युक्त-प्रान्तीय सरकार को यह यक़ीन हो गया है कि कानपुर के मिल-मालिक इस अतिरिक्त बोझ को आसानी से वहन कर सकते हैं।

मज़दूरी निर्धारित करने का बोर्ड

युक्त-प्रान्तीय सरकार की यह सच्ची कामना है कि कपड़े का उद्योग बिना किसी अड़चन के चलता जाय और बदलती हुई परिस्थितियों के उसे अनुकूल बनाने के लिए कोई तरीक़ा निकाला जाय। इस इच्छा के अनुसार सरकार इस प्रस्ताव को स्वीकार करती है कि मज़दूरी निर्धारित करने का एक बोर्ड नियुक्त किया जाय। सरकार इस बोर्ड को ब्रिटिश ट्रेड बोर्डों के आधार पर बनाना चाहती है ताकि मज़दूरियाँ समय समय पर घटाई-बढ़ाई जा सकें और ऐसा करने से परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर कोई गड़बड़ न हो। बोर्ड के निर्माण किये जाने के बारे में मिल-मालिकों तथा मज़दूरों के प्रतिनिधियों से वाद-विवाद करने के लिए सरकार तैयार है। सरकार को यह भी आशा है कि समस्या का एक सन्तोषप्रद हल निकाला जा सकेगा।

भर्ती

यह बात सभी ने स्वीकार कर ली है कि भर्ती करने की वर्तमान प्रथा में कुछ नुक़्स है। इस सम्बन्ध में कमिटी ने जो बहुत-सी सिफ़ारिश की है उनकी मिल-मालिकों के संघ ने बड़ी प्रशंसा की है। छोटी छोटी बातों के सम्बन्ध में अब भी कुछ मतभेद है और सरकार को कोई कारण नहीं दिखाई देता कि ये मतभेद क्यों नहीं दूर किये जा सकते। मज़दूरी की दर का प्रदर्शन किये जाने पर कोई आपत्ति नहीं है। और मिल-मालिक स्वयं मज़दूरों को मज़दूरी का कार्ड देने पर राज़ी हैं। सज़ाओं के प्रश्न के बारे में भी कोई ख़ास मतभेद नहीं दिखलाई देता और मिल-मालिकों का संघ क़ानून का उल्लंघन किया जाना बरदाश्त नहीं कर सकता।

कोई नाजायज़ रूप से बरख़ास्त नहीं किया गया

मज़दूरों के बरख़ास्त किये जाने के प्रश्न ने मिल-मालिकों और मज़दूरों के बीच में भारी मतभेद पैदा कर रक्खा है और इसी की वजह से कानपुर के मिल-मालिकों तथा मज़दूरों के बीच कटुता पैदा हो गई है। मिल-मालिकों ने इस बात पर बराबर ज़ोर दिया है कि पर्याप्त कारणों के न होने पर भी मज़दूरों को बरख़ास्त करने की नीति के वे ख़िलाफ़ हैं। उन्होंने यह भी अस्वीकार किया है कि ट्रेड-यूनियन का कार्य करने के लिए वे मज़दूरों को दण्ड देना चाहते हैं। मिल-मालिक सामूहिक रूप से किसी को बिना किसी वजह बरख़ास्त करने का इरादा नहीं रखते। मिल-मालिक तथा मज़दूर दोनों ही इस बात पर राज़ी हैं कि कोई मज़दूर नाजायज़ रूप से बरख़ास्त न किया जाय।

नाजायज़ रूप से बरख़ास्त किये गये मज़दूरों के लिए व्यवस्था

सरकार का यह ख़याल है कि यदि नाजायज़ रूप से बरख़ास्त किये गये मज़दूरों के मामलों का निबटारा करने के लिए कोई व्यवस्था स्थायी रूप से कर दी जाय तो इसका नतीजा यह होगा कि मिल-मालिकों और मज़दूरों के बीच ग़लतफ़हमियाँ न पैदा होंगी और उनके बीच सदैव शान्ति क़ायम रहेगी। ऐसी व्यवस्था करने के लिए कमिटी ने कुछ उपाय भी बतलाये हैं और उसने जो सिफ़ारिशें की हैं वे सरकार को तर्क-संगत और स्थिति का मुक़ाबला करने के लिए पर्याप्त मालूम पड़ती हैं। ऐसे मामलों में आवश्यकता केवल इस बात की है कि यदि किसी शिकायत का औचित्य प्रमाणित न किया जा सके तो शीघ्र ही इस बात का प्रदर्शन किया जाय और यदि शिकायत वास्तव में ठीक हो तो शीघ्रता के साथ वह दूर की जाय। इस विषय में सरकार मिल-मालिकों और मज़दूरों के प्रतिनिधियों से परामर्श करने के लिए तैयार है।

मज़दूर-कमिश्नर

इस प्रकार के तथा इससे भी अधिक कठिन प्रश्नों का निबटारा करने के लिए (जो रोज़ रोज़ पैदा होते हैं) सरकार किसी पुराने अफ़सर को सारे प्रान्त के लिए एक मज़दूर-कमिश्नर नियुक्त करे। मज़दूर-कमिश्नर का यह भी काम होगा कि वे समय समय पर मतभेदों के पैदा होने पर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करेंगे। यह आशा की जाती है कि मज़दूर कमिश्नर के नियुक्त किये जाने से दोनों पक्षों को फ़ायदा होगा।

मज़दूरों को छुट्टियाँ

मज़दूरों को छुट्टियाँ दिये जाने के प्रश्न के बारे में मिल मालिकों का कहना है कि वे इस सम्बन्ध में काफ़ी सहानुभूति रखते हैं। यहाँ यह कह देना अनुपयुक्त न होगा कि भारत-सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-कार्यालय से यह सिफ़ारिश की थी कि मज़दूरों को साल में १५ दिन की छुट्टी पूरी तनख़्वाह के साथ मिला करे। बम्बई की सरकार तनख़्वाह के साथ मज़दूरों को छुट्टियाँ दिया जाना अनिवार्य बनाने के सम्बन्ध में क़ानून तैयार करने का विचार कर रही है। मिल-मालिकों ने अभी हाल में ही इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है और कई कारख़ानों में इस सिद्धान्त पर अमल भी किया जा रहा है। किन्तु सरकार अंतिम रूप से कोई निर्णय करने के पूर्व मामले पर अच्छी तरह विचार करेगी।

सिफ़ारिशों के बारे में मिल-मालिकों ने अपनी रज़ामंदी प्रकट की है, और इन सिफ़ारिशों पर अमल करने में कोई कठिनाई न होनी चाहिए। कुछ सिफ़ारिशों के बारे में उन्होंने कुछ कठिनाइयाँ बतलाई हैं, किन्तु सरकार का यह ख़याल है कि इन छोटी छोटी बातों के बारे में परस्पर वाद-विवाद-द्वारा मतैक्य क़ायम हो सकता है। मिल-मालिकों के संघ ने यह तजवीज़ की है कि काम करने के दिनों की संख्या अधिक से अधिक ३०५ के बजाय ३१० होनी चाहिए। इसके माने यह नहीं है कि मिलें वास्तव में ३१० दिन चलाई जायँगी। इस बारे में भी विचार किया जा सकता है और इस सम्बन्ध में कोई समझौता होना सरकार कठिन नहीं समझती।

मज़दूरों के मकानों की अवस्था

सरकार कानपुर के मज़दूरों के मकानों की अवस्था में सुधार करने के लिए उत्सुक है। सरकार इस सम्बन्ध में सहायता के लिए बजट में कुछ गुंजाइश कर चुकी है। जिन मकानों में मज़दूर लोग रहते हैं वे बहुत ही बुरे हैं और मुश्किल से उन मकानों में कोई मनुष्य रह सकता है। सरकार इम्प्रूवमेन्ट-ट्रस्ट-ऐक्ट में आवश्यक परिवर्तन करेगी और वह आशा करती है कि ट्रस्ट कमिटी की सिफ़ारिशों को पूरी तौर से काम में लायेगा और वह इस सम्बन्ध में अपनी ओर से एक ख़ास क़ानून बनायेगा। वह मज़दूरों के उनके घरों से मिल तक आने-जाने के प्रबन्ध के सम्बन्ध में भी जाँच करेगा।

मज़दूरों की भलाई

सरकार मज़दूरों की भलाई के सम्बन्ध में जाँच-कमिटी के द्वारा की गई सिफ़ारिशों को स्वीकार करती है और वह आशा करती है कि फ़ैक्टरियाँ इस सम्बन्ध में पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगी। सरकार मज़दूरों को महाजनों के उत्पीड़न से बचाने के लिए मध्य-प्रान्त के क़र्ज़दारों की रक्षा के सम्बन्ध में बनाये गये ऐक्ट के लागू करने को तैयार है। कमिटी ने मज़दूरों की बीमारी तथा प्राविडेन्ट-फ़ंड की योजना के सम्बन्ध में भी सलाह दी है। इस सम्बन्ध में अभी विचार करना बाक़ी है।
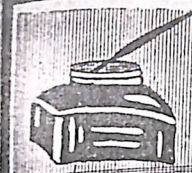
भारतमंत्री की घोषणा

गांधी-वायसराय की भेंट होने और वायसराय के चार महीने के लिए विलायत जाने से राजनैतिक क्षेत्रों में ऐसी आशा की गई थी कि ब्रिटिश सरकार कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के वर्तमान रुख़ से प्रभावित होकर इंडिया-ऐक्ट में ऐसा कुछ परिवर्तन करने की बात सोच रही है, जिससे संघ-शासन के जारी होने पर कांग्रेस अपना विरोध त्याग कर उससे सहयोग करे और भारत में इंडिया-ऐक्ट के अनुसार संघ-शासन का परिवर्तन हो जाय। इस सम्बन्ध में समाचार-पत्रों में लेखों-द्वारा जो आशा प्रकट की गई थी उसे भारत-मंत्री लार्ड ज़ेटलेंड ने अपने २८ मई के एक भाषण से उखाड़ फेंका है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

> विधान में संशोधन नहीं होने का, पर यहाँ मैं एक चेतावनी भी दे देना चाहता हूँ। वायसराय शीघ्र ही छुट्टी लेकर स्वदेश आ रहे हैं। इसको लेकर अटकलबाज़ियाँ शुरू हो गई हैं। यहाँ तक कहा जा रहा है कि वे इसलिए यहाँ आ रहे हैं कि संघ-योजना में किये जानेवाले परिवर्तनों के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार से परामर्श करेंगे। ऐसी बातों को सुनकर भी अगर मैं मुँह न खोलूँ तो इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि मैं उनसे सहमत हूँ। अतः मैं तुरन्त कह देना चाहता हूँ कि जहाँ तक मुझे मालूम है ऐसे अनुमान के लिए कुछ भी आधार नहीं है। विधान की संघ-विषयक धारायें लम्बे और भरपूर छानबीन तथा बहस के बाद बनाई गई हैं और इस बात की तनिक भी सम्भावना नहीं है कि संघ-स्थापना के पहले ही ब्रिटिश सरकार या पार्लियामेंट उसके ढाँचे में परिवर्तन करने की बात सोचने को तैयार होगी।
>
> मैं और वायसराय दोनों ही संघ-योजना पर की जानेवाली टीकाओं को सुनने के लिए सदा तैयार हैं, चाहे टीका करनेवाले राजाओं के प्रतिनिधि हों, चाहे ब्रिटिश भारत के। पर मेरा ख़याल है कि वर्तमान विधान में ही इसकी काफ़ी गुंजाइश है कि भारतवासियों में उतनी राजनैतिक एकता उत्पन्न हो जाय जितनी उसके युगयुगान्तरों के इतिहास में उन्हें कभी नहीं मिली थी। उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इतिहास की अदालत के सामने जाने पर उन पर यह दोष न लगाया जा सके कि उन्होंने मिलते हुए ऐसे सुयोग को ठुकरा दिया जैसा सुयोग शायद उन्हें फिर कभी न मिले।

आशा है, आशावादियों का भ्रम उपर्युक्त स्पष्ट कथन से दूर हो गया होगा और वे अब इस बात की ओर ध्यान देने को प्रवृत्त होंगे कि आख़िर उनका क्या कर्तव्य है।

कांग्रेसी सरकारों की प्रगति

कांग्रेस को भारत के सात प्रान्तों में शासनाधिकार ग्रहण किये हुए एक वर्ष पूरा हो आया। इस एक वर्ष के भीतर उसकी सरकारों ने अब तक क्या किया है, इसका एक वाक्य में निर्देश कर देना सरल नहीं है। परन्तु यह स्पष्ट है कि उनकी नाना प्रकार की कार्यवाहियों को देखते हुए इतना तो कहा ही जा सकता है कि उन्होंने अपने अनुरूप सभी क्षेत्रों में व्यापक रूप से अपना क्रान्तिकारी रूप व्यक्त किया है। तथापि कहनेवाले यह कहेंगे ही कि उन्होंने अभी तक कोई ठोस कार्य करके नहीं दिखाया है, जिससे यह प्रकट होता कि उन प्रान्तों में नौकरशाही का नहीं, किन्तु लोकशाही का राज्य है। ऐसा कहनेवालों के समाधान के लिए संयुक्त-प्रान्त की कांग्रेसी सरकार के स्वायत्त शासन की मंत्रिणी श्रीमती विजया लक्ष्मी जी ने साफ़-साफ़ शब्दों में कह दिया है कि इस नये शासन-विधान की सीमा में रहकर कांग्रेस राष्ट्र के उद्धार का कार्य यथाविधि नहीं कर सकती है। ऐसी दशा में भी कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने जिस ढंग से शासन-कार्य का परिचालन किया है उससे यही प्रकट होता है, मानो कांग्रेस-मंत्री शासन-कार्य के विशेषज्ञ हों। इसमें सन्देह नहीं है कि कांग्रेसी मंत्रियों ने अब तक

जो कुछ किया है, विधान का अक्षर-अक्षर देखते रह कर किया है। इस बन्धन में रहते हुए उन्होंने राष्ट्र के उद्धार के लिए जो-जो नये कार्य छेड़ दिये हैं उन्हीं को लेकर प्रभावित क्षेत्रों में ख़ासी खलबली मच गई है। उदाहरण के लिए किसानों के उद्धार के लिए भिन्न भिन्न प्रान्तों में जो नये क़ानून बनाये जा रहे हैं उन्हीं के देखिए। जब वे कार्य में परिणत हो जायँगे तब अपने आप प्रकट हो जायगा कि कांग्रेसी सरकारों ने किसानों का कितना भारी उपकार किया है। परन्तु अभी उन क़ानूनों को कार्य का रूप प्राप्त होने में महीनों की देरी है। प्रजातांत्रिक शासन में यही तो कठिनाई है कि अच्छी से भी अच्छी बात जल्दी से जल्दी कार्य का रूप नहीं प्राप्त कर सकती। इसी प्रकार उसके अन्य कार्य भी हैं। प्राथमिक शिक्षा के व्यापक प्रचार का उसका आयोजन जब कार्य में परिणत हो जायगा तब उससे भी राष्ट्र का अभूतपूर्व जागरण होगा। आवश्यकता इस बात की है कि हम कुछ दिन तक धैर्य धारण करें और कांग्रेस-मंत्रि-मंडलों के अपना कार्य शान्तिपूर्वक करने दें।

अबीसीनिया की बात

अमरीका के संयुक्तराज्यों तथा योरप के सोवियट रूस को छोड़कर संसार के प्रायः सभी राज्यों ने अबीसीनिया पर इटली का पूर्ण अधिकार स्वीकार कर लिया है। जिस ग्रेट-ब्रिटेन तथा फ्रांस की प्रेरणा से अभी तक अबीसीनिया पर इटली की सत्ता नहीं स्वीकार की जा रही थी जब उन्हीं में से ग्रेट ब्रिटेन ने इटली से समझौता कर उसका पूर्ण आधिपत्य अबीसीनिया पर स्वीकार कर लिया है तब अन्य राज्यों का तो वैसा कोई विरोध भी नहीं था। परन्तु अबीसीनिया के भागे हुए सम्राट् हेलसेलासी का विश्वास राष्ट्र-संघ पर अभी तक बना हुआ है और वे अपने हक़ की ज़बानी लड़ाई राष्ट्र-संघ के द्वारा लड़ते ही जा रहे हैं। उनका यह कहना ही नहीं है, किन्तु दावा है कि इटली का अभी तक सारे अबीसीनिया पर पूर्ण अधिकार नहीं हो सका है और वहाँ के कतिपय सरदार इटली का सशस्त्र विरोध बराबर किये जा रहे हैं। उनके इस दावे की पुष्टि एक ऐसे महत्त्वपूर्ण पत्र से भी होती है जो एओस्टा के ड्यूक ने अबीसीनिया से मुसोलिनी को भेजा है। उक्त पत्र योरप के अख़बारों में छपा है। उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा है—

> परिस्थिति वास्तव में भयानक है। इटली का प्रभाव केवल गोली की मार के भीतर तक ही सीमित है। साठ लाख देशी लोग एकदम विरुद्ध हैं। प्रत्येक इटालियन छावनी के ८० किलोमीटर के भीतर वहाँ के लोग ही युद्ध के पहले की तरह आज भी शासन कर रहे हैं।...हमें यहाँ सभी चीज़ों का अभाव है। वहाँ के लोग इटालियनों के हाथ कोई चीज़ नहीं बेचते। वे हमारे नोट भी नहीं लेते हैं।...वे उन बाज़ारों में भी नहीं आते जहाँ इटालियन जाते हैं। उनका दमन करने के लिए पुलिस के दल भेजना बहुव्यय-साध्य है तथा उसमें बहुत अधिक जोखिम भी है। इटालियन महाजनों ने अब तक यहाँ १५ करोड़ फ्रैंक की पूँजी लगाई है, जो अपर्याप्त है। इससे कहीं अधिक द्रव्य के लगाने की आवश्यकता है। जो ब्लैक शर्टवाले इटालियन यहाँ बसना चाहते थे वे अब इटली को लौट जाना चाहते हैं, जो यहाँ की वहाँ बड़ी भयानक कहानियों का प्रचार करेंगे।...यदि योरपीय युद्ध शुरू होगा तो हम लोग कुछ हफ़्तों के भीतर यहाँ से मार भगाये जायँगे।

स्वयं एक इटालियन प्रधान व्यक्ति के मतानुसार अबीसीनिया की ऐसी परिस्थिति है। उसके होते हुए भी ब्रिटेन आदि ने अबीसीनिया पर इटली का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया है और यद्यपि हेलसेलासी राष्ट्रसंघ में अपनी नालिश दायर किये हुए हैं, तथापि उसका निर्णय उनकी आशाओं के विरुद्ध ही होगा। डंडे के आगे न्याय की कब कहाँ पूछ हुई है। खेद है, हेलसेलासी यह एक छोटी बात भी नहीं समझ रहे हैं।

हैज़े का प्रकोप

इसी गर्मी के दो महीने के भीतर, सरकारी स्वास्थ्य-विभाग का कहना है, संयुक्त-प्रान्त में २० हज़ार आदमी हैज़ा फैलने से कीड़ों की मौत मर गये और सरकार का स्वास्थ्य-विभाग कुछ कर-धर न सका। कहते हैं, कोई १० वर्ष के बाद हैज़े का यहाँ ऐसा भीषण प्रकोप हुआ है, जिसमें ४० हज़ार आदमी बीमार पड़े और २० हज़ार अकाल में ही काल-कवलित हो गये। और हैज़े का यह भीषण प्रकोप इस प्रान्त के ४८ ज़िलों में से ४४ ज़िलों में हुआ! सरकारी स्वास्थ्य-विभाग की शिकायत है कि अज्ञ और अन्धविश्वासी ग्रामीणों के कारण हैज़ा रोकने के लिए उनके किये जानेवाले उपायों में बाधा पड़ी है। लोगों ने हैज़े का टीका लगवाने से इनकार किया है। उस विभाग के अधिकारियों को जानना चाहिए कि ग्रामीणों को इस तरह लाञ्छित करना विज्ञों के लिए शोभा-जनक नहीं है। उनकी अज्ञता या अन्ध-विश्वासिता का दायित्व बहुत-कुछ अँगरेज़-सरकार पर ही है, जिसने उन्हें अब तक इस रूप में रक्खा तथा जिसने देशी चिकित्सा को एक दिन के लिए भी प्रोत्साहन नहीं दिया, जो ऐसी महामारियों के समय उनके काम आती, क्योंकि सरकारी स्वास्थ्य-विभाग की चिकित्सा तो उनके लिए आज तक सुलभ नहीं हो सकी और न ऐसी आशा है कि भविष्य में ही सुलभ हो सकेगी। ऐसी दशा में कांग्रेसी सरकार को चाहिए कि वह देशी चिकित्सा-प्रणाली को भी समुचित प्रोत्साहन दे। ऐसा करने पर उसे आज की तरह हैज़ा या ऐसी ही कोई दूसरी महामारी के फैलकर समाप्त हो जाने के बाद इंजेक्शन देने के लिए विदेशों से ११-११ लाख शीशियों के लिए आर्डर न देने पड़ेंगे। स्वास्थ्य-विभाग ने यह भी छपवाया है कि यातायात के साधनों के अभाव के कारण किसी-किसी गाँव में हैज़ा फैलने की ख़बर उसे तब मिली जब उस गाँव का पूरा का पूरा सफ़ाया हो गया। ऐसी अवस्था की टीका करना व्यर्थ है। तथापि यह कहना आवश्यक है कि इस बार सरकारी स्वास्थ्य-विभाग ने काफ़ी तत्परता दिखाई है और अपने कर्तव्य का समुचित रूप से पालन किया है।

बिहार के जेलों में सुधार

सबसे पहले मदरास की कांग्रेसी सरकार ने जेलों में सुधार करने का सूत्रपात किया था। प्रसन्नता की बात है कि उसका अन्य कांग्रेसी प्रान्तों में भी अनुकरण किया गया है। हाल में बिहार-प्रान्त के जेलों में जो नई बातें जारी की गई हैं वे और भी उत्साहवर्द्धक हैं। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) भागलपुर, गया और हज़ारीबाग़ के सेण्ट्रल जेलों और दुमका तथा राँची के ज़िला-जेलों में चर्ख़े पर सूत कातना जारी किया गया है।

(२) चायबासा सब जेल में तकुए का सूत कातना जारी किया गया है।

(३) भागलपुर और गया सेण्ट्रल जेल की स्त्री क़ैदियों के कातना सिखाने के लिए दो अस्थायी शिक्षक नियुक्त किये गये हैं।

(४) निगरानी-बोर्ड की सिफ़ारिश पर लम्बी मुद्दत के क़ैदियों तथा मामूली अपराधों के बूढ़े, अपाहिज और असमर्थ क़ैदियों की रिहाई के विषय में उदारतापूर्वक विचार किया जा रहा है।

(५) जेल-कर्मचारी अपनी इच्छा से या स्थानीय व्यक्ति या शिक्षक जो यह काम करने के मिल सकेंगे, निरक्षर क़ैदियों के शिक्षा दिया करेंगे।

(६) कोल्हू से सरसों का तेल पेरवाना बन्द कर दिया गया है।

(७) क़ैदियों के उनके शारीरिक सामर्थ्य के अनुसार काम दिया जाता है।

(८) बड़े बड़े पर्व-त्योहारों पर सब सम्प्रदायों के क़ैदियों के व्रत रखने के लिए जेल के भोजन के बदले दूध, घी आदि तथा फल जो जेल के बग़ीचों में मिलते हैं, दिये जाते हैं।

(९) जेलों में भोजन के इन्तज़ाम की तथा सब क़ैदियों की दाल में तेल देने की उचित देख-भाल की जाती है।

(१०) किसी भी हालत में क़ैदियों के गर्मी या बरसात में खुली जगह में खाना न खिलाया जायगा, ऐसी जगह में खिलाया जाता है जिसके ऊपर छत या छाजन है।

(११) क़ैदियों के नहाने-धोने के लिए काफ़ी पानी दिया जाता है और नहाने-धोने के लिए उन्हें उचित समय भी दिया जाता है।

(१२) रामबाँस कूटनेवालों के बदन ढँकने के लिए चट्टी के बदले ऊन का कोट दिया जाता है।

आशा है, ऐसे सुधारों की व्यवस्था की जाने से भारतीय जेलों की अवस्था में असाधारण परिवर्तन हो जायगा। अन्य कांग्रेसी प्रान्तों के जेलों में भी ऐसे ही सुधार जारी किये जाने चाहिए।

रुपये की विनिमय-दर

रुपये की विनिमय-दर के सम्बन्ध में तभी से विरोध हो रहा है जब से सरकार ने उसे १ शि० ४ पेंस से बढ़ाकर १ शि० ६ पें० कर दिया है। परन्तु भारत-सरकार इस विरोध की उपेक्षा ही करती आ रही है। अब इस ओर कांग्रेस के नेताओं का भी ध्यान गया है और ऐसा जान पड़ता है कि सरकार की विनिमय-नीति का इस बार दृढ़ता से विरोध होगा, क्योंकि उसकी इस नीति से भारत बराबर घाटे में रहता है। 'प्रताप' के सम्पादकीय लेख में लिखा गया है कि—

जब से विनिमय-दर १ शि० ४ पें० से बढ़कर १ शि० ६ पें० हो गई है तब से ग़ल्ले की दर १२॥ प्रतिशत घट गई है, जिससे किसानों को बहुत नुक़सान उठाना पड़ रहा है। अगर विनिमय-दर घटा कर फिर १ शि० ४ पें० कर दी जाय अर्थात् पौंड १३।=) के बजाय १५) का हो जाय तो किसानों का जो माल विदेशों को जाता है उसके बदले में उन्हें १३।=) की जगह १५) मिलने लगेंगे। इस तरह किसानों को जो मौजूदा दर से बहुत हानि उठानी पड़ रही है, लाभ होगा। विनिमय-दर के परिवर्तन से देश के व्यवसायी भी नफ़े में रहेंगे। इसके साथ ही साथ देश के उद्योग को पनपने का अवसर मिलेगा। जो विदेशी माल हिन्दुस्तान में १३।=) का पड़ता है, विनिमय की दर १ शि० ४ पें० हो जाने से वह १५) का पड़ेगा। परिणाम यह होगा कि ऐसा होने से भारतीय मिलों को विदेशी माल से प्रतिद्वन्द्विता करने में सहायता मिलेगी। विदेशी माल की बिक्री के मुक़ाबिले में स्वदेशी माल को प्रोत्साहन मिलेगा। इस प्रकार विनिमय-दर में परिवर्तन होने से देश की कृषि और उद्योग दोनों को लाभ होगा। पर आज मौजूदा विनिमय दर की वजह से उक्त दोनों चीज़ों को बड़ा नुक़सान हो रहा है।

वास्तव में यह अवस्था चिन्ताजनक है। देश की भलाई के लिए विनिमय की दर में आवश्यक परिवर्तन जल्दी से जल्दी होना चाहिए।

भारत में ब्राडकास्टिङ्ग

पाश्चात्य देशों में ब्राडकास्टिङ्ग लोगों के जीवन का एक अंग बनता जा रहा है। इटली में तो ऐसी व्यवस्था की गई है कि वहाँ अब प्रत्येक गाँव के निवासी ब्राडकास्टिङ्ग का उपयोग कर सकेंगे। वहाँ की सरकार प्रत्येक ग्रामीण स्कूल में ब्राडकास्टिङ्ग के आवश्यक साधन प्रस्तुत कर रही है, ताकि ग्रामवासी उसके द्वारा शिक्षित किये जा सकें एवं उनमें राष्ट्रीय भावना भरी जा सके तथा वे नित्य नई होनेवाली बातों से परिचित रक्खे जा सकें। सन्तोष की बात है कि भारत-सरकार का भी ध्यान ब्राडकास्टिङ्ग की उपयोगिता की ओर गया है और उसने दिल्ली, लखनऊ, बम्बई आदि शहरों में ब्राडकास्टिङ्ग की समुचित व्यवस्था कर दी है। परन्तु कहा जाता है कि दिल्ली के केन्द्र से अभी तक जो कुछ ब्राडकास्ट किया गया है उससे ग्रामवासी आकृष्ट नहीं हुए और ब्राडकास्ट करनेवाले अपने प्रयत्न में असफल हुए। यह प्रथमग्रासे मक्षिकापातः ठीक नहीं है।

भारतीय रेडियो की दुर्व्यवस्था की जाँच करने के लिए केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेस दल ने एक प्रस्ताव पेश किया है। और उसके विरुद्ध ये तीन अभियोग लगाये हैं—

(१) इस विभाग में योग्यता की परवा न करके ऐरे-ग़ैरे लोगों को नौकरियाँ दी गई हैं।

(२) आल इण्डिया रेडियो में अपव्यय होता है।

(३) कलाकारों को अवसर देने और भारत की अर्वाचीन तथा प्राचीन संगीत-विद्या को प्रतिष्ठित करने के बदले यह विभाग राँड़ों भाँड़ों के पालने का ज़रिया बनाया गया है।

यह भी कहा जाता है कि उसकी इस असफलता का कारण उसकी 'हिन्दुस्तानी भाषा' है, जो वस्तुतः विशुद्ध उर्दू होती है। इस सम्बन्ध में तो उसे और भी सतर्क रहना चाहिए। हाल में लखनऊ के स्टेशन से पंडित वेंकटेश नारायण तिवारी ने जो भाषण ब्राडकास्ट किया है उसकी भाषा आम फ़हम है जिसे हम इसी अंक में अन्यत्र छाप रहे हैं। यदि ब्राडकास्टिङ्ग के संचालक ऐसी भाषा को अपनायेंगे तो उन्हें अपने प्रयत्न में अवश्य सफलता मिलेगी। इसके सिवा उन्हें नगरवासियों की अपेक्षा पढ़े-लिखे ग्रामवासियों का भी सहयोग प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि वे ग्रामवासियों की अभिरुचि तथा उनके अभावों की नगरवासियों की अपेक्षा अधिक जानकारी रखते हैं। ऐसा करने से ही ब्राडकास्टिङ्ग लोकप्रिय हो सकेगा। ऊँचे दर्जे के 'उस्तादों' के गाने तथा 'साहित्यिकों' के तराने उसे

कदापि लोक-प्रिय नहीं बना सकेंगे। आशा है, ब्राडकास्टिङ्ग के संचालक समय रहते ही अपनी त्रुटियों में सुधार करने की ओर ध्यान देंगे।

मदरास में हिन्दुस्तानी का विरोध

मदरास-प्रान्त में गत १५-२० वर्ष से महात्मा गांधी की प्रेरणा से हिन्दी का प्रचार हो रहा है। हाल में जब से कांग्रेस ने 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है तब से उक्त प्रान्त में इस राष्ट्रभाषा का प्रचार हो रहा है और इसके लिए दिल्ली के जामिया-मिल्लिया की देख-रेख में नई पुस्तकों की रचना की गई है तथा हिन्दी और उर्दू की लिपियों में उनके पढ़ाने की व्यवस्था हुई है। परन्तु जान पड़ता है, मदरास के निवासियों को राष्ट्रभाषा की यह व्यवस्था नहीं स्वीकार है। यही नहीं, इसका विरोध करने के लिए उक्त प्रान्त में संगठित आन्दोलन प्रारम्भ हो गया है, यहाँ तक कि आन्दोलनकारी सत्याग्रह तक करने लगे हैं। ऐसे सत्याग्रही वहाँ के प्रधान मंत्री माननीय श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के भवन के आगे धरना धरने के कारण गिरफ़्तार भी किये जा चुके हैं। राष्ट्रभाषा के प्रचार के सम्बन्ध में जो यह विरोध हो रहा है वह वाञ्छनीय नहीं है। प्रसन्नता की बात है कि मदरास की जनता इन आन्दोलनकारियों का विरोध करने को सजग हुई है और उसने एक सार्वजनिक सभा करके अपनी प्रान्तीय सरकार के कार्य का समर्थन किया है।

इस सम्बन्ध में मदरास के प्रधान मन्त्री महोदय ने एक वक्तव्य दिया है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

मैं समझता हूँ कि हमारे प्रान्त के स्कूलों में हिन्दुस्तानी के सम्बन्ध में सरकार की नीति और इरादे अनेक बार स्पष्ट कर दिये गये हैं। प्रश्न यह नहीं है कि मातृभाषा नष्ट कर दी जायगी, मगर प्रश्न यह है कि जनता-द्वारा चुनी गई सरकार को यह स्वतन्त्रता है या नहीं कि वह अपने प्रान्त के लड़कों को उदार शिक्षा दे सके।

उदार शिक्षा को पूर्ण बनाने के लिए ऐसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है, जो सारे हिन्दुस्तान में बोली जाती है।

सरकार किसी प्राथमिक स्कूल में हिन्दुस्तानी जारी नहीं कर रही है, जहाँ केवल तामिल, तेलगू, कनाड़ी और मलयालम भाषायें सिखाई जायँगी।

हाईस्कूल के विद्यार्थियों को हिन्दुस्तानी सिर्फ़ छठे से आठवें दर्जे तक सिखाई जायगी।

किसी भी विद्यार्थी को यह आज्ञा न रहेगी कि वह अपनी मातृभाषा के स्थान पर हिन्दुस्तानी पढ़े।

किसी लड़के या लड़की को एक दर्जे से दूसरे दर्जे में तरक्क़ी देने के लिए हिन्दुस्तानी मार्ग में बाधक नहीं होगी, हालाँकि हिन्दुस्तानी स्कूल के कैरीकुलम का बाक़ायदा हिस्सा समझी जायगी।

हिन्दुस्तानी सीखने के लिए यह विद्यार्थियों की इच्छा पर रहेगा कि वे उसे नागरी या उर्दू लिपि सीखें।

ऐसी दशा में तो वहाँ राष्ट्र-भाषा हिन्दुस्तानी का विरोध नहीं होना चाहिए।

भारत में बौद्धधर्म का प्रचार

भिक्षु लोकनाथ बड़े उत्साही बौद्ध साधु हैं। आप इटालियन हैं और बौद्ध-धर्म के प्रति विशेष अनुराग होने के कारण बौद्ध-धर्मावलम्बी हो गये हैं। अब आप इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि पहले की भाँति भारत में फिर बौद्ध-धर्म का प्रचार हो। इसके लिए आप बौद्ध भिक्षुओं का एक दल लेकर भारत का भ्रमण करना चाहते हैं। सन् १९३३ में एक ऐसा ही दल लेकर ब्रह्मदेश से अराकान होकर पैदल भारत आये थे। आपके उस दल में २२७ बौद्ध साधु थे। इन सबको लेकर आप काशी गये थे, जहाँ उन सबको एक योग्य व्यक्ति के नेतृत्व में रखकर आप स्याम चले गये थे। वहाँ आपने दूसरा जत्था तैयार किया, जिसे लेकर आप ब्रह्मदेश पैदल गये। इस जत्थे में १५० भिक्षुक थे। रंगून में आपने उनमें से १० व्यक्तियों को छाँट लिया और उनको लेकर बोधगया आये, जहाँ से काशी और अल्मोड़ा गये। अल्मोड़ा में स्यामी बौद्धों को एक नेता के सिपुर्द कर आप लंका को गये और वहाँ से १० सिंहाली साधुओं को अपने साथ दक्षिण-भारत ले आये और वहाँ बौद्ध-धर्म का प्रचार किया। इस प्रकार आपने उस बार तीन जत्थों का संगठन कर भारत में बौद्ध-धर्म के प्रचार का अच्छा प्रदर्शन किया। अब आप इस बार चौथा जत्था संगठित करना चाहते हैं।

परन्तु यह जत्था भारतीय बौद्धों का होगा। इसके लिए आप कलकत्ते में श्मशान-घाट पर कुछ शिक्षित भारतीयों को बौद्ध-धर्म की दीक्षा देने की तैयारी कर रहे हैं। जब आपका यह जत्था तैयार हो जायगा तब आप उसे लेकर पैदल काशी की यात्रा करेंगे। वहाँ से बम्बई जायँगे। इस प्रकार सारे भारत का भ्रमण कर बौद्ध-धर्म का प्रचार करेंगे। यही नहीं, आप कहते हैं कि यदि १० साहसी युवक भिक्षु बोधगया से जेरुसलेम की और वहाँ से रोम की पैदल यात्रा करें तो योरप में भी बौद्ध-संघ की स्थापना हो जायगी। इसमें सन्देह नहीं, भिक्षु लोकनाथ का इस सम्बन्ध का उत्साह प्रशंसनीय है और आपका धर्मप्रेम अनुकरणीय है।

असाधारण पद-चिह्न

जलपाईगुड़ी ज़िले के जमादार-पारा नामक गाँव के पास असाधारण रूप के लम्बे-चौड़े मनुष्य के पैर के चिह्न हाल में फिर देखने को मिले हैं। ऐसे पद-चिह्न गत बारह वर्षों के भीतर और भी दो बार देखे गये हैं। आज से पहले सन् १९३६ के जून में ये चिह्न दिखाई दिये थे। इस सम्बन्ध में जलपाईगुड़ी के बेलाकोबा-यूनियन-बोर्ड के सदस्य श्री शम्सुद्दीन अहमद प्रोमन के एक पत्र का जो अंश अमृतबाज़ार पत्रिका में छपा है वह बड़ा रोचक है। उन्होंने लिखा है—

> एक विशालकाय मनुष्य के बहुत-से पदचिह्न यूनियन-बोर्ड के सभापति के मकान के पास खेतों में पाये गये हैं। ऐसा जान पड़ता है कि यह आदमी रात के समय गाँव के पास से गया है। २९ मई को सवेरे गाँववालों ने उन्हें देखा। प्रत्येक पद-चिह्न एक दूसरे से लगभग ३५ हाथ के अन्तर पर था।
>
> ये पदचिह्न यहाँ तीसरी बार दिखाई दिये हैं पहले-पहल ये यहाँ १२ या १३ वर्ष पहले दिखाई दिये थे। उस बार वह आदमी उत्तर से दक्षिण को गया था। दूसरी बार सन् १९३६ के जून में ये पदचिह्न दिखाई दिये। इस बार वह आदमी उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम को गया था।
>
> परन्तु इस बार के पदचिह्न १९३६ के पदचिह्नों की अपेक्षा कुछ बड़े हैं। बोर्ड के सभापति ने कुछ पदचिह्नों को सुरक्षित कर दिया है ताकि लोग आकर उन्हें देख सकें। १९३६ के पदचिह्नों को देखकर अनुमान किया गया था कि वह आदमी १८ फ़ुट ऊँचा रहा होगा।

निस्सन्देह यह एक आश्चर्य-जनक सूचना है। वैज्ञानिकों को इसका तथ्य जानने के लिए अवश्य यत्नशील होना चाहिए।

उपनिवेशों की एक कथा

योरपीय जातियों ने अपने अभ्युदय-काल के प्रारम्भ में द्वीप-द्वीपान्तरों में जाकर अपने उपनिवेश बसाये हैं, जो आज उनके अध्यवसाय की बदौलत बहुत उन्नत हो गये हैं। परन्तु इनके बसाने और वहाँ योरपीय संस्कृति का प्रचार करने में जो विनाशकार्य प्रवासी योरपीयों ने किया है उसका एक उदाहरण मिस्टर जे० डब्ल्यू० पोइन्टर ने दिया है। उन्होंने 'इन्क्वायरर' में एक लेख लिखकर बताया है कि जब टस्मानिया में पाश्चात्य लोग पहुँचे तब उन्होंने वहाँ के निवासियों के साथ ऐसा अमानुषिक व्यवहार किया कि आज संसार से टस्मानिया के आदिम निवासियों का नाम-निशान ही उठ गया। उनके उक्त लेख का सारांश यह है—

> डच नाविक एबेल जानसेन टस्मान सन् १६४२ में पहले-पहल उस टापू में पहुँचा था। उसके बाद सन् १७७२ में कैप्टन मेरियन नामक फ्रेंच नाविक वहाँ गया। इन लोगों को देखकर देशी लोगों का एक समूह वहाँ आया, जिसमें स्त्री-बच्चे भी थे। इन्हें फ्रेंच नाविकों ने कुछ चीज़ें दीं, जिन्हें लेने से उन्होंने इनकार किया। इसके बाद उनमें से एक ने आगे बढ़कर जलती हुई एक लकड़ी एक नाविक को दी। नाविकों ने इसे अपने ऊपर आक्रमण समझा। उन्होंने गोलियाँ चलाईं। देशी लोग भाग गये। उनमें एक मर गया और कई घायल हो गये।
>
> सन् १८०३ में ब्रिटिश उपनिवेश-मंत्री लार्ड होबर्ट ने कैप्टन कालिन्स को वहाँ उपनिवेश बसाने को भेजा। उन्हें आदेश हुआ कि वे वहाँ के निवासियों से मेल-जोल बढ़ाकर वहाँ निवास करें। परन्तु वहाँवालों से पहले ही मुठभेड़ हो चुकी थी। उनके वहाँ जाने के कुछ समय पहले आस्ट्रेलिया से गोरों का एक दल वहाँ गया था। जब देशी लोग उनके कैम्प के पास आये तब उन्होंने उन पर गोली चलाई थी, जिसमें कई आदमी मारे गये। इसके बाद प्रवासी अँगरेज़ों का उन लोगों से कोई महत्त्व का झगड़ा वर्षों तक नहीं हुआ, तथापि फुटकर घटनायें होती ही रहीं। १८१६ में एक घोषणा निकाल कर गवर्नर ने उनका निषेध किया। परन्तु इस प्रकार की मारकाट बराबर जारी ही रही। अन्त में १८२४ में एक घोषणा प्रवासियों के विरुद्ध की गई, क्योंकि आदिम निवासियों का क़त्ल करना उन्होंने नहीं बन्द किया था। १८३० में जार्ज आगस्टस राबिन्सन के प्रयत्न से वहाँ की मारकाट बन्द हुई। आख़िर में यह तय हुआ कि आदिम निवासी टस्मानिया से हटाकर एक छोटे द्वीप में रक्खे जायँ। वैसा किया गया। परन्तु उस उजाड़ खण्ड में जाकर वे मर गये। सन् १८४७ में ४७ प्राणी बचे थे। तब वे एक अच्छी जगह में ले जाकर रक्खे गये। १८७९ में इनका अन्तिम आदमी भी मर गया। इस प्रकार १०४ वर्ष के भीतर एक जाति का अस्तित्व मिट गया।

योरपीयों के उपनिवेश-स्थापन की ऐसी ही रोमाञ्चकारी कथा है।

शिकमी काश्तकारों की समस्या

संयुक्त-प्रान्त की सरकार किसानों के लाभ के लिए जो उपयोगी क़ानून बना रही है उसकी एक महत्त्वपूर्ण त्रुटि के सम्बन्ध में फ़ैज़ाबाद के श्रीयुत देवदत्त तिवारी ने 'प्रताप' में एक लेख छपवाया है। उसका मुख्यांश यह है—

> युक्त-प्रान्त के प्रस्तावित लगान-क़ानून में एक अत्यावश्यक बात छूट गई है। इस बिल में शिकमी काश्तकारों को कोई अधिकार नहीं दिया गया है। यदि यह बिल इसी हालत में जैसा कि बनाया गया है पास हो गया तो शिकमी काश्तकारों की दशा इस समय से भी अधिक ख़राब हो जायगी। जो इस समय अवध में असली काश्तकार के नाम से पुकारे जाते हैं उनमें बहुत-से ज़मींदारों व तालुक़ेदारों के वंशज, मित्र, सम्बन्धी तथा ख़ुशामदी लोग हैं। इन लोगों को पट्टा इसलिए दे दिया गया है कि ये ज़मीन शिकमी काश्तकारों को उठा दें। और जिस समय चाहें उनसे ज़मीन ले लें तथा दूसरों को दे दें। शिकमी काश्तकार वर्तमान क़ानून के अनुसार हर समय बेदख़ल हो सकते हैं और असली काश्तकारों की तरह छूट भी नहीं पाते। इस समय असली काश्तकार जो लाभ उठाते हैं और शिकमी काश्तकारों को जो नुक़सान उठाना पड़ता है वह निम्नलिखित है—
>
> (१) जो इस समय असली काश्तकार कहे जाते हैं वे थोड़े लगान पर यानी ॥) से लेकर १) प्रति कच्चा बीघा तक के हिसाब से तालुक़ेदारों, ज़मींदारों से ज़मीन का पट्टा लिये हुए हैं और ज़मीन ज़्यादा लगान पर यानी २) से लेकर ८) फ़ी कच्चा बीघा के हिसाब से शिकमी पर उठाये हुए हैं।
>
> (२) असली काश्तकारों को तालुक़ेदारों, ज़मींदारों से थोड़ा लगान होते हुए भी काफ़ी छूट मिलती है। इसके विरुद्ध शिकमी काश्तकारों को ज़्यादा लगान देते हुए भी कुछ छूट नहीं मिलती, क्योंकि वे बेचारे वर्तमान क़ानून के अनुसार छूट पाने के अधिकारी नहीं हैं।
>
> (३) असली काश्तकार जिस वक़्त चाहते हैं, शिकमी काश्तकारों से ज़मीन ले लेते हैं और दूसरे काश्तकारों को अधिक लगान पर या नज़राना लेकर दे देते हैं, क्योंकि शिकमी काश्तकारों का कोई अधिकार नहीं है। मौरूसी हक़ मिल जाने से असली काश्तकारों को उनकी ज़मीन निकलने का कोई खटका नहीं रहेगा, लेकिन शिकमी काश्तकारों को यह खटका सदैव लगा रहेगा।
>
> कांग्रेस सरकार किसानों को लाभ पहुँचाने का जो प्रयत्न कर रही है उससे अधिकतर असली काश्तकारों को लाभ होगा, जो केवल पट्टा लिये हुए अपने घरों में आराम से बैठे हैं और शिकमी काश्तकारों से नाजायज़ फ़ायदा उठाते हैं।

उक्त क़ानून पर इस समय सेलेक्ट कमिटी में विचार हो रहा है। आशा है, कमिटी के विद्वान् सदस्य उपर्युक्त बात पर ध्यान देने की कृपा करेंगे।

दहेज़ की प्रथा और आय-कर

दहेज़ की प्रथा एक बड़ी हानिकर प्रथा है। इसके कारण अनेक धनहीनों को अकारण तरह-तरह के कष्ट सहने पड़ते हैं। यही नहीं, एक यह भी बुराई है कि यह समाज में ऊँच-नीच के भेदभाव को दृढ़ता प्रदान करती है। अतएव समाज के कल्याण के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि इसका जल्दी से जल्दी अन्त किया जाय। इसी भावना से प्रेरित होकर हमने 'सरस्वती' के गत वर्ष के अंक में प्रान्तीय सरकार से यह प्रस्ताव किया था कि वह शादियों पर आय-कर लगा दे, यदि दहेज़ की प्रथा को वह क़ानून-द्वारा नहीं बन्द कर सकती है। ऐसा करने से राज्य की आय में कुछ वृद्धि हो जायगी, दूसरे दहेज़ की दूषित प्रथा पर प्रभावात्मक अंकुश लग जायगा। परन्तु प्रान्तीय सरकार का ध्यान उस ओर नहीं गया। अब दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' ने छापा है कि मदरास की सरकार ब्याहों की आय पर आय-कर लगाने का आयोजन कर रही है। मदरास की सरकार ने अनेक राष्ट्रोपयोगी कार्य करके अनेक क्षेत्रों में दूसरे प्रान्तों के लिए अब तक आदर्श ही उपस्थित किया है। उसका यह कार्य भी दूसरों के लिए वास्तव में अनुकरणीय होगा। क्या ही अच्छा हो, संयुक्त-प्रान्त आदि की सरकारें भी दहेज़ की प्रथा की बुराई दूर करने के लिए और न सही कम से कम मदरास-सरकार का अनुकरण करें और अपने यहाँ भी ब्याहों पर आय-कर लगाकर दहेज़ की वृद्धि को रोककर उस बुराई से प्रजावर्ग की रक्षा करें।

हमारे भोजन की उपयोगिता

विहार की कांग्रेसी सरकार ने एक बहुत ही उपयोगी योजना अपने हाथ में ली है। वह वैज्ञानिकों के द्वारा इस बात की जाँच करवाना चाहती है कि प्रान्त-वासी जो चीज़ें अपने भोजन में खाते हैं वे स्वास्थ्य के लिए कहाँ तक उपयुक्त हैं। इस कार्य के लिए उसने एक विशेष अधिकारी नियुक्त कर दिया है और उसको कार्य में वास्तविक सहायता देने के लिए रसायन-शास्त्र का एक विशेषज्ञ भी दिया जायगा। निस्सन्देह यह एक आवश्यक कार्यवाही है। इस जाँच के द्वारा सरकार को यह भी ज्ञात हो सकेगा कि प्रान्तवासियों की कितनी बड़ी संख्या किस तरह के भोजन से अपनी उदर-दरी को भरकर अपना जीवन-यापन कर रही है। रहा यह कि प्रान्तवासी अपने भोज्य-पदार्थों की उपयोगिता का ज्ञान रखते हैं या नहीं, सो इसका उनके सामने कोई सवाल ही नहीं उठ सकता जब उनको साधारण कोटि का भी भोजन नहीं सुलभ हो रहा है। तो भी इस सम्बन्ध की विहार-सरकार की यह कार्यवाही अपने ढंग की अभिनव, साथ ही ज्ञानवर्द्धक भी है।

काशी के भारत-कलाभवन का एक नया प्रयत्न

उक्तभवन के संग्रहाध्यक्ष अपनी विज्ञप्ति में लिखते हैं—

नागरी-प्रचारिणी सभा के संग्रहालय भारत-कलाभवन में हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यिकों की हस्तलिपियों का भी संग्रह किया जा रहा है। अब तक हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्री राधाकृष्णदास, श्री देवकीनन्दन खत्री, श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर', श्री रामचन्द्र वर्मा, श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा श्री 'प्रसाद' जी आदि की रचनाओं की उन्हीं की लिखी हुई पांडुलिपियों का संग्रह कर चुके हैं। सभा के सभापति पण्डित रामनारायण जी मिश्र के सदुद्योग से दो-एक और साहित्यिकों की लिपियाँ प्राप्त होने की संभावना है। जनता से प्रार्थना है कि जिन सज्जनों के पास श्री बद्रीनारायण चौधरी, श्री प्रतापनारायण मिश्र, श्री बालकृष्ण भट्ट, श्री बालमुकुन्द गुप्त इत्यादि इत्यादि स्वर्गीय साहित्यिकों तथा आजकल के प्रमुख साहित्यिकों की हस्तलिपियाँ हों सभा के कलाभवन को प्रदान कर अनुगृहीत करें।

भूल-सुधार

मई की 'सरस्वती' में पृष्ठ ५३६ के 'इटली से ब्रिटेन का समझौता' शीर्षक नोट में ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० नेवाइल चेम्बरलेन का नाम 'सर आस्टिन चेम्बरलेन' छप गया है। यह प्रधान मन्त्री के पिता का नाम है, जो भूल से छप गया है। इस भूल का निर्देश श्रीयुत सदाजीवनलाल भरद्वाज ने किया है, अतएव हम उनके कृतज्ञ हैं।

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

अगस्त १९३८ } भाग ३९, खंड २ संख्या २, पूर्ण संख्या ४६४ { श्रावण १९९५

गीत

लेखिका, श्रीमती तारा पाँडे

आज कहाँ पाऊँ वह अंचल?
बचपन में ही जिसे खो चुकी
उसकी स्मृति से रहती विह्वल!
नहीं पा सकूँगी वह अंचल!
एक वार भी यदि पा जाऊँ
जाने कितना हास लुटाऊँ
घूमूँ छाया-सी उसके सँग
निशि, वासर, प्रतिदिन, औ' प्रतिपल!
नहीं चाहती मैं चिर-यौवन
अपना वह रूखा-सा बचपन
मैं इच्छुक हूँ उस ममता की
जिसमें उर से उर जाता मिल!
स्नेहहीन जीवन का नाता
अस्थिर है अह किसको भाता
उस अंचल की ओट मिले यदि
जड़, चेतन होवे चिर-उज्ज्वल!
मैं नभ के तारों को गिन-गिन
रचती हूँ नित नव-नव बंधन
बनते-मिटते हैं कितने जग
भर-भर आता आँखों में जल!
आज कहाँ पाऊँ वह अंचल?

स्वर्गीय श्री नागेश्वरराव पंतुलु

[स्वर्गीय श्रीयुत नागेश्वरराव पंतुलु]

लेखक, श्रीयुत वेंकटेश्वरराव

खेद है कि श्री नागेश्वरराव पंतुलु अब हमारे बीच में नहीं रहे। उत्तर-भारत में जिन्होंने उनके 'अमृताञ्जन' का व्यवहार किया है वे भी उनके नाम से अपरिचित ही होंगे। पर वे दक्षिण की एक विभूति थे, कुशल व्यापारी, श्रेष्ठ सम्पादक, निर्भीक सत्याग्रही और हिन्दी के प्रचारक थे। उन्होंने अपना मार्ग स्वयं बनाया था। इस लेख में लेखक ने उनका संक्षिप्त परिचय दिया है।

जब तक कोई चीज़ अपने पास रहती है तब तक हम उस चीज़ का सच्चा मूल्य नहीं आँक सकते हैं। लेकिन ज्यों ही वह चीज़ हमारी आँखों से ओझल हो जाती है, हमारी आँखें खुल पड़ती हैं, हमारी उत्सुकता इतनी गहरी हो उठती है कि हम उस चीज़ की रत्ती-रत्ती का मूल्य निर्धारित करने पर उतारू हो जाते हैं। इसी लिए मनोवैज्ञानिकों एवं कवियों ने 'वियोग' शब्द पर बड़ा ज़ोर दिया है। पंतुलु जी जब तक हमारे बीच वर्तमान थे, अपने बहुमुखी प्रयत्नों से आंध्र-भूमि को उपजाऊ बनाने में लगे रहे, तब तक उनके जीवन की असाधारण सफलता पर विस्मित नज़रों से देखने के अलावा हम दूसरा कुछ सोच ही नहीं सकते थे। हम इस बात का पता नहीं लगा सकते थे कि उनमें ऐसी कौन-सी शक्ति है जिसके बल पर वे साहित्यिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में हाथ बँटाने में तत्पर रहते हैं। उनके समान तीन-तीन पत्रिकाओं का सम्पादन करनेवाले बहुत होंगे, व्यापार में कुशलता दिखानेवाले व्यवहार-कुशल व्य[...] भी काफ़ी होंगे, उनकी तरह अपना सारा समय देश[...] कार्यों में लगानेवाले देशभक्तों की संख्या भी कम न होगी, उनके समान दानी सेठ-साहूकार भी यत्र-तत्र दिख ही देंगे, मगर उनके समान सभी परिस्थितियों पर वि[...] प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व को मानव-समाज के व्यक्तित्व[...] विलीन कर निश्चिंत हो जानेवाले महानुभाव विरले होंगे।

इस विभूति को आबाल वृद्ध—साहित्य के प्रे[...] सिनेमा के अनुरागी, राजनीति के उपासक, कला[...] पुजारी, आयुर्वेद के आराधक, पत्रिका के पाठक, ग्रंथा[...] के इच्छुक, संस्थाओं के संस्थापक, यहाँ तक कि जिन[...] एक बार भी सिर-दर्द हुआ हो वे सभी जानते व पहचा[...] हैं। मगर यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि वे [...] पैदा हुए, उनके गाँव का क्या नाम है और जीवन[...] संघर्ष तथा बाधाओं की किन किन सीढ़ियों पर चढ़कर विकास-पूर्ण उच्च स्थिति को प्राप्त हुए। लोगों के [...]

में उनका 'अपनापन' इतना घर कर गया था कि वे सबको अपने से लगते थे। मातृभूमि की सेवा के नाम से ही उनका हृदय-सागर उमड़ उठता था। श्री पंतुलु जी के चरित-लेखक की आँखों के आगे गाल्ज़वर्दी के ये वाक्य जिन्हें उन्होंने अपनी मेज़ पर लिख रक्खे थे, ज़रूर नाचने लगेंगे। उन्होंने लिखा था—'मुझे इस जीवन-मार्ग से एक ही बार गुज़रना है, यदि किसी की भलाई कर सकता हूँ या किसी के प्रति दयाभाव दिखा सकता हूँ तो अभी कर लूँ, कल पर कभी न छोड़ूँ; क्योंकि मुझे इस मार्ग से फिर नहीं गुज़रना है।' पंतुलु जी की भी यही आकांक्षा थी। जो कुछ वे कर सकते थे उसे उन्होंने कल पर नहीं छोड़ा।

उन्होंने आंध्र देश के समाज और साहित्य में उन्नति की जो उन्नत अट्टालिका खड़ी की है उसकी बुनियाद को अपने हृदय के रक्त से सींचकर मज़बूत करनेवाले और नवयुग का शंखनाद करनेवाले चिरस्मरणीय व्यक्ति थे श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु तथा श्री गिडुगुराममूर्ति पंतुलु। इन दोनों महानुभावों की प्रखर प्रतिभा और व्यक्तित्व की महत्ता ने आन्ध्र के साहित्य तथा समाज में एक दूसरा ही युग उपस्थित किया। इन्हीं की प्रेरणा से युवक-समाज में नये विचारों की नींव पड़ी लोगों में आत्म-चेतना पैदा हुई। लेकिन उस समय इस बात की सख्त ज़रूरत थी कि ऐसा कोई एक व्यक्ति सामने आवे जो अपनी क्षमता से उठती हुई नई लहर को विशृंखल होने से बचा ले और उसको वेगवती धारा का रूप देकर अविश्रांत गति से आगे बढ़ा दे। ठीक इसी समय पंतुलु जी ने इस क्षेत्र में पैर रक्खा और समाज के वर्तमान परिस्थितियों का अच्छी तरह अध्ययन कर उसकी सर्वाङ्गीण उन्नति में कटिबद्ध हो गये।

अमृतांजन—किसी के मन में कल्पना तक नहीं उठ सकती थी कि कृष्णा ज़िले का एक ग़रीब देहाती युवक विशाल बंबई नगर में जाकर इतना बड़ा धनी हो जायगा और अपनी जन्म-भूमि को इस प्रकार संगठित कर सकेगा। उस युवक की सारी कीर्ति का आधार-स्तंभ उसका 'अमृतांजन' हुआ। अमृतांजन ख़ुद अमर है ही, साथ ही अपने आविष्कारक को भी अमर कर दिया। भारतवर्ष का शायद ही ऐसा कोई कोना बच पाया हो, जहाँ अमृतांजन की पहुँच न हो। सन् १९१३ की बात है। इस अमृतांजन की बरस में २ लाख शीशियाँ बिकने लगी थीं। बंगाल की एक 'केशरंजिनी' को छोड़ दें तो उस समय ऐसी कोई चीज़ न थी जो बिक्री में अमृतांजन का मुक़ाबला करती। पंतुलु जी की व्यापार-कुशलता बेजोड़ थी, जिसे देखकर विदेशी व्यापारी भी चकित रह जाते थे। पाश्चात्य देशों में भी उनका नाम मशहूर हो गया। एक अकिंचन ब्राह्मण का बम्बई जैसे शहर में पहुँचकर लाखों शीशियों को देश के चारों ओर रवाना कर देना पंतुलु जी के वाणिज्य सम्बन्धी अदम्य साहस व उत्साह का परिचायक है। उस समय जब वे इस क्षेत्र में अजनबी थे, चारों ओर बाज़ारों तथा दूकानों में 'हेनरी तेल' तथा 'ओरियंटल बाम्' की धूम थी, जिसके ज़रिये विदेशी व्यापारी करोड़ों रुपये कमा रहे थे। मगर थोड़े ही दिनों में अमृतांजन की ख्याति इतनी बढ़ गई कि उन सबको हार माननी पड़ी।

आंध्र-पत्रिका—पंतुलु जी ने पाश्चात्य व्यापारियों की तरह एक साप्ताहिक तेलुगू-पत्रिका को भी जन्म दिया। लेकिन यह कहना कि इस पत्रिका का जन्म सिर्फ़ इसलिए हुआ कि यह उनके अमृतांजन का ढोल पीटा करे, न्याय-संगत नहीं होगा। यदि उनके मन में महज़ स्वार्थ की ही भावना काम करती रहती होती तो बम्बई में रहकर जहाँ कम्पोज़िटरों का मिलना भी बेहद मुश्किल का काम था, वे कभी तेलुगू में पत्रिका न निकालते। वे चाहते तो अँगरेज़ी में अच्छी पत्रिका निकाल सकते थे। था भी बम्बई शहर उसके लिए बिलकुल उपयुक्त। परन्तु मातृभाषा का एक उपासक ऐसा कब कर सकता था! उनके हृदय में मातृभाषा एवं मातृ-भूमि के प्रति सच्ची सहानुभूति थी। मातृभूमि के उद्धार की वेदी पर बलि हो जाने की आकुलता थी। अतएव पत्रिका दिन दिन नये रूप में अपने को व्यक्त करने लगी।

तेलुगू-प्रान्त से दिलचस्पी रखनेवाले पाठक इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि बीस-पचीस साल पहले मदरास शहर तमिलवासियों का अड्डा बन गया था। तेलुगूवाले वहाँ बहुत कम जाते-आते थे। इसलिए उस शहर में तेलुगू के जितने लोग बसे हुए थे वे अपने ही प्रांत के लिए अजनबी मालूम पड़ने लगे। उन लोगों की संस्कृति, भाषा, वेश-भूषा, आचार-विचार में संमिश्रण हो गया। मामला इतना संगीन हो गया कि अगर किसी को घर से बाहर

निकलना होता तो उसको अपनी भाषा भुलाकर तमिल में बात करनी पड़ती।

सौभाग्य से ऐसे ही अवसर पर 'आंध्र-पत्रिका' बम्बई शहर से मदरास लाई गई। पहले वह साप्ताहिक थी, अब वह (१९१४) दैनिक कर दी गई। उसी के पुण्य-प्रताप का फल हुआ कि आन्ध्र लोगों में मदरास शहर के प्रति एक नूतन आकर्षण पैदा हो गया, चेतना की एक नई लहर दृष्टिगोचर होने लगी और धीरे-धीरे लोगों में यहाँ तक जागृति पैदा हुई कि वे अपने प्रान्त को एक अलग प्रान्त बनाने के प्रयत्न में लग गये।

आंध्र-पत्रिका में उस समय के सम्पादकीय अग्रलेखों को पढ़ने से मालूम होता है कि पंतुलु जी को पैसे के घाटे की चिन्ता नहीं थी, चिन्ता थी अपने प्रांतवासियों में नूतन उत्साह, मातृभूमि के प्रति उत्कट आकांक्षा, सांस्कृतिक उद्धार की उत्तेजना पैदा करने की। उन्होंने एक जगह लिखा है—"आंध्रदेश के अभ्युदय में हमारे प्रयत्न ज़रा भी सफल हुए तो यह सारा व्यय-भार कष्टदायक न होकर सुखावह प्रतीत होगा।" एक विशेषांक में वे कहते हैं—"यह पत्रिका रात-दिन लगातार शक्ति भर काम कर रही है कि पाठकों में देश-भक्ति, भाषाभिमान, अपने पैरों पर स्वयं खड़े होने की शक्ति, त्याग और पवित्र भावनायें पैदा हों।"

तेलगू-भाषा के कुल मिलाकर बीस या इक्कीस ज़िले हैं, जिनकी आबादी २६४ लाख है और जो सङ्गठन के अभाव में एक-दूसरे से अपरिचित-से बने हुए हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश बहुत दिन तक किसी नेता का ध्यान इधर नहीं गया। सङ्गठन के प्रति यह उदासीनता हमारे इन कर्मठ तपस्वी से नहीं देखी गई। वे झट कमर कसकर कार्यक्षेत्र में डट गये। आंध्र-पत्रिका के प्रथम वार्षिक प्रवेशांक में ही वे लिखते हैं—"आंध्रों की आबादी दो करोड़ से भी ज़्यादा है। ये लोग सभी प्रान्तों में फैले हुए हैं। आंध्र-भाषा में इतनी शक्ति ज़रूर है कि वह सबको एक सूत्र में गूँथ सके। यह निर्विवाद बात है कि अन्य हिन्दुओं की तरह आंध्र भी अपनी तरक्क़ी करते जा रहे हैं। मगर वे बङ्गालियों, महाराष्ट्रों, गुजरातियों तथा द्राविड़ों (तमिल लोगों से तात्पर्य है) की तरह अपनी विशालता के अनुरूप तरक्क़ी कर रहे हैं, ऐसा नहीं जान पड़ता है। कई प्रांत ऐसे हैं जो आबादी की नज़र से बहुत कम होते हुए भी सङ्गठन तथा शक्ति में आगे बढ़े हुए हैं। इसकी वजह यह है कि उनमें शिक्षा का ज़्यादा प्रसार है। तेलुगू-प्रांत में दक्षिण-प्रांत के मुक़ाबले कालेज और स्कूल बहुत कम हैं। मदरास के तीनों अँगरेज़ी अख़बार जो भारतीयों-द्वारा संचालित हैं, आंध्रेतर लोगों के ही अधीन हैं।"

ऊपर दिये गये उद्धरण को देखकर पाठक यह कह सकते हैं कि पंतुलु जी में संकीर्णता की कम बू नहीं थी। मगर उनसे हमारा नम्र निवेदन है कि ये उद्धरण उस समय के हैं जब आंध्रों में कोई जागरूकता नहीं थी। उस समय यह ज़रूरी था कि देश की चर्चा करने से पहले अपने प्रान्त व अपने घर की बात करते। क्योंकि पीछे चलकर पंतुलु जी की कार्यशक्ति ने यह प्रकट कर दिया कि वे एक प्रांत की ही नहीं, वरन अपने प्रान्त के साथ साथ देश की भी मुक्ति चाहते हैं। व्यक्तित्व के विकास और साहित्य की रक्षा के लिए वे अलग प्रान्त चाहते थे, जिसका औचित्य कांग्रेस ने भी बाद को स्वीकार किया।

पंतुलु जी ने थोड़े ही दिनों में दैनिक के अतिरिक्त साप्ताहिक आन्ध्र-पत्रिका, तथा मासिक 'भारती' भी निकाली। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि वे जिस काम को अपने हाथ में लेते थे उसको सर्वाङ्ग सुन्दर बना करके छोड़ते थे। उसी से उनकी तीनों पत्रिकायें अब तक वैसे ही सुचारु रूप से चल रही हैं, आज भी उनकी होड़ में कोई नई पत्रिका नहीं ठहर सकती है। यही नहीं, उनके 'दुर्गाकलामन्दिर' (सिनेमाघर, बेजबाडा) की बराबरी में दूसरा रङ्गमञ्च भी आज तक देखने में नहीं आया। इसकी वजह उनकी प्रबन्ध-पटुता के सिवा और क्या हो सकती है!

आंध्र पत्रिका—दैनिक और सप्ताहिक—ने देश की राजनैतिक गुत्थियों के सुलझाने में जी-तोड़ परिश्रम किया। यद्यपि ये दोनों पत्रिकायें साहित्य की ओर भी झुकी रहीं हैं, पर दोनों का आदर्श रहा है जनता में राजनैतिक जागृति पैदा करना। वैसे ही 'भारती' ने साहित्य-क्षेत्र को सुसंपन्न करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। जिस प्रकार अमृतांजन का आविष्कार पंतुलु जी के जीवन में एक नया प्रकरण शुरू करता है, उसी प्रकार ये तीनों पत्रिकायें तेलगू-साहित्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय शुरू करती हैं। या यों कहा जाय तो ज़्यादा उपयुक्त होगा कि अगर ये पत्रिकायें न निकलतीं तो तेलुगू-साहित्य में जो फूला-फला सौन्दर्य आज देखने में आता है, इसके बदले उसकी दूसरी ही शकल हमें देखनी पड़ती।

'भारती' को एक पत्रिका कहने की अपेक्षा अच्छा हो कि उसको साहित्यिक प्रवृत्तियों का मार्ग-प्रदर्शन करानेवाली संस्था कहें। उसी ने कवियों, विद्वानों, कहानीकारों और पुरातत्त्ववेत्ताओं का परिचय अपने देश-वासियों को दिया। भारती में लेख आदि छपवाना लेखक के लिए गर्व की बात थी। तेलुगू-पत्रिकाओं में लेखकों को पारिश्रमिक देने की चाल उसी ने पहले-पहल ग्रहण की। उसी ने लेखकों को प्रोत्साहन दिया। जिस तरह हिन्दी में नये लेखकों एवं कवियों को आगे बढ़ाने का श्रेय 'सरस्वती' तथा उसके मनस्वी संपादक श्री द्विवेदी जी को है, उसी तरह नये लेखक पैदा करने और महत्त्वपूर्ण विषयों पर उत्तेजना देकर लेख आदि लिखवाने का श्रेय 'भारती' तथा श्री पंतुलु जी को है।

तीन-तीन पत्रिकायें चलाना, सो भी तेलुगू में किसी लखपती के लिए भी आसान न था। लेकिन पंतुलु जी की त्याग-भावना और प्रबन्ध-पटुता ने उसको निभा लिया। यही नहीं, ऐसी और भी कई पत्रिकायें थीं या हैं जो उनसे काफ़ी मदद प्राप्त करती रहीं। किसी भी पत्रिका के संचालक से यह बात छिपी नहीं है कि 'फ़्री-लिस्ट' का झमेला क्या होता है। यहाँ तो कोरे व्यवसाय की बात नहीं थी। आंध्र पत्रिका की 'फ़्री-लिस्ट' ८०० से ज़्यादा है। ८०० का अर्थ हुआ १६ हज़ार दो सौ रुपया।

राजनैतिक जीवन—बम्बई छोड़ कर मदरास चले आने के कुछ ही बरसों के अन्दर महात्मा जी का 'सत्याग्रह' शुरू हुआ। पंतुलु जी की हृदयस्थ प्रसुप्त देशभक्ति सत्य और अहिंसा का इशारा पाकर एकदम प्रज्वलित हो उठी। वे सत्याग्रह-आन्दोलन में शरीक हुए। वे उस समय अस्वस्थ थे, पर इसकी उन्होंने परवा न की और सत्याग्रह-समर में कूद पड़े। फल-स्वरूप जेल में बन्द कर दिये गये। देश की मुक्ति के लिए धन और शक्ति का जो बलिदान उनसे अपेक्षित था उससे उन्होंने मुँह नहीं मोड़ा। वे इतने अधिक लोकप्रिय हो गये कि केन्द्रीय असेम्बली के (१९३४) में सदस्य चुने गये। लेकिन स्वास्थ्य ने उनका साथ नहीं दिया। अन्त में उन्हें उसकी सदस्यता से त्याग-पत्र दे देना पड़ा।

हिन्दी-प्रचार—हिन्दी-प्रचार के प्रति पंतुलु जी का अकृत्रिम अनुराग था। बुढ़ापे में उन्होंने हिन्दी सीखी और हिन्दी में धारावाही बोल लेते थे। वे दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा के कई बरस तक उपाध्यक्ष रहे। उन्होंने अपनी अमूल्य सलाह और आर्थिक सहायता से सभा की बराबर मदद की। उसके प्रत्येक वार्षिक जलसे में वे बड़ी दिलचस्पी के साथ भाग लेते और लोगों को ख़ूब प्रोत्साहन देते थे। हिन्दी-प्रचार-सभा जो भी मदद चाहती उसके लिए आंध्र-पत्रिका खुली रहती। हिन्दी के प्रति उनकी इतनी उदार भावना थी कि कभी कभी हिन्दी के अच्छे अच्छे लेख देवनागरी अक्षरों में पत्रिका में छापे जाते थे। उन्होंने एक बार यहाँ तक कहा था कि क्या ही अच्छा हो, राष्ट्र के एकीकरण की दृष्टि से तेलुगूवाले अपनी लिपि का मोह छोड़कर देवनागरी-लिपि को अपना लें!

पंतुलु जी सभी क्षेत्रों में अपना विशेष स्थान रखते थे। जितना उनको सनातनी चाहते थे, उतना ही आधुनिक भी। ब्राह्मण उनको जितनी पूज्य दृष्टि से देखते, उतनी ही अन्य जाति के लोग भी। मन्दिर तोड़कर ग्रंथालय बनाने की चाह रखनेवाले युवकों को वे जिस ख़ुशी से मदद देते थे उसी ख़ुशी और आनन्द से जीर्ण देवालय के पुनरुद्धार करनेवालों को भी। कांग्रेस तथा राजनैतिक सभाओं के लिए उनका 'दुर्गाकलामन्दिर' रिज़र्व रहता तो जस्टिस पार्टीवालों के लिए भी कोई रोक-टोक नहीं थी। कोई आदमी विनम्रता से अगर दान पा सकता था तो अहित चाहनेवाला भी ख़ाली हाथ नहीं जाता था।

वे कठोर तर्क नहीं जानते थे। दूसरों के अविश्वासों और धर्म की निन्दा और अपनी प्रशंसा उन्हें सह्य नहीं थी। सर्वधर्म-समन्वय में उनका धर्म निहित था। गीता के वे बड़े प्रेमी थे। वे बलवान् होकर भी क्षमाशील, विद्वान् होकर भी विनम्र, साहस और अजेय शक्ति प्राप्त करके भी शान्तिप्रिय, सभी भोग्य वस्तुओं के मालिक होकर भी संयमी और उद्योगी थे। उनका धन केवल उन्हीं की उपभोग्य वस्तु न था। खाने-पीने और रहन-सहन में बहुत संयम रखते थे। न वाणी में कोई गर्जन-तर्जन था, न चेहरे में कोई प्रबल आकर्षण, लेकिन देश ने उनको पहचान लिया था कि वे बोलनेवालों में नहीं बल्कि कर दिखलानेवालों

में से हैं। पंतुलु जी देश की नाड़ी पहचानते थे; इसलिए उनका सादापन ही देश के मर्मस्थल को स्पर्श करने में सफल हुआ।

देश में किसी घोर क्रांति को उन्होंने जन्म नहीं दिया सही, किसी भी सार्वजनिक काम में सबसे पहले हाथ डालनेवालों में वे नहीं रहे सही, किसी ऐसी संस्था का जो अखिल भारतीय कही जा सके उन्होंने स्थापन नहीं किया सही, मगर उनका व्यक्तित्व इतना विशाल रहा कि कोई भी ऐसी संस्था या आन्दोलन आन्ध्र देश में आगे नहीं बढ़ा जिसमें उनका हाथ न रहा हो, उन्होंने तन-मन-धन से उसकी सहायता न की हो।

इन महानुभूति का जन्म १ मई सन् १८५७ में हुआ और मृत्यु ११ अप्रेल सन् १९३८ में। ये अपने पीछे अपनी विधवा पत्नी, एक बेटी और दामाद को छोड़ गये हैं। अब इनकी आंध्र-पत्रिका—दैनिक, साप्ताहिक और भारती तीनों के सम्पादक इनके दामाद श्री शिवलेंक शम्भुप्रसाद जी हैं।

दिव्य गान

लेखक, श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

कल्पना मेरी नहीं थी वह तुम्हारा गान सुन्दर,
गूँजता था विश्व में करता उसे सुनसान सुन्दर,
मुग्ध मन में था तुम्हारा प्रेममय आह्वान सुन्दर,
क्या कहूँ कैसा मनोहर था तुम्हारा गान सुन्दर?
था निराशा में शुभाशा का अनूपम भान सुन्दर,
इस सतत अज्ञान में था वह तड़ितवत ज्ञान सुन्दर,
भूल इस दुखमूल में था सत्य का व्यवधान सुन्दर,
वह क्षणिक अनुभव न होगा क्या सतत, जगप्रान सुन्दर?
फिर सुना दो तुम मुझे आनन्दमय वह तान सुन्दर!
विश्व को कर दो पुनः उस गान से सुनसान सुन्दर।
क्षणिक जीवनमुक्ति, तृष्णा का क्षणिक अवसान सुन्दर,
क्या कहूँ कैसा मनोहर था तुम्हारा गान सुन्दर।

एक समालोचना

'विश्व-इतिहास की झलक'

लेखक, श्रीयुत कृष्णचन्द्र विद्यालंकार

पंडित जवाहरलाल नेहरू पिछले १७-१८ सालों से भारत की सक्रिय राजनीति के साथ इतने अधिक सम्बद्ध हो चुके हैं कि हम उनकी किसी दूसरे रूप में कल्पना ही नहीं कर पाते। लेकिन उनका एक दूसरा रूप भी है और वह है उनकी विद्वत्ता का, उनके संसार के इतिहास, वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, सामाजिक, आर्थिक आदि विचार-धाराओं आदि के अगाध ज्ञान का। साहित्यिक, इतिहासज्ञ और विचारक के रूप में भी जब जवाहरलाल हमारे सामने उपस्थित होते हैं तब पाठक या श्रोता उनके आगे अनायास ही नतमस्तक हो जाते हैं। 'विश्व-इतिहास की झलक' के लेखक के रूप में हम ऐसे ही जवाहरलाल को पाते हैं।

लेखक महोदय के शब्दों में उक्त पुस्तक के लिखने का उद्देश्य निम्नलिखित है—

"मैं बहुत चाहता था कि तुम्हारे (प्रिय पुत्री इन्दिरा के) सामने पुराने ज़माने की साफ़-साफ़ तसवीर रक्खूँ, ताकि तुम्हें यह पता चल सके कि हमारी यह दुनिया धीरे-धीरे किस तरह बदली, कैसे बढ़ी और विकसित हुई और कैसे कभी-कभी ज़रा पीछे हटी। मेरी इच्छा थी कि तुम्हें यह पता चल जाय कि पुरानी सभ्यतायें किसकी किसकी थीं, वे लहरों की तरह कैसे उठीं और कैसे फिर बैठ गईं और तुम समझने लगो कि इतिहास की नदी किस प्रकार बराबर युगयुगान्तर से बहती हुई चली आ रही है और किस प्रकार इसकी धारा में भँवर पैदा हुए, लहरें उठीं, बहुत-सा पानी लहर के साथ बह गया और कुछ पानी पीछे रह गया और कैसे यह नदी अभी-तक अज्ञात समुद्र की तरफ़ बढ़ती हुई चली जा रही है। मैं चाहता था कि तुम्हें मनुष्य के पदचिह्नों पर ले चलूँ और यह दिखाऊँ कि शुरू से जब कि वह मुश्किल से मनुष्य कहला सकता था, आज तक, जब वह अपनी बड़ी सभ्यता पर, ज़्यादातर बेवक़ूफ़ी और प्रमादवश अपने को बहुत कुछ समझने लगा है, वह कौन-सी हालतों में गुज़रा है।"

उक्त पुस्तक को पढ़ने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान् लेखक को अपने इस उद्देश्य में सफलता हुई है। इतना विस्तृत विषय एक ग्रंथ में समा सकना असम्भव है, परन्तु लेखक महोदय की विशेष लेखनशैली ने इसे भी सम्भव बना दिया है। यह समस्त इतिहास पत्रों के रूप में लिखा गया है और लेखक महोदय ने इसके पत्र अपनी पुत्री श्री इन्दिरा को सम्बोधित करके लिखे हैं। इसलिए निर्जीव और शुष्क इतिहास जैसे विषय में भी एक प्रकार का रस आ गया है।

वस्तुतः यह विश्व का इतिहास एक विचारक के आगे ऐसी अनेक गंभीर दार्शनिक समस्यायें उपस्थित कर देता है, जिनका हल आज तक नहीं हो सका। आख़िर संसार का इतिहास है क्या—रोज़ बदलनेवाली एक कहानी ही न? वैज्ञानिकों का मत है कि प्रत्येक वस्तु का प्रत्येक अणु गतिशील और परिवर्तनशील है। इसी तरह यह मनुष्य-इतिहास भी गतिमान् और परिवर्तनशील है। किसी भी देश की स्थिति सदा एक-सी नहीं रहती। एक देश आज संसार का मुकुट है, दो-तीन सदियाँ भी नहीं बीत पातीं कि वह देश न जाने कहाँ लुप्त हो जाता है और दूसरा देश उसका स्थान लेकर संसार का आकर्षण-बिन्दु बन जाता है। पश्चिमी एशिया कुछ साल पहले तक संसार के अत्यन्त अवनत भागों में से एक था और आज भी उसे विशेष उन्नत नहीं कह सकते, लेकिन पहले ऐसा न था। आज से हज़ारों साल पहले कई हज़ार वर्ष तक संसार के इतिहास में पश्चिमी एशिया का बड़ा भारी महत्त्व रहा है। सात हज़ार साल पहले प्राचीन चैल्डिया का एक धुँधला चित्र दीखता है। वहाँ आज-कल का ईराक़ है। इसके बाद बैबिलोन का चित्र आता है और बैबिलोनवालों के बाद असीरिया नज़र आता है, जिसकी महान् राजधानी निनेवा में थी। फिर असीरिया के लोगों के भी हटने की

बारी आ जाती है और ईरान से एक नया राजवंश और नई जाति आ जाती है, जो हिन्दुस्तान की सरहद से मिस्र तक सारे देशों को अपनी मर्ज़ी के मुताबिक नचाते हैं। ये लोग ईरान के अर्क येनीद थे। इन्हीं में महान् नरेश डेरियस और जरक्सीज़ पैदा हुए। इन्हें भी बाद में मेसिडोनिया के सिकन्दर के हाथों पराजित होना पड़ा। सिकन्दर के बाद मध्य-पूर्व में भारतीय सीमा से मिस्र तक कई सदियों तक यूनानी संस्कृति प्रधान रही। लेकिन इसे भी बढ़ती हुई रोम-शक्ति ने हटा दिया, पर यह स्वयं भी स्थिर न हो सकी। सासानियों के नये ईरानी-साम्राज्य ने उसकी बढ़ती को रोक दिया। एक दीर्घकाल तक पश्चिमी एशिया के मैदानों में पूर्व और पश्चिम के ईरानी-साम्राज्य और कुस्तुंतुनिया के पुराने विज़ेनटाइन-साम्राज्य के बीच कशमकश चलती रही।

पश्चिमी एशिया के इन प्रदेशों में तीन महान् धर्मों का— यहूदी-धर्म, ज़रथुस्त्र-धर्म और ईसाई-धर्म— का जन्म हुआ था, लेकिन कुछ समय के बाद अरब से पैदा होनेवाले इस्लाम ने इन सबको बाहर निकाल दिया। लम्बे और शानदार कार्यों के बाद अरब-संस्कृति भी मन्द पड़ जाती है और सेलजूक तुर्क आगे आ जाते हैं तथा अन्त में मंगोल चंगेज़ख़ाँ के वारिसों-द्वारा वे बिलकुल दबा दिये जाते हैं। मङ्गोलों के आने से पहले ढाई सदी तक क्रूसेड (धर्मयुद्ध) चलते रहते हैं। ये युद्ध समाप्त न हुए थे कि मङ्गोल लोग पश्चिमी एशिया पर आ टूटे। वे अपने साथ विनाश और बरबादी लेकर आये। उस्मानी तुर्कों के समय मध्य-एशिया का योरप के साथ होनेवाला व्यापार शनैः शनैः नष्ट हो गया। भूमध्य-सागर के मार्ग-द्वारा जहाज़ी व्यापार बढ़ने के कारण शनैः शनैः पश्चिमी एशिया के स्थल मार्गों की ज़रूरत नहीं रही और पश्चिमी एशिया का महत्त्व भी बहुत कम रह गया। चार सौ सालों के बाद अब फिर मध्य-एशिया अपने स्थल-मार्ग की वजह से महत्त्व-पूर्ण होने जा रहा है। हवाई जहाज़ों की उन्नति ने फिर इसका महत्त्व बढ़ा दिया है। पश्चिमी एशिया के राष्ट्रों में भी पुनर्जाग्रति व पुनर्जीवन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे हैं। यह बहुत संभव है कि आनेवाली सदियों में पश्चिमी एशिया फिर कभी पश्चिमी योरप का-सा महत्त्व-पूर्ण स्थान

नहीं, संसार के सभी भागों के इतिहास का यही हाल है। सभी भागों में कितने ही राज्य आये, कितनी ही संस्कृतियाँ आईं और धर्म पैदा हुए, लेकिन काल-चक्र के प्रवाह से वे सब नष्ट हो गये और उनका स्थान दूसरे राजवंशों, दूसरी संस्कृतियों और दूसरे धर्मों ने ले लिया। भारत, स्पेन, चीन, अरब, अमेरिका, पूर्वी और पश्चिमी रोमन, तुर्क और ब्रिटिश सभी साम्राज्यों में यह चक्र चलता रहा है। लेखक महोदय ने अपनी पुस्तक में इन सभी देशों के उत्थान और पतन का सुन्दर वर्णन किया है।

विश्व-इतिहास का अध्ययन करते हुए हम चीन और भारत में एक ऐसी विशेषता पाते हैं जो अन्य देशों के इतिहासों में नहीं पाई जाती। इन दोनों देशों में भी साम्राज्य के बाद साम्राज्य क़ायम होते रहे। इन पर भी ठीक अन्य देशों की भाँति अधिक संख्या में हमले हुए, बरबादी और लूटमार भी हुई, लेकिन सारे परिवर्तनों, लड़ाइयों और हमलों के बावजूद भी इन दोनों देशों में पुरानी सभ्यता की धारा अटूट बहती आई है। इन देशों की अवनति से लेखक महोदय अपरिचित नहीं हैं, वे यह जानते हैं कि इनकी प्राचीन सभ्यता के ऊपर गर्द व ग़ुबार का ढेर जमा हो गया है, लेकिन यह सभ्यता अभी तक क़ायम है। यह देखकर उनका भारतीय हृदय पुलकित व गद्गद हो उठता है। वे कहते हैं—"जो भारतीय सभ्यता और संस्कृति इतिहास के उदयकाल से लेकर लम्बे-लम्बे युगों को पार करती हुई वर्तमान युग तक चली आई है उसके विस्तृत विस्तार और सिलसिले की कल्पना तक आश्चर्यजनक और मनोरञ्जक है। एक अर्थ में हम लोग हिन्दुस्तान के इन हज़ारों बरसों के उत्तराधिकारी हैं। यह हो सकता है कि हम लोग पुराने ज़माने के उन लोगों के ठेठ वंशज हों जो उत्तर-पश्चिम के पुराने देशों से होकर उस लहलहाते हुए मैदान में आये थे जो ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त, भारतवर्ष और बाद में हिन्दुस्तान कहलाया। क्या तुम्हें अपनी कल्पना में ये लोग पहाड़ी दर्रों से होकर नीचे के अनजान मुल्क में उतरते हुए नहीं दिखाई देते?......अपने उन पूर्वजों का ख़याल तो करो, जो आगे-आगे बढ़ते-बढ़ते एक दम से ज्ञान के साथ समुद्र की ओर बहनेवाली गंगा के किनारे आ पहुँचे। यह दृश्य देखकर उनका हृदय कितना आनन्दित हो गया होगा!

और यह सोचकर सचमुच ताज्जुब होता है कि हम इन सब युगों के उत्तराधिकारी हैं।" (पृष्ठ २५) परन्तु लेखक महोदय हृदय और मस्तिष्क की तुला को क़ायम रखते हैं और जब वे यह कहते हैं तब मस्तिष्क की ही बात रखते हैं कि आख़िर में हम गिर गये—"हम अपनी सभ्यता की धारा अटूट रहने पर ख़ुश हो सकते हैं, लेकिन जब वह सभ्यता ही पककर ख़त्म हो गई तब इससे हमें क्यों सन्तोष हो सकता है? इससे तो यही अच्छा हुआ होता कि प्राचीनता से एकाएक हमारा सम्बन्ध ही टूट जाता। इससे हम जड़ से हिल जाते और हममें नया जीवन और नया बल आ जाता" (पृष्ठ १६५)। एक और स्थल पर वे लिखते हैं—"इन सभ्यताओं का सिलसिला तो न टूटा, लेकिन वे धीरे-धीरे मुरझाने लगीं और अन्त में वे एक रँगी हुई तसवीर की तरह बन गईं, जो दूर से देखने में सुन्दर तो बहुत मालूम होती थी, लेकिन उसमें जान नहीं थी। और अगर कोई नज़दीक आकर देखता तो मालूम होता कि उसे दीमकें चाटती जा रही हैं"। (पृष्ठ २६०)

अन्य भी ऐसे अनेक स्थल हैं, जहाँ वे भारतीय होने के कारण प्राचीन संस्कृति से प्रभावित हुए हैं, परन्तु उसके साथ उनमें तर्क और विचार का अभाव नहीं होने पाया है। और यह भावुकता केवल भारत के सम्बन्ध में ही नहीं, अन्य अनेक देशों के प्रसंग में भी उनमें हम पाते हैं और यही भावुकता है जो इस निर्जीव इतिहास में जीवन और प्राचीनता का संचार करती है।

हम ऊपर कह आये हैं कि मानव-इतिहास अनेक महत्त्वपूर्ण समस्यायें विचारक के सामने रखता है। इस पुस्तक के लेखक महोदय भी उनके महत्त्व से अपरिचित नहीं हैं। वे इतिहास के प्रभातकाल से मनुष्य की गति पर ध्यान देते हैं और आज तक उसकी खोज की दिशा और प्रगति पर एक नज़र डाल लेते हैं। इतिहास की यह नदी आख़िर किस अज्ञात समुद्र की ओर जा रही है? मानव-जाति किसकी खोज कर रही है? धर्म, दर्शन और विज्ञान ने इन प्रश्नों का अपना-अपना उत्तर दिया है। "यह खोज दो आधार पर चली है। मनुष्य ने अपने अन्दर भी ढूँढ़ा है और बाहर भी। उसने प्रकृति को भी समझना चाहा है और अपने को भी। यह खोज वास्तव में एक ही है, क्योंकि आदमी ख़ुद प्रकृति का एक अंग है।

भारतीय और यूनानी दार्शनिकों ने कहा है—अपने को जानो। और उपनिषद् में ज्ञान के लिए प्राचीन आर्य भारतीयों के इन अद्भुत और निरन्तर प्रयत्नों का हाल मिलता है। विज्ञान अब तो अपने पंख और आगे पसार रहा है और इन दोनों रास्तों की खोज अपने ज़िम्मे ले रहा है।" लेखक महोदय को धर्म की अपेक्षा विज्ञान पर अधिक श्रद्धा है, क्योंकि वहाँ तर्क और बुद्धि का निरादर नहीं होता। लेकिन वे विज्ञान के वर्तमान संहारकारी प्रयोग से दुखी भी बहुत हैं। वस्तुतः पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों में यही भेद है। पूर्व में श्रद्धा है, और पश्चिम में सिर्फ़ तर्क—श्रद्धाहीन तर्क है। पुराने ज़माने का ज़िक्र करते हुए लेखक महोदय विह्वल हो जाते हैं और प्राचीन मन्दिरों के शिखरों, मस्जिदों की नाज़ुक मीनारों और गौथिक ढंग के गिरजों को देखकर वे कहते हैं—"भले ही हममें वह श्रद्धा न हो, पर इन्हें देखकर रोमांच हो जाता है।" पर फिर मस्तिष्क हावी होता है और कहता है कि उस श्रद्धा के दिन गये। यह तो शंका और तर्क का युग है। एक स्थल पर वे भारतीय पंचायतों की हिमायत करते हुए यह दुख प्रकट करते हैं कि ब्रिटिश सरकार ने आकर इस प्राचीन उपयोगी प्रणाली को नष्ट कर डाला, पर दूसरी ओर पंचायतों को प्राचीन समय की एक संस्था बताकर उनके विनाश को स्वाभाविक बताते हैं। यही श्रद्धा और तर्क का संघर्ष संसार की अन्य अनेक समस्याओं का विचार करते हुए हम जगह-जगह पाते हैं। लेखक महोदय दोनों के चमकीले पहलू देखते हैं, लेकिन उनकी तीक्ष्ण दृष्टि उनके दोषों पर भी चली जाती है। इस तरह का निष्पक्ष विचार पाठक के हृदय में एक गुदगुदी-सी पैदा कर देता है और उसे उस विषय को अधिक गहरी नज़र से सोचने के लिए उत्सुक कर देता है।

साम्यवाद, पूँजीवाद और फ़ासिज़्म की चर्चा करते हुए लेखक महोदय साम्यवाद की प्रशंसा करते हुए फ़ासिज़्म की तीव्र आलोचना करने लगते हैं। फ़ासिज़्म में वे कोई गुण नहीं पाते। अन्त में वे संसार की वर्तमान प्रगति को देखकर खिन्न-सा हो जाते हैं और अत्यन्त निराश-पूर्ण शब्दों में पूछते हैं—"इस सबका परिणाम क्या होगा? विश्वव्यापी नाश? सदियों की संस्कृति और

सभ्यता की जो बढ़िया इमारत तैयार हुई है उसका अन्त ?" (पृष्ठ १२३४)

पुस्तक में बीसियों ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें पाठकों के सामने रखने का प्रलोभन संवरण नहीं किया जा सकता। परिस्थिति का विवेचन लेखक महोदय ख़ूब सुन्दर ढङ्ग से करते हैं। धर्म की आड़ में किस तरह संसार राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध करता है, इसका स्थल-स्थल पर उन्होंने बहुत ही उत्तमता से वर्णन किया है। संसार के विभिन्न महापुरुषों पर उन्होंने अपने ही दृष्टिकोण से विचार किया है। नेपोलियन और सिकन्दर को वे घृणा की दृष्टि से देखते हैं, जब कि चंगेज़ख़ाँ उनको आकृष्ट करता है। राजनैतिक क्रान्तिकारी विचारों के होने पर भी वे हिंसा को बहुत तुच्छ दृष्टि से देखते हैं। वे धार्मिक अन्ध-विश्वास से घृणा करते हुए भी धर्म-प्रवर्तकों को आदर की दृष्टि से देखते हैं। इतिहास राजाओं का रजिस्टर नहीं है, इसलिए वह जन-जागृति, जनता की उन्नति या अवनति, रहन-सहन, साहित्य, विज्ञान और विचार-धाराओं पर भी ख़ूब प्रकाश डालता है। लेखक महोदय यह दुःख के साथ अनुभव करते हैं कि "रूस, जर्मनी या फ्रान्स की सरकारों ने यह किया," न कहकर "रूस, जर्मनी या फ्रान्स ने किया" लिख देते हैं, मानों सरकार ही देश हो, देश तो वस्तुतः जनता है। उन्होंने जनता के इतिहास पर काफ़ी बल दिया है। यह उनकी एक बड़ी विशेषता है।

पाठक मानव-जाति का यह विस्तृत इतिहास पढ़ते हुए बार-बार आश्चर्य-सागर में डूबता-उतराता है। इस इतिहास में इतनी अधिक अद्भुत घटनाओं का समावेश हुआ है कि उन्हें पढ़कर एक विचारक के हृदय में संसार के प्रति उदासीनता-सी, एक निस्संगता-सी—कर्म-फलों से अलिप्त रहकर कर्म करने की इच्छा—पैदा होती है। सैकड़ों साम्राज्य आये और चले गये, देश उठे और गिर गये, यह सब क्या उस महान् परमात्मा का मनुष्य के साथ खिलवाड़ है या वस्तुतः इसमें कुछ सत्य सनातन नियम काम करते हैं, आदि ख़याल आकर पाठक को विचार-सागर में डुबो देते हैं। लेखक महोदय ने इन सब बातों का तटस्थ भाव से सुन्दर वर्णन किया है।

भारतीय मुस्लिम इतिहास का वर्णन करने में लेखक महोदय राजनीतिज्ञ के रूप में प्रकट हुए हैं। हिन्दू-मुस्लिम-एकता के विचार से हिन्दुओं पर होनेवाले अत्याचारों को 'डिफ़ेण्ड' करने की प्रवृत्ति उनमें पाई जाती है।

लेखक महोदय की लेखनशैली बहुत मनोरञ्जक है, उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार है. अपने भाव-प्रकाशन के लिए उनके पास शब्दों की कमी नहीं है। समस्त विश्व के इतिहास जैसे विस्तृत विषय को जो हज़ारों पैरों से आगे बढ़ रहा है, एक साथ पाठक को हृदयङ्गम कराने में वे सिद्धहस्त जान पड़ते हैं। स्थल-स्थल पर ठहर-ठहरकर सिंहावलोकन, पार्श्व-चित्र-दर्शन आदि के द्वारा वे पाठक को पिछली और नई घटनाओं के सम्बन्ध का ज्ञान कराते जाते हैं। इससे पाठक पिछला इतिहास भूलता नहीं।

लेखक ने यह पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है। इस सम्बन्ध में वे अत्यन्त नम्रता के साथ कहते हैं कि "मैं कितना धोखेबाज़ आदमी हूँ कि तुम्हें जो उपदेश देता हूँ, उसी के ख़िलाफ़ करता हूँ!" परन्तु इसकी ज़िम्मेवारी अपनी दूषित शिक्षा पर डालकर वे आगे से ज़्यादा कर्तव्यपरायण होने की प्रतिज्ञा करते हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि उनका नया ग्रन्थ मातृभाषा में ही लिखा जायगा। एक और स्थल पर वे लिखते हैं कि "बद-क़िस्मती से हममें से बहुत-से लोग (और मैं भी उनमें से एक हूँ) संस्कृत नहीं जानते और इसलिए अपनी इस अनमोल विरासत से महरूम हैं। मुझे आशा है कि तुम इससे लाभ उठाओगी (१६५)।"

लेखक महोदय भारतीय संस्कृति, भारतीय वेश-भूषा और भारतीय भाषाओं से पूर्ण सहानुभूति प्रकट करते हैं और पाठक को विश्वास दिलाते हैं कि अगले ग्रन्थ में वे उन समस्याओं पर भारतीय साधक के दृष्टिकोण से विचार करेंगे, जिसका हल पश्चिमी संस्कृति के पास नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक 'हिन्दुस्तानी' में दिल्ली के 'सस्ता साहित्य-मण्डल' ने प्रकाशित की है। छपाई-सफ़ाई सुन्दर और जिल्द आकर्षक है। बड़े आकार की १,५०० पृष्ठ की २ जिल्दोंवाली इस पुस्तक का दाम ८) है।

एक सदाचारी पर असफल व्यापारी की कहानी

क़ैदी

लेखक, श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त

[१]

सत्यव्रत को बेवक़ूफ़ कोई नहीं कहता था। लोग उसको एक चतुर और सच्चरित्र बालक समझते थे। पठन-पाठन में वह लापरवाही नहीं करता था। जब वह शिक्षा समाप्त कर चुका तब घर में इस बात पर बहस हुई कि वह क्या करे? उसके पिता एक धनी व्यक्ति थे। वे यह नहीं चाहते थे कि उनका लड़का सरकारी नौकरी करे। इसके साथ ही वे यह भी नहीं चाहते थे कि उनका लड़का घर पर बेकार बैठा रहे। स्वयं सत्यव्रत की अपनी कोई राय न थी। उसे अपने पिता की आज्ञा मानने में संतोष था। बहुत कुछ सोच-विचार करने और कुछ मित्रों से सलाह करने के बाद उसके पिता ने उसे व्यापार में लगा देने का निश्चय किया। सत्यव्रत तुरन्त राज़ी हो गया।

पिता महोदय व्यापार की बात समझते थे और उन्हें आशा थी कि पुत्र भी वैसा ही निकलेगा। एक कारबारी दफ़्तर खोला गया और वह सत्यव्रत के सुपुर्द कर दिया गया। नवयुवक ने अपने पिता से कहा—"यदि आप देख-भाल नहीं करेंगे तो दफ़्र का काम कैसे चलेगा?" दफ़्र का नाम पुत्र के नाम पर रक्खा गया, परन्तु सारा प्रबन्ध पिता के हाथ में था। सत्यव्रत का सारा दिन आफ़िस में ही व्यतीत होता था, परन्तु वह आफ़िस का बहुत काम नहीं करता था। दफ़्र का प्रत्येक आदमी जिसको कोई शिकायत होती या जिसके सामने कोई कठिनाई आती उसके पास आता और वह उसकी सहायता करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करता। उसका अधिकांश समय इसी प्रकार व्यतीत होता था। उसने होमियोपैथी का अध्ययन करके एक सन्दूक ख़रीद लिया था और रोगियों को वह ओषधि दिया करता था। एक दिन एक क्लर्क ने उसके पास आकर कहा—"हुज़ूर, मेरा परिवार बहुत बड़ा है। ३०) मासिक में मैं उसका प्रबन्ध नहीं कर सकता। कृपापूर्वक मेरी तरक़्क़ी कर दीजिए।"

"तुम कितने दिनों से काम कर रहे हो?"

"छः महीने से।"

सत्यव्रत ने कहा—"ठीक यही बात कल मुझसे चन्द्रनाथ कह रहा था। मैं उसकी तरक़्क़ी करना चाहता था, परन्तु पिता जी राज़ी नहीं हुए। उनका कहना है कि दफ़्र हाल में ही खुला है। कोई कह नहीं सकता कि आगे इसका क्या नतीजा होगा। यदि एक आदमी को तरक़्क़ी दी गई तो दूसरों को भी देनी पड़ेगी। तुम्हारे बारे में मैं उनसे कुछ नहीं कह सकता, क्योंकि वही उत्तर वे फिर देंगे। १०) ले जाओ। पर किसी से कहना मत। पिता जी सुनेंगे तो नाराज़ होंगे।"

उक्त बात से यह अच्छी तरह अनुमान किया जा सकता है कि सत्यव्रत का दफ़्र से क्या सम्बन्ध था। उसकी पत्नी नवयुवती थी और उसे देवता के तुल्य मानती थी, परन्तु उसके सम्पूर्ण हृदय की स्वामिनी वह नहीं बन सकी थी। कम से कम उसका ऐसा ही अनुमान था। सत्यव्रत अपनी पत्नी को कभी कोई कड़ी बात नहीं कहता था और उसे अत्यन्त प्यार करता था। परन्तु उसका सम्पूर्ण समय नव-विवाहितों की-सी प्रेमचर्चा में नहीं व्यतीत होता था। वह पत्नी के पास आता-जाता रहता था। वह उससे प्रेमपूर्वक व्यवहार करता था, परन्तु किसी की कष्टकथा सुनकर उसका घर में ठहरना असम्भव था। यदि वह आधीरात को भी सुनता कि उसका पड़ोसी बीमार है तो तुरन्त बिस्तर से उठ खड़ा होता और उसे देखने जाता। यदि किसी ग़रीब की सहायता करना होता तो अपने पास धन न होने पर पत्नी से माँगता। कोई पत्नी पूर्ण रूप से प्रसन्न नहीं रह सकती जब तक उसका पति थोड़ा-बहुत स्वार्थी न हो और पत्नी को उस स्वार्थीपन का एक अङ्ग न बना ले। सत्यव्रत की पत्नी को बड़ी निराशा हुई।

[२]

दफ़्र का कारबार बड़े मज़े में चल रहा था। सत्यव्रत के पिता समझदार व्यक्ति थे। उनकी देख-रेख में कारबार की उन्नति हुई और यथेष्ट मुनाफ़ा भी हुआ। उनके व्यवसाय की एक शाखा का काम हुन्डी का लेन-देन करना और रुपया जमा करना भी था। लोग सत्यव्रत के पिता का विश्वास करते थे, इसलिए उनके यहाँ वे काफ़ी रुपया जमा करने लगे। सत्यव्रत का इस विभाग से कोई सरोकार न था। उसके पास लोग केवल सहायता या लाभ के उद्देश्य से आते थे। व्यापार के लिए वे उसके पिता के पास या दफ़्र के उपयुक्त व्यक्तियों के पास जाते थे।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ। कुछ और समय के बाद सत्यव्रत के पिता का स्वर्गवास हो गया और कारबार का सारा बोझा सत्यव्रत के कंधों पर आ गया। लोगों का विश्वास उसके ऊपर से उखड़ा नहीं, परन्तु वह कोमल हृदय का था और व्यापार की बात नहीं समझता था। लाभ कम होने लगा। सत्यव्रत यह नहीं जानता था कि क्या हो रहा है और कर्मचारी क्या कर रहे हैं।

कुछ महीनों के बाद लोग कहने लगे कि कारबार में कोई मुनाफ़ा नहीं हो रहा है, बल्कि घाटा होना शुरू हो गया है। कुछ मित्रों ने सत्यव्रत को सावधान करना शुरू किया, परन्तु वह स्वभाव का सरल और अविश्वास न करनेवाला था। अन्त में एक दिन ख़ज़ानची ग़ायब हो गया और हुंडी-विभाग बन्द हो गया। जिन लोगों ने रुपया जमाकर रक्खा था उन्होंने आकर दफ़्र को घेर लिया और अपना रुपया वापस माँगने लगे। सत्यव्रत एक ही दिन में ग़रीब हो गया। अपने बारे में तो उसने क्षण भर भी न सोचा, परन्तु अपने कारबार में लगे हुए लोगों की मुसीबत का अनुमान करके वह दुखी हो उठा। जो अपना धन गवाँ बैठे थे उन्होंने अदालत की शरण ली। कुछ हफ़्तों के पश्चात् फ़रार ख़ज़ानची पकड़ा गया। अदालत में उसने बेशर्मी के साथ कहा कि बाबू (सत्यव्रत) स्वयं सब रुपया और बहियाँ रखते थे। उन्होंने ही मुझसे भाग जाने के लिए कहा था। मैं कुछ नहीं जानता।

सत्यव्रत को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने ख़ज़ानची की ओर देखा, पर कुछ बोला नहीं।

मुक़द्दमा चलता रहा। समस्त गवाहों ने क़सम खाकर कहा कि सत्यव्रत बहुत ऊँचे चरित्र के व्यक्ति हैं और बेईमानी नहीं कर सकते। परन्तु जज इन गवाहियों से कैसे प्रभावित हो सकता था? उसने अभियुक्त सत्यव्रत से पूछा—"क्या रुपया जमा करनेवाले तुम पर भरोसा करते थे और अपना रुपया तुम्हारे यहाँ रखते थे?"

"जी हाँ।"

"क्या तुम उस धन को सावधानी से रखते थे?"

"अब मैं अनुभव करता हूँ कि मैं सावधानी से नहीं रखता था।"

"क्या तुम्हारा ख़ज़ानची सच कहता है?"

"यह प्रश्न उसी से पूछिए। इस सम्बन्ध में मैं कुछ न कहूँगा।"

मुक़द्दमे के अन्त में सत्यव्रत अपराधी साबित हुआ और उसे पाँच वर्ष की सज़ा दी गई।

[३]

सत्यव्रत पढ़ा-लिखा था, इसलिए वह जेल के कार्यालय में नियुक्त कर लिया गया। जेलर ने देखा कि क़ैदी अथक परिश्रम करनेवाला एक बहुत ही अच्छे स्वभाव का व्यक्ति है। थोड़े ही समय में वह जेलर का कृपापात्र हो गया।

दूसरे क़ैदियों के साथ सत्यव्रत का बर्ताव इतना अच्छा होता था कि वे उसे अपना मित्र और सम्बन्धी-सा मानते थे। किसी के सामने कोई कठिनाई उपस्थित होती तो वह सत्यव्रत से मिलता। जब कोई क़ैदी जेल का नियम भंग करता तब वह जेलर के पास लाया जाता।

एक बार एक ऐसा ही क़ैदी जेलर के पास लाया गया। सत्यव्रत ने विनय के साथ जेलर से कहा—"क्या मैं कुछ निवेदन कर सकता हूँ?"

जेलर ने मुसकराते हुए कहा—"कहिए।"

"इस आदमी ने अपराध किया है! इसे क्या होगा?"

"इसे सज़ा दी जायगी।"

"यह तो हम सब जानते हैं कि अपराधी को सज़ा मिलती है। हम यहाँ अपने अपने अपराधों की सज़ा भोगने तो आये हैं। परन्तु इस जेल में यह कोई नहीं जानता कि क्षमा नाम की भी कोई वस्तु होती है। इस बार इसे क्षमा क्यों न कर दीजिए।"

जेलर ने कुछ सोचकर अपराधी से कहा—"इस बार तुम्हें माफ़ करता हूँ। दुबारा अपराध न करना।"

उस क़ैदी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सत्यव्रत को देखा और वह धीरे से चला गया।

क़ैदियों में आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगा। पहले जेलर बहुत चिन्तित रहता था और उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। क़ैदी आपस में लड़ते-झगड़ते रहते थे। कभी कभी मार-पीट भी कर बैठते थे, और जेल में कभी शान्ति नहीं रहती थी। अब ये सब बातें छू-मंतर हो गईं। लड़ाई-झगड़े बन्द हो गये। जेल के अधिकारियों की आज्ञायें तुरन्त मानी जाने लगीं और क़ैदी अपना काम प्रसन्नतापूर्वक नियम से करने लगे। जब आफ़िस में काम नहीं होता था तब सत्यव्रत क़ैदियों में चला जाता था। यह कोई नहीं जानता था कि वह उनसे क्या कहता, उनमें कैसे उत्साह पैदा करता परन्तु यह स्पष्ट था कि उसकी पूजा होती थी। जेलर ने सोचा कि एक क़ैदी का दूसरे क़ैदियों पर इतना प्रभाव रखना मुनासिब नहीं है। परन्तु सत्यव्रत की प्रकृति और व्यवहार को जानते हुए उसने अपने मन में असन्तोष का भाव नहीं आने दिया।

कुछ महीनों के बाद एक क़ैदी बहुत बीमार हो गया। परन्तु क़ैदी की परवा कौन करता है? वह मरे या जिये? सत्यव्रत ने जेलर से उस क़ैदी की परिचर्य्या करने की आज्ञा माँगी।

जेलर ने कहा—"रोगी की सेवा के बारे में तुम क्या जानते हो? फिर ऐसे कार्य की ज़िम्मेदारी रात में तुम्हारे ऊपर नहीं रक्खी जा सकती।"

सत्यव्रत ने उत्तर दिया—"कुछ समय तक मैंने रोगियों की सेवा की है। यदि आप मुझे क़ैदी के पास रात में रहने की आज्ञा नहीं दे सकते तो मुझे दिन में ही उसकी सेवा करने दीजिए।"

इस बात पर जेलर राज़ी हो गया। तमाम दिन सत्यव्रत ने क़ैदी की परिचर्य्या इतनी चतुरता और धैर्य से की कि शाम को जब डाक्टर आया तब उसने कहा कि मैंने किसी क़ैदी को इस कार्य में इतना निपुण नहीं देखा।

सत्यव्रत ने हाथ जोड़कर डाक्टर से कहा—"जनाब, क्या मैं एक प्रार्थना कर सकता हूँ?"

"क्या?"

"कृपापूर्वक जेलर साहब से मुझे रात में भी इस क़ैदी की सेवा करने की अनुमति दिला दीजिए।"

"तुम सारी रात जाग सकोगे?"

"ज़रूर।"

डाक्टर ने जेलर से अनुमति दिला दी और सत्यव्रत रात-रात भर जागकर रोगी की सेवा करने लगा। उसने बड़ी सावधानी के साथ डाक्टर की हिदायतों का पालन किया। दूसरे दिन जब डाक्टर आया तब सत्यव्रत ने नम्रतापूर्वक कहा—"जनाब, आपने जो ओषधियाँ दी हैं उनके अतिरिक्त क्या कुछ और नहीं दिया जा सकता? उसने एक ओषधि का नाम भी बताया।

यह बात डाक्टर को बुरी लगी। उसने झिड़ककर कहा—"क्या तुम डाक्टर हो?"

"जी नहीं! मैंने इस रोग में डाक्टरों को यह ओषधि देते देखा है। यदि मैंने कुछ अनुचित कहा हो तो कृपापूर्वक क्षमा कीजिए।"

जेलर पास ही खड़ा था। उसने कहा—"डाक्टर साहब! यह तो आप तय करेंगे कि यह ओषधि दी जाय या नहीं। इसमें आपके नाराज़ होने की क्या बात है?"

डाक्टर ने कहा—"इस दवा से कोई हानि नहीं होगी। तजुर्बे के लिए यह भी दी जा सकती है।"

नुस्ख़े में डाक्टर ने वह दवा भी जोड़ दी।

उसका प्रभाव तुरन्त पड़ा। रोगी क्रमशः अच्छा होने लगा। १० दिन में वह ख़तरे के बाहर हो गया। धीरे धीरे वह अच्छा हो गया।

जेलर अब सत्यव्रत को आदर के भाव से देखने लगा और क़ैदियों में उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई।

[४]

एक दिन जेलर ने सत्यव्रत को बुलाकर कहा—"तुम्हें भारी अपराध करने में सज़ा मिली है? क्या तुमने वास्तव में उन लोगों का रुपया मार लेने का जाल किया था?"

सत्यव्रत ने कहा—"यदि कोई मनुष्य अपराधी न हो तो उसे दण्ड ही क्यों भुगतना पड़े?"

जेलर ने कहा—"यह सदैव सत्य नहीं होता। भोले लोगों को प्रायः दण्ड मिल जाया करता है।"

सत्यव्रत ने कहा—"मैं अपने आपको भोला कैसे कह

सकता हूँ ? मैंने धन जमा करनेवालों को धोखा नहीं दिया। परन्तु मेरे एक कर्मचारी ने धोखा दिया। मेरे असामी मेरा विश्वास करते थे। जब मैं रुपयों की हिफ़ाज़त नहीं कर सकता था तब मुझे किसी का रुपया जमा ही नहीं करना चाहिए था।"

जेलर ने कहा—"तुम्हें दूसरे के अपराध के लिए सज़ा मिली है। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि तुम्हारे द्वारा ऐसा अपराध हो सकता है।"

कुछ समय के बाद जेलर के एक लड़के के चेचक निकली। जेलर योरपीय था। इससे वह बहुत चिन्तित हो उठा। उसकी पत्नी भी घबरा गई। छूत का भय उन्हें इतना अधिक व्याप गया कि मा-बाप में से किसी ने भी लड़के के पास जाने की हिम्मत न की। दूसरे लड़के बाहर भेज दिये गये। जिस लड़के के चेचक निकल आई थी वह अलग कर दिया गया। जब सत्यव्रत ने यह सुना तब उसने उस लड़के की परिचर्या करने की आज्ञा माँगी।

जेलर ने कहा—"यह ख़तरनाक बीमारी है। यदि तुम उसकी सेवा करोगे तो छूत से वह बीमारी तुम्हें भी हो जा सकती है।"

सत्यव्रत ने कहा—"मुझे यह बीमारी हो चुकी है। अब मुझे इसका भय नहीं रहा। मुझे उस बच्चे की सेवा करने दीजिए।"

जेलर राज़ी हो गया। डाक्टर ने कहा था कि इस रोग में कुछ किया नहीं जा सकता, परन्तु यदि ठीक ढङ्ग से शुश्रूषा की जाय तो बालक बच सकता है।

डाक्टर ने जब सत्यव्रत को उस नन्हें रोगी के बिस्तर के पास देखा तब उसे आश्चर्य नहीं हुआ। जेलर ने सत्यव्रत को जेल के कपड़े उतारकर अपने कपड़े पहनने की आज्ञा दे दी। सत्यव्रत ने बच्चे की अत्यधिक सेवा-शुश्रूषा की। उसकी सेवा से डाक्टर बहुत प्रभावित हुआ और उसने उसकी जेलर और उसकी पत्नी से भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा—"मुझे विश्वास नहीं होता कि यह मनुष्य अपराधी है।"

जेलर ने कहा—"मैं जानता हूँ। वह अपराधी नहीं है। वह दूसरों के अपराध का दण्ड भोग रहा है।"

बालक अच्छा हो गया। जब छूत का सारा भय जाता रहा तब मा-बाप बालक के कमरे में गये। सत्यव्रत के कपड़े रोज़ खौलते पानी में उबाले जाते थे। कमरे में पहुँच कर उन्होंने देखा कि सत्यव्रत एक कुर्सी पर बैठा बालक का हाथ अपने हाथ में लिये उसे एक कहानी सुना रहा है। वह बहुत अच्छी अँगरेज़ी बोल रहा था।

उसने उठने की कोशिश की। पर बालक उसे उठने नहीं देता था। माता और पिता ने पहले अपने बच्चे को हृदय से लगाया। फिर माता ने सत्यव्रत की ओर मुड़कर आँखों में जल भरे हुए कहा—"तुमने हमारे बच्चे को बचा लिया है।"

सत्यव्रत ने अपना सिर उठाया और कहा—"कोई मनुष्य किसी की प्राणरक्षा नहीं कर सकता। श्रीमती जी! आप जानती हैं कि हमारे प्राणों और शरीर की रक्षा करनेवाला कौन है?

तब मा और बाप ने घुटने टेककर ईश्वर से प्रार्थना की।

[५]

अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए जेलर ने उच्च अधिकारियों को लिखा कि क़ैदी सत्यव्रत का चाल-चलन बहुत ही उच्च कोटि का सिद्ध हुआ है। उसकी क़ैद का एक वर्ष माफ़ हो जाना चाहिए। इस सिफ़ारिश से उसके छः महीने माफ़ हो गये।

जब जेलर ने सत्यव्रत को यह समाचार दिया तब उन्होंने कहा—"साढ़े चार वर्ष और पाँच वर्ष में कोई विशेष अन्तर नहीं है।"

"अच्छे व्यवहार के कारण तुम्हारी बहुत कुछ सज़ा माफ़ हो चुकी है। ये छः महीने भी उसमें जोड़ दिये जायँगे। क्या तुम्हें इससे प्रसन्नता नहीं होती?"

"पहले मुझे यह क़ैद अच्छी नहीं प्रतीत हुई थी। परन्तु अब तो मैं इसका आदी हो गया हूँ।"

"क्या तुम्हारे घर में कोई नहीं है? क्या तुम्हें अपनी पत्नी और बच्चों से मिलने के लिए उत्सुकता नहीं है?"

"मेरे सन्तान नहीं है। पत्नी है और यह स्वाभाविक है कि मैं उससे मिलने के लिए उत्सुक हूँ। परन्तु यह स्वार्थीपने की बात है। इस संसार में सुख की मात्रा बहुत कम है। चारों ओर दुःख और पाप ही छाया है।"

जेलर इसका आशय नहीं समझ सका, पर इन बातों

से वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहा—"तुम धन्य हो! तुम्हारा त्याग प्रशंसनीय है।"

सत्यव्रत के छुटकारे का दिन आया। दूसरे दिन प्रातःकाल वह छोड़ दिया गया। उसके जेल से बाहर जाने के समय क़ैदी उसे बिदा करने आये। कुछ ने उसे भेंटा, कुछ ने उसके चरणों की रज अपने मस्तक पर रक्खी, और कई एक तो ज़ोर ज़ोर से रोने लगे।

जेलर फाटक के पास खड़ा था। उसने सत्यव्रत का हाथ अपने हाथ में लिया और रुद्धकण्ठ से कहा—"मैं कह नहीं सकता कि मैं क्या अनुभव कर रहा हूँ। क़ैदी तुम्हारे लिए रो रहे हैं, पर मेरे भाव उनसे भी गहरे हैं। मैं तो तुमसे कभी उऋण न हो सकूँगा।"

टूटी आवाज़ में सत्यव्रत ने कहा—"साहब, मैं यहाँ बहुत प्रसन्न रहा और आपके स्नेहपूर्ण व्यवहार को कभी न भूलूँगा। यह जेलख़ाना है, पर इसके बाहर भी एक जेलख़ाना है।"

जेल के बाहर नगर का कोलाहल सुन पड़ता था। बहुत दिनों के बाद जेल से निकलने पर सत्यव्रत उस कोलाहल में खो-सा गया।

जब सत्यव्रत घर पहुँचा तब घरवालों ने बड़ी उत्सुकता के साथ उसका स्वागत किया। पत्नी के पास पहुँचने पर उसने सत्यव्रत के चरणों पर मस्तक रख दिया और वह जी भरकर रोई। तब सजल नेत्रों और क्षीण स्वर से सत्यव्रत ने कहा—"अब मैं निस्सन्देह क़ैदी हूँ।"

किसने ?

लेखक, श्रीयुत रामकुमार अवस्थी

(१)

प्रथम प्रात, रोते सुमनों को
हँसने का वरदान दिया था।
पतझड़ के उजड़े यौवन में
भर बसंत का गान दिया था।

(२)

अथ-निदाघ के तप्त-गगन में—
सजल मेघ कुछ थे तैराये!
प्रलय-काल में प्रलय धार से—
मानव-मनु के प्राण बचाये!!

(३)

अंधकार में, सघन घनों में,
खींच रजत रेखायें दी हैं!
'असफलता' के साथ साथ
मानव को कुछ 'आशायें' दी हैं!

(४)

आशा ही की नद्ध नींव पर,
जीवन की सत्ता निर्भर है!
तू निराश क्यों होता रे कवि,
तेरी वाणी अमिट अमर है!

स्वदेशी की उन्नति में बाधायें

लेखक, पंडित मोहनलाल नेहरू

पंडित मोहनलाल नेहरू का स्वदेशी-प्रेम प्रशंसनीय है। उनके प्रयत्न से प्रयाग में प्रतिवर्ष एक सुन्दर स्वदेशी नुमायश होती है। स्वदेशी की उन्नति में क्या बाधायें पड़ रही हैं, यह उन्होंने इस लेख में बताने की चेष्टा की है। परन्तु इस सिलसिले में उन्होंने कुछ ऐसी बातें भी लिखी हैं जो विवादग्रस्त हैं। उदाहरण के लिए उनका यह कहना सही नहीं है कि कांग्रेसी सरकारें क़ायम होते ही कांग्रेसी प्रान्त के मिलमालिकों और मज़दूरों में झगड़े खड़े हो गये हैं। ऐसे झगड़े पहले भी हुए हैं। भारत का स्वदेशी-आन्दोलन वास्तव में कल-कारख़ानों की बनी चीज़ों के मुक़ाबले में हाथ की बनी चीज़ों को अधिक महत्त्व देता है। ऐसी चीज़ों के निर्माण में क्या बाधायें हैं, यह न दिखाकर पण्डित जी ने भारतीय कल-कारख़ानों की बनी चीज़ों की ही वकालत की है।

भारतवर्ष से करोड़ों बल्कि लाखों रुपया प्रतिवर्ष विदेशों को चला जा रहा है। आज से नहीं, बरन लगभग डेढ़ सौ वर्ष से इस देश के धन की नदी समुद्र-पार बही चली जा रही है। बहुत काल तक तो हमारे पूर्वजों का ध्यान इस बहाव की तरफ़ गया ही नहीं। वे अँगरेज़ी सरकार की छत्रच्छाया में सुख की नींद सोते रहे और यह कभी स्वप्न में भी न देखा कि किन किन हथखंडों से देश का पैसा बाहर खिंचा जा रहा है। यहाँ का जितना रुपया विदेशी कर्मचारियों की तनख़ाहों या होम-चार्जों के रूप में जाता था उससे सैकड़ों गुना ज़्यादा तो व्यापार के द्वारा जाता था और आज भी जा रहा है। विदेशी-लोगों ने यहाँ अपनी तिजारत जा-बजा तरीक़ों पर फैलाई। यहाँ तक इतिहासकार लोग लिखते हैं कि ज़बर्दस्ती करके भी उस वक़्त के शासकों ने यहाँ की कारीगरियों और धन्धों का नाश किया।

यह चाहे सच हो चाहे झूठ, मगर यह तो सोलहो आने सच है कि रेल के किराये वग़ैरह में इस तरह की धाँधली की गई कि देशी माल अगर बने तो महँगा पड़ जाय, और यह धाँधली कम या ज़्यादा आज तक जारी है।

हम लोगों में भविष्य की फ़िक्र बहुत कम है और शायद हमारे बाप-दादों में उससे भी कम थी। जब विदेशी लोग भारतवर्ष में व्यापार करने आये तब उस समय के बादशाह ने उन्हें मदरास और सूरत इत्यादि में न सिर्फ़ बसने की आज्ञा दी, बरन उन्हें छोटी-मोटी फ़ैक्टरियाँ तथा क़िले भी बना लेने दिये। अपनी शक्ति के अभिमान में वे चूर थे, यह नहीं सोचा कि यही कारख़ाने उनके पराभव के कारण होंगे।

उसी तरह जब इन विदेशियों ने अपना राज्य जमाकर अपने देश का माल यहाँ के बाज़ारों में भर दिया तब हम लोग उसे देखकर लट्टू हो गये और आगा-पीछा न सोच-कर उस पर टूट पड़े। आज से पचास वर्ष पहले तो देशी माल की इतनी बे-क़दरी थी कि यदि कोई सौदागर देशी माल दिखाता तो उसे उत्तर मिलता था—"नहीं, माफ़ कीजिए"। वह बेचारा देशी माल को 'विलायती' जिसके मानी थे 'किसी दूसरे देश का' कहकर ही चला सकता था।

शुरू शुरू में कांग्रेस के अधिवेशनों में हमारे बड़े बड़े नेता विदेशी कपड़ों और मोज़े-जूतों से सुसज्जित होकर जमा होते। वे हर विदेशी चीज़ का बड़े गर्व से व्यवहार करते थे। वे बड़े बड़े विद्वान् थे, किन्तु स्वदेशी की तरफ़ इतना ही नहीं कि उदासीन थे, बरन उसकी क़द्र तक न करते थे। दबी ज़बान से कुछ राजनैतिक सुधारों की माँग करके वे साल भर निश्चित हो बैठ जाते थे। कई सालों के बाद कांग्रेस ने स्वदेशी की तरफ़ कुछ ध्यान देना शुरू किया और वह भी इस तरह कि इस बात की सर्वसाधारण

से सिफ़ारिश की कि जहाँ तक हो सके स्वदेशी वस्तु काम में लाई जाय। मगर लेखक अपने व्यक्तिगत अनुभव से कह सकता है कि उन नेताओं में शायद एक-दो को छोड़कर किसी ने उस सिफ़ारिश पर ध्यान नहीं दिया। इतना ही नहीं, यदि उनके घर में किसी व्यक्ति ने स्वदेशी वस्तु ली भी तो उसे बेवक़ूफ़ बनाया और उसका मज़ाक़ उड़ाया। ऐसी दशा में उसकी भला क्या उन्नति होती? कहनेवाला अपने कहे पर स्वयं न चले तो उसकी बात कम सुनी जाती है और बहुत देर में कुछ असर करती है।

वे ही नेता जो विदेशी भाषा में व्याख्यान झाड़ आते, स्वयं उन प्रस्तावों की परवा न कर विदेशी वस्तुओं का व्यवहार करते रहते। वास्तव में उस ज़माने की कांग्रेस में बड़े बड़े नेता स्वदेशी को कांग्रेस से अलग रखना चाहते थे। परन्तु कुछ दिनों के बाद छोटे नेताओं का ज़ोर बढ़ते देखकर वे स्वदेशी का प्रस्ताव स्वीकार करने लगे। यह भी उसी समय की बात है जब कांग्रेस का अधिवेशन एक वार्षिक तमाशा भर था और सो भी अँगरेज़ी में होता था। देशी भाषा तक की इस बहाने रोक थी कि कांग्रेस सारे राष्ट्र की सभा है और उसमें दूर दूर के प्रान्तों से विभिन्न भाषाभाषी लोग आते हैं। लेखक के दो मित्र तो उसके यह कहने पर कि वे अपनी भाषा में व्याख्यान दें तो ज़्यादा लाभ हो, बिगड़ तक गये थे।

न लार्ड कर्ज़न वाइसराय होकर आते या आये भी थे तो बंगाल के दो टुकड़े न करते, न स्वदेशी आन्दोलन ज़ोर पकड़ता। बंगालियों के दिलों पर उन्होंने चोट पहुँचाई और उनके प्रार्थना-पत्र तथा धमकियों की परवा न की। इससे सभी श्रेणी के लोग नाराज़ हो गये और कोई तो क्रान्तिकारी बन बैठे और अधिकतर ने 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' का नुसख़ा निकाला और उनके ही ज़ोर देने से कांग्रेस ने इस आन्दोलन को अपनाया। बंगालियों ने महीन विलायती धोतियों का बहिष्कार कर दिया और उनके बदले देशी मिलों की मोटी धोतियाँ पहन लीं, मानो बड़ा भारी त्याग किया। आज खादी की धोती पहननेवाले इस त्याग पर भले ही हँस लें, परन्तु उस समय यह सचमुच त्याग ही माना गया। उस समय से स्वदेशी का भाव ज़ोर पकड़ता गया। कांग्रेस में ऐसे सज्जन मौजूद थे जो इस आन्दोलन को केवल बंगाल के ही सिर मढ़ा चाहते थे, परन्तु उनकी न चली। दुःख तो यह है कि ज्यों ही कांग्रेस ने स्वदेशी को अपनाया, कुछ मुसलमान नेताओं ने उसका विरोध करना शुरू किया, जैसे वे देश की हर उन्नति के विरोध में करते थे, यद्यपि इस आन्दोलन से अधिकतर मुसलमान जुलाहों का ही लाभ होता। वे बेचारे इस हानि-लाभ को समझ नहीं सकते थे और उनके नेता दूसरों के इशारों पर चलते थे। सबमें पहली बाधा तो स्वदेशी को उन्हीं लोगों से मिली जो उससे पूरा लाभ उठा सकते थे। सरकार तो खुले-ख़ज़ाने इसका विरोध कर नहीं सकती थी, मगर यह बात स्पष्ट थी कि हाकिम लोग स्वदेशी की उन्नति नहीं चाहते थे और सरकारी नौकर उसे अपनाते डरते थे और घरवालों तक को अपनाने नहीं देते थे।

ज़ोर अधिकतर कपड़ों पर था, क्योंकि उस ज़माने में लगभग ८० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष केवल कपड़ों की ख़रीद में ही विदेश—विशेषकर इँग्लैंड को जाते थे। उसके बाद कपड़े के कारख़ाने इस देश में भी ताबड़-तोड़ खुलते गये और थोड़े ही दिनों में यहाँ के बने कपड़े विदेशी माल से टक्कर लेने लगे। यह भला हमारी सरकार क्यों बरदाश्त करती? देशी मिलों के माल पर कुछ टैक्स भी लगाया गया, परन्तु मुक़ाबिला ज़ोरों से जारी रहा।

इस बीच में कांग्रेस सर्वप्रिय होती गई और कुछ गरमी पर आती गई। केवल ख़ुशामद के प्रस्ताव स्वीकार होने बन्द हो गये और माँगें पेश होने लगीं। उसके पास तोपें-बन्दूक़ें तो थीं नहीं कि उनके ज़ोर से अपनी माँगों को पूरा करा ले। उसके हथियार थे स्वदेशी और बायकाट। गांधी जी के हाथ में कांग्रेस का नेतृत्व जा चुका था और वे ख़ुद स्वदेशी पर बहुत ज़ोर देते थे और उसी के साथ बायकाट के भी पक्ष में थे। वे तो कपड़ों के बारे में केवल हाथ के कते-बुने या शुद्ध खादी पर ही ज़ोर देने लगे थे। वास्तव में कांग्रेस की बागडोर पूरी तौर उनके हाथ में थी, और अब भी बहुत कुछ उनके हाथ में है।

कांग्रेस के ज़ोर से खादी बहुत कुछ चल गई। देश-भक्ति पर शुरू में ज़ोर देना ज़रूरी था। यद्यपि ऐसे जोश का बहुत दिन तक क़ायम रहना कठिन बात होती है, फिर भी उसने बहुत ज़ोर पकड़ा और जैसे बंग-भंग के बाद स्वदेशी का पैर जम चुका था और वह अपने पैरों पर खड़ी

होने लगी थी, उसी तरह खादी ने भी पैर जमा लिया-विशेषकर जब से हाथ के कती-बुनी रेशम की साड़ियाँ खादी में ली जाने लगीं।

इधर खादी का ज़ोर होने से मिलों के कपड़ों को बड़ी सहायता मिली। देशी मिलों का कपड़ा दूसरे नम्बर का स्वदेशी गांधी जी की मंज़ूरी से माना गया था। मिलों ने भी एक से एक अच्छे कपड़े बनाने शुरू किये और यद्यपि ख़ास इँग्लेंड के माल पर चुंगी कम हो गई थी, तो भी वे उसके मुक़ाबिले में सस्ता ही बेचने लगीं। इसका नतीजा यह हुआ कि जो लोग विलायती माल पर गिरते थे वे देशी की सहायता करने लगे; कुछ तो शर्मा-शर्मी में और कुछ देश-भक्ति के जोश में। इधर खादी की भी बहुत कुछ तरक़्क़ी होती गई और कांग्रेस का भी ज़ोर बढ़ता गया। जो लोग स्वदेशी के पक्षपाती थे उन्होंने खादी के एक-दो कुर्ते बना लिये कि सभा इत्यादि में दिखाने भर को काम आवें।

मेरा यह मतलब नहीं कि ऐसे लोग बाक़ी ही नहीं रहे जो विदेशी का व्यवहार न करते हों। ऐसे सज्जन अब भी मौजूद हैं जो बड़े गर्व से विदेशी कपड़ों तक को काम में लाते हैं, मगर यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें देश-भक्त बिलकुल नहीं हैं। देश की वे आज़ादी चाहते हैं, बरन अपने ढंग से काम करके और विदेशियों से मिलकर। हम उसे उनकी भूल भले ही कहें, पर यह नहीं कह सकते कि वे गुलामी को जारी रक्खा चाहते हैं। फिर भी हम यह कहेंगे कि स्वदेशी की उन्नति में वे एक तरह की बाधा डालते हैं।

भारतवर्ष बड़ा भारी देश है और ऐसा अभागा कि जहाँ की सरकार स्वदेशी की सहायता करने को तैयार नहीं बरन बहुधा उसके मार्ग में बाधा डालती है। प्रमाण के वास्ते एक ही उदाहरण काफ़ी है। यहाँ शक्कर ज़रूरत से ज़्यादा बनती है और यदि बाहर भेजी जाय तो करोड़ों नहीं तो लाखों रुपये की प्रतिवर्ष आमदनी हो सकती है। इस डर से कि कहीं भारतवर्ष का शक्कर का व्यापार बढ़ न जाय, सरकारी आज्ञा निकल गई कि देश के बाहर शक्कर नहीं जा सकती। जब ऐसी आज्ञायें निकाली जाती हैं तब यह कह दिया जाता है कि "तुम्हारे ही लाभ के वास्ते हम ऐसा करते हैं।" जैसे शंखों रुपये का सोना हमारे देश से विदेशों को भेज दिया गया और उसमें हमारा लाभ बताया गया, उसी तरह शक्कर को रोककर हमें लाभ पहुँचाया गया और हमारे प्रतिनिधियों ने जब शोर मचाया तब उनसे कहा गया कि तुम अभी अपने हानि-लाभ को समझते ही नहीं। चुप रहो। हम और भी मिसालें दे सकते हैं, परन्तु यहाँ उनकी आवश्यकता नहीं है। इसी तरह की बाधायें अन्य सभी वस्तुओं के व्यापार में भी डाली जाती हैं।

किसी उद्योग-धंधे में सरकारी सहायता का न होना ही कम बाधक नहीं होता। विदेशों की सरकारें यह अपना धर्म समझती हैं कि अपनी प्रजा की ज़रूरतें अपने ही देश में पूरी करा सकें तो करा दें और ऐसे कारख़ानों को जो उस ज़रूरत को पूरा करते हों, सहायता देती हैं। यहाँ उसकी उलटी कार्रवाई की जाती है। एक मिसाल लीजिए। यह कौन नहीं जानता कि आज-कल बाइसिकिल उतनी ही ज़रूरी वस्तु हो गई है, जितने पैर होते हैं। दूर दूर बसे होने से शहरों में ही उसकी ज़रूरत नहीं है, वरन गाँव गाँव में उसकी ज़रूरत है। देहातों में वह आज भी काफ़ी चलती दिखाई देती है और उसके द्वारा किसान और मज़दूर अपना कितना ही समय नष्ट होने से बचा लेते हैं। लगभग ५० वर्ष से वह यहाँ चल रही है और अभी तक विदेशों से बराबर आ रही है। विदेशों की आपस की लाग-डाँट में वह जहाँ पहले ३ या ४ सौ रुपये की आती थी, अब २५ रुपये तक में आने लगी है और लाखों रुपया उसके द्वारा विदेशों को चला जाता है। कोई भी देश यदि वह स्वतन्त्र होता तो इतनी ज़रूरत की चीज़ वहाँ कब की बनने लगी होती। मगर यहाँ हमारी सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी और कुछ कारणों से जिनका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे, धनियों ने भी इन उद्योगों की तरफ़ ध्यान नहीं दिया। इसी तरह की बाधायें और उद्योगों में भी खड़ी हो जाती हैं। पैसेवाले सरकार का रुख़ देखकर पैसा लगाने की हिम्मत नहीं कर सकते।

रेल के किराये की धाँधली से भी स्वदेशी की उन्नति में बड़ी बाधा रही है और अब भी है। आप विदेशी माल कलकत्ते या बम्बई से जिस किराये में ला सकते हैं, उससे अधिक उतने ही स्वदेशी माल का उससे कम दूर ले जाने में देना होता है। कितने ही कारख़ाने इसकी बदौलत बैठ जाते हैं, परन्तु बैठने के पहले लाखों रु[illegible]

की कलें विदेशों से किराये के पेंच न जानने के कारण ले आते हैं।

कांग्रेस स्वदेशी की लड़ाई गत १६ वर्ष से ज़ोरों से लड़ रही है। जब कांग्रेसी दलों पर लाठी चार्ज या गोली-बारी ज़ोरों से हो रही थी तब कांग्रेस के बड़े नेताओं की सलाह से स्वदेशी लीगें स्थापित की गई थीं। उनका उद्देश्य यह था कि राष्ट्रीय आन्दोलन से वे कुछ दिनों के लिए अलग हो जायँ ताकि राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन करने के बहाने स्वदेशी जहाँ तक पहुँच चुकी है वहाँ से पीछे न हटाई जा सके और वे सज्जन भी शरीक़ हो सकें जो कांग्रेस से सहमत न होते हुए स्वदेशी की उन्नति में सहायता देने को तैयार थे। यह आशा एक हद तक पूरी हुई।

इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि मिल-मालिकों ने कांग्रेस-आन्दोलन में बड़ी सहायता दी। यह बात आज तक भूली नहीं है कि जब १९२०-२१ में महात्मा गांधी ने एक करोड़ रुपये की माँग एक ख़ास तारीख़ तक पेश की थी और उसके कुछ ही दिन पहले तक पूरी न होने से अँगरेज़ी और कांग्रेस के विपक्षी अख़बार मज़ाक़ उड़ा रहे थे तब उस माँग को एकाएक कुछ मिल-मालिकों ने नियत दिन ही पूरा कर दिया। यह क्यों? वे जानते थे कि जब स्वराज्य आवेगा या यों कहो कि कांग्रेस ताक़त पकड़ेगी तब स्वदेशी की काफ़ी उन्नति होगी और वे इस नुक़सान से कहीं अधिक पैदा कर लेंगे।

मगर हम क्या देखते हैं? वे ही लोग जो स्वदेशी की उन्नति के वास्ते बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ लड़े, मार खाई, जेल गये, गरमी-लू में धरना देकर बैठे, जो जेल जाने से कहीं ज़्यादा महत्त्व की बात थी, स्वदेशी की उन्नति में बाधा डालने लगे। यह कोई नहीं कह सकता कि उनकी नीयत स्वदेशी को नुक़सान पहुँचाने की है। परन्तु उनके तरीक़े नुक़सान पहुँचा रहे हैं; कम-से-कम उसकी उन्नति में बाधा डाल रहे हैं।

खादी को ही लीजिए। महात्मा जी ने इसे फैलाया। चाहना यह है कि सब लोग खादी को ग्रहण करें। इसके वास्ते सब प्रकार के लोगों के सामने उसे लाना चाहिए। स्वदेशी-प्रदर्शनियों में वह हज़ारों रुपये की उन लोगों के हाथ बेची जाती थी जो खादी-भाण्डारों में भूलकर नहीं घुसते। बाज़ारों में वह ऐसे स्थानों में बेची जाती है, जहाँ विलायती माल तक बिकता है। मगर एकदम आज्ञा निकली कि स्वदेशी-प्रदर्शनियों में वह नहीं भेजी जा सकती। कारण यह कि वहाँ देशी मिलों का माल बिकता है। विदेशी मिलों की दूकानें बाज़ार में चाहे खादी की दूकानों से सटी हों, किन्तु स्वदेशी मिलों की दूकानों से उसका दूर ही रखना मुनासिब समझा गया। इन्हीं स्वदेशी मिल-मालिकों में से पचासों ने लाखों रुपया दिया, जो खादी की उन्नति के काम में आया और अब इन्हीं से दूर रहना ठीक समझा जा रहा है। क्या स्वदेशी के मार्ग में यह बाधा डालना नहीं है?

कांग्रेस के नेता पुकार पुकार यह कहते आये हैं कि इस देश में हर प्रकार के कारख़ाने बहुत संख्या में खोलने चाहिए। यही ठीक भी है। करोड़ों रुपये का बहाव बचाने के वास्ते हर प्रकार के उद्योग-धन्धे यहाँ जारी होने ज़रूरी हैं। यही कारख़ाने सरकारी सहायता से उस बहाव के रोकने में बाँध का काम करेंगे। श्री जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस तो इस समय भी यही पुकार रहे हैं कि कारख़ाने फैलाओ, धन्धे बढ़ाओ ताकि देश की बेकारी दूर हो और पैसा विदेश जाने से रुके। हमारी संयुक्तप्रान्तीय सरकार भी अपनी विज्ञप्ति में यही बात कहती है। वर्तमान सरकारी मंत्री अपनी निजी हैसियत से तो कब से यही कहते आये हैं जैसा कि सभी कांग्रेसी कहते रहे हैं। मगर दुःख तो यह है कि जब से कांग्रेस ने थोड़ी ताक़त पकड़ी है उसी वक़्त से कांग्रेसी प्रान्तों में मिल या कारख़ाने के मालिकों और मज़दूरों में झगड़े खड़े करानेवाले निकल पड़े हैं और काफ़ी संख्या में निकल पड़े हैं। उन्होंने मज़दूर-पेशा लोगों में अशान्ति फैला दी है और जो भी उद्योग या धन्धे मेशीनों से चल रहे थे उनकी उन्नति के मार्ग में बाधा डाल दी है।

यह सच है कि बिलकुल शान्त कर देना एक तरह से मार डालने के बराबर है। कुछ अशान्ति किसी उन्नति के वास्ते आवश्यक ही है। मगर झूठी बातें सुनाकर या सिखाकर जो अशान्ति फैलाई जाती है वह काम की उन्नति में बाधा डालती है। मज़दूर-पेशा लोग अधिकतर अशिक्षित हैं। उनको जब कार्लमार्क्स के सिद्धान्त बताये जायँगे और यह कहा जायगा कि मिलों के मालिक

तुम्हारे हक़ों का अपहरण किये बैठे हैं और वास्तव में तुम मालिक हो, क्योंकि मज़दूर ही असल मालिक होता है तब उन पर जो असर होगा वह विदित ही है। कांग्रेसी सूत्रों में यही बातें हो रही हैं। इस तरह की अशान्ति के फैलाने-वाले मज़दूरों के मित्र नहीं, वरन शत्रु हैं। जब मैं अशि-क्षितों की किसी उत्तेजित भीड़ से कहूँगा कि ये सब कार-ख़ाने तुम्हारे हैं, इनके मालिक तुम्हें धोखा देकर तुम्हारा ख़ून चूस रहे हैं, इन्हें तुममें से किसी को नौकरी से छुड़ाने का अधिकार नहीं इत्यादि-इत्यादि तब उन पर क्या असर होगा और उसका नतीजा क्या निकलेगा? देर-सबेर में वे उन कारख़ानों पर क़ब्ज़ा करने को कमर कसके मार-पीट करेंगे और ख़ून-ख़राबा तो होवेगाही। इस बीच में हड़-तालें करके भी तो वही भूखों मरेंगे। उन्हें उसकाना और ग़लत रास्ते पर चलाना क्या उनसे दुश्मनी करना नहीं?

मिल या किसी कारख़ाने के मज़दूरों को केवल सात-सात घंटे काम करना पड़ता है और बाक़ी छुट्टी रहती है। साल भर में कम-से-कम ६० से ७० तक छुट्टियाँ वे और पा जाते हैं। क्या उनकी दशा अपने उन भाइयों से सैकड़ों गुना अच्छी नहीं जो खेतों पर मज़दूरी करते हैं या घरों में यहाँ तक कि उसकानेवालों के घरों तक में नौकरी करते हैं, जिन्हें साल में ७० दिन छुट्टी तो दूर, २४ घंटों में २ घंटे की भी छुट्टी नहीं मिलती?

अभी तक स्वदेशी ने भारतवर्ष में इतना ज़ोर नहीं पकड़ा है कि आपस में मालिक और मज़दूर में झगड़ा कराके चलते कारख़ाने बन्द कर दिये जायँ। जहाँ हमारे नेता तो यह पुकार रहे हैं कि और कारख़ाने खोलो कि बेकारी दूर हो, वहाँ छोटे नेता मौजूदा कारख़ानों को बन्द कराने की धमकी दे रहे हैं और काम करनेवालों पर यदि समा-चार-पत्र सच लिखते हैं तो तरह-तरह के मेहतर-नाई इत्यादि को रोककर अत्याचार कर रहे हैं। अभी तो कांग्रेस के शासन का शुरू ही है और शायद इसी से हमारी सरकार इन उपद्रवियों से डरती हो, मगर इसका असर क्या है? जब जनता यह आशा कर रही थी कि अब यहाँ तरह-तरह के धन्धे जारी होंगे, वहाँ वह देख रही है कि चलते धन्धों में भी बाधा डाली जायगी। मैं उन लोगों में हूँ जो कांग्रेस के शासन की बागडोर हाथ में लेने की

रफ़ थे

सब तरफ़ शान्ति फैला कर धनिकों को मौक़ा देंगे कि वे और उद्योग-धन्धे जारी करें। मुझे दुःख है तो इस बात का कि कुछ अपने तईं कांग्रेसी कहनेवाले शुरू में ही उपद्रव मचवाकर न केवल कांग्रेस-सरकार को बदनाम करेंगे, वरन स्वदेशी की उन्नति के मार्ग में बड़ी भारी बाधा डालेंगे। जो दशा इन लोगों की बदौलत कानपुर में हो रही है और जैसी ये दूसरे शहरों में भी करने का यत्न कर रहे हैं, कौन धनिक या छोटी पूँजी का व्यक्ति अपना धन किसी कारख़ाने या उद्योग में लगाने की हिम्मत करेगा? अभी हाल में ही देहली-सरकार ने ३ रुपये सैकड़ा पर १५ करोड़ का क़र्ज़ माँगा और ५ मिनट में उसे मिल गया। क्यों? यही उपद्रव देखकर छोटी पूँजीवालों ने अपनी छोटी-छोटी पूँजियाँ नोटों में लगा दीं। उन्होंने सोचा होगा कि ३ रुपया सैकड़ा उससे अच्छे हैं कि रुपया का रुपया डूब जाय और वे ख़ून चूसनेवाले भी कहलावें। प्रामिसरी नोटों का सूद खाते रहने पर भी तो वे आज-कल के साम्यवादी नेताओं में सम्मिलित हो सकते हैं।

किसी उद्योग के वास्ते धन उतना ही आवश्यक है, जितना मज़दूर और कारीगर जिसके पास अच्छा दिमाग़ हो। मज़दूर गङ्गा जी के रेत में से चाँदी नहीं निकाल सकता। उसे तरीक़े बतानेवाला कोई होना चाहिए, और जब तक चाँदी न निकले पैसा देनेवाला भी होना ज़रूरी है। मगर जो पैसा देगा उससे कहो कि बस पैसा तो तू दे और इन्तिज़ाम हम करेंगे तो वह दमड़ी न देगा। अपने घर का इन्तिज़ाम दूसरों पर कोई ख़ुशी से नहीं छोड़ सकता। यही आज मिल-मालिकों की हालत है। उनसे कहा जाता है, तुम किसी को निकाल नहीं सकते। वह क्या इन्तिज़ाम करेगा? तनख़्वाहें दूसरे तय कर दें, निकालें या रक्खें तो दूसरे! तब उसका क्या काम रहा? ख़ाली रिपोर्ट करना! कौन ऐसा बेवक़ूफ़ है जो ऐसी हालत में अपनी थोड़ी-बहुत पूँजी लगाकर ऐसे भी कारख़ाने खोले जिनकी ज़रूरत बहुत है? ये बातें स्वदेशी की उन्नति में बाधा डालती हैं।

मौजूदा कारख़ानों को धमकी देने से कि सरकार उन पर क़ब्ज़ा कर लेगी, काम सँभलने के बदले और बिगड़ ही जायगा। आगे नये कारख़ाने खोलने में तो बाधा पड़ [illegible] है, कम से कम कुछ दिन के वास्ते तो घड़ी

सुई रुक ही गई है। अब रहे-सहों को भी प्रान्त से निकलने पर क्यों मजबूर किया जाय? सरकार क़ब्ज़ा करके क्या करेगी? कारख़ानेवाले उसका मुआविज़ा पावेंगे और दूसरे प्रान्तों में या देशी रियासतों में जा बसेंगे और कम से कम ५० वर्ष तो अपनी जान बचा लेंगे। इधर कम से कम हमारे प्रान्त का दिवाला ही हो जायगा और यदि ऐसा न भी हो तो क्या कांग्रेस-सरकार को यह बात शोभा देती है कि जिन लोगों ने उसकी आड़े समय पर सहायता की उनके साथ ऐसा व्यवहार होने दे? अभी तो न मालूम उसे कितनी लड़ाई लड़नी हैं। ऐसी हालत में अपने साथियों का एक-एक करके तोड़ना लेखक को तो मुनासिब नहीं मालूम होता।

हमारा कहना तो यह है कि ऐसी बातों से स्वदेशी को उससे कम धक्का नहीं पहुँचता जितना हमारे माल को बाहर जाना रोकने से पहुँचता है। वास्तव में इस उपद्रव से सर्वसाधारण को बहुत हानि है। मज़दूरों का वेतन बढ़ाना ठीक है, परन्तु जहाँ तक वह ख़ास उद्योग बर्दाश्त कर सके। उसके आगे जाने में उस ख़ास वस्तु का मूल बढ़ जायगा और उसका बोझा सर्वसाधारण पर ही जायगा। आज-कल मुक़ाबिले का ज़माना है। विदेशी माल की बन आवेगी। हर देशी चीज़ महँगी होने के कारण बन्द हो जायगी और उससे वे सभी लोग नुक़सान उठावेंगे जो कांग्रेस के चुनाव की जीत पर फूले नहीं समाते थे और अगले चुनाव के समय उनकी दिलचस्पी कम हो जायगी और यदि वे यह कहेंगे कि "कोई नृप होय हमें का हानी" तो कौन-सी ग़लत बात होगी। परमेश्वर न करे कि वैसा दिन आवे।

गीत

लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

पल भर जाने दो भूल आज।
सोमा के नियमों के वितान
जीवन की विह्वलता महान।
पग पग पर पैर पकड़ने को,
उत्सुक निष्फल आत्माभिमान।

पल भर जाने दो भूल आज।
भावों की अति भीषण पुकार
बीते अतीत का सब ख़ुमार।
इस संशयालु उर के रह रह
उठनेवाले कातर विचार।

पल भर जाने दो भूल आज।
जग के निष्ठुर उपहास हास,
गम्भीर ज्ञान के जटिल पाश।
प्रत्येक पुलक पर जीवन की
निष्फलता का क्रन्दन हताश।

पल भर जाने दो भूल आज।
कहते सब जिसको लोक-लाज,
कल और और कुछ और आज।
हरदम लकीर हो का फ़क़ीर
अपनी धुन में पागल समाज।

पल भर जाने दो भूल आज।
उस उरतन्त्री से भिन्न तान,
अपने स्वर से बेसुरे गान।
हम पर जो आँख उठाते हैं
उनकी नीरस आँखें अजान।

पल भर जाने दो भूल आज।

एक पंजाबी 'वैण'

लेखिका, श्रीमती रामप्यारी खन्ना हिन्दी-रत्न, हिन्दी-साहित्यालङ्कार

श्रीयुत सन्तराम जी बी० ए० ने पंजाबी गीत कई बार पत्र-पत्रिकाओं में छपवाये हैं। पर जहाँ तक मैं जानती हूँ, उन्होंने 'वैण' जिसे हिन्दी में 'विलाप' कह सकते हैं, शायद नहीं छपवाये हैं। नज़र में एक भी नहीं आया।

मेरे पास कुछ वैणों का संग्रह है। उन्हीं में से एक वैण यहाँ देती हूँ। यह पंजाब के उत्तरी भाग की मिली हुई पंजाबी में है।

वैसे तो सभी पंजाबी वैण अच्छे होते हैं। उनमें करुण-रस कूटकूटकर भरा होता है। पर यह वैण विशेषता रखता है। इसका विषय भी बहुत हृदयग्राही है।

इसका पूरा स्वाद तो पंजाबी समझनेवाले ही ले सकते हैं, पर दूसरे भी बिलकुल वंचित न रह जायँ, इसलिए हिन्दी में इसका भावार्थ लिख दिया है।

वैण

अपने जणे मैंडी जण लुटका गई भैणे, पाल मरीं।
अपने पाल मरीं, ना पाईं किसे दे वसणी भैणे रंगीलीए
नी पाल मरीं ॥१॥
वस पै गए नी चाचीआं ते ताईआं, तुदै दे लाडले बच्चे,
मैंडी चम्बे दी डालीए भैणे, ज्यूँ भावण त्यूँ रक्ख नी
रंगीलीए पाल मरीं ॥२॥
हत्थ कटोरा तुधै दे बचिआं दे हत्थ विच ई,
हाय मैंडी विलख विलख करके सैं गए नी,
तुधै दे बचिआं दे हत्थ विचई, फिरदे नी बूहिओं बाहर
नी रंगीलीए पाल मरीं ॥३॥
कन्धां ओहले मैंडी चम्बे दी डालीए भैणे तू क्यों खड़ी ?
के वसूरा ई चित्त नी गोपीए, भैणे पाल मरीं ॥४॥
इक्क वसूरा मेरी चम्बे दी डालीए भैणे जिंद दा ई ?
आखदी मुज्जमरां अपने बच्चे आए नी चित्त नी गोपीए ?
एह जवानी मैंडी चम्बे दी डालीए भैणे केही रांगलीआ ?
मारी गईआं, हंडे पई मारन दे देस नी गोपीए ॥६॥
हत्थ मैंडी गोपीए महिन्दी केही रांगलीआ नी राणीए ?
बाहीं चूड़ाई रत्तड़ा नी किहा सोहणा आ, पाल मरीं ॥७॥
अग्गे चर्खा, मैंडी राणीए भैणे रांगलाई,
पिच्छे ढेढा ई लाल नी गोपीए पाल मरीं ॥८॥
छंद [illegible]ढेंदी मैंडी [illegible] दी राणीए भैणे सोहणी
अपने सहुरिआं दे पसार नी गोपीए, पाल मरीं ॥९॥
कदण आवसे नी मैंडी चम्बेदी डालीए भैणे कदण मिलसां,
मारी गईआं, कदों मिलवाई नी रंगीलीए गोपीए ? ॥१०॥
मेला होवे आर मैंडी चम्बे दी डालीए भैणे नी जींवदिआं,
जे चित वित्त मौत न होम नी गोपीए ॥११॥
रोंदी रोंदी भैणे घुमाइआं भैणे मरवञ्जा,
मरांतां चुक्के तुधै दा सूलनी गोपीए ॥१२॥
आई मरसां, भैण घुमाईआं भैणे मैं अपनी नी
मरां तुधै दे विजोग नी राणीए ॥१३॥
तणीआं चोले मैंडी चम्बे दी डालीए भैणे
तुधै दे बच्चिआं दे टुटसन,
मारी गईआं बोदी दा खुल गिया ने लड़नी गोपीए ॥१४॥
कौन पकासी तुधै दे लिस्से जहे बन्ने दीआं रोटीआं,
हाए नी मैंडी चम्बे दी डालीए भैणे कौण रिन्नसी
दाल नी गोपीए ? ॥१५॥
आपे रिन्ने दाल आए पकाये रोटीआं मैंडी राणीए भैणे रोटीआं,
आपे पिआ रिन्ने साग नी गोपीए पाल मरीं ॥१६॥
वसदा झुग्गा लिस्से जहे बन्नेदा न पट्टी नी गोपीए,
नी मारी गईआं मैंडी चम्बे दी डालीए भैणे,
वसदा न करी, वीरान नी रंगीलीए पालमरीं ॥१७॥

कोई युवती मर गई है। उसका पति और छोटे छोटे बच्चे रह गये हैं। युवती की बहन उसके रूप यौवन की प्रशंसा करती हुई उसके पति और बच्चों की दशा का चित्र अंकित करती है। कहती है—

रँगीली बहन, अपने बच्चों को रुलाकर चली गई। उन्हें तो पाल कर जाना था। देख! तेरे लाड़ले बच्चे दूसरों के वश में पड़े हुए हैं।

मेरी चम्पक की डाली बहन, जैसा चाहे तू आप ही उन्हें रख। किसी के वश में न डाल।

देख तो सही उनके हाथ में दूध के लिए ख़ाली कटोरा है। किसी ने दूध नहीं दिया। कोई बिलख-बिलख कर सो गया है, कोई ड्योढ़ी के बाहर भटक रहा है।

मेरी चम्पक की डाली रंग-रंगीली, दीवार की ओट में तू क्यों खड़ी है ? क्या सोच रही है ? तेरे दिल में क्या बस रहा है ? बतला तो सही ? एक ही बात। जीने की

कहती है कि झुलस मरूँ न ? क्यों ? बच्चों की याद आती है ?

ओह ! इतनी जवानी ! इस क़दर यौवन ! और बनी मृत्युलोक का पथिक ! दुःख है, बड़ा दुःख है ! क्या करूँ ? कुछ वश नहीं चलता।

मेरी गोपिका, तेरे हाथों में कितनी रँगदार मेंहदी लगी है ? कैसा सुन्दर बाहों में चूड़ा पड़ा है ? कुछ कहा नहीं जा सकता।

अपनी ससुराल में लाल रंग के पीढ़े पर बैठ कर लाल रंग के चर्ख़े में से जो सूत तू निकाल रही है उस की शोभा का तो मैं कुछ वर्णन ही नहीं कर सकती। तू मुझे यह तो बतला कि आयेगी कब तक। कब तक तेरे दर्शन होंगे ? मैं मर रही हूँ। संसार जीवों का मेला है।

मेरा तो जी यही चाहता है, मर जाऊँ। उसी से मेरा शूल मिट सकता है। तेरा वियोग असह्य है। निश्चय है, उसी में मर जाऊँगी।

मेरी चम्पक चमेली, तेरे बच्चों के कुर्तों की तनियाँ टूट जायँगी तो कोई ठीक न करेगा, चोटी की गाँठ खुल जायगी तो कोई उसे न बाँधेगा। देख यह दशा तो अभी उनकी हो रही है।

हाय विनोदिनी ! तेरे दुबले-पतले पति की रोटी कौन पकायेगा ? कौन उसके लिए दाल बनायेगा ? कौन साग बनायेगा ? क्या यह सब कुछ अब उसे आप ही करना होगा ?

अरी नवेली, उसका आबाद घर बर्बाद न कर। आ एक बार, फिर अपने बच्चों को सँभाल। उन्हें न रुला ! हाय ! तू सुनती क्यों नहीं ? कहाँ है ?

बड़ी बड़ी आशाएँ

कवि, कला और प्रकृति

लेखक, श्रीयुत राकेश

वह चला प्रात का पुण्य समीरण सुखकर,
जग उठीं कुसुम की कलियाँ सौरभ से भर;
नन्दन-वन-सा गिरि-राज सुखद सरसाया,
गूँजा नूतन संगीत मधुर वसुधा पर ॥१॥

प्राची में फूटी सुख-सुहाग की लाली,
—आई क्या 'सुषमा' सजा प्रेम की डाली ?
खोलीं कवि ने आँखें अपनी अलसाई,
—क्या जगा सृष्टि का सुन्दरतर वन-माली ? ॥२॥

"तुम कौन, शुभे ! क्या नाम उदार तुम्हारा,
—जिसकी पग-ध्वनि सुन फूल उठा वन सारा ?
सौभाग्य-पूर्ण वह देश कौन-सा सुन्दर,
—जिसने अपनी निधियों को तुम पर वारा ? ॥३॥

सुन स्नेह-भरी कवि की यह मधु-मय वानी,
कर अधर-ओट मुसकाई 'सुषमा' रानी !
—"भावुक ! अपने में मुझे भले ही भूलो,
पर 'कला' तुम्हारी मेरी चिर पहचानी !" ॥४॥

"क्या 'कला' तुम्हीं ?—मैं धन्य हुआ दर्शनकर !"
"पुलकित, कवि, मेरा रोम-रोम यह सुनकर !
तुम स्वामी, प्रिय, मैं सदा तुम्हारी चेरी;
मैं पूर्ण-काम,—तुम सेव्य रहो जीवन-भर ॥५॥

वन सहज कल्पना अपने पर फैलाऊँ;
क्षण में, सुन्दर ! नभ से ऊँचे उड़ जाऊँ;
छाऊँ भू पर, हर लूँ कुरूपता उसकी;
फिर 'सुषमा' की मादक मदिरा बरसाऊँ !" ॥६॥

सचमुच ही क्या कवि भी भूला अपनापन ?
हाँ, छलक उठे प्राची से भी मधु के कन !
ऊषा ने भी ढाले प्याले पर प्याले !
रे ! झूम उठी सब-की-सब जगती उन्मन ! ॥७॥

"बस सावधान !" चौंके सब यह स्वर सुनकर;
फैली उज्ज्वल नव-ज्योति एक पृथ्वी पर;
सतरंगी वे दिनकर की पहली किरणें—
पहुँचीं हिम से आच्छादित गिरि-शृंगों पर ! ॥८॥

देखा सबने अभिनव सन्देश सुनाती,
भूतल के चिर-सात्विक वैभव-सी भाती,
धीरे-धीरे, सुषमा की मृदु छाया-सी,
उस दूर क्षितिज से प्रकृति-सुन्दरी आती ॥९॥

"बस सावधान ! ढल चुके बहुत मधु-प्याले;
बीते जीवन के क्षण सब हो मतवाले !
हे कवि ! तुमने क्या यही कला में पाया ?
क्या दान तुम्हारा इसी लिए, हे बाले !—?" ॥१०॥

कवि ने व्रीडा से विनय-सहित सिर नाया;
रह गई खड़ी पर कला संकुचित-काया !
सुस्मितवदना फिर देवि प्रकृति ही बोली,
फैलाकर मानो अतुल स्नेह की छाया ! ॥११॥

"लज्जा से मत सकुचाओ, हे कवि-मानी !
हो स्वस्थ तजो भय मन से, 'सुषमा'-रानी !
पहले अपने में तुम जग को पहचानो,
फिर कहो प्यार से जग की मधुर कहानी !" ॥१२॥

"हाँ, मधुर और सुन्दर भी !" 'सुषमा' बोली;
"फिर प्रेम-भरी भी !" कवि ने मन पर तोली;
"तीनों ही !" कहने लगी प्रकृति भी हँसकर,
मानो दोनों की गाँठ हृदय की खोली ! ॥१३॥

"हो मधुर, किन्तु पावन भी हो सुरसरि-सी,
हो सुन्दर, पर निर्मल भी वन-निर्झर-सी,
हो प्रेम-भरी, पर मुक्त वासना-मद से,
चिर-यौवन का सन्देश लिये, विधु-कर-सी !" ॥१४॥

मधु-भरे बोल कोयल बोली डालों पर—
अनुमोदन ही क्या भृंगों का गुनगुन-स्वर ?
गद्गद कवि ने श्रद्धा से पलक झुकाये;
खिल उठी स्वर्ग-सी कला प्रकृति से मिलकर ! ॥१५॥

ग्राम-संगठन आरम्भ करनेवालों की तैयारी

लेखक, स्वर्गीय अध्यापक रामदास गौड़

स्वर्गीय रामदास गौड़ ने 'ग्रामसुधार' के सम्बन्ध में एक परम उपयोगी पुस्तक लिखी थी जो उनके जीवन-काल में नहीं छप सकी थी। अब वह पुस्तक हिन्दी के सस्ता-साहित्य-मण्डल-द्वारा प्रकाशित होने जा रही है। यहाँ हम उसका एक परिच्छेद प्रकाशित कर रहे हैं जो हमें श्री मार्तण्ड उपाध्याय की कृपा से प्राप्त हुआ है।
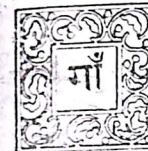
वों को ऐसे रूप में संगठित करने के लिए कि वे अपनी पहली स्थिति को पहुँच जायँ, भरसक उचित उपाय हमने यहाँ बताने की चेष्टा की है। इन उपायों को गाँव के रहनेवाले हमारे भाई बरतेंगे तो उनका कल्याण अवश्य होगा। आरम्भ में कांग्रेस को अपनी ओर से ऐसा बन्दोबस्त करना होगा कि गाँवों में संगठन का काम शुरू हो जाय। जो स्वयंसेवक इस महत्त्व के कार्य के लिए भेजे जायँ उनकी पात्रता पर पूरा विचार कर लेना होगा। यह बात जाँच लेनी होगी कि क्या स्वयंसेवक गाँव के लोगों के साथ मन, वचन और कर्म से पूरी सहानुभूति रखता है? क्या वह गाँववाले की तरह आधे पेट मोटा अन्न खाकर गुज़र करने को तैयार है? क्या वह अपना तैयार किया हुआ खद्दर ही पहनने को या कम-से-कम अपने काते सूत के ही और वह भी बहुत थोड़े खद्दर में गुज़र करने को तैयार है? क्या वह बिलकुल सादा जीवन और निर्दोष सत्य-अहिंसा-युक्त ब्रह्मचर्य कम-से-कम उतने काल के लिए पालन करने को तैयार है जितने दिन कि उसे ग्राम-संगठनवाली तपस्या में लग जायँगे? जिन गाँवों में वह भेजा जाता है वहाँ की देहाती बोली क्या वह अच्छी तरह जानता है? क्या उसने खद्दर के काम में अपने को काफ़ी होशियार बना रक्खा है? क्या वह कष्ट का जीवन बिताने का आदी है? क्या वह इस बात के लिए तैयार है कि गाँव की गन्दगी अपने हाथ से बिना झिझक के साफ़ करे? क्या वह राष्ट्रीय शिक्षा के तत्त्वों को जानता है? क्या वह किसानों की ज़रूरतों से वाक़िफ़ है? क्या वह अपने रूप, शील, रहन-सहन से गाँववालों को अपनी ओर खींच सकेगा? क्या वह तुलसीकृत रामचरितमानस पढ़ने, समझने और समझाने का अभ्यास रखता है? क्या वह तात्कालिक उपचारों का व्यावहारिक ज्ञान रखता है? क्या वह रोगी-सेवा में चतुर और शिक्षित है? क्या वह चर-विद्या में निष्णात है? क्या वह पंचायतों के संगठन का तत्त्व समझता है? क्या वह देहाती खेलों और व्यायामों का शौक़ीन है? क्या उसने कृषि-विद्या के साहित्य का परिशीलन किया है? क्या वह वर्तमान अर्थनीति, राजनीति और समाजनीति समझे हुए है? क्या वह सत्याग्रह-संग्राम के तत्त्वों को समझता है? क्या वह कांग्रेस के ध्येय का पालन करने और कराने का सिद्धांत समझे हुए है? क्या वह इतना धैर्यवान् है कि कई दिन भूख का कष्ट सहकर, बारम्बार लाठी की मार खाकर और तरह-तरह की यातनायें सहकर भी सेवा-कर्म में अविचलित रूप से डटा रहेगा? इस तरह के बड़े महत्त्व के प्रश्न हैं जिनकी कसौटी पर कसकर स्वयंसेवक की जाँच करनी होगी और जब वह सब तरह से योग्य पाया जाय तभी उसे इस भारी काम के ऊपर भेजना उचित होगा।

वह योग्यता कैसे आवेगी? इन प्रश्नों के उत्तर ऐसे नहीं हैं कि शिक्षा बिना पाये हुए कोई स्वयंसेवक कांग्रेस को सन्तुष्ट कर सके। हमारे पास इतना समय भी नहीं है कि हम ग्राम-संगठन करनेवाले स्वयंसेवकों को बरस छः महीना बैठाकर शिक्षा दें। इस ग्राम-संगठन के काम के लिए आज-कल सबसे उपयुक्त पात्र कॉलेजों के लड़के हैं। कॉलेजों के लड़कों के सिवा दूसरे योग्य स्वयंसेवक हमको यथेष्ट संख्या में नहीं मिल सकते। अगर दस-दस गाँवों के संगठन के लिए हमें एक-एक स्वयंसेवक रखना हो तो सत्तर हज़ार स्वयंसेवक चाहिए। सारे भारत में भी कॉलेजों के लड़के इतनी बड़ी संख्या में हमें नहीं मिल सकते। इसलिए अगर सारे भारत के कॉलेजों से चुन-चुनकर एक-एक विद्यार्थी केवल ग्राम-संगठन के काम के लिए मिल जाय तो बहु किफ़ायत से हम एक-एक विद्यार्थी को बीस-

बीस तीस-तीस गाँवों के संगठन के लिए रख सकेंगे। यदि हमें सभी कॉलेज के विद्यार्थी मिल जायँ तो हर प्रांत के विद्यार्थियों को उन-उन प्रांतों में बँट जाना चाहिए जिन पर उनका अधिकार है, और हर प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी को चाहिए कि अपने प्रांत के लड़कों को ग्राम-संगठन की शिक्षा देने के लिए आतुर-शिक्षालय खोल दे, जिसमें कुल पंद्रह दिनों की शिक्षा देकर स्वयंसेवक तैयार किये जायँ। इन पन्द्रह दिनों की शिक्षा में ग्राम-संगठन के पंडित नहीं तैयार होंगे। इस विधि से केवल आतुर-सेवक बन सकेंगे, जो ग्राम-संगठन के काम को एक अच्छी विधि से आरम्भ कर दें। फिर जो रास्ता वे दिखा देंगे उसी रास्ते से गाँव-वाले आप अपना संगठन कर लेंगे। कांग्रेस को इस सम्बन्ध में आगे चलकर विशेष प्रयास की आवश्यकता न पड़ेगी।

इस आतुर-शिक्षालय में नीचे लिखे विषयों की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना पड़ेगा—

१—स्वयंसेवक की पात्रता।
२—ओटाई, धुनाई, कताई आदि में दक्षता।
३—पशु-पालन।
४—कृषि-विद्या।
५—चर-विद्या।
६—तात्कालिक उपचार।
७—रोगी-सेवा।
८—स्वास्थ्य-रक्षा।
९—वर्तमान राजनीति, समाजनीति और अर्थनीति।
१०—ग्राम-वास्तु-विज्ञान।
११—पंचायतों का संगठन।
१२—गाँवों की और किसानों की वर्तमान दुर्दशा।
१३—आपत्काल में प्रजा की रक्षा।

इन तेरह विषयों में से पात्रता, खद्दर का काम, तात्कालिक उपचार, चर-विद्या और रोगी-सेवा ये पाँच विषय ऐसे हैं जो अध्ययन और अध्यापन से सीखे और समझे जा सकेंगे। इनके लिए इन्हीं पन्द्रह दिनों में आठ-आठ घण्टे रोज़ शिक्षा का प्रबन्ध करना पड़ेगा, जिनमें से चार घण्टे नित्य की व्यावहारिक शिक्षा रखना आवश्यक होगा।

इन आ[illegible]

लिए, जब तक कि वे ग्राम-संगठन का काम करेंगे, ग्रामवाले ही बड़ी ख़ुशी से बन्दोबस्त करेंगे। परन्तु स्वयंसेवकों को उचित नहीं है कि अपनी जीविका के लिए विशेष रूप से अलग सेवा किये बिना ग्राम-संगठन के काम से ही कुछ धन प्राप्त करें। वे गाँव के बच्चों के पढ़ाने के लिए अपने आश्रम में पाठशाला खोल लें और रात में भी बड़ों को पढ़ाने के लिए रात्रि-पाठशाला खोलें। इस तरह दिन में और रात में पढ़ाकर वे काफ़ी जीविका के अधिकारी हो जायँगे। वे सुभीते के साथ और तरह की मजूरी और मोटा काम करके अगर अपनी जीविका कर लें तो मुदर्रिसी से ज़्यादा अच्छा होगा, क्योंकि गाँववाले अधिकतर मोटे काम से ही रूखी-सूखी रोटी कमाते हैं। केवल विशेष अवस्था में ही उन्हें अपने लिए कांग्रेस से या किसी से सहायता लेने का अधिकार होगा। इन खद्दर के सिपाहियों को देश के ऊपर भार प्रतीत न कराना चाहिए।

स्वयंसेवकों को देश में फैले हुए अनेक भ्रमों से बचे रहना चाहिए। हम उन भ्रमों में से कुछ का दिग्दर्शन इस स्थल पर करते हैं।

१—साक्षरता का भ्रम

हमारे देश में पहले सच्ची शिक्षा का बहुत अच्छा प्रचार था। जब से यहाँ विदेशियों का राज्य हुआ तब से लोकशिक्षा प्रायः उठ गई। पछाहीं पढ़ानेवालों ने अक्षर-ज्ञान पर बहुत ज़ोर देकर मर्दुमशुमारियों में गिनती कराई। लगभग पचास वर्ष से मर्दुमशुमारी हुआ करती है। गिनती से पता चलता है कि अँगरेज़ों के समय में भारत में अक्षर पहचान सकनेवाले सैकड़ा पीछे सात आदमी से अधिक नहीं हैं। एक तरफ़ तो सरकार अक्षर-ज्ञान के प्रचार में पैसे ख़र्च नहीं करना चाहती, दूसरी तरफ़ यह कहती है कि तुम लोगों में पढ़े-लिखों की गिनती इतनी थोड़ी है कि तुम्हारे यहाँ मतदाता लोग काफ़ी पढ़े-लिखे नहीं मिल सकते, इसलिए तुम अपने राज्य का प्रबन्ध नहीं कर सकते। इसमें दो तरह के धोखे हैं। एक तो यह कि स्वयं इँग्लिस्तान में मतदाता होने की कोई ऐसी शर्त नहीं है कि उनका अक्षर-ज्ञान रखना या नाम लिख सकना ज़रूरी हो। स्वराज्य के लिए साक्षर होना भी कोई ज़रूरी बात नहीं है। जब अँगरेज़ों के पुरखे पढ़े-लिखे नहीं थे और भारतवर्ष के लोग भारी-भारी विद्वान

थे तब भारतीयों ने कभी यह नहीं कहा था कि अँगरेज़ लोग पढ़े-लिखे नहीं हैं और स्वराज्य नहीं कर सकते; अथवा उस समय पढ़े-लिखे न होने से किसी राष्ट्र ने अपनी स्वतन्त्रता नहीं खोई। इसलिए यह दलील धोखेबाज़ी की दलील है। दूसरा धोखा यह है कि बीते पचास बरसों के भीतर विदेशी सरकार ने ख़ुद शिक्षा का बन्दोबस्त ऐसा नहीं किया कि सैकड़ा पीछे सात से अधिक पढ़े-लिखे लोग हो सकें। जान पड़ता है कि उन्होंने इस कार्रवाई में दो मतलब साधे। एक तो शिक्षा में ख़र्च होनेवाले पैसे बचाये और दूसरे उन्होंने भारतवर्ष को बन्धन में रखने के लिए एक कारण बनाये रक्खा। हमको इन दोनों धोखों से बचना चाहिए। स्वराज्य के लिए साक्षरता कोई ज़रूरी शर्त नहीं है और पूरा स्वराज्य भोगनेवाले किसान के लिए पढ़ना-लिखना जानना ज़रूरी नहीं है, इसी लिए किसानों की शिक्षा में उनके काम की बातों का बताया जाना मुख्य है और पढ़ना-लिखना सिखाया जाना गौण है।

२—गहनों से समृद्धि का भ्रम

हमारे देश में गहनों का बहुत ज़बर्दस्त रवाज है। प्राचीनकाल से स्त्रियों को गहने पहनाने का दस्तूर चला आया है, परन्तु इधर जब से राज्यविप्लव होने लगे और आये दिन गाँवों पर और किसानों पर भी कुचक्र के कारण विपत्तियाँ पड़ने लगीं तब से स्त्रियों के ये गहने बैङ्क का काम करने लगे। जब कभी किसान संकट में पड़ता है और बिना रुपयों के उसका काम नहीं चलता, साहूकार ऋण नहीं देता, ज़मींदार ज़रा भी रिआयत नहीं करता और सिपाही उसकी बेइज़्ज़ती करने पर तुल जाता है, तब किसान की स्त्री से नहीं देखा जाता और वह अपने गहने उतारकर पति के मान की रक्षा करती है। यों किसानों के बैङ्क होते तो भी काट-कपटकर किसान उतना जमा न कर सकता जितना कि ब्याह के समय या और वक़्तों में लाचार होकर औरतों के गहने बनवाने में ख़र्च करता है। जब भूख से बच्चे तड़फने लगते हैं और पेट की आग किसी-न-किसी तरह से बुझानी ज़रूरी हो जाती है और चाँदी के गहने भी शरीर पर बचे नहीं रहते तब फूल या काँसे की चूड़ियाँ फोड़-फोड़कर बेची जाती हैं और किसी तरह एक बार की रोटियों का बन्दोबस्त हो जाता है। जब तक किसान की कंगाली दूर नहीं की जाती तब तक किसानों के इस बैङ्क को उठा देने की कोशिश करना किसानों के साथ बड़ी भारी बुराई करना है। हम यह मानते हैं कि गहनों में किसान का बड़ा नुक़सान होता है। सोनार अगर ईमानदार हो तो भी मुश्किल से रुपये में बारह आना माल रह जाता है, पर वर्तमान काल में किसान के पास ऐसा कोई बैङ्क नहीं है जिसमें जमा करके वह अपनी ज़रूरत के वक़्त पर इससे ज़्यादा सुभीता पा सके। जब गाँव का सहकारी बैङ्क बन जायगा और हर किसान उससे लाभ उठाने लग जायगा और वह देखेगा कि इसमें हमको ज़्यादा सुभीता है तब वह गहने बनवाना कम कर देगा। परन्तु जब तक यह प्रबन्ध सुरक्षित नहीं हो जाता तब तक सोने-चाँदी का इस्तेमाल हमारी समझ में बेजा नहीं है। जब वे लड़ाइयाँ छिड़ जाती हैं तब इस सुभीते का पता लगता है। सरकारी रुपया तो रुपये में बारह आना भी क़ीमत नहीं रखता। अगर सोनार ने बेईमानी करके गहनों को रुपये में आठ आने का ही माल कर दिया है तो भी गहने से उतना नुक़सान नहीं है जितना रुपये से है; क्योंकि रुपये में छः आना भर भी माल नहीं है और पाँच रुपये, दस रुपये, सौ रुपये या हज़ार रुपये का एक नोट तो धेले का भी माल नहीं है। इसलिए गहने में प्रजा का उतना नुक़सान नहीं है जितना कि रुपये और नोटों से है। विदेशी चालाक कूटनीतिज्ञ हमको मुफ़्त बदनाम करते हैं कि भारतवर्ष में लोग गहना बनवा-बनवाकर सोने-चाँदी को सिक्के के रूप में नहीं चलने देते। दिन-दहाड़े उससे तिगुने दाम के सिक्के क़ानून और लाठी के बल से चलाये जाते हैं और इतने पर भी विदेशियों को अगर कोई कुछ कहता है तो वे अत्यन्त बुरा मानते हैं। अतः जो वे गहनों की निन्दा करते हैं उसके भ्रम में हमें नहीं पड़ना चाहिए। इस भ्रम में भी न पड़ना चाहिए कि गहना हमको धनाढ्य बनाता है। वास्तविक धन हमारी आवश्यकता को पूरी करनेवाली चीज़ें हैं। चाँदी और सोने से हमारी कोई आवश्यकता पूरी नहीं होती। अन्न, वस्त्र और गोधन से हमारी ज़रूरतें पूरी होती हैं; हमको पैसों की माया में न फँसना चाहिए।

३—यह भ्रम कि दरिद्रता का कारण आबादी का बढ़ना है।

हमारे देश की दरिद्रता पर अर्थशास्त्रियों ने बहुत

खोज की है। विदेशी सरकार के पक्ष के लोग कहते हैं कि दरिद्रता का कारण भारत की आबादी का बढ़ना है। किसी-किसी ने इसी भ्रम में आकर यहाँ तक सलाह दी है कि भारतवर्ष की बढ़ी हुई प्रजा कहीं टापुओं में जाकर बस जाय। परन्तु यह बहुत भारी भ्रम है। जब से इस देश में अँगरेज़ों का पैर आया है तब से भारतवर्ष की आबादी सबसे कम बढ़ी है। अर्थशास्त्रियों में यह तो बिलकुल मानी हुई बात है कि फ़्रांस ऐसा देश है जहाँ की आबादी ठहर-सी गई है। इँग्लिस्तान की आबादी ज़रूर बढ़ती है और वह समृद्ध देश समझा जाता है, इसलिए ब्रिटिश भारत में पिछले पाँच दशकों में भी क्षेत्रफल की बढ़ती होती रही है और आबादी का हिसाब क्षेत्रफल की घनता से ही ठीक-ठीक लगाया जा सकता है। श्री कुमारप्पाजी ने इस भ्रम का उच्छेदन करते हुए 'यंग इण्डिया' में नीचे लिखे अंक देकर यह सिद्ध किया है कि भारतवर्ष की आबादी में जो वृद्धि गत पचास वर्षों में हुई है वह फ़्रांस देश की वृद्धि से भी कम है। उन्होंने तीनों देशों का मुक़ाबिला किया है, जो आगे दिया गया है।

सारांश यह है कि पचास वर्षों में भारत की आबादी जहाँ ५·१ बढ़ी, वहाँ फ़्रांस की आबादी ५·७ बढ़ी और इँग्लिस्तान और वेल्स की ६६·८ बढ़ी। अर्थात् भारत की

	वर्गमील पीछे आबादी प्रत्येक गणना वर्ष में			सन् १८७१ को बुनियादी वर्ष मान-कर उसके अंक को १०० माना गया		
वर्ष	भारत	फ़्रांस	इँग्लिस्तान और वेल्स	भारत	फ़्रांस	इँग्लिस्तान और वेल्स
१८७१	२१५	१७४	३८७	१००	१००	१००
१८८१	२२७	१८२	४४५	१०५ ५	१०४·६	११४·४
१८९१	२२९	१८५	४९७	१०६·५	१०६·३	१२८
१९०१	२१०	१८८	५५८	९७·६	१०८	१४३·४
१९११	२२३	१८९	६१८	१०३·६	१०८·६	१५८·८
१९२१	२२६	१८४	६४९	१०५·१	१०५·७	६६·८

आबादी की वृद्धि फ़्रांस के बराबर भी न हुई, उससे भी कम रही। अगर दशक का औसत लें तो फ़्रांस की आबादी सैकड़ा पीछे जहाँ १·१५ बढ़ी वहाँ भारत की केवल १ बढ़ी है। इसके मुक़ाबिले इँग्लिस्तान की १३·३ बढ़ी है। इँग्लिस्तान की बढ़ती मामूली से ज़्यादा है। मामूली तौर से हर दशक में सैकड़ा पीछे दस बढ़ना चाहिए। अगर इस हिसाब से भारत की बढ़ती होती तो आज आबादी ३७ करोड़ से अधिक होती। परन्तु आबादी तो उस हिसाब से नहीं बढ़ी जिस हिसाब से फ़्रांस में बढ़ रही है। फिर आबादी की बढ़ती से दरिद्रता क्यों होनी चाहिए? जो लोग दरिद्रता का कारण आबादी की बढ़ती समझते हैं उनकी यह भारी भूल है।

४—पच्छाहीं कलों का भ्रम

हमें अपने देशी हलों को ज़रूर सुधारना चाहिए। परन्तु विदेशी हलों के फेर में न पड़ना चाहिए। हमारे यहाँ के भुक्खड़ अधमरे बैल उन्हें खींच न सकेंगे। पैसे बर्बाद होंगे। विदेशी लोग उनकी बिक्री के लिए ज़मीन-आसमान एक कर रहे हैं, परन्तु इन बातों में जो पड़ चुके हैं वे बेतरह पछताते हैं। पच्छाहीं चीज़ें भूलकर एक भी न ख़रीदी जायँ। यह एक भयंकर भ्रम है।

५—अनाज की महँगी से लाभ का भ्रम

किसान इस भूल में पड़ा हुआ है कि अनाज का महँगा होना अच्छा है, क्योंकि रुपये ज़्यादा मिलते हैं। परन्तु यह भी धोखा है। भारी लगान, कपड़े-लत्ते और दूसरे सामान के लिए किसान रुपये संग्रह करता है। ये रुपये लगान, मुक़द्दमेबाज़ी, रिश्वत, नशा, सूद, विदेशी कपड़ा आदि कामों में ख़र्च हो जाते हैं। उसके हाथ कुछ नहीं लगता। अनाज सस्ता हो तो बेचो मत। मुक़द्दमा न करो, पंचायत से काम लो। रिश्वत, नशा और विदेशी कपड़ों के पास न फटको। लगान घटवा लो। सूद भी घटाओ। अपने ख़र्च भर का अनाज पास रखकर बाक़ी में सूद और लगान दे डालो। अनाज महँगा होता है तो देखने को पैसे ज़्यादा मिलते हैं, पर सब पैसे खिंच जाते हैं। सस्ता होने पर किसान बेचता नहीं। फिर अन्न देश में ही रहेगा। लोग भूखों न मरेंगे। इस भ्रम को भी दूर करना ज़रूरी है।

६—जाति-भेद से अनैक्य का भ्रम

बहुत से लोगों की तरह हाथ धोकर जाति-भेद के पीछे पड़ने की ज़रूरत नहीं है। समाज की सारी सेवायें एक ही आदमी नहीं कर सकता, इसी लिए सब देशों और कालों में सेवायें बँटी रहती हैं। यह अर्थशास्त्र के अनुकूल श्रम-विभाग है। श्रम-विभाग को तोड़ने के व्यर्थ प्रयास में न

लगना चाहिए। हाँ, समाज के अस्तव्यस्त हो जाने से जो पेशे कोई न करते हों उनके लिए फिर से बन्दोबस्त करना चाहिए और जिनके पास आज काम न हो वे नये पेशे चुन लें। परन्तु जाति-भेद के तोड़-फोड़ या नई जाति के निर्माण के झगड़े में स्वयंसेवक पड़ेगा तो ग्राम-संगठन का लक्ष्य बिलकुल भूल जायगा। रोटी-बेटी के भेद को जो लोग फूट का कारण समझते हैं, वह भी भारी भूल है। जर्मन और अँगरेज़ के बीच रोटी-बेटी का भेद कभी नहीं हुआ, न हो सकता है; परन्तु विगत महायुद्ध में वे एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे थे। इस रोटी-बेटी के भेद को मिटाना मैं ज़रूरी नहीं समझता। इस भेद से अनैक्य या फूट का जितना बढ़ना बताया जाता है, उतना सत्य नहीं जँचता।

७—भारत की समृद्धि का भ्रम

भारत का किसान अपनी प्यारी धरती को छोड़ने के बदले स्वयं उजड़ जाता है, पर भूमि नहीं छोड़ता। जिस कड़ाई के साथ लगान वसूल होता है वह सब जानते हैं। सरकार की आमदनी कभी नहीं घटती और किसान की स्त्रियों के गहने भी रक्खे ही रहते हैं। इन बातों को देखकर विदेशी कहते हैं कि भारत समृद्ध है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इससे बढ़कर भूल हो नहीं सकती। दरिद्रता की यह दशा है कि संसार भर में भारत में ही सिर पीछे छः पैसे के लगभग नित्य की अत्यन्त थोड़ी रक़म है। नीचे उसका नक़्शा दिया जाता है—

आदमी पीछे रोज़ाना आमदनी

संयुक्तराज्य (अमेरिका)	...	३)	रोज़
आस्ट्रेलिया	...	२।)	,,
इँग्लैंड	...	२-)	,,
कनाडा	...	१।।=)९	,,
हिन्दुस्तान	...	-)७	,,

इन भ्रमों के सिवा काम करते हुए भाँति-भाँति की बाधायें और कठिनाइयाँ भी उपस्थित हो सकती हैं। उनको सुलझाने के लिए समय-समय पर ग्राम-संगठन करनेवालों का सम्मेलन होना चाहिए, जहाँ उन प्रश्नों के ऊपर विचार करके उचित उपाय सोचे और फिर काम में लाये जायँ।

अनुरोध

लेखक, श्रीयुत 'शिवेन्द्र'

रे गायक, बस विस्मृत कर दे सकरुण स्मृति के गान!
जग निर्मम है,
पाहन - सम है,
गान सजल तव,
करुणा - उद्भव।
हँस देगा सुन अपने रँग में भूला यह नादान!
यहाँ ताप में ही जलना है,
आशाओं की ही छलना है,

सुख केवल दुख की छाया है,
मृगमरीचिका की माया है।
तना हुआ है वैभव-नभ पर केवल छद्म-वितान!
गाना हो गा लेना मन में,
डूबे स्मृति के मादकपन में,
यहाँ कहाँ कोई किसका है,
यह जीवन तो पावस-सा है।
रोते-रोते हम भी सोते, इसका यही विधान!

[गारो स्त्रियाँ]

गारो की दुनिया

लेखक,
श्रीयुत कमलाकान्त वर्मा
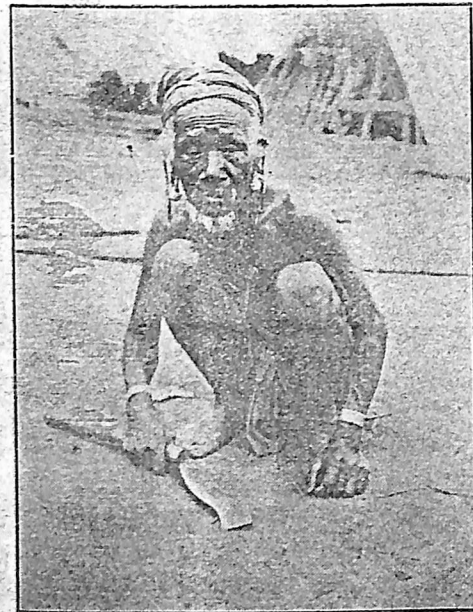
[एक गारो किसान । इस वृद्धावस्था में भी काफ़ी मुस्तैद है । उसकी कान की बालियाँ देखिए ।]

आसाम एक छोटा-सा पहाड़ी प्रान्त है, परन्तु इस प्रान्त में एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न इतनी अधिक जातियाँ बसती हैं जितनी अन्य प्रान्तों में नहीं बसतीं । आसाम की पहाड़ियों के नाम भी इन्हीं जातियों के नाम पर पड़े हैं । इस लेख में हम गारो-जाति के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें बतलावेंगे ।

यह जाति आसाम की पर्वत-श्रेणी की पश्चिमी किनारे की छोटी और शृङ्खलाहीन पहाड़ियों पर बसती है । इन पहाड़ियों पर कलकत्ता से आसानी से पहुँचा जा सकता है, परन्तु इन पर जो लोग बसते हैं वे कलकत्ता के जीवन से सर्वथा अनभिज्ञ हैं । आधुनिक संसार उन्हें असभ्य और जंगली कहता है, परन्तु उनकी एक सभ्यता है और जीवन के उनके कुछ निश्चित सिद्धान्त भी हैं, जो संसार के सभ्यों के आदर्शों से किसी बात में घटकर नहीं हैं।

गारो-जाति को आप तिब्बती भी कह सकते हैं और बर्मी भी । उन पर दोनों का प्रभाव है । सम्भव है, वे तिब्बत से आकर यहाँ बस गये हों । वे क़द में छोटे होते हैं, पर उनके शरीर की गठन सुन्दर होती है । गारो मर्द लँगोटी लगाते हैं और पगड़ी बाँधते हैं । पगड़ी के बीच में सिर [illegible] रखते हैं । शरीर पर वे कोई वस्त्र नहीं धारण करते । पोशाक के मामले में स्त्रियाँ भी बहुत कुछ लापरवाह होती हैं । प्रायः वे भी घुटनों तक लुङ्गी पहने नङ्गे बदन निकलती हैं । पगड़ी वे भी बाँधती हैं और नहीं भी बाँधतीं । उनका आभूषण अधिकतर शुष्क वनस्पति की मालायें होता है और वे कानों में पीतल या काँसे की बालियाँ पहनती हैं । कभी-कभी इन बालियों की तादाद बीस-तीस तक हो जाती है । हाथों में वे कड़े भी पहनती हैं ।

[गारो का एक दल अपने लम्बे ढोलों के साथ ।]

गारो लोगों का गाँव बसाने का तरीक़ा अनुकरणीय है । प्रायः वे झरनों के किनारे बीच में काफ़ी मैदान छोड़ कर उसके गिर्द झोपड़े बनाते हैं । वह मैदान सबका होता है । उसी मैदान में वे अपने धार्मिक उत्सव और नृत्य आदि करते हैं । ढलुई ज़मीन में बाँस गाड़कर उन्हीं पर वे अपना घर बनाते हैं । फ़र्श पर बाँस की चटाई बिछाते हैं और दीवार का काम भी चटाइयों से ही लेते हैं । ऊपर से घास का छप्पर डाल लेते हैं । घर बनाने की सारी सामग्री उन्हें पहाड़ियों पर उगनेवाले घने जङ्गल से मिल जाती है । उनके मकान तङ्ग और लम्बे होते हैं । मकानों का भीतरी हिस्सा अन्धकारमय और मनहूस होता है । मकानों में खिड़कियाँ नहीं होतीं । केवल दोनों ओर दो दरवाज़े होते हैं ।

किसी गाँव में जाइए तो गृहणियाँ आपको अपने अपने द्वार पर बैठी धान कूटती या पयाल से धान निकालती दिखाई पड़ेंगी । बूढ़ी औरतें प्रायः चर्खे चलाती नज़र आयेंगी । बालक धूप में खेलते मिलेंगे । सूअरों और चिड़ियों के गिरोह भी घरों के इर्द-गिर्द घूमते मिलेंगे । सफ़ाई का काम सूअरों के सिपुर्द रहता है ।

[एक गारो युवती अपने सूप के साथ ।]

[बाज़ार जाते समय मार्ग में गारों का एक दल नदी किनारे विश्राम कर रहा है।]
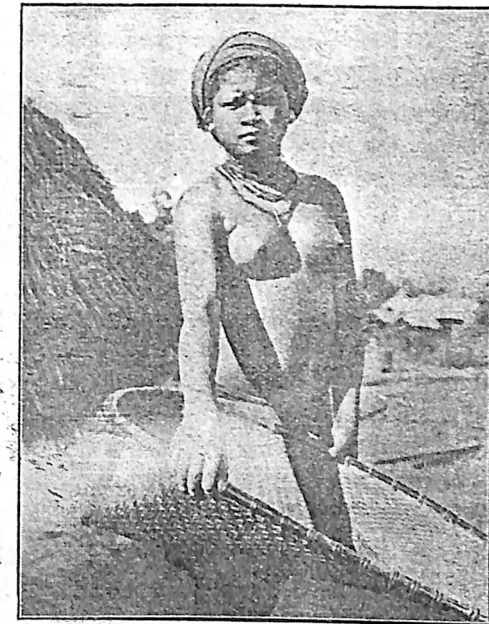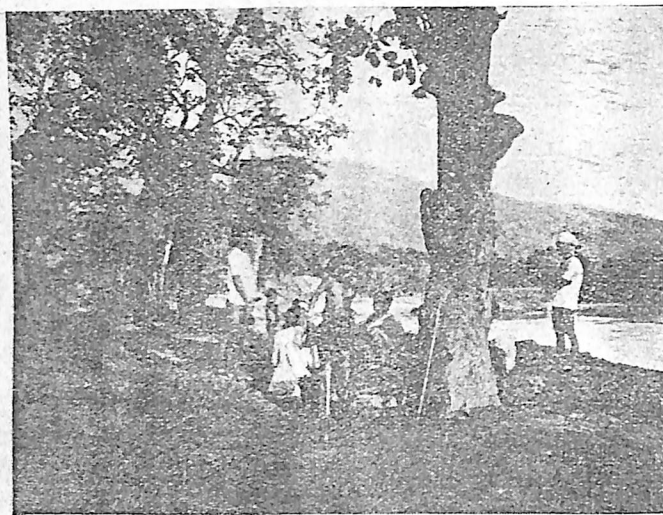
गाँव के घर के अलावा गारो लोग अपने अपने खेतों में मचान बनाकर रहते हैं ताकि वे अपनी कृषि की रखवाली कर सकें। ये मचान काफ़ी उँचाई पर बनाये जाते हैं, जिससे वे जङ्गली जानवरों के आक्रमण से बचे रहें। ये मचान प्रायः तीस फुट की उँचाई पर बाँधे जाते हैं।

पेड़ के तने का एक हिस्सा खोखला करके उसमें वे धान कूटते हैं, मिट्टी के बर्तनों में खाना पकाते हैं, विविध प्रकार की तूँबियों में पानी पीते हैं और टोकरियों में अपनी चीज़ें रखते हैं। बस इन्हीं वर्तनों से उनका गृहकार्य्य चलता है। भोजन के लिए वे केले के हरे पत्तों का प्रयोग करते हैं। उनके जीवन-निर्वाह का साधन एक-मात्र कृषि है। वे कई प्रकार के चावल उगाते हैं, मक्का और मिर्च तथा आलू, ककड़ी और अदरक आदि चीज़ें भी पैदा कर लेते हैं। चावल के बाद दूसरा नम्बर कपास का है, जिसकी वे अच्छी फ़सल तैयार करते हैं। पहाड़ियों से नीचे उतर कर वे अपनी कपास दूसरों के हाथ भी बेच जाते हैं।

घने जङ्गलों के बीच में रहते हुए भी गारो लोग शिकार के शौक़ीन नहीं हैं। यह एक आश्चर्य्य की ही बात है। मछली मारने का शौक़ उन्हें अवश्य है। उनके

[गारों के देश का एक प्राकृतिक दृश्य]

[मृतक का स्मृति-मन्दिर। ऊपर मृतक के व्यवहार की चीज़ें टँगी हैं।]

भोजन का मछली एक मुख्य अङ्ग है। मछली का शिकार वे प्रायः बाँस में एक नुकीला तार लगाकर उसी से करते हैं। कभी कभी रात को वे मशाल जलाकर मछली मारते हैं। मशाल से आसानी यह होती है कि मछलियाँ रोशनी से आकर्षित होकर उनके क़रीब आ जाती हैं।

अपने खेतों का चावल और अपनी नदियों की मछलियाँ खाने के बाद और जो कुछ भी मिले, गारो उसे खाने से न चूकेगा। कुत्ते के गोश्त से भी उसे परहेज़ नहीं। अपनी शराब भी वे स्वयं बनाते हैं। उनका ख़याल है कि अच्छी शराब चावल से ही बन सकती है।

विवाह के सम्बन्ध में गारो का यह सिद्धान्त है कि विवाह सदा भिन्न गोत्र में करना चाहिए। जो अपने ही फ़िरक़े में शादी करते हैं वे हेय दृष्टि से देखे जाते हैं और पाप के भागी माने जाते हैं। विवाह का प्रस्ताव प्रायः लड़की की ओर से होता है। जिस पुरुष के साथ वह शादी करना चाहती है उसके पास अपनी किसी सहेली के द्वारा वह चावल की एक रोटी बनाकर भेजती है और पीछे-पीछे स्वयं भी जाती है। यदि वह पुरुष रोटी पाते ही उसे खाने लगता है तो समझा जाता है कि विवाह की प्रार्थना उसे स्वीकार है। उस दशा में लड़की भी उसके साथ वही रोटी खाने लगती है। दहेज की प्रथा क़तई नहीं है और न किसी ओर से किसी प्रकार की नज़र-भेंट ही दी जाती है। परन्तु यदि लड़की के मा-बाप सम्पन्न होते हैं तो वे लड़के को प्रायः तलवार, भाला या ढाल उपहार-स्वरूप देते हैं। कभी कभी एक भैंस या गाय भी दे देते हैं। यदि पत्नी और पति दोनों की रज़ामन्दी हो तो उनमें तलाक़ भी हो सकता है। उस अवस्था में गाँव के बड़े-बूढ़े तलाक़ का कारण मालूम करते हैं और यदि वह उचित जान पड़ता है तो तलाक़ की आज्ञा दे देते हैं। गारो

[गारो परिवार में प्रत्येक मृतक के नाम पर लकड़ी का एक खंभा मकान के सामने गाड़ दिया जाता है।]

स्त्रियों का चरित्र बहुत ऊँचा होता है और उनमें वेश्यायें नहीं होतीं।

गारो का वंश पिता के नहीं, माता के नाम पर चलता है। सम्पत्ति की अधिकारिणी भी उनके यहाँ स्त्री ही मानी जाती है। परन्तु व्यवहार में देखा गया है कि पति अपने जीवनकाल में स्त्री की सम्पत्ति का जैसा चाहता है वैसा उपभोग करता है।

भूत-प्रेत पर गारो लोगों का अत्यधिक विश्वास है। उन्हें किसी क़िस्म का भी कष्ट होता है तो उसे वे प्रेत-बाधा ही समझते हैं और प्रेतों को प्रसन्न करने के लिए बलिदान आदि बराबर करते रहते हैं।

गाँव में प्रवेश करते ही आपको बाँस की बनी हुई छोटी-छोटी बलि-वेदियाँ दिखाई पड़ेंगी। इन वेदियों पर आप देखेंगे कि किसी न किसी देवता के नाम पर किसी न किसी पशु या पक्षी का वध किया गया है। बलिदान के समय वे नृत्यगान और भोज भी करते हैं।

गारो लोगों का विश्वास है कि मृत्यु के बाद मनुष्य के प्राण शरीरत्याग कर एक विशेष स्थान पर तब तक निवास करते हैं जब तक वह प्राणी पुनर्वार जन्म नहीं लेता। दुबारा जन्म उसे उसके कर्मों के फल के अनुसार मिलता है। अच्छा कर्म करने पर वह अपनी ही जाति में जन्म पाता है। पाप की मात्रा जैसी कम या अधिक होती है, वैसे ही पशुओं का जीवन उसे प्राप्त होता है। गारो लोग अपने मुर्दों को जलाते हैं और यह संस्कार वे प्रायः रात में करते हैं। उस समय वे एक साँड़ का बलिदान भी करते हैं ताकि उसकी आत्मा उनके स्वर्गीय स्वजन के साथ जाकर उसे सुख दे। मुर्दों को जलाने के बाद जो हड्डियाँ जलने से बच रहती हैं उन्हें वे एक बर्तन में इकट्ठा करके मृतक के घर के बाहर किसी स्थान पर गाड़ देते हैं और उसके ऊपर बाँस की एक छोटी-सी मढ़िया बना देते हैं। उसके ऊपर वे कपड़ा तान देते हैं और भोजन बनाकर भी उसके वास्ते रख आते हैं। इतना ही नहीं, उसकी पगड़ी, उसके पीने के बर्तन और उसके व्यवहार की अन्य वस्तुएँ भी वे वहाँ टाँग देते हैं।

कहा जाता है कि किसी समय में गारो-जाति बड़ी खूँख़्वार थी। वे लोग पास-पड़ोस की बस्तियों पर चढ़ाइयाँ करते थे और निहत्थे लोगों का वध कर डालते थे और उन्हें उठा ले जाते थे। उनका पूर्व-इतिहास जो भी रहा हो इस समय तो वे अत्यन्त शान्तिपूर्वक जीवन-यापन करते हैं। मिलने पर वे बड़े ही मित्रभाव से पेश आते हैं। साप्ताहिक बाज़ार के अवसर पर कोई भी उन्हें समूह का समूह गुज़रते देख सकता है। उनके पुराने खूँख़्वार जीवन की अब तो कहानियाँ शेष रह गई हैं।

इंगित

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

हृदय, मैं रूप-सरिता का
तरंगित वेग चंचल हूँ;
किसी की प्रेम-ज्वाला का
तरल अंगार शीतल हूँ!

दृगों का श्रम, पिपासा की
विकल उन्माद ना जग की;
मरुस्थल के हृदय-तल में
प्रवाहित भ्रान्ति-मृगजल हूँ!

न नयनों में सलिल, वाणी
न मुख में, स्मिति न अधरों पर;
शरत के नील-मानस-लोक में
मैं मुक्त बादल हूँ!

विमुख कर दे शिलीमुख-वृन्द को
संकेत ही जिसका;
विजन में शून्य-चम्पक का
अपरिचित गन्ध-परिमल हूँ!

हृदय, मैं रूप-सरिता का
तरंगित वेग चंचल हूँ!

विलासी*

अनुवादक, पण्डित रूपनारायण पाण्डेय

पक्के दो कोस की राह तय करके स्कूल में विद्या पढ़ने जाता हूँ। अकेला मैं ही नहीं, और भी दस-बारह लड़के जाते हैं। जिनका घर देहात में है उन्हीं के फ़ी सदी अस्सी लड़कों को इसी तरह विद्या-लाभ करना होता है। इससे लाभ की मद में अन्त तक एकदम सुन्न नहीं भी पड़ सकता है, किन्तु जो कुछ पल्ले पड़ता है उसका हिसाब करने के लिए यही कुछ बातें सोचकर देखना ही यथेष्ट होगा कि जिन लड़कों को तड़के आठ बजे के भीतर ही घर से चलकर जाते-आते चार-पाँच कोस रास्ता चलना पड़ता है—चार कोस के माने ठीक आठ मील नहीं, इससे कहीं अधिक समझ लीजिए—बरसात के दिनों में सिर के ऊपर वर्षा का पानी और पैरों के नीचे घुटनों तक कीचड़ में आकर और गरमियों के दिनों में पानी के बदले प्रखर सूर्य की कड़ी धूप तथा कीचड़ के बदले धूल का सागर पारकर स्कूल की पढ़ाई पढ़नी पड़ती है उन दुर्भाग्यसंपन्न बालकों को माता सरस्वती प्रसन्न होकर वर देंगी या उनकी यन्त्रणा देखकर मुँह छिपावेंगी, यह वे ख़ुद नहीं सोच पातीं।

उसके बाद इन कृतविद्य बालकों का दल बड़ा होकर एक दिन चाहे गाँव में ही निवास करे और चाहे भूख की ज्वाला से पेट पालने के लिए विवश होकर कहीं और ही जाकर रहे, उनकी चार कोस चलकर पाई हुई विद्या का तेज अवश्य ही आत्मप्रकाश करेगा। किसी-किसी को कहते सुना है कि अच्छा, जिन्हें भूख की ज्वाला का प्रकोप सहना पड़ता है उनकी बात न हो, हमने छोड़ ही दी, लेकिन जिन्हें वह ज्वाला नहीं सहनी पड़ती है वे सब भद्र पुरुष ही किस सुख के लिए गाँव छोड़कर शहरों की ओर भागते हैं? अगर वे ही लोग रहते तो देहातों की इतनी और ऐसी दुर्दशा न होती!

मलेरिया की बात मैं छोड़े ही देता हूँ। उसके कारण जितने भले आदमी गाँव छोड़कर शहरों को नहीं भागते उनसे कहीं अधिक आदमी इस चार कोस चलकर विद्योपार्जन के झंझट से अस्थिर होकर लड़के-बालों को लेकर शहर को भाग जाते हैं। उसके बाद एक दिन लड़के-बालों का पढ़ना-लिखना वग़ैरह सुसम्पन्न हो जाने पर भी उस समय शहर के सुख, सुविधा और सुरुचि को लेकर फिर गाँव में लौटकर उनका आना नहीं होता—वे वहीं बस जाते हैं।

किन्तु इन सब व्यर्थ की बातों को छोड़ता हूँ। स्कूल जाता हूँ—दो कोस के भीतर अपने ही जैसे और भी दो-तीन गाँव नाँघने पड़ते हैं। किसके बाग़ में आम पकने लगे हैं, किस वन में बैंची के फल काफ़ी फले हुए हैं, किसके पेड़ में कटहल पक रहे हैं, किसके यहाँ मर्तमान केलों की गौद काट लेने भर की अपेक्षा में लटकी हुई है, किसके यहाँ अनानास के फल रङ्गीन हो चले हैं, किसके तालाब के किनारे खजूर-मेंती काटकर खाने से पकड़े जाने की सम्भावना बहुत थोड़ी है, कहाँ करौंदा, जामुन, अमरूद, शरीफ़े, नारङ्गी वग़ैरह फल अधिक सुभीते के साथ खाने को मिल सकते हैं, इसी तरह की ख़बरें प्राप्त करने में ही हम लोगों का सारा समय बीत जाता है, किन्तु असल में जो विद्या है—कमस्कटका की राजधानी का क्या नाम है और सैबेरिया की खान में चाँदी निकलती है या सोना मिलता है, ये सब तथ्य की बातें जानने के लिए फ़ुर्सत ही नहीं मिलती।

फलस्वरूप परीक्षा के समय "अदन क्या है?" पूछने पर कहते हैं "पर्शिया का बन्दरगाह है" और हुमायूँ के बाप का नाम प्रश्नपत्र में पूछे जाने पर लिख आया करते हैं "तुग़लकशाँ"। और आज चालीस का कोठा पार होकर भी देखता हूँ, इन सब विषयों की धारणा प्रायः वैसी ही बनी है। उसके बाद प्रोमोशन के दिन मुँह लटकाये घर लौट कर कभी जत्था बाँधकर मास्टर को पीटने की सलाह करते हैं और कभी यह ठीक करते हैं कि ऐसा वाहियात रद्दी स्कूल छोड़ देना ही ठीक है।

हमारे गाँव का एक लड़का बीच बीच में स्कूल के

---

* एक देहाती लड़के की डायरी से नक़ल की गई है। उसका असल नाम जानने की ज़रूरत नहीं। मनाही भी है। उसका पुकारने का नाम मान लीजिए न्याड़ा (नेड़ा) है।—लेखक

रास्ते में मुझे मिला करता था। उसका नाम मृत्युंजय था। अवस्था में वह हम लोगों से बहुत बड़ा था। थर्ड क्लास में पढ़ता था। वह पहले कब थर्ड क्लास में पहुँचा था, यह ख़बर हम लोगों में से किसी को न थी। संभवतः यह किसी प्रत्नतत्त्व के पण्डित की गवेषणा का विषय था। लेकिन हम उसे सदा इसी थर्ड क्लास में देखते रहे। उसके थर्ड क्लास में उठने की ख़बर भी जैसे हमने कभी नहीं सुनी, वैसे ही सेकंड क्लास में उठने की ख़बर भी कभी नहीं मिली।

मृत्युंजय के मा-बाप, भाई या बहन कोई नहीं था। था केवल गाँव के एक कोने में एक बड़ा भारी आम-कटहल के पेड़ों का बाग़ और उसके भीतर एक उजड़ा हुआ घर। इसके सिवा एक दूर के रिश्ते का चाचा भी था। इस चाचा का एक ही काम था। वह यही कि इस भतीजे को तरह तरह से बदनाम करना—वह गाँजे का दम लगाता है, मदक का नशा करता है, इसी तरह और न जानें क्या-क्या। उस चाचा का और एक काम चारों ओर यह कहते फिरना था कि उस बाग़ में आधा हिस्सा उसका भी है, केवल नालिश करके दख़ल करने की देर है। अवश्य ही एक दिन उसनें उस बाग़ पर पूरा दख़ल पा लिया, किन्तु ज़िला-अदालत में नालिश करके नहीं, ऊपर की अदालत के हुक्म से! किन्तु यह हाल आगे चलकर लिखा जायगा।

मृत्युंजय अपने हाथ से रसोई बनाकर खाता था। आम की फ़सल में वह बाग़ की फ़सल बेच डालता था। उससे जो रुपये उसको मिल जाते थे उसका साल भर का खाने-पहनने का ख़र्च चल जाता था—तंगी के साथ नहीं, अच्छी तरह। जिस दिन भेंट हुई उसी दिन देख पड़ा कि मृत्युंजय मैली और फटी किताबें बग़ल में दावे रास्ते के एक किनारे से चुपचाप चला जा रहा है।

उसे मैंने कभी किसी से आपसे बातचीत करते नहीं देखा, बल्कि उपयाचक होकर हम लोग ही उससे बोलते थे। इसका प्रधान कारण यह था कि दूकान का सौदा लेकर खिलाने में गाँव भर में उसकी बराबरी करनेवाला और कोई लड़का न था। और केवल लड़के ही क्यों, कितने ही लड़कों के बाप कितनी ही बार लड़के के द्वारा "स्कूल की फ़ीस खो गई, किताब किसी ने चुरा ली है" इत्यादि कहलाकर उससे रुपये माँग लेते थे। किन्तु उस ऋण को स्वीकार करना तो दूर, कोई भी बाप भद्र-समाज में यह भी क़बूल करना न चाहता था कि उसका लड़का कभी मृत्युंजय से मुँह से भी बोला या बोलता है—गाँव में मृत्युंजय का ऐसा ही सुनाम था!

बहुत दिन तक मृत्युञ्जय से भेंट नहीं हुई। वह देख ही नहीं पड़ा। एक दिन एकाएक सुन पड़ा कि वह बिलकुल मरने के क़रीब है। और एक दिन फिर सुन पड़ा कि माल-पाड़ा के एक बूढ़े माल (साँप पकड़ने और उसका खेल दिखलानेवाली जाति) ने उसकी अचूक चिकित्सा और उसकी लड़की विलासी ने अथक सेवा करके मृत्युञ्जय को इस बार यमराज के मुख से छीन लिया है—मौत के मुँह से बचा लिया है।

बहुत दिन मृत्युञ्जय के पैसों से कचालू मटर की चाट उड़ाई है, मिठाई खाई है। उसके लिए मन व्याकुल हो उठा। एक दिन सन्ध्या के अन्धकार में छिपकर उसे देखने गया। उसके उस उजाड़ खँडहर में कोई दीवार की आड़ नहीं थी। स्वच्छन्द रूप से भीतर घुसकर देखा, कोठरी का दरवाज़ा खुला है, ख़ूब उज्ज्वल एक दीपक जल रहा है और ठीक सामने ही एक तख़्त के ऊपर साफ़-सुथरे उजले बिछौने पर मृत्युञ्जय लेटा हुआ है। उसके हड्डियों का ढाँचा हो रहे शरीर की ओर देखते ही यह समझ में आ जाता है कि सचमुच यमराज ने उसे ले जाने की चेष्टा में कोई बात उठा नहीं रक्खी, लेकिन अन्त तक उनका वश जो नहीं चला उसका कारण केवल उसी लड़की का मन लगाकर हर घड़ी सेवा करना ही था। वह लड़की—विलासी—मृत्युञ्जय के सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी।

अकस्मात् एक अपरिचित आदमी को आया देखकर वह चौंक कर उठ खड़ी हुई। उस बूढ़े मदारी की लड़की विलासी यही थी। उसकी अवस्था अठारह बरस की थी या अट्ठाइस बरस की, यह मैं निश्चय नहीं कर सका। किन्तु उसके मुख की ओर देखते ही यह मुझे मालूम हो गया कि अवस्था चाहे जितनी और जो हो, ख़ूब मेहनत करने और रात-रात भर जागने से वह बहुत दुर्बल और क्षीण हो गई है—उसके शरीर में कुछ भी नहीं रह गया है। ठीक जैसे फूलदानी में पानी भरकर जिला रक्खे गये बासी फूल की तरह ही वह मुझे जान पड़ी। हाथ लगाकर ज़रा भी छू देने से, ज़रा भी हिलाने-डुलाने से उसके झड़ पड़ने का डर था।

मृत्युञ्जय ने मुझे पहचान कर कहा—कौन? न्याड़ा है क्या?

मैंने कहा—हूँ।

मृत्युञ्जय ने कहा—बैठो भाई।

वह लड़की सिर झुकाये खड़ी रही। मृत्युञ्जय ने थोड़े-से शब्दों में जो कुछ कहा उसका सारांश यही था कि लगभग डेढ़ महीने से वह खाट पर पड़ा है। बीच में दस-पन्द्रह दिन वह अज्ञान-अचैतन्य-अवस्था में पड़ा रहा। अभी कई दिन हुए, वह आदमी को पहचानने लगा है और यद्यपि वह अभी बिस्तरा छोड़कर उठ नहीं सकता, लेकिन अब कोई जान का ख़तरा नहीं है।

भय भले ही न हो, लेकिन लड़का (अर्थात् कम अवस्था का) होने पर यह मैं अच्छी तरह समझ गया कि अभी तक जिसमें पलँग छोड़कर उठने की शक्ति नहीं आई है उस रोगी को इस जङ्गल में जिस लड़की ने अकेले आराम करने का, बचा रखने का भार अपने सिर पर लिया था वह कितना बड़ा साहस रखती है, और वह भार कितना भारी था! दिन पर दिन, रात के बाद रात उसने रोगी की सेवा-सुश्रूषा में ही बिता दी—कितने धैर्य से कितनी ही रातें जागकर बिता दीं, और सो भी एक ग़ैर आदमी के लिए! सचमुच यह कितने बड़े साहस का काम है! स्त्री की कौन कहे, मर्दों से भी यह काम नहीं हो सकता।

किन्तु जिस वस्तु ने यह असाध्य-साधन किया, इतने कठिन और असंभव काम को भी सहज और संभव बना दिया, इस नीरस कर्तव्य में भी सरसता ला दी, उसका परिचय उस दिन मैं नहीं पा सका। उसका परिचय और एक दिन पाया।

लौटते समय वह लड़की और एक चिराग़ लेकर मेरे आगे-आगे उस घर की गिरी हुई दीवार तक आई। अब तक उसने एक शब्द भी अपने मुँह से नहीं निकाला था। अब की उसने धीरे-धीरे कहा—रास्ते तक आपको पहुँचा आऊँ?

बड़े बड़े आम के पेड़ उस बाग़ में अन्धकार के जमे हुए पहाड़-से प्रतीत होते थे। रास्ता देख पड़ना तो दूर, अपना हाथ भी अपने को नहीं सूझ पड़ता था।

मैंने कहा—वहाँ तक पहुँचा देने की ज़रूरत नहीं; सिर्फ़ यह चिराग़ मुझको दे दो, बस।

उसके मेरे हाथ में चिराग़ देते ही उसका उत्कण्ठापूर्ण चेहरा मुझे दिखाई पड़ गया। उसने धीरे-धीरे कहा—अकेले जाने में डर तो नहीं लगेगा? ज़रा दूर और पहुँचा न आऊँ?

औरत होकर मुझ मर्द से पूछती है, डर तो नहीं लगेगा। सुतराम् मन में चाहे जो कुछ हो, उसके प्रत्युत्तर में केवल "नहीं" कहकर मैं आगे बढ़ चला।

उसने फिर कहा—यहाँ तमाम वन-जङ्गल का रास्ता है—ज़रा देखकर पैर रखना।

मेरे सारे शरीर के रोंगटे खड़े हो आये। इतनी देर के बाद मेरी समझ में आया कि उसे भय किस बात का है, वह मेरे लिए क्यों चिन्ता प्रकट कर रही है, और चिराग़ दिखाकर मुझे क्यों इस जङ्गल की राह नँघा आना चाहती है। शायद वह मेरा मना करना न सुनती, मेरी बात न मानती और मेरे साथ ही साफ़ रास्ते तक आती; लेकिन बीमार मृत्युञ्जय को उस दशा में अकेले छोड़कर जाने को अन्त तक उसका मन राज़ी नहीं हुआ।

बीस-पचीस बीघे का बाग़ था, अतएव रास्ता कुछ कम पार नहीं करना था। उस दारुण अन्धकार के बीच हर बार पैर रखने में शायद मुझे भय मालूम पड़ता; किन्तु उसके चले जाने के साथ ही उसी के ख़याल में मेरा मन ऐसा डूब गया कि भय की ओर ध्यान ही नहीं गया, मैं स्वप्नाविष्ट-सा होकर उसी के बारे में सोचता हुआ चला जा रहा था। केवल यही ख़याल मेरे मन में समाया हुआ था कि एक मृतकल्प रोगी को लेकर अकेले इस जङ्गल के भीतर रहना कितना कठिन है! मृत्युञ्जय तो इस अवस्था को पहुँच गया था कि चाहे जब मर जा सकता था। अगर ऐसा ही हो जाता तो यह लड़की इस जङ्गल के भीतर रात भर अकेली कैसे रहती, क्या करती, किस तरह इसकी वह रात बीतती?

इस प्रसंग में बहुत दिन बाद की एक बात मुझे याद आती है। एक आत्मीय की मृत्यु के समय मैं वहाँ उपस्थित था। अँधेरी रात थी, घर में कोई लड़का-बाला या नौकर-चाकर भी नहीं था। उस घर में केवल मृत आत्मीय की सद्यो विधवा स्त्री थी और मैं था। स्त्री ने तो

शोक के आवेग में उछलकूदकर शोरगुलकर ऐसा उपद्रव मचाया कि मुझे जान पड़ा, शायद इनके भी प्राण अभी कूच कर जायँगे। रो-रोकर वह बार-बार मुझसे प्रश्न करने लगी—वह अपनी इच्छा से जब सती होना चाहती है तब उसमें सरकार की क्या हानि है? सरकारी आदमी क्या यह समझ न पावेंगे कि उसकी क्षण भर भी पति के बिना जीने की इच्छा नहीं है? उनके घर में क्या स्त्री नहीं है? वे क्या आदमी नहीं पत्थर हैं? और इसी रात के समय गाँव के कुछ लोग मिलकर अगर नदी-किनारे के किसी एक जङ्गल के भीतर उसके सती होने की व्यवस्था कर दें तो पुलिस के लोगों को कैसे उसकी ख़बर हो सकेगी? इसी तरह न-जाने क्या-क्या बकती रही। लेकिन बैठे-बैठे उसका रोना-धोना अथवा प्रलाप सुनने से मेरा काम तो नहीं चल सकता था! मुझे तो बहुत कुछ करना था। गाँव के आसपास के लोगों को ख़बर देनी थी—लकड़ी, कफ़न वग़ैरह बहुत-सा सामान इकट्ठा करना था।

किन्तु मेरे घर के बाहर जाने का नाम सुनते ही वह चट-प्रकृतिस्थ हो उठी। सारा शोक भूल गई, आँसू पोंछकर बोली—भैया, जो होने को था, सो हो गया। अब बाहर जाकर क्या होगा? रात बीत जाने दो।

मैंने कहा—बहुत काम करने को है। बिना गये काम नहीं चलेगा।

उसने कहा—होने दो काम, तुम बैठो।

मैंने कहा—बैठने से काम नहीं चलेगा। लोगों को एक बार ख़बर देनी ही होगी।

इतना कहकर मैंने जैसे बाहर जाने को पैर बढ़ाया, वैसे ही वह चिल्ला उठी—अरे बाप रे बाप! मैं अकेली इस घर में नहीं रह सकूँगी!

लाचार होकर मुझे फिर बैठ जाना पड़ा। कारण, उस समय मैंने समझ लिया कि जिस स्वामी के जीते रहने पर बिना किसी भय के पचीस बरस तक उसके साथ अकेली रही उसकी मृत्यु चाहे भले ही वह सह ले, लेकिन उसकी मृत देह के साथ वह अकेली पाँच मिनट भी नहीं रह सकेगी। उसकी छाती अगर फट सकती है तो वैधव्य के शोक से नहीं, बल्कि इस मृत स्वामी के पास अकेले रहने के भय से ही फट सकती है।

लेकिन यह सब कहने का मेरा उद्देश्य उसके दुःख को बनावटी बतलाना या तुच्छ करके दिखाना नहीं है, और न मेरा यही अभिप्राय है कि उसे पति के मरने का कुछ दुःख ही नहीं था। अथवा एक स्त्री के व्यवहार से ही सब स्त्रियों के सम्बन्ध में इस विषय की चूड़ान्त मीमांसा होगई, यही मैं कहना चाहता हूँ। किन्तु मैं ऐसी ही और भी अनेक घटनायें जानता हूँ जिनका उल्लेख न करके भी मैं यह बात कहना चाहता हूँ कि केवल कर्त्तव्य-ज्ञान के ज़ोर से अथवा बहुत दिन तक एक साथ गृहस्थी में रहने के अधिकार से ही कोई स्त्री भय को अपने क़ाबू में नहीं कर सकती। वह एक और ही शक्ति है, जिसका पता बहुत-से स्वामी और स्त्री सौ साल तक एकत्र पति-पत्नी भाव से रहकर भी शायद नहीं पाते या पा सकते।

किन्तु सहसा उस शक्ति का परिचय जब किसी नर-नारी के निकट पाया जाता है तब समाज की अदालत में मुजरिम क़रार देकर उन्हें दण्ड देने की आवश्यकता अगर हो तो भले ही हो, लेकिन मनुष्य की जो वस्तु सामाजिक नहीं है वह ख़ुद उनके दुःख से छिपाकर आँसू बहाये बिना किसी तरह नहीं रह सकती।

इसके बाद लगभग दो महीने तक मैंने मृत्युञ्जय की कोई ख़बर नहीं ली। जिन्होंने कभी जाकर देहात नहीं देखा अथवा रेलगाड़ी की खिड़की से सिर निकालकर केवल दूर से एक नज़र उसे देख लिया है वे शायद विस्मय के साथ कह उठेंगे—यह कैसी बात है? यह भी क्या कभी संभव हो सकता है कि इतनी बड़ी और कठिन बीमारी आँखों से देख आकर भी दो महीने तक उसकी ख़बर ही नहीं ली? उन लोगों के जानने के लिए कह देना आवश्यक है कि यह केवल सम्भव ही नहीं है, ऐसा ही प्रायः हुआ करता है। यह जो जनश्रुति सुन पड़ती है कि देहात में किसी समय ऐसा था अथवा अब भी ऐसा होता है कि एक व्यक्ति की विपत्ति में गाँव भर के लोग आकर टूट पड़ते हैं, सो मालूम नहीं, सत्ययुग में देहात में ऐसी प्रथा थी या नहीं, मगर आज-कल तो मैंने कभी कहीं ऐसा दृश्य देखा हो, ऐसा याद नहीं पड़ता। लेकिन हाँ, यह बात ठीक है कि उसके मरने की ख़बर नहीं मिली, इसलिए वह अभी ज़िन्दा है, ऐसा समझ लिया जाता है। और मैंने भी मृत्युञ्जय के बारे में ऐसा ही समझ लिया था।

इसी समय एकाएक एक दिन सुन पड़ा कि मृत्युञ्जय

के उसी बाग़ के हिस्सेदार वही चाचा साहब सबसे यह कहकर हलचल मचाते हुए घूम रहे हैं कि हाय-हाय! कर्म-धर्म, जाति-समाज, सब रसातल को गया! गाँव की घोर बदनामी होगई! नालते का मित्तिर* बतलाकर अब वे समाज में मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहे! वे अकाल-कूष्माण्ड अर्थात् उनका नालायक धर्महीन भतीजा एक मदारी की लड़की से निकाह करके उसे घर ले आया है। सिर्फ़ निकाह ही नहीं किया—निकाह ही कर लेता, तो भी ग़नीमत थी!—उसके हाथ की बनी दाल-रोटी तक खाता है! गाँव में अगर इस कुकर्म का दण्ड देने की कोई व्यवस्था समाज के लोग नहीं कर सकते तो फिर जंगल में जाकर रहना ही ठीक है! कोड़ालो, हरिपुर (चाचा के गाँव) के समाज के लोग अगर इस बात को सुनें तो—इत्यादि-इत्यादि।

उस समय गाँव के लड़के, जवान, बूढ़े वग़ैरह सभी इसी एक चर्चा में तन्मय हो रहे थे। सभी के मुख से सुन पड़ता था—ऐं! यह हुआ क्या? कलियुग क्या सचमुच सब उलट-पलट कर देगा!

चाचा यह कहते फिरने लगे कि वे तो बहुत दिन पहले से जानते थे कि यह बात एक दिन ज़रूर होगी। वे चुप रहकर केवल तमाशा देख रहे थे कि बात कहाँ तक पहुँचती है! नहीं तो कोई ग़ैर नहीं, पड़ोसी नहीं, अपना सगा भतीजा था! वे क्या बीमारी की हालत में उसे अपने घर नहीं ले जा सकते थे? वे क्या डाक्टर-वैद्य को दिखा नहीं सकते थे? या दवा-दारू नहीं करा सकते थे? डाक्टर-वैद्यों की फ़ीस और दवा-दारू का ख़र्च उठाने की क्या उनकी हैसियत न थी? लेकिन उन्होंने यह सब क्यों नहीं किया? इसी लिए नहीं किया। अब सब लोग देख लें। परन्तु अब तो वे भी चुप नहीं रह सकते! यह तो मित्तिर-वंश का नाम डूबा जा रहा है! उनके पुरखों के मुख में स्याही पोती जा रही है! गाँव का नाम धरा जा रहा है! बहुत बरदाश्त किया, अब नहीं बरदाश्त कर सकते!

इसके बाद हम सब गाँव के लोगों ने मिलकर जो काम किया उसकी याद आ जाने से आज भी मैं लज्जा के मारे मर जाता हूँ। चाचा चले नालते के मित्तिर-वंश के अभिभावक होकर और हम दस-बारह आदमी उनके साथ इसलिए चले कि गाँव का नाम न धरा जाय, समाज की बदनामी न होने पावे!

मृत्युंजय के उस उजाड़ घर के खँडहर में जाकर जब हम उपस्थित हुए, उस समय वैसे ही शाम हुई थी। वह लड़की अर्थात् विलासी टूटे बरामदे के एक कोने में रोटी बना रही थी। अकस्मात् लाठी-सोटा हाथ में लिये इतने आदमियों को देखकर वह भय से स्याह पड़ गई।

चाचा ने कोठरी के भीतर झाँककर देखा। मृत्युंजय लेटा हुआ था। उन्होंने चट से किवाड़ खींचकर बाहर से ज़ंजीर चढ़ा दी और उस भय से मुर्दा हो रही लड़की से संभाषण शुरू कर दिया। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि जगत् में किसी चाचा ने कभी, जान पड़ता है, भतीजे की स्त्री से ऐसा संभाषण न किया होगा। उनकी वे गंदी बातें या गालियाँ ऐसी थीं कि वह लड़की एक हीन जाति के मदारी की बेटी होकर भी उन्हें बरदाश्त नहीं कर सकी। उसने आँखें चढ़ाकर कहा—जानते हो, बापू ने बाबू के साथ मेरा निकाह किया है।

चाचा ने कहा—अच्छा तो ले निकाह का मज़ा!—इत्यादि-इत्यादि।

उसके साथ ही दस-बारह आदमी वीर-दर्प से हुंकार करके उस निरीह अबला के ऊपर टूट पड़े। किसी ने उसके बाल पकड़ लिये, किसी ने कान पकड़े, किसी ने दोनों हाथ पकड़े। और जिन्हें कुछ पकड़ने का सुयोग नहीं मिला वे भी निश्चेष्ट नहीं रहे—धमाधम प्रहार करने लगे।

कारण, हमारे विरुद्ध इतना बड़ा अभियोग उपस्थित करने का शायद हमारे बड़े से बड़े शत्रु को भी साहस न होगा कि अपने से कमज़ोर के साथ युद्धस्थल में हम कायर की तरह चुप रह सकते हैं। सुना है, विलायत वग़ैरह में वहाँ के मर्दों में यह कुसंस्कार है कि स्त्री-जाति कमज़ोर और निरुपाय होती है, इस कारण उसके ऊपर हाथ नहीं उठाना चाहिए। यह भी भला कोई समझदारी की बात है! सनातनी हिन्दू इस बात को नहीं मानते! हम कहते हैं, जिसके शरीर में बल न हो उसी के ऊपर हाथ उठाया जा सकता है, वह चाहे मर्द हो, चाहे औरत।

* बंगाली कायस्थों की एक जाति होती है।

वह लड़की बस पहली ही बार एक बार आर्त्तनाद करके चुप हो गई। लेकिन हम सब जब उसको गाँव के बाहर निकाल आने के लिए घसीटते हुए ले चले तब उसने विनय करके कहा—बाबू लोगो, मुझे ज़रा छोड़ दो, मैं ये रोटियाँ ज़रा कोठरी के भीतर दे आऊँ। बाहर सियार-कुत्ते खा जायँगे, बीमार आदमी को रात भर कुछ खाने को नहीं मिलेगा।

मृत्युञ्जय बन्द कोठरी के भीतर पागल की तरह सिर फोड़ने लगा, दरवाज़े में लातें मार-मारकर उसे तोड़ने की चेष्टा करने लगा और सुनने-न-सुनने लायक़ बहुत प्रकार की भाषा का प्रयोग करने लगा। किन्तु हम लोग उससे रत्ती भर भी विचलित नहीं हुए। अपने देश के—गाँव के मंगल के लिए वह सब चुपचाप सहकर हम उस लड़की को बराबर घसीटते हुए ले चले।

"हम ले चले" इसलिए कहता हूँ कि मैं भी बराबर उनके साथ ही था। लेकिन मेरे भीतर कहीं कुछ थोड़ी-सी दुर्बलता भी थी, जिसके कारण मैं उस पर हाथ नहीं चला सका। बल्कि न-जाने क्यों, उसकी दशा देखकर मुझको रुलाई आने लगी। मैं माने लेता हूँ कि उस लड़की ने अत्यन्त अन्याय किया था (जो एक भले घर के लड़के से शादी करने को राज़ी हो गई या बीमारी और भूख से तड़प रहे स्वामी को अपने हाथ से रोटी बनाकर खिलाने को तैयार हुई) और दण्ड-स्वरूप उसे गाँव के बाहर कर देना ही उचित था; लेकिन हम लोग यह जो कुछ कर रहे थे सो अच्छा ही काम था, यह मैं किसी तरह अपने मन में जमा न सका। लेकिन मेरी बात से क्या मतलब?

आप लोग यह न ख़याल करें कि देहात में उदारता का बिलकुल ही अभाव है। कभी नहीं। बल्कि किसी बड़े आदमी के दोषी होने पर हम लोग ऐसी उदारता प्रकट करते हैं कि सुनकर आप लोग अवाक् हो जायँगे!

यह मृत्युञ्जय ही अगर उस लड़की के हाथ की रोटी खाने का अमार्जनीय अपराध न करता तो हम लोगों को इतना क्रोध कभी न आता! फिर एक कायस्थ के लड़के के साथ एक जोगड़े-मदारी की लड़की का निकाह—यह तो एक हँसकर उड़ा देने की बात थी! मुश्किल तो उसने उसके हाथ की रोटी खाकर ही खड़ी कर दी! भले ही वह ढाई महीने का बीमार हो, भले ही वह खाट पर से उठकर अपने हाथ से पानी पीने की शक्ति न रखता हो! लेकिन इसी लिए क्या वह एक नीच जाति की लड़की के हाथ की दाल-भात-रोटी खा ले! पूरी नहीं, मिठाई नहीं, कलिया-क़बाब नहीं—एकदम रोटी! यह तो अन्न-पाप ठहरा! यह कैसे माफ़ किया जा सकता है? बस, इसी से समझ लीजिए कि देहात के लोग संकीर्ण-चित्त या ओछी तबीयत के नहीं होते। चार कोस चलकर संचित होनेवाली विद्या जिन लड़कों के पेट में है वही तो बड़े होने पर एक दिन समाज के संचालक, शासक या नेता होते हैं! देवी वीणापाणि के वर से उनके बीच संकीर्णता कहाँ से और किस तरह आवेगी?

यही देखो, उक्त घटना के कुछ ही दिन बाद प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय अमुक मुखोपाध्याय महाशय की पुत्रवधू मन के वैराग्य से दो साल के लगभग काशीवास करके जब घर लौट आई तब निन्दक लोग कानाफूसी करने लगे कि आधी सम्पत्ति इस विधवा की है और कहीं वह हाथ से निकल न जाय, इसी भय से छोटे बाबू (अर्थात् उस विधवा का देवर) भाभी को जहाँ से लौटा लाये हैं, वह स्थान बेशक काशी ही है! ख़ैर, वह चाहे जो हो, छोटे बाबू ने जब अपनी स्वाभाविक उदारता के वश होकर गाँव की बारवारी-पूजा (पंचायती दुर्गा-पूजा) के चन्दे में दो सौ रुपये दान कर आस-पास के पाँच गाँवों के ब्राह्मणों को दक्षिणा-सहित उत्तम भोजन पेट भर खिलाकर प्रत्येक सद्ब्राह्मण के हाथ में जब काँसे का एक-एक गिलास देकर उन्हें बिदा किया तब चारों ओर "धन्य-धन्य" की धूम मच गई। यहाँ तक कि राह में आते-आते देश के और दस के कल्याण के लिए यह कामना करने लगे कि इस तरह के जो बड़े आदमी हैं उनके यहाँ हर घर में, हर महीने ऐसे ही सब सत् अनुष्ठानों का आयोजन क्यों नहीं होता?

किन्तु जाने दो इन सब बातों को। हमारे महत्त्व की गाथायें अनेक हैं। युग-युग में जमा होकर वे प्रायः प्रत्येक ग्रामवासी के द्वार पर ढेर हो गई हैं! इस दक्षिण-बंगाल के अनेक गाँवों में अनेक दिन तक घूम-फिरकर ग़ौर करने के लायक़ अनेक बड़े-बड़े मामले अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखे हैं। चरित्र कहो, धर्म कहो, समाज कहो और विद्या कहो, हमारी शिक्षा एकदम पूरी हो गई है। अब केवल

अँगरेज़ों को ख़ूब कसकर कड़ी भाषा में गाली-गलौज दे सकने से ही देश का उद्धार हो जायगा।

एक साल के लगभग बीत गया। मच्छड़ों का काटना अधिक सह न सक कर अभी संन्यास को इस्तीफ़ा देकर घर लौटा हूँ। एक दिन दोपहर के वक़्त गाँव से दो कोस दूर पर बसे हुए माल-पाड़ा के भीतर होकर जा रहा था। एकाएक देखा, एक झोपड़ी के दरवाज़े पर मृत्युञ्जय बैठा है। उसके सिर पर गेरू से रँगी हुई पगड़ी और गले में उसी रंग का कुर्ता था। दाढ़ी और सिर के बाल बड़े-बड़े, गले में रुद्राक्ष और पोत की माला थी। कौन कहेगा, यह हमारा वही मृत्युञ्जय है? कायस्थ का लड़का एक ही वर्ष के भीतर अपनी जाति गँवाकर एकदम पूरा सँपेरा हो गया। मनुष्य कितनी जल्दी अपनी चौदह पीढ़ी की जाति गँवाकर और एक जाति बन जा सकता है, यह भी एक विचित्र मामला है।

ब्राह्मण का लड़का मेहतरानी को ब्याह कर मेहतर हो गया और मेहतरों के ही धन्धे को उसने अपना लिया, यह जान पड़ता है, आप सब लोगों ने सुना होगा। मैंने सद्ब्राह्मण के बेटे को एन्ट्रेन्स पास करने के बाद भी डोम की लड़की से ब्याह करके डोम हो जाते देखा है। इस समय वह बाँस की डलिया, पंखा, सूप वग़ैरह बनाता और बेचता है—सूअर चराता है। अच्छे घराने के कायस्थ-सन्तान को क़साई की लड़की से ब्याह करके क़साई बन जाते भी देखा है। आज वह अपने हाथ से गोवध करके गोमांस बेचता है। उसे देखकर किसकी मजाल है, जो यह कहे कि वह कभी क़साई के सिवा और कुछ था। किन्तु इन सब बातों का वही एक ही कारण है।

इसी से तो मुझे जान पड़ता है कि इस तरह इतने सहज में जो पुरुष को खींचकर इतना नीचे उतार सकतीं हैं वे क्या सहज ही एक इशारे भर से उन्हें ठेलकर ऊपर नहीं उठा सकतीं? देहात के जिन आदमियों की 'प्रशंसा' में आज मैं सहस्रमुख हो उठा हूँ, गौरव क्या अकेले उन्हीं को प्राप्य है? वे क्या केवल अपने ही ज़ोर से इतनी जल्दी नीचे गिरते जा रहे हैं? भीतर से क्या इसके लिए उन्हें कुछ भी उत्साह, कुछ भी साहाय्य नहीं प्राप्त होता?

लेकिन होगा। झोंक में आकर शायद अनधिकार-चर्चा कर बैठे। किन्तु मेरे लिए कठिनाई यह है कि देश के सैकड़ा पीछे नब्बे नर-नारी इसी देहात के आदमी हैं और इसी लिए कुछ-न-कुछ उपाय करना हम लोगों को चाहिए ही। ख़ैर, जाने दो इस प्रसंग को। मैं यह कह रहा था कि देखकर कौन कहेगा, यह वही मृत्युञ्जय है।

उसने मुझे देखकर बड़ी ख़ातिर से बिठलाया। विलासी तालाब में जल लेने गई थी। मुझे देखकर वह भी बहुत प्रसन्न हो उठी और बार-बार कहने लगी—आप अगर उस दिन मुझे न बचाते तो वे लोग रात को मेरी जान लेकर ही छोड़ते। मेरे लिए आपने न-जाने कितनी मार खाई थी।

बातों-बातों में यह भी सुना कि उसके दूसरे ही दिन दोनों आदमी वहाँ से उठ आये थे। तब से यहीं झोपड़ी बनाकर उसमें बस गये और सुख से हैं। सुख से हैं, यह बात मुझसे कहने का कुछ प्रयोजन न था, केवल उनके मुख की ओर देखकर ही मैंने यह समझ लिया था।

जब मैंने यह सुना कि आज कहीं साँप पकड़ने के लिए उनका बुलावा है और वे वहाँ जाने के लिए तैयार हैं तब मैं भी साथ जाने को तैयार हो गया—एक तरह से ख़ुशी के मारे उछल पड़ा। लड़कपन से ही दो बातों का मुझको बड़ा शौक़ था—एक तो काला साँप पकड़ कर पालने का, दूसरे मन्त्र सिद्ध करने का।

मन्त्र-सिद्ध होने का उपाय मैं उस समय भी खोजकर पा नहीं सका था, किन्तु मृत्युंजय को उस्ताद के रूप में पाकर मैं आशा और आनन्द से उत्फुल्ल हो उठा। उसका ससुर एक नामी सँपेरा था। उसी से मृत्युंजय ने यह विद्या सीखी थी, अतएव वह भी एक ऊँचे दर्जे का गुणी था। मेरा भाग्य इस तरह एकाएक ऐसा सुप्रसन्न हो उठेगा, यह कौन सोच सकता था?

"यह काम कठिन है और इसमें प्राणों का भय भी है" यह कह कर पहले उन दोनों ने ही आपत्ति की, मगर मैं ऐसा नाछोड़बंदा होकर उनके पीछे पड़ गया कि महीने भर के भीतर ही मृत्युञ्जय को मुझे अपना शिष्य बनाना ही पड़ा।

साँप पकड़ने का मन्त्र और हिसाब सिखा कर उसने कलाई में औषध-युक्त तावीज़ बाँध दिया और बाक़ायदे मुझको सँपेरा बना डाला!

आप जानते हैं, वह मन्त्र क्या है। सब तो नहीं, उसका आख़िरी हिस्सा मुझको अभी तक याद है—

ओरे केउटे तुई मनसार वाहन—
मनसा देवी आमार मा—
उलट-पालट पाताल फोंड़—
टोंड़ार विष तुई ने, तोर विष टोंड़ारे दे
—दूधराज, मणिराज !
कार आज्ञे—विषहरीर आज्ञे !

इसका अर्थ क्या है, यह मैं नहीं जानता। कारण, जो इस मन्त्र के द्रष्टा या स्रष्टा-ऋषि थे—निश्चय ही कोई-न-कोई था—उनसे कभी मेरी भेंट नहीं हुई।

अन्त को एक दिन इस मन्त्र के सत्य-मिथ्या होने की चरम मीमांसा अवश्य हो गई; किन्तु जब तक नहीं हुई तब तक साँप पकड़ने के लिए मैं चारों ओर प्रसिद्ध हो गया। सभी आपस में इधर-उधर कहने लगे—हाँ, न्याड़ा बेशक एक सच्चा गुणी है—पक्का उस्ताद हो गया है ! संन्यासी-अवस्था में कामाख्या जाकर वहाँ से सिद्ध हो आया है। इतनी सी अवस्था में इतना बड़ा उस्ताद हो जाने से मेरे पैर ही धरती पर न पड़ते थे।

मेरे उस्ताद होने पर केवल दो जनों ने विश्वास नहीं किया। मेरा जो गुरु था वह तो भला या बुरा कुछ भी नहीं कहता था। किन्तु विलासी बीच बीच में मुसकिराती हुई कहती थी—महराज, ये सब भयंकर जीव हैं, ज़रा सावधानी के साथ हाथ डाला करो। वास्तव में विष-दाँत तोड़कर साँप के मुख से विष निकालना आदि कामों को मैंने ऐसी लापरवाही के साथ करना शुरू कर दिया था कि उन सब बातों को याद करके आज भी मेरा शरीर काँप उठता है।

असल बात यह है कि साँप को पकड़ना भी कठिन नहीं है और पकड़े हुए साँप को दो-चार दिन हाँडी में बंद कर रखने के बाद उसका विष-दाँत चाहे तोड़ा गया हो और चाहे न तोड़ा गया हो, वह किसी तरह फिर काटना नहीं चाहता। असल में वह फुफकार छोड़कर, फन फैला कर, काटने का ढोंग रचता है, भय दिखाता है, लेकिन असल में काटता नहीं।

बीच-बीच में हमारे गुरु और शिष्य दोनों के साथ विलासी बहस करती थी। सँपेरों का सबसे बढ़कर लाभ का धंधा है जड़ी बेचना—वह जड़ी, जिसे दिखाते ही साँप को भागने की राह नहीं मिलती। किन्तु इसके पहले कुछ साधारण काम करना पड़ता था। जो साँप जड़ी देखकर भागेगा उसके मुख में एक लोहे की शलाका आग में खूब लाल कर कई बार दाग देना होता है। उसके बाद उसको चाहे जड़ी दिखाओ और चाहे दियासलाई ही दिखाओ, वह भय के मारे भागने की राह नहीं पाता। ऐसे ही साँप के ऊपर जड़ी का प्रयोग करके दिखाया जाता है और लोगों के मन में जड़ी की उपयोगिता का विश्वास पैदा करके उनसे दाम वसूल किये जाते हैं। इस काम के विरुद्ध भयानक आपत्ति करके विलासी मृत्युंजय से कहती थी—देखो, इस तरह आदमियों को न ठगा करो।

मृत्युंजय कहता—सभी सँपेरे करते हैं। इसमें दोष क्या है ?

विलासी कहती—सब लोग किया करें। हमें तो खाने-पीने की कुछ फ़िक्र नहीं है। हम क्यों बेकार इस तरह लोगों को धोखा दें ?

और एक बात पर मैंने बराबर लक्ष्य किया है। साँप पकड़ने का बुलावा आते ही विलासी अनेक प्रकार से उसमें बाधा देने की चेष्टा करती थी—आज शनिवार है, आज मंगल है। इसी तरह कितनी ही अड़चनें खड़ी करना चाहती थी। मृत्युञ्जय अगर घर में उस समय उपस्थित न होता तो बुलाने के लिए आनेवालों को एक-दम भगा देती थी। लेकिन घर में मौजूद होने पर मृत्युञ्जय नक़द रुपयों के लोभ को किसी तरह सँभाल नहीं सकता था। और मेरा तो एक तरह से यह नशा ही-सा बन गया था। अनेक प्रकार से मृत्युञ्जय को चलने के लिए उत्तेजित करने की मैं चेष्टा करता था। वास्तव में हमारे मन में यह धारणा स्थान ही नहीं पाती थी कि इस काम में मज़े के सिवा भय भी कुछ है। मगर इस पाप का दण्ड मुझको एक दिन बहुत अच्छी तरह भोगना पड़ा।

उस दिन लगभग डेढ़ कोस के फ़ासले पर एक ग्वाले के घर साँप पकड़ने हम लोग गये थे। ऐसे मौक़ों पर विलासी बराबर ही साथ जाती थी। आज भी साथ थी।

घर कच्चा मिट्टी का था। फ़र्श थोड़ा-सा खोदते ही एक गढ़े का चिह्न पाया गया। हममें से किसी ने लक्ष्य नहीं किया; किन्तु विलासी सँपेरे की लड़की थी, उसने झुककर कागज़ के कई टुकड़े हाथ में उठाकर मुझसे कहा—महराज जी, तनिक सावधान होकर खोदो। साँप एक नहीं है। एक जोड़ा तो इसके भीतर है ही, मगर इससे अधिक भी हो सकते हैं।

मृत्युञ्जय ने कहा—ये लोग तो कहते हैं कि एक ही आकर घुसा है। एक ही तो देखा गया है।

विलासी ने कागज़ के टुकड़े दिखाकर कहा—देखते नहीं, इसमें वह रहता है। साँप कहीं अकेला रहता है ?

मृत्युञ्जय ने कहा—कागज़ तो चूहे भी ले आ सकते हैं ?

विलासी ने कहा—दोनों ही बातें हो सकती हैं। लेकिन मैं कहती हूँ, इसमें जोड़ा ज़रूर है।

वास्तव में विलासी का कहना ही सच निकला। उसी की बात ठीक निकली, और ऐसी ठीक निकली कि उसका फल बहुत ही भयानक हुआ। दस मिनट के भीतर ही एक बहुत बड़े पुराने काले नाग को पकड़कर मृत्युञ्जय ने मेरे हाथ में दिया। किन्तु उसे झाँपी के भीतर रखकर जब तक मैं सीधा होऊँ, इतने ही में "ओह !" कहकर मृत्युञ्जय तेज़ी से बाहर आकर खड़ा हुआ। उसकी हथेली की पीठ से उस समय झर झर कर रक्त गिर रहा था।

पहले तो हम सभी जैसे हतबुद्धि हो गये। कारण, साँप को पकड़ते समय वह भागने के लिए व्याकुल न हो, बल्कि बिल के बाहर हाथ भर सिर निकाल कर काट ले, ऐसी अचिन्तनीय घटना जीवन में यही एक बार मैंने देखी थी। तुरन्त ही विलासी चिल्लाकर दौड़ती हुई मृत्युञ्जय के पास गई और उसने आँचल फाड़कर चट उसका हाथ ऊपर से कसकर बाँध दिया। साथ ही विष हरनेवाली जितनी जड़ी-बूटियाँ अपने साथ लाई थी, सब उसने उसे चबाने के लिए दीं।

मृत्युञ्जय का अपना ताबीज़ तो था ही, उस पर मैंने अपना ताबीज़ भी खोलकर उसके हाथ में बाँध दिया। आशा थी कि विष इसके ऊपर नहीं चढ़ेगा। मैं अपना वह "विष हरीर आज्ञे" इत्यादि मंत्र ज़ोर ज़ोर से बारम्बार उच्चारण करने लगा। चारों ओर भीड़ जमा हो गई और उस तरफ़ जहाँ जितने 'गुणी' अर्थात् विष उतारनेवाले आदमी थे, सबको ख़बर देने के लिए लोग दौड़ पड़े।

मैं लगातार वही मन्त्र पढ़ता जा रहा था। लेकिन उससे कुछ फल होता न जान पड़ा। तथापि मेरी मन्त्र की आवृत्ति उसी तरह बराबर जारी थी। किन्तु पन्द्रह-बीस मिनट के बाद ही मृत्युंजय को जब क़य हुई और वह नकी स्वर में बोलने लगा तब विलासी एकदम पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ी। मैंने भी समझ लिया, मेरी विषहरी की दुहाई अब शायद कुछ काम न आवेगी।

पास के और भी दो-एक उस्ताद ओझा आ गये और हम लोग कभी एक साथ और कभी अलग-अलग तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की दुहाई खींचने लगे। किन्तु विष ने एक भी दुहाई नहीं मानी। रोगी की अवस्था क्रमशः ख़राब होने लगी। जब देखा गया कि इस तरह सीधी बातों से काम न चलेगा तब तीन-चार उस्ताद मिलकर विष को ऐसी न कहने और न सुनने योग्य गालियाँ देने लगे कि विष के अगर कान होते तो मृत्युंजय तो मृत्युंजय, वह देश को ही छोड़कर कहीं अन्यत्र भाग जाता।

किन्तु किसी भी उपाय से कुछ फल नहीं हुआ। और भी आध घंटे तक रगड़ करने के बाद रोगी अपने बाप-मा के रक्खे हुए मृत्युंजय नाम की असार्थकता और ससुर की दी हुई महौषधि तथा मन्त्र को मिथ्या प्रमाणित करके इस लोक से चल बसा। विलासी अपने स्वामी का सिर गोद में रक्खे बैठी थी, वह जैसे एकदम पत्थर की मूर्ति हो गई थी।

अस्तु, उसके दुःख की कथा को और अधिक बढ़ाकर नहीं कहूँगा। केवल इतना ही कहकर समाप्त करूँगा कि वह स्वामी की मृत्यु के बाद सात दिन से अधिक जीवित नहीं रह सकी। मुझसे केवल एक दिन इतना कहा था कि महाराज जी, तुमको मेरी सिर की क़सम है, यह सब अब तुम और कभी न करना।

मेरा ताबीज़ और गंडा-क़वच तो मृत्युंजय के साथ ही साथ क़ब्र में चला गया था, थी केवल विषहरी की आज्ञा। किन्तु यह मैं भी समझ गया था कि वह आज्ञा किसी मजिस्ट्रेट की आज्ञा नहीं है और साँप का विष बङ्गाली की ज़बान का ज़हर नहीं है।

एक दिन जाकर सुना, घर में विष की तो कुछ कमी थी ही नहीं। विलासी ने विष खाकर आत्महत्या कर ली और शास्त्र के मत से अपमृत्यु होने के कारण वह निश्चय

ही नरक को गई है। किन्तु वह चाहे जहाँ जाय, मेरे अपने जाने का समय जब आवेगा तब इस तरह के किसी भी नरक में जाने के प्रस्ताव में मैं पैर पीछे न रक्खूँगा, केवल इतना ही कह सकता हूँ।

मृत्युंजय के चाचा साहब सोलहो आने बाग़ पर दख़ल जमाकर अत्यन्त विज्ञ की तरह चारों ओर कहते फिरने लगे कि उसकी अपघात मृत्यु न हो तो और किस की हो? मर्दमानुस था, इस तरह की एक नहीं, दस औरतें रख लेता, इससे तो कुछ आता-जाता न था; न हो, कुछ थोड़ी-सी निन्दा ही होती। किन्तु उसके हाथ की रोटी खाकर धर्म देने क्यों गया? आपका आप मर गया, और मेरा भी सिर नीचा कर गया। न मिली मरने पर ज़रा-सी आग की चिनगारी, न मिला एक पिंड और बूँद भर पानी, न खाया एक भी ब्राह्मण ने!

गाँव के लोग एक स्वर से कहने लगे—इसमें सन्देह ही क्या है! अन्न पाप! बाप रे बाप! इसका भी कहीं प्रायश्चित्त है भला!

विलासी की आत्महत्या का मामला भी बहुत लोगों के निकट एक दिल्लगी का विषय बन गया। मैं अक्सर सोचता हूँ कि यह अपराध शायद उन दोनों ने ही किया था; किन्तु मृत्युंजय तो देहात का ही लड़का था, देहात में ही रहकर इतना बड़ा हुआ था। तो भी इतने बड़े दुःसाहस के काम में उसको जिस वस्तु या भाव ने प्रवृत्त किया उसे किसी ने भी एक बार आँखें खोलकर नहीं देख पाया।

मुझे जान पड़ता है, जिस देश के नर-नारियों में परस्पर के हृदय को जय करके ब्याह करने की रीति नहीं है, बल्कि वह निन्दा की बात समझी जाती है, जिस देश के नर-नारी आशा करने के सौभाग्य और आकांक्षा करने के भयंकर आनन्द से चिरदिन के लिए वंचित हैं, जिन्हें जय का गर्व या पराजय की व्यथा जीवन में एक बार भी वहन करने को नहीं, जिनको भूल करने के दुःख और भूल न करने के आत्मप्रसाद का कुछ भी झंझट नहीं है, जिनके लिए बहुदर्शी और विज्ञ समाज ने सब प्रकार के हंगामे से अत्यन्त सावधानी के साथ देश के लोगों को अलग रखकर जन्म भर केवल भले होकर रहने की ही व्यवस्था कर दी है, इसी से जिनका विवाह-व्यापार केवल कोरा कंट्राक्ट है, वह चाहे जितना क्यों न वैदिक मन्त्रों से पक्का हो, उस देश के लोगों की शक्ति नहीं है कि वे मृत्युंजय के अन्न-पाप का कारण समझ सकें।

विलासी का जिन्होंने उपहास किया था वे सभी साधु गृहस्थ और साध्वी गृहणियाँ थीं—वे सभी अक्षय सती-लोक पावेंगी, यह भी मैं जानता हूँ। किन्तु वह सँपेरे की लड़की जब एक बीमार, शय्यागत मनुष्य के हृदय को अपने अलौकिक प्रेम तथा सेवा से तिल-तिल करके जय कर रही थी, उस समय के उसके उस गौरव का एक कण भी शायद आज तक उनमें से किसी ने आँख से नहीं देख पाया। मृत्युंजय शायद निहायत ही एक तुच्छ आदमी था, लेकिन उसके हृदय को जय करके उस पर अधिकार करने का आनन्द तो तुच्छ नहीं। वह सम्पत्ति कदापि अकिञ्चित्कर या साधारण नहीं कही जा सकती।

यह वस्तु ही इस देश के लोगों के लिए समझ सकना कठिन है। मैं भूदेव बाबू के "पारिवारिक प्रबन्ध" (एक बङ्गला पुस्तक) को भी दोष न दूँगा, और शास्त्रीय तथा सामाजिक विधि-व्यवस्था की भी निन्दा नहीं करूँगा। करने पर भी मुख पर जवाब देकर जो लोग कहेंगे कि यह हिन्दू-समाज उसकी भूल से ख़ाली विधि-व्यवस्था के ज़ोर से ही इतनी सदियों के इतने विप्लवों से बचकर अब तक जीवित है, मैं उन पर भी अत्यन्त भक्ति रखता हूँ। उनके उक्त कथन के प्रत्युत्तर में मैं कभी नहीं कहूँगा कि जीवित रहना ही, टिके रहना ही चरम सार्थकता नहीं है—अतिकाय हाथी लुप्त हो गये हैं और तेलिया कीड़ा-सा छोटा जीव अब तक टिका हुआ है। मैं केवल इतना ही कहूँगा कि बड़े आदमियों के लड़के नन्द-गोपाल की तरह दिन-रात आँखों के आगे और गोद में रखने से ही समाज के व्यक्ति बड़े मज़े में रहेंगे, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन एकदम तेलिया कीड़े की तरह बचा रखने की अपेक्षा एक-आध बार गोद से उतारकर और भी दस आदमियों की तरह अगर उन्हें अपने मन से, अपने पैरों के सहारे चलने दिया जाय तो कोई ऐसा पाप न होगा, जिसका प्रायश्चित्त करना पड़े!

कविवर बिलेलेलेजी

लेखक, श्रीयुत् रामकुमार अवस्थी

ड़कपन की बात है, एक दिन मैं स्कूल जा रहा था। जाड़ों के दिन थे। मुझे मार्ग में एक सज्जन दिखाई दिये। वे रुई भरा हुआ कोट और एक वैसा ही पायजामा पहने हुए थे और उनके चेहरे पर दाढ़ी बढ़ी हुई थी। मैंने बालोचित स्वभावानुसार अपने अन्य सहपाठियों की भाँति ज़ोर से पुकारा—'बिलेलेले'। फिर क्या था, बंदर की सी बोली बोलते हुए वे मेरे पीछे दौड़ पड़े। मैं भागा। उस दिन से यह नित्य की बात हो गई। बिलेलेले जी से मेरा ऐसे ही परिचय हुआ था।

स्कूल जाते समय प्रायः उनसे मेरी नित्य भेंट होती थी और हम लोग दूर दूर रहकर उन्हें सदा छेड़ते और उनकी बन्दर की सी बोली आदि का आनन्द लेते। एक दिन उन्होंने मुझे पकड़ ही लिया। मैंने उनसे बहुत कहा कि स्कूल को देर हो जायगी, दाढ़ीवाले पंडित जी मुर्ग़ा बनायँगे, पर उन्होंने एक न सुनी और जी भर कर गुदगुदाया। कुछ देर हँसने के बाद जब मैंने रोने का उपक्रम किया तब वे भी ऊँ ऊँ करने लगे और मैं उनके हाथ से बड़ी मुश्किल से छूट पाया।

बिलेलेले जी का पूरा नाम पण्डित रामनारायण द्विवेदी था और वे फ़र्रुख़ाबाद में रहते थे। वे हिन्दी में 'रमेश' के नाम से और उर्दू में 'बिलेलेले' के नाम से कविता करते थे। जिस कवि-सम्मेलन या मुशायरे में पहुँच जाते थे, जान आ जाती थी और उसमें हास्य-रस का फ़ौवारा फूट पड़ता था। वे अपने समय के एक प्रसिद्ध कवि थे और उनका सारा जीवन कवितामय ही बना रहा। परन्तु वे जैसी चाहिए, वैसी ख्याति नहीं प्राप्त कर सके। इसका कारण यह था कि उनके वास्तविक व्यक्तित्व और बाह्य व्यक्तित्व में बहुत अंतर था। उनके हृदय के अंदर तो कला और कविता का स्रोत बहता था, पर उनकी रसना से हास्य और सो भी ग्राम्य हास्य के अतिरिक्त और कोई बात कभी ही कभी निकलती थी। अतएव उनकी वास्तविकता का परिचय कुछ ही व्यक्तियों तक सीमित रहा और वही उनका मूल्य जान सके थे।

परन्तु अपनी कवि-गोष्ठियों में वे केवल हास्य-रस के कवि के रूप में ही प्रसिद्ध थे। हास्य-रस की कवितायें उन्होंने लिखी भी बहुत हैं और अधिकतर उन्हीं को वे सुनाते भी थे।

× × × ×

कानपुर-कांग्रेस के अवसर पर एक कवि-सम्मेलन हुआ था। बिलेलेले जी भी उस में गये थे। एक दिन सनेही जी के यहाँ कवियों की बैठक हुई। सनेही जी ने उनका परिचय श्री बनारसीदास चतुर्वेदी से कराया। चतुर्वेदी जी ने उनसे कविता सुनाने का आग्रह किया। इस पर बिलेलेले जी उठे और चतुर्वेदी जी के पास जाकर उनके कान में अपनी कविता सुनाने लगे। उनकी 'वह कविता' सुनकर चतुर्वेदी जी उठकर खड़े हो गये तब बिलेलेले जी भी खड़े हो गये, और अपनी 'वह कविता' चतुर्वेदी जी को बराबर सुनाते रहे। इस पर चतुर्वेदी जी उनसे अपना पिंड छुड़ाने के लिए वहाँ से चल पड़े। बिलेलेले जी भी उनके साथ हो गये, और बिलेलेले जी का मुँह उनके कान के समीप से तभी हटा जब 'वह कविता' समाप्त हो गई। उनकी 'वह कविता' गालियाँ थीं। उनके इस तरह के हास्य का यह एक उदाहरण है। और उनके ऐसे व्यवहार का सभी साहित्यिक प्रेम से सह लेते थे।

× × × ×

बिलेलेले जी उर्दू के वैसे जानकार नहीं थे, फिर भी वे सभी बड़े मुशायरों में बराबर जाते थे। लखनऊ के एक बड़े मुशायरे में उन्होंने "शमा घंटाघर थी हाथी से बड़ा परवाना था" की 'तरह' पर बड़ी हास्यपूर्ण रचना पढ़ी थी, जो वहाँ कई बार पढ़वाई गई थी।

मुशायरों में उनकी वेष-भूषा भी अजीब होती थी। रुई भरे हुए कोट और तेल से सनी हुई गांधी टोपी के स्थान पर एक लम्बा चोगा और कई फ़ुट ऊँची नुकीली टोपी सिर पर लगाकर जाते थे।

एक बार फ़र्रुख़ाबाद के एक मुशायरे की 'तरह' थी "सोते हैं हाथ गरदने मीना में डालकर"। दैवयोग से 'मीना' का अर्थ बिलेलेले जी को नहीं मालूम था। वहाँ एक प्रसिद्ध बिसाती था, जिसे लोग मीना कहते थे। वे

उसकी दूकान पर गये और एक पैसे की सुइयाँ माँगी। वह सुइयाँ गिन रहा था तब बिलेलेले जी ने कहा—"मियाँ सुना है, आज एक मुशायरा है।"

"क्या बताऊँ साहब,- कमबख्त धोबी अचकन धोकर लाया ही नहीं, वर्ना आज तो ज़रूर चलता।"

"वल्लाह आपने भी क्या कहा! मैं आपको ला दूँगा अचकन।"

इस बात-चीत में मीना से सुइयाँ गिनने में भूल हो गई। उसने फिर से गिनना प्रारम्भ किया और वे उसके लिए कपड़े लेने चले गये।

उसे ठीक तरह कपड़े पहनाकर वे उसे अपने साथ मुशायरे में ले गये। जब उनके पढ़ने का मौक़ा आया तब मीना को अपने साथ लेते गये और रचना पढ़ने के अन्त में जब 'तरह' आई तब मीना की गर्दन के चारों तरफ़ हाथ डालकर उसे पढ़ दिया—

"सोते हैं हाथ गरदने मीना में डालकर।"

अब तो मीना बहुत बिगड़ा और सुननेवाले हँसते हँसते लोट-पोट हो गये। वे ऐसे ही हँसोड़ थे।

× × ×

बिलेलेले जी वाक्पटु और बड़े हाज़िर जवाब थे। और ये दोनों बातें उनमें बचपन से थीं। पाठशाला में सहपाठियों की कौन कहे, अपने शिक्षकों को भी वे अपनी पैनी बुद्धि से चकित कर देते थे। पढ़ चुकने के बाद वे सनातनधर्म-सभा में काम करने लगे। उन दिनों स्वामी दयानन्द सरस्वती फ़र्रुख़ाबाद में वेद लिखवा रहे थे। नगर के बहुत-से प्रतिष्ठित और धनवान् लोग स्वामी जी के प्रभाव से आर्य-समाजी बन रहे थे। सनातनधर्मवालों को बुरा लगा और उन्होंने अपने आपको संगठित कर बिलेलेले जी को 'कोतवाल' बनाया। इस पद पर रहकर उन्होंने उन दिनों खूब भाषण किये और एक अच्छे वक्ता के रूप में वे प्रसिद्ध हुए।

× × ×

परन्तु बिलेलेले जी सदा एक अच्छे कवि ही रहे और उनके जाननेवालों में उनका कवि के रूप में ही सम्मान रहा। एक सन्ध्या की बात है। नगर के कुछ प्रतिष्ठित कवि उनकी कविता सुन रहे थे। जब वे बहुत सुना चुके तब उन्होंने एक कवि से जो उनके सामने बैठे हुए थे, कविता सुनाने को कहा। उन्होंने उत्तर दिया—"आपके सामने क्या सुनाऊँ!"

यह सुनकर बिलेलेले जी ने उनकी ओर अपनी पीठ कर दी और कहा—"मेरे सामने नहीं तो मेरे पीछे सुनाइए।"

बिलेलेले जी की ऐसी बातों का इतना अधिक प्रचार हुआ कि दूर से देखनेवाले उन घटनाओं के अन्धकार में उनकी असली प्रतिभा को नहीं देख पाये। इसका वास्तविक कारण यह है कि लोग उनके 'रमेशरूप' को बहुत कम जानते हैं। और उनका रमेशरूप ही सच्चा कलाकार, चित्रकार और कवि था। 'रमेश' को बालकों और पशुओं से विशेष प्रेम था।

'रमेश' कुत्तों से बातें करते और उनके साथ रोते थे। कुत्तों ने भी उनके हृदय को जान लिया था और वे भी उनसे प्रेम करते थे। सुबह होते ही वे किसी एक मुहल्ले में जाते और कुत्ते की तरह ख़ुद रो रोकर मुहल्ले के सब कुत्तों को एकत्र करते। उनके रोने के स्वर में स्वर मिला कर सब कुत्ते अपने अपने घरों से भाग पड़ते। जिन घरों के दरवाज़े बन्द होते, उनमें के कुत्ते छतों और छज्जों पर आ जाते और रो रोकर अपनी असमर्थता प्रकट करते। फिर वे उन्हें जलेबियाँ मोल लेकर खिलाते। जिस कुत्ते से उसका नाम लेकर कह देते कि "रोओ तब जलेबी मिलेगी" तब वह रो देता था।

× × × ×

लड़कों और जानवरों के साथ खेलने के अतिरिक्त जब उन्हें समय मिलता, वे चित्र बनाया करते थे। उन चित्रों के विषय में मैं अधिक नहीं कह सकता। हाँ, जिन कलाकारों ने उन चित्रों को एक बार भी देखा है उन्होंने उनकी बहुत प्रशंसा की है। परन्तु 'रमेश' ने उनके बहुत कहने पर भी कभी चित्रों को प्रकाशित नहीं करवाया। वे उन चित्रों को बहुत पवित्र समझते थे और सबको दिखाते भी नहीं थे। केवल समझनेवाले और सुपात्र शिष्यों ने ही वे चित्र देख पाये हैं। उनकी मृत्यु के पश्चात् यह सुनने में आया कि मृत्यु के कुछ दिन पहले उन्होंने सब चित्रों को आग की भेंट कर दिया था। यह कहाँ तक सत्य है, नहीं कहा जा सकता।

उनके कुछ चित्र जो इनके शिष्यों के हाथ लग गये थे, अभी तक रक्खे हैं जो उनकी कला के परिचायक हैं। परन्तु इन चित्रों को उन्होंने रद्दी समझकर फेंक दिया था।

× × ×

रमेश जी की कविता में देश-प्रेम, सामाजिक तथा दार्शनिक विचारों का अच्छा समावेश हुआ है। कहते हैं, क्रोधावेश में वे बहुत अच्छी रचना करते थे। वैसे तो वे अपने को आशु-कवि नहीं कहते थे, परन्तु क्रोध के समय वे पद्य में ही बातें करने लगते थे।

एक दिन वे एक मुशायरे से आ रहे थे। मुशायरे की तरह थी—

"बुत को तो क़ाफ़िर ख़ुदा मानते हैं।
ख़ुदा को ख़ुदा जाने क्या जानते हैं॥"

रास्ते में एक मौलवी साहब मिल गये। उन्होंने हिन्दुओं की बुतपरस्ती का मज़ाक़ उड़ाया, और उनसे बहस करने लगे। अन्त में उन्हें क्रोध आ गया। अपनी फ़ुटों ऊँची टोपी उतारकर उन्होंने ज़मीन पर खड़ी कर दी और अपना डंडा तीन बार खटखटाया। फिर लगभग तीन घंटे तक उन्होंने उसी 'तरह' की पूर्ति में अनेक अशआर कहे। मौलवी साहब मान गये, और जब मौलवी साहब ने क्षमा माँगी तब उनका कविताप्रवाह रुका। टोपी झाड़कर उन्होंने अपने सिर पर रख ली और भीड़ को चीरते हुए जो उन्हें सुनने को जमा हो गई थी, वे अपने घर चले गये।

× × ×

मृत्यु के कुछ दिन पहले उनकी जीभ पर पक्षाघात हो गया था, जिससे वे बोलने में असमर्थ हो गये थे। वैशाख बदी ९ संवत् १९९१ को उन्होंने लगभग ६३ वर्ष की अवस्था में संसार को त्याग दिया। मृत्यु के पश्चात् उनकी कविताओं और चित्रों का कुछ भी पता न चला। केवल वे कवितायें जो प्रकाशित हुई थीं या जो उनके सुननेवालों को याद हैं, सुरक्षित हैं, परन्तु उनकी अधिक गम्भीर और प्रथम श्रेणी की कवितायें उनके कुछ निकट सम्बन्धियों के ही पास हैं, जो उनके देने में अकारण टाल-मटूल करते रहते हैं। अस्तु, जो कवितायें मिल सकी हैं उनके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

१—उर्दू-कविता

(१)

तरहवाले को तरहदारी नई दिखलाना था।
लखनऊ का ख़ब्त फ़र्रुख़ाबाद पहुँचाना था॥
अहातये पंजाब से दुगुना तो दौलतख़ाना था।
मसनदुद्दौला के बाड़े से बड़ा पाख़ाना था॥
क्या क़दमचों की तवालत को करूँ तहरीर में।
कोह हिम्मालै का गोया हर क़दमचा नाना था॥
अक़्ल चक्कर में पड़े गर हाल मोरी का सुनो।
ख़ास तहतुस्सरा में हगने का उनके थाना था॥
थी सुराही लाट से लाखों गुनी तूलोतवील।
ख़ास नैनीताल से चौगुना पैमाना था॥
थी सदा क़लक़ुल बादल की गरज से दस गुनी।
साक़िया आज़ाद था मस्ताना था दीवाना था॥
खाट्इए बंगाल से बेइन्तिहा लम्बा पलँग।
शेर चीते भेड़ियों का जिसमें आना-जाना था॥

\+ + + +
\+ + + +
\+ + + +

हम तो समझे बाप के इनके अजायबख़ाना था॥
सारी महफ़िल का बयाँ हमको ज़बाँ पर लाना था।
शमा घंटाघर थी हाथी से बड़ा परवाना था॥

(२)

तबीअत फेर दी तालीमे अँगरेज़ी ने कुछ ऐसी।
ए दिल कहता है ले आओ कोई मिस चल के लंडन से॥
फ़क़ीरे इश्क़ हूँ धूनी रमाई है तेरे दर पर,
कुछ ऐसा जम के बैठा हूँ नहीं टलने का आसन से॥
चमन की सैर में दिल आ गया इक गुल की चेचक पर
हज़ारों दाग़ हम सीने पै लेकर आये गुलशन से,
शरारे नालये सोज़ाँ के यों दिल से निकलते हैं।
कि जैसे आग की चिनगारियाँ उड़ती हैं गिलख़न से॥
शबे मेराज़ है वह रात पहुँची बाम पर उसके,
वो रोज़े ईद है जिस दिन वो लिपटें मेरी गरदन से॥
गुज़र उन तक नहीं तो देख लेता हूँ लिबास उनका,
व मजबूरी तअल्लुक़ कर लिया है मैंने धोबन से॥
'बिलेलेले' वो बादे मर्ग क्या उलफ़त जतायेंगे।
जो जीते जी जलाते हैं मुझे मिल मिल के दुश्मन से॥

२—हिन्दी कविता

(१)

देखि आई रावरो सुभावरो सो कंत गौरि
नगन स्वरूप उर धारे मुंडमाल है ॥
भसम भयंकर बघम्बर लपेटे अंग सीस पर
गंग की तरङ्ग हू विशाल है ॥
बैल पै सवार संग प्रेतन की धारि त्रिपु-
रारि सो 'रमेश' मन मानस मराल है ॥
महारुद्र रूप सुर भूप महादेव जाके
जटामध्य फुंकरैं महाकराल ब्याल है ॥

(२)

बानी वाक बानी की बखानत विबुध वृन्द
विशद विख्यात विश्व विविध प्रकार है ॥
सरला सरस स्वच्छ सुन्दर सुछन्द सुभ
समुझै सकल सुधा सम सुख सार है ॥
भणित 'रमेश' भाँति भाँति भले भाव भूरि
भूषण सौं भूषित छटा को बिसतार है ॥
विमल विचार सुविवेक को अगार देव
नागरी प्रचार देश उन्नति को द्वार है ॥

(३)

सुधि ना हमारी लेत कष्ट अति भारी देत
लोग लखि तारी देत कैसे हितकारी हौ।
दुखी हौं बनाय धाय हूजिए सहाय आय
एहो जदुराय सुने जात दुख हारी हौ।
हारी हरि हिम्मत विचारी ख्वारी कासे कहौं
सुनत न टेर क्यों बरावत मुरारी हौ।
जानी तुम माँगत न देत हौ कहा ते दीहौ
आप ही 'रमेश' बलिद्वार के भिखारी हौ ॥
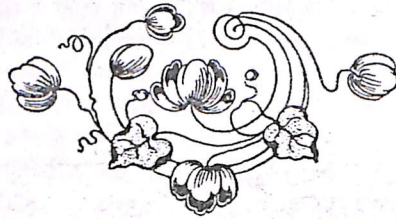
(४)

पारथ प्रबल पुरुषारथी पवन पूत
पति पुहुमी पति प्रताप प्रभा पाली है।
पांडव प्रतच्छ पर परबस परिहरी
पूरी पैज पारनी पुरातन प्रनाली है।
पुलकि प्रफुल्लित प्रतीति प्रीति सों 'रमेश'
प्रेम परिपूरित पुकारत पँचाली है।
पाँच हू पतित पति देखत पतित पति
पति पति पाली प्रभु पति पति पाली है ॥

(५)

गर्व भरो खर्व नर सर्व कौं गिनत तुच्छ
तुच्छ है कहत कौन मोते बलशाली है।
दीन कौं न दीन दान आये को न कीन मान
त्यों अवधि सों गुमान कीन बात टाली है।
जंगी जम आयो सबै छाँड़ि कै सिधायो जग
अजस सो छायो देखो बाजि रही ताली है।
देखु रे कुचाली अब कहाँ वा बहाली सब
बूड़ि गई लाली खल खाली खाल पाली है ॥

योरप का मोटर-द्वारा भ्रमण

लेखक, श्रीयुत भगवानदीन दुबे

श्रीयुत भगवानदीन दुबे पहले भारतीय हैं जो बराबर विश्व-भ्रमण करते रहते हैं। इस लेख में उन्होंने दिखाया है कि मोटर-द्वारा योरप का भ्रमण करने से सर्वथा दूसरे ही अनुभव होते हैं। आशा है पाठकों को इस लेख से बहुत-सी नवीन बातें मालूम होंगी।

पनी पिछली विश्वयात्रा से गत सिम्तबर में रंगून लौटने पर फिर सफ़र का भूत शीघ्र ही सवार हो गया। अपने देश के घर पहाड़पुर (प्रतापगढ़-ज़िला) जाकर और कुछ दिन ठहरकर विलायत जाने का निश्चय किया। अतएव ८ दिसम्बर को के० एल० एम० नाम के (डच हवाई जहाज़) से इलाहाबाद से नेपल्स का टिकट लेकर रवाना हुआ। उस रोज़ जोधपुर, दूसरे दिन बग़दाद, तीसरे दिन एथेन्स में रात काटकर चौथे दिन नौ बजे नेपल्स पहुँचे। वहाँ उसी समय रोम जानेवाला वायुयान मिल गया। रोम से उसी दिन शाम को मिलन और दूसरे दिन ज़्यूरिच पहुँच गये। मेरा इरादा शीतकाल स्वीज़लैंड में बिताने का था, और उस रमणीक देश में शीत के चार महीने बात की बात में गुज़र गये।

योरप-यात्रा-सम्बन्धी इतने लेख निकल चुके हैं कि शहरों का वर्णन करना पाठकों का समय ख़राब करना है। इसलिए उचित मौक़ा पाने पर ही लिखने का मैंने निश्चय किया। मार्सेलीज़ छोड़ने के बाद आज चौथा दिन है। सच पूछो तो सच्चा आराम जहाज़ पर ही मिलता है। ज़मीन पर कितना भी चाहो, पर तबीयत यहाँ-वहाँ जाने को कहती ही रहती है और इधर-उधर गये बिना रहा नहीं जाता। पर जहाज़ तो जहाज़ के घेरे में ही बन्द रहना पड़ता है। मन को छलाँगें लेने की जगह ही नहीं रहती। जितने व्यक्ति जहाज़ पर हैं, बस उन्हीं को सुबह, दोपहर, शाम और रात को देखा और मिला करो।

इन्हीं इने-गिने व्यक्तियों में अपना साथी ढूँढ़ना पड़ता है। जत्थे बन जाते हैं। टीमें खड़ी हो जाती हैं। खेल-कूद में प्रतिद्वन्द्विता होने लगती है। किसी किसी स्त्री-पुरुष में प्रेम-ग्रंथियाँ पड़ने लग जाती हैं। अविवाहित कुमारियों को जब देश में प्रणय-बन्धन की आशा जाती रहती है तब विलायत में जहाज़ी सफ़र का आश्रय लिया जाता है। विलायत में इस कार्य का यह भी एक साधन है। कभी कभी इससे सफलता भी प्राप्त हो जाती है। नहीं तो जहाज़ की यात्रा तक तो सभी तरह के सुख का अवसर रहता ही है। ऐसों को यात्रा का अंतिम बन्दरगाह बहुत ही दुखदायी प्रतीत होता है, औरों को जो जैसे-तैसे जहाज़ पर किसी तरह दिन काटते थे, वह अत्यन्त सुखप्रद प्रतीत होता है। बहुत-से ऐसे लोग भी हैं जो यात्रा की समाप्ति पर न सुखी होते हैं न दुखी। जैसे जहाज़ पर वैसे घाट पर। यहाँ पंचदशी के निम्न श्लोक कैसे फ़िट होते हैं—

हृष्यत्येको मणिं लब्ध्वा क्रुध्यत्यन्यो ह्यलाभतः।
पश्यत्येवं विरक्तोऽत्र न हृष्यति न कुप्यति ॥
प्रियाप्रिय उपेक्षश्चेत्याकारा मणिगास्त्रयः
सृष्टा जीवैरीशसृष्टं रूपं साधारणं त्रिषु ॥

सच है, सुख और दुख कोई पदार्थ नहीं है, वे तो अपनी मनोभावना के फल-मात्र हैं।

सवेरे का कलेवा करने के बाद मन में आया कि चलो आज 'सरस्वती' को एक लेख लिख दें। लिखने का विषय अपनी मोटर-कार को चुना, जो उसी जहाज़ पर थी।

ईस्टर के क़रीब चार रोज़ पहले मैं ब्रेडफ़ोर्ड पहुँचा था। मोटर-यात्रा का सच्चा आनन्द विलायत में ही प्राप्त होता है। वहाँ धूल का नामोनिशान नहीं। ब्रेडफ़ोर्ड शहर के बाहर चारों ओर यार्कशायर की घाटी है। इसलिए हमेशा की तरह मैंने एक मोटरगाड़ी भाड़े पर लेने का इरादा अपने मित्रों से प्रकट किया। भारत में मोटर-कार रखनेवाले मुश्किल से ऐसे पाँच सदी लोग मिलेंगे जो ड्राइवर न रखते हों, पर विलायत में ड्राइवर रखनेवाले व्यक्ति एक फ़ी सदी भी बताये जायँ तो भी ज़्यादा होगा। सब कोई खुद अपनी मोटरगाड़ी चला लेते हैं। हर जगह

मोटर-गृह बने हुए हैं। आटोमोबाइल असोसिएशन अथवा रायल आटोमोबाइल क्लब नाम की संस्थाओं के आदमी बराबर हर सड़क पर गश्त लगाया करते हैं, और कहीं कुछ भी मोटरगाड़ी में ख़राबी हुई तो ज़्यादा से ज़्यादा आध घंटे में मदद आ जाती है। यहाँ तक कि पंक्चर होने पर अगर असबाब नहीं है अथवा सुस्ती लगती है तो मोटर रोककर खड़े होने पर थोड़ी देर में उक्त संस्थाओं में से किसी एक के पेट्रोल (यह उस व्यक्ति का नाम है जो गश्त लगाया करता है) के आने पर सब दुरुस्त हो जाता है। इतना अच्छा प्रबन्ध होने पर कौन आदमी ड्राइवर रख कर ख़र्च बढ़ावेगा?

आज-कल वहाँ अनेक ऐसी कम्पनियाँ खुल गई हैं जो दिन, हफ़्ते अथवा महीने के हिसाब से मोटरगाड़ी किराये पर देती हैं। प्रतिदिन का दस रुपये का औसत पड़ता है। तेल और पेट्रोल भाड़े पर लेनेवाले को अपना देना होता है। इस सहूलियत का मोटर के रोज़गार पर अच्छा असर पड़ा है। जिसकी मोटरगाड़ी रखने की औक़ात नहीं है वह भी कभी छुट्टी के दिन में एक-दो दिन के लिए मोटर किराये पर लेकर अपना शौक़ पूरा कर लेता है।

दरयाफ़्त करने पर मालूम हुआ कि ईस्टर के लिए प्रायः सभी मोटर-कम्पनियों ने अपनी अपनी मोटरगाड़ियाँ किराये पर दे दी हैं। कहीं है भी तो पुरानी और किराया ज़्यादा। एक मित्र ने एक पुरानी मोटरगाड़ी ख़रीद लेने की सलाह दी। उन्होंने कहा, आपको क़रीब दो महीने रहना है और पाँच पौंड प्रतिहफ़्ता किराया दिया जाय तो चालीस पौंड हो जाता है। इतने में कोई अच्छी पुरानी मोटरगाड़ी मोल मिल सकती है। ईश्वर की दया से मेरे पास मोटरगाड़ियाँ बहुत वर्षों से हैं और यद्यपि मैं ख़ुद चलाना भी जानता हूँ, पर कल-पुर्ज़ों से वाक़िफ़ होने की मैंने कभी कोशिश नहीं की। सिलेंडर, कारबेरेटर, पिस्टन, प्लग, बैटरी इत्यादि के नाम तो सुनते सुनते याद हो गये हैं, पर मैंने कभी किसी को छुआ भी नहीं। पुरानी के नाम से मैं बहुत भड़का। मेरे मित्र ने कहा कि घबराने की कोई बात नहीं है। अगर अच्छी मोटरगाड़ी मिल गई तो आठ हफ़्ते तक कुछ तकलीफ़ नहीं देगी। ख़ैर, मैंने [illegible]हा, आप विश्वास दिलाते हैं तो मैं राज़ी हूँ।

पुरानी मोटरगाड़ियों को विलायत में पानी के दाम भी कोई नहीं पूछता। ख़ैर दरयाफ़्तकर मेरे मित्र ने कहा कि उनके एक मित्र मोटरगृह के स्वामी हैं। उनके पास १९३३ के माडल की मोरिस कौर नाम की एक निहायत विश्वस्त गाड़ी है, जो तीस पौंड में मुझे मिल सकती है। उसका जून भर का टैक्स भी दिया जा चुका है और ७ मई तक का बीमा भी है। विलायत में बीमा कराने और टैक्स में काफ़ी ख़र्च पड़ता है। बीमा का क़रीब ३०) महीना और टैक्स १०) रुपया महीना उक्त गाड़ी का देना पड़ता।

उनकी सलाह के अनुसार मैं उक्त कार देखने गया। उसे बिलकुल अच्छी हालत में पाकर मैंने अपनी ख़रीद लेने की स्वीकृति देकर चेक काट दिया। इस तरह वहाँ के होटल में पहुँचने के तीसरे दिन अपनी ख़ुद की मोटरगाड़ी ले आया। 'आटोमोबाइल असोसिएशन' की सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए मैंने उसका सदस्य हो जाना उचित समझा। रंगून में मैं बर्मा 'आटोमोबाइल' असोसिएशन का मेम्बर हूँ, इसलिए आधी फ़ीस याने १-१-० पौंड देने पर मैं मेम्बर बना लिया गया। रंगून से चलते समय मैंने इंटरनेशनल ड्राइविंग लाइसेंस ले लिया था। नहीं तो भारत का लाइसेंस दिखलाने पर विलायत में पाँच शिलिंग देने पर प्रोविज़िनल लाइसेंस मिल जाता है।

विलायत में आठ हफ़्ता बिताने की मेरी मंशा नहीं थी। आज-कल कान्टीनेंट (योरप का महाद्वीप) में मोटरकार से घूमने की ख़ूब धूम है। इसलिए मैंने आटोमोबाइल के दफ़्तर में जाकर मोटरकार को कान्टीनेंट में ले जाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा, यह बहुत सरल है। मुझे फ़ार्म भरने के लिए दिये। उसमें मोटरकार की पूरी कैफ़ियत भरनी पड़ी तथा किस किस मुल्क के लिए कार ले जाने के परवाने की मुझे ज़रूरत थी, यह लिखना पड़ा।

आज-कल कान्टीनेंट के सारे मुल्क यात्रियों को आकर्षित करने के लिए विशेष सुविधायें देते हैं। यात्रियों को आकर्षित करने का कारण यह है कि यात्री जहाँ जहाँ जाता है, सोना बरसाता है। इसका मतलब यह है कि यात्री अन्य देश में जो रुपया ख़र्च करता है वह अपने देश को सोना देने को बाध्य करता है। उदाहरण के लिए जर्मनी भारत से रुई ख़रीदना चाहता है। वह बदले में अपने

मुल्क का बना हुआ माल अथवा सोना देगा। सोना देने को है नहीं; माल देने में अनेक कठिनाइयाँ हैं, जैसे चुंगी या आयात-बन्धन। इसलिए वह विज्ञापन करता है कि जो कोई भारतीय जर्मनी आवेगा उसको रेल का किराया आधा, होटल का ख़र्च आधा, इधर-उधर घूमने को या फुटकर चीज़ें ख़रीदने को आधे दाम देने पड़ेंगे तथा मोटरकार लावे तो पेट्रोल पर सरकारी टैक्स माफ़ कर दिया जायगा। होटल, रेल, ट्राम और बहुत-सी चीज़ें ऐसी हैं जो पहले से हैं ही। इसलिए आगन्तुक के लिए कोई नवीन व्यवस्था नहीं करनी पड़ती है। पर ऐसे विज्ञापनों का भारतीयों पर बड़ा असर पड़ता है। अपने देश में जहाँ उसे सब चीज़ों का भरपूर दाम देना पड़ता है और जर्मनी में जब वह आधे ख़र्च में ही रह सकता है तब वह वहाँ जाना बेहतर समझता है। इस तरह वह भारत के नोट जर्मनी में अपने ख़र्च के लिए देता है। यही नोट जर्मन-सरकार के पास पहुँचते हैं और भारत को वही नोट देकर रुई ले जाई जाती है। न सोना देना हुआ, न जर्मनी से माल भेजना पड़ा। कैसी अच्छी तरकीब है?

इस नीति का श्रीगणेश जर्मनी से हुआ। साधारणतया व्यापार के लिए मार्क की दर १२ मार्क प्रतिपौंड है। पर यात्री को एक पौंड के बदले २१ मार्क दिये जाते हैं। इसके लिए बहुत-से क़ानून हैं, जैसे हर एक व्यक्ति केवल पचास मार्क ही प्रतिदिन भुना सकता है। वह इन रुपयों को सिर्फ़ अपने ख़र्च के काम में ही ला सकता है, फुटकर चीज़ें अपने लिए ख़रीद सकता है, पर व्यापार के काम में नहीं ला सकता। जर्मनी छोड़ने पर बीस मार्क से ज़्यादा वह नहीं ले जा सकता। जो सिर्फ़ यात्री के रूप में जाता है उसको कोई डर नहीं। बेजा लाभ उठानेवाले के लिए ही ये बंदिशें हैं। जर्मनी के अलावा इटली और आज-कल फ़्रांस में भी यात्रियों को आकर्षित करने के लिए कई सुविधायें की गई हैं। ख़ैर।

फ़ार्म भरने पर सेक्रेटरी ने कहा कि आप जिन जिन मुल्कों को जा रहे हैं उन मुल्कों में जो चुंगी मोटरकार पर लगेगी उसकी ज़मानत का प्रबन्ध आपको अपने बैङ्क से करना चाहिए। मैंने फ़्रांस, बेल्जियम, इटली, स्वीज़लैंड और जर्मनी के नाम फ़ार्म में भरे थे। हिसाब कर उन्होंने कहा कि तीन सौ पौंड की रक़म होगी। तीस पौंड की गाड़ी पर तीन सौ पौंड की ज़मानत सुनकर मुझे बड़ा अचम्भा हुआ। उन्होंने कहा कि कई मुल्कों में वज़न के हिसाब से कर लगता है, दाम पर नहीं—ख़ास कर इटली में। अगर इटली और जर्मनी आप निकाल दें तो ज़मानत सिर्फ़ ९१ पौंड की लगेगी। मैंने कहा कि इन मुल्कों को निकाल देना ही बेहतर है। मैंने अपने बैङ्क को इक्कानबे पौंड की ज़मानत करने को लिख दिया।

आप इससे यह न समझें कि जो ३०० पौंड याने चार हज़ार रुपये की ज़मानत नहीं दे सकता वह इटली और जर्मनी में मोटरकार नहीं ले जा सकता। इसको हल करने के लिए विलायत में बीमा कम्पनियाँ हैं, जो केवल पाँच या छः रुपये लेकर उन व्यक्तियों की ज़मानत कर देती हैं जो ख़ास विलायत में रहते हैं। ज़मानत इस बात की होती है कि जिस मुल्क में मोटरकार जाय वहाँ से ६ महीने के अन्दर उसे निकाल लाना चाहिए। बेचने या अन्य को भाड़े पर देने का क़ानून से निषेध है। जो ऐसी ज़मानत न देना चाहें उनके लिए एक और सहूलियत है कि थोड़ी-सी फ़ीस देकर यों ही जर्मनी, इटली या फ़्रांस को थोड़े दिन के लिए जा सकते हैं। पर आटोमोबाइल असोसिएशन के ज़रिए ज़मानत देकर जो काग़ज़-पत्र मिलते हैं उनसे फिर किसी प्रकार का दूसरा ख़र्च अथवा झंझट नहीं रहता। कितने दफ़े भी आदमी एक से दूसरे मुल्क को आ-जा सकता है।

फ़ार्म और ज़मानत देने के चौथे दिन मुझे फ़्रांस, स्वीज़लैंड और बेल्जियम जाने के काग़ज़-पत्र उक्त असोसिएशन से मिल गये। अपनी कार के पीछे जी० बी० मार्के की एक तख़्ती लगानी पड़ी। मुझे विलायत में क़रीब तीन हफ़्ता रहना पड़ा। उसके बाद मेरी यात्रा शुरू हुई। मैं ब्रेडफ़ोर्ड से वाईघाटी और चेडुर गोर्जेस से होता हुआ बोर्नमाउथ पहुँचा। वहाँ से किनारे की राह पकड़ कर डोवर आया।

विलायत और कान्टीनेंट से मोटरकारों की इतनी आवा-जाही रहती है कि आटो-केरियर नाम का एक छोटा जहाज़ प्रतिदिन केले और डोवर के बीच आता-जाता है। इसमें क़रीब ५० मोटरकारें एक दफ़े ले जाई जाती हैं। भाड़ा मेरी कार का क़रीब तीन पौंड पड़ा। मोटरों के साथ मुसाफिर भी उसी जहाज़ से जाते हैं। असोसिएशन के

आदमी डोवर और केले में मौजूद रहते हैं और मुसाफ़िर को सारे झंझटों से निश्चिन्त कर देते हैं।

कान्टीनेंट में कारें दाहनी ओर को चलाई जाती हैं। इसलिए केले पहुँचने पर ज़रा-सा असमञ्जस हुआ, पर बहुत जल्दी इसका अभ्यास हो गया। केले को छोड़ने पर सड़क मीलों तक उम्दा और सीधी नज़र आई। विलायत में सड़कें सकरी और कारों से भरी मिलती हैं, पर यहाँ उसके विपरीत कम कारें और चौड़ी सड़कें थीं। अतएव कार को उसकी पूरी गति से चलाने की सुविधा है। मैं अब जवान नहीं हूँ और अपनी ३० मील प्रति-घंटा की रफ़्तार से जाना ही ठीक समझता हूँ। पचास मील प्रतिघंटा से कम चलानेवाला फ़्रांस में विरला ही मिलता है। उनके आगे मैं चिउँटी की चाल जाता था, पर मुझे उनके डाँकने की परवा नहीं थी। केले से पेरिस क़रीब २०० मील है। मैं केले से एक बजे चला और पेरिस ९ बजे पहुँच गया। मेरा होटल इट्वायल के नज़दीक था, इसलिए इट्वायल को पूछता हुआ ठिकाने पर पहुँच गया। शहर में हर एक जगह मोटर रखने के लिए मोटर-गृह हैं। पेरिस में १५ फ़्रैंक प्रतिदिन भाड़ा पड़ता है। इन्हीं मोटर-गृहों में कह देने से वहाँ के लोग मोटर धो देते हैं, ग्रीज़ कर देते हैं। धोने और ग्रीज़ के ३० फ़्रैंक लगते हैं।

पेरिस में मोटर चलाना कलकत्ते-बम्बई के बनिस्बत कहीं आसान है। राहगीर सब क़ायदा जानते हैं। हाँ, जाने के पहले नक़शा लेकर अपनी राह ठीक कर लेनी चाहिए, जिससे पूछने का झंझट न हो। जिसे भाषा न आती हो उसे जहाँ जाना हो वहाँ के किसी मुख्य स्थान का नाम लिखा लेना चाहिए। उस मुक़ाम से वह आसानी से ठिकाने पर पहुँच सकता है। भाषा न जानने से असुविधा तो ज़रूर होती है, पर संकेत से काफ़ी काम चल जाता है।

पेरिस से ज़्यूरिच की राह सीधी समतल अल्प्स के नज़दीक तक है। बेल्फ़ोर्ट के पास से पहाड़ियाँ शुरू हो जाती हैं। सच्चा आनंद बेसेल के आगे स्वीज़लैंड में मिलता है। स्वेच्छापूर्वक सुरम्यदेश में घूमने का एक-मात्र साधन मोटरकार है। रेल और बस हैं, पर वहाँ अपनी गति दूसरे के हाथ है।

जो व्यक्ति ख़ुद की मोटरगाड़ी रखकर घूमना नहीं चाहता उसे किराये की मोटरगाड़ी ख़ुद चलाने के लिए योरप के प्रायः हर बड़े शहर में १० से १५ रुपये रोज़ पर मिल सकती है। नक़शा पास में रखकर बराबर शहरों के नाम नोट कर लेने से भटकने का कोई डर नहीं।

मैं अब आपको अपनी यात्रा की दिनचर्या लिखकर तंग नहीं करना चाहता। हाँ, एक बात और है। जो चाहें वे अपनी कार हिन्दुस्तान से योरप ले जा सकते हैं। स्थानीय असोसिएशन सारा इन्तिज़ाम हिन्दुस्तान से कर सकते हैं। बम्बई से किराया बहुत ही किफ़ायत का पड़ता है। मुझे ख़ुद इस कार को दो जगह सुधरवाना पड़ा। मेरे अंदाज़ से काम जल्दी और बेहतर होता है और हिन्दुस्तान से सस्ता भी पड़ता है।

मार्सेलीज़ पहुँचने पर यह समस्या पैदा हुई कि कार का क्या हो। विलायत भेजने को क़रीब पंद्रह पौंड लगते थे, रंगून ले जाने को पैंतीस। मैं ज़मानत देकर आया था, मुझे फ़्रांस से कार वापस ले जाना ज़रूरी था, अतएव सोच-समझकर मैंने पैंतीस पौंड और फूँके। मुझे इस कार की रंगून में ज़रूरत नहीं थी, पर शायद बेचने पर किराया ज़रूर वसूल हो जायगा।

चित्र-संग्रह

दक्षिणी लङ्का के एक बौद्ध मंदिर में बुद्ध की मूर्तियाँ। मंदिर के अन्दर की कारीगरी और मूर्तियों की भावभङ्गी दर्शनीय है।
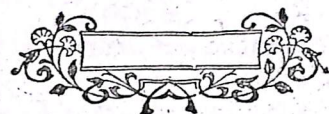
कानपुर की जुग्गीलाल कमलापत काटन मिल के सामने मज़दूरों की पिकेटिंग का एक दृश्य। यह प्रसन्नता की बात है कि यह हड़ताल सकुशल समाप्त हो गई।

रायबहादुर रंगीलाल—आप इन्दौर-राज्य के चीफ़ जस्टिस नियुक्त हुए हैं। पहले ये लाहौर हाईकोर्ट में जज थे।

"नवीन कारीगर"
[श्री रविंद देशपाण्डे-द्वारा प्राप्त
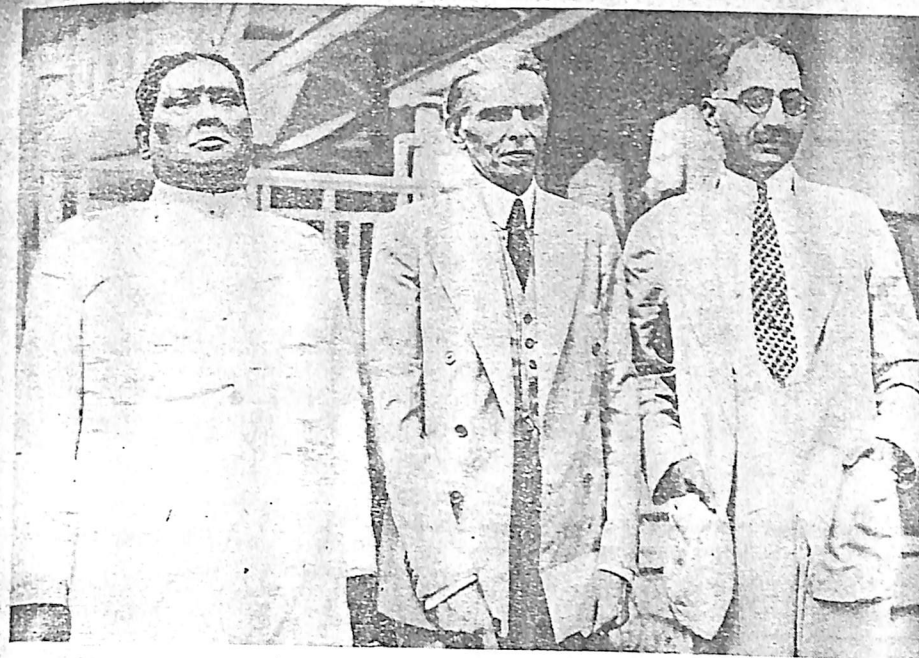
दाईं ओर से—बी० ए० के० फ़ज़लुलहक़, (बङ्गाल के प्रधान मंत्री), श्री जिन्ना (मुस्लिम-लीग के प्रेसिडेंट) और सर सिकन्दर हयात ख़ाँ (पंजाब के प्रधान मंत्री) जो भारत में मुस्लिम-साम्राज्य का स्वप्न देख रहे हैं।
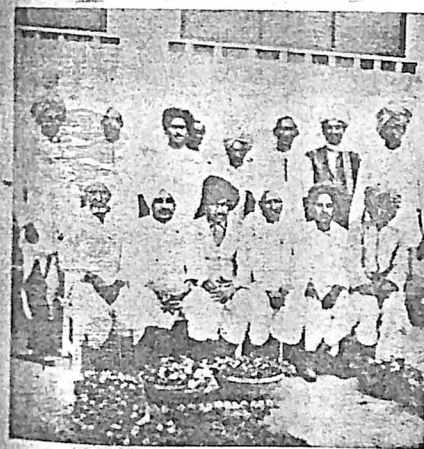
सीकर की जाट-पंचायत के कुछ सदस्य जिन्होंने विषम परिस्थिति में वहाँ के निवासियों की अच्छी सेवा की है।
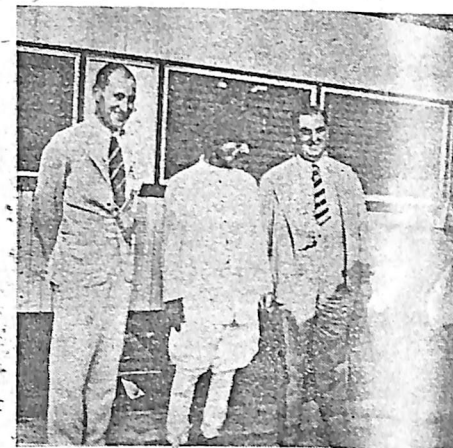
जयपुर के रेज़ीडेंट मिस्टर टामसन, सीकर के [illegible] राज कल्याणसिंह और मिस्टर जंग जयपुर के इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस।

लाला श्रीराम । आप जेनेवा में होनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय लेबर कान्फ़रेंस में भारतीय मज़दूरों की ओर से प्रतिनिधि होकर गये हैं ।

श्रीयुत एस० एम० शाह बी० ए०—आप भी अन्तर्राष्ट्रीय लेबर कान्फ़रेंस में लाला श्रीराम के सलाहकार होकर गये हैं ।

प्रसिद्ध अभिनेत्री श्री सितारादेवी जिन्होंने रंजीत मूवीटोन के "पृथ्वी-पुत्र" नामक ...
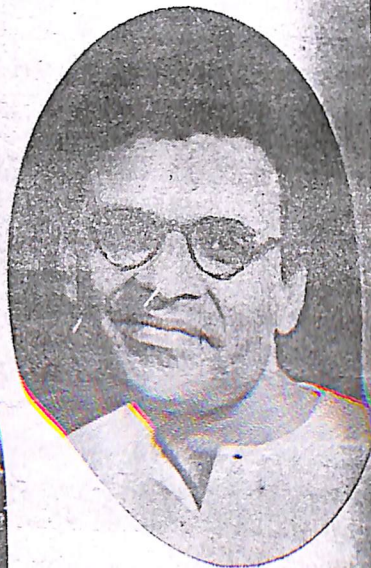
चौधरी शेरजङ्ग जिन्हें अहमदगढ़ रेल डकैती के सिलसिले में सन् १९३० में सज़ा ... हैं ।

अमरीका में मेरे अजीब तजरबे

लेखक, श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना

(फ़रवरी १९३८ का शेषांक)

(३)

स्टेशन पर दाढ़ी-मोंछ की हजामत करवा, हाथ-मुँह धोकर बाहर निकला । स्टेशन के पास एक भोजनालय में घुस कलेऊ कर वाशिंगटन नगर की ओर चला । मुझे अमरीका के महामन्त्री मिस्टर ब्रायन से मिलने की आकांक्षा थी । पुलिसमैन से पूछने पर मालूम हुआ कि सरकारी दफ़्तर बहुत दूर है, इसलिए एक ट्राम गाड़ी पर बैठ कर मन्त्री के दफ़्तर में पहुँचा । एक बाबू को अपने नाम का कार्ड देकर उसके साथ एक कमरे में ठहरने के लिए दाख़िल कर दिया गया । उस आलीशान कमरे में देशान्तरों के राजदूत तथा अन्य बड़े बड़े लोग महामन्त्री की मुलाक़ात के लिए बैठे थे । मैं भी एक ओर एक कुर्सी पर बैठ गया । थोड़ी देर के बाद मेरी बारी आने पर मैं भी एक कमरे के अन्दर गया । मिस्टर ब्रायन ने खड़े होकर मेरा स्वागत किया और पूछा कि मैंने अमरीका में क्या सीखा और अपने देश में वापस जाकर क्या करने का इरादा करता हूँ । क़रीब पन्द्रह मिनट तक वार्तालाप करने के बाद नमस्कार कर बाहर आया, जहाँ समाचार-पत्रों के रिपोर्टरों ने मुझे पकड़ा और वे तरह तरह के प्रश्न पूछने लगे ।

महामन्त्री से मिलकर मैं अमरीका के प्रधान से भेंट करने 'ह्वाइट-हाउस' व श्वेत महल की ओर चला । अमरीका के प्रधान के पद को उस समय प्रसिद्ध विल्सन साहब सुशोभित कर रहे थे, जिनसे मैं एक बार पिट्सबर्ग में मिल चुका था । ये वही विद्वान् महापुरुष हैं जो चकमे में आकर संसार के कमज़ोर और असहाय देशों की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए अमरीका की फ़ौज और धन को जर्मनी के विरुद्ध लगाकर जर्मनी के अधःपतन के कारण हुए थे और अन्तकाल में अपनी चेष्टाओं को असफल होते देख कर पागल से हो गये थे ।

अमरीका के प्रधान का पद संसार में बहुत बड़ा माना जाता है । संसार के किसी बड़े से बड़े देश के नरेश से इनका पद नीचा नहीं है, किन्तु इनके निवास का स्थान बहुत ही सादा है । 'श्वेत महल' एक बहुत ही सादा मकान है । इस महल को अँगरेज़ों ने सन् १८०४ में जलाकर तबाह कर दिया था, किन्तु जब देश में स्वतन्त्रता फिर से स्थापित हुई तब उसकी यादगार के वास्ते यही मकान प्रधान के रहने के लिए नियत किया गया—भीतर से मरम्मत कर दी और बाहर से सफ़ेदी । जिससे इसका नाम 'श्वेत मकान' हो गया ।

विल्सन साहब बड़े साधु और विद्वान् पुरुष थे । उनकी सहानुभूति साधारण जनता से थी और ख़ासकर विद्यार्थी-संसार से क्योंकि वे प्रोफ़ेसर गिरी के पद से ही बढ़े थे । मुझसे बड़े प्रेम से मिले और देश-सेवा पर बड़ा गम्भीर उपदेश किया । उन्होंने मुझे सलाह दी कि वापस जाने के पूर्व मुझे वाशिंग्टन की क़ब्र के दर्शन करना चाहिए ।

वाशिंग्टन के नाम से पाठक अच्छी तरह परिचित होंगे । देश को ग़ुलामी से छुड़ाने और स्वाधीन करने में उनका नाम सबसे ऊपर है । वे देश के 'पिता' कहलाते हैं । उन्हीं के नाम पर देश की राजधानी का नाम पड़ा है और उनका स्मारक स्थान स्थान पर बना है । सबसे महान स्मारक उनके जन्म-स्थान में माउन्ट वर्नन पर पोटोमक नदी के किनारे पर है ।

विल्सन साहब से मिलकर और समाचार-पत्रों के संवाददाताओं की भीड़ से निकलकर मैं मुख्य सड़क पर आया और एक पुलिसमैन से पूछकर एक ट्राम गाड़ी पर बैठ शहर की सैर करता पोटोमक नदी के पार गया । यहाँ ट्रामगाड़ी ख़ाली हो गई, क्योंकि यहाँ से दूसरा प्रान्त आरम्भ होता है ।

नदी के पार वर्जीनिया का प्रान्त शुरू होता और यहीं से दक्षिण के राज्य आते हैं । अमरीका दो भागों में विभाजित है, उत्तर और दक्षिण । उत्तर के ठंडे देश व्यापार और कला-कौशल के लिए प्रसिद्ध हैं और दक्षिण के गर्म किसानी के लिए । इस देश में अपना प्रभाव जमने पर गोरों को कृषि करने के लिए मज़दूरों की ज़रूरत पड़ी । तब वे अफ़्रीका के देशों से बलपूर्वक पकड़ पकड़ कर हब्शी ग़ुलामों को जहाज़ों में ठूँस ठूँस कर यहाँ ले आये और इन अभागे ग़ुलामों के द्वारा मालामाल बने । जब देश को अँगरेज़ों से स्वाधीनता मिली तब ग़ुलामी उठा

देने का आन्दोलन शुरू हुआ, जिससे उत्तर और दक्षिण के प्रान्तों में महायुद्ध छिड़ा और उत्तर को विजय मिलने पर ग़ुलामी की प्रथा हटाई गई, किन्तु हब्शियों के विरुद्ध घृणा ज्यों की त्यों बनी रही। उन्हें छूना और अपने पास बैठाना आज भी महापाप समझा जाता है।

जैसे ऊपर बताया गया है, पोटोमक नदी उत्तर और दक्षिण की सीमा है। नदी के उत्तर निग्रो से घृणा तो है पर उतनी नहीं। यहाँ की रेलगाड़ी और ट्राम में गोरों और कालों के बैठने का बराबर अधिकार है। किन्तु दक्षिण में ऐसा नहीं है। वहाँ कालों के लिए अलग गाड़ी लगी रहती है। काले गोरों के साथ एक गाड़ी में उत्तर की तरह वहाँ यात्रा नहीं कर सकते। नदी को पारकर और ट्राम से उतर मैंने देखा कि दो गाड़ियोंवाली ट्राम खड़ी है और आगे वाली गाड़ी में गोरे बैठ रहे हैं और पीछे वाली गाड़ी में काले। मैं आगेवाली गोरों की गाड़ी में घुसा और सबके आगेवाली बायें हाथ की बेंच पर जाकर बैठ गया। अपने साथ जो स्थानीय समाचार-पत्र ले आया था उसे पढ़ने लगा। धीरे धीरे गाड़ी भरने लगी। तमाम बेंचे भर गईं। कुछ लोग पीछे खड़े भी थे। पर मेरी बेन्च पर कोई नहीं आया। ट्राम का कन्डक्टर बार बार मेरे निकट आता और मेरे बालों की ओर जो सिर पर खुले हुए … ग़ौर से देखकर वापस लौट जाता। मुझे सुनाई दे रहा … कि उसके वापस जाने पर खड़े हुए यात्री उसे अनुरो… कर रहे थे कि इस काले आदमी को बाहर निकालो औ… इसीलिए वह बार बार मेरी ओर आता, किन्तु मेरे सिर … सीधे और मुलायम बाल देखकर उसकी हिम्मत न पड़… थी कि वह मुझे निग्रो कहकर उस गाड़ी से निकाल… ख़ैर, थोड़ी देर के बाद ट्राम-गाड़ी चली, परन्तु मुझे किसी … नहीं सताया, मैं अकेला आगे की बेन्च पर बैठा रहा। … किसी ने मुझे उठने को कहा और न मेरे पास … आकर बैठा। थोड़ी देर के बाद हम यादगार के नि… पहुँचे। यहाँ नदी के किनारे और एक सुन्दर बाग़ के बी… उस मनुष्य की यादगार में उसकी मूर्ति खड़ी की ग… जिसने देश को स्वतन्त्रता दी है। इस मूर्ति के चरण … पास बैठकर मेरे दिमाग़ में कितने ही प्रकार के विचार … वह जाति जिसने देश की स्वतन्त्रता के अर्थ लाखों मनु… का बलिदान किया, उसकी सन्तान मनुष्य से उसके … के कारण घृणा करती है, निग्रो-वंश में पैदा होने को … बना रक्खा है!

चाँदनी में

लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र

कह सकेगा कौन कड़वी बात ऐसी चाँदनी में?
कौन सोचेगा असुन्दर बात ऐसी चाँदनी में?
खिल उठे हैं जाग सब गहरी अँधेरी नींद से अब
मन सुमन-सा, सुमन-सी यह रात ऐसी चाँदनी में!

बिम्ब किसका, ज्योति किसकी, आज रवि के शशि-मुकुट में?
बहुत दिन के बाद फिर आह्लाद कवि के मौन सुर में!
कौन-सी सम्मोहिनी जिससे धरा चुपचाप सुनती,
आज छन-छन आ रही जो जीर्ण तरु-से भग्न उर में?

देखता हूँ क्यों अनोखी बात मैं इस रात वन में,—
वृक्ष चलना चाहते हैं बँध गये पर ज्यों सपन में!
याद कर जैसे किसी की ठिठक कर जड़वत् खड़े हैं,
सोच में हैं, सह न जाने कौन मृदु आघात मन में?

आज हँस हँस बस गई है मोहिनी निस्सीम जग में
बिछा प्रति पग मोह-माया-जाल-सी तरु-छाँह मग में!
है किसे अब चेत, देखे भेद जग में चाँदनी में?
किसे है अवकाश, देखे उड़गया आकाश खग में?

कौन है, कैसे कहूँ मैं, आज की इस चाँदनी में,
खोगई शशि की किरन भी देख जिसको चाँदनी में?
देख सुखमा कल्पना भी पंख ज्यों फैला न सकती!
साँस भी रुकने लगी सौन्दर्य की इस चाँदनी में!

आज ऐसी चाँदनी में, प्राण, यदि तुम साथ होतीं
जड़ धरा पर शशि-कलायें खिल सहज साकार होतीं!
आह, होतीं साथ यदि तुम, चाँद यों सिर पर न चढ़ता,
शून्य की सोलह कलायें दासियाँ बन पास होतीं!

श्वेत एकाकी कमल के अमल नीलम-मानसर में
घुल गया क्यों, आह, सूनापन अचानक निमिष भर में?
याद क्यों आई मुझे उस विरह-विधुरा यक्षिणी को
कहीं होगी चाँद-सी एकाकिनी जो शून्य घर में?

बहा अविरल अश्रु-धारा, मोतियों से हर घड़ी रो,
आज सूजे और सूने नयन होंगे अश्रु-निधि खो!
आह, गिनने को न पा नक्षत्र ऐसी चाँदनी में,
देखते आकाश को होंगे हताश, उदास-से जो!

उन दृगों की याद क्यों आई मुझे इस चाँदनी में?
थी कभी सुख-शान्ति जो वह अब नहीं इस चाँदनी में!
विवशता की याद आई, लपट लपकी धुँआ उमड़ा,—
आज जग में चाँदनी है, मैं नहीं पर चाँदनी में!

श्री जगन्नाथ जी का इतिहास

लेखक, श्रीयुत उपेन्द्रकुमार मित्र

जगन्नाथ जी के ऐतिहासिक माहात्म्य की यदि ठीक तौर से गवेषणा की जाय तो उसके लिए तीन-चार खण्डों का एक बड़ा ग्रंथ लिखना पड़ेगा। क्योंकि ऐतिहासिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, पूजा-पद्धति इत्यादि एक एक विषय का विश्लेषण करके आलोचना करनी पड़ेगी। अतएव विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित करने के निमित्त इस छोटे लेख में कुछ निवेदन किया गया है।

अनार्य-सम्पर्क

(१) श्री जगन्नाथ जी 'नीलमाधव देवता' के रूप में आर्य और अनार्य लोगों के मिलन-क्षेत्र हैं। अनार्य शवर-जाति की कुछ आचार-पद्धति आज भी वहाँ प्रचलित है। जगन्नाथदेव शवरजाति-सम्भूत द्वैतवारि या दैत्य पण्डाओं के हाथ सेवा ग्रहण करते हैं। स्नान-यात्रा, रथ-यात्रा, और नवकलेवर आदि के उत्सवों में उन्हीं का एकच्छत्र आधिपत्य रहता है।

(२) पण्डे वहाँ यात्रियों के सिर व बदन को बेतों के गुच्छे से स्पर्श करते हैं। इस क्रिया से वे अनार्य-शक्ति का उस व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करते हैं।

(३) रथ-यात्रा के समय सारथी जो अश्लील गीत गाते हैं वह सब भूत-प्रेत भगाने के लिए होता है।

बौद्ध-धर्म का सम्बन्ध

गोदावरी से महानदी तक जो विस्तृत देश फैला हुआ है, प्राचीन समय में कलिंग कहलाता था। मगध के सम्राट् अशोक ने बराबर आठ वर्ष तक युद्ध करके ईसा के २६१ वर्ष पूर्व कलिंग को जीता था। कलिंग के इसी भयावह युद्ध ने अशोक के जीवन को दूसरी धारा में बदल दिया था। इसी युद्ध ने कलिंग के महान् क्षत्रिय-बल को हमेशा के लिए विनष्ट कर दिया। इस युद्ध में एक लाख पचास हज़ार कलिंग-योद्धा बन्दी हुए और एक लाख योद्धा मारे गये तथा इसके तिगुने लोग लूटे-मारे गये। इसी युद्ध के [illegible] से दुखी होकर सम्राट अशोक ने बौद्ध-धर्म ग्रहण किया था और जगत् में साम्य, मैत्री और करुणा का प्रचार करना अपने जीवन का ध्येय बनाया था। कलिंग पर किये गये अपने अमानुषिक अत्याचारों की याद कर उन्होंने कलिंग के सब स्थानों में श्रेष्ठ बौद्ध संन्यासियों को भेजा था ताकि वहाँ के लोग शान्ति और अहिंसा के महत्त्व को ग्रहण कर लें। विख्यात चीनी पर्यटक ह्वेनसांग जब ६२६ ईसवी में इस देश में भ्रमण कर रहा था तब उड़ीसा बौद्धों के बहुत-से स्तूपों और संघारामों से भरा हुआ था। उसने चेलिय-लेम्बिंवा, चरित्रपुर या वर्तमान पुरी में पाँच बड़े स्तूप और खूब ऊँचा संघाराम देखा और उनके बीच में बुद्ध-धर्म संघ का 'त्रिरत्न' देखा। उस समय श्री जगन्नाथ जी 'त्रिरत्न'-रूप से वहाँ पूजे जाते थे और उसकी छाप आज तक वहाँ दिखाई देती है।

(१) तीनों मूर्तियों में त्रिरत्न-चिह्न स्पष्ट दिखाई देता है, जो बौद्ध-धर्म के त्रिरत्न के आकार के साथ मिल जाता है।

(२) भाई-बहन-सम्बन्धी यहाँ की पूजा बौद्ध-धर्म के भ्रातृत्व और भगिनीत्व से निकली है। हिन्दुओं में तो साधारण रूप से पति-पत्नी-संयुक्त युगल मूर्ति की ही पूजा पाई जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण जी की लीला-भूमि द्वारका, मथुरा व वृन्दावन में सुभद्रा, बलराम और श्रीकृष्ण की पूजा के बदले श्री राधा-कृष्ण की ही मूर्तियाँ दिखाई देती हैं।

(३) उड़ीसा के मन्दिर भी स्तूपाकार ही बनाये गये हैं। इनकी दीवारों में छोटे छोटे स्तूप या छोटी छोटी स्तूप-मालायें मन्दिर की शोभा के लिए बनी रहती हैं।

(४) जगन्नाथ जी का रथोत्सव प्राचीनकाल में 'दन्तोत्सव' के नाम से विख्यात था। जन-साधारण में बौद्ध-धर्म के प्रचार के निमित्त सम्राट् अशोक बुद्ध के दाँत को सोने की डिबिया में रखकर और उसे काठ के रथ पर स्थापित कर पाटलिपुत्र नगर में उसका जुलूस निकाला करते थे। इसके लिए हर साल एक नया रथ बनाया जाता था। भारतवर्ष के और किसी स्थान में इसके पहले 'रथोत्सव' नहीं हुआ था।

(५) भारतवर्ष में हिन्दू सभी जातियों के लोगों का छुआ हुआ अन्न का प्रसाद कहीं नहीं ग्रहण करते हैं। परन्तु पुरी-क्षेत्र में बौद्ध-धर्म का यह प्रभाव आज भी विद्यमान है।

एक समय जब उड़ीसा बौद्ध-धर्म के प्रबल स्रोत में बह गया था तब वहाँ जाति-भेद का अस्तित्व तक मिट जाने के साथ साथ अन्न का महाप्रसाद बांटने की प्रणाली धर्म का एक अंग मानी गई।

(६) यहाँ दशावतार मूर्तियों में से बुद्ध की मूर्ति के बदले जगन्नाथ जी की मूर्ति की स्थापना हुई।

(७) श्री जगन्नाथ जी की मूर्ति के भीतर सूर्य की मूर्ति, उसके भीतर बुद्ध की मूर्ति छिपी हुई है।

(८) श्री जगन्नाथ जी के नवकलेवर के उत्सव के समय प्राण-प्रतिष्ठा के उपलक्ष में सोने की एक बन्द डिबिया में रक्खी हुई सामग्री वस्त्राच्छादित अवस्था में जगन्नाथ जी की काठ की मूर्ति के हृदय में स्थापित की जाती है। जो पण्डा इसकी स्थापना करते हैं उनकी आँखें वस्त्र से बाँध दी जाती हैं। कोई कहता है कि उस डिबिया में श्रीकृष्ण जी की अस्थि (हड्डी) है, कोई कहता है कि उसमें शालिग्राम-शिला है, कोई कहता है कि काला पहाड़-द्वारा जलाई हुई दारु-मूर्ति के टुकड़े हैं। बहुत लोग यही ख़याल करते हैं कि उसके अंदर बुद्ध का दाँत है। यह पिछली बात अधिक सम्भव जान पड़ती है। भारत में बुद्ध के दो दाँतों के होने का प्रमाण मिलता है। उनमें से एक सिंहल देश पहुँचा था और दूसरे के अस्तित्व का पता नहीं है।

तंत्रयुग का प्रभाव

अब तंत्र की दृष्टि से इस स्थान की आलोचना कीजिए—

(१) तंत्रसार में पीठस्थान के माहात्म्य में लिखा है—"विमला भैरवी यत्र जगन्नाथस्तु भैरवः।" तंत्र में जगन्नाथ जी की भैरव-भैरवी के रूप में पूजा-पद्धति दृष्टिगोचर होती है।

(२) मूर्ति-स्थापत्य के अनुसार श्री मंदिर के आँगन में विशाखा-यंत्र विद्यमान है। एक तरफ़ महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी है, बीच में 'श्रीनाथादि गुरुत्रय', एक तरफ़ मंगला, दूसरी तरफ़ उत्तरायणी, बीच में गणपति, बग़ल में ईशानेश्वर, पातालेश्वर, अग्नीश्वर आदि तीन भैरव; दूसरी तरफ़ आठ पद्मों में अष्ट शिव मंदिर है। यही यहाँ तांत्रिक स्थापत्य का स्पष्ट निदर्शन है।

बलरामदेव, ॐ जगन्नाथदेव, अं सुभद्रादेवी, ह्रीं अर्थात् भुवनेश्वरी मंत्र से यहां पूजा होती है। सुभद्रादेवी का वर्ण अतसी पुष्प के समान अर्थात् हरिद्रा वर्ण है। सब पूजा तंत्रसार के अनुसार होती है।

(४) मांस के अनुकल्प में अदरख इत्यादि डालकर उड़द की दाल के बड़े (पिष्टक) के हंसकेलि-भोग की यहाँ व्यवस्था है। कारण-वारि के अनुकल्प में 'जायफलोदक' या काँसे या ताम्रपात्र में नारियल-जल जगन्नाथ जी के भोग-पूजा में व्यवहृत होता है।

(५) रत्न सिंहासन के निकट डेढ़ सौ वर्ष पहले भैरव-वाहन कुत्ते की मूर्ति थी। वृद्ध जन (बुड्ढे) इस बात की गवाही देते हैं। रामानुज-संप्रदायवालों ने उसको वहाँ से हटाकर मुक्ति-मंडप के समीप स्थापित किया है। परन्तु जगन्नाथ जी के भोग के पश्चात् उनका भोग कुत्ते को देने की आज भी व्यवस्था है और इस कुत्ते की भी नियमित रूप से पूजा होती है।

(६) 'रत्नवेदीस्थान' 'महानिर्वाण-क्षेत्र' के नाम से प्रसिद्ध है और इस नाम से वह पूजा भी जाता है। इसके भीतर तंत्रशास्त्रीय उडम्बर-यंत्र और अन्यान्य वैसी ही सामग्री स्थापित है।

(७) शारदीया पूजा के उपलक्ष में सप्तमी, अष्टमी, नवमी की तिथियों पर यहाँ प्रत्येक दिन श्री जगन्नाथ जी के मन्दिर के प्राङ्गण में विमलादेवी के मन्दिर के बग़ल में आधी रात को दो छोटे बकरों की बलि देने की व्यवस्था है। यह व्यवस्था बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है।

(८) श्री जगन्नाथ जी का अन्न-भोग महाप्रसाद विमलादेवी को अर्पित होता है। इनके सिवा अन्य किसी देव या देवी को वह नहीं अर्पित होता। यहाँ तक कि श्री लक्ष्मी देवी का भोग भी अलग तैयार होता है। श्री जगन्नाथ जी और श्री विमलादेवी का यह सम्बन्ध तंत्र-युग से ही स्थापित है।

शंकराचार्य का प्रभाव

शंकराचार्य द्वारा स्थापित वैदिक पूजा-प्रणाली में श्री जगन्नाथ जी की अ, उ, म ओंकार-रूप में तीन अंशों में पूजा होती है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर अर्थात् सृष्टि, स्थिति, प्रलय इन तीन रूपों से शंकराचार्य ने श्री जगन्नाथ जी की स्तुति की है। बौद्ध-धर्म का खण्डन कर जगन्नाथ जी के वैदिक मंत्र से स्थापित कर मन्दिर की भोग-रसोई के बग़ल में उन्होंने अपना आसन स्थापित किया और भोगवर्धन या गोवर्धन-मठ के नाम से मन्दिर के बीच में अपना मठ स्थापित किया और अपने श्रेष्ठ शिष्य श्री पद्मपादाचार्य के वहाँ पहला मठाधीश नियुक्त किया। आज भी श्री शंकराचार्य के मठ के विधानानुसार मन्दिर का कार्य हुआ करता है। अनङ्ग भीमदेव के समय वैष्णव-धर्म की प्रबलता हो गई थी। उस समय शंकराचार्य का उक्त मठ मन्दिर से हटाकर समुद्र के किनारे बालुकाराशि के बीच में स्थापित किया गया।

शैवधर्म की प्रधानता के समय यहाँ शिव, दुर्गा, गणेश और त्रिमूर्ति की पूजा का प्राबल्य हुआ। उस समय चारों तरफ़ शिवमन्दिर स्थापित हुए। आज भी नन्दी और त्रिशूल के चिह्न दिखाई देते हैं। बलदेव जी का त्र्यम्बकमंत्र या शिवमंत्र से पूजा होती है। बलदेव जी की मूर्ति भी शुभ्र है।

अन्यान्य प्रभाव

(१) गणेश के माहात्म्य के अनुसार यह स्थान 'गणपति-पीठत्रयम्' के नाम से प्रसिद्ध है और स्नान-यात्रा के उत्सव के समय जगन्नाथ जी की 'गणपति' के रूप में पूजा होती है।

(२) सूर्य के माहात्म्य-निदर्शन-स्वरूप मन्दिर में प्रतिदिन पहले आदित्य की पूजा होती है, जगन्नाथ जी के सामने अग्नि की स्थापना की जाती है। जगन्नाथ जी की तेजोमय दोनों आँखें 'दिवीव चक्षुराततम्' के नाम से अभिहित होती हैं। मकर-संक्रान्ति में सूर्यदेव की उपासना में जगन्नाथ जी का स्वरूप कल्पित किया जाता है और वे 'सूर्यनारायण' के नाम से पुकारे जाते हैं।

(३) किसी समय राम-लक्ष्मण व सीता के रूप में भी यह 'त्रिरत्न' पूजित हुआ है, जिसका आभास आज भी मिलता है, जैसे रामजन्मोत्सव में श्री जगन्नाथ जी का रघुनाथ वेष, और रामनवमी के उपलक्ष में सात दिन की यात्रा-कथा इत्यादि हैं।

वैष्णवधर्म के प्रभुत्व के समय इस 'त्रिरत्न' का माहात्म्य और भी उज्ज्वल हुआ। इसी काल में अन्य सब धर्मों की साम्प्रदायिक विशेषताओं का लोप हुआ और वैष्णवधर्म की विशेषता स्थापित की गई।

प्राचीन काल के राजा इन्द्रद्युम्न के श्री मन्दिर-स्थापना के वर्णन में श्री जगन्नाथ जी का 'नीलमाधव' या 'चतुर्भुज नारायण' के रूप में वर्णन हुआ है।

आंध्रों की सभ्यता के काल में जगन्नाथ देव की नृसिंह मूर्ति के रूप में पूजा हुई, साथ ही साथ दशावतार की पूजा-पद्धति भी जारी रही।

श्री रामानुज-सम्प्रदाय का प्रभाव बढ़ने पर यह त्रिरत्न लक्ष्मीनारायण के रूप में पूजित होने लगा। अब भी मन्दिर के ऊँचे शिखर पर और तीनों मूर्तियों के मस्तक पर रामानुज-सम्प्रदाय की तिलक-छाप दिखाई देती है।

श्री चैतन्य-मत के अनुसार वृन्दावन-लीला के प्रसंग में श्रीकृष्ण जी का बाल्य, यौवन और वार्धक्य लीला इस नीलाचल-क्षेत्र में गुप्त रूप से प्रकट होती है। बाल्य-काल में भाई-बहन का प्रीति-भाव, यौवन काल में राधा-कृष्ण की वृन्दावन-लीला का रसभरा प्रेम-भाव और वार्धक्य में रथ पर बैठे सारथी के वेष का मधुर सख्य-भाव। ये भाव-लीलायें जो रसिक हैं वे ही नीलाचल में श्री जगन्नाथ जी के रूप में प्राप्त कर कृतार्थ होते हैं। श्री चैतन्य देव ने ही उस भाव-तरंग को फैलाकर इस नीलाचल को कृतार्थ किया।

(४) अव्यक्त उपासना में यह रत्नत्रय दारु-ब्रह्म का अपूर्व विकास है, जिनके न हाथ हैं, न पैर हैं, न मुँह है, न आँखें हैं। ऐसे परमात्मा व परमपुरुष का श्रेष्ठ विकास नीलाचल की इन अनन्त लीलाओं के बीच कलियुग में उज्ज्वलतर रूप से परिदृश्यमान है।

सारांश

इस प्रकार यह मूर्ति अनार्य, शबर, आर्य-सभ्यता की परतों में विकसित हुई है।*

* 'प्रवासी' में प्रकाशित एक लेख के आधार पर।

दैव की विभूति

लेखक, श्रीयुत आत्माराम देवकर

(१)

बाबू कमलाप्रसाद घोर चिन्ता में मग्न थे। वे हताश-भाव से इधर-उधर देखते, फिर कुछ सोचने लगते और अनिच्छा से टेबिल पर रक्खे समाचारपत्र के दो-एक पन्ने उलट देते थे। आफ़िस के काग़ज़-पत्र भी एक ओर बँधे पड़े थे। पर वे उनकी ओर देखना तक न चाहते थे। मुँह पर विषाद एवं व्यग्रता की अमिट रेखा अंकित थी। इतने में उनके मित्र पंडित उमाचरण जी आ गये। उन्होंने हँसकर कहा—"बैठे बैठे चिन्ता करना कायरता का लक्षण है। इसे त्यागकर काम की बात सोचो।" कमलाप्रसाद ने धीमे स्वर से कहा—"काम की ही बात तो सोच रहा हूँ। पर करूँ क्या? समाज तो किसी की सुनता ही नहीं।" उमाचरण जी गर्ज कर बोले—"इसका क्या अर्थ?" कमलाप्रसाद ने उत्तर दिया—"यही कि रेवतीरमण जी की इच्छा के विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता।" उमाचरण ने भर्त्सनापूर्ण स्वर से कहा—"यही तुम्हारा क्लीवत्व है। तुम्हारा हृदय अत्यन्त निर्बल जान पड़ता है। रेवतीरमण आज्ञा न देंगे तो क्या लड़की क्वाँरी बैठी रहेगी?" कमलाप्रसाद ने कातर दृष्टि से उमाचरण की ओर देख कर कहा—"वे हमारे मुखिया हैं। उनकी आज्ञा लेकर ही काम करना अच्छा होगा।" उमाचरण ने दृढ़ता से कहा—"तब उनसे पूछ क्यों नहीं लेते? मैंने जो लड़का बतलाया है। उससे अच्छा आपको दूसरी जगह नहीं मिल सकता।" कमलाप्रसाद ने रुककर कहा—"ऐसी अच्छी जगह वे कभी सम्बन्ध न होने देंगे।" उमाचरण जी ज़ोर से हँस पड़े और बोले—"तब उनकी इच्छा के अनुसार बुरी जगह ही क्यों नहीं लड़की दे देते?" यह सुनकर कमलाप्रसाद जी ने नेत्र नीचे कर लिये। उमाचरण ने आश्वासन देकर कहा—"आप ढाढ़स बाँधकर उनसे अपने मन की बात कहिए। उनका उत्तर सुनकर जैसा उचित होगा, किया जायगा।"

(२)

रेवतीरमण जी जाति के प्रमुख थे। उत्पाती भी थे। इसी से लोग डरते थे। समय ही ऐसा है। टेढ़े चन्द्रमा में कभी ग्रहण नहीं लगता। सीधे को सभी दबाते हैं। रेवतीरमण जी के पास द्रव्य था। समाज में गौरव प्राप्त था। विद्या और बुद्धि भी थी। अतः उनकी प्रकृति में अभिमान का होना स्वाभाविक ही था। नहि कोउ अस जन्मेउँ जग माहीं प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं। दक्ष प्रजापति जैसे क्षमताशाली व्यक्ति ऐश्वर्य पाकर विवेकान्ध हो गये थे। सामान्य संसारियों का तो कहना ही क्या है? रेवतीरमण भी इसी कोटि के मनुष्य थे। उनसे भलाई की आशा करना आकाश-कुसुम का तोड़ना था। कमलाप्रसाद इसे भली भाँति जानते थे। फिर भी उमाचरण जी का मन भरने के लिए वे रेवतीरमण के पास गये और चुपचाप एक ओर बैठ गये। रेवतीरमण ने अपनी चिरअभ्यस्त क्लिष्ट भाषा में कहा—"कहिए आज यहाँ कैसे आ निकले?" कमलाप्रसाद ने नम्र स्वर से कहा—"कन्या के विवाह-सम्बन्ध में आपको थोड़ा-सा कष्ट देने के लिए आया हूँ। आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे।" रेवतीरमण सब समझ गये। गर्व से सिर ऊँचा करके बोले—"हाँ, हाँ मैं जानता हूँ, आप कन्या के विवाह के लिए बहुत दिनों से व्यग्र हो रहे हैं। अच्छा, अब आप अपने मन की बात कहिए।" कमलाप्रसाद ने सरल भाव से कहा—"उज्जैन के नीलकंठ जी को तो आप जानते ही होंगे। उनके पुत्र वकालत करते हैं"। रेवतीरमण ने मुँह बिचकाकर कहा—"नीलकंठ क्या, उसके बाप-दादों तक को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। लड़के के वकील हो जाने से वह कुलीन नहीं समझा जा सकता। किसी की निन्दा नहीं करना चाहता। पर इतना अवश्य कहे देता हूँ कि उसके साथ सम्बन्ध करना आपके लिए घोर कलंक का कारण होगा। ऐसे काम के लिए मैं अनुमति न दूँगा।" कमलाप्रसाद ने गम्भीर होकर

कहा—"तब लड़की क्वाँरी ही रहने दूँ ?" रेवतीरमण ने त्योरी बदल कर कहा—"आप एकदम नाराज़ होगये। रीति की बात बुरी मालूम होती है। यह समय की विपरीतता है।" बाबू कमलाप्रसाद जी ने हाथ जोड़कर कहा—"मैं आपसे नाराज़ होकर कहाँ रहूँगा। आपकी अनुमति के बिना कोई काम नहीं कर सकता।" यह सुनकर रेवतीरमण शान्त हो गये और कुछ ठहरकर बोले—"अच्छा मैं बतलाता हूँ। हीरापुर में हमारे चिरपरिचित रामप्रताप जी रहते हैं। ये वहाँ के ज़मींदार हैं। उनके पुत्र के साथ आप अपनी लड़की का विवाह कर दीजिए। वह देखने-दिखाने में बहुत अच्छा है। कुछ पढ़ा-लिखा भी है। ज़मींदारी का कुल काम अच्छी तरह चला रहा है। रामप्रताप जी तो ख़ाली देख-रेख के लिए हैं। कुल के बहुत अच्छे हैं।" कमलाप्रसाद ने उत्तर दिया—"तो आप कृपा करके एक पत्र लिख दीजिए। मैं उनसे मिलकर बातचीत कर लूँगा।" रेवतीरमण ने निःस्पृहता से कहा—"नहीं, नहीं, यह नौकरी-चाकरी का मामला नहीं, जीवन का दायित्व है। विवाह के लिए सिफ़ारिश करना नीति-विरुद्ध कार्य है। आप उनसे मिलकर अपना मन भर लें। मैं मध्यस्थ नहीं बनना चाहता।" इस पर कमलाप्रसाद कुछ न बोले और आज्ञा लेकर घर चले आये।

(३)

कमलाप्रसाद ने उमाचरण जी को बुलवाकर सारा हाल सुना दिया। उमाचरण ने पूछा—"रामप्रताप जी का लड़का कहाँ तक पढ़ा है ?" कमलाप्रसाद ने उत्तर दिया—"कहते थे कि कुछ पढ़ा-लिखा भी है।" उमाचरण ने गर्ज कर कहा—"वह बिलकुल अपढ़ और मूर्ख होगा। अपने नाम के अक्षर जानता होगा और किसानों की रसीद-बही पर भले-बुरे दस्तख़त बना देता होगा।" यह सुनकर कमलाप्रसाद हँसने लगे। उमाचरण ने तमककर कहा—"हँसते क्या हो ? वह तुम्हारा सर्वनाश कराना चाहता है।" कमलाप्रसाद ने रुख़ बदल कर कहा—"आप ठीक कहते हैं। पर बात तो यह है कि सागर में रहकर मगर से बैर नहीं किया जाता।" उमाचरण ने नाक सिकोड़कर कहा—"ऐसी सहिष्णुता नितान्त लांछनीय है। लड़की का भाग्य फूट जाय, पर रेवतीरमण की बात न टले ! ऐसी अंधनीति को अनन्त बार धिक्कार है।" कमलाप्रसाद के नेत्रों में आँसू आ गये। उन्होंने उमाचरण के पैरों पर गिरकर कहा—"जैसा आप जाने वैसा करें। मुझे मंज़ूर है।" उमाचरण का क्रोध सहानुभूति में परिवर्तित हो गया। उन्होंने शान्त भाव से कहा—"अच्छा, उसकी बात रखने के लिए मैं स्वयं हीरापुर जाऊँगा और रामप्रताप के पुत्र को देखूँगा। पसन्द आयगा तो बात-चीत चलाऊँगा, नहीं तो वहीं से सीधा उज्जैन जाकर नीलकंठ जी से मिलूँगा और पक्की बात-चीत करके लौट आऊँगा। इस वर्ष लड़की का विवाह करके ही रहूँगा। देखूँ, रेवतीरमण क्या करता है।"

(४)

पण्डित उमाचरण जी दूसरे ही दिन हीरापुर पहुँचे। रामप्रताप जी ने उनका उचित आतिथ्य किया। उनका पुत्र देखने-दिखाने में अच्छा और व्यवहारकुशल था। उमाचरण जी का मन भर गया। उन्होंने सुयोग मिलने पर एकान्त में रामप्रताप जी से बात-चीत की। उन्होंने कहा—"मैं तो सब तरह से तैयार हूँ। पर आज-कल के लड़के बूढ़ों की बात नहीं मानते। अपनी इच्छा के अनुसार विवाह कराना चाहते हैं।" उमाचरण ने पूछा—"अभी से ?" रामप्रताप ने उत्तर दिया—"अभी से। पढ़ी-लिखी लड़की चाहते हैं।" उमाचरण बोले—"आपके पुत्र कहाँ तक पढ़े हैं ?" रामप्रताप ने मुस्कराकर कहा—"जिनको भगवान् ने चार पैसे दिये हैं उनके लड़के परिश्रमी नहीं होते।" उमाचरण ने बात को काटकर कहा—"पर लड़की पढ़ी-लिखी चाहते हैं ! ऐसा होगा तो कुछ दिन बाद मुझे लड़कियों के लिए भी आई० सी० एस० ढूँढ़ने पड़ेंगे।" रामप्रताप बोले—"कुछ दिन बाद क्यों ? आज ही बीड़ा उठाइए। तब काम चलेगा।" उमाचरण ने हँसकर कहा—"आपका कहना ठीक है। पर कठिनाई इतनी ही है कि यदि भगवान् शंकर नहीं मिलें तो उन्हें भगवती हिमाचल-नन्दिनी की नाईं कठिन तपस्या करनी पड़ेगी। इतने पर भी यदि कार्य सिद्ध न हुआ तो आजन्म अविवाहित रहना पड़ेगा।" रामप्रताप ने थोड़ा सा पान का चूर्ण मुँह में डाल कर कहा—"आपके विचार पुराने ढङ्ग के हैं। मैं भी पुराना हूँ। इससे कुछ कह नहीं सकता।" उमाचरण सिर हिला कर बोले—"आप ठीक कह रहे हैं। आपके पुत्र पढ़ी-लिखी लड़की चाहते हैं और मैं पढ़ा-लिखा लड़का। कल उज्जैन जाकर देखूँगा कि दोनों में से किसको सफलता मिलती है।"

(५)

नीलकंठ जी की स्त्री का देहान्त हो चुका था। वे ईश्वराराधन में अपना समय बिताते थे। उनके पुत्र ओंकार-प्रसाद अजमेर में वकालत करते थे। नीलकंठ जी बड़े ही सन्तोषी, शान्तिप्रिय एवं सरल-हृदय व्यक्ति थे। उनके पूर्वज अजयगढ़ के रहनेवाले थे। जीविका का कोई साधन न रहने के कारण वे पुत्र और स्त्री के साथ उज्जैन चले गये थे। वहाँ उन्हें एक छोटी सी नौकरी मिल गई थी। उसी से वे किसी तरह अपने कुटुम्ब को पालते थे। बड़े कष्ट से समय बिताकर उन्होंने पुत्र को पढ़ाया था। पुत्र सद्गुणी, सदाचारी और सहनशील था। इसी से अनाथनाथ भगवान् ने उसकी सहायता की और वह वकालत पास हो गया। नीलकंठ को जगद्वन्द्य का और जगद्वन्द्य को नीलकंठ का पूर्ण विश्वास था। वे उन्हें सदा अशरणशरण कहा करते थे। अपनी इस धारणा को फलित होते देख उन्हें असीम हर्ष हुआ और पुत्र के पास होते ही वे मानों उन्हीं में लीन हो गये। फिर कमी ही किस बात की रह गई ? "जित बरसत भर देत तित सुख सरिता सरकूप।"

अपने चिरपरिचित मित्र उमाचरण की आवाज़ पहचान कर नीलकंठ जी उत्फुल्ल मन से बाहर निकल आये और गले लगकर मिले। उनके साक्षात्कार से उमाचरण जी को लोकोत्तर आनन्द प्राप्त हुआ। ये उनके पास बैठकर जीवन की घटनाओं का स्मरण करने लगे। क्षण भर के लिए दोनों संज्ञाशून्य हो गये। इसके बाद उमाचरण जी ने अपना अभिप्राय प्रकट किया। नीलकंठ जी ने कृतज्ञतापूर्ण स्वर से कहा—"आप मेरे आत्मीय स्वजनों से भी अधिक प्रिय एवं श्रद्धाभाजन हैं। आपकी आज्ञा सादर शिरोधार्य है। इतना ही नहीं, उसे मैं अपने परम गौरव एवं सौभाग्य का कारण समझूँगा।" उमाचरण ने संकोचभरे विनीत भाव से कहा—"ओंकार-प्रसाद जी से पूछ लेते तो और भी अच्छा होता।" नीलकंठ जी हँसकर बोले—"यह आप क्या कह रहे हैं ? पिता की आज्ञा न माननेवाला पुत्र पुत्र-पद के योग्य नहीं समझा जा सकता।" उमाचरण जी के नेत्रों में प्रेम के आँसू निकल पड़े। कंठ रुद्ध हो गया। बड़ी कठिनाई से बोले—"आप धन्य हैं।"

(६)

बाबू कमलाप्रसाद जी की पत्नी रेवतीरमण जी की पत्नी के पास बैठी अपना सुख-दुख सुना रही थी। ठीक इसी समय उमाचरण जी रेवतीरमण के पास पहुँचे और आशीर्वाद देकर बैठ गये। रेवतीरमण ने पूछा—"कहिए पंडित जी, मेरे योग्य कोई सेवा है।" उमाचरण इस भावान्तर का अर्थ समझ गये। कहने लगे—"आपको शुभ-संवाद सुनाने आया हूँ।" रेवतीरमण ने उत्सुकता से कहा—"सुनाइए महाराज।" उमाचरण ने उत्तर दिया—"कमलाप्रसाद की कन्या का विवाह नीलकंठ जी के पुत्र के साथ निश्चित हो गया। नीलकंठ जी बड़े ही सुयोग्य पुरुष हैं। पुत्र वकालत करता है। बस, लड़की का भाग्य खुल गया। आशा है, आप भी इस संबंध से सन्तुष्ट होंगे।" रेवतीरमण ने प्रसन्नता का भाव दिखलाकर कहा—"संबंध तो अच्छा है। पर वंश का गौरव नहीं है। कई प्रकार के विघ्न खड़े होंगे।" उमाचरण ने पूछा—"वंश और विघ्न की बात मेरी समझ में नहीं आई।" रेवतीरमण ने कहा—"कर्त्तव्य के अनुरोध से कहना पड़ता है कि नीलकंठ जी कुल के अच्छे नहीं हैं। बस आप समझ जाइए।" उमाचरण ने आवेशपूर्ण स्वर से कहा—"इसका कोई स्थूल प्रमाण है ?" रेवतीरमण ने सगर्व उत्तर दिया—"इससे आपका प्रयोजन ?" उमाचरण ने प्रार्थना के रूप में कहा—"श्रीमान् जी कन्या का विवाह है। घर और वर अच्छा मिल रहा है। कुल भी निष्कलंक है। इससे आपको प्रसन्न होना चाहिए और उस असहाय की सहायता करना चाहिए। यह आपका धर्म्म है।" रेवतीरमण ने रुखाई से कहा—"आप इन बातों को नहीं समझते।"

रेवतीरमण की स्त्री सब बातें सुन रही थी। अन्दर से बोल उठी—"क्या इसी के लिए परमात्मा ने आपको बड़प्पन दिया है ?" यह सुनकर रेवतीरमण सन्न हो गये। लज्जा और अपमान ने उनका मुँह बन्द कर दिया। उमाचरण जी धीरे से [illegible] खिसक गये। कमलाप्रसाद जी की पत्नी भी जाने लगी। रेवतीरमण की धर्म्म-पत्नी ने अभयदान

देकर कहा—"तुम निश्चिन्त रहो। कन्या का विवाह मैं कराऊँगी।"

(७)

उमाचरण जी की लोकप्रियता बढ़ गई। सभी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते और वचनों का आदर करते थे। निःस्वार्थ परोपकार एवं सच्ची सहानुभूति के आगे दंभ और पाखंड का अस्तित्व नहीं रहता। उत्थान क्रम क्रम से होता है और उसमें समय अधिक लगता है, पर पतन क्रम और काल की अपेक्षा नहीं करता। यह प्रकृति का अकाट्य विधान है।

रेवतीरमण पर लोगों की अश्रद्धा होगई। वे उन्हें घृणा की दृष्टि से देखने लगे। फिर भी रेवतीरमण के हृदय से मिथ्याभिमान दूर न हो सका। वे उमाचरण और कमलाप्रसाद का विरुद्धाचरण न कर सके, पर इस पुण्य-कार्य्य में उन्हें मौखिक सहायता तक देने के लिए प्रस्तुत न हुए।

पंडित उमाचरण की सहायता से कमलाप्रसाद जी की कन्या का विवाह निर्विघ्न एवं सानंद समाप्त हो गया। रेवतीरमण जी की पत्नी ने प्रमुख बनकर दोनों ओर का काम सँभाला। उनके अदम्य उत्साह एवं अनवरत परिश्रम को देखकर दर्शक मुग्ध होगये। चारों ओर धन्य धन्य की ध्वनि सुनाई देती थी। अधिक भोजन करने से आलस्य आ जाता है, इसी विचार से उन्होंने न तो भर पेट भोजन किया, न विश्राम लिया। लोग कहते थे कि मा जी को आज क्या हो गया है। इतनी दौड़-धूप तो इन्होंने अपनी कन्याओं तक के विवाह में नहीं की।

विदाई के समय रेवतीरमण भी आगये और एक ओर सिकुड़कर बैठ गये।

कन्या की विदाई का प्रसंग बड़ा ही करुणा-व्यंजक होता है। जब वह स्वजनों का मोह-बंधन तोड़कर पति के घर जाने लगती है तब उसके मुख से निकले हुए आवेग-पूर्ण करुण-कलाप को सुनकर कठोर से कठोर मनुष्य के नेत्रों से दो आँसू टपके बिना नहीं रहते। रेवतीरमण की भी यही दशा हुई। कन्या के सामने आते ही उनका हृदय पिघल उठा। वात्सल्य के एक ही धक्के ने अभिमान और कुटेक की भित्ति हिला दी। सोने में खोट मिल जाने पर भी वह लोहे के समान कठोर नहीं हो सकता। वे कन्या को गले लगाकर ज़ोर से रो पड़े। उनके मुख से निकल पड़ा—"बेटी विवाह कराया है मेरी स्त्री ने और [illegible] दूँगा मैं। तुम मेरी कन्या हो, कमलाप्रसाद की [illegible] जब तक जीवित रहूँगा, इस संबंध को भली भाँति निबाहूँगा। आज से मैं सभी की कन्याओं के [illegible] में योग दूँगा और इसी आनन्द में जीवन बिताऊँगा। यह दैव की दुर्लभ विभूति है।"

अभाव

पण्डित रूपनारायण चतुर्वेदी

होते घनमाल तो मराल-बाल देते मोद
होते जो नरेन्द्र तो प्रजा को सुखी करते।
होते सुधाधर तो सुधा से सींच देते विश्व
होते अंशुमान तो प्रकाश जग भरते।
होते जो युवक तो सुधारते स्वदेश-दशा
होते परमारथी तो काम कुछ करते।
होते जो कवीन्द्र तो रसिक-वृन्द होते सुखी
होते अरविन्द तो मिलिन्द मन हरते।

कवि-कला का फूल हूँ मैं!

लेखक,
श्रीयुत शमशेरबहादुर सिंह

वास रंग पराग लेकर
छा गया हूँ भाव-जग में;—
भूलता है कवि-हृदय, तो
कवि-हृदय की भूल हूँ मैं!
प्रेम-नभ का मैं जलद हूँ
चिर-मिलन के उपवनों पर,
धीर वर्षा राग हूँ मैं
विरह के सूने क्षणों में,
स्नेह-सागर-पार भी
चिर-मौन तट की धूल हूँ मैं!
कवि-कला का फूल हूँ मैं!

खो गया हूँ कौन जाने
किस हृदय की मधुरिमा बन,
पा गया हूँ कौन क्षण
विश्वात्मा में पैठ, स्मिति बन,—
ज्ञात केवल, स्पर्श-रस पा,
चिर-रहस्योन्मूल हूँ मैं!
कवि-कला का फूल हूँ मैं!

मैं दुखी आषाढ़-घन-सा
बरस कर भू में समाता,
मैं विहर मधु-प्रात की सुख-धूप
सा खिलता हँसाता,
वर्ष हूँ भ्रमते जगत में
नव-रसों का मूल हूँ मैं!
कवि-कला का फूल हूँ मैं!

तप चुका हूँ उदय-गिरि के
ज्वलित उर पर स्वर्ण-सा मैं,
गल चुका हूँ, बह चुका हूँ
पूर्णिमा में कवि-हृदय-सा;
आज सरिता हूँ, समीरण हूँ,
प्रभा का फूल हूँ मैं!
कवि-कला का फूल हूँ मैं!

पूर्ण यौवन की कसक हूँ,
जरा का शुभ-शांत मंगल,
हास शैशव का क्षणिक-चिर,
करुण आशा, सरल प्रेमी,—
जगत में उपहास कवि का,
समय के प्रतिकूल हूँ मैं!
कवि-कला का फूल हूँ मैं!

वार कर उन्मत्त वैभव,
लाल कर आशा लहू से,
एक स्वर-करवाल-ज्वाला से
हृदय को फूँकता हूँ;
सांध्य-जीवन के ज्वलित कंदील-उर
की तूल हूँ मैं!
कवि-कला का फूल हूँ मैं!

मृत्यु के वर नील-वक्षालिंगनों में
सो चुका हूँ,
स्वप्न-शून्याधर हिमा के
चूम आया हूँ, विवश-उर,
चार दिन के विसुध जीवन में
उसी की शूल हूँ मैं!
कवि-कला का फूल हूँ मैं!

क्यों हुआ प्रेमी निराला ?—
प्रश्न है 'मैं क्यों हुआ कवि ?'
जगत में सिकतांक-उर-बुद्बुद !—
भला क्या आश उसकी!
प्रस्त्रवित है क्षीण सागर—
'किन्तु उसको हूल हूँ मैं!
कवि-कला का फूल हूँ मैं!

यह हृदय अपना नहीं है,
यह व्यथा अपनी नहीं अब;
प्राण किसके हो गये हैं,—
सुधि हमें इसकी नहीं अब,—
पर किसी की प्रेरणा के गर्व के
अनुकूल हूँ मैं!
कवि-कला का फूल हूँ मैं!

आज वासंती उषा में
रँग लिये हैं पंख अपने,
इंद्र-धनुषी नभ-पथों से
हंस उड़ता जा रहा है!
अश्रु-मुक्ता-माल स्वर हैं,
कल्पना निस्थूल हूँ मैं!
कवि-कला का फूल हूँ मैं!

जाग्रत नारियाँ

स्त्री-स्वाधीनता-आन्दोलन का स्वरूप

लेखक, श्रीयुत मन्मथनाथ गुप्त

स्त्रियों की स्वाधीनता के लिए आन्दोलन करना एक फ़ैशन सा हो गया है। अपने को आधुनिकता-वादी प्रकट करने के लिए प्रत्येक प्रयत्नशील व्यक्ति स्त्री-स्वाधीनता की हिमायत करता है। हिन्दी की प्रत्येक मासिक पत्रिका में स्त्रियों के लिए एक अलग स्तम्भ रहता है। कुछ मासिक पत्रिकायें तो केवल स्त्रियों के लिए ही निकल रही हैं। अक्सर दैनिकों में भी उनके लिए एक स्तम्भ अलग रहता है। निःसन्देह ये बातें स्त्रियों के लिए बड़ी तृप्ति की हैं। किन्तु क्या ये बातें ऐसी ही हैं जैसी कि मालूम देती हैं? स्मरण रखने की बात है कि हमारे यहाँ का स्त्री-आन्दोलन बहुत कुछ भद्रश्रेणी की स्त्रियों का आन्दोलन है, मज़दूर-किसानवर्ग की स्त्रियों का न तो इस आन्दोलन से कोई मतलब है, न यह उनका प्रतिनिधित्व करता है। सच बात कही जाय तो ये कथित निम्नश्रेणी की स्त्रियाँ कथित उच्च श्रेणी की बहनों के मुक़ाबले में बहुत कुछ स्वाधीन हैं। इसकी वजह यह है कि ये आर्थिक रूप से भी यथेष्ट स्वाधीन हैं। भद्रश्रेणी की स्त्रियों के लिए यह शायद लज्जा की बात हो, किन्तु यह बात सत्य है कि जिन बुनियादी हक़ों के लिए वे लड़ती हुई दृष्टिगोचर हो रही हैं अर्थात् ज़बानी जमाख़र्च कर रही हैं, जैसे पर्दा, तलाक़, विधवाविवाह, पुनर्विवाह आदि हक़ तो उनको अनायास ही प्राप्त हैं।

हाँ, कथित उच्च श्रेणी की इन स्त्रियों की पत्रिकाओं के स्तम्भों में होता क्या है, यह भी ज़रा सुन लीजिए। यदि किसी स्त्री ने कोई तुकबन्दी लिख दी तो वह उन स्तम्भों में आदर के साथ छाप दी जाती है। यदि किसी स्त्री ने बी० ए० पास कर लिया तो उसका चित्र भी वहीं देख लीजिए। इसके अतिरिक्त उनमें पढ़ लीजिए स्त्री-स्वाधीनता के पक्ष के धुआँधार लेख। एक पुरुष जिस काम को करता तो कोई टका सेर भी न पूछता, पर जब उसी काम को स्त्रियाँ करती हैं तो उनकी प्रशंसा होती है, उनका फोटो निकलता है, और न मालूम क्या क्या होता है। मैं नहीं समझता कि ये बातें स्त्रियों के लिए कहाँ तक श्लाघा की हैं।

मैं मानता हूँ कि स्त्रियाँ कुछ हद तक पिछड़ी हुई हैं, उन्हें कुछ हद तक प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, किन्तु इस प्रकार हर बात में विशेष अधिकार का दावा करना तथा पाना उनके लिए सम्मान की बात नहीं है। मासिक पत्रिकाओं के 'स्त्री-जगत्' तथा 'महिला-संसार' आदि स्तम्भों में एक ही आशय के लेख छपते हैं, उनमें वही एक ही राग अलापा जाता है, असली समस्या पर कोई ध्यान ही नहीं देता। स्त्रियों की सभायें भी होती हैं। वे ही प्रस्ताव बारबार पास किये जाते हैं। ये सभायें स्त्री-स्वाधीनता तथा स्त्रियों की वास्तविक उन्नति के हक़ में उतनी ही कारगर होती हैं, जितनी हिन्दी के कवि-सम्मेलन हिन्दी काव्य-कला के हक़ में। मध्यवित्तवाली श्रेणी की ये स्त्रियाँ बस इसी में ख़ुश हैं कि लोग उन्हें देवियाँ कहें तथा उनकी

[आधुनिक नवीन पीढ़ी की जर्मन महिलायें]

स्वाधीनता की माँग को स्वीकार कर लें, चाहे वास्तविक स्वाधीनता उनको ज़रा भी न प्राप्त हो। स्त्रियों की असली स्वाधीनता कहाँ है, इसकी न तो उन्हें टोह है, न चिन्ता। मैं यह तो नहीं समझता कि ये मध्यवित्तवाली श्रेणी की स्त्रियों में से कोई भी अपनी समस्या को नहीं समझतीं, किन्तु वे जानबूझकर उसको छेड़ती भी नहीं। अपने पतियों तथा पिताओं के पैसे पर चैन की बाँसुरी बजाते हुए धनिक तथा मध्यवित्तवाली श्रेणी की इन स्त्रियों को पुरुष-जाति को कोसते रहना ही बहुत अच्छा लगता है। स्त्री-कान्फ़रेन्सों में भाग लेनेवाली श्रीमतियाँ जिन बातों पर धुआँधार वक्तृतायें देती हैं तथा जिन सिद्धान्तों पर मरने-मारने को तैयार प्रतीत होती हैं, उन पर स्वयं उनका कुछ विश्वास नहीं है। इस बात का अनुमान करने के लिए बहुत से कारण हैं। मैंने कुछ साल पहले यह ख़बर अख़बारों में पढ़ी थी कि कहीं की छोटी या बड़ी रानी के सभानेतृत्व में स्त्रियों की एक विराट् कान्फ़रेन्स

हुई। उसमें नियमानुसार वही बातें हुईं जो ऐसी कान्फ़रेन्सों में होती हैं, अर्थात् सरकार तथा पुरुषों को ख़ूब डाँटफिटकार बताई गई। बहुत से प्रस्ताव पास हुए, जिनका आशय यह था कि पुरुष और स्त्री के अधिकार बराबर हों तथा पुरुषों की स्वार्थपरता और सरकार की दक़ियानूसी की वजह से ही वे पिस रही हैं।

ख़ैर, स्त्रियों को समझना चाहिए कि उनकी स्वाधीनता या जो कुछ भी वे चाहती हैं वह उन्हीं की अनवरत चेष्टा तथा त्याग से प्राप्त होगा। पुरुषों को [illegible] सरकार को गालियाँ देने से कुछ नहीं [illegible] कहीं अच्छी है, बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए का नारा लगाया। अपनी रोटी-दाल के लिए पुरुषों के [illegible] दिया है कि स्त्री को वे स्वाधीन कभी नहीं हो सकतीं [illegible] तो घर की रानी है, यह रूप से एक आर्थिक प्रश्न है, नहीं है, बल्कि इस प्रकार रूप में न देखकर जो उसे (जो बाहर के तूफ़ानी जीवन से उसके साथ अन्याय करता [illegible] किया है। मुसोलिनी और

[कुमारी छवि राय। गत वर्ष शिमला में कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर का ऋतुउत्सव नामक नाटक खेला गया था। उसमें कुमारी छवि राय ने प्रकृति सुन्दरी का भाग लिया था।]

२५फा ५.

हैं। भद्रश्रेणी को सामाजिक सम्बन्ध की उत्पत्ति ही आर्थिक बात हो, किन्तु यह बा अभी तक तिब्बत तथा नील-गिरि के के लिए वे लड़ती हुई हों जो बहुपतित्व की प्रथा है उसका जमाख़र्च कर रही हैं, जैसे ी है। यदि वहाँ के आर्थिक पुनर्विवाह आदि हक़ तो उनके उस प्रथा के लोप होने में हाँ, कथित उच्च श्रेणी की कारण से ही है कि कथित के स्तम्भों में होता क्या है, यह श्रेणी की स्त्रियों से अधिक

[हिज़ हाईनेस महारानी बड़ौदा। आपको काशी-विश्वविद्यालय

के लिए शादी करना रोटी-दाल का सवाल हल करना है। यद्यपि शा ने यह बात सभी श्रेणी की स्त्रियों के विषय में कही है, तथापि यह बात केवल मध्यवित्तवाली उच्च श्रेणी की स्त्रियों के विषय में ही पूर्ण सत्य है, कथित निम्न श्रेणी की स्त्रियाँ तो कहीं कहीं पुरुष से भी अधिक कमाती हैं।

मध्यवित्तवाली तथा कथित उच्च श्रेणी की स्त्रियों का यह स्वाधीनता-आन्दोलन उक्त मौलिक समस्या को ध्यान में न रखने के कारण कुछ हद तक बेपेंदी का हो रहा है। मज़े की बात तो यह है अब इस आन्दोलन का रुख़ बदल गया है। अब मध्यवित्तवाली श्रेणी की ये स्त्रियाँ कुछ और ही चाहने लगी हैं। ये अब स्वाधीनता नहीं चाहतीं, ये तो अब गृहलक्ष्मी रह कर ही सुखी हैं। बात यह है कि योरप की इसी श्रेणी की कुछ स्त्रियों ने अपने आन्दोलन को उसके तर्कगत परिणाम तक पहुँचाने के लिए घर से निकलकर नौकरी की, रुपये कमाये, अलग रहीं। परन्तु उनको जो अभी तक अपने पतियों तथा पिताओं के पैसे पर गुड़िया-सी बनी ठनी बैठी रहती थीं, नौकरी का बड़ा तिक्त अनुभव हुआ। प्रथम तो उन्होंने देखा कि नौकरी के बाज़ार में प्रतियोगिता में पुरुषों से पार पाना

[बङ्गाली ब्रताचारी नृत्य के दो दृश्य। इस नृत्य का वहाँ के बालिका विद्यालयों में ख़ूब प्रचार किया जा रहा है।]

मुश्किल है, और यदि नौकरी मिल भी गई तो वहाँ गुलामी का सामना है। उन्होंने अनुभव किया कि दफ़्तरों के बड़े साहबों की ग़ुलामी से पति की ग़ुलामी कहीं अच्छी है, इसलिए उन्होंने फिर 'घर लौट चलो' का नारा लगाया।

मुसोलिनी ने जो यह फ़तवा दिया है कि स्त्री को बाहर से कोई सरोकार नहीं, वह तो घर की रानी है, यह कोई उसके दिमाग़ की उपज नहीं है, बल्कि इस प्रकार मुसोलिनी ने उन स्त्रियों के (जो बाहर के तूफ़ानी जीवन से ऊब गई थीं) मुखपत्र का काम किया है। मुसोलिनी और

हिटलर जीवन के सभी क्षेत्रों में धनिक तथा मध्यवित्तवाली श्रेणी की विचारधारा तथा उसके स्वार्थ का प्रतिनिधित्व करते हैं। फिर इस क्षेत्र में वे क्यों चूकते? धनिक तथा मध्यवित्तवाली श्रेणी की स्त्रियों ने अपने इस प्रतिक्रियावादी क़दम से यह साबित कर दिया है कि वे स्त्री-स्वाधीनता के आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिए अयोग्य हैं, न तो उनमें वह त्याग की भावना है, न लगन ही है।

भारतवर्ष का स्त्री-स्वाधीनता-आन्दोलन भी उपर्युक्त ढंग की स्त्रियों का ही आन्दोलन है। अतएव ये भी समस्या की गहराई तक नहीं जाना चाहती हैं।

जैसे भारतवर्ष के धनिकवर्ग का समाजवादी-क्रान्ति से कुछ लाभ नहीं होगा, वैसे ही धनिक तथा मध्यवित्तवाली श्रेणी की स्त्रियाँ भी समझ लें कि स्त्री-स्वाधीनता से उनका आज का सुख घटेगा ही, बढ़ेगा नहीं। इसके विपरीत कथित निम्नश्रेणी की स्त्रियों को पूर्ण स्त्री-स्वाधीनता से लाभ होगा। सच बात तो यह है कि अख़बारों से दूर, फ़ोटो-यन्त्रों से दूर उनकी स्वाधीनता की लड़ाई ज़ोरों से जारी है। उन्हीं के हाथों से इस आन्दोलन को सफलता मिलेगी। जेठ की कड़ी धूप में खेतों में, खलिहानों में, वर्षा के कीचड़ में तथा जाड़े में ठिठुरती हुई किसान-मज़दूरों की ये बहादुर स्त्रियाँ (जो पुरुष की विलास-सामग्री या गुड़िया नहीं हैं) अपनी लड़ाई लड़ रही हैं, साथ ही साथ समाज के पुनरुज्जीवन तथा पुनर्यौवन के लिए लड़ रही हैं। उपर्युक्त श्रेणी की वाक्पटु स्त्रियों से इनका कहीं अधिक भाग वीरतापूर्ण है, किन्तु इन्हें कोई जानता नहीं है।

हमारे स्त्री-स्वाधीनता के आन्दोलन का इस समय ऐसा ही रूप है।

अन्तर्गीत

लेखक, श्रीयुत अंचल

वही पुराना दर्द उठा है हूक किसी की सुधि कर ले।

यह वर्षा की रैन अँधेरी नीले काजल की ज्वाला,
आज भरा सोने से अम्बर उमड़ी श्याम मेघमाला।
व्याकुल चिर रसमयी मोहिनी तुम भीगे कुन्तलवाली,
सोच उठा क्या आज वियोगी बड़ी तृषा के दिन आली।
वही पुराना स्वप्न नई बूँदों में रिमझिम घिर आया,
आज बहुत दिन की बीती ने पी ली एक मरण माया।
सूने सन्नी हान पवन से आज प्रलय का पथ लेकर,
फूँक निधन की अगवानी में चिर चीत्कार भरा अन्तर।
आज उसी विष की आहट को श्यामल पुलकों में भर ले,
वही पुराना दर्द उठा है हूक किसी की सुधि कर ले॥

इस बरबादी की मंज़िल में बड़ी तमिस्रा का दिन आया,
भरी जवानी के आलस में किसने यह दुर्दिन गाया।
अरे दूर से मिटनेवाले है कितनी तृष्णा प्यारी,
इस दारुण अकुलाहट में भी किये सलोनी तैयारी।
वह्निपर्व में फिर विस्मरणी! कितने अग्निदूत आये,
असमय साँझ उतर आई किस क्रन्दन की आशा छाये।
जाने कहाँ लिये जाती है जीवन की वहशत सूनी,
वही पुराना दर्द उठा है मीठा मोटा-सा खूनी।
छिटका फिर जुनून ज्वाला से निर्मित अतल-वितल कर ले,
दक्षिण पवन चला फिर वन में हूक अरी तू सुधि कर ले॥
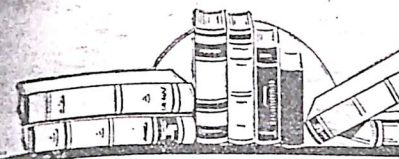
[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१-२—विश्व-ग्रन्थावली कार्यालय, ५०६, दारागंज, प्रयाग, की दो पुस्तकें—

(१) अबलाओं का बल—लेखक, श्रीयुत आनन्दि-प्रसाद श्रीवास्तव और मूल्य २) है।

(२) मकरन्द—लेखक, श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव और मूल्य १॥) है।

३—यूरुप में जंग की तैयारी—अनुवादक, श्रीयुत …न्द्र अग्निहोत्री, प्रकाशक, जवाहिर-प्रेस, १६११, …न रोड, कलकत्ता हैं। मूल्य १।) है।

४—विद्यापति-काव्यालोक—लेखक, श्रीयुत नरेन्द्र-नाथ दास विद्यालंकार, प्रकाशक, मित्र-मंडल, लहेरिया सराय (दरभंगा) हैं। मूल्य सजिल्द का २॥) है।

५—धन्यवाद—लेखक, बाबू चन्द्रिकाप्रसाद वर्मा, प्रकाशक, आदर्श-पुस्तक-एजेन्सी, कलकत्ता हैं। मूल्य १।) है।

६-७—दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा, मदरास की दो पुस्तकें—

(१) चुने हुए फूल—मूल्य ॥) है।

(२) सच्ची कहानियाँ—मूल्य ।=) है।

८-९—मीरा मन्दिर, ३६६।ए कालबा-देवी-रोड, बम्बई की दो पुस्तकें—

(१) बन्धु भरत—लेखक, श्रीयुत तुलसीराम शर्मा, 'दिनेश' और मूल्य ।=) है।

(२) मतवाली मीरा—लेखक, श्रीयुत तुलसीराम शर्मा, 'दिनेश' और मूल्य ।॥) है।

१०-१६—साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाइन्स, आगरा की ७ पुस्तकें—

(१) हिन्दी-साहित्य का सुबोध इतिहास—लेखक, गुलाबराय, एम० ए० और मूल्य १।) है।

(२) प्रसाद जी की कला—सम्पादक, श्रीयुत गुलाबराय एम०, ए० और श्रीयुत महेन्द्र हैं। मूल्य ।॥) है।

(३) गुप्त जी की कला—लेखक, प्रोफ़ेसर गौरीशंकर सत्येन्द्र, एम० ए० और मूल्य ।॥) है।

(४) ज़ेबुन्निसा के आँसू—लेखक श्रीयुत ओमप्रकाश भार्गव बी० एस-सी० और श्रीयुत ईश्वरीप्रसाद माथुर, बी० ए० हैं। मूल्य १) है।

(५) मुक्ति-यज्ञ—लेखक, प्रोफ़ेसर सत्येन्द्र, एम० ए० और मूल्य १) है।

(६) सेवा-धर्म और सेवा-मार्ग—लेखक, पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल और मूल्य १॥) है।

(७) वनबाला—लेखक, श्रीयुत नगेन्द्र, एम० ए० और मूल्य ॥) है।

१७—मंगलाचरण—सम्पादक, श्रीयुत रावत चतुर्भुज-दास चतुर्वेदी, साहित्यकुटीर, दहीगली, भरतपुर राज्य हैं।

१८—हृद्वीणा—लेखक, श्रीयुत द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री, एम०, आर०, ए०, एस०, प्रकाशक, पंडित राजेन्द्रनाथ शर्मा वैद्यभूषण c/o वेद-संस्थान, गुरुकुल, वृन्दावन (मथुरा) हैं। मूल्य ।॥) है।

१९—वीर-वन्दन—लेखक, श्रीयुत वीरभक्त जी, प्रकाशक, श्री विजयधर्म सूरि, जैन-ग्रन्थमाला, छोटा सराफ़ा, उज्जैन (मालवा) हैं। मूल्य =) है।

२०—जवाहरलाल नेहरू—लेखक, श्रीयुत शिवचरन-लाल टण्डन, प्रकाशक, श्रीयुत प्यारेलाल अग्रवाल, राष्ट्र-सेवक-संघ, ७८-८३ आज़ाद-भवन, लाटूश रोड, लखनऊ हैं। मूल्य =)॥ है।

२१—शकुन सिद्धान्त-दर्पण—सम्पादक, पंडित सुमेरचन्द्र न्यायतीर्थ, प्रकाशक, श्रीमूलचन्द किशनदास कापड़िया, सूरत हैं। मूल्य ।–) है।

२२—काया-कल्प—प्रकाशक, आयुर्वेदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कानपुर है। मूल्य ।) है।

२३—तरुण-राग—लेखक, श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद झा, प्रकाशक, नवयुग साहित्य-सदन, कलकत्ता हैं। मूल्य ॥) है।

२४—अन्तर्वेदना—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत उग्रधारीसिंह, मधुवनी स्टेट, दरभंगा हैं। मूल्य ।) है।

२५—हिन्दीशिक्षणविधान—लेखक, श्रीयुत एम० वि० जम्बुनाथन, एम० ए०, प्रकाशक, एम० वि० शेषाद्रि एण्ड कम्पनी, वलेपेठ, बँगलौर सिटी हैं। मूल्य ≡) है।

२६-२९—श्रीयुत द्वारिकाप्रसाद गुप्त श्री गया-गोशाला, गया की ४ पुस्तकें—

(१) क्या गोपालन से वेकारी दूर हो सकती है?

(२) ग्राम-गोशाला

(३) गोदुग्ध

(४) गो-परि-पालन

ये चारों पुस्तकें लेखक को उक्त पते से लिखने पर विना मूल्य के मिलती हैं।

१—लोपामुद्रा—मूललेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल मुन्शी, अनुवादक, श्रीयुत हृषीकेश शर्मा, प्रकाशक श्री कन्हैयालाल मुन्शी एडवोकेट वम्बई हैं। मूल्य १) है।

यह गुज़राती-उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद है। ऋग्वेद-कालीन जीवन का इसमें चित्रण किया गया है। इसके मूललेखक श्री मुन्शी जी उपन्यास लिखने में सिद्धहस्त हैं। उनकी कला का इस रचना में पूरा निदर्शन हुआ है। श्री मुन्शी जी कांग्रेस के प्रसिद्ध नेताओं में हैं। राजनैतिक कार्यों में संलग्न होते हुए भी मातृभाषा की जो महान् सेवा वे कर रहे हैं वह अनुकरणीय है।

इस उपन्यास में भारतवर्ष के इतिहास की सर्वप्रथम सच्ची घटनायें अंकित हुई हैं। उपन्यास के नायक विश्वरथ (गाधि ऋषि के पुत्र) हैं, जो राज्य छोड़ने पर विश्वामित्रनाम से ऋषि के रूप में प्रसिद्ध हुए। वही इस पुस्तक में आर्य-जाति के उज्ज्वल उत्कर्ष से ओतप्रोत, ज्ञान एवं साधनापिपासु, वचपन से तपस्या में अपने जीवन को बाँध रखनेवाले चित्रित किये गये हैं। मानव-हृदय जैसा आज है—जैसे आज वह क़दम क़दम पर प्रवृत्ति की पुकार सुनता चलता है और जीवन की चरम ऊँचाई पर खड़ा होकर भी नीचे की ओर कभी कभी झाँकने के लिए छाती के भीतर धड़कनेवाले मांस-[illegible] के कारण मजबूर हो जाता है, वैसा ही ठीक वैसा आज से हज़ारों वर्ष पहले भी था। यही इस उपन्[illegible] की कहानी में बताया गया है, और सरस ढंग से।

यह उपन्यास पाँच प्रकरणों में विभक्त किया [illegible] है। पहले में विश्वरथ का वाल्यकाल, दूसरे में गुरु[illegible] आश्रम का जीवन, तीसरे में उनके पिता की मृत्यु [illegible] भरतों का राजा होना वर्णित है। चौथे में दस्युराज शा[illegible] के द्वारा उनका अपहरण किया जाना और पाँचवें [illegible] शम्बर-कन्या उग्रा के विराट् प्रेम और आत्मसम[illegible] का वर्णन है। अन्त में आर्यों में श्रेष्ठ, वात [illegible] वरुण प्रभृति देवताओं का आवाहन करनेवाले [illegible] राजकुमार विश्वरथ का उस अनार्य्य कन्या के सम्मु[illegible] आत्म-विसर्जन करना अंकित हुआ है। कदाचित् यहीं से [illegible] महान् आत्मा आर्य्यों के अनार्य्यों पर किये गये [illegible] चारों के प्रति विद्रोही हो उठी होगी। शम्बर कुमारी [illegible] ऊँची प्रेम भावना को देखकर उनके हृदय की संस्कार[illegible] घृणा, अनार्य नरनारियों के प्रति अवहेलना एवं विद्वेष [illegible] भावना तिरोहित हो गई होगी, अतएव उन्होंने (विश्वामि[illegible] वनकर) दस्युओं को आर्य वनाकर वशिष्ठ जैसे ज्ञान [illegible] वयोवृद्ध ऋषिराज से अपना विरोध वढ़ाया।

पुस्तक में अनेक स्थलों पर वड़े ही कलात्मक चित्[illegible] हैं। परन्तु सबसे श्रेष्ठ मानवीयता तो अंत है, जहाँ [illegible] के नारीत्व के विस्फोट के साथ साथ विश्वरथ का हि[illegible] की भाँति अटल एवं सागर-सा गम्भीर पुरुष भी [illegible] उठता है और विश्वरथ की सत्ता आँधी-सी ऊपर उ[illegible] लगती है। जीवन भर संयम और संतुलन की आँच [illegible] जलनेवाले साधकों के जीवन में ऐसे अवसर कैसी उ[illegible] प्रचंड प्रति-क्रिया होकर आते हैं, यह इसमें ख़ूबी के [illegible] दिखाया गया है।

पुस्तक के वातावरण की सृष्टि और चरित्रगठन [illegible] कहीं भी कोई त्रुटि नहीं है और सीधी-सादी भाषा [illegible] लेखक महोदय ने ऋग्वैदिक कालीन संस्कृति का [illegible] चित्र आँखों के सामने खड़ा कर दिया है।

उपन्यास का यह पहला ही भाग है। आशा है [illegible] श्रेष्ठ उपन्यास के शेष भाग भी हिन्दी में शीघ्र ही उ[illegible] हो जायँगे।

२-३—सस्ता-साहित्य-मण्डल, दिल्ली की २ पुस्तकें—

(१) हमारे गाँवों की कहानी—लेखक, स्वर्गीय रामदास जी गौड़ हैं। मूल्य ॥) और पृष्ठ-संख्या ११८ है।

दिल्ली का सस्ता-साहित्य-मण्डल हिन्दी-साहित्य की वृद्धि का कार्य लगन के साथ कर रहा है और अच्छा कर रहा है। आलोच्य पुस्तक स्वर्गीय गौड़ जी की एक महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित रचना है। इसमें भारतीय ग्रामों का वर्णन आरम्भ-काल से लेकर अव तक का किया गया है। ग्रामीण स्थिति के परिवर्तन की दृष्टि से यह छोटे छोटे १२ अध्यायों में विभक्त है। सत्ययुगी ग्रामों के जीवन से लेकर आधुनिक ग्रामों के जीवन तक का इसमें सिलसिलेवार वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त पुस्तक के अन्त में अन्य देशों की खेती से भारत की खेती की तुलना की गई है।

इसके पढ़ने से भारत के इतिहास का एक सरल और संक्षिप्त ख़ाका पाठक के सामने खिंच जाता है, साथ ही इस बात का परिचय मिल जाता है कि किस तरह भारतीय किसान ग़रीबी की अवस्था को पहुँच गये। यह ग्रामोद्धार का युग है; इस दृष्टि से यह पुस्तक सामयिक भी है। उपयोगी तो है ही।

(२) भारत का नया शासन-विधान—लेखक, श्रीयुत हरिश्चन्द्र गोयल, वी० एस-सी०, एल-एल० वी० हैं। मूल्य ॥।) और पृष्ठ-संख्या २२४ है।

इस पुस्तक में लेखक महोदय ने शासन-विधान के 'प्रान्तीय स्वराज्य' के विधान का वर्णन किया है। अर्थात् संघ-शासन का इसमें परिचय नहीं दिया गया है।

इसमें आलोचनात्मक ढंग से शासन-विधान के सिद्धान्तों की चर्चा की गई है। इसकी भाषा सरल है, जिससे वर्णित विषय भले प्रकार समझ में आ जाता है। राजनीति के पाठकों को इसका उपयोग करना चाहिए।

४—मेरा गाँव—लेखक, राय साहव व्यास तनसुख जी, प्रकाशक, साहित्यनिकेतन, अजमेर हैं। मूल्य ॥) और पृष्ठ-संख्या ५४ है।

इस छोटी पुस्तक में व्यास जी ने ग्रामीण जीवन की सारी कठिनाइयों और उनके कारणों का वर्णन वड़े रोचक ढंग से किया है। यह वर्णन कहानी के रूप में किया गया है, जिससे पाठक की रुचि पुस्तक के पढ़ने की ओर वरावर वनी रहती है। इसकी भाषा भी सरल और सुवोध है। इसके पढ़ने से पाठकों को ग्रामीण वीमारियों, पाठशालाओं, दवाइयों, पहनावों, रवाजों और कठिनाइयों का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। ग्राम-सुधार से प्रेम रखनेवालों को इस पुस्तक का संग्रह करना चाहिए।

५-६—भार्गव-पुस्तकालय, गायघाट, वनारस द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकें—

(१) हँसी-दिल्लगी—सम्पादक, सैयद महमूद अहमद 'हुनर' हैं। मूल्य १।) और पृष्ठ-संख्या ३२७ है।

यह एक मनोरञ्जक पुस्तक है। इस पुस्तक में हुनर जी ने १००० सुन्दर चुटकुलों का संग्रह किया है। ये चुटकुले भारतीय जनता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उसके विनोदार्थ संगृहीत किये गये हैं। चुटकुले प्रश्नोत्तर के रूप में लिखे गये हैं और उनकी भाषा भी विनोदपूर्ण है। भारतीय नर-नारियों के मनवहलाव की दृष्टि से यह पुस्तक उपयोगी है। हिन्दी के प्रेमियों को इसका संग्रह करना चाहिए। इससे उनका मनवहलाव भी होगा, साथ ही अनेक वातों की जानकारी भी होगी।

(२) चटनी—लेखक, श्रीयुत हास्यरसाचार्य 'रघु' जी हैं।

इस पुस्तक में हास्यरस की पाँच कहानियों का संग्रह किया गया है। सभी कहानियों में मानव-जीवन की कोई न कोई विशेष वात का चित्रण किया गया है। 'ईश्वर की वकालत' और 'भगतजी' शीर्षक कहानियाँ अधिक सुन्दर हैं।

भाषा सरल, सुवोध और वोलचाल की है। कहानी के प्रेमियों को इसका आनन्द लेना चाहिए।

७—एक कोना—लेखक, श्रीयुत रघुनाथसिंह एम० ए०, एल-एल० वी०, प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी, ज्ञानवापी, काशी हैं। पृष्ठ-संख्या २४४ और मूल्य २) है।

यह एक उपन्यास है और इसमें एक 'ख़ुफ़ियाख़ाने' के जीवन की चर्चा की गई है। इस ख़ुफ़ियाख़ाने की मुख्य नायिका दुर्जया है, जो भगवानो नामक स्त्री के द्वारा वहाँ लाई जाती है। ख़ुफ़ियाख़ाने की मलिकिन से उसे काफ़ी रुपया मिलता है। मलिकिन उस सुन्दर युवती को अपने यहाँ का सारा रहन-सहन वतलाकर उसे एक कोठरी रहने के लिए देती है। युवती अपने [illegible]प का वड़ा

गर्व करती है। मलिकिन तथा वह दोनों रूप के द्वारा काफ़ी रुपया पैदा करती हैं। दुनिया अपने व्यवहार से .खुफ़ियाख़ाने की अन्य संगिनियों से काफ़ी मेल-मोल पैदा कर लेती है और उनको सच्चे मार्ग का निर्देश करती है। किन्तु कुछ समय के बाद एक रोगी पुरुष के स्पर्श से उसके शरीर में असाध्य रोग उत्पन्न हो जाता है और उससे ऊकता कर वह एक रात को ज़हर खाकर आत्म-हत्या कर लेती है। .खुफ़ियाख़ाने की अन्य साथिनियाँ उसकी लाश की दुर्गति अपने नेत्रों से देखती हैं और उसे गङ्गा जी के घाट पर ले जाकर उसका मृतक संस्कार करती हैं। यहीं .खुफ़ियाख़ाने से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ अन्य स्त्री-पुरुषों से उनका परिचय प्राप्त होता है जो अपनी करनी का सच्चा फल प्राप्त करते नज़र आते हैं। इस प्रकार क़िस्सा समाप्त हो जाता है।

यह उपन्यास २३ अध्यायों में विभक्त है। इसकी कथा से यह दिखाया गया है कि हिन्दू-समाज में जहाँ प्रत्यक्ष में तो लोक-लज्जा के भय से पथ-भ्रष्ट स्त्रियों के साथ घोर अन्याय किया जाता है, वहाँ छिपे तौर से समाज के धुरंधर तक उनका जूठा खाने और उनके साथ रहने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते। इस परिस्थिति का यथावत् चित्रण करते हुए लेखक महोदय ने अन्त में धार्मिकता को प्रधानता दी है और उसके भय का वर्णन किया है ताकि उसके डर से लोग दुराचारी न हों। उपन्यास का इस प्रकार का अन्त न तो सामयिक है, न कलात्मक ही है। इसमें यत्र-तत्र शिथिलता भी है। किसी किसी स्थल पर बातें अधिक बढ़ा कर कही गई हैं, जो पढ़ने में खटकती हैं। तथापि इसकी कथा रोचक है, जो उपन्यास का मुख्य गुण है।

८—शारदा एक्ट—लेखक, श्रीयुत कुँवर चाँदकरण शारदा हैं। पता—शारदा-भवन, दौलतबाग़, अजमेर है। मूल्य ।) और पृष्ठ-संख्या ६४ है।

यह पुस्तक ५ अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में बालविवाह रोकने के फ़ायदे, बालविवाह से हानियाँ, रियासतों में जाकर विवाह करनेवालों के विवाह, बालविवाह रोकने आदि का वर्णन किया गया है। दूसरे अध्याय में बालविवाह-सम्बन्धी मतभेदों की चर्चा है। तीसरे अध्याय में 'शारदा एक्ट' का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। चौथे अध्याय में इस क़ानून के सम्बन्ध की शंकाओं का समाधान और पाँचवें अध्याय में अर्ज़ियों आदि के नमूने दिये हैं। इसे पढ़कर अँगरेज़ी न जाननेवाले सुधार-प्रेमी शारदा क़ानून का महत्त्व भले प्रकार हृदयंगम कर सकते हैं। इस बालविवाह रोकने में इस क़ानून का यथाविधि उपयोग कर सकते हैं।

९—सन्धिसमासविचार—लेखक, पंडित ललित-चन्द्र रैणा शास्त्री, प्रकाशक, रैणा ब्रदर्स, कोटा (राजपूताना) हैं। मूल्य ।≡) और पृष्ठ-संख्या ८२ है।

इस छोटी सी पुस्तक में शास्त्री जी ने हिन्दी की सन्धियों और समासों पर पूर्ण रीति से प्रकाश डाला है। यह पुस्तक तीन छोटे छोटे भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में सन्धि पर विचार किया गया है, द्वितीय भाग में समास का विषय समझाया गया है और तृतीय में मुहावरों के भिन्न प्रकार के प्रयोग दिखाये गये हैं। परिशिष्ट में भाषा के मुहावरे तथा क्रिया के कालों पर विचार किया गया है। हिन्दी में व्याकरण की बहुत सी पुस्तकें पहले से हैं और यथासम्भव उनमें इन विषयों पर विचार भी किया गया है। किन्तु इस पुस्तक में इन दोनों विषयों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है और ऐसे सरल ढङ्ग से कि विद्यार्थियों की समझ में आसानी से आ जाते हैं। हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक काम की है।

—गंगासिंह

१०—व्याख्यानवाटिका—मुनि श्री मोहन ऋषि जी महाराज एक प्रसिद्ध जैन साधु हैं। आपने बम्बई और नागपुर में जैन-धर्म के सम्बन्ध में अनेक व्याख्यान दिये। उन्हीं व्याख्यानों में से १८ का इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। व्याख्यानों का संग्रह श्री उत्तमचन्द कीरचन्द गोसलिया ने किया है। व्याख्यानों का विषय अध्यात्म है। छोटी-से-छोटी घटना या रोज़मर्रा काम आनेवाली चीज़ों को लेकर ऋषि जी ने भावपूर्ण ढङ्ग से अपने विचार व्यक्त किये हैं। जैन-धर्म के प्रेमियों के लिए पुस्तक उपयोगी है। मिलने का पता—श्री पुंगलिया सरदार, जैन ग्रन्थ-माला, इतवारी बाज़ार, नागपुर सिटी।

११—सहजानन्द सोपान—जैन-धर्म के उपदेशकों में श्री ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जी एक विद्वान् व्यक्ति हैं। जैन-पत्रों में वे समय समय पर जैन-धर्म-सम्बन्धी पाण्डित्यपूर्ण

लेख प्रायः लिखते रहे हैं। उन्हीं में से भेद-विज्ञान, स्वानुभव और सहजानन्द शीर्षक तीन लेखों का इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। ये तीनों लेख विद्वत्तापूर्ण हैं। जैन-धर्म के जिज्ञासुओं को इस पुस्तक का संग्रह करना चाहिए। मूल्य १) है। मिलने का पता—श्री मूलचन्द किसनलाल कापड़िया, जैनपुस्तकालय, कापड़िया भवन, सूरत।

१२—जैन-बौद्ध-तत्त्वज्ञान—इस पुस्तक के भी लेखक श्री ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जी ही हैं। इस पुस्तक में उन्होंने जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों के पुष्ट प्रमाणों के द्वारा यह सिद्ध किया है कि बौद्ध-धर्म जैन-धर्म से निकला है और उनमें तात्त्विक दृष्टि से वैसा महत्त्व का भेद नहीं है। उन्होंने यह भी लिखा है कि बौद्ध-धर्म जैन-धर्म से निकला है, साथ ही वह बौद्ध-धर्म से श्रेष्ठ भी है। इसमें सन्देह नहीं है कि ब्रह्मचारी जी ने इस पुस्तक को बड़े परिश्रम से लिखा है और एक बात भी ऐसी नहीं लिखी है जिसका उन्होंने प्रमाण न दिया हो। परन्तु ब्रह्मचारी जी को जानना चाहिए कि उन्होंने जिस 'मज्झिम निकाय' के प्रमाणों को अपनी बातों के समर्थन में दिया है उसी में यह भी स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि बौद्ध-धर्म जैन-धर्म से भिन्न है। ख़ैर, जो लोग ऐसे ग्रन्थों के पढ़ने की रुचि रखते हैं उन्हें इसका अवश्य अवलोकन करना चाहिए। इसका मूल्य १) है। पता—श्री मूलचन्द किसनदास कापड़िया, दिगम्बर जैनपुस्तकालय, सूरत।

१३—आदि निवासियों की सभ्यता—श्रीयुत चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु ने कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। उनकी यह पुस्तक भी वैसी ही है। इस पुस्तक में भारत के आदि-निवासियों की सभ्यता का वर्णन किया गया है। यह वर्णन साधार है और इसकी प्रामाणिक सामग्री उन्होंने संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों से ली है। दलित जातियों को उन्होंने भारत का मूल-निवासी बताया है। इस पुस्तक को पढ़कर उस जाति के लोग अपने प्राचीन इतिहास और सभ्यता का अवश्य ही कुछ न कुछ अनुभव करेंगे। इस दृष्टिकोण से भी उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इतर लोग भी इस पुस्तक से बहुतेरी तथ्य की बातें जान सकेंगे। पुस्तक उपयोगी है। मिलने का पता—हिन्दू-समाजसुधार कार्यालय, सआदतगंज रोड, लखनऊ। मूल्य ।-) है।

१४—राष्ट्रभाषा क्या हो—लेखक, श्रीयुत चन्द्रगुप्त वेदालंकार और प्रकाशक, गुरुकुल काँगड़ी हैं। मूल्य ॥) है।

वेदालंकार जी ने इस पुस्तक में यह सिद्ध किया है कि भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है। अन्य बातों के साथ ही भारत की अन्तर्प्रान्तीय भाषाओं के साथ हिन्दी की तुलना करके उन्होंने अपने उपर्युक्त विचार का समर्थन किया है।

१५—श्री सरस्वतीस्तोत्रम्—टीकाकार, श्रीयुत सरयूप्रसाद पाण्डेय 'द्विजेन्द्र', प्रकाशक, श्रीयुत गंगाराम ब्रह्मचारी, कविता-शिक्षालय, काशी हैं। मूल्य ≡)॥ है।

सरस्वती के सम्बन्ध में पुराणों में जो स्तुतियाँ लिखी हैं, उन्हीं का इसमें संकलन किया गया है। प्रत्येक स्तुति का हिन्दी-अनुवाद भी दिया गया है। सरस्वती के भक्तों के काम की है।

१६—विधवा-विवाह-विचार—लेखक, श्रीयुत सुमेरचन्द 'कौशल', प्रकाशक, श्री निवास शास्त्री, नं० १ वैसाख लेन, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता हैं।

इस पुस्तक में लेखक ने यह सिद्ध किया है कि विधवा-विवाह करना ठीक नहीं है।

१७—निर्दोष क़त्ल—लेखक, श्री जगदीशप्रसाद तिवारी, प्रकाशक, जगदीश ग्रन्थमाला, चौक, कानपुर हैं।

कुछ दिन हुए, कानपुर में एक स्त्री की हत्या की गई थी। उसी जघन्य घटना का लेखक ने पद्यों में वर्णन किया है। रचना करुण-रस-पूर्ण है।

१८—हरिजन-सन्त—यह पुस्तक गुजराती भाषा में है। इसके लेखक श्री कान्तिलाल गुजराती हैं। इसमें भक्त दाना, रामदास चांभार और मुनिबल नायक तीन हरिजन-सन्तों की कहानी लिखी गई है। दाम ‑) है।

१९—साहूकारा बिल—प्रकाशक, श्री प्रजाकष्ट-निवारकमंडल, इन्दौर।

इस पुस्तक में इन्दौरराज्य में प्रचलित साहूकारा बिल की उपयोगिता और आवश्यकता पर आलोचनात्मक ढङ्ग से विचार किया गया है।

—ज्योतिप्रसाद 'निर्मल'

२०—राष्ट्र-भाषा-दिग्दर्शन (मराठी)—लेखक, श्रीयुत पुंडलीक कातगडे, प्रकाशक, श्री पां० श्री० जोशी हैं। मूल्य ।≡) है। पता—स्नेहसंवर्द्धनसंघ, मिरज।

श्रीयुत कातगडे जी दक्षिण-भारत के इने-गिने विद्वानों और विचारकों में हैं। यह पुस्तक उनके ऐसे ही अध्ययन की परिचायिका है। यह पाँच कालखंडों में विभाजित है और इसमें हिन्दी के प्राचीन तथा नवीन इतिहास का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

पहले कालखंड में ईसवी सन् की आठवीं शताब्दी से १२ वीं शताब्दी के अन्त तक की हिन्दी का वर्णन है। दूसरे में तेरहवीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी के मध्य-तक की हिन्दी का वर्णन है। इसमें बताया है कि इस काल में हिन्दी में पद्य-रचना की विशेषता थी। तीसरा सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक है। इसमें लिखा गया है कि शाहजहाँ बादशाह के समय से फ़ारसी के हिन्दी-रूपान्तर का नाम 'उर्दू' रक्खा गया। चौथे में यह बताया गया है कि उन्नीसवीं शताब्दी से धीरे धीरे अँगरेज़ी शब्दों का सम्मिश्रण होने लगा, प्रेस और स्कूलों तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रचार से नया हिन्दी-साहित्य तैयार होने लगा। पाँचवें कालखंड में यह लिखा है कि वर्तमान-काल में हिन्दी को राष्ट्र भाषा का रूप प्राप्त हो रहा है। लेखक महोदय ने अन्त में मराठी की हिन्दी तथा संस्कृत से तुलना की है। यथा—

संस्कृत	मराठी	हिन्दी
आम्र	आंबा	आम
दशन्	दश, दहा	दस
सत्य	साच, साचा	सच, सच्चा
सर्व	सारा	सब

वाक्य-रचना में भी मराठी हिन्दी से मिलती-जुलती बताई गई है।

यथा—

(१) हरी ने रामाला एक आंबा दिला। यही वाक्य हिन्दी में हरी ने राम को एक आम दिया।

(२) मी हाताने काम करतो। मैं हाथ से काम करता हूँ।

लेखक का कहना है कि हिन्दी तथा मराठी संस्कृत-भाषा से निकली हैं, अतएव सहोदरा हैं। इसमें मराठी तथा हिन्दी भाषा की कहावतें, पहेलियाँ वग़ैरह भी संग्रह की गई हैं। यह पुस्तक परिश्रम से लिखी गई है और मराठीभाषियों के लिए उपादेय है।

भालचन्द्र दीक्षित

२१—हिन्टस आन म्यूज़ियम एजुकेशन—लेखक तथा प्रकाशक, श्रीयुत जे० सी० वासक, ३६३ अपर चितपुर रोड, पी० ओ० वीडिन स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य १) है।

यह पुस्तक लेखक महोदय ने अँगरेज़ी में लिखी है और ख़ुद ही प्रकाशित भी की है। उनका विचार है कि म्यूज़ियम अर्थात् संग्रहालयों के द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। साधारण विषयों के सम्बन्ध में भले ही यह विचार नया हो, किन्तु विज्ञान, विशेषतः भौतिक शास्त्र तथा प्राणिशास्त्र के सम्बन्ध में यह विचार बड़ा पुराना है और प्रायः सर्वत्र कार्यरूप में भी परिणत हो रहा है। उनका यह भी कहना है कि प्रत्येक नगर में एक ऐसा संग्रहालय हो जो मनुष्य के जीवन में नित्य काम आनेवाली चीज़ों का पूरा ज्ञान प्राप्त कराने के साधनों से सम्पन्न हो। स्वास्थ्य-रक्षा, खान-पान, कल-पुर्ज़े सभी बातों का ज्ञान प्राप्त कराने की केवल सामग्री ही न हो, बरन उन बातों पर व्याख्यान देनेवाले पूरे जानकार भी नियुक्त किये जायँ। ये विशेषज्ञ संग्रहालय में आनेवाले व्यक्तियों को व्याख्यान दिया करें और वहाँ की सब बातें भली भाँति उन्हें समझा दिया करें।

आज-कल के संग्रहालयों में पुरानी दक़ियानूसी चीज़ों का अथवा चमत्कारक और आश्चर्योत्पादक वस्तुओं का ही संग्रह रहता है। जो चीज़ें रहती भी हैं वे किसी शिक्षा की दृष्टि से नहीं सजाई जातीं और न उनका रहस्य बतानेवाले व्यक्ति ही वहाँ रहते हैं। परिणाम यह होता है कि तमाशे की तरह वहाँ का सामान देखकर जनता चली आती है। वहाँ से जाते समय कोई उपयोगी या लाभदायक बात सीख कर नहीं जाती। अतएव उनका अनुरोध है कि संग्रहालयों में उपयोगी पदार्थों के संग्रह पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

इस पुस्तक में शिक्षा-सम्बन्धी संग्रहालय की एक आदर्श योजना भी दी गई है और जिस प्रकार की शिक्षा संग्रहालय-द्वारा दी जानी चाहिए उसका संक्षेप में वर्णन भी किया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक ज्ञातव्य उपयोगी विषयों से भी भरी हुई है।

ग्रन्थकार ने कई पैम्फ़लेट इस विषय पर लिखे हैं, जो शिक्षा-प्रेमियों को पढ़ने चाहिए। पुस्तक शिक्षा का सुधार करनेवालों के लिए उपयोगी है।

२२—विज्ञानप्रवेशिका—भाग १—लेखक, श्रीयुत यज्ञदत्त विद्यालंकार, प्रकाशक, गुरुकुल, काँगड़ी हैं। आकार डबल क्रौन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २०० और मूल्य १) है।

यह पुस्तक "पदार्थ के गुण" विषय पर लिखी गई है। लेखक महोदय स्वयम् शिक्षक हैं, अतएव सभी विषय बड़ी योग्यता से लिखे गये हैं। आकर्षण-शक्ति, आयतन, संसक्तिबल, रगड़, लचक, द्रवों के गुण आदि अनेक विषयों पर इस पुस्तक में विचार किया गया है। विषय को समझाने के लिए अनेक चित्र भी दिये गये हैं और अच्छे अच्छे प्रयोगों का वर्णन किया गया है। मिडिल और हाई स्कूल के विद्यार्थियों के बड़े काम की पुस्तक है।

२३—विज्ञान या साइन्स—इस पुस्तक या निबन्ध के लेखक लखनऊ, एबाट रोड के प्रसिद्ध वैद्य पंडित शालग्राम शास्त्री हैं। कर्नल बकले ने किसी व्याख्यान में आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कह दिया था। उसी बात का जवाब शास्त्री जी ने इस निबंध में दिया है। शास्त्री जी का आयुर्वेद-प्रेम प्रशंसनीय है। आयुर्वेद से उनकी जीविका भी है, इस लिए भी उन्हें उसका कृतज्ञ होना ही चाहिए। परन्तु इस निबंध को पढ़कर दुःख हुआ। शास्त्री जी विज्ञान के बारे में बड़े भ्रम में पड़े हुए हैं। विज्ञान न पश्चिमी है, न पूर्वी। वह तो सार्वभौमिक है। जो शास्त्र उसकी कसौटी पर कसा जाकर सच्चा निकलेगा वही आजकल मान्य होगा। ऋषियों का नाम ले लेकर और विज्ञान को गाली देकर जो अपनी अयोग्यता छिपाना चाहते हैं उनके दिन अब गिने हुए हैं। आयुर्वेदशास्त्र अपूर्ण है, अधूरा है, अव्यवस्थित है। उसके अनुयायी वैज्ञानिक पद्धति से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। यही नहीं, वे उसका उद्धार करने को एकत्र होकर प्रयत्न भी नहीं कर सकते। ये बातें स्वतः सिद्ध हैं। अपने स्वार्थ, अभिमान, आलस्य को छोड़कर आयुर्वेद के उद्धार का भगीरथ प्रयत्न किये बिना आयुर्वेद का चलना कठिन है। यह दूसरी बात है कि आयुर्वेदिक ओषधियों और रसों का प्रचार बढ़ जाय और उनमें से कुछ चीज़ें वैज्ञानिक विधि से जाँचे जाने पर देशदेशान्तर में स्वीकृत हो जायँ। परन्तु इस बीसवीं शताब्दी में आयुर्वेद का जब तक कायाकल्प नहीं होगा, वह मान्य न होगा।

साइंस को गालियाँ देना और साइंटिस्टों का उपहास करना शास्त्री जी के सर्वथा अयोग्य है। जितना प्रयत्न और परिश्रम आज-कल के वैज्ञानिक कर रहे हैं और तत्त्व की खोज में जितनी गहराई तक वे पहुँचते हैं उसका एक लाखवाँ हिस्सा भी यदि आयुर्वेद-प्रेमी कर सकें तो आयुर्वेद की संसार भर में धाक बैठ जाय। परन्तु परिश्रम कौन करे, जब अनर्गल बातें करने से ही संतोष हो जाय?

—(प्रोफ़ेसर) गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी०

२४—सगर-विजय—पंडित उदयशंकर भट्ट ने कई उत्कृष्ट नाटकों और काव्य-ग्रन्थों की रचना की है उनका यह नाटक हाल में ही प्रकाशित हुआ है। इसकी रचना एक पौराणिक कथानक के आधार पर की गई है। कथानक संक्षेप में इस प्रकार है—

अयोध्या के सूर्यवंशी महाराजा बाहु पर हैहयवंशी महाराजा दुर्दम ने चढ़ाई की। बाहु पराजित होकर जंगल की ओर भाग गये। उनके दो रानियाँ थीं—बड़ी का नाम था विशालाक्षी और छोटी का वर्हि। बाहु बड़ी रानी से अधिक प्रेम करते थे, इसलिए उसे वे अपने साथ लेते गये। वर्हि राजा से—विशेषकर विशालाक्षी से द्वेष रखती थी। वह विशालाक्षी से, राजा का प्रेम न प्राप्त करने के कारण, बदला लेना चाहती थी। इसी लिए वह पागल की तरह इधर-उधर घूमती फिरती थी। दुर्दम के दो सेवक कुन्त और त्रिपुर बाहु की खोज में जंगल में गये और वहाँ राजा और विशालाक्षी को पाया। दुर्दम के अत्याचारों से प्रजा पीड़ित थी, इसलिए त्रिपुर और कुन्त भी दुर्दम के विरोधी हो गये और उन्होंने राजा और रानी दोनों की जंगल में सहायता की। उन्होंने वैद्य बुलाकर बाहु और विशालाक्षी की चिकित्सा कराई, किन्तु बाहु की मृत्यु हो गई और विशालाक्षी बच गई। विशालाक्षी महाराज बाहु के साथ सती हो जाना चाहती थी, किन्तु और्व ऋषि ने आकर उसकी रक्षा की, क्योंकि उसके गर्भ था। और्व रानी को अपने आश्रम में ले गये, वहाँ उन्होंने सगर को जन्म दिया। एक दिन बाहु की दूसरी रानी वर्हि आकर सगर को चुरा ले जाती है और उसे नदी में फेंकने का उपक्रम करती है, किन्तु त्रिपुर और कुन्त के द्वारा सगर की रक्षा होती है। वशिष्ठ ऋषि बाहु के गुरु थे। दुर्दम के दमन से प्रजा पीड़ित थी। उसने दुर्दम के अत्याचार का विरोध किया और वशिष्ठ इस काम में सहायक

हुए। उन्होंने सगर की रक्षा की। दुर्दम ने बाहु की रानियों को पकड़वाने तथा सगर को मरवा डालने का बड़ा प्रयत्न किया, लेकिन वशिष्ठ के कारण वह कृतकार्य नहीं हुआ। रानी वर्हि पहले तो विशालाक्षी से बदला लेना चाहती थी, किन्तु अन्त में उसके विचार भी बदल गये और वह भी सगर की रक्षा के लिए तत्पर हो गई। अन्त में विशालाक्षी और वर्हि की मृत्यु हो जाती है। सगर बड़ा होने पर दुर्दम से युद्ध करता है और सूर्य-वंश का राज्य अपने हाथ में लेकर अयोध्या पर शासन करता है।

नाटक प्रारम्भ से अन्त तक बहुत ही आकर्षक और सुन्दर है। पात्रों का चरित्र-चित्रण कलात्मक ढङ्ग से किया गया है। इस नाटक में सबसे सुन्दर चित्रण कुन्त और त्रिपुर का है। इन व्यक्तियों ने महाराज बाहु के लिए जितना त्याग और बलिदान किया उसका उल्लेख भट्ट जी ने उत्कृष्ट ढङ्ग से किया है। वशिष्ठ ऋषि का चित्रण भी कुल-गुरु के अनुरूप ही हुआ है। हैहयवंशी राजा दुर्दम के अत्याचारों और प्रजा के अन्याय-नीति के विरोधों का तो और भी ओजपूर्ण ढङ्ग से चित्रण हुआ है। राजवैद्य का चित्रण कुछ हास्यपूर्ण है, जो स्वाभाविक है। स्त्री पात्रों में विशालाक्षी का चित्रण सती स्त्री का एक उज्ज्वल उदाहरण है। वर्हि का प्रारम्भ में प्रतिहिंसक बन जाना और फिर उसमें मातृत्व का उदय होना स्त्री-स्वभाव-सुलभ चित्रण है। पात्रों का चित्रण ऐसे ढङ्ग से किया गया है कि उसमें सामयिकता आ गई है और इसके द्वारा अत्याचार के विरुद्ध न्याय और सत्य की विजय का सुन्दर सन्देश दिया गया है।

पुस्तक की भाषा प्रांजल और मधुर है। अनेक स्थलों पर चरित्र-चित्रण में गद्य-काव्य का पूर्ण आनन्द आता है। नाटक रङ्ग-मञ्च के अनुकूल है और इसका अभिनय सफलता के साथ किया जा सकता है। नाटक पाँच अंकों में समाप्त हुआ है। पुस्तक सजिल्द है। छपाई-सफ़ाई आकर्षक है। मूल्य १) है। श्री मोतीलाल बनारसीदास, हिन्दी-संस्कृत-पुस्तक-विक्रेता, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर से प्राप्त होती है।

—ज्योतिप्रसाद 'निर्मल'

२५—दुर्गार्चनस्मृति :—संस्कृत के धर्म ग्रन्थों में श्री मद्भगवद्गीता की ही तरह श्री दुर्गा-सप्तशती का भी देशव्यापी प्रचार है। इसी से संस्कृत के सभी प्रकाशकों ने उसके छोटे-बड़े सैकड़ों संस्करण निकाले हैं और नित्य नये नये निकलते रहते हैं। कुछ दिन हुए इसी स्तम्भ में हम एक ऐसे ही संस्करण का परिचय दे चुके हैं, जो सटीक है और पुस्तकाकार में बड़े टाइप में छापा गया है, परन्तु मूल्य केवल =)॥ ही है। इसका प्रकाशन कृष्णगढ़, सुलतानगंज की वैदिकपुस्तकमाला ने किया है। दुर्गा-सप्तशती का यह सबसे सस्ता संस्करण निकला है। परन्तु दुर्गा-सप्तशती का उपर्युक्त संस्करण आज तक के सभी संस्करणों से बाज़ी मार ले गया है। इसमें मूल सप्तशती हिन्दी-अनुवाद के साथ तो है ही, साथ ही उसके सम्बन्ध की वैदिक एवं तांत्रिक विधि से सारी पूजा-पद्धति भी विस्तार के साथ दी गई है एवं सप्तशती से सम्बन्ध रखनेवाले कवच, अर्गला आदि अन्य सभी स्तोत्र भी यथा स्थान दिये गये हैं। इस प्रकार इसे सर्वाङ्गपूर्ण बनाने में अपने जान में कोई कसर नहीं रक्खी गई है। इसी से इसकी पृष्ठ-संख्या ४३१ तक जा पहुँची है और इसने पूरा ग्रन्थ का रूप धारण कर लिया है। इसके प्रकाशक सेठ दुर्गादत्त भगत ने एक अधिकारी विद्वान् से इसका संकलन ही नहीं करवाया है, किन्तु इसे नयनाभिराम छापा भी है। टाइप काफ़ी बड़ा लगाया गया है, कागज़ भी अच्छा लगाया गया है, साथ ही भगवती दुर्गा के कई आवश्यक रङ्गीन चित्र भी दिये गये हैं। परन्तु इस विशेष रूप से सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण संस्करण की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इसके प्रकाशक महोदय इस ग्रन्थ को मुफ़्त दे रहे हैं। कोई भी दुर्गा-भक्त डाक-व्यय के लिए ।=) के टिकट भेजकर इसे प्राप्त कर सकता है। और इस वितरण के लिए प्रकाशक महोदय ने इस पहले संस्करण में ही इसकी दस हज़ार प्रतियाँ छपवाई हैं। इस सत्कार्य के लिए इसके प्रकाशक श्रीमान् सेठ दुर्गादत्त भगत सर्वथा धन्य हैं। दुर्गाभक्तों को दुर्गा-सप्तशती के इस महत्त्वपूर्ण संस्करण का अवश्य संग्रह करना चाहिए। मिलने का पता—श्रीमान् सेठ दुर्गादत्त भगत, तेलमिल, माईथान, आगरा।

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति <u>सरस्वती पत्रिका</u> के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ <u>'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर २५, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद'</u> के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। <u>रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।</u>

(४) जो वर्ग-पूर्ति २४ अगस्त तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २४ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि <u>सरस्वती पत्रिका</u> के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध-पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१—एक भालू जो राम की सेना में लड़ा था।
४—वह मनुष्य जो शैतान का काम करे।
८—पुराणों में इसका वर्णन मिलता है। ९—थोड़ा।
१०—अधिक वर्षा से इसे हानि पहुँचती है।
१२—देवीचंदन। १५—किस समय।
१६—बेटी की...माँ बाप की आँखों में आँसू ला देती है।
१७—संसार।
१८—महात्मा गांधी यह खायँगे पर मिठाई नहीं।
१९—सदृश।
२१—यदि ऐसी स्त्री मिले तो कौन अपने जीवन को सफल न समझे।
२२—यमराज। २३—इसमें फल कम सड़ते हैं।
२४—रासलीला बनते बनते बिगड़ गई।
२५—बचपन में कितने ही इसी के सहारे जीते हैं।
२६—बगल। २८—हुकूमत। ३१—नामों की सूची।
३२—इसमें रास्ता अच्छा कटता है।

ऊपर से नीचे

१—यह थोड़ा ही प्रयुक्त होता है। २—बाँस।
३—स्वराजियों का इससे विशेष प्रेम होता है।
५—स्वादिष्ट। ६—भाजी। ७—चमकीला।
११—गणित में आविष्कार करनेवाली एक प्रसिद्ध भारतीय महिला।
१३—लकड़ी काटनेवाला। १४—चन्द्रमा।
१६—एक प्रसिद्ध व्रजभाषा का कवि।
१७—गृहत्यागी संसार को यही समझते हैं।
१८—सिर पर चोट लगने की सूजन। १९—चन्द्रमा।
२०—मूसों का धान यहाँ बिखर गया है।
२३—पीला पड़ना। २६—एक प्रकार की छुरी।
२७—देहाती घरों में प्रायः सर के ऊपर लटका रहता है।
२९—पूँजी।
३०—यह बड़े परिश्रम के बाद हाथ में आता है।

आपकी याददाश्त के लिए वर्ग नं० २५ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० २४ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २४ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

वि	ख्या	धा	र	■	अ	ल	का	प	ति
र	■	र	ज	त	■	ह	ल	■	ल
ह	र	■	नी	म	र	ज़ा	■	म	■
■	■	व	क	■	श्री	■	■	हा	स
■	रा	म	र	स	■	हु	■	भा	प
न	य	■	■	स	ह	स	कि	र	न
स	न	स	न	■	य	ह	श	त	■
■	ग	ह	र	वा	र	■	ल	■	■
उ	द़	र	ना	■	ल	ड़ा	य	ता	■
पा	■	■	ह	वा	दा	र	■	न	ट

नोट—इस वर्ग के कूपन में नं० ३० (ऊपर से नीचे बनने वाले शब्द का आकार छूट गया था इसलिए जाँच में इस शब्द की भूल नहीं गिनी गई।

वर्ग नं० २४ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २४ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति नं०...में { कोई अशुद्धि नहीं है। १, २, ३ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर

पता

बिन्दुदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म २० अगस्त के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २५

इंडियन प्रेस, लि०,

इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० २५ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

वर्ग नं० २५ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

वर्ग नं० २५ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

नाम

पता

नोट—ये तीनों कूपन यहाँ एक साथ केवल एक व्यक्ति के भरने के लिए दिये जा रहे हैं। तीनों कूपनों को एक साथ काट कर भेजना चाहिए। जो एक कूपन भेजना चाहें वे दो को यों ही छोड़ दें। जो दो भेजेंगे उन्हें तीसरे कूपन की फ़ीस न देनी पड़ेगी। यानी वे १) में तीनों कूपन भेज सकेंगे। विशेष ब्योरा पृष्ठ १९० पर देखिए।

वर्गपूर्ति करनेवालों से

मेरे प्यारे प्रतियोगियो !

मुझे प्रसन्नता है कि हिन्दी में वर्गपहेली अब चल गई। प्रयोग के तौर पर पहले पहल जब 'सरस्वती' में इसका आरम्भ किया गया तब मुझे इतनी सफलता की आशा नहीं थी। अब तो मुझे विश्वास हो चला है कि हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं का यह विना एक स्थायी स्तम्भ हुए न रहेगी।

इस पत्र में पिछले साल के अनुभव से मैं इस पहेली में भाग लेनेवालों से कुछ काम की बातें बताना चाहता हूँ।

(१) यद्यपि नियम प्रत्येक मास में छपते हैं और उनमें बहुत कम परिवर्तन होता है तथापि प्रतियोगियों को चाहिए कि वे उन्हें हर बार पढ़ लिया करें।

(२) प्रतियोगियों के ऐसे पत्रों का जो सर्वसाधारण की हितभावना से लिखे गये होंगे, इसी पृष्ठ पर उत्तर दिया जायगा।

(३) व्यक्तिगत पत्रों के उत्तर जवाबी टिकट आने पर भी नहीं भेजे जा सकते। उदाहरण के लिए कोई वर्ग का नतीजा निकलते ही माँगे और उसके लिए टिकट भेजे तो उसकी इच्छा की पूर्ति न की जा सकेगी।

(४) यदि वर्ग ग़लत जान पड़े तो भी उसकी पूर्ति करनी चाहिए और दूसरे महीने में उत्तर के साथ वर्ग-निर्माता की टिप्पणी की प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि वर्ग में कोई भूल होगी तो उसके कारण प्रतियोगियों को हानि न पहुँचने पावेगी। पर इस दशा में भी पूछ ताछ न करनी चाहिए।

(५) वर्ग का उत्तर प्रकाशित होने पर प्रतियोगियों की शङ्कायें छापी जायँगी और उनको समुचित उत्तर इसी पृष्ठ पर दिया जायगा।

(६) बहुत-से नये प्रतियोगी पूछते हैं कि वे वर्ग की पूर्ति कैसे करें ? यह बात नियमों पर ग़ौर करने से समझ में आ जायगी। प्रत्येक नम्बर से कोई न कोई शब्द शुरू होता है और वह या तो बायें से दाहिने और या ऊपर से नीचे ▩ ऐसे निशान तक जाता है। कई संकेत ऐसे मिलेंगे जिनके उत्तर में कई कई शब्द बनते हैं। उन्हीं शब्दों में से ठीक शब्द के चुनाव पर पुरस्कार का जीतना निर्भर करता है। संकेत पर प्रत्येक पहलू से ग़ौर करने से ऐसा शब्द निकल आवेगा।

(७) कोष की मदद इस प्रतियोगिता में आवश्यक नहीं होती। जो लोग यह सोचते हैं कि बिना कोष के इस पहेली में पड़ना नहीं चाहिए वे ग़लती करते हैं। वर्ग-निर्माता की कोशिश यही रहती है कि ऐसे शब्द लिये जायँ जिन्हें सब आदमी सोच सकें। पर जो कोष का व्यवहार कर सकते हों उन्हें अवश्य करना चाहिए। अकारादि क्रम से देखने से वे जितने भी उत्तर हो सकते हैं सब निकाल सकेंगे। कठिनाई उन्हें ठीक शब्द के चुनाव करने में होगी। उसे वे थोड़ा ग़ौर करने से मालूम कर सकेंगे।

(८) मनिआर्डर की रसीद से हमारा मतलब उस रसीद से है जो पोस्ट आफ़िस से रुपया भेजते समय मिलती है। वर्गपूर्ति के साथ उसी को भेजना चाहिए।

(९) वर्गपूर्ति भेजने से पूर्व उसकी नक़ल अपने पास ज़रूर रख लेनी चाहिए और वर्ग की पूर्ति बहुत ही साफ़ सुथरे ढंग से करनी चाहिए।

(१०) जो प्रथम इनाम पाते हैं उनके बारे में जानने को सब प्रतियोगी उत्सुक होते हैं। इसलिए वे इनाम पाने की सूचना पाने पर अपना चित्र भेजेंगे तो वह सरस्वती में तुरन्त छाप दिया जायगा।

—वर्गसम्पादक
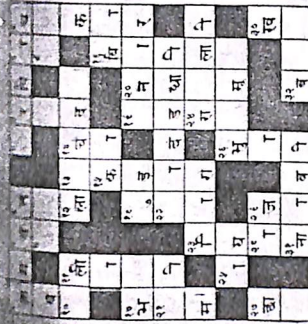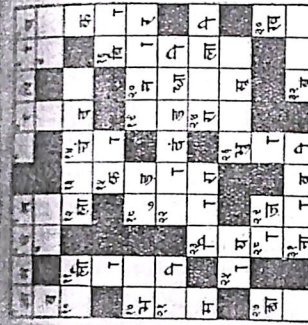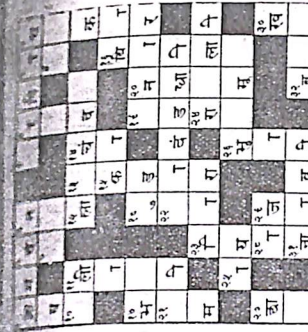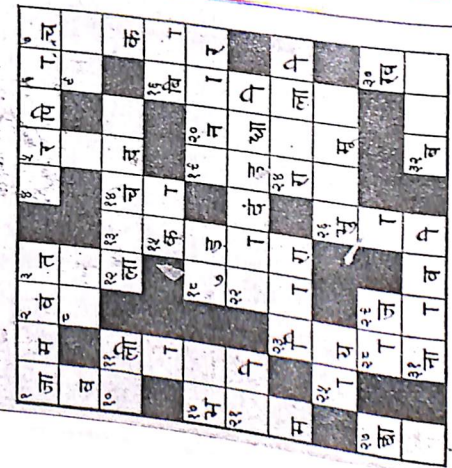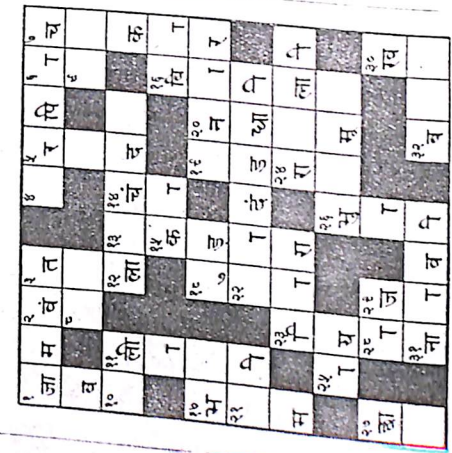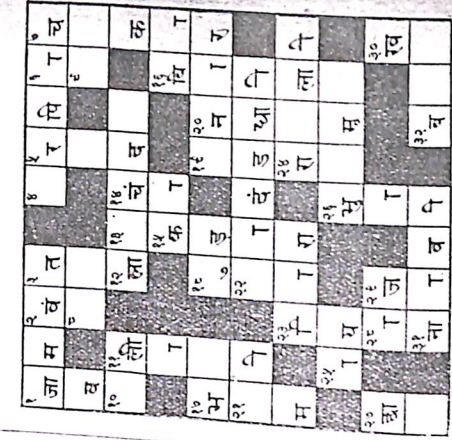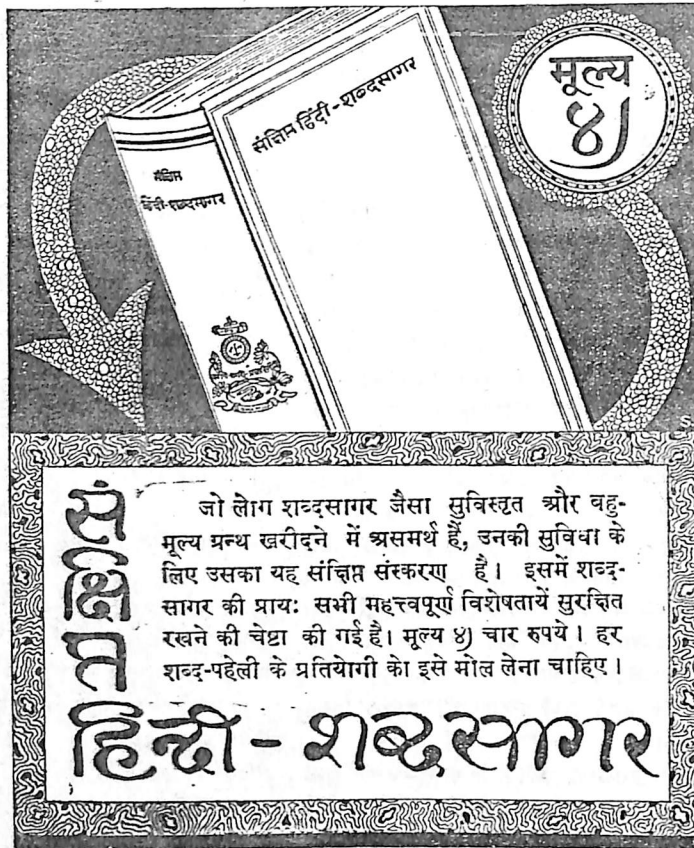
आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० २५ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर २५ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २७ अगस्त सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

इधर उधर की
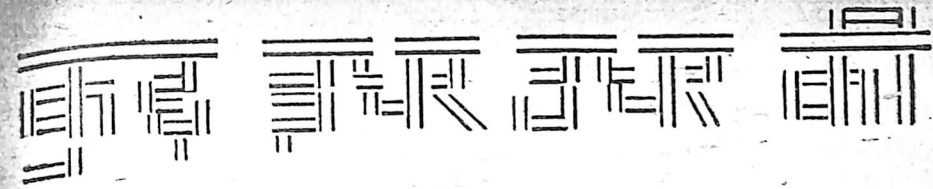
एक मासिक पत्र के साहित्यिक स्तम्भ में निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित हुआ है—

"रवीन्द्रनाथ और स्वर्गीय प्रेमचन्द जैसे साहित्यिकों की कृतियों का भी जब यथेष्ट प्रचार नहीं होता तो औरों का क्या कहना। एक बार रवीन्द्रनाथ ने कहा था कि यदि मेरी रचनाओं की काफ़ी खपत होती तो अब तक क्या मेरी 'गद्य ग्रन्थावली' का द्वितीय संस्करण भी नहीं होता? शरच्चन्द्र के गृहदाह उपन्यास का बारह वर्षों में एक संस्करण छपा था।"

इस टिप्पणी को पढ़ कर एक नवीन हिन्दी-साहित्यिक ने उस दिन कहा—"जान पड़ता है, ये महाशय बहुत बूढ़े हैं और उन दिनों की बातें कह रहे हैं जब श्री रवीन्द्रनाथ और श्री शरच्चन्द्र के साहित्यिक जीवन का आरम्भ-काल था। पर इनकी ऐसी निराशाभरी बातों से हम नवयुवक हतोत्साह नहीं हो सकते।" हम भी यही चाहते हैं।

× × ×

कुछ लोगों ने इधर बुरी तरह एकाङ्की नाटक लिखना आरम्भ किया है और एक मासिक पत्र में यह विवाद भी छेड़ दिया है कि आधुनिक साहित्य में एकाङ्की नाटकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक साहब ने तो यहाँ तक कह डाला है कि ये एकाङ्की नाटक गाँव गाँव और गली गली खेले जाने चाहिए। बहुत ठीक है। हम भी इन सब बातों से सहमत हैं, परन्तु पहले एक नमूना देख लीजिए। एक ऐसे ही नाटक में एक पात्र 'गृहस्वामी' कहता है—"तुम कहीं गये थे। मैं तुमसे कहता हूँ कि जब तुम्हें रात में पढ़ाना हुआ करे तो शाम को साइकिलबाज़ी न किया कीजिए। (थूकता है) भाईजान, इसमें आप ही का फ़ायदा है।" पाठक 'थूकता है' पर ग़ौर करें। रङ्गमंच पर जब गृहस्वामी के रूप में यह अभिनेता बारबार थूकेगा तब रङ्गमंच अत्यन्त आकर्षक हो उठेगा। एक आदमी के थूकने से दूसरे को फ़ायदा पहुँचता है, यह भी इससे साबित हो जायगा।

× × ×

कला-तत्व शीर्षक के अन्दर श्री काका कालेलकर के कला-सम्बन्धी विचार एक पत्रिका में हाल में प्रकाशित हुए हैं। उसका एक अंश इस प्रकार है—

पैर में कण्टक, धोती में दर्भ का टुकड़ा और दाँत में फँसी हुई फाँस जिस प्रकार सहन नहीं होती, उसी प्रकार भाषा में ग्राम्यता, हृदय में शंका और जीवन में कला-विहीनता या नीरसता कदापि नहीं सहन होनी चाहिए!

हमारा ख़याल था कि काका साहब भाषा को गाँववालों के लिए भी सुलभ बनाने के पक्ष में हैं। पर इस वक्तव्य से मालूम हुआ कि उन्हें भाषा में 'ग्राम्यता' सह्य तक नहीं है। यह एक नई बात मालूम हुई।

× × ×

प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा 'रूपाभ' में लिखते हैं—

"हिन्दी हिन्दी है और उर्दू उर्दू। हिन्दुस्तानी की खिचड़ी जिस प्रकार पकाई जा रही है वह बहुत ही भयावह है।" प्रोफ़ेसर साहब की भयत्रस्त कल्पना में हिन्दुस्तानी का क्या स्वरूप है, इसका कुछ अनुमान यहाँ दिये गये कार्टून से किया जा सकता है।

× × ×

एक मासिक पत्रिका में उसकी विद्वान् सम्पादिका ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि भारत-वर्ष में पतियों-द्वारा पत्नियों का परित्याग अभी पूर्ववत् जारी ही है। राम ने सीता का, दुष्यन्त ने शकुन्तला का, नल ने दमयन्ती का जिस निष्ठुरता के साथ परित्याग किया था उसकी निन्दा न करके समाज ने उनकी प्रशंसा ही की

है। इसका कारण सम्पादिका महोदया ने यह बताया है—"सामयिक न्यायदण्ड सदा से पुरुष के हाथ में रहता चला आ रहा है।" हम पूछना चाहते हैं कि यदि न्यायदण्ड स्त्रियों के हाथ में होता तो क्या इसी नियम के अनुसार परिस्थिति उलटी न हो जाती और क्या तब सीता के हाथों राम, शकुन्तला के हाथों दुष्यन्त और दमयन्ती के हाथों नल को कष्ट पाते देखकर सम्पादिका महोदया को उनके साथ हमदर्दी न होती ?

× × ×

स्त्रियों की पत्रिकाओं में अधिकांश लेख स्त्रियों और पुरुषों को दो श्रेणियों में विभक्त करते हुए देखे गये हैं। पर वे यह नहीं सोचते कि प्राचीन काल में जीवन उतना सुरक्षित न था जितना आज है। यदि होता तो उस भी स्त्री को समाज वही स्वाधीनता देता जो आज दे है। ज्यों ज्यों जीवन सुरक्षित होता जायगा, त्यों त्यों को अपने अङ्गरक्षक यानी पति की आवश्यकता प्रतीत होती जायगी और अन्त में एक वह दिन आवेगा जब स्त्री किसी पुरुष का भोजन पकाने या उसके बच्चे पालने के लिए घर में न बैठेगी। भविष्य के सुख अनुमान करके मनुष्य भूत के कष्टों को भूल जाता है और वर्तमान के कष्टों को सहर्ष सहता है। यह एक बहुत आशा है, जिसके सहारे ये लेखक भारतीय नारी को जीवित रख सकते हैं।

× × ×

क्यों जनाब, मुझे तो शायद अद्धा टिकट लेना पड़ेगा ?
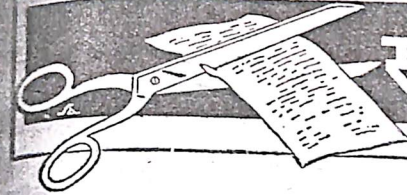
युक्तप्रान्त में जेल-सुधार

युक्तप्रान्त की सरकार जेलों का व्यापक सुधार करने का प्रारम्भ से ही यत्न कर रही है। उसने इसके लिए एक कमिटी नियुक्त की थी, जिसकी रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। इस रिपोर्ट से प्रकट होता है कि इस विभाग के पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी श्रीयुत गोपीनाथ श्रीवास्तव जेलों के सञ्चालन में कैसा क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' ने अपने सम्पादकीय लेख में श्रीवास्तव जी की भूरि भूरि प्रशंसा की है। उक्त रिपोर्ट का जो परिचय उक्त लेख में दिया गया है उसका संकलित रूप इस प्रकार है—

प्रान्त की जेलों की वर्तमान स्थिति बहुत भयानक है। हर ज़िले में जेल की वैसी ही ज़रूरत समझी जाती है, जैसी कि सरकार के अन्य महकमों की। पुलिस और अदालत के साथ जेल का होना ज़रूरी समझा जाता है। यही कारण है कि युक्तप्रान्त में क़ैदियों की संख्या ३० हज़ार है, जो सारे हिन्दुस्तान के क़ैदियों की संख्या मालूम होती है। बम्बई, मध्य-प्रान्त, बिहार और उड़ीसा के चार सूबों के क़ैदियों की संख्या के जोड़ से भी यह अधिक है। इँग्लैंड के क़ैदियों की संख्या से यह तिगुनी है। निश्चय ही यह संख्या प्रान्त के लिए लज्जा और कलङ्क है। उसके लिए प्रान्त को लज्जा का अनुभव होना सहज और स्वाभाविक है। कांग्रेसी सरकार यह सहन नहीं कर सकती कि उसके शासन में इतनी जन-संख्या जेलों में पड़ी सड़ती रहे। इसलिए उसने निश्चय किया है कि इस संख्या को कम करने का यत्न किया जाय। इँग्लैंड ने तीस वर्षों के निरन्तर यत्न से अपने यहाँ क़ैदियों की संख्या दो-तिहाई कम कर दी है।

जेलों के अफ़सरों को क़ैदियों के साथ व्यवहार करने के लिए उचित शिक्षा दी जानी चाहिए। जैसे हर कोई अस्पताल या स्कूल नहीं चला सकता, वैसे ही हर किसी से यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह जेल चला सकेगा। अतएव श्रीवास्तवजी विदेशों की शिक्षा-प्रणाली के अनुसार अपने प्रान्त के जेलों के अफ़सरों के लिए भी एक विशेष प्रकार की शिक्षा-पद्धति तैयार करने का यत्न कर रहे हैं।

इधर क़ैदियों का श्रेणी-विभाग आयु के अनुसार किया जायगा और उसी के अनुसार उनके रहन-सहन, शिक्षा और सुधार की व्यवस्था की जायगी। मनुष्य की १५—२१ वर्ष की आयु पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है। इसी आयु में वह बुरी या अच्छी आदतें सीखता है। विदेशों में बोर्स्टल जेल इसी आयु के क़ैदियों के लिए बनाये जाते हैं और उनमें उनके लिए सभी तरह की व्यवस्था विशेष रूप में की जाती है। अतएव यहाँ जेल में सभी क़ैदियों के लिए अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध किया जायगा। उसे साक्षर ही नहीं, किन्तु ज्ञानवान् बनाने की भी कोशिश की जायगी और जो काम वह विशेष रूप में करेगा उसके लिए उसको मज़दूरी भी दी जायगी। यह उसकी इच्छा होगी कि वह इस आमदनी को अपने भोजन के लिए खर्च कर ले अथवा जेल से बाहर जाने के समय के लिए जमा कर ले। मेहनत-मज़दूरी के ऐसे काम उससे नहीं लिये जायँगे जो पशुओं के करने के हैं। चक्की, कोल्हू और चरस आदि में उसको पशुओं की तरह नहीं जोता जायगा। इससे उसकी मनुष्यता, स्वाभिमान और नैतिकता की रक्षा हो सकेगी। उसके भोजन में भी सुधार किया जायगा। उसे गाने और मनोविनोद के लिए भी कुछ समय दिया जायगा। बीड़ी और तमाखू की जेलों में सख्त मुमानियत होने पर भी कोई जेल ऐसा नहीं जिसमें इनका प्रयोग चोरी-चमारी से क़ैदी न करते हों। सच तो यह है कि बीड़ी तथा तमाखू के लिए ही क़ैदियों का भीषण नैतिक पतन होता है। अतएव बीड़ी और तमाखू भी कैदियों को सरकार [illegible] पर दी जाया करेगी।

राजबन्दियों के लिए अभी तक जेलों में कोई विशेष व्यवस्था नहीं है। इसलिए इस शब्द का समावेश जेल के

क़ानून में किया जायगा। जो व्यक्ति राजनैतिक अपराध के लिए सज़ा पायगा और उस अपराध के करने में उसकी निजी लाभ की कोई भावना न होगी, उसे 'राजवन्दी' कहा जायगा। साम्प्रदायिकता या श्रेणी-युद्ध की भावना को उत्तेजन देनेवाले राजवन्दी नहीं माने जायँगे। राजवन्दियों को एक जेल में रक्खा जायगा, वे आपस में मिल सकेंगे, समाचार-पत्र पढ़ सकेंगे, सप्ताह में एक मुलाक़ात ले सकेंगे और एक पत्र लिख सकेंगे, संगीत का सामान रख सकेंगे और बाहर खुले में सो सकेंगे, कोई काम करने के लिए उन्हें बाध्य नहीं किया जायगा। घर से भोजन मँगाने की भी सुविधा दी जायगी। घर में किसी के बीमार होने पर उनको 'पैरोल' पर छोड़ा जा सकेगा। महिला राजवन्दियों को भी उचित सुविधायें दी जायँगी।

जेलों के शासन की अच्छाई या बुराई का अनुमान अब तक केवल उस महकमे के जमा-ख़र्च से लगाया जाता था और यह कोशिश की जाती थी कि यह महकमा घाटे में न रहे। अब इस मनोवृत्ति को तिलाञ्जलि देकर जेलों को बतौर अस्पतालों और स्कूलों के चलाया जायगा।

स्थायी गवर्नरों की नियुक्तियाँ

मांटफ़र्ड-सुधार के समय में जब लार्ड सिनहा बिहार और उड़ीसा के गवर्नर बनाये गये थे तब इस बात की आशा हुई थी कि भविष्य में इस उच्च पद पर उपयुक्त भारतीय भी नियुक्त होते रहेंगे। उनके बाद मध्य-प्रदेश, संयुक्त-प्रान्त में अस्थायी रूप से भारतीयों को कुछ काल के लिए गवर्नर का पद दिया भी गया। परन्तु इस वर्ष यद्यपि अवसर आये तो भी भारतीयों की नियुक्ति नहीं की गई। समाचारपत्रों में यथासमय इसकी काफ़ी चर्चा हुई और भारत-सरकार की नीति की आलोचना भी की गई, परन्तु सरकार ने उसकी परवा नहीं की और जहाँ जहाँ के गवर्नर छुट्टी लेकर विलायत गये, उनके स्थान पर सिविल सर्विस के अँगरेज़ उच्चाधिकारी ही नियुक्त किये गये। इस बात को लेकर राष्ट्रपति बाबू सुभाषचन्द्र बोस ने मदरास के 'हिन्दू' को एक वक्तव्य दिया है। उनके वक्तव्य का मुख्य अंश यह है—

इस वर्ष और वर्षों की अपेक्षा बहुत अधिक गवर्नर छुट्टी पर गये हैं और अस्थायी प्रबन्ध करना पड़ा है जैसा कि पहले कभी नहीं हुआ था। उन स्थानों को छोड़कर जहाँ प्रान्तीय गवर्नर ही दूसरे प्रान्तों में भेजे गये हैं—यद्यपि यह प्रबन्ध भी बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता—बाक़ी सभी जगहें ब्रिटिश सिविलियनों-द्वारा भरी गई हैं। इसमें एक आवश्यक सिद्धान्त निहित है जो राजनीतिक के साथ साथ वर्णसम्बन्धी भी है।

अब तक बड़े अधिकारियों से इसका कोई उत्तर नहीं मिला है कि छुट्टी के कारण रिक्त हुए एक स्थान के लिए भी ग़ैरसरकारी भारतीय क्यों नहीं चुना गया। यह बात ध्यान रखने योग्य है कि भारत के प्रायः सब पत्रों ने, भारतीय तथा ऐँग्लो-इण्डियन ने भी, इस विषय को पूरा महत्त्व दिया था। यह इस बात का एक प्रमाण है कि हमारे शासक देशवासियों की इच्छाओं के प्रति कैसी उपेक्षा का भाव रखते हैं। बहुत निन्दित द्विचक्र शासन प्रणाली में गवर्नर का पद ग़ैरसरकारी भारतीयों की पहुँच के बाहर की चीज़ नहीं समझा जाता था। प्रान्तीय गवर्नर के पद पर नियुक्त होनेवाले प्रथम भारतीय लार्ड सिंह ने उस समय हमारे हृदयों में यह आशा उत्पन्न कर दी थी कि कई दूसरे प्रान्तों को भी भारतीय कर्णधार प्राप्त करने का सौभाग्य होगा। पर हमारी यह आशा कभी पूरी न हुई। बराबर आन्दोलन होने के फलस्वरूप बहुत दिनों के बाद छुट्टी के कारण रिक्त होने पर यह पद शासन परिषद् के सबसे पुराने सदस्य-द्वारा, फिर वह सिविलियन हो या ग़ैरसरकारी भारतीय, भरा जाने लगा। इससे स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ।

पर प्रान्तीय स्वाधीनता की इस नई योजना में तो हम और पीछे खिसके हैं। क्या सरकार का सचमुच यह कहना है कि छुट्टी से ख़ाली होने पर इन स्थानों पर ग़ैरसरकारी भारतीयों को नियुक्त करने से सन्तोषजनक काम नहीं हो सकता? जान तो यह पड़ता है कि वह भारतीयों को इन पदों से वंचित रखना चाहती है—कम से कम कुछ समय के लिए। यही कारण है कि हमें अपनी माँग पर ज़ोर देना चाहिए। प्रान्तीय स्वाधीनता मिलने का क्या यह अर्थ है कि भारतीय उन थोड़े अधिकारों से भी हाथ धोवेंगे जो उन्हें पुरानी शासन-व्यवस्था में मिले हैं? यदि यह बात हो तो हमें इसका एक और प्रमाण मिलता है कि नया विधान दिखाऊ है।

क्या स्थानापन्न गवर्नर का काम करने के लिए किसी भारतीय को चुनना अधिकारियों के लिए असम्भव था? मैं आशा करता हूँ कि जातीय पक्षपात के वश होकर सरकार कोई कार्य न करेगी। ऐसा करने से दोनों राष्ट्रों के बीच की खाई और चौड़ी हो जायगी। स्थायी या स्थानापन्न गवर्नर के पद के योग्य भारतीय सिविल सर्विस के पारितोषिक प्राप्त ब्रिटिश लड़के ही न समझे जाने चाहिए। मुझे यह निश्चित मालूम होता है कि वह दिन दूर नहीं है जब ऐसे प्रत्येक पद पर इसी देश की सन्तान स्थित रहेगी।

हम भारतीय विधान नहीं चाहते

पण्डित जवाहरलाल इस समय ग्रेटब्रिटेन में हैं। वे मिस्र, स्पेन और पेरिस होकर ब्रिटेन गये हैं। सभी जगह उनके अनुरूप ही उनका स्वागत हुआ और सभी जगह उन्होंने अपने अनुरूप ही भारत की स्वाधीनता की माँग ज़ोरदार शब्दों में उपस्थित की। ब्रिटेन में तो उनका और भी विशेषता के साथ आदर-सत्कार हुआ और वहाँ के बड़े बड़े आदमियों ने उनसे भेंट करके भारत के मामले में बातचीत की। यह सब सुनकर लोगों ने समझा होगा कि यह सारी बातचीत किसी उद्देश्यविशेष से हो रही है। इसी से नेहरू जी को अपनी स्थिति स्पष्ट करनी पड़ी है। लंदन के कैक्स्टन-हाल में पत्रप्रतिनिधियों से बातें करते हुए जो वक्तव्य उन्होंने दिया है उक्त मामले के सम्बन्ध में उसका मुख्य अंश यह है—

कुछ एक लोगों का ख़याल है कि मैं यहाँ अफ़सरों तथा दूसरे व्यक्तियों के साथ कोई समझौता करता फिरता हूँ। मगर मैं यहाँ इस काम के लिए नहीं आया। मैंने किसी भी व्यक्ति के साथ छिपे या ज़ाहिरा तौर पर भारतीय विधान में कोई संशोधन करने की बाबत किसी क़िस्म की चर्चा नहीं की। अलबत्ता सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी व्यक्तियों के साथ मिलकर मैंने भारतीय समस्याओं पर अवश्य विचार किया। मैंने उनके सामने भारत का दृष्टिकोण [illegible] की कोशिश की, मगर मैंने यह कोशिश नहीं की—कि किसी व्यक्ति के दिल से कोई ऐसी-वैसी बात निकल आवे। हमारे सोचने का तरीक़ा यह नहीं, हम यह कोशिश ही नहीं कर रहे हैं कि भारतीय विधान में ज़रा-सा भी परिवर्तन हो जाय, क्योंकि हम तो उस विधान को ही नहीं चाहते। मुझे ऐसा लगता है कि अब इँग्लैंड को बख़ूबी मालूम हो गया है कि भारत की असली समस्या क्या है और वह कैसी जटिल है। बहुत-से विचारशील महानुभावों को यह महसूस होने लगा है कि भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन बहुत मज़बूत हो गया है और यदि राष्ट्रवादी भारत की इच्छा के प्रतिकूल उस पर कुछ भी थोपा गया तो गम्भीर गड़बड़ पैदा हो जायगा।

मैंने कोशिश की है कि यहाँ के लोग भारतीय समस्या को अंतर्राष्ट्रीय समस्या का एक अंग समझें। मैंने देखा है कि जहाँ इस तरह विचार किया जाता है, वहाँ भारत की समस्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान पा जाती है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि भारत की राष्ट्रीय प्रगति का ब्रिटेन पर भी असर पड़े।

इस समय भारत में ब्रिटेन की वैदेशिक नीति का विरोध किया जा रहा है और सोचा जा रहा है कि भारत को उसका साथ नहीं देना चाहिए। यह भी एक दलील है, जिसकी बिना पर हम कह सकते हैं कि हमारी अपनी ही विदेशी नीति होनी चाहिए तथा हमें स्वाधीनता मिलनी चाहिए। मेरी राय में अब इँग्लेंडवालों ने यह महसूस करना शुरू कर दिया है कि भारतीय समस्या का एकमात्र हल यह है कि भारत के विधान बनाने का अधिकार जनता-द्वारा चुनी राष्ट्रीय-पंचायत को दे दिया जाय। यह एकमात्र उपाय ऐसा है जो प्रजातन्त्री है और जिसे किसी न किसी समय हमें अपनाना होगा।

चेकोस्लोवेकिया का विकास

योरप का चेकोस्लोवेकिया का देश वहाँ की राजनीति का केन्द्र बना हुआ है। उस पर जर्मनी की क्रूर दृष्टि है और वह उसे भी आस्ट्रिया की तरह हड़प लेना चाहता है। परन्तु इस अवस्था को देखकर रूस, फ्रांस और ब्रिटेन तन गये, अतएव जर्मनी मौक़ा देखकर चुप मार गया। परन्तु स्थिति की जटिलता ज्यों

की त्यों बनी हुई है और उसके कारण योरप में युद्ध की ज्वाला क्षण भर में भभक सकती है। ऐसे महत्त्व के देश का परिचय 'भारत' में छपा है। उस लेख का सारांश यह है--

चेकोस्लोवेकिया राष्ट्र का निर्माण योरपीय युद्ध के पश्चात् किस प्रकार हुआ, चेक और स्लोवक लोगों को आस्ट्रिया-हंगरी ने कैसे अलग अलग कर रक्खा था और अब उसकी स्थिति कैसी है, इस पर श्री रिचार्ड पेनिंगटन ने अपने एक लेख में प्रकाश डाला है, जिसका आशय नीचे प्रकाशित किया जाता है—

चेकोस्लोवेकिया कृत्रिम नहीं बल्कि एक प्राकृतिक राष्ट्र है। चेक तथा स्लोवक दोनों जातियाँ सातवीं शताब्दी से यहाँ रह रही हैं। स्लोवक जाति के लोगों को मगयार (अर्थात् हंगेरियन) लोगों ने थोड़े ही दिनों में जीत लिया। इसके बाद स्लोवक लोग एक हज़ार वर्ष तक पराधीन बने रहे। किन्तु चेक लोग स्वतंत्र बने रहे और उन्होंने बोहेमिया का प्रसिद्ध राज्य स्थापित किया।

अपनी धार्मिक तथा राजनैतिक स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए चेक लोगों को दो बार जर्मनी से लोहा लेना पड़ा। किन्तु दूसरे आक्रमण में वे पराजित हो गये और आस्ट्रिया की अधीनता में चले गये। पिछले योरपीय युद्ध तक चेक लोग आस्ट्रिया के मातहत रहे।

१९वीं शताब्दी में आस्ट्रिया और हंगरी के अल्प-संख्यकों में राष्ट्रीय भावना का पुनर्जन्म होने लगा। योरपीय युद्ध के छिड़ने पर चेक तथा स्लोवक जाति के लोगों को यह आशा होने लगी कि अगर आस्ट्रिया-हंगरी युद्ध में पराजित और ध्वस्त कर दिया गया तो हम फिर स्वाधीन बन जायँगे।

इस आशा के उत्पन्न होते ही घर और बाहर दोनों जगह आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। पार्लियामेंट के सदस्य श्री मसारिक की अध्यक्षता में राष्ट्रीयता का आन्दोलन अग्रसर किया गया। १९१५ ईसवी में श्री बेन्स ने भी जो इस समय चेकोस्लोवेकिया के राष्ट्रपति हैं, इस आन्दोलन में शामिल हो गये। आस्ट्रिया के विरुद्ध तथा चेक स्वाधीनता के पक्ष में उन्होंने लंदन से प्रथम घोषणापत्र प्रकाशित [illegible] 'नेशनल चेक कौंसिल' की स्थापना की गई और श्री मसारिक उसके अध्यक्ष बनाये गये।

पेरिस में एक चेक-सरकार क़ायम की गई और १८ अक्टूबर १९१८ ईसवी को चेकोस्लोवेकिया की स्वतंत्रता सरकारी तौर पर घोषित कर दी गई। संयोगवश उसी महीने में आस्ट्रिया का साम्राज्य विध्वंस हो गया और चेक लोग वास्तविक रूप से स्वतन्त्र हो गये। प्रेग में जो प्रजातंत्र-राज्य स्थापित हुआ उसमें स्लोवक लोग भी सम्मिलित हो गये। जर्मन लोगों ने इसके विरुद्ध विद्रोह किया, किन्तु वे सफल नहीं हुए।

वर्सेलीज़, सेन्ट जर्मन तथा ट्रियानन में युद्ध के पश्चात् जो संधियाँ हुई उनमें इस नये प्रजातंत्र-राज्य की सीमा निर्धारित कर दी गई। सेंट जर्मन की संधि में अल्प-संख्यकों के अधिकारों को सुरक्षित रखने की गारंटी दी गई। नये राष्ट्र के अन्दर बोहेमिया तथा मोराविया नामक दो आस्ट्रियन प्रदेश, आस्ट्रियन साइलेसिया का कुछ भाग, हंगरी के स्लोवक लोगों का प्रदेश और रूथेनिया भी शामिल किये गये।

२९ फ़रवरी १९२० ईसवी को एक राष्ट्रीय परिषद (नेशनल असेम्बली) ने विधान स्वीकृत किया। लोकसत्ता के आधार पर प्रजातंत्र की स्थापना की गई। एक निर्वाचित प्रेसीडेंट अथवा राष्ट्रपति की व्यवस्था की गई और दो सभाओं की एक पार्लियामेंट क़ायम की गई। प्रजातंत्र की स्थापना के पूर्व जो जर्मन चेक लोगों पर राज करते थे वे कालचक्र के प्रभाव से उन्हीं के अधीन हो गये। किन्तु अन्त में १८ फ़रवरी १९३७ ईसवी के समझौते के अनुसार अल्प-संख्यकों के अधिकार स्वीकार कर लिये गये और वादा किया गया कि शासन-कार्य में जर्मन अधिक अनुपात में लिये जायँगे।

इस समय उसके पास पूर्णरूप से सुसज्जित १,७०,००० सैनिक मौजूद हैं और आवश्यकता पड़ने पर वह २० लाख सिपाही युद्ध के लिए एकत्र कर सकता है। फ्रांस और रूस के साथ उसकी संधि है। इसलिए यदि उस पर किसी देश का आक्रमण हुआ तो ये दोनों देश भी चेकोस्लोवेकिया की सहायता करने को तैयार हो जायँगे।

भारत में सिंचाई की व्यवस्था

भारत कृषिप्रधान है, तथापि उसका यह एकमात्र धन्धा भी दैवाधीन ही है। यदि मौसम में ठीक ठीक पानी न बरसे तो देश को अकाल का सामना करना पड़ेगा। अँगरेज़ी सरकार ने नहरें निकाल कर खेती की सिंचाई के लिए बहुत अधिक व्यवस्था कर दी, परन्तु भारत जैसे बड़े देश में उसका वह प्रयत्न भी लघु ही माना जायगा, क्योंकि वह अभी देश की कुल जोती जानेवाली भूमि के ८ वें भाग भर की सिंचाई की व्यवस्था कर सकी है, जिसका विवरण इस प्रकार है--

नहरों की दृष्टि से पंजाब सबसे आगे है, जहाँ इनसे ११० लाख एकड़ से भी अधिक की सिंचाई होती है। मदरास का स्थान दूसरा है, जहाँ लगभग ७५ लाख एकड़ की सिंचाई होती है और युक्तप्रान्त तथा सिन्ध का तीसरा है, जहाँ प्रत्येक में ४० लाख एकड़ की सिंचाई होती है। बिहार का स्थान इन सबके बाद है, जहाँ नहरों से केवल ९ लाख एकड़ की सिंचाई होती है।

सिन्ध में बोई जानेवाली समस्त भूमि का लगभग ९० प्रतिशत सरकारी नहरों-द्वारा सींचा जाता है। पंजाब का स्थान दूसरा है, जहाँ ३५ प्रतिशत भूमि सींची जाती है, मदरास का तीसरा है जहाँ २१ प्रतिशत और उत्तर-पश्चिम-सीमा-प्रान्त का चौथा है, जहाँ २० प्रतिशत भूमि सरकारी नहरों से सींची जाती है। बंगाल ही केवल एक ऐसा प्रान्त है, जहाँ खेती की कुल ज़मीन का १ प्रतिशत से भी कम सींचा जाता है।

इन तीन सालों में ब्रिटिश भारत का सिंचाई का समस्त औसत क्षेत्र लगभग ३१० लाख एकड़ था, जब कि इससे पहले के तीन सालों में केवल ३०० एकड़ था। इस क्षेत्र में सिंध और बंगाल का हिस्सा सबसे अधिक है। इसका कारण यह है कि सन् १९३२-३३ में लायड बाँध की नहरें बन जाने से और बंगाल में दामोदर नहर बन जाने से सिंचाई का क्षेत्र इन दोनों प्रान्तों में भी बहुत अधिक बढ़ गया। युक्तप्रान्त के सिंचाई के क्षेत्र में वृद्धि हुई है। उसका प्रधान कारण सरकारी ट्यूब-वेलों का लगना और शक्कर के उद्योग-व्यवसाय की वृद्धि होना है। मध्यप्रान्त ही केवल ऐसा प्रान्त है जहाँ सिंचाई क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय कमी हुई, किन्तु उसका कारण वहाँ के ऋतुओं की विशेषता और आर्थिक स्थिति है।

इन तीन वर्षों में जितनी भी योजनायें पूरी की गईं, उनमें सबसे बड़ी लायड (सक्खर) बाँध की आयोजना है। यह नहर भारत की ही नहीं, बल्कि सम्भवतः संसार की किसी भी बड़ी से बड़ी नहर से बड़ी है। इसकी शाखाओं की लम्बाई ६,६०० मील, पानी का रास्ता ४,८०० मील और नदी से पानी खींचने की ताक़त प्रतिसेकंड ४,६०० घन फ़ुट है। उस योजना में जो सबसे बड़ी नहर है वह संसार की सब नहरों से चौड़ी है और उसके तलप्रदेश की चौड़ाई पनामा-नहर के तलप्रदेश की चौड़ाई से अधिक है।

उस नहर के अन्तर्गत कुल ७५ लाख एकड़ ज़मीन आती है, जो मोटे हिसाब से इँग्लेंड के चौथाई हिस्से के बराबर और सींचे जानेवाले समस्त क्षेत्र से बड़ी है। उस ज़मीन में से लगभग ६२॥ लाख एकड़ या उतनी ज़मीन जितनी मिस्र में अभी सींची जाती है, खेती लायक़ है और तख़मीना लगाने से यह बात मालूम हुई है कि जिस समय यह आयोजना पूरी हो जायगी, उस समय इससे लगभग ५५ लाख एकड़ ज़मीन सींची जा सकेगी।

('अर्जुन')

डाक-विभाग की उलटी नीति

डाक-विभाग सरकार का एक बहुत ही लोकोपयोगी विभाग है, परन्तु कुछ टेढ़े-मेढ़े नियमों के कारण उसकी लोकप्रियता को धक्का लग रहा है। इस सम्बन्ध में साप्ताहिक आज में हिन्दी के वयोवृद्ध सम्पादक बाबू गोपालराम गहमरी ने एक लेख लिखकर सरकार का ध्यान डाक-विभाग की कठोर नीति की ओर आकृष्ट किया है। वी० पी० के नियम के सम्बन्ध में गहमरी जी इस प्रकार लिखते हैं—

डाकघर में एक वी० पी० का विभाग ऐसा है जिससे घर बैठे लोग माल भेजकर हिन्दुस्तान भर में अपना रोज़गार चलाते और कुछ थोड़ा-सा डाक महसूल देकर दाम मँगा लेते रहे हैं। लेकिन इन दिनों वी० पी० का ख़र्च इतना बढ़ गया है कि एक रुपये का माल मँगाने से पार्सल में कम से कम पौने दस आना ज़रूर ख़र्च करना

पड़ता है। इस तरह एक रुपये की चीज़ मँगाने में इतना डाक-ख़र्च देना कितना गढ़ाता है, यह भुक्तभोगी ही नहीं, सब लोग समझ सकते हैं। कम से कम ।-) डाक-महसूल, =) मनीआर्डर महसूल,)॥। ब्योरा और =) रजिस्टरी भेजने का ख़र्च सब पौने दस आना ख़र्च करके कौन आदमी डाकघर से वी० पी० मँगा सकेगा। जिसको लाचारी होगी, जिसका काम उसके बिना नहीं ही चल सकता हो, वही ऐसा करेगा। इसका नतीजा यह होता है कि व्यापारियों के रोज़गार पर तो पाला पड़ ही रहा है, डाक-विभाग की आमदनी का थैला भी नहीं भर रहा है, फलतः नित्य महसूल बाढ़ पर होता जाता है।

पहले एक पैसे का कार्ड लिखकर १) का माल बिना रजिस्ट्री के पैकेट में कम से कम -)॥ छः पैसे के ख़र्च में मँगाया जा सकता था। आज उसमें पौने दस आना ख़र्च किये बिना काम ही नहीं चल सकता। यह ख़र्च किस तरह व्यापारियों का सत्यानाश कर रहा है और डाक-विभाग के अधिकारी सब कुछ देखते हुए भी इधर ध्यान नहीं दे रहे हैं, इसका कारण कुछ भी समझ में नहीं आता। जिस डाक का मुहकमा अँगरेज़ी राज में महाजनी कारबार कहलाता था, जिसमें ज़रा भी भूल-चूक होने की गुञ्जाइश नहीं थी, जिसके सुगम प्रबन्ध और सहज महसूल के प्रताप से देश भर के लोग इस मुहकमे की तारीफ़ करते थे, आज उसकी महँगी के मारे सारा देश रो रहा है। एक दिन वह था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की चलती में चिट्ठियों का महसूल दूरी पर लगता था। भारत के बड़े लाट लार्ड बेंटिक ने वज़न पर महसूल लगाकर देश भर में डाक का मुहकमा इतना सर्वप्रिय बना दिया था कि ग़रीब से ग़रीब भिखमँगा भी इस डाकघर से लाभ उठा सकता था। और जहाँ कोई शिकायत का काम हुआ, प्रजा बिना महसूल दिये शिकायती चिट्ठी डाक के अफ़सर को भेज देती थी और उसकी झट तहक़ीक़ात होकर प्रजा का दुःख दूर किया जाता था।

विज्ञान की अनिश्चितता

संघ-न्यायालय के न्यायाधीश सर शाह सुलेमान कोरे क़ानून के ही पण्डित नहीं हैं, किन्तु वे उसी प्रकार विज्ञान के भी विशेष ज्ञाता हैं तथा उसके अन्वेषण में ही अपना अवकाश का सारा समय बिताते हैं। शिमला में उन्होंने 'विज्ञान की अनिश्चितता' पर एक रोचक भाषण किया है, जिसका सारांश यह है—

'सभी वैज्ञानिक सिद्धान्त स्वभावतः काल्पनिक सत्य (स्पेक्यूलेशन) ही हो सकते हैं। मनुष्य सिर्फ़ ऐसी बातों का ही पता लगा सकता है जो सत्य के बहुत क़रीब हों। शुरू शुरू में उसके अनुमान ज़रूर ही ग़लत साबित होते हैं और ज़्यादा तजुर्बा हासिल होने के बाद ज्यों ही उसे अपनी ग़लतियाँ मालूम होती हैं त्यों ही उसे पुराने सिद्धान्तों का परित्याग कर नये सिद्धान्तों का सहारा लेना पड़ता है। यह तरीक़ा निरन्तर जारी रहेगा, क्योंकि प्रकृति की वास्तविकता का निश्चित रूप से पता लगाने की कोशिश में मनुष्य प्रायः इसी तरह धोखा खाता रहेगा।

वैज्ञानिक सिद्धान्त कहाँ तक अनिश्चित होते हैं, इसके सम्बन्ध में उस समय कोई सन्देह नहीं रह जाता, जब हम जानते हैं कि सूर्य की उत्पत्ति हुए संभवतः ८० लाख वर्ष हो गये, दो अरब साल से पृथ्वी क़ायम है, ३० करोड़ वर्ष से पृथ्वी पर जीव-जन्तुओं का वास है तथा ३ लाख वर्ष से मनुष्य का अस्तित्व है, तो प्रकृति की यथार्थता की खोज करने के लिए दो-चार हज़ार वर्ष का मानव-ज्ञान नगण्य ही समझना चाहिए।

हम ख़याल करते हैं कि एक विद्युत्-कण (इलेक्ट्रन) का अर्धव्यास एक सेण्टीमीटर का ५० खरबवाँ हिस्सा (१ इंच = २·५४ सेण्टीमीटर) हो सकता है और वह अपने केन्द्र (नूक्लियस) के चारों ओर कई करोड़ मील प्रति सेकेण्ड की गति से घूम सकता है। यदि उसका आकार इतना छोटा हो सकता है तो उसकी बनावट का निश्चित रूप से पता लगाना नामुमकिन-सा है। मनुष्य की दृष्टि का क्षेत्र बहुत ही संकुचित है। ऐसी हालत में यह कौन कह सकता है कि अणुवीक्षण-यंत्र (ख़ुर्दबीन) की सहायता से देखी जानेवाली इस कण की छोटी दुनिया के भीतर ऐसी कोई और दुनिया छिपी हुई नहीं है जिसका पता मनुष्य को शायद कभी न लग सके।

सूर्य पृथ्वी से आकार में १३ लाख गुना बड़ा होने

पर भी वह इस विस्तृत विश्व में एक छोटे से बिन्दु के समान है। आकाशगंगा से परिसीमित नक्षत्र-मण्डल में सूर्य की बराबरी के ४ लाख तारे हैं। आकाशगंगा का व्यास इतना अधिक है कि एक सेकेण्ड में १,८६,००० मील की गति से चलनेवाले प्रकाश को भी उसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने में २,२२,००० वर्ष लगेंगे। जैसी जैसी सूक्ष्म दूरबीनें बनाई जाती हैं, वैसे वैसे लाखों नये तारे दृष्टिगोचर होते जा रहे हैं। फिर भी प्रकृति के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान हमेशा अधूरा ही रहता है। श्री एडिंगटन ने दुनिया के सब विद्युत्-कणों की संख्या का अनुमान किया है। आइनस्टाइन ने विश्व के व्यास का भी हिसाब लगा लिया है, पर इन सब बातों को हम अभी सत्य नहीं मान सकते।

ग्रामीण समाज की सुध लीजिए

श्री० वी० एल० मेहता हरिजन में लिखते हैं—

आधुनिक आयर्लेंड के महान् पुरुषों में से एक नई ग्रामीण संस्कृति के प्रचार और उसकी आकांक्षा के उत्साह में गांधीवादी विचार-धारा के बहुत नज़दीक थे। वह जार्ज रसेल थे, जो कवि ए० ई० के नाम से ज़्यादा मशहूर हैं। उनकी मृत्यु के बाद 'दी लिविंग टॉर्च' शीर्षक से उनकी जो किताब प्रकाशित हुई है उसमें साहित्य और जीवन के बारे में कुछ बेशक़ीमत विचार हैं। 'दी आयरिश स्टेट्समैन' नामक एक साप्ताहिक पत्र से अधिकांश रूप में उसका संकलन किया गया है, जिसका कि अपने विविधता-पूर्ण जीवन के अंतिम वर्षों में ए० ई० सम्पादन करते थे। साहित्य संसार में ए० ई० दर्शनशास्त्र के लेखक, साधु और कवि के रूप में मशहूर थे। यों तो वह कलाकार और पेण्टर भी थे, लेकिन इन सबसे बढ़कर वह एक व्यावहारिक स्वप्नद्रष्टा थे जिन्होंने आधुनिक डोन क्विज़ोट की तरह छोटे किसानों की ओर से बड़े आदमियों और सौदागरों से लड़ाई की और अपने जीवन के सर्वोत्तम वर्ष आयर्लेंड में भ्रमण करके सहयोग के सिद्धान्त का प्रचार करने तथा अपने व्यक्तिगत सम्मोहन एवं ज़ोरदार वाक्शक्ति के सहारे लोगों को उस आन्दोलन की ओर आकर्षित करने में लगाये। जैसा कि इस किताब के सम्पादक मॉङ्क गिब्बन ने लिखा है, "कवि अर्थशास्त्री बन गया, लेकिन अर्थशास्त्री रहा हमेशा कवि ही।"

मगर ए० ई० अर्थशास्त्री के बजाय अर्थशास्त्र के फ़िलासफ़र ही ज़्यादा थे। उनका पहला काम सामाजिक पतन के कारण बताना था, इसके बाद वह समाज-सुधार की दिशा बताते थे। उनके विचारानुसार आयर्लेंड का सामाजिक जीवन ग्रामीण जीवन का ही प्रतिरूप था। क्योंकि वह यह मानते थे कि "देशवासियों के परिश्रम पर ही समाज का सारा बल और स्वास्थ्य, बल्कि समस्त अस्तित्व निर्भर है।" इतने पर भी प्रायः हर एक देश में राजनीति, अर्थशास्त्र और समाज-सुधार शहरों की ही उपज हैं और "देशवासियों को तो उनके वही टुकड़े मिलते हैं जो राजनीतिक मेज़ पर से नीचे गिर पड़ते हैं।" ए० ई० के विश्वासानुसार, यह इसी कारण है कि देशवासियों के जीवन के बारे में अभी तक अव्वल दर्जे का विचार अधिक नहीं किया गया है। बाद में विज्ञान ने इस दिशा में पग ज़रूर बढ़ाया है; लेकिन, ए० ई० का कहना है कि, रसायनशास्त्रियों, कीटाणु-शास्त्रियों और मेकेनिकल इंजीनियरों के जतन इतने काफ़ी नहीं हैं जिनसे स्वास्थ्य की फ़िक्र न रहे। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि ज़रूरत जिस बात की है वह है राजनीतिक विचारकों की कला, वह कल्पना जिसने कि समाज-व्यवस्था का निर्माण करके उसे मानव आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया। आयर्लेंड के लिए तो, ए० ई० ने इस बात पर ज़ोर दिया कि, विशेषज्ञ के बजाय ऐसे चिकित्सक का ज़्यादा महत्त्व है जो मानव-स्वास्थ्य के सामान्य नियमों को समझता हो।

यह स्थिति भारतवर्ष पर कहाँ तक लागू होती है? ग्रामीण संस्कृति का निर्माण निस्सन्देह वर्तमान भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता है। पर ए० ई० जिस नतीजे पर पहुँचे उसी पर महात्मा गांधी भी पहुँचे हैं, याने, मानव-संस्कृति का मुख्य आधार शहरी उद्योग के बजाय ग्रामीण उद्योग को बनाया जा सके तो मनुष्य जाति के लिए यह बहुत उत्तम बात होगी। देहातों में जो अवरोध और अवनति आ गई है उसको केवल इसी प्रकार रोका जा सकता है। आज तो ग्रामीण समाज खण्डित हो गया है और हिन्दुस्तान में सब तरफ़ व्यक्तिवाद का ज़ोर है। अलग-

अलग काम करनेवाले किसानों और दस्तकारों के लिए मिल-जुलकर काम करना मुश्किल है। सम्मिलित स्वार्थ के कारण होनेवाली एकता का उनमें अभाव है, जिसकी वजह से किसान और दस्तकार न तो प्रकृति से ज़्यादा से ज़्यादा लाभ उठा सकते हैं और न सरकारी साधनों से ही। ज़रूरत इस बात की है कि गाँवों में जानदार समाज-संगठन हो; और ए० ई० के अनुसार, इस समाज-संगठन के निर्माण में सहायता करने का काम "उन आन्दोलनों से कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है जिनके द्वारा कि हमारे देश के पुनरुद्धार का जतन किया जा रहा है।" इनमें से जो लोग अखिल-भारत ग्रामोद्योग-संघ से सम्बन्ध रखते हैं वे इस महत्त्वपूर्ण बात की ओर अपने दिमाग़ लगायें ही तो जो उद्देश्य और आकांक्षायें इसके अमल से उत्पन्न होंगी वे ग्रामीण समाज के जीवन का आधार बन जायँगी।

प्रान्तों के नाम

कांग्रेस ने देश के कुछ प्रदेशों के उनके पुराने नाम रख दिये हैं और उसकी लिखा-पढ़ी में उन नामों का व्यवहार होने लगा है। उसकी इस कार्यवाही में उसके विरोधियों को सम्प्रदाय की गन्ध आई, अतएव उन्होंने अपना विरोध प्रकट किया। ऐसों को 'भारत' के सम्पादक महोदय ने अपनी एक टिप्पणी में आड़े हाथों लिया है। उक्त टिप्पणी इस प्रकार है—

कुछ साम्प्रदायिकतावादियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच मतभेद उत्पन्न करने के लिए नित्य नई-नई बात सोच निकालना अपना काम सा बना लिया है। उनकी शिकायतें साधार हैं या निराधार या बिल्कुल हास्यास्पद, इस बात की उन्हें चिन्ता नहीं मालूम होती। अभी हाल में एक मुसलमान पत्र ने मध्यप्रान्त की कांग्रेसी सरकार के विरुद्ध मुसलमानों की शिकायतों की जो लम्बी सूची प्रकाशित की थी, उसमें एक शिकायत यह भी थी कि कांग्रेसवालों ने हिन्दुस्तानी सी० पी० (हिन्दी-भाषी मध्यप्रान्त) का नाम बदल कर महाकोशल और बरार का नाम विदर्भप्रान्त रख लिया है। अगर रख लिया है तो इससे मुसलमानों की क्या हानि है? आज-कल सभी जगह यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ रही है कि जिन प्रदेशों के बीच में ऐसे नाम पड़ गये हैं जिनका उनकी जनता के लिए किसी प्रकार का महत्त्व नहीं है उन्हें बदलकर उन पुराने नामों को पुनर्जीवित किया जा रहा है जो उनकी जनता को उनके पूर्वकालीन महत्त्व की याद दिला सकें। इसी लिए योरप में आयरलैंड 'आयर' हो गया है और जर्मनी 'डशलैंड' हुआ जा रहा है। हमारे एशिया में भी मेसोपोटामिया 'ईराक़' हो गया है और परशिया या फ़ारस 'ईरान' हो गया है। फ़ारस की जनता अब भी मुसलमान है, फिर भी वह मुसलमानी काल में पड़े हुए फ़ारस नाम को छोड़ कर इस्लाम के आने के पूर्व के नाम 'ईरान' को ग्रहण कर रही है। इसका कारण यही है कि ईरान उस समय का नाम है जब वह एक स्वतन्त्र तथा शक्तिशाली देश था, और फ़ारस नाम तब पड़ा था जब वह अरबों द्वारा विजित हो चुका था। 'ईरान' नाम का पुनर्जीवन प्राप्त करना ईरानियों की राष्ट्रीय भावना का ही सूचक है, क्योंकि राष्ट्रीयतावादियों में स्वभावतः अपने देश की प्राचीन महत्ता के लिए गर्व की भावना रहती है। जब फ़ारस की प्रायः शत-प्रतिशत मुसलमान जनता ने 'ईरान' नाम को पुनः ग्रहण करने में इस्लाम का अपमान नहीं समझा है, तब मध्यप्रान्त के थोड़े से मुसलमानों का महाकोशल तथा विदर्भ के ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण नामों के ग्रहण किये जाने पर आपत्ति करना एक हास्यास्पद बात ही कही जायगी।

कालिदास-दिन मनाना आवश्यक है

उज्जैन के ज्योतिर्विद् पंडित सूर्यनारायणजी व्यास 'स्वराज्य' में लिखते हैं—

महाकवि कालिदास के प्रतिभा-विकास में आधारभूत बननेवाली नव-रत्न-सभा के निर्माता सम्राट् विक्रमादित्य की शासित नगरी अवन्तिका में विगत तीन वर्षों से अध्यापक श्री डाँगेजी के प्रयत्न स्वरूप विश्वकवि कालिदास का स्मृति-दिन मनाया जाता है।

महाकवि का, यद्यपि अभी तक, ठीक प्रकार से काल-निर्णय नहीं किया जा सका है—और यह भी एक पहेली ही बनी हुई है कि कालिदास को जन्म देने का सौभाग्य किस महिमान्विता मही को प्राप्त हुआ है—परन्तु इतना तो जगत् के विद्वानों को मान्य है कि कालिदास का आश्रय-स्थान महिमाशालिनी मालव-भूमि ही

थी। यहीं उस महाकवि की अमर प्रतिभा का प्रकाश हुआ था, जिस प्रकाश की किरणों से समस्त भारत ही नहीं, विश्व आलोकित हो गया है। कालिदास का जितना 'कवि' के नाते आदर है, नाटक के नाते महत्त्व है और मालवीय नवरत्न सभा के मूल्यवान् और ज्योतिष्मान् 'रत्न' के नाते गौरव है, ततोधिक 'राष्ट्रीय' महत्त्व भी है। जिस समय 'भारत' के विषय में पश्चिम भू-भाग में एक अज्ञान का अँधेरा फैला हुआ था, दासत्व की शृंखला से विवश भारतीयों की 'कीलित जिह्वा' अपने अस्तित्व-प्रदर्शन में भी बन्धनानुभव करती थी, उस कठिन काल में महाकवि की महा मूल्यवान् कृति 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' ने एक पाश्चात्य न्यायधीश के हृदय में अनुराग की अग्नि-शिखा प्रज्वलित की। उसके साधारणतम अनुवाद मात्र ने किसी शुभ मुहूर्त में योरप जाकर वह काम किया जो 'हज़ार नेता' प्रचार से न कर सकते थे। महाकवि गेटे जैसों को आनन्दोर्मि में तन्मय हो डुबकी लगाना पड़ा। उस एकमात्र नाटक ने योरप के दूषित वातावरण में, घोर अन्धकार में विद्युत् की तरह प्रकाश की रेखा दिखलाकर भारतीयों के प्रति सहसा सद्भावना जाग्रत कर दी। अतएव महाकवि कालिदास 'सरस्वती' का सुन्दर शृंगार ही नहीं, राष्ट्र के उद्धारकर्ताओं में से भी हैं। जीवित रहकर हम समस्त भारतीयों पर उस पवित्र पुरुष ने जो असीम उपकार किये हैं, दिवंगत होकर भी उसकी पावन आत्मा के प्रभाव ने कवि शरीरी अमर शब्द-सृष्टि ने हमारा मस्तक गौरव से उन्नत किया है। वह विश्व का आदर-भाजन तो है ही; परन्तु हम समस्त भारतीयों का वह परम वन्दनीय भी है। भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति से अनुराग रखनेवाले संस्कृताभिमानी और राष्ट्राभिमानी पुरुषों का कर्तव्य है कि सारे देश भर में कालिदास-स्मृति-दिन मनावें और उस महान् आत्मा के प्रति निवापांजलि अर्पित कर कर्तव्य तत्पर हों। योरप में जहाँ जो महान् विद्वान्, कवि, लेखक, ग्रन्थकार हुआ है, उनकी स्मृति में उन देशों में स्मारक खड़े किये गये हैं। उनकी उपयोग की हुई वस्तु आज भी उन-उन देशों में सुरक्षित है। उन-उन देशों के यात्री-प्रवासी उस महान् पुरुष की समाधि पर अपनी अंजलि अर्पित करते हैं और गुणगान कर गौरवानुभव करते हैं। बङ्गाल के कुछ विद्वान् लोग अवश्य ही कालिदास में आत्मीयता का (बङ्गाली होने की कल्पना से) अनुभव कर आषाढ़ शुक्ल १ को स्मृति-दिन मनाकर महाकवि के प्रति आदर व्यक्त करते हैं। परन्तु यह बङ्गाल, मालव या बिहार किसी ख़ास प्रान्त का ही कार्य नहीं है। कालिदास पर समस्त भारत को गौरव होना चाहिए और उनका 'स्मृति-दिन' समस्त भारत में मनाया जाना चाहिए। मैं समस्त भारतीय विद्वानों, शिक्षित मात्रों से निवेदन करना चाहता हूँ कि वे अपने-अपने नगर में इस पावन पुरुष की स्मृति में एक दिन अवश्य अपनी पुष्पांजलि अर्पित करें। मैं उन समस्त शिक्षा-संस्थाओं के संचालकों, व्यवस्थापकों और सभा-संस्थाओं, पाठशालाओं के कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों से साग्रह प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने इस महाकवि के गुण-गान में अवश्य कुछ क्षण लगावें। विशेषतः अपने समस्त मालवीय बन्धुओं से आग्रह करता हूँ कि वे कालिदास में आत्मीयता का अनुभव करें और उसकी स्मृति अवश्य मनावें। कालिदास में 'विश्वव्यापकता' है, परन्तु 'मालवीय' अनुराग उसका सर्वाधिक है। अतः हमारे मालवीय बन्धुओं का अधिक कर्तव्य है। मालवे के सभी नगर, ग्राम, स्कूल, कालेज और पाठशालाओं में कालिदास-दिन मनाया जायगा, ऐसी पूरी आशा है।

झाँसी में माननीय पन्त जी का भाषण

गत २२ जुलाई को झाँसी में डिवीज़नल देहात-सुधार-कान्फ़रेंस का उद्घाटन करते हुए प्रधानमन्त्री माननीय पन्त जी ने एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया जिसमें उन्होंने यह दर्शाया कि किसानों की स्थिति बड़ी असन्तोषजनक है और उनमें जीवन और शक्ति का संचार करना हमारा पहला कर्तव्य होना चाहिए। उनके भाषण का सारांश यह है—

निर्धन किसान देहातों में चिथड़े पहन कर रहते हैं। वे अस्थि-पञ्जरों के ढेर रह गये हैं। वे गवर्नमेंट की आय का ८० प्रतिशत भाग देते हैं और शहरों की ग़ैर-सरकारी आबादी की आय के ही साधन हैं। यह उचित तथा न्यायसङ्गत है कि हम उनसे जो लाभ उठाते हैं उसके बदले में देहात-सुधार-कार्य के रूप में उनकी कुछ सहायता करें। हमें निर्धनों में जीवन का सञ्चार करना चाहिए और उन्हें शक्ति, आशा और दृष्टि

प्रदान करनी चाहिए। मैं देहातों की वर्तमान हालत को सहन नहीं कर सकता। मैंने केवल देहात-सुधार-योजना लागू करने का ही फ़ैसला नहीं किया है, प्रत्युत मैं यह देखना चाहता हूँ कि वह तीव्रतम गति से आगे बढ़ाई जाय। ऐसे व्यक्तियों को जीवित रखना उनका उपहास उड़ाना है जो सदैव रोगग्रस्त तथा क्षुधापीड़ित रहते हैं। ऐसा अस्तित्व असहनीय है। देहात-सुधार के लिए कांग्रेसी इसलिए नहीं भर्ती किये गये कि वे कांग्रेस-जन हैं, प्रत्युत इसलिए कि उनमें प्रचार का जोश और सेवा की भावना प्रज्वलित है।

बहादुरों का तरीक़ा

जुलाई के 'टी न्यूज़ और व्यूज़' में यह दिलचस्प समाचार प्रकाशित हुआ है—

हिउ रुटलेज ने माउन्ट एवरेस्ट की सन् १९३६ की चढ़ाई का जो सरकारी बयान दिया है उससे एक-दो ऐसी ध्यान देने योग्य घटनाओं का पता लगा है, जब गर्म चाय ने इन एवरेस्ट के बहादुरों की जानें बचाई थीं। यह तो अब निश्चित हो गया है, कि चाय में सहनशीलता पैदा करनेवाला बहुत बड़ा गुण है। ध्रुवों की खोज में जानेवालों से लेकर टेनिस के खिलाड़ी तक—सभी कहते हैं, कि चाय वह चीज़ है, जिसके बिना उनका काम ही नहीं चल सकता।

दो बहादुरों की पहाड़ की चढ़ाई का जो वर्णन मि० रुटलेज ने दिया है, वह उनके ही शब्दों में सुनने के लायक़ है :—

"इस वर्ष हिमालय में, असमय में ही वर्षा आरम्भ हो गई और इसी लिए, इस चढ़ाई के मनुष्य पूर्वी भाग छोड़ने का इरादा कर ही रहे थे, कि एक दिन एकाएक गर्म हवा बदलकर भयंकर उत्तर पश्चिमी तूफ़ानी हवा हो गई। इसने पिघले बर्फ़ को ढालुआँ ज़मीन से इस तरह गिराना आरम्भ कर दिया कि केवल वायु-ताड़ित कड़ी भूमि ही रह जाती थी।"

"विन हैरिस और शिपटन नामक दो चढ़नेवाले जल्दी में रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ गये और बर्फ़ीले भाग को पार करने की चेष्टा के लिए आगे बढ़े। इसी समय, उनसे २०० फ़ीट ऊपर एक भयंकर दर्रा खुल गया और बरफ़ की भयंकर चट्टानें ४०० फ़ीट नीचे की ओर लुढ़कती हुई आने लगीं। इसी चट्टान के धक्के में शिपटन भी नीचे जाने लगा। पर विन हैरिस ने कड़ी चट्टान में उसी जगह से बड़े वेग से अपनी कुल्हाड़ी मारी और रस्से को उसके चारों ओर फुरती से लपेटने लगा। शिपटन का शरीर और जमे हुए बर्फ़ की चट्टान का ४०० पौंड का वज़न कुल्हाड़ी को उस जगह से हटाने लगा जहाँ वह गड़ी थी और सम्भव था कि शिपटन जीवित ही गिरिशृंग में समा जाता कि घटनावश वह चट्टान किनारे से कुछ दूर पर ही अड़ गई।"

"अब दोनों आरोही उठ खड़े हुए और सावधानी से नीचेवाले बर्फ़ के स्तर पर उतर आये। यहाँ उनके अन्य साथी खड़े खड़े उनकी बहादुरी की लीला देख रहे थे। वे तुरन्त गर्म चाय लेकर उनकी ओर दौड़ पड़े! वे देर तक चाय का आनन्द लेते रहे और थोड़ी ही देर बाद ...गवक हिम-क्षेत्र और हिमालय के पश्चिमीय भाग पर चढ़ाई का नक़्शा तैयार करने लगे।"

लंदन में, गत नवम्बर के महीने में, कैम्ब्रिज क्लब का एक भोज हुआ था। उसमें एवरेस्ट की चढ़ाईवाले दल के एक सभ्य मि० फ्रैंक स्माइथ ने, अपने व्याख्यान में स्वीकार किया कि एवरेस्ट की चोटी तक पहुँचने की राह में उन्होंने सवेरे की चाय की आशा लगा रखी थी। इवनिङ्ग न्यूज़ ने पूछा—"क्यों नहीं"? संसार सोना और मसालों के लिए छाना जा रहा है, साहसिक कार्यों अथवा वैज्ञानिक विषयों के लिए नहीं। अगर वहाँ हीरे की खान होती या यदि वहाँ स्वास्थ्य-निवास बन सकता, तो ६ महीने के भीतर ही लोग एवरेस्ट की चोटी पर पहुँच जाते। सवेरे की चाय वह चिह्न है, जिसमें सभ्यता विजय प्राप्त करती है।
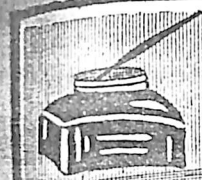
माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी की कर्तव्य-परायणता

पिछले दिनों में संयुक्त-प्रान्त में हैज़े का जो भीषण प्रकोप हुआ था उसका वारण करने के लिए स्वास्थ्य-विभाग की मिनिस्टर श्रीमती विजयलक्ष्मी ने जिस तत्परता से काम लिया है तथा हैज़े से आक्रान्त स्थानों में जाकर रोगियों को देखकर उनके प्रति जो सहानुभूति दिखाई है तथा उनकी चिकित्सा के लिए जो अच्छी से अच्छी

[स्वास्थ्य-विभाग की मंत्रिणी माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी]

व्यवस्था की है उसके लिए वे इसलिए भी अत्यधिक प्रशंसाह हैं कि उन्होंने अपने अन्य सहयोगियों के सामने लोक-सेवा का एक भव्य आदर्श उपस्थित किया है। श्रीमती जी ने जेठ की भीषण गर्मी के दिनों में सारे प्रान्त के हैज़े से आक्रान्त ग्रामों का जिस त्वरा तथा धैर्य के साथ भ्रमण किया है और सो भी उन स्थानों का जहाँ मोटरगाड़ी नहीं जा सकती थी, कम प्रशंसा की बात नहीं है। कौन नहीं जानता कि श्रीमती जी ने आजीवन उच्च श्रेणी का नागरिक जीवन व्यतीत किया है? फिर भी उन्होंने देहात का बैलगाड़ियों में और सो भी लू के दिनों में लगातार दौरा किया है। उनका यह काम यही व्यक्त करता है कि उन्हें अपने कर्तव्य-पालन की कितनी लगन है। इसके लिए हम उन्हें साधुवाद देते हुए विनम्रता के साथ यह निवेदन करना चाहते हैं कि वे ऐसी व्यवस्था भी करें कि उनके प्रान्त के निवासियों को भोजन की सामग्री अपने विशुद्धरूप में प्राप्त हो सके। ऐसी व्यवस्था के हो जाने पर ऐसी महामारियों के पुनः फूट निकलने की सम्भावना बहुत कुछ दूर हो जायगी और उनका स्वास्थ्य-विभाग भी और भी उपयोगी कार्यों के करने के लिए निश्चिन्त हो जायगा।

चीन-जापान-युद्ध

चीन-जापान का जो ग़ैर क़ानूनी युद्ध हो रहा है उसको शुरू हुए एक साल पूरा हो गया। यह युद्ध गत वर्ष ६ जुलाई को शुरू हुआ था। प्रारम्भ में जापानियों की विजय पर विजय होती गई और उन्होंने उत्तरी चीन के पाँचों प्रान्तों को जीत लिया। इसके बाद मध्य-चीन के शान्तुंग-प्रान्त पर भी वे चढ़ आये और शंघाई तथा नानकिंग पर अधिकार कर लिया। परन्तु गत कई महीने से चीनी सँभल रहे हैं और उन्होंने जापानियों को कई जगह हराया है। उत्तरी चीन का शान्सी-प्रान्त भी उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया था। इस समय उनकी सेनायें मैदानी युद्ध छोड़कर छापा मार मार कर जापानियों को त्रस्त कर रही हैं। चीन को रूस से पर्याप्त रूप से सहायता मिल रही है और चीनी भी देशभक्ति के भाव से प्रेरित होकर स्वदेश की रक्षा के लिए सब कुछ कर गुज़रने को कमर कसे हुए हैं। यही सब देखकर जापानी अब यह कहने लगे हैं कि यह युद्ध जल्दी नहीं समाप्त होगा। चाहे जो हो, अब तक जो कुछ इस युद्ध के फल-स्वरूप घटित हुआ है, काफ़ी त्रास-जनक है। उदाहरण के लिए शंघाई को लीजिए, जो फ़्रांस, ब्रिटेन, अमरीका आदि देशों का अन्तर्राष्ट्रीय अड्डा है।

इस सभ्यता के केन्द्र की ९०५ फ़ैक्टरियाँ एकदम ध्वंस हो गई हैं और १००० को इतनी हानि पहुँची है कि उनकी मरम्मत नहीं की जा सकती। इतने कारख़ानों के नष्ट हो जाने से साढ़े तीन लाख मज़दूर वेकार हो गये हैं। अनुमान किया गया है कि सारे चीन में ८६२७ कारख़ाने ध्वंस किये जा चुके हैं, जिससे एक करोड़ बीस लाख मज़दूर वेकार फिर रहे हैं। यही नहीं, जब से चीन-जापान-युद्ध छिड़ा है, जापानियों ने चीनियों का बहुत-सा माल लूटा है, जिसमें २१८ बड़ी तोपें, ४-६ हौटीज़र तोपें, २७५ टैंक, आर्मर्ड-कार और लारियाँ, ८ आर्मर्ड गाड़ियाँ, ८९ रेल ऐंजिन, २,१७१ मालगाड़ी के छकड़े और ११,९५० चीनी तलवारें शामिल हैं।

जापान की नौ-सेना का दावा है कि उसने ४३,००० टन के ४३ चीनी जंगी-जहाज़ नष्ट कर दिये। इसी तरह चीन के १,०७० वायुयान नष्ट हुए।

इस समय चीन की ३,००,००० वर्गमील भूमि जिसमें १३,००,००,००० आदमी बसते हैं, जापानियों के क़ब्ज़े में है। जापान-सरकार ने १५ जून तक युद्ध में मारे गये अपने सैनिकों की संख्या ३६,६२९ और चीनियों की ५,१०,१०९ बताई है। परन्तु विदेशियों का अनुमान है कि इस साल भर के युद्ध में १० लाख चीनी और ३ लाख जापानी योद्धा मारे गये हैं। साधारण नागरिकों की मृत्यु संख्या के आँकड़े नहीं प्राप्त हैं, परन्तु चीनी भगोड़ों की संख्या १० लाख है।

और विनाश का यह युद्ध पूर्ववत् जारी ही नहीं है, किन्तु वृद्धि पर है। जापान ने अब दक्षिणी चीन पर भी हल्ला बोल दिया है और उसके वायुयान कैंटन जैसे विशाल नगर को ध्वंस करने में संलग्न हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि इस युद्ध से चीन का तो विनाश होवेगा ही, परन्तु वह अपने साथ जापान को भी ले डूबेगा।

मुसलमान और यहूदी

पिछले महायुद्ध के परिणाम-स्वरूप संसार की दो प्रमुख जातियों की अवस्था में भारी परिवर्तन हो गया है। उनमें एक है मुसलमान और दूसरी है यहूदी जाति। महायुद्ध के पहले मुसलमानों की अवस्था राजनैतिक दृष्टि से दयनीय हो गई थी। उसका प्राचीन तुर्क-साम्राज्य निर्जीव-सा हो गया था तथा दूसरे मुसलमानी राज्य तो और भी नगण्य हो गये थे। परन्तु आज मुसलमानी देशों का कायापलट हो गया है और उनमें अभूतपूर्व जागरण है। तुर्की, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, इराक़, नेज्द और हेजाज तथा मिस्र आदि पूर्ण स्वाधीन राज्य ही नहीं हैं, किन्तु उनमें आधुनिकता का भी पूर्ण प्रकाश फैल गया है और वे सभी जल्दी से जल्दी अपने आपको संसार के अन्य प्रबल राष्ट्रों के समान बना लेने के काम में संलग्न हैं। इसके लिए उन्हें योरप के किसी न किसी राष्ट्र से आवश्यक सहायता भी प्राप्त होती रहती है। अभी हाल में ब्रिटेन ने तुर्की को ७५ लाख पौंड का ऋण देने का वचन दिया है। इस धन से तुर्क-सरकार ब्रिटेन से अस्त्र-शस्त्र आदि ख़रीदकर अपनी सामरिक शक्ति की वृद्धि करेगी। इस प्रकार ब्रिटेन से सहायता पाने से कदाचित् संकट पड़ने पर वह भूमध्यसागर में ब्रिटेन की सहायता भी करे। योरपीय महाशक्तियों के परस्पर की कशमकश से इसी तरह के लाभ अन्य मुसलमानी देशों ने भी उठाये हैं और आज वे सबके सब पहले से कहीं अधिक शक्तिशाली बन बैठे हैं। उनकी इस उन्नतावस्था का प्रभाव उन मुसलमानी देशों पर भी पड़ा है जो दुर्भाग्य से अभी पराधीन हैं। वहाँ भी स्वतन्त्रता की भावना जाग्रत हो गई है और वे भी उसकी प्राप्ति के लिए आन्दोलन कर रहे हैं। ट्यूनिस, अल्जीरिया, सीरिया, पेलेस्टाइन, डच-इस्टइण्डीज़ ऐसे ही पराधीन पर जाग्रत मुसलमानी देश हैं।

परन्तु जिन यहूदियों ने महायुद्ध से वास्तव में लाभ उठाना चाहा था और सदियों से खोई हुई अपनी 'पवित्र मातृ-भूमि' को अपने हाथ में करने का पूरा उपक्रम किया था ब्रिटेन की बदौलत उन्हें उनकी वह 'पवित्र मातृभूमि' बसने को वापस मिल गई। परन्तु वहाँ उनके मार्ग में भारी अड़ंगा लग गया है और उनकी 'पवित्र मातृभूमि' के प्रमुख निवासी अरबों से उनकी गहरी ठनी हुई है। महायुद्ध के पहले यहूदी कम से कम वहाँ शान्तिपूर्वक रहते तो थे, परन्तु आज उन्हें घोर संकट का सामना करना पड़ रहा है। उधर उन लोगों पर जर्मनी आदि देशों में इस समय जो बीत रही है वह सभी समाचार-पत्र पढ़नेवाले अच्छी तरह जानते हैं और अब जब से जर्मनी में उनका विरोध शुरू हुआ है तब से उनका पड़ोस के अन्य देशों में भी रहना कठिन हो गया है। अभी तक वे आस्ट्रिया में

आराम से रहते थे। परन्तु इधर जब से उस पर जर्मनी का अधिकार हुआ है, वहीं का सा व्यवहार यहाँ भी उनके साथ होना शुरू हो गया है। बीसवीं सदी की वर्तमान सभ्यता में किसी सभ्य जाति के साथ ऐसा भी अमानुषिक व्यवहार हो सकता है, यह वास्तव में एक प्रश्न है। चाहे जो हो, महायुद्ध के बाद मुसलमानों और यहूदियों के स्थिति-परिवर्तन का प्रश्न राजनैतिक दृष्टिकोण से एक महत्त्व का प्रश्न है और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भविष्य में इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ेगा।

संघ-शासन की समस्या

कुछ दिन हुए विलायत के एक उच्च राजकर्मचारी ने घोषित किया था कि 'इंडिया-एक्ट' में किसी प्रकार का परिवर्तन न होगा और संघ-शासन की जो व्यवस्था उसमें की गई है उसी के अनुसार वह कार्य में परिणत किया जायगा। परन्तु इस सम्बन्ध में हरिपुरा में राष्ट्रीय महासभा ने भी अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी थी और अब राष्ट्रपति बाबू सुभाषचन्द्र वसु ने भी घोषित किया है कि उस प्रकार का संघ-शासन भारत को नहीं स्वीकार होगा। उधर पंडित जवाहरलाल नेहरू ब्रिटेन पहुँचकर वहाँ की सभाओं में खुल्लमखुल्ला संघ-शासन का विरोध कर रहे हैं और अपनी स्वाधीनता की माँग को बिना किसी आगा-पीछा के ज़ोरों के साथ उपस्थित कर रहे हैं। इन घोषणाओं और प्रतिघोषणाओं का अपना अलग मतलब है। इनसे प्रकट हो रहा है कि भारत के वर्तमान लोकनेता सात प्रान्तों का शासन-भार ग्रहण कर शान्त नहीं हो बैठे हैं, किन्तु अपने अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि संघ-शासन की बात पर कांग्रेस का ब्रिटिश सरकार से अवश्य संघर्ष होगा। परन्तु जैसी विलायत की ख़बर है, उस संघर्ष को बचाने के लिए ब्रिटेन के सूत्रधार भी भीतर ही भीतर कोई महत्त्व की कार्रवाई कर रहे हैं। ऐसा न होता तो स्वयम् राष्ट्रपति सुभाष बाबू को यह न कहना पड़ता कि यदि कांग्रेस

[पंडित जवाहरलाल नेहरू अपनी पुत्री कुमारी इन्दिरा के साथ लन्दन में]

संघ-शासन को स्वीकार करेगी तो वे उसका विरोध करने के लिए अपने अध्यक्ष-पद को छोड़कर उसके विरुद्ध आन्दोलन करेंगे, क्योंकि यहाँ भारत में भी कुछ कांग्रेसी नेता संघ-शासन को स्वीकार करने के पक्ष में जान पड़ते हैं। उधर ब्रिटेन में वायसराय महोदय तथा नेहरू जी की उपस्थिति से यह प्रश्न अपने आप उठ खड़ा हुआ है। देखना है कि इस प्रश्न का कैसे निपटारा होता है। परन्तु इस समय दोनों स्थानों का वायुमण्डल समझौते की भावना से व्याप्त है, अतएव आशा है कि यह मामला तूल नहीं पकड़ेगा और इसका निपटारा ब्रिटेन और भारत की सुविधा के अनुसार ही हो जायगा।

तलाक़ का क़ानून

केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य डाक्टर देशमुख स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा के लिए सदा यत्नशील रहते हैं। स्त्रियों के उत्तराधिकार के सम्बन्ध का क़ानून केन्द्रीय असेम्बली से उन्हीं के सतत प्रयत्नों से पास हुआ था। अब वे हिन्दू-स्त्रियों के लिए तलाक़ का क़ानून भी बनवाना चाहते हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध का एक बिल असेम्बली में पेश करने का नोटिस दे दिया है। इसमें सन्देह नहीं है कि यह क़ानून भी पास हो जायगा। ऐसे क़ानून के पास करने का कारण भी है, क्योंकि हिन्दू-समाज में स्त्रियों को वह सम्मानपूर्ण स्थान अब नहीं रहा जो धर्म-ग्रन्थों के अनुसार उन्हें दिया गया था। हिन्दू-घरों में विवाहिता स्त्रियों पर आये दिन तरह तरह के अत्याचार होते रहते हैं और उसका प्रतीकार करने की इच्छा होते हुए भी समाज के नियमों के कारण वे कुछ कर धर नहीं पातीं। यदि तलाक़ का क़ानून बन जायगा तो उसके बल से कम से कम समर्थ और स्वाधीनचेता अन्यायों का समुचित रूप से परिशोध तो कर सकेंगी। इस क़ानून का सनातनी लोग ज़ोरों से विरोध करेंगे, क्योंकि इससे उनके 'धर्म-विवाह' का महत्त्व घट जायगा। परन्तु जब उन्होंने अपने समाज में पुरुष को स्त्री के साथ मनमाना व्यवहार करने को खुला छोड़ दिया है तब इस बीसवीं सदी में तो उसके साथ अन्याय नहीं होने दिया जायगा।

हिटलर और उनकी जर्मनी

हिटलर ने जर्मनी को नवजीवन प्रदान किया है। एक-मात्र उन्हीं के प्रयत्नों से महायुद्ध-द्वारा ध्वस्त जर्मनी फिर अपनी कमर सीधी करके खड़ा हो सका है। यही नहीं, उसने इतनी अधिक शक्ति अर्जित कर ली है कि वह आस्ट्रिया जैसे प्राचीन राष्ट्र को एकाएक हड़प कर गया और यूरप के राष्ट्र देखते रह गये। वस्तुतः जर्मनी अब ऐसा ही शक्तिशाली राष्ट्र हो गया है। वह आधुनिक युद्ध-सामग्री से पूर्ण रूप से लैस है। उसकी हवाई-सेना अधिक क्षमताशाली ही नहीं, किन्तु सबसे बड़ी भी हो गई है। पिछले महायुद्ध के काल में जर्मनी में खाद्य-सामग्री का अभाव हो गया था। उसके युद्ध में हार जाने के कारणों में एक यह भी मुख्य कारण था। इसी से हिटलर ने खाद्य-सामग्री की कमी को दूर करने की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है। देश में खाद्य-सामग्री पैदा करने के जो उद्योग किये गये हैं सो तो किये ही गये हैं, हिटलर ने राष्ट्र की खाद्य-वस्तुओं में से मांस को निकाल बाहर किया है और उसके स्थान की पूर्ति मछली से की है, क्योंकि वह समुद्र से सारे जितनी अधिक मात्रा में प्राप्त की जा सकती है। 'मछली खाओ' का वहाँ आन्दोलन छेड़ दिया गया है। मछली राष्ट्र के भोजन में तो शामिल कर ही ली गई है। उसका तेल भी खाया जाने लगा है। मछली की बढ़ी हुई माँग की पूर्ति के लिए वहाँ इसका धन्धा भी ज़ोर पकड़ गया है और मछली मारनेवाले जहाज़ों के बेड़े अब अपने काम को अधिक सरगर्मी से करने लगे हैं। इस बात के प्रयोग किये जा रहे हैं कि ह्वेल का मांस खाने योग्य हो सके तथा अधिक काल तक सुरक्षित रह सके। मछली से एक प्रकार का कपड़ा भी बनाया गया है, जो गरम और सस्ता पड़ता है। मछली की खाल जिल्द बाँधने के काम में लाई जा रही है। अभी तक सूअरों को अन्न दिया जाता था। अब इसका वर्जन हो गया है और उन्हें भी मछली खाने को दी जाया करेगी। इस प्रकार भी राष्ट्र के लिए अन्न बचाया जा रहा है। राष्ट्र-निर्माण का हिटलर का यह एक उदाहरण है। ऐसे ही महत् कार्यों से उसने नई जर्मनी की रचना की है।

संयुक्त-प्रान्त में नये क़ानून और देहाती समाज

अन्य कांग्रेसी प्रान्तों की तरह संयुक्त-प्रान्त की सरकार भी ऐसे प्रयत्न में लगी हुई है कि सर्वसाधारण की वर्तमान अवस्था में समुचित सुधार हो और वे जीवन के क्षेत्र में वास्तविक उन्नति कर सकें। किसानों के सम्बन्ध में वह जो क़ानून बना रही है उसके पास हो जाने से पट्टेवाले किसानों की अवस्था का अत्यधिक सुधार हो जायगा और उनकी अवस्था में दृढ़ता आ जायगी। इसी प्रकार स्थानीय स्वराज्य के सिलसिले में ग्रामों में जिन पंचायतों की स्थापना की जायगी उनसे ग्रामीणों को भी नागरिकता की भावना का अनुभव होगा और वे भी अब अपना सिर ऊँचा कर खड़े हो सकेंगे। परन्तु ऐसे महत्त्वपूर्ण क्रान्तिकारी परिवर्तनों से भी सर्वसाधारण लोगों में से एक विशाल संख्या लाभान्वित न हो सकेगी और वह पहले की ही तरह पददलित बनी रहेगी। यह सभी को मालूम है कि देहात के समाज में किसानों का एक ऐसा समूह है जो खेती तो करता है, परन्तु उसकी अपनी ज़मीन नहीं है। वह बँटाई या शिकमी के रूप में ही खेती करता है और ऐसे किसानों की देहात में बहुत बड़ी संख्या ही नहीं है, किन्तु वास्तव में प्रान्त की खेती का एक बहुत बड़ा भाग उन्हीं लोगों के हाथ में है। अब देखना है कि उपर्युक्त दोनों क्रान्तिकारी परिवर्तनों से ऐसे किसानों एवं देहात के दूसरे पददलितों को क्या हक़ प्राप्त होगा। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि न खेती के क़ानून में, न स्थानीय स्वराज्य के क़ानून में उनके हक़ों की रक्षा की व्यवस्था कभी की गई है। पट्टेवाले किसानों के हाथों में उनकी गर्दन पहले की ही भाँति आगे भी दबी रहेगी और पञ्चायतों के क़ायम हो जाने पर भी देहात के उद्दण्ड लोग उन्हें आये दिन पूर्ववत् सताते रहेंगे। सरकार को चाहिए कि वह उक्त क़ानूनों में ऐसा परिवर्तन कर दे जिससे जनता में निम्न स्थिति के समाज के लोगों का भी निस्तार हो, क्योंकि राष्ट्र की आधार-शिला तो वही हैं और जब आधार-शिला ही सुदृढ़ न होगी तब राष्ट्र उस पर कैसे ठहर सकेगा। खेती के क़ानून में शिकमी जोतनेवालों को भी वही अधिकार देना चाहिए जो पट्टेदारों को तथा सीर के शिकमियों को दिये गये हैं। साथ ही देहाती पञ्चायतों को भी कोई ऐसा अधिकार मिलना चाहिए जिससे वे उन लोगों के जान-माल की रक्षा कर सकें और उन्हें ऐसा समर्थ बना सकें कि वे राष्ट्र की उपयुक्त सेवा कर सकें। महात्मा जी के इन दरिद्र नारायणों की भलाई का प्रयत्न तो सबसे पहले होना चाहिए।

भारतीय कृषकों की समस्या

श्रीयुत एल॰ बी॰ भोपटकर 'डेमाक्रेटिक स्वराज्य पार्टी' के सभापति हैं। उस दिन उन्होंने पूना में एक महत्त्वपूर्ण भाषण किया है, जिसमें उन्होंने बताया है कि किसानों का उद्धार लगान को कम कर देने या भूमि का उन्हें अधिकार दे देने से नहीं होगा, किन्तु उनका उद्धार उद्योग-धन्धों की वृद्धि करने से होगा। अपने इस कथन की पुष्टि के लिए उन्होंने आँकड़े देकर बताया है कि भारत की कृषि की दशा क्यों दयनीय है। वे कहते हैं—

संसार की आबादी १६५ करोड़ है। इसमें से ८० करोड़ लोग भारत, चीन, जापान और कोरिया एवं उसके पड़ोस के टापुओं में बसते हैं। इस प्रकार संसार की आबादी का आधा हिस्सा उसके १०वें भाग में रहकर अपनी गुज़र-बसर करने को बाध्य है। शेष आधा भाग संसार के ६ भाग अपने क़ब्ज़े में किये हुए हैं।

भारत की आबादी ३५ करोड़ है। और खेती के योग्य भूमि कुल २२ करोड़ एकड़ है, जो आदमी पीछे एक एकड़ भी नहीं पड़ती है। कृषि से प्रतिवर्ष ८५० करोड़ की आय होती है और दूसरे साधनों से ३५० करोड़ के लगभग होती है। अतएव फ़ी आदमी ३५) वार्षिक आय का औसत पड़ता है। रूस में प्रतिआदमी पीछे एक वर्ग मील भूमि का औसत पड़ता है, इधर भारत में १५० आदमियों के लिए एक वर्ग मील भूमि का औसत पड़ता है, जहाँ १०० में ७०-७५ आदमियों को एकमात्र खेती पर ही निर्भर रहना पड़ता है, यद्यपि यहाँ की भूमि १०० में २५-३० आदमियों के लिए भी काफ़ी नहीं है। ऐसी दशा में यदि यहाँ के निवासियों को आधे ही पेट रहना पड़े तो इसमें क्या आश्चर्य है? ऐसी दशा में लगान कम करने आदि जैसी बातों से देश की दरिद्र जनता का क्या भला होगा? इसकी तो एकमात्र दवा शीघ्र से शीघ्र उद्योग-धन्धों का बढ़ाना भर है।

'मुसम्मात'-शब्द का प्रयोग

संयुक्त-प्रान्त की सरकार भी अन्य कांग्रेसी सरकारों की तरह अपने प्रान्त में तरह तरह के सुधार करने में तत्परता के साथ लगी हुई है। अभी तक कचहरियों में मुद्दई और मुद्दाअलेह बिना किसी प्रकार की आदरसूचक पदवी के कोरा नाम लेकर पुकारे जाते थे। यह प्रथा अनादर-सूचक ही नहीं, अशिष्टता से भी युक्त थी। प्रसन्नता की बात है कि सरकार ने अब यह आज्ञा जारी की है कि मुद्दई या मुद्दाअलेह जैसे कि वे हों, पण्डित, मुंशी, बाबू आदि पदवियों के सहित नाम लेकर पुकारे जाया करें। क्या अच्छा हो यदि सरकार स्त्रियों के नाम के आगे 'मुसम्मात' शब्द का प्रयोग करना भी बन्द करवा देती। 'मुसम्मात' शब्द का प्रयोग भी शिष्टता और सभ्यता की दृष्टि से वाञ्छनीय नहीं है। आशा है, सरकार का ध्यान इस बात की ओर भी जायगा और जहाँ उसने पुरुष मुक़द्दमेबाज़ों की मर्यादा की रक्षा की है, वहाँ वह स्त्रियों की मर्यादा की रक्षा करने में भी तत्परता दिखायेगी।

ब्रिटेन की क्षमता

योरप की विकट परिस्थिति के सुलझाने में जिस चातुर्य का परिचय इस समय ग्रेट ब्रिटेन के कर्णधार दे रहे हैं उसका दूसरा उदाहरण उनके जातीय इतिहास में ढूँढ़ने से शायद ही मिलेगा। महायुद्ध के छिड़ जाने के अवसरों को उन्होंने जिस ख़ूबी से बार बार बचाया है, वह उनके लिए असाधारण प्रशंसा की बात हो सकती है। कुछ लोग ब्रिटेन के कर्णधारों की वर्तमान नीति को कादरता की नीति कहते हैं। परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। ब्रिटेन सामरिक बल में संसार के किसी भी बड़े से बड़े राष्ट्र से हीन नहीं रहा है, और वर्तमान सरकार के समय में तो उसका सामरिक बल और भी अधिक बढ़ गया है और दिन दिन उसमें वृद्धि ही हो रही है। ऐसी दशा में उस पर कायरता का या निर्बलता का आरोप

करना उपहासास्पद है। यदि ऐसा ही होता तो उसकी ... रण धमकी से हिटलर ज़ेचोस्लोवेकिया पर आक्रमण ... से सहसा विमुख न हो जाते। हिटलर जानते हैं कि ब्रि... कितना शक्तिशाली है और उसके हितों पर चोट ... जोखिम का काम है। फलतः जब ब्रिटेन ने ज़ेचोस्लोवेकि... के मामले में अपनी दिलचस्पी प्रकट की तब हि... साहब सावधान हो गये और ज़ेचोस्लोवेकिया के जर्मनी ... नेता अपनी परिस्थिति का हाल अँगरेज़ों को बताने ... दौड़े गये। पर ब्रिटेन अपने निश्चय पर दृढ़ रहा ... उसकी धीमी हुंकार से ही ज़ेचोस्लोवेकिया की रक्षा हो ग... इधर उसका स्पेन की ओर भी काफ़ी ध्यान है और ... इस व्यवस्था के करने में लगा हुआ है कि स्पेन से ... राष्ट्रों के स्वयंसेवक सैनिक अपने अपने देश में वापस बु... लिये जायँ। अभी तक उसके इस प्रस्ताव पर अड़ं... लगता रहा है। परन्तु अभी हाल में अहस्तक्षेप कमि... की जो बैठक ५ जुलाई को लन्दन में हुई है उसमें उस... योजना को फ़ांस, जर्मनी और इटली ने स्वीकार कर लिया था और अब रूस ने भी स्वीकार कर लिया है। इ... योजना के कार्य में परिणत होने पर स्पेन का प्रश्न बहु... कुछ हल हो जायगा, साथ ही वह स्पेन तक ही सीमित ... जायगा। यदि ब्रिटेन धैर्य से काम न लेता और उस... आवश्यक शक्ति तथा क्षमता न होती तो ये दोनों मस... इस तरह शान्तिपूर्वक न तय हो जाते। यह उसकी अस... धारण क्षमता ही है जिससे भयभीत होकर वही मुसोलि... जो ब्रिटेन के जहाज़ों को पुराने जहाज़ बताकर हँसी उड़ा... करते थे और भूमध्यसागर को इटली की झील कहते ... ब्रिटेन के प्रस्ताव करते ही चुपचाप उससे समझौता करने को तैयार हो गये। ब्रिटेन आज भी ऐसा ही शक्तिशाली है, परन्तु वह योरप का विनाश नहीं चाहता, इसी से बार बार छेड़े जाने पर भी वह युद्ध से किनारा कर जाता है।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD.

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

सितम्बर १९३८ } भाग ३९, खंड २ संख्या ३, पूर्ण संख्या ४६५ { भाद्रपद १९९५

अनुगामी

लेखक, श्रीयुत गोपालशरणसिंह

मैं तो हूँ अनुगामी।

जहाँ जहाँ तुम ले जाओगे,
जाऊँगा मैं स्वामी!
जग से जिसे छिपा रक्खा था
बड़े यत्न से मैंने।
जान गये वह भेद हृदय का,
हो तुम अन्तर्यामी॥

चलूँ तुम्हारे साथ नाथ! मैं
विश्व-मार्ग में कैसे?
मैं हूँ बन्धनयुक्त मन्द-गति
तुम स्वतन्त्र द्रुतगामी॥
किस विधि एक हृदय होकर मैं
तुममें ही मिल जाऊँ।
मैं हूँ निज उन्नति-अभिलाषी
तुम हो जग-हित-कामी॥

[कस्तूर वा सकुटुम्ब]

राष्ट्रमाता कस्तूरबाई

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम०ए०

कुछ महीने पहले की वात है। शायद रविवार था; क्योंकि उसी दिन मुझको अक्सर सेगाँव जाने का मौक़ा मिलता है। महात्मा गान्धी की तन्दुरुस्ती चिन्ताजनक थी। कई नेता और कांग्रेस के मंत्री उन्हें देखने के लिए गये थे। मैंने इतनी भीड़भाड़ में गांधी जी के पास जाना उचित नहीं समझा। सोचा कि तव तक श्रीमती कस्तूरवाईजी के पास ही थोड़ी देर बैठ लूँ। वे तो लीडरों से दूर ही भागती हैं। इस उम्र में भी उनको सेवा के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं। उन नेताओं की भीड़ में वे चुपचाप रसोईघर में महात्माजी के लिए खाना तैयार कर रही थीं। खाना ख़ुद इसलिए नहीं बना रही थीं कि अन्य कोई मदद करनेवाला न था, किन्तु इसलिए कि उनके रोम-रोम में मातृत्व और सेवा-भाव छलकता है। एक प्रेमल मा चूल्हे से दूर बैठकर घर के लोगों को भूखा देखना कैसे सहन कर सकती है? और फिर वे तो राष्ट्र-माता हैं। अगर महात्मा जी दिन भर देश की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने और दरिद्रनारायण की सेवा में लगे रहें और एक भूखे और कंगाल राष्ट्र की माता स्वरूप कस्तूरवाई अपना अधिक समय चूल्हे के आस पास ही वितावें तो इसमें आश्चर्य ही किस बात का है? जिस देश के करोड़ों लोगों के लिए रूखी और सूखी रोटी का टुकड़ा ही जीवन है उसकी माता के लिए तो चूल्हे से अधिक प्रिय शायद दूसरी जगह न होगी।

मुझको देखकर वे रसोईघर के बाहर आ गईं

[एक डाक्टर श्रीमती कस्तूर बाई का चोटीला पैर देख रहा है।]

मुस्कराकर मेरे स्वास्थ्य के वारे में पूछा। लेकिन मैंने उनसे तुरन्त पूछा—

"वा, वापू जी की तवीअत कैसी है?"

मेरा प्रश्न सुनकर वे तुरन्त गंभीर और कुछ उदास-सी हो गईं। धीमे स्वर में बोलीं—"वापू जी आज-कल बहुत थक गये हैं।"

"ये नेता लोग तो उनका पीछा ही नहीं छोड़ते!" मैंने थोड़ा मुस्कराकर कहा।

"नेता भी क्या करें?" उन्होंने मुस्कराकर कहा—"वे भी सब चक्कर में फँसे हैं। वापू जी के पास आना ही पड़ता है। फिर वापू जी तो ख़ुद उन्हें बुलाते हैं।"

"लेकिन वा, इस समय तो वापू जी को आराम की बहुत ज़रूरत है।"

"हाँ, उन्हें आराम तो ज़रूर चाहिए। इधर कई महीने से उनका स्वास्थ्य बहुत नाज़ुक हो गया है। क्या करें? कुछ समझ में नहीं आता! सुना है, आज उनको खून का दवाव बहुत हो गया है।"

उनके शब्दों में कितनी वेदना थी, कितनी चिन्ता थी, और कितना प्रेम था, यह तो शब्दों में लिखना कठिन है। वे आदर्श मातृत्व की सजीव मूर्ति हैं। महात्मा जी ख़ुद भी बहुत वर्षों से उनको माता के रूप में ही मानते हैं। और वे महात्मा जी से उम्र में भी कुछ महीने बड़ी हैं। जब महात्मा जी लंका गये थे तब किसी मीटिंग में एक सज्जन ने अनजाने पूछा भी था कि महात्मा जी, आज आपकी मा नहीं आईं। उन्होंने मुस्कराकर उत्तर दिया था—"वे कस्तूरवा संसार के नाते मेरी पत्नी हैं। लेकिन आपका प्रश्न ठीक है, क्योंकि मैं उनको अब मा के रूप में ही देखता हूँ।"

यह तो हुई महात्मा जी और जनता की दृष्टि। लेकिन हमको उनकी भावनायें भी समझनी चाहिए। वे आदर्श मा हैं। इसी से हम उनका आदर्श पत्नी का रूप देखना भूल गये हैं। एक हिन्दू स्त्री अपने पति को देवता के समान मानती है और उसी की सेवा में अपना कल्याण समझती है। आज-कल तो इस आदर्श की हँसी उड़ाई

[श्रीमती कस्तूर बाई सूत कात रही हैं]

जाती है और समानता का बोलबाला है। लेकिन उनको तो महात्माजी जैसे आदर्श पति मिले हैं। तब वे उनको देवता-स्वरूप क्यों न मानें? मैंने जब उस दिन महात्मा जी के स्वास्थ्य के बारे में उनसे बातें कीं तब मैंने पहली बार उनमें आदर्श पत्नी की झलक देखी।

× × ×

लेकिन पत्नी की हैसियत से उनको कम कष्ट सहन नहीं करने पड़े। जिन्होंने गांधी जी की आत्म-कथा पढ़ी है वे जानते हैं कि महात्मा जी के कड़े नियमों और आदर्शों का पालन करने में उन्हें कितनी तकलीफ़ उठानी पड़ी है। बीमारी की हालत में उन्हें महात्मा जी के पानी और मिट्टी के प्रयोगों का ही सहारा लेना पड़ा। एक बार जब महात्मा जी ने उन्हें नमक छोड़ने के लिए कहा तब वे झुँझलाकर बोलीं—"नमक छोड़ने के लिए तो आपसे भी कोई कहे तो आप भी न छोड़ेंगे।" जब महात्मा जी ने तुरन्त नमक न खाने की प्रतिज्ञा कर ली तब उनको कितना दुःख हुआ होगा, यह एक पत्नी का हृदय ही समझ सकता है। लेकिन महात्मा जी के कठिन आदर्शों और प्रयोगों की आँच में तपकर उन्होंने कई बार अपूर्व दृढ़ता का भी परिचय दिया है। अफ़्रीका में एक बार जब कस्तूरबा सख़्त बीमार हो गई थीं और डाक्टर ने कहा कि उनको मांस का शोरवा देने की ज़रूरत है तब महात्मा जी ने उत्तर दिया—'मांस के शोरवे के लिए मैं तो इजाज़त नहीं दे सकता। लेकिन कस्तूरबाई आज़ाद हैं। वे लेना चाहें तो ज़रूर दीजिए। पूछने पर उन्होंने दृढ़ता से उत्तर दिया—"मैं मांस का शोरवा नहीं लूँगी। यह मनुष्य-देह बार बार नहीं मिला करती। आपकी (बापू जी की) गोदी में मर जाऊँ तो परवा नहीं, पर अपनी देह को मैं भ्रष्ट न होने दूँगी।"

× × ×

विवाह के समय वे बिलकुल निरक्षर थीं। महात्मा जी ने शुरू में उनको पढ़ाने की कोशिश की। लेकिन सार्वजनिक कामों में जल्दी ही फँस जाने से उनकी शिक्षा अधूरी ही रह गई। आज भी उनको गुजराती का केवल साधारण और हिन्दी का कामचलाऊ ज्ञान है। अब कभी भाषण करने को खड़ी होती हैं तब गुजराती और हिन्दी दो सहेलियों की तरह गले में हाथ डालकर साथ साथ चलती हैं। हिन्दी का ज्ञान बढ़ाने के लिए आज-कल उन्होंने तुलसी की रामायण का कीर्तन शुरू किया है। लेकिन इस पढ़ाई-लिखाई में वे अधिक समय नहीं दे सकतीं और शायद उनको ज़्यादा रुचि भी नहीं है। देश की विभिन्न पेंचीदा समस्याओं का भी उनको अधिक ज्ञान नहीं है। लेकिन उनको अशिक्षित कहना अपने अज्ञान और नासमझी का परिचय देना होगा। यद्यपि वे संसार की दृष्टि में अधिक पढ़ी-लिखी नहीं हैं, तथापि उनके व्यक्तित्व के सामने धुरन्धर विद्वानों और ज्ञानियों का माथा अवश्य झुकेगा। इसलिए नहीं कि वे महात्मा जी की पत्नी हैं, किन्तु इसलिए कि वे सौजन्य, सुसंस्कृति, सरल और मीठे स्वभाव की मूर्ति हैं। उनका दिमाग़ तीखा है, हृदय अत्यन्त सरल और प्रेम तथा सेवा-भाव से परिपूर्ण है। उनका शरीर इस ७० वर्ष की उम्र में भी मज़बूत है। जिस व्यक्ति का शरीर, दिल और दिमाग़, तीनों सुन्दर तथा स्वाभाविक रूप से विकसित हैं उसका अशिक्षित कहना 'शिक्षा' का अपमान करना है।

× × ×

शुरू में तो मेरा झुकाव महात्माजी की ही तरफ़ हुआ था। जब मैं सेगाँव जाता, महात्मा जी के ही जीवन को देखने और समझने की कोशिश करता और जैसा कि मैं अपने 'सेगाँव का सन्त' शीर्षक लेख में पहले लिख चुका हूँ। मैं तो महात्मा जी की मानवता से ही मुग्ध हुआ हूँ। आज भी मैं उनका महान् नेता की हैसियत से ही आदर करता हूँ और माता कस्तूरबाई से तो शुरू में मेरा अधिक परिचय भी नहीं था। हाँ, ज्यों-ज्यों मैंने उनके अधिक निकट आने की कोशिश की, मेरा हृदय उनकी ओर खिंचता गया: और आज जब मैं सेगाँव जाता हूँ, चाहे एक बार महात्मा जी से न मिलूँ, उनसे मिले बिना कभी नहीं लौटता। इसका कारण है, और वह है उनकी सरलता। महात्मा जी के सामने हम लोगों ने उनके व्यक्तित्व को अभी तक नज़दीक से पहचानने और समझने की कोशिश नहीं की है। लेकिन मेरा पक्का विचार है कि महात्मा जी से स्वतन्त्र उनका एक मनन करने योग्य व्यक्तित्व है। उनकी सहृदयता, भोलापन, सहानुभूति और प्रेम अनुभव करने से ही जाने जा सकते हैं। सेगाँव-आश्रम में महात्मा जी से लेकर साधारण से साधारण व्यक्ति की प्रेम और सेवा-वृत्ति से चिन्ता करना, अपने कष्ट का ख़याल न करके सभी के दुख-दर्द का ध्यान रखना वे ही कर सकती हैं। एक बार बहुत दिनों तक उनके पैर में चोट रही। हड्डी भी शायद चटक गई थी। डाक्टर ने चलना-फिरना मना किया था। तो भी उनको बिना सबका इन्तिज़ाम देखे चैन न था। अपने सुख और आराम का ख़याल तो उन्हें कभी शायद होता ही नहीं। इतनी उम्र होने पर भी वे अपना सब काम ख़ुद कर लेती हैं। अपने लिए किसी की भी सेवा स्वीकार नहीं करतीं। सुबह से शाम तक उनका सारा समय काम करते ही बीतता है। और उनका सब काम शान्ति और स्वाभाविकता से होता है। उनके चेहरे पर मैंने कभी क्रोध की झलक भी नहीं देखी। उनको तो मैं एक आदर्श कर्मयोगिनी मानता हूँ। यह उनके कर्मयोग का ही फल है कि सेगाँव-आश्रम में सबसे अधिक उम्र होते हुए भी उन्हीं का स्वास्थ्य सबसे अच्छा है। पैर की उक्त चोट के समय डाक्टर ने उनके पैर को देखकर कहा—"बा का साधारण स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं मालूम होता। उनको काफ़ी आराम चाहिए।" महात्मा जी हँसकर बोले—"डाक्टर साहब, आप ग़लती

[श्रीमती कस्तूर बाई और श्री जमनालाल बजाज़ की मा]

पर हैं। मेरे आश्रम भर में इन्हीं की तन्दुरुस्ती सबसे अच्छी है। ये बहुत ही कम बीमार पड़ती हैं!" सब लोग मुस्करा दिये। वे भी हँस पड़ीं।

× × ×

आज हिन्दुस्तान की स्त्रियों में जाग्रति फैल रही है। वे उच्च शिक्षा ग्रहण कर रही हैं और पर्दे से बाहर निकलकर जनता के सामने आ रही हैं। यह तो अच्छा ही है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए स्त्रियों की तरक़्क़ी ज़रूरी है। लेकिन जब मैं वर्तमान पीढ़ी की युवतियों के जीवन की पुरानी पीढ़ी की महिलाओं के जीवन से तुलना करता हूँ तब मुझे अक्सर शक हो जाता है कि आज-कल की स्त्रियों की उन्नति 'उत्थान' है या 'पतन'। कालेजों से निकली हुई युवतियों का कृत्रिम जीवन और उनके कमज़ोर शरीर देखकर अक्सर निराशा की भावनायें मन में उत्पन्न हो जाती हैं। स्त्री-शिक्षा का क्या उद्देश्य होना चाहिए? अगर शिक्षा द्वारा हमारी बहनों के दिमाग़, दिल और शरीर, तीनों का ही स्वाभाविक विकास न हुआ तो फिर यह स्त्री-शिक्षा की पुकार किस काम की? इसलिए जब मैं स्त्री-शिक्षा की समस्या पर विचार करता हूँ तब मेरे सामने माता कस्तूरीबाई की जाग्रत मूर्ति आकर खड़ी हो जाती है और मानो कहती है—"भारत की युवतियो, आओ। मेरे पास आओ। तुम शिक्षा ग्रहण करने के बहाने भारत की संस्कृति से दूर मत भागो।" जब मैं श्री जमनालाल बजाज़ की ७५ वर्ष की

वृद्धा माता को देखता हूँ तब भी मेरे मन में इसी प्रकार के विचार आते हैं। वे भी इतनी आयु की होती हुई भी दिन भर घर के काम में लगी रहती हैं, और आज भी कई घंटे तक सूत कातती हैं।

× × ×

मैं तो मानव-धर्म का पुजारी हूँ। मैं तो जब किसी प्रेम और सहानुभूति से भरे मानव को देखता हूँ, हृदय गद्गद हो जाता है। माता कस्तूरी बाई में मानव पूर्णरूप से पुष्पित है।

अगर हम सब इन दोनों विभूतियों को इसी नज़र देख सकें और सच्चे मनुष्य बनने की कोशिश करें संसार में कितनी शान्ति और प्रेम का संचार हो सके।

मूक-माँग

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिनहा

हा! मेरे सुख का वह लघु पल क्यों इन्द्रधनुष-सा बन आता!
मैं निरख न जी भर भी पाती वह मिट क्षण भर में ही जाता!

नभ-निभृत-व्योम पर नीरव वह
जो तेजपुञ्ज-सा खिल उठता।
मैं उसे न चुम्बित कर सकती,
वह हाय! मुझे कितना छलता।

पर कितना मादक है प्रिय का पल भर का यह अज्ञात-मिलन।
कितना मधुमय सुखप्रद है रे, यह चिर वियोग यह अचिर मिलन!

कितना प्रिय है रोते दृग में,
उनका सपना बनकर आना।
मेरे सोते उच्छ्वासों को,
सपनों मिस आ बिखरा जाना।

मेरे लघु सपने के जग में वे सुख्य हँसी बन कर आवें
यह मेरी जीवन-रजनी के खो स्वप्न न पल भर में जावें

मानस-पट पर वह नित आवें,
पलकों पर सरसिज पग धरके।
मैं हृदय-नीड़ में छिपा रखूँ,
वह कुहुक उठें कलरव करके।

छाया-से दूर देश से आ कुछ भूठी याद दिला जावें
क्षण भर उर में हँस बस कर वे मीठी वेदना जगा जावें

छलकें पलकों की सीपी से,
बनकर वे सपनों के मोती।
मैं भर लूँ रीता हृदय-कोष,
मेरी यह निधि न कभी खोती।

मेरे आँचल से सपनों की माया जब हो लुट जाने को!
निज चरणों की रेखा अंकित कर दें धीरज बँधवाने को!

यदि फूलों-से हँसते आवें।
प्राणों में सौरभ बस जावें।
यदि मधुर राग बन वे आवें।
झंकार भरो तो रह जावें!

एक करुण कहानी

मुख़बिर

लेखक, पण्डित मोहनलाल महतो

(१)

जगदीश के पिता ने इधर-उधर देखकर धीरे से कहा—"सुनो जी, अब तुम बड़े हुए। सोच लो—हाँ, आख़िर सच्ची बातों को ज़ाहिर कर देने में डर किसका है? मैं अगर होता—विश्वास करो—मैं अगर होता तो सच्ची बातों को खोलकर रख देता।"

जगदीश बोला—"आप ठीक कह रहे हैं—पर...।"

"मैं यह नहीं पूछता।"—झल्लाकर वृद्ध भवानीदीन बोले, जिनकी रीढ़ झुर्री करते करते झुक गई थी—"साफ़ बात है। हाँ, कहो। तुमने क्या देखा?"

धीरे से जगदीश ने उत्तर दिया—"मैं कहता हूँ! पहले वह सुन तो लीजिए।"

"क्या सुन लूँ?" भवानीदीन व्यग्रतापूर्वक बोले—"कुछ बात भी हो। तुमने हमारे किये-दिये पर पानी फेर दिया! मैं मुँह दिखलाने लायक़ भी कहाँ रहा? मैंने, सच कहता हूँ, तुम्हारे लिए नौकरी ठीक कर रक्खी थी। सब किया, पर तुम तो किसी की सुनते ही नहीं।"

जगदीश चुपचाप बैठा रहा। उसकी चुप्पी ने भवानीदीन को थोड़ा-सा और उत्तेजित कर दिया। वे तनकर बैठ गये और कहने लगे—"तुम्हें चाहिए कि सच्चा बयान दो। कोई कालेपानी जाय या फाँसी चढ़े। तुम्हें इससे क्या वास्ता? जो हो चुका सो हो चुका। अभी तक कुछ बिगड़ा नहीं है। साहब मुझसे......।"

जगदीश ने कहा—"आख़िर आप चाहते क्या हैं? मैं ऐसी बातों को पसन्द नहीं करता—मेरी जान भले ही चली जाय। कलङ्क का अमिट टीका लगाकर समाज के सामने बेशर्मी के साथ जाना—छिः छिः!"

भवानीदीन असमंजस में पड़ गये। उन्हें मालूम था कि जगदीश पूरा हठी है। फिर भी अपना पिता होने का नैसर्गिक दावा वे नहीं छोड़ सके। विश्वास था कि लड़के को समझा लेंगे, उसे ठीक रास्ते पर ले आवेंगे, पर जगदीश के रुख़ ने उन्हें थोड़ा-सा हताश कर दिया। फिर भी भवानीदीन अपने प्रयत्न के प्रति कातर नहीं हुए, और समझाने के तर्ज़ को ज़रा-सा बदल दिया। 'गुरुत्व' की जगह पर 'पितृत्व' को अधिक प्रश्रय देते हुए उन्होंने फिर कहा—"बेटा, आख़िर हमारी गति क्या होगी? तुम्हारी बूढ़ी मा तो—किन शब्दों में कहें—जान देने पर तुली हुई है। उसका कहना है कि बिना जगदीश को देखे अन्न नहीं छुऊँगी, खाना तो दूर की बात है!"

इतना कह कर—अपनी बातों का असर देखने के विचार से भवानीदीन चुप हो रहे और अपनी बाज़ जैसी तेज़ आँखों से जगदीश के मुख की ओर देखने लगे, जो सूखा हुआ और पीला पर कठोर दिखलाई पड़ता था। वह दीवार की ओर देख रहा था, जहाँ एक छिपकली बैठी थी। मानव-सम्प्रदाय का यह नियम है कि हम एक-दूसरे की कमज़ोरियों से लाभ उठाने का सतत प्रयत्न करते हैं। अपनी बातों से हम दूसरे की उन भावनाओं को उद्दीप्त कर देते हैं जो कमज़ोरियों को जगाने का काम करती हैं। भवानीदीन ने जगदीश के कठोर हृदय में मातृस्नेह की भावना को जगाने का प्रयत्न किया। वे जानते थे कि जगदीश का हठी हृदय मा की याद—सकरुण याद—की आँच में पड़कर विगलित हुए बिना न रहेगा। यह स्वाभाविक भी है। जब वह अपने अन्तर की सकरुण भावनाओं से द्रवित हो जायगा तब भवानीदीन के लिए अपनी बातें मनवा लेना कठिन न होगा। निश्चय ही एक बार जगदीश का हृदय काँप उठा, उसका मन अपनी स्नेहमयी जननी की गोद में खेलने के लिए मचलने लगा, पर तत्काल उसने अपने आपको सँभाल लिया—उसे ऐसा लगा कि वह पथभ्रष्ट होने जा रहा है। अपने निश्चय पर अड़े रहने की वह एक बार फिर—मन ही मन—प्रतिज्ञा कर सिर झुका कर बैठ गया और धीरे धीरे तर्जनी से ज़मीन कुरेदने लगा, मानो अचला धैर्यशालिनी पृथ्वी को खोदकर थोड़ा-सा साहस और धैर्य अपने लिए प्राप्त करना चाहता हो। भवानीदीन पछताकर बोले—"सोच लो, तुम्हें क्या करना चाहिए। जब बुरे दिन आते हैं तब कोई साथ नहीं देता। सौभाग्य के मज़े लूटने के लिए बहुत-से साथी जुट जाते हैं,

पर दुर्भाग्य के लोहे के चने तो खुद चबाने पड़ते हैं। तुम हठ छोड़कर मेरा कहा मानो—अपने को बचा लो, चाहे जैसे हो।" जगदीश खिन्न स्वर में बोला—"आप तो मेरी जान लेने की व्यवस्था कर रहे हैं और कहते हैं कि 'अपने को बचा लो।'

चौंककर भवानीदीन ने जगदीश के तमतमाये हुए चेहरे की ओर देखा। उन्हें विश्वास नहीं था कि जिस जगदीश ने कभी उनके सामने आँखें उठाने की गुस्ताख़ी भी नहीं की वही जगदीश आज इस तरह एकाएक तलवार का वार कर बैठेगा। भवानीदीन सन्नाटे में आ गये। सहसा वे नहीं सोच सके कि उनका अगला कर्तव्य क्या है। अपने बिखरे हुए साहस को कंठ पर केन्द्रित कर काँपते हुए स्वर में बोले—"बेटा, क्या कहा तुमने? मैं तुम्हारी जान का गाहक हूँ? यह कैसा आक्षेप है जगदीश? मैं......मैं......क्या कहूँ...।"

भवानीदीन कुछ कह न सके। गला रुँध गया। जगदीश पत्थर की तरह सिर झुकाये चुपचाप बैठा रहा। उसके चेहरे का रङ्ग रह रहकर बदल जाता—एक रङ्ग जाता, दूसरा आता। मानसिक उथल-पुथल के डरावने चिह्न उसकी टेढ़ी भौंहों और सिकुड़े हुए ललाट से स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। जगदीश मानसिक आघात-प्रतिघातों से मानो मन ही मन व्यग्र हो रहा था। वह मानो थके हुए तैराक की तरह विकल होकर हाथ-पाँव मारता, पर तेज़ धारा के आगे कोई वश न चलता और डूबता-उतराता उस ओर बहता जाता जिधर जाना उसे मंज़ूर न था। ऐसी अवस्था थी उस नवयुवक जगदीश की जो भयानक अपराधों के कारण अपने साथियों के साथ पिछले डेढ़ साल से जेल में बन्द था और जिसके पिता आये थे समझाकर मुख़बरी करने के लिए उसे राज़ी करने। इसी में कल्याण था।

दिन का अन्त हो गया। वर्षा की मनहूस संध्या जेल के आँगन में धीरे धीरे उतरी। घास पर दो-चार तितलियाँ उड़ती नज़र आईं।

(२)

निश्चय की मज़बूत गाँठ परिस्थिति के हाथों से ढीली पड़ने लगती है। हम अगर इस्पात की तरह कठोर रहने के लिए क़सम खाकर बैठ जाते हैं तो अपनी क़सम की रक्षा तभी तक कर सकते हैं जब तक परिस्थिति साथ देती रहती है। जहाँ इसने अपना रवैया बदला, फिर अपने आपको सँभालकर रखना कठिन हो जाता है। जगदीश एक ठोस नवयुवक था, उठती जवानी थी और स्वभावतः गम्भीर होने के कारण उसकी प्रकृति में चंचलता का प्रवेश नहीं हो सका था। अपने निश्चय को वह बहुत ही कठिनता से बदलता। पिता की बातों ने पहले तो उसे उत्तेजित कर दिया, पर उसने यह अनुभव किया कि उसके हृदय में दुर्बलता का भी स्थान है, जो अनुकूल अवसर पाकर धीरे धीरे अपना प्रभाव फैला रही है। संशय-रहित जगदीश का हृदय द्विधा में फँस गया। कभी-कभी वह यह भी सोचने लगा कि मुख़बरी करके इस ज़लील ज़िन्दगी को एक किनारे लगा देना अच्छा होगा। पहले वह ऐसी बातों को हृदय के निकट फटकने भी नहीं देता था—यह ऐसी बातों को मन में लाना भी कमीनापन समझता था, पर अब उसने इस प्रश्न पर सोचना आरम्भ किया। कभी घर अपनी मा के विषय में सोचता और कभी पयोमुख छोटी-सी बहन के विषय में। वह अपने पड़ोस की उस भोली-भाली लड़की के विषय में भी सोचता जो किसी दिन जगदीश के यह कहने पर कि मैं फाँसी पर चढ़ूँगा, रो पड़ी थी। अपनी कोठरी में चुपचाप पड़ा-पड़ा वह छटपटाने लगा। पिछले जीवन के अनेक लुभावने दृश्य उसकी आँखों को आकर चूमने लगे, मोटे-मोटे सीख़चों के उस पार बुलाने लगे, हरे-भरे खेतों में और अमराई में चलने के लिए उकसाने लगे।

कभी जगदीश अपने को धिक्कारता और कभी चुप रहकर सोचता कि क्या करना चाहिए। जेल की एक-रसता ने उसके जीवन के सौन्दर्य को चूस लिया था। एक ही प्रकार के वातावरण में साँस लेते-लेते, एक ही तरह के स्वाद का भोजन खाते-खाते, एक ही कमरे में रहते-रहते और एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते करते वह मन ही मन ऊब उठा। धीरे-धीरे उसके हृदय की दृढ़ता भाफ़ बनकर कैसे उड़ गई, इसका पता किसी को न चला और उसकी जगह पर दुर्बलता का साम्राज्य कैसे स्थापित हो गया, यह बतलाना भी कठिन है। जगदीश अपने को रोक नहीं सका। वह सिद्धान्तों की ऊँची चोटी से लुढ़क पड़ा था। बीच बीच में पत्थरों के ढोकों से ठहराकर रुक जाने की कभी संभावना थी, पर दुर्भाग्यवश कोई ऐसी बाधा भी नहीं उपस्थित हुई। वह बड़े आराम से लुढ़कता-लुढ़कता पहाड़ की जड़ तक चला आया।

अख़बारों के पाठकों ने चकित होकर एक दिन पढ़ा कि जगदीश मुख़बिर हो गया है। उसने सप्रमाण सत्य को स्वरूप में उपस्थित कर दिया। लोगों ने हृदय पर हाथ रखकर उसके बयान को पढ़ा। इस तरह पानी में आग लगाकर एकाएक जगदीश जेल के फाटक से ऐसे जुआड़ी की तरह मुँह छिपाकर निकल आया जो अपना सब कुछ हार जाने के बाद अपने बच्चों को और अपनी जीवनसहचरी को भी हार आया हो। आज़ाद जगदीश ने बाहर निकलकर एक बार फिर अपनी ओर ध्यान देने का प्रयत्न किया। अपने उत्तेजनापूर्ण अतीत को लज्जा-मनस्तापमय वर्तमान से मिलाकर उसने जब विचार किया तब उसका हृदय बड़े वेग से धड़ककर एकाएक बैठ गया। जिस सुख की, शान्ति की, जीवन की आकांक्षा से वह जेल से बाहर आया था वह आकांक्षा उसे उतनी ही दूरी पर नज़र आती, जितनी दूरी पर जेल के भीतर से दिखलाई पड़ती थी—जगदीश जितना आगे बढ़ता उसकी आकांक्षा उसी अनुपात से पीछे खिसकती। इस तरह दोनों में जितना अन्तर था, उतना अन्तर ज्यों का त्यों बना रहा। जेल से छूटने के पहले उसने जिस उल्लास का अनुभव छूट जाने की कल्पना के रूप में किया था वह उल्लास छूट जाने पर न जाने कहाँ छिप गया। जगदीश ने जेल से निकलकर भी अपने आपको अकूलसागर में ही पाया, जिसमें चट्टान की तरंगें उठ-उठकर बड़े वेग से गिरती हों। इतना ही नहीं, जो दिशा और समय के बन्धनों से बिलकुल मुक्त हो ऐसा सागर! गाँव के मित्रों ने जगदीश का स्वागत किया, पर म्लानमुख से, कुछ कुछ सकुचाये से, मानो उन्हें ऐसा लग रहा हो कि वे किसी अवांछनीय काम को बलपूर्वक करने जा रहे हों। जगदीश ने भी अपनी रूखी-सूखी मुस्कान से उनके विरस स्वागत का उत्तर दिया। मित्रों ने भी जगदीश की मनःस्थिति का अनुभव किया और जगदीश ने भी लोकरुचि को भाँप लिया, पर दोनों एक-दूसरे के सामने अपने आपको छिपाना चाहते थे। जो भी हो, पर उसके लिए गाँव का वातावरण ऐसा नहीं था कि वह वहाँ के वातावरण में उन तत्त्वों को पावे जिनसे प्राणों में बल मिलता है, जीवन को उत्साह मिलता है, विचारों में मनोहरता आती है। एक दबी हुई घृणा, उपेक्षा, दुराव और झल्लाहट की झलक सर्वत्र उसे मिलती। पर वह जाय तो कहाँ? शहर की झलमलाती हुई बिजली के प्रकाश में जगदीश अपने आपको प्रकट करते हुए झिझकता था, उसकी आत्मा चोर बन चुकी थी जिसे अन्धकार से प्रेम हो गया था। वह चाहता था कि कभी सूर्योदय न हो, कभी प्रकाश न हो, सदा अन्धकार बना रहे। है कोई ऐसा स्थान संसार में, जहाँ केवल अन्धकार ही अन्धकार रहे, जहाँ कुछ दिनों तक रह कर—अपने आपको छिपा कर—जगदीश सुख की साँस ले, आत्मग्लानि के मूक धिक्कारों से अपने को बचा सके।

एक दिन भवानीदीन बोले—"तुम उदास क्यों रहते हो?" जगदीश एक ठंडी साँस लेकर चुप रहा। भवानीदीन फिर बोले—"भाई, इस तरह तो काम नहीं चलेगा। कहीं नौकरी वग़ैरह की खोज करो—सरकार को लिखो। वह तुम्हारी ओर ध्यान देगी।"

जगदीश मानो मन ही मन रो उठा, उसका हृदय कराह उठा, पर वह चुप रहा। उसकी निष्ठुर चुप्पी ने भवानीदीन को कुछ चिढ़ा दिया। वे अपने भावों को बड़े यत्न से छिपाकर बोले—"बेटा, मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी पिछली बातों को भूल जाओ। तुमसे जो भयानक नालायक़ी हो गई है उसका संशोधन हो चुका। अब तुम्हें चाहिए कि भले आदमियों से मिलो और ऐसा प्रयत्न करो कि समाज तुम्हें ग्रहण कर ले। इस तरह एकान्तवास से क्या होगा?"

जगदीश ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप उठा और कमरे में चला गया। भवानीदीन को उसकी यह गुस्ताख़ी अच्छी नहीं लगी। वे जगदीश को सुनाकर कहने लगे—"इतना पढ़ाया-लिखाया, सिर पर क़र्ज़ का भार लादा, घर की लोटा-थाली बेंच कर बबुआ को आदमी बनाया, पर उसका फल हाथों हाथ मिला। कोई किसी का नहीं है—हे नारायण, इस संसार से उठा लो! अब नहीं सहा जाता। शरण दो अशरण-शरणनाथ!" कमरे में पहुँचकर अपने दोनों कानों में कसकर उँगलियाँ डालकर जगदीश खाट पर लेट गया।

उसके हृदय में समुद्र-मंथन का भयानक दृश्य उपस्थित था। वह उसी तरह अपने भीतर ही भीतर तड़प रहा था, जैसे अन्धकार में किसी ओर से सनसनाता हुआ एकाध बाण आकर कलेजे में घुस जाय और घायल को यह पता ही न चले कि किसने किधर से क्यों आघात किया, वह किधर भागे, कहाँ अपने आपको छिपावे—आह कैसी भयानक स्थिति !

(३)

"क्या सुन रही हूँ ?"

"कहो तब न ! मैं भी सुनूँ !"

"गाँववाले कहते हैं कि......।"

"क्या कहते हैं ?"

"कहते हैं कि तुमने विश्वासघात किया है सो......।"

"सो क्या ?"

"कहा नहीं जाता ! कितनी बातें सुनती हूँ—क्या बतलाऊँ ! ख़ून का घूँट पीकर रहना पड़ता है—अब मुझसे नहीं सहा जाता।"

× × ×

शरद् की मन्दगामिनी स्वच्छ सरिता के तट पर जगदीश और कजली दोनों बैठे हैं। दिन का अन्त हो चुका है। शुभ्राकाश में दो-चार तारे मुस्कराते नज़र आते हैं। कजली गाँव की लड़की है, गोरी गोरी पर तितली की तरह चंचल, हरिणी की तरह भोली-भाली। जगदीश की बाल्य सखी है। दोनों ने दोनों के हृदय की धड़कन को मन के कानों से सुना है, दोनों ने दोनों की आँखों में छलकनेवाले लज्जामिश्रित मूक भावों को समझा है, दोनों ने दोनों के गरम उच्छ्वासों का अनुभव किया है, दोनों ने दोनों के विचारों पर, कल्पना पर, महत्त्वाकांक्षाओं पर अपनी छाया डाली है, दोनों ने दोनों को यौवन के रंगीन प्रकाश से निखरे हुए उषा-काल में अपने प्राणों के पड़ोसी-रूप में देखा है।

कजली बहुत ही कम बोलती थी, बहुत ही कम हँसती थी, बहुत ही कम अपने हृदय की कसक को भावों से व्यक्त करती थी। उसे आत्मसंगोपन से सुख मिलता था, पर जगदीश की वाणी उसके मन की सहचरी थी—मन की बातों को वाणी व्यक्त कर देती, पर कजली को अपने हृद्गत भावों की कसकसाहट को चुप रहकर महसूस करने में ही सुख मिलता था। उस दिन दोनों नदी-तट पर मिले और दोनों ने दोनों को बहुत दिनों पर आँख भरकर देखा।

जगदीश बोला—"कजली, तुम झूठ तो न बोलोगी ?"

कजली ने संक्षेप में उत्तर दिया—"ऊँहूँ !"

इधर-उधर देखकर जगदीश ने कहा—"तुम मुझसे घृणा तो नहीं करतीं ? सच सच बतला दो।"

भोली-भाली कजली बोली—"घृणा नहीं करती, पर तुम जेल से क्यों आये ? सुना है, तुमने विश्वासघात किया है। लोग तो यही कह रहे हैं।"

जगदीश ने कराहकर उत्तर दिया—"कजली, क्या कहूँ ?—आह !"

"मैं सच कहती हूँ।" अपनी कजरारी आँखों को ऊपर उठाकर कजली बोली—"लज्जा से मरी जाती हूँ। सुना सुनाकर लोग ताने मारते हैं। मैं तुम्हें—क्या कहूँ, शब्द नहीं मिलते।"

"सत्य है।" जगदीश ने सिर नीचे करके कहा—"मैं भी अनुभव करता हूँ। पर अब क्या करूँ देवी ! अतीत का संशोधन कैसे हो ताकि मन की असह्य पीड़ा मिटे ?"

"मैं क्या कहूँ ?"—दीर्घ निस्वास छोड़कर कजली बोली।

जगदीश ने व्यग्रतापूर्वक कहा—"कुछ तो कहो।"

कजली बोली—"मैं कितना लज्जित होती हूँ जब तुम्हें देखती हूँ। जब तुम जेल में थे, मैं गर्व से फूली न समाती थी। न जाने क्यों मेरा हृदय गर्व से पागल सा रहता था ? तुम्हारी बहादुरी की बातें सुनती तब ऐसा लगता कि मैं आसमान पर पैर रखकर चल-फिर रही हूँ। हाय ! यह क्या हो गया ?"

जगदीश सिर झुकाकर चुपचाप बैठा रहा। उसके हृदय में भूकम्प के धक्के पर धक्के आते रहे। कजली कुछ क्षण चुप रहकर फिर कहने लगी—"तुम पुरुष हो, कीर्ति तुम्हारी चेरी है। पर मैं तो तुम्हारे ही तप से तपस्विनी, तुम्हारे ही बल से बलशालिनी, तुम्हारे ही यश से यशशालिनी बनूँगी। जब तुम्हीं कलंक-कालिमा में डूब जाओगे तब फिर मेरा क्या ठौर-ठिकाना है ? मैं जिस स्कूल में पढ़ती हूँ, वहाँ की सखियों ने जब मुझसे तुम्हारा हाल

कहा तब मैं किन शब्दों में बतलाऊँ कि मेरी दशा कैसी हो गई। अध्यापिकाओं के मुँह से जो कुछ मैंने सुना वह वर्णनातीत ही है। मैं......।"

जगदीश दोनों हाथों से कजली के पैर पकड़कर बोला—"देवी, क्षमा करो। चुप रहो। अब नहीं सहा जाता।"

पश्चिम के आकाश में विभावरीश की अमल विभा बिखर गई। सरिता के जल पर ज्योत्स्ना की हल्की चमकदार लकीरें चमकने लगीं। शीतल हवा के मन्दमधुर झोंकों ने आकर जल की लहरियों को चूम लिया। नदी के उस पार की वनश्रेणी फिर एक बार स्वप्न की तरह—अस्पष्ट-सी—दिखलाई पड़ने लगी। धीरे धीरे सुधाकर ऊपर उठे। तारकाओं ने मानो दोनों ओर हटकर तारापति को मार्ग दे दिया।

(४)

दारोग़ा साहब 'वेस्टपेपर बास्केट' में पान की पीक थूकते हुए, सामने पड़े हुए काग़ज़ पर नज़र जमाकर, बोले—"हाँ, जगदीशकुमारसिंह, बाप का नाम भवानीदीन, क़ौम राजपूत, उम्र बीस साल—ठीक तो है !"

भवानीदीन आगे झुककर साग्रह बोले—"हुज़ूर ने क्या फ़र्माया ?"

"कुछ नहीं जी"—रूखे स्वर में दारोग़ा साहब ने उत्तर दिया—"तुम्हारा लड़का बड़ा ख़तरनाक है। उसे रोज़ थाने पर हाज़िरी देनी चाहिए। समझ गये ? समझा देना।"

भवानीदीन सकपकाये से बोले—"उसने तो सरकार का साथ दिया है।"

"बड़े उल्लू हो तुम जी"—दारोग़ा जी ने गम्भीर स्वर में घोषणा की—"मैं क्या जानूँ ? उसने डाके डाले हैं, लूट-पाट की है। ऐसे ख़तरनाक आदमी को गोली से उड़ा देना चाहिए।"

भवानीदीन के काटो तो लहू नहीं। उनकी आशा-लतिका पर तुषार-पात नहीं, वज्रनिपात हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि उनकी आँखों के सामने का सारा दृश्य घूम रहा है।

दारोग़ा जी ने फिर कहा—"जाओ, यही काम था। आज से ठीक चार बजे संध्या-समय—क्या नाम है तुम्हारे लड़के का ?"

भवानीदीन ख़ुशामद-भरे स्वर में बोले—"हुज़ूर के ग़ुलाम का नाम है जगदीश !"

"हाँ, जगदीश"—दारोग़ा जी ने काग़ज़ उलटते हुए कहा—"उससे कह देना, रोज़ संध्या-समय चार बजे आकर हाज़िरी दे जाय, नहीं तो तुम लोगों के हक़ में बुरा होगा।"

"जो आज्ञा"—यह कहकर मर्माहतचित्त भवानीदीन थाने से लौटे। उनके पैरों के जूतों से जो आवाज़ निकल रही थी उससे भी उनके मन की अकथनीय खिन्नता, उदासी, पीड़ा प्रकट होती थी। वे हारे हुए जुआरी की तरह बेमन घर की ओर चले। रास्ते में एक पड़ोसी मिला। वह एक बातूनी किसान था तथा भवानीदीन का मित्र था। दोनों बैठकर घंटों गप्पें मारा करते थे। भवानीदीन कलकत्ते की कथा सुनाते और वह भूत-प्रेत की चर्चा करता। अचानक अपने मित्र को थाने से निकलते देखकर उस किसान को आश्चर्य हुआ। उसने आगे बढ़ कर पूछा—"क्या काम था भैया ? सुना है, दारोग़ा जी बड़े क्रोधी हैं—सीधी तरह बोलते ही नहीं।"

भवानीदीन ने कहा—"मुझसे तो बेचारे सीधी तरह बोले। मेरे पुराने मित्र भी हैं। मुलाक़ात हुई तो कहने लगे कि मित्र, मैं तो आपके यहाँ ख़ुद आनेवाला था। बिना आप लोगों की सहायता के हम क्या कर सकते हैं ?" यह कह कर वृद्ध भवानीदीन अचानक चुप हो गये। वह किसान विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उन्हें देखता रह गया। फिर ठहरकर उन्होंने कहना आरम्भ किया—"वे जगदीश पर बहुत प्रसन्न हैं। कहने लगे—'भाई अपने लड़के को रोज़ संध्या-समय मेरे पास भेज दिया करो। क्या वह मेरा लड़का नहीं है ?' बात सही है। जब दारोग़ा का मुझसे इतना प्रेम है तब फिर जगदीश तो उनका भतीजा ही ठहरा। हम दोनों भाई भाई हैं।"

किसान सभक्ति अभिवादन करके विदा हुआ। आज उसकी नज़रों में भवानीदीन का मूल्य बढ़ गया था। ख़ुद दारोग़ा साहब जिस पर इतनी कृपा रक्खें उसका मित्र होना गौरव की बात है और यह गौरव उस भोले-भाले किसान को प्राप्त था। भवानीदीन सोच-विचार में डूबते-उतराते घर लौटे। वे जगदीश की प्रकृति से बुरी तरह परिचित थे। उस दिन से पहले भी उन्होंने उसे काफ़ी समझाया था,

भय दिखलाया था, बड़ी-बड़ी नौकरियाँ दिलवाने के सुनहरे सपने दिखलाये थे। गरज़ यह कि भय-प्रीत-लोभ सभी उपायों को काम में लाकर भवानीदीन थक चुके थे, पर जगदीश अपने पथ से तनिक भी नहीं डिगा। जब वह पकड़-कर जेल में बन्द किया गया तब उसने अपनी भूल को जाना। जेल से छूटने के बाद उसने अपना रवैया बदल दिया। भवानीदीन की अनुभवी आँखों से कोई भी रहस्य छिपा नहीं था। पर वेचारे अनन्योपाय थे। करते क्या? संध्या-समय जगदीश को एकान्त में बुलाकर उन्होंने समझाने का प्रयत्न किया। वे बोले—"बेटा, दारोग़ा अपने आदमी हैं। वे चाहते हैं कि एक बार नित्य तुम उनसे मुलाक़ात कर लिया करो। मैं समझता हूँ, इसमें कोई हेठी या बुराई नहीं है।"

जगदीश ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बैठा रहा।

भवानीदीन फिर बोले—"मैं तुमसे अपने प्रश्न का उत्तर सुनना चाहता हूँ। चुप रहने से काम नहीं चलेगा।"

इस बार जगदीश का कंठ फूटा—"मैं क्यों दारोग़ा से मुलाक़ात करने जाऊँ? मैं कोई चोर हूँ, जो थाने पर हाज़िरी लिखवाया करूँ?"

"हाज़िरी!"—भवानीदीन कुछ चिढ़कर बोले—"हाज़िरी की तो कोई बात ही नहीं है। वे तुमसे मुलाक़ात करना चाहते हैं।"

जगदीश ने रुखाई के साथ कहा—"किसी दिन जाऊँगा, रोज़ रोज़ की दौड़ मुझे पसन्द नहीं। मैं किसी का नौकर नहीं हूँ। दारोग़ा हों या...।"

भवानीदीन इस चिन्ता में पड़े कि अब क्या कह कर समझाया जाय। जब वह कुछ सुनता ही नहीं तब फिर भवानीदीन करें तो क्या? कुछ देर चुप रहकर उन्होंने फिर कहा—"बात यह है कि सरकार यह चाहती है कि कुछ दिनों तक तुम्हारे चाल-चलन पर निगाह रक्खी जाय। मेरी समझ से इसमें कोई बुराई की बात नहीं है। जब तुममें कोई बुराई नहीं है तब फिर झिझक भी नहीं होनी चाहिए। मैं तो यही ठीक समझता हूँ।"

जगदीश झल्ला उठा। उसका यौवन से भरा हुआ चेहरा एक बार तमतमाकर तत्काल पीला पड़ गया। अपने मनस्ताप की आग को छाती में छिपाकर उसने दो-तीन मास गाँव में व्यतीत किये थे, पर अत्यन्त बेकली के साथ। उस दिन अपने पिता के मुख से थाने पर हाज़िरी देने की बात सुनकर जगदीश अत्यन्त व्यग्र हो उठा। उसे ऐसा लगा कि उसकी कुचली हुई आत्मा पर 'रोलर' चलाया जा रहा है। चारों ओर एक धिक्कार की जो आँधी उठ रही थी उसका अनुभव जगदीश चुपचाप करता था और मन ही मन अकुलाता था, पर धीरे धीरे उसका सहनभावुक हृदय पसीज रहा था। इस हाज़िरीवाली बात ने उसे अधीर कर दिया। उसने पाप किया था, भूलें की थीं, ग़लत मार्ग को अपने लिए पसन्द किया था। यह सब तो हो चुका था विधि-विडम्बना के रूप में, पर वह चाहता था एक कोने में मुँह छिपाकर जीवन के दिनों को समाप्त कर देना, पर यह भी नहीं हो सका। वह ऐसी जगह पर खड़ा था जिसके एक ओर भयानक अन्धकूप था, जिसके सड़े हुए पानी में साँप बिच्छू कलबला रहे थे और दूसरी ओर काँटों से भरी हुई अतलस्पर्शी खाई थी। ऐसी अवस्था में तत्काल अपने लिए कल्याणप्रद मार्ग ढूँढ़ना ग़रीब जगदीश के लिए एक बूझ पहेली-सी थी। वह धीरे धीरे उठा और घर से बाहर चला गया।

कार्तिक की लुभावनी सुनहरी संन्ध्या थी। हवा में हल्की सर्दी और दिशायें स्वच्छ थीं। आकाश गम्भीर नीलिमा में डूबा हुआ सा दिखलाई पड़ता था, मानो किसी बच्चे की स्वच्छ नीली आँखों की पुतलियाँ हों। सूर्यास्त हो चुका था। वह नदी-तट की ओर अनमना-सा चला। रास्ते में जो किसान मिले उनसे आँखें बचाकर आगे बढ़ जाने के लिए जगदीश की आत्मा छटपटा उठी। पर उपाय? वह अपने आपको प्रकाश का मनुष्य नहीं, अन्धकार का जीव समझता था। जनमनरंजन प्रकाश उसके लिए विडम्बना का कारण था, दिन का जाज्वल्यमान रूप जगदीश के चोर हृदय को राक्षस की तरह भयानक लगता था। किसानों में से एक ने छेड़ कर पूछा—"किधर चले भैया?" जगदीश का हृदय धड़क उठा। वह खड़ा हो गया। किसान ने फिर भोलेपन से अपने प्रश्न को दोहराया। जगदीश चौंककर बोला—"यों ही . नदी की ओर।" "सुना है कि"—किसान बोला—"दारोग़ा जी तुम्हें थाने पर बुलाते हैं। गाँव का चौकीदार—अरे वही मदैया—कह रहा था।"

जगदीश इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार न था। प्रश्न इतनी सीधी भाषा में किया गया था कि उसका उत्तर देना उसके लिए कठिन हो गया। कुछ देर चुप रह कर वह बोला—"मुझे तो नहीं मालूम है।"

मुस्कराकर किसान ने कहा—"वाह, अच्छा अनजान बनते हो! सारा गाँव जिस बात को जानता है उसी बात से तुम अपने को अनजान रखना चाहते हो। न कहो। यह तुम्हारी इच्छा, पर......।"

जगदीश का चेहरा उतर गया। उसने धीरे से कहा—"पर मैं सच कह रहा हूँ भैया, विश्वास करो या न करो। तुम्हारी मर्ज़ी।"

घृणा और अविश्वास भरी हँसी हँसकर किसान बोला—"तुमने—ख़ैर, जाने दो! थाने पर तो चोर हाज़िरी देते हैं। तुम्हें शायद याद न हो। यहाँ एक गोंड़ था—मँगरू। पक्का चोर। रोज़ थाने पर हाज़िरी देने जाता था। पास-पड़ोस में कभी चोरी होती तो वह ज़रूर पकड़ा जाता और उस पर जूते पड़ते। ऊब कर वह गाँव छोड़कर भाग गया। पर कम्पनी बहादुर का राज्य छोड़कर कहाँ जा सकता है? उदय से अस्त तक कम्पनी बहादुर का राज्य है। इसके राज्य में सूर्यास्त नहीं होता। यह बात सही है न जगदीश भाई?" ऊबकर जगदीश बोला—"मैं नहीं जानता।"

किसान ने कहा—"वाह तुमने अँगरेज़ी पढ़ी है सो।"

जगदीश बोला—"सब भूल गया। माफ़ करो।"

किसान बड़बड़ाता हुआ चला गया, पर जगदीश के हृदय की सुप्त पीड़ा को कुरेद कर जगाता गया, उसके मन की दबी हुई आग पर फूँक मारकर उसे भड़काता गया। मर्माहतचित्त जगदीश नदी-तट पर पहुँचा और हारा-सा बालू पर बैठ गया, मानो एक साँस में विश्वप्रदक्षिणा करके अभी अभी आया हो।

दिन का अन्त हो गया। आकाश में तारे टिमटिमाने लगे। संध्या की धुँधली छाया मन्दगामिनी सरिता पर पड़ने लगी। अपने श्वेत पंख फैलाकर बगुले उड़ उड़कर नदी-तट पर आने लगे। शान्ति तथा निस्तब्धता का स्वप्न-सा फैल गया। ठंडी हवा के हल्के-मधुर स्पर्श से जगदीश के हृदय को कुछ आराम मिला। वह चुपचाप लेट गया और धीरे धीरे सो गया। सारी चिन्तायें, सारे मनोद्वेग निद्रा की गम्भीरता में विलीन हो गये। जगदीश जिस प्रकार अपनी मा की गोद में पयोमुख शिशु आराम से मीठी नींद लेता है, उसी प्रकार अनन्त वालुकाराशि पर आराम से सो गया।

(५)

मानसिक उद्वेगों ने उग्ररूप धारण करके जगदीश के हृदय को छिन्न-भिन्न कर दिया। रात-दिन की व्याकुल भावनाओं के निष्ठुर प्रहारों को सहते सहते उसका दिमाग़, उसका मन उकता उठा। वह जिधर भी जाता, उसे ऐसा लगता कि सभी उसकी ओर घृणाव्यंजक दृष्टि से देखते हैं। वह अनुभव करता कि एक साथ ही ३५ करोड़ उँगलियाँ उठी हुई हैं और आकाश-पाताल तथा सभी दिशाओं से छिः छिः की मर्मान्तक ध्वनि अनवरत गूँज रही है। कभी अभागा जगदीश घर में घुसता और कभी सुनसान नदी-तट या पहाड़ियों की घाटियों में जाकर बैठता। कहीं भी उसके मन को शान्ति न मिलती, विराम न मिलता, आश्वासन न मिलता और करुणा न मिलती। एकबारगी ही सारा संसार उससे मुँह मोड़ चुका है और जीवमात्र उससे घृणा करने लग गये हैं, ऐसी मनहूस कल्पना का शिकार बना हुआ जगदीश बड़ी बेकली से अपने जीवन के बुरे दिन समाप्त कर रहा था! वह कभी अत्यन्त उत्तेजित हो उठता और कभी तकिये में मुँह छिपाकर बच्चे की तरह फूट फूटकर रोता और अपने उमड़ते हुए हृदय को क्षण भर के लिए धीरज बँधाता या बँधाने का असफल प्रयत्न करता। उसके उद्भ्रान्त चित्त को कहीं भी विश्राम न मिलता। एक कजली थी, जिसकी याद उसे जेल में भी बाहर निकलने के लिए तड़पाती थी, पर अब वह कजली की कल्पना करके भी सिहर उठता। जगदीश की दशा ऐसी हो गई थी कि शीशे के सामने खड़ा होकर अपना मुँह देखना भी उसके लिए कठोर साहस का काम था। ऐसी मनोदशा के फेर में पड़ा हुआ जगदीश एक दिन कजली के सामने जाकर एकाएक खड़ा हो गया। आम की घनी बारी में वह अकेली घूम रही थी और थी शान्त दुपहरी। कोमल धूप फैली हुई थी। पेड़ों की छाया में बैठकर गायें आराम से आँखें बन्द किये जुगाली कर रही थीं।

जगदीश ने कजली को पुकारा। वह चौंक कर खड़ी हो गई। चकित हरिणी की तरह उसकी भोली

आँखें जगदीश के चेहरे पर पड़ते ही आपसे आप झुक गईं।

जगदीश ने निकट जाकर पूछा—"कजली, आज एक बात पूछने आया हूँ। साफ़ साफ़ उत्तर देना।"

कजली का कोमल हृदय जगदीश की बात सुनकर धड़क उठा। वह डर रही थी कि जगदीश क्या पूछेगा। उसे ज्ञात था कि आज-कल वह विक्षिप्त-सा हो गया है। उसने उस अभागे नवयुवक को समझाने-बुझाने का अनेक बार प्रयत्न भी किया था, पर परिणाम उलटा ही हुआ। पैर का काँटा थोड़ी-सी कोशिशों के बाद निकाल डाला जाता है, पर हृदय का काँटा चिताग्नि में ही जलकर शरीर के साथ ही राख होता है वह निकालने की चीज़ नहीं। उसे मालूम था कि जगदीश के कोमल कलेजे में काँटा चुभ गया है और वह निकाले नहीं निकलने का।

कजली ने सकपका कर धीरे से पूछा—"क्या पूछते हो?"

"यही कि"—जगदीश तेज़ी से बोला—"तुम मुझे प्यार करती हो या घृणा।"

"तुमने आज शराब तो नहीं पी ली" —कजली धीरे से बोली।

जगदीश ने व्यग्रतापूर्वक कहा—"तुम जो समझो, पर मुझे विश्वास है कि मेरे होश ठीक हैं—मैं नशा तो छूता भी नहीं। बोलो। क्या उत्तर देती हो?"

कजली भौंहें टेढ़ी करके बोली—"मैं ऐसे किसी प्रश्न का उत्तर देना पसन्द नहीं करती। तुम घर जाकर सो रहो।"

जगदीश दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोला—"तुम भी मुझसे घृणा करने लगी हो।"

कजली डर गई, पर साहस करके बोली—"मैं कौन हूँ तुमसे घृणा करनेवाली जगदीश बाबू? तुम पागलों की-सी बातें कर रहे हो। मैं कहती हूँ, कल मुलाक़ात करना। जाओ, इस समय जाकर सो रहो। अरे तुम्हारी आँखें कितनी लाल लाल हैं! सच कहो। तुमने शराब तो नहीं पी ली है।"

"मैं शराब पी लूँ या ज़हर।" जगदीश ज़ोर से बोला—"तुम कौन होती हो मुझसे पूछनेवाली? हटो अपना रास्ता लो। उफ़्—अब इस जीवन में केवल विडम्बना शेष रह गई है। पटाक्षेप—बहुत शीघ्र पटाक्षेप!"

जगदीश तेज़ी से मुड़ा और चल पड़ा। कजली ने व्यग्र स्वर में पुकारा—"जगदीश बाबू! जगदीश बाबू!!" कजली की तीखी पर थकी हुई आवाज़ सन्नाटे में गूँज उठी, ध्वनिप्रतिध्वनि की तरंगों में परिणत होकर समाप्त हो गई, पर कोई उत्तर न आया। कजली पगली की तरह पुकारती हुई दौड़ी—"जगदीश बाबू! जगदीश बाबू!!" आवाज़ वृक्षों के पत्तों में हलका कम्पन पैदा करके महाशून्य में विलीन हो गई। जगदीश ने कोई उत्तर नहीं दिया। अब वह कजली की आँखों से भी ओझल हो चुका था। दौड़ती हुई कजली ने फिर पुकारा—"मैं तुम्हें प्यार करती हूँ जगदीश बाबू—लौटो। मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे रही हूँ।

कोई उत्तर नहीं। आम की बारी में 'सायँ-सायँ' हवा चल रही थी—वृक्षों की फाँक से कोमल धूप हरी भूमि पर सोने की टुकड़ियों की तरह चमक रही थी।

धीरे-धीरे दिन का अन्त हो गया। संध्या आई और आम की बारी में अन्धकार छा गया। गम्भीर निर्जनता के हृदय को मसलकर पुकार रही थी किसी दुखिया की आत्मा—"मैं तुम्हें प्यार करती हूँ—लौटो।"

पर लौटे कौन?

संसार में लौटने का नियम नहीं है। दिन नहीं लौटते, रात नहीं लौटती, झरकर गिरे हुए कोमल फूल नहीं लौटते, आँखों से ढुलककर आँसू की बूँदें नहीं लौटतीं, सुख के सपने नहीं लौटते! जब कोई नहीं लौटता तब फिर अनन्त पथ का पथिक जगदीश कैसे विधि का विधान टालकर कजली की पुकार पर लौटता?

भारतीय नृत्यकला

लेखक, श्रीयुत एल० सी० माथुर

[ताण्डव-नृत्य का एक नमूना]

हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में नृत्यकला का अतीत काल से एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसकी प्रशंसा की बातें चारों वेदों में मिलती हैं और उस युग के महापुरुषों में इन्द्र, अर्जुन, कर्ण आदि इसके लिए विख्यात हैं।

प्राचीन काल में हिन्दू-सम्राटों के यहाँ यह पद्धति थी कि वे नृत्य और संगीत के लिए एक पृथक् भवन रखते थे। उसकी दीवारों पर नृत्य के विविध आकार-प्रकार अङ्कित रहते थे ताकि नृत्यकारों को उत्तेजना मिले और वे अपनी भूलें सुधार सकें।

गुप्तकाल में समुद्रगुप्त (३२६-३७५ ई० से पूर्व) ने अपने सिक्के चलाये थे। उनमें उसका चित्र वीणा के साथ अङ्कित है।

प्राचीन काल में नृत्य सम्राटों और राजकुमारों का एक अत्यन्त प्रियविनोद था। सरदारों और महिलाओं में भी इसका प्रचार था। दक्षिण-भारत में द्रविड़ों की सभ्यता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। आर्यों के आने से पहले वे इस कला में पारङ्गत थे।

कहा जाता है कि उत्तर-भारत में जब कृष्ण के नृत्य अत्यन्त लोकप्रिय हुए तब शिव के ताण्डव नृत्य पीछे पड़ गये।
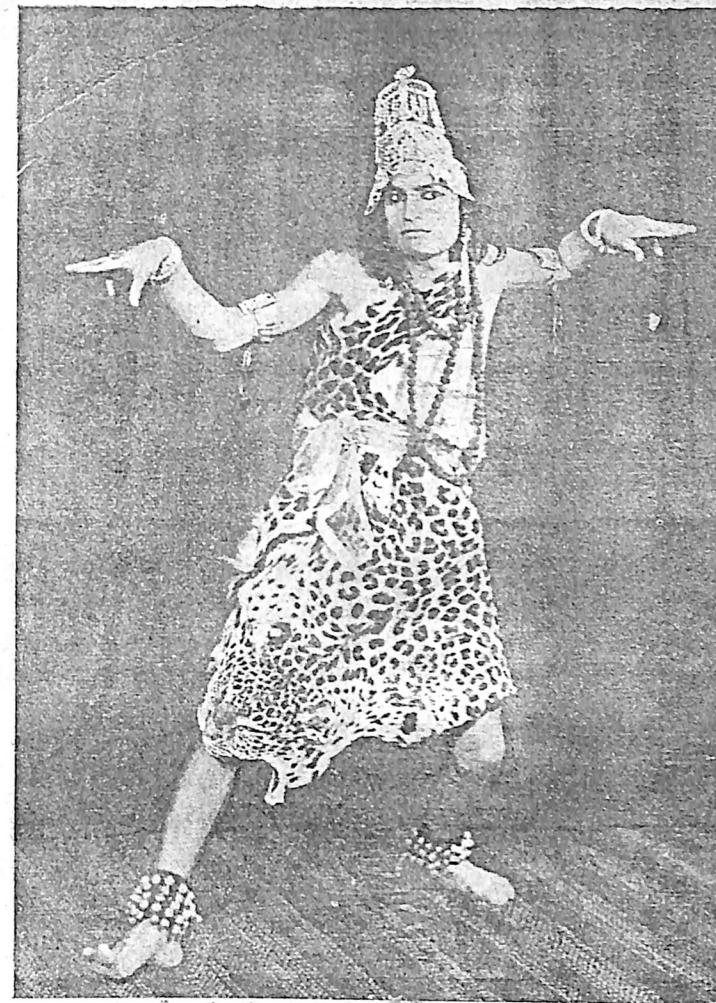
प्राचीन ग्रन्थों में एक विचित्र घटना का उल्लेख मिलता है। कहते हैं कि उत्तर-भारत के एक राजा ने दक्षिण की यात्रा की। उसका उद्देश्य चिदम्बरम् में स्थापित शिव की मूर्ति को रिझाना था। चिदम्बरम् के निकट उसने एक कुएँ में स्नान किया। स्नान करते ही उसका शरीर स्वर्ण का हो गया। इसके बदले में उसने चिदम्बरम् के शिव के मंदिर को स्वर्ण से मढ़वा दिया।

[कृष्ण-नृत्य का एक नमूना]

[कृष्ण-नृत्य का एक नमूना]

उस मंदिर के भीतर ताण्डव-नृत्य के १०८ प्रकार अङ्कित हैं। नाट्य-शास्त्र में इन सबों का उल्लेख हुआ है।

दक्षिण-भारत में आर्यों और द्रविड़ों दोनों की धार्मिक भावना नृत्य के द्वारा अत्यधिक जाग्रत हुई है। ईश्वर से साक्षात्कार करने का नृत्य भी वहाँ एक साधन माना गया है। ईसवी सन् के ५००-६०० वर्ष पहले से ही वहाँ

[गन्धर्व-नृत्य]

शैव कवियों ने मंदिर मंदिर में जाकर शिव की प्रशंसा के गीत गाये हैं।

शिव के ताण्डव नृत्यों के साथ साथ भागवत के अनुसार कृष्ण के नृत्यों का भी विकास और प्रचार हुआ है। इस प्रकार के नृत्यों का केन्द्र मथुरा था। जन्माष्टमी के अवसर पर आज दिन भी कृष्ण के मंदिरों में रासलीलाएँ होती हैं।

मुसलमानों के शासन-काल में हिन्दुओं की यह श्रेष्ठ कला नष्ट हो गई। यदि थोड़ी-बहुत बच सकी तो केवल कतिपय हिन्दू रियासतों में। इस प्रकार जब मुस्लिम शासन का अन्त हुआ और पटपरिवर्तन हुआ तब नृत्य और संगीत का जीर्णोद्धार पुनः आरम्भ हो गया, परन्तु मुस्लिम-शासन-काल के पश्चात् उनका रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया। उत्तर-भारत में कथक-नृत्यों का उसी समय से प्रचार हुआ।

जिस समय मुस्लिम-प्रभाव दक्षिण-भारत में बढ़ा, मुसलमानों की मूर्तिभञ्जन की प्रवृत्ति बहुत कुछ कुण्ठित हो चुकी थी, इसलिए दक्षिण-भारत की प्राचीन परम्परा, संस्कृति और कला एक सीमा तक सुरक्षित रहीं।

भारतीय नाट्य-शास्त्र के नियमों के अनुसार नृत्य का एक अच्छा नमूना कथाकालीन नृत्य है। इसमें अभिनय, गायन और वादन तीनों का सम्मिश्रण रहता है। यह नृत्य सम्भवतः १६ वीं शताब्दी में अस्तित्व में आया। दक्षिण-भारत में आज दिन भी इसका अच्छा प्रचार है।

भारतीय नृत्य के दो स्पष्ट भेद हैं। लास्य और ताण्डव। लास्य नृत्य में स्त्री का प्रभाव अधिक रहता है और ताण्डव पौरुष का परिचायक है।

[पञ्चाङ्ग-नृत्य]

नाविक

लेखक, श्रीयुत जानकीवल्लभ शास्त्री

नाविक, अभी सवेरा है,
तरी खोल झट; कह, वह तट भी पहचाना क्या तेरा है?
तय करनी है कितनी दूरी?
खे लेने की ताक़त पूरी?
तब ले चल; हाँ, अतल सलिल का रहता डर बहुतेरा है?
सभी ओर दिखता कुहरा ही,
तू बैठा ज्यों थककर राही,
सुनता हूँ—उस ओर सभी का होता रैन-बसेरा है!
नाविक, अभी सवेरा है।

इक़बाल की कविता

लेखक, श्रीयुत शमशेरबहादुर सिंह, बी० ए०

उर्दू और फ़ारसी की कविता के इतिहास में ग़ालिब के बाद हम इक़बाल के अतिरिक्त और कोई दूसरा प्रसिद्ध नाम नहीं ले सकते; और आधुनिक युग में भारत के रवीन्द्र और इक़बाल ही दो कवि हैं, जिनको संसार ने अपने महाकवियों में स्थान दिया है। आज वे उन अमर सत्वों के साथ एक हो गये हैं जो समय के असित प्रवाह में समुज्ज्वल रूप से चिर काल के लिए स्थिर हैं। संसार की कुछ विभूतियों के लिए हमें अतिशयोक्ति का प्रयोग करना पड़ता है; क्योंकि यदि वे कवि हैं तो केवल कवि ही नहीं हैं; यदि वे राष्ट्र के निर्माता हैं तो केवल राष्ट्र के निर्माता ही नहीं हैं; दार्शनिक हैं तो दार्शनिक के अतिरिक्त और भी कुछ हैं। जीवन की गति-विधि को मोड़ने, देश की संस्कृति को अधिक परिष्कृत और माधुर्यपूर्ण करने, मनुष्य के वर्तमान को अधिक मूल्यवान् बनाने, उसके भविष्य को अनन्त ज्योति की सत्ता से अधिक सजीव करने का पुण्य श्रेय इन्हीं आत्माओं को प्राप्त होता है।

दार्शनिक इक़बाल

मनुष्य का जीवन कितना विवश है; उसे सँभालने, उसे आशा की सांत्वना से शांत, सशक्त और मंगलमय करने की कितनी आवश्यकता है, यह युग-प्रवर्तक कवियों की वाणी के स्वर और कंपन, उनकी विह्वल आशाओं, उनके प्राणों की असह्य वेदना से ही कुछ-कुछ हम जान सकते हैं।

अपनी एक शुरू की कविता में इक़बाल कहते हैं कि मुझे इस तमपूर्ण संसार में हृदय-हृदय के अंतर-प्रकाश की दीपावली करनी है—

'जलाना है मुझे हर शमए-दिल को सोज़े-पिन्हा से
तेरी ज़ुल्मत में मैं रौशन चिराग़ाँ करके छोड़ूँगा।'

इस समय तक इक़बाल योरप नहीं गये थे। आँखों में देश की स्वतन्त्रता का स्वप्न था और हृदय में स्वदेश-प्रेम का दर्द। नवयुवक कवि को अपनी उच्चाकांक्षा और कल्पना के विहार के लिए एक क्षेत्र मिल गया था। अपनी वाणी के द्वारा देश की सब जातियों को प्रेम के एक सूत्र में बाँधना ही कवि ने अपना लक्ष्य बनाया—

'पिरोना एक ही तस्बीह में इन बिखरे दानों को—
जो मुश्किल है तो इस मुश्किल को आसाँ करके छोड़ूँगा!'

इस प्रेम-सूत्र के द्वारा अपनी निहित शक्तियों को जानने और आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए कवि विकल है। वह विश्व की एकता का मनुष्य और प्रकृति में, जड़ और चेतन में, सबमें प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहता है।

'बस्तए-रंगे-ख़ुसूसियत न हो मेरी ज़बाँ;
नौए-इन्साँ क़ौम हो मेरी, वतन मेरा जहाँ;
दीदए बातिन प राज़े-नज़्मे-क़ुदरत हो अयाँ;
हो शनासाए-फ़लक शमए-तख़य्युल का धुआँ;
उक़दए-अज़दाद की काविश न तड़पाए मुझे;
हुस्ने-इश्क़-अंगेज़ हर शै में नज़र आए मुझे!

अर्थात्—गुण-भेद के बंधन में मेरी वाणी न फँसे, बल्कि मानव-मात्र को मैं अपनी जाति और संसार भर को अपना वतन समझूँ; प्रकृति के रहस्य मेरे अंतर-चक्षुओं पर प्रकट हों; मेरी कल्पना का दीप-धूप आकाश की गहनता से परिचित हो;—मैं विभिन्नता की समस्याओं में पड़कर विकल न रहूँ; बल्कि वस्तु-वस्तु में मुझे प्रेममय सौंदर्य दिखाई दे।

दीपक का प्रकाश सब स्थानों में एक-सा रहता है, किन्तु मनुष्य का हृदय तो मन्दिर-मस्जिद के भेद-भाव में फँसा हुआ है, अस्तु, कवि खिन्न होकर कहता है—

'काबे में बुतकदे में है यकसाँ तेरी ज़िया,
मैं इम्तियाज़े-दैरो-हरम में फँसा हुआ!'

किन्तु—शमा हुई, चाँद हुआ, सूर्य हुआ; ये अपनी हक़ीक़त को नहीं जानते, जानने-समझने की मनुष्य की-सी विकल क्षमता भी इनमें नहीं। इस ज्ञान से कवि को कुछ सांत्वना मिलती है और अपने पथ की ओर संकेत भी—

'फिर भी ए माहे-मुबीं! मैं और हूँ, तू और है!
दर्द जिस पहलू में उठता है व' पहलू और है!
—'चाँद'

वह अपनी विह्वलता के दर्पण में चिर-मिलन का

आकर्षण देखकर तन्मय हो जाता है। वास्तव में अंतर की विकल आकांक्षा जिसे प्राप्त करना चाहती है वही सत्य है, शाश्वत है, वही सच्ची स्वाधीनता है; वह वस्तु-वस्तु के भेद से परे है और ज्ञानातीत है; किन्तु प्रेमी को वह सुलभ है।

'जो तू समझे तो आज़ादी है पोशीदा मोहब्बत में
ग़ुलामी है असीरे-इम्तियाज़े-मा-व-तू रहना!'

अर्थात्, 'मैं' और 'तू' के भेद में बँध जाना ही पराधीनता है।

'जलाना दिल का है गोया सरापा नूर हो जाना
य' परवाना जो सोज़ाँ हो तो शमए-अंजुमन भी है'

अर्थात् यह उर-शलभ यदि जल उठे तो यही सभा का दीप—संपूर्णतः ज्योतिर्मय—हो जाय!

हृदय मस्तिष्क से कहता है—

'इल्म तुझसे, तो मारफ़त मुझसे—
तू ख़ुदा-जू ख़ुदा-नुमा हूँ मैं!'

[मारफ़त—ईश्वर की पहचान] अर्थात्, तू ईश्वर का खोजी सही, उस ओर पथ-प्रदर्शक मैं ही हूँ।

'तू मकानों-ज़माँ से रिश्ता-ब-पा
तायरे-सिद्रह-आशना हूँ मैं!'

['सिद्रह'—सातवें आकाश का एक विटप] अर्थात् तू काल और स्थान के पग-बंधनों में पड़ा है, किन्तु मेरे पंख स्वर्ग के अंत-तम उपवनों से परिचित हैं।

उसकी सूक्ष्म-दर्शी कल्पना उस अवस्था में जब कुछ क्षण के लिए उसे पहुँचा देती है तब वह आश्चर्य और द्विधा से पूछ उठता है—

'मैं हुस्न हूँ कि इश्क़ सरापा-गुदाज़ हूँ
खुलता नहीं कि नाज़ हूँ मैं या नियाज़ हूँ'।

अर्थात् मैं पूर्णतः द्रवित प्रेम का स्वरूप हूँ अथवा पूर्ण सौंदर्य? समझ में नहीं आता कि मैं स्वयं नाज़ हूँ अथवा नाज़ उठानेवाला!

नव-युवक इक़बाल की इस बेताबी, जोश और तड़प से हम पहले-पहल 'तसवीरे-दर्द' में प्रभावित होते हैं। कवि के स्वदेश-प्रेम, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए उसकी महत्त्वाकांक्षा और उसकी ओर प्रेरणा, एकता और प्रेम की अद्भुत विश्व-विजयिनी शक्ति और चमत्कार—इन सबका सुन्दर दिग्दर्शन इसमें होता है। और फिर कैसी प्रवाहमय, ओजपूर्ण भाषा में प्रबल कल्पना-द्वारा इस भाव-शृंखला का पोषण हुआ है! कुछ शेर देखिए—

नहीं मिन्नत-कशे-ताबे-शुनीदन दास्ताँ मेरी
ख़मोशी गुफ़्तगू है, बेज़बानी है ज़बाँ मेरी!

किसी में सुनने की ताब हो, ऐसी मेरी कहानी नहीं; मौन ही मेरा वार्तालाप, मेरी मूकता ही मेरी ज़बान है।

य' दस्तूरे-ज़बाँ बंदी है कैसा तेरी महफ़िल में?
यहाँ तो बात करने को तरसती है ज़ुबाँ मेरी!

कुछ कहने को हम विकल हैं; मगर क़ानून से हमारा मुँह बंद कर दिया गया है।

× × ×

टपक ए शमा! आँसू बन के परवाने की आँखों से!
सरापा दर्द हूँ, हसरत भरी है दास्ताँ मेरी!

सरापा—सिर से पाँव तक, पूर्णतः।

× × ×

परेशाँ हूँ मैं मुश्ते-ख़ाक, लेकिन कुछ नहीं खुलता,
सिकंदर हूँ, कि आईना हूँ, या गर्दे-कदूरत हूँ!

मैं उड़ती हुई एक मुट्ठी धूल हूँ। किन्तु कौन जाने यह (अमरत्व की खोजी) सिकंदर बादशाह की मिट्टी हो!—यह प्रतिबिंब हो विश्व-जीवन का! अथवा कलुषता की गर्द हो केवल!

य' सब कुछ है मगर हस्ती मेरी मक़सद है क़ुदरत का!
सरापा नूर हो जिसकी हक़ीक़त, मैं व' ज़ुल्मत हूँ!

कुछ भी हो, मेरा जीवन प्रकृति का उद्देश्य है; ज्योति जिसकी वास्तविकता है, मैं वह अंधकार हूँ।

× × ×

असर यह भी है इक मेरे जनूने-फ़ितना-सामाँ का,
मेरा आईनए-दिल है क़ज़ा के राज़दानों में!

एक असर यह भी है मेरे इस उपद्रवपूर्ण पागलपन का कि मेरे हृदय का दर्पण भी मृत्यु का रहस्य जाननेवालों में से है।

रुलाता है तेरा नज़्ज़ारा, ए हिन्दोस्ताँ, मुझको;
कि, इबरत-ख़ेज़ है तेरा फ़साना सब फ़सानों में!

'इबरत-ख़ेज़,' करुण शिक्षा-पूर्ण।

× × ×

फ़िदा करता रहा दिल को हसीनों की अदाओं पर
मगर देखी न इस आईने में अपनी अदा तूने !

'आईना', अर्थात् दिल।

तअस्सुब छोड़ नादाँ ! दह्र के आईना-ख़ाने में
य' तसवीरें हैं तेरी जिनको समझा है बुरा तूने !

ओ नादान, असहिष्णु न बन ! इस दुनिया के शीश-महल में सब तेरे ही प्रतिबिंब हैं, जिन्हें तू बुरा बताता है।

बाद को यह कवित्व-शक्ति 'शमा-ओ-शायर,' 'ख़िज़्रे-राह', 'तुलूए-इस्लाम,' 'साक़ी-नामा' आदि कविताओं में आध्यात्मिकता की दृष्टि से अधिक पुष्ट तथा गम्भीर और गहन हो गई है। जिस महासागर के संगम के लिए उसकी मानस-धारा विकल थी, मानो वह उसे प्राप्त हो गया है, जहाँ से (मुस्लिम-जगत् के द्वारा ही सही) एक आह्वान-स्वर समस्त संसार के लिए उठता रहता है।

सुनिए—

आश्ना अपनी हक़ीक़त से हो ए दहक़ाँ ! ज़रा,—
दाना तू, खेती भी तू, बाराँ भी तू, हासिल भी तू !

रे गँवार ! अपने अस्तित्व से अभिज्ञ हो; देख कि बीज, खेती, वर्षा और खेत की पैदावार—तू ही सब कुछ है !

आह ! किसकी जुस्तजू आवारा रखती है तुझे ?—
राह तू, रहरौ भी तू, रहबर भी तू, मंज़िल भी तू !

तू किसकी खोज में भटक रहा है ? अरे, पथ और पथिक, पथ-प्रदर्शक और लक्षित स्थान, सब कुछ तू ही तो है !

काँपता है दिल तेरा अंदेशए-तूफ़ाँ से क्या !
नाख़ुदा तू, बह्र तू, कश्ती भी तू, साहिल भी तू !

तूफ़ान का डर क्या जब कि तू ही नाविक और तू ही सागर और तू ही उस पार का तट है ?

देख आकर कूचए-चाके-गरेबाँ में कभी !
क़ैस तू, लैला भी तू, सहरा भी तू, महमिल भी तू !

ओ विक्षिप्त, तेरी धज्जियों के चीर-चीर में जो गलियाँ-सी बन गई हैं उनमें घूम-घूमकर देख कि तू ही मजनूँ, तू ही लैला, तू ही वन और बयाबान और तू ही वह पर्दा है जिसमें लैला छिपी हुई है !

वाय नादानी ! कि तू मोहताजे-साक़ी हो गया ;
मै भी तू, मीना भी तू, साक़ी भी तू, महफ़िल भी तू

कितना अज्ञान कि तू स्वयं साक़ी का मोहताज हो गया जब कि मधु, मधुपात्र, साक़ी और महफ़िल सब तेरे ही अंदर हैं ?

शोला बनकर फूँक दे ख़ाशाके-ग़ैरल्लाह को !
ख़ौफ़े-बातिल क्या ? कि है ग़ारत-गरे-बातिल भी तू !

अनीश्वरता के तृण को आग की लपट बन कर फूँक दे ! क्या भय असत्य का ? आख़िर असत्य और मिथ्या का नाश करनेवाला भी तू ही है।

—'शमा-ओ-शायर' से

पुनः कहते हैं—

य' मौजे-नफ़स क्या है, तलवार है !
ख़ुदी क्या है, तलवार की धार है !

'मौजे-नफ़स,' साँसकी गति-लहर; 'ख़ुदी', अहम्।

ख़ुदी—जल्वा-बदमस्त-ओ-ख़िल्वतपसन्द !
समुंदर है इक बूँद पानी में बंद !

अहं ज्योति-दर्शन से विभोर एकांत का प्रेमी है; इस एक बूँद पानी में सागर की शक्ति छिपी हुई है।

अँधेरे उजाले में है ताबनाक !
मनो-तू से पैदा, मनो-तू से पाक !

अँधेरे और उजाले में बराबर तेज-पूर्ण; 'मैं' और 'तू' की रागात्मिकता से उत्पन्न भी, किन्तु फिर राग-मुक्त भी है।

अज़ल इसके पीछे, अबद सामने !
न हद इसके पीछे, न हद सामने !

इसका आदि अनादि है और अंत अनंत।

ज़माने के दरिया में बहती हुई !
सितम इसकी मौजों के सहती हुई।

यह अहं समय-सागर में प्रवाहित और इसकी लहरों से प्रताड़ित है।

तजस्सुस की राहें बदलती हुई
दमादम निगाहें बदलती हुई।

सब ओर दृष्टि-संचालन करती हुई यह प्रत्येक पथ से खोज में लीन है।

सुबक इसके हाथों में संगे-गराँ !
पहाड़ इसकी ज़र्बों से रेगे-रवाँ !

शैल-खंड का भार इसके हाथों में क्या है ? इसकी चोटों से गिरि-शृंग भी रेणु-रेणु है !

सफ़र इसका अंजाम्-ओ-आग़ाज़ है
यही इसकी तक़वीम का राज़ है !

यात्रा में ही इसका आदि और अन्त है। इसकी शक्ति का रहस्य यही है।

किरन चाँद में है, शरर संग में
य' बेरंग है डूबकर रंग में !

यही चन्द्रमा में शीतल किरण है और पत्थर में आग की चिंगारी है। यह सब रंगों में है, किन्तु इसका कोई रंग नहीं।

ख़ुदी का नशेमन तेरे दिल में है
फ़लक जिस तरह आँख के तिल में है।

आँख के तिल में जैसे आकाश, उसी प्रकार तेरे हृदय में इस अहं का नीड़-निवास है।

अस्तु, देश-प्रेम के लोकप्रिय तरानों का स्थान इक़बाल की बाद की कविता में इस्लामी-धर्म से अभि-प्रेरित एक अधिक व्यापक प्रकार के आदर्शवाद ने ले लिया, जिसमें इस्लामी दुनिया का सांस्कृतिक और धार्मिक संगठन का भाव अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। वास्तव में स्वदेश-प्रेम से ऊपर उठकर इक़बाल ने अपने धर्मा-नुयायियों को जिस आदर्श की ओर प्रेरित किया है उसे हम अनुदार कदापि नहीं कह सकते, यद्यपि कुछ पाठकों का इसके बारे में हमसे भिन्न मत है। क्योंकि इक़बाल के 'मुस्लिम' की व्याख्या करने पर हम उसे संसार-समाज का एक आदर्श व्यक्ति पाते हैं। यह 'मुस्लिम' कोरी फ़िला-सफ़ी की अकर्मण्यता और 'फ़िरंगी तहज़ीब' के चित्ताकर्षक यथातथ्यवाद के समकक्ष अपनी एकेश्वरवादी आस्था, अपना दृढ़ आत्म-विश्वास और सूफ़ियों के-से विश्व-विजयी प्रेम की अभूतपूर्व शक्ति को रखता है। इनके बल पर कौन वस्तु, क्या शक्ति उसके अधिकार में नहीं ! वह मृत्युंजय है और पूर्ण अर्थ में स्वतन्त्र है। 'मर्दे-मुसलमान' की पंक्तियाँ हैं—

हर लहज़ा है मोमिन की नई शान नई आन,
गुफ़्तार में, करदार में, अल्लाह की बुरहान !

धर्म-भीरु पुरुष प्रतिक्षण नवीन गौरव को प्राप्त होता है। अपनी वाणी और कर्म से वह स्वयं ईश्वर की सत्ता का प्रमाण है।

'क़ह्हारी'-ओ-'गफ़्फ़ारी'-ओ-'क़ुद्दूसी'-ओ-'जब्रूत'
यह चार अनासिर हों तो बनता है मुसलमान !

ईश्वरीय रोष तथा ईश्वरीय क्षमा, पवित्रता तथा गुरु-तेजस्व, ये चार गुण-तत्त्व जब मिलते हैं तब मुसलमान का आविर्भाव होता है।

हमसायए-जब्रीले-अमीं बंदए-ख़ाकी !
है इसका नशेमन न बुख़ारा न बदख़्शान !

ख़ाक से बने इस दीन-जन का वास तो ईश्वर के परम-सेवक (फ़िरिश्ता) हज़रत जब्रील के समकक्ष है; पृथ्वी के बुख़ारा, बदख़्शाँ आदि को उसका घर न समझो।

यह राज़ किसी को नहीं मालूम, कि मोमिन—
क़ारी नज़र आता है, हक़ीक़त में है क़ुरआन !

यह रहस्य किसी को ज्ञात नहीं कि मोमिन स्वयं क़ुरान-शरीफ़ है, यद्यपि प्रकट-रूप से वह इस धर्म-पुस्तक का पारायण करनेवाला ही जान पड़ता है।

क़ुदरत के मक़ासिद का अयार इसके इरादे
दुनिया में भी मीज़ान, क़यामत में भी मीज़ान !

उसके संकल्प प्रकृति के चरम उद्देश्यों का परिमाण हैं। जैसा कि संसार में, वैसा ही न्याय के अंतिम दिवस भी, तुला के समान, वह सदैव पूरा—आदर्श-रूप—उतरता है।

जिससे जिगरे-लाला में ठंडक हो, व' शबनम;
दरियाओं के दिल जिससे दहल जाएँ, व' तूफ़ान !

लाला के छोटे से फूल के हृदय पर वह ओस की शीतलता के समान है; किन्तु वह ऐसा तूफ़ान भी है जिससे दरियाओं के दिल दहल जायँ।

फ़ितरत का सरोदे-अज़ली इसके शबो-रोज़,
आहंग में यकता सिफ़ते-सूरए-रहमान !

उसके दिवा-निशि में प्रकृति का अनादि संगीत है, जिसका स्वर-नाद 'सूरए-रहमान' [कुरान-शरीफ़ का एक अध्याय] सा ही अद्वितीय और असामान्य है।

किन्तु वह संसार की विजय अपने ऐश्वर्य के लिए नहीं चाहता। उसका तो वैयक्तिक जीवन फ़क़ीरी पर—निर्धारित है, जो प्रतिक्षण निःसंग दीनता से उसे मिलाये रखती है। उसकी दिग्विजय का भौतिक रूप तो एक गौण रूप है, यद्यपि उसका यह रूप उपेक्षा के योग्य नहीं।

न तख़्तो-ताज में, ने लश्करो-सिपाह में है
जो बात मर्दे-क़लंदर की बारगाह में है !

'मर्दे-क़लदर की बारगाह', त्यागी तपस्वी का डेरा कवि कहता है कि ताज, निशान, लश्कर ये तो फ़क़ीरों के चमत्कार हैं—

फ़ुक़ के हैं मुअजज़ात—ताजो-सरीरो-सिपाह
फ़ुक़ है मीरों का मीर, फ़ुक़ है शाहों का शाह !
इल्म का मक़सूद है पाकीए-अक़्लो-ख़िरद !
फ़ुक़ का मक़सूद है इफ़्फ़ते क़ल्बो-निगाह !

ज्ञान का ध्येय बुद्धि को निर्मल करना है, फ़ुक़ का दृष्टि और मन को पवित्र करना।

इल्म फ़क़ीहो-हकीम, फ़ुक़ मसीहो-कलीम
इल्म है जोयाए-राह, फ़ुक़ है दानाए-राह।

'ज्ञान' तत्त्वान्वेषक दार्शनिक है, किन्तु 'फ़ुक़' (फ़क़ीरी, तप, साधना) स्वयं मसीह और हज़रत मूसा की शक्ति से अभिभूत है। ज्ञानी केवल पथ खोजता रहता है, किन्तु फ़क़ीर उसको जानता और समझता है।

फ़ुक़ मुक़ामे-नज़र, इल्म मुक़ामे-ख़बर
फ़ुक़ में मस्ती सवाब, इल्म में मस्ती गुनाह !

तप साक्षात्कार है, ज्ञान केवल श्रुति है। मस्ती फ़क़ीर के लिए आध्यात्मिक सुख है, किन्तु, ज्ञानी के लिए विडम्बना है, पाप है।

दिल अगर इस ख़ाक में ज़िंदा-ओ-बेदार हो
तेरी निगह तोड़ दे आइनए-मह्रो-माह !

इस विभूति के प्रसाद से यदि कहीं हृदय (मन) जाग उठे तो तेरी एक दृष्टि सूर्य और चन्द्र का आईना तोड़ दे सकती है।

संसार की जो भी जाति अथवा राष्ट्र इस महान् (मुस्लिम) आदर्श का पालन करने में समर्थ होगा वही बड़े से बड़े ऐहिक और पारलौकिक सम्मान-पद और शक्ति का अधिकारी होगा।

अगर है इश्क़, तो है कुफ़ भी मुसलमानी;
न हो, तो मर्दे-मुसलमाँ भी काफ़िर-ओ-ज़िंदीक़ !

'ज़िंदीक़' (ज़िंदाअवस्ता को माननेवाला) अर्थात् विधर्मी।

पश्चिमी सभ्यता के बारे में भी कहते हैं—

सरूरो-सोज़ में नापायदार है, वर्ना
मये-फ़िरंग का तह-जुरआ भी नहीं नासाफ़ !

यानी इसकी ज्वाला, इसका नशा ठहरनेवाला ... नहीं तो इस 'फ़िरंगी' हाला की भी तलछट ना-साफ़ ... अर्थात् साफ़ है।

इक़बाल और वतन

इस्लाम का सच्चा पथ अलौकिक साधना का पथ है। सद्विचार, सद्भक्ति और एकेश्वरी आस्था से ही प्राचीन महापुरुषों की-सी क्षमता फिर मनुष्य में पैदा हो सकती है। आधुनिक राष्ट्रों का अस्थिर बल-प्रदर्शन तथा ... देशों में नाना देवों की पूजा-आराधना आत्म-निहित परम... की ज्योति के सम्मुख तृण के समान है।

पश्चिमी आदर्शों से अनुप्राणित देश-भक्ति भी जीवन की सच्ची महान् प्रेरणाओं को एक संकुचित सीमा में ... परतन्त्र कर देती है। यह भी एक प्रकार की मूर्ति-पूजा है। इसकी पूजा के मोह के पीछे अपनी आंतरिक स्वतंत्रता के जीवन-स्रोत को तथा उसके परम उद्गम से अपने सम्बन्ध को हम विस्मृत कर देते और खो देते हैं। ... यहाँ 'वतनीय्यत' शीर्षक कविता ('बांगे-दरा' पृष्ठ १७३...) का सार-भाव देते हैं—

आधुनिक सभ्यता के मूर्ति-भवन में सबसे विशाल... मूर्ति 'वतन' की है। 'जो पैरहन (वस्त्र) इसका है ... मज़हब का कफ़न है !' अस्तु, ए इस्लाम को ही अपना 'देश' माननेवाले, 'ए मुस्तफ़वी ! ख़ाक में इस बुत ... मिला दे !' सीमा-बन्धन का परिणाम तबाही है; तू ... की सीमा से स्वतन्त्र हो जा ! 'वतन' का राजनीति... भाषा में कुछ और अर्थ है और धर्म की भाषा में (... नबी का इरशाद) कुछ और है। इसी 'वतन' के कारण संसार की जातियों में प्रतिद्वंद्विता है। यही विदेश-विजय को व्यापार का ध्येय बना देता है। राजनीति सत्य ... ख़ाली हो जाती है और कमज़ोर का घर ग़ारत हो जाता है। ईश्वर की सृष्टि जातियों में बँट जाती है तथा इस्लाम ... भ्रातृत्व का मूलोच्छेद हो जाता है।

अपनी स्वतंत्र शक्ति से यदि मनुष्य आध्यात्मिक गौरव को प्राप्त करने की ओर अग्रसर हो तो संसार की कोई शक्ति उसे कभी परतंत्र नहीं रख सकती। ... स्थलों पर इक़बाल ने मनुष्य की पावन श्रेष्ठता का ... किया है। सर्व-नियंता के सम्मुख अनेक बार उसे ... की अन्य विभूतियों तथा फ़रिश्तों तक से अधिक ... तथा ईश्वर की शक्ति व अनुकम्पा का एकमात्र अधिकारी और आधार बताया है। मनुष्य अपनी शक्तियों को पहचाने, उनके द्वारा निरन्तर उत्थान को प्राप्त होता हुआ अधिकाधिक ज्योतिर्मय होता जाय—इक़बाल की कविता इसी लक्ष्य की ओर संसार को प्रेरित करती है।

इस ज़र्रे को रहती है वसअत की हवस हरदम
यह ज़र्रा नहीं, शायद सिमटा हुआ सहरा है !

इस कण को प्रतिपल विकास की अभिलाषा है। ... वस्तुतः यह कण नहीं, कोई सिमटा हुआ मरु-प्रदेश है !

चाहे तो बदल डाले हैयत चमनिस्ताँ की
यह हस्तीए-दाना है, बीना है, तवाना है !

इसका प्रबुद्ध, चक्षुष्मान् शक्तिमय जीवन चाहे तो संसार का अस्तित्व ही बदल दे।

—'इन्सान' (बाँगे-दरा)

उरूजे-आदमे-ख़ाकी से अंजुम सहमे जाते हैं—
कि यह टूटा हुआ तारा महे-कामिल न बन जाए !

इस मिट्टी के पुतले का उत्थान देखकर नक्षत्र सहमे जाते हैं कि कहीं स्वर्ग-लोक से गिरा हुआ यह तारा बढ़ते बढ़ते व्योम का पूर्ण चन्द्र न बन जाय !

यहाँ दो अतीव सुन्दर ग़ज़लें हम देते हैं। इनका ...-गौरव जिस पूर्णता के साथ मनुष्यात्मा की महत्ता का द्योतक है, अनुवाद में उसकी झलक-मात्र भी कहाँ आ सकती है !

(१)

इस ग़ज़ल में विश्व की गति-विधि पर मनुष्य की ...ोक्ति-पूर्ण टिप्पणी है; प्रश्नों के रूप में ईश्वर के प्रति एक हलका-सा उलाहना है।

अगर कज-रौ हैं अंजुम, आसमाँ तेरा है या मेरा ?
मुझे फ़िक्रे जहाँ क्यों हो ! जहाँ तेरा है या मेरा ?

अर्थात् मुझे संसार की चिंता क्यों हो ? नक्षत्रों की गति उल्टी है तो हुआ करे ! आख़िर यह विश्व, यह व्योम तेरा है या मेरा ? (तू ही तो इनका नियंता है, मैं तो नहीं !)

अगर हंगामाहाए-शौक़ से है ला-मकाँ ख़ाली
ख़ता किसकी है, या रब ! ला-मकाँ तेरा है या मेरा !

अगर यह असीम महत्त्वाकांक्षाओं के संघर्ष से शून्य है तो किसका अपराध है, प्रभु ? तुम्हारा ही तो है यह असीम ! न कि मेरा !

उसे सुबहे-अज़ल इन्कार की जुरअत हुई क्योंकर
मुझे मालूम क्या ! वह राज़दाँ तेरा है या मेरा !

मैं क्या जानूँ, उसे अनादि के प्रभात-काल में अवज्ञा का साहस कैसे हुआ ? तेरे ही तो अंतरङ्ग रहस्यों का ज्ञाता है वह ! (अर्थात् मेरी उत्पत्ति पर इब्लीस (शैतान) क्यों नत-मस्तक नहीं हुआ, इसका कारण तू ही जानता है !)

मोहम्मद भी तेरा, जब्रील भी, क़ुरआन भी तेरा !
मगर यह हर्फ़-शीरीं तर्जुमाँ तेरा है या मेरा ?

यह सब तेरे हैं—पैग़म्बर भी (फ़रिश्तों में अन्यतम) जब्रील भी और क़ुरान भी; मगर यह (मानव की) सुमधुर वाणी किसकी भाष्यकार है ? तेरी या मेरी ?

इसी कौकब की ताबानी से है तेरा जहाँ रौशन,—
ज़वाले-आदमे-ख़ाकी ज़ियाँ तेरा है या मेरा ?

इसी नक्षत्र की ज्योति से तेरे संसार में उजाला है; अब इस धूलि-कण-विनिर्मित मानव के ह्रास में बता हानि किसकी है ? तेरी या मेरी ?

(२)

यह ग़ज़ल तो मनुष्यात्मा की महत्ता की स्तुति ही है।

मेरी नवाए-शौक़ से शोर हरीमे-ज़ात में !
ग़ल्ग़लाहाए-अल्-अमाँ बुतकदए-सिफ़ात में !

मेरी आकांक्षाओं के राग-स्वर की परब्रह्म के गृह में धूम है। उसके नाद से गुणों के मूर्ति-मंदिरों में "त्राहि-माम् !" मच रही है।

हूरो-फ़रिश्ता हैं असीर मेरे तख़य्युलात में—
मेरी निगाह से ख़लल तेरी तजल्लियात में !

अप्सरायें और स्वर्गदूत मेरी कल्पनाओं के बंदी हैं। मेरे दृष्टि-पात से तेरी ज्योति के पारावार में ख़लल पैदा हो जाता है !

गरचे है मेरी जुस्तजू दैरो-हरम की नक़्शबंद
मेरी फ़ुग़ाँ से रुस्तख़ेज़ काबा-ओ-सोमनात में !

यद्यपि मेरी खोज की भावना ही मंदिर और मस्जिद के चित्र निर्माण करनेवाली है, तथापि मेरा कातर क्रंदन काबा और सोमनाथ दोनों के लिए क़यामत है !

गाह मेरी निगाहे-तेज़ चीर गई दिले-वजूद
गाह उलझ के रह गई मेरे तवह्हुमात में !

कभी तो मेरी तीक्ष्ण दृष्टि स्थायित्व के मर्म तक को भेद जाती है और कभी ऐसा होता है कि अपनी शंकाओं में ही उलझ कर रह जाती है।

तूने य' क्या ग़ज़ब किया ! मुझको भी फ़ाश कर दिया
मैं ही तो एक राज़ था सीनए-कायनात में !

(ए कवि !) सृष्टि के उर में मैं ही तो एक रहस्य था। उसे खोलकर तूने यह क्या उत्पात किया ?

इक़बाल की काव्य-कला

इक़बाल का संदेश प्रेम-साधना-द्वारा आत्म-विश्वास और आत्म-ज्ञान का संदेश है। यह आत्म-ज्ञान 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' ('ला-इलाह-इल्-लिल्लाह') पर निर्धारित है, अर्थात् ईश्वर एक है और कोई दूसरा उसका सानी नहीं। इस मंत्र-द्वारा संसार में नव-जाग्रति पैदा करने की ओर इस महाकवि ने अपनी काव्य की सभी शक्तियों को केंद्रित कर दिया है। इक़बाल ने प्रकृति-चित्रण के सर्वोच्च उदाहरण उर्दू-कविता को प्रदान किये हैं—; मनुष्य के साधारण हर्ष-विषाद तथा रागानुराग का वर्णन;—स्वयं अपने सुख-दुख की लिरिक अभिव्यक्ति; इन सबको इक़बाल ने अलंकार-रूप से केवल अपने आध्यात्मिक विश्वासों के प्रतिपादन तथा मुस्लिम-संस्कृति को अपनी वाणी-द्वारा परिष्कृत तथा समुत्थित करने के कार्य में लगा दिया है। फलतः इक़बाल के पद्य नाना अर्थ-संकेतों से पूर्ण हैं; अनेक संचारी भावों से पुष्ट हैं; श्रेष्ठ तथा अत्यंत सजीव कल्पना-शक्ति से अनुप्राणित हैं; चमत्कारपूर्ण शब्द-विन्यास से सुसंस्कृत और अलंकृत हैं; ओजस्विनी भाषा के प्रवाह से गंभीर हैं। भावों में एक पैग़म्बराना शान, सूफ़ियों की सी एक मस्ती है, जिसके कारण छंद और गति में लोच और स्वर में एक हलकी-सी झंकार और कंपन पैदा हो गई है। नाद की गमों में एक स्थिर, दृढ़ यौवन की-सी गूँज है, जो कवि की अंतिम काल की कविताओं में अभिमंत्रित-सी हो गई जान पड़ती है। नाद और लोच और कंपन का अभी ज़िक्र किया गया है। उसका आभास पिछले उद्धरणों में मिल चुका होगा। फिर भी यहाँ उनकी 'मैं और तू' शीर्षक प्रसिद्ध कविता में इसके सौंदर्य का हम विशेष रसास्वादन कर सकते हैं।

'मैं और तू'

न सलीक़ा मुझमें कलीम का, न क़रीना तुझमें ख़लील
मैं हलाके-जादुए-सामरी, तू क़तीले-शेवए-आज़
न तो मुझमें हज़रत मूसा की-सी प्रतिभा है (जो
ऐ मुस्लिम ! धर्म-संकट से निकाल सकूँ) और न
हज़रत इब्राहीम की एकेश्वर-वादी आस्था के से ढंग
अवस्था यह है कि इधर मैं झूठे चमत्कार के जादू पर
जाता हूँ, उधर तू अपनी मूर्ति-पूजा के स्वभाव पर

मैं नवाए-सोख़्ता दर गुलू, तू परीदा रङ्ग, रमीदा
मैं हिकायते-ग़मे-आरज़ू, तू हदीसे-मातमे दिलबरी

मैं कंठ का जला-बुझा स्वर हूँ, तू उड़ा हुआ रङ्ग और विलीन हुई-सी सुगन्ध; मैं अभिलाषाओं की करुणा का उपदेश हूँ और तू प्रेमात्म-समर्पण के अंत का एक शोक-अध्याय है !

मेरा ऐश ग़म, मेरा शहद सम, मेरी बूद हम-नफ़से-अदम
तेरा दिल हरम, गिरवे-अज़म, तेरा दीं ख़रीदए-काफ़िरी

दुख मेरा ऐश और गरल मेरा मधुपान है, मेरा अस्तित्व नास्त्यावस्था के निकट है। तेरा हृदय जो पवित्र काबा है, मूर्ति-स्थानों में गिरवी पड़ा है। तेरा धर्म काफ़िरों से मोल लिया हुआ है।

दमे-ज़िंदगी रमे-ज़िंदगी, ग़मे-ज़िंदगी समे-ज़िंदगी
ग़मे-रम न कर, समे-ग़म न खा, कि यही है शाने-क़लंदरी

जीवन की साँस ही जीवन की गति है, जीवन का शोक ही जीवन का विष है। ओ, रे ! इस गति का शोक न कर, इस शोक-विष का पान न कर; क्योंकि साधुओं की यही शान है !

तेरी ख़ाक में है अगर शरर, तो ख़याले-फ़ुक़्रो-ग़ना न कर
कि जहाँ में नाने-शईर पर है मदारे-क़ुव्वते-हैदरी !

तेरी मिट्टी में अगर चिंगारी है तो अमीरी और फ़क़ीरी का ख़याल न कर, क्योंकि संसार में हैदरे-कर्रार (इस्लाम-धर्म के एक संत) की-सी शक्ति का आधार जौ की रोटी ही है।

कोई ऐसी तर्ज़े-तवाफ़ तू मुझे ए चिराग़े-हरम बता
कि तेरे पतंग को फिर अता हो वही सरिश्ते-समंदरी

ऐ काबा के पवित्र दीपक ! मुझे परिक्रमा की कोई ऐसी विधि बता जो तेरे पतङ्ग को फिर वही अग्नि में रहनेवाले समंदर का-सा स्वभाव प्राप्त हो।

गिलए-जफ़ाए-वफ़ा-नुमा कि हरम को अहले-हरम से है—
किसी बुतकदे में बयाँ करूँ तो कहे सनम भी 'हरी ! हरी !'

भक्ति के रूप में जो विश्वासघात काबावालों ने काबा के साथ किया है उसकी शिकायत की चर्चा कहीं यदि किसी मन्दिर में मैं करूँ तो मूर्तियाँ भी 'हरिः ! हरिः !' कह उठें !

× × ×

करम, ऐ शहे-अरबो-अजम, कि खड़े हैं मुंतज़िरे-करम—
व' गदा कि तूने अता किया है जिन्हें दिमाग़े-सिकंदरी !

ए अरब और अजम (अरब के अतिरिक्त और भी देशों) के बादशाह ! (हज़रते-पैग़म्बर !) तेरी अनुकंपा की प्रतीक्षा में वे भिखारी खड़े हुए हैं जिन्हें तूने सिकन्दर का-सा मस्तिष्क प्रदान किया है !

इक़बाल की कविता में वह शक्ति है जो मुर्दा दिलों में जान डाल देती है; बुझे हुए सर्द हृदय को गर्माकर मन को कर्म की प्रबल प्रेरणा से अस्थिर कर देती है। जीवन को अपनी सत्ता का आभास देकर आत्म-विश्वास के विजयोल्लास से भर देती है। यह कथन अतिशयोक्ति नहीं। इन पद्यों को पढ़कर भी क्या कोई संदेह कर सकता है—

ग़ुलामी में न काम आती हैं शमशीरें, न तदबीरें !
जो हो ज़ौक़े-यक़ीं पैदा तो कट जाती हैं ज़ंजीरें !

ज़ौक़े-यक़ीं = दृढ़ विश्वास की आकांक्षा।

कोई अंदाज़ा कर सकता है उसके ज़ोरे-बाज़ू का ?—
निगाहे मर्दे-मोमिन से बदल जाती हैं तक़दीरें !

निगाहे-मर्दे-मोमिन = स्वधर्मारूढ़ पुरुष की दृष्टि।

विलायत, पातशाही, इल्मे-अशिया की जहाँगीरी—
य' सब क्या हैं ? फ़क़त इक नुक़्तए-इमाँ की तफ़्सीरें !

उपनिवेश, साम्राज्य, विज्ञान का संसाराधिपत्य—यह सब केवल एक धर्म-तत्त्व के ही अर्थ-विस्तार हैं।

बराहीमी नज़र पैदा मगर मुश्किल से होती है;
हवस छिप-छिप के सीनों में बना लेती है तसवीरें !

संसार में एक ईश्वर-शक्ति को ही देखनेवाली हज़रत इब्राहीम की-सी दृष्टि का पैदा होना सहज नहीं; लोभी आकांक्षायें हृदय में गुप्त रीति से विविध मूर्तियों का निर्माण कर लेती हैं।

तमीज़े-बंदओ-आक़ा फ़िसादे-आदमीय्यत है !
हज़र, ऐ चीरा-दस्ताँ ! सख़्त हैं फ़ित्रत की ता' ज़ीरें !

सेवक और स्वामी का भेद-भाव मनुष्यता का दुर्गुण है। ऐ धन-मान की पगड़ी से सजनेवालो, बचो !—क्योंकि (चाहे मनुष्य के क़ानून और ताज़ीरें तुम्हारी रक्षा कर भी सकें) प्रकृति के नियम अति कठोर हैं !

हक़ीक़त एक है हर शै की, ख़ाकी हो कि नूरी हो !
लहू ख़ुरशीद का टपके अगर ज़र्रे का दिल चीरें !

प्रत्येक वस्तु चाहे वह ज्योति से निर्मित हो अथवा धूल-कण से, एक ही सत्य से पूर्ण है। किसी कण का यदि हृदय चीरें तो उसमें से सूर्य का रक्त टपकेगा।

यक़ीं मोहकम, अमल पैहम, मोहब्बत फ़ातहे-आलम
जहादे-ज़िंदगानी में हैं यह मर्दों की शमशीरें !

जीवन के संघर्ष में मर्दों की खंग और तलवार क्या है—दृढ़ विश्वास, अनवरत कर्म और विश्व-विजयनी प्रेम-भाव !

आधुनिक युग के कितने ही विषयों का समावेश इक़बाल की कविता में हुआ है, जिसका कुछ अनुमान इन शीर्षकों से हो सकेगा—'वतनीय्यत', 'तालीम और उसके नहायज' (शिक्षा और उसके फल), 'तहज़ीबे-हाज़िर' (आधुनिक सभ्यता), 'मोटर', 'असीरी', (परतंत्रता, 'ख़िज्र-राह' में—'सल्तनत', 'सरमायाओ-मेहनत' (पूँजी और मेहनत), आदि, 'लेनिन', 'दीनोसयासत' (धर्म और राजनीति), 'मुसोलिनी', 'सिनेमा' 'योरप', 'फ़िरंग-ज़दः' (अँगरेज़ी, अर्थात् पाश्चात्य, सभ्यता से ग्रस्त) इत्यादि इत्यादि। जीवन के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विषय पर गंभीर गहन विचारों का निष्कर्ष उनकी कविता में हमें मिलता है, जो श्रेष्ठ स्पष्ट कवित्व-शैली में प्रभाव-पूर्ण रीति से व्यक्त किये गये हैं।

प्रकृति-चित्रण

इक़बाल का प्रकृति-चित्रण तो एक स्वतन्त्र लेख का विषय है। इसमें जहाँ एक ओर आकार रूप रंग और स्वभाव के गहरे निरीक्षण का पता चलता है, वहाँ यह भी ज्ञात होता है कि उनसे उत्पन्न 'मूड' के ठीक-ठीक प्रतिबिंब भी उन्होंने कितनी सफलता-पूर्वक उतारे हैं। 'एक आरज़ू' 'कनारे-रावी' 'एक शाम—दरियाए-नेकर के किनारे पर' मशहूर उदाहरण हैं।

ख़ामोश है चाँदनी क़मर की
शाख़ें हैं ख़मोश हर शजर की

'क़मर', चाँद; 'शजर', पेड़

× × ×

फ़ितरत वेहोश हो गई है
आग़ोश में शव के सो गई है

'फ़ितरत', प्रकृति; 'आग़ोश', गोद; 'शव', रात।

कुछ ऐसा सकूत का फ़सूँ है
नेकर का ख़राम भी सकूँ है

'सकूत', शांति; 'फसूँ', जादू; 'ख़राम', मंद गति; 'सकूँ', शांत।

तारों का ख़मोश कारवाँ है
यह क़ाफिला वे-दरा रवाँ है

'वे-दरा', विना घंटी की आवाज़ के।

ख़ामोश हैं, कोहो-दश्तो-दरिया
क़ुदरत है मराक़वे में गोया !

'कोह', पहाड़; 'दश्त', जंगल—बयावान; 'मराक़बा', ध्यान की स्थिति या आसन।

ए दिल ! तू भी ख़मोश हो जा
आग़ोश में ग़म को लेके सो जा !

—'दरियाए-नेकर के किनारे' से

उनकी इन दो पंक्तियों में संध्यावसान का पूरा चित्र है—

सूरज ने जाते-जाते शामे-सियः-क़बा को
तश्ते-उफ़क़ से लेकर लाले के फूल मारे !

—'वज़्मे-अंजुम' से

'शामे-सियः-क़बा', असित-वस्त्राभूषित संध्या; 'तश्ते-उफ़क़', अरुण द्राभा की (क्षितिज की सीमा से गोल) तश्तरी; 'लाला', लाल रंग का एक वन-कुसुम।

अर्थात्—विदा के समय सूर्य ने संध्या-वाला को क्षितिज की तश्तरी से लेकर कुछ लाले के फूल मारे। प्रकृति में प्रेम-परिहास-पूर्ण रोमांस, अर्थात् जीवन-स्थित प्रेरणाओं की गति का आभास—और समय के सतत नव-अनुरंजित प्रवाह की एक छाया-सी—दो पंक्तियों में जाग्रत कर दी गई है। इसमें विदा-भाव का उपहास-सा है, करुणा का हास-सा;...कवि ! यह प्रकृति के किस आंतरिक जीवन की झलक है ?

पुरानी इमारतों के साथ प्राकृतिक दृश्यों का एकीकरण करके ऐतिहासिक स्मृतियों से कल्पना को जगाते हुए कवि अपने भाव-संकेतों-द्वारा काल-परिवर्तन के पर्दों में से जीवन के अमर तत्त्वों को प्रकाशित करता है। यथा, 'गोरिस्ताने-शाही', "सिक़लैया (जज़ीरए-सिसिली)', 'मस्जिदे-क़ुरतबा' इत्यादि में।

× × ×

शायद इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि कहीं-कहीं (विशेषतः अंतिम प्रौढ़तम रचना-काल के कुछ फुटकर पद्यों में) इस दार्शनिक कवि के कर्तव्योपदेश और आह्वान में उपदेश की मात्रा ने भाव के काव्यांश को किंचित् गौण-सा कर दिया है कि हमें वरवस उक्तियों और नीति के दोहों की याद हो आती है। वास्तव में इक़बाल की गंभीर विचार-धारा में हास्य-रस के सहकारी भाव का एकदम अभाव है। इसका पुट इक़बाल के वास्तविक गुरु ग़ालिब की रचनाओं में हमें अक्सर मिलता है। इस रसाभाव के कारण यद्यपि यहाँ यह ध्यान में आता है कि यह अभाव इक़बाल के यहाँ इतना कभी नहीं खटकता जितना साधारणतया मिल्टन की रचनाओं में—इस रसाभाव के कारण मनुष्य का साधारण गार्हस्थ्य जीवन उनकी काव्य-दृष्टि को आकृष्ट नहीं करता। उनकी अहंमन्य आशावादिता हमें ब्राउनिंग की याद दिलाती है। अंतर यह है कि भारतीय कवि को मनोवैज्ञानिक समस्याओं के चित्रण में दिलचस्पी नहीं है; उनका क्षेत्र एकदम दार्शनिक है। वे धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं की व्याख्या अक्सर करते हैं, लेकिन एक दार्शनिक की दृष्टि से। उनका धार्मिक आदर्शवाद दान्ते की-सी कल्पना के पंख फैलाकर, ग्येटे के व्यावहारिक ज्ञान-वैचित्र्य के क्षेत्र से भी ऊपर उठकर, भारतीय दर्शन-शास्त्र मात्र को कल्पना-जनक संघर्षहीन आदर्शवाद से पूर्ण कहकर, उसकी कवित्वपूर्ण आलोचना करता हुआ 'ला-इलाह' के परम-पद की प्रदक्षिणा में लीन हो जाता है तथा 'मुस्लिम' के व्यक्तित्व-द्वारा श्रेष्ठ कविता के सब प्रेमियों को अपने शक्ति-प्रद काव्य-रसानंद में किसी भी समय तन्मय कर देने की पूर्ण क्षमता रखता है। जैसे-जैसे समय बीतता जायगा, संसार को इस महाकवि पर और अधिक वास्तविक गर्व होगा, इसमें संदेह नहीं है।

उन्नीस सौ पैंतीस

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

पात्र

सुरेन्द्र— एक ग्रेजुएट
बूढ़ी— सुरेन्द्र की मा
शशी— सुरेन्द्र की स्त्री
महेश— सुरेन्द्र का मित्र
गोविन्द, मकानमालिक, रामधन आदि।

समय १० वजकर ३० मिनिट, प्रातःकाल।

(एक वड़े नगर का तिमंज़िला मकान, जिसमें कई किरायेदार रहते हैं। नीचे के भाग में वैठकनुमा कमरा, जिसका एक दरवाज़ा मकान की दहलीज़ में और एक वाहर सड़क की ओर है। दो खिड़कियाँ भी उधर ही खुलती हैं। सड़क के दरवाज़े में एक टूटी चिक ऊपर वँधी है। दोनों खिड़कियाँ खुली हुई हैं। १० × १५ फुट का कमरा है। कमरे के दक्षिण की ओर एक और दरवाज़ा है, जो रसोई की ओर है। कमरे में तीन अलमारियाँ हैं। दो में वेतरतीवी से किताबें भरी हैं, एक वंद है। तीन टूटे हुए सन्दूक़ एक ओर रक्खे हैं। पूर्व की अलमारी के पास एक मेज़ है, जिस पर मेज़पोश के वजाय 'आयल क्लाथ' विछा है। कुर्सियाँ वहुत पुरानी हैं, मेज़ पर एक होल्डर, एक पेंसिल है। एक तरफ़ शीशे की जापानी दवात रक्खी है। सड़क की ओर दरवाज़े के पास एक टूटी हुई शीतलपाटी विछाये एक वूढ़ी औरत वैठी कुछ सी रही है। उससे ज़रा दूर एक टाट पर एक नवयुवती वैठी दाल वीन रही है। बूढ़ी की उम्र लगभग पचास साल—वाल सब सफ़ेद, मुँह पर झुर्रियाँ, आँखों के कोये काले और छोटी धुसी हुई आँखें। एक डोरे से वँधी कमानी का चश्मा लगाये हुए है। मुँह पिचका हुआ, दाँत थोड़े से और वेढंगे। रंग गेहुँआ, शरीर चिंता से दवा हुआ। नवयुवती की धोती फटी हुई है, जिसके छेदों में पीठ तक विखरे हुए लम्बे लम्बे वाल दीख रहे हैं। छीट की एक फटी हुई बंडी पहने है। देखने में सुन्दर, लगभग सत्रह साल की उम्र है। नाक लम्बी और उस पर फोड़े का एक निशान है। आँखें वड़ी वड़ी, मुँह लम्बा, ओठ पतले, इकहरा वदन, रंग गोरा कुछ पीलापन लिये। बुढ़िया सीती हुई वड़वड़ाने लगती है। फिर चुप हो जाती है।)

बूढ़ी—(क्रोध से) क्या अभी दाल नहीं विन पाई ? पहाड़ पर तो नहीं चढ़ रही है। न किसी काम की, न सलीके की। जो काम करने वैठी उसी में दुपहर कर दी। क्या मा ने ऐसे ही लक्षण सिखाये हैं कि कोई काम कभी पूरा करना ही नहीं।

वहू—वस, बीन चुकी मा जी।

बूढ़ी—वस, बीन चुकी मा जी ! मरी मा जी को तो समझा है कि इसकी भूँकने की आदत है, भूँकने दो। ऐसी वहू से तो आदमी विनव्याहा रह जाय। यहीं वैठी रहोगी कि चूल्हे का भी कुछ ख़याल है। लकड़ियाँ धाँय धाँय जल रही होंगी। अरी, कुछ तो गत का काम किया कर। न मालूम कैसी कुलच्छिनी से पाला पड़ा है। क्यों मेरे प्राण पिये जाती है ? अदहन मरा पड़ा सड़ रहा होगा। (और ज़ोर से) चावल भला कव विनोगी रानी जी ?

वहू—(हाथ में थाली लेकर खड़ी होती है) चावल कहाँ हैं ? वे तो उसी दिन ख़त्म हो गये थे। (रसोई में चली जाती है)

बूढ़ी—(चश्मे के वाहर से झाँकती हुई ऐसे देखने लगी, मानो किसी ने तमाचा जड़ दिया हो) (और भी ज़ोर से) क्या कहा ? अभी से सब चावल ख़त्म हो गये ? अभी उस दिन तो चार आने के आये थे। अभी तो उस रामभजन को पैसे भी नहीं दिये। यह पेट मरा कि भट्ठी। जो पड़ा सब भस्म। (माथा पीटकर) क्या करूँ ? कहाँ से रोज़ डेढ़ सेर इनकी नाँद में डालने के लिए लाऊँ ? उनके आँख मींचने के बाद ख़ून और पसीना एक करके इस लड़के को पढ़ाया। जो कुछ गहना-पत्ता, जमाजथा थी, पढ़ाई में लग

गई। (दहलीज़ के दरवाज़े पर खड़ा मकानमालिक आवाज़ लगाता है।)

मालिक—मा जी, ओ मा जी!

बूढ़ी—न नौकरी, न चाकरी। कहता था, बी० ए० पास करने के बाद बीसियों नौकरियाँ मिल जायँगी मा!

मालिक—मा जी, ओ मा जी!

बूढ़ी—ब्याह किया। वही क़र्ज़ कौन अभी उतरा है! (मुँह पर हाथ फेरती हुई) इस निगोड़ी ज़िन्दगी में दाँत भी तो न लग पाये।

मालिक—मा जी! (भीतर घुसता हुआ) बोलती भी नहीं। कुछ फ़ैसला होगा या नहीं? तीन महीने होने आये। इस सब्र की भी कोई हद है!

बूढ़ी—आओ भैया। हाँ, तुम्हारे रुपये तो......आ लेने दो लड़के को। कहीं न कहीं से कोई प्रबन्ध किये देती हूँ बेटा।

(बूढ़ी के लड़के सुरेन्द्र का प्रवेश। उम्र २३ साल, रंग गोरा। दाढ़ी और सिर के बाल बढ़े हुए। खद्दर का कुर्ता पहने है, जो पीठ की तरफ़ से पसीने से भीग गया है सिर पर गांधीटोपी। आँखों में सैलोलाइट की कमानी का चश्मा है। क़द मँझोला, कुछ उद्विग्न और अस्थिर प्रकृति-सा।)

सुरेन्द्र—मा, क्या है? (मकानमालिक की ओर देखकर) अच्छा आप हैं! अब घबराने की कोई बात नहीं। केवल कुछ दिनों की बात है, आपका हिसाब बेबाक़ कर दूँगा। इसके अलावा (मा से) हमें इस तंग अँधेरे मकान में नहीं रहना है। देखती हो, कैसा अँधेरा है? तुम्हारी आँखें ख़राब हो गईं। शशी कितनी पीली पड़ गई है? मुझे तो एक बड़ा-सा मकान चाहिए महोदय।

मालिक—बाबू, अब आप दो-तीन दिन में मकान का किराया चुका दें। मैं बहुत धीरज नहीं रख सकता। ऐसे किरायेदार दो-चार और मिल जायँ तो बस होगया!

बूढ़ी—हाँ भैया, कुछ दिन और...।

सुरेन्द्र—कह तो दिया। एकदम सब हिसाब साफ़ कर दूँगा। कुछ दिन और ठहर जाओ सेठ जी।

मालिक—(झल्लाकर) देखो बाबू, अब मुझे बार बार न आना पड़े। इस तीन महीने का तीन आना तो सूद ही हो गया। हम लोगों का समय यों ही नहीं है। (ज़ोर से) इस बार हिसाब साफ़ हो जाना चाहिए। (जाता है)

सुरेन्द्र—(उसी जोश से) हाँ, हाँ, कह तो दिया। सिर क्यों खाये जाते हो?

मालिक—(लौटकर) इसमें सिर खाने की क्या बात है? अपना किराया न लें? वाह! भले आये। वह तो कहो कि मैं भलमनसाहत से बातें कर रहा हूँ। नहीं तो उठाकर असबाब बाहर फिकवा दिया होता। हो किस ख़याल में बाबू साहब?

बूढ़ी—(उठकर) अरे भैया लड़ते क्यों हो? हम कब कहते हैं कि तुम्हारा किराया नहीं देंगे।

सुरेन्द्र—देखो! सेठ जी, इसमें बिगड़ने की कोई बात नहीं है। मुझे भी तुम्हारे मकान में नहीं रहना है। बस कुछ दिनों में अपना किराया लेना। क़िस्सा ख़त्म। ज़्यादा चिल्लाने की क्या बात है? और मैं ही ऐसे मकानों में कब रहने लगा! न रोशनी, न हवा, न कुशीदगी!

मालिक—यह तुम्हारी ख़ुशी। हम आपको कोई बुलाने तो गये नहीं थे। आप नहीं आपके भाई बहुतेरे आ जायँगे।

सुरेन्द्र—(झल्लाकर) हाँ, हाँ। जाओ, तुम्हारे जैसे हमें भी बहुतेरे मकान........(मकानमालिक बड़बड़ाता हुआ चला जाता है)

बूढ़ी—(आश्चर्य से मुस्कराती हुई) कोई नौकरी मिल गई क्या बेटा? आज इतना हड़बड़ी में क्यों रहा?

सुरेन्द्र—हाँ मा, ज़रा ऐसा ही काम था। इन मकान-मालिकों ने कितना तंग किया है! न किसी के साथ ज़रा सहानुभूति, न कुछ। (कुर्सी पर बैठ जाता है) बस, मैंने सोच लिया इस बार ईश्वर ने चाहा तो तुम्हें नये दाँत लगवा दूँगा।

बूढ़ी—(उत्सुकता दबाकर) कोई नौकरी मिल गई क्या?

सुरेन्द्र—(एक दम खड़ा होकर) नौकरी, नौकरी ऐसी कि तुम निहाल हो जाओगी। विश्वास तो है, वह जगह मेरे सिवा और किसी को नहीं मिल सकती।

बूढ़ी—(एकदम पास जाकर) कहाँ? कहाँ मिली? कहो

हे भगवान् दया करो। अरी बहू! ओ बहू! (शशी आती है) हाँ बता तो सही।

सुरेन्द्र—डेढ़ सौ रुपये की नौकरी है। बँगला रहने को मुफ़्त। नौकर-चाकर अलग। और क्या चाहिए? (अख़बार का कटिंग जेब से निकालकर उसकी तरफ़ देखता है। फिर सँभाल कर उसे मेज़ की दराज़ में रख देता है।) और क्या चाहिए मा? अब तो तुम ख़ुश हो न! रियासत में राजकुमार को पढ़ाने की नौकरी है।

बूढ़ी—(बीच के कुछ दाँत निपोरती हुई) हे भगवान् जगन्नाथ स्वामी! सत्यनारायण की कथा धूम-धाम से कराऊँगी महाराज! (ऐसा मालूम होता है, संसार की शक्ति उस बूढ़ी के शरीर में भर गई है. पहले की अपेक्षा अधिक उत्साह से शशी से) अरी देख तो घी है कि नहीं। क्या करे बिचारी? बेटा, मेरी बात का बुरा न माना कर। मैं पूरी बूढ़ी हूँ। देख तो चीनी है! न हो तो रामभजन से और ले आऊँ! (बहू जाती है। फिर आकर खड़ी हो जाती)।

सुरेन्द्र—(अख़बार का टुकड़ा दराज़ से निकालकर पढ़ता है। फिर उसी में रखता है) तुमने राजपूताना तो न देखा होगा मा। अर्ज़ी टाइप कराकर मैं डाकख़ाने में रजिस्ट्री से भेज आया हूँ। (ख़ुशी से आँखें चमकने लगती हैं) मा, यहाँ टाइमटेबिल कहीं नहीं मिल सकता। ऊपर बाबू बदरीनारायण के यहाँ होगा। ज़रा देखना। कौन-सी गाड़ी से जाना होगा। पहले मैं अकेला ही जाऊँगा।

बूढ़ी—नौकरी मिल ले। पहले से ही इतनी उछल-कूद मचाना ठीक नहीं। (यह कहती हुई भी स्वयं इतनी ख़ुशी में है कि सीधे पैर ज़मीन पर नहीं पड़ रहे हैं) हाँ बहू, आज दूध नहीं लिया क्या?

बहू—घर में घी और चीनी ज़रा भी नहीं है।

बूढ़ी—हाँ, हाँ, चीनी तो ज़रूर चाहिए। मेरा सुरेन्द्र चीनी के बिना खाना कहाँ खा पाता है? अच्छा मैं अभी लाती हूँ। (रसोई के दरवाज़े से भीतर चली जाती है)

सुरेन्द्र—(एक दम स्त्री के पास जाकर उसका हाथ छूकर) सुनती हो शशी? अब मैं थोड़े ही दिनों में बड़ा आदमी होने जा रहा हूँ। अरे! धोती इतनी मैली! और धोतियाँ नहीं हैं क्या? (उसके गाल पर हलकी सी चपत जमाता हुआ) थोड़े ही दिनों की बात है मेरी रानी! सोने से पीली कर दूँगा।

शशी—(घूँघट खोलकर फीकी हँसी हँसती हुई) कहीं कोई नौकरी मिल गई क्या?

सुरेन्द्र—पगली अब भी कोई सन्देह है? आज ही अर्ज़ी डाक से भेजकर आया हूँ। राजकुमार का ट्यूटर होना होगा। समझी।

शशी—राजकुमार हो जाओगे?

सुरेन्द्र—राजकुमार का अध्यापक। (कंधे पर हाथ रखता है)

शशी—समझी। कब तक जा रहे हो? पहले तो शायद तुम अकेले ही जाओगे न?

सुरेन्द्र—हाँ, कुछ दिनों के............

(दहलीज़ के दरवाज़े से कोई पुकारता है। सुरेन्द्र बाबू हैं क्या?)

सुरेन्द्र—(एकदम दरवाज़े के पास जाकर) कौन है? (शशी रसोई में चली जाती है)

आगन्तुक—(कमरे में दाख़िल होता हुआ) बाबू, मैं हूँ गोविन्द! बहुत दिन हो गये बाबू। दूध का हिसाब अभी नहीं हुआ। हमें भी तो दूसरों को देना पड़ता है। कहाँ तक धीरज धरें?

सुरेन्द्र—दो-चार दिन की देर है गोविन्द। सब हिसाब चुका दिया जायगा। बस, थोड़े दिन की।

आगन्तुक—हाँ बाबू. दो महीने होने आये। देर होने से काम न चलेगा सरकार।

सुरेन्द्र—नहीं गोविन्द, घबराने की कोई बात नहीं है। मुझे अब नौकरी मिल गई है। १५०) रुपये की। एक राजा के लड़के को पढ़ाना होगा।

गोविन्द—दूध तो सरकार और चाहिएगा न? आज से कुछ ज़्यादा दे जाया करूँ?

सुरेन्द्र—हाँ यह तो मुझे मालूम हो रहा है।

(इतने में उसी दरवाज़े से सुरेन्द्र सुरेन्द्र चिल्लाता एक आदमी एकदम अन्दर चला आता है। गोविन्द सिर झुकाकर चला जाता है। आगन्तुक का नाम महेश है। उसी प्रकार खद्दर के कपड़े, सुडौल शरीर, हँसमुख चेहरा। उम्र २२-२३ साल।)

महेश—दूसरी बार आया हूँ। जनाब थे कहाँ ? कुर्सी पर बैठ जाता है।

सुरेन्द्र—ज़रा एक काम से बाहर गया था भई !

महेश—आज वर्ड-कम्पनी के मैनेजर से मिलने चलोगे न ? मैंने हेड-क्लार्क से बातचीत की थी। उसने कहा, तीस रुपये से अधिक न दे सकेंगे।

सुरेन्द्र—पागल हुए हो। सुरेन्द्र तीस की नौकरी करेगा ? जनाब, अब वह राजकुमार को पढ़ायेगा—राजकुमार को।

महेश—(प्रसन्नता से) अरे कोई जगह मिल गई क्या ?

सुरेन्द्र—मिली तो नहीं, पर मिली ही समझो। आज सवेरे वे जो अपने नलिन बाबू हैं न, जो आर्कोलाजिकल डिपार्टमेण्ट में क्यूरेटर हैं, उनके यहाँ गया था। वे तो थे नहीं, बैठक में रामधन सफ़ाई कर रहा था। मैं वहीं कुर्सी पर बैठ गया। देखता क्या हूँ, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के वाण्टेड का कालम खुला पड़ा है, मानो किसी ने वह पोर्शन (अंश) मेरे लिए ही खोलकर रख दिया था। (दराज़ से वह काग़ज़ का टुकड़ा निकालकर) देखो इसी में वह आवश्यकता छपी है। एक राजकुमार के ट्यूटर के लिए। मैं रामधन से पूछकर वह कटिंग ले आया हूँ। कहोगे न, उस्ताद। (महेश की पीठ पर ज़ोर का हाथ मारता हुआ) वहाँ से एकदम दौड़कर डाक्टर पाण्डेय से 'करेक्टर सार्टिफ़िकेट' लाया। ओह, उन्होंने बिना कुछ पूछे ही मुस्कराकर सार्टिफ़िकेट लिख दिया। फिर अर्ज़ी टाइप कराई और भेजी। इस सबमें देर हो गई।

महेश—मुझे बड़ी ख़ुशी है, सुरेन्द्र। (कटिंग हाथ में लेकर पढ़ता है) पर यह है कौन-सी तारीख़ का ?

सुरेन्द्र—मालूम है, डाक्टर पाण्डेय ने कितनी अधिक प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि 'मुझे अपने जीवन में ऐसा प्रतिभाशाली, परिश्रमी और ईमानदार विद्यार्थी नहीं मिला है।'

महेश—ऐसा !

सुरेन्द्र—हाँ मित्र। डाक्टर पाण्डेय जैसा आदमी होना कठिन है।

(सुरेन्द्र ख़ुशी न दबा सकने के कारण टहलने लगता है, महेश कुर्सी पर बैठा कभी इधर उसकी ओर मुँह करके बात करता है, कभी उधर। उसके क़दम ज़ोर-ज़ोर से ज़मीन पर पड़ रहे हैं) आशा है, पोस्ट ज़रूर मिल जायगी। महेश, तुम तो कभी कभी उधर आओगे न !

महेश—आऊँगा क्यों नहीं। पर यार तुम्हीं मुझे भूल जाओगे। राजाओं के साथ बैठकर कौन याद करता है किसी को ?

सुरेन्द्र—महेश, खद्दर तो वहाँ चल नहीं सकता। कपड़े तो दूसरे हो होंगे न !

महेश—अरे अभी से इतना चेंज ! वह कालेज-हाल की प्रतिज्ञा कहाँ जायगी ? भई, इतना मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। मेरा तो निश्चय है, मैं तो महात्मा गांधी की नई शिक्षा-योजना के वर्धा-ट्रेनिङ्ग-क्लास में भर्ती होना चाहता हूँ। मुझे रुपये की ज़रा भी परवा नहीं है। मैं गाँवों में जाकर किसानों की सेवा करूँगा। यही मेरे जीवन का उद्देश्य है। हम लोग पढ़-लिख कर यदि ग़रीबों की सेवा न कर सके तो इतना पढ़ने से फ़ायदा ? याद है न ? उस दिन कालेज के डिबेट (वाद-विवाद) में तुम्हारे ही व्याख्यान से प्रभावित होकर मैंने यह प्रतिज्ञा की थी।

सुरेन्द्र—याद है, सब याद है। (गम्भीरता से) ओह ! अब वह सब कुछ नहीं हो सकता। मेरी इस बूढ़ी मा ने सब कुछ इसी आशा में बहा दिया है। इस समय मेरे ऊपर काफ़ी क़र्ज़ है। शशी ने आकर कोई सुख नहीं देखा। मैं ख़ुद किसी भी अच्छी नौकरी के लिए सदा तैयार रहा हूँ। ग़रीब को कहीं गुज़र नहीं है। हम लोग जवानी में जिसे जीवन समझते हैं, क्लासरूम में बैठकर जिसे ध्येय समझते हैं, वह स्वप्न निकलता है। देश की सेवा कौन नहीं करना चाहता ? ग़रीबों के उत्थान की किसको फ़िक्र नहीं है। पर परिस्थिति भी तो कोई चीज़ है ! मा की आशा को, स्त्री की उमंगों को अपनी ग़रीबी में ढँककर और ज़्यादा नहीं रख सकता महेश। इसके अलावा यदि मन में सेवा का भाव हो तो वह किसी भी अवस्था में की जा सकती है।

महेश—परिस्थिति मनुष्य की कमज़ोरी का दूसरा नाम है।

सुरेन्द्र—हो सकता है। लेकिन परिस्थिति से ही मनुष्य बनता

भी है। क्या आज देश में ऐसे आदमियों की कमी है जो पिछली असहयोग की लड़ाई में सर्वस्व होम कर देने के बाद समाज के स्टेटस में अब तक वहीं खड़े हैं ? रुपया परिस्थिति बनानेवाला और सबसे बड़ा मित्र है। हमारे देश के बड़े बड़े आदमी केवल इसलिए बड़े हैं कि उन्होंने सबसे अधिक विद्या के बल पर धन का त्याग किया है। उनके धनी होकर त्याग करने का ही यह महत्त्व है कि वे बड़े हैं। अगर आप बहुत ऊँचे से उतरकर पाताल में पड़े हुए को उठाते हैं तभी आप बड़े हैं। मैं तो यही समझा हूँ भाई। वह ग़रीब जिसके पास पहले ही कुछ नहीं है क्या त्याग करेगा ? समाज में उसकी कुछ भी स्थिति नहीं है। त्याग और सेवा का महत्त्व आज धन की नींव पर खड़ा है। जिस पक्षी के पंख छोटे और निर्बल हैं वह क्या दूर तक उड़ सकता है ? नहीं, कभी नहीं। ग़रीब बुद्धिमान् भी मूर्ख ही समझा जाता है महेश !

महेश—सेनापति का ऊँचा स्थान होने पर भी सिपाही का महत्त्व कभी कम नहीं हुआ है। संसार उन्हीं के सामने हाथ जोड़े खड़ा रहता है जो यश, मान, मर्यादा से ऊपर रहते हैं।

सुरेन्द्र—उन्हीं के नहीं, उसी के कहो। न तो ऐसे लोग बहुत होते हैं और न परिस्थितियाँ उन्हें वैसा बनने देती हैं। स्वप्न और जागरण दो भिन्न वस्तुएँ हैं। जिस आदर्श को लक्ष्य बनाकर मनुष्य ऊपर उठता है, जिस सत्य का पालन करने की धुन में वह बढ़ता है, वे दोनों इस संसार से भिन्न जगत् की चीज़ें हैं।

महेश—इतना होते हुए भी उन दोनों का महत्त्व तो कम नहीं हो जाता। हम लोग जो कुछ जीवन को समझते हैं वह उतना ही नहीं है सुरेन्द्र !

सुरेन्द्र—पर क्या तुम बता सकोगे, उस जीवन का रूप क्या है ? क्या अपलाप, तिरस्कार और त्याग उसकी सीढ़ियाँ नहीं हैं ? इतना होते हुए भी कौन कह सकता है कि जीवन के जिस पथ पर वह चलता है वह ठीक ही होगा। मैं तो मानता हूँ, मनुष्यता का सबसे बड़ा रूप जीवननिर्वाह करते हुए सचाई की ओर बढ़ना है।

महेश—यह कहते हुए तुम एक भूल कर जाते हो सुरेन्द्र ! मैं तुम्हारी बात ही दुहराता हूँ, न तो ऐसे लोग बहुत होते हैं और न परिस्थितियाँ उन्हें वैसा बनने देती हैं। परन्तु वह बात भी ठीक है। परिस्थितियाँ कमज़ोरी का दूसरा नाम है। प्रेरणा और आत्मबल को क्या तुम कुछ नहीं मानते ? ये दोनों हृदय की शुद्धता और आत्मबल के ऊपर निर्भर हैं। उच्च जीवात्मा इन्हीं को लेकर संसार में अवतीर्ण होती हैं। और वे अपने प्रभाव से देश में एक नया जीवन फूँक देती हैं। जिस प्राणी का आत्मबल, हृदय की शुद्धता और प्रेरणा जितनी ही अधिक और तीव्र होगी वह प्राणी उतना ही ऊँचा और साधक होगा। और जितना ही उसका तप होगा उतनी व्यापकता उसे प्राप्त होगी। सत्य का स्वरूप यही है।

सुरेन्द्र—तुम जो बात कह रहे हो वह व्यक्ति की है, समाज की नहीं। हम लोग समाज के अङ्ग होते हुए भी एक तरह से व्यक्ति नहीं, समाज हैं। व्यक्तित्व केवल उन्हीं का होता है जो कोई एक विशेष आदर्श को लेकर जीवनपथ पर अग्रसर होते हैं। साधारण भूख-प्यास के अतिरिक्त उनका व्यक्तित्व समाज के आंशिक व्यक्तित्व से सर्वथा परे और भिन्न होता है। उनमें प्रत्येक रूप में मौलिकता रहती है। वह मौलिकता ही उनका व्यक्तित्व है। हमारा देश आज हमसे जिस बलिदान की इच्छा कर रहा है उसकी यह माँग व्यक्ति से नहीं, समाज से है। परन्तु जानते हो, समाज का अधिक भाग अपङ्ग है ? वह चाहता हुआ भी उस माँग को पूरा करने में पराधीन है।

महेश—मैं तुम्हारी इस बात को नहीं मानता। यह ठीक है, वह व्यक्ति भिन्न है, समाज का नेता है, पर उस माँग में तो समाज का ही हित है। अगर वह उस माँग की उपेक्षा कर देता है तो दोष किसका ? उसी का न ! देश समाज से भिन्न तो कोई वस्तु नहीं है। यह केवल पारिभाषिक भेद है। या तो समाज को वैसा होने के लिए तैयार होना पड़ेगा, नहीं तो फिर उसका नाश तो निश्चित ही है। देश की माँग सत्य की माँग है। आगे हो, पीछे हो, उसे तो करना ही पड़ेगा। जो लोग पहले करेंगे वे बहादुर कहलायेंगे। इतिहास यही बात तो बार बार दोहराया करता है।

सुरेन्द्र—(सोचकर) तुम्हारा कहना ठीक है। पाण्डित्य का चाहे और कोई उपयोग हो या न हो, इतना तो अवश्य है कि वह तर्क के सहारे सत्य को असत्य सिद्ध करने की चेष्टा करता है। मैं मानता हूँ, मेरी कमज़ोरी है।

महेश—मैं हृदय से चाहता हूँ, तुम्हें वह नौकरी मिल जाय।

सुरेन्द्र—(एकदम) मुझे पूरा विश्वास है। डाक्टर पाण्डेय की इतनी बड़ी सिफ़ारिश क्या व्यर्थ हो जायगी? मुझे पूरा विश्वास है। (एकदम तेज़ी से कमरे में टहलने लगता है)।

महेश—ईश्वर करे। अच्छा, फिर मैं चला!

सुरेन्द्र—नहीं। तुम अभी नहीं जा सकते। तुमने मुझे एक बार फिर पागल बना दिया है महेश! मैं भी इस जीवन में देश-सेवा की उतनी ही ऊँची उमंग लेकर चला था, उतने ही वेग से कठिनाइयों के पहाड़ लाँघ जाना चाहता था, उतने ही वज्र हृदय से अपनी पीड़ाओं को पी जाना चाहता था। पर क्या करूँ? मैं सब भूल गया हूँ। मेरा मन इन दो प्राणियों की दुरवस्था को देखकर किरकिरा हो गया है। क़र्ज़ का पहाड़ मेरे सिर पर है। मकान का किराया तीन महीने से नहीं दिया गया। दूधवाला अभी तुम्हारे सामने ही गया है। मैं स्वार्थ की पूजा का हामी बन गया हूँ भाई! मैंने क्षणिक उमंगों में देश को, त्याग को भूल जाने का प्रयास करना आरम्भ कर दिया है। (सोचकर) मुझे पूरा विश्वास है। वह स्थान मुझे ज़रूर प्राप्त होगा।

महेश—तुम्हारा कहना सच हो। (बूढ़ी मा का घी और चीनी लिये प्रवेश)

बूढ़ी—रामभजन के पाँच होगये हैं बेटा! पर अब उसकी क्या चिन्ता है? (रसोई में चली जाती है)

सुरेन्द्र—कुछ सोच न करो मा। राजकुमार का ट्यूटर होते ही सब। बस......।

महेश—एक बार मैं ज़रूर आऊँगा।

सुरेन्द्र—एक बार क्यों? तुम्हें तो बार बार आना होगा।

(नलिनी बाबू का चपरासी दरवाज़े पर खड़ा होकर आवाज़ लगाता है)

रामधन—सुरेश बाबू! सुरेश बाबू!

सुरेन्द्र—(दरवाज़े पर आकर) हाँ, रामधन क्या बात है?

(चपरासी अन्दर आता है)

रामधन—बाबू!

सुरेन्द्र—देखो रामधन, अगर मुझे नौकरी मिल गई, जैसा कि पूरा विश्वास है तो तुम्हें भरपूर इनाम दूँगा।

रामधन—नलिनी बाबू का......।

सुरेन्द्र—(उत्तेजित प्रसन्नता से) हाँ, नलिनी बाबू का मैं धन्यवाद करता हूँ। उन्हीं के कारण मैं वह स्थान प्राप्त कर सकूँगा। तुम्हारा इनाम तो निश्चित ही है।

रामधन—वह टुकड़ा जो आप ले आये हैं, बाबू ने माँगा है।

सुरेन्द्र—(आश्चर्य से) क्या वे भी उस जगह के लिए अर्ज़ी भेज रहे हैं? वे तो बड़े मज़े में सरकारी नौकरी कर रहे हैं रामधन! नौकरी अलग और भत्ता घाते में। लगभग ५००) रुपये माहवार।

रामधन—बाबू, वह टुकड़ा उनके बड़े काम का है। उसके पीछे के भाग में उनके काम का कोई लेख है। उसी को पढ़ने के लिए वे दफ़्तर से वह अख़बार लाये थे। वह तो १९३५ का है।

महेश—(उछलकर) १९३५ का?

सुरेन्द्र—क्या कहा? क्या वह अख़बार नया नहीं है?

रामधन—नहीं सरकार!

सुरेन्द्र—फिर कहो। क्या वह विज्ञापन १९३५ का है?

(रामधन चुप होकर खड़ा रहता है, सुरेन्द्र मूर्छा से जागता हुआ कटिंग लौटाकर) मा!

(मा आती है)

मा—हाँ बेटा, क्या है?

सुरेन्द्र—रेत का पहाड़ पानी पड़कर एकदम दब गया। मा, मैं आज खाना नहीं खाऊँगा। (एकदम बाहर निकल जाता है)

महेश—सुरेन्द्र! ओ सुरेन्द्र! ठहरो भाई। (पीछे चला जाता है)

(मा और स्त्री सुन्न-सी होकर सुरेन्द्र की ओर देखती रहती हैं)।

(पर्दा गिरता है)

हिन्दुस्तानी

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

श्रीमान् कुँवर राजेन्द्रसिंह एक विचार-पूर्ण लेखक हैं। अपने इस रोचक लेख में आपने 'हिन्दुस्तानी' में लिखने की कठिनाइयों का उल्लेख सुन्दर ढङ्ग से किया है। उनके विचारों से मतभेद हो सकता है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि उन्होंने अपने इस लेख में जो प्रश्न उठाया है वह विचार करने के योग्य है।

वास्तव में हिन्दी लिखनेवालों की समझ में ही नहीं आ रहा है कि 'हिन्दुस्तानी' किस तरह लिखें। कहने को तो यह कहा जाता है कि वह भाषा लिखो जिसमें संस्कृत और फ़ारसी के शब्द न हों, परन्तु व्यवहार में जो दिखलाई देता है वह कुछ और है। प्रत्येक जाति को अपनी भाषा से प्रेम होता है। एक तो हम हिन्दुओं को हिन्दी से प्रेम ही नहीं है। उस पर अब यह धुन है कि चाहे भाषा चौपट हो जाय और चाहे साहित्य सत्यानाश हो जाय, परन्तु 'हिन्दुस्तानी' लिखी जाय। प्रत्येक लेखक की यही इच्छा होती है कि उसका लिखा सब समझ लें, परन्तु सिवा अपनी भाषा के प्रयोग करने के और वह क्या कर सकता है। किसी को भी यह शौक़ नहीं है कि निष्प्रयोजन कड़े शब्दों का प्रयोग करे, परन्तु कुछ अवसर ऐसे होते हैं जब कड़े शब्द बचाये नहीं जा सकते। अगर उनके समझने के लिए नहीं लिखा जा रहा है 'हवा जिनके पहलू से बचकर है चलती' तो शरीर के भिन्न भिन्न अंगों के लिए असाधारण शब्दों का प्रयोग अवश्य ही करना पड़ेगा। उन शब्दों का महत्त्व असाधारण होता है जिनका प्रयोग सर्वसाधारण नहीं करते हैं। 'जन्म' शब्द और 'पैदा' का उदाहरण लीजिए। भाव दोनों का एक ही है कि आज ही महाराज कृष्णचन्द्र का 'जन्म' हुआ था और आज ही महाराज कृष्णचन्द्र 'पैदा' हुए थे, परन्तु दोनों वाक्यों की गम्भीरता में और महत्त्व में बड़ा अन्तर है। असाधारण शब्द 'जन्म' के प्रयोग से साफ़ पता चलता है कि पैदा होनेवाला कोई असाधारण पुरुष था। यही हाल सब भाषाओं का है। उर्दू जाननेवाले 'मृत्यु' शब्द के स्थान में 'इन्तक़ाल' शब्द का प्रयोग करते हैं। इन्तक़ाल के ही अर्थ का अँगरेज़ी का शब्द 'डिमाइज़' है, जो मृत्यु के अर्थ में प्रयुक्त होता है। किसी को क्या पता है कि मरने के बाद कौन कहाँ गया—स्वर्ग को या कहीं और, परन्तु मरनेवाले के लिए हिन्दी में 'स्वर्गवासी' शब्द का प्रयोग किया जाता है और उर्दूवाले 'आँजहानी' लफ़्ज़ का इस्तेमाल करते हैं। भाव एक होते हुए भी साधारण या असाधारण शब्दों के प्रयोग से बड़ा अन्तर हो जाता है।

कोई भी लेखक अन्य भाषा-भाषियों के लिए नहीं लिखता है। और यदि लिखना भी चाहे तो कैसे लिख सकता है? कालिदास ने 'शकुन्तला' जर्मन देशवालों के लिए नहीं लिखी थी, यद्यपि उसकी क़द्र पहले उन्हीं लोगों ने की। जिनको अपनी भाषा से प्रेम है वे उन अवसरों पर भी उसी का प्रयोग करते हैं जहाँ उसके समझनेवाले भी नहीं होते हैं। जब १९१४ के बाद सन्धि-सभा हुई थी तब उसका उद्घाटन फ़्रांस के क्लीमेंसो ने किया था। सभी देशों के प्रतिनिधि वहाँ उपस्थित थे। क्लीमेंसो साहब ने उस अवसर पर अपनी ही भाषा का प्रयोग किया था। यदि यहाँ कोई हिन्दू किसी अखिल भारतीय सम्मेलन या सभा में हिन्दी बोल देता तो लोग उसकी जान खा जाते और यही कहा जाने लगता कि ऐसा करना राजनैतिक एकता के रास्ते की अड़चन है। स्वर्गीय लोकमान्य तिलक ने 'गीता-रहस्य' मराठी में लिखा था। महात्मा गांधी ने अपनी 'आत्मकथा' अपनी मातृभाषा गुजराती में लिखी है। कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर बँगला में ही लिखते हैं। एक हम लोग हैं कि अपनी भाषा में लिखते ही नहीं और लिखते हैं तो उसकी वजह से हम पर आक्षेप होते हैं।

अब यह देखना है कि कम से कम इस सूबे में किसको समझाने के लिए 'हिन्दुस्तानी' लिखी जाय—उन्हीं

के लिए न जो उर्दू-भाषा-भाषी हैं। हज़ारों क्या लाखों हिन्दू मिलेंगे जो उर्दू जानते हैं, परन्तु प्रतिसहस्र शायद एक-दो उर्दू-भाषा-भाषी मिलेंगे जो शायद त, म कर लेते हों। मेरा अक्षरारम्भ केवल पुरानी प्रथा का पालन करने के लिए हिन्दी में हुआ था, परन्तु दूसरे ही रोज़ से 'अलिफ़' और 'बे' का सामना करना पड़ा। ज़ेर, ज़बर और पेश की बदौलत मौलवी साहब की रोज़ डाँट और फिटकार पड़ती थी। एक हिन्दी के कवि ने ख़ूब कहा है, 'नुकता बिन बे किन पे किन से'। उर्दू भी पढ़ी, फ़ारसी भी पढ़ी, परन्तु एक दफ़े भी किसी हिन्दू ने मुझसे यह नहीं कहा कि उर्दू या फ़ारसी क्यों पढ़ते हो। परन्तु जब मेरे लड़के हिन्दी और संस्कृत पढ़ रहे थे तब मेरे एक हिन्दू मित्र ने मुझसे पूछा कि लड़के क्या पढ़ते हैं और जब मैंने बतलाया तब कहने लगे कि क्या उनको दहक़ान (देहाती) बनानेवाले हो। यह उर्दू और फ़ारसी जाननेवाले हिन्दुओं का हाल है! उनका तो ख़ैर क्या कहना जिनकी यह ज़बान ही है। देहाती मदरसों में सैकड़ों हिन्दू लड़के उर्दू पढ़नेवाले मिलेंगे। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के स्थान में पहले उसे 'अपनी भाषा' बनाने का उद्योग होना चाहिए।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपना जीवन-चरित अँगरेज़ी में लिखा है और उसका 'हिन्दुस्तानी' हिन्दी में अनुवाद हुआ है। पर वह हिन्दी-लिपि में लिखी हुई एक प्रकार की उर्दू है। जिसमें चित्तवृत्ति के लिए 'जज़बात' शब्द का प्रयोग किया गया हो उसे शायद ही कोई हिन्दी कह सके। साहित्य को बिगड़ने न देना चाहिए। हाली साहब ने कहा है—"रहे आख़िरश शायरी को डिबोकर"। स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के ज़माने में जो 'बनारस गज़ट' निकलता था उसकी कुछ ऐसी ही भाषा होती होगी। उस पर आक्षेप करते हुए उसी तरह की भाषा में उन्होंने लिखा था—"बनारस में इक जो बनारस गज़ट है, भाषा तो उसकी अजब ऊटपट है। मुहर्रिर बिचारा तो है बासलीक़ा, इसे क्या करे जो कि तहरीर भट है"। किसी गिरे हुए देश का पुनरुत्थान करना उतना कठिन नहीं है, जितना किसी साहित्य का निर्माण करना होता है। भाषा बिगड़ी कि सब कुछ बिगड़ा। कहा जाता है कि किसी मुसलमान कवि ने पण्डित दयानारायण (गुलज़ारनसीम के रचयिता) को चिढ़ाने के लिए कहा कि मैं एक मिसरा कहता हूँ और आप दूसरा मिसरा कह कर शेर पूरा कर दीजिए। पण्डित जी ने कहा कि कहिए। उसने कहा—"शेख़ ने मसजिद बना मिस्मार (गिरवा) बुतख़ाना किया"। पण्डित जी ने फ़ौरन जवाब दिया—"तब तो इक सूरत भी थी अब साफ़ वीराना किया।" कहीं वही हालत हिन्दी की न हो जाय। मैं उर्दू जानता हूँ। इसके ख़िलाफ़ या और किसी भाषा के ख़िलाफ़ मैंने कभी एक शब्द भी नहीं कहा है, परन्तु मैं अपनी भाषा का पक्षपाती अवश्य हूँ।

अभी बहुत थोड़े दिनों की बात है कि जब महात्मा गांधी और मिस्टर जिन्ना में कांग्रेस और मुस्लिम-लीग के समझौते की बात-चीत हो रही थी। महात्मा के किस विनीत शब्द थे और यह भी सभी को मालूम है कि किन शब्दों में उधर से जवाब दिया गया। ख़ैर, यह दूसरा विषय है। समझौते की जो शर्तें थीं उनमें से एक यह भी थी कि उर्दू-भाषा को किसी तरह नुक़सान न पहुँचने पावे।

जो 'हिन्दुस्तानी' के पक्षपाती हैं वे कहने को तो यह भी कह जाते हैं कि उन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जिन्हें देहाती बोलते और समझते हैं। प्रत्येक देश के देहातों में उन शब्दों का प्रयोग होता है जो सभ्य समाज में नहीं बोले जाते। भाषा की पवित्रता तभी तक रहती है जब तक शुद्ध शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यदि इस पर ध्यान न दिया जाय तो भी कठिनाइयों का अन्त नहीं होता। सबसे बड़ी कठिनाई यह पड़ेगी कि जो शब्द देहात में बोले जाते हैं वे उर्दू जाननेवालों के क्या बहुत से हिन्दी जाननेवालों की समझ में नहीं आयँगे। जो देहात में ही पैदा हुए हैं और वहीं उनका लालन पालन हुआ है वे भी स्कूल और कालेज से निकलने के बाद वहाँ की भाषा नहीं समझ पाते हैं और एक कारण यह भी है कि वे फिर कभी देहात का मुँह नहीं देखते हैं। वहाँ शहरों के आमोद और प्रमोद कहाँ? फिर कैसे तबीयत लगे? स्कूल और कालेज से पढ़कर निकलनेवाले चाहे शहर में भीख माँगें, परन्तु कोई मेहनत का काम करके देहात में जीवन-निर्वाह नहीं कर सकता। देहात में लोग अपने ढंग से शब्दों का उच्चारण करते हैं, ज़बान को तोड़ना मरोड़ना नहीं जानते और इसी वजह से उनका उच्चारण

ऐसा हो जाता कि लोगों को समझने में कठिनता होती है। बहुत से शब्द ऐसे हैं जो शहरवालों के कान में भी कभी न पड़े होंगे। हिन्दी का एक कवि कहता है, "हित मानि अई-गई कीजतु हैं"। 'अई-गई' शब्द का समझना कोई सहज काम नहीं है। देहात में यह शब्द प्रचलित है। जब कोई किसी चीज़ को गिरों रखता है और ब्याज इतना बढ़ जाता है कि मूलधन जोड़कर उस वस्तु का मूल्य आ जाता है तब महाजन उसे ले लेता है और लेना-देना कुछ नहीं रह जाता है। कवि ने इन्हीं अर्थों में इस शब्द का प्रयोग किया है कि तुमसे प्रेम होने के कारण जो तुम कहते या करते हो उसको हम अई-गई कर जाते हैं। देहात में रहनेवाले मुसलमान अच्छी तरह हिन्दी समझते हैं। अगर न समझें तो काम भी तो न चले।

एक भाषा का दूसरी भाषा से लेन-देन लगा रहता है और जब फिर उर्दू हिन्दी से ही बनी है तब स्वाभाविक है कि उर्दू में हिन्दी के शब्द अधिक हों। उनसे उर्दू के कवि नहीं बच पाये और अपनी शायरी में उनका प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

(१) 'जलन' शब्द हिन्दी का है और उसी अर्थ में उर्दू में भी प्रयुक्त होता है। उर्दू का शायर ज़लील कहता है—"अंजाम क्या हो दाग़ मुहब्बत का देखिए, सीने में इब्तिदा से जलन इन्तिहा की है।" इस शेर में सिवा जलन शब्द के और कोई ऐसा शब्द नहीं है जो उसकी समझ में आ जाय जो उर्दू नहीं जानता। (२) 'जल्दी' शब्द भी हिन्दी का है। इसका भी उर्दू-भाषा के कवियों ने प्रयोग किया है—"मैं कहता हूँ कि जल्द आओ चला मैं, वह कहते हैं कि जल्दी क्या पड़ी है।" यह शेर किसी की भी समझ में पूरा आ जायगा। यद्यपि हिन्दी में प्रायः जल्दी शब्द का प्रयोग करते हैं 'जल्द' का नहीं, तथापि शब्दों के संगठन से बहुत कुछ समझ में आ जाता है। उर्दूवालों ने 'आरामे जान' शब्द को हिन्दी का शब्द बतलाया है। इसका अर्थ 'ख़ासदान' (पान रखने का डिब्बा) है। यह शब्द हिन्दी का नहीं है। यह लखनऊ की ज़बान का शब्द है। यह किसी हिन्दी के कोष में नहीं मिलेगा। यह 'हिन्द' में बना है, इस वजह से इसे हिन्दी का शब्द कहते हैं। तस्लीम शायर कहता है—"हमने जो पान माँगा बातों में ज़हर घोला, और आ गया जो दुश्मन 'आरामे जान' खोला।" हिन्दी जाननेवाले क्या, बहुत-से उर्दू जाननेवाले इस शब्द का अर्थ नहीं जानते हैं। उर्दू-कवियों की प्रशंसा में कहा जाता है कि वे बहुत सादी ज़बान का प्रयोग करते हैं। अगर शेर भर में एक शब्द किसी दूसरी भाषा का आ जाय तो यह नहीं कहा जा सकता है कि जिस ज़बान का वह शब्द है उस ज़बान के बोलनेवाले पूरे शेर समझ सकते हैं। उर्दू के शायर अफ़सर ने लिखा है—"मुक़द्दर की ख़राबी से न काम आई वफ़ा मेरी, तुम्हारे वास्ते तड़पी हमेशा आत्मा मेरी"। लिखने को तो अफ़सर साहब लिख गये, लेकिन जिनके लिए लिखा उनमें कितने हैं जो 'आत्मा' का अर्थ जानते हैं। 'त्रिशूल' कवि ने लिखा है—"न हममें कोई वहशी न डैमफ़ूल होता, होते हम और ही कुछ जो होमरूल होता।" डैमफ़ूल और होमरूल, दो शब्दों के आ जाने से यह नहीं कहा जा सकता है कि सब अँगरेज़ इस पद को समझ लेंगे व वे हिन्दुस्तानी जो अँगरेज़ी नहीं पढ़े हैं, समझ लेंगे। यद्यपि हिन्दुस्तानियों को समझना चाहिए, क्योंकि उनकी स्तुति में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। 'नेटिव' शब्द भी इसी ढंग का है। किसी अँगरेज़ के मुँह से जहाँ नेटिव शब्द निकला कि हम लोगों ने समझ लिया कि हम हिन्दुस्तानियों के ही तरफ़ इशारा है। एक ने ख़ूब कहा है—"जब कुछ कहते उत्तर मिलता बकतो नेटिव काला है।" ऊपर दिये हुए शेरों से यह साफ़ पता चलता है कि उर्दू के कवियों को जब ज़रूरत हुई है तब फ़ारसी और अरबी के शब्दों से काम लिया है। 'यक़ीन' शब्द अरबी का है। इसको अब सभी बोलते और समझते हैं। परन्तु मुझे मालूम नहीं है कि संस्कृत के किसी शब्द ने इस तरह उर्दू-भाषा में स्थान प्राप्त किया हो।

मैं दोष किसी का नहीं देता हूँ। हिन्दी का भी यही हाल है और स्वाभाविक है। दिखाने के लिए कि कविता में भी उर्दू के ढंग की शायरी की जा सकती है, एक हिन्दी का कवि कहता है—"कुछ नाज़ जफ़ा पर है उनको तो भरोसा बड़ा हमें आह का है", दूसरा कहता है—"मुर्ग़-दिल को फँसा दाम गेसू में हा तीर मिज़गाँ का ज़ालिम बनाया शिकार।" हिन्दी-लिपि होने से और 'शेर' के स्थान में 'कवित्त' होने से भाषा की कठिनता तो नहीं कम पड़ी। हिन्दुओं को किसी भाषा से ईर्ष्या नहीं है, क्योंकि

अपनी भाषा से प्रेम नहीं है। अँगरेज़ी के एक लेखक ने लिखा है कि बिना ईर्ष्या के प्रेम के बन्धनों में शिथिलता आ जाती है। लाखों की संख्या में हिन्दू मिलेंगे जो उतनी ही अच्छी उर्दू जानते हैं जितनी वे जो उसे अपनी ज़बान कहते हैं। उर्दू को उसके वर्तमान पद पर पहुँचाने में हिन्दुओं ने मुसलमानों का बहुत अच्छी तरह हाथ बँटाया है, और मुसलमान हिन्दी-लेखकों की इनी-गिनी दो चार ही मिसालें हैं। तो भी हिन्दी-साहित्य सदैव उनका आभारी रहेगा। हम लोग चाहे उर्दू और फ़ारसी के असाधारण से असाधारण शब्द समझ लें, परन्तु वे लोग हिन्दी के साधारण से साधारण शब्द नहीं समझ सकते हैं और न समझने की कोशिश करते हैं। ऐसी हालत में कौन भाषा लिखी जाय जो उनकी समझ में आवे और वे भी उसे अपना लें?

उर्दू-भाषा के बहुत-से शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं और देहात में भी बोले जाते हैं। हिन्दी-लेखक 'ज्ञात' शब्द की जगह पर 'मालूम' शब्द का प्रयोग करते हैं। 'सायंकाल' और 'संध्या' की जगह पर 'शाम' लिखते हैं। 'प्रातःकाल' की जगह 'सुबह' शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु यदि उनसे यह कहा जाय कि वे 'सुब्ह' लिखा करें तो उनसे नहीं लिखा जायगा।

यह मान्य है कि भाव पर भाषा निर्भर होती है। यदि भाव गम्भीर है तो भाषा अवश्य ही गम्भीर होगी, नहीं तो हलकापन आ जायगा। हम हिन्दी लिखनेवाले उन उर्दू-शब्दों का अवश्य प्रयोग करते हैं जिनके लिए जानते हैं कि सर्वसाधारण को समझने में कठिनता नहीं होगी। परन्तु हमारे शब्दों का प्रयोग उर्दूवाले बचाते हैं। पहले वे यह तो मानें कि हिन्दी 'दहक़ानों' की ज़बान नहीं है।

जो भाषा-विज्ञान के जाननेवाले हैं उन सबका यह कहना है कि हिन्दी की वर्णमाला इतनी सम्पूर्ण और निर्दोष है कि किसी और भाषा की नहीं है। यदि इस निगाह से देखा जाय तो भी हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा हो सकती है। मैं तो पहले इस बात के लिए उत्सुक हूँ कि हिन्दी हिन्दुओं की भाषा हो जाय; फिर बाद को इसके राष्ट्र-भाषा होने का स्वप्न देखा जाय।

जिनको अरब देश छोड़े हज़ारों वर्ष हो गये हैं जिनका इसी देश में जन्म और लालन-पालन हुआ है, जो 'इस ख़ाक से उठे हैं और इस ख़ाक में मिलेंगे' वे अभी भी उसी सभ्यता के गीत गाते हैं। हम सृष्टि के आदि से यहीं के रहनेवाले हैं और सृष्टि के अन्त तक यहीं रहेंगे, परन्तु नहीं, हम स्वयं अपनी ही निगाहों में गिरे हुए हैं—न अपने देश का अभिमान है, न अपनी सभ्यता का अभिमान है और न अपनी भाषा का अभिमान है—अगर अभिमान है तो यह कि "हर एक को दावा है हम भी हैं कोई चीज़, और हमको यह नाज़ कि हम कुछ भी नहीं हैं।"

राजनैतिक क्षेत्र से साहित्यिक क्षेत्र पृथक् है, यद्यपि भाषा राजनैतिक भावों की प्रतिबिम्ब होती है। जैसी देश की दशा होगी, वैसी भाषा होगी। आज से शताब्दियों के बाद जो इस देश का वर्तमान साहित्य देखेगा उसे प्रकट हो जायगा कि उस समय देश पराधीन था और स्वतन्त्र होने के लिए व्याकुल हो रहा था। प्रत्येक देश के हितैषी का यह स्वप्न होता है—यही इच्छा होती है और यही ईश्वर से प्रार्थना होती है कि समस्त देश भर की एक भाषा हो, परन्तु यदि यह सम्भव नहीं है तो यह कहाँ तक उचित है कि अधिकांश मनुष्यों का साहित्य सत्यानाश कर दिया जाय। यह बग़ैर याद आये नहीं रहता—"ज़माना भला आपको क्या कहेगा।"

रोमन-लिपि के द्वारा भारतवर्ष की जनता को शिक्षित करने का प्रश्न अभाग्यवश अभी बहुतों की समझ में नहीं आता है। तुर्की का उदाहरण दिया जाता है। हाँ, अगर वहाँ होने लगे जो वहाँ हुआ था तो दूसरी बात है। जब अफ़ग़ानिस्तान की पहली पार्लियामेंट की बैठक अमानुल्ला के सामने हुई थी तब जो उसके सदस्य थे उनकी दाढ़ी मुँडवा दी गई और चप्पलों, पायजामों और कुर्तों की जगह बूट, पतलून और कोट ने ली थी। वहाँ की क्रान्ति का यह भी एक कारण था। उसका जो परिणाम हुआ वह सभी जानते हैं।

उस नमूने की हिन्दुस्तानी लिखना जिसका नमूना सामने रक्खा जाता है वह कम से कम हिन्दुओं के लिए कठिन है।

—— ——

पंजाब की वर्तमान स्थिति

लेखक, श्रीयुत प्रोफ़ेसर धर्मदेव शास्त्री

नवीन शासन-विधान के अनुसार प्रान्तीय स्वायत्त शासन का कुछ आभास भारतीयों को मिला है। सौभाग्य से भारत की एकमात्र राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस ने नवीन शासन-विधान के अनुसार सात प्रान्तों में शासन-सूत्र सँभाला है, जिसके कारण विधान के अनुसार अनंत अधिकार होते हुए भी प्रान्तीय गवर्नरों ने मंत्रियों की इच्छा के अनुसार शासन चलाने की अनेक परम्परायें स्थापित कर दी हैं। यदि कांग्रेस ऐसे अवसर पर पद-ग्रहण न करती तो इसका भारतीय राजनीति पर बुरा प्रभाव पड़ता। आज कांग्रेसी प्रान्तों में जनता को खुली साँस लेने का जो अवसर मिला है वह न मिलता। युक्त-प्रान्त के अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि आज जनता यह अनुभव कर रही है कि वह कुछ कर सकती है, नहीं तो पिछली दो शताब्दियों से भारत अवसाद से ऊपर उठने का साहस करना भी पसन्द नहीं करता था।

बीच बीच में विविध आन्दोलनों के कारण जनता में जागृति अवश्य हुई, पर एक तो वह जागृति सर्वसाधारण की नहीं थी, कुछ वर्गों का आन्दोलनों के साथ सीधा सम्पर्क था, और फिर कुछ दूर चलकर लोग असफल ही होते रहे, इसलिए भारतीयों को आत्मविश्वास न हो सका। इधर कुछ ही सही, शासन हाथ में लेने से जनता को कांग्रेस के कार्यक्रम पर विश्वास तो हुआ है। अब यदि कांग्रेस शासन-भार छोड़कर लड़ाई भी छेड़ दे तो भी जनता का विश्वास उस पर पूर्ववत् बना रहेगा।

एक और बात भी है। कांग्रेस ने चुनाव-आन्दोलन में पड़कर भारत को राजनैतिक दृष्टि से शिक्षित कर दिया है। पिछले चुनाव से पूर्व जब कांग्रेस चुनाव नहीं लड़ती थी, सर्वत्र जात-पाँत, पैसा और दुनियावी दबाव के बल पर चुनाव लड़ा जाता था। कांग्रेस ने चुनाव लड़कर इन सब बुराइयों का क्रियात्मक प्रतीकार किया है। इस प्रकार जनता को राजनैतिक दृष्टि से शिक्षित करने का भी कांग्रेस को सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जनता को जो शक्ति आज मिली है उसका श्रेय हमारे विचार में मुख्यतया कांग्रेस को ही है, शासन-विधान को नहीं। यदि इस सत्य का साक्षात्कार करने की इच्छा किसी को हो तो वह नवीन शासन-विधान के अनुसार शासनारूढ़ ग़ैर-कांग्रेसी प्रान्तों की स्थिति का समीप से निरीक्षण करे। मेरा अभिप्राय पंजाब और बंगाल से है। मैं क़रीब पौने दो बरस के बाद पंजाब गया था। बीस रोज़ रहकर लौटा हूँ। मैंने पंजाब में जो देखा है वही प्रस्तुत लेख में पाठकों के सम्मुख रखता हूँ।

राजनीति

पंजाब में यूनियनिस्ट-पार्टी की सरकार है। पार्टी के नेता सर सिकन्दर हयातख़ाँ ही प्रधान मंत्री हैं। पार्टी के जन्मदाता स्वर्गीय सर फ़ज़लीहुसेन बहुत बड़े राजनीतिज्ञ थे। वे जानते थे कि पंजाब में वही पार्टी बल पा सकती है जो हिन्दू-मुसलमान और सिक्खों की सम्मिलित पार्टी हो तथा उसका कार्यक्रम प्रगतिशील हो। परन्तु दुर्भाग्य से सर फ़ज़लीहुसेन का चुनाव से पूर्व ही निधन हो गया। हमारा विश्वास है, यदि आज सर फ़ज़लीहुसेन जीते होते तो पंजाब की स्थिति कुछ और ही होती। सर सिकन्दर हयातख़ाँ नेक आदमी हैं, शान्तिप्रिय तथा समझदार और गम्भीर व्यक्ति हैं। मंत्रि-मंडल की बागडोर सँभालते ही उन्होंने जिस प्रकार से कार्य का प्रारम्भ किया था और जिस प्रकार वे पंजाब की जनता के प्रीति-भाजन बनते जा रहे थे वह क्रम यदि बना रहता तो सर सिकन्दर शायद पंजाब के 'हीरो' हो जाते। परन्तु शहीदगञ्ज-आन्दोलन ने सर सिकन्दर को बदल दिया। शहीदगंज-आन्दोलन के समय अपने मंत्रि-मंडल को बनाये रखने के लिए उन्हें मुस्लिम-लीगी बाना पहनना पड़ा, और जो सिकन्दर चुनाव के समय जिन्ना को पंजाब में आने देने के भी विरोधी थे वे ही शहीदगंज-आन्दोलन के लिए श्री जिन्ना की क़दमबोसी करने के लिए विवश हुए। यहीं से पंजाब की यूनियनिस्ट-पार्टी के पतन का अध्याय प्रारम्भ होता है। यदि इस अवसर पर सिकन्दर मिनिस्ट्री

का मोह छोड़कर, साम्प्रदायिकता से ऊपर रहकर, कार्य करते रहते—फिर चाहे कुछ ही होता, तो भारतीय साम्प्रदायिकता का वर्तमान नग्नरूप हमें देखने का अवसर न मिलता।

अब क्या है? कहने को तो पंजाब में यूनियनिस्ट-पार्टी को सरकार है, परन्तु वस्तुतः सरकार है मुस्लिम-लीग की, यद्यपि अभी तक बाक़ायदा मुस्लिम-लीग-पार्टी का जन्म नहीं हुआ है। पंजाब में कांग्रेस-विरोधी पार्टी है। कांग्रेस का पंजाब में जो कुछ महत्त्व है वह कांग्रेस-हाईकमांड के बल-बूते पर है। पंजाब में कोई भी ऐसा कांग्रेसी नेता नहीं है जिसको अपनी प्रतिष्ठा से कांग्रेस की प्रतिष्ठा अधिक अच्छी लगती हो, इसी लिए कमज़ोर होते हुए भी वहाँ कांग्रेस में दो पार्टियाँ हैं—गोपीचन्द-पार्टी और सत्यपाल-पार्टी। मालूम होता है, पंजाब के कांग्रेसियों ने कांग्रेस के विविध विभागों को जिनमें प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी, चर्खा-संघ आदि मुख्य हैं, अपना अपना मठ बना लिया है। यही कारण है, जहाँ आज कांग्रेस की श्रीवृद्धि के युग में पंजाब में भी और प्रान्तों की तरह कांग्रेस की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होनी चाहिए थी, वहाँ वह उसके प्रतिकूल रहा है। पंजाब की राजनैतिक दशा हिन्दू विधवा से अच्छी नहीं। जिस पंजाब ने लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्द जैसे वीरों को जन्म दिया जो भारत का नेतृत्व करते थे, वही पंजाब आज नेतृविहीन है। पंजाब में शुद्ध कांग्रेस-पक्षपाती एक भी दैनिक पत्र नहीं है। कांग्रेस का बल पंजाब में हिन्दुओं पर आश्रित है। इधर पंजाब के हिन्दू कांग्रेस के हाथों में अपने को असुरक्षित समझने लगे हैं। बात यह है कि कांग्रेस हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को प्रान्तीय दृष्टि से नहीं, बल्कि भारतीय दृष्टि से देखती है, हालाँ कि इस समस्या का रूप विभिन्न प्रान्तों में है भिन्न भिन्न। उदाहरण के लिए कांग्रेस किसानों के भले के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है, साथ ही अल्पसंख्यकों के हित सुरक्षित रखने की भी उसने गारंटी दी है। किसानों की रक्षा के लिए कांग्रेस ने युक्त-प्रान्त में एक क़ानून का प्रस्ताव किया है। इसी प्रकार मदरास, मध्य-प्रान्त आदि प्रान्तों में जहाँ मुसलमान अल्पसंख्या में हैं, वहाँ उनकी रक्षा करने के अपने दूसरे वादे का भी पालन किया है। इसी प्रकार सीमाप्रान्त में जहाँ हिन्दू अल्प संख्या में हैं, वहाँ भी कांग्रेस ने उनकी रक्षा करने का भरसक प्रयत्न किया है। परन्तु पंजाब में इन दोनों में टक्कर हो गई है। पंजाब की वर्तमान सरकार ग़ैर-काश्तकारों की है। पंजाब असेम्बली में नम्बरदार और ज़ैलदारों का ही बहुमत है, अर्थात् उन्हीं का प्रतिनिधित्व है। पंजाब में पहले से क़ानून बना हुआ है कि काश्तकार की ज़मीन ग़ैर-काश्तकार नहीं ले सकता। अब पिछले शिमला-अधिवेशन में वह क़ानून और भी कड़ा कर दिया गया है। इसके अनुसार ग़ैर-काश्तकारों के पास काश्तकारों की जो ज़मीनें हैं वे बिना कुछ दिये ही काश्तकारों को फिर मिल जायँगी।

दुर्भाग्य से पंजाब की अल्पसंख्यक जाति हिन्दू है और वे अधिकतर ग़ैर-काश्तकार हैं। इन क़ानूनों का प्रभाव उनके जीवन पर पड़ेगा। इसी कारण आज-कल इन क़ानूनों के विरुद्ध पंजाब की हिन्दू-जनता में क्षोभ की अदम्य लहर सी उठ खड़ी हुई है। पंजाब-कांग्रेस के अधिकतर असेम्बली-सदस्य हिन्दू काश्तकारों के प्रतिनिधि हैं, इसलिए वोटरों की माँग है कि हमारे प्रतिनिधियों को हमारा साथ देना चाहिए और इन क़ानूनों का विरोध करना चाहिए। परन्तु कांग्रेस-पार्टी कांग्रेस-हाईकमाण्ड के आदेश के अनुसार ऐसा नहीं कर सकती। कमाण्ड चाहता है कि ये क़ानून काश्तकारों के हित के लिए हैं, इसलिए कांग्रेस-पार्टी इनके पास करने में यूनियनिस्ट-पार्टी का साथ दे। उधर पंजाब की शासनारूढ़ पार्टी में अधिकतर सदस्य ऋणग्रस्त हैं, साथ ही फ़िज़ूलख़र्च भी हैं। वे अनायास ऋणमुक्त होने की फ़िक्र में हैं। पंजाब की हालत इस समय यह है कि हिन्दुओं को नौकरी तो मिलती नहीं, उनके व्यापार पर सरकार नियंत्रण कर रही है। साहूकारा कारोबार क़ानून से चौपट किया जा रहा है। मैंने २० ... पंजाब में रहकर देखा है कि इस समय पंजाब के हिन्दू यह समझ रहे हैं कि वर्तमान सरकार इन क़ानूनों से हिन्दुओं को पंजाब से बाहर निकल जाने पर बाधित कर रही है—कम से कम वे असुरक्षित तो हैं ही। पंजाब के हिन्दुओं का कहना है कि जिस ज़मीन को हमने पिछले क़ानून के अनुसार पैसा देकर लिया है, यदि वह नये क़ानून से बिना कुछ लिये-दिये वापस कराई जा सकती है, तो इसका अर्थ हुआ कि कल पंजाब सरकार फिर कोई ऐसा क़ानून भी पेश कर सकती है कि ग़ैर-काश्तकारों ने

ज़मीनें कभी काश्तकारों से ली थीं और जिससे वे काफ़ी फ़ायदा उठा चुके हैं उनको भी वापस कर दें। और कभी पंजाब से बाहर भी कर देने का भी प्रस्ताव हो सकता है। यह आशंका कहाँ तक ठीक है, यहाँ इसकी समीक्षा नहीं करनी है। यह सत्य है कि पंजाब के हिन्दुओं को यह आशंका है।

कांग्रेस-हाईकमाण्ड की आज्ञा पालन करना ठीक है, परन्तु पंजाब की स्थिति में और युक्त-प्रान्त की स्थिति में अन्तर है। मतलब यह है कि आज पंजाब में कांग्रेस की स्थिति दयनीय है। यदि इस समय कांग्रेस दुबारा चुनाव लड़े तो शायद उसका एक भी प्रतिनिधि सफल नहीं हो सकेगा। तो क्या हिन्दू-महासभा का बल पंजाब में बढ़ रहा है? यह भी नहीं है। हिन्दू-महासभा के नेता भाई परमानन्द ने पिछले चन्द सालों के कार्यों से बता दिया है कि वे हिन्दुओं का नेतृत्व नहीं कर सकते। कांग्रेस को गाली देने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सकते। पंजाब के दूसरे हिन्दू नेता डाक्टर गोकुलचन्द, राजा नरेन्द्रनाथ आदि अन्ततोगत्वा सरकार से विरोध मोल नहीं लेना चाहते और सबसे बड़ी बात यह है कि ये लोग त्याग करने को तैयार नहीं। यह ठीक है कि पंजाब की वर्तमान स्थिति ऐसी है कि कोई देशभक्त नेता पंजाब का नेतृत्व करने की क्षमता रखता हो और त्याग करने को तैयार हो तो वह नेता बन सकता है। मैदान तैयार है। परन्तु पंजाब का नेतृत्व करनेवाले को यह समझना होगा कि उसके सिर पर सदा तलवार लटकती रहेगी।

कांग्रेस को और प्रान्तों की तरह पंजाब में जनता के हृदय में पैठने का अवसर क्यों नहीं मिला? इस प्रश्न का उत्तर एक है और वह है पंजाबी नेता रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास नहीं रखते। केवल चुनाव के समय वोट माँगने जाना और कांग्रेस-हाईकमाण्ड के बल पर वोट माँगना कितना बल रखता है? मेरा तो विश्वास है कि कांग्रेस को भारत में जो कुछ बल मिला है वह पूज्य गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम से मिला है। हमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि का ध्यान न रखकर और वोट आदि का स्वार्थ भी हटाकर जनता की सेवा और उसकी भूख मिटाने के उद्देश्य से—खादी, हरिजनोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, मद्य-निषेध आदि—कार्य ग्रामों में करने चाहिए ऐसा करते करते प्रान्त एक दिन अपने आप कांग्रेस का हो जायगा। परन्तु दुःख है कि पंजाब में इस प्रकार के कार्य-क्रम पर विश्वास रखनेवाला कोई नहीं है।

और रचनात्मक कार्यक्रम के बिना पंजाब में कांग्रेस की जड़ नहीं फैल सकती। इसके लिए पंजाब में गांधी-आश्रमों के खोलने की आवश्यकता है। पंजाब में खादी का कार्य ख़ूब चल सकता है। पंजाब के किसान अधिकतर खादी ही पहनते हैं। परन्तु वहाँ के कांग्रेसी खादी को कोई महत्त्व नहीं देते। तात्पर्य यह है कि पंजाब की राजनैतिक स्थिति डावाँडोल है।

साम्प्रदायिकता

पंजाब साम्प्रदायिकता का तो घर ही है। साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने की विद्या का आचार्य पंजाब ही है। साम्प्रदायिकता-विद्यालय के कुलपति तो बम्बई में बैठे हैं, परन्तु विद्यालय पंजाब है। पंजाब के हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख प्रत्येक बात को साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखते हैं। आज-कल तो पंजाब में साम्प्रदायिकता अपने नग्नरूप में नाच रही है। साधारण मुसलमानों को कहा जाता है कि तुम्हारा राज्य हो गया है। और हिन्दू भी इसी तरह की बेसिर-पैर की बातें उड़ाने में ख़ूब होशियार हैं। मैंने पंजाब के प्रायः सभी उर्दू दैनिक पत्रों को देखा है। मुझे एक भी दैनिक राष्ट्रीय नहीं प्रतीत हुआ। एक बात और है। पंजाब के पत्रों की कोई निश्चित नीति नहीं। कभी कांग्रेसी तो कभी हिन्दू और कभी कुछ नहीं। हिन्दू पत्र 'प्रताप', 'मिलाप', 'वीर भारत' और मुस्लिम पत्र 'इन्क़लाब', 'ज़मींदार', 'मदीना' सब पंजाब के शरीर में प्रतिदिन ज़हर का इंजेक्शन करते रहते हैं। भाई परमानन्द का 'हिन्दू' तो बिलकुल ही साम्प्रदायिक पत्र है। जिस शरीर में प्रतिदिन लाखों मन ज़हर पहुँचता हो वह क्यों न बौरा जाय? इसका इन्तिज़ाम होना चाहिए, नहीं तो इस विष के सारे देश में फैल जाने का भय है।

नवीन शासन-विधान के जारी होने के बाद से पंजाब में साम्प्रदायिकता नये रूप में व्याप्त हो रही है। अन्दर-अन्दर आग सुलग रही है। आज तक जो साम्प्रदायिकता गुंडों का काम समझी जाती थी वह शरीफ़ आदमियों का काम हो गया है। 'साक्षर' उल्टा हो जाय तो 'राक्षस' बन जाता है।

हिन्दी

पंजाब में उर्दू का अबाध राज्य है। सेवा, ईश्वर, परन्तु, प्रार्थना आदि शब्द हिन्दी के नहीं, संस्कृत के समझे जाते हैं। मैंने देखा है, हिन्दीवालों ने इधर जब से उर्दू-शब्दों को अपनाना प्रारम्भ किया है तब से उर्दू-वाले समझने लगे हैं, चलो अच्छा हुआ, वही इधर आने लगे। हिन्दी में अनेक उर्दू-शब्दों का व्यवहार होने लगा है, परन्तु उर्दू के साहित्य पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उलटा वे और भी सख़्त होते जाते हैं।

पंजाब में हिन्दी की जो कुछ भी उन्नति है उसका श्रेय आर्यसमाज को है। परन्तु पंजाब में आजतक हिन्दी औरतों की ही भाषा समझी जाती है और बात है भी ठीक। पंजाब की हिन्दू स्त्रियाँ प्रायः पढ़ी हैं और वे सब हिन्दी जानती हैं। छोटे छोटे गाँव में भी आर्यसमाज की पुत्री-पाठशालायें हैं। मैं ऐसे कई उदाहरण जानता हूँ कि केवल अपनी स्त्री को पत्र लिखने के ही लिए कुछ शिक्षितों को हिन्दी पढ़नी पड़ी है। पंजाब के मुलतान शहर में संस्कृत और हिन्दी का बहुत प्रचार है। परन्तु वहाँ भी हिन्दी की पत्रिकायें बहुत कम खपती हैं। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि मुलतान में बड़े बड़े हिन्दी-प्रचारकों को भी इसका पता तक नहीं कि शिमला में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कब होनेवाला है। इधर लाहौर में कुछ हिन्दी-प्रचार का सूत्रपात हुआ है। परन्तु उर्दू का वहाँ बहुत ही प्रचार है। यहाँ तक कि हिन्दी-प्रचार का सूत्रधार आर्यसमाज भी (आर्य-प्रतिनिधि-सभा, पंजाब) उर्दू में एक साप्ताहिक निकालता है, जिसका नाम है 'आर्य-मुसाफ़िर'। लाहौर से दो हिन्दी दैनिक भी निकलते हैं—हिन्दी-मिलाप और शक्ति। मेरा दृढ़ मत है कि उर्दू-भाषा और फ़ारसी-लिपि विचारों को ठीक ठीक व्यक्त नहीं कर सकती, इसलिए पंजाब को उन्नत करने और पंजाब को ऊँचे विचार देने के लिए भी यह आवश्यक है कि हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि का प्रचार पंजाब में किया जाय।

हम लोगों को जो हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान रहे हैं, पंजाब में हिन्दी की विधवा-सम दशा पर ध्यान देना चाहिए। लेकिन एक बात—पंजाब में हिन्दी का प्रचार हिन्दू-हित और मुस्लिम-विरोध के नाते नहीं करना चाहिए। इससे हानि होगी। उर्दू के मुक़ाबिले में हिन्दी यदि लाई जाय तो अवश्यमेव हिन्दी की विजय होगी। कम से कम इतना तो होगा ही कि पंजाब में भी हिन्दुस्तानी राजभाषा हो जायगी, नहीं तो आज यह हालत है कि पंजाब-सरकार हिन्दुस्तानी शब्द सुनना भी नहीं चाहती। सर सिकन्दर के शब्दों में तो उर्दू सारे हिन्दुस्तान की 'मादरी ज़बान' है।

इस प्रकार पंजाब के क्षितिज पर इस समय नवीन शासन-विधान के जारी होने के बाद से भय, आतंक, विद्वेष और हिंसा के बादल छा रहे हैं। यद्यपि कुछ अधिकाराभास पाकर होना इसके प्रतिकूल चाहिए था। पंजाब इस समय नेतृविहीन अथवा नेत्रविहीन है।

इसका इलाज? इलाज है और वह यह है कि कांग्रेस-हाईकमाण्ड पंजाब में कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को जारी करने का प्रयत्न करे, साथ ही कांग्रेस-वर्किंग कमिटी का कोई मुस्लिम सदस्य सदा के लिए पंजाब में जाकर बस जाय और वह पंजाब के मुसलमानों में राष्ट्रीय वातावरण पैदा करे।

एक और भी इलाज है। यदि सिकन्दर जिन्ना से नाता तोड़ दें और गान्धी से नाता जोड़ लें तो यूनियनिस्ट-सरकार के रहते हुए भी शान्ति हो सकती है, क्योंकि यूनियनिस्ट-पार्टी और कांग्रेस दोनों का आर्थिक कार्यक्रम एक है। अथवा एक और भी इलाज है—मन्त्रिमंडल संयुक्त पार्टियों का हो और कांग्रेस सिन्ध की तरह संतुलन का कार्य करे। परन्तु यह सब भविष्य के गर्भ में है। अभी तक तो सिकन्दर-मिनिस्ट्री की हार होने के आसार नहीं हैं। यदि पंजाब में कांग्रेस का राज्य हो जाय तो वह अपने कार्यक्रम को और प्रान्तों से पंजाब में अधिक सफल कर सकती है, क्योंकि वहाँ के लोग साधारणतया ख़ुशहाल हैं, भावुक भी हैं। और प्रान्तों की अनेक समस्यायें वहाँ नाम को भी नहीं।

स्वर्गीय शरत्चन्द्र चटर्जी की एक कहानी

तसवीर

अनुवादक, पंडित रूपनारायण पाण्डेय

(१)

ह कहानी जिस समय की है, उस समय भी वर्मा अँगरेज़ों के हस्तगत नहीं हुआ था। उस समय भी उसके अपने राजा-रानी थे, पात्र-मित्र थे, सेना और सामन्त थे। उस समय भी वर्मा के लोग आप ही अपने देश का शासन करते थे।

मंडाले राजधानी थी; किन्तु राजवंश के अनेक व्यक्ति देश के विभिन्न शहरों में ही निवास करते थे।

इसी तरह का राजवंश का कोई आदमी शायद बहुत समय पहले पेंगू से पाँच-छः कोस दक्षिण इमेदिन ग्राम में आकर रहा था।

उनके बड़ा भारी महल, बाग़, काफ़ी रुपये-पैसे और बहुत बड़ी ज़मींदारी थी। इन सब चीज़ों के जो मालिक थे उन्हें जब भगवान् के यहाँ से बुलावा आया तब उन्होंने अपने एक मित्र को बुलाकर उससे कहा—बा-को (मित्र का नाम), मेरी इच्छा थी कि तुम्हारे लड़के के साथ अपनी लड़की की शादी कर जाऊँगा। लेकिन उसके लिए अब समय नहीं रहा। मा-शोये (लड़की का नाम) है। इसे तुम देखना।

इससे अधिक कुछ कहने की ज़रूरत उन्होंने नहीं देखी। बा-को उनका लड़कपन का मित्र था। एक समय उसके भी बहुत संपत्ति थी। केवल फयार-मंदिर बनवाकर और बौद्ध-भिक्षुओं को खिलाकर उसने अपनी सब संपत्ति ही नहीं ख़र्च कर डाली थी, बल्कि आज भी उस पर ऋण यथेष्ट है। तथापि इस आदमी को ही अपने सर्वस्व के साथ अपनी एकमात्र कन्या को बेखटके सौंप देने में उस मरनेवाले आदमी को कुछ भी संकोच नहीं हुआ, मन में कुछ भी दुबधा नहीं पैदा हुई। मित्र को पहचान लेने का ऐसा ही बड़ा सुयोग उन्होंने इस जीवन में पाया था।

लेकिन यह ज़िम्मेदारी बा-को को भी अधिक दिन उठाने का मौक़ा नहीं मिला। उन्हें भी उस पार का सम्मन आ गया और उस महामान्य परवाने को शिरोधार्य करके वृद्ध बा-को भी एक साल के भीतर ही इस संसार का भार यहीं छोड़कर अज्ञात लोक के लिए प्रस्थान करने को विवश हो गये।

इस धर्म्मात्मा ग़रीब आदमी को गाँव के लोग जैसे प्यार करते थे, श्रद्धाभक्ति करते थे, वैसे ही प्रचण्ड आग्रह के साथ उन्होंने इसकी मृत्यु का उत्सव मनाना भी शुरू कर दिया।

बा-को की मृत-देह माला-चन्दन आदि से सुसज्जित करके पलँग पर लिटाई रही, और नीचे खेल-कूद, नाच-गान और आहार-विहार का प्रवाह दिन-रात बराबर बहने लगा (यह उस देश की प्रथा है)। जान पड़ता था, जैसे इस उत्सव की समाप्ति ही कभी न होगी।

पितृ-शोक के इस उत्कट आनन्द से क्षण भर के लिए किसी तरह भागकर बा-थिन (बा-को का पुत्र) एक सुनसान स्थान में पेड़ के नीचे बैठा रो रहा था। एकाएक चौंककर फिरकर उसने देखा, मा-शोये उसके पीछे आकर खड़ी है। मा-शोये ने ओढ़नी के छोर से चुपचाप बा-थिन की आँखों के आँसू पोंछ दिये और पास बैठकर उसका दाहना हाथ अपने हाथ में लेकर चुपके-चुपके कहा—पिता जी मर गये हैं, लेकिन तुम्हारी मा-शोये अभी जीवित है।

(२)

बा-थिन तसवीर बनाता था। अपनी आख़िरी तसवीर उसने तैयार करके एक सौदागर की मार्फ़त राजा के दरबार में भेज दी थी। राजा ने वह तसवीर ले ली और ख़ुश होकर अपने हाथ की क़ीमती अँगूठी इनाम के तौर पर दी।

आनन्द के मारे मा-शोये की आँखों में आँसू भर आये। उसने बा-थिन के पास खड़े होकर कोमल स्वर में

कहा—वा-थिन, दुनिया में तुम सबसे बड़े—सर्वश्रेष्ठ चित्रकार होओगे।

वा-थिन हँसा, बोला—पिता जी का क़र्ज़ जान पड़ता है, मैं अदा कर सकूँगा।

उत्तराधिकार-सूत्र से इस समय मा-शोये ही वा-थिन का महाजन थी, उसी का वह ऋणी था; क्योंकि उसके पिता ने मा-शोये के बाप से ही ऋण लिया था, जो अब तक अदा न हो सका था। इसी से वा-थिन की यह बात सुनकर मा-शोये को ही सबसे अधिक लज्जा का अनुभव हुआ। मा-शोये ने कहा—तुम बार बार इस तरह खोंचा दोगे तो मैं फिर तुम्हारे पास नहीं आऊँगी।

वा-थिन चुप हो रहा। लेकिन ऋण न चुकने के कारण उसके पूज्य प्रिय पिता की मुक्ति न होगी, इतनी बड़ी विपत्ति की बात का स्मरण करके उसका सारा हृदय जैसे काँप उठा।

वा-थिन आज-कल बहुत अधिक परिश्रम करने लगा है। वह बुद्ध-जातक से भाव लेकर एक नया चित्र बनाने लगा था—आज दिन भर उसने तसवीर से सिर उठा कर किसी ओर ताका तक नहीं।

मा-शोये नित्य जैसे आती थी, वैसे ही आज भी आई थी। वा-थिन के सोने का कमरा, बैठने का कमरा, चित्र बनाने का कमरा, सब अपने हाथ से साफ़ करके वह नित्य सजा जाती थी। नौकर-चाकरों के ऊपर इस काम का भार छोड़ने का साहस उसे किसी तरह नहीं होता था।

सामने एक आइना लगा था। उसी के ऊपर वा-थिन का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। मा-शोये बहुत देर तक एकटक उधर ही ताकती रही। उसके बाद सहसा एक लम्बी साँस लेकर बोली—तुम अगर हम लोगों की तरह औरत होते तो अब तक इस देश की रानी हो सकते।

वा-थिन ने सिर उठाकर हँसते हुए कहा—क्यों? बतलाओ तो सही।

मा-शोये ने कहा—राजा तुम्हें ब्याह कर सिंहासन पर बिठाते। उनके अनेक रानियाँ हैं सही, लेकिन इस तरह का सुन्दर रङ्ग, ऐसे बाल, ऐसा मनोहर मुख किसी भी रानी का है भला? तुम्हीं बताओ।

इतना कहकर मा-शोये घर सजाने का अपना काम करने लगी। किन्तु वा-थिन को यही ख़याल बार-बार आने लगा कि मंडाले में जब वह चित्र बनाना सीख रहा था तब भी उसे इसी तरह की बातें बीच-बीच में सुनने को मिलती थीं। उसने हँसकर कहा—लेकिन रूप चुराने का अगर कोई उपाय होता तो जान पड़ता है, मुझे चकमा देकर तुम्हीं अब तक राजा की बाईं ओर जा बैठतीं।

मा-शोये ने इस अभियोग का कुछ भी उत्तर न दिया। केवल अपने मन में कहा—तुम नारी के समान दुर्बल, नारी के समान कोमल और उन्हीं के समान सुन्दर हो। तुम्हारे रूप और सौन्दर्य की सीमा नहीं है।

इस रूप के निकट मा-शोये अपने को बहुत ही छोटा समझती थी।

(३)

वसन्त के प्रारम्भ में इमेदिन ग्राम में हर साल बड़ी धूम-धाम के साथ घुड़दौड़ का जल्सा होता था। आज वही जल्सा था और उसी के उपलक्ष में गाँव के छोरवाले मैदान में लोगों की भीड़ इकट्ठी थी।

मा-शोये धीरे-धीरे वा-थिन के पीछे आकर खड़ी हो गई। वह एकाग्र मन होकर चित्र बना रहा था, इसी से मा-शोये के पैरों की चाप उसने नहीं सुन पाई।

मा-शोये ने कहा—मैं आई हूँ। इधर घूम कर देखो।

वा-थिन ने चौंककर घूमकर देखा, विस्मित होकर पूछा—एकाएक इतनी सजावट क्यों की है?

मा-शोये ने कहा—वाह, तुमको जान पड़ता है, ख़याल नहीं है। आज हमारे गाँव की घुड़दौड़ है। जो जीतेगा वह आज मुझको माला पहनावेगा।

"कहाँ? मैंने तो यह नहीं सुना था।" यह कहकर वा-थिन फिर लापरवाही के साथ रङ्ग की कूची उठाने को तैयार हुआ। मा-शोये ने उसके गले से लिपटकर कहा—नहीं सुना था तो न सही। अब तो सुन लिया। लो, उठो। अब और कितनी देर करोगे?

इन दोनों की अवस्था प्रायः समान ही थी—शायद वा-थिन दो-चार महीने बड़ा हो तो हो सकता है। लेकिन बचपन से इसी तरह इन दोनों ने हँस-खेलकर अपनी अपनी आयु के उन्नीस बरस बिता दिये हैं। साथ खेले हैं, झगड़ा किया है, मार-पीट भी की है और परस्पर एक दूसरे को प्यार भी किया है।

सामने के बड़े आइने में दोनों के सुन्दर मुख खिले

हुए दो बड़े कमलों या गुलाब के फूलों के समान देख पड़ रहे थे। वा-थिन ने उधर इशारा करके मा-शोये से कहा—वह देखो।

मा-शोये कुछ देर तक चुपचाप उस दृश्य की ओर अतृप्त दृष्टि से देखती रही। अकस्मात् आज पहले-पहल उसे यह ख़याल आया कि वह भी बड़ी सुन्दरी है। उसके दोनों बड़े-बड़े नेत्र आवेश से बन्द हो गये।

मा-शोये ने वा-थिन के कान में चुपके से कहा—मैं जैसे चन्द्रमा का कलङ्क जान पड़ती हूँ।

वा-थिन ने उसका मुख और भी अपने मुख के पास खींच कर कहा—न। तुम चन्द्रमा का कलङ्क नहीं हो—तुम किसी का भी कलङ्क नहीं हो—तुम चन्द्रमा की चाँदनी हो। एक बार अच्छी तरह आँख खोलकर देखो तो सही।

किन्तु मा-शोये को आँखें खोलने का साहस नहीं हुआ; वह वैसे ही अपनी आँखें मूँदे रही।

शायद इसी तरह बहुत-सा समय बीत जाता, किन्तु नर-नारियों की एक भारी भीड़ नाचती गाती हुई सामने के रास्ते से होकर उत्सव में सम्मिलित होने जा रही थी। मा-शोये व्यस्तभाव से उठकर खड़ी हो गई। बोली—चलो जी। समय हो गया है। फिर देर हो जायगी।

वा-थिन बोला—लेकिन मेरा जाना तो इस समय एकदम असम्भव है मा-शोये।

मा-शोये—क्यों?

वा-थिन—मैंने इस चित्र को पाँच दिन में तैयार कर देने का ठेका लिया है।

मा-शोये—अगर न दो।

वा-थिन—तो ख़रीदार मंडाले चला जायगा। अतएव न तसवीर ही फिर लेगा और न रुपया ही देगा।

रुपयों के उल्लेख से मा-शोये को कष्ट होता था, लज्जा भी मालूम पड़ती थी। उसने कुछ तुनककर कहा—लेकिन इसी लिए मैं तुमको ऐसा जानलेवा परिश्रम भी तो दिन-रात नहीं करने दे सकती।

वा-थिन ने इस बात का कुछ उत्तर नहीं दिया। पिता के ऋण की बात यादकर उसके मुख के ऊपर जो मलिन छाया दौड़ गई वह एक और आदमी की नज़रों से नहीं छिपी रही।

मा-शोये ने कहा—जाने दो ख़रीदार को। तुम मेरे हाथ बेच डालना—मैं दूने दाम दूँगी।

वा-थिन को इस बारे में कुछ भी सन्देह न था। उसने हँसकर पूछा—लेकिन तुम इसे लेकर करोगी क्या?

मा-शोये ने अपने गले का बहुमूल्य हार दिखाकर कहा—इसमें जितने मोती, जितने चुन्नी हैं, सब इसी तसवीर के चौखटे में जड़ाकर अपने सोने के कमरे में अपनी आँखों के सामने इसे टाँग दूँगी।

वा-थिन—उसके बाद?

मा-शोये—उसके बाद जिस दिन रात को खूब बड़ा पूरा चाँद निकलेगा और खुली खिड़की से उसकी चाँदनी का उजियाला सोते हुए तुम्हारे मुख पर क्रीड़ा करेगा—

वा-थिन—उसके बाद?

मा-शोये—उसके बाद तुमको जगाकर—

बात पूरी नहीं होने पाई। नीचे मा-शोये की बैलगाड़ी खड़ी थी, गाड़ीवान उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। देर होती देखकर वह ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगा। उसकी आवाज़ मा-शोये के कानों में पहुँची। वा-थिन ने भी सुना। उसने व्यस्त होकर कहा—अच्छा, उसके बाद की बात फिर सुनूँगा, इस समय नहीं। तुम्हारे जाने का समय हो गया है, देर हो रही है, तुम जल्दी जाओ।

लेकिन समय बीत जाने की घबराहट या जाने की जल्दी का कोई लक्षण मा-शोये के आचरण में नहीं दिखाई दिया। उसने और अच्छी तरह जमकर बैठकर कहा—मुझे मालूम पड़ता है, तबीअत ख़राब है। मैं नहीं जाऊँगी।

वा-थिन—नहीं जाओगी? जाने का वादा कर चुकी हो, सब लोग उद्ग्रीव होकर तुम्हारी राह देख रहे होंगे। जानती हो?

मा-शोये ने प्रबल वेग से सिर हिलाकर कहा—देख रहे होंगे! वादा तोड़ देने की ऐसी लज्जा मुझे नहीं है। मैं नहीं जाऊँगी।

वा-थिन—छिः!

मा-शोये—तो फिर तुम भी चलो।

वा-थिन—जा सकता तो निश्चय ही चलता। लेकिन मैं नहीं जा सकता, इसलिए तुमको वादा नहीं तोड़ने दूँगा। अब देर न करो, जाओ।

वा-थिन के गंभीर मुख और शान्त अथच दृढ़ कंठ-स्वर को सुनकर मा-शोये 'नहीं' न कर सकी, जाने के लिए

उठकर खड़ी हो गई। क्षोभ व अभिमान से मुख मलिन करके उसने कहा—तुम अपनी सुविधा के लिए मुझे दूर करना चाहते हो। अच्छा, मैं जाती हूँ, लेकिन फिर कभी तुम्हारे पास न आऊँगी।

दम भर में ही वा-थिन की कर्तव्य की दृढ़ता स्नेह के जल में गल गई। उसने मा-शोये को अपने पास खींचकर हँसते हुए कहा—इतनी बड़ी प्रतिज्ञा न कर बैठना मा-शोये। मैं जानता हूँ, इसका अन्त क्या होगा। लेकिन अब और विलम्ब न करो।

मा-शोये ने वैसे ही विषण्ण मुख से उत्तर दिया—मेरे न आने से खाने-पीने से शुरू करके सभी बातों में तुम्हारी जो दशा होगी उसे मैं न सह सकूँगी, यह तुम जानते हो, इसी से तुम मुझे यहाँ से भगा सके।

इतना कहकर प्रत्युत्तर की अपेक्षा न कर वह तेज़ी के साथ वहाँ से चली गई।

(४)

तीसरे पहर के लगभग मा-शोये की चाँदी से मढ़ी हुई मोरपंखी बैलगाड़ी जब मैदान में पहुँची, वहाँ एकत्र जन-मण्डली प्रचण्ड कोलाहल कर उठी।

वह युवती है, वह सुन्दरी है, वह अभी तक अविवाहित है और बहुत बड़ी सम्पत्ति की अधिकारिणी है। मनुष्य के यौवन-राज्य में उसका स्थान बहुत ऊँचे पर है। इसी से उस जगह भी सबसे बड़े सम्मान का आसन उसी के लिए निर्दिष्ट हुआ था। वह आज पुष्पमाला अपने हाथ से बाँटेगी। उसके बाद जो भाग्यशाली पुरुष उस रमणी के गले में सबके आगे जयमाला पहना दे सकेगा, उसका भाग्य आज जैसे जगत् में ईर्ष्या करने की एकमात्र वस्तु होगा।

सजे हुए घोड़ों की पीठ पर लाल रङ्ग की पोशाक पहने हुए सवार लोग उत्साह और चंचलता के आवेग को मुश्किल से सँभाले हुए थे। देखने से जान पड़ता था, आज संसार में उनके लिए असाध्य या कठिन कुछ भी नहीं है।

क्रमशः समय निकट हो आया और जो कई आदमी आज अपने भाग्य की परीक्षा करने को तैयार थे वे क़तार बाँधकर खड़े हो गये और क्षण भर के बाद ही घंटा बजने के साथ ही, मरने-जीने की परवा न कर, तेज़ी के साथ उन्होंने अपना-अपना घोड़ा छोड़ दिया।

यह वीरत्व है, यह युद्ध का एक अंश है। मा-शोये के बाप-दादे सब युद्ध का व्यवसाय करनेवाले सिपाही थे। उनके रक्त का उन्मत्त वेग, नारी होने पर भी, मा-शोये की नसों में दौड़ रहा था। जो विजयी होगा, संपूर्ण हृदय की श्रद्धा के साथ संवर्द्धना-सम्मान न करने की साध उसकी नहीं थी।

इसी से दूसरे गाँव का रहनेवाला एक अपरिचित युवक जब मा-शोये के पास उपस्थित हुआ—जिसका शरीर परिश्रम और प्रसन्नता के आवेश से लाल हो रहा था, चेहरा काँप रहा था, हाथ पसीने से भीगे हुए थे—और उसने मा-शोये के मस्तक में जयमाला पहना दी तब उसके आग्रह की अधिकता वहाँ उपस्थित अनेक प्रतिष्ठित रमणियों की आँखों में खटक गई।

लौटते समय राह में मा-शोये ने उस युवक को अपनी ही गाड़ी में अपने ही पास स्थान दिया और गद्गद स्वर में कहा—आपके लिए मुझे बड़ा डर लग रहा था! एक बार ऐसा भी जान पड़ा था कि इतनी ऊँची दीवार है, किसी तरह अगर कहीं पैर उलझ गया तो क्या होगा!

युवक ने विनीत भाव से गर्दन झुका ली। किन्तु इस असम-साहसी बलिष्ठ वीर के साथ मा-शोये मन ही मन अपने उस दुर्बल, कोमल और सभी कामों में अनिपुण चित्रकार वा-थिन की तुलना किये बिना नहीं रह सकी।

इस युवक का नाम था पो-थिन। बातों ही बातों में परिचय लेने से मालूम हुआ कि वह भी एक ऊँचे ख़ानदान का लड़का है, धनी है और मा-शोये का दूर के नाते से आत्मीय भी है।

मा-शोये ने आज अनेक लोगों को अपने महल में शाम को भोजन करने का निमन्त्रण दिया था। वे लोग तथा और भी बहुत-से लोगों की भीड़ उसकी गाड़ी के साथ-ही-साथ आ रही थी। आनन्द के आग्रह से उन लोगों के ताण्डव नृत्य से उड़ी हुई धूल के बादल और संगीत के असह्य—कानों का पर्दा फाड़नेवाले—निनाद से सन्ध्या का आकाश उस समय एकदम आच्छन्न हो पड़ा था।

वह भयंकर भीड़ जब वा-थिन के घर के सामने से होकर आगे बढ़ गई तब क्षण भर के लिए वा-थिन अपना काम छोड़कर खिड़की के पास आकर खड़ा होगया और चुपचाप देखता रहा।

(५)

सन्ध्या के भोज के प्रसंग में दूसरे दिन मा-शोये ने वा-थिन से कहा—कल की सन्ध्या बड़े आनन्द से बीती। दया करके अनेक मेहमान आये थे। केवल तुमको फ़ुर्सत न थी, इसलिए तुम्हें मैंने नहीं बुलाया।

वा-थिन उसी तसवीर को प्राणपण से परिश्रम करके समाप्त कर रहा था। सिर उस पर से उठाये विना ही उसने कहा—अच्छा ही किया।

इतना कहकर वह फिर काम करने लगा।

मा-शोये अपार विस्मय से स्तंभित होकर बैठी रही। बातों के बोझ से उसका पेट फूल रहा था। कल वा-थिन काम में फँसे रहने के कारण उत्सव में सम्मिलित नहीं हो सका, इसी से आज बहुत देर तक वहाँ की बहुत-सी बातें उसके साथ करने के इरादे से ही मा-शोये आई थी, लेकिन वा-थिन के कुछ भी कौतूहल प्रकट न करके पहले ही दिन की तरह काम में जुटे रहने से सब उलटा हो गया। अकेले प्रलाप किया जा सकता है, परन्तु वार्तालाप का काम तो नहीं चलता। इसी से मा-शोये केवल स्तब्ध होकर बैठी रही। किसी तरह दूसरे पक्ष की प्रबल उदासीनता और गहरी चुप्पी के बंद द्वार को ठेलकर भीतर प्रवेश करने का आज उसे साहस नहीं हुआ।

प्रतिदिन मा-शोये आकर वा-थिन के जो छोटे-मोटे काम कर जाती थी वे सब आज वैसे ही पड़े रह गये—किसी तरह उनमें हाथ लगाने को उसका जी न चाहा। इसी तरह बहुत समय बीत गया। वा-थिन ने एक बार भी तसवीर से सिर नहीं उठाया, अपनी ओर से उससे एक बार भी कोई प्रश्न नहीं किया। कल के इतने बड़े व्यापार के प्रति भी जैसे उसे लेशमात्र कौतूहल न था, वैसे ही काम बन्द करके दम भर साँस लेने की फ़ुर्सत भी न थी।

बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहने के बाद कुंठित और लज्जित होकर अन्त को मा-शोये उठ खड़ी हुई और कोमल स्वर में बोली—अच्छा तो आज मैं चलती हूँ।

वा-थिन ने चित्र के ही ऊपर दृष्टि रखकर कहा—अच्छा।

जाते समय मा-शोये को जान पड़ा, जैसे इस आदमी के अन्तर की बात उसने समझ ली। उससे पूछे, ऐसी एक बार इच्छा भी हुई, किन्तु उसका मुँह ही न खुल पाया, वह चुपचाप उठकर चल दी।

घर में पैर रखते ही मा-शोये ने देखा, पो-थिन बैठा है। गत रात्रि के आनन्द-उत्सव के लिए वह धन्यवाद देने आया था। मा-शोये ने अतिथि को यत्न के साथ आदर करके बिठलाया।

पो-थिन ने पहले मा-शोये के ऐश्वर्य का बखान किया; उसके बाद वह उसके वंश और पिता की प्रसिद्धि-प्रतिष्ठा के साथ उसके राजद्वार में सम्मान आदि की अनेक बातें आप ही आप विना रुके, विना दूसरे के कुछ कहने की प्रतीक्षा किये बराबर कहता गया।

उन बातों में से कुछ तो मा-शोये ने सुनीं और कुछ उसके अन्यमनस्क कानों में पहुँची ही नहीं। किन्तु पो-थिन केवल बलिष्ठ और अतिसाहसी घुड़सवार ही नहीं, अत्यन्त धूर्त भी था। मा-शोये की यह उदासीनता उससे छिपी नहीं रही। उसने मंडाले के राजपरिवार का प्रसंग छोड़कर अन्त को जब सौन्दर्य की आलोचना करना शुरू कर दिया और कृत्रिम सरलता या बनावटी भोलापन धारण करके जब उस रमणी को लक्ष्य करके बार बार उसके रूप और जवानी का इशारा करने लगा तब मा-शोये को मन ही मन अत्यन्त लज्जा मालूम पड़ने लगी, लेकिन एक सुन्दर आनन्द और गौरव का अनुभव किये विना भी उससे नहीं रहा गया।

वार्तालाप समाप्त होने पर पो-थिन जब विदा हुआ तब आज शाम के लिए भोजन का निमन्त्रण भी वह मा-शोये से लेता गया।

किन्तु उसके चले जाने पर उसकी बातें अपने मन में याद करके मा-शोये का जी ओछा पड़ गया और हृदय ग्लानि से भर गया तथा रात को उसे भोजन का निमन्त्रण देने के लिए अपने ऊपर बेहद खीझ और घृणा होने लगी। उसने चटपट और भी कई एक बन्धु-बान्धवों को निमन्त्रण-पत्र लिखकर नौकर के हाथ भेज दिये। अतिथि लोग यथासमय आकर हाज़िर हुए तथा आज भी खूब हँसी-दिल्लगी, बातचीत और नृत्य-गीत के साथ भोजन का कार्य समाप्त हुआ। तब रात अधिक बाक़ी नहीं थी।

क्लान्त-परिश्रान्त होकर वह सोने गई; किन्तु आँखों में नींद नहीं आई। विस्मय की बात यही थी कि जिस दावत में आज इतना समय इस तरह बीता उसको एक बात भी उसके मन में नहीं आई। वे सब बातें जैसे कितने ही युगों की पुरानी और मामूली हों, ऐसी ही शुष्क, ऐसी ही नीरस प्रतीत होने लगीं। उसे केवल वही आदमी रह रहकर याद आने लगा, जो उसी के बाग़ के छोर पर बने हुए एक निर्जन घर में उस समय निर्विघ्न बैठा हुआ था—आज की इतनी बड़ी दावत—इतने बड़े उत्सव के वृत्तान्त या कोलाहल का लेशमात्र भी शायद जिसके कानों में जाने की राह भी कहीं नहीं ढूँढ़ पाया।

(६)

तड़का होते ही बहुत दिनों का अभ्यास मा-शोये को बा-थिन के निवास-स्थान की ओर रह-रहकर खींचने लगा। वह फिर बा-थिन के घर में जा बैठी। रोज़ की तरह आज भी बा-थिन ने केवल "आओ" शब्द का उच्चारण कर, उसकी सहज अभ्यर्थना समाप्त कर, अपने काम में मन लगा दिया, किन्तु निकट बैठकर भी और एक आदमी को आज केवल यही जान पड़ने लगा कि वह काम में लगा हुआ चुपका आदमी जैसे चुपचाप ही उससे बहुत दूर हट गया है।

बहुत देर तक मा-शोये को कहने के लिए कोई बात ही नहीं सूझी। उसके बाद संकोच को बलपूर्वक हटाकर उसने पूछा—तुम्हें इस तसवीर का और कितना काम करना बाक़ी है?

बा-थिन ने कहा—अभी बहुत बाक़ी है।

मा-शोये—तो फिर इन दो दिनों में तुमने क्या किया?

बा-थिन ने इसका जवाब न देकर चुरुट का बक्स उसकी ओर बढ़ाकर कहा—यह शराब की गंध मैं बरदाश्त नहीं कर सकता।

मा-शोये इस इशारे को समझ गई। जलकर बक्स को ज़ोर से बा-थिन की ओर हाथ से ठेलकर वह बोली—मैं सबेरे चुरुट नहीं पीती और चुरुट से गन्ध छिपाने का काम भी मैंने नहीं किया। मैं क्षुद्र मनुष्य की लड़की नहीं हूँ।

बा-थिन ने सिर उठाकर शान्त स्वर में कहा—शायद तुम्हारे कपड़ों में किसी तरह लग गई होगी। शराब की गन्ध की बात मैंने बनाकर नहीं कही है।

मा-शोये बिजली की-सी तेज़ी से तीर की तरह उठ खड़ी हुई। वह बोली—तुम जैसे नीच हो, वैसे ही जलनेवाले हो, इसी से बिना दोष के तुमने मेरा अपमान किया है। ख़ैर, यही अच्छा है। अपने कपड़े-लत्ते मैं तुम्हारे घर से सदा के लिए हटाये लिये जाती हूँ।

यह कहकर प्रत्युत्तर की अपेक्षा किये बिना ही बड़ी तेज़ी के साथ वहाँ से चली जा रही थी कि बा-थिन ने पास से आवाज़ देकर वैसे ही संयत शान्त स्वर में कहा—मुझे नीच या जलनेवाला कभी किसी ने नहीं कहा। तुम बिना जाने एकाएक अधःपात के मार्ग में बढ़ने को उद्यत हुई हो, इसी से मैंने तुमको सावधान भर किया था।

मा-शोये ने घूमकर, खड़े होकर कहा—अधःपात के मार्ग में मैं कैसे जा रही हूँ?

बा-थिन—मुझे तो यही जान पड़ता है।

मा-शोये—अच्छा, तुम ऐसा ही दूषित मन लेकर रहो; किन्तु जिसका बाप आशीर्वाद छोड़ गया है, सन्तान के लिए अभिशाप नहीं जमाकर गया है, उसके साथ तुम्हारे मन का मेल नहीं हो सकता—कभी नहीं हो सकता!

इतना कहकर वह चली गई। बा-थिन सन्नाटे में आकर जहाँ का तहाँ स्थिर बैठा रहा। कोई किसी भी कारण से किसी को ऐसी मर्मघाती चोट पहुँचा सकता है, इतना अधिक असीम प्यार एक ही दिन में कैसे इतना बड़ा विष हो सकता है, इसे वह सोच भी नहीं सका।

मा-शोये ने घर आते ही देखा, पो-थिन बैठा है। उसने संभ्रम के साथ उठ खड़े होकर अत्यन्त मधुर भाव से मुसकिरा दिया।

उसका मुसकिराना देखकर मा-शोये की दोनों भौंहें शायद उसके अनजान में ही कुञ्चित हो उठीं। उसने कहा—आपका कुछ विशेष प्रयोजन है?

पो-थिन ने सिटपिटाकर कहा—न, प्रयोजन तो ऐसा—

"तो इस समय मुझे अवकाश न होगा।" यह कहकर बग़ल की सीढ़ियों से चढ़कर मा-शोये ऊपर चली गई।

गत रात्रि की बातें स्मरण कर और उनके साथ इस समय के उसके व्यवहार का सामञ्जस्य न देखकर पो-थिन एकदम हतबुद्धि-सा हो गया। किन्तु बैरा के सामने अपनी रूखी हँसी के साथ उसके हाथ में एक रुपया रखकर सीटी बजाता हुआ वह वहाँ से चल दिया।

(७)

लड़कपन से ही जिन दोनों जनों में कभी घड़ी भर के लिए भी विच्छेद नहीं हुआ, भाग्य की विडम्बना से आज महीने से भी अधिक समय बीत गया होगा, किसी ने किसी से भेंट तक नहीं की।

मा-शोये यह कहकर अपने को समझाने की चेष्टा करती कि यह एक तरह से अच्छा ही हुआ कि जिस मोह के जाल ने इतने दिनों से उसे कठिन बन्धन में अभिभूत कर रक्खा था वह टूट गया। अब उसके साथ अपना रत्ती भर भी लगाव नहीं है!

उस धनी की कन्या ने नवीन उद्दण्ड-प्रकृति के पिता के रहते भी अनेक बार ऐसे अनेक काम करने चाहे थे जिन्हें केवल गम्भीर और संयत-चित्त बा-थिन की नाराज़ी के डर से ही वह नहीं कर सकी थी। किन्तु आज वह स्वाधीन है—बिलकुल अपना मालिक आप है, सोलहो आने ख़ुद मुख़्तार है, कोई उसे रोकनेवाला नहीं—कहीं किसी के आगे अपने किसी काम की रत्ती भर भी जवाबदेही करने को नहीं है।

इस एक ही बात को लेकर उसने मन ही मन बहुत कुछ ऊहापोह किया, बहुत-सी कल्पना की इमारत गढ़ी और गिराई; किन्तु एक दिन भी उसने कभी अपने हृदय की निगूढ़ कोठरी का द्वार खोलकर नहीं देखा कि वहाँ क्या है। अगर वह देखती तो देख पाती कि इतने दिन उसने केवल अपने को ही आप धोखा दिया है। उस एकान्त गुप्त कोठरी में दिन-रात दोनों (मा-शोये और बा-थिन) आमने-सामने बैठे रहते हैं—न तो प्रेमालाप करते हैं और न कलह ही करते हैं; केवल चुपचाप बैठे आँखों से आँसू बहा रहे हैं।

अपने, दोनों आदमियों के, जीवन का यह अत्यन्त करुण चित्र उसकी मानस दृष्टि के अगोचर होने के कारण ही इसी बीच में उसके घर में अनेक उत्सव-रात्रियों का निष्फल अभिनय हो गया—पराजय की लज्जा ने उसे धराशायी नहीं कर दिया, उसने सिर नहीं झुकाया।

किन्तु आज का दिन ठीक उसी तरह क्यों नहीं बीत पाया, यही बात यहाँ कहनी है।

जन्मतिथि के उपलक्ष में हर साल उसके यहाँ एक आमोद-आह्लाद और खाने-पीने का जलसा हुआ करता था। आज की बरस-गाँठ का वह आयोजन कुछ अतिरिक्त आडम्बर के साथ हो रहा था। घर के नौकर-चाकरों से लेकर पड़ोसी तक उसमें शामिल हुए थे। केवल मा-शोये ही जैसे उसमें शरीक न थी, उसका किसी काम या बात में मन नहीं लगता था।

आज सबेरे से ही उसे जान पड़ने लगा, सब वृथा है, सब व्यर्थ का श्रम है। न जाने क्यों, इतने दिनों तक मा-शोये को जैसे जान पड़ रहा था कि वह आदमी (बा-थिन) भी दुनिया के और सभी लोगों की तरह है, वह भी मनुष्य है—वह भी ईर्ष्या से अतीत नहीं है। उसके घर में जो यह सब आनन्द-उत्सव का आत्यधिक, अनन्त और नित्य नया आयोजन होता है, इसकी ख़बर क्या बा-थिन की बन्द खिड़की को फोड़कर उस एकान्त कोठरी में जाकर नहीं पहुँचती—उसके काम में बाधा नहीं पहुँचाती?

शायद वह अपनी रङ्ग की कूची हाथ से फेंककर कभी स्थिर होकर बैठ जाता है, कभी अस्थिर द्रुत पग रखता हुआ अपनी कोठरी में टहलने लगता है, कभी निद्रा-विहीन नेत्रों से तप्त शय्या पर करवटें बदलता हुआ ईर्ष्या की आग में जल-भुनकर ख़ाक हुआ करता है और कभी—लेकिन जाने दो इन सब बातों को।

कल्पना-द्वारा मा-शोये इतने दिनों तक एक प्रकार के तीक्ष्ण आनन्द का अनुभव कर रही थी; किन्तु आज अकस्मात् रह-रहकर उसे यही जान पड़ता था—कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं। उसका कोई भी काम बा-थिन के काम में बाधा नहीं डालता। सब मिथ्या है, सब धोखा है। बा-थिन न दूसरे को अपने हाथ में करना चाहता है और न आप ही दूसरे की मुट्ठी में होना चाहता है। वह महा दुर्बल देह अकस्मात् न जाने किस तरह जैसे एकदम पहाड़ की तरह कठिन और अटल हो गई है—कहीं की कोई भी आँधी उसे अब रत्ती भर डिगा नहीं सकती, विचलित नहीं कर सकती।

किन्तु तो भी जन्मतिथि के उत्सव का विराट् आयोजन आडम्बर के साथ ही चल रहा था। पो-थिन आज सर्वत्र सभी कामों में देख पड़ता था। यहाँ तक कि परिचित लोग

आपस में यह काना-फूसी भी कर रहे थे कि एक दिन यही आदमी इस घर का मालिक हो जायगा, और जान पड़ता है, वह दिन बहुत दूर भी नहीं है।

गाँव की नर-नारियों से मा-शोये का महल परिपूर्ण हो गया था—चारों ओर आनन्द-कलरव हो रहा था। केवल जिसको उपलक्ष्य करके यह सब हो रहा था वही आदमी उदास देख पड़ता था, उसी के मुख पर निरानन्द की छाया छाई हुई थी। किन्तु यह निरानन्द की छाया बाहर के किसी आदमी की नज़र में नहीं पड़ी—पड़ी केवल इस घर के दो-चार पुराने दास-दासियों की दृष्टि में। और शायद उन्होंने भी उसे देख लिया, जो अलक्ष्य रह कर सबका सब हाल देखते हैं। केवल वही अन्तर्यामी देखने लगे कि उस लड़की के निकट आज का सब उत्सव और आडम्बर केवल विडम्बना है।

इस जन्मतिथि के दिन हरसाल जो आदमी सबसे पहले गुप्तरूप से मा-शोये के गले में आशीर्वाद-स्वरूप माला पहना देता था, आज न वह आदमी वहाँ था और न वह माला ही थी—उस आशीर्वाद का आज एकान्त अभाव था।

मा-शोये के बाप के समय के वृद्ध ने आकर कहा—बिटिया रानी, आज वे यहाँ क्यों नहीं देख पड़ते?

वृद्ध कुछ समय पहले नौकरी से अवकाश लेकर चला गया था। उसका घर अन्य ग्राम में था, इन दोनों की मन-मैली का हाल उसे नहीं मालूम था। आज आने पर नौकर-चाकरों से उसने सुन पाया था।

मा-शोये ने उद्धत-भाव से कहा—देखने की दरकार हो तो उनके घर जाओ। मेरे यहाँ क्यों?

"अच्छा, वहीं जाता हूँ।" यह कहकर वृद्ध चला गया। मन ही मन कह गया कि केवल अकेले उन्हीं (बा-थिन) को देखने से तो काम नहीं चलेगा—तुम दोनों को एक साथ मैं देखना चाहता हूँ। नहीं तो इतना रास्ता तय करके मेरा यहाँ आना व्यर्थ ही न होगा!

किन्तु बुड्ढे के मन की बात उस नवयुवती से छिपी नहीं रही। तभी से वह एक तरह से चौकन्नी रह कर ही सब कामों में समय बिता रही थी। सहसा एक दबे गले का अस्फुट शब्द सुनकर उसने आँख उठाकर देखा, सामने बा-थिन खड़ा है। उसके सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई किन्तु पल ही भर में अपने को सँभाल[कर] मुँह फेरकर वह अन्यत्र चली गई।

दम भर के बाद बूढ़े ने आकर कहा—बिटिया रा[नी] चाहे जो हो, इस समय वे तुम्हारे मेहमान हैं। [क्या] तुमको उनसे मुँह से बोलना भी न चाहिए? एक बात [भी] न करनी चाहिए?

मा-शोये ने कहा—लेकिन मैंने तो तुमसे उन्हें बु[ला] लाने के लिए नहीं कहा था।

"यही मुझसे अपराध हो गया!" यह कहकर वह वृ[द्ध] चला जा रहा था। मा-शोये ने पुकार कर कहा—अ[न्य] तो मेरे सिवा और भी आदमी तो हैं। क्या वे नहीं [बात] कर सकते—बोल सकते?

वृद्ध ने कहा—बोल क्यों नहीं सकते? लेकिन बा[त] पड़ता है, अब उसकी ज़रूरत न होगी। वे चले गये।

मा-शोये क्षण भर के लिए सन्नाटे में आ गई। उ[से] शायद यह आशा न थी। उसके बाद बोली—मेरा भाग्य! नहीं तो तुम क्या उनसे खा-पीकर जाने के लिए नहीं [कह] सकते थे?

"न, मैं इतना निर्लज्ज नहीं हूँ!" इतना कहकर वृ[द्ध] नाराज़ होकर चला गया।

(८)

इस अपमान से धीर-गंभीर बा-थिन की आँखों [में] आँसू भर आये। किन्तु उसने किसी को दोष नहीं दिया, केवल अपने को बार-बार धिक्कार देकर कहने लगा—यह ठीक ही हुआ। मुझ सरीखे लज्जाहीन के लिए इ[सी] की ज़रूरत थी।

किन्तु अपमान का प्रयोजन इसी जगह—इसी एक रात में ही—समाप्त नहीं हुआ था, इससे भी बड़ा—बहुत अधिक अपमान उसके भाग्य में लिखा था, इस बात [की] उसे ख़बर ही न थी। ख़बर मिली दो-तीन दिन के बाद। और इस तरह मिली कि उस लज्जा को अपने सारे जीव[न] में वह कहाँ रक्खेगा, इसका कुछ ओर-छोर उसे न[हीं] देख पड़ा।

जिस तसवीर का प्रसंग लेकर यह कहानी शुरू हुई है, जातक के भाव को लेकर बनाया गया वह गोपा [का] चित्र इतने दिनों के बाद बनकर तैयार हुआ था। ए[क] महीने से अधिक दिन-रात घोर परिश्रम का फल आज [पूरा] हुआ था। सबेरे का सारा समय उसी की प्रसन्नता में उसने बिताया।

तसवीर राजा के दरबार में जायगी। जो दाम देकर ले जानेवाले थे वे ख़बर पाकर बा-थिन के पास तसवीर लेने को उपस्थित हुए। किन्तु चित्र का आवरण खोला जाने पर वे देखकर चौंक उठे। चित्रकला के बारे में वे अनाड़ी नहीं थे। बहुत देर तक एकटक देखते रहकर अन्त में वे क्रुद्ध स्वर में बोले—यह चित्र मैं राजा को उपहार न दे सकूँगा।

बा-थिन ने भय और विस्मय से हतबुद्धि होकर कहा—क्यों?

उस व्यक्ति ने कहा—क्यों क्या? इस मुख को क्या मैं पहचानता नहीं हूँ? मनुष्य का चेहरा बनाकर देवता की मूर्ति गढ़ने से देवता का अपमान होता है, यह जानते हो? राजा यह बात जान जायँगे तो मेरा मुँह नहीं देखेंगे।

इतना कहकर चित्रकार की विस्मय-विस्फारित व्याकुल दृष्टि की ओर क्षण भर ताकते रहकर मुस्कुराते हुए कहा—ज़रा मन लगाकर देखोगे तो देख पाओगे कि यह कौन है? किसका चेहरा है? यह चित्र बेकार है।

बा-थिन की आँखों के सामने से धीरे-धीरे एक कुहासे का पर्दा-सा हट गया। उस भद्र पुरुष के चले जाने पर भी वह वैसे ही एकटक चित्र की ओर ताकता हुआ खड़ा रहा। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। उसे यह समझने को अब बाक़ी नहीं रह गया कि इतने दिन प्राणान्त परिश्रम करके अपने हृदय के अन्तस्तल से जो सौन्दर्य, जो माधुर्य उसने निकालकर बाहर रक्खा है, पट पर अंकित किया है, देवता के रूप से जिसने उससे दिन रात तुलना की है, वह जातक की गोपा नहीं है, वह उसी की मा-शोये है।

आँसू पोंछकर उसने मन ही मन कहा—भगवन्! मुझे इस तरह विडम्बना में क्यों डाला? मैंने आपके चरणों में क्या अपराध किया था?

(९)

पो थिन ने साहस पाकर एक दिन कहा—तुमको पाने की कामना तो देवता भी करते हैं मा-शोये। मैं तो मनुष्य ही हूँ।

मा-शोये ने अन्यमनस्क की तरह उत्तर दिया—लेकिन जो नहीं करता वह जान पड़ता है देवताओं से भी बड़ा है।

किन्तु इस प्रसंग को उसने और आगे बढ़ने नहीं दिया। कहा—सुना है, दरबार में आपकी बड़ी चलती है। मेरा एक काम आप करा दे सकते हैं—बहुत जल्दी?

पो-थिन ने उत्सुक होकर पूछा—क्या?

मा-शोये—एक आदमी से मुझे बहुत रुपये मिलने हैं; लेकिन वसूल नहीं कर पाती। कोई लिखा-पढ़ी या काग़ज़-पत्र नहीं है। आप रुपये वसूल होने का कुछ उपाय कर दे सकते हैं?

"कर सकता हूँ। लेकिन क्या तुम जानती नहीं हो कि वह राजकर्मचारी कौन है?"—इतना कहकर पो थिन हँसा।

इस हँसी में ही स्पष्ट उत्तर था—अर्थात् यह काम जिसके हाथ में है वह राजकर्मचारी मैं ही हूँ। मा-शोये ने व्यग्रभाव से उसका हाथ पकड़कर कहा—तो फिर इसका कोई उपाय कर दीजिए। आज ही। मैं अब एक दिन की भी और देरी करना नहीं चाहती।

पो-थिन ने गर्दन हिलाकर कहा—अच्छी बात है। ऐसा ही होगा।

यह ऋण हमेशा इतना तुच्छ, इतना असम्भव और एक मज़ाक़ की बात समझा जाता रहा कि इसके बारे में कभी दोनों में से किसी पक्ष ने कुछ भी ख़याल नहीं किया, कुछ भी ध्यान नहीं दिया। किन्तु राजकर्मचारी के मुख से आशा की बात सुनकर मा-शोये का सारा शरीर दम भर में उत्तेजना से उत्तप्त हो उठा। उसने दोनों आँखें प्रदीप्त कर, सारा इतिहास ब्योरेवार बताकर कहा—मैं कुछ भी नहीं छोड़ूँगी—कौड़ी-कौड़ी ले लूँगी। जोंक जैसे जहाँ लगती है, वहाँ का सब रक्त सोख लेती है, ठीक उसी तरह!—आज ही।

इस बारे में पो-थिन से अधिक कहने की कोई आवश्यकता न थी। यह उसकी आशा से भी परे था—इसकी वह आशा ही नहीं कर सकता था। उसने भीतर के आग्रह और आनन्द को किसी तरह सँभालकर, छिपाकर कहा—राजा का आईन कम से कम सात दिन का अवसर चाहता है। इतने समय तक किसी तरह धैर्य धारण करके रहना ही होगा। इसके बाद जिस तरह जी चाहे, जितना जी चाहे, रक्त चूस लेना, मैं आपत्ति नहीं करूँगा।

फा. ७

मा-शोये—अच्छी बात है। लेकिन इस समय आप जाइए।

इतना कहकर वह वहाँ से एक तरह जैसे दौड़ती हुई भाग गई।

उस दुर्बोध लड़की के ऊपर पो-थिन रीझ गया था, उसके लोभ और लालसा की सीमा नहीं थी। इसी से वह अब तक बहुत कुछ अवहेला और अनादर चुपचाप हज़म कर चुका था। आज भी इस अवहेला को उसी तरह पी गया। बल्कि घर लौटते समय रास्ते में आज उसका पुलकित चित्त बारबार यही अपने आप कहने लगा कि अब डर नहीं है—उसकी सफलता का रास्ता साफ़ होने में, निष्कण्टक होने में अब जान पड़ता है, अधिक देर न होगी। विलम्ब न होगा, यह सत्य है। किन्तु कितनी जल्दी और कितना बड़ा विस्मय भगवान् ने उसके भाग्य में लिख रक्खा है, इस बात की कल्पना करना भी आज उसके लिए सम्भव नहीं था।

(१०)

ऋण के दावे की चिट्ठी आई। काग़ज़ हाथ में लिये बा-थिन बड़ी देर तक चुपका बैठा रहा। ठीक इसी बात की आशा अवश्य ही उसने नहीं की थी, लेकिन वह पत्र पाकर उसे आश्चर्य भी नहीं हुआ। समय थोड़ा ही है, शीघ्र ही कुछ-न-कुछ उपाय करना चाहिए।

एक दिन मा-शोये ने क्रोध के आवेश में बा-थिन के पिता के अपव्यय के लिए विद्रूप किया था, ताना मारा था। उसके इस अपराध को बा-थिन भूला नहीं था और न उसने क्षमा ही किया था। इसी से उसने मा-शोये से समय बढ़ाने की भिक्षा माँगकर अपने पूज्य पिता को और भी अपमानित करने की कल्पना भी नहीं की थी। केवल चिन्ता यही थी कि उसका जो कुछ है, सो सब देकर भी पिता को संपूर्ण रूप से ऋणमुक्त कर सकने में उसे संदेह था।

गाँव में ही एक महाजन था। दूसरे दिन सवेरे ही उसके पास जाकर गुप्तरूप से अपना सर्वस्व बेचने का प्रस्ताव बा-थिन ने उससे किया। देखा, महाजन जो कुछ देना चाहता है, वह ऋण से मुक्त होने के लिए काफ़ी है।

बा-थिन सर्वस्व बेंच कर महाजन से रुपये ले कर घर आया। किन्तु एक जन की अकारण हृदयहीनता ने उसके समस्त शरीर और मन के ऊपर अज्ञात रूप से कितना बड़ा आघात किया था, यह उसे तब मालूम हुआ जब उसे ज़ोर का ज्वर आ गया और वह पलँग पर गिर गया।

एक दिन-रात कब किस तरह बीती, इसका उसे कुछ अनुभव भी नहीं हो सका। ज्ञान होने पर वह उठकर बैठ गया। देखा, वही दिन रुपया अदा करने का क़ानूनी मियाद का आख़िरी दिन है।

आज आख़िरी याने सातवाँ दिन था। अपने सुनसान एकान्त कमरे में बैठकर मा-शोये कल्पना का जाल फैला रही थी। उसके अपने अहङ्कार ने हर घड़ी चोट पर चोट खा-खाकर और एक जन के अहङ्कार को एक दम आसमान पर पहुँचा दिया था। इसमें आज मा-शोये को लेश मात्र संदेह नहीं था कि बा-थिन का वह विराट् अहङ्कार आज उसके पैरों पर गिर कर मिट्टी में मिल जायगा।

इसी समय नौकर ने आकर ख़बर दी, नीचे बैठक में बा-थिन बैठा उसकी राह देख रहा है। मा-शोये ने मन ही मन क्रूर हँसी हँसकर कहा—यह तो मैं जानती ही थी। वह स्वयं भी इसी की प्रतीक्षा कर रही थी।

मा-शोये के नीचे आते ही बा-थिन उठकर खड़ा हो गया। किन्तु उसके मुख की ओर देखकर, उसके चेहरे की हालत देखकर, मा-शोये तड़प उठी—उसके कलेजे में जैसे किसी ने भाला भोंक दिया हो। वास्तव में वह ऐसा नहीं चाहती थी, उसे रुपये की ज़रूरत भी नहीं थी, रुपये के लिए उसके मन में रत्ती भर भी लोभ नहीं था; किन्तु उसी रुपये के नाम से कितना बड़ा भयङ्कर अत्याचार किया जा सकता है, यह मा-शोये ने आज अभी देख पाया।

बा-थिन ही पहले बोला। उसने कहा—आज सात दिनों के अन्तिम दिन ही मैं तुम्हारा रुपया ला सका हूँ।

हाय रे, मनुष्य मरते समय भी दर्प को नहीं छोड़ना चाहता। नहीं तो इसके प्रत्युत्तर में मा-शोये के मुख से ऐसी बात कैसे निकल पाई कि उसने क़र्ज़ के कुछ थोड़े से रुपये ही नहीं माँगे थे। वह आज ऋण की पाई पाई चुका लेना चाहती है।

बा-थिन के शुष्क, पीड़ित मुख पर हँसी की ज्योति खेल गई। उसने कहा—ठीक है, मैंने वही किया है, तुम्हारे कुल रुपये ले आया हूँ।

मा-शोये ने आश्चर्य से कहा—सब रुपये ले आये हो? पाया कहाँ?

बा-थिन ने कहा—कल जान जाओगी। उस बक्स में रुपये हैं। किसी से गिनकर रख लेने के लिए कहो।

गाड़ीवान ने फाटक पर से बा-थिन को लक्ष्य करके कहा—और कितनी देर होगी? अगर दिन रहते रहते यहाँ से न चला जायगा तो पेगू में रात को ठहरने के लिए जगह नहीं मिलेगी।

मा-शोये ने गर्दन निकालकर देखा, सड़क पर एक बैलगाड़ी खड़ी है, जिस पर बक्स, बिछौने वग़ैरह सामान लदा हुआ है। पल भर में ही भय से उसका चेहरा उतर गया—ज़र्द पड़ गया। व्याकुल होकर एक साथ ही उसने सैकड़ों प्रश्न कर डाले—पेगू कौन जायगा? गाड़ी किसकी है? इतने रुपये तुमने कहाँ पाये? चुप क्यों हो? तुम्हारा चेहरा इतना सूखा हुआ क्यों है? आँखें लाल क्यों हो रही हैं? कल क्या जानूँगी? आज कहने में क्या तुम्हें—

कहते-कहते आत्म-विस्मृत होकर, पास आकर, मा-शोये ने सहसा बा-थिन का हाथ पकड़ लिया। और, तुरन्त ही हाथ छोड़ देकर उसके मत्थे पर हाथ रखते ही चौंक उठी—बोली—अहो! तुम्हें तो बुख़ार है—बड़े ज़ोर का है! वही तो मैं कह रही थी कि तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यों हो रहा है?

बा-थिन ने अपने को मा-शोये के हाथ से छुड़ाकर शान्त कोमल स्वर में कहा—मैं मंडाले जा रहा हूँ। आज क्या तुम मेरा एक अन्तिम अनुरोध सुनोगी?

मा-शोये ने सिर हिलाकर जताया कि हाँ, वह सुनेगी।

बा-थिन ने ज़रा देर स्थिर रहकर कहा—मेरा अन्तिम अनुरोध यही है कि किसी भले आदमी को देखकर उसके साथ शीघ्र विवाह कर लेना। इस तरह अविवाहित अवस्था में और अधिक दिन न रहना। और एक बात है—

इतना कहकर वह और कुछ देर चुप रहकर और भी कोमल कण्ठ से कहने लगा—और एक बात सदा याद रखने के लिए तुमसे कहता हूँ। यह बात कभी न भूलना कि लज्जा की तरह रूठना भी स्त्रियों का अलङ्कार अवश्य है; लेकिन अधिक होने से—

मा शोये अधीर होकर बीच में ही कह उठी—ये सब बातें और किसी दिन सुनूँगी। पहले यह बतलाओ कि तुमने रुपये कहाँ पाये?

बा-थिन हँसा। वह बोला—यह बात क्यों पूछती हो? मेरी कौन सी बात तुम नहीं जानती हो?

मा-शोये—रुपये कहाँ पाये?

बा-थिन ने लार घूँटकर कुछ इधर-उधर करके अन्त में कहा—पिता जी का ऋण उन्हीं की संपत्ति से अदा हुआ है—नहीं तो मेरे पास और क्या है?

मा-शोये – तुम्हारा फूलों का बाग़?

बा-थिन—वह भी तो पिता जी का है।

मा-शोये—तुम्हारी इतनी किताबें?

बा-थिन—किताबें रखकर अब क्या करूँगा? इसके सिवा वे भी तो उन्हीं की हैं।

मा-शोये ने एक साँस छोड़कर कहा—ख़ैर, जाने दो, अच्छा ही हुआ। अच्छा, ऊपर चलकर लेट रहो, चलो।

बा-थिन—लेकिन आज मुझे जाना है।

मा-शोये—इतने बुख़ार में? यह क्या तुम सचमुच विश्वास करते हो कि मैं इस अवस्था में तुमको जाने दूँगी?

इतना कहकर, पास आकर, उसने फिर बा-थिन का हाथ पकड़ लिया। अबकी बा-थिन ने विस्मय के साथ देखा, मा-शोये का चेहरा पल ही भर में एकदम बदल गया है। उस मुख में विषाद, विद्वेष, लज्जा, अभिमान या रूठने का कुछ भी चिह्न नहीं है। है केवल विराट् स्नेह, और वैसी ही भारी लज्जा। इस मुख ने उसको एकदम मन्त्रमुग्ध-सा कर दिया। वह चुपचाप धीरे धीरे उसके पीछे-पीछे ऊपर शयन-कक्ष में आकर उपस्थित हुआ।

उसे पलँग पर लिटाकर मा-शोये उसके पास बैठ गई। दो सजल तृप्त नेत्र उसके पाण्डुर मुख पर निबद्ध करके बोली—तुम क्या समझते हो कि कुछ रुपये ले आये हो, इतने से ही मेरा ऋण चुक गया? मंडाले की बात छोड़ दो, मेरी आज्ञा के बिना इस कमरे के बाहर अगर तुमने क़दम निकाला तो मैं छत पर से नीचे फाँदकर आत्महत्या कर लूँगी। मुझे तुमने बहुत दुःख दिया है, किन्तु अब और दुःख किसी तरह नहीं सहूँगी—यह मैं तुमसे निश्चितरूप से कहे देती हूँ।

बा-थिन ने कुछ जवाब नहीं दिया। पैरों के पास से चादर खींचकर एक लम्बी साँस लेकर करवट बदलकर वह सो रहा।
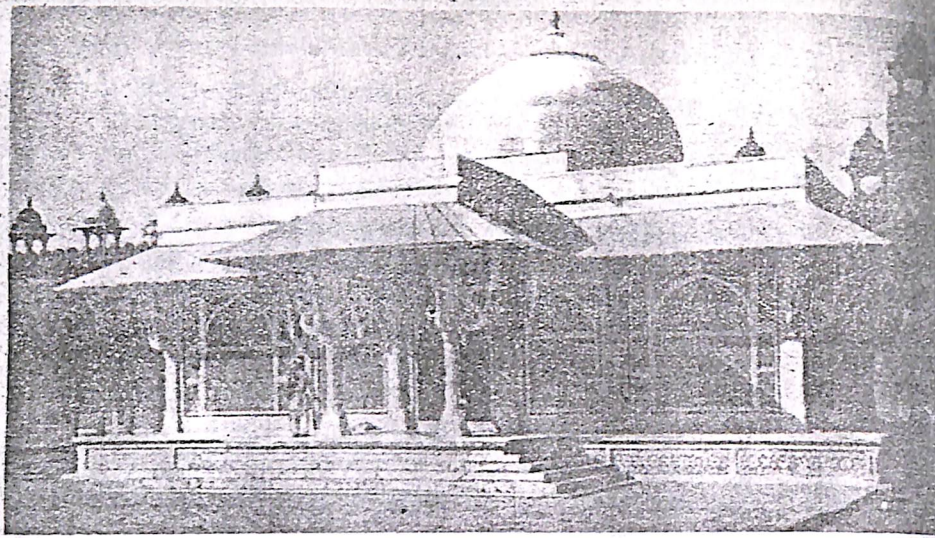
[शेख़ सलीम चिश्ती का मज़ार, फ़तेहपुर सिकरी

कुछ मुसलमान सन्त और उनके मक़बरे

लेखक, श्रीयुत गंगाधर राव

मुसलमानों में ऐसे अनेक संत हो गये हैं जो अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न माने गये हैं और जिनके रौज़ों और क़ब्रों की भावुक लोग यात्रा तथा उनकी पूजा करते हैं। इन संतों के जो चरित मुसलमानों ने लिखे हैं उनसे मालूम होता है कि ये लोग बड़े बड़े चमत्कार दिखलाया करते थे। मरे हुए को जिला देना, भविष्य कथन करना, अभिशाप देना तथा लोगों के मन की बात को जान लेना इनके करिश्मे माने जाते हैं और इसी कारण इन लोगों की जनता में ख़ूब सम्मान-पूजा होती है। यहाँ हम ऐसे ही कुछ सन्तों का तथा उनके रौज़ों का वर्णन करेंगे जो एक लम्बा समय बीत जाने पर भी जनता में आज भी पूजे जा रहे हैं।

भारतीय मुसलमान सन्तों में ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती अपने समय के बड़े भारी महात्मा हो गये हैं। उनकी दरगाह अजमेर में है। प्रतिवर्ष इसकी ज़ियारत को भारत के भिन्न-भिन्न भागों के मुसलमान लाखों की संख्या में एकत्र होते हैं।

ख़्वाजा साहब का जन्म ईरान के सीस्तान में सन् ११४२ में हुआ था। जब वे अफ़ग़ानिस्तान में थे, उन पर इब्राहीम क़न्दोज़ नाम के एक साधु का बड़ा प्रभाव पड़ा था। इसके बाद वे हिसामुद्दीन बोख़ारी के शिष्य हो गये। साधु हो जाने पर वे प्रायः देशाटन ही करते रहे। उनको यात्रा से बड़ा प्रेम था। मक्का, बग़दाद आदि स्थानों की उन्होंने यात्रा की। अन्त में अजमेर आकर ठहर गये। यहाँ पास की एक पहाड़ी की गुफा में रहते थे। मृत्यु के सात वर्ष पहले उन्होंने एक सैयद की पुत्री से विवाह किया था। इससे उनके तीन पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। उनकी मृत्यु ९२ वर्ष की उम्र में सन् १२३६ के मार्च में हुई थी।

ख़्वाजा साहब बड़े त्यागी साधु थे। उनकी रहन-सहन बहुत ही सीधी-सादी थी। कपड़े के नाम से एक लुङ्गी को छोड़कर वे अपने पास कुछ नहीं रखते थे। भोजन भी बिलकुल मामूली करते थे। कभी-कभी तो आठवें दिन सिर्फ़ एक चपाती खाते थे। स्वभाव के बड़े नेक थे। अपने साधुतापूर्ण जीवन के द्वारा उन्होंने आसपास के लोगों को भले प्रकार आकृष्ट कर लिया था। परन्तु जैसी ख्याति उनकी आज है, वैसी उनके जीवनकाल में नहीं थी। वे उसी गुफा में दफ़नाये गये थे जिसमें रहते थे।

उनकी मृत्यु के कोई दो सौ वर्ष बाद दिल्ली के सुल्तान ग़यासुद्दीन ने उनकी क़ब्र पर एक पक्का मक़बरा बनवा दिया। उसी समय से उनकी ओर लोगों की श्रद्धा फिर जाग्रत हुई। सम्राट् अकबर उनके बड़े भक्त थे। सम्राट ने सन् १५७० में उनकी दरगाह में एक सुन्दर मसजिद उनकी यादगार में बनवा दी। सम्राट् उनकी दरगाह की प्रत्येक वर्ष ज़ियारत भी करते थे। कहा जाता है कि अकबर ने एक बार आगरा और फ़तेहपुर सीकरी के बीच में मन्दखोर में शिकार खेलते समय देहातियों को उनकी प्रशंसा के गीत गाते सुना था। उन गीतों का सम्राट् पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे ख़्वाजा साहब के भक्त हो गये।

[मुहम्मद गौस के मक़बरे का भीतरी दृश्य (ग्वालियर)]

ख़्वाजा साहब की दरगाह उनकी महिमा के सर्वथा उपयुक्त बनी है। इसका फ़र्श संगमरमर का है। दीवारों पर बड़ा सुन्दर काम है। छत का भीतरी भाग बहुत सफ़ेद और चिकना है। इसके बीच में उनकी क़ब्र है, जो बहुमूल्य चादर से ढँकी रहती है। क़ब्र के सिरे पर चाँदी का धूप-दान रक्खा रहता है, जिसमें रातदिन सुगन्धित धूप जलती रहती है।

तेरहवीं सदी के दिल्ली के सैयद मौला भी बड़े करामाती फ़क़ीर थे। वे एक मकतब चलाते थे। सभी जाति के ग़रीबों और यात्रियों को उनके यहाँ भोजन और आश्रय मिलता था। वे पूरे त्यागी साधु थे। न उनके स्त्री थी और न सेवा-टहल के लिए ग़ुलाम। वे केवल चावल का ही आहार करते थे। वे किसी से दान-दक्षिणा भी नहीं लेते थे। उल्टा ख़ुद ही ख़ैरात करते रहते थे। उनके ख़र्च को देखकर लोग दंग रहते थे। किसी प्रसिद्ध ख़ानदान को अर्थ-सङ्कट में देखकर दो तीन हज़ार अशर्फ़ियाँ उसे दे डालना उनके लिए मामूली बात थी। ग़रीबों को भोजन देने में वे राजाओं जैसा ही मुक्तहस्त होकर ख़र्च करते रहते थे। ग़रीबों को खिलाने-पिलाने में वे नित्य एक हज़ार मन आटा, पाँच सौ मन मांस और अस्सी मन चीनी ख़र्च करते थे। इनके सिवा यथा मात्रा चावल, तेल, घी आदि दूसरी आवश्यक चीज़ें भी ख़र्च होती थीं। कहा जाता है कि वे कीमियागर थे।
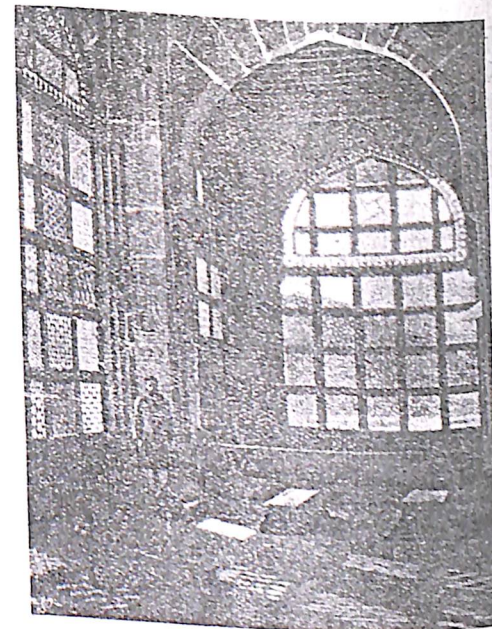
बाद को उन्होंने अपने चेलों को उपाधियाँ और अधिकार के पद देना शुरू किया, और राज्याधिकार हस्तगत कर लेने की भी इच्छा प्रकट की। इस षड्यन्त्र का भेद खुल गया और बादशाह की आज्ञा से वे हाथी से रौंदाकर मार डाले गये। यह घटना सन् १२९१ में हुई थी। परन्तु कुछ लेखक इस घटना को असत्य ठहराते हैं। चाहे जो हो। सैयद मौला वास्तव में ग़रीबों के लिए मौला ही थे।

अहमदाबाद के शेख़ अहमद खत्तूगञ्जबख़्श अपने समय के ऊँचे दर्जे के लोकपूज्य महात्माओं में थे। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहकर परमात्मा की
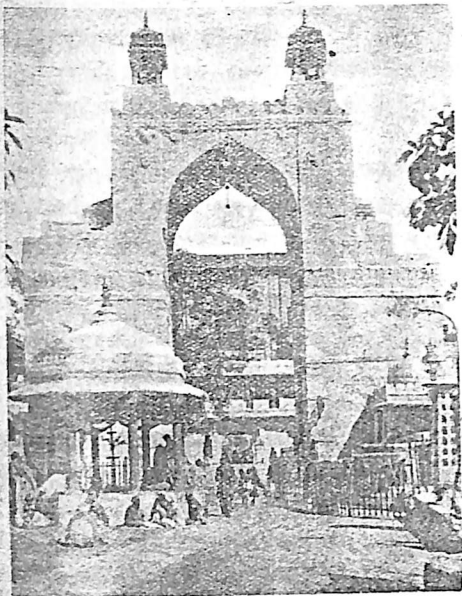
[ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह, अजमेर]

याद में लीन रहे। राजा-नवाबों को ज़रा सी बात पर दुत्कार दिया करते थे।

ये बड़े उग्र तपस्वी साधु थे। ब्रिग साहब ने लिखा है कि इनकी रहन-सहन बहुत ही सीधी-सादी थी। एक बार एक मुसलमान शासक ने इनको धन-दौलत और सुख की सारी सामग्री प्रस्तुत कर देने का बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु इन्होंने उसकी ओर आँख तक नहीं उठाई। इनके चमत्कारों के सम्बन्ध में अनेक कहानियाँ कही जाती हैं। इन्होंने अपना रौज़ा अपनी मृत्यु के पहले बनवाया था। मज़दूरों की मज़दूरी ये नित्य अपने पास से देते थे। कहा जाता है कि आवश्यक धन एक जिन इनकी दरी के नीचे रोज़ रख दिया करता था और वही रक़म ये नित्य ख़र्च किया करते थे।

परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं है। गंजबख़्श ने रौज़ा नहीं बनवाया था। उसका बनना शेख़ जी की मृत्यु के बाद १४४५ ईस्वी में शुरू हुआ था और छः वर्ष में बनकर तैयार हुआ था। अहमदाबाद के तत्कालीन शासक सुलतान अहमद के पुत्र दूसरे मुहम्मद ने उसका निर्माण प्रारम्भ किया था और उसके पुत्र ने उसे पूरा किया था। इसकी कारीगरी भी प्रशंसनीय है तथा इस पर हिन्दू-शिल्पकला का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। अहमदाबाद से कुछ दूर सरखेज में शेख़ अहमद खट्टू गंजबख़्श का उक्त विशाल मक़बरा स्थित है।

इस रौज़े से कुछ दूरी पर एक और रौज़ा है। यह रौज़ा बाबा अलीशेर नाम के एक प्रसिद्ध फ़क़ीर का है। गंजबख़्श से इनकी अधिक महिमा है। लोग अधिक संख्या में इनके रौज़े की यात्रा करते हैं। परन्तु यह रौज़ा छोटा, असुन्दर तथा सफ़ेद पुता हुआ है। इमारत की दृष्टि से भी इसका कोई महत्त्व नहीं है, पर महिमा में बढ़ा-चढ़ा है।

फ़तेहपुर-सीकरी का सलीम चिश्ती शेख़ का रौज़ा एक भारत-प्रसिद्ध इमारत है। इन फ़क़ीर का सम्राट् अकबर अत्यधिक आदर करते थे। इनके पिता बहाउद्दीन शेख़ फ़रीद शकरगंज के पुत्र थे। ये दिल्ली में सन् १४७८ में पैदा हुए थे। सीकरी के पास एक पहाड़ी पर रहा करते थे। सम्राट् अकबर की आर्थिक सहायता से इन्होंने उस पहाड़ी पर एक मसजिद बनवाई। इसके बन जाने के कुछ ही महीनों के बाद ये १५७२ ईसवी में मर गये। ये अपने समय के भारत के बहुत बड़े फ़क़ीर थे और इनकी शिक्षायें आज भी लोग बड़ी श्रद्धा के साथ पढ़ते और मनन करते हैं। कहते हैं कि इन्होंने मक्का की २४ बार यात्रा की थी। यह भी कहा जाता है कि इन्होंने सम्राट् के पुत्र होने की भविष्यवाणी की थी, इसी से अकबर ने अपनी राजधानी बनाने के लिए फ़तेहपुर नगर के निर्माण का निश्चय किया था। फ़तेहपुर सिकरी में इनका रौज़ा आज भी इनके गौरव और माहात्म्य का वहाँ की नीरव शान्ति में उद्घोष करता रहता है।

अकबर के श्रद्धा-भाजन एक और फ़क़ीर शाह सूफ़ी थे। कहा जाता है कि इन्होंने बादशाह को चँदवार का क़िला जीतने में मदद की थी। बादशाह क़िले का घेरा डाले हुए पड़े थे और वह उनके क़ब्ज़े में नहीं आ रहा था। एक रात को बड़ा तूफ़ान आया, जिससे शाही सेना के सभी दीपक बुझ गये, दूर पर नदी की झाबर में शाह सूफ़ी की कुटिया थी। उस तूफ़ान में उनकी कुटिया का चिराग़ नहीं बुझा था। इसकी सूचना पाकर बादशाह को बड़ा विस्मय हुआ। फलतः उनके दरबारी एक दिन शाह सूफ़ी से मिले और क़िले के जीतने के लिए बादशाह को दुआ देने की प्रार्थना की। शाह सूफ़ी ने कह दिया कि अमुक दिन क़िले पर शाही सेना का अधिकार हो जायगा। उनकी इस भविष्यवाणी की ख़बर क़िले के स्वामी को भी मिली। राजा बहुत डर गया और वह उनके शरणागत हुआ। शाह सूफ़ी के प्रभाव से राजा उस क़िले को छोड़कर अपने प्राण बचाकर भाग गया और क़िले पर बादशाह का अधिकार हो गया। बादशाह ने प्रसन्न होकर आधा चंदावर शाह सूफ़ी को दे दिया, जहाँ उनके वंशधर आज भी निवास करते हैं। मृत्यु होने पर शाह सूफ़ी अपनी कुटिया के पास ही दफ़नाये गयें और उनकी क़ब्र पर एक सुन्दर रौज़ा बनाया गया।

ग्वालियर के क़िले के ठीक बाहर मुहम्मद गौस का भारत-प्रसिद्ध रौज़ा स्थित है। इसकी कुछ खिड़कियों की नराशी का काम बहुत उत्कृष्ट माना जाता है। मुहम्मद गौस का जन्म शेख़ बयारज़िद बिस्तमी के वंश में हुआ था। इन्होंने चुनार की पहाड़ियों पर रहकर साधना की थी। १५५८ में ये आगरा गये, पर वहाँ इनका आदर-सम्मान नहीं हुआ। अतएव ये ग्वालियर चले गये। आगरे के इनके एक प्रतिद्वन्द्वी मुसलमान साधु ने इनका विरोध किया। उसका कहना था कि इनका ईश्वर से साक्षात् बातचीत करने का दावा मुसलमान-धर्म के विरुद्ध है।

मुहम्मद गौस बड़े दानी थे। यहाँ तक कि उनका दान स्वधर्मियों तक ही नहीं परिमित था। उनकी मृत्यु आगरा में ८० वर्ष की उम्र में अतीसार के रोग से हुई थी। उनका जेठा पुत्र बादशाह के यहाँ नौकर हो गया था और सबसे छोटा अपने पिता का अनुयायी हुआ। उनकी क़ब्र पर जो रौज़ा स्थित है उसे अकबर ने बनवाया था। यह सौ फ़ुट लम्बा-चौड़ा है। इसके चारों कोनों पर चार बुर्ज हैं। भीतर ४३ फ़ुट लम्बा-चौड़ा हाल है। इसकी दीवारें साढ़े पाँच फ़ुट मोटी हैं।

हैदराबाद-राज्य में मुहम्मद गेसू दराज़ का रौज़ा बहुत ही पूज्य दृष्टि से देखा जाता है। यह रौज़ा गुलबर्गा में है। गद्दी पर बैठने के बाद प्रत्येक निज़ाम इस रौज़े का दर्शन करने को जाते हैं। इस रौज़े की यात्रा दक्षिण के मुसलमान बहुत बड़ी संख्या में करते हैं।

मुहम्मद गेसू दराज़ १५ वीं सदी में दिल्ली से गुलबर्गा आये थे। इनका यहाँ सुलतान फ़िरोज़शाह ने ख़ूब स्वागत-सत्कार किया था। परन्तु बाद को सुलतान की इनके प्रति वैसी श्रद्धा नहीं रह गई। हाँ, उसका भाई अहमद इनकी सेवा में बराबर उपस्थित रहता था, अतएव उस पर इनकी विशेष कृपा हो गई। बाद को सुलतान ने अपने पुत्र हसन के लिए जिसे उसने अपना उत्तराधिकारी नियत किया था, इनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहा। परन्तु इन्होंने इनकार कर दिया और कहा कि राजसिंहासन तो अहमद के पुत्र को ईश्वर ने पहले से ही निर्दिष्ट कर दिया है। इस पर सुलतान नाराज़ हो गया और इनको शहर छोड़ देने का हुक्म दिया। जिस स्थान पर इनका रौज़ा बना है, वहाँ ये कई वर्ष रहे थे और अपने साधु-जीवन के लिए बड़ी कीर्ति प्राप्त की थी। इनके रौज़े की निज़ाम की सरकार की ओर से विशेष रूप से देख-रेख रक्खी जाती है।

मैसूर-राज्य में बाबा बूदन की पहाड़ियों में हज़रत दादा हयात मीर कलंदर का प्रसिद्ध स्थान है। यह एक छोटी गुफा है। यहाँ उपर्युक्त फ़क़ीर की चाँदी से मढ़ी खड़ाऊँ की एक जोड़ी रक्खी है। यहीं वह छोटा चबूतरा है जिस पर बैठकर शाहज़ादी अलक्षित रह कर फ़क़ीरों को रोटियाँ बाँटा करती थी। कहा जाता है कि यह शाहज़ादी जान-पकुसाई की पुत्री थी और इसका नाम मनाजुनी था। इसकी दिल्ली के बादशाह से सगाई हो गई थी। इसकी सुन्दरता की प्रशंसा सुनकर होयशाल नरेश वीर बल्लल ने इसे अपने आदमियों से सोते से उठवा मँगाया। मार्ग में हवा लगने से जब वह जाग पड़ी तब उसे उन लोगों से राजा का उद्देश्य मालूम हुआ। उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि वह राजा की दृष्टि में असुन्दर प्रतीत हो। उसकी प्रार्थना ईश्वर ने सुन ली। जब राजा के सामने पेश की गई तब वह राजा को बदसूरत मालूम पड़ी। अतएव राजा ने उसे दादा हयात मीर कलंदर को दे दिया। कलदर ने उसे अपनी रक्षा में रख लिया और वह अलक्षित रूप में फ़क़ीरों को रोटियाँ बाँटा

करती थी। एक बार एक फ़क़ीर ने रोटी देते समय उसका हाथ पकड़ लिया, जिससे तत्क्षण उस फ़क़ीर का सिर कट कर गिर गया। इस प्रकार इस फ़क़ीर के सम्बन्ध में तरह तरह के चमत्कारों की कथायें कही जाती हैं। इसकी गुफा की यात्रा यहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों करते हैं।

औरंगाबाद तो रौज़ों का घर गिना जाता है। पर यहाँ के सैयद हज़रत बुड़ाबुद्दीन का रौज़ा अधिक प्रसिद्ध है। इनकी १३४४ में मृत्यु हुई थी। ये उत्तर से दक्षिण में हिन्दुओं में इस्लाम का प्रचार करने १३वीं सदी के अन्त में आये थे। कहते हैं कि इनके रौज़े में अपार धन गड़ा हुआ है। इस रौज़े के बनने के कुछ वर्षों के बाद सैयद के शिष्यों के पास धन का अभाव हो गया। कहते हैं कि उनके प्रार्थना करने पर स्वर्गीय सैयद बाबा ने अपने प्रभाव से प्रतिरात को वहाँ चाँदी के वृक्ष रौज़े के दक्षिण ओर उत्पन्न करना शुरू किया। उनके शिष्य उन्हें तोड़ कर और बाज़ार में बेचकर धन एकत्र करने और उससे अपना और रौज़े का ख़र्च मज़े में चलाने लगे। कहते हैं कि चाँदी की यह उत्पत्ति कई वर्ष तक होती रही। बाद को जब उस रौज़े में एक रियासत लगा दी गई तब वृक्षों का उगना बन्द हो गया—उनके स्थान में रात में चाँदी की कलियाँ निकलती थीं, जो दिन होते ही लुप्त हो जाती थीं।

देश के अन्य भागों में भी मुसलमान संतों के इस तरह के प्रसिद्ध प्रसिद्ध रौज़े हैं, जिनकी भावुक लोग यात्रा करते हैं और अपनी मुराद भर पाते हैं। यद्यपि कुछ मुसलमान इस प्रथा का विरोध भी करते हैं, तथापि इनकी महिमा आज भी पहले जैसी ही बनी हुई है।

कवि !

लेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल दीक्षित 'निर्गुण'

१

कवि, अरे कहीं से लाकर,
वह प्रखर-अमृत बरसाओ।
युग युग के मृत-जीवन में,
नव-जीवन तुम भर जाओ!

२

यह पाप-शाप की ज्वाला,
कवि, देख न तुम डर जाओ।
जलने न जगत यह पावे,
कवि, तुम चाहे जल जाओ!

३

कवि, अरे खोल लो बंधन,
यह सुन लो, यदि सुन पाओ।
जग तुमको खोज रहा है,
तुम जग में मत खो जाओ।

४

देखो, कह रहीं दिशायें,
कवि, मेरी सुनते जाओ!
देखो, पृथ्वी चिल्लाती,
कवि आओ, आओ, आओ!

५

कवि, इस जलती ज्वाला में,
तुम वह आँधी बन आओ।
सब पाप-शाप जल जाये,
फिर नव नव रस बरसाओ।

हील्ली

मूललेखक, श्रीयुत उमाशंकर जोशी

अनुवादक, श्री काशीनाथ त्रिवेदी

(१)

गाँव के दक्खिन में एक जीर्ण-शीर्ण मंदिर था। मंदिर के चौतरे के पास दूर के स्टेशन तक जानेवाले यात्री सुबह-शाम लारी की बाट जोहते खड़े रहते। शाम को जब वह नये यात्रियों को लेकर लौटती तब इस चौतरे के पास कुछ देर ठहरकर रात में पास के एक बड़े गाँव में ठहरती। मंदिर के इस चौतरे से लारीवालों को बहुत-से यात्री मिल जाते थे। और जब दूर-पास से आनेवाले यात्री स्टेशन से मोटरलारी में बैठकर इस मंदिर के पास आते और उसे रोकने को हाथ का इशारा करते तब मोटर-ड्राइवर को भी अचम्भा-सा होता! किन्तु बाद में धीरे-धीरे उसकी यह आदत-सी हो गई कि मोटर में कोई यात्री हो या न हो, मंदिर के चौतरे के पास कुछ देर के लिए उसे ठहराये बिना वह आगे न बढ़ता।

और सच तो यह था कि मोटर के इस स्टैंड पर, आते और जाते, शाम और सबेरे, मोटरवालों को एक यात्री के दर्शन तो हमेशा हो ही जाया करते थे। यह यात्री थी एक नन्हीं-सी लड़की, जो दोनों वक्त मोटर के इन्तज़ार में उस चौतरे से सटी हुई खड़ी रहती थी। इसमें कोई शक नहीं कि लड़की मोटर में कभी बैठी न थी। फिर भी मोटर के लिए उसके मन में एक ऐसी गहरी प्रीति थी कि सुबह-शाम वह वहीं खड़ी उसकी प्रतीक्षा किया करती। जब मोटर के आने का समय होता तब किसी अज्ञात नियम से, यात्रियों से भी पहले, मोटर के हॉर्न की आवाज़ इस बालिका को सुनाई पड़ जाती। बालिका आकर चौतरे के पास नीचे खड़ी रहती और उसके कोने पर अपना माथा टेककर कान लगा देती। और जब वह 'कुछ' सुन लेती तब उसका मन एकाएक नाच उठता और वह पुकार उठती—"वह आई! वह आई!!"

एक बार जब वह बालिका इस तरह खड़ी ख़ुशी के मारे नाच रही थी कि मंदिर के टूटे-फूटे—बेमरम्मत—द्वार के अन्दर से शरीर में भभूत रमाये एक बूढ़े व्यक्ति ने मीठी, काँपती हुई आवाज़ में उसे पुकारा—"बेटा हील्ली, इधर आओ!"

"क्या है बाबा?" कहती हुई हील्ली दौड़कर मंदिर में चली गई।

"सुनो बेटी! तुमने वे जामुनें कहाँ रक्खी हैं? लाकर इन्हें दे दो।" पास में खड़े हुए एक नौजवान की ओर इशारा करते हुए बाबा जी ने हील्ली को जामुन ले आने की आज्ञा दी। हील्ली तीर की तरह जामुन लाने अन्दर चली गई।

"मगर बाबा जी, बम्बई में जामुनों की क्या कमी है?" बम्बई जानेवाले नौजवान ने प्रणाम करते हुए कहा।

"मैं जानता हूँ, जामुन की बम्बई में कोई कमी नहीं। लेकिन तुम्हारे भाई की लड़की को अम्बा जी की जामुन बहुत पसन्द हैं। समझे?"

"जी हाँ, समझा। अम्बा जी की दी हुई तो वह है ही। वर्ना थी ही कहाँ?" युवक ने भक्ति-भाव से अम्बा जी की मूर्ति को प्रणाम किया। इतने में हील्ली पलाश के एक हरे दोने में जामुन भरकर ले आई और दोना उस तरुण के हाथ में रख दिया। युवक दोना लेकर चल दिया। उसी समय बम्बई जानेवाली दो-तीन स्त्रियों ने दूर से अम्बा माता को प्रणाम किया और बाबा जी के पैर छुए। बाबा जी ने भी अपने दोनों हाथ उठाकर उन्हें आशीर्वाद दिया—"सबका भला हो।"

"बाबा जी, हील्ली को सँभालना, अच्छा !" एक स्त्री ने कहा। हील्ली इसके बहुत पहले उस मोटर-स्टैंड पर पहुँच चुकी थी। दूसरी स्त्री बोली—

"बाबा, हील्ली को इधर-उधर भटकने मत देना। आज-कल यह मोटर-लारी जो है, बच्चों का काल बनकर आने लगी है।"

"मैया ! प्यारा राम-रमैया सबका रखवाला है !" चिमटे से धूनी का एक धधकता अंगारा उठाकर चिलम पर रखते हुए बाबा जी ने कहा—"भाई, राम सबका रखवाला है !.........आया समझ में ?"

जाते-जाते एक तीसरी स्त्री बोली—"बेचारी बिना मा की लड़की है—पर है बड़ी सुकुमार ! बड़ी सुघड़ !"

"तुम सब उसकी मा ही न हो !"

"हैं...हैं...हैं...बाबा जी, आप यह क्या कहते हैं ?"

और फिर एक बार प्रणाम करके बाहर मोटर के भोंपू की आवाज़ सुन वे सब वहाँ से झटपट चल दीं।

"अच्छा,......तो तुम्हें मा क्यों कहूँ ?......मा तो मैं ख़ुद ही हूँ......आया समझ में ?" आस-पास कोई सुननेवाला न होने पर भी उन्होंने अपनी हमेशा की आदत से एक बार फिर मन में गुनगुनाते हुए कहा—निश्चयपूर्वक कहा—"मा तो मैं ख़ुद ही हूँ......आया समझ में ?"

लेकिन जब हील्ली पूछती, 'मेरी मा कहाँ है' तब बाबा जी उसे एक अजीब-सा जवाब देते—"हील्ली, तेरी कोई मा नहीं है......अथवा तू ही तेरी मा है ! समझी ?"

ऐसे समय अगर गाँव का कोई आदमी धूनी के पास बैठा होता तो सम्भव न था कि बाबा जी की इस बात को सुनकर वह ज़ोर से हँस न पड़ता ? किन्तु हील्ली के जन्म को उसकी मृत्यु से दूर रखने का काम बाबा जी का ही था। ठेठ बचपन से एक गृहस्थ की-सी चिन्ता के साथ उन्होंने उसको पाला-पोसा था। गाँववालों ने उसे उस समय बाबा जी की गोद में देखा था जब वह केवल दूध पीती थी। मंदिर में बाबा जी ने उसके लिए एक बकरी पाली थी। बकरी के लिए घास-पात भी वे स्वयं लाते थे। बकरी बर्फ़-सी सफ़ेद थी। दोपहर को जब वह बाबा जी की चौकी के नीचे लेटकर आराम करती तब मंदिर में प्रवेश करनेवाले का ध्यान पहले उसी की ओर जाता। बाबा जी ने एक बार उसका नाम 'हीरली' रख दिया था। संगमरमर की-सी सजीव, सुकोमल और सुंदर राशि-सी हीरली जब अपनी छोटी, चमकदार शांत आँखों को चमकाती तब उसकी शोभा देखते ही बनती थी। इस शोभा के कारण ही कदाचित् बाबा जी ने उसकी आँखों में हीरे के दर्शन किये थे, और उसका नाम 'हीरली' रख दिया था। उस हीरली का दूध पी-पीकर ही वह बालिका बड़ी थी और हीरली की 'बें-बें' की नक़ल करते-करते ही वह बोलना सीख गई थी। अपनी तोतली बोली में वह हीरली को बैं...एँ...एँ की-सी फटी हुई काँपती-सी आवाज़ में ही...ल्...ल्...ल्...लीं...कहकर पुकारा करती। इस प्रकार बालिका को पाल-पोसकर वह बकरी एक दिन मर गई और बाबा जी ने फिर दूसरी बकरी न पाली। अब वे गाँव में जाकर जब-तब उस बालिका के लिए थोड़ा-बहुत दूध माँग लाते और कभी कभी तो आटे की पतली रबड़ी-सी पकाकर उसी से उसकी भूख बुझाते। हीरली के गुज़र जाने के बाद भी लड़की द्वार पर आकर अपनी आदत के अनुसार 'हील्ली' !—'हील्ली' ! पुकारा करती और उसकी 'ओ ! ही...ल्...ल्...ल्...ली !' की वह पुकार उठकर हवा में एक प्रकार की कँपकँपी-सी पैदा कर देती।

फिर तो बाबा जी ने उस लड़की का नाम ही 'हील्ली' रख दिया। उसे 'हील्ली' कहते सुनकर गाँववाले भी बालिका को हील्ली कहते और 'हील्ली...बैं...एँ . एँ' कहकर चिढ़ाने लगे। गाँव में कइयों के इकलौते बालक एकाएक मर जाते, और दूसरे भी बहुतेरे बालक बड़ों की इस दुनिया से, बहुत-कुछ सार-सँभाल और लाड़-दुलार के बावजूद, अचानक कूच कर जाते। लेकिन एक हील्ली थी जो एकदम अनाथ होते हुए भी बाबा जी की सार-सँभाल के कारण जी गई थी। जब उसे जिलाने में सक्रिय सहायता देने का समय था तब तो गाँववालों ने उसके प्रति पूरी-पूरी उदासीनता दिखलाई थी। लेकिन जब वह एक बार जी गई तब गाँववालों का भी यह फ़र्ज़ हो गया कि बाबा जी के साथ वे भी उसके भरण-पोषण का प्रबन्ध करें। दूसरी कोई गति न थी। कभी कोई श्रद्धालु स्त्री बाबा जी की सेवा में पहुँचकर अपने बालक के लिए चिरजीवी होने का आशीर्वाद ले जाती और हील्ली

को एक छोटी-सी पचरंगी ओढ़नी ओढ़ा जाती। और फिर तो धीरे धीरे गाँव भर में लोगों का यह ख़याल हो गया कि हील्ली की तरह ही उनके बच्चे भी पल-पुलकर बड़े हो सकते हैं; सूने घर बच्चों से भर सकते हैं; जैसे हील्ली बड़ी और खेली-कूदी, वैसे ही वे भी खेल-कूद सकते हैं—बाबा जी के आशीर्वाद से ! इस धारणा के दृढ़ हो जाने से हील्ली बड़े लाभ में रहने लगी। अकसर लोग हील्ली के लिए कुछ न कुछ भेंट लाते और अकसर ही बाबा जी उनको लेने से इनकार कर देते और बदले में अपनी ओर से हील्ली के लिए चुनकर लाये हुए बेर, जामुन या और कोई फल उन्हें देकर धीरे से कहते—"सबका भला हो !.........आया समझ में ?"

(२)

जाड़ों में जब सूरज जल्दी-जल्दी डूबने लगता था, बाबा जी अपनी धूनी को ज़रा ज़्यादा जगा दिया करते और पास के कोने में हील्ली को सुलाकर आप आसन पर बैठ जाते और रह-रहकर दरवाज़े की ओर देखा करते। इतने में काम से छुट्टी पाकर और ब्यालू करके जगराम बढ़ई सिर पर लकड़ी का एक बड़ा-सा गट्ठर लादे मंदिर में आ पहुँचता। कभी-कभी तो वह दिन में अपनी चीरी हुई लकड़ी के छिलके और चीपियों का गट्ठड़ बाँध लाता, और उस रात बाबा जी की धूनी देर तक धधकती रहती। गाँव के दो नौ-जवान पाटीदार खीमजी और बोंदर भी अकसर बाबा जी के पास बैठने आते और साधारण दर्शनार्थियों के चले जाने पर भी, बड़ी रात तक, बैठे-बैठे गप-शप लड़ाया करते। इन दोनों नौ-जवानों में बोंदर ज़रा तेज़मिज़ाज़ था; फिर भी बाबा जी के साथ उसकी ख़ूब पटती थी। कभी कभी जब बोंदर का पारा बहुत चढ़ जाता तब जगराम उसे बात की बात में उतार देता। बाबा जी के साथ उसकी ख़ासी अच्छी दोस्ती थी ही, इसलिए वह उन्हें भी समझा लेता और कहता—"महाराज ! बोंदर कहते समय चाहे जो कह डाले और बक जाय, मगर मन उसका मैला नहीं है !"

रात का वक़्त था। सब बैठे बातें कर रहे थे। धूनी में धू-धू करके एक लकड़ी जल रही थी ! आग की सुनहरी लपटें मानो सबके ललाट पर सोने का लेप कर रही थीं। पास ही कोने में लेटी हुई हील्ली हवा से फरफराती हुई लपटों को अपनी नन्हीं-सी जीभ निकाले ताक रही थी। इतने में जगराम बढ़ई बोला—

"बोंदर, तुम तो कहते हो, लेकिन इसमें बाबा जी कर ही क्या सकते हैं ?"

"क्यों नहीं कर सकते ?" खीम जी ने बोंदर का पक्ष लेकर कहा—"नहीं-नहीं, तुम्हीं कहो; भला मैं क्या करूँ।" आशीर्वाद की चोरी तो मैं कर नहीं सकता—हर्गिज़ नहीं कर सकता; किसी हालत में नहीं कर सकता। तुम कुछ ही क्यों न कहो .....आया समझ में ?" कहते-कहते बाबा जी ने जगराम से चिलम लेकर ज़ोर का एक दम खींचा और 'ले यह तुझसी ही 'कड़का' है', कह कर चिलम बोंदर के हाथ में थमा दी।

खीम जी ने कहा—"तुम आँखें खोलकर देखो तो। आँख मूँदने से काम नहीं चलेगा। मैं कहता हूँ, बाबा जी के आशीर्वाद का ही यह प्रताप है कि आज गाँव में एक भी घर ऐसा नहीं, जो सूना हो, जहाँ पालना न झूलता हो !"

"तो यह ख़ुश होने की बात है या........?"

जगराम को बीच में ही रोककर बोंदर बोल उठा—"जब गाँव बच्चों से ख़ुश है तब गाँव में रहते हुए इस मुट्ठी भर मांस की चिंता बाबा जी के सिर क्यों होनी चाहिए ?" उसने हील्ली की ओर देखकर इशारा किया।

अपनी तनी हुई सफ़ेद भौंहों को शिथिल करते हुए बाबा जी ने कहा—"सो तो ठीक है। अपना काम मैं कर सकता हूँ। लेकिन मेरा मतलब यह है कि जब मैं मरघट में रहता था तब तुम्हीं लोग कहते थे कि मेरे वहाँ रहने से गाँव में लोग बहुत मरते हैं। और अब यहाँ रहता हूँ तब कहते हो, बहुत पैदा होते हैं ! आख़िर मैं करूँ क्या ? मैं तो अपना आशीर्वाद सबको देता रहता हूँ।"

"नहीं, नहीं। आख़िर मरते कितने थे ? वही दो-चार, जिनके पैर क़ब्र में लटक रहे थे ! बाक़ी इन दो बरसों में—जब से हील्ली जी गई है—गाँव में कई बालक जन्मे हैं, ओह ! ढेरों बालक !" बोंदर बाबा जी के सामने दिल खोलकर बातें कर लेता था।

'सो तो कौन जाने ? जो मरते थे, सो सीधे मरघट में आते थे; मुझे भी उनका पता रहता था। लेकिन पैदा होनेवाले सबके सब अम्बा जी के इस मन्दिर में नहीं आते ! मैं उन्हें कैसे जानूँ ? यहाँ मन्दिर के अन्दर आकर

खिड़की की राह कोई बच्चों को दिखा दिया करे—अम्बा मैया की मेहर समझकर—तो हमको कुछ पता रहे...... आया समझ में ?"

सब ठठाकर हँस पड़े—"इसमें समझने की क्या बात है ?

'बाबा जी तो अजीब दीवाने हैं !' कहकर लोग उनकी ऐसी बातों पर हँस देते थे।

एक दिन बोंदर ने हठपूर्वक कहा—"बाबा जी, और चाहे जो हो, इसमें शक नहीं कि इस हील्ली को रखकर आपने किसी बनिये ब्राह्मण की लाज रख ली है। सम्भव है, किसी दिन मन्दिर के चौतरे पर कोई किसी विधवा के नवजात बालक को छोड़ गया हो या हो सकता है कि आप सब कुछ जानते हुए भी अनजान बने हैं और किसी को कुछ बतलाते नहीं हैं।"

बाबा जी ने आँखें मूँद लीं; आँखों के कानवाले कोनों पर मुस्कुराहट के कारण झुर्रियाँ पड़ गईं; वे दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—"और यह भी तो हो सकता है कि कोई पटेलन किसी की रखनी बनकर जा रही हो और जाने से पहले अपने बच्चे को यहाँ छोड़ती गई हो ?"

बोंदर को बाबा जी का यह उत्तर बिलकुल न रुचा और फिर न तो कभी उसने, न मंडल के किसी अन्य सदस्य ने ही इस सवाल को उठाया। हाँ, कभी-कभी चिढ़कर उनमें से कोई इतना ज़रूर कह दिया करता था—"अब इस साठ बरस की उम्र में बाबा जी को क्या पड़ी है कि वे संसारियों की इतनी चिन्ता करते बैठें? और उत्तर में बाबा जी भी कभी-कभी कह दिया करते—"अरे भाई, एक बच्चा सुखी तो सब बच्चे सुखी; सबका भला हो !...... आया समझ में ?"

(३)

हील्ली बचपन से ही गाँव के बालकों में हिल-मिल गई थी। उन बालकों की मातायें भी अक्सर हील्ली को बहुत दुलराया करती थीं। वैसे भी हील्ली किसी को बुरी न लगती थी। उसके रूप-गुण और शील-स्वभाव के कारण सभी उस पर ममता करते थे। जब गाँव में कोई उसे कुछ देता तब बिना बाबा जी की आज्ञा के वह उसमें से एक कण भी नहीं उठाती थी। सुबह जब बाबा जी गाँव में भीख माँगने जाते, हील्ली भी उनके साथ जाती। जब वह कुछ सयानी हो गई तब बाबा जी की बीमारी में अकेली ही भीख माँगने जाने लगी। इस पर एक दिन बाबा जी ने उसे टोका और कहा—"पगली, बाबा मैं हूँ, भिखारी मैं हूँ। हील्ली ! तू भिखारिन नहीं है !" जब बाबा जी रसोई बनाते तब कभी-कभी हील्ली उनसे कह उठती—"बाबा, मेरे लिए दो बड़ी-बड़ी रोटियाँ बनाना भला। मैं उन्हें खाकर बड़ी हो जाऊँगी और तुम्हारे लिए खाना पका दिया करूँगी।" वह पनघट पर जाती और ख़ुशी ख़ुशी पानी भर लाती। उसे हमेशा इस बात का अफ़सोस ही रहता कि गाँव में रहनेवाली उसकी सखी-सहेलियाँ अपने घरों में जो-जो काम करती हैं वे सब उसे करने को नहीं मिलते।

और काम कितने ही क्यों न हों, सुबह-शाम, मोटर के समय तो, हील्ली मन्दिर के चौतरे पर ही खड़ी मिलती। गाँव की कुछ और लड़कियाँ भी जो उसकी हमजोली थीं, वहाँ आया करतीं। किसी की मा बम्बई जाती तो किसी की मौसी; किसी की मामी आनेवाली होती तो किसी की चाची। किन्तु हील्ली को कभी इस बात का पता न चला कि उसका कौन कहाँ से आनेवाला है।

एक दिन की बात है। उसकी एक सखी चंचल की फूफी बम्बई से आनेवाली थी। साँझ का समय था। हील्ली को मोटर के स्टैंड पर देखकर चंचल ने पूछा—"तेरा कौन आनेवाला है ? तू यहाँ क्यों खड़ी है ?"

"तू अपनी तो कह। तू क्यों आई है ?"

"मेरी मा, अरे नहीं, फूफी आनेवाली हैं। तेरे ?"

"मेरी भी मा आनेवाली हैं।"

मोटर-लारी आई और फूफी की अँगुली पकड़कर चंचल उनके साथ घर चली गई। इधर हील्ली अपना मुँह सहज खुला रखकर उस दौड़ती हुई मोटर-लारी को एकटक देखती रही। वह सोच रही थी—मोटर में वह जो औरत बैठी है उसकी साड़ी का रंग मेरी ओढ़नी के रंग जैसा ही है। हो-न-हो, वही मेरी मा है ! लेकिन जब मोटर खड़ी रहे तब न वह अन्दर जाकर अपने नन्हे-नन्हे हाथों से उसकी आँखें मींचे ? पर लारी तो एक मिनट के लिए भी न ठहरी ! और ठहरती ही क्यों ?

'बाबा जी, अम्मा कहाँ हैं ?" एक दिन हील्ली हठ पकड़ गई और पूछने लगी—"बताओ, अम्मा कहाँ है ?" "बोलो, बोलो"—'मेरी मा......मा !"

बाबा जी हँस दिये—गुस्से से या यों ही, कोई समझ न सका। बोले—"माँ मोटर-लारी में है। जा, खड़ी रह।" वे हील्ली की आदत से वाक़िफ़ थे। गाँव के अन्दर भी अपनी सभी सखी-सहेलियों की माताओं में उसने अपनी मा को खोज डाला। किंतु कहीं पता न चला। फिर तो उसे यह विश्वास हो गया कि मोटर से आने-जानेवालों में ही उसकी मा का पता लग सकता है; और वह रोज़ कहीं क्यों न हो, सुबह-शाम, बिला नाग़ा, मोटर-स्टैंड पर आकर खड़ी रहने लगी। अपनी छोटी सहेलियों के साथ किसी के खेत पर गई हो या किसी के घर बैठी मंदिर का धान कूट रही हो; कहीं किसी के घर खेल रही हो या जंगल में बेर-जामुन बीनने गई हो; कहीं भी क्यों न हो; सुबह-शाम, मोटर के समय पर तो वह अपनी जगह आकर खड़ी हो ही जाती। एक दिन की बात है। गाँव की एक सेठानी ने बड़ी मुश्किल से उसे अपनी चक्की से चने दल लेने की इजाज़त दी। वह दल रही थी कि इतने में कहीं से उसे मोटर का भोंपू सुनाई पड़ा।

"सेठानी काकी, इसे यों ही रहने देना भला। मैं अभी आई !"

"क्यों ? मोटर से तुझे ऐसा क्या काम है ?" सेठानी ने पूछा।

"काम ? यह तुम क्या पूछती हो ? अरे, मेरी मा आये और मुझे वहाँ न पाकर कहीं आगे चली जाय तो ?

"ओह हो ! बड़ी आई है मावाली !"

जब लौटकर आई तब देखा, चक्की को घर में बंद करके और बाहर ताला डालकर सेठानी कहीं चली गई है। आँगन में पड़ी हुई उसकी दाल पर एक गाय बेफ़िक्री से मुँह चला रही है। अलबत्ते, ग़नीमत थी कि चने की टोकनी उसे आले में रक्खी हुई मिली। "परवा नहीं" कहकर हील्ली ने टोकनी उठाई और लेकर घर चली आई। उसने सोचा, कुछ ही क्यों न हो, मोटर को मैं कैसे छोड़ूँ ? मानो मोटर ही उसकी मा हो !

मंदिर के अंदर कभी-कभी हील्ली 'मा-मा' की ऐसी पुकार मचा देती कि बाबा जी से मिलने आनेवाले लोग व्याकुल हो उठते और कहते—"बाबा जी ! इस छोकरी को अब किसी के साथ ब्याह दो; इसके लिए कोई घर ढूँढ़ दो !"

"ले जाओ; तुम्हीं ले जाओ। इसे अपनी लड़की समझकर रक्खो। आया समझ में ?"

"मैं ? महाराज, मैं तो ग़रीब आदमी ठहरा। मैं इसे लेकर क्या करूँ ? मैं तो आपके बुढ़ापे को देखकर कहता हूँ कि अब इसके लिए किसी भले आदमी का घर ढूँढ़ दो !"

"सब साले......कुछ नहीं, ... कुछ नहीं। ...आया समझ में ?" बाबा जी कहते कहते रुक जाते।

"क्या है, महाराज ?" कोई नम्रतापूर्वक पूछ बैठता।

"होगा क्या ? मैं कहता हूँ, कहने को सब मुझी से कहते हैं, ऐसा करो, वैसा करो ! लेकिन कोई इस बात के लिए तैयार नहीं दीखता कि इसे अपनी लड़की समझकर रक्खे। आया समझ में ?"

एक रात बोंदर ने कहा—"बाबा जी, न मालूम किस बनिये-ब्राह्मण की यह औलाद है। बताइए हम पटेल होकर इसे अपने यहाँ कैसे रक्खें ? हाँ, यहाँ इसके खाने-पीने में कोई बाधा न पहुँचने देंगे।"

शुरू का व्यङ्ग और बाद की दया, दोनों, बाबा जी को शूल-से चुभे। उन्होंने चिमटा उठाया और उसे धूनी पर फटकारते हुए बोले—"यही तो बात है !" और फिर ग़म खाकर कहने लगे—"अच्छी बात है। जैसी आई है, वैसी ही चली जायगी ......। आया समझ में ?"

कभी-कभी हील्ली भी इन बातों को सुन पाती थी। किंतु इनमें कहीं भी उसे मा-बाप की जीती-जागती 'हाज़िर नाज़िर, चीज़ का पता न चलता ! जब वह बाबा जी को बहुत सताती, ख़ूब परेशान करती, तब बाबा जी उसे झूठमूठ को चिढ़ाते-फुसलाते और फिर धीरे-धीरे गुस्सा भी होने लगते। और जब गुस्सा होते तब हील्ली का पीछा करके उसे दरवाज़े से बाहर खदेड़ आते। कभी उसे 'पगली' और 'गँवार' तक कह बैठते।

आज हील्ली की एक सखी मैना की मा बंबई से आनेवाली थी। हील्ली और मैना दोनों मोटर के 'टैम' से बहुत पहले चौतरे पर आकर खड़ी हो गई थीं।

"आज तो ज़रूर ही मेरी मा आवेगी।"

"जा, जा। तू तो रोज़ ही ऐसा कहा करती है।" मैना ने मुँह बिचकाकर कहा।

"अच्छा तो देख लेना !"

"हाँ, हाँ, देखूँगी। और तू भी देखना कि मा मेरी आती है या तेरी !"

"याद रख मैना ! अगर मेरी मा आई तो मैं उससे तुझे एक भी चीज़ न दिलाऊँगी। समझी ?" कह कर हील्ली खिलखिला उठी।

"ऐसी बात है ! नहीं दिलवायेगी ? तो देख लेना, तेरी मा आज आवेगी ही नहीं !"

"आज नहीं तो कल आवेगी। ज़रूर आवेगी।"

"कल दोपहर को भी नहीं आवेगी।" मैना ने तुनक कर कहा।

"दोपहर को नहीं तो सुबह आवेगी।" हील्ली ने हिम्मत के साथ कहा।

"मैं कहती हूँ, पगली, वह सुबह भी नहीं आवेगी !"

"सुबह नहीं तो दोपहर को आवेगी। पगली ! तू पगली, तू पगली !" और फिर दोनों हाथ नचा-नचाकर इस तरह चीख़ने-चिल्लाने लगीं, मानो झगड़ रही हों !

(४)

शाम को अँधेरा छा जाने के बाद मैना अपनी मा का आँचल पकड़े मन्दिर में आई और मा का इशारा पाकर पहले अम्मा जी के और बाद में बाबा जी के पाँव लगी। अम्मा मैया का आशीर्वाद तो मैना को उसके जन्म से पहले ही मिल चुका था। अब, उसकी मा ने अपने पास की एक छोटी-सी गठरी खोली, हील्ली को अपने निकट बुलाया और उसके हाथों में नन्हीं-नन्हीं पचरङ्गी चूड़ियाँ पहनाने लगी। मैना एकदम बिगड़कर बोली—मा, "तुम इसे चूड़ियाँ क्यों पहनाती हो ? अगर इसी की मा आज आती तो हील्ली मुझे इस तरह चूड़ियाँ कभी न पहनाने देती। ले लो, ये सब चूड़ियाँ, वापस ले लो।" और गठरी फैलाकर बोली—"ओ हो ! तो आप हील्लीबाई के लिए ओढ़नी भी लाई हैं ! अगर इसकी मा आती तो यह उसे मेरे माथे पर टीका तक न लगाने देती। फिर तुम इसे ओढ़नी क्यों पहनाती हो ?" कहकर उसने हील्ली को अँगूठा दिखाया और अपनी मा को एक ओर खींचने लगी।

"पहनाने दे, पगली कहीं की ! हठ करेगी तो अम्मा मैया तुझसे नाराज़ हो जायँगी। हठ नहीं करते, बेटा !"

"मैं कहती हूँ, तुम ये चूड़ियाँ और ओढ़नी घर ले चलो। ले चलती हो या नहीं ?"

"लेकिन ये तो हील्ली की हैं। अपनी थोड़े ही हैं, जो घर ले चलूँ ?"

"वाह रे ! हील्ली की कहाँ से आई ? ले चलो, घर ले चलो। मैं कहती हूँ !"

आख़िर जब मैना बहुत ही परेशान करने लगी तब मा ने कहा—"तुम्हें मालूम नहीं। ये तो हील्ली की मा ने इसके लिए बम्बई से भेजी हैं। अब तो इन्हें यहीं छोड़ जायँगी न ?"

हील्ली जो अब तक चुप बैठी थी, एकाएक उछल पड़ी—"ले, और लेगी ? तेरे पास ऐसी ओढ़नी है भी ? मा ने चूड़ियाँ कैसी मज़े की भेजी हैं !" और मैना की मा से तो उसने न जाने कितने सवाल पूछ डाले—"मा कब आयेंगी ?.........वह क्या करती है ?... .... क्या उसे पता है कि मैं यहाँ रोज़ मोटर-स्टैंड पर उसकी राह देखती हूँ ?" अब तो उसके मन में निश्चय हो गया कि जैसे औरों की मातायें बम्बई से आती हैं, वैसे ही उसकी भी मा आयेगी। बस, उसके हर्ष का पार न रहा ! इसके कई दिनों के बाद एक दिन बड़े सबेरे उठकर उसने बाबा जी से कहा—

"बाबा जी, उठो न ?"

"क्यों ?"

"अभी लारी जो आ जायगी ?"

"तो क्या होगा ?"

"हमें बंबई जाना है न ? आप ही ने तो कहा था।"

"अरे बंबई क्यों जाना है ?"

"मा के पास।"

"पगली कहीं की।" कहकर वे हँस दिये। बोले—"जा, सो जा। अभी बहुत अँधेरा है।"

"अरे, अभी-अभी तो आपने कहा था।" हील्ली का गला भर आया।

"सपना देखा होगा, सपना, बेटा !.........आया समझ में ?" बाबा जी के लिए अब यह लड़की सिर की बला-सी बन रही थी। और सब तो वे कर सकते थे, लेकिन गाँव की लड़कियों के पास जो-जो था वह सब इसके लिए कैसे और कहाँ से ला सकते थे ?"

एक दिन की बात है। दोपहर का समय था। हील्ली अपनी सहेलियों के साथ चौपड़ खेल रही थी। खेलते-खेलते आपस में झगड़ा हो गया। या तो इसलिए कि हील्ली बार-बार जीत रही थी या पिछले किसी कारण से। लड़कियाँ एकाएक उस पर नाराज़ हो गईं। सब एक-दूसरी पर पासे फेंकने लगीं। इतने में किसी के हाथ का एक पासा सुखिया के कपाल में जा लगा और लहू की धार बह चली। सुखिया ख़ून से लथपथ रोती रोती घर गई और अपनी मा को बुला लाई। लड़कियों में भगदड़ मच गई। उसने भागती हुई लड़कियों को हाथ पसार-पसार कर रोका और उन्हें झिड़कना शुरू किया। पहले सबने लीला का दोष बताया और सुखिया की मा ने उसे आड़े हाथों लेना शुरू किया। इतने में लीला की मा भी आगई और अपनी बिटिया को लेकर चली गई। जाते-जाते वह भी सबको दो-चार खोटी-खरी सुनाती गई। तब सुखिया की मा ने दूसरी लड़कियों को धमकाना शुरू किया। लड़कियों ने सारा दोष हील्ली के माथे मढ़ दिया और सुखिया ने भी रोते-रोते उनकी हाँ में हाँ मिला दी। बस हील्ली पर आफ़त टूट पड़ी। सुखिया की मा ने उसे जो कई भली-बुरी बातें कहीं वे सब तो उसकी समझ में भी नहीं आईं, परन्तु उसने जो चपतें जमाईं, घूसे मारे और चिकोटियाँ काटीं, उन्हें वह भूल न सकी। बाबा जी के पास जाकर वह उन्हें वे सब गालियाँ तो न सुना सकी जो सुखिया की मा ने उसे दी थीं, लेकिन गालों पर उठी हुई अँगुलियाँ और कमर में जमे हुए ख़ून के क़तरे उसने बार बार दिखाये और वह सिसक-सिसक कर रोने और 'मा ! मा !' पुकारने लगी। वह बोली—"पहले लीला को मार रही थी, पर उसकी मा आकर उसे ले गई ! फिर किसकी हिम्मत थी कि उसे कोई मारता ?" और फिर, अपनी मा की याद आते ही उसका दिल उबल उठा और वह 'मा ! मा !' कहकर फूट पड़ी—फफक-फफक कर रोने लगी।

बाबा जी इस करुण दृश्य को न देख सके। उन्होंने सोचा, शायद हील्ली ने मार के लायक़ काम किया होगा। तभी तो मारा और अब जब वह मार खा चुकी है तब क्या हो सकता है ? कल गाँव में जाकर मारनेवाली को दो बातें सुना सकता हूँ। आगे से कोई मारने न पाये, इसका बंदोबस्त कर सकता हूँ। लेकिन अगर हर बात का नतीजा 'मा ! मा !' की यह पुकार ही हो तो भला मैं क्या कर सकता हूँ ?"

हील्ली पुकार-पुकार कर कहने लगी—"अम्मा, ओ री अम्मा ! इन लोगों की मातायें मुझे मारती हैं।" बाबा जी के धैर्य का बाँध टूट गया। वे गर्जकर बोले—"निकल जा यहाँ से; जा अपनी मा के पास; चली जा !" "कहाँ जाऊँ?.....मा ! ओ...मा !"..........."कहाँ ? बम्बई ! जा, निकल यहाँ से।" "मा ! ओ मा ! बाबा जी मारते हैं। लोगों की मायें भी मारती हैं !" चिल्लाती हुई हील्ली मंदिर के बाहर चली गई।

बाबा जी ने सोचा—"पागल हो गई है........क्या किया जाय ?........घंटे-दो-घंटे में फिर ठिकाने आ जायगी........" और करवट बदलकर बोले—"क्या किया जाय ?........आया समझ में ?" लेटे-लेटे एक लंबी उकताहट भरी जमुहाई उन्होंने ली।

"शाम हो चुकी है, फिर भी मोटर अब तक क्यों नहीं आई ?" मंदिर के एक कोने में बैठी हील्ली सोच रही थी और रह-रहकर अपने आँचल के छोर से आँख पोंछती जाती थी। बड़ी देर तक वह मोटर के रास्ते को और रास्ते पर बने हुए पहियों के निशान को अपनी दोनों आँखों से एकटक ताकती रही। धीरे-धीरे अँधेरा बढ़ने लगा। उसे निश्चय-सा हो गया था कि आज तो उसकी मा, कहीं से क्यों न हो, ज़रूर ही आवेगी। कभी सोचती—और अगर रास्ते में लारी टूट गई तो क्या होगा ? अंधकार घना हो गया। उसने सोचा—अगर मा को पैदल आना पड़ा तो उजाले के अभाव में उसे रास्ता कैसे सूझेगा ? बाबा जी के पास जाकर उनसे एक लालटेन माँग लूँ तो कैसा हो ? लेकिन इस बाबा जी की मरम्मत तो अब मा के आने पर ही हो सकेगी। उसे ऐसा मालूम होने लगा, मानो सारा अँधेरा सिमट सिमटकर पृथ्वी पर घनीभूत हो रहा हो ! सामने दूर पर वह जो पेड़ दिखाई पड़ता था, सो अब ठीक से पहचाना भी नहीं जाता। हाँ, सिर्फ़ आकाश से सटी हुई वे पहाड़ियाँ ही इतनी ऊँची हैं कि अँधेरे का कोई बस उन पर नहीं चलता। तो अब क्या होगा ?.....

हील्ली एकाएक चौंक पड़ी। आँखें मलकर उसने अपने चारों ओर देखा और यह समझने की कोशिश

की कि वह कहाँ है। फिर, चौतरे के किनारे-किनारे वह मंदिर के द्वार तक आई और आकर जैसे ही एक पैर दहलीज़ पर रखकर दूसरा उठाने लगी, वैसे ही उसके कानों तक किसी आवाज़ की भनक पहुँची। कानों पर हथेली रखकर उसने ध्यान से सुना... ..कुछ नहीं! नीचे उतरकर चौतरे पर कान लगाये......कुछ है तो!... ..

वह मोटर के रास्ते पर दौड़ चली। थोड़ी दूर तक कुछ भी सुनाई न पड़ा, लेकिन फिर तो सीधे ही मोटर का भोंपू सुनाई दिया। वह कुछ ही दूर और दौड़ी होगी कि इतने में मोटर का उजेला उसके पैरों में खेलने लगा। मोटर का वह लम्बा पथ, उस छिन-छिन बदलते हुए प्रकाश और अँधेरे में, ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो कोई भीमकाय अजगर ज्वाला उगलता आ रहा हो! प्रकाश के कारण हवा में उड़ती हुई धूल के कण भी सोने की रेत-से चमक रहे थे। हील्ली अपने दोनों हाथ फैलाकर दौड़ रही थी। प्रकाश उसके बिलकुल पास पहुँचता-सा दिखाई पड़ा।... हील्ली, हट जाओ। किनारे हो जाओ!.....लेकिन वह दौड़ी चली जा रही थी, और प्रकाश उसके पैरों के बीच से निकल कर दूर उस पार भाग रहा था। उसने सोचा, कहीं मोटर भी इसी तरह निकल गई तो? बीच में ही मोटर मुड़ी और उसकी दिशा बदल गई। फिर सारी सृष्टि अन्धकार में विलीन हो गई। ओह, उजेला तो वह, वहाँ, दिखाई दे रहा है। मोटर वह जा रही है! "गई! गई!......" कहकर हील्ली दौड़ पड़ी। वह मोटर के पास पहुँच गई, और मोड़ को पार करके सीधे रास्ते जाती हुई लारी ने उस अँधेरे में, सीधी दौड़ती हुई एक काली आकृति को, एक ओर उछाल कर एक अँधेरे गड़हे में फेंक दिया। कोई तड़पा, चिल्लाया, वेदना से कराहने लगा। कुछ खड़खड़ाहट भी हुई। मुसाफ़िरों में से कुछ ने वह दर्दभरी आवाज़ सुनी। लारी रुक गई और पीछे घूमकर उसने दूर तक प्रकाश फेंका। कुछ यात्री नीचे उतर पड़े। धूल में पड़ी हुई एक बालिका आँखें फाड़कर मोटर की उन चौंधियानेवाली बत्तियों को ताक रही थी। एक बहन ने पास पहुँचकर हील्ली के कपड़े ठीक किये। हील्ली ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—'मा! मा! मेरी मा! ये औरों की मायें मुझे मार...... र......ती हैं।"

× × ×

बाबा जी के ग़ुस्से का पार न था। सबसे ज़्यादा ग़ुस्सा तो उन्हें अपने ऊपर आ रहा था। उन्हीं के कारण हील्ली मंदिर से भागी थी और उन्हीं की लापरवाही से उसके पैर में चोट आई थी। बायें पैर की उँगलियों का तो कचूमर निकल गया था......इतने इतने इलाज के बाद भी अब जब वह चलती है तब सारे शरीर की नसें खिँचने लगती हैं। बाबा जी ने फिर से अपनी ममतारूपी धूनी की बुझती हुई आग को फूँककर सतेज किया और अपूर्व प्रेम से हील्ली का पालन करने लगे।

(५)

गर्मी का दिन था। सुबह का समय था। हील्ली तो जंगल में खिरनी बीनने गई थी, अभी लौटी न थी। बाबा जी की धूनी को घेरकर जगराम बढ़ई वग़ैरह लोग बैठे बातें कर रहे थे। "तो अब कोई अच्छा-सा मुहूर्त देखकर इसे ब्याह दो। आप कब तक इसकी रखवाली करते रहेंगे?" "हूँ...!" बाबा जी ने केवल हुँकार मात्र भर दी। "अब तो आप भी थक गये हैं। और हील्ली का भी लाभ इसी में है कि उसे कहीं........।" बोलनेवाले की बात काटकर, उसे रोकते हुए बाबा जी ने कहा—

"वह जब चाहेगी, अपने आप सब कुछ कर लेगी। मैं उसे कुछ भी न कहूँगा........कितनी समझदार है वह! भला उसे मैं क्या कहूँ? क्यों कहूँ?" बस ऐसी ही बातों से कभी-कभी जगराम को बाबा जी पर ग़ुस्सा हो आता था। अब भी हील्ली बहुत काम करती थी। यद्यपि पैर से वह जल्दी-जल्दी चल नहीं पाती थी, फिर भी खेत का और पीसने-कूटने का काम उसे बहुत प्रिय लगता था। बाबा जी भी अब अस्थिपंजर होकर मंदिर में धूनी के पास पड़े रहते थे। हील्ली बड़ी तत्परता से उनकी शुश्रूषा करती थी और भीख माँगने के बदले गाँव में मज़दूरी करने जाती थी।

उस साल गाँव के निकट किसी धनी सज्जन ने धर्मशाला बनवाना शुरू किया था। औरों के साथ हील्ली भी वहाँ मज़दूरी के लिए जाने लगी। उसने अपने लिए एक ऐसा काम चुन लिया जिसमें उसे ज़्यादा चलने फिरने की ज़रूरत न पड़ती थी। और, उस काम में उसकी तल्लीनता छिपी न रहती थी।

कड़ाके की सर्दी में भी जब दूसरे मज़दूर पानी ढोकर लाते और मिट्टी में उँडेलते, हील्ली उस मिट्टी को फावड़े से मिलाने और गूँधने का काम करती, और सारे दिन गूँधे हुए गारे की टोकरियाँ भर-भरकर दूसरी मज़दूरनियों के सिर पर चढ़ाती रहती।

मकान का काम क़रीब-क़रीब पूरा होने आया था कि इतने में एक दिन सिर पर ईंट ढोनेवाला एक नौजवान मज़दूर हील्ली के पास आकर ठिठक गया। वह उस समय गारे में पैर साने खड़ी थी। वह नौजवान पास के ही एक गाँव से यहाँ मज़दूरी करने आता था। हील्ली जानती थी कि वह तरह-तरह के काम बड़ी होशियारी के साथ करता है। उसने कनखियों से यह भी देखा था कि गारे के पास होकर जाते समय कभी-कभी वह उसे जी भरकर देख लिया करता है।

"जा! जा! सीधा चला जा! आसमान की ओर ताकेगा तो ईंटें गिर पड़ेंगी। ईंटें!"

"गिरें तो मेरी बला से। जितनी गिरेंगी उतनी ही देर यहाँ खड़ा रहने को तो मिलेगा।" और सचमुच ही उसके सिर पर से दो ईंटें गिर पड़ीं।

"सुनती है। ज़रा चढ़ा दे न?"

"वाह! मैं क्यों चढ़ाऊँ?"

"वाह रे, तो फिर जन्म भर तू मेरा काम कैसे करेगी?" और वह हँस दिया।

"पगला कहीं का! मुझ लँगड़ी-लूली को पाकर तू क्या पायेगा?" हील्ली ने ईंट चढ़ाते हुए कहा।

"चल हट। लँगड़ी हुई तो क्या हुआ? पैर तो तेरे गारे में सने रहते हैं, मगर तू ख़ुद कितनी सुन्दर है!" यों धीरे से कह कर किसी के टोकने से पहले वह वहाँ से चल दिया। उसके जाने पर हील्ली ने मन ही मन कहा—"तो क्या यह सच है?"

जिस बात का उसे कभी ख़याल तक न हुआ था वही एकाएक उसकी समझ में आ गई। और एक अच्छे दिन, शुभ मुहूर्त में, बाबा जी का आशीर्वाद पाकर हील्ली पड़ोस के गाँव में धन्ना के घर रहने चली गई। जगराम बढ़ई भी अब दिन में थोड़ा-बहुत काम करके शेष सभी समय बाबा जी के पास मंदिर में ही रहने लगा।

× × ×

कोई दो बरस बाद। एक सुहावने प्रभात में हील्ली और धन्ना मन्दिर में आये और दोनों ने बाबा जी के पैर छुये। धन्ना ने बाबा जी की गोद में एक नन्हीं-सी नवजात बालिका को रख दिया। बाबा जी तो कभी हील्ली की ओर देखते थे और कभी उस नवजात बालिका की ओर।

"देखो, जगराम! ठीक हील्ली ही है न? इसकी मा का पैर तो अच्छा नहीं है, पर इसका तो ठीक वैसा ही है, जैसा हील्ली का था।..... राम रखनेवाला है भाई!" और फिर हील्ली की ओर देखकर बोले—"अब अपना नाम इसको दे दे। तू अपना नाम हीराबाई या ऐसा ही कुछ रख ले। कहो, जगराम, ठीक है न? हील्ली तो अब इस बच्ची का नाम है। अब तेरा यह नाम नहीं। आया समझ में?" और हीराबाई को उसकी हील्ली सौंपते हुए बाबा जी मन ही मन गुनगुनाये—"मैं तो कभी से कह रहा था कि तू ही तेरी मा है!"

लौटते समय हील्ली के मन का आनन्द समाता न था। रास्ते भर वह यही सोचती रही कि कब घर पहुँचूँ और कहीं कोने में दिल थाम कर बैठ जाऊँ। उसे डर था कि कहीं कोई उसके आनन्द को जान न ले। उसे अपना बचपन याद आ गया। बचपन की मा याद आ गई। वह सोचने लगी, क्या बचपन में मैं भी ऐसी ही थी और इसी की तरह मेरे भी कोई मा थी?

घर पहुँचते ही उसका हृदय उमड़ उठा। बरबस वह अपनी बिटिया को उछालने लगी, चूमने लगी, उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। एक मा जितना जता सकती थी, उतना सब प्रकार से नन्हीं हील्ली पर वह अपना प्यार जताने लगी। हील्ली, एकाकी, मातृहीना 'हील्ली' अपनी नवजात हील्ली पर असीम प्रेम बरसाने लगी। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानो बचपन में उसके भी कोई मा थी। स्वयं वात्सल्य की वर्षा करते-करते उसे ऐसा मालूम हुआ मानो कहीं से आकर उसकी मा उस पर भी प्रेम बरसा रही है।

वह प्रेम में पागल-सी हो गई, और अपनी नन्हीं-सी बिटिया को लेकर नाचने लगी। और उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो कोई मोटर दौड़ी आ रही है! उसने हील्ली को और भी ज़ोर से छाती से चिपका लिया।

नई पुस्तकें

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—हर्षवर्धन—लेखक, श्रीयुत गौरीशंकर चटर्जी एम० ए०, प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, इलाहाबाद हैं। मूल्य २॥) है।

२—पथ-प्रदीप—लेखक, श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद पाण्डेय, प्रकाशक, उपन्यास-बहार आफ़िस, बनारस हैं। मूल्य २) है।

३—पश्चात्ताप—लेखक, श्रीयुत देवनारायण द्विवेदी, प्रकाशक, भार्गव-पुस्तकालय, बनारस सिटी हैं। मूल्य १॥) है।

४—अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक नियम—लेखक, श्रीयुत प्रेमचन्द्र बी० ए०, प्रकाशक, आक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, बम्बई हैं। मूल्य १॥) है।

५—बलिदान—लेखक, श्रीयुत यादवेन्द्रसिंह, 'प्रकाश' हैं। पता—ठाकुर मुंशीसिंह c/o माधो पब्लिशिंग हाउस, १८७ बैरहना, इलाहाबाद। मूल्य १) है।

६—हमारी परिस्थिति—लेखक, सैयद क़ासिमअली साहित्यालङ्कार, प्रकाशक, बाबू बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, बनारस सिटी हैं। मूल्य १) है।

७-९—श्री हेमचन्द्र लक्ष्मणदास, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर, की तीन पुस्तकें—

(१) मकरंद—सम्पादक, श्रीयुत बलदेव शास्त्री और मूल्य १।) है।

(२) भाग्यचक्र—लेखक, श्रीयुत सुदर्शन और मूल्य १।) है।

(३) भग्न-तंत्री—लेखक, श्रीयुत बलदेव शास्त्री और मूल्य ।॥) है।

१०-११—सरस्वती-पब्लिशिङ्ग-हाउस, इलाहाबाद, की दो पुस्तकें—

(१) लखनऊ की बेगम—लेखक, श्रीयुत शालिग्राम श्रीवास्तव और मूल्य १) है।

(२) जानवरों की कहानियाँ—लेखक, श्रीयुत शालिग्राम वर्मा, एम० ए० और मूल्य ।≡) है।

१२—चन्द्रशेखर आज़ाद—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत मन्मथनाथ गुप्त, जवाहर स्क्वायर, इलाहाबाद हैं।

१३—संस्कृत-भाषा का सरल व्याकरण (प्रथम भाग)—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, मेयो कालेज, अजमेर हैं।

१४—माता—लेखक, योगराज अरविन्द, प्रकाशक, श्री अरविन्द-ग्रन्थमाला, ४ हेयर स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य ॥) है।

१५—ज्योतिर्मयी (तीन किरणें)—लेखक, श्रीयुत अनिरुद्ध, प्रकाशक, ज्योतिष्पथ, झाँसी कैण्ट हैं। मूल्य ॥=) है।

१६—षोड़शी—लेखक, श्रीयुत त्रिवेणीदत्त त्रिपाठी, प्रकाशक, नवलेखोन्मेषिनी-पुस्तकमाला, गोला, गोकरनाथ, खीरी हैं। मूल्य ।=) है।

१७—तारे—लेखक, श्रीयुत अंचल, प्रकाशक, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ हैं। मूल्य १) है।

१८—मिस गौहर—सम्पादक, श्रीयुत हुनर, प्रकाशक, सिनेमा-सिरीज़-आफ़िस, काशी हैं। मूल्य ≡) है।

१९-२०—भारतवासी-प्रेस, इलाहाबाद, की दो पुस्तकें—

(१) रूसी साम्यवाद—मूल्य ।) है।

(२) हिन्दुस्तानी टुकड़ेबन्दी—मूल्य ।-) है।

२१-२२—हिन्दी-मन्दिर-प्रेस, प्रयाग, की दो पुस्तकें—

(१) पुष्पबाण—मूल्य ॥) है।

(२) समाज और साहित्य—मूल्य ।॥) है।

२३—अवशेष—लेखक, श्रीयुत अमृतलाल नागर, प्रकाशक, सरस्वती-पुस्तक-भण्डार, आर्यनगर, लखनऊ हैं। मूल्य ॥) है।

१—तुलसीदास और उनकी कविता—लेखक पण्डित रामनरेश जी त्रिपाठी, प्रकाशक, हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग हैं। पृष्ठसंख्या ९४८ (ग्रंथ के दो भाग हमारे सामने हैं, दोनों भागों की यह पृष्ठसंख्या है)। प्रथम भाग का मूल्य २), द्वितीय भाग का २॥), छपाई सुन्दर है।

त्रिपाठी जी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक एवं कवि हैं। आपने यह ग्रंथ लिखकर हिन्दी के एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। इसके दो भाग हमारे सम्मुख हैं और दूसरे भाग के अन्त में तीसरे भाग की विषय-सूची भी दे दी गई है। तीनों भागों की विषय-सूची देखने से ज्ञात होता है कि लेखक महोदय ने तुलसीदास के बारे में लगभग जितने विषय संभव हैं, सब पर प्रकाश डाला है। नमूने के लिए यहाँ हम कुछ विषय उद्धृत करते हैं—तुलसीदास का वाणीविलास, तुलसीदास का बहिर्जगत्, तुलसीदास के समय का हिन्दूसमाज, तुलसीदास के समय का सामाजिक रहन-सहन, वर्णन, महाकाव्य के वर्णन आदि। लेखक महोदय ने तुलसीदासविषयक बड़ी विशद व्याख्या की है और बड़ी खोज के साथ। पुस्तक बहुत उपयोगी है। 'वर्णन' के अन्तर्गत कुछ स्थलों की सुन्दरता इंगित-मात्र से बताई गई है, पर तीनों भागों की विषय-सूची में कोई ऐसा अध्याय नहीं देख पड़ता जिसमें तुलसीदास की कृतियों के सुन्दर स्थानों या अतीव सुन्दर स्थानों का निर्देश किया गया हो। यह अभाव खटकता है। संभव है, पुस्तक बढ़ जाने के डर से ऐसा न किया गया हो, पर पुस्तक तो बढ़ गई ही है, तनिक और बढ़ जाती तो कोई हानि नहीं थी।

तुलसीदास जी के दोष दिखलाते हुए त्रिपाठी जी कहते हैं कि "तुलसीदास जी सर्वत्र राम की सुन्दरता ही पर सबको मुग्ध दिखलाते हैं, चाहे वह शत्रु हो या मित्र, देवता हो या दानव, राक्षस हो या असुर, जो कोई उनके सामने आता है वह उनके रूप पर पहले मुग्ध हो जाता है, पीछे अन्य काम करता है।" "खरदूषण......एकाएक क्रोध को भूल कर उनके रूप पर आसक्त हो जाता है" हमारा नम्र निवेदन है कि तुलसीदास जी का यह मतलब था कि सब कोई श्रीरामचन्द्र जी के असाधारण रूपमय व्यक्तित्व से प्रभावित होते थे—सब उनके रूप पर 'मुग्ध' और 'आसक्त' नहीं हो जाते थे। जो मुग्धता विषयों से ऊपर उठकर होती है उसी मुग्धता से तुलसीदास का तात्पर्य था। व्यक्तित्व यदि असाधारण रूपमय है तो मनुष्य उससे बहुत प्रभावित होता है। असाधारण व्यक्तित्व का असर तो सब कोई मानते हैं। विष्णु का रूप सदैव सुन्दर कल्पित किया गया है और उनके अधिकांश अवतारों का भी। अस्तु, पुस्तक बड़े काम की है। इसके द्वारा तुलसीदास जी के चरित्र के अध्ययन में बड़ी सहायता मिलेगी। इसके लिए त्रिपाठी जी बधाई के पात्र हैं। आशा है, इसका समुचित प्रचार होगा।

२—त्रिलोचन कविराज—मूललेखक श्रीयुत रवीन्द्रनाथ मैत्र, अनुवादक श्रीयुत व्रजमोहन वर्मा, प्रकाशक विशाल भारत बुकडिपो, १९५।१ हरिसन रोड, कलकत्ता हैं। पृष्ठसंख्या १५० और मूल्य १॥) है।

इस पुस्तक में स्वर्गीय श्रीयुत रवीन्द्रनाथ मैत्र की सात कहानियों का संग्रह है। आप बँगला के एक उदीयमान लेखक थे, जिनकी असमय में ही मृत्यु हो गई। इसमें सन्देह नहीं कि आपकी कहानियाँ अच्छी होती हैं। आपकी 'त्रिलोचन कविराज' नाम की कहानी के पात्र स्वाभाविक नहीं हैं, न दुनिया में ऐसा वैद्यराज मिलेगा, न ऐसे रोगी। इसमें पात्र अतिरञ्जित हैं। तो भी कहानी में मज़ा आता है। 'समाजसुधारक' भी एक अच्छी कहानी है। उसमें एक नये समाजसुधारक की दुर्दशा का अच्छा चित्र है। 'ज्वार-भाटा' में एक दंपति की अनबन और पुनर्मिलन का अच्छा चित्र है। भाषा प्रौढ़ है, कथोपकथन सुन्दर है। भूमिका में कहा गया है कि इसकी कहानियाँ हास्यरस की हैं। यदि इससे यह मतलब है कि इसमें हास्यरस का पुट है तो ठीक है। पर यदि यह तात्पर्य है कि सब कहानियाँ हास्यरसप्रधान हैं तो हमारी राय में कथन ठीक नहीं है। 'त्रिलोचन कविराज' अवश्य हास्यरसप्रधान कहानी है, पर वह सफल रचना नहीं कही जा सकती। हाँ, सब कहानियों में कुछ न कुछ हास्यरस अवश्य है। अनुवाद अच्छा हुआ है।

३—पूजा—लेखक, श्रीयुत रामप्रसाद विद्यार्थी, प्रकाशक, शंकर-सदन, आगरा हैं। पृष्ठसंख्या १०२ और मूल्य १) है।

इस पुस्तक में लेखक के गद्य गीतों का संग्रह है। सब इक्यासी गद्य-गीत हैं। भूमिकालेखक प्रयाग-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यापक श्रीयुत रामकुमार वर्मा

हैं। उनका कहना है—"उसमें (पूजा में) साधक की अनवरत आकांक्षा सांसारिक परिस्थितियों को सुलझाकर प्रियतम का सामीप्य प्राप्त करना चाहती है। असीम की झाँकी इन भावनाओं के बीच में वसन्त के समान सजी हुई है।" हमारा कहना है कि आजकल के बहुत-से गद्य और पद्य के कवियों में असीम का जो अनुभव दिखाई पड़ता है वह झूठा है। इतने लोग अपनी छोटी अवस्था में असीम का अनुभव नहीं कर सकते। उसका अधिकार वृद्धावस्था और जन्म-जन्मान्तर की साधना को ही है। लेखक महोदय अपने प्रियतम शीर्षक गद्य-गीत में कहते हैं—"ऊँचे शिखर थे, चढ़ाई कठिन होती, पर मैं तो तुम्हारे प्रेम-समीर के झोकों पर उड़ रहा था......"। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि लेखक महोदय को क्या सचमुच ईश्वर से इतना प्रेम है। जिसको प्रभु से इतना प्रेम होगा वह गद्य-गीत का संग्रह लेकर भूमिका लिखाता और छपाता और उसे समालोचना के लिए भेजता नहीं फिरेगा। यदि नहीं तो सारे गद्य-गीत कृत्रिम हो जायँगे। ऐसे कृत्रिम गद्य-गीत साहित्य की शोभा नहीं बढ़ा सकते।

४—दिव्य दोहावली—लेखक तथा चित्रकार, श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद वर्मा, बी० ए० 'दिव्य', प्रकाशक, श्रीयुत गयाप्रसाद वर्मा, टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड) हैं। पृष्ठसंख्या ११८ और मूल्य सजिल्द का १।) तथा बिना जिल्द की पुस्तक का १) हैं।

यह वर्माजी के दोहों का संग्रह है। दोहे व्रजभाषा में हैं। मुखपृष्ठ पर यह दोहा है—

सीदत भवरुज सों सदा, गुन न करत रस कोय।
जाहि न लगत कवित्तरस, ताको दवा न होय॥

जहाँ तक हम समझते हैं, यह दोहा सुन्दर समझकर मुखपृष्ठ पर रक्खा गया है। दोहे से साफ़ जान पड़ता है कि इसकी भाषा बनावटी है। 'दवा' शब्द साधारणतया खड़ी बोली में आता है और उसका प्रयोग इस तरह हुआ है कि उसका खड़ी बोलीपन साफ़ झलक रहा है। 'होय' का प्रयोग 'है' के अर्थ में है, तुक जोड़ने के लिए ही यहाँ 'होय' आया है। कहना नहीं होगा कि इसकी भाषा शिथिल है। अब भाव लीजिए। कवित्तरस जिसको नहीं लगता उस पर क्यों कोई रस असर नहीं करता? कारण कुछ नहीं बताया गया है। कवित्तरस भवरुज की ओषधि है, यह तो कोई भी नहीं मानेगा। ऐसे ही अन्य दोहे भी समझिए।

५—डाली—इसके प्रकाशक श्रीयुत अबोध मिश्र मन्त्री, कवि-कोविद-संघ, फर्रुख़ाबाद हैं। पृष्ठ-संख्या ६४ और मूल्य ॥-) है।

इस पुस्तक में भिन्न भिन्न कवियों की लगभग अस्सी कविताओं का संग्रह है। ये कवितायें वहाँ के कवि-कोविद-संघ में सुनाई गई थीं। इसमें कुछ साधारण कवितायें हैं और कुछ अच्छी हैं। उदाहरण लीजिए—

ऊषा आई, मधु भर लाई प्राची दिशि की प्याली में,
पीकर निकले खग नीड़ों से गाते नभ की लाली में।

यहाँ उषा उत्साह नहीं लाई, जागृति नहीं लाई, मधु भर लाई है। कहना नहीं होगा कि कविता साधारण है।

अच्छी कविता का एक नमूना लीजिए—

भाव-सुमनों का सुन्दर हार
तुम्हें पहनाऊँ कृपा-निधान
शीश पर रखकर प्रिय पदपद्म
करूँ आपा तुम पर बलिदान।

यद्यपि इस कविता में भी कोई नवीनता नहीं है, भाव पुराना ही है, पर कुछ है तो।

६—काव्य और संगीत—लेखक, पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी, प्रकाशक, लक्ष्मी आर्ट प्रेस, दारागंज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या ६० और मूल्य =) है।

इस पुस्तिका में काव्य और संगीत के विषय में अच्छी विवेचना की गई है। पुस्तिका १३ छोटे छोटे परिच्छेदों में विभाजित है, जिनमें से मुख्य हैं—काव्य और संगीत की उत्पत्ति, काव्य और संगीत दोनों में श्रेष्ठ कौन है, क्या संगीत बिना काव्य के सम्भव है, पद्य काव्य में संगीत, गद्य काव्य में संगीत आदि। लेखक महोदय की यह सम्मति जान पड़ती है कि पहले संगीत था, फिर काव्य हुआ। यह बात ठीक ही मालूम होती है, क्योंकि विश्व में आकाश-तत्त्व के बाद नाद की व्यापकता निर्विवाद मानी गई है। आगे चलकर लेखक महोदय ने निर्णय किया है कि संगीत के बिना काव्य सम्भव नहीं। 'पद्य काव्य में संगीत' नामक परिच्छेद में अमर कवि जयदेव की अष्टपदी संगीतमय पद्य बतलाई गई है, जो उचित ही है। पर हिन्दी का एक उदाहरण खटकता है। उससे जान पड़ता है कि लेखक महोदय ने केवल अनुप्रास को ही संगीत एवं कोमलकान्त पदावली समझ लिया है। इसी तरह गद्यकाव्य में संगीत में जो हिन्दी का उदाहरण है वह भी कृत्रिम गद्य का है। हमारा तो यह कहना है कि बाण का गद्यकाव्य भी इसलिए अच्छा नहीं है कि उसमें विशेष संगीत है, पर इसलिए कि उसमें चमत्कार हैं। काव्य और संगीत के प्रेमियों को वाजपेयी जी की यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

७—पञ्चामृत—लेखक, श्रीयुत तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' प्रकाशक, श्रीयुत किशनलाल जालाण (बम्बई) हैं। पृष्ठ-संख्या ७६ और मूल्य ॥) है।

यह पुस्तक पद्यबद्ध है, परन्तु न खण्ड काव्य है, न महाकाव्य। इसे वस्तुतः काव्य कहने में भी संकोच होता है। यह उपदेश देने के लिए लिखी गई है। कहीं राधेश्यामी ढङ्ग है, कहीं हरिगीतिका छन्द में श्री मैथिलीशरण गुप्त का निर्बल अनुकरण है। भाषा भी सब जगह शिथिल है। लिखा खड़ी बोली में गया है, परन्तु 'पुनि' का प्रयोग भी किया गया है।

"सांख्य योग अष्टांग पुनि, ईश्वरप्रकृति-विवेक।"

कहीं 'महा' शब्द का प्रयोग 'बहुत' के अर्थ में किया गया है—

सुख-हेतु धन जन जोड़ता दिन रात पच पच कर महा।

इसके तुक के लिए दूसरी पंक्ति में 'हहा' का प्रयोग किया गया है। छन्दबद्ध उपदेश के प्रेमियों के लिए पुस्तिका अच्छी है।

८—साँवरी—लेखक, श्रीयुत रामस्वरूप शर्मा विशारद 'रसिकेन्द्र', प्रकाशक भारतीभवन, भाँट (मथुरा) हैं। पृष्ठ-संख्या ४८, मूल्य।) है।

यह एक खण्ड काव्य है। इसमें वीर और उल्लाला छन्द या उनके मिश्रण का प्रयोग है। इसका कथाभाग संक्षेप में यह है—कृष्णजी ने छल से स्त्रीवेष धारण करके अपना नाम साँवरी रक्खा और राधा की परीक्षा के लिए उनसे कृष्ण की निन्दा की। राधा बहुत क्रोधित हुईं। साँवरी रूपधारी कृष्णजी ने कहा कि यदि उनका (श्री कृष्ण का) प्रेम तुम पर सत्य है तो उनको यहाँ अभी प्रकट करो। श्री राधा ने प्रार्थना की और साँवरी ने छद्म वेष त्यागकर अपना रूप प्रकट किया। अन्त में उन्होंने भेद खोल दिया। कविता साधारण है—कथाभाग और कविता दोनों में ग्राम्यदोष है। उदाहरणार्थ—

बने चकोर परन्तु प्रिया के मुखशशि के मतवाले हैं।

यहाँ 'परन्तु' के प्रयोग की क्या सार्थकता है, यह लेखक महोदय ही जानें।

९—मधु-दूती—लेखक, श्री प्रियव्रत शर्मा, प्रिय, प्रकाशक, काव्यकुञ्ज, मुस्तफ़ापुर, खगौल (पटना), हैं। पृष्ठ-संख्या ४२, मूल्य।) है।

समर्पण में कवि जी लिखते हैं—

ले लो यह कुम्हलाया फूल
भइया, माली कुशल नहीं मैं!

आप कुशल माली न हों, अच्छा हार न बना सकते हों, गुलदस्ते न सजा सकते हों, पर यह देख तो सकते हैं कि फूल कुम्हलाया है या ताज़ा। मधु-दूती शीर्षक कविता में आप लिखते हैं—

मधु-दूती, तुम उधर झूमती
मधु-मादकतामय मंजुल।
इधर बजाता व्यथा वल्लकी
सिसक सिसक यह पिक व्याकुल॥

इसके ऊपर के पद्य में वसन्त-वर्णन है। आपके वसन्त में कोयल रोती है, सिसकती है।

मैं विधवाओं के आँसू, जिनमें रोता अतीत का प्यार।
शून्य जगत है जिनका जिन्हें न कुछ कर सकने का अधिकार!

आपने आँसुओं से प्रभाव डालने का अधिकार भी छीन लिया।

—आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

१०—कवि प्रसाद की काव्यसाधना—लेखक, श्रीयुत रामनाथ 'सुमन', प्रकाशक, छात्रहितकारी-पुस्तकमाला, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य २॥) है।

महाकवि प्रसाद के अनबोले व्यक्तित्व से जिन्हें भी कभी कुछ अभिज्ञता रही है वे उनका नाम सुनकर उनकी याद आने पर न जाने कितनी बार हूक उठे होंगे। प्रसाद जी हिन्दी के उन्नायकों में से एक थे और ऐसी सर्वतोमुखी, विस्तृत और विराट् प्रतिभावाले साहित्यकार हर देश और हर युग में नहीं होते। आज हिन्दी-कविता में जो इतना सौन्दर्य, रूप और यौवन फट पड़ा है, आज हिन्दी

गद्य में जो सुवास एवं मादकता के स्रोत चला करते हैं वे क़रीब क़रीब सभी प्रसाद जी के हैं।

प्रसाद जी सच्चे अर्थों में अखिल-भारतवर्षीय लेखक थे। कहानीलेखक, उपन्यासकार, नाटककार, कवि और इतिहासअन्वेषक वे सभी कुछ थे और सबमें उनके महाचेतन, अनुभूति-प्रवण और मर्मी, युगधर्म की ज्वाला में जागरूप प्राणों का अग्रदूत संदेश सुनने को मिलता है। लघुता, दीनता और छोटापन उनके जीवन से जैसे दूर थे, वैसे ही उनकी सृजन-सम्पत्ति में भी नहीं मिलते। उनकी वाणी हिन्दी का प्रगतिघोष और उनकी जीवनी हिन्दी-साहित्य का स्वर्णयुग कहलाने की अधिकारिणी है।

उसी आधुनिक कविता के देवदूत महाकवि और महागायक प्रसाद की काव्यसाधना की प्रस्तुत पुस्तक समीक्षा है। पुस्तक में परिचय, कवि प्रसाद का मनोवैज्ञानिक विकास, कवि का काव्य और उसकी धारा (जिसे चार प्रकरणों में विभक्त कर दिया है—कवि का और कवि के क्रमिक विकास का प्रौढ़ स्वरूप प्रदर्शित करने के लिए) कविप्रसाद का गीतिकाव्य, कवि के काव्य में रूप और यौवनविलास, कामायनी की कथा, कामायनी की महत्ता, कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि, कामायनी का काव्य-सौन्दर्य, कवि की साहित्यसाधना का चेतनाधार, कवि-प्रसाद—एक अध्ययन आदि १४ प्रकरण हैं। सुमन जी ने यह उपयोगी पुस्तक लिखकर हिन्दी की विशिष्ट सेवा की है। हमें दुःख है कि कवि के काव्यवैभव की ऐसी कवित्वपूर्ण समीक्षा उनके जीवन-काल में नहीं निकल पाई। एक आलोचक में जो गुण होने चाहिए वे सुमनजी में हैं और उनकी भाषा में जो एक विचित्र मिठास है—व्यंजना में जो एक अचूकपन होता है वह पाठक को सबसे पहले प्रभावित करता है। काव्य के मर्म को समझनेवाले विद्वान्, अध्ययनशील लेखक से हम ऐसे, बल्कि इससे भी गुरु गम्भीर ग्रन्थ की आशा करते थे। कारण एक ओर जहाँ किताब में आलोचना का शुरू से आख़िर तक इमोशनल पहलू है और लेखक—आलोचक से दूर एक साधारण पाठक की कोटि में आ गया है वहीं ऐसा मालूम होता है कि पुस्तक में कलेवरवृद्धि की भी आयोजना की गई है। मीलों तक चलनेवाली कामायनी की कथा क़रीब क़रीब महाकवि की भाषा में महाकाव्य की सकरी-सी मालूम पड़ती है और पाठक कहीं कहीं भारानत हो धैर्य खोने लगता है। इस सुन्दर पुस्तक को यदि कवि प्रसाद की आलोचना न कह कर उनकी कविता का उच्च कोटि का एप्रीशियेशन कहें तो ज़्यादा ठीक होगा, क्योंकि इसमें आलोचनात्मक टचेज़ तो यदा-कदा ही मिलते हैं। कामायनी जैसे युगप्रवर्तक महाकाव्य पर लेखक ने ज़रूर कुछ विचार अवश्य किये हैं, परन्तु इससे भी अधिक लिखे जाने की ज़रूरत थी।

अन्त में हमें इतना तो कहना ही है कि महाकवि प्रसाद पर अभी बहुत कुछ लिखा जाने को पड़ा है। प्रेमचन्द और प्रसाद ये दो युग-पुरुष हमारे यहाँ हुए और दोनों पर अभी न जाने कितना लिखने को पड़ा है। आधुनिक जागरणकाल के इन दो विधाताओं ने आज हिन्दी को इन्टर नेशनल गैलरी में उच्च आसन पर रख दिया है। दोनों पर ऐसे दर्जनों समीक्षा-ग्रन्थ निकलने की आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि यदि सुमन जी का ध्यान इस दिशा की ओर रहा तो और भी अच्छी चीज़ें पढ़ने को मिलेंगी।

११—रागिनी—लेखक, श्रीयुत गोपालसिंह नेपाली, प्रकाशक, युगान्तर-प्रकाशनसमिति, पटना हैं। मूल्य ॥।) है।

बिहार के प्रसिद्ध कवि नेपाली जी की कुछ फ़ुटकर रचनाओं का यह संग्रह है। ताज़गी और मिठास कवि की रचनाओं का प्राण है। जीवन की परिपूर्ण यथार्थता और यौवन का उद्दाम निर्बन्ध वेग तो कवि से अभी कम परिचित है, पर एक भीनी भीनी मस्ती का आवरण उनकी कुछ कविताओं पर ज़रूर पड़ा रहता है। आशावाद भी काफ़ी है और कहीं कहीं तो वह पाठक को चैन नहीं लेने देता। संकलित रचनाओं में 'बन्दगी', 'पदध्वनि' और 'भाई-बहन' बहुत अच्छी रचनाओं में हैं। पुस्तक पढ़ने से कवि का जो अपना एक स्वप्नलोक और बहार की समां है वह आँखों के सामने घूमने लगती है। किसी में सफल कवि होने के लिए इतना ही काफ़ी है।

इस सुन्दर संग्रह के लिए नेपाली जी को बधाई देते हुए हम उनकी दो पंक्तियाँ प्रस्तुत करते हुए इस नोट को समाप्त करते हैं।

'बन्दे तरु के पीले पत्ते जिनमें कुछ रसधार न हो।
वैसे यहाँ नहीं प्रेमी तो सच कह दूँ संसार न हो।'

आशा है, हमें नेपाली जी की अन्य कविताओं का भी संग्रह देखने को मिलेगा।

—अञ्चल

१२—रोटी का राग—रचयिता, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, प्रकाशक, श्री मार्तण्ड उपाध्याय, सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली हैं, मूल्य ॥।) है।

श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल हिन्दी के सुन्दर लेखक और कवि हैं। इस पुस्तक में आपकी ४३ कवितायें संगृहीत हैं। कवितायें प्रायः ग़रीबी, दरिद्रता और उत्पीड़न के भाव और विचारों से ओत-प्रोत हैं। आजकल हिन्दी के काव्य-क्षेत्र में छायावाद की जो नई धारा प्रवाहित हो रही है, लेखक को वह पसंद नहीं है, इसीलिए उन्होंने अपने इस काव्य संग्रह का नाम 'रोटी का राग' रक्खा है और सभी कविताओं में किसान और मज़दूर की ग़रीबी और उनके हृदय के दुःख-दर्द से पूर्ण भावों और विचारों का समावेश किया है।

कवितायें तीन भागों में विभाजित की गई हैं। पहले विभाग 'रोटी का राग' शीर्षक में कुछ रचनायें ऐसी हैं जिनमें छायावादी रचनाओं को प्रगति के प्रतिकूल बताया गया है। जैसे—

क्या होगा गाकर 'अनंत' का
'नीरव' और मधुर संगीत,
मलयानिल के उच्छ्वासों का
मर्मर निर्झर झरझर गीत।

कुछ कविताओं में ग़रीबों और किसानों का सुन्दर चित्रण है। जैसे—

है कृषकों की कैसी शान
दिन भर श्रम करते रहते हैं
सब ऋतुओं में दुख सहते हैं,
विविध भाँति के अन्न उगाकर
जग का सदा पेट भरते हैं।
किन्तु स्वयं भूखे ही मरते
छोड़ सभी आदर सम्मान
है कृषकों की कैसी शान।

दूसरे विभाग 'भारत गान' में भारत-सम्बन्धी सुन्दर और भावपूर्ण कवितायें संग्रहीत हैं। जैसे—

आओ गावें भारत गान!
जाति-पाँति का भेद भूलकर,
सब मिलकर बस एक राग ही,
नित्य अलापें हृदय खोलकर
हो कैसे आज़ाद हमारी
प्यारी जननी भारत माता।
पराधीन रहकर भी क्योंकर
हो सकता गौरव अभिमान
आओ गावें भारत गान।

तीसरे भाग में कुछ स्फुट कवितायें संग्रह की गई हैं, जिनमें 'शेगाँव का सन्त' बड़ी सुन्दर कविता है। इसके सिवा कुछ कवितायें ऐसी भी हैं जो सुन्दर सरल भाषा से युक्त भावपूर्ण हैं।

यह काव्य-पुस्तक सामयिक और नवीन विचारों की ओर कवियों का ध्यान आकर्षित करनेवाली है। इसकी प्रस्तावना आचार्य काका कालेलकर ने लिखी है। 'बापू का आशीर्वाद' भी इसमें है। आशा है, हिन्दी के काव्य-प्रेमी और साहित्यिक इस नवीन भावों से युक्त काव्य-पुस्तक का अवश्य रसास्वादन करेंगे।

—ज्योतिप्रसाद 'निर्मल'

१३—कापी और प्रूफ़—लेखक, श्रीयुत कृष्णप्रसाद दर, प्रकाशक, दि इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस, इलाहाबाद है। आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या १५५ और मूल्य २।) है।

श्रीयुत कृष्णप्रसाद दर इलाहाबाद के ला जर्नल प्रेस के सुयोग्य मैनेजर हैं। प्रेस-सम्बन्धी कामों का आपने अच्छा अनुभव प्राप्त किया है। ला जर्नल प्रेस की प्रसिद्धि का बहुत कुछ श्रेय आपको ही है। इस पुस्तक में आपने वे सब बातें बड़े सुन्दर ढङ्ग से रक्खी हैं जिनकी ग्रन्थकारों, प्रूफ़रीडरों और मुद्रकों को पग पग पर आवश्यकता पड़ती है। लीडर के सुयोग्य सम्पादक डाक्टर सी० वाई० चिन्तामणि डो० लिट ने पुस्तक की भूमिका में लेखक के इस कार्य की भूरि भूरि प्रशंसा की है। वास्तव में इस पुस्तक की रचना करके श्री दर साहब ने प्रेस-कार्य से सम्बन्ध रखनेवाले लोगों का बड़ा उपकार किया है। यह पुस्तक आपने अँगरेज़ी में लिखी है। यद्यपि यह अँगरेज़ी के ग्रन्थकारों और प्रूफ़रीडरों आदि के लिए उपयोगी है,

तथापि हिन्दी में ऐसी कोई पुस्तक न होने से अँगरेज़ी पढ़े हिन्दी वाले भी इससे लाभ उठा सकते हैं।

—श्रीनाथसिंह

१४—चिकित्सा-सम्बन्धी दो पुस्तकें—काशी के स्वर्गीय श्री श्यामसुन्दराचार्य एक योग्य चिकित्सक ही नहीं थे, किन्तु उन्होंने रसों आदि के बनाने में नई प्रक्रिया का भी प्रचार किया था। उन्होंने उस सम्बन्ध की तथा चिकित्सा के अन्य विषयों की कुछ उपयोगी पुस्तकें भी लिखी थीं, जिनमें से अनुपानविधि और नीम के उपयोग नाम की पुस्तकें समालोचनार्थ हमें प्राप्त हुई हैं।

(१) अनुपानविधि—इस पुस्तक में वैद्य जी ने रसों के अनुपान बताये हैं। रसों के अनुपान वैद्यक ग्रन्थों में उतने अधिक तथा ब्योरे के साथ नहीं लिखे गये हैं, अतएव वैद्यों को अपनी बुद्धि के अनुसार यथा आवश्यकता उनकी कल्पना करनी पड़ती है। इस पुस्तक में वैद्य जी ने सभी रसों तथा भस्मों के बहुत उपयुक्त अनुपान लिखे हैं और मात्रा-सहित उनके प्रयोग की विधि भी बतलाई है। चिकित्सकों को इस पुस्तक का संग्रह करना चाहिए। यह उनके विशेष काम की पुस्तक है। इसका मूल्य ।=) है।

(२) नीम के उपयोग—यह भी एक महत्त्व की पुस्तक है। वैद्य जी ने नीम के सम्बन्ध में तथा उसकी पत्ती, बीज, छाल आदि से बननेवाले योग आदि जो भी उसके उपयोग उन्हें मिले हैं उन सबको इसमें क्रम के साथ समावेश किया है और उन सबकी रोगों के सम्बन्ध में ब्योरेवार विधि भी बतलाई है। चिकित्सकों के लिए यह भी एक उपयोगी पुस्तक है। इसका मूल्य ।।।) है।

इन दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—श्यामसुन्दर-रसायनशाला, गायघाट, बनारस।

१५—प्राचीन जैन-इतिहास (प्रथम भाग)—इस पुस्तक के लेखक बाबू सूरजमल जी जैन हैं। उन्होंने इसकी रचना २२ वर्ष पहले की थी। यह अब तीसरी बार छपी है। यह पुस्तक जैन-शिक्षा-संस्थाओं में इतिहास की पाठ्य पुस्तकों में शामिल है। यह छोटे छोटे २७ पाठों में विभक्त है। अन्त में छः छोटे छोटे परिशिष्ट भी हैं। प्रारम्भ के तीन पाठों में भारत और संसार के भूगोल का वर्णन है जिसमें भारत का तथा दूसरे भूखंडों का उल्लेख किया गया है। इसके बाद इतिहास के पाठ हैं। इनमें प्रारम्भ में सृष्टिकाल का निर्देश और बीते हुए काल का विभाग बताया गया है। फिर 'मानवों' के अति प्राचीन इतिहास का वर्णन करते हुए जैनधर्म के तीर्थंकरों की जीवनियाँ दी गई हैं। इस प्रकार जैन-धर्मग्रन्थों के आधार पर भारत के प्राचीन निवासियों का इतिहास इसमें दिया गया है। यह इतिहास तथा इसका भूगोल अपूर्व और अलौकिक है, क्योंकि आधुनिक भूगोल और इतिहास से इसका अधिकांश मेल नहीं खाता है। इसका मूल्य ।।।) है।

पता—दिगम्बर जैनपुस्तकालय, गांधी-चौक, कापड़िया भवन, सूरत।

१६—आसव-विज्ञान—आयुर्वेदिक-चिकित्सा में आसव और अरिष्ट रोगों का उन्मूलन करने में बार बार अव्यर्थ प्रमाणित हुए हैं। परन्तु इनका प्रचार बहुत दिनों तक बंगाल के वैद्यों में ही रहा है। उत्तर-भारत के वैद्य आसव-अरिष्टों का उतना उपयोग नहीं करते थे। अगर हम भूलते नहीं हैं तो सबसे पहले इस त्रुटि की ओर अमृतसर के स्वामी हरिशरणानन्द जी का ध्यान गया और उन्होंने 'आसव-विज्ञान' नाम की एक छोटी पुस्तक लिखकर वैद्यों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। प्रसन्नता की बात है कि उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता मिली और अन्य लोगों ने भी इस ओर ध्यान दिया और उत्तर-भारत के वैद्य भी आसव-अरिष्ट बनाने और उनका उपयोग करने में प्रवृत्त हुए। स्वामी जी की सफलता का एक यह भी प्रमाण है कि उनकी इस पुस्तक का दूसरा संस्करण निकल गया है। इस संस्करण को उन्होंने और भी उपयोगी बना दिया है। पहले संस्करण में केवल आसव और अरिष्ट के बनाने की 'परिष्कृत' विधि भर थी। इस नये संस्करण में ११९ आसवों व अरिष्टों के नुस्ख़े भी दे दिये हैं। ये नुस्ख़े शास्त्रीय हैं। पुस्तक उपयोगी और प्रामाणिक है। वैद्यों को इसका संग्रह करना चाहिए। पुस्तक की भाषा सरल और शुद्ध है, छपी भी अच्छी है। पुस्तक सजिल्द है। मूल्य १) है।

पता—दि पंजाब आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी, अमृतसर।

जाग्रत नारियाँ

स्त्री-स्वाधीनता-आन्दोलन का स्वरूप

लेखक, श्रीयुत रतिनाथ गुप्त

जुलाई की 'सरस्वती' में श्रीयुत मन्मथनाथ गुप्त का 'स्त्री-स्वाधीनता-आन्दोलन का स्वरूप' नाम का एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें गुप्त जी ने बताया है कि स्त्री-स्वाधीनता का जो आन्दोलन इस समय हो रहा है वह एकमात्र मध्य-श्रेणी की स्त्रियों का आन्दोलन है और बेजान सा है, क्योंकि वह आन्दोलन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक यहाँ की स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से पराधीन हैं। इसके बाद उन्होंने यह बताया है कि इस आन्दोलन का रुख़ भी अब बदल गया है और स्त्री-स्वाधीनता का आन्दोलन करनेवाली स्त्रियाँ 'गृहलक्ष्मी' बनने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझने लगी हैं, क्योंकि योरप में भी उनकी श्रेणी की स्त्रियाँ घरों को ही लौट रही हैं—उन्होंने आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए जो भारी प्रयत्न किया था उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। इस तरह दो परस्पर विरोधी बातों को एक साथ रखकर लेखक महोदय यह कहते हैं कि ये मध्य-वित्त-वाली स्त्रियाँ अपने समाज का उद्धार करने के लिए जो कान्फ़रेंसें आदि किया करती हैं उनमें सिवा प्रस्ताव पास करने और पुरुषों को कोसने के और कोई काम ही नहीं होता। यही नहीं, पत्र-पत्रिकाओं में स्त्रियों के जो स्तम्भ रहते हैं उनमें स्त्रियों के जो लेख आदि छपते रहते हैं वे

[शाहज़ादी फ़ाज़ीह—ये मिस्र के बादशाह की बड़ी बहन हैं जिनका ईरान के युवराज से विवाह होनेवाला है।]

ऐसे होते हैं और वे स्त्रियों को प्रसन्न करने के लिए ही छापे जाते हैं।

लेखक महोदय ने अपने लेख में स्त्रियों की प्रगति की इस प्रकार जो रूप-रेखा अंकित की है वह उतनी विवेचना-

पूर्ण नहीं है, जितनी उपहासात्मक है। उन्होंने अपने लेख में लिखा है कि स्त्रियाँ अपनी कान्फ़रेंसों में पुरुषों के कोसने का काम प्रधान रूप से करती हैं। ऐसी धारणा रखने के कारण उन्होंने अपने लेख में मध्य-श्रेणी की स्त्रियों का तथा उनकी सभाओं आदि का मखौल उड़ाकर वस्तुतः 'पुरुष' के अनुरूप ही काम किया है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि उन्होंने अपने लेख में उनका जो चित्र अंकित किया है, क्या वह यथार्थ है। वस्तुस्थिति से तो ऐसा नहीं प्रतीत होता।

इसमें सन्देह नहीं है कि स्त्रियों के सारे आन्दोलन का सञ्चालन मध्य-श्रेणी की स्त्रियाँ ही करती आई हैं। परन्तु

[बेगम शाह नवाज़—इस वर्ष इन्हें एम० बी० ई० की उपाधि मिली है।]

देखना तो यह है कि उनका प्रयत्न सार्थक हुआ है या नहीं, उससे भारत के इस पददलित समाज की स्थिति में सुधार हुआ है या नहीं। फिर क्या पुरुषों के आन्दोलन मध्य-श्रेणी के लोगों के हाथों नहीं चल रहे हैं? तब मध्य-वित्त की स्त्रियों पर ही यह आक्षेप क्यों? आज कांग्रेस के साथ जनता ज़रूर है। परन्तु कब से? स्त्रियाँ भी अपने अवसर की ताक में हैं, और जब उनका अवसर उन्हें प्राप्त

[कुमारी अर्वा जे० मेहता—ये नागपुर की एडवोकेट हैं और नागपुर सिविल स्टेशन कमिटी की सभानेत्री हैं। स्वर्गीय सर फ़िरोज़शाह मेहता की ये पौत्री हैं।]

होगा तब उनके भी साथ देश का सारा स्त्री-समाज खड़ा दिखाई देगा।

स्त्रियाँ अपने वित्त के अनुसार अपने समाज के उद्धार का प्रयत्न कर रही हैं और उनके प्रयत्न से उनमें काफ़ी

[कुमारी सत्यसुरी प्रथम महिला हैं जिन्होंने दिल्ली-विश्वविद्यालय के इतिहास में इस वर्ष बी० ए० पास किया है।]

जागरण हुआ है। यह उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम है कि आज वे पुरुषों-द्वारा उठाये गये आन्दोलनों में जा...

[सागर फ़िल्म की सविता—'तीन सौ दिन बाद' नामक चित्रपट में।]

साथ हैं और उनके मार्ग में बाधक नहीं हो रही हैं। उन्होंने पिछले असहयोग-आन्दोलन में भी उत्साह के साथ भाग ही नहीं लिया था, लाठियाँ खाई थीं, जेल तक गई थीं और अन्त तक कार्य-क्षेत्र में डटी रहीं। क्या शिक्षा के क्षेत्र में और क्या समाज-सुधार के क्षेत्र में उन्होंने आया हुआ अवसर कभी हाथ से जाने दिया है? तब उनके ऐसे कार्यों की पत्र-पत्रिकाओं में प्रशंसा होती है और उनके चित्र छापे जाते हैं तो यह तो उचित ही कहा जाना चाहिए। परन्तु लेखक महोदय को इसमें भी अनौचित्य जान पड़ता है। उन्हें जानना चाहिए कि जब पुरुष-लेखकों की रचनायें छपती हैं और उनमें से विशिष्टों के चित्र भी छापे जाते हैं तब उनके सम्बन्ध में लेखक महोदय ऐसी ही बात क्यों नहीं कहते हैं? स्त्रियाँ लिखना-पढ़ना न जानती होतीं—उनमें प्रतिभा या विलक्षणता न होती तो वे ऐसा कह भी सकते थे। परन्तु जब वे पुरुषों के समान ही लिखने में प्रवीण हैं, भाषण करने में निपुण हैं और बड़े बड़े आन्दोलनों का नेतृत्व कर सकी हैं तब उनका उपहास करना क्या इस युग के किसी पुरुष को शोभा दे सकता है?

हम मानते हैं कि अभी स्त्रियाँ उतनी उन्नत नहीं हैं, उनका आन्दोलन भी अभी सीमित ही है और कतिपय कारणों से वे अपने मन की नहीं कर पाती हैं, परन्तु हमें उनकी नीयत पर तो सन्देह नहीं करना चाहिए। हमारा तो यही कर्तव्य होना चाहिए कि हम उन्हें उन्नत होने को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दें और वे जो सहायता चाहती हों उसे उत्साह-पूर्वक प्रदान करें।

मध्य-श्रेणी की हों, चाहें उच्च श्रेणी की हों और चाहे निम्न श्रेणी की हों जब अवसर आयेगा, सबकी सब स्त्रियाँ अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए एक पंक्ति में समवेत दिखाई देंगी और उनका वह विराट् संगठित स्वरूप प्राप्त होगा इसी आयोजन की प्रेरणा से जो आज मध्य श्रेणी की स्त्रियाँ इस समय देश में कर रही हैं, जिन्हें श्रीयुत मनमथनाथ गुप्त की श्रेणी के लोग अपनी हँसी के खिलौने समझने में ही अपने 'पौरुष' की सार्थकता मानते हैं।

चीन की आदर्श नारी

चीन-जापान-संग्राम ने चीन की नारियों की तरफ़ संसार का ध्यान आकर्षित किया है। जहाँ के पुरुष ही कुछ काल पूर्व अफ़ीमची और कुसंस्काराच्छन्न मशहूर थे वहाँ की स्त्रियों के विषय में जाग्रति और उन्नति की कल्पना कैसे की जा सकती थी? पर इस युद्ध में वहाँ की नारियों ने देशभक्ति के भाव का जैसा परिचय दिया है उससे उनके विषय में पहले से फैले विचार निर्मूल होने लगे हैं।

चीन की नारियों में इस समय सबसे अग्रगण्य स्थान मैडम चियांग काई शेक का है। यदि यह कहा जाय कि चीन-जापान-युद्ध के इस रूप में इतने अधिक दिन तक चलते रहने का श्रेय आप को ही है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। यह कोमल महिला इस कठिन समय में रणचण्डी का अवतार बनकर दिन-रात घोर परिश्रम करती रहती है। वे चीन के वायुयान-विभाग की मंत्रिणी हैं और प्रायः स्वयं वायुयान-द्वारा रण-क्षेत्र का निरीक्षण किया करती हैं। विदेशों में चीन-सम्बन्धी प्रचार-कार्य का भार भी उन्हीं के ऊपर है। वे अँगरेज़ी और फ्रांसीसी भाषाओं में निपुण हैं और पुस्तक, समाचार-पत्र, विज्ञप्ति आदि के द्वारा संसार के निरपेक्ष राष्ट्रों का ध्यान चीन की तरफ़ बराबर आकर्षित किया करती हैं। चीन के सहायतार्थ उनकी अपीलें प्रायः अमरीका, इँग्लेंड के अख़बारों में निकला करती हैं और उनके प्रभाव से चीन की कष्ट-ग्रसित जनता और घायलों को काफ़ी सहायता प्राप्त हो जाती है।

मैडम चियांग काई शेक का चरित्र अत्यन्त पवित्र और आदर्श है। अपने पति और परिवार पर उनके आचरण की विशुद्धता का बड़ा प्रभाव पड़ता है, जिससे वहाँ सदैव प्रेम, शान्ति और आनन्द का साम्राज्य बना रहता है।

चीनी महिलाओं के उत्थान और जागरण के लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किये हैं, और उसके फलस्वरूप उनकी दशा में बहुत अन्तर पड़ गया है। उन्होंने उनको देश-प्रेम, शुद्धाचरण, पतिव्रत, निर्भीकता आदि गुणों की शिक्षा दी है। पश्चिमीय फ़ैशन को रोकने का भी उन्होंने प्रबल किया है और सरकारी तौर पर यह नियम बनवा दिया है कि कोई स्त्री ऐसे वस्त्र न पहने जिससे किसी प्रकार की निर्लज्जता प्रकट होती हो। उनकी चेष्टा से चीनी महिलायें वर्तमान युद्ध में भी अधिक से अधिक सहायता और स्वार्थ-त्याग कर रही हैं।

चित्र-संग्रह

[...]कल्ला के महाराज—हाल में ही ये विलायत की यात्रा समाप्त करके लौटे हैं।

श्रीयुत एल० [...]—काश्मीर-राज्य के माइनिंग इंजीनियर। ये भी हाल में ही विलायत से लौटे हैं।

राजा हरकिशनलाल कौल—ये पटियाला की प्रिवी कौंसिल के सभापति नियुक्त हुए हैं।

डाक्टर के० सी० नायक कडप्पा—इम्पीरियल एग्रीकल्चर कौंसिल की ओर से बर्लिन के कृषि-सम्मेलन में गये हैं।

आ० पौ० एस० पू० पू—ब्रह्मदेश की वर्तमान सरकार के मंत्रिमंडल के एक लोकप्रिय सदस्य।

दीवान बहादुर सर ए० रामास्वामी मुदालियर भारत वापस आगये।

पाल्टन की रानी साहबा—इन्हें इस वर्ष 'क़ैसरे हिन्द' मेडल मिला है।

श्री एन० आर० पिल्लई—जो व्यापारी वार्ता के सम्बन्ध में विलायत गये थे, वापस आगये हैं।

(कृपया इधर से देखिए)
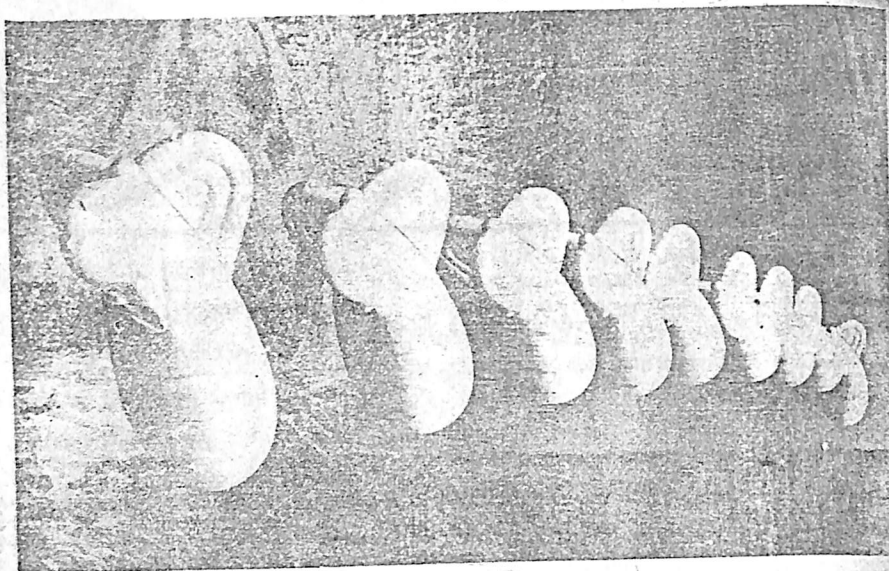
हवाई हमले से लन्दन को बचाने के लिए उसके इर्द-गिर्द आकाश में इस प्रकार के गुब्बारों की पंक्ति खड़ी की जा रही है। ये गुब्बारे हाथी के आकार के हैं।
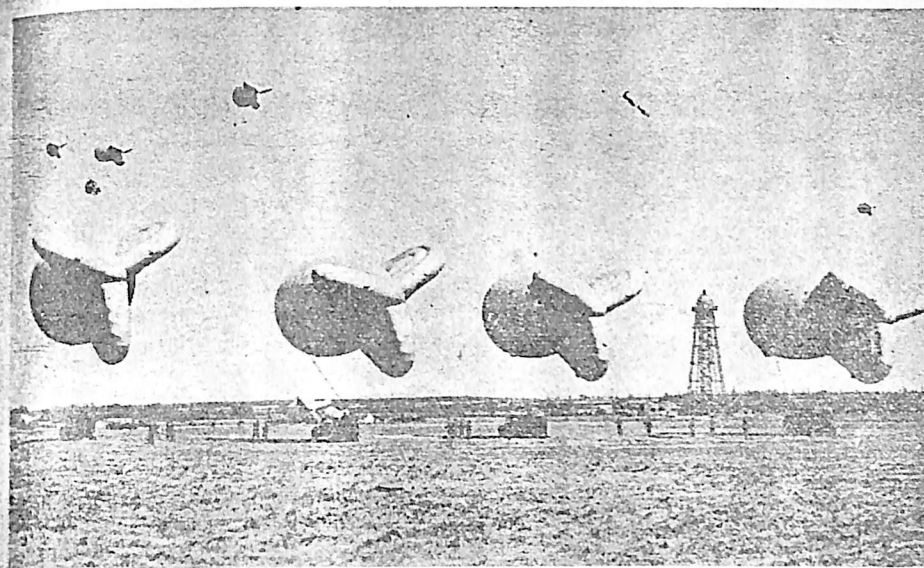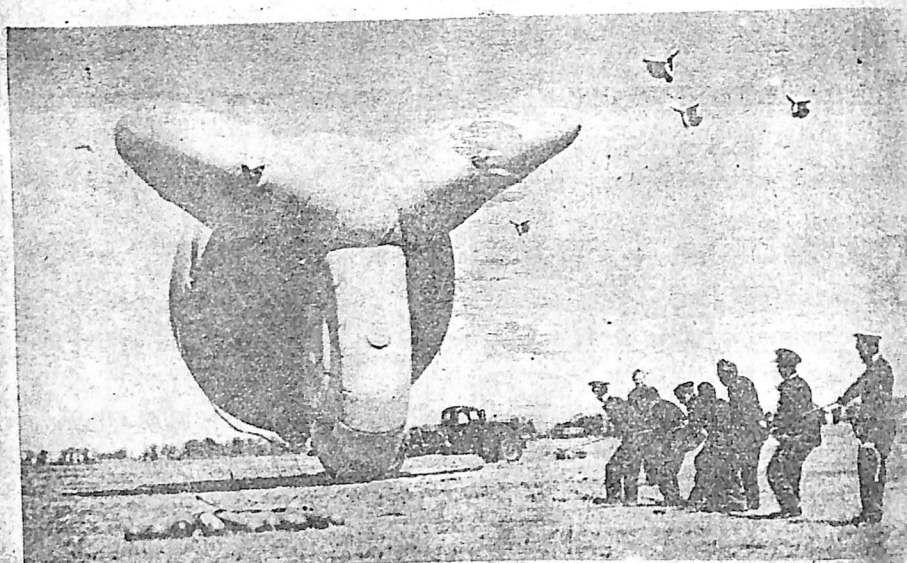
गुब्बारे ऊपर उड़ाये जा रहे हैं। यह कार्य्य इंजन से होता है।

रोम में मुसोलिनी (मध्य में खड़े हुए) अधीनता स्वीकार करनेवाले अबीसीनिया के सरदारों का स्वागत कर रहे हैं।

व्यवस्त रेखा शब्द पहेली

CROSSWORD PUZZLE IN HINDI

३००) शुद्ध पूर्तियों पर

२००) न्यूनतम अशुद्धियों पर

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर २६, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २४ सितम्बर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २४ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध-पूर्ति का नाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१–कांग्रेस का सबसे बड़ा अधिकारी।
४–विधवा का मृत पति के साथ जल मरना।
८–बच्चों का किसी वस्तु के लिए......जितना अच्छा लगता है बूढ़ों का उतना ही हास्यप्रद।
१०–एक प्रकार का चलता गाना।
११–एक प्रकार का छन्द।
१३–यदि यह न होता तो मनुष्य प्रकृति पर शासन कैसे करता।
१४–खेल-तमाशा करके निर्वाह करनेवाला। १५–युद्ध।
१६–मुमकिन नहीं कि जहाँ शराब बने वहाँ यह न हो।
१७–यदि यह नहीं तो कुछ नहीं।
१८–रसोईघर में यह ज़रूर मिलेगी।
२०–यहीं वह नाग रहता था जिसके फन पर श्रीकृष्ण जी ने नृत्य किया था।
२१–आधुनिक सिनेमा में इसके दृश्य प्रायः दिखाये जाते हैं।
२२–हल्दी से रँगी धोती जो कहीं कहीं वर या वधू को पहनाई जाती है।
२४–ख्याल अर्थात् चंग बजाकर गाया जानेवाला गीत।
२५–कुछ ऊँचा किनारा।
२९–बेवकूफ़ ही नहीं बदसूरत भी। ३०–ईख।
३१–आसमान में चलनेवाला।
३२–आज-कल राह चलते आदमी भी थोड़ा बहुत [illegible] रखते हैं।
३३–फ़ैशनेबुल स्त्रियाँ इसे अपने सौन्दर्य के अनुकूल बनाने का बराबर प्रयत्न करती रहती हैं।

ऊपर से नीचे

१–यह एक ही स्थान पर सदैव नहीं रहता। २–पलँग।
३–इससे तेल निकलता है।
४–इसकी ओर बढ़ने पर कभी कभी प्राणों पर [illegible] आती है। ५–भीम इसी से लड़ते थे!
६–महादेव जी। ७–राजा।
९–गृहत्यागी भी इसकी उपेक्षा नहीं करते!
१२–तीन पार्श्ववाला।
१६–इसका स्वभाव प्रायः मृदुल होता है।
१७–पान खानेवाले इसकी अक्सर तलाश करते हैं।
१९–किनारे पर बसनेवाला! २०–शिल्पकार।
२३–प्रसिद्ध मुग़लबादशाह।
२६–अतिशय......करै जो कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई। २७–रावण।
२८–घर-गृहस्थी की शोभा बहुत कुछ इसी पर निर्भर करती है। २९–गौओं के चरने का स्थान।
३१–इसकी क़द्र किसान ही कर सकता है!

वर्ग नं० २५ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २५ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

जा	म	वं	त		न	र	पि	शा	च
व		श	क			स		क	म
न	ली		ला	ल	चं	द	न		क
	ला			क	दा			बि	छा
भ	व		गु	ड़		उ	न	हा	र
र	ती		म	हा	दं	ड	धा	री	
म		पि	टा	रा		रा	स	ला	ली
	गा	य			भु	ज	मृ	ल	
छा		रा	ज		जा				ख
ज		ना	मा	व	ली		ब	ह	ल

वर्ग नं० २५ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २५ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति
नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। / १, २ हैं।
मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ________

पता ________

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म २० सितम्बर के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २६
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

इस लाइन से काटिए

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

प्रतियोगियों के पत्र और शंका-समाधान

अत्यन्त ख़ुशी

श्रीमान् वर्ग-सम्पादक जी वन्दे !

मैंने जब इस महीने की सरस्वती में अपना नाम देखा और वह भी "प्रथम पुरस्कार" में तो मुझको अत्यन्त ख़ुशी हुई। मैं अबकी का भी कर रहा हूँ आशा है सफल होऊँगा। मैं अपना चित्र इस पत्र के साथ भेजता

श्रीयुत प्रभातचन्द्र मिश्र

हूँ आशा है आप छाप देंगे और मुझको कृतज्ञ करेंगे। मुझको वर्गों के बाबत कुछ शंका है। ७ कोष्ठ में ऊपर से नीचे "तिय" नहीं है और "तिल" क्यों है ? आशा है आप इस शङ्का का उत्तर सितम्बर मास की सरस्वती में छापेंगे। अनेक धन्यवाद !

आपका
प्रभातचन्द्र मिश्र
c/o पी० सी० मिश्रा,
सिटी मजिस्ट्रेट,
कानपुर।

तिय नहीं तिल क्यों ?

वर्ग नम्बर २४ में ७ नम्बर पर ऊपर से नीचे दो शब्द बनते हैं। तिय और तिल। ऊपर के पत्र में वर्ग-निर्माता से यह प्रश्न किया गया है कि तिय क्यों नहीं है। तिल क्यों है ? प्रश्नकर्ता ने स्वयं भी अपनी पूर्ति में तिल शब्द भरा है। इसी से उनकी पूर्ति अशुद्धिरहित आई है। तथापि शंका का समाधान आवश्यक है।

अंक परिचय में जो संकेत दिया गया है उससे कोई भी आदमी जो थोड़ा भी समझदारी का प्रयोग करे इसी नतीजे पर पहुँचेगा कि ठीक शब्द तिल ही है। ज़रा संकेत पर एक बार फिर ग़ौर कीजिए—"पुराने कवियों ने इसका अच्छा वर्णन किया है।" यदि हम "तिय" शब्द पर विचार करते हैं तो ठीक नहीं उतरता। क्योंकि इसका वर्णन तो आज-कल के नये कवियों ने भी अच्छा किया है जैसे श्रीसुमित्रानन्दन पंत अपनी अनङ्ग शीर्षक कविता में लिखते हैं—

बजा दीर्घ साँसों की भेरी।
सजा सटे-कुच कलशाकार,
पलक पाँवड़े बिछा खड़े कर
रोओं में पुलकित प्रतिहार।
बाल युवतियाँ तान कान तक
चल चितवन के बन्दनवार,
देव ! तुम्हारा स्वागत करतीं,
खोल सतत-उत्सुक दृगद्वार।

परन्तु तिल का वर्णन कदाचित् ही किसी नये कवि ने किया हो। इसके विपरीत पुराने कवियों ने आम तौर पर तिल का वर्णन किया है। एक उदाहरण लीजिए :—

चन्द्रमुखी के चिबुक पै तिल यों लसत ललाम।
मानों चन्द्र बिछाय के बैठे शालग्राम॥

कवि मुबारक ने तो तिलशतक ही लिख डाला है। इसलिए संकेत पर दृष्टि रखते हुए चतुर प्रतियोगी यहाँ सिवाय "तिल" के और शब्द की बात ही नहीं सोच सकता।

'वर्ग-निर्माता'
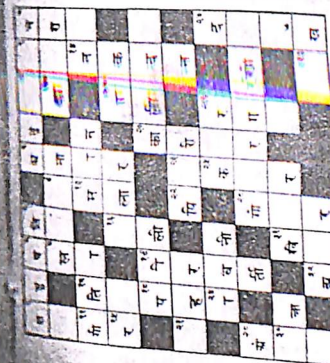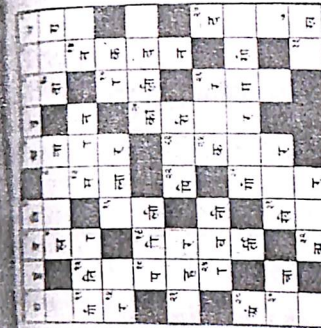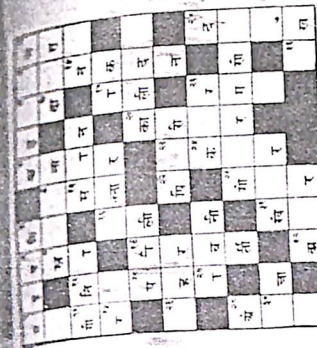
अपनी याददाश्त के लिए वर्ग नं० २६ की पूर्तियों की नकल यहाँ कर लीजिए, और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।
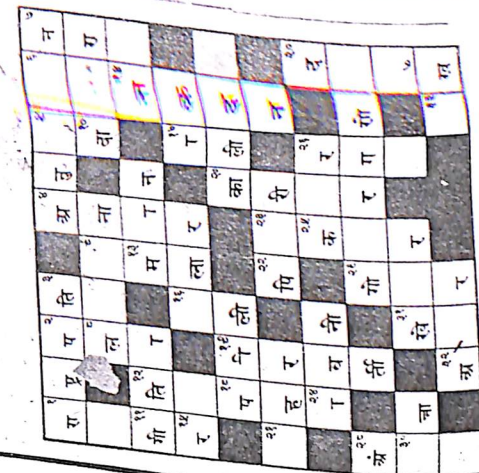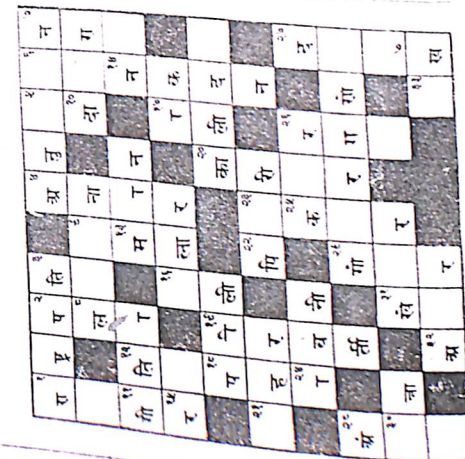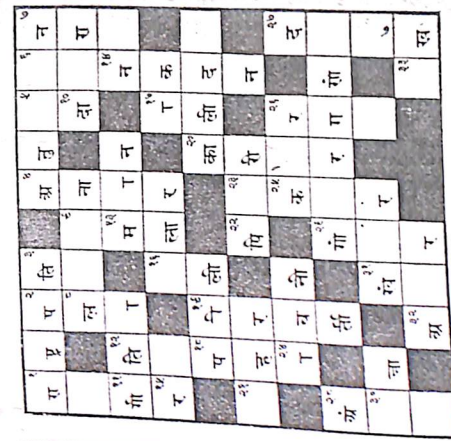
आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० २६ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो आने ख़ाली देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर २६ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २७ सितम्बर सन् १९३[illegible] को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।
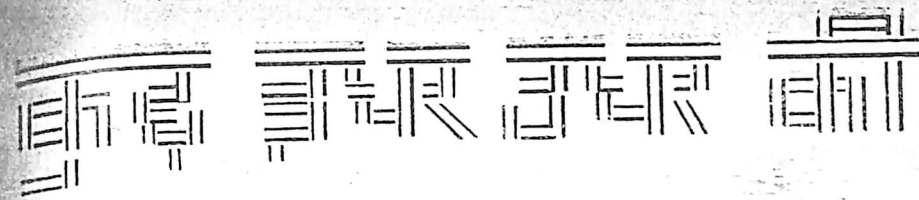
आज-कल कीर्तन-समारोहों का बड़ा ज़ोर बढ़ रहा है। प्रत्येक बड़े शहर में कीर्तनकारियों की मण्डलियाँ संगठित हो गई हैं। संगीत और नृत्य के साथ हरिनाम जाप की प्रथा पहले भी इस देश में थी। ऐसे समारोहों में स्त्रियाँ भी सम्मिलित होती थीं। परन्तु वर्तमान समय में कुछ लोग स्त्रियों को कीर्तनों से अलग ही रखना चाहते हैं। कराची में तो ओ३म मण्डली के सामने बाक़ायदा पिकेटिङ्ग जारी कर दी गई है। ओ३म मण्डली के संस्थापक जो 'दादा' के नाम से प्रसिद्ध हैं, अपने को कृष्ण का अवतार कहते हैं और उस मण्डली में जो स्त्रियाँ शरीक होती हैं वे अपने को गोपियाँ कहती हैं। ता० १५ अगस्त को जब क़रीब २० पिकेटरों ने द्वार पर खड़े होकर जानेवालों को रोकना चाहा तब एक स्त्री ने कहा—"मुझे दादा के पास जाने दो। वे कृष्ण हैं, मैं गोपी हूँ। मैं उनसे अलग नहीं हो सकती।" बाद का समाचार है कि पिकेटिङ्ग विफल हो रही है। सम्भव है, पिकेटिङ्ग करनेवालों का दादा के कृष्णत्व पर विश्वास न हो, पर सुधार का जो तरीक़ा उन्होंने सोचा है वह ठीक नहीं है। यदि 'दादा' में कोई पाखंड है तो उन्हें उसका भण्डाफोड़ करना चाहिए।

× × × ×

संयुक्त-प्रान्त में जिन नशेबाज़ों ने नशा छोड़ दिया है उनके मनबहलाव के लिए सरकार की ओर से सङ्गीत का प्रबन्ध किया जायगा। इसी से संयुक्त-प्रान्त में भी कीर्तनकारों का ज़ोर बढ़ रहा है। कदाचित् ही कोई शहर या क़स्बा हो जहाँ कीर्तन न होता हो। क्या अच्छा हो कि ये कीर्तन-मण्डलीवाले नशेबाज़ों को अपना सदस्य बना लें। इस प्रकार जहाँ वे अपनी संख्या बढ़ावेंगे, वहाँ मादक-द्रव्य-सेवन-निषेध में सरकार की बहुत बड़ी सहायता करेंगे। कहा जाता है कि बहुत-से लोग कीर्तन-मण्डलियों के सिर्फ़ इसी लिए विरुद्ध हैं कि वे राजनैतिक हैं। पर यदि ये मण्डलियाँ इस ओर ध्यान देने लगें तो वे वास्तव में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों की दात्री बन जायँ और फिर कोई उनकी ओर उँगली भी न उठा सके।

× × × ×

पिछली फ़रवरी में लखनऊ के श्री बालमुकुन्द बाजपेयी के पास दौरा अदालत में हाज़िर होने के लिए एक सम्मन भेजा गया। वह सिर्फ़ उर्दू में लिखा था और बाजपेयी जी उर्दू नहीं जानते थे, इसलिए उन्होंने सम्मन को लेने से इनकार कर दिया। इस कारण ज़िला-जज की अदालत में उन पर मुक़दमा चलाया गया, परन्तु जब जज को बताया गया कि सरकारी नियम के अनुसार सम्मन का हिन्दीवाला अंश भी भरा जाना चाहिए था तब मामला उनके ऊपर से उठा लिया गया। अब सब ज़िला-मजिस्ट्रेटों को हिदायत की जा रही है कि आइन्दा सम्मन का उर्दू-वाला अंश उर्दू में और नागरीवाला अंश नागरी में भरा जाय। जिस कार्य्य में काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा अपने लगभग ३० वर्ष के प्रयत्न में नहीं सफल हुई उसे लखनऊ के बाजपेयी जी ने थोड़ा-सा साहस का परिचय देकर एक दिन में सफल बना दिया। १८ अप्रैल १९०० के सरकारी मन्तव्य नम्बर ५८५-३-३४३-सी६८ के अनुसार अदालतों के सभी सम्मन उर्दू और नागरी अक्षरों में जारी होने चाहिए। श्री चन्द्रभान गुप्त के असेम्बली में प्रश्न करने पर सरकार ने इस बात को स्वीकार भी किया। ऐसी दशा में कोई कारण नहीं कि सम्मन हिन्दी में भी न लिखे जायँ? ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि हिन्दी-प्रेमी, ख़ास कर नागरी-प्रचारिणी सभायें समय समय पर उस साहस का परिचय देते रहें जिसका लखनऊ के बाजपेयी जी ने दिया है।

× × × ×

सियालदा के आनरेरी मजिस्ट्रेट की अदालत में नीलिमा सेन नामक एक त्रस्ता नारी ने अपने पति पर गुज़ारे का दावा करते समय जो रोमाञ्चकारी बयान दिया है वह मूकभाव से कष्ट सहन करनेवाली अगणित भारतीय युव-

तियों की कष्ट-कथा का एक नमूना है। उसके बयान का एक अंश इस प्रकार है—

मुझे कठिन से कठिन यंत्रणायें दी गईं। जाड़े में मैं रात के समय बाहर खुले में निकाल दी जाती थी और रात भर ठिठुरती हुई खड़ी रहती थी। खाना मुझे अक्सर नहीं दिया जाता था और मुझे भूखे पेट रह जाना पड़ता था। फिर भी मैं दो साल तक अपने पति के साथ रही।

एक बार मैं रस्सी में बाँध दी गई। इसके बाद मेरे पति ने मुझे जी भर कर दाँतों से काटा। पैर से ठोकरें मारीं और जी नहीं भरा तब घूँसों से भी खूब मारा। इसके बाद उनकी मा भी आ गई और मा बेटे ने मिलकर मेरे बाल पकड़ कर मुझे घसीटा। मेरे ससुर भी खड़े होकर यह सब दृश्य देख रहे थे और अपने पुत्र को मुझे पीटने के लिए और प्रोत्साहन दे रहे थे।

मेरे पिता ने मुझे ९००) के आभूषण तथा कपड़े देकर अपने यहाँ से विदा किया था। मेरे ये सारे आभूषण तथा कपड़े मेरे पति ने मुझसे छीन लिये।

ऐसी परिस्थितियों से लाचार होकर उस स्त्री को पति का घर छोड़कर पिता के घर आना पड़ा। हिन्दू-स्त्री को जब तक तलाक़ का अधिकार नहीं मिल जाता या जब तक दहेज़ आदि की प्रथा क़ानूनन वर्जित नहीं कर दी जाती तब तक ऐसी घटनाएँ होती ही रहेंगी।

× × × ×

शारदा-क़ानून में थोड़ा-सा सुधार हो जाने से अब आशा की जा सकती है कि बाल-विवाहों की रोक-थाम जा सकेगी। इस सम्बन्ध में काशी में पिछले दिनों फ़ैसला हुआ है जिसका खुलासा यह है—

काशी की बाल-विवाह-निषेध-समिति ने यहाँ सिटी-मजिस्ट्रेट श्री चाँदमल आई० सी० एस० की इजलास में यह मुक़दमा चलाया था कि पिछली लगन के दिनों चेतगंज हल्क़े के श्री मुक्खू तेली ने अपने १८ वर्ष से उम्र के लड़के की शादी उसी हल्क़े के श्री कन्हैयाला तेली की १४ वर्ष से कम उम्र की लड़की से की है। इस विवाह में कुँवर महाराज ने पुरोहित का कार्य किया है।

मजिस्ट्रेट ने लड़के और लड़की के पिता तथा पुरोहित को अदालत में तलब किया। दोनों पक्षों की बातें सुनकर मजिस्ट्रेट ने उन्हें दो दो सप्ताह की क़ैद और ७५); ७५) जुर्माने की सज़ा दी। इस मामले में हमारी सहानुभूति सबसे अधिक पुरोहित जी के साथ है। इतना तो बेचारों को विवाह कराने का पारिश्रमिक भी न मिला होगा। ऐसे घाटे के काम में आइन्दा वे कदाचित् ही हाथ लगावें। बाल-विवाह-सम्बन्धी मामलों में यदि पुरोहित लोग इसी प्रकार फँसते रहे तो इसमें सन्देह नहीं कि सारदा एक्ट का उद्देश्य सफल हो जायगा।

थका हुआ पति—प्रियतमे! इस बात से अपने मन को परेशान मत करो कि घर में चोर घुस आयेंगे तो क्या होगा? घर में उन्हें सिवाय धूल के और क्या मिलेगा?

(एक विलायती पत्र से)
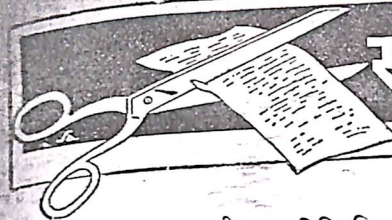
सामयिक साहित्य

कांग्रेस की वर्तमान परिस्थिति

मध्य-प्रान्त में मंत्रिमंडल का जो नया संगठन अभी हाल में हुआ है उसके फलस्वरूप कांग्रेस की कार्य-समिति तथा पार्लियामेंटरी बोर्ड पर बड़े तीव्र आक्षेप किये गये हैं। उन आक्षेपों का 'हरिजन' में एक लेख लिखकर महात्मा गान्धी ने कांग्रेस की कार्यसमिति के कार्य का बड़े सुन्दर ढंग से औचित्य सिद्ध किया है और इस सिलसिले में कांग्रेस को वर्तमान परिस्थिति का भी खुलासा कर दिया है। उक्त महत्त्वपूर्ण लेख का यह पिछला भाग विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है, जो इस प्रकार है—

अब हम ज़रा कांग्रेस के कार्य को समझ लें। आंतरिक विकास और शासन के लिए वह संसार की किसी भी लोक-तंत्रात्मक संस्था से अच्छी संस्था है। लेकिन इस लोक-तंत्रात्मक संस्था की स्थापना संसार की वर्तमान सबसे बड़ी साम्राज्यवादी सत्ता से लड़ने के लिए हुई है। इसलिए इस बाहरी काम के लिए उसे बतौर एक सेना के समझा जाना चाहिए। इस रूप में उसका लोकतन्त्रीपन चला जाता है। केन्द्रीय सत्ता को अपने अंतर्गत काम करने वाली विभिन्न इकाइयों पर अनुशासन लगाने और उसका पालन करने के लिए पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। प्रांतीय संस्थायें और प्रांतीय पार्लियामेंटरी बोर्ड केन्द्रीय सत्ता के अधीन हैं।

यह कहा गया है कि मेरा सिद्धान्त उस समय के लिए तो ठीक तरह होता है, जब कि सविनय अवज्ञा के रूप में सक्रिय युद्ध जारी हो; लेकिन उसके स्थगित होने की हालत में वह उपयुक्त नहीं हो सकता। मगर सविनय अवज्ञा अथवा सत्याग्रह के स्थगित होने का अर्थ युद्ध का स्थगित होना नहीं है। युद्ध तो तभी बन्द हो सकता है, जब कि भारत के पास अपना बनाया हुआ शासन-विधान हो। तब तक कांग्रेस को एक सेना के रूप में रहना ही होगा। लोकतन्त्री ब्रिटेन ने भारत में ऐसी कौशलपूर्ण पद्धति प्रचलित की है जिसे आप जब उसके नंगे रूप में देखेंगे तब मालूम होगा कि वह एक सर्वथा सुसंगठित और कारगर फ़ौजी नियन्त्रण है। वर्तमान भारत-विधान के अन्तर्गत भी वह इससे कम नहीं है। जहाँ तक वास्तविक नियन्त्रण का सवाल है, मन्त्री लोग महज़ गुड़ियाँ हैं। कलक्टर और पुलिसवाले जो आज उन्हें 'जी हुज़ूर' कहते हैं, अपने असली मालिक गवर्नर के ज़रा से आदेशमात्र पर मंत्रियों को अलग कर सकते हैं, गिरफ़्तार कर सकते हैं और जेल में ठूँस सकते हैं। यही कारण है कि मैंने यह कहा है कि कांग्रेस ने विधान बनानेवालों की धारणा के अनुसार उस पर अमल करने के लिए नहीं, बल्कि उसके बजाय स्वयं भारत-द्वारा निर्मित हितकारी विधान के स्थान लेने का दिन निकट लाने के उद्देश्य से उसका प्रयोग करने के लिए पद ग्रहण किया है।

अतः कांग्रेस को एक युद्धयंत्र के समान नियन्त्रण का केन्द्रीकरण करना और प्रत्येक विभाग तथा प्रत्येक कांग्रेसी का चाहे वह कितने ही बड़े पद पर क्यों न हो, पथप्रदर्शन करना और उससे बिना ननु नच किये आज्ञा-पालन की अपेक्षा रखना ज़रूरी है।

टीकाकार कहते हैं कि यह तो सीधा-सादा 'फ़ासिज़्म' है। पर वे यह भूल जाते हैं कि फ़ासिज़्म तो नंगी तलवार है। उसके नीचे तो डाक्टर खरे का सिर धड़ से अलग हो जाना चाहिए। कांग्रेस तो फ़ासिज़्म-विरोधी संस्था है, क्योंकि वह शुद्ध और निष्कलंक अहिंसा पर स्थित है। उसके सब आदेश नैतिक हैं। उसे अस्त्र-शस्त्र-ढाल-कवच से सुसज्जित काली कुर्तीवालों से अधिकार नहीं मिले हैं। कांग्रेस-राज्य में डाक्टर खरे नागपुर के वीर रह सकते हैं और विद्यार्थी तथा नागपुर (अथवा अन्य स्थानों) के नाग[illegible] मेरी या कार्य-समिति की निंदा कर सकते हैं, और जब तक वे अहिंसात्मक रहेंगे उनका कोई एक बाल भी बाँका न कर सकेगा। यह कांग्रेस का गौरव और उसकी शक्ति है, उसकी कमज़ोरी नहीं। उसे तो अपनी अहिंसा-

त्मक प्रवृत्ति से ही अधिकार मिला हुआ है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, सारे संसार में यही एक प्रमुख विशुद्ध अहिंसात्मक राजनैतिक संगठन है। और कांग्रेस को इस बात का गर्व रहना चाहिए कि वह अपने अनुयायियों और डाक्टर खरे जैसे ग़लती करनेवाले वीरों से, जब तक वे उसमें रहना पसंद करें, स्वेच्छापूर्वक और हृदय से अपनी आज्ञायें मनवाती है।

भारत में हवाई शिक्षण

संसार की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति जोखिम-पूर्ण है। सभी राष्ट्र अपनी अपनी रक्षा करने की चिन्ता में हैं। भारत के लोकनेता भी इस ओर से उदासीन नहीं हैं। यहाँ भी सैनिक शिक्षा की ओर राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान आकृष्ट हुआ है। पण्डित कृष्णकान्त मालवीय एम० एल० ए० ने तो वायुयान-सेना तैयार करने के लिए अपनी एक योजना तक बना ली है। इसी सम्बन्ध में उन्होंने 'हिन्दू' में एक रोचक लेख लिखा, जिसका संकलित अंश यह है—

इस समय हमारे सामने दो भारी प्रश्न हैं। एक विश्वव्यापी युद्ध के समय जिसका होना अवश्यम्भावी है, हम क्या करेंगे और यदि भारत पर हमला हुआ तो हम क्या करेंगे? क्या हम देश की रक्षा के लिए अपने को तैयार करने के लिए तत्पर हैं?

हमारे बहुत-से मित्र कहेंगे कि युद्ध का बजट वाइसराय के अधीन होने के कारण वे इस विषय में कुछ नहीं कर सकते। परन्तु मैं कहूँगा कि आज सात प्रांतों में कांग्रेस मन्त्रि-मंडल यह कार्य अपने हाथ में ले सकता है। यूनिवर्सिटियों-द्वारा ही वे लाखों नवयुवकों को इस प्रकार की शिक्षा दे सकते हैं।

हर्ष है कि माननीय पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त ने आत्मरक्षा के लिए ५०,००० रुपये बजट में रक्खे हैं। मैं सिफ़ारिश करूँगा कि यह धन दो-एक केन्द्रीय स्थानों पर ही चार-पाँच हज़ार युवकों को ट्रेन करने में लगाया जाय और इसके लिए पूरक ग्रांट दी जाय। हमें याद रखना चाहिए कि पाश्चात्य देशों में १४-१५ वर्ष के बच्चे 'ग्लाइडिंग' (बिना मशीन के जहाज़ों-द्वारा आकाश में उड़ना) सीखते हैं।

हमारे नवयुवक हवा और पानी में लड़ना सीखें। समुद्र के लिए तो इस समय मैं कोई योजना नहीं बना सकता, परन्तु हवा में उड़ना सीखने की योजना मेरे पास है। आशा है कि देश मेरा प्रस्ताव स्वीकार करके शीघ्र 'ग्लाइडिंग' (उड़न-खटोले) की योजना को कार्यरूप में परिणत कर देगा।

ग्लाइडर सस्ता होता है और उतरते समय १०-१५ मील की ही रफ़्तार होने के कारण इससे उतरने में भय भी नहीं रहता। अतः वायुयान से यह कहीं ज़्यादा सुरक्षित होता है। जर्मनी, फ़्रांस, इटली में तो सैकड़ों क्लब हैं। अकेले जर्मनी में ही ऐसे ३०० क्लब हैं। योरप में लड़के लड़कियाँ सब ग्लाइडिंग सीखते हैं। यह ग़रीबों का हवाई जहाज़ है। योरप में एक साधारण उड़न-खटोला (ग्लाइडर) २० पौंड (३०० रु०) और एक बढ़िया १०० पौंड (१५०० रु०) में आ जाता है।

रूस ने तो इसे अपनी पंचवर्षीय योजना का एक अंग बनाया था और ३०,००० किसान उड़ाके तैयार किये। और २०,००० किसान अभी इसकी शिक्षा पा रहे हैं।

एक अच्छा उड़न-खटोला (ग्लाइडर) आकाश में २४ घंटे तक ठहर सकता है, ९,००० फ़ुट तक ऊँचा जा सकता है और एक उड़ान में ३०० मील तक की यात्रा कर सकता है।

ब्रिटेन के हवाई मन्त्रि-मंडल के प्रतिनिधि लार्ड सेम्पिल जब सन् १९३४ में भारत आये थे तब उन्होंने भारत के युवकों को ग्लाइडिंग सिखाने और इसे विश्वविद्यालयों में जारी करने पर ज़ोर दिया था। अब मैं कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों और भारतीय विश्व-विद्यालयों से प्रार्थना करूँगा कि वे आगे बढ़ें और नवयुवकों को इसकी शिक्षा दें।

भारत में 'ग्लाइडर' बनाने का काम घरेलू उद्योग-धन्धों के रूप से ख़ूब फल-फूल सकता है। एक यन्त्रालय भी ५,००० रुपया की लागत में होगा। प्रत्येक प्रान्त के प्रत्येक ज़िले में एक ऐसा यन्त्रालय स्थापित किया जा सकता है और ग्लाइडर बनाये जा सकते हैं।

वास्तव में सारी योजना और सारा काम बड़ा सरल है। परन्तु हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इसी से हमारा हवाई बेड़ा नहीं तैयार हो जायगा। हमें तो देश में नवयुवकों को साहस और जोखिम-पूर्ण कार्यों में अग्रसर करने के साथ ही साथ आत्म-रक्षा के लिए अपनी फ़ौज तैयार करनी होगी।

लार्ड विलिंग्डन को उत्तर

१६ जुलाई को लन्दन की रायल एशियायटिक सोसाइटी का वार्षिक भोजोत्सव हुआ था। उस अवसर पर भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड विलिंग्डन ने एक व्याख्यान किया था और अपने भारत के १६ वर्ष के अनुभव के बल पर उसमें कहा था कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू यहाँ ब्रिटेन में अपने भाषणों में जो बातें कह रहे हैं उनसे उनके ९० फ़ी सदी देशवासी सहमत नहीं हैं। वायसराय साहब के इस कथन का भारत में काफ़ी प्रतिवाद हुआ है। भारतीय ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस के सभापति डाक्टर सुरेशचन्द्र बनर्जी ने भी उन्हें करारा उत्तर दिया है। उसका मुख्यांश यह है—

लार्ड विलिंग्डन को मालूम होना चाहिए कि पंडित जवाहरलाल नेहरू किसी राजनैतिक मिशन पर योरप नहीं गये हैं। जवाहरलाल जी की ही तरह का विचार रखनेवाले भारतीयों का यह दृढ़ विश्वास है कि भारतीय स्वाधीनता का संग्राम हिन्दुस्तान के बाहर नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान के ही धरातल पर और उसके ही लोगों-द्वारा लड़ा जायगा। अतएव पण्डित जवाहरलाल नेहरू भिक्षुक की झोली लेकर नहीं घूम रहे हैं। नेहरू जी एक ऐसे फ़ौलादी आदमी हैं जिनकी मनोवृत्ति भिक्षा माँगने और समझौता करने की नहीं है। वे इस तरह की कमज़ोरियों से सर्वथा मुक्त हैं। लेकिन फिर भी वे अपना यह फ़र्ज़ समझते हैं और ठीक समझते हैं कि इस समय हिन्दुस्तान में एक विदेशी ताक़त-द्वारा फ़ासिस्टी ढंग का जो शासन हो रहा है और जो लोग बड़ी ऊँची आवाज़ में यह घोषित करते हैं कि वे गणतन्त्र के संरक्षक एवं हिमायती हैं उसका पर्दा फ़ाश कर दें। बड़े साहस के साथ हिन्दुस्तान के वर्तमान शासन-प्रबन्ध की निन्दा एवं तीव्र आलोचना करने के साथ ही साथ जवाहरलाल जी ने इस बात की घोषणा करने में भी कोई हिचक नहीं की है कि हिन्दुस्तान ऐसे किसी भी विधान को हर्गिज़ मंज़ूर नहीं करेगा जो किसी विदेशी शक्ति-द्वारा उस पर ज़बरन लादा जायगा। बेशक, भूतपूर्व वायसराय को भारत की अवस्था का अनुभव है। लेकिन वह अनुभव उन्हें भारतीय जनसमूह के निकटतम सम्पर्क से नहीं प्राप्त है, बल्कि ऐसे ग़ैर-ज़िम्मेदार शासन से प्राप्त है जो हृदयहीन नौकरशाही-द्वारा काले क़ानूनों और दमनकारी आर्डिनेन्सों के बल पर चलाया जाता है। समग्र देश की घोर अशान्ति, शहरों में मज़दूरों की हड़तालों, ग्रामों में किसानों के प्रदर्शनों और गत निर्वाचन के परिणामों से ही भूतपूर्व वायसराय को मालूम हो जाना चाहिए कि हिन्दुस्तान की वास्तविक अवस्था क्या है। लेकिन नौकरशाही तो अपनी हुकूमत से कोई सबक़ सीखना नहीं चाहती। अगर परिस्थिति से सबक़ सीखने की क्षमता उनमें होती तो वे यह आसानी से समझ सकते थे। कांग्रेस का यह शक्तिशाली संगठन और मज़दूरों का ज़बर्दस्त जागरण हिन्दुस्तान में क्योंकर संभव हुआ है? भारत के इस क्रान्तिकारी परिवर्तन का एकमात्र कारण यही है कि भारतीयों का भीषण शोषण हो रहा है और दमनकारी क़ानूनों-द्वारा नागरिक स्वतन्त्रता का अपहरण किया जा रहा है।

भूतपूर्व वायसराय जो चाहें कहा करें। भारत का क्रान्तिकारी जनसमूह तीव्र गति से अग्रसर हो रहा है। निरर्थक गर्जन-तर्जन की अब उसे चिन्ता नहीं है।

भारत में साबुन का कारबार

भारत-सरकार के 'इंडस्ट्रियल रिसर्च ब्यूरो' ने 'भारत में साबुन का बनना' नाम का एक बुलेटिन प्रकाशित किया है। उससे प्रकट होता है कि भारत में साबुन के कारबार का कैसा विकास हुआ है और उसके अभ्युदय की कितनी सम्भावना है। उक्त बुलेटिन का ज्ञातव्य अंश इस प्रकार है—

भारत के इस बढ़ते हुए उद्योग-धन्धे का प्रारम्भ बहुत ही सामान्य ढङ्ग से हुआ था। १८७९ में नार्थ वेस्ट सोप क[illegible] ने मेरठ में एक छोटा सा साबुन बनाने का कारख़ाना खोला, जिसमें स्थानीय उपयोग के लिए बहुत थोड़े परिमाण में साबुन बनता था। बाद में इसी कम्पनी ने कलकत्ते में भी एक कारख़ाना स्थापित किया। इन कम्पनियों को तो अच्छी सफलता न मिल सकी। रिसर्च

ब्यूरो के बुलेटिन में दिये गये हैं जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। इसका नाम 'भारत में साबुन-साज़ी' है।

साबुन के उद्योग-धन्धे को १९०५ के स्वदेश-आन्दोलन से प्रोत्साहन मिला था। लेकिन जो कारखाने उस समय चल रहे थे, ख़ास कर बंगाल के कारख़ाने, वे पूँजी और वैज्ञानिक अनुभव के अभाव में पनप न सके।

इस उद्योग-धन्धे के उत्कर्ष का दूसरा युग उस समय उपस्थित हुआ जब योरप का महायुद्ध छिड़ा हुआ था। अब की बार इस उद्योग-व्यवसाय के पैर अच्छी तरह जम गये। देश की अन्दरूनी माँग और फ़ौजी माँग के कारण इस व्यवसाय को बहुत अधिक प्रोत्साहन मिला।

सर फ्रेडरिक निकल्सन की प्रेरणा से मदरास-सरकार ने १९१४ में मदरास प्रान्त के तानूर गाँव में एक कारखाना स्थापित किया। इसके बाद मैसूर और हैदराबाद में भी ऐसे ही कारख़ाने खोले गये।

१९१८ में ब्रिटिश भारत में ११ कारख़ाने ऐसे थे जिनमें प्रत्येक में प्रतिवर्ष ६०० टन साबुन बनाया जाता था और ४६ ऐसे थे जिनमें प्रतिवर्ष ४०० टन से कम बनाया जाता था। इस प्रकार प्रतिवर्ष कुल २२,००० टन साबुन बनता था। लेकिन उस समय शृंगार का साबुन सिर्फ़ ७१० टन ही बनता था।

इस समय ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के एक हज़ार छोटे-बड़े कारख़ानों में प्रतिवर्ष लगभग ७५,००० टन साबुन बनता है, जिसका मूल्य प्रतिवर्ष ३,४२,५०,००० रुपया होता है। इसमें से ५०,००० टन साबुन घर-गृहस्थी के काम का होता है, जिसका मूल्य २,००,००,००० रुपया होता है, १५,००० टन साबुन शृंगार के लिए बनता है जिसका मूल्य १,१२,५०,००० रुपया होता है और १०,००० टन कल-कारख़ानों के लिए बनता है जिसका मूल्य ३०,००,००० रुपया होता है।

आज से २२ साल पहले भारत में प्रतिव्यक्ति पीछे ९ पौण्ड साबुन विदेशों से आता था या यों कहिए कि प्रतिवर्ष १८,५०० टन साबुन जिसका मूल्य ७५ लाख होता था; लेकिन अब तो भारत में ही साबुन का उत्पादन तिगुना बढ़ गया है जो सिलोन, ईराक, अदन और दूसरे पड़ोसी देशों को भेजा जाता है।

भारत में साबुन का उत्पादन बढ़ जाने से आयात भी घट गया है। १८७६-७७ में भारत में ३,३०,००० रुपया का साबुन बाहर से मँगाया गया था। आयात की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती ही गई, यहाँ तक कि १९२०-२१ में २,०४,३०,००० रुपया का साबुन बाहर से आया। लेकिन उसके बाद तो आयात में ह्रास होने लगा। यहाँ तक कि १९३६-३७ में बाहर से केवल २६,८५,६३२ रुपया का ही साबुन भारत आया।

———

भारत की माँग

पण्डित जवाहरलाल नेहरू अपने योरप-प्रवास में दो महीने तक रहे। वहाँ उन्होंने कतिपय सभाओं में भाषण किया और वहाँ के प्रसिद्ध व्यक्तियों और उच्च अधिकारियों से भेंट-मुलाकात भी की। वहाँ से रवाना होते समय उन्होंने एक वक्तव्य दिया है, जो 'मंचेस्टर गार्जियन' नाम के पत्र में प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने ब्रिटेन को सम्बोधन करके भारत की माँग स्पष्ट शब्दों में रक्खी है। उनके वक्तव्य का सारांश यह है—

प्रायः दो महीने तक इँग्लेंड में रहने के कारण मुझे यहाँ के बहुत-से विशिष्ट राजनैतिक नेताओं से मिलने और बातचीत करने का अवसर मिला है। मैंने भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर बातें की हैं। मैं यह साफ़ कह देना चाहता हूँ कि भारतीय समस्याओं के सम्बन्ध में उनका मत बदल गया है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत की क्रमशः बढ़ती राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के सम्बन्ध में भारतवासियों का दृढ़ संकल्प ही इस मन-परिवर्तन का कारण है। आसन्न विश्व-संकट के सम्बन्ध में भारत जो रुख़ अख़्तियार करेगा उसी पर उस सङ्कट-सम्बन्धी समस्या का समाधान निर्भर है। चाहे कोई संकट क्यों न उपस्थित हो, भारतवर्ष साम्राज्य-विरोधी दृष्टि से ही उस पर विचार करेगा। विश्वसंकट के सम्बन्ध में भारतवर्ष किस मनोभाव का अवलम्बन करेगा, इसे वह स्वयं ही निर्णय करेगा और एकमात्र स्वाधीन भारत ही ऐसा कर सकता है। पराधीन भारत के ऊपर ज़बर्दस्ती अगर कोई सिद्धान्त लाद दिया जायगा तो उसका विरोध करने के सिवा उसके लिए और कोई उपाय न रह जायगा। जब तक वे समस्यायें बलपूर्वक हमारे ऊपर लदी हैं तब तक हम उनका विरोध ही करते रहेंगे और अपने को शक्तिशाली बनाते रहेंगे। अगर वह दबाव उठा लिया जायगा तो सारी परिस्थिति में एक प्रकार का परिवर्तन होगा और उस समय ऐसे वातावरण की सृष्टि होगी कि वहाँ संघर्ष का कोई भाव ही न रह जायगा। ब्रिटिश सरकार अगर स्थिर करे और इस बात की घोषणा कर दे कि भारतवासी स्वयं अपने लिए शासनतन्त्र बना सकेंगे और उन्हें इस सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता दी जायगी तो बस इतने से काम बन जायगा।

ऐसी घोषणा कैसे कार्य में परिणत की जा सकती है, इस पर फ़ौरन विचार होना चाहिए और उसके सम्बन्ध में उचित व्यवस्था करनी होगी। यह एकमात्र गणपरिषद की सहायता-द्वारा ही हो सकता है। हमारी यह दृढ़ धारणा है कि इस कार्यक्रम के सम्बन्ध में मित्रता-पूर्ण व्यवस्था सम्भव होगी। इसलिए अब इस प्रकार की व्यवस्था में देर करना उचित न होगा।

कांग्रेस अब इस सम्बन्ध में फिर से आगे न बढ़ेगी। कांग्रेस ने मनोभाव की घोषणा साफ़ तौर से कर दी है। इसलिए अब इस सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लमेंट को ही आगे बढ़ना चाहिए। ब्रिटिश सरकार अगर बार-बार यही कहती रह जायगी कि भारतीय शासन-विधान में कोई परिवर्तन न होगा तो इस समस्या का समाधान न होगा। ब्रिटिश सरकार के लिए यही कहना होगा कि भारतीय शासन-विधान अस्थायी और परीक्षामूलक है और भारतवासी अपने लिए जो विधान बनायेंगे उसे स्थान देने के लिए यह व्यवस्था उठा ली जायगी। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

———

गाँवों में डाक्टरी सहायता की योजना

बिहार की प्रान्तीय सरकार देहात में चिकित्सा की व्यापक व्यवस्था करने का आयोजन कर रही है। इस सम्बन्ध में पटना को 'नवशक्ति' लिखती है—

यह बात सर्वविदित है कि इलाज की सुविधा जितनी शहरों में है, उसका सहस्रांश भी गाँवों में नहीं है। फल यह होता है कि साधनहीन ग्रामीणों को इलाज के अभाव में घुल घुलकर मरना होता है। उनके इस अभाव की पूर्ति की ओर सरकार का ध्यान जाना बहुत ज़रूरी है, लेकिन प्रान्त की पिछली सरकारों ने इसे ओर से पूर्ण उदासीनता ही दिखाई। हर्ष की बात है कि वर्तमान लोकप्रिय सरकार ने इस अहम मसले को अपने हाथ में लिया है और वह हर ज़िले में कुछ चुने हुए केन्द्रों में चार चार चिकित्सक बसाने की व्यवस्था करेगी। इन चिकित्सकों में एलोपैथ, वैद्य, हकीम और होमियोपैथ—सभी प्रचलित प्रणालियों के चिकित्सक होंगे। सरकार एलोपैथों को ४०) मासिक तथा इतर तीन तरह के चिकित्सकों को ३०-३० रुपया मासिक सहायता दिलायेगी। ओषधि तथा अन्य आवश्यक चिकित्सा-सामग्रियों के लिए इन्हें २४०) सालाना सहायता अलग दी जायगी। यह योजना प्रयोगात्मक है और ५ वर्षों तक इसका परिणाम देखने के बाद इसे और अधिक विस्तृत किया जायगा।

इस योजना को कैसी सफलता मिली और आगे कैसी सफलता मिल सकती है, यह तो प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर मालूम होगा, लेकिन इतना तो हम निश्चयपूर्वक कह ही सकते हैं कि जिस सद्भावना से इस योजना को ईजाद किया गया है, यदि उसी सद्भावना से इसे कार्यान्वित किया गया तो निस्सन्देह इसको आशातीत सफलता मिलेगी और आगे इसे काफ़ी विस्तार के साथ लागू करना होगा।

इस स्थल पर हम अपनी ओर से एक सुझाव पेश कर देना चाहते हैं। एक तो एलोपैथी इस देश की प्रणाली नहीं है और दूसरे इसका ज्ञान और प्रयोग बहुत महँगा पड़ता है। फल यह होता है कि इसकी चिकित्सा भी बहुत महँगी पड़ती है और फलतः गाँववालों के लिए यह बहुत ही अनुपयुक्त साबित होती है। इसके विपरीत वैद्यक, यूनानी और होमियोपैथी चिकित्सा-प्रणालियाँ काफ़ी सस्ती पड़ती हैं। इनसे ग़रीब ग्रामीण अपेक्षाकृत अधिक लाभ उठा सकते हैं। एक वैदेशिक चिकित्सा-प्रणाली होते हुए भी होमियोपैथी बहुत सस्ती और लाभप्रद साबित हुई है। ऐसी स्थिति में हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि इस ग्रामीण चिकित्सा-योजना में एलोपैथी के बजाय वैद्यक, [illegible]मियोपैथी और यूनानी पद्धतियों को अधिक प्रोत्साहन दिया जाय। वैद्यों, होमियोपैथों और हकीमों को प्राथमिक आवश्यकता की स्वास्थ्य-सम्बन्धी हिदायतों की जानकारी रहने से ग्रामीणों को चीर-फाड़ के अनिवार्य केस छोड़कर और हालतों में एलोपैथी की कोई ज़रूरत नहीं महसूस होगी। सुनने में आया है कि इन चिकित्सकों के लिए

प्राइवेट बुलाहट पर कहीं जाने पर फ़ीस लेने की कुछ सुविधा रहेगी। यहाँ हम यह व्यवस्था ज़रूरी समझते हैं कि इनको यह स्पष्ट हिदायत रहे कि यदि रोगी धनी न हो तो एक बार क्या अनेक बार उसके घर जाने पर भी ये फ़ीस न लें।

कांग्रेस और हिंसा

महात्मा गांधी 'हरिजन' में लिखते हैं—

महादेव ने कांग्रेसवादियों-द्वारा की जा रही हिंसात्मक कार्रवाइयों की शिकायतें मुझे बतलाई हैं। इनमें से एक शिकायत तो यह है कि शान्त पिकेटिंग के नाम पर धरना देनेवाले लोग ऐसे उपायों का सहारा ले रहे हैं जो हिंसा की हद तक पहुँच जाते हैं—जैसे ज़िन्दा आदमियों को खड़ा करके दीवार-सी बना लेते हैं, जिसे अपने को या दीवार बनानेवालों को चोट पहुँचाये बग़ैर कोई पार नहीं कर सकता। शान्त पिकेटिंग मेरी चलाई हुई है, लेकिन मुझे ऐसा एक भी उदाहरण याद नहीं जिसमें मैंने ऐसी पिकेटिंग को प्रोत्साहन दिया हो। एक मित्र ने इस सम्बन्ध में धरासना का हवाला दिया है। वहाँ मैंने नमक के कारख़ाने पर क़ब्ज़ा करने की बात ज़रूर सुझाई थी, लेकिन इस मामले में वह बात बिलकुल लागू नहीं होती। धरासना में तो हमारा लक्ष्य नमक के कारख़ाने पर था, जिसे सरकार के क़ब्ज़े से छीनकर अपने क़ब्ज़े में रखना था। उसे पिकेटिंग मुश्किल से ही कहा जा सकता है। लेकिन यह तो शुद्ध हिंसा है कि कर्मचारियों या मज़दूरों के आगे खड़े होकर उन्हें अपने काम पर जाने से रोका जाय, इसलिए इसे तो छोड़ ही देना चाहिए। ऐसा करनेवाले कांग्रेसवादी अगर इससे बाज़ न आयें तो मिलों या अन्य कारख़ानों के मालिकों का इसके लिए पुलिस की मदद लेना बिलकुल वाजिब होगा और कांग्रेसी सरकार उसे देने के लिए बाध्य होगी।

दूसरा जो उदाहरण मेरे नोटिस में लाया गया वह यह है कि कांग्रेसवादियों के एक दल ने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा स्वीकृत कांग्रेस कमेटी के दफ़्तर पर क़ब्ज़ा कर लिया है। यह तो निश्चित रूप से अक्षम्य उद्दंडता है।

तीसरा उदाहरण शोर मचाकर या गड़बड़ करके सभा भंग करने का है।

चौथा पूँजीपतियों को बुरा-भला कहकर उन्हें लूट लेने के लिए लोगों को उभाड़ने का है।

ये सब हिंसा और अनुशासन-हीनता के स्पष्ट उदाहरण हैं। मुझसे कहा गया है कि ऐसी गड़बड़ी बढ़ रही है। मेरे सामने एक पत्र है, जिसमें इस बात की इस तरह शिकायत की गई है कि जहाँ पुराने शासन में पूँजीपतियों के साथ आम तौर पर न्याय होता था, वहाँ अब कांग्रेसी हकूमत में उनके साथ न केवल न्याय ही नहीं होता, बल्कि उन्हें अपमानित और लाञ्छित भी किया जाता है।

इसमें कोई शक नहीं कि ब्रिटिश पद्धति पूँजीवाद का पक्ष लेती है जब कि कांग्रेस लाखों भूखों मरनेवालों के साथ पूर्ण न्याय का उद्देश्य रखने के कारण पूँजीवाद का पक्ष नहीं ले सकती। लेकिन जब तक कांग्रेस की बुनियादी नीति अहिंसा है तब तक वह छीना-झपटी का आश्रय नहीं ले सकती। वह किसी कांग्रेसवादी या कांग्रेसवादियों के दल को अपने हाथ में क़ानून लेने की इजाज़त नहीं दे सकती, फिर किसी भी वर्ग के लोगों को अपमानित या लाञ्छित तो वह होने ही कैसे दे सकती है? न हिंसात्मक पिकेटिंग या हिंसा को उत्तेजना देनेवाले भाषणों को ही कांग्रेस बर्दाश्त कर सकती है।

हिंसा पर अगर समय रहते रुकावट न लगाई गई, तो कांग्रेस अपने आन्तरिक पतन से ही चकनाचूर हो जायगी। अतः प्रान्तीय तथा मातहत कमेटियों के अध्यक्षों का यह काम है कि वे फ़ौरन इस बुराई को जड़ से उखाड़ दें। हाँ, अगर कांग्रेसवादी आम तौर पर अहिंसा से ऊब गये हों तो जितनी जल्दी कांग्रेस के विधान की पहली धारा बदल दी जाय, उतना ही देश और सम्बन्धित व्यक्तियों के हक़ में अच्छा होगा। इस महान् संस्था के बारे में यह तो नहीं ही कहा जाना चाहिए कि उसने असत्य और हिंसा को ढाँपने के लिए सत्य और अहिंसा को अपना लबादा बना रक्खा है।

प्रख्यात ज्योतिषी की भविष्यवाणी

मिस्टर डेसमंड योरप के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं। उन्होंने 'डेली मिरर' नामक प्रसिद्ध अँगरेज़ी-पत्र में एक सनसनीपूर्ण भविष्यवाणी की है, जिसके कुछ अंश नीचे दिये जा रहे हैं—

संसार के लिए विशेषकर ब्रिटिश साम्राज्य के लिए—आगामी चार वर्ष बहुत संकटपूर्ण होंगे। मेरा विश्वास है कि दो-तीन वर्षों के अन्दर ब्रिटेन को छोड़कर समस्त संसार एक महासमर में लिप्त दिखाई पड़ेगा।

सन् १९४२ अधिनायक-तन्त्र के लिए सांघातिक वर्ष होगा। आज का हिटलर शासित जर्मनी उस समय कुछ दूसरा ही हो जायगा। योरपीय युद्ध उतना भीषण न होगा जितना कि गृहयुद्ध। इस समय हिटलर निराश है। मुसोलिनी की भी ऐसी ही हालत है। उसकी निराशा का पता मुझे उस समय मिला था जब मैंने योरप में उसके साथ बातें की थीं।

स्टालिन तो सबसे अधिक निराश है। इन तीन डिक्टेटरों में से एक हिंसा-द्वारा मृत्यु के घाट उतारा जायगा और दूसरा मरेगा। जर्मनी और आस्ट्रिया में यहूदी शासन करेंगे न कि हिटलर। इटली अपनी वर्तमान संकटापन्न आर्थिक अवस्था का सामना कर सकता है, परन्तु १९४१ के बाद जो संकट आयेगा उससे वह न उबरेगा।

हिटलर के भाग्य का निपटारा १९४२ में हो जायगा। उस समय जर्मनी में गृहयुद्ध आरम्भ होगा और हिटलरशाही का अन्त होगा।

रूस में भी हम दो वर्ष के अन्दर स्टालिन के ख़ूब संगठित अधिनायक-तन्त्र के विरुद्ध गृहयुद्ध देखेंगे। इस गृहयुद्ध में स्टालिन मारा जायगा। इटली, रूस और जर्मनी में अन्दर ही संघर्ष होगा। जापान में लड़ने की ताक़त नहीं है। जापान की युद्ध-सम्बन्धी बातें जो समाचार-पत्रों में आकर्षक रूप में प्रकाशित होती हैं उनमें कुछ भी सार नहीं है। जापान की मातायें कह रही हैं, हमारे लड़के लौटा दो। जापानी सैनिकों को पद पद पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

आगामी चार वर्षों के बाद इँग्लेंड में प्रजातान्त्रिक शासन-व्यवस्था न रहेगी, एक प्रकार का अधिनायक-तन्त्र क़ायम होगा।

साम्यवाद का जीवन थोड़ा रह गया है। स्टेलिन के अधिनायक-तन्त्र के ध्वंस होते ही उसका भी अस्तित्व लुप्त हो जायगा।

वंगीय राजनैतिक चक्र

बङ्गाल में हक मंत्रि-मंडल पर आख़िर अविश्वास का प्रस्ताव नहीं ही पास हो सका। परन्तु उस पर सङ्कट के बादल अभी मँडरा रहे हैं। छात्रों की एक सभा में भाषण करते हुए राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस ने इस सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं वे ज्ञातव्य हैं। वे कहते हैं—

अन्ततो गत्वा साम्प्रदायिकता कृत्रिम और अवास्तविक चीज़ है और वह लंगड़ी है।

यह सर्वसम्मत बात है कि भारत ने स्वतन्त्र होने का संकल्प कर लिया है। इसलिए समस्या यह नहीं है कि भारत आज़ादी कैसे प्राप्त करे, मगर समस्या यह है कि जल्दी से जल्दी कैसे उसे वह प्राप्त करे और उसको क़ायम रक्खे। इसलिए स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए कोशिश करते हुए स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर उसको क़ायम रखने के लिए भी शक्ति-संग्रह करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सात प्रान्तों में ब्रिटिश गवर्नमेंट के आदेश से शासन नहीं हो रहा है; बल्कि कांग्रेस-कार्यसमिति के आदेशानुसार, और यदि अन्य प्रान्तों में भी कांग्रेसी सरकारें स्थापित हुईं तो इसका अर्थ होगा कि कांग्रेस का प्रभाव और अधिक बढ़ गया है।

कांग्रेस ने केवल बल-संग्रह के विचार से मन्त्रित्व ग्रहण किया है और जिस क्षण यह मालूम हो जायगा कि मन्त्रित्व ग्रहण करने का असर शक्ति-संग्रह और बलवान् बनाने के बजाय पतनकारी हो रहा है तब कांग्रेस मन्त्रियों को शासन की बागडोर रख देने की सलाह देगी। यही वजह है कि कांग्रेस पार्लमेंटरी कार्यों के बीच विभिन्न प्रान्तों के कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों और धारा-सभा के कांग्रेसी सभ्यों की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति जगाये रखने का प्रयत्न करती है।

यद्यपि बङ्गाल असेम्बली में विरोधी दल मन्त्रि-मण्डल के विरुद्ध एक भी अविश्वास के प्रस्ताव को पास कराने में सफल नहीं हुआ है, मगर वह हाउस में अपनी ताक़त बढ़ाने में अब भी प्रयत्नशील है और उसने अपनी विजय की आशा नहीं खोई है।

विरोधी दल के विभिन्न दलों की एक बैठक कांग्रेस पार्टी के चीफ़ ह्विप श्री जे० सी० गुप्त के मकान पर विभिन्न

दलों में और अधिक सहयोग के साथ काम करने और अपना बल बढ़ाने के उपायों पर विचार करने के लिए हुई। उसमें देहाती जनता को शिक्षित करने पर भी विचार हुआ, जिससे वह अविश्वास के प्रस्ताव पर अन्तिम दिन की बहस में शरत बाबू के द्वारा बताये गये कार्यक्रम को मन्त्रि-मण्डल से स्वीकार कराने के लिए आन्दोलन कर सके।

बैठक में जो लोग उपस्थित थे उन्होंने कुछ राजनैतिक दलों-द्वारा साम्प्रदायिक भावनाओं से नाजायज़ फ़ायदा उठाने की बाबत विशेष रूप से विचार किया और वे आशा करते हैं कि बैठक-द्वारा निश्चित कार्य-क्रम को अमल में लाने से विभिन्न सम्प्रदायों की माँग पूरी हो जायगी और उनका साम्प्रदायिक सन्देह दूर हो जायगा।

शिक्षा में क्रान्ति

'आज' अपने एक अग्रलेख में लिखता है—

संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा-मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द जी बिजली के तार हैं। जिसे छू देते हैं वह तुरन्त उत्तेजित और सजीव हो जाता है। इस प्रान्त में तरह तरह के सुधार हुए हैं और होंगे। पर, किसी अन्य मन्त्री के कार्य की अवहेला किये बिना हम कह सकते हैं कि शिक्षा-विभाग में इस समय जो जान आ गई है वह अन्यत्र नहीं दिखाई देती। प्राथमिक से लेकर उच्चतम शिक्षा-संस्थाओं में एक हलचल-सी उत्पन्न हो गई है। सर्वत्र नई बातें सुनाई देती हैं, नई आशा दिखाई देती है। शिक्षा-सम्बन्धी कमेटियाँ तो इतनी नियुक्त की गई हैं कि उन सब पर नज़र रखना भी हम ग़रीब पत्रकारों के लिए कठिन हो रहा है। परिवर्तन की क्रान्ति का वातावरण शिक्षा-विभाग में और शिक्षा-संस्थाओं में उत्पन्न हो गया है। इस क्रान्ति में ही हमारे शिक्षा-मन्त्री स्वस्थ रहते हैं—बेकार रहना जैसे जीवन के लिए वैसे ही उनके स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। हम आशा करते हैं कि सारा शिक्षा-विभाग, प्राथमिक स्कूल से लेकर उच्चतम शिक्षा देनेवाले कालेज तक और समस्त शिक्षा-संस्थाएँ, मन्त्री के इस भाव से भावित होंगी और जो क्रान्ति हो रही है उसे सफल कर दिखावेंगी।

शिक्षा-विभाग में जिस क्रान्ति-शकट को श्री सम्पूर्णानन्द जी ने गति दे दी है उसके दो प्रधान चक्र हैं। ये दो कमेटियाँ हैं। एक कमेटी आचार्य नरेन्द्रदेव जी की अध्यक्षता में साधारण शिक्षा का पुनः संघटन करने की और दूसरी कमेटी श्रद्धेय श्री भगवानदास जी की अध्यक्षता में संस्कृत शिक्षा का पुनः संघटन करने की चेष्टा कर रही है। इनके यत्न को सफल करनेवाले शिक्षक प्रस्तुत करने का काम प्रयाग में प्रारम्भ किया गया है। यह वह प्रायोगिक ट्रेनिंग कालेज है जो गत मङ्गलवार को प्रयाग में श्री सम्पूर्णानन्द जी ने खोला है। इस अवसर पर आपने जो भाषण किया था उससे शिक्षा-सुधार के सम्बन्ध में आपके विचार और भाव का कुछ आभास मिल जाता है।

किसी कला को शिक्षा का मध्यबिन्दु बनाने का अर्थ यह नहीं है कि शिक्षा सिर्फ़ मज़दूरी की हो। जिस भाषण में माननीय मंत्री ने इस मध्य-बिन्दु पर ज़ोर दिया है उसी में यह भी कहा है कि शिक्षा का लक्ष्य उत्साही, आत्म-विश्वासी और सुयोग्य नागरिक बनाना है। इतिहास इस प्रकार पढ़ाया जाना चाहिए कि उससे मनुष्य में अपने और अपने राष्ट्र का गौरव उत्पन्न हो, वह विश्वास करे कि हमारा भविष्य उज्ज्वल है तथा वह हमारे ही हाथ में है। नागरिक वह है जो अपना अधिकार तो जानता ही हो, साथ साथ कर्त्तव्य भी जानता हो और उसके पालन के लिए सदा प्रस्तुत रहे। अपना घर साफ़ करके कूड़ा पड़ोस के घर में फेंक देना नागरिकता नहीं है, यह बात जब तक हमारे बालक न सीखेंगे और अपने जीवन में उसका पालन करने का अभ्यास उन्हें न हो जायगा तब तक वे नागरिक नहीं हो सकते। तात्पर्य यह है कि हमें मनुष्य के अधिकार के साथ साथ, बल्कि उसके पहले मनुष्य के कर्त्तव्यों का ज्ञान होना चाहिए। शिक्षा का यही ध्येय है। इसके लिए भिन्न भिन्न विषयों के ज्ञान की आवश्यकता है। इन सबका मौलिक ज्ञान प्रथम सात वर्ष की मौलिक शिक्षा में हो जाना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त शिक्षक तैयार करने के लिए नये प्रायोगिक ट्रेनिंग कालेज की स्थापना की गई है और उपयुक्त पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए एक कमेटी लखनऊ में और दूसरी काशी में काम कर रही है। हम इन तीनों की सफलता चाहते हैं। अवश्य ही इस विषय के और भी अंग हैं जिन पर भिन्न भिन्न कमेटियाँ विचार कर रही हैं, पर उन सबका परिचय देना इस लेख का विषय नहीं है।

योरप का भीषण रूप

योरप के राजनीतिज्ञों की पेचीली चालों का काम अब ख़त्म-सा हो गया है और होनेवाले युद्ध में कौन देश किस ओर से लड़ेगा, इसकी भी मीमांसा हो गई है। इधर युद्ध के छिड़ जाने के लक्षण भी स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। ऐसी दशा में कौन देश किस पक्ष में होगा यह जान लेना ज़रूरी है।

पिछले महायुद्ध में जर्मनी की ओर आस्ट्रो-हंगेरी, तुर्की और बलगेरिया थे, परन्तु युद्ध-कला में ये तीनों इतना पिछड़े हुए थे कि इनके युद्ध-क्षेत्रों की भी पूरी सँभाल जर्मनी को ही करनी पड़ी थी। परन्तु अब जर्मनी की ओर इटली हो गया है, जो उसी की तरह युद्ध-कला में निपुण है और साज-सामान से भी लैस है। रहा आस्ट्रिया सो वह अब जर्मनी का एक अंग हो गया है और दोनों देशों के जर्मन एक-सी भावना और एक-से उत्साह से युद्ध में भाग लेंगे। इसके सिवा हंगेरी भी जर्मनी के साथ जायगा जैसा कि उसके हाल के रुख़ से प्रकट होता है। ऐसी मैत्री-स्थापन के लिए ही उसके सर्वेसर्वा एडमिरल हौर्टी अभी उस दिन जर्मनी गये हैं और उनकी वहाँ ख़ूब आवभगत हुई है।

उधर पोलेंड रूस का पहले से ही विरोधी है। उसके वैदेशिक मंत्री कर्नल बेक पिछले तीन महीने में लुथिआनिया, इस्थोनिया, लेटेविया, फ़िनलेंड, स्वीडन और नार्वे की राजधानियों का चक्कर इसलिए लगा आये हैं कि ये सारे राज्य युद्ध-काल में समवेत होकर रूस का सशस्त्र विरोध करें। ये अपने प्रयत्न में कहाँ तक सफल हुए हैं, यह तो अभी नहीं कहा जा सकता, परन्तु उन राज्यों के स्वार्थों को देखते हुए यही प्रतीत होता है कि उनमें से कम से कम चार राज्य पोलेंड से मिलकर रूस के विरुद्ध अवश्य शस्त्र ग्रहण करेंगे, जिसका अर्थ यह है कि ये जर्मनी के पक्ष में होंगे।

कुछ दिन हुए, कोपेनहेगेन में डेन्मार्क, नार्वे, स्वीडन, फ़िनलेंड, हालेंड और बेलजियम के प्रतिनिधियों की एक सभा हुई थी, जिसमें उन्होंने आनेवाले युद्ध में निरपेक्ष रहने का निश्चय किया है। उनके इस निश्चय से जर्मनी और उसके साथियों के ही बल की वृद्धि हुई है।

अब रहे ज़ेचोस्लोवेकिया तथा बाल्कन के राज्य सो उनके सम्बन्ध में अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, परन्तु अभी हाल में उनके प्रतिनिधियों की एक बैठक कान्स्टेंटिनोपल में हुई थी, जिसमें जापान के प्रति रोष प्रकट किया गया, क्योंकि उसने मंचूको और सैबेरिया की सीमा पर रूसी चौकी पर आक्रमण कर दिया था। इससे प्रकट होता है कि बाल्कन के राज्य रूस के साथ हैं। और रूस की जर्मनी से प्रकट शत्रुता तथा फ़्रांस से प्रकट मैत्री है।

ब्रिटेन भी सावधान है। उसने तुर्की को १,६०,००,००० पौंड देकर अपनी ओर कर लिया है। यही नहीं, वह और आगे बढ़ गया है। उसके बादशाह जार्ज पेरिस की सैर कर आये हैं, जिससे ब्रिटेन और फ़्रांस की मित्रता में काफ़ी घनिष्ठता हो गई है और वे आज वैसे ही एक-दूसरे के मित्र हो रहे हैं, जैसे सन् १९१४ के महायुद्ध के पहले थे। यही नहीं, ब्रिटेन भी कहने लगा है कि वह भी युद्ध के लिए तैयार हो गया है। यदि युद्ध होगा तो पिछले युद्ध की भाँति रूस, फ़्रांस, ब्रिटेन ये तीनों तथा इनके साथ तुर्की भी जर्मनी और उसके मित्रों से युद्ध करेंगे।

यह दलबन्दी दोनों ओर से खुल्लमखुल्ला की गई है और अब तो कहीं कहीं तलवारें भी चमकने लगी हैं। अभी तक स्पेन में और अब चीन में भी योरप के ये दोनों दल टट्टी की ओट में रहकर अपने अपने बल की परीक्षा में ही लगे हुए थे, परन्तु अब जर्मनी ने तो अपने यहाँ ज़ोरों का सैनिक प्रदर्शन शुरू कर दिया है। उसकी देखा-देखी उसके पड़ोस का बेल्जियम भी फ़ौजी प्रदर्शन करने जा रहा है। यह सब क्या हो रहा है, और इस भीषण पशु-शक्ति के आयोजन तथा प्रदर्शन का क्या परिणाम होगा, इस सबका समझना तो साधारण लोगों के लिए कठिन

है, परन्तु इतना तो साफ़ ही है कि यह ज्वालामुखी जब फूटेगा तब इस बार सर्वसंहार का ही दृश्य उपस्थित होगा।

चीन का पुरुषार्थ

आज का चीन एशिया का एक महान् जाग्रत राष्ट्र है। उसके इस जागरण की नींव सन् १९११ में डाक्टर सन यात सेन ने रक्खी थी। उन्होंने चीन में ऐसी देशभक्ति की भावना का प्रचार किया था कि एकाएक सारे देश में क्रान्ति फैल गई और चीनियों ने राजतन्त्र को तोड़कर उसके स्थान में प्रजातन्त्र की स्थापना की। सारा चीन अपने उज्ज्वल भविष्य की आशा से प्रफुल्ल हो उठा। परन्तु क्रान्ति के कारण अनेकों के स्वार्थ की हानि हुई और स्वार्थियों ने अपने कुचक्र से चीन के नौजवानों को पनपने ही न दिया। तो भी राष्ट्रीय चीन दिन दिन प्रबल पड़ता गया। अन्त में उसने राष्ट्रपति च्यांग कैइ-शेक के नेतृत्व में सन् १९२८ में चीन के गृहशत्रुओं का दमन करके केन्द्रीय सरकार की सत्ता की स्थापना कर ही डाली। परन्तु चीनी बोल्शेविक अपनी खिचड़ी अलग ही पकाते रहे। उसकी परवा न कर नानकिंग की नई राष्ट्रीय सरकार देश को समुन्नत करने के काम में बड़ी तत्परता से संलग्न हुई, साथ ही चीन के अवशिष्ट बोल्शेविक प्रान्तों को भी अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न जारी रक्खा। उसकी उक्त सफलता से ही प्रकट होता है कि चीन उन्नति की दौड़ में कितना आगे बढ़ आया था। परन्तु उसका यही बढ़ना उसके लिए काल हो गया। जापान चीन की उन्नति नहीं सह सका। उसने देखा कि चीन गृह-युद्ध में लिप्त है, अतएव झट मंचूरिया को हड़प लिया। और अब तो वह सारे चीन को अपने अधीन करने के लिए उसका सर्वनाश कर रहा है। चीन में जो भयानक युद्ध साल भर से हो रहा है उसमें उसके लाखों आदमी मारे जा चुके हैं, प्रायः सभी बड़े बड़े नगर वायुयानों से गोले चलाकर ध्वंस किये जा चुके हैं और सूबे के सूबे उसके अधिकार से जाते रहे हैं, परन्तु इस विकट परिस्थिति से वह रत्ती भर हतोत्साह नहीं हुआ, वरन और भी अधिक उत्साह से वह जापानियों से लोहा ले रहा है। चीनियों में देशभक्ति का भाव इतना अधिक बढ़ गया है कि जो बोल्शेविक राष्ट्रीय सरकार को अपना शत्रु समझते थे, आज देशभक्ति की प्रेरणा से वे भी राष्ट्रीय सरकार के झंडे के नीचे आ खड़े हुए हैं और जापान से लड़ रहे हैं। वस्तुतः जापान का प्राण रहते तक विरोध करने की सारे राष्ट्र ने प्रतिज्ञा-सी की है और वहाँ के बौद्ध, मुसलमान तथा ईसाई चीनी सबके सब कन्धे से कन्धा भिड़ाकर युद्ध-क्षेत्र में जापानियों से लड़ रहे हैं।

चीन का इस समय ऐसा ही महान् जागरण है। उसने जापान से ऐसी भारी टक्कर ली है कि उससे जापान की नसें ढीली पड़ गई हैं, जैसा कि अभी मंचूरिया की सीमा पर की घटना से प्रकट होता है। हाल में ही मंचूरिया और सैबेरिया की सरहद के एक गाँव में रूसी और जापानी सेना का जो चार दिन तक भयानक युद्ध हुआ था उसकी उपेक्षा करके जापान ने रूस से मित्रता करने का ही आग्रह किया। इससे प्रकट होता है कि जापान को चीन में भारी संकट का सामना करना पड़ रहा है। चीन ने जब से छापा मारने का युद्ध शुरू किया है तब से जापानी बड़े पेंच में पड़ गये हैं और वे उन छापा मारनेवालों का अपनी आधुनिक वैज्ञानिक युद्धप्रणाली से दमन करने में असमर्थ-सा जान पड़ते हैं। यह अवस्था चीन के लिए उत्साहप्रद है।

यद्यपि जापान के आक्रमण पहले की ही भाँति बराबर हो रहे हैं, उनके वायुयान वहाँ के नगरों को नित्य ही ध्वंस करते रहते हैं, उनकी फ़ौजें चीन पर अधिकार जमाती हुई आगे बढ़ती चली जा रही हैं, तो भी चीनी लोग युद्ध-क्षेत्र में डटे हुए हैं। जापान का संहार-कार्य उन्हें ज़रा भी हतोत्साह नहीं कर सका है और वे अपना सर्वस्व निछावर कर जापानियों को चीन की भूमि से निकाल बाहर करने को तुल गये हैं। इस प्रकार चीन और जापान का यह युद्ध दोनों के जीवन-मरण का युद्ध हो गया है। अब भविष्य ही बतावेगा कि किसके भाग्य में क्या बदा है।

साम्प्रदायिक समस्या

साम्प्रदायिक समस्या का नये शासन विधान के प्रचलित हो जाने पर अन्त हो जाना चाहिए था, परन्तु उसने तो अब और भी उग्र रूप धारण कर लिया है। पिछले दिनों उसका हल करने के लिए महात्मा गान्धी ख़ुद आगे आये और उसके सम्बन्ध में मुस्लिमलीग के प्रधान मिस्टर

जिन्ना से बातचीत की, परन्तु इस प्रयत्न में महात्मा गान्धी भी नहीं सफल हुए। सफलता तो तब मिलती जब वस्तुतः कोई समस्या भी होती। इस प्रयत्न की विफलता से यह अब स्पष्ट हो गया है कि भारत को इस महाव्याधि का अभी कुछ अधिक समय तक सामना करना पड़ेगा। क्योंकि इस कांग्रेसी युग में कोई तीस वर्ष के बाद भारत में लिखने और बोलने की स्वाधीनता नसीब हो सकी है। फलतः सम्प्रदायवादी इस अवस्था से लाभ उठाकर सम्प्रदायवाद का ज़हर अपने-अपने समुदायों में ज़ोरों से फैला रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि लिखने-बोलने की स्वाधीनता के युग में उनका बाल तक बाँका नहीं हो सकेगा और वे मनमाने ढंग से अपने विचारों का प्रचार करेंगे।

परन्तु देश का राष्ट्रीयतावाद क्या उन्हें ऐसा करने देगा? फिर अब तो बहुत हो गया है। कांग्रेसी शासन के इस नये युग में न मालूम कितनी बार साम्प्रदायिक झगड़े-फ़साद हुए हैं और उनका सिलसिला बराबर क़ायम है। यह अवस्था बड़ी जोखिम की है और इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

यह तो एक प्रकार से स्पष्ट ही हो गया है कि जिन लोगों के दुराग्रह के कारण इस समस्या का हल नहीं हो रहा है वे यह सब जनता के लाभालाभ के विचार से ऐसा नहीं कर रहे हैं। अतएव यह आवश्यक ही नहीं, किन्तु यही एक उपाय है कि कांग्रेसी लोग जनता में घुसकर प्रचार करें कि वे उसके कितने बड़े हितैषी हैं तथा जनता की सहायता पाने पर वे क्या क्या करेंगे। यदि कांग्रेस हिम्मत करके अपना प्रचार-कार्य एक बार हाथ में लेकर मैदान में आ जाय तो इसमें ज़रा भी शक नहीं है कि साम्प्रदायिक समस्या कुछ ही परिश्रम करने पर अपने आप हल हो जायगी। कांग्रेस के लिए राह खुल गई है और उसे इस महत्त्व के कार्य को अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

प्रौढ़ों की शिक्षा

प्रौढ़ों की शिक्षा के सम्बन्ध में 'न्यू रिव्यू' में एक महत्त्व का लेख प्रकाशित हुआ है। उसका ज्ञातव्य अंश इस प्रकार है—

सन् १९२० से भारतीय प्रान्तों के शिक्षा-विभाग भारतीय मन्त्रियों के हाथ में हैं। परन्तु खेद की बात कि प्रारम्भिक शिक्षा अभी तक लोकव्यापी नहीं हो सकी है। इसका प्रधान कारण आवश्यक धन का अभाव रहा है। इसी से महात्मा गांधी ने एक ऐसी योजना तैयार की है जिसके लिए प्रान्तीय शिक्षा-विभागों को अर्थ की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी और देश में शिक्षा का व्यापक प्रचार हो सकेगा। उस योजना के अनुसार खुलनेवाले स्कूल अपने व्यय भार के लिए आवश्यक धन उपार्जन कर लेंगे, और यदि इस बात की समुचित रोक रक्खी जायगी कि वे स्कूल केवल धनोपार्जन का साधन ही न होंगे तो इसमें सन्देह नहीं है कि भारत के लिए महात्मा जी की यह योजना एक प्रकार का वरदान ही सिद्ध होगी, परन्तु प्रजातन्त्रवादी भारत के लिए बालकों की शिक्षा की अपेक्षा प्रौढ़ों को उन सबसे पहले साक्षर बनाने की आवश्यकता है। प्रसन्नता की बात है कि इस महत्त्व के प्रश्न की ओर कांग्रेसी प्रान्तीय सरकारों का ध्यान भी गया है।

प्रौढ़ों की शिक्षा की ओर मदरास के विश्वविद्यालय ने सन् १९२३ में ही ध्यान दिया था। उसने कुछ केन्द्रों में नियमित रूप से प्रोफ़ेसरों और विशेषज्ञों के भाषण करने की व्यवस्था की थी, परन्तु उनके भाषण पंडिताऊ होते थे और अशिक्षित लोगों का उनसे कुछ भी उपकार नहीं हुआ।

गत दो वर्ष से बम्बई की प्रौढ़ शिक्षा-सभा ने भी मिल-मालिकों के सहयोग से वहाँ की मिलों में प्रौढ़ों के पढ़ाने की व्यवस्था की है। इसी प्रकार यांग मैनक्रिश्चियन असोसिएशन भी इस ओर अग्रसर हुई है और उसके सदस्य मैजिक लैन्टर्न और भाषणों के द्वारा प्रौढ़ों में शिक्षा का प्रचार कर रहे हैं।

परन्तु इधर बंगाल की सरकार ने इस दिशा में अधिक व्यवस्थित रूप से प्रयत्न करना प्रारम्भ किया है। १९३७ के मार्च में देहात के सब रजिस्ट्रारों से यह आग्रह किया गया कि वे अपने अवकाश के समय में जितने गाँवों में हो सके, प्रौढ़ों को शिक्षा देने के लिए केन्द्र खोलें, जहाँ उन्हें खेती-बारी, पशु-रक्षा, स्वास्थ्य, रोगों की रोक़थाम, सहयोग-समितियों के संगठन, खेती के पैदावार की बिक्री आदि की शिक्षा दी जाय। सामयिक विषयों पर भाषण कराने, अख़बारों और किताबों के उपयोगी लेख आदि

पढ़कर सुनाने की व्यवस्था करने को भी उनसे कहा गया। इन केन्द्रों में भाषण करने के लिए ज़िले के हेल्थ-अफ़सर, सेनीटेरी-अफ़सर, कृषि-अफ़सर, स्कूलों के इन्स्पेक्टर तथा अध्यापकों से मदद लेने को कहा गया। और यह सब कार्य बिना किसी प्रकार के पुरस्कार के करने की व्यवस्था की गई। ग्राम-पुस्तकालयों के लिए कुछ किताबें तथा पत्र आदि के ख़रीदने में जो ख़र्च हुआ वह ग्रामोद्धार के फंड से दिया गया। इसके सिवा शिक्षा-विभाग के मन्त्री ने गाँवों में केन्द्र खोलने के लिए प्रारम्भ के ख़र्च के लिए १००० रुपये दिये। फलतः उन केन्द्रों का सञ्चालन करने के लिए जून के महीने में एक कमिटी बनाई गई। उसके निरीक्षण में ग्रामों में प्रौढ़ों को शिक्षित करने का काम जारी हो गया है।

परन्तु ये प्रयत्न भारत की विशाल अशिक्षित जनता को देखते हुए कुछ भी नहीं हैं। इसके लिए आवश्यक है कि प्रान्तीय सरकारों के शिक्षा-विभाग इस दिशा में अधिक ध्यान दें और ऐसी व्यवस्था करें कि प्रौढ़ों की शिक्षा का देहातों में उचित प्रबन्ध हो और उस पर उसका पूरा नियन्त्रण हो। और अब तो यह काम आसानी से, साथ ही बिना अधिक व्यय के हो सकता है। प्रान्तों में ग्रामोद्धार और प्रायमरी शिक्षा-प्रचार की व्यापक व्यवस्था की ही जा रही है। तब उसके साथ प्रौढ़ों की शिक्षा की भी उचित व्यवस्था की जा सकती है।

प्रसन्नता की बात है, हमारे प्रान्त की सरकार प्रौढ़ों की शिक्षा की ओर कम प्रयत्नशील नहीं है। वह जहाँ एक ओर शिक्षा-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने जा रही है, वहाँ उसने प्रान्त की भयानक निरक्षरता दूर करने के लिए सात लाख रुपया अलग कर दिया है और इस धन से सारे प्रान्त में ३,६०० वाचनालय और ७०० गश्ती पुस्तकालय खोलना चाहती है। इसके सिवा प्रत्येक ज़िले में बीस पढ़े-लिखे आदमियों की एक टोली के संगठित करने की व्यवस्था कर रही है, जो प्रौढ़ों को शिक्षित बनाने का काम करेंगे। इसी तरह बीस अन्य आदमियों की एक और टोली बनाई जायगी। इन टोलियों के लोग अपने अवकाश के समय प्रत्येक ज़िले में प्रौढ़ों को शिक्षा देंगे।

—

ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाना

ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने की विधि से संयुक्त प्रान्त के निवासी परिचित हैं। और वह यह कि वे उसमें बबूल बो देते हैं। इससे उन्हें दोहरा लाभ होता है। ८-१० वर्ष के बाद वे बबूल काट कर बेच लेते हैं, साथ ही उनकी वह भूमि भी खेती करने के योग्य हो जाती है। बबूल की पत्तियों के वहाँ गिरने और सड़ने से ऊसर का बहुत कुछ दोष दूर हो जाता है। पुराने समय में अवध की बहुत कुछ भूमि इसी प्रक्रिया से उपजाऊ बनाई गई थी। अवध में अँगरेज़ी अमलदारी क़ायम होने के समय भी इस प्रक्रिया का ख़ासा प्रचार था। परन्तु सिपाही-विद्रोह के बाद प्रान्त के सारे जंगल काट ही नहीं गिराये गये, किन्तु वे फिर उगने भी नहीं दिये गये। ख़ैर, अब सरकार का ध्यान इस ओर गया है और इन प्रान्तों के विज्ञान के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् डाक्टर धर ऐसे उपाय की खोज में वर्षों से लगे हुए हैं जिससे ऊसर खेती के योग्य बनाये जा सकें। इसके लिए उन्हें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार से काफ़ी आर्थिक सहायता भी मिल रही है। प्रसन्नता की बात है कि डाक्टर धर को अपने परीक्षणों में सफलता मिली है। वे सीरे की खाद देकर ऊसर-भूमि को उपजाऊ बनाने का परीक्षण कर रहे हैं। अभी तक वे अपने परीक्षण इलाहाबाद-विश्वविद्यालय में तथा केवल इसी कार्य के लिए खोले गये अपने 'इंडियन इन्स्टिट्यूट आफ़ स्वायल साइंस' नाम की संस्था में ही कर रहे थे, परन्तु जब उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता मिली तब अब वे उसका विस्तृत क्षेत्र में परीक्षण कर रहे हैं। और ऐसा परीक्षण इलाहाबाद ज़िले की सोरांव तहसील में दस एकड़ के एक भूखण्ड में हो रहा है। इस भूखण्ड में जिन खेतों में सीरे की खाद डाली गई है उनमें धान के पौधे ख़ूब बलवान् दिखाई दे रहे हैं, परन्तु जिन खेतों में उक्त खाद नहीं दी गई है और उनमें धान के पौधे ऐसे ही लगाये गये हैं वे बढ़ने की कौन कहे, अपने आप मुर्झाये जा रहे हैं। इस प्रयोग की सफलता से प्रकट हुआ है कि किसी भी ऊसर को उपजाऊ बनाने के लिए फ़ी एकड़ सौ रुपये का ख़र्च पड़ेगा और यह भी सम्भव है कि वह स्थायी रूप से उपजाऊ बन जाय। इस समय इसका परीक्षण इलाहाबाद-ज़िले के सिवा मेरठ, उन्नाव और गोरखपुर में भी हो रहा है। डाक्टर धर के परीक्षण की सफलता को देखकर ऐसा जान पड़ता है कि कुछ ही दिनों में सीरे की उपयोगिता बढ़ जायगी और वह ऊसरों को खेती के योग्य बनाने के ही काम में न लाया जायगा, किन्तु उससे साधारण खाद का भी काम लिया जायगा। यदि सीरे का यह परीक्षण सफल हो गया तो देश की खेती की उपज के बढ़ने की पूरी सम्भावना हो जायगी और किसान लोग भी अपने धन्धे को इस नये साधन के द्वारा उन्नत कर अपनी दरिद्रता बहुत कुछ दूर कर सकेंगे।

—

ब्रह्मदेश में साम्प्रदायिक उपद्रव

२६ जुलाई को ब्रह्मदेश में बहुत ही भीषण दंगा हो गया। इस दंगे का प्रत्यक्ष कारण एक मुसलमान लेखक का धर्मोन्माद है, जिसने एक पुस्तक लिखकर बौद्ध-धर्म की निन्दा की है। फलतः बौद्ध लोग बिगड़ पड़े और २६ तारीख़ को उन्होंने मुसलमानों पर आक्रमण कर दिया। इस दंगे ने इतना भीषण रूप धारण कर लिया कि रंगून के सिवा देश के अन्य भागों पर भारतीयों पर आक्रमण किये गये और हिन्दू-मुसलमान का भी भेद न रहा। इससे प्रकट होता है कि धर्म का अपमान तो एक बहाना-मात्र था। वस्तुतः बर्मी लोग यह नहीं चाहते हैं कि उनके देश में भारतीय लोग रहें। उन्होंने अपने मनोभाव को बार बार प्रकट किया है और अब जब नये शासन-विधान के अनुसार ब्रह्मदेश भारत से अलग हो गया है तब उसका इस प्रकार के दंगे के रूप में प्रकट होना सर्वथा स्वाभाविक था। यह दंगा रंगून तक ही सीमित नहीं रहा, रंगून के आस-पास की बस्तियों, देहातों और बर्मा के १२ ज़िलों में भी फैल गया। बर्मियों ने हिन्दुस्तानियों को जहाँ पाया, मारा और लूटा। उन्होंने कितने ही घरों को फूँक दिया और एक मस्जिद भी जला दी। दंगे के कारण अपार हानि हुई है। कितने का नुक़सान हुआ है, यह अभी नहीं बताया जा सकता, साथ ही हताहतों की ठीक ठीक संख्या भी अभी नहीं मालूम हुई है। अकेले रंगून में ६६ मनुष्य मरे और ४२० घायल हुए बताये जाते हैं। सैकड़ों भारतीय भाग कर भारत चले आये हैं। वहाँ की सरकार ने शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया है। एक शान्ति-समिति बनाई गई है, जिसमें हिन्दुस्तानी और बर्मी दोनों ही शामिल हैं। बर्मा के प्रधान मंत्री ने एक शान्ति-परिषद् की भी योजना की है, जिसका उद्देश्य वर्तमान मनोमालिन्य को दूर कर मित्रता स्थापित करना है।

ब्रह्मदेश की यह समस्या उपेक्षणीय नहीं है। भारत-सरकार को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए और ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि भारतीय ब्रह्मदेश में सुरक्षित रह सकें और उनके हितों की हानि न हो।

—

बंगाल का मन्त्रिमंडल

बंगाल में वहाँ के मंत्रिमण्डल के विरुद्ध दस अविश्वास के प्रस्ताव उपस्थित किये जाने की सूचना दी गई थी। उस समय ऐसा जान पड़ता था कि मंत्रिमण्डल इस विरोध का सामना न कर सकेगा और उसकी हार होगी। परन्तु उसके सौभाग्य से उसे योरपीय सदस्यों की सहायता मिल गई और ८ अगस्त को असेम्बली में जो अविश्वास के प्रस्ताव पेश किये गये वे गिर गये और मंत्रिमण्डल की रक्षा हो गई।

बंगाल की लेजिस्लेटिव असेम्बली में २४६ सदस्य हैं। पिछले बजट के अवसर पर मंत्रिमण्डल के साथ १३४ सदस्य थे। विरोधी दल में कुल ९८ सदस्य थे। परन्तु इधर वहाँ मंत्रिमण्डल का तीव्र विरोध हुआ, यहाँ तक मंत्रिमण्डल के एक मंत्री उससे अलग हो गये। इन सब बातों के फलस्वरूप विरोधी दल की शक्ति बढ़ गई और उसने समझा कि यदि अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित किया जायगा तो वह १२० वोट प्राप्त कर सकेगा और उस दशा में मंत्रिमण्डल की हार हो जायगी। परन्तु यह अनुमान ग़लत साबित हुआ, क्योंकि वह १११ से अधिक वोट नहीं प्राप्त कर सका। विरोधी दल को आशा थी कि अल्पसंख्यक जाति के प्रतिनिधियों के वोट उसे मिल जायँगे। परन्तु वे वोट उसे नहीं मिले। तथापि इस संघर्ष से प्रकट होता है कि बंगाल का मंत्रिमण्डल उतना लोकप्रिय नहीं रहा और यदि वह आज शासनारूढ़ है तो इसका एक-मात्र कारण यह है कि उसे योरपीय दल की पूरी मदद प्राप्त है। अर्थात् वह मुस्लिम लीग या प्रधान मंत्री की प्रजा-पार्टी के बल पर शासनारूढ़ नहीं है जिसका कि उसे गर्व रहा है। परन्तु यह दशा अधिक दिनों तक ठहर नहीं सकती, क्योंकि ७ अगस्त को मंत्रिमण्डल के समर्थन में कलकत्ते में जो लज्जाजनक दृश्य उपस्थित हुआ था

उसे कोई भी स्वाभिमानी मुसलमान या हिन्दू भूल न सकेगा और वर्तमान मंत्रिमण्डल को पदभ्रष्ट करने का प्रयत्न वहाँ का विरोधी दल तब तक बराबर करता रहेगा जब तक वह सफल नहीं हो जायगा।

मालद्वीप के नये सुलतान

लंका से चार सौ मील के अन्तर पर मालद्वीप नाम का एक द्वीप-समूह भारतीय महासागर में स्थित है। भूगर्भशास्त्रियों का कहना है कि किसी समय भारत अफ़्रीका से जुड़ा हुआ था। जो भूखण्ड इन दोनों देशों को जोड़ता था वह समुद्र के गर्भ में लीन हो गया है। यह द्वीप-समूह उसी प्राचीनतम भूखण्ड या महाद्वीप का अवशेष है। इस द्वीप-समूह में दो हज़ार से अधिक छोटे छोटे द्वीप हैं। यहाँ के निवासी मुसलमान हैं और वे मछली मारकर या नारियल पैदाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इनके सुलतान '१२ हज़ार द्वीपों और १७ प्रान्तों के बादशाह' कहलाते हैं। उनकी यह पदवी भी यदि उक्त द्वीप-समूह की तरह प्राचीनतम सिद्ध हो जाय तो कहा जा सकेगा कि समुद्र में समाया हुआ वह पहले का महाद्वीप कम से कम इतने प्रान्तों या द्वीपों का रहा होगा। चाहे जो हो इस नगण्य द्वीप-समूह के अधिपति को उक्त उपाधि प्राप्त है। इसी जुलाई की २१ तारीख़ को वहाँ के नये सुलतान हसन नूरुद्दीन इस्कन्दर (द्वितीय) उक्त पदवी के सहित सिंहासन पर आसीन हुए हैं। गद्दीनशीनी की रस्म को वहाँ 'तलवार ग्रहण करने की रस्म' कहते हैं।

चार वर्ष पहले वहाँ क्रान्ति हो गई थी। चार आदमियों को देश-निकाले का दण्ड दिया गया था। परन्तु तत्कालीन सुलतान के लड़के ने उन्हें आत्मसमर्पण नहीं करने दिया। अन्त में जब शाही महल के सामने लोगों ने प्रदर्शन किया तब शाहज़ादे ने आकर महल की खिड़की से जनता को लक्ष्य करके कहा कि तुम लोग नये शासन-विधान को चाहते हो या अपने सुलतान और शाहज़ादे को चाहते हो। जनता ने शासन-विधान को ही पसन्द किया, जो दो वर्ष पहले वहाँ जारी किया गया था। जनता का मनोभाव देखकर सुलतान अपने कुटुम्ब के साथ स्वेच्छा से निर्वासन में चले गये। उस समय जनता ने इन्हें सर्व-सम्मति से अपना सुलतान बनाया था। वही अब इतने दिन के बाद गद्दी पर बिठाये गये हैं। वे भूतपूर्व सुलतान के चचेरे भाई हैं।

यहाँ के सुलतान से अँगरेज़-सरकार की १८ वीं सदी में सन्धि हुई थी। तब से यह द्वीप-समूह अँगरेज़-सरकार की संरक्षा में है। लंका के निकट होने के कारण वहीं की सरकार इस द्वीप-समूह पर अपनी देख-रेख रखती है।

कोटी-राज्य में हिन्दी-प्रचार

शिमला के समीपवर्ती राज्यों में एक का नाम कोटी है। प्राकृतिक दृश्यों के सौन्दर्य के विचार से शिमला की रियासतों में यह एक अति सुन्दर स्थान माना जाता है। प्रत्येक रविवार को यहाँ के सुन्दर और रमणीक वनों का आनन्द लेने को बड़े से लेकर छोटे तक सब लोग शिमला जाते हैं। इन वनों में अनेक होटल बने हुए हैं, जहाँ

[श्रीमान् राणा रघुबीरचन्द्र]

भ्रमण-प्रिय व्यक्तियों के भोजनादि का सब प्रबन्ध होता है। ऐसे सुन्दर राज्य के वर्तमान शासक राणा रघुबीरचन्द्र जी हैं। आप संस्कृत के बड़े विद्वान् हैं और प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के बड़े प्रेमी हैं। आप ८० वर्ष के वृद्ध हैं और आचार-विचार और धर्म के सम्बन्ध में बड़े कट्टर हैं। आप शासन भी प्राचीन पद्धति के अनुसार ही करते हैं। आपका जीवन सीधा-सादा है।

हाल में आपने अपनी रियासत में हिन्दी को राज-भाषा बनाने की घोषणा की है। इसका श्रेय आपके होनहार युवराज श्री टिका वशिष्ठसिंह जी को है, जो हिन्दी के विद्वान् और कवि भी हैं। अपने पिता की देख-रेख में आप ही सारा राज्य-कार्य करते हैं। आपके दरबार में संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान् और कवि आदर पाते हैं। अब जब शिमला में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन होने जा रहा, आपके इस स्तुत्य कार्य से उसके और भी अधिक सफलता के साथ सम्पन्न होने की सम्भावना हो गई है!

बी० एन० शर्मा, बी० ए०

नीम हकीमों की समस्या

हम समझते थे कि 'नीम हकीमों' की धूम-धाम हमारे ही देश में अधिक रहती है, परन्तु जैसा कि लार्ड होर्डर ने कहा है, पाश्चात्य देश भी उनके चमत्कारों से बचे नहीं हैं। हाउस आफ़ लार्ड्स में उन्होंने भाषण करके यह शिकायत की है कि ब्रिटेन के 'नीम हकीम' सारे देश में तबाही फैला रहे हैं। देश में दातव्य औषधालयों तथा म्यूनिसिपल औषधालयों के चलाने में जितना धन व्यय होता है, लगभग उतना ही ब्रिटेन के सभ्य धनी लोग वहाँ के 'नीम हकीमों' की दवाइयाँ ख़रीद कर उनकी जेबों में पहुँचा देते हैं। ऐसा तो भारत जैसे देश में सम्भव हो सकता है, क्योंकि यहाँ ऐसा प्रवाद है कि अस्पतालों में सिवा शुद्ध जल के उपयुक्त दवा सुलभ नहीं है। परन्तु ब्रिटेन जैसे देश में तो ऐसा प्रवाद भी न होगा। तब वहाँ 'नीम हकीमों' के कैसे 'पौ बारह' रहते हैं? लार्ड महोदय ने अपने भाषण में बताया है कि वहाँ के पेटेंट दवाइयाँ बेचनेवाले एक समूह ने इस वर्ष अपने बजट में १० लाख पौंड केवल विज्ञापन छपवाने की मद में रक्खे हैं। गत छः वर्षों में इस समूह को ४० हज़ार पौंड से २०० लाख पौंड मुनाफ़ा हुआ है। उन्होंने यह भी कहा है कि ये पेटेंट ओषधियाँ उतना लाभदायक भी नहीं होतीं, जितना उनके सम्बन्ध में दावा किया जाता है। उनके विज्ञापन निरा धोखा होते हैं। यह हाल है उस देश का जो संसार में सभ्यता का प्रचारक माना जाता है। परन्तु अब जब वहाँ इसका विरोध शुरू हुआ है तब उसकी समुचित रोक-थाम भी हो जायगी। परन्तु अपने भारत में इस ओर कौन ध्यान दे हालाँ कि यहाँ की दशा इस सम्बन्ध में और भी गई-बीती है! यहाँ तो सारे देश में नीम हकीमों का जाल-सा बिछा हुआ है और देशी-विदेशी सभी अपने को धन्वन्तरि तथा अपनी ओषधियों को अव्यर्थ घोषित करने का ढिंढोरा पीटते हैं। परन्तु अब देश के अधिकांश में कांग्रेस का बोलबाला हो गया है। उसे चाहिए कि वह इस ओर सबसे पहले ध्यान दे और देश के अबोध लोगों की इन नीम हकीमों की दवाइयों से रक्षा करे। कांग्रेस की प्रान्तीय सरकारों के स्वास्थ्य-विभाग देहातों में रोग-निवारणार्थ व्यापक आयोजन करने की व्यवस्था करने जा रहे हैं। उन्हें इस बात की ओर भी ध्यान देना चाहिए कि उनके प्रभाव-क्षेत्रों में 'नीम हकीम' अपने 'चमत्कार' न दिखलाने पावें, साथ ही यह भी प्रयत्न हो कि उनकी 'पेटेंट' ओषधियाँ भी अपना प्रवेश न पा सकें, क्योंकि मनुष्य के जीवन का अपना भी मूल्य है और वह इन 'नीम हकीमों' के स्वार्थ-साधन के लिए नहीं जन्मा है।

एक आदर्श प्रोफ़ेसर

प्रोफ़ेसर गंगाधर गोविन्द कानेटकर एम० ए०, एल० टी० जबलपुर के स्पेन्स ट्रेनिङ्ग कालेज के अवसर प्राप्त अध्यापक हैं। उन्होंने पूना की डेकन-एजूकेशन-सोसाइटी को पचीस हज़ार रुपये का दान दिया है। उक्त सोसाइटी को बड़े बड़े धनी-मानी लोगों ने बड़ी बड़ी रक़में दान की हैं, किन्तु प्रोफ़ेसर महोदय का यह दान श्रीमानों द्वारा दिये गये दानों से कहीं अधिक उत्कृष्ट और गौरवपूर्ण है। श्रीमानों का अपनी बढ़ती हुई आय में से कुछ अंश देश की अज्ञानता के निवारणार्थ प्रदान करना उतने महत्त्व का नहीं होता, जितना एक प्रोफ़ेसर जैसे साधारण स्थिति के गृहस्थ का अपना सर्वसंचित धन सरस्वती माता के चरणों में अर्पित करना कहा जा सकता है। राजा रघु के औदार्य-वर्णन-सम्बन्धी कवि-कुल-गुरु कालिदास का यह कथन—'आदानन्तु विसर्गाय सतां वारि मुचामिव', उक्त प्रोफ़ेसर साहब के दान के सम्बन्ध में पूर्णतः घटित होता है। जैसे मेघ पृथ्वी से वाष्प का सेवन करके तथा पर्जन्य वृष्टि-द्वारा भूतल को जल प्रदान करके अपनी निःस्वार्थ सेवा का भाव प्रकट करते हैं, वैसे ही प्रोफ़ेसर महोदय ने बुद्धि

एवं ज्ञान से सम्पादित अपनी सम्पत्ति को ज्ञान-वृद्धि के निमित अर्पित कर सरस्वती के प्रति अपनी भक्ति का ही परिचय दिया है।

प्रोफ़ेसर श्रीगङ्गाधर गोविन्द कानेटकर, एम० ए०

प्रोफ़ेसर साहब साँगली में रहते हैं और अपना समय साहित्य-सेवा के पुनीत कार्य में बिता रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि ये एक आदर्श व्यक्ति हैं।

वनमालीप्रसाद शुक्ल—

हथियारों का धन्धा

इस मशीन के युग में हाथ के सभी उद्योग-धन्धों का उन्मूल हो गया है। परन्तु अब जब देश पूर्ण रूप से कंगाल हो गया है तब यह सुझाई दिया है कि जनता की दशा सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि पुराने उद्योग-धन्धों को नवजीवन दिया जाय। फलतः उनके पुनरुद्धार का कार्य कई वर्षों से छिड़ा हुआ है। ऐसे ही उद्योग-धन्धों में हथियारों का बनाना भी है। प्रसन्नता की बात है कि कांग्रेसी सरकार हथियारों के क़ानून में उपयुक्त सुधार करने जा रही है। तब तो इस धन्धे को पुनरुज्जीवित करना भी आवश्यक है। संयुक्त-प्रान्त के प्रधान मंत्री ने एलान कर दिया है कि सभी किसान बन्दूकें रख सकेंगे। परन्तु ये किसान तो अँगरेज़ी बन्दूकें ख़रीदने में कभी समर्थ न हो सकेंगे, अतएव उस एलान के साथ इस बात का भी एलान करना ज़रूरी हो गया है कि जो कारीगर बन्दूक आदि बना सकते हों वे उन्हें बनाकर बेच सकेंगे। तभी तो बन्दूक रखने का अधिकार देनेवाला एलान सार्थक हो सकेगा। आशा है, इस प्रश्न की ओर प्रान्तीय सरकार समुचित ध्यान ही न देगी, किन्तु जल्दी से जल्दी ऐसी व्यवस्था भी करेगी जिससे देहाती कारीगर बन्दूकें बनाकर बेच सकें ताकि वे किसानों को सुलभ हो जायँ, साथ ही एक पुराना धन्धा फिर चल निकले।

सूचना

अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का २७ वाँ अधिवेशन शिमला में १७,१८ और १९ सितम्बर को होगा। इसी सम्बन्ध में एक साहित्य-प्रदर्शनी भी करने की योजना है। पंजाब एवं इस पहाड़ी प्रान्त में हिन्दी-प्रचार की दृष्टि से इस प्रदर्शनी को सफल बनाना प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी का परम कर्तव्य है। अतएव विभिन्न संस्थाओं एवं हिन्दी-प्रेमियों से सविनय प्रार्थना है कि वे अपनी दर्शनीय कृतियाँ तथा वस्तुओं को हमारे पास शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें अथवा हमें सूचना दें जिससे हम उन्हें मँगाने का उचित प्रबन्ध कर सकें।

कृतियों तथा वस्तुओं के मँगाने और लौटाने का डाक-व्यय आदि सम्मेलन का प्रदर्शनी-विभाग देगा।

प्रार्थी—रामेश्वरसहाय 'विशारद',
संयोजक, साहित्य-प्रदर्शनी, शिमला।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD.

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

आक्टोबर १९३८ } भाग ३९, खंड २
संख्या ४, पूर्ण संख्या ४६६ { आश्विन १९९५

आकाश

लेखक, ठाकुर गोपालशरणसिंह

यह विशाल आकाश,
क्यों मलीन रहता है जग को
देकर विमल प्रकाश?
करती है लालिमा उषा की
क्षण भर नित्य विलास,
विश्व भूलता है अपने को
देख चन्द्र का हास,
किन्तु झाँकती है पीछे से
सन्ध्या वहीं उदास।
किसे ध्यान है अन्धकार भी
करता वहीं निवास।
सूर्य शशी उडुगण देते हैं,
जिसका नित आभास,
देव! छिपाये कहाँ तुम्हारा
है नभ वह उल्लास?

लेखक, श्रीयुत शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०, एम० काम०

इस समय सारे देश में ग्राम-सुधार-आन्दोलन तीव्र वेग से चल रहा है। सारे देश की दृष्टि गाँवों की ओर गई है, जो शताब्दियों से उपेक्षित और शोषित होते रहे हैं। अतएव ऐसे समय हमें ग्रामीण जीवन की तात्त्विक समस्याओं को नहीं भूल जाना चाहिए। ग्राम-सम्बन्धी अर्थशास्त्र के एक विद्यार्थी होने के नाते लेखक यह कहने की धृष्टता करता है कि हमारे बहुत-से ग्राम-सुधार-कार्य-कर्ता ग्राम-जीवन की तात्त्विक समस्याओं को जानते ही नहीं [illegible] इसी कारण भारतवर्ष का ग्राम-सुधार-आन्दोलन अत्य[illegible] दोष-पूर्ण है। यदि अवसर मिला तो किसी दूसरे लेख [illegible] ग्राम-सुधार की सम्यक् विवेचना की जायगी। इस लेख में केवल गाँवों के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन की विशेषताओं पर ही प्रकाश डालने तथा ग्रामीण समस्याओं [illegible] ओर संकेत करने का प्रयत्न किया गया है।

मनुष्य अपनी रोटी का प्रश्न दो तरह से [illegible] करता है। एक यह कि दूसरों की सम्पत्ति को लू[illegible] या अपने किसी सम्बन्धी की सम्पत्ति का उत्तराधिका[illegible] कर। दूसरे भिन्न भिन्न उद्योग-धन्धों के द्वारा सम्पत्ति [illegible] दन करके अथवा किसी पेशे के द्वारा। यदि लूट[illegible] और उत्तराधिकारिता की बात को छोड़ दें तो अन्य धन्धों और पेशों में खेती ही एक ऐसा धन्धा है जो सामाजिक ज्ञान पर निर्भर न होकर प्रकृति-सम्बन्धी ज्ञान तथा जानकारी पर निर्भर है। कारख़ानों, व्यापारों तथा पेशों की सफलता का रहस्य इसमें है कि उनमें लगा हुआ मनुष्य अन्य मनुष्यों की आवश्यकताओं का अध्ययन करे और उनको प्रसन्न रक्खे। व्यापारी को अपने ग्राहकों को प्रसन्न रखना होता है, एक डाक्टर और वकील को अपने मरीज़ों और मुवक्किलों को ख़ुश रखना पड़ता है और व्यवसायियों को व्यावसायिक सफलता के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वे दूसरों से सम्बन्ध बनाये रक्खें। किन्तु किसान केवल प्रकृति पर निर्भर रहता है। यही कारण है कि खेती करनेवाले को वे सामाजिक शिष्टाचार नहीं आते जो व्यापारियों तथा पेशेवालों को आते हैं, क्योंकि उन्हें दूसरों को प्रसन्न करके उनसे अपनी रोटी प्राप्त करनी पड़ती है। यदि वे लोग अपनी बातचीत तथा व्यवहार से दूसरों को प्रसन्न नहीं रख सकते तो सफल नहीं हो सकते। किन्तु किसान को ड्राइंग-रूम के शिष्टाचारों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, क्योंकि वह अपने निर्वाह के लिए दूसरों पर नहीं निर्भर रहता।

खेती की एक और भी विशेषता है, जिसके कार[illegible]

[illegible]सान अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र रहता है। वह यह कि उसे सामाजिक ज्ञान की अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती। खेती से किसान अपनी आवश्यकताओं की अधिकांश वस्तुएँ स्वयं उत्पन्न कर लेता है, इस कारण वह सामाजिक, व्यापारिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों से उतना अधिक प्रभावित नहीं होता, जितना अन्य धन्धों और पेशों में लगे हुए लोग। एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए। खेती ही एक ऐसा धन्धा है जो घर से प्रथक् नहीं किया जा सकता। खेती की सफलता के लिए घर अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। जिस प्रकार रेलवे के लिए वर्कशाप आवश्यक है, उसी प्रकार खेती के लिए घर आवश्यक है। खेती की सफलता के लिए घर और खेत समीप ही होने चाहिए, किन्तु अन्य धन्धों और पेशों में काम करने तथा रहने के स्थानों का सामीप्य आवश्यक नहीं है और न उनका कोई घनिष्ट सम्बन्ध ही है। यही कारण है कि किसान को सफल किसान बनने के लिए एक कुटुम्ब की नितान्त आवश्यकता है। गाँवों में स्त्री-पुरुष एक-दूसरे पर जितना अधिक निर्भर रहते हैं, उतना शहरों में नहीं रहते। खेती की सफलता के लिए स्त्री का होना आवश्यक है, क्योंकि खेती-सम्बन्धी बहुत-से काम घर पर ही होते हैं। और गाँव की स्थिति ऐसी नहीं होती कि वहाँ होटल चल सकें, जिससे किसान उनपर निर्भर रहकर खाने की चिन्ता से मुक्त हो जाय।

खेती ही एक ऐसा धन्धा है जहाँ कुटुम्ब का प्रत्येक [illegible] आदर्श वातावरण में रहकर भी कुटुम्ब के पालनार्थ [illegible] सहायता पहुँचा सकता है। कल्पना कीजिए शहर में रहनेवाले एक मज़दूर की, जो एक कारख़ाने में काम करता है। यदि वह अपनी स्त्री और बच्चों को कारख़ाने में काम करने को नहीं भेजता तो उसके घर का ख़र्च नहीं चल सकता और यदि वह अपनी स्त्री और बच्चों को काम करने के लिए कारख़ानों में भेजता है तो यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि उसके स्त्री और बच्चों को उसके साथ ही काम करने का अवसर मिले। यदि यह बात छोड़ भी दी जाय तो भी कारख़ाने में काम करने से बच्चों के स्वास्थ्य तथा मानसिक विकास को बहुत हानि पहुँचती है। यह सर्वमान्य बात है। इसके विपरीत खेती में इतने विभिन्न प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं कि पुरुष, स्त्री, बच्चे और बूढ़े सभी अपने अनुकूल काम पा सकते हैं और उस कार्य से उनके स्वास्थ्य तथा मानसिक विकास को हानि पहुँचने के स्थान पर लाभ पहुँचता है। यही कारण है कि गाँवों में विवाह शहरों की अपेक्षा कम आयु में होता है और प्रत्येक युवक और युवती जो स्वस्थ होता है, विवाह अवश्य करता है, क्योंकि बच्चे कुटुम्ब के लिए भार-स्वरूप नहीं होते। वे अपने स्वास्थ्य को बिना हानि पहुँचाये खेती में सहायक हो सकते हैं। कुछ आदर्शवादी आर्थिक आधार पर वैवाहिक जीवन के भवन का निर्माण करने की बात सुनकर सम्भवतः नाक-भौंह सिकोड़ेंगे, किन्तु सत्य तो यही है कि प्रत्येक रोमांस का आधार आर्थिक होता है। यदि हम चाहते हैं कि मनुष्यों का पवित्र सामाजिक तथा कौटुम्बिक जीवन हो और उनका चरित्र ऊँचा हो तो यह तभी हो सकता है जब कौटुम्बिक जीवन का आधार आर्थिक बनाया जाय। यह भावना कि हम सम्पत्ति का उत्पादन अपने लिए नहीं, कुटुम्ब के लिए कर रहे हैं और मनुष्य की यह आकांक्षा कि वह एक समृद्धिशाली कुटुम्ब का निर्माण तथा उसके लिए सम्पत्ति का उत्पादन करे, एक आदर्श समाज उत्पन्न कर सकती है। जहाँ एक समृद्धिशाली कुटुम्ब का निर्माण करने की महत्त्वाकांक्षा काम नहीं करती, उस देश का पतन अवश्यम्भावी है। परिस्थितिवश ग्रामों में समृद्धिशाली कुटुम्ब के निर्माण तथा उसकी रक्षा की आकांक्षा अधिक दृष्टिगोचर होती है। ग्रामों में रहनेवालों की स्वभावतः यह आकांक्षा होती है कि वे एक समृद्धिशाली कुटुम्ब का निर्माण करें। यही नहीं, गाँवों में इसके लिए अनुकूल परिस्थिति भी मिलती है। यदि देखा जाय तो शहर मनुष्य के जीवन तथा उसकी कार्यशक्ति को क्षीण करनेवाले होते हैं। यही कारण है कि गाँवों के कुटुम्बों का जीवन शहरों के कुटुम्बों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। किन्हीं सौ ग्रामीण कुटुम्बों को लीजिए, जो बराबर गाँवों में ही रहे हों और उन्हीं की स्थिति के सौ शहराती कुटुम्बों को लीजिए। आपको ज्ञात होगा कि गाँव में रहनेवाले कुटुम्ब की आयु शहर में रहनेवाले कुटुम्ब से कहीं अधिक होती है। वास्तव में गाँव मनुष्य-जनसंख्या की नर्सरी है, जहाँ से शहरों को जन-संख्या मिलती है। जिस प्रकार कोई पौधा अपनी

प्राकृतिक अवस्था में ख़ूब पनपता है और अप्राकृतिक वातावरण में उसका विकास रुक जाता है और उसका जीवन क्षीण होने लगता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य की जीवन-शक्ति शहरों में जाकर क्रमशः पीढ़ी दर पीढ़ी कम होती जाती है। यही कारण है कि शहरवाले अच्छे कुटुम्ब-निर्माणकर्ता नहीं प्रमाणित होते। किसी भी देश की उन्नति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि देश में अच्छे और समृद्धिशाली कुटुम्बों के निर्माण की भावना बनी रहे। यदि समाज में अच्छे कुटुम्बों के निर्माण की भावना काम करती है तो युवक स्वभावतः ऐसी युवतियों को अपनी पत्नी बनावेंगे जो शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक दृष्टि से उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता रखती हों। गाँवों में अधिकतर उत्तम सन्तान की इच्छा से ही विवाह होते हैं। इस कारण अच्छे स्वास्थ्यवाली लड़की को अच्छा पति मिलने में अड़चन नहीं हो सकती। किन्तु शहरों में सफल माता बनने की योग्यता का कोई मूल्य नहीं होता। एक शिक्षित शहरी युवक अपनी पत्नी में असीम सुकुमारता, ड्राइंग-रूम-सम्बन्धी शिष्टाचार में [illegible] तथा उसके मित्रों को अपनी ओर आकर्षित [illegible] है कि कुशलता [illegible] करने की योग्यता देखना चाहता है। यह निश्चय है कि अस्वस्थ शरीर और मन की युवतियाँ आदर्श मातायें नहीं बन सकतीं। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र के लिए अच्छे नागरिक उत्पन्न करने का उपयुक्त स्थान गाँव है। जिस प्रकार जल से परिप्लावित उद्यान सुन्दर पुष्प उत्पन्न करता है और मालाओं में गूँथे जाने पर वह नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार गाँवों में मनुष्य-जाति उत्पन्न होती और फलती-फूलती है और शहर उनमें से कुछ को लेकर नष्ट करते रहते हैं। वास्तव में शहर मनुष्य-जाति को नष्ट करनेवाले स्थान हैं। [illegible] नया रुधिर न पहुँचता रहे [illegible] दिखलाई दें। [illegible] गाँवों से शहरों में [illegible] स्त्री-पुरुष शहरों में जाकर [illegible] निस्तेज होकर [illegible] अतएव ग्रामीण जन-संख्या पर ही राष्ट्र की शक्ति का आधार है। यदि ग्रामीण जन-संख्या गिरी हुई दशा में है तो राष्ट्र की शक्ति क्षीण हुए बिना नहीं रह सकती। अतएव किसी भी राष्ट्र अथवा जाति की जीवन-शक्ति को बनाये रखने के लिए दो बातों की नितान्त आवश्यकता है—(१) देश में कुटुम्ब-निर्माण की भावना का होना; (२) गाँवों से अपेक्षाकृत स्वस्थ तथा बुद्धिमान् स्त्री-पुरुषों का शहरों की ओर प्रवास न होने देना। यदि गाँवों के सभी उत्तम स्त्री-पुरुष शहरों में जाकर बसते जायँ और वहाँ के अप्राकृतिक जीवन तथा विशेष परिस्थितियों के कारण क्षीण होते जायँ तो इसका यह फल होगा कि गाँवों में अपेक्षाकृत निम्न श्रेणी के स्त्री-पुरुष रह जायँगे और उनसे उत्पन्न होनेवाली सन्तान उतनी अच्छी न होगी। यदि गाँवों के लोगों का शहरों में जाकर बस जाने का क्रम बराबर जारी रहा तो गाँवों में रहनेवाली जन-संख्या और भी निम्न श्रेणी की होती जायगी। इस अवनति का यह फल होगा कि अन्त में शहरों को भी निम्न श्रेणी के ही स्त्री-पुरुष मिलेंगे और क्रमशः जाति में उच्च कोटि के स्त्री-पुरुषों की संख्या बहुत कम हो जायगी। जिस प्रकार एक ग्वाला अपने अच्छे बछड़े-बछियों को तो क़साई को बेच दिया करे और ख़राब बछड़े-बछियों से नस्ल पैदा करे तो भविष्य में उसके यहाँ अच्छे पशु नहीं पैदा हो सकेंगे, उसी प्रकार यदि गाँवों के सब अच्छे स्त्री-पुरुष जाकर शहरों में बस जायँ तो उस जाति की शारीरिक और मानसिक अवनति होना अवश्यम्भावी है।

औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त योरपीय देशों में उद्योग-धंधों की उन्नति के साथ ही साथ गाँवों से शहरों की ओर जन-संख्या का प्रवाह बहना आरम्भ हुआ था। महत्त्वाकांक्षी, स्वस्थ तथा कुशाग्र बुद्धिवाले युवक गाँवों को छोड़ छोड़कर नगरों में जा-जा बसने लगे थे। फलतः गाँव वीरान होने लगे। आरम्भ में इस प्रवाह के दुष्परिणाम दृष्टिगोचर नहीं हुए, किन्तु बीसवीं शताब्दी में प्रत्येक पाश्चात्य देश ने अनुभव किया कि महत्त्वाकांक्षी, स्वस्थ और कुशाग्र बुद्धिवाले युवकों के गाँवों को छोड़ छोड़कर शहरों में जाकर बसने का यह फल हुआ है कि गाँवों में अपेक्षाकृत निम्न श्रेणी के स्त्री-पुरुष रह गये हैं और जाति में अवनति के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे हैं। पहले तो कुछ लोगों का यह विचार रहा कि शहरों में उचित शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य बातों की सुविधाओं को प्रदान कर देने से यह जातीय अवनति रोकी जा सकती है, किन्तु शीघ्र ही उनको अपनी भूल

ज्ञात हो गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शहरों में शिक्षा तथा अन्य आवश्यक सुविधायें प्रदान करने से जातीय ह्रास की गति धीमी अवश्य हो सकती है, परन्तु वह पूर्ण रूप से रोकी नहीं जा सकती। घोड़ा सिखानेवाला चाहे जितना ही होशियार क्यों न हो, ख़राब नस्ल के घोड़े को दौड़ में नहीं जिता सकता। इसी प्रकार शिक्षा इत्यादि का चाहे कितना ही अच्छा प्रबन्ध क्यों न किया जाय, किन्तु जातीय पतन रुक नहीं सकता यदि गाँवों में निकम्मे लोग ही रहते हैं। इसी कारण योरपीय महायुद्ध के उपरान्त ब्रिटेन तथा अन्य योरपीय देशों में 'गाँवों की ओर लौटो' का आन्दोलन आरम्भ किया गया। ब्रिटिश सरकार ने इँग्लेंड में बड़ी बड़ी ज़मींदारियों को ख़रीदना आरम्भ किया और जो भी शिक्षित युवक गाँवों में जाकर अपना घर बनाकर रहने को इच्छुक थे उन्हें पूँजी और भूमि दी गई। अब वहाँ यह आन्दोलन क्रमशः ज़ोर पकड़ता जा रहा है।

भारतवर्ष में शताब्दियों के शोषण के कारण गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है। आज भारतीय ग्रामों की दशा यह है कि जो भी ग्रामीण युवक किसी प्रकार पढ़-लिख जाता है वह सदैव के लिए गाँव को छोड़कर शहर में जा बसता है, फिर चाहे उसे शहर में आर्थिक दृष्टि से कोई विशेष लाभ भी न हो। ज़मींदार शहरों के आकर्षण के कारण अपनी ज़मींदारियों को छोड़कर शहरों में जा बसे हैं। ये ज़मींदार किसानों से प्राप्त धन को गाँवों में व्यय न कर शहरों में व्यय करते हैं, इस कारण गाँव निर्धन होते जा रहे हैं। भारतीय ग्रामों का मस्तिष्क और पूँजी बाहर जोती चली जा रही है और गाँव दीवालिया हो रहे हैं। भारतीय ग्रामों में जो भी तनिक महत्त्वाकांक्षी, बुद्धिमान् तथा साहसी होता है वह गाँवों में न रहकर शहरों की ओर दौड़ा चला जा रहा है। क्रमशः गाँवों में द्वितीय और तृतीय श्रेणी के लोग शेष रह गये हैं और प्रथम श्रेणी के व्यक्ति शहरों में जाकर शक्तिहीन और निस्तेज हो गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारतीयों का सर्वाङ्गीण पतन आरम्भ हो गया है। सारी जाति की जाति पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा है। गाँवों में मनुष्यों की छाँटन रह जाने के कारण रूढ़ियों की प्रबलता, ईर्ष्या, द्वेष, पुरुषार्थहीनता तथा भाग्यवाद का प्राबल्य हो गया है और उनकी दशा गिर गई है। इससे कोई पाठक यह धारणा न बना लें कि लेखक गाँवों से शहरों की ओर जन-संख्या के प्रवास को रोकना चाहता है। यह प्रवास कुछ हद तक स्वाभाविक है, अतएव यह बिलकुल रोका नहीं जा सकता। लेखक का तात्पर्य केवल यह है कि गाँवों से जो शिक्षित और पूँजीवाले व्यक्ति भाग भागकर शहरों को चले जाते हैं वे किसी न किसी प्रकार रोके जायँ, जिससे गाँवों में केवल निम्नश्रेणी के ही व्यक्ति न शेष रह जायँ जैसा कि आज-कल हो रहा है। यह बात हमें न भूलनी चाहिए कि गाँव ही हमारे राष्ट्रीय जीवन को नवीन स्फूर्ति देनेवाले हैं।

अब हमें यह देखना चाहिए कि गाँवों में शिक्षित, धनी, साहसी और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति क्यों नहीं रहना चाहते। गाँवों में यथेष्ट आय के साधन, ऊँचे दर्जे का सामाजिक जीवन, मानसिक विकास तथा स्वास्थ्यप्रद मनोरञ्जन के साधन उपलब्ध नहीं हैं। यही कारण है कि कुशाग्र बुद्धि तथा क्षमतावान् युवक गाँवों को छोड़कर शहरों की ओर चले जाते हैं। अतएव समस्या बहुत जटिल है। जब तक गाँवों में साधारणतः यथेष्ट धन कमाने का अवसर मिलने की सम्भावना न होगी तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकेगी। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि गाँवों में सम्पत्ति उत्पन्न करने के साधन अधिकाधिक उत्पन्न किये जायँ। किन्तु भारतीय ग्रामों की आर्थिक दशा इस समय इतनी गिरी हुई है कि साधारण प्रयत्न से यह ठीक नहीं हो सकती। इसके लिए क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता होगी। हमें क़ानून बनाकर आवश्यकता पड़ने पर दबाव डालकर भी बिखरे हुए खेतों की चकबन्दी करनी होगी तथा एक दूसरा क़ानून बनाकर यह नियम बनाना होगा कि किसी भी किसान के पास परिवार-पोषण-योग्य भूमि से कम भूमि न रहे, साथ ही भविष्य में परिवार-पोषण-योग्य भूमि का भाइयों में बँटवारा न हो सके। अब प्रश्न यह हो सकता है कि यदि इस प्रकार का क़ानून बना दिया जायगा तो बहुत किसान जिनके पास थोड़ी भूमि है, बेकार हो जायँगे और उनकी उदरपूर्ति का साधन क्या होगा। इसके लिए हमें गृह-उद्योग-धन्धों को सरकारी सहायता से गाँवों में स्थापित करना होगा। गृह-उद्योग-धंधों को स्थापित करने का यह अर्थ नहीं है

प्राकृतिक अवस्था में ख़ूब पनपता है और अप्राकृतिक वातावरण में उसका विकास रुक जाता है और उसका जीवन क्षीण होने लगता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य की जीवन-शक्ति शहरों में जाकर क्रमशः पीढ़ी दर पीढ़ी कम होती जाती है। यही कारण है कि शहरवाले अच्छे कुटुम्ब-निर्माणकर्ता नहीं प्रमाणित होते। किसी भी देश की उन्नति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि देश में अच्छे और समृद्धिशाली कुटुम्बों के निर्माण की भावना बनी रहे। यदि समाज में अच्छे कुटुम्बों के निर्माण की भावना काम करती है तो युवक स्वभावतः ऐसी युवतियों को अपनी पत्नी बनावेंगे जो शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक दृष्टि से उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता रखती हों। गाँवों में अधिकतर उत्तम सन्तान की इच्छा से ही विवाह होते हैं। इस कारण अच्छे स्वास्थ्यवाली लड़की को अच्छा पति मिलने में अड़चन नहीं हो सकती। किन्तु शहरों में सफल माता बनने की योग्यता का कोई मूल्य नहीं होता। एक शिक्षित शहरी युवक अपनी पत्नी में असीम सुकुमारता, ड्राइंग-रूम-सम्बन्धी शिष्टाचार में कुशलता तथा उसके मित्रों को अपनी ओर आकर्षित करने की योग्यता देखना चाहता है। यह निश्चय है कि अस्वस्थ शरीर और मन की युवतियाँ आदर्श मातायें नहीं बन सकतीं। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र के लिए अच्छे नागरिक उत्पन्न करने का उपयुक्त स्थान गाँव हैं। जिस प्रकार जल से परिप्लावित उद्यान सुन्दर पुष्प उत्पन्न करता है और मालाओं में गूँथे जाने पर वह नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार गाँवों में मनुष्य-जाति उत्पन्न होती और फलती-फूलती है और शहर उसमें से कुछ को लेकर नष्ट करते रहते हैं। वास्तव में शहर मनुष्य-जाति को क्षीण करनेवाले स्थान हैं।

यदि गाँवों से शहरों में नया रुधिर न पहुँचता रहे तो शहरों में बहुत निम्न कोटि के स्त्री-पुरुष दिखलाई दें। परन्तु गाँवों से कुछ न कुछ कुटुम्ब सदैव शहरों में जाकर बसते रहते हैं और वहाँ जाकर क्रमशः निस्तेज होकर क्षीण हो जाते हैं। अतएव ग्रामीण जन-संख्या पर ही राष्ट्र की शक्ति का आधार है। यदि ग्रामीण जन-संख्या गिरी हुई दशा में है तो राष्ट्र की शक्ति क्षीण हुए बिना नहीं रह सकती। अतएव किसी भी राष्ट्र अथवा जाति की जीवन-शक्ति को बनाये रखने के लिए दो बातों की नितान्त आवश्यकता है—(१) देश में कुटुम्ब-निर्माण की भावना का होना; (२) गाँवों से अपेक्षाकृत स्वस्थ तथा बुद्धिमान् स्त्री-पुरुषों का शहरों की ओर प्रवास न होने देना। यदि गाँवों के सभी उत्तम स्त्री-पुरुष शहरों में जाकर बसते जायँ और वहाँ के अप्राकृतिक जीवन तथा विशेष परिस्थितियों के कारण क्षीण होते जायँ तो इसका यह फल होगा कि गाँवों में अपेक्षाकृत निम्न श्रेणी के स्त्री-पुरुष रह जायँगे और उनसे उत्पन्न होनेवाली सन्तान उतनी अच्छी न होगी। यदि गाँवों के लोगों का शहरों में जाकर बसने जाने का क्रम बराबर जारी रहा तो गाँवों में रहनेवाली जन-संख्या और भी निम्न श्रेणी की होती जायगी। इस अवनति का यह फल होगा कि अन्त में शहरों को भी निम्न श्रेणी के ही स्त्री-पुरुष मिलेंगे और क्रमशः जाति में उच्च कोटि के स्त्री-पुरुषों की संख्या बहुत कम हो जायगी। जिस प्रकार एक ग्वाला अपने अच्छे बछड़े-बछियों को तो क़साई को बेच दिया करे और ख़राब बछड़े-बछियों से नस्ल पैदा करे तो भविष्य में उसके यहाँ अच्छे पशु नहीं पैदा हो सकेंगे, उसी प्रकार यदि गाँवों के सब अच्छे स्त्री-पुरुष जाकर शहरों में बस जायँ तो उस जाति की शारीरिक और मानसिक अवनति होना अवश्यम्भावी है।

औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त योरपीय देशों में उद्योग-धंधों की उन्नति के साथ ही साथ गाँवों से शहरों की ओर जन-संख्या का प्रवाह बहना आरम्भ हुआ था। महत्त्वाकांक्षी, स्वस्थ तथा कुशाग्र बुद्धिवाले युवक गाँवों को छोड़ छोड़कर नगरों में जा-जा बसने लगे थे। फलतः गाँव वीरान होने लगे। आरम्भ में इस प्रवाह के दुष्परिणाम दृष्टिगोचर नहीं हुए, किन्तु बीसवीं शताब्दी में प्रत्येक पाश्चात्य देश ने अनुभव किया कि महत्त्वाकांक्षी, स्वस्थ और कुशाग्र बुद्धिवाले युवकों के गाँवों को छोड़ छोड़कर शहरों में जाकर बसने का यह फल हुआ है कि गाँवों में अपेक्षाकृत निम्न श्रेणी के स्त्री-पुरुष रह गये हैं और जाति में अवनति के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे हैं। पहले तो कुछ लोगों का यह विचार रहा कि शहरों में उचित शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य बातों की सुविधाओं को प्रदान कर देने से यह जातीय अवनति रोकी जा सकती है, किन्तु शीघ्र ही उनको अपनी भूल ज्ञात हो गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शहरों में शिक्षा तथा अन्य आवश्यक सुविधायें प्रदान करने से जातीय ह्रास की गति धीमी अवश्य हो सकती है, परन्तु वह पूर्ण रूप से रोकी नहीं जा सकती। घोड़ा सिखानेवाला चाहे जितना ही होशियार क्यों न हो, ख़राब नस्ल के घोड़े को दौड़ में नहीं जिता सकता। इसी प्रकार शिक्षा इत्यादि का चाहे कितना ही अच्छा प्रबन्ध क्यों न किया जाय, किन्तु जातीय पतन रुक नहीं सकता यदि गाँवों में निकम्मे लोग ही रहते हैं। इसी कारण योरपीय महायुद्ध के उपरान्त ब्रिटेन तथा अन्य योरपीय देशों में 'गाँवों की ओर लौटो' का आन्दोलन आरम्भ किया गया। ब्रिटिश सरकार ने इँग्लैंड में बड़ी बड़ी ज़मींदारियों को ख़रीदना आरम्भ किया और जो भी शिक्षित युवक गाँवों में जाकर अपना घर बनाकर रहने को इच्छुक थे उन्हें पूँजी और भूमि दी गई। अब वहाँ यह आन्दोलन क्रमशः ज़ोर पकड़ता जा रहा है।

भारतवर्ष में शताब्दियों के शोषण के कारण गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई है। आज भारतीय ग्रामों की दशा यह है कि जो भी ग्रामीण युवक किसी प्रकार पढ़-लिख जाता है वह सदैव के लिए गाँव को छोड़कर शहर में जा बसता है, फिर चाहे उसे शहर में आर्थिक दृष्टि से कोई विशेष लाभ भी न हो। ज़मींदार शहरों के आकर्षण के कारण अपनी ज़मींदारियों को छोड़कर शहरों में जा बसे हैं। ये ज़मींदार किसानों से प्राप्त धन को गाँवों में व्यय न कर शहरों में व्यय करते हैं, इस कारण गाँव निर्धन होते जा रहे हैं। भारतीय ग्रामों का मस्तिष्क और पूँजी बाहर जाती चली जा रही है और गाँव दीवालिया हो रहे हैं। भारतीय ग्रामों में जो भी तनिक महत्त्वाकांक्षी, बुद्धिमान् तथा साहसी होता है वह गाँवों में न रहकर शहरों की ओर दौड़ा चला जा रहा है। क्रमशः गाँवों में द्वितीय और तृतीय श्रेणी के लोग शेष रह गये हैं और प्रथम श्रेणी के व्यक्ति शहरों में जाकर शक्तिहीन और निस्तेज हो गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि भारतीयों का सर्वाङ्गीण पतन आरम्भ हो गया है। सारी जाति की जाति पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा है। गाँवों में मनुष्यों की छाँटन रह जाने के कारण रूढ़ियों की प्रबलता, ईर्ष्या, द्वेष, पुरुषार्थहीनता तथा भाग्यवाद का प्राबल्य हो गया है और उनकी दशा गिर गई है। इससे कोई पाठक यह धारणा न बना लें कि लेखक गाँवों से शहरों की ओर जन-संख्या के प्रवास को रोकना चाहता है। यह प्रवास कुछ हद तक स्वाभाविक है, अतएव यह बिलकुल रोका नहीं जा सकता। लेखक का तात्पर्य केवल यह है कि गाँवों से जो शिक्षित और पूँजीवाले व्यक्ति भाग भागकर शहरों को चले जाते हैं वे किसी न किसी प्रकार रोके जायँ, जिससे गाँवों में केवल निम्नश्रेणी के ही व्यक्ति न शेष रह जायँ जैसा कि आज-कल हो रहा है। यह बात हमें न भूलनी चाहिए कि गाँव ही हमारे राष्ट्रीय जीवन को नवीन स्फूर्ति देनेवाले हैं।

अब हमें यह देखना चाहिए कि गाँवों में शिक्षित, धनी, साहसी और महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति क्यों नहीं रहना चाहते। गाँवों में यथेष्ट आय के साधन, ऊँचे दर्जे का सामाजिक जीवन, मानसिक विकास तथा स्वास्थ्यप्रद मनोरञ्जन के साधन उपलब्ध नहीं हैं। यही कारण है कि कुशाग्र बुद्धि तथा क्षमतावान् युवक गाँवों को छोड़कर शहरों की ओर चले जाते हैं। अतएव समस्या बहुत जटिल है। जब तक गाँवों में साधारणतः यथेष्ट धन कमाने का अवसर मिलने की सम्भावना न होगी तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकेगी। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि गाँवों में सम्पत्ति उत्पन्न करने के साधन अधिकाधिक उत्पन्न किये जायँ। किन्तु भारतीय ग्रामों की आर्थिक दशा इस समय इतनी गिरी हुई है कि साधारण प्रयत्न से वह ठीक नहीं हो सकती। इसके लिए क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता होगी। हमें क़ानून बनाकर आवश्यकता पड़ने पर दबाव डालकर भी बिखरे हुए खेतों की चकबन्दी करनी होगी तथा एक दूसरा क़ानून बनाकर यह नियम बनाना होगा कि किसी भी किसान के पास परिवार-पोषण-योग्य भूमि से कम भूमि न रहे, साथ ही भविष्य में परिवार-पोषण-योग्य भूमि का भाइयों में बँटवारा न हो सके। अब प्रश्न यह हो सकता है कि यदि इस प्रकार का क़ानून बना दिया जायगा तो बहुत किसान जिनके पास थोड़ी थोड़ी भूमि है, बेकार हो जायँगे और उनकी उदरपूर्ति का साधन क्या होगा। इसके लिए हमें गृह-उद्योग-धंधों को सरकारी सहायता से गाँवों में स्थापित करना होगा। गृह-उद्योग-धंधों को स्थापित करने का यह अर्थ नहीं है

कि जिस प्रकार आज-कल एक जुलाहा किसी प्रकार गाढ़ा तैयार करके एक समय का भोजन कमा लेता है, उसी प्रकार गृह-उद्योग-धंधे चलने दिये जायँ। गृह-उद्योग-धंधों को आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से चलाना होगा। नवीन यंत्रों के द्वारा और जहाँ जहाँ सम्भव हो पानी से बिजली उत्पन्न करके गाँवों के गृह-उद्योग-धंधों के लिए शक्ति सुलभ करके उनका नवीन संस्करण किया जाय। पूँजी का प्रबंध राज्य की सहायता से हो और तैयार माल की बिक्री प्रान्तीय सिंडिकेट के द्वारा की जाय, जिसको राज्य सहायता दे। खेती पर आज-कल जितने लोग निर्वाह कर रहे हैं वे बहुत अधिक हैं और यदि यह नियम बना दिया गया कि परिवार-पोषण-योग्य भूमि ही एक किसान के पास रह सकेगी तो यथेष्ट संख्या में लोगों को खेती से हटना होगा। अतः केवल गृह-उद्योग-धंधों को आधुनिक रूप देकर स्थापित करने से ही सम्भवतः काम न चल सकेगा, इसके लिए हमें बड़े बड़े उद्योग-धंधों का जहाँ तक हो सके विकेन्द्रीकरण करना होगा और बड़े बड़े कारख़ानों को वर्कशापों का रूप देकर गाँवों में स्थापित करना होगा। इससे यह न समझा जाय कि औद्योगिक केन्द्र नष्ट हो जायँगे और नगरों का ह्रास होने लगेगा। जिन धंधों का केन्द्रीकरण ही उचित है वे धंधे औद्योगिक केन्द्रों में बड़े बड़े कारख़ानों के रूप में चलते रहेंगे, किन्तु अन्य दूसरे धन्धों का विकेन्द्रीकरण किया जायगा। इस प्रकार देश में एक नवीन ढंग का औद्योगिक संगठन तभी किया जा सकता है जब भारत-सरकार प्रान्तीय सरकारों से पूर्ण सहयोग करे और साहस के साथ काम किया जाय। भारत-सरकार को अपनी कर, व्यापारिक तथा औद्योगिक नीति सभी बदलनी होगी। तब जाकर यह नवीन औद्योगिक संगठन हो सकेगा।

इस प्रकार भूमि पर से जन-संख्या के इस असीम भार को हटा देने के उपरान्त इस बात की आवश्यकता होगी कि किसानों के ऋण की समस्या हल की जाय। आवश्यकता पड़ने पर इसके लिए क़ानून का सहारा भी लिया जा सकता है। इस संबंध में यह भी समझ लेना चाहिए कि थिगले लगाने से काम नहीं चलेगा। ब्रिटिश प्रान्तों में अभी तक ग्रामों की ऋण-समस्या को हल करने के जो प्रयत्न होते रहे हैं उनसे एक हज़ार वर्षों में भी यह समस्या न हल हो सकेगी। जिस प्रकार स्वर्गीय सर प्रभाशंकर पट्टनी ने साहस और दृढ़ता के साथ भावनगर-राज्य के किसानों को ऋण-मुक्त कर दिया, उसी प्रकार प्रान्तीय सरकारों को भी दृढ़ता के साथ इस कार्य को हाथों में लेना पड़ेगा। यह तो कहने की आवश्यकता ही नहीं कि परिवार-पालन-योग्य भूमि एक चक में किसान को दे देने पर उसको ज़मींदारों के शोषण से बचाने के लिए लगान-संबंधी क़ानूनों में आमूल परिवर्तन करना होगा।

इस प्रकार आर्थिक समस्याओं को हल करने के साथ [illegible] साथ गाँवों में गमनागमन की सुविधायें, शिक्षा, स्वास्थ्य [illegible] स्वास्थ्यवर्धक मनोरंजन के साधन उपलब्ध करने [illegible]। आर्थिक स्थिति के सुधारने पर गाँवों में रहनेवाले [illegible] न बातों की आवश्यकता समझेंगे और उनके लिए [illegible] भी कुछ व्यय कर सकेंगे। इसके साथ ही राज्य के [illegible] ारियों की मनोवृत्ति को भी बदलना होगा। आज [illegible] में रहनेवाला नीची दृष्टि से देखा जाता है। उससे [illegible] तापूर्वक बोलना तथा उसको पद पद पर अपमानित [illegible] कोई अपराध नहीं समझा जाता। यह सब कठोरता-[illegible] बंद करना पड़ेगा। तभी ग्रामीण स्वाभिमानपूर्वक [illegible] व्यतीत कर सकेगा और अपने व्यक्तित्व का विकास [illegible] केगा।

[illegible] ाँवों के पुनः निर्माण का कार्य अर्ध निद्रित अवस्था [illegible] हो सकेगा। इसके लिए सारे राष्ट्र की शक्ति को [illegible] करना होगा और देश के समस्त आर्थिक ढाँचे में [illegible] त परिवर्तन करना होगा। तभी यह हो सकेगा।
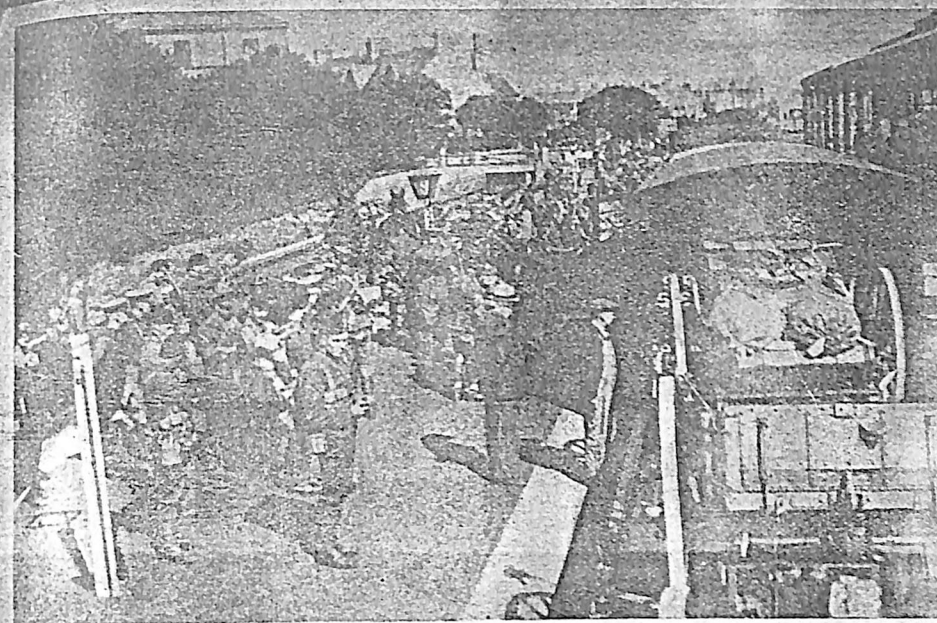
[आक्रमण के लिए घोड़े, बंदूक़, गोला-बारूद आदि युद्ध की सारी सामग्री जुटाई जा रही है।]

विनाश के पथ पर

लेखक, श्रीयुत एम० पी० केदार

श्व आज सचमुच तेज़ी से विनाश के पथ का अनुगामी हो रहा है! जिस देश को देखो वही आँखें मूँदकर प्रलयंकरी सामग्री जुटाने में लगा हुआ है। संसार में एकत्र गोले-बारूद को यदि एक बार आग लग गई तो न जाने वह कितना भयानक और व्यापक रूप धारण कर लेगा! तब उसकी गगन-चुम्बी लपटों से भला कौन सुरक्षित रह सकेगा! परन्तु इसका न तो किसी को ध्यान है, न चिन्ता है। युद्ध का सामान इस तत्परता और तन्मयता से जुटाया जा रहा है, मानो किसी दूसरी दुनिया से भारी शत्रु के तुरन्त आक्रमण करने की सूचना मिली हो। और जो तैयारियाँ आये दिन सुनने में आती हैं उनसे तो ऐसी कल्पना होने लगती है कि आनेवाला महायुद्ध मनुष्यों की अपेक्षा राक्षसों में ही ठननेवाला है।

पश्चिमी विज्ञान की उन्नति भले ही मानव-समाज के लिए कुछ अंशों में हितकारी और कल्याणप्रद सिद्ध हुई हो, परन्तु आज उसका जो विषैला स्वरूप सामने आ रहा है और जिससे संसार का सुख और शान्ति ही नहीं, बल्कि सभ्यता और संस्कृति तक के ध्वंस होने का भय होने लगा है, उसे दूसरे पलड़े में रखकर तोलें तो विज्ञान के उपकारों का बोझ बहुत हलका मालूम देने लगता है। आज तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे विज्ञान की प्रतिष्ठा, उसका एकमात्र ध्येय और कर्तव्य केवल संसार में चारों तरफ़ विनाश की सामग्री जुटाना ही रह गया है। इसका

ब.ो रहे। यदि समाज में अच्छे कुटुम्बों के निर्माण की भावना काम करती है तो युवक स्वभावतः ऐसी युवतियों को अपनी पत्नी बनावेंगे जो शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक दृष्टि से उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता रखती हों। गाँवों में अधिकतर उत्तम सन्तान की इच्छा से ही विवाह होते हैं। इस कारण अच्छे स्वास्थ्यवाली लड़की को अच्छा पति मिलने में अड़चन नहीं हो सकती। किन्तु शहरों में सफल माता बनने की योग्यता का कोई मूल्य नहीं होता। एक शिक्षित शहरी युवक अपनी पत्नी में असीम सुकुमारता, ड्राइंग-रूम-सम्बन्धी शिष्टाचार में कुशलता तथा उसके मित्रों को अपनी ओर आकर्षित करने की योग्यता देखना चाहता है। यह निश्चय है कि अस्वस्थ शरीर और मन की युवतियाँ आदर्श मातायें नहीं बन सकतीं। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्र के लिए अच्छे नागरिक उत्पन्न करने का उपयुक्त स्थान गाँव है। जिस प्रकार जल से परिप्लावित उद्यान सुन्दर पुष्प [illegible] करता है और मालाओं में गूँथे जाने पर वह नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार गाँवों में मनुष्य-जाति उत्पन्न होती और फलती-फूलती है और शहर उसमें से कुछ को लेकर नष्ट करते रहते हैं। वास्तव में शहर मनुष्य-जाति को क्षीण करनेवाले स्थान हैं।

यदि गाँवों से शहरों में नया रुधिर न पहुँचता [illegible] तो शहरों में बहुत निम्न कोटि के स्त्री-पुरुष [illegible] परन्तु गाँवों से [illegible]

[illegible]

परन्तु इसी पर बस नहीं है। प्रत्येक देश इस समय अपना हवाई बल बढ़ाने और युद्ध के लिए गोला-बारूद जुटाने में बुरी तरह तल्लीन है। संसार में जैसे इस काम [illegible]

होगी। यदि गाँवों के लोगों [illegible] जाने का क्रम बराबर जारी रहा तो गाँवों [illegible] जन-संख्या और भी निम्न श्रेणी की होती जायगी [illegible] अवनति का यह फल होगा कि अन्त में शहरों को [illegible] निम्न श्रेणी के ही स्त्री-पुरुष मिलेंगे और क्रमशः जाति में उच्च कोटि के स्त्री-पुरुषों की संख्या बहुत कम हो जायगी। जिस प्रकार एक ग्वाला अपने अच्छे बछड़े-बछियों को [illegible] क़साई को बेच दिया करे और ख़राब बछड़े-[illegible] नस्ल पैदा करे तो भविष्य में उसके यहाँ [illegible] पैदा हो सकेंगे, उसी प्रकार [illegible] पुरुष जाकर शहरों में बस [illegible] और मानसिक अवनति [illegible]

औद्योगिक क्रा[illegible] उद्योग-धंधों की उ[illegible] की ओर जन-संख्या [illegible] महत्त्वाकांक्षी, स्व[illegible] को छोड़ छोड़कर [illegible] गाँव वीरान [illegible] दुष्परिणाम [illegible] में [illegible] देशवासियों की विवाह की [illegible] सामग्री जुटाने के लिए गला [illegible] प्रत्येक जाति इस समय अपने सब कामों को [illegible] अपनी आय का बहुत बड़ा भाग युद्ध की तैयारियों पर व्यय कर रही है। एक ब्रिटेन को ही देखो, जिसे केवल अपनी रक्षा की बात को लेकर ही अपने सैनिक विभाग के बजट में बहुत बड़ी वृद्धि करनी पड़ी है। सन् १९३२-३३ में यह बजट १०३० लाख पौंड था, जो सन् १९३७-३८ में २७८० लाख पौंड तक पहुँच गया है। इसमें ८०० लाख पौंड ऋण के थे। इसके साथ ही बजट

[[illegible] पर शत्रु की रोक-थाम का प्रबंध और जल-सेना की प्रदर्शनी।]

[illegible] की रोक-थाम के [illegible] सन् १९३२-३३ की [illegible] १७१५ लाख पौंड के [illegible] ख़र्च किया जाना निश्चित हुआ।

परन्तु इतने पर ही तो यह लीला समाप्त नहीं होती है। प्रतिवर्ष यह ख़र्च और भी बढ़ता चला जा रहा है। सन् १९३८-३९ के बजट में कुल ३४३० लाख पौंड के ख़र्च का अनुमान लगाया गया है, जिसमें ९०० लाख पौंड ऋण लिया जायगा। ८५ लाख पौंड का ख़र्च हवाई आक्रमण की रोक-थाम के लिए अलग होगा। इस प्रकार कुल ३५१५ लाख पौंड के लगभग ख़र्च होगा, जो सन् १९३२-३३ की अपेक्षा २४८५ लाख पौंड अधिक है। ध्यान रहे, यह सब केवल युद्ध की तैयारी पर ही ख़र्च हो रहा है और यदि कहीं सचमुच युद्ध छिड़ जाय तो मालूम नहीं कि ख़र्च की मात्रा कहाँ तक पहुँचे।

इस हिसाब से इँग्लैंड को आज प्रतिवर्ष २००० लाख पौंड के ख़र्च का भारी बोझ केवल युद्ध के ख़तरे को टालने के लिए सहन करना पड़ रहा है। यही धन-राशि विनाशकारी युद्ध की अपेक्षा यदि राष्ट्र के निर्माण के कार्य में व्यय की जाय तो मनुष्य-जाति का न जाने कितना बड़ा हित हो। परन्तु इतना ख़र्च करने पर भी युद्ध के बादल चारों तरफ़ बराबर मँडरा रहे हैं, और कभी-कभी तो किसी ओर से घनघोर काली घटा इस तेज़ी से उठती मालूम होती है जैसे एकदम बरसकर बस संसार की शान्ति और सुख सब कुछ बहा ले जायगी। वस्तुतः विश्व की शान्ति आज ऐसी ही बालू की दीवारों पर स्थित है।

इँग्लैंड ने जर्मनी से १९१९ से १९३१ तक कुल १२१० लाख पौंड गत महायुद्ध के हर्जाने के तौर पर प्राप्त किया था। इसके अतिरिक्त योरप के दूसरे देशों को

[हवाई जहाज़ों के विनाश के लिए एन्टी-एयरक्राफ़्ट तोपें देश की सीमा पर लगाई जा रही हैं ।]

सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि सन् १९२९ में अस्त्र-शस्त्रों का जितना व्यापार हुआ, सन् १९३७ अर्थात् आठ ही वर्ष के बाद वह २६ गुना बढ़ गया !

वस्तुतः योरप के देशों की सारी शक्ति आज युद्धोपयोगी हवाई जहाज़ों के बनाने में ख़र्च हो रही है । इस समय भी काफ़ी संख्या में भयंकर विनाशकारी हवाई जहाज़ संसार के सब देशों के पास मौजूद हैं । यद्यपि इनकी ठीक ठीक संख्या का जानना बहुत कठिन है, तथापि जो कुछ पता लगाया जा सका है उसके अनुसार आँकड़े इस प्रकार हैं—

देश	वायुयान	देश	वायुयान
फ़्रांस	२५००	जेकोस्लोवेकिया	५५०
जर्मनी	३५००	रूस	४०००
इटली	२०००	पोलेंड	५५०

परन्तु इसी पर बस थोड़े है । प्रत्येक देश इस समय अपना हवाई बल बढ़ाने और युद्ध के लिए गोला-बारूद जुटाने में बुरी तरह तल्लीन है । संसार में जैसे इस काम को छोड़कर और कुछ करने-कराने के लिए रह ही नहीं गया है । बड़े बड़े वैज्ञानिकों के मस्तिष्क आज यदि कुछ सोचने और करने में लगे हैं तो वह युद्ध के भीषण और भयानक साधनों का आविष्कार करना है ।

विनाश के महा-प्रलय-काण्ड की रचना के लिए आज सब देश अपना धन पानी की तरह बहा रहे हैं । अभी कुछ ही दिन हुए, इटली ने अबीसीनिया की स्वाधीनता का अपहरण करने के लिए अपने देशवासियों की विवाह की अँगूठियाँ तक युद्ध की सामग्री जुटाने के लिए गला डाली थीं । प्रत्येक जाति इस समय अपने सब कामों को पीछे डालकर अपनी आय का बहुत बड़ा भाग युद्ध की तैयारियों पर व्यय कर रही है । एक ब्रिटेन को ही देखो, जिसे केवल अपनी रक्षा की बात को लेकर ही अपने सैनिक विभाग के बजट में बहुत बड़ी वृद्धि करनी पड़ी है । सन् १९३२-३३ में यह बजट १०३० लाख पौंड था, जो सन् १९३७-३८ में २७८० लाख पौंड तक पहुँच गया है । इसमें ८०० लाख पौंड ऋण के थे । इसके साथ ही बजट
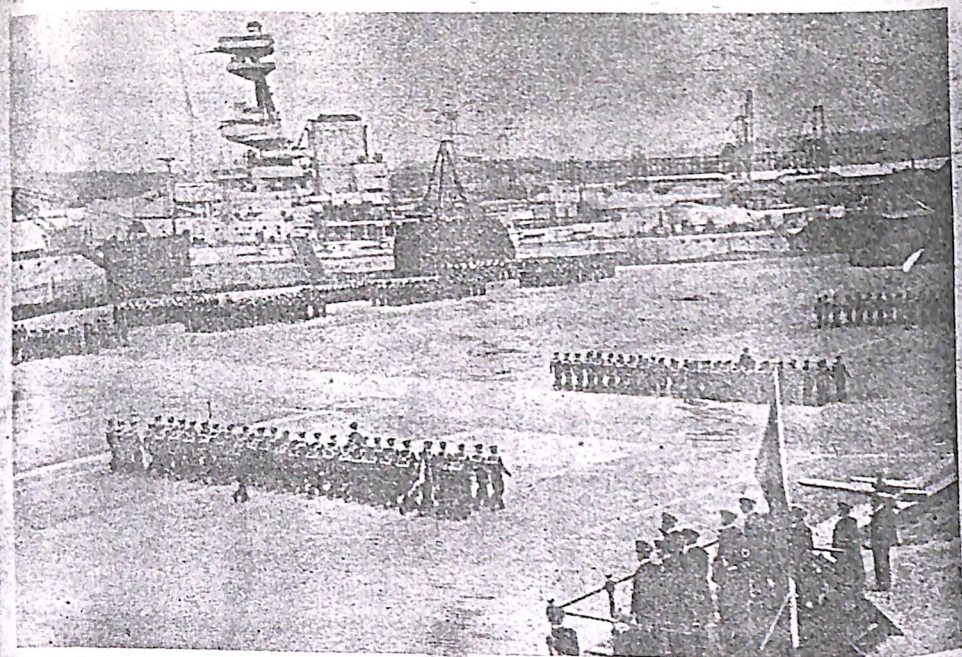
[एक बन्दरगाह पर शत्रु की रोक-थाम का प्रबंध और जल-सेना की प्रदर्शनी ।]

में २० लाख पौंड हवाई आक्रमण की रोक-थाम के लिए अलग रक्खे गये । इस प्रकार सन् १९३२-३३ की अपेक्षा सन् १९३७-३८ में १७१५ लाख पौंड के [illegible] अधिक ख़र्च किया जाना निश्चित हुआ ।

परन्तु इतने पर ही तो यह लीला समाप्त नहीं होती है । प्रतिवर्ष यह ख़र्च और भी बढ़ता चला जा रहा है । सन् १९३८-३९ के बजट में कुल ३४३० लाख पौंड के ख़र्च का अनुमान लगाया गया है, जिसमें ९०० लाख पौंड ऋण लिया जायगा । ८५ लाख पौंड का ख़र्च हवाई आक्रमण की रोक-थाम के लिए अलग होगा । इस प्रकार कुल ३५१५ लाख पौंड के लगभग ख़र्च होगा, जो सन् १९३२-३३ की अपेक्षा २४८५ लाख पौंड अधिक है । ध्यान रहे, यह सब केवल युद्ध की तैयारी पर ही ख़र्च हो रहा है और यदि कहीं सचमुच युद्ध छिड़ जाय तो मालूम नहीं कि ख़र्च की मात्रा कहाँ तक पहुँचे ।

इस हिसाब से इँग्लेंड को आज प्रतिवर्ष २००० लाख पौंड के ख़र्च का भारी बोझ केवल युद्ध के ख़तरे को टालने के लिए सहन करना पड़ रहा है । यही धन-राशि विनाशकारी युद्ध की अपेक्षा यदि राष्ट्र के निर्माण के कार्य में व्यय की जाय तो मनुष्य-जाति का न जाने कितना बड़ा हित हो । परन्तु इतना ख़र्च करने पर भी युद्ध के बादल चारों तरफ़ बराबर मँडरा रहे हैं, और कभी-कभी तो किसी ओर से घनघोर काली घटा इस तेज़ी से उठती मालूम होती है जैसे एकदम बरसकर बस संसार की शान्ति और सुख सब कुछ बहा ले जायगी । वस्तुतः विश्व की शान्ति आज ऐसी ही बालू की दीवारों पर स्थित है ।

इँग्लेंड ने जर्मनी से १९१९ से १९३१ तक कुल १२१० लाख पौंड गत महायुद्ध के हर्जाने के तौर पर प्राप्त किया था । इसके अतिरिक्त योरप के दूसरे देशों को

[सैनिक दल-बल की वार्षिक प्रदर्शनी के अवसर पर सिपाही अपनी प्रचुरता दिखा रहे हैं ।]
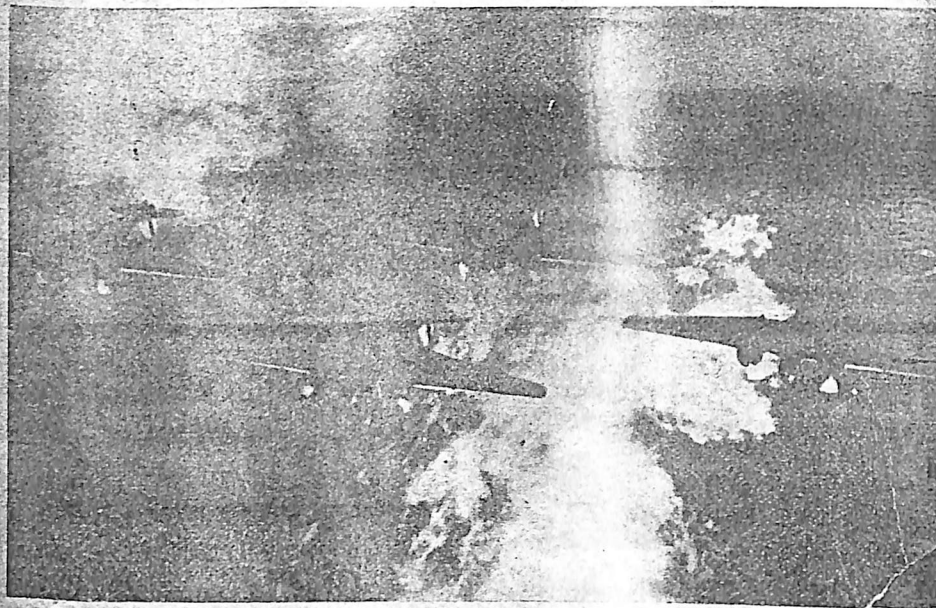
[एक हवाई बेड़ा जो आकाश से बम गिराने का अभ्यास कर रहा है ।]
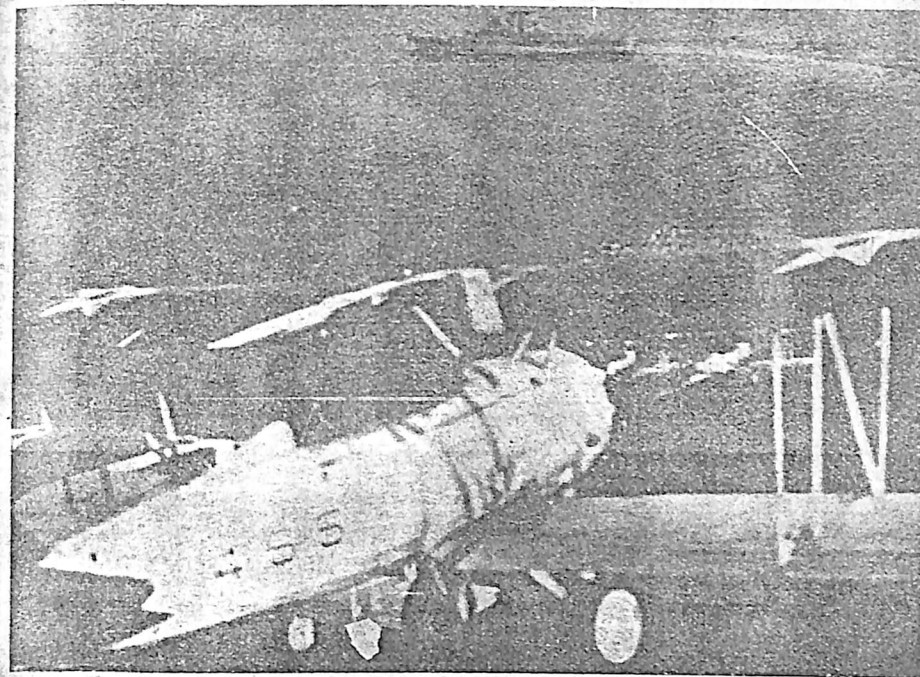
[जंगी हवाई जहाज़ समुद्र में दूसरे जहाज़ों पर उतरने का अभ्यास कर रहे हैं ।]

सब मिलाकर ५०४० लाख पौंड प्राप्त हुए थे। परन्तु आज अकेला इँग्लेंड युद्ध की तैयारियों में उस सारी रक़म के बराबर ख़र्च कर चुका है। यदि जर्मनी के ऊपर वह भारी तावान न डाला गया होता और वह अपना राष्ट्रीय अस्तित्व मिटाने के लिए बाध्य न किया जाता तो कदाचित् आज अकेले इँग्लेंड को बारह वर्ष में प्राप्त की हुई रक़म से पाँच गुना जुर्माना युद्ध की तैयारियों के ख़र्चे के रूप में न देना पड़ता।

परन्तु जब तक इँग्लेंड का बस चला, उसने जर्मनी से अन्तिम पाई तक प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न किया। आख़िर जब जर्मनी ने तंग आये हुए काले नाग की तरह भयकर फुफकार मारी तब इँग्लेंड भीगी बिल्ली की तरह बैठ रहा और आज अपने ख़ज़ाने से प्रतिवर्ष लाखों पौंड रुपया युद्ध के संकट के निवारण करने के लिए स्वाहा कर रहा है।

एक इँग्लेंड का ही तो यह हाल नहीं है। संसार का प्रत्येक देश इस समय युद्ध की आशंका से भयभीत होकर अपने ख़ून-पसीने की कमाई युद्ध की सामग्री के जुटाने में नष्ट कर रहा है। अबीसीनिया को परास्त कर लेने के तुरन्त बाद ही मुसोलिनी ने घोषणा की थी कि वह इटली में एक ऐसा हवाई बेड़ा तैयार करेगा जो सारे योरप पर आच्छादित होकर सूर्य के प्रकाश तक को बीच में ही रोक देगा। जर्मनी अपने तौर पर सब कुछ भूला हुआ देश के एक-एक बच्चे को युद्ध के लिए तैयार करने में लगा हुआ है। युद्ध की तैयारी को छोड़कर उसके सामने न कोई दूसरा काम है, न लक्ष्य।

[आधुनिक ढंग की मशीनगन से गोलियों की वर्षा करने का अभ्यास किया जा रहा है।]

इधर अपने पड़ोस में भी तो हम देख रहे हैं कि शान्ति का उपासक जापान आज चीन की छाती पर चढ़ा हुआ दनदना रहा है। साधारण अवस्था में भी यह छोटा सा देश तीस करोड़ रुपया प्रतिवर्ष अपने सैनिक विभाग पर ख़र्च करता था और आज तो वह अपने ख़ज़ाने का सब धन इसी काम के लिए पानी की तरह बहा रहा है। चीन के एक छोटे से टुकड़े को प्राप्त करने में ही उसका करोड़ों रुपया ख़र्च हो चुका है और उसके परिणाम-स्वरूप जापान आज आर्थिक कष्ट का अनुभव करने लगा है। परन्तु युद्ध का भूत है कि किसी प्रकार भी उसके सिर से उतारे नहीं उतरता। न मालूम, वह धन और जन की ओर कितनी बलि लेकर टलेगा।

इस समय जर्मनी, इटली और जापान इन तीनों का बढ़ा हुआ सैनिक बल भूखे शेर की तरह गर्जकर सारे संसार की नींद हराम किये हुए है। और मज़ा यह है कि यह सब कुछ किया जा रहा है विश्व में शान्ति स्थापना के नाम पर!

दूर क्यों जायँ, अपने हिन्दुस्तान में भी तो इस भयंकर आग की आँच पहुँचने लगी है। अभी हाल में ही केन्द्रीय असेम्बली के शिमला-अधिवेशन में श्रीयुत सत्यमूर्ति के एक प्रस्ताव के उत्तर में सैनिक विभाग के मंत्री आगलवी साहब ने बताया है कि इस वर्ष डेढ़ करोड़ रुपये के अधिक व्यय से सैनिक विभाग में कई सुधार और परिवर्तन करने का इम्पीरियल सरकार ने निश्चय किया है। वर्तमान में भी इस देश में कुछ नहीं तो पचास करोड़ रुपया प्रतिवर्ष केवल एक बहुत बड़ी सेना की उदर-पूर्ति के लिए, देश की रक्षा के नाम पर, ख़र्च किया जा रहा है और यह उस देश का हाल है जहाँ के निवासियों की औसत दैनिक आय दो आने से अधिक नहीं बैठती और जहाँ अर्थाभाव के कारण ९९ प्रतिशत लोग अशिक्षा और अज्ञानता के अंधकार में पड़ें हुए हैं।

और अभी तो यह सब कुछ युद्ध के संकट से बचने के लिए ही किया जा रहा है। यदि पहले की तरह फिर महायुद्ध छिड़ गया तो मालूम नहीं, अवस्था क्या होगी। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि इस बार का युद्ध अत्यन्त भयंकर और प्रलयंकर सिद्ध होकर रहेगा। आज विज्ञान की सहायता से ऐसे-ऐसे आविष्कार किये जा चुके हैं कि

[युद्ध के लिए भरती किये हुए नवीन युवकों को फ़ौजी ट्रेनिंग दी जा रही है।]

[शत्रु के विध्वंस के लिए सैनिक दल को प्रस्थान करने की आज्ञा दी जा रही है।]
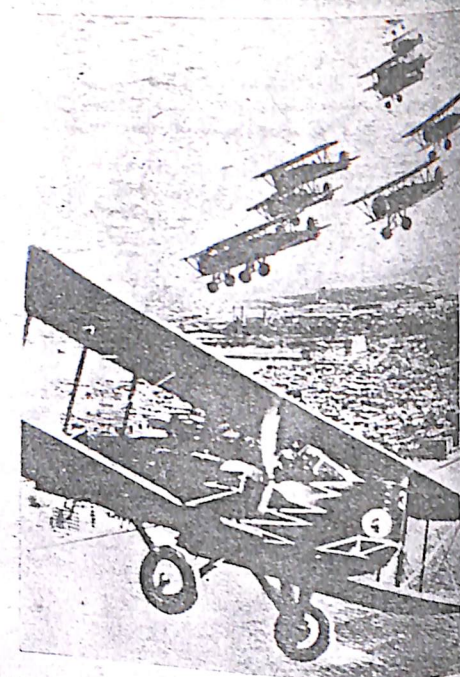
[बम्ब गिरानेवाले हवाई जहाज़ नगर के ऊपर आक्रमण करने का अभ्यास कर रहे हैं।]

हज़ारों और लाखों की जन-संख्यावाले नगरों को भूमिसात् करने के लिए कुछ घंटों से अधिक समय की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। ऐसे ऐसे वायु-यान बन चुके हैं जो अढ़ाई सौ से तीन सौ मील फ़ी घंटा की चाल से शत्रु के देश के किसी भी स्थान में तुरन्त पहुँच सकते हैं और ऐसे ऐसे बम के गोले तैयार किये जा रहे हैं कि हवाई जहाज़ से गिराने पर हज़ारों मनुष्यों को एक ही धमाके से नष्ट-भ्रष्ट कर डाल सकते हैं। निःसंदेह यह सब होने पर ही पूर्ण और निर्विघ्न शान्ति के साम्राज्य की स्थापना होगी। क्या विश्व आज ऐसी ही शान्ति की खोज में अपने आपको भूला हुआ आँखें मूँदे नहीं दौड़ रहा है? परन्तु वह शान्ति—मनुष्यत्व की जली हुई चिता की राख पर रची हुई शान्ति—कितनी महँगी और वेदनामय होगी!

काला बिल्ला

अनुवादक, श्रीयुत शमशेरबहादुरसिंह

मैं एक बहुत अद्भुत पर साथ ही एक बिलकुल घरेलू-सी कहानी लिखने जा रहा हूँ, यद्यपि मुझे आशा नहीं है कि कोई इस पर विश्वास करेगा। मैं चाहता भी नहीं हूँ कि कोई करे। जब इसके बारे में मुझको स्वयं अपनी इन्द्रियों पर विश्वास नहीं है तब यह तो पागलपन ही होगा कि मैं ऐसी आशा करूँ। फिर भी पागल मैं नहीं हूँ और निश्चय ही मैं स्वप्न भी नहीं देख रहा हूँ। कल तो जीवन का अन्त हो ही जायगा, अस्तु आज मैं अपना हृदय हलका कर लूँ। मेरा अभिप्राय इस समय यही है कि मैं अपनी कुछ घरेलू घटनाओं को सीधे-सादे ढङ्ग से संक्षेप में संसार के सामने रख दूँ. उन पर कोई टीका टिप्पणी न करूँ। इन घटनाओं से मुझे भय प्राप्त हुआ है, यातनायें मिली हैं, इनके द्वारा मेरा सर्वनाश हुआ है। पर मैं इनकी व्याख्या करने का प्रयास न करूँगा। मेरे लिए तो ये घटनायें भयोत्पादक रही हैं; शायद बहुतों को ये वैचित्र्य-पूर्ण कथाओं से भी कम उग्र अथवा उत्तेजक जान पड़ें। भविष्य में संभव है, कोई व्यक्ति ऐसा मस्तिष्क लेकर आये जो मेरे विक्षिप्त भाव-स्वप्न को साधारण घटनाओं के रूप में लोगों के सम्मुख रख सके— कोई ऐसा मस्तिष्क जो अपनी उत्तेजना-रहित, शांत तर्क-बुद्धि के द्वारा इन घटनाओं को (जिन्हें भयाकुल और विस्मित होकर मैं आज विस्तार दे रहा हूँ) दिखला सके कि ये कारण और क्रम का एक स्वाभाविक रूप-मात्र हैं।

लोग मुझे बचपन से ही सीधा और दयालु प्रकृति का जानते थे। मेरा हृदय इतना कोमल था कि मेरे सब साथी मेरा उपहास किया करते थे। विशेषकर पशुओं से मुझे बड़ा स्नेह था। मेरे पिता ने मेरे खेलने के लिए तरह-तरह के जानवर पाल लिये थे। मेरा बहुत-सा समय इन्हीं के साथ बीतता था। मुझको जितनी ख़ुशी इन्हें खिलाने और चुमकारने में होती थी, उतनी और किसी बात से नहीं होती थी। उम्र के साथ मेरा यह शौक़ भी बढ़ता गया, और युवा अवस्था पहुँचने पर तो यह मेरे मनोरञ्जन का एक विशेष साधन ही बन गया। जिन लोगों ने मनुष्यता के नाते कभी कोरी मित्रता या भ्रामक आत्मीयता का अनुभव हुआ है उनके हृदय को पशु का प्रेम और निःस्वार्थ आत्म-समर्पण एकदम वश में कर लेता है। उसमें कुछ बात ही ऐसी होती है।

मेरी शादी जल्दी ही हो गई थी। यह देखकर कि मेरी स्त्री का स्वभाव मुझसे भिन्न नहीं है, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसे जब मालूम हुआ कि मुझको जानवर पालने का शौक़ है तब शीघ्र ही अच्छे-अच्छे पशुओं से उसने घर भर दिया। चिड़ियाँ, सुनहरी मछलियाँ, एक बढ़िया सा कुत्ता, कई ख़रगोश, एक छोटा-सा बन्दर और एक बिल्ला हमारे यहाँ पले हुए थे।

बिल्ला बहुत बड़े क़द का था और देखने में बहुत ख़ूबसूरत लगता था। एकदम काला था। इतना समझदार कि आश्चर्य होता था। मेरी स्त्री को जादू-टोने पर कम विश्वास नहीं था। बिल्ले की समझदारी को देखकर वह तो बहुधा कह दिया करती थी कि सुना नहीं, जादूगरनियाँ बिल्ली बनकर घरों में आ जाती हैं। यह बात नहीं थी कि वह गम्भीरता से इस पर विश्वास करती हो। यों ही याद आ गई, इसलिए इस बात का ज़िक्र यहाँ कर दिया।

कालू से—कालू उस बिल्ले का नाम था—मुझे विशेष लगाव हो गया था। मैं अधिकतर उसी के साथ खेलता था। मैं ही उसे खिलाता और घर में जहाँ जहाँ मैं जाता, वह मेरे संग-संग रहता। बड़ी कठिनाई से मैं उसे सड़कों पर आने से रोक पाता था।

इस प्रकार हमारी मित्रता कई सालों तक रही। इस अर्से में असंयम के राक्षस ने (मुझे कितनी शर्म आती है यह कहते हुए!) मेरे स्वभाव और चरित्र को बिलकुल बदल दिया। दिन पर दिन मैं अधिक गुम सुम-सा रहने लगा। छोटी-छोटी बात पर मुझे ग़ुस्सा भी जल्दी आने लगा, और दूसरों के साथ कोई संवेदना मुझे नहीं रह गई। मैं अपनी स्त्री के साथ असंयमित भाषा का व्यवहार करने लगा। यहाँ तक कि मैं उसे मार भी बैठता था। निःसंदेह मेरे परिवर्तित आचरण का प्रभाव मेरे पालतू जानवरों पर भी पड़ा। मैंने उनकी ख़बर लेनी ही नहीं बन्द कर दी, बल्कि उनके प्रति कठोर भी हो गया। ख़रगोश या बन्दर या कुत्ता भी अगर कहीं प्यार के मारे या यों ही मेरे सामने आ पड़ता था तो उसकी शामत आ जाती थी। पर कालू के लिए तो इतना स्नेह अवश्य रह गया था कि मैं उसे मारता नहीं था। पर मेरी व्याधि बढ़ती ही गई। मदिरा-पान से बढ़कर और कौन-सा रोग होगा? कालू बूढ़ा होता जा रहा था, इस कारण अब उसका मिज़ाज भी कुछ तीखा हो गया था। लेकिन अब कालू पर भी मेरा हाथ पड़ने लगा।

एक रात जब मैं नशे में चूर होकर घर आया तब मुझे ऐसा लगा, मानो कालू मेरे पास नहीं आना चाहता। मैंने उसे पकड़ा तब उसने मार के डर से मेरे एक हाथ पर हलका-सा दाँत मार दिया। फिर क्या था! मुझ पर ग़ुस्से का भूत सवार हो गया। मैं अपना आपा भूल गया। मेरी आत्मा मानो मेरी देह से निकल गई, और मेरी नस-नस में मदोन्मत्त क्रूरता की पैशाचिक वृत्ति जाग उठी। मैंने वेस्कट की जेब से चाक़ू निकाला, उसे खोला और उस ग़रीब जानवर का गला हाथ से दबाकर उसकी एक आँख निकाल ली। अपने इस वीभत्स कार्य को लेखनी-बद्ध करते समय मैं आज शर्म और पश्चात्ताप की ज्वाला से काँप उठा हूँ।

जब अपने दुराचार को मैं नींद में डुबो चुका—और सुबह हुई, और मेरी सुबुद्धि लौटी तब अपने पाप के लिए कुछ भय और पश्चात्ताप होने लगा। किन्तु अधिक से अधिक यह एक अनिश्चित और कमज़ोर-सी भावना रह गई थी, जिसका आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। मैं फिर 'अति' करने लगा, और मैंने वह पाप-कर्म शराब के प्यालों में भुला दिया।

इधर बिल्ला धीरे-धीरे स्वस्थ हो गया। उसकी निकाली हुई आँख का पोटा भयानक अवश्य लगता था, पर अब उसे कोई पीड़ा होती जान नहीं पड़ती थी। वह पहले की तरह घर में फिर घूमने लगा। लेकिन जैसी कि अब आशा की जा सकती थी, वह मेरे नज़दीक पहुँचते ही अत्यन्त भयभीत होकर भागता था। मुझमें इतनी सहृदयता अब भी शेष रह गई थी कि उस अत्यधिक प्यार करनेवाले पशु का अपने प्रति विराग देखकर मुझे दुःख होने लगता था। पर कुछ ही दिनों के बाद इस भावना के स्थान पर मुझे झुँझलाहट-सी होने लगी। इसके बाद तो मेरी मति ऐसी बदली कि इस पतन से मेरा निस्तार असम्भव हो गया। शास्त्रों में कहीं इस कुमति का ज़िक्र नहीं है। जितना मुझे आत्मा के अमर होने पर भी नहीं, उससे अधिक विश्वास मुझे इस सत्य पर हो गया है कि यह कुमति मानव-हृदय की आदिम प्रवृत्तियों, उसके उन अभेद्य मूल भाव-संस्कारों में से एक है जो मनुष्य के चरित्र निर्माण में प्रेरक होती है। कौन है जिसने सैकड़ों बार निषिद्ध कर्म नहीं किये हैं, और केवल इसी लिए (किसी और कारण से नहीं) क्योंकि घृणित अथवा मूर्खता-पूर्ण कार्य करना सर्वदा मना किया गया है? हमारी बुद्धि हज़ार कहे कि 'नहीं', फिर भी चूँकि एक बात क़ानून है, केवल इसी लिए क्या उसे तोड़ने की प्रवृत्ति बार-बार हमारे मन में नहीं उठती? जैसा कि मैंने अभी कहा है, यह प्रतिकूल बुद्धि मेरे अन्तिम पतन के लिए मेरे अन्दर पैदा हुई। अपनी आत्मा को पीड़ित करने, उसे कुंठित करने की अदम्य भावना से,—पाप-कर्म को पाप-कर्म जान कर ही उसे करने की अपनी इच्छा-मात्र से—मैं आख़िरकार मजबूर हो गया कि उस सीधे-से जानवर को जो यातना मैंने पहुँचाई है उसे और बढ़ाऊँ, और बढ़ाऊँ, और चरम-सीमा तक उसको पहुँचा दूँ! अस्तु, एक दिन प्रातःकाल बड़ी निर्दयता के साथ मैंने उसके गले में फंदा डाला और पेड़ की एक शाखा में उसे लटका दिया। मेरे आँसू निकल रहे थे, और मेरा हृदय पश्चात्ताप से फटा जाता था, पर उसे मैंने फाँसी दे दी—फाँसी दे दी। क्योंकि उसने मुझे प्यार किया था, और स्वयं कभी मुझे अप्रसन्न नहीं किया था; क्योंकि मैं जानता था कि जो मैं कर रहा हूँ वह पाप है—ऐसा पाप है जिससे महाक्रुद्ध और अत्यन्त करुणामय भगवान् की अनन्त करुणा भी मेरी अमर आत्मा को उबार नहीं सकती।

जिस दिन यह कुत्सित कर्म किया गया था, उस रात

को 'आग! आग!' का शोर सुनकर मेरी आँख खुल गई। मेरे पलङ्ग के पर्दों से लपटें उठ रही थीं। सारा घर जल रहा था। मैं, मेरी स्त्री और मेरा एक नौकर बड़ी मुश्किल से आग से जान बचाकर निकले। सब कुछ स्वाहा हो गया। सब धन-दौलत ख़ाक में मिल गई। इसके बाद से बस, निराशा ने मुझे घेर लिया।

मैं इतना अंधविश्वासी नहीं कि अपने कुकृत्य तथा इस गृह-दाह में कारण और कार्य का संबन्ध ढूँढ़ निकालूँ मैं केवल घटनाओं का एक सिलसिला पेश कर रहा हूँ। मैं यह नहीं चाहता कि इस सिलसिले की कोई कड़ी अधूरी रह जाय।

अगले दिन मैं अपने खँडहर की तरफ़ गया। बस, एक दीवार शेष थी, बाक़ी सब गिर गई थीं। यह घर के बीचो बीचवाली दीवार थी, इससे कमरा दो भागों में पृथक् होता था। इसी के बराबर मेरे पलँग का सिरहाना था। बहुत कुछ इसके प्लास्टर की वजह से भी आग इस पर ज़्यादा असर नहीं कर सकी थी। मेरे ख़याल में इसकी वजह यह थी कि प्लास्टर हाल में ही लगाया गया था। एक भीड़-सी इस दीवार के चारों ओर जमा थी और बड़े ध्यान और तत्परता से इसके एक भाग का निरीक्षण कर रही थी। 'आश्चर्य!' 'अद्भुत!' और इसी प्रकार के अन्य शब्दों को सुनकर मेरी भी उत्सुकता बढ़ी। मैं वहाँ गया और देखा कि उस सफ़ेद भीत पर एक बड़ी सी बिल्ली का उभरा हुआ चित्र बना हुआ है। निशान इतना सही बना हुआ था कि वास्तव में अचम्भा होता था। गले में एक रस्सी का भी निशान था।

जब मैंने पहले-पहल इस प्रेत-चित्र को देखा—उस समय इसको कुछ और समझना मेरे लिए असम्भव था—तब मेरे भय और आश्चर्य का कुछ ठिकाना नहीं रहा। आख़िरकार मन में विचार उठने लगे। मुझे स्मरण हुआ कि घर से मिले हुए बाग़ में ही मैंने बिल्ले को फाँसी दी थी; फिर 'आग! आग!' सुनते ही लोगों की भीड़ इस बाग़ में भर गई थी। ज़रूर उनमें से किसी ने पेड़ से उस जानवर की रस्सी को काटकर खुली हुई खिड़की में से अन्दर फेंक दिया होगा। शायद मुझे जगाने के लिए ही किसी ने ऐसा किया होगा। अन्य दीवारें गिरती रहीं, जिन्होंने मेरे सताये हुए पशु को ताज़ा लगे हुए प्लास्टर में दबा दिया। अस्तु आग की लपटों [illegible] मृत शरीर से निकले हुए अमोनिया और प्लास्टर के [illegible] के द्वारा यह चिह्न अंकित कर दिया।

मैंने अपनी तर्क-बुद्धि को इस प्रकार समझाकर [illegible] कर लिया था कि उपर्युक्त विस्मयकारी घटना का [illegible] कारण है, (हालाँकि मन को इससे पूर्ण संतोष नहीं [illegible] था). तथापि मेरी भावना पर इसका कुछ कम गहरा प्रभाव नहीं पड़ा। महीनों तक मैं अपने आपको उस बिल्ले [illegible] छाया से मुक्त नहीं कर सका, और इस अर्से में [illegible] पश्चात्ताप की-सी भावना भी मेरे मानस में लौटी, [illegible] यह पश्चात्ताप ऊपरी था, वास्तविक नहीं। हाँ, इतना [illegible] कि मुझे अपने कालू के खोने का दुःख महसूस [illegible] लगा, और जिन कुत्सित स्थानों में मैं इन दिनों साधारण तया उठता-बैठता था, वहाँ पूछ-ताछ करने लगा कि उस जाति का कोई दूसरा बिल्ला लगभग उसी जैसा [illegible] मिल जाय तो मैं पाल लूँ।

एक निंद्य से भी निंद्य मकान की बैठक में एक [illegible] को जब मैं कुछ बेख़बर-सा बैठा था तब अचानक [illegible] ध्यान एक काली-सी वस्तु की ओर आकृष्ट हुआ जो [illegible] या 'जिन' नाम की शराब के एक भारी बक्स के [illegible] रक्खी हुई थी। उस कमरे में सबसे बड़ा 'फ़र्नीचर' [illegible] बक्स था। कई मिनट से मैं उस बक्स के ऊपरी [illegible] देख रहा था। मुझे आश्चर्य इस बात का था कि मैंने उस पर रक्खी हुई वस्तु को इससे पूर्व क्यों नहीं देखा। मैं उस वस्तु के पास गया और हाथ बढ़ाकर उसे छुआ। वह था एक काला बिल्ला, बिलकुल उतना ही बड़ा जितना कालू था, और बिलकुल उसी जैसा, [illegible] एक अंतर था। कालू की देह पर कहीं एक भी सफ़ेद बाल नहीं था, लेकिन इस बिल्ले की छाती पर एक बड़ा [illegible] सफ़ेद, बहुत स्पष्ट-सा, चकत्ता सामने की ओर से दिखाई देता था।

जैसे ही मैंने उसको छुआ, वह एक-दम खड़ा [illegible] गया और ऊँचे स्वर में घर-घर करता हुआ मेरे हाथ [illegible] अपने शरीर को मलने लगा। मेरा परिचय प्राप्त करके [illegible] बहुत ख़ुश जान पड़ा। बिलकुल ऐसे ही बिल्ले [illegible] मुझको तलाश थी। मैं उसी वक़्त मकान-मालिक से [illegible] मोल ले लेने को तैयार हो गया। लेकिन उन्होंने कहा [illegible]

[illegible] हमारा नहीं है, इसके बारे में हम कुछ नहीं जानते, हमने इसको पहले कभी नहीं देखा।

मैं उसको पुचकारता रहा और जब घर चलने को हुआ तब उसने ऐसा भाव दिखलाया, मानो वह भी मेरे साथ आना चाहता है। अस्तु, मैंने उसे अपने साथ आने दिया। रास्ते में कभी-कभी चलते-चलते झुककर मैं उसे थपथपा देता था। घर पहुँचते ही वह सबसे हिल गया और मेरी पत्नी का तो बड़ा दुलारा हो गया।

पर मुझको तो थोड़े ही दिनों के बाद उससे कुछ अरुचि-सी होने लगी। जैसा मैंने विचार किया था, ठीक उसका उलटा निकला। मेरे प्रति उसका जो स्नेह-भाव था (और वह स्पष्ट था) उससे न जाने क्यों मैं उकताने लगा, मुझे उससे चिढ़ होने लगी। धीरे धीरे यही भाव पूरी तरह से घृणा में बदल गया। उससे मैं अलग-सा रहने लगा। अपने पिछले ज़ुल्म की याद करके कुछ लज्जा के कारण उस पर शारीरिक आघात करने से मैं रुक जाता था। कई सप्ताह तक मैंने उसे बिलकुल नहीं मारा और न कोई क्रूर व्यवहार ही उसके साथ किया। लेकिन आख़िरकार धीरे धीरे मेरे मन में उसके प्रति एक अकथनीय घृणा का भाव भर गया। उसका रहना ही मुझे असह्य हो गया था। उससे तो मैं यही चाहता था कि जैसे लोग छूत की बीमारी से भागते हैं, चुपचाप कहीं भाग जाऊँ।

उस बिल्ले के प्रति मेरी कटुता निःसंदेह इस कारण और भी बढ़ गई थी कि जिस दिन मैं उसे घर लाया था उसकी अगली सुबह को मैंने देखा कि कालू की तरह उसकी भी एक आँख ग़ायब है। इस परिस्थिति में मेरी पत्नी के निकट तो वह और भी दुलारा हो गया। जैसा कि मैं पहले ही बता चुका हूँ, मेरी स्त्री के हृदय में सहानुभूति और समवेदना की एक उदार भावना थी। कभी पहले मेरा स्वभाव भी ऐसा ही था। तब मेरे आनन्द का भी एक सरस विशुद्ध रूप था।

जितना ही मैं उस बिल्ले से उकता गया था, जान पड़ता है उतना ही उसका लगाव मुझसे अधिक हो गया था। यानी वह जान-जान कर मेरे पीछे पीछे आता था। पाठकों के लिए इस बात की कल्पना करना कठिन है। जहाँ कहीं मैं बैठता, वह मेरी कुर्सी के नीचे आकर बैठ जाता या मेरे घुटनों पर उछल आता और अपने असह्य गर्हित प्यार से मेरी गोद को भर देता। अगर मैं उठकर चलने को होता तो वह मेरे पैरों में आ जाता और क़रीब क़रीब मुझे लड़खड़ा देता या, फिर अपने पंजों को मेरे वस्त्र में गड़ाकर मेरे ऊपर—मेरी छाती पर ही चढ़ आता। ऐसे अवसरों पर यद्यपि जी में यही आता था कि बस एक हाथ में इसका अंत कर दूँ, पर एक तो अपने पिछले पाप-कर्म की मुझे याद आ जाती थी, दूसरे विशेष कारण यह था—मुझे अब शीघ्र स्वीकार ही कर लेना चाहिए कि—मुझे उस पशु से भय लगता था!

यह कुछ शारीरिक आघात के भय-सा तो एक-दम नहीं था, पर इसको शारीरिक न कहूँ तो मैं और कहूँ ही क्या? बड़े शर्म की बात है—हाँ घोर पातकियों के इस कारागार में भी यह सोचकर आज मैं शर्मिंदा हो रहा हूँ कि उस पशु से भयभीत होने का कारण एक काल्पनिक भ्रम था, सो भी अत्यन्त साधारण। मेरी स्त्री ने एक से अधिक बार उस बिल्ले के सफ़ेद बालों की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। प्रकट रूप से यही एक अन्तर इस अजीब बिल्ले और मेरे पहले के बिल्ले में था, जिसका मैंने अन्त कर दिया था। पाठकों को स्मरण होगा, यह निशान यद्यपि बड़ा था, पर आरम्भ में बहुत स्पष्ट था, लेकिन धीरे-धीरे—इतने धीरे-धीरे कि बहुत दिनों तक तो मेरी तर्क-बुद्धि इस बात को केवल अपने भ्रम का ही एक रूप समझती रही—इस निशान ने एक साफ़ अस्पष्ट रेखा का आकार ग्रहण कर लिया। यह आकार उस चीज़ का था जिसका नाम लेते हुए मैं काँप उठता हूँ—विशेषकर तो इसी कारण वह बिल्ला मेरे लिए अस्पृश्य हो गया था, भयावह बन गया था; और अगर मुझे साहस होता तो केवल इसी कारण मैं उससे अपना छुटकारा पा लेता; यह आकार एक डरावनी और घृणास्पद चीज़ का यानी फाँसी का था! ओह! कितने बीभत्स पाप कर्मों का, कितनी दारुण यातनाओं का और मृत्यु का यह अस्त्र है!

अब तो सचमुच मानव-मात्र की करुण दशा से भी अधिक दयनीय अवस्था मेरी हो गई थी। एक पशु, एक जानवर के कारण—जिसके एक भाई का मैं घृणा और [illegible]ता के साथ ख़ात्मा कर चुका था—केवल एक पशु के कारण मुझको, मुझ मानव को—जो परम-पिता परमात्मा

का ही प्रतिरूप-सा निर्मित हुआ है—इतनी दुःसह यातना भोगनी पड़े! हाय, अब मुझे न दिन को शांति मिलती थी और न रात को। दिन में वह जानवर एक घड़ी को भी मुझे अकेला नहीं रहने देता था, और रात को अकथनीय भयानक स्वप्नों से डरकर मैं चौंक उठता था! जागकर देखता था कि उस भूत की गर्म-गर्म साँस मेरे मुख पर आ रही है। उसका बोझ हमेशा के लिए मेरी छाती पर लदा रहता था। यह एक ऐसा दुःस्वप्न था जिसको हटाने की शक्ति मुझमें नहीं थी।

मुझमें जो कुछ थोड़ी-बहुत अच्छाई शेष रह गई थी वह इन यातनाओं के भार से सब दब गई, कुचली गई। एक-मात्र कुत्सित विचार ही—घोर तामसिक और कुत्सित विचार ही—मेरे अंतरङ्ग हो गये। मेरे स्वभाव की विषण्णता यहाँ तक बढ़ गई कि मुझे सब वस्तुओं से और समस्त मानव-समाज से घृणा हो गई। अब मुझे अक्सर अनियंत्रित क्रोध का दौरा अचानक उठ पड़ता, जो मुझे अंधा कर देता। इसका प्रकोप, दुःख है कि बहुधा मेरी स्त्री पर ही होता था; जिसे वह अबाध रूप से धैर्य्य के साथ सहन करती रहती।

एक दिन किसी काम से वह मेरे साथ पुराने घर के तहख़ाने में उतरी। (ग़रीबी ने हमें अपने पुराने घर में रहने के लिए मजबूर कर दिया था।) मेरे पीछे-पीछे बिल्ला भी आया। सीढ़ियाँ बहुत नीची थीं और मैं सिर के बल गिरा होता। अस्तु क्रोध से मैं पागल हो उठा। अपना वह सब कमज़ोर डर भूल गया, जिसने अब तक मेरा हाथ रोक रक्खा था। मैंने एक कुल्हाड़ी उठा ली और उस जानवर पर उसका वार किया। अगर उसके कहीं पड़ जाती जैसा कि मैंने अंदाज़ किया था तो उसका वहीं ख़ात्मा था। किन्तु मेरी स्त्री ने हाथ से बीच में ही रोक लिया। इस विरोध से मेरे क्रोध का और भी विकट पैशाचिक रूप हो गया और स्त्री के पंजे से अपना हाथ छुड़ाकर मैंने वह कुल्हाड़ी उसी के सिर में मार दी। वह वहीं उसी क्षण निष्प्राण होकर गिर पड़ी, एक आह भी उसके मुख से नहीं निकल सकी।

इस नृशंसपूर्ण हत्या के बाद मैं फ़ौरन ही पूर्ण धैर्य्य के साथ शव के छिपाने का उपक्रम करने लगा। यह मैं जानता था कि पड़ोसियों से निगाह बचाकर मैं लाश को घर से दूर नहीं कर सकता था, न दिन को, न रात को। कई तरकीबें मेरे दिमाग़ में आईं। एक बार तो मैंने सोचा कि उसके बारीक़-बारीक़ टुकड़े करके आग में जला दूँ। फिर सोचा कि तहख़ाने के फ़र्श के नीचे ही इसको गाड़ दूँ। फिर सोचा कि क्यों न आँगनवाले कुएँ में इसे डाल दूँ। यह भी सोचा कि बिसाती के माल की तरह एक बक्स में पैक करके उपयुक्त प्रबन्ध के साथ किसी कुली के सिर पर रखवा कर मकान से कहीं बाहर भेज दूँ। अंत में इन सबसे उत्तम उपाय मैंने यह सोचा कि शव को तहख़ाने की दीवार में ही चिन दूँ, जैसा कि मध्य-युग के पादरियों के बारे में लिखा मिलता है कि वे अपने शिकार को दीवार में चिनवा देते थे।

ऐसे कार्य के लिए वह तहख़ाना उपयुक्त भी था। उसकी दीवारें बहुत मज़बूत नहीं बनाई गई थीं और हाल में ही सबों पर प्लास्टर किया गया था, जो उस स्थान की नमी के कारण अभी सख़्त भी नहीं हो सका था। इसके अतिरिक्त दीवार का कुछ भाग एक ओर निकला हुआ था, जो कभी किसी समय कृत्रिम धूएँदानी या चूल्हे के रूप में बना था, लेकिन अब प्लास्टर से बंद कर दिया गया था, ताकि वह भी तहख़ाने के शेष भाग के समान ही दिखाई दे। इस स्थान की ईंटें निकालना और उसमें शव को रखकर उसे फिर पहले की तरह इस प्रकार बराबर कर देना कि कहीं कुछ न जान पड़े, यह सब मैं कर सकता था, इसमें मुझे ज़रा भी संदेह नहीं था।

मेरे अन्दाज़ ने मुझे धोखा भी नहीं दिया। एक लोहे की सलाख़ से मैंने उस स्थान की ईंटें वहाँ से निकाल लीं, और मृत शरीर को अन्दर की दीवार के सहारे होशियारी से टेक दिया। उसको वहीं सँभाले रखकर मैंने बिना किसी दिक्क़त के दीवार की ईंटें पूर्ववत् जोड़कर रख दीं। फिर बड़ी एहतियात से मैंने गारा, रेत और काच-सिवार इकट्ठा किया और उनका प्लास्टर बनाया, जिसको पहलेवाले प्लास्टर से पहचानना मुश्किल था। फिर उसको नई ईंट-बंदी के ऊपर फैलाकर लगा दिया। जब सब काम ख़तम हो गया तब मैंने ज़रा संतोष की साँस ली। सब बिलकुल ठीक था। दीवार के देखने से यह नहीं मालूम होता था कि उसमें कहीं दोबारा काम किया गया है। मैंने फ़र्श का सब कूड़ा-करकट बड़ी होशियारी से बीनकर अलग कर दिया और विजय के भाव से चारों ओर देखकर कहा कि आख़िरकार, इतनी मेहनत व्यर्थ नहीं गई!

मेरा दूसरा काम था अब उसको ढूँढ़ना जिसके कारण मुझ पर इतनी कमबख़्ती आ गई थी। मैंने निश्चय कर लिया कि उसको मार कर ही छोड़ूँगा। उस क्षण वह अगर मेरे हाथ पड़ जाता तो उसका अंत निश्चय था। मालूम होता है कि वह चालाक जानवर मेरे पिछले कोप को देखकर भयभीत हो गया था, और मेरे मन की प्रस्तुत अवस्था में मेरे सामने आते हुए डरता था। उस अस्पृश्य जन्तु के भाग जाने से मेरे हृदय को कितनी शांति मिली उसे बताना अथवा उसकी कल्पना करना बहुत असंभव है। रात में भी वह नहीं आया। दूसरा और तीसरा दिन भी व्यतीत हो गया, पर मेरी आत्मा को जलानेवाला वह बिल्ला नहीं आया। अब मानो फिर से मैंने मनुष्य का नया जन्म पाया, क्योंकि मेरे आततायी ने भय से घबराकर सदैव के लिए मेरा घर छोड़ दिया था। अब मुझे कभी उसकी सूरत देखनी नहीं पड़ेगी, इस बात से मुझे अपार प्रसन्नता थी। हत्या का घोर पातक मुझे बहुत अधिक बेचैन नहीं कर रहा था। दो-एक बार सरकारी पूछताछ की गई थी, लेकिन उनका शीघ्र ही समुचित उत्तर दे दिया था। अपना भविष्य मुझे कुछ सुखमय और कंटक-रहित दिखाई देने लगा।

हत्या के चौथे दिन पुलिस की एक टोली बिलकुल अकस्मात् घर में घुस आई और मकान को सख़्ती से तलाशी लेने लगी। पुलिस के अफ़सरों ने तलाशी के वक़्त मुझे अपने साथ-साथ रहने का आदेश दिया। कोई कोना या ताक़ उन्होंने बाक़ी नहीं छोड़ा। आख़िरकार तीसरी या चौथी बार वे उस तहख़ाने में उतरे। मैं बिलकुल निश्चिन्त रहा। मेरे हृदय की धड़कन शांत रही, जैसे निद्रा में निर्दोष व्यक्तियों की रहती है। मैं तहख़ाने में इधर से उधर टहलता रहा। पुलिसवालों को बिलकुल इतमीनान हो गया कि मैं निरपराध हूँ और वे चलने के लिए तैयार हुए। मेरी आन्तरिक प्रसन्नता इतनी अधिक थी कि छिपाये नहीं छिपती थी।

आख़िरकार जब वे सीढ़ियों पर आधी दूर चढ़ चुके थे, मैंने कहा कि "मुझे प्रसन्नता है कि आपका संशय मैं दूर कर सका हूँ। महाशयो! मैं आप लोगों के स्वास्थ्य और तरक़्क़ी की कामना करता हूँ। साहबो, हाँ इतना और कहता हूँ कि यह मकान बड़ा मज़बूत बना हुआ है।" सहज निश्चिन्तता से कुछ बात करने की धुन में मैं यह नहीं समझा कि मैं क्या कह रहा हूँ। "हाँ, मैं कह सकता हूँ कि इस मकान की—महाशयो, क्या आप जा रहे हैं?—ये दीवारें बिलकुल ठोस चुनी गई हैं!" यह कहकर एक शान-सी दिखाने के लिए मैंने अपने हाथ के बेंत से दीवार के ठीक उसी भाग को ज़ोर से ठोंका, जिसके पीछे मेरी स्त्री का शव था।

ओह! शैतान के पंजे से ईश्वर बचाये। जैसे ही मेरी छड़ी की स्वाभाविक गूँज शान्त हुई, उस क़ब्र में से प्रत्युत्तर में एक आवाज़ निकली!—रोने की-सी। पहले तो किसी बच्चे के हिचक-हिचककर रोने की, टूटी हुई, ऊपर से मुँदी हुई-सी आवाज़; फिर वह लम्बी होकर ऊँचे स्वर में बढ़ती गई और एक चीख़-सी बन गई, बिलकुल अप्राकृतिक और अमानुषिक-सी—किसी जानवर के ज़ोर से रोने की-सी आवाज़ बन गई। उसमें दारुण भय और विजय की भावना का एक ऐसा मिश्रण था, जैसे नरक में पीड़ित आत्माओं के आर्द्र स्वर अपने अधःपतन में ही गर्वित दानवों के......स्वरों के साथ मिलकर ऊँचे उठते हैं।

उस समय मेरे विचार क्या थे, यह बताना तो मूर्खता है। मेरा सिर चक्कर खा गया और लड़खड़ाकर मैं सामनेवाली दीवार पर गिर पड़ा। एक क्षण के लिए तो सीढ़ियों पर पुलिसवाले भय और आश्चर्य में आकर सब खड़े रह गये। दूसरे ही क्षण एक दर्जन हाथ दीवार को खोदने के लिए बढ़े। भाग-विशेष एक साथ ढह पड़ा। मेरी स्त्री का शव जो अब तक काफ़ी ख़राब हो चला था, (यद्यपि जमा हुआ रक्त उस पर इधर उधर लिथड़ा हुआ था) आगन्तुकों के सामने खड़ा था। शव के सिर पर लाल मुँह खोले अपने एक प्रज्वलित नेत्र से घूरता हुआ वह घृणित जन्तु बैठा हुआ था, जिसकी चपलता और कुटिलता के कारण मेरे हाथ से हत्या हुई थी और जिसकी स्वर-सूचना ने मुझे फाँसी-घर के सिपुर्द कर दिया। उस विकराल जन्तु को मैंने शव के साथ ही दीवार में बन्द कर दिया था।

बन्दी ख़ुसरो

लेखक, कुँवर सोमेश्वरसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

कर दूर क्रान्ति यत्नों से
कर चुका शान्ति स्थापित जब।
आगरे भूप लौटा तब
लेकर शाही सेना सब ॥१॥

कमरे में किसी क़िले के
एकान्त एक कोने में।
हो देर न पाई ख़ुसरो—
को क़ैद वहाँ होने में ॥२॥

अकबर था सदा समझता
निज गृह का जिसे उजाला।
था मिला अँधेरा उसको
अब कारागृह का काला ॥३॥

थी जिन्हें अखरने लगतीं
हीरे-मोती की लड़ियाँ।
पहने थीं कलाइयाँ वे
अब लोहे की हथकड़ियाँ ॥४॥

थीं जिसकी एक इशारे
पर खिंच जातीं तलवारें।
साथी थीं उसकी केवल
अब पत्थर की दीवारें ॥५॥

था एक शब्द भी जिसका
कर देता शीतल छाती।
थी मूकवेदना उसको—
हो रहती आज जलाती ॥६॥

थे दुखी मुसाहब सारे,
रोते थे पहरेवाले।
किसको थे रहे सुहाते,
युवराज न भोले-भाले ॥७॥

थीं नूरजहाँ भूपति के
तन-मन-जीवन की रानी।
थीं खिन्न बहुत वह सुनकर
ख़ुसरो की कष्ट-कहानी ॥८॥

आख़िर को मौक़ा पाकर,
भरकर नयनों में पानी।
बोली महीप से जाकर
यों नीति-निपुण वह रानी ॥९॥

ख़ुसरो की करुण-कथा तो
है सुनी नहीं अब जाती।
आश्चर्य आपको उस पर,
है नहीं दया क्यों आती ॥१०॥

क्या नहीं आपने उससे,
भी अधिक बग़ावत की थी।
कब बादशाह ने ऐसी,
पर सज़ा आपको दी थी ॥११॥

हो कुछ भी पर आख़िर को
वह अपना ही बच्चा है।
है जाँपनाह को धोखा—
ख़ुसरो दिल का सच्चा है ॥१२॥

रहने दो प्रिये न छेड़ो
यह राज-काज की बातें।
सुख से सदैव दो कटने
अपने दिन अपनी रातें ॥१३॥

सुनकर ये वचन नृपति के
त्योरियाँ नूर ने तानीं।
नृप जिसे देखकर हरदम
होते थे पानी पानी ॥१४॥

क्यों प्रिये रुष्ट होती हो
थी बात बहुत ही थोड़ी।
तुमने तो ज़िद करने की
आदत न अभी तक छोड़ी ॥१५॥

मुसकान एक हलकी-सी,
रानी के मुख पर आई।
थी कान्ति इन्दु-मुख पर या
मृदु प्रेम विजय की छाई ॥१६॥

नृप ने चाहा अधरों को
रखना सस्मित अधरों पर।
मुख लगा दिया रानी ने
मदिरा का जाम बढ़ाकर ॥१७॥

इस भाँति क़ैदख़ाने से
ख़ुसरो को मिली रिहाई।
फिर से उसकी बेगम ने
अपनी खोई निधि पाई ॥१८॥

वली की 'हिन्दी'

लेखक, पण्डित चन्द्रबली पाँड़े

श्रीयुत पाँड़े जी साहित्य के प्रवीण आलोचक हैं। इस लेख में वली का परिचय देकर उन्होंने यह सिद्ध किया है कि उर्दू का हिन्दी से कैसे उद्भव हुआ।

'हिन्दुस्तानी' के ये चढ़ती के दिन हैं, हालाँकि 'मज़हब' के विचार से 'हिन्दी' ही पाक नाम है। इतना तो सभी को मालूम है कि 'हिन्दुस्तानी' फ़ारसी और 'उर्दू' तुर्की लफ़्ज़ है न कि अरबी। अरब तो 'हिन्दी' नाम को ही पसंद करते हैं और उसी को अपनी पाक ज़बान का लफ़्ज़ मानते हैं। पर यहाँ के लोगों को 'हिन्दी' नाम पसंद नहीं है। ऐसी हालत में यह ख़याल करना कि उर्दू अपने बावा आदम 'वली' का कुछ लिहाज़ करेगी, सरासर ग़लत नज़र आता है। फिर भी हिन्दुस्तानी के हिमायतियों के सामने यह साफ़ साफ़ रख देना है कि उर्दू के बावा आदम वली किस ढङ्ग की कविता किया करते थे और बाद में जनाब शाह साहब के आग्रह से किस तर्ज़ की शायरी करने लगे।

'वली' के प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि उनकी शायरी का तर्ज़ विलायती था न कि देशी। दक्खिन में मुसलमानों की स्थिति बहुत कुछ विदेशी थी। 'दक्खिनी' को वे उसी प्रकार अपनी मादरी ज़बान समझते थे, जिस तरह फ़ारसी को उत्तरी हिन्द के मुसलमान। मतलब यह कि वली की शायरी के क़द्रदाँ मुसलमान ही थे न कि हिन्दू-मात्र। इसी लिए शायद वली ने बार-बार ईरान और तूरान का नाम लिया है और अपने को फ़ारसी के कवियों के समकक्ष कहा है। इसलिए कहना यह पड़ता है कि वली के समय में दक्खिन में पढ़े-लिखे मुसलमानों की शिष्ट भाषा 'दक्खिनी' थी। 'दक्खिनी' को हम चाहें तो उनकी 'उर्दू' या 'शाही ज़बान' कह सकते हैं।

वली की इस शाही ज़बान के शब्दों में भाषा और संस्कृत के शब्दों की कमी नहीं। देखिए तो सही वली का शब्द-कोश कैसा है—

मुझ घट में ऐ निघरघट है शौक़ तुझ घूँघट का।
देखें सों लट गया दिल तेरो ज़ुल्फ़ का लटका ॥
कर याद तुझ कपट कों पड़ते हैं अश्क टपटप।
मुख बात बोलता हूँ शिकवः तेरी कपट का ॥
तुझ नैन देखने को दिल ठाठ कर चुका था।
ग़मज़े के देख ठट कों नाचार होके ठठ का ॥
तुझ ख़त के बिन तबज्ः खुलना है इसका मुश्किल।
हलक़े में तुझ ज़ुलफ़ के जो जीव जाके अटका ॥
हरगिज़ 'वली' किसी किन शाकी तेरा न होता।
गर तुझमें ए हठीले होता न तौर हठ का ॥

—कुल्लियात नं० २५

नसरती, वली आदि 'दक्खिनी' के प्राचीन कवियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आरम्भ तो प्रायः वे हिन्दी-शब्दों से करते हैं, पर विवशता के कारण आगे चलकर अहिन्दी 'बोली' को अपना लेते हैं। जब व्यवहृत बोल-चाल से काम नहीं चलता तब अर्जित 'बोली' से काम लेते हैं। विचार करने के लिए वली के ही कुछ पदों को लीजिए—

तुझ मुख की झलक देख गई जोत चन्द्र सों।
तुझ मुख प अर्क़ देख गई आब गहर सों ॥

× × × ×

अँखियाँ सों हुआ पीव जुदा जब सेंती मेरी।
जाते हैं मेरे अश्क गया पीव जिधर सों ॥

× × × ×

जी चल बिचल हुआ है चंचल तेरी चाल देख।
दिल जा पड़ा ख़लल में तेरे मुख का ख़ाल देख ॥

प्रसंग को बढ़ाने से कुछ लाभ नहीं दिखाई देता। सच्चे समझदारों के लिए इतना निर्देश काफ़ी है। अब कुछ वली के भीतरी भावों पर भी विचार कीजिए और देखिए कि उनमें कितनी हिन्दियत है। उनका एक पद है—

मत ग़ुस्से के शोले सों जलते को जलाती जा।
टुक मेहर के पानी सों यह आग बुझाती जा ॥

तुझ चाल की क़ीमत सें नहीं दिल है मेरा वाक़िफ़।
ऐ नाज़भरी चंचल टुक भाव बताती जा ॥
इस रैन अँधेरी में मत भूल पड़ूँ तिस सें।
टुक पाँव के बिछुवों की आवाज़ सुनाती जा ॥
मुझ दिल के कबूतर कों पकड़ा है तेरी लट ने।
यह काम धरम का है टुक इसको छुड़ाती जा ॥
तुझ मुख की परस्तिश में गई उम्र मेरी सारी।
ऐ बुत की पूजनहारी इस बुत को पुजाती जा ॥
तुझ इश्क़ में जल जलकर सब तन को किया काजल।
यह रोशनी अफ़ज़ा है अँखियन को लगाती जा ॥
तुझ इश्क़ में दिल चलकर जोगी की लिया सूरत।
एकबार अरे मोहन छाती सें लगाती जा ॥
तुझ घर की तरफ़ सुन्दर आता है 'वली' दायम।
मुश्ताक़ है दर्शन का टुक दरस दिखाती जा ॥

—कुल्लियात नं० ४४

कहने की ज़रूरत नहीं कि वली की नायिका सर्वथा हिन्दी है। फ़ारसी या उर्दूवालों की तरह 'अमरद' नहीं। यह तो आलम्बन की बात हुई। आश्रय भी नायिका दिखाई दे जाती है। टुक [illegible]लिए तो सही—

तेरे आने की बाट ऊपर बिछाया हूँ अँखाँ अपनी।
तू वेगी आ कि तुझ बिन मुझको यह घरबार करना क्या ॥
तुम्हीं मिलने सें गर अपने सुहागिन ना करोगे मुझ।
तो जोड़ा गजगरी का और करीलाधार करना क्या ॥
जो कोई जाले गिरित की आग में तनमन को यों अपने।
'वली' संगम बिना ऐसे कों फिर आधार करना क्या ॥

—कुल्लियात ७८

अप्रस्तुत विधान अथवा अलंकारों की योजना में भी वली ने अपने हिन्दीपन का पूरा परिचय दिया है। चुनांच 'मुख के तिल' के विषय में कहते हैं—

नयन देवल में पुतली है व या काबा में है असवद।
हिरन का है या नाफ़ः या कँवल भीतर भँवर दिसता ॥

काबा के सामने आ जाने से नमाज़ भी ज़रूरी है। नमाज़ में भी हिन्दी लफ़्ज़ों की पाबन्दी देखिए और ग़ौर कीजिए कि दीन का ज़बान से क्या संबंध है। वली फ़रमाते हैं—

य मुख तेरा है ज्यों मसजिद भवाँ हैं ज्यों मेहराब।
अँखों सों जाके मैं वहाँ इश्क़ की नमाज़ किया ॥

पाठक हैरान न हों, वली के यहाँ कबीर का 'मन का मनका' भी है—

याद करने कों लिया हाथ में मन का मनका।
दिल ऊपर बोझ पड़ी मनका फिरना मुश्किल ॥

वली राजपूतों की बहादुरी के क़ायल हैं। लड़नेवाली आँखों के लिए फ़रमाते हैं—

दिसे काजल सों तुझ अँखियाँ की यों धज।
कि बरछी कों पकड़ निकला है रजपूत ॥

ब्राह्मणों को भी आँख से ओझल नहीं किया है, बल्कि बार-बार उनकी ख़बर ली है। ब्राह्मण के स्वाध्याय का प्रभाव कितना गहरा हो गया है। वली कहते हैं—

रात दिन अँछुवाँ में अपने शास्तर करता है तर
ऐ बरहमन देख तुझकों बेदख़्वाँ मजनूँ हुआ।

वली की दृष्टि ब्राह्मण के चन्दन पर भी पड़ी है—

बँधा है ऐ सनम जो दिल तेरे माथे के सन्दल पर
अजब नहीं है अगर साये सों उसके बरहमन निकले।

जनेऊ का हाल भी देख लीजिए—

बरहमन तुझ मुख कों देखा पास हिन्दू ज़ुल्फ़ के
ज़ुल्फ़ के ताराँ जनेऊ करके समझा बरहमन।

वली ने हिन्दू-शब्द का प्रयोग यहाँ काले के अर्थ में किया है। हिन्दू-शब्द के दोनों अर्थों को एक ही जगह देखना हो तो वली का यह शेर पढ़ें—

हिन्दू सूरज कों दूर सों नित पूजते वले।
हिन्दू-ए-ज़ुल्फ़ की है बग़ल भीतर आफ़ताब।

वली को देश के प्राचीन वीरों के गुण गान में मज़ा आता था। वे हिन्द में एक अजनबी की तरह रहने का दम नहीं भर सकते थे। उनके यहाँ राम, लक्ष्मण कृष्ण, अर्जुन की कथा तो प्रचलित ही थी, वासुकि और यम भी उनकी जानकारी के भीतर थे। सबसे पहले ज़रा राम शब्द के प्रयोग पर ध्यान दीजिए—

गर च लछमन तेरा है राम वले
ए सजन तू किसी का राम नहीं।

तथा

क्या वफ़ादार हैं कि मिलने में
दिल सों सब राम राम करते हैं।

बन बन में फिरते कृष्ण की भी एक झाँकी ले लीजिए—

तेरे बिन रात दिन फिरता हूँ बन-बन किशन के मानिन्द
जमन के मुख उपर रख कर निगह की बाँसुली अँखियाँ।

कृष्ण की वंशी के साथ ही साथ अर्जुन के बाण का भी ध्यान कीजिए—

जोधा जगत के क्यों न डरैं तुझ सों ऐ सनम
तरकश में तुझ नयन के हैं अर्जुन के बान आज।

कृष्ण या अर्जुन का गुण-गान करना बहुत कुछ सामान्य है, पर वासुकि को पाताल से बुला लाना एक ख़ास अदब को बात है। ग़ौर कीजिए, वली किस हिन्दी ढंग से वासुकि को उठा कर चलाते हैं—

वली तुझ ज़ुल्फ़ की गर सेहसाज़ी का बयाँ बोले
चले पाताल सों वासुकि सौ पेच वो ताब सों उठकर।

यही नहीं, वली ने हिन्दी राजा-प्रजा के सम्बन्ध को भी दिखा दिया है और इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया है कि राजा उपज का कितना भाग लेता था। उनका कहना है—

तन के मुल्क में ए 'वली' तुझ इश्क़ के हाकिम ने आ
दिल की रैय्यत सों छठा लेकर चुकाया दाम दाम।

वली के इस कथन के महत्त्व को समझने के लिए भगवान् मनु का यह निर्देश कितना सटीक है—

आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम्।
गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च ॥ ७-१३१।

हिन्दीपर्वों और उत्सवों से वली को कितना उंस था, ज़रा इसे भी देख लें—

तेरे ज़ुल्फ़ाँ के हलक़े में दिसे यों नक़्श रुख़ रोशन।
कि जैसे हिन्द के भीतर लगैं दीवे दिवाली में ॥

तीर्थस्थानों की महिमा पर भी ध्यान दीजिए और ज़रा ग़ौर तो फ़रमाइए कि वली किस तरह उन्हें याद करते हैं—

कूच-ए-यार ऐन कासी है,
जोगी दिल वहाँ का बासी है।
पी के बैराग की उदासी सों
दिल भी बैरागी व उदासी है।
ऐ सनम तुझ जबीं ऊपर यह ख़ाल
हिन्दू-ए हरद्वार बासी है।
ज़ुल्फ़ तेरा है मौज जमना की
पास तिल उसके ज्यों संन्यासी है।

कहाँ तक कहें? वली हिन्द पर इतने फ़िदा हैं कि—

'वली' तेरी गली कों देख बोला
यही है हिन्द और कश्मीर व काबुल।

यह है उर्दू के बाबा आदम कहे जानेवाले जनाब वली की हिन्दी-लगन और यह है 'कुल्लियात वली' के सम्पादक जनाब अहसन साहब मारहरवी की हिन्दी की जानकारी—

प्रान—अवाम देहाती अब भी जान के माने में बोलते हैं।
—कुल्लियात पृ० ह

अर्जुन—एक क़दीम पहलवान जो बड़ा तीरन्दाज़ था।
—कुल्लियात पृ० द

तपती या तबती—शहर सूरत में एक दरिया है।
—कुल्लियात पृ० त

रसोई—हनूद की ज़बान में खाने को कहते हैं।
—कुल्लियात पृ० म

कासी—काशी (शहर इलाहाबाद)।—कुल्लियात पृ० फ

बस। इससे आगे कुछ और उदाहरण देने की ज़रूरत नहीं। अभी इतने से ही संतोष कीजिए और इसको देखकर यह बता दीजिए कि आज जो हमारी मातृभाषा कही जाती है और हिन्दू-मुसलिम एकता की एकमात्र निशानी समझी जाती है उसके आचार्य वली हमारे देश, हमारी परम्परा और हमारी भूमि से कितने परिचित हैं और किस रूप में कहाँ तक हमारी बातों का सत्कार करते हैं। जनाब अहसन साहब मारहरवी वली के उद्धारक और उर्दू के प्रकांड पण्डित गिने जाते हैं। 'कुल्लियात वली' का प्रकाशन सन् १९२७ ईसवी में मौलाना और अब डाक्टर अब्दुल हक़ साहब जैसे 'मुल्की ज़बान' की हिमायती हस्ती के हाथ हुआ है। वही डाक्टर हक़ साहब जो आज [illegible]दोस्तानी' (उर्दू) के लिए प्राणपण से तुले हुए हैं और अंजुमन-तरक्क़ी-उर्दू-हिन्द के सर्वेसर्वा हैं। विचार करने की बात है कि वली की इस हिन्दी-प्रवृत्ति में भयंकर परिवर्तन करनेवाले कौन से कारण थे, जो उन्हें 'रेख़ते' से हटाकर 'उर्दू का बाबा आदम' बना दिया और जनाब अहसन साहब मारहरवी से काशी को 'इलाहाबाद' लिखा दिया। कारण प्रत्यक्ष है। उनका मत है—

ऊपर—ऊपर का मुख़फ़्फ़फ़, पर वर का तरजुमः।

—कुल्लियात पृ० ८ ज

साफ़ ज़ाहिर है कि जनाब अहसन साहब ने 'फ़ारसी' को मूल भाषा बना दिया और मूल भाषा संस्कृत की भरपूर उपेक्षा की। इस उपेक्षा अथवा अहिन्दी-प्रवृत्ति का इतिहास बहुत ही शिक्षाप्रद तथा रोचक है। उस पर विचार करने का समय नहीं, हाँ, इतना भर जान लीजिए कि एक बार वली औरंगाबाद (दकन) से चल कर दिल्ली* पहुँचे। उस समय दिल्ली में फ़ारसी का ह्रास हो रहा था और भाषा बढ़ रही थी। दिल्ली के शाह शाद उल्लाह गुलशन को यह बात खली। वली के फ़ारसी तर्ज़ को तो उन्होंने पसन्द किया, पर उसका हिन्दीपन उन्हें न रुचा। चट उन्होंने वली से कहा—

"ईं हमः मज़ामीन फ़ारसी कि बेकार उफ़्तादह अन्द दर रेख़तः बकार बबर। अज़ तू कि मुहासिबः ख़्वाहिद गिरफ़्त।"

"यह इतने सारे फ़ारसी के मज़मून जो बेकार पड़े हुए हैं उनको अपने रेख़ते में इस्तमाल कर। कौन तुझसे जायज़ः (हिसाब) लेगा।" (उर्दू रिसाला पृ० १७९ अप्रैल सन् १९३२ ई०)

शाह साहब की बात जादू का काम कर गई। वली फ़ारसी को हिन्दी क़ालिब में ढालने लगे। निदान उनकी शायरी का रङ्ग यह हो गया—

जब सनम को ख़याल बाग़ हुआ,
तालिब नशः—ए फ़ुराग़ हुआ।
फ़ौज उश्शाक़ देख हर जानिब,
नाज़नीं साहबे दिमाग़ हुआ॥
रश्क सों तुझ लबाँ की सुरख़ी के,
जिगर लालः दाग़ दाग़ हुआ।
दिले उश्शाक़ क्यों न हों रोशन,
जब ख़याले सनम चिराग़ हुआ।
ऐ 'वली' गुलबदन को बाग़ में देख,
दिल संद बर्ग बाग़ बाग़ हुआ॥

—कुल्लियात नं० ५८

शाह हातिम ने वली को अपना उस्ताद मान लिया और फ़ारसी तथा अरबी के आधार पर 'दरबार' की शाही ज़बान को जो उस वक़्त बोलचाल में थी, पकड़ लिया। उसमें से भाषा तथा हिन्दीपन को दूर किया। जो बचा उस पर फ़ारसी-अरबी का मुलम्मा चढ़ाया और उसका नाम यथार्थ ही 'उर्दू की ज़बान' रक्खा, जो आरम्भ में 'उर्दू-ए-मुअल्ला' के पाक नाम से चलती रही और फिर घिस घिसा कर 'उर्दू' रह गई। हातिम उर्दू के आदि आचार्य तो हुए, पर वे 'उर्दू के बाबा आदम' न कहला सके। यह उपाधि वली (औरङ्गाबादी) को ही मिली। वही आज उर्दू के बाबा आदम और हिन्दी के प्रथम कृतांत माने जाते हैं। उन्हीं के प्रयत्न से उनकी 'रेख़ता' हिन्दी से फ़ारसी बन चली और बन-सँवर कर 'उर्दू' के रूप में देश में प्रतिष्ठित हुई। आज पढ़े-लिखे तुरुकों की निजी ज़बान है। उसी में उनका गर्व है। उन्हें अब हिन्दी से कोई काम नहीं पड़ता। अस्तु, अब काशी को इलाहाबाद समझ जाते हैं।

*'क़ायम' के कथनानुसार वली सन् ११९२ हि० (सन् १७०० ई०) में दिल्ली आये और 'हातिम' के कथनानुसार सन् ११३३ हि० (सन् १७२० ई०) में उनका दीवान पहुँचा।

हमारा नमक-कर

लेखक, श्रीयुत हेमचन्द्र चौधरी

हमारे नमक-कर का इतिहास है, जिसका वर्णन डाक्टर बी० पट्टाभि सीतारामैया ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है। यह लेख उन्हीं के महत्त्वपूर्ण विवरण का अनुवाद है जिसे राजनीति से सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को जानना चाहिए।

यदि हम लोग नमक ऐसी साधारण वस्तु के सिद्धान्त से लेकर सेना ऐसी विशाल संस्था तक का अन्वेषण करें तो हमें ब्रिटिश सरकार की राजनीति का पता लग जायगा। मनुष्य की जानकारियों में की सबसे सुलभ वस्तु शोरा से लेकर सैन्य जैसी विकट संस्था तक भारतवर्ष की आर्थिक परिस्थिति की सहायता से ब्रिटिश सरकार की नीति ऐसी बनाई गई है कि अँगरेज़ों की प्रधानता यहाँ सर्वदा बनी रही। गोखले महोदय ने जब भारतीय राजनीति के क्षेत्र में सन् १९०३ ईसवी में पदार्पण किया तब भारत-सरकार पर सर्वप्रथम आक्षेप उन्होंने नमक-कर को लेकर किया था। नमक-कर को वे विधिविरुद्ध, अनुचित तथा मनुष्यता के बाहर की बात समझते थे। सरकार एक मन नमक पर ढाई रुपया नमक-कर लेती थी। इसका ध्यान किसी को भी न था कि क्या उस बनाये गये नमक से मालिक को लाभ होता है या वह नमक विश्व-व्यापार में कुछ सफलता भी प्राप्त कर सका है। पर नमक के गोदाम के बाहर जाने के पहले ही गोदाम के मालिक को ढाई रुपया फ़ी मन के हिसाब से उसका कर तो देना ही पड़ता था। इस प्रकार नमक के दाम में निरर्थक ही आवश्यकता से अधिक वृद्धि हुई। भारतीय राजनीतिज्ञों के पिछले ३३ सालों से अथक चेष्टा करने पर भी सरकार से यह न हो सका कि नमक-कर को घटाकर उसकी दर फ़ी मन सवा रुपये कर दे। १९२९ साल के पूर्वार्द्ध में व्यवस्थापक-सभा ने एक प्रस्ताव पास किया, जिसका उद्देश्य नमक-कर को सवा रुपये फ़ी मन की दर से घटाकर एक रुपया फ़ी मन कर देना था। पर बड़े लाट साहब ने सवा रुपयेवाली दर को ही क़ायम रक्खा और जनता को यह पूछने का अवसर ही न मिला कि नमक ऐसे जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली आवश्यक वस्तु को लेकर उन लोगों के साथ लार्ड इरविन के समान लोकप्रिय वायसराय के द्वारा ऐसा व्यवहार क्यों किया गया। यदि नमक गाँजा के समान उन्मादक, मद्य के समान मत्त करनेवाला, अफ़ीम के समान निर्बुद्धिकारक या कोकेन के समान उत्तेजक वस्तु होती तो लोग समझते कि उसे कर-बद्ध कर उसका निर्माण नियमित किया गया है। पर नमक तो पशु तथा मनुष्य दोनों के जीवन के लिए एक नितान्त आवश्यक वस्तु है। और यह सभी जानते होंगे कि श्रीमान् गोखले, 'इम्पिरियल कौंसिल' की छः सालों की अवधि में, लार्ड कर्ज़न के काल में इस कर को सर्वप्रथम घटवाकर सवा रुपया कर सके थे तब नमक का व्यय काफ़ी बढ़ गया था। पशु के दस सेर दाने में कम से कम डेढ़ सेर नमक की आवश्यकता होती है। पर कितने किसान या साईस ऐसे हैं जो इतना नमक दाने के साथ मिलाते हैं? इसका एक मात्र कारण नमक का महँगापन है। इस देश के लिए यह एक बहुत ही अद्भुत बात है कि यहाँ ४,५०० मील लम्बा समुद्र-तट, बड़े बड़े लवणागार, मरुमध्यस्थित लवणपूर्ण रम्य भूमियाँ तथा नमकवाली झील, कुएँ और चट्टानों के होते हुए भी बाहर से नमक मँगाया जाता है तथा समुद्र-तटवासी समुद्र से एक घड़ा भी खारा पानी लाकर नमक तैयार करने से रोके जाते हैं। यही नहीं, ऐसा करना अपराध माना गया है, जिसका दण्ड छः मास का कठोर कारावास तथा ५००) जुर्माना है। निर्धनता अपने को नमक के विषय में नियमित रखने को बाध्य है और दुःख की बात यह है कि निर्धन ही दक्षिण-भारत की अधिकांश प्रजा हैं। दक्षिण-भारत में नमक का आतंक दिन प्रतिदिन कठोर होता जाता है, क्योंकि प्राकृतिक नमक पृथ्वी पर पड़ा रहता है। और यह वहाँ जितनी ही प्रचुरता में पाया जाता है उतना ही वहाँ-वालों को नमक के बिना भूखों मरना पड़ता। कई गाँवों में किसानों ने मुझसे कहा कि रात्रि में नमकीले स्थानों पर उन

लोगों को अपने पशुओं को चराने को ले जाना पड़ता था, जिसमें वे नमक चुराकर चाट सकें, तो भी नियम का उल्लंघन करते हुए पकड़े जाने पर संतरियों-द्वारा उन्हें दण्ड भोगना पड़ता था। तत्पश्चात् यह घोषणा की गई कि वहाँ का सब नमक जो प्राकृतिक रूप में पृथ्वी पर अनायास ही पाया जाता हो, इकट्ठा करके नष्ट कर दिया जाय।

लगभग १६२९ की बात है। टेरिफ़-बोर्ड (कर-सम्बन्धी संस्था) को इस बात का पता लगाने का आदेश किया गया कि भारत स्वयं नमक तैयार करके अपना निर्वाह करने के योग्य है या नहीं। कहा जाता है कि उक्त बोर्ड ने जाँच करके यह बताया कि बंगाल के लोग चेशायर के बने हुए साफ़ नमक को भारतीय मटमैले नमक से अधिक पसन्द करते हैं। एक बंगालियों की रुचि के आधार पर उस संस्था ने यह घोषित किया कि यहाँ के लोग स्वयं अपना निर्वाह करने में असमर्थ हैं, क्योंकि इन्हें श्वेत नमक चाहिए। वास्तव में यह एक अति खेद का विषय है कि यहाँ के लोगों में ऐसा विकार उत्पन्न हो जाय कि वे बाहर से मँगाये गये श्वेत नमक, श्वेत चावल, जर्मनी तथा जावा की उजली चीनी, विदेशी उजले कपड़े तथा अन्य अन्य देशों के श्वेत पत्ती को पसन्द करें। थोड़ा-सा अध्ययन भी यह बताने के लिए काफ़ी है कि उपर्युक्त प्रत्येक वस्तुएँ मानव-शरीर तथा किसी भी देश की राजनीति के लिए कितने कष्टयुक्त तथा विप्लवकारी हैं। कोई भी व्यक्ति यह सुनकर यथार्थ में ही आश्चर्य करेगा कि क्यों इँग्लेंड जैसे सुदूर देश से, इतना बड़ा समुद्र लाँघकर, ६ सहस्र मील की दूरी पारकर, भारतवर्ष में नमक आता है और यहाँ के बनाये गये नमक से सस्ते भाव में बिकता है। यह सोचकर भी वह आश्चर्य ही करेगा कि क्यों लाट साहब ने पुराने सवा रुपयेवाले कर को ही क़ायम रक्खा और केवल अपनी सभा को ख़ुश करने की नीयत से ही चार आने की कमी क्यों नहीं कर दी। यदि उक्त कर कम कर दिया जाता तो ऐसा क्या वज्रपात हो जाता या समुद्र में तूफ़ान आ जाता, या धरती माता की छाती फट जाती या साम्राज्य नष्ट हो जाता? पर हाँ, सम्भव है कि उपर्युक्त कही गई बातों में भले ही प्रथम तीनों हों वा न हों, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजस्व में चार आने की कमी कर देने से साम्राज्य के हक़ में अच्छा न होता।

अब यह विचार करना चाहिए कि ऐसा क्यों होता है। बात यह है कि भारतवर्ष से ३१६ करोड़ रुपये का माल बाहर जाता है तथा २५६ करोड़ रुपये का माल बाहर से यहाँ आता है (१९२५-२६)। इन दोनों आँकड़ों में लगभग ६० करोड़ रुपये का अन्तर है, पर यह अन्तर केवल इतना ही नहीं है। भारतवर्ष से कच्चा माल तथा खाद्य पदार्थ बाहर भेजे जाते हैं। वे वज़नी तथा अधिक जगह घेरनेवाले होते हैं। इन वस्तुओं को ले जाने के लिए जहाज़ों में काफ़ी जगह की आवश्यकता होती है। पर बाहर से आनेवाला माल पक्का होता है। अर्थात् वहाँ से बनी-बनाई वस्तुएँ आती हैं, जो न तो उतनी वज़नी होती हैं, न अधिक जगह ही घेरती हैं। इन बातों को छोड़कर यदि केवल मूल्य के दृष्टिकोण से ही विचार करें तो भी यही प्रकट होता है कि जानेवाली वस्तुओं के लिए आयातवाली वस्तुओं की अपेक्षा विशेष जहाज़ों की आवश्यकता है। इसलिए यह साफ़ है कि भारतवर्ष के माल को बाहर ले जाने के लिए उनके आकार पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। भारतवर्ष के पास नाम-मात्र को भी इतने जहाज़ नहीं हैं कि उन वस्तुओं को यहाँ से ले जा सकें, इसलिए लाने और ले जाने का भार विदेशी जहाज़ों पर ही रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि बहुत से जहाज़ों को समुद्र में ख़ाली आना पड़ता होगा, जिसमें वे भरे आये हुए जहाज़ों से अधिक वस्तु लादकर ले जा सकें। हम अभी बता चुके हैं कि बाहर जानेवाली वस्तुएँ जैसे, रुई, चावल, जौ, गेहूँ, काफ़ी, चाय, कच्चा चमड़ा, तेलहन, लोहा इत्यादि उन वस्तुओं से अधिक स्थान लेंगी जो इन वस्तुओं से बनाई जाती हैं। इसलिए यदि ख़ाली जहाज़ समुद्र में आवें तो उन्हें तूफ़ानों का सामना करना पड़े। तब वे बिना भारी रहे ठहर नहीं सकते। पहले ज़माने में पेंदे को भारी करने के लिए जहाज़ में लोग केवल मिट्टी ही भर लिया करते थे। और यह शायद बहुतों को न मालूम होगा कि कलकत्ते का चौरङ्गी जो आज-कल उस विशाल नगर का व्यापारिक केन्द्र है, पहले एक नाला था, जो हुगली से कालीघाट तक फैला हुआ था और जो इँग्लेंड से लाई गई मिट्टी-द्वारा भरा गया था। मिट्टी लाने का कारण यह था कि इँग्लेंड में जहाज़ों को कोई भाड़ा न मिलने के कारण उन्हें लीवरपूल में ६, ६, हफ़्तों तक ठहरना पड़ता था।

इस कठिनाई को दूर करने के लिए ठीक एक शताब्दी पहले नमक-संस्था नाम की एक संस्था खड़ी की गई। उन लोगों ने यह राय दी कि जहाज़ में नमक मिट्टी का स्थान ग्रहण करे। अब प्रश्न यह उठा कि उस नमक का क्या हो। भारत में उसकी खपत आवश्यक थी, और यह उसी हालत में सम्भव था जब भारत के नमक पर कर लगाया जाय। फलतः भारतीय नमक पर साढ़े तीन रुपये प्रति मन कर बाँध दिया गया, जिसका फल यह निकला कि भारतीय नमक की बिक्री मारी गई। साथ साथ दक्षिण-भारत को बहुत हानि हुई, क्योंकि दक्षिणी कारोमंडल तथा मालाबारतट से भारतीय जहाज़ों पर नमक कलकत्ते भेजा जाता था तथा वहाँ से बंगाल का चावल उन जहाज़ों पर लादकर दक्षिण लाया जाता था। वस्तुओं का यह आदान-प्रदान विदेशी नमक के आयात से रुक गया और जो जहाज़ इस काम में लगे हुए थे उनका भी धन्धा जाता रहा। मछुओं का नमकीन मछलियों का उन्नतिशील व्यापार जो उन लोगों की स्त्रियों-द्वारा गृहधन्धे के समान ही अपने गृह के समीप किया जाता था, नष्ट हो गया। यही नहीं, उन्हें उस काम के लिए नमकीन मिट्टी का व्यवहार करने का एकदम निषेध कर दिया गया। दिन-रात नमक के सागर के समीप रहने पर भी उन लोगों को माड़ के साथ खाने के लिए भी नमक नहीं मिलता था। इसलिए मछुए सूखी घास को पानी में डुबो कर हाथों में लिए हुए घर लाते थे तथा आग में जलाकर उसकी राख से नमक निकालकर अपने भात के साथ खाते थे। पकड़े जाने पर इन मछुओं को भी नये विधान के अनुसार ६ मास का कारावास भोगना तथा ५००) ज़ुर्माना देना पड़ता था। मछुओं को वंश-परम्परा से चला आनेवाला व्यापार अब ठेकेदारों के हाथ में हो गया, जो न तो मछली पकड़ सकते थे, न नमक ही बना सकते थे। वे अपना नमक तथा मछलियों का कारबार नमक के अफ़सरों के सिपुर्द जगहों में उन्हीं लोगों की देख-भाल द्वारा चलाने लगे। इन सब घटनाओं के सौ साल बीत जाने पर महात्मा गांधी-द्वारा नमक-सत्याग्रह का आयोजन हुआ तब उन स्थानों पर जहाँ नमक स्वतन्त्र रूप में पाया जाता था, इन ज़ुल्मों में कुछ कमी आई, पर बहुत ही थोड़ी तथा अस्थायी जान पड़नेवाली। यह एक दुःखद विषय है कि जहाँ पंजाब की नमक की पहाड़ियाँ हज़ारों वर्ष तक भारतवर्ष को नमक दे सकती हैं तथा २५० वर्षों तक सारे संसार को नमक देने का सामर्थ्य रखती हैं, जहाँ सिन्ध की मरुभूमि की रम्य स्थलियाँ २०० वर्षों तक सारे हिन्दुस्तान को नमक खिला सकती हैं, वहीं के निर्धनों तथा निर्वाक् पशुओं को नमक-बिना रहना पड़े! विश्वव्यापी महायुद्ध में जब नमक भारतवर्ष में चेशायर से न लाया जा सकता था, सरकार ने भारत में नमक तैयार करने के धन्धे को प्रोत्साहित किया, पर उसी क्षण जब ११-११-१९१८ ई० में शान्ति की घोषणा हुई, इस अभागे देश पर पुनः विदेशी नमक ने आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया।

अब यह प्रमाणित हो गया कि जहाज़ के पेंदे को भारी बनाने के लिए ही नमक भारत में आता है, और नमक ही नहीं, बरन अख़बारों के गट्ठर, चीनी के बर्तनों के टुकड़े, इटली के पत्थर, जमाये हुए फल, आलू तथा कनाडा से जौ और जापान से चावल भी लाये जाते हैं। इटली के पत्थर जो जहाज़ के पेंदे में आते हैं, जहाज़ तथा रेल के भाड़े का ख़र्च जोड़ देने पर भी जयपुर के पत्थर की बिक्री को दबा देते हैं।

यदि हम पुनः नमक की ओर मुड़ें तो हम देखेंगे कि भारतवर्ष में ब्रिटिश सरकार विलायती नमक बेचने को बाध्य है। इसी नमक की बिक्री से उन लोगों के जहाज़ों के आने-जाने का ख़र्च भी निकल आता है। इससे यह साफ़ साफ़ प्रकट हुआ कि यदि यह नमक-कर सवा रुपया से घटाकर एक रुपया या एक रुपया तीन आने ग्यारह पाई भी कर दिया जाय तो ब्रिटिश कम्पनियों के लिए जहाज़ों के पेंदे में नमक भरकर लाना असम्भव हो जाय। और उस दशा में कोई जहाज़ यहाँ से माल ले जाने के लिए न आ सकेगा और न कोई वस्तु इँग्लेंड जा सकेगी, जिसका अर्थ यह होगा कि वहाँवालों को कोई खाद्य पदार्थ न मिल सकेगा। इससे साम्राज्य की आर्थिक स्थिति को काफ़ी धक्का पहुँचेगा और यदि साम्राज्य नहीं तो इँग्लेंड की आर्थिक स्थिति तो अवश्य ही मटियामेट हो जायगी। यही कारण था कि सन् १९२९ में वाइसराय महोदय ने पहलेवाले नमक-कर को क़ायम रक्खा था।

वह जुही

लेखक, श्रीयुत अमृत

एक छोटा-सा उपवन है, जो बस्ती से बहुत दूर है। उस पर हरी-हरी दूब की चादर बिछी हुई है। और फिर है सवेरे की मोती जैसी ओस—झिलमिलाती हुई, मानो अपने को छिपाने की ही कोशिश में वह अपने को और भी खोले दे रही हो। उत्फुल्ल और यौवन-पूर्ण ताज़गी हर तरफ़ बरस रही है। घास के बिछौने पर, उस पर की ओस में, पास के सुहावने पेड़ों में, ऊपर के आसमान में......पुष्पों का चमन सुरुचिपूर्ण है—जुही, पारिजात, चमेली और ऐसी ही कुछ स्फुट और अस्फुट कलियाँ, और कुछ जो मन मारे खड़ी हैं, उस दिन की प्रतीक्षा में जब उनमें भी फूल खिलेगा।

उस सबके बीच में एक आदमी खड़ा है, अकेला। कोई उसके आस-पास नहीं है। वह स्वयं भी अपने पास नहीं है—भूला-सा, खोया-सा, लुटा-सा। वह नहीं जानता, वह वहाँ कैसे आया, किन पैरों से चल कर आया, क्यों आया। उसका तो कुछ खोया नहीं जिसे फिर से पा जाने की व्याकुलता उसे इस ओर खींच लाई हो?

समय के परिमाण का उसे ज्ञान नहीं है। वह खड़ा है, और खड़ा है। मस्तिष्क उसका विचार-शून्य है। फिर भी वह आगे कुछ-कुछ अँधेरे से घिरे हुए शून्य में देखता है—आँख गड़ा कर घूरता है। आप कहेंगे, उसका मोती खो गया होगा। उँहुः! उसके पास तो कभी मोती था भी नहीं। और यदि था तो वह तो कब का खो गया! आज तक वह खो जाने के लिए बैठा थोड़े ही रहेगा! अब तो कहानी मात्र रह गई है। और कहानी को वह वैसे न ढूँढ़ेगा। रीस होती है न! उसे कुछ याद नहीं पड़ता। एक सपना था।

उसके बाज़ू से ही लगकर जुही का एक घना कुंज है। उसने अपने मन को टटोला और पाया कि उसका उससे कोई प्रत्यक्ष लगाव नहीं है।

उसने हाथ बढ़ाया और एक अधखिली कली तोड़ ली! एक बार चाहा कि उसका आस्वादन भी कर ले। उसे लगा कि ऐसा करना उसके लिए असम्भव है। क्यों? यह विचारने को मस्तिष्क न था। जुही उसके हाथ से फिसली जा रही है। और इस पर उसका बस नहीं है।

सिर्फ़ एक निरीह मृदु जुही की कली उसने नहीं तोड़ी है। उसके साथ न मालूम कितना अच्छा और बुरा सौन्दर्य्य और कल्मष बटुर आया है। कब की एक भूली-सी बात है—एक विस्मृत स्मृति। जो कुछ हो, सब एक साथ ही महान् हो पड़ा है और मस्तिष्क पर बादल छा जाना चाहता है। कोने में छिपी हुई सारी बातें विद्रोह कर उठी हैं।

वह भौचक्का-सा रह जाता है। एक छोटी सी कली अपने साथ क्या-क्या बाँध लाई है? और फिर वह हँसती है। कितनी छिछोर और दुष्ट है! उँह! क्यों मुझे बार बार याद आती है? वैसा तो सबके जीवन में होता है। कोई नई बात तो है नहीं। फिर इतनी गुदगुदी क्यों? कुछ सोई हुई स्मृतियाँ, कुछ दबी हुई व्यथायें, कुछ बीते हुए रोने और गाने और कुछ उन्हीं दिनों का उदय और अस्त। एक-दो नहीं, यह सब है इसकी करतूत—यह छोटी सी सीधी-सादी दिखनेवाली कली।

बादल धीरे-धीरे साफ़ हो रहा है।

वह मीना मेरे ही गाँव की तो थी। भैरव चटर्जी की भतीजी। मैं था कञ्ज मुखोपाध्याय का वंशज! हमारे घर पास पास थे। उम्र में हमजोली रहे हैं। वह मुझसे दो बरस छोटी है।

एक दिन की बात है, मैंने ज़रा वादे को पूरा नहीं किया और खेल के लिए ज़रा देर से पहुँच सका, क्योंकि उसी दम पिता जी के लिए गुड़गुड़ी चढ़ानी पड़ी। पानी नया भरना था, चिलम में आग रखनी थी, तम्बाकू रखनी थी। इतने काम थे। देर तो लगती ही है। आख़िर कितनी जल्दी कर सकता था? ख़ैर, देर हो गई।

मीना ने जवाब माँगा—कहाँ थे?

मैं—ज़रा काम में लग गया था।

"बाहर चले जाओ। आज इस मकान में तुम्हें जगह नहीं है।"

मैं—क्यों?

"हमारा मकान है। नहीं रखते। तुमसे मतलब?"

मैं जाने को तो जा ही रहा था, पर सींक गोदकर उस महल को धराशायी करता गया। मीना नाराज़ हो गई। कुछ दिन तक तो बिलकुल न बोली। सामने पड़ जाती तब कतरा कर निकल जाती। चाहती थी, मैं माफ़ी मागूँ। बच्चों में इतना क्रोध का आ जाना आज विचित्र-सा लगता है। पर बीस बरस के बाद। उस समय महल का गिरा देना साधारण अपराध तो था नहीं—अक्षम्य था अक्षम्य।

उस समय तो हम लड़के थे न। मीना भी इस लड़ाई को मेटना चाहती थी। और एक दिन गाँव के तालाब के किनारे मेरी नाव उसकी नाव से लड़ गई। उसने मुझे कनखियों से देखा, मैंने उसको। और एक दफ़ा फिर हमारी अनामिका ने उसकी अनामिका से मेल पैदा किया और वादा किया कि फिर हममें कभी कुट्टी न होगी।

ख़ैर वे तो बचपन के दिन थे और हम ख़ुश थे।

पर दिन भी जल्दी ही बीत जाना चाहते हैं; और उन्हें ऐसा करने से कोई रोक भी नहीं सकता।

कई साल बीत गये। मुझे अच्छी तरह याद है, गाँव में लोग कहने लगे थे कि हम (मीना और मैं) बच्चे न रह गये थे। अनजान बचपन की उस ओर भी अनजान परिधि को हमने कभी नापने की कोशिश नहीं की। पर हमें यह सत्य मानना पड़ा कि अब हमारा बचपन खो चुका था। और यह कोई साधारण बात न थी। यौवन की पहली लहर में बहनेवाले दो व्यक्तियों को समाज एक साथ रखने में भय करता है।

मीना के घरवाले अब उसे मुझसे अलग़ रखते थे। मैं इतना नीच कभी न हो सकता था। पर आदमी को न समझना ही समाज का गुण है।

अब हफ़्तों गुज़र जाते और हम एक-दूसरे को देख न पाते। समाज का ऐसा व्यवधान था। उसके मा-बाप हर तरह की रोक-टोक करते। और फिर तो एक दिन सुना कि उसकी सगाई हो गई है। उसके बाद वह एक दफ़ा मा से कुछ कहने आई थी। रास्ते में मैं पड़ गया। वह मुझे वहीं रुँआँधा छोड़कर चली गई। इसमें उसकी ग़लती न थी। ख़ैर कुछ दिन यों भी बीते।

उस दिन की कहानी सुनाने से मेरा दिल फट जायगा, यह मैं जानता हूँ, फिर भी मुझे कहना ही पड़ेगा। और फिर इस हृदय में अब बचा ही क्या है जिसे सुरक्षित रखने के लिए मुझे एक ढाल रखकर घूमने की ज़रूरत पड़े! सोचो न। टूट तो चुका ही है। मन और जितना चाहे टूट ले। एक दिन तो आयेगा जब मेरे पास कुछ न रह जायगा. जिसपर कोई लालसा को दीठ गड़ा सके। या जो कुछ मेरे पास कभी रहा होगा वह इतना टूट चुकेगा कि और अधिक टूटने का अवकाश ही न होगा। उसी सुघड़ और सुखी दिन की प्रतीक्षा में मैं आज भी खड़ा हूँ। तुम वह कहानी ज़रूर सुनोगे, क्योंकि हृदय टूटने के लिए ही बनाया गया है।

मैं मछली पकड़कर अपने गाँव के छोटे बग़ीचे से गुज़र रहा था। हाथ में मछलियों की टोकरी थी। मैं उस वक़्त किसी जल्दी में था।

बाग़ की दूसरी ओर मीना चली आ रही थी। वह नहाकर लौट रही थी। उसके हाथ में गीली धोती थी, जिसे वह निचोड़ रही थी, और बग़ल में पानी का एक मटका।

उसी जगह मैं था; और उसी जगह वह। मैंने रुककर और मुँह जोहकर कहा था—मीना, तुमसे बहुत-बहुत बातें कहनी हैं।

वह चुप थी।

"बहुत दिन से उन बातों को मन में रक्खे हुए हूँ। कोई आज तक उन पर नहीं झाँक सका है। पर मीना तुम्हारे चुप रहने से काम न चलेगा। मैं मर जाऊँगा। व्यथा के उस भार को और एक भी क्षण सँभाल सकने में असमर्थ हूँ। मैं गिर पड़ूँगा। उसे मुझे हलका करना ही पड़ेगा मीना।"

मीना ने कोई जुंबिश न की।

मैं अधीर होकर चीख़ पड़ा—उसे सुननेवाली तुम होगी मीना। और तुम मुझसे क्या चाहती हो? मुझ पर दया करो! एक बात बता सकोगी?

"पूछो।"

मैंने अटक अटककर पूछा—आज-कल तुम मुझसे

इतना दूर-दूर क्यों रहती हो ? क्या मैं तुम्हें खा जाऊँगा ? मीना, तुम मुझ पर शक करती हो ?

"उँह ! मुझे ऐसी बातें नहीं भातीं।"

"तुम्हारी पसन्द तुम्हारी पसन्द है और उसमें टाँग अड़ाने का मुझे कोई हक़ नहीं है, इसे मैं स्वीकार करता हूँ। पर क्या मेरी इस छोटी-सी बात का एक हलका सा जवाब......? क्या तुम इतना भी नहीं कह सकतीं ? एक शब्द भी नहीं ? बहुत दूभर काम है ? मुझे अफ़सोस है मीना कि मुझे तुम्हें तकलीफ़ देने की दरकार हुई ! पर मुझे माफ़ करो। मुझे किसी एक आदमी की ज़रूरत तो थी ही। एक आदमी अपनी छाती पर इतना बड़ा बोझ रखकर कितने दिन ज़िन्दा रह सकता है, कह सकती हो ? मैं सिर्फ़ एक जवाब चाहता हूँ मीना—एक ठण्डा-सा जवाब, जो मुझे जल्दी ही मरघट पर पहुँचा सके।...... मैं कब तुमसे क्या चाहता था और क्या नहीं चाहता था। क्या पाया और क्या नहीं पाया, इस कहानी को अब एकदम भूल जाने में ही मेरा और तुम्हारा क्षेम है; क्योंकि ऐसी बातों को याद करने से कभी किसी को सुख मिला हो, ऐसा गंगापुर ग्राम में कभी नहीं सुना गया। अब तो मैं सिर्फ़ एक जवाब चाहता हूँ।

मीना ने कहा—मुझे जाने दो। यही सुनाने के लिए रोका था ? पहले तो तुम कभी ऐसी बातें नहीं करते थे।

"तब मेरे पास बातें थी ही कहाँ ?"

"तुम इतने निर्दय कब से हो गये ?"

मैं [हँसकर]—जिस दिन समाज ने मुझे याद दिलाई कि मेरा बचपन खो गया।

"मुझे आश्चर्य है कि ये बातें तुम मुझसे कैसे कह सके ?"

मैं [उसी तरह हँसते हुए]—तुम अच्छी चोट करना जानती हो, मीना। जानती हो, कौन-सी जगह नरम है। पर मैं भी मँजा खिलाड़ी हूँ। कौन जाने, मुझे भी कभी इसमें अचरज मालूम हुआ होता। पर मैं तो अब उस दिन को बहुत पीछे छोड़ आया हूँ। अ हः हः हः ; और अब तो मुझे कोई बात कहने में—हाँ, आदत हो गई है—सिर्फ़ ज़बान को ही कसरत करनी होती है।.. मैं बेजान मशीन हो गया हूँ मीना। सुनकर ख़ुश हो जाओ !

कोई आवाज़ नहीं।

"न न तुम रोती हो मीना ! कैसी बच्ची हो ? तुम्हें अपनी बेमतलब की कहानी सुनाकर मैंने क्यों रुलाया, यह मेरा अपराध है। तुम रोओ मत। मैं चला जाता हूँ।"

मीना—मुझे जाने दो। मैं जाना चाहती हूँ।

मैं—मैं तो ख़ुद ही चला जा रहा हूँ। और फिर रास्ता तो मेरा नहीं। खुला है। हमेशा खुला है। जाओ, तुम जा सकती हो !

मीना ने आगे को पैर बढ़ाये और कुछ दूर चली गई।

फिर मुझे कुछ याद आया और मैंने कहा। सिर्फ़ एक पल के लिए मीना ! मुझे वहाँ आ जाने दो।

वह रुक गई। मैं धीमा-धीमा दौड़ता हुआ उसके पास पहुँच गया और पास की ही जुही से एक कली तोड़कर उसे देते हुए कहा—मीना, जाने दो उस अभागे प्रश्न को और उसके निरर्थक उत्तर को। देखो न, यह कैसा भोला और प्यारा-प्यारा फूल है। तुम्हारे ही लिए तोड़ा है। अरे, तुम अब तक रो रही हो ! जाने दो उस बात को। वह तो मैंने ऐसे ही कह दी थी, भूल से। सुनो तो। तुम्हारे बाल गीले हैं, सफ़ेद धोती तुमने पहन रक्खी है। वनदेवी लगोगी, वसन्त के फूलों का साज करके। बड़ी अच्छी लगती हो। लो, यह फूल तो ले लो और अपने बाल में खोंस लो। बड़ा अच्छा लगेगा। मुझे भी बड़ा अच्छा लगेगा। देखो दौड़ता आ रहा हूँ। लो, लो। मुझे आशा है, तुम मेरे इस फूल का निरादर न करोगी। हम तुम अजनबी तो कभी नहीं थे।

और इन शब्दों के साथ मैं इस प्रतीक्षा में खड़ा हो गया था कि मीना उसे अपने बाल में खोंसती है।

उसने कहा—मेरी सगाई हो गई है। तुम्हें मालूम नहीं क्या ? मुझसे हँसी करना क्या तुम्हारे लिए ठीक है ? छिः छिः !

उसने मेरे पिछले प्रेम का चिह्न वह फूल, मेरी सारी आत्मा की सहानुभूति, सारा प्रेम, आदर स्नेह, आँसू—शोक परिताप और सुख के—एक छलकता हुआ हृदय और सींक से गोदकर गिराये गये उस महल का, सबका प्रतीक, सबकी याद, उस फूल को उसने बाल में न खोंसा और मेरी ओर घृणा के साथ फेंक दिया। वह मेरे

हाथ में भी न गिरा था। धूल में पड़ा था। और हमेशा के लिए पड़ा रह गया—कुछ और दुर्गति पाने के लिए। मुझमें उसे उठा रखने की ताक़त न थी, न साध, न ताब और न कुछ।

जुही ज़मीन चूमती रह गई। मीना वहाँ से जल्दी-जल्दी चली गई। मैं वहीं खोया सा खड़ा रह गया। ओफ़ ! वह मेरी प्यारी जुही ! उसे मीना को देने के पहले मैंने उसमें अपना क्या कुछ न डाल दिया था—सारा बचपन का स्नेह, सारा अतीत का राग, समस्त नीरव रुदन......मैं उसे मीना के बाल में खुँसा हुआ देखने के लिए कितना बेचैन था !

पर मीना ने उस सबका निरादर किया था।

निरीह जुही की कली धूल में फेंक दी गई थी।

मेरी प्रीति ठुकराई गई थी।

हम और मीना दो रास्ते पर हो गये थे।

दिन पलट गये थे।

और मैं !

उस आदमी ने आँखें तरेर कर हथेली की उस जुही की ओर ताका। और फिर कहा—वह भी तो ऐसी ही एक जुही थी न !

सपना समाप्त हो गया; और उसने उस जुही की कली को अच्छी तरह चुटकी से मसल कर आगे पड़ी धूल में फेंक दिया।

और यह हत्या करके झूठ-मूठ पागलों की तरह हँसने लगा। वह पागल आदमी।

मज़दूरिन

लेखक, श्रीयुत राजाराम खरे

देखो, वह निकल झोपड़ी से—
जा रही काम पर मज़दूरिन।
प्रात: से सन्ध्या तक उसकी—
मज़दूरी दस पैसे प्रतिदिन॥

नन्हा-सा बालक लिये हुए,
अपनी छाती से चिपकाये।
मज़दूरिन क्यों ! वह तो मा है,
मा ही है तो फिर क्या खाये ?

बालक को रख देती जाकर
मा की ममता क्या कर पाये ?
ढोती—मिट्टी - गिट्टी - पत्थर
चिल्लाये बालक चिल्लाये॥

चिल्लाओ भाई चिल्लाओ !
है मज़दूरिन माता तेरी।
क्यों दूध पिलाये - दुलराये—
छुट्टी होने में है देरी।

धान के खेत में

लेखक, श्रीयुत तारकेश्वर उपाध्याय 'श्रीहर'

देखी न सुनी ऐसी हलचल।
है एक राग, है एक शब्द;
ध्वनियाँ विभिन्न, स्वर में है क्रम,
यह भाँति भाँति का रूप मिला
सबमें समानता का आगम;
वह शैशवपन, यह यौवनपन,
वह वृद्धवयस हैं सब अभिन्न;
छोड़ा न समय ने है जैसे
निज गति का इन पर एक चिह्न;
लो स्वर्णलोक से उतरा है भूतल पर यह परियों का दल
देखी न सुनी ऐसी हलचल॥

बरसी है पिछली निशा आज,
भादों आया बीता अषाढ़
ले सृष्टि प्रलय का हरित बोझ
आगईं रोपने बाड़ काढ़,
सब तन पंकिल, पट नीर नीर,
शीतल समीर, ऊर्मिल-कम्पन,
पल पल विकसित नूतन हुलास
बन्दी बन बैठा यह कवि-मन;
नन्दन-प्रदेश से कौन उड़ा लाया है यह चिड़ियों का दल
देखी न सुनी ऐसी हलचल॥

ये लगीं लगाने अमर बीज
जानता न जिसका आदि-अंत,
कटि पर झुककर हो एक चित्त
पढ़ पढ़ पल पल प्रिय मधुर मंत्र
छवि एक ओर थी, नाच रहीं
लहरें सब उनके पास पास,
थीं खेल रहीं दूसरी ओर
रवि की किरणें सस्मित सहास;
देखा महलों से परे आज प्रिय प्रकृति नटी का यह अंचल
देखी न सुनी ऐसी हलचल॥

सबने देखा मुड़कर मुख से
जल में तृण की रचना सुन्दर,
लगीं विहसने और वहाँ पर
सब फेंक फेंक सखियाँ जल-कण
फिर चली न जाने कहाँ गईं
वे पद-ध्वनियाँ किस थल चरण चरण।
छिप गईं सभी देवियाँ और तृण बना रहे निज घर पल पल
देखी न सुनी ऐसी हलचल॥

मैं लगा सोचने गति-विहीन
जीवन विमुग्ध यह रुचिर रास
है फेंक दिया किसने चल जीवन—
में अनन्त यह प्रेम-पाश?
है भरी हुई नव भोलापन—
इन खेतों में वह कौन शक्ति?
जिससे हो जाती है नर जीवन—
में अनुपम अनुरक्ति—भक्ति।
मैं समझ सकूँगा कभी कहीं यह मची हुई कैसी हलचल
देखी न सुनी ऐसी हलचल॥

[जगन्नाथजी का मन्दिर। सिंहद्वार के भीतर २२ सीढ़ियों का चढ़ाव। मुख्य मन्दिर, जगमोहन, भोगमण्डप आदि के शिखर साफ़ देख पड़ते हैं।]
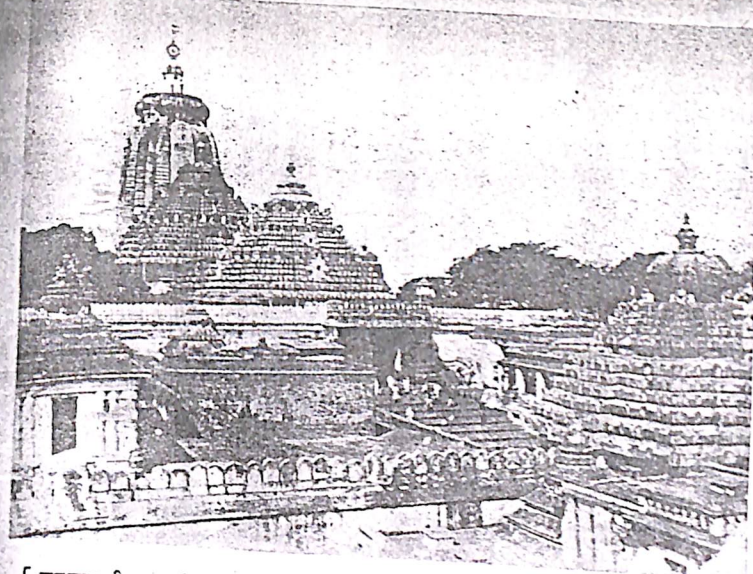
पुरी की यात्रा

लेखक, पं० लल्लीप्रसाद पाण्डेय

[१]
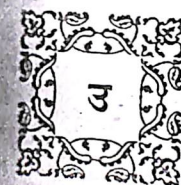
उड़ीसा के केसरी-वंश के प्रसिद्ध राजा ययाति-केसरी के राज्यकाल में पुरी के मन्दिर का उल्लेख पाया जाता है। ययाति-केसरी की राजधानी जाजपुर में थी। उनका राज्य-काल ४७४-५२६ ई० है। जगन्नाथजी का मन्दिर उन्हीं ने बनवाया था। जीर्ण हो जाने पर उसकी जगह पर गङ्गवंशी राजा अनङ्ग भीमदेव ने ११९७ ईसवी में वर्तमान मन्दिर बनवा दिया। नाट-मन्दिर प्रभृति अन्यान्य भाग पीछे बनाये गये हैं। मुख्य मन्दिर ही सबसे ऊँचा है।

जगन्नाथ-मन्दिर के निर्माता

राजा ययाति-केसरी ने जिस मन्दिर को बनवाया था और अनङ्ग भीमदेव ने जिसको पूरा किया वही मुख्य मन्दिर है। किसी किसी की राय से यह गङ्गवंशी राजा गंगेश्वर या चोडगङ्ग का बनवाया हुआ है। उक्त नरेशों का राज्य-काल सन् १०७५ से ११४५ है। मन्दिर के भीतर रत्नवेदी है। उसी पर, सिंहासन में, जगन्नाथजी विराजमान हैं। सुदर्शन चक्र और तीनों मूर्तियों के अतिरिक्त सुवर्ण की लक्ष्मीजी और सरस्वती तथा नीलमाधव की भी मूर्तियाँ रत्नवेदी पर हैं।

मुसलमानों ने उड़ीसा में जैसा उपद्रव किया वैसा कम तीर्थस्थानों में किया है। १५६८ ईसवी में राजा मुकुन्ददेव को परास्त करके पठानों ने उड़ीसा पर क़ब्ज़ा किया था। काला पहाड़ और अन्यान्य हिन्दूधर्मद्वेषी मुसलमानों ने उड़ीसा में बहुत-सी मूर्तियाँ तोड़ी-फोड़ीं और मन्दिरों को ढहाया। भुवनेश्वर, पुरी और अन्यान्य तीर्थों में इस धर्मान्धता के प्रमाण विद्यमान हैं। सुना जाता है कि काला पहाड़ ने मन्दिर से जगन्नाथजी की प्रतिमा को बाहर निकालकर जलाने की चेष्टा की थी। किन्तु कोई साहसी भक्त किसी तरह मूर्तियों को उठाकर ले भागा। अकबर के समय में मानसिंह ने पठानों को पराजित करके उड़ीसा पर मुग़लों की पताका फहरा दी। तब से उड़ीसा बङ्गाल के सूबेदार के अधीन हो गया। नवाब अलीवर्दी ख़ाँ के शासन-काल में बङ्गाल में मरहठों ने लूटमार करना आरम्भ कर दिया। तब नवाब ने तङ्ग आकर मरहठों को उड़ीसा देकर और १२ लाख सालाना चौथ देने की
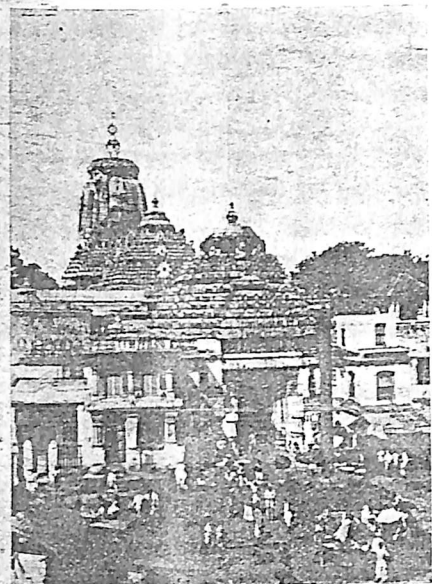
[मन्दिर का बाहरी दृश्य। सिंहद्वार और अरुण-स्तम्भ। स्तम्भ के इधर-इधर दूकानें और यात्री हैं। मन्दिर के शिखर के ऊपर नीलध्वज लगा है और उस पर ध्वजा फहरा रही है।]

प्रतिज्ञा करके सन्धि कर ली। यह सन् १७५१ की बात है। सुवर्णरेखा नदी बङ्गाल और उड़ीसा की सीमा मानी गई।

मन्दिर की स्थिति

मन्दिर कोई १२५ हाथ ऊँचा है। उसकी लम्बाई २०० हाथ और चौड़ाई ४५ हाथ के लगभग है। मन्दिर के शिखर पर चक्र और ध्वजा है। चक्र मनुष्य की उँचाई के बराबर होगा। पण्डों के कहने से यात्री भी १।) अथवा ५) देकर मन्दिर पर झंडा लगवा देते हैं। पूरा मन्दिर पत्थर की दो प्राचीरों से घिरा हुआ है। इन दीवारों की उँचाई १८ हाथ होगी। चारों दिशाओं में मन्दिर के चार दरवाज़े हैं जिनके नाम सिंहद्वार (पूर्व), हस्तीद्वार (पश्चिम), अश्वद्वार (उत्तर) और खञ्जाद्वार (दक्षिण) हैं। सिंहद्वार ही आने-जाने का मुख्य दरवाज़ा है। यह, पुरी की मुख्य सड़क, "बड़ो दाँड़" पर है। सिंहद्वार के दोनों ओर पत्थर के दो बड़े-बड़े सिंह हैं। सिंहद्वार के सामने, सड़क पर, एक २३ हाथ ऊँचा अठपहला खम्भा है। यह काले पत्थर का है। पत्थर की चौकी पर ही यह खड़ा किया गया है। इसकी चोटी पर एक बन्दर बैठा हुआ है। मन्दिर के भीतर की रत्नवेदी इस खम्भे की उँचाई पर स्थित है। इस खम्भे को, १८वीं शताब्दी में मराठे 'कोणार्क' से उठवा लाये थे। कोणार्क पुरी, से कोई ९ कोस की दूरी पर, समुद्र-किनारे एक प्रसिद्ध स्थान है।

बेड़ा-परिक्रमा

मन्दिर के फाटक में प्रवेश करते ही देवी-देवताओं का सिलसिला लग जाता है। उनका नाम और स्थान यथाक्रम यों है—

पतितपावनं रूपं काशीशं भोगमण्डपम्।
अजानिनाथं विघ्नेशं वटेशं वटमङ्गलम्॥
वटप्रदक्षिणं कृत्वा अनन्तं पुरुषोत्तमम्।
क्षेत्रपालं नृसिहं च मध्यस्थं मोक्षमण्डपम्॥
दृष्ट्वा दृष्ट्वा तु रोहिणीं काकमात्रचतुर्भुजम्।
विमलाक्षीं ततो दृष्ट्वा दण्डवत् पतितो भुवि॥
सरस्वतीं महालक्ष्मीं अर्कक्षेत्रादिकं प्रभो!
पातालनाथाय ऐशान्ये उत्तरे चोत्तरायणीम्॥
पादपद्मं ततो दृष्ट्वा जगन्मोहनमन्दिरम्।
सुदर्शनं महाज्वालं कोटिसूर्यसमप्रभम्॥
बलभद्रसुभद्राभ्यां जगन्नाथाय ते नमः।

१—पतितपावन, २—काशी विश्वनाथ, ३—गणेशजी, ४—अक्षयवट (और नीचे वटकृष्ण), ५—अनन्त पुरुषोत्तम, ६—क्षेत्रपाल, ७—नृसिंह, ८—मुक्तिमण्डप (यहाँ बैठकर पुरी के पण्डित लोग शास्त्र-चर्चा करते और दक्षिणा लेते हैं।) ९—रोहिणीकुण्ड, चतुर्भुज रूप में (काकभुशुण्डि), १०—और विमला देवी। प्रदक्षिणा में यही मुख्य देवता हैं। प्रत्येक स्थान में दक्षिणा चढ़ाने के लिए पण्डे और पुजारी आग्रह करते हैं।

मूर्तियों का विवरण

सिंहद्वार में बाईं ओर 'पतितपावन' भगवान् की प्रतिमा है। जिन लोगों को मन्दिर के भीतर जाकर दर्शन करने का अधिकार नहीं है वे इसी मूर्ति के दर्शन पाकर सनाथ

हो जाते हैं। पूछने से मालूम हुआ कि मुसलमानों के राजत्वकाल में पुरी के एक राजा को यवन हो जाना पड़ा था; किन्तु यवन हो जाने पर भी वह जगन्नाथजी की भक्ति को न छोड़ सका था। तब उसी के दर्शन देने को सिंहद्वार पर पतितपावन भगवान् पधराये गये। किसी-किसी की राय में इनकी प्रतिष्ठा गौराङ्ग महाप्रभु की कराई हुई है।

इतिहास में सतनामियों का नाम तो पढ़ा था, किन्तु उनके सम्बन्ध में ज़्यादा जानकारी नहीं थी। पुरी में रथयात्रा के अवसर पर उनको भी देख लिया। ये लोग सम्बलपुर ज़िले में रहते हैं। सारे शरीर पर रामनाम गुदाये रहते हैं। ये पैदल ही चलकर पुरी जाते और रथ पर भगवान् के दर्शन करते हैं। अन्त्यज होने से इन्हें मन्दिर के भीतर जाने का अधिकार नहीं। ये विचित्र वेश बनाये रहते और मस्तक पर मोरपंख का मुकुट-सा पहने रहते हैं। पैरों में घुँघरू पहनकर नाच-नाचकर भगवान् का गुण गाते और फिर पैदल ही लौट जाते हैं। वास्तव में इनकी यात्रा प्रशंसनीय है।

विमला देवी की प्रतिमा पाषाण की है। यह स्थान देवी के इक्यावन पीठों में माना जाता है। विमला के मन्दिर में भी जगमोहन आदि चार भाग हैं। देवी की प्रतिमा के पास पहुँचने के लिए मार्ग काफ़ी चौड़ा नहीं है। यह तान्त्रिकों का प्रधान स्थान है। तान्त्रिकों की राय में विमला देवी ही पुरी की अधिष्ठात्री देवी हैं। जगन्नाथजी तो देवी के भैरव हैं। "विमला भैरवी यत्र जगन्नाथस्तु भैरवः।" महाष्टमी को वर्ष में एक बार देवी को बकरे का बलिदान दिया जाता है। उस समय जगन्नाथजी के पट बन्द कर दिये जाते हैं।

मुख्य मन्दिर के दक्षिण-द्वार पर बाहरी ओर दीवार में बीचोंबीच जैनमूर्ति है। एक ब्राह्मण इसकी पूजा कर देता है। उसे राँची के श्री बैजनाथ सरावगी ॥) महीना देते हैं। जैन लोग मन्दिर में जाते हैं सही पर बादाम, मिश्री चढ़ाकर पूजा इसी मूर्ति की करते हैं। परिक्रमावाले सूर्य-मन्दिर के पीछे बुद्धमूर्ति भी थी।

यात्री को सिंहद्वार पर ही छाता, जूता और चमड़े की वस्तु छोड़ जानी पड़ती है। मन्दिर में चमड़े का मनीबेग तक ले जाने की मनाही है। रसायनाचार्य श्री चुन्नीलाल बसु भूल से मनीबेग मन्दिर में लेते गये थे। वहाँ दक्षिणा देने को मनीबेग निकालने पर पण्डों ने बड़ी गड़बड़ी मचा दी। ३००) हर्जाने का माँगने लगे। कहा कि चमड़ा आ जाने से सब भोग अशुद्ध हो गया। अन्त में आठ आने में समझौता हो गया, जिसे तीन-चार आदमियों ने बाँट लिया। छाते में चमड़ा रहता है इसी से उसकी रोक है, पर 'गुंडिचा बाड़ी' में छाता जाता है। बाँस की तीलियों का, भोजपत्र का, छत्र मन्दिर भी में जा सकता है।

सिंहद्वार को पार करने पर ऊपर जाने के लिए २२ सीढ़ियाँ हैं। ये ख़ासी लम्बी हैं। एक साथ ३०-४० आदमी चल सकते हैं। (चित्र में देखिए।) ऊपर फिर दरवाज़ा मिलता है। कुछ हटकर बाईं ओर रसोईघर है जिसमें कोई २०० रसोइए रसोई बनाया करते हैं। दाहिनी ओर आनन्दबाज़ार है। भीतरवाले दरवाज़े को पार करने पर ऊँचा स्थान मिलता है। इसके बीचोंबीच मुख्य मन्दिर है और चारों ओर बहुत-से देवी-देवता प्रतिष्ठित हैं। मन्दिर के बाहरी हिस्से में तरह तरह की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इनमें बहुत-सी अश्लीलता को व्यञ्जित करती हैं। इन मूर्तियों के सम्बन्ध में लेखक ने अपनी दोनों यात्राओं के समय में पूछ-ताछ की तो मालूम हुआ कि अग्निपुराण में ऐसी, कामशास्त्र-सम्बन्धी, मूर्तियाँ बना देने का विधान इसलिए है जिसमें मन्दिर टूटे-फूटे नहीं। यह भी कहा कि ये यात्रियों की परीक्षा के लिए हैं। जो आदमी कोकशास्त्र के इन आसनों को देखने में मन लगावेगा उसका [illegible] कब शुद्ध रहेगा! इस दशा में वह देव-दर्शन के फल से वञ्चित रह जायगा। वास्तव में मुझे तो ये कल्पनायें जान पड़ीं। असल में मन्दिर पर अनेक सम्प्रदायों का अधिकार, समय समय पर, रहा है। और जब जिसका अधिकार हुआ, तब उसने अपनी कोई न कोई निशानी जमा दी। कोकशास्त्र-सम्बन्धी मूर्तियाँ लेखक को तान्त्रिकों की लीला जान पड़ी।

मुख्य मन्दिर के सामने जगमोहन, उसके सामने नाट-मन्दिर और सबके अन्त में भोगमण्डप है। ये चारों भाग परस्पर मिले हुए हैं और जगन्नाथजी का मन्दिर कहलाते हैं।

२२ सीढ़ियों को लाँघते हुए भीतर पहुँचने पर सामने जो मन्दिर का दरवाज़ा देख पड़ता है वह भोग-

मण्डप का दरवाज़ा है जो सदा बन्द रहता है। नाटमन्दिर में या तो दहिनी ओर के दरवाज़े से जाते हैं या बाईं ओर के। नाटमन्दिर में एक पत्थर का स्तम्भ खड़ा है। इसकी सीध में ही रत्नवेदी है। इस खम्भे पर गरुड़ की मूर्ति है, इस कारण इसको गरुड़स्तम्भ कहते हैं। इसके आस-पास छोटे-छोटे घी के दिये जलाकर रख दिये जाते हैं। इन दीओं के बेचनेवाले, दीपदान के लिए, यात्रियों से आग्रह करते रहते हैं। लेकिन यह घी के नाम पर न जाने क्या जलाया जाता है। इस खम्भे की उँचाई रत्नवेदी पर प्रतिष्ठित जगन्नाथजी के सिंहासन के बराबर है। नाटमन्दिर ४६ हाथ लम्बा है। नाटमन्दिर और जगमोहन के बीच में एक लम्बा-सा मोटा लट्ठा, रोक के लिए, पड़ा रहता है। भीड़ के रोकने के लिए, आवश्यकता पड़ने पर, यह काम में लाया जाता है। यह न हो तो रत्नवेदी के पास पहुँचने के लिए इतनी भीड़ हो कि आदमी कुचलकर मर जायँ। इस लट्ठे के बाद ही एक बड़ा फाटक है। यही जयविजय द्वार है। यह दरवाज़ा दिन के दो बजे भोग लग जाने पर और रात के जगन्नाथजी के शयन करने पर बन्द किया जाता है। सवेरे और तीसरे पहर द्वार खुलने पर दर्शन होते हैं।

मन्दिर में जहाँ रत्नवेदी है वहाँ दिन-दोपहर के भी अँधेरा रहता है। भारत में सभी पुराने मन्दिरों की ऐसी बनावट है कि भीतर सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँच पाता। भीतर पुन्नाग के तेल के दिये जलते रहते हैं। इन्हीं के मन्द प्रकाश में यात्री के दर्शन होते हैं। मन्दिर के बाहर की परिक्रमा में मैदान में तो बिजली पहुँच गई है, किन्तु भीतर पण्डों के विरोध के कारण इसका प्रबन्ध नहीं हो सका। रत्नवेदी तक पहुँचने के लिए कुछ सीढ़ियों के पार करना पड़ता है। एक तो अँधेरा और दूसरे सीढ़ियाँ चिकनी। इससे यात्री के फिसल कर गिरने का बहुत डर रहता है। पण्डे के सावधान करने से दर्शनार्थी सँभल जाता है, नहीं तो गिरने से अवश्य चोट लगे। यहाँ पर पुष्पों की और धूप की गमक आती रहती है। रत्नवेदी पर मुकुट आदि आभूषणों और वेशभूषा से भूषित मूर्तियाँ विराजमान हैं। जगन्नाथजी साँवले, सुभद्राजी कुछ कुछ पीली और बलरामजी सफ़ेद हैं। महाभारत में सुभद्रा श्रीकृष्ण की बहन हैं, किन्तु पुरी के सभी उत्सवों में वे लक्ष्मीजी का कार्य किया करती हैं। जिस प्रकार जगन्नाथजी का प्रातिनिध्य 'मदनमोहन' प्रतिमा के प्राप्त है उसी प्रकार सुभद्राजी का प्रातिनिध्य लक्ष्मी के।

दर्शन करके यात्री मन्त्र पढ़ता हुआ सात बार रत्नवेदी की परिक्रमा करता है। दर्शन करते समय भक्त बिलकुल गद्गद हो जाता है। जगमोहन के उत्तर ओर की कोठरी में जगन्नाथजी की सम्पत्ति रहती है।

मूर्ति-विषयक पौराणिक आख्यान

नारदजी ने अवन्ती के राजा इन्द्रद्युम्न के पुरी का माहात्म्य बतलाया था। इसको सुनकर राजा ने अपने पुरोहित के भाई विद्यापति को पुरी का पता लगाने के लिए भेजा। पुरी में पहुँचने पर विद्यापति की भेंट वसु नामक एक शबर से हुई। उससे पूछने पर नीलाचल नाम की, साधारण उँचाई की, एक टेकड़ी उन्होंने देखी। नीलाचल पर "नीलमाधव", "विमला" और "नृसिंह" प्रभृति अनेक देव-देवियों की मूर्तियाँ देखकर उस स्थान के माहात्म्य के सम्बन्ध में उनको विश्वास हो गया। उन्होंने अवन्ती जाकर राजा को सब ब्योरा कह सुनाया। राजा फ़ौज-फाँटा, इष्टमित्र और मन्त्री आदि को साथ लेकर पुरी आये और आजकल जहाँ पर इन्द्रद्युम्न सरोवर है उसके समीप उन्होंने डेरे डाल दिये। वहाँ पर एक सरोवर खुदवाकर उन्होंने उसका नामकरण अपने नाम पर कर दिया। कहा जाता है कि राजा ने वहाँ पर अश्वमेध यज्ञ किया था और उसमें इतनी अधिक गौओं का दान किया था कि उनके खुरों से खुद जाने पर यह इन्द्रद्युम्न सरोवर बन गया।

वसु शबर का पुत्र दयितापति हुआ। उसके वंश के लोग आज भी जगन्नाथजी के पंडे हैं। ये लोग एक महीने, स्नानयात्रा से रथयात्रा की समाप्ति तक, जगन्नाथजी की सेवा-पूजा में रहते हैं।

इन्द्रद्युम्न सरोवर पुरी के पञ्चतीर्थों में से एक है। बड़ा भारी तालाब है। घाट बँधे हुए हैं। मन्त्र पढ़कर इसमें स्नान किया जाता है। इसमें कछुवे हैं। पण्डों के आवाज़ देने से वे घाट पर आ जाते हैं और यात्रियों की दी हुई वस्तुओं को खाने लगते हैं। इसका पानी हरा हरा-सा रहता है। मार्कण्डेयतालाब, रोहिणीकुण्ड, वटकृष्ण और महोदधि—यही तीर्थ पुरी में प्रधान हैं। यात्री को इनका दर्शन और स्नान करना तथा कम से कम तीन रात तक पुरी में रहना चाहिए।

नीलाचल में आकर राजा इन्द्रद्युम्न ने देखा कि वहाँ पर सभी देवता तो हैं किन्तु नीलमाधव नहीं हैं। इससे उनको बड़ी निराशा हुई। रात के राजा के स्वप्न में आज्ञा हुई कि माधव की, लकड़ी की, प्रतिमा बनाओ और नीलाचल पर जहाँ वे प्रतिष्ठित थे वहीं मूर्ति के स्थापित कर दो। राजा ने स्वप्न में देखा था कि कुछ लकड़ियाँ समुद्र में बहती हुई आवेंगी। उन्हीं के पकड़कर मूर्ति बना लेना। बस, उन्होंने लकड़ियाँ मिलने पर विश्वकर्मा के बुलाकर मूर्ति बनाने की आज्ञा दी। उन्होंने मूर्ति बनाना इस शर्त पर स्वीकार किया कि सात दिन तक बन्द कमरे में काम करेंगे, जिसमें कोई देखने न पावे। राजा राज़ी हो गये और विश्वकर्मा मूर्ति बनाने लगे। पाँचवें दिन राजा (किसी किसी की राय में रानी गुंडिचा) ने, मनाही रहने पर भी, दरवाज़ा तोड़कर घर के भीतर इस लिए प्रवेश किया कि देखें काम कहाँ तक हुआ है। उस समय मूर्तियाँ पूर्णतया नहीं बन पाई थीं। राजा के इस बर्ताव से विश्वकर्मा बहुत असन्तुष्ट हुए। वे मूर्तियों के अङ्ग-प्रत्यङ्ग बनाये बिना ही चले गये। इसी से अब तक जगन्नाथजी की मूर्ति अधूरी है। न हाथ-पैर हैं, न कण्ठ है, न कान हैं और न उदर ही है। अपनी करनी पर राजा इन्द्रद्युम्न के बड़ा पछतावा हुआ। वे बहुत समय तक देव लोक में निवास करते रहे। दुबारा जब वे पृथ्वी पर आये तब न तो उनका राज्य था न प्रजा। उनके परिवार का भी कहीं पता न था। उस समय पुरी में गालमाधव नाम के एक राजा का राज्य था। उस समय की माधव की अधूरी मूर्ति नीलाचल पर यथास्थान रक्खी हुई थी। तब राजा ने गालमाधव से अनुमति लेकर होम और यज्ञ-याग आदि कर शास्त्र की विधि से उक्त मूर्ति की प्रतिष्ठा नीलाचल पर कर दी। वहीं पर पुरी का वर्तमान मन्दिर, बहुत समय बीत जाने पर, बना। मन्दिर में जगन्नाथजी तो वही हैं, पर मन्दिर के नियम के अनुसार हर बारहवें वर्ष (जिस साल दो आषाढ़ होते हैं) जगन्नाथजी का कलेवर बदला जाता है। मन्दिर में ही बग़ीचे के समीप एक स्थान "वैकुण्ठ" है। वहीं पर नई मूर्तियाँ तैयार की जाती हैं। पास के एक कूप में पुरानी मूर्तियाँ छिपा दी जाती हैं।

लेखक के निजी विचार

मूर्तियाँ अधबनी क्यों हैं, इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न लोगों की अलग अलग राय है। "नीलमाधव की पूजा जो शबर करता था उसकी कल्पना के आधार पर ही तो विग्रह बनाया गया होगा और शबर की कल्पना हमारी वर्तमान रुचि के लिहाज़ से असम्पूर्ण रही होगी।" इस कथन पर एक उड़िया मित्र कुछ रुष्ट हो गये। लेकिन बात तो यही ठीक जान पड़ती है। कोई कोई यह कह देते हैं कि भगवान् ने बुद्ध अवतार धारण कर जो यज्ञ-याग आदि की निन्दा की थी वह कोई और न करे, इसी लिए भगवान् ने यह लुञ्ज रूप धारण कर लिया है। एम्बार मठ के महन्तजी ने जो उत्तर इस विषय का दिया उससे लेखक के मन में एक नया भाव यह उत्पन्न हुआ कि भगवान् से ही मनुष्य के सुन्दरता का ज्ञान प्राप्त हुआ है और उसने उनकी एक से एक मनोहर मूर्तियों का निर्माण करके अन्त में एक ऐसा विग्रह खड़ा कर दिया जिसकी कोई कल्पना ही नहीं कर सकता। यह इसलिए कि वह निरी मूर्तिपूजा में ही न फँसा रहकर मूर्ति से अतीत परम सुन्दर निराकार सच्चिदानन्द प्रभु की उपासना करना सीखे।

जगन्नाथजी की मूर्ति-रचना में सुन्दरता का कितना ही अभाव क्यों न हो, किन्तु उसकी आराधना करोड़ों भारतवासी न जाने कितने समय से करते आ रहे हैं और इन आ[illegible]कों में विद्वान् और मूर्ख, धनी और दरिद्र, नीच और [illegible] सभी श्रेणियों के स्त्री-पुरुष होते हैं, उन्हीं की प्रबल श्रद्धा मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित होकर पूजा को ग्रहण करती है और करती रहेगी। मन्दिर में जाने पर और मूर्ति के देखकर भक्त यह नहीं देखता कि मूर्ति की रचना कैसी है, सुन्दर है या असुन्दर है। वह तो भक्ति-गद्गद होकर स्तोत्र पढ़ने लगता है, प्रार्थना करने लगता है और प्रेमाश्रु-सिक्त हो जाता है। क्लिष्ट कल्पनाओं के लिए भक्त के हृदय में स्थान हो कहाँ?

'दारु-विग्रह' के सम्बन्ध में लेखक ने अपनी पिछली यात्रा के समय बहुत पूछ-ताछ की थी। इस साल भी इसके लिए कई लोगों के द्वार खटखटाये। पर स्पष्ट बात किसी ने नहीं बतलाई। परलोकगत स्वामी वासुदेव रामानुजदास ने बतलाया था कि तीनों मूर्तियों में ब्रह्म की प्रतिष्ठा है। ब्रह्म का अर्थ परमात्मा बतलाया। फिर कहा बहुत ही

शीतल है। किसी किसी ने कहा कि शालग्राम शिला है। एक उड़िया मित्र ने कहा कि कलेवर-यात्रा के समय एक विशिष्ट पण्डा की आँखों पर पट्टी बाँध दी जाती है। उसकी हथेलियों पर कपड़ा लपेट दिया जाता है। उस स्थान में और कोई नहीं रहता। उसी समय वह पुराने विग्रह में से उक्त वस्तु को निकाल कर नये विग्रह में रख देता है। रखने का स्थान विग्रह के पृष्ठ देश की ओर रहता है। उसको द्वार की तरह खोलकर और वस्तु रखकर बन्द कर दिया जाता है। फिर मूर्ति के ऊपर पाट की डोरियों का वेष्टन रहता है, उस पर वस्त्र लपेटे जाते और रङ्ग चढ़ाया जाता है। किसी किसी ने कहा कि शालग्राम शिला नहीं, बुद्ध का दाँत है। यों जितने मुँह उतनी बातें हैं। असल में या तो सच बात को छिपाने की कोशिश की जाती है या फिर किसी को कुछ पता ही नहीं। और यात्री तो इस विषय में कुछ जानते ही नहीं। ऐसा जान पड़ता है कि शंकराचार्यजी ने मूल-निवासियों से समझौता करके, उनकी कुछ बातें मानकर, शेष पर वैदिक सभ्यता का रङ्ग चढ़ा दिया है।

मन्दिर में प्रायः सभी सम्प्रदायों का समन्वय है। तिलक आदि तो वैष्णवों का है; शाक्तों की विमला देवी और मन्दिर के बाहर, ऊपरी भाग में, काम-शास्त्र के संपृक्त बनी हुई बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ शाक्तों की; जूठे-मीठे का ख़याल न रखना अघोरियों (औघड़ों) का और भोजन में छूत-छात का विचार न रखना (जाति-पाँति का विरोध) बौद्धों का प्रतीत होता है। एक उड़िया पण्डित ने कहा कि गरुड़-स्तम्भ से लेकर जय-विजय द्वार तक नीचे भूगर्भ में शाल-ग्राम ही शालग्राम हैं। इसलिए जानकार लोग या तो गरुड़स्तम्भ के पीछे खड़े होकर दर्शन करते हैं या बग़ल के द्वार से जाकर। वे सामने से होकर नहीं जाते।

कहते हैं, जिस रात को प्राचीन कलेवर में से नये कलेवर में ब्रह्म का परिवर्तन होता है उस रात को मन्दिर में घनाघन घंटा-घड़ियाल बजते रहते हैं। उस ध्वनि से एक प्रकार का भय प्रकट होता है। बस्ती में उदासी छा जाती है और उड़िया महिलायें अपने बच्चों को घर से बाहर नहीं निकलने देतीं। सवेरे से दयिता लोग दस दिन तक अशौच मनाते और दयिता-पति श्राद्ध आदि करते हैं। लेखक इसे वहाँ की परम्परा समझता है।

मन्दिर के भोगराग आदि की व्यवस्था

सन् १८०३ ईसवी में उड़ीसा पर अँगरेज़ों का अधिकार हुआ। जिस समय उड़ीसा पर महाराष्ट्रों की हुकूमत थी उस समय वे जगन्नाथजी की सेवा-पूजा के लिए सरकारी ख़ज़ाने से, ३० से लेकर ५० हज़ार रुपया तक दिया करते थे। वे लोग यात्रियों पर कर लगाकर यह रक़म वसूल कर लेते थे। उस समय रेल न होने से यात्री पैदल ही जाते थे। पुरी जाने के लिए उन्हें "अठारह नाला" नामक पुल को पार करना पड़ता था। इस पुल पर ही यात्रियों से, उनकी हैसियत के हिसाब से, यह कर लिया जाता था। यह पुल पुरी से उत्तर ओर दो मील पर है। यहीं से यात्रियों की दृष्टि पहले पहल जगन्नाथजी के मन्दिर पर लगे नीलचक्र पर पड़ती है। इसके दर्शन से ही यात्री को बड़ी प्रसन्नता होती है। पुल के पास एक धर्मशाला थी। शायद अब भी हो। साधु-संन्यासी और महसूल देने में असमर्थ यात्री इस धर्मशाला में ठहर जाते थे। सप्ताह में एक दिन निर्दिष्ट था जब वे पुरी के लिए यों ही जाने पाते थे। १८०३ से लेकर १८०७ तक अँगरेज़ों ने इसी पुराने नियम को चलने दिया। उस समय खुरदा में उड़ीसा का पुराना राजघराना था। वर्तमान खुरदा जंकशन वहीं पर है। उक्त राजा खुरदा या पुरी का राजा कहलाता था। १८०८ में अँगरेज़ों ने उसी राजा को जगन्नाथजी के मन्दिर का प्रबन्ध सौंप दिया और मन्दिर के ख़र्च के लिए उसे ६०,०००) सालाना देने का वचन दिया। इस रक़म को वसूल करने के लिए अँगरेज़ों ने, यात्रियों पर, उनकी हैसियत के अनुसार नया कर लगा दिया। प्रत्येक सम्पन्न यात्री से ६) से लेकर १०) तक टैक्स लिया जाने लगा। साधारण यात्रियों से २) लिया जाता था। केवल उड़िया लोग, दूकानदार, मन्दिर में पानी भरनेवाले और साधु-संन्यासी इस टैक्स से बरी थे। मुसलमानों और मरहठों के ज़माने में यात्रियों से जितना टैक्स वसूल किया जाता था उसको देखते हुए यह कम था।

मन्दिर के लिए यों टैक्स वसूल किया जाना पादरियों को पसन्द न आया। उन्होंने कहा कि ईसाई सरकार का पौत्तलिकता को प्रश्रय देना अनुचित है। बड़ा विरोध हुआ। परिणाम यह हुआ कि सरकार ने यह टैक्स बन्द करके मन्दिर के ख़र्च के लिए ६५,०००) सालाना आमदनी

की जागीर खुरदा के राजा को दे दी और मन्दिर के प्रबन्ध से अपना हाथ खींच लिया। तब से मन्दिर का प्रधान सेवक पुरी का राजा हुआ। उसका महल जगन्नाथजी के मन्दिर के पास ही है। रेल हो जाने के कारण यात्रियों का आवागमन बहुत अधिक हो गया। इससे मन्दिर की आमदनी तो बढ़ गई, पर प्रबन्ध बिगड़ने लगा। पण्डों की धींगाधींगी अलग थी। भगवान् को चढ़ाई हुई भेंट प्रायः पण्डे के हाथ लग जाती थी। इस कुप्रबन्ध को दूर करने के लिए पेंशन-प्राप्त एक अँगरेज़ सिविलियन प्राइस साहब को मन्दिर का मैनेजर नियुक्त किया गया। मैनेजर ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि यात्रियों की चढ़ाई हुई दक्षिणा से ही देव-सेवा का ख़र्च भली भाँति होने लगा। मन्दिर की जागीर की आमदनी से प्रायः कुछ लेना न पड़ता था। प्रबन्ध सुधर जाने से पण्डों का नुक़-सान हुआ। उन्होंने राजा से मैनेजर की शिकायत कर उसको निकलवा दिया। प्राइस साहब के चले जाने पर फिर धाँधली होने लगी। तब फिर प्रबन्ध के लिए मैनेजर रखना पड़ा। अब तक सर्वश्री राजकिशोर दास, गौरीश्याम महान्ती, श्रीयुत क़ानूनगो और सखीचन्द इस पद पर काम कर चुके हैं। जिस समय राजकिशोर बाबू ने प्रबन्ध हाथ में लिया, मन्दिर का ख़ज़ाना ख़ाली था। महान्तीजी ने ऐसा प्रबन्ध किया कि जो भोग जिस समय पर लगना चाहिए वह उस समय लगने लगा और भोग का सामान भी बढ़िया रहने लगा। बाबू सखीचन्द ने चन्दा करके मन्दिर की मरम्मत करवाई और बाहरी धूमधाम की भी व्यवस्था कर दी। आज-कल प्रबन्ध करने को कोई उच्च मैनेजर नहीं है। इससे ठीक समय पर न भोग लगता है और न दर्शन होते हैं।

मन्दिर बहुत लम्बी-चौड़ी ज़मीन पर बना है। उसकी मरम्मत के लिए ख़ासी रक़म चाहिए। इसके लिए आरम्भ में दक्षिणी ब्रह्मचारी ने उद्योग किया और वे अपने हाथ से काम करने लगे तब कलकत्ते के श्री मँगनीरामजी बाँगड़ ने २० हज़ार रुपया दिया। एम्बार मठ के महन्तजी की देख-रेख में यह काम एक वर्ष से धीरे धीरे हुआ करता है।

जगन्नाथजी के लिए जो नैवेद्य प्रस्तुत होता है उसकी शुद्धता का बड़ा ध्यान रक्खा जाता है। रसोईघर में सबको जाने का अधिकार नहीं। वहाँ पर वे ही लोग आ जा सकते हैं जो या तो रसोई बनाते या उस काम में रसोइए की सहायता करते हैं। मन्दिर के भीतर ही कुएँ हैं। रसोईघर के पास के कुएँ से, हाँड़ी से भर भर कर, रसोई के लिए जल भरा जाता और रसोईघर में पहुँचाया जाता है। चूल्हे क़तारों में और इतनी उँचाई पर बने हुए हैं कि सुआर (रसोइए) खड़े खड़े रसोई बनाते हैं। वे इस ढंग के हैं कि उन पर, एक वृत्त में, कई हाँड़ियाँ चढ़ा दी जाती हैं। इन हाँड़ियों के सहारे ३-४ हाँड़ियाँ और चढ़ा दी जाती हैं। इनमें केवल अदहन गरम होता रहता है। जिन हाँड़ियों (अटकों) में दाल-चावल पकता होता है। उनके सिद्ध होते ही वे उतार ली जाती हैं और अदहनवाली हाँड़ियाँ चूल्हे पर रखकर उनमें दाल-चावल आदि सिद्ध करने को डाल दिया जाता है और ख़ाली स्थान में फिर अदहन के लिए कुछ हाँड़ियाँ चढ़ा दी जाती हैं।

लेखक ने बचपन में यह सुन रक्खा था कि जगन्नाथजी के रसोईघर में यह विचित्र बात है कि चूल्हे पर, एक के ऊपर एक, लगातार ६-७ हाँड़ियाँ चढ़ा दी जाती हैं और सबसे ऊपर की हाँड़ी के चावल या दाल सबसे पहले तथा सबसे नीचे की वस्तु सबसे पीछे सिद्ध होती है। [illegible] सुनने से सभी को विस्मय होना स्वाभाविक है, किन्तु वास्तव में न तो इस प्रकार हाँड़ियाँ चढ़ाई ही जाती हैं और न वस्तु के सिद्ध होने का ही यह क्रम है। लेखक अपनी पिछली यात्रा में, गुंडिचाबाड़ी के रसोईघर में, चूल्हों की बनावट देखने को गया था। उस समय जगन्नाथजी मन्दिर में थे और गुंडिचाबाड़ी का रसोईघर ख़ाली पड़ा था। इसलिए लेखक भली भाँति समझ आया था कि चूल्हों पर एक के ऊपर एक सात सात अटके चढ़ाये ही नहीं जा सकते। इस बार दुबेजी अपनी इस विषय की जिज्ञासा के निवृत्त करने को, रसोई-घर की पीछेवाली दीवार के पास जाकर बड़े बड़े मोखों में से, चूल्हों पर चढ़े हुए अटकों को देखकर उनके सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने लगे तो सुआरों ने वही बतला कर कहा कि चूल्हा देख लिया, अटके देख लिये, अरे कुछ दक्षिणा तो दो।

इसमें सन्देह नहीं कि रसोईघर पर धुएँ का रङ्ग चढ़ा

हुआ था और वह साफ़ बिलकुल नहीं था। ऐसा जान पड़ता था कि मुद्दत से उसकी सफ़ाई नहीं हुई है और सफ़ेदी तो शायद कभी की ही न जाती होगी।

जब तक भगवान् को नैवेद्य नहीं लग जाता तब तक रसोईघरवालों के सिवा और कोई नैवेद्य को नहीं छू सकता। भगवान् के समीप अथवा भोगमण्डप में जो लोग नैवेद्य को पहुँचाते हैं वे एक कपड़े से अपने मुँह और नाक को बाँधे रहते हैं। इसके दो कारण जान पड़ते हैं। एक तो यह कि उन लोगों के श्वास-प्रश्वास से नैवेद्य की सामग्री अछूती बनी रहे और दूसरा यह कि दग़ा-धोखे में कहीं किसी के मुँह से लार न टपक पड़े; क्योंकि उड़िया लोग पान और तम्बाकू बहुत खाते हैं। इससे मुँह में लार की अधिकता हो सकती है। किन्तु जो रसोई इतनी पवित्रता से बनाई जाती है वही, भगवान् को भोग लग चुकने पर, छूत-छात की सीमा को बुरी तरह लाँघ जाती है। जब महाप्रसाद (भात), दाल, कढ़ी, तरकारी आदि सामान आनन्दबाज़ार में बिकने को पहुँच जाता है तब उड़िया लोग हाँड़ी में उँगली डालकर उसको चखते हैं और वही जूठी उँगली उसी में दुबारा तिबारा डाल देते हैं। सौदा न पटने पर दूसरी दूकान में जाकर वे फिर ऐसा ही करते हैं। ऐसा करने से उनको न तो दूकानदार ही रोकता है और न कोई देखनेवाला ही। वहाँ यह बिलकुल साधारण बात है। अवश्य ही महँगी चीज़ों को इस तरह बार बार जूठा नहीं किया जाता; क्योंकि उनके ग्राहक अधिक नहीं होते और ग्राहककी सूरत-शकल से दूकानदार भाँप जाता है कि वह उस वस्तु को ले सकता है या नहीं। कुछ लोग आनन्दबाज़ार में महाप्रसाद मोल लेकर वहीं खाने लगते हैं। हाँड़ी के एक टुकड़े में महाप्रसाद दे दिया जाता और दूसरे टुकड़े में दाल तथा तरकारी। दाल बहुत गाढ़ी होती है, इसलिए उसके बहकर गिरने की आशंका ही नहीं रहती। एक के खा चुकने पर जो हाँड़ी के जूठे टुकड़े पड़े रहते हैं उन्हें दूकानदार बड़े यत्न से उठाकर रख लेता है और उन्हीं में दूसरे ग्राहक को दे देता है। किसी को इसमें तनिक भी घिन नहीं आती। दूकानदार पीने को पानी नहीं देता। अलग केवल एक जगह पीने का पानी रक्खा रहता है। वहाँ का आदमी जूठे सकोरों में पानी देता है और लोग पीते जाते हैं, पर वह हाथ-मुँह धोने को पानी नहीं देता। उस बाज़ार में प्रायः मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं। कई तरकारियाँ इकट्ठी बना ली जाती हैं। इससे प... पता नहीं लगता कि यह किन किन वस्तुओं का मिश्रण है। दाल तरकारी आदि में नमक कुछ कम डाला जाता है। मिर्च-मसाला तो डाला ही नहीं जाता। छौंकने-बघारने का भी नियम नहीं है। हाँड़ी में यह क्रिया ठीक ठीक हो भी तो नहीं सकती। सिद्ध दाल-कढ़ी-तरकारी आदि में किसी किसी हाँड़ी के ऊपर पिसी हुई कोई चीज़ बुरकी देख पड़ती है। शायद यह ज़ीरा या और कोई वस्तु हो।

दाल प्रायः बिलकुल गली हुई होती है। स्वाद भी अच्छा होता है; पर चावल प्रायः नया होता है, इस कारण उसका स्वाद बढ़िया पुराने चावलों का-सा नहीं होता। किन्तु भावुक यात्री स्वाद की ओर ध्यान कब देता है। उसके लिए तो महाप्रसाद देवदुर्लभ वस्तु है। जो लोग बढ़िया प्रसाद चाहते हैं वे अपने पण्डे के मारफ़त बढ़िया चावल, दाल, तरकारी आदि रसोईघर में भिजवा देते हैं। इसके लिए कुछ टैक्स देना पड़ता है। नैवेद्य तैयार हो जाने पर भगवान् को भोग लगाया जाता और मज़दूर उसको झाबे में रखकर यात्री के स्थान पर पहुँचा देता है। एक दिन दुबेजी ने ऐसा ही किया। बढ़िया प्रसाद आ गया। पण्डे को भी भोजन करने के लिए निमंत्रण दिया था। उसने प्रेम से प्रसाद पाया और परोसने का काम किया पण्डे के कायस्थ गुमाश्ते ने। पत्तलों में जो सामान पड़ा रह गया उसको गुमाश्ते का आदमी घर उठा ले गया। भला अच्छी चीज़ें कहीं मेहतर के लिए छोड़ी जा सकती थीं। प्रबन्ध यह था कि मालपुवे और खाजा भी आवें। लेकिन इन वस्तुओं का भोग आजकल दोपहर को नहीं लगता। इसलिए गुमाश्ता इन वस्तुओं को एक हलवाई के यहाँ से ले आया। दूसरे दिन जब उससे इसके लिए कैफ़ियत माँगी तो उसने कह दिया कि आपको तो प्रसाद से काम। मैं खाजा और मालपुओं का भोग नीलचक्र को लगा लाया था। ख़ूब रही। यात्री माँगे भगवान् का प्रसाद और गुमाश्ता ले आवे हलवाई की दूकान से! पकड़े जाने पर यह सफ़ाई! पण्डे और उनके नौकर प्रायः सच नहीं बोलते। (पुरी में कहावत है—'उड़िया कपटी तिलंगा चोर। मार मरहट्टा हरामख़ोर।)' और उनके मारफ़त ली गई वस्तु के अधिक दाम देने पड़ते हैं; क्योंकि दूकानदार से पण्डा या उसका गुमाश्ता, यात्री को दिये गये सौदे पर, कमीशन लेता है। यदि यात्री स्वयं सौदा लाता है तो उसे प्रायः वाजिब दाम में चीज़ मिल जाती है। दूसरे दिन जगन्नाथजी के भोग के मालपुवे लाने का स्वयं प्रबन्ध किया। रात को ८ बजे से ही मन्दिर में जा बैठे। ९ बजे के बाद भोग लगा और १० बजे के लगभग मालपुवे दूकान में पहुँचे। इस तरह प्रसाद लाने में रात के कोई ११ बज गये। भला इतना झंझट करने को यात्री कब तैयार होगा।

लेखक ने सुना कि मन्दिर में चीनी नहीं जाने पाती। गुड़ से कंद तैयार किया जाता है और रसोई में उसी का उपयोग होता है; लेकिन जान पड़ता है कि अब चीनी का प्रवेश, किसी न किसी रूप में, हो गया होगा। कारण यह है कि जब रद्दी घी वहाँ पहुँच जाता है तब चीनी का क्या अपराध! यद्यपि मन्दिर के मालपुओं का घी उन मालपुओं के घी (या तेल) से बेहतर था जिनको पण्डे का गुमाश्ता लाया था, फिर भी उसको शुद्ध घी नहीं कहा जा सकता। कितने अचम्भे की बात है कि जगत् के नाथ के नैवेद्य में मिलावट की ऐसी चीज़ें जावें जिनकी शुद्धता में सन्देह किया जा सके और जिनका उपयोग करनेवालों का स्वास्थ्य सन्देह में पड़ सके। इस ओर न पण्डों का ध्यान है न रसोइयों का। भगवान् के मुख्य सेवायत, पुरी के राजा, को इस ओर ध्यान देने के लिए समय ही कहाँ और जब इतने लोग कुछ नहीं कहते तब सार्वजनिक स्वास्थ्य-विभाग ही क्यों माथा-पच्ची करे?

पुरी के बहुत-से मठों और आश्रमों ने महाप्रसाद मँगाने का अपना विशेष प्रबन्ध कर रक्खा है। उनके यहाँ से मन्दिर में कच्चा सामान पहुँच जाता है और भोग लग जाने पर मज़दूर यथास्थान वह सामग्री पहुँचा आते हैं। इसके लिए मन्दिर को कुछ रक़म देनी पड़ती है। कुछ लोग दाल तथा कुछ लोग दूसरी चीज़ों का भोग लगवाकर उनको आनन्दबाज़ार में बेचा करते हैं। उनका यही पेशा है। पुरी में बहुत-से घरों में चूल्हे-चौके का झगड़ा नहीं है। सीधा मन्दिर से महाप्रसाद मँगवा लिया और सारे झगड़ों से बच गये। लेकिन जो लोग समय पर और अपनी रुचि का भोजन चाहते हैं उनके यहाँ रसोई बनती है।

पूजा का आरम्भ मङ्गला आरती से होता है। बड़े तड़के १०, १२ आदमी मृदङ्ग और करताल बजाते हुए प्रभाती गाकर भगवान् को जगाते हैं। इसके बाद मुख्य पण्डा, सील-मुहर की जाँच कर, जय-विजय-द्वार को खोलता और मङ्गला आरती करता है। इस समय जगन्नाथ जी रात्रि के राजवेश में ही रहते हैं। इसके बाद उनको दन्तधावन और स्नान आदि प्रातःकृत्य कराया जाता है। दतून, जीभी और दन्तधावन की अन्य वस्तुएँ प्रत्येक मूर्ति के सामने रख दी जाती हैं। प्रत्येक मूर्ति का अलग अलग पण्डा होता है। वह इन वस्तुओं को मूर्ति के सामने थोड़ी देर घुमा देता है। मूर्तियों के सामने आसन पर बैठे हुए पण्डे दतून करा चुकने पर उन वस्तुओं को चाँदी के गमले में डाल देते हैं। फिर तीनों मूर्तियों के सामने एक एक दर्पण रखकर उसमें प्रतिफलित मूर्ति पर दही और जल गिराया जाता है। यह स्नान हुआ। अब सूर्य वा द्वारपाल की पूजा होती है।

सबेरे जो भोग लगाया जाता है उसको बालभोग कहते हैं। इसमें मीठी लाई, मक्खन, मिश्री, दही और मिठाई होती है। इसके बाद प्रातःकाल का धूप यानी राजभोग लगता है। पुरी में [illegible] शब्द का अर्थ भोग है। राजभोग राजा की ओर से [illegible] है। भोग लग चुकने पर कुल सामान राजा के यहाँ भेज दिया जाता है और जो चीज़ें अधिक होती हैं वे आनन्दबाज़ार की राजा की दूकान में बिकने को रख दी जाती हैं। इस भोग की मुख्य वस्तु खिचड़ी है। जगन्नाथजी का प्रधान भोग '[illegible]भोग' है। यात्रियों को और पुरी के अधिकांश लोगों को इसी भोग का प्रसाद मिलता है। यह बहुत अधिक बनाया जाता है। चीज़ें भी कई तरह की होती हैं। दाल, भात, भुजिया, मोहर, बेसर और रायता आदि विविध व्यंजन, खटाई, दही, खीर, पिष्टक, दूध और मिठाइयों का भोग इस समय लगता है। मोहर और बेसर यथाक्रम काली मिर्च की बुकनी और पिसा हुआ सरसों मिलाकर बनाये जाते हैं। आलू, लौकी, पोई का शाक और सहँजन आदि का भोग जगन्नाथजी को नहीं लगता फिर भला गोभी का गुज़र कब होने लगा। कुम्हड़ा, बैंगन, शकरक़न्द, अरुई (घुइयाँ), आदि का भोग लगता है। कणिकाप्रसाद सबसे बढ़िया भात है। यह महँगा बिकता है, इसलिए सब लोग

इसको नहीं चख पाते। एक हाँड़ी, जिसमें ५-६ सेर माल रहता है, १॥।) में मिलती है। यह चावल पुराना होता है। इसमें घी और क़न्द मिला रहता है। थोड़े से किसमिस और दाल के दाने भी। महँगा होने के कारण इसकी दो-एक ही हाँड़ियाँ सिद्ध की जाती हैं। अधिक यात्री होने पर यह महँगा बेचा जाता है और कम गाहक होने पर सस्ता। हम लोग १॥) में ले आये थे। शायद कुछ और सस्ता पा जाते। आर्डर देने पर अधिक भी बना दिया जाता है। गाहक न मिलने पर दूकानदार इस हाँड़ी के कई टुकड़े करके अलग-अलग बेच लेता है। वह कुछ इस अन्दाज़ से हाँड़ी को तोड़ता है कि उसके ठीक ठीक दो टुकड़े हो जाते हैं। इसी प्रकार वह चार या आठ टुकड़े करके बेच लेता है। रूप, रंग और सुगन्ध सभी बातों में यह बढ़िया होता है। छोटी सी हाँड़ी खिचड़ी की भी होती है। इसमें भी घी रहता है और चावल अच्छा रहता है। यह ।) और ।=) में बिकती है। अरहर, मूँग, चना और उड़द की दाल का ही भोग लगता है। उड़द की पिट्ठी से तरह तरह के पिष्टक और मिठाइयाँ बनती हैं। जगन्नाथजी के भोग की किसी चीज़ में तेल का उपयोग नहीं होता।

बोरिताड़िया, छानाताड़िया, तमालू, बीरी बड़ा, हंसकेलि, चन्द्रकान्ति, माठपूलि, कांकड़ा, चड़ुईनेदा, सुआर पीठा आदि कई प्रकार के पिष्टक हैं जो कुछ तो सादे हैं और कुछ मीठे।

खाजा, मगद का लड्डू, जगन्नाथवल्लभ, लक्ष्मीविलास, खैरचूर, मनोहर या कटकटी, कोरा, खुर्मा (मीठे और नमकीन), गजा, झिल्ली और आरिषा आदि कई तरह की मिठाइयाँ हैं।

इन चीज़ों में से कुछ ऐसी हैं जो दूर दूर तक भेजी जाने पर भी ख़राब नहीं होतीं। इनको यात्री और पण्डे, बाँटने के लिए, ले जाते हैं। आनन्दबाज़ार के बाहर ३, ४ दूकानदार ऐसे हैं जो इन चीज़ों को बनवाकर भोग लगवा देते और बेचते रहते हैं।

अमृतरसावली, चकोटा, क्षीरी, गुरुन्दा, क्षीरा आदि पदार्थ दूध से बनाये जाते हैं।

छत्रधूप के बाद मध्याह्नधूप का नम्बर है। इसका प्रबन्ध भी राजा की ओर से ही होता है। पहले राजा की ओर से इसके लिए प्रतिदिन १२५) दिया जाता था। सन् १९२६ में इसमें कोई २००) प्रतिदिन ख़र्च होता था। इसमें भी तरह तरह की वस्तुएँ रहती हैं। इस भोग का अधिक हिस्सा राजा के यहाँ चला जाता है, कुछ पण्डों को मिल जाता है जो आनन्दबाज़ार में बिक्री के लिए भेज दिया जाता है। इसके बाद भगवान् आराम करते हैं। दरवाज़ा बन्द कर दिया जाता है। शाम को पट खुलने पर भगवान् के दर्शन मिलते हैं।

सन्ध्या-आरती मंगला-आरती की तरह होती है। इस समय मन्दिर में बहुत भीड़भाड़ हो जाती है। आरती हो चुकने पर भगवान् को जलपान कराया जाता है। इसका नाम सन्ध्याधूप है। इसमें भात, मिठाई, फल-फलहरी, दूध, मलाई और खीर आदि का भोग लगता है। इसके अनन्तर भगवान् की देह में चन्दन लगाकर उनका वेश बदला जाता है। फूल और फूलों के आभूषण तथा वस्त्र आदि पहना दिये जाते हैं। इसको शृङ्गारवेश कहते हैं। अधिक रात होने पर दूसरा वेश बदला जाता है। मूल्यवान् वस्त्र और आभूषणों तथा फूलमालाओं से उनका शृङ्गार किया जाता है। यह बड़ा शृङ्गार कहलाता है। इस वेश के दर्शन बहुत रात बीतने पर होते हैं। इसके लिए यात्रियों को देर तक मन्दिर में प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इस समय भीतर नाच-गान होता रहता है। यात्री केवल गाना सुन पाते हैं, नाच नहीं देख पाते; क्योंकि वह भीतर होता है। नाचने के लिए देवदासियाँ नियुक्त हैं। कुछ लड़कियाँ बचपन में ही इसके लिए भर्ती कर ली जाती हैं और सिखाई जाती हैं। उनको विवाह नहीं करने दिया जाता। इससे उनका चरित्र पवित्र रहना कठिन होता है। दक्षिण-भारत में यह दूषित प्रथा प्रायः सर्वत्र है।

इस वेश के बाद फिर भगवान् को भोग लगाया जाता है। इसका नाम है बड़ो शृङ्गारधूप। 'दई पकाल', दूध और मिठाइयाँ इसमें रहती हैं। गरम भात को धोकर उसमें दही, अदरक और भुने ज़ीरे मिला दिये जाते हैं। यही 'दही पकाल' है। जगन्नाथजी की अन्तिम पूजा का नाम पहुड़धूप है। यह पूजा आधी रात को की जाती है। तीनों मूर्तियों के सामने चाँदी की एक एक खटिया बिछा दी जाती है। बग़ल में खड़ा होकर एक पंडा इन खटियों पर फूल बिखेर देता है। प्रधान पण्डा जय-विजय-द्वार के सामने एक पीतल की मूर्ति को रखकर सामने पहुड़धूप की विधि सम्पन्न करता है। फिर दरवाज़े को बन्द करके उस पर मन्दिर की सील-मुहर कर देता है। इससे पहले ही मन्दिर में जाने के सब दरवाज़े बन्द कर दिये जाते हैं। बन्द दरवाज़े के दोनों ओर दो आदमी, चौकीदार के रूप में, रात भर रहते हैं। रात को मन्दिर में पहरेवालों के सिवा किसी को नहीं रहने दिया जाता। प्रातःकाल होने पर प्रधान पण्डा सील-मुहर की जाँच करके जय-विजय-द्वार को खोलता है तब मङ्गला-आरती होती है। लोगों का विश्वास है कि जय-विजय-द्वार बन्द हो जाने पर देवता लोग जगन्नाथजी से मिलने-भेटने आते और थोड़ी देर तक चौपड़ खेलकर चले जाते हैं।

कोई २२ वर्ष पहले जब लेखक पुरी गया था तब रात को एक दिन बड़े शृङ्गार के दर्शन करने पहुँचा। रात के कोई १० बजे होंगे। दर्शनार्थी बहुत थोड़े से थे। मन्दिर के नौकर-चाकर ही अधिक थे। बहुत बड़ा मन्दिर, थोड़े से मनुष्य और पुलांग के तेल के दीपकों का मन्द प्रकाश। कभी कोई सिपाही आकर वहाँ बैठने का कारण पूछता, कभी पण्डा-श्रेणी का कोई मनुष्य यही प्रश्न करता। दर्शन की बात सुनकर चले जाने को कहता और उपदेश देता कि बिना किसी पण्डा की सहायता के दर्शन नहीं होने के। कभी कहता कि हमें कुछ दो तो दर्शन करा देंगे, नहीं तो भगा देंगे। कैसे अच्छे विचार थे उन लोगों के जो प्रायः मन्दिर में रहा करते हैं। अन्त में पट खुले और बड़े बड़े हार लिये हुए लोग दर्शनार्थियों के आगे आकर कहने लगे कि अपनी ओर से जगन्नाथजी को यह हार चढ़वा दो। दो-एक यात्रियों ने पैसे देकर उनकी आज्ञा का पालन किया और पूजा-आरती हो चुकने पर पट बन्द हुए।

पुरी के मन्दिर में पण्डे और सिपाही प्रायः ऐसी धाँधली मचा कर दर्शनार्थियों से पैसे वसूल करते रहते हैं। समय-असमय में दर्शनार्थियों को भीतर जाने से रोकने लगते हैं और या तो स्वयं पैसे वसूल करके या पण्डे से अपना कमीशन लेकर थोड़े लोगों को भीतर जाने देते हैं, अन्य लोगों को धक्के देकर या धमकाकर हटा देते हैं। इसका संक्षिप्त रूप लेखक ने बदरीनाथजी के मन्दिर में भी देखा था। जो यात्री सिपाही को पैसे दे देता था वह देर तक भीतर रहने पाता था, औरों को बाहर कर दिया जाता था। ऐसा यात्री उस दरवाज़े से भी भीतर चला जाता था जिसमें होकर सर्वसाधारण भीतर नहीं जाने पाते थे। कर्मचारियों के इस बर्ताव से वहाँ के प्रबन्धक कुछ अनजान नहीं हैं; किन्तु वे इस ओर ध्यान देना अनावश्यक समझते होंगे। शायद उनका यह ख़याल हो कि चार दिन का मेला है। इस समय सिपाही लोग दो पैसे पैदा कर लेंगे तो कौन-सा अन्याय हो जायगा और जब यात्री इतनी दूर से रुपये ख़र्च करके आया है तब झख मारकर पैसे देगा और दर्शन करेगा।

तीर्थों के पण्डे असल में पथदर्शक थे। बाहर के यात्रियों को अपने यहाँ के स्थल-विशेषों की यात्रा कराना और वहाँ का वृत्तान्त बतलाना इनका काम था। वास्तव में पण्डे लोग यदि अपनी श्रेष्ठता का बाना उतारकर 'गाइड' बन जायँ तो उनकी उपयोगिता अधिक बढ़ जाय। यह ठीक है कि धर्मप्राण जनता अभी तक पण्डे की पूजा करती, दक्षिणा देती और उसका आदर करती है फिर भी अब समय बदल गया है। लोग पण्डे से पीछा छुड़ाने की फ़िक्र करने लगे हैं। इसलिए पण्डों को पूज्य बनने की अपेक्षा यात्रियों के लिए अधिकाधिक उपयोगी बनने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि वे ऐसा करेंगे तो उनके गुमाश्तों को यात्रियों की टोह में दौड़ न लगानी पड़ेगी, उलटे यात्री ही उनको खोजते फिरेंगे। आज-कल अधिकांश पण्डों के गुमाश्ते मुख्य स्टेशन से पहले ही पहुँच-पहुँचकर यात्रियों का नाम-धाम और पता-ठिकाना पूछकर उन्हें परेशान कर डालते हैं। असल में यात्री के लिए यह बड़ी भारी विभीषिका है। इससे यात्रियों की रक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए।

और स्थानों की अपेक्षा पुरी के पण्डे यात्री के कुछ हितचिन्तक हैं। गया और प्रयाग जानेवाला यात्री पितरों के ऋण से मुक्त होने की धुन में रहता है। इसी लिए वहाँ के पण्डे उसके सभी कर्म कर डालते हैं; लेकिन पुरी जानेवाला तो जगन्नाथजी के दर्शन करने को जाता है और प्रसन्नता से ही जाता है। इसलिए वहाँ का पण्डा चाहता है कि यात्री खुशहाल रहे जिससे उसको पुरी जाने का अवसर मिले। वैसे श्राद्ध तो पुरी में भी यात्री लोग, महाप्रसाद के पिण्ड बनाकर, करते हैं। किन्तु यह कुछ वहाँ का एकमात्र अनुष्ठान नहीं है। [अगले अङ्क में समाप्य

बाण की जीवनी

श्रीयुत सूर्यनारायण चौधरी, एम० ए०

बाण ने 'हर्षचरित' के आरम्भिक तीन अध्यायों में अपनी आत्म-कथा लिखी है। उन्होंने आत्म-कथा में, वार्तालाप और आत्म-चिन्तन को छोड़कर, सर्वत्र अपने लिए उत्तम पुरुष की जगह मध्यम पुरुष का ही व्यवहार किया है। इस लेख का अधिकांश उक्त मूल संस्कृत आत्म-कथा का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद है। उद्धरण चिह्नों के बीच दिये गये अंश प्रायः ज्यों के त्यों रक्खे गये हैं।

बाण के पूर्वज मेधावी, विद्वान्, वक्ता, कवि, नम्र, नैष्ठिक, दयालु और क्षमाशील थे। वे शोण के किनारे प्रीतिकूट नामक स्थान में रहते थे। यह स्थान वर्तमान बिहार-प्रान्त के शाहाबाद-ज़िले में कहीं होगा। बाण की जन्म-तिथि हमें ठीक नहीं मालूम है, किन्तु इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि छठी शताब्दी के अन्त में अथवा सातवीं के प्रारम्भ में उनका जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम चित्रभानु था और माता का राजदेवी। बाल्य-काल में ही उनकी माता का देहान्त हो गया था। पिता को पुत्र से बड़ा स्नेह था। उन्हीं ने उनके लालन-पालन का सारा काम किया। उचित समय पर उनके ब्राह्मणोचित उपनयन आदि संस्कार किये गये। वे बड़े मेधावी निकले। चौदह वर्ष की अवस्था से भी पहले वे 'स्नातक' हो गये थे। इसी समय उनके पिता का अकाल में ही अन्त हो गया। पिता की मृत्यु से बाण को बहुत शोक हुआ।

तरुणावस्था में ही माता-पिता के संरक्षण से वंचित होकर बाण कुछ-कुछ उच्छृंखल स्वभाव के हो गये थे। इसी अवस्था में उन्होंने शिशु-सुलभ कुछ चपलतायें कीं; किन्तु ये चपलतायें क्या थीं, इसका पता हमें नहीं है। उन्हें भिन्न भिन्न देशों के देखने का प्रबल कुतूहल हुआ, फलतः साथियों की एक टोली बना कर वे घर से निकल पड़े। नैष्ठिक ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न होने पर भी उनके साथियों में विविध श्रेणी के लोग थे, यह उनकी उदार-हृदयता का परिचायक है। उनके साथियों में पुरुष भी थे और स्त्रियाँ भी थीं, वैज्ञानिक भी थे और कलाकार भी थे, बौद्ध भिक्षु भी थे और जैन भिक्षु भी थे, धूर्त भी थे और परिव्राजक भी थे। कलाकार साथियों में सुनार, कुम्हार, संगीत-शास्त्र के उपाध्याय, गायक, वंशी और मृदंग बजानेवाले, लिपिकार, पुस्तक-वाचक, कथक, लेखक और कवि थे। कवियों में प्राकृत-कवि और भाषा-कवि भी थे। यहाँ पर 'भाषा' और 'प्राकृत' का अलग अलग उल्लेख होने के कारण 'भाषा' से प्राकृत का बोध नहीं होता है, प्रत्युत प्राकृत से भिन्न एक स्वतन्त्र भाषा का। सम्भवतः यह वर्तमान हिन्दी की ही अग्रदूतिका थी। अपनी लम्बी यात्रा में बाण राज-कुलों, गुरुकुलों, गुणियों की सभाओं और विद्वानों की मण्डलियों के सम्पर्क में खूब आये। इस सम्पर्क से विपुल अनुभव प्राप्त कर बहुत दिनों के बाद वे घर को लौटे। चिरकाल के बाद उन्हें देखकर उनके भाई-बन्धुओं के हृदय में मानो स्नेह की नदी उमड़ आई और उन्होंने उनका यथोचित सत्कार किया।

तब वे अपने भाई-बन्धुओं के घरों में सुख से रहने लगे। उनके घरों के आँगनों में सोम के हरे-भरे पौधे लहराते थे। वहाँ मृग-चर्मों पर बिखेरे हुए यज्ञ-द्रव्य सूखते रहते थे। बालिकायें जंगली धानों को बलि बिखेरती रहती थीं। शिष्य-गण हरे कुशों का पूला तथा पलास की लकड़ी लाया करते थे। यति-जन कमण्डलु बनाने के लिए मिट्टी मलने में लगे रहते थे। होम के धुएँ से वृक्षों के किसलय धूसर हो गये थे। गोपाल बालक चञ्चल नव-जात बछड़ों का लालन किया करते थे। शुकों और मैनों के द्वारा अध्ययन आरम्भ करने पर उपाध्यायों को विश्राम का आनन्द मिलता था।

भयानक ग्रीष्म-समय में वहाँ एक दिन राजाधिराज हर्ष के भाई कृष्ण के यहाँ से मेखलक नामक एक विश्वस्त दूत आया। वह कृष्ण का एक पत्र और संदेश लाया था। पत्र का सार अंश यह था—"आप-सरीखे बुद्धिमानों को सफलता के बाधक विलम्ब को पास नहीं फटकने देना चाहिए।" संदेश का मुख्य अंश यों था—"जिस तरह दूरस्थ कुमुदालय के प्रति चन्द्र बिना कारण ही स्निग्ध होता है, उसी तरह आप के प्रति मेरा हृदय स्निग्ध हो रहा है। आपका चित्त शिशु-सुलभ चपलताओं से पराङ्मुख नहीं था, अतः किसी असहनशील व्यक्ति ने चक्रवर्ती हर्ष से आपकी कुछ शिकायत करदी। दुर्जनों ने भाँति भाँति से उन्हें आपके विरुद्ध किया। किन्तु हम तत्त्वान्वेषियों ने आपके दूरस्थ होने पर भी प्रत्यक्ष की तरह जान लिया और सम्राट् से निवेदन किया—'प्रायः प्रथम वयस में सभी कोई चपलतायें करने के अपराधी होते हैं।' यह बात स्वामी ने मान ली। अतः आप अविलम्ब राज-कुल में आवें। आपको न तो सेवा की विषमता से विषाद होना चाहिए और न सम्राट् के समीप आने का भय ही होना चाहिए। ये स्वामी अमृतमय हैं और अहङ्कार से सर्वथा रहित हैं। ये साधुओं का सम्मान करते हैं और गुणों के पारखी हैं। इनकी आत्मा मित्रों के उपकार के लिए है। इनकी प्रभुता भृत्यों की भलाई के लिए है। इनकी विद्वत्ता पण्डितों के उपकार के लिए है। इनकी लक्ष्मी बन्धुओं की भलाई के लिए है। इनका ऐश्वर्य दुखियों के उपकार के लिए है। इनका सर्वस्व द्विजों की भलाई के लिए है।"

मेखलक के चले जाने पर बाण सोचने लगे—"क्या करूँ? राजा ने मुझे कुछ और ही समझ लिया है। अकारण-बन्धु कृष्ण ने इस तरह का संदेश भेजा है। और सेवा कष्ट-दायक है। दासत्व विषम है। राज-कुल अति गंभीर है। वहाँ पूर्वजों से आई मेरी प्रीति नहीं है और न वंश-परम्परा से आई पहुँच ही है। न ऐसा कोई उपकार है, जिसके स्मरण से अनुग्रह हो सकता है; और न बचपन की सेवा ही है, जिसके कारण स्नेह हो सकता है। न ऐसा ज्ञान है, जिसके आदान-प्रदान का प्रलोभन हो सकता है। न अतिशय विद्या है, जिसके कारण उत्कण्ठा हो सकती है। न सुन्दर आकृति है, जिसके कारण आदर हो सकता है। न तो सेवा के अनुकूल वाणी-कौशल ही है, न विद्वानों की सभा के योग्य चतुरता ही है। पर जाऊँगा अवश्य। मेरे जाने पर भगवान् शिव सब प्रकार से अच्छा ही करेंगे।" इस तरह सोचकर उन्होंने जाने का निश्चय किया।

दूसरे दिन उठ सवेरे ही नहाकर उन्होंने धवल रेशमी वस्त्र धारण किये और अक्षमाला लेकर प्रस्थान के उपयुक्त वैदिक सूक्त और मंत्र बार बार पढ़े। दूध से नहलाकर फूल, धूप, लेप, दीप आदि से उन्होंने देवों के देव शिव की पूजा की। द्विजों को यथाशक्ति धन दिया। एक श्रेष्ठ गाय की प्रदक्षिणा की। उजले लेप, उजली माला तथा उजले वस्त्र से अपने को विभूषित किया। गिरिकर्णिका के फूलों से अपने कानों को अलंकृत किया। शिखा में सरसों के कुछ दाने रख लिये। माता के सदृश, स्नेह से आर्द्र हृदयवाली, श्वेत-वसना, पिता की छोटी बहन मालती ने यात्रा के समय किये जाने योग्य सभी मंगल-कार्य किये। बन्धुओं के घर की वृद्धा स्त्रियों ने आशीर्वाद दिया। वृद्ध सेविकाओं ने अभिनन्दन किया। गुरुओं ने आज्ञा दी। कुल के बड़ों ने उनके सिर को सूँघा। पक्षियों ने मधुर स्वर से प्रस्थान करने का उत्साह बढ़ाया। शुभ मुहूर्त में आम के पल्लव से युक्त एक पूर्ण कलश को देखा। कुलदेवताओं को प्रणाम कर वे प्रीतिकूट से बाहर निकले।

पहले दिन चण्डिका-कानन पारकर वे मल्लकूट नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ जगत्पति नामक मित्र ने उनका सत्कार किया। दूसरे दिन भागीरथी नदी पारकर उन्होंने यष्टिग्रहक नामक जंगली गाँव में रात बिताई। तीसरे दिन वे (सम्राट् के) शिविर में पहुँचे, जो मणितार नगर के निकट अजिरवती नदी के किनारे बनाया गया था। वे राज-भवन से कुछ ही दूर पर ठहर गये।

स्नान, भोजन और विश्राम के बाद मेखलक के साथ वे राजद्वार पर गये। वहाँ उन्होंने झुंड के झुंड हाथी और ऊँट देखे तथा सहस्रों आतपत्र और चामर देखे। वहाँ पराजित सामन्त-गण लज्जा से मानो अपने ही अङ्गों में गड़े जा रहे थे। नाना देशों के भूपाल वहाँ आये हुए थे, जो सम्राट् के दर्शन के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ जैन, आर्हत, शैव, पाराशरी भिक्षु और ब्रह्मचारी एकान्त में बैठे हुए थे। सभी देशों के निवासी और म्लेच्छ जातियों के लोग वर्तमान थे। सभी देशों से आये हुए राजदूत उपस्थित थे। राज-द्वार को देखकर बाण को बड़ा

विस्मय हुआ। कुछ देर के बाद पारियात्र नामक द्वारपाल भीतर से बाहर आया। उसके बताये हुए रास्ते से बाण राजद्वार के कुछ भीतर की ओर गये, जहाँ उन्होंने वनायु, आरट्ट, कम्बोज, भरद्वाज, सिन्ध और फ़ारस देश के अश्वों से भूषित एक अश्वशाला देखी। कुछ और आगे बढ़ने पर उन्होंने सम्राट् के प्रिय हाथी दर्पशात को देखा। उसे देखकर उन्होंने सोचा—"इसका निर्माण करने में निश्चय ही पर्वत परमाणु बनाये गये होंगे, नहीं तो यह गौरव कहाँ से होता। यह एक आश्चर्य है।" तब हज़ारों भूपालों से भरे तीन आँगनों को पारकर वे चौथे आँगन में गये। वहाँ बाण ने चक्रवर्ती हर्ष को देखा। सम्राट् को देखकर उन्हें रोमाञ्च हो गया और वे आनन्द के उष्ण अश्रु बहाने लगे।

निकट जाकर बाण ने 'स्वस्ति'-शब्द का उच्चारण किया। सम्राट् ने उन्हें देखकर गम्भीर स्वर से पूछा—"क्या यही वह बाण है?" द्वारपाल ने निवेदन किया—"देव की जैसी आज्ञा हो। यह वही है।" सम्राट् ने समीपस्थ मालव-राज के पुत्र से कहा—"यह महान् भुजङ्ग है।" रा[illegible] का वचन न समझकर वह राजपुत्र चुप रहा और रा[illegible]-मण्डली भी चुप बैठी रही। एक क्षण के बाद बाण ने निवेदन किया—"देव, आप क्यों ऐसी आज्ञा दे रहे हैं? जान पड़ता है, जैसे आप सत्य को नहीं जानते हैं, मुझ पर विश्वास नहीं कर रहे हैं, पर-वश हैं, लोक-वृत्तान्त से अनभिज्ञ हैं। लोगों का स्वभाव और प्रवाद स्वेच्छाचारी और विचित्र होता है; किन्तु बड़ों को तो सत्य को देखना चाहिए। आप मुझे साधारण आदमी की तरह अन्यथा न समझें। मैं ब्राह्मण हूँ और सोम-पान करनेवाले वात्स्यायनों के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। मेरे उपनयन आदि संस्कार उचित समय पर किये गये हैं। मैंने अङ्गों-सहित वेद अच्छी तरह पढ़ा है और यथा-शक्ति शास्त्र भी सुने हैं। विवाह के समय से मैं गृहस्थ हूँ। मेरी क्या भुजङ्गता है? दोनों लोकों के अविरुद्ध चपलताओं से मेरा शैशव शून्य नहीं था, इतना मैं मानता हूँ। इसके लिए मेरा हृदय पश्चात्ताप-सा कर रहा है। किन्तु इस समय सम्राट् के शासन में कौन व्यक्ति अविनय का अभिनय करने की मन से भी कल्पना कर सकता है? मनुष्यों की बात तो दूर, आपके प्रभाव से भौंरे भी मानो भीत होकर मधु पीते हैं, चक्रवाक भी प्रियाओं को अतिशय आसक्ति से लज्जित होते हैं, बन्दर भी मानो चकित हो चपलतायें करते हैं, हिंसक पशु भी मानो सदय हो मांस खाते हैं। समय पाकर स्वामी स्वयं ही मुझे जान जायँगे। इतना कहकर बाण चुप हो गये। सम्राट् भी "हम लोगों ने ऐसा सुना था" कह कर चुप हो गये। उन्होंने संभाषण, आसन-दान आदि सत्कार के बाह्य उपचारों से बाण को अनुगृहीत नहीं किया, तथापि स्नेह-भरे दृष्टि-पातों से आन्तरिक प्रीति अवश्य प्रकट की। अस्ताभिलाषी सूर्य के नीचे उतरने पर राज-मण्डली को विसर्जित कर सम्राट् ने भीतर प्रवेश किया। बाण भी निकलकर अपने निवास-स्थान को चले गये।

उन्होंने मन में सोचा—"देव हर्ष अति उदार हैं। बाल्यावस्था की मेरी अनेक चपलताओं से कुपित होने पर भी मन ही मन वे मुझसे स्नेह करते हैं। धिक्कार है मुझे, जिसका मन अपने ही दोष से अन्धा हो गया है और जो बाह्य अनादर से दुःखी होकर इस प्रकार के गुणवान् राजा के प्रति तरह तरह की चिन्तायें कर रहा है। अब सभी प्रकार से वैसा ही करूँगा, जिससे समय पाकर वे ठीक ठीक जान लेंगे।" ऐसा निश्चयकर दूसरे दिन बाण सम्राट् के शिविर से निकलकर अपने मित्रों और बन्धुओं के घर चले गये। वहाँ वे तब तक रहे जब तक सम्राट् स्वयं ही उनके स्वभाव को जानकर उनसे प्रसन्न हुए। उन्होंने राज-भवन में प्रवेश किया। सम्राट् ने उन्हें सम्मान, प्रेम, विश्वास, धन, परिहास और प्रभाव की पराकाष्ठा को पहुँचा दिया।

इसके बाद शरद्-ऋतु का आरम्भ हुआ, जब आकाश धुली तलवार की तरह निर्मल हो जाता है, सूर्य चमकता है, चन्द्रमा स्वच्छ हो जाता है, लाल, नीले और उजले कमल विकसित होते हैं, शेफालिकाओं से रातें शीतल हो जाती हैं, यूथिकाओं का परिमल फैल जाता है, खिलते हुए कुमुदों से दशों दिशायें श्वेत हो जाती हैं तथा सप्तच्छद की धूल से समीर धूसर हो जाता है। ऐसे समय में बाण अपने बन्धुओं को देखने के लिए ब्राह्मणों के निवास-स्थान अपने प्रीतिकूट को लौट गये, जहाँ प्रतिदिन वेदाभ्यास होता था, व्याख्यान और तर्क होते थे, सुभाषित काव्यालाप होते थे। राजा के समीप बेत के आसन

बैठनेवाले बाण को देखकर उसके बन्धुगण परम प्रसन्न हुए। गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल नाम के चचेरे भाइयों ने बाण से हर्ष का चरित सुनने की इच्छा प्रकट की। किन्तु सौ पुरुषों की आयु से भी हर्षचरित का अविकल वर्णन संभव न देखकर बाण उसके एक अंश का वर्णन करने को प्रस्तुत हुए। दूसरे दिन प्रातःकाल ही उन्होंने सभी बन्धुओं के सामने हर्षचरित का वर्णन करना आरम्भ किया और लगभग छः उच्छ्वासों में हर्ष के पूर्वजों का तथा उनके कतिपय कार्यों का वर्णन किया।

'हर्षचरित' के अतिरिक्त बाण की दूसरी प्रसिद्ध-कृति 'कादम्बरी' है। 'कादम्बरी' समाप्त करने के पूर्व ही वे स्वर्गवासी हो गये। उनके विद्वान् पुत्र ने इस [illegible] ग्रन्थ को पूरा किया। कहा जाता है कि कवि मयूर और मातङ्ग दिवाकर भी बाण के समकालीन थे। राजशेखर ने 'सुभाषितावली' और 'शार्ङ्गधर-पद्धति' में कहा है—"यह वाग्देवता का ही प्रभाव है कि बाण और मयूर के समान मातङ्ग दिवाकर भी श्रीहर्ष का सभासद् हुआ।" बाण किसी साधारण राजा के सभासद् नहीं थे, वरन सम्राट् हर्ष के थे, जो परोपकारी, महादानी, गुणग्राही, निरभिमान और विद्वान् थे*। बाण की मृत्यु के बाद से आज तक अनेक कवियों और काव्य-मर्मज्ञों ने बाण की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। मृत्यु के बाद उनकी जो कीर्ति-चन्द्रिका फैली वह क्षण-भंगुर नहीं प्रमाणित हुई। वह दिन-दिन बढ़ती ही गई और आज तो पृथिवी के एक बड़े भाग में व्याप्त है।

[illegible] दावान

* [illegible] राजनीति में बहुत प्रवीण हैं। मेम्बर [illegible] है कि महा-दान में दीक्षा-चीर पहनकर सम्राट् हर्ष अपने सर्वस्व को लुटा देते थे। उन्होंने दो नाटिकायें और एक नाटक लिखा था।

गुण-गायन

लेखक, पुरोहित श्री प्रतापनारायण 'कविरत्न'

ओस के बन मंजु मोती
सिंधु उसका मुँह धुलाता।
पत्र के परिधान पहना
पवन है उसको झुलाता।
नील नभ के वह मुकर में
वेष अपना देख जाती ॥१॥

छत्र मेघों का बना, गिरि
चवँर हैं उसको ढुलाते।
विहग-बंदी-वृन्द मीठी
विश्व की कविता सुनाते।
हंस-गज की चाल को भी
चाल वह चलना सिखाती ॥२॥

दिव्य कर्षण-शक्ति उसका
लोल सिंहासन बनोती।
नाचती है वह नटी फिर
और है सबको नचाती।
चाँद का दीपक जलाकर
चाँदनी उसको सुलाती।
दासियाँ रवि-रश्मियाँ बन
नित्य हैं उसको जगाती ॥३॥

मैसूर की शासन-पद्धति

लेखक, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

श्रीमती नेहरू जी मैसूर में काफ़ी समय तक रह चुकी हैं। अतएव वहाँ की शासन-पद्धति के सम्बन्ध में उन्होंने इस लेख में जो कुछ लिखा है, अपने निजी अनुभव पर लिखा है।

भारत में नये शासन-विधान के जारी हो जाने पर भी आज तक समस्त देश में उसकी आलोचना चल ही रही है। कांग्रेस ने प्रांतों में शासन स्वीकार तो कर लिया है, परन्तु संघ-शासन-सम्बन्धी विधान के विरुद्ध आन्दोलन जैसा का तैसा ही बना हुआ है। देश की सब राजनैतिक संस्थायें बड़े ज़ोर से उसका विरोध कर रही हैं। यही कारण है कि दिन दिन बीतता जाता है और अभी तक विधान का उक्त भाग अमल में नहीं आया है। इस विरोध का सबसे बड़ा कारण यह है कि इस नये विधान के अनुसार केन्द्रीय असेम्बली में रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या बहुत अधिक है और उन प्रतिनिधियों का चुनाव रियासती प्रजा के हाथ में न होकर रियासत के शासकों के हाथ में है। रियासतों के शासक यदि चाहें तो अपनी प्रजा को चुनाव का अधिकार दे सकते हैं। भारतवर्ष की ६०० से अधिक रियासतों में आज दिन तो एक भी ऐसी रियासत नहीं है, जहाँ प्रजातन्त्रात्मक शासन हो और जहाँ की प्रजा को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार हो। जब से संघ-शासन की चर्चा चली है तब से लगभग सभी बड़ी और अग्रसर रियासतों में हल-चल मच रही है और प्रजा की ओर से प्रजातन्त्रात्मक शासन की माँग बड़े ज़ोरों से जारी है। मैसूर की रियासत भारत की रियासतों में शिरोमणि है। इस माँग में भी वह सबसे आगे है और कई महीने से वहाँ इस माँग का प्रबल आन्दोलन चल रहा है। 'मैसूर-कांग्रेस' के नाम से वहाँ एक नई संस्था बनी है। 'हरिपुरा' के कांग्रेस-अधिवेशन से पहले वहाँ भारतीय कांग्रेस की एक साधारण शाखा थी, जिसकी उपशाखायें कई नगरों में भी थीं। १९३०-३१ के आन्दोलन में मैसूरवालों ने अच्छा भाग लिया था। उन्होंने ब्रिटिश-भारत में अच्छी संख्या में वालेण्टियर भेजे थे और रुपये से भी कांग्रेस की सहायता करते रहे थे। रियासतों के सम्बन्ध में कांग्रेस की तटस्थता की नीति से मैसूरवाले संतुष्ट नहीं थे। वे चाहते थे कि उनके भीतरी आन्दोलन में कांग्रेस से सहायता मिले, परन्तु इस सहायता के न मिलने से उनको बहुत निराशा थी। इसी कारण वहाँ राजनैतिक आन्दोलन बिलकुल ठंडा पड़ा था। परन्तु हरिपुरा के कांग्रेस-अधिवेशन के बाद जब यह बात बिलकुल स्पष्ट हो गई कि रियासतों के भीतरी आन्दोलन से कांग्रेस को कोई सरोकार नहीं है और जिन रियासतों की प्रजा आन्दोलन करना चाहे वह अपनी अलग संस्था बनावे और अपने भरोसे पर उसे चलावे तब मैसूरवालों में एक बारगी नई जान आ गई और उन्होंने प्रजातन्त्रात्मक-शासन की माँग का आन्दोलन प्रबलता से जारी कर दिया। अभी तक वहाँ ब्राह्मणों-अब्राह्मणों के झगड़े ने प्रजा को द्विधा में डाल रक्खा था। अब यह झगड़ा भी मिट गया है और ब्राह्मण-अब्राह्मण सबने एक साथ मिलकर 'स्वराज्य' की माँग की है।

इसी सम्बन्ध में गत मई मास में वहाँ एक बड़ी भारी दुर्घटना हो गई। स्वराजियों ने बंगलोर के पास 'विदुराश्वाथ:' नाम के एक गाँव में सभा करने का प्रबन्ध किया। १०-१२ हज़ार आदमी वहाँ इकट्ठा हुए, जिन्होंने सरकार से स्वराज्य की बड़े जोश से माँग की। स्वराजियों ने वहाँ तिरंगा झंडा भी फहरा दिया, जिसकी रियासत की ओर से मनाही थी। इसी पर गोली चल गई और बहुत से लोगों का ख़ून हुआ, जिनमें एक स्त्री भी थी। इस दुर्घटना से सारे देश में सनसनी फैल गई। सरदार पटेल मामले की जाँच को गये। किसी प्रकार सरकार और प्रजा में समझौता हो गया। आजकल इस मामले की जाँच के लिए एक स्वतन्त्र कमिटी बैठी है; जो गवाहियाँ ले रही है और शीघ्र ही इस सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट पेश करेगी।

सरकार की ओर से नया प्रजातन्त्रात्मक शासन-विधान बनाने के लिए एक कमिटी नियुक्त हुई है, जो यह रिपोर्ट देगी कि प्रजा की माँग को पूरा करने के लिए शासन-पद्धति में क्या परिवर्तन होने चाहिए। स्वराजियों ने पहले इस कमिटी का बहिष्कार किया था, परन्तु समझौते के बाद से सहयोग कर रहे हैं।

यहाँ यह बताना उचित ही होगा कि आजकल मैसूर की शासन-पद्धति किस ढङ्ग की है।

मैसूर-राज्य की वार्षिक आय लगभग साढ़े तीन करोड़ की है। भूमिकर, जंगलात, चुंगी आदि के सिवा आमदनी का एक बहुत बड़ा ज़रिया खानें हैं। विशेष करके इस रियासत में सोने की बहुत बड़ी खान है। इस खान का ठेका एक योरपीय कम्पनी को मिला हुआ है। इसकी वार्षिक आय २७ और २८ लाख रुपया के अन्दर है।

सरकार आय बढ़ाने के उपाय रात-दिन किया करती है। भारत भर में मैसूर-सरकार ही एक ऐसी सरकार है जिसने अपने अधीन कल-कारख़ानों से माल की तैयारी का काम शुरू किया है। रेशम का कारख़ाना, लोहे का कारख़ाना, चीनी के सामान का कारख़ाना, मोज़े-बनियाइन वग़ैरह बनाने के कारख़ाने सरकार ने खोल रक्खे हैं। इनके सिवा हाथ से भाँति भाँति का माल तैयार करने का काम भी राज्य में दिन-दिन बढ़ता जाता है। मैसूर नगर में एक बड़ी भारी सरकारी दूकान है, जहाँ वहाँ के बने सारे माल के बेचने का प्रबन्ध किया गया है। यहाँ का बहुत माल राज्य के बाहर जाता है। मशीन के और हाथ के बने माल की बिक्री के लिए भारत के बड़े बड़े नगरों में सरकारी केन्द्र हैं। सारांश यह कि इस विषय में मैसूर-सरकार की नीति बहुत अग्रसर है। परन्तु इस सीग़े से सब मिलाकर सरकार को बहुत अधिक आमदनी नहीं होती। भद्रावती के लोहे के कारख़ाने में तो बहुत-सा रुपया फँस भी गया है, परन्तु अब इस विभाग की भी दिन दिन उन्नति होती जाती है।

राजमहल और महाराज के ख़र्च के वास्ते अलग रुपया निश्चित रहता है, परन्तु राजमहल का ख़र्च सरकारी खाते में बहुधा पड़ जाया करता है, जिससे निश्चित से अधिक रुपया महल के लिए ख़र्च हो जाना नित्य की बात है। महाराज के ख़र्च के लिए २६ लाख १० हज़ार रुपया वार्षिक नियत है। ५१ वर्ष हुए, १८८७ में २५० मेम्बरों की एक प्रतिनिधि-सभा बनाई गई थी। इसमें केवल ३५ मेम्बर सरकार-द्वारा नियुक्त किये जाते हैं, शेष सब चुने हुए होते हैं। सरकारी ओहदेदार और अमलदार सभा में आते हैं, परन्तु वोट देने का अधिकार नहीं रखते। यह सभा केवल जनता की राय मालूम करने के वास्ते है। इसके किसी भी फ़ैसले पर चलने के लिए सरकार बाधित नहीं है। वर्ष में दो बार मेम्बर आकर अपने दिलों का ग़ुबार निकाल जाते हैं, सरकार को और विशेष कर दीवान साहब को बहुत खरी-खोटी सुनाते हैं। वहाँ के दीवान सर इस्माइल मिर्ज़ा राजनीति में बहुत प्रवीण हैं। मेम्बर कितनी ही तेज़ी से बातें करें, कैसी भी कड़ी बात कहें, वे किसी को रोकते टोकते नहीं और उनकी सब बातें हँस हँसकर सुनते रहते हैं। करते वही हैं जो उनके मन में आता है। इस प्रतिनिधि-सभा के सिवा एक कौंसिल भी है, जो १९०७ में बनी थी। इसमें ५० मेम्बर हैं, जिनमें से २४ सर्वसाधारण के प्रतिनिधि और शेष सरकारी अफ़सर और सरकारी नामज़द मेम्बर हैं। इस कौंसिल में क़ानून बनते हैं, बजट पर बहस होती है, प्रस्ताव पास होते हैं, परन्तु यहाँ भी सच्चा अधिकार बहुत कम है। सरकार इस कौंसिल की भी सब बातें मानने के लिए मजबूर नहीं है।

इस सबसे स्पष्ट है कि नाम को कौंसिल और असेम्बली होने पर भी प्रजा को वास्तविक अधिकार कुछ भी नहीं है। इसी लिए तो वहाँ की शिक्षित प्रजा अब अपने अधिकार लेने के लिए तुल गई है।

परन्तु इतना कहना ही होगा कि यद्यपि मैसूर-सरकार निरंकुश है, तो भी ज़ालिम नहीं है और प्रजा के हित के दृष्टि-कोण से सब काम करती है।

वहाँ की पुलीस किस ढंग से काम करती है, इसका एक दृष्टान्त पाठकों के मनोरञ्जनार्थ नीचे लिखती हूँ।

कृष्ण-जयन्ती के दिन श्री कृष्ण भगवान् का जुलूस निकलनेवाला था। जुलूस को देखने के लिए बहुत भीड़ जमा थी। पुलिस प्रबन्ध के लिए मौजूद थी। सब लोग ढङ्ग से आगे-पीछे बैठे हुए थे कि एक स्त्री जो वस्त्राभूषण से खाते-पीते घराने की देख पड़ती थी, दर्शकों के सामने जाकर खड़ी हो गई। पुलिसवाले ने आकर कहा कि 'अम्मा बैठ जाओ। अम्मा नहीं बैठीं। पुलिसवाला टालकर

चला गया। परन्तु फिर आकर विनती की कि "अम्मा, सरकारी हुक्म है। पीछेवालों को कुछ दिखाता नहीं है। आप बैठ जायँ।" परन्तु बार बार प्रार्थना करने पर भी अम्मा किसी प्रकार नहीं बैठीं और पुलिसवाले को हार माननी पड़ी। यदि ब्रिटिश भारत में कहीं ऐसा होता तो पहले तो किसी स्त्री को इतना साहस ही न होता कि पुलिस की आज्ञा टाले, फिर यदि ऐसा होता भी तो पुलिसवाले को इतनी सहनशीलता कहाँ होती कि वह इतनी नम्रता से समझाने पर भी अपनी हार मान लेता। वहाँ मैंने देखा है कि गाड़ी-टाँगा चलानेवाले कोई भी पुलिसवालों से नहीं डरते। इतने पर भी वहाँ पुलिसवालों का व्यवहार बहुत सभ्य रहता है।

जहाँ शासक और शासित दोनों इतने उदार और शिक्षित हों, वहाँ दोनों में अवश्य समझौता हो जाना चाहिए। यह देख कर कि प्रजा अपना हक़ लेने के लिए तैयार हो गई है और शिक्षित होने के कारण शासन कर सकने के पूरे योग्य भी है, मुझे पूर्ण आशा है कि मैसूर की सरकार अपने प्रजाजनों को उनकी माँग के अनुसार प्रजातन्त्रात्मक स्वराज्य देने में अब विलम्ब न करेगी।

दुख का इतिहास

लेखिका, श्रीमती तारा पाँडे

कैसे लिखूँ बताऊँ कैसे मैं अपने दुख का इतिहास !
कब आया कब चला गया सखि, मेरे जीवन का मधुमास !

सूखे सुमन बने जब साथी तारे दुख-सुख सुनते थे
उत्तर में चुपके-चुपके ही झिल-मिल झिल-मिल करते थे।
सोचा करती थी मन ही मन बढ़ती नित जीवन की प्यास
कब आया कब चला गया सखि, मेरे जीवन का मधुमास!

यौवन की अमूल्य घड़ियाँ औ' मेरे उर का भोला प्यार
बन्दी बनकर हुए तिरस्कृत पाया शय्या का संसार
भरा वेदना से उर मेरा भग्न हुई सब संचित आश!
कब आया कब चला गया सखि, मेरे जीवन का मधुमास!

पार कर चुकी वे दिन भी तो तोड़ सकूँगी चिर-बंधन
प्रभु! मुझको वरदान यही दो सफल बने मेरा जीवन
आज नहीं दुखमय क्रन्दन है शेष रहा केवल उच्छ्वास !
कब आया कब चला गया सखि, मेरे जीवन का मधुमास!

पण्डित बाबूराव विष्णु पराडकर

लेखक, श्रीयुत शान्तिप्रिय द्विवेदी

इस बार सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन शिमला में दैनिक 'आज' के सम्मान्य सम्पादक श्रद्धेय पराडकर जी के सभापतित्व में हुआ है। सम्मेलन को सचमुच एक ऐसे सभापति की आवश्यकता थी जो आज की राष्ट्रीय परिस्थितियों के बीच में साहित्य का सामञ्जस्यपूर्ण प्रतिनिधित्व करता। सौभाग्य की बात है, पराडकर जी सम्मेलन को एक ऐसे ही उपयुक्त सभापति प्राप्त हुए। जाग्रत विचारों के दैनिक पत्र के सम्पादक होने के कारण वे देश की प्रगति के एक गम्भीर समीक्षक तो हैं ही, साथ ही जिस भाषा में वे अपने पाठकों को चिन्तन देते आये हैं उसके साहित्य की संस्कृति और प्रगति के भी वे अवगाहक हैं। अपनी सम्पादन-कुशलता से उन्होंने दैनिक 'आज' को गौरव प्रदान किया है।

पण्डित बाबूराव विष्णु पराडकर

नई पीढ़ी के अनेक नवयुवक जब कि शिशु थे, पराडकर जी उसके बहुत पूर्व से ही अपनी पत्रकार-कला की साधना में यशस्वी हो चुके थे। सन् १९२० के राष्ट्रीय आन्दोलन से ही जिन नवयुवकों का सार्वजनिक बोधोदय होता है वे पराडकर जी के कर्त्तव्य के उत्तरार्द्ध से ही परिचित हैं, इसके पूर्व हिन्दी-पत्रकार-कला की जिन खाइयों से गुज़रकर एक विज्ञापन-रहित कर्म्मयोगी की भाँति वे नई पीढ़ी के नवयुवकों के भी वरेण्य हुए, उनके जीवन का वह पूर्वार्द्ध हिन्दी-पत्रकार-कला का सृजन-काल है।

पराडकर जी का जन्म संवत् १९४० में काशी में हुआ था। वे महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। उनके स्वर्गीय पिता कारण-वश, दस वर्ष की अवस्था में, पूना से काशी चले आये थे। यहीं विद्यालाभ कर वे शास्त्री हुए। बिहार के सरकारी स्कूलों में हेडपण्डित रहे। फलतः पराडकर जी की स्कूली शिक्षा बिहार में ही हुई, विशेषतः भागलपुर में। संस्कृत की शिक्षा तो उन्हें मिली ही, इन्टरमीडियट तक उन्होंने अँगरेज़ी की भी शिक्षा प्राप्त की। छुटपन से ही पाठ्य-पुस्तकों की अपेक्षा वे बाहरी पुस्तकें अधिक पढ़ते रहे थे, विशेषतः पौराणिक ग्रन्थ।

१५ वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो गया। फिर भी उनकी शिक्षा जारी रही। १७-१८ वर्ष की अवस्था में भागलपुर से ही उन्होंने इन्टर-मीडियट पास किया। इसके बाद काशी चले आये। काशी में उन दिनों भयानक प्लेग फैला हुआ था। पिता के बिछोह के बाद माता का भी बिछोह हो गया। यही नहीं, कई बहनों का भी देहान्त हो गया। घर में बड़े कहने को पराडकर जी ही रह गये। अब जीविका का प्रश्न सामने आया। फलतः उन्होंने एक महाजन के यहाँ ट्यूशन कर लिया।

इन दिनों काशी में रहते हुए हिन्दी का अध्ययन खूब किया। इसके पूर्व हिन्दी के सम्पर्क में वे बहुत कम आये थे। छात्रावस्था में कभी-कभी सामने पड़ जाने पर 'बंगवासी' देख लिया करते थे। काशी में उनको हिन्दी के अध्ययन के लिए काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का पुस्तकालय मिला—हिन्दी का एक बृहत् क्षेत्र। उन दिनों काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के लाइब्रेरियन स्वर्गीय पंडित गोविन्द-प्रसाद शुक्ल थे। पराडकर जी के पढ़ने की प्रगति यह थी कि पुस्तकालय से जो भी पुस्तक या पुस्तकें पढ़ने को लाते, पढ़कर दूसरे दिन वापस कर देते। इस तेज़ी से पुस्तकें लेते और वापस करते देखकर पण्डित गोविन्द-

प्रसाद जी एक दिन पूछ बैठे—पुस्तकें आप पढ़ते भी हैं या यों ही वापस करने के ले जाते हैं? पराडकर जी ने हँसकर कहा—इसकी जाँच तो तभी हो सकती है जब हफ्ते के भीतर ली गई पुस्तकों में से किसी भी पुस्तक का अभिप्राय आप पूछ लें। गोविन्दप्रसाद जी ने अपने जान में एक सबसे कठिन पुस्तक का नाम लेकर उसके सम्बन्ध में उनके अध्ययन के जानना चाहा। पराडकर जी ने न केवल उसका सारांश बल्कि पुस्तक का समग्र इतिवृत्त उन्हें बतला दिया तब वे आश्चर्य में पड़ गये। उनके अध्ययन की ख़ूबी के चिर-प्रशंसक हो गये और प्रायः पराडकर जी के अध्ययन की मनोरञ्जक कहानियाँ सुनाया करते।

प्रसिद्ध पत्रकार स्वर्गीय पंडित सखाराम देउस्कर पराडकर जी के दूर के रिश्ते में मामा थे। देउस्कर जी में जहाँ अनेक बौद्धिक गुण थे, वहाँ उनमें नवयुवकों के परखने, प्रोत्साहन देने और पथ-प्रदर्शन करने का भी एक गुण था। आगे चलकर उन्हीं देउस्कर जी का सत्संग पराडकर जी के उन्नयन का साधक हुआ। देउस्कर जी पत्रकारों की उस पूर्वकाल की प्रथम पीढ़ी में थे जिसमें स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त और स्वर्गीय पंडित अमृतलाल चक्रवर्ती आदि गिने जाते हैं। इसके बाद दूसरी पीढ़ी में स्वयं पराडकर जी आदि हैं।

हाँ तो, पराडकर जी जब थर्ड क्लास (आज-कल के सातवें क्लास) में पढ़ रहे थे, शायद १८९८-९९ में, तब उन्हीं दिनों देउस्कर जी से उन्हें विचार-चिन्तन की एक प्रभावशाली प्रेरणा मिली। देउस्कर जी ने उनकी छात्रावस्था के अनुरूप ही एक प्रश्न किया—'अकबर और औरंगज़ेब में कौन श्रेष्ठ था?' उत्तर मिला—अकबर।

"क्यों?"

"हमारी पाठ्य-पुस्तक में ऐसा ही लिखा है।"

"क्यों लिखा है? कोई कारण तो दिया होगा।"

"अकबर हिन्दुओं के साथ अच्छा बर्ताव करता था, औरङ्ग़ज़ेब हिन्दुओं और उनके मन्दिरों का नाश करता था।"

"पुस्तकों में जो लिखा है, केवल उसी आधार पर सम्मति मत बनाओ, स्वयं सोचकर उसकी गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न करो। मान लो, एक आदमी तुमसे ख़ूब हँसता-बोलता है, यदा-कदा तुम्हारी खोज-ख़बर रखता है साथ ही तुम ग़ुलाम हो, इस बात की ओर से तुम्हें भुलाये रखता है। दूसरा आदमी अपने रूखे व्यवहार और मारपीट से तुम्हारी ग़ुलामी के तुम्हारी आँखों में स्पष्ट कर देता है। इन दोनों में क्या अन्तर है?"

अवश्य ही पहले की अपेक्षा दूसरा, स्थिति का आडम्बरहीन परिचायक है। इस सम्बन्ध में स्वर्गीय देउस्कर जी की धारणा यह थी कि अकबर की पालिसी ही आज की ब्रिटिश पालिसी है।

इस वार्तालाप का पराडकर जी के हृदय पर अद्भुत प्रभाव पड़ा। पुस्तकीय ज्ञान के बजाय मर्म तक पहुँचने की स्वतन्त्र दृष्टि जागरूक हुई, जो आगे चलकर उनके स्वाध्याय में बहुत सहायक हुई। बचपन से ही धार्मिक साहित्य की प्रेरणा तो उनमें थी ही, इस वार्तालाप से पहली बार उनके भीतर राजनैतिक दिलचस्पी भी जगी। देउस्कर जी ने उन्हें मराठी 'केसरी' पढ़ने का परामर्श दिया, और प्रथम बार पराडकर जी के उस पत्र का परिचय मिला।

काशी में ट्यूशन करते समय ही एक दिन 'हिन्दी-वङ्गवासी' में उन्होंने एक सहकारी सम्पादक की आवश्यकता पढ़ी। अपना आवेदन-पत्र भेज दिया। उन दिनों 'वङ्गवासी' के सम्पादक वयोवृद्ध लेखक श्री हरिकृष्ण 'जौहर' थे। जौहर जी ने 'वङ्गवासी' के लिए पराडकर जी के स्वीकार कर लिया। पराडकर जी ने जब इसकी सूचना देउस्कर जी के दी तब उन्होंने लिखा—अच्छी बात है, तुम मेरे ही यहाँ आकर रहना। फलतः सन् १९०६ में दुर्गापूजा की छुट्टियों के बाद वे 'वङ्गवासी' में चले गये। काशी से कलकत्ता जाकर पराडकर जी ने कार्यक्षेत्र में प्रवेश किया। वहाँ उन्हें देउस्कर जी के ज्ञान-साहचर्य का ख़ूब अवसर मिला। यही नहीं, देउस्कर जी उनके सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भिक विकास-काल के श्रेष्ठतम शिक्षक हो गये।

देउस्कर जी उन दिनों बँगला में प्रकाशित होनेवाले 'हितवादी' के सम्पादक थे। 'हितवादी' किस कैंड़े का पत्र रहा होगा, यह देउस्कर जी के व्यक्तित्व से स्पष्ट है। वे स्वयं तो महाराष्ट्र थे, किन्तु मराठी और हिन्दी की अपेक्षा बँगला के ही पत्रकार और सुलेखक थे। बङ्गला के स्वदेशी-आन्दोलन के समय उन्होंने बँगला में 'देशेर कथा' नाम की जो पुस्तक लिखी थी और जिसका हिन्दी-अनुवाद 'देश की बात' के नाम से हो चुका है, बड़ी ही लोकप्रिय पुस्तक है।

देउस्कर जी के ज्ञान-साहचर्य में रहते हुए पराडकर जी हिन्दी-वङ्गवासी में काम तो करते थे, किन्तु वहाँ अधिक समय तक नहीं रह सके। कहाँ तो उनमें स्वतन्त्र विचारों का स्फुरण हो रहा था, उधर हिन्दी-समाचार-पत्रों का मुख्य विषय धार्मिक ऊहापोह ही था। पराडकर जी ने स्वयं अपने एक भाषण में प्रसङ्ग-वश कहा है—"हमारे लेखों का मुख्य विषय था सनातन-धर्म और आर्य-समाज का झगड़ा। हिन्दी-पत्रों का शायद ही कोई ऐसा अङ्क होता होगा जिसमें इस झगड़े की प्रतिध्वनि आपको न सुनाई देती रही हो। इसके लिए यह आवश्यक था कि हम सनातन-धर्म के अच्छे-अच्छे व्याख्याताओं के सन्तुष्ट रक्खें और स्वयं भी धर्म का ककहरा जानें। इस झगड़े पर एक और भी रङ्ग चढ़ गया जब सनातन-धर्म के प्रचारकों में ही दो दल हो गये। एक दल था स्वर्गीय व्याख्यान-वाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्मा और पूज्य पण्डित मदनमोहन मालवीय का तथा दूसरा पक्ष था भारत-धर्म-महामण्डल का। इस दलबन्दी से हिन्दी के समाचार-पत्रों के बहुत दिनों तक मसाला मिलता रहा।"

बँगला 'हितवादी' के साथ हिन्दी 'हितवार्त्ता' प्रकाशित होती थी। 'हिन्दी-वङ्गवासी' से अलग होने पर पराडकर जी १९०७ में 'हितवार्त्ता' के सम्पादक हो गये। 'हितवार्त्ता' में उन्हें विशेष परिश्रम करना पड़ा। उन्हें उसके सब काम अकेले करने पड़ते थे। 'हितवार्त्ता' में आने पर देउस्कर जी ने कहा—देखो तुम बँगला 'हितवादी' का अनुकरण मत करना। तुम स्वयं अपने विचार लिखना, केवल मुझे सुना भर दिया करना। देउस्कर जी स्वयं हिन्दी के ज्ञाता तो नहीं थे, अतएव वे सामग्री-सम्बन्धी परामर्श दिया करते थे। पराडकर जी के भाषा-सम्बन्धी साहित्यिक साहचर्य अपने समय के दो धुरन्धर विद्वानों के सत्सङ्ग में प्राप्त हुआ। वे थे स्वर्गीय पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र और स्वर्गीय पण्डित गोविन्दनारायण मिश्र।

इन्हीं दिनों की भाषा तथा साहित्य-सम्बन्धी विरल समालोचनाओं का निर्देश हिन्दी-पत्रकार-कला के एक संक्षिप्त सिंहावलोकन में पराडकर जी ने इस प्रकार किया है—"धार्मिक चर्चा के सिवा इन दिनों कभी-कभी साहित्यिक चर्चा भी हो जाया करती थी। व्याकरण की 'अनस्थिरता' और 'सतसई-संहार' उन्हीं दिनों के लेख थे। 'विभक्ति-विचार' और 'प्राकृत-परिचय' जैसे लेख उन्हीं दिनों प्रकाशित हुए। यद्यपि सच्ची समालोचना का उदय उस समय तक नहीं हुआ था, फिर भी भाषा-शुद्धि की ओर आज से कहीं अधिक ध्यान दिया जाता था।"

इधर युग के साहित्यिक शैशव में ये साहित्यिक आन्दोलन थे, उधर राजनैतिक आन्दोलन इनकी अपेक्षा द्रुतगति से अग्रसर हो रहा था। बंगाल का स्वदेशी-आन्दोलन अपने यौवन पर था। किन्तु राजनैतिक विषयों की चर्चा शुरू में हिन्दी-पत्रों में कम होती थी। स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने अपने 'शिवशम्भु के चिट्ठे' के द्वारा विनोद-शैली में लार्ड कर्ज़न की टीका करते हुए राजनैतिक साहित्य का श्रीगणेश किया था और वह आज भी साहित्यिक छटा की दृष्टि से पढ़ने की वस्तु है। किन्तु राष्ट्रीय चिन्तन गम्भीर रूप में हिन्दी-पत्रों में न आ पाया था। सामाजिक विषयों पर भी विचार बहुत कम होता था। हिन्दी के प्रायः सभी पत्र सुधारों के विरोधी थे। 'भारतमित्र' कुछ उदार अवश्य था, इसका कारण श्री बालमुकुन्द गुप्त थे।

राजनीति पर अधिक विचार बंगाल के स्वदेशी-आन्दोलन के उपलक्ष में 'हितवार्ता' में होने लगा, जिसमें पराडकर जी काम करते थे।

हाँ तो, स्वदेशी आन्दोलन के समय से हिन्दी-पत्र राजनीति की ओर झुके और उनमें अधिकतर उग्रमत के थे। पराडकर जी स्वयं भी अपने उस समय के राजनैतिक विश्वासों के अनुसार उग्रमत के थे। यही नहीं, वे क्रान्तिकारी पार्टी में भी शामिल हो गये थे, यद्यपि 'आज' के गम्भीर अहिंसक राजनैतिक विचारों को देखते उनके पूर्व के राजनीतिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उन्हीं दिनों स्वदेशी-आन्दोलन के उत्साह में कलकत्ते में 'बंगाल नेशनल कालेज' खुला। पराडकर जी उसमें हिन्दी के अध्यापक हो गये।

सन् १९१० में जब किंग जार्ज का भारत-आगमन होने को था तब उनके समाचार देने के लिए हिन्दी-पत्रों में एक होड़ हो गई और 'भारतमित्र' साप्ताहिक से दैनिक हो गया। दैनिक का अच्छा स्वागत पाकर वह स्थायी रूप

से दैनिक कर दिया गया। 'भारतमित्र' जब दैनिक हुआ तब उसका सम्पादन स्वर्गीय पाँचकौड़ी बनर्जी (बँगला के प्रसिद्ध पत्रकार और लेखक तथा 'नायक' नामक पत्र के प्रवर्त्तक) के हाथ में आया। वे हिन्दी नहीं जानते थे, अतएव मैटर बँगला में ही डिक्टेट कराते और स्वर्गीय पण्डित वासुदेव मिश्र (स्वर्गीय पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र के छोटे भाई) उसका हिन्दी में रूपान्तर करते। परन्तु इस प्रकार सम्पादन-कार्य सुसम्पन्न नहीं हो पाता था। दिक़्क़त होने के कारण पराडकर जी 'हितवार्त्ता' से 'भारतमित्र' में बुलाये गये।

'भारतमित्र' में पराडकर जी ने ५½ वर्ष तक काम किया। और सबसे उल्लेखनीय घटना यह है कि उसी के सम्पादन-काल में, १९१६ में क्रान्तिकारी पार्टी से सम्बद्ध होने के कारण, वे गिरफ़्तार हो गये। १९२० तक वे बन्दी रहे। इन चार सालों में दो साल जेल में रहे, दो साल बंगाल के गाँवों में नज़रबन्द। इस बन्दी-जीवन में भी उनका अध्ययन चलता रहा, मुख्यतः आध्यात्मिक चिन्तन।

सन् १९२० में पराडकर जी कारा-मुक्त हुए। इस बीच पत्रकारों की दुनिया कहाँ-से-कहाँ चली गई, इसे हम पराडकर जी के ही शब्दों में यहाँ अंकित करते हैं—

"तब से सन् १९२० ई० तक हिन्दी-पत्रों में राजनीति की चर्चा अधिकाधिक होती गई, यहाँ तक कि वे प्रधानतः राजनैतिक बन गये। महासमर (१९१४-१७) की क्रान्ति में सनातन-धर्म्म और आर्य्यसमाज का झगड़ा लुप्त हो गया और पत्रों पर राजनैतिक रंग चढ़ गया। हाँ, धार्म्मिक झगड़े ने साम्प्रदायिकता का भीषण रूप धारण किया। राजनैतिक भावनाओं के साथ-साथ हिन्दू मुस्लिम प्रश्न भी तीव्र होता गया और हिन्दी-समाचार-पत्र इस झगड़े में केवल उत्साह से ही नहीं, वरञ्च तीव्रता के साथ भाग लेने लगे। महात्मा गांधी के हरिजनोद्धार-आन्दोलन से धार्म्मिक झगड़ों को सामाजिक रूप मिल गया, जिसकी प्रतिध्वनि भारतीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं में भी होने लगी और आज भी हो रही है। आज हिन्दी के पत्र राजनैतिक, साम्प्रदायिक और सामाजिक विषयों की चर्चा विशेषतया किया करते हैं, जिनमें राजनीति को प्राधान्य है। साम्यवाद और समाजवाद के उदय और प्रचार से तथा कृषकों की समस्या से इन विषयों की चर्चा केवल सैद्धान्तिक न रहकर वास्तविक हो गई है और देश भर में एक नई भावना उत्पन्न हो गई है, जिसकी परिणति क्रान्ति में होगी अथवा सुधार में, इसका उत्तर भविष्य ही देगा।"

पराडकर जी पत्रकार-जगत् के तीस-बत्तीस वर्षों के एक जीवित इतिहास हैं। इतने वर्षों का परिपक्व अनुभव आज उनके विचारों और कार्य्यों में मूर्त्तिमान है, नई-से-नई पीढ़ी के लिए वे एक पूर्ण-दृष्टान्त हैं। उन्होंने हिन्दी के पत्रकार-जीवन की पहली पीढ़ी तो देखी ही है, साथ ही स्वयं अपनी पीढ़ी में वे एक ऐसे श्रेष्ठ पूर्वज भी हैं जिसने आज की पीढ़ियों का निर्म्माण किया है। और यह प्रसन्नता की बात है कि आज की तरुण पीढ़ी को वे अपनी आँखों देख रहे हैं। इसमें हमारा लाभ यह है कि समय-असमय में हम अपनी कठिन मञ्ज़िलों में उनका श्रेष्ठतम सहयोग और निर्देश प्राप्त कर सकते हैं।

सन् १९२० में कारा-मुक्त होने पर पराडकर जी काशी आये। 'भारतमित्र' ने उन्हें फिर आमन्त्रित किया और इसकी सूचना भी पाठकों को दे दी। इधर काशी चाहती थी कि वे काशी में ही रहें। श्रद्धेय बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने पराडकर जी से अनुरोध किया कि वे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के प्रकाशन-विभाग का सञ्चालन करें। 'ज्ञानमण्डल' के अधिष्ठाता स्वनामधन्य बाबू शिवप्रसाद गुप्त का परम आग्रह था कि वे दैनिक 'आज' का सम्पादन करें। पराडकर जी ने उनके स्नेहाग्रह को स्वीकार कर लिया, और वे 'आज' के जन्म से अब तक उसके विधायक हैं। पराडकर जी के सन् १९२० से अब तक के कार्य्य-कलाप पर विचार करना दैनिक 'आज' के महत्त्व को ही स्पष्ट करना होगा, जिससे हिन्दी-भाषी जनता अनभिज्ञ नहीं है।

पराडकर जी सहृदय और स्नेह-परायण व्यक्ति हैं। स्वार्थ त्याग उनका बड़ा भारी गुण है, आत्मलिप्सा के लिए वे दूसरों को कष्ट में नहीं देख सकते। खादी की सादी पोशाक में उनके व्यक्तित्व की एक गरिमा-मण्डित शोभा है। उनके मुख-मण्डल पर एक शान्त हार्दिक-सौन्दर्य्य अपनी सर्मविभक्तता में सम्मान उत्पन्न करता है। वयोधिक होकर भी वे विचारों में तरुण और स्फूर्त्तिशील हैं। बातचीत में अकृत्रिम, सामाजिकता में सुसंस्कृत, अन्तरात्मा की समाधि में डूबे हुए बाहर से हलचल-शून्य।

फ़ौजी ख़र्च की समस्

लेखक, श्रीयुत अमरनारायण अग्रवाल

शांति तो संसार के सभी देशों का उद्देश्य है। देश का क्या, प्रत्येक व्यक्ति तक हर एक काम शांति और संतोष के लिए करता है। लेकिन यदि ऐसा है तो फिर तलवारों की झंकार की क्या ज़रूरत? बंदूक़ों की, बारूद की, तोप के गोलों के भीषण नाद की क्या आवश्यकता? भला ऐसा कौन-सा देश होगा जो ख़ून की नदियों में आनन्द ले, जो मनुष्यों के निर्दय संहार को गौरव की वस्तु समझे या जो संसार की भव्य अट्टालिकाओं, विशाल भवनों को, जिनकी एक एक ईंट मनुष्यों के पसीने से चुनी गई हैं, मिट्टी में मिलाकर वाह वाह लूटना चाहे। लेकिन फिर भी सन् १९१४ में योरप की भूमि पर ख़ून की नदी क्यों बहाई गई? अभी उसी दिन एबीसीनिया के ऊपर बम-वर्षा क्यों की गई? और आज चीन का गला क्यों दबाया जा रहा है? उत्तर केवल एक है—शांति के लिए। बात ज़रा उल्टी सी है। असलियत यह है कि जर्मनी, जापान और इटली—ये तीनों लड़ाई की जड़ समझे जाते हैं। ये देश छोटे छोटे हैं, पर जन-संख्या इन देशों की काफ़ी से ज़्यादा है और बुरी तरह बढ़ रही है। जापान में हर साल ९ लाख व्यक्ति आबादी में बढ़ जाते हैं। अब ये आदमी रहें कहाँ, खायँ क्या? न रहने के लिए स्थान है, न खाने के लिए अन्न। ऐसी दशा में आवश्यकता उपनिवेशों की पड़ती है। जर्मनी के पास उपनिवेश थे, और बहुत काफ़ी थे। पर वर्सेलीज़ की सन्धि के मुताबिक़ वे सब उससे छीन लिये गये। जापान के पास भी उपनिवेश बहुत कम हैं। क़रीब १०० साल तक तो वह संसार से बिलकुल अलग ही रहा। न कोई जापानी जापान से बाहर जा सकता था और न कोई विदेशी जहाज़ ही वहाँ आ सकता था। पर अमरीका की तोपों ने उसकी निद्रा भंग की और उसे संसार से सम्बन्ध

लिए अधिक भाग व्यय करना
स्मिथ के स्मरणीय शब्दों
ने से अधिक ज़रूरी
हमेशा लुट जाने
चति को भारी

क़ायम करने को बाध्य किय... बाद जब जापान को उपनिवेशों की आवश्यकता हुई और उसने संसार के सब देशों की तरफ़ दृष्टि डाली तब उसे पता चला कि जब वह अपने 'एकान्त-वास' में विस्मृत था तब अन्य देशों ने संसार के उपनिवेशों पर क़ब्ज़ा कर लिया। ऐसी दशा में वह अब क्या करे! परन्तु उसके निवासियों को चाहिए शांति और संतोष, खाना-कपड़ा और रहने को स्थान। उपाय केवल एक है—जो कमज़ोर मुल्क हैं उनको जीतकर वहाँ बसा जाय और खाना पैदा किया जाय। देश की भीतरी शांति के लिए संसार की शांति भंग करना इन देशों को प्रिय है—बल्कि यह कहना चाहिए, ज़रूरी है। आज-कल प्रत्येक बात में 'देश का भला' वाला पहलू सदा सामने रहता है। जिस प्रकार कि वर्तमान राजनीति में 'व्यक्ति' का कोई मूल्य नहीं रह गया है, उसी प्रकार 'संसार का भला' वाला पहलू भी आग में जलकर ख़ाक हो गया है। "बस, युद्ध ही शांति देगा। इसलिए लड़ने की तैयारी करो। हथियार बनाओ। नये नये प्रकार के नाशकारी अस्त्र-शस्त्रों की खोज करो। सेना-सम्बन्धी ख़र्च की कुछ परवा नहीं"—केवल यही इन देशों का उद्देश्य मालूम पड़ता है।

यह तो हुई छोटे छोटे देशों की बात। दूसरे कुछ देश बड़े बड़े हैं; स्वयं नहीं तो उपनिवेश मिलाकर तो बड़े ही, जैसे इँग्लेंड। ऐसे बड़े देशों ने समझ लिया है कि संसार के जो जो उपनिवेश उन्हें मिलने थे वे मिल चुके, जो उन्हें जीतना था वह सब वे जीत चुके, अब संसार में शांति होनी चाहिए। यदि लड़ाई हुई तो शायद उनके उपनिवेश उनसे छिन जायँ। इसलिए वे भरे पेट पर हाथ फेर-फेरकर और डकारें ले-लेकर कहते हैं—"भाई, शांत रहो। सेना-सम्बन्धी ख़र्च कम कर दो। निःशस्त्रीकरण

नीति को अपनाओ।" लेकिन वे स्वयं सेना-सम्बन्धी ख़र्च बढ़ाते चले जाते हैं, क्योंकि शायद उनके प्रतिद्वन्द्वी कभी उन्हीं पर न चढ़ बैठें। इस प्रकार कुछ देश शांति प्राप्त करने के लिए और कुछ शांति की रक्षा करने के लिए सेना पर ख़ूब जी खोलकर ख़र्च कर रहे हैं। संसार के मुख्य मुख्य देशों का फ़ौजी ख़र्च इस प्रकार है*—

संयुक्त राष्ट्र (अमरीका)		४,४५३	मिलियन	स्वर्ण-फ़्रैंक
ग्रेट-ब्रिटेन	...	२,९००	,,	,,
रूस	...	२,४४०	,,	,,
फ़्रांस	...	२,२८६	,,	,,
इटली	...	१,३३३	,,	,,
जापान	...	१,२१५	,,	,,
हिंदुस्तान	...	१,०६९	,,	,,
जर्मनी	...	९४२	,,	,,
शेष अँगरेज़ साम्राज्य		३७०	,,	,,

ऊपर के आँकड़ों से स्पष्ट है कि शस्त्रीकरण की दौड़ में हिन्दुस्तान पीछे नहीं है। संसार के बड़े बड़े देशों में सेना-सम्बन्धी ख़र्च के मामले में उसका सातवाँ नम्बर है। वह सेना पर जो ख़र्च कर रहा है वह सारे ब्रिटिश साम्राज्य (ग्रेट ब्रिटेन को छोड़कर) के ख़र्च से दुगुने से लेकर तिगुना तक है।

हिन्दुस्तान की केन्द्रीय सरकार अपनी कुल आमदनी का ६२½% भाग सेना पर ख़र्च कर देती है। फ़ौजी ख़र्च और सरकारी आमदनी में इतना अधिक अनुपात अन्य किसी देश में ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा†। यदि केन्द्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों की आमदनी को मिलाकर यह अनुपात देखा जाय तो भी यह ३१½% आता है, जो बहुत अधिक है। ऐसी दशा में निस्सन्देह सरकार की माली हालत में सेना-सम्बन्धी ख़र्च कुल सरकारी ख़र्च पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

यह तो चाँदनी की तरह स्पष्ट है कि इतना अधिक ख़र्च देश के लिए अहितकर है। जो ख़र्च सेना पर किया जाता है वह उसी प्रकार नष्ट होता है जैसे कोई अपना रुपया पानी में फेंक दे। लेकिन इतने अधिक ख़र्च का कुछ लाभ भी हो सकता है। और यदि ख़र्च से हमें फ़ायदा ज़्यादा है और नुक़सान कम तो फिर हमें रोने-झींकने की कोई गुंजाइश नहीं। तो पहले हम यह देख लें कि इस ख़र्च से हमें लाभ कितना है। यह समस्या हमें इस प्रश्न पर ले आती है कि भारत इतना ख़र्च क्यों करता है। यदि भारत अपनी रक्षा के लिए या अन्य देशों पर विजय प्राप्त करने के लिए इतना अधिक ख़र्च करता होता तो बात कुछ समझ में आ सकती थी। लेकिन यह सभी जानते हैं कि हमारा ऐसा कोई उद्देश्य नहीं है। यह सच है कि हमें अपने देश की रक्षा करनी है और उसके लिए सेना रखनी पड़ेगी, लेकिन देश के विचारवान् पुरुषों का मत है कि हमें इतनी अधिक सेना की आवश्यकता नहीं और वर्तमान सेना का रूप जो बहुत ख़र्चीला है, बिलकुल व्यर्थ है। यह तो है भारतवर्ष का दृष्टि-कोण। लेकिन सरकार इस समस्या को किसी दूसरी नज़र से ही देखती है। भारतीय सेना का वर्तमान रूप भारत की ही रक्षा करना नहीं है, बल्कि ब्रिटिश प्रभुत्व की रक्षा करना है—अँगरेज़ी राज्य की जड़ भारतवर्ष में और संसार में जमाये रखना है। इसलिए सरकार कहती है कि इतना ख़र्च करना हिन्दुस्तान के लाभ के लिए है, और देश की रक्षा के लिए नितान्त ज़रूरी है। बस, यही असलियत है। यही सरकार और देशवासियों में मतभेद का कारण है। सरकार ने इस ख़र्च को शुरू से ही, कम से कम १८५७ की क्रान्ति के पश्चात् से, काफ़ी महत्त्व दिया है और इस पर अपना पूरा पूरा अख़्तियार रक्खा है। नये शासन-विधान के अनुसार सेना के ख़र्च पर देश के प्रतिनिधि चूँ भी नहीं कर सकते। और यदि उन्हें अपनी इच्छा प्रकट करने की आज्ञा दे भी दी गई तो उनकी कोई सुनेगा नहीं। उनकी आवाज़ सुनसान जंगल और कन्दराओं में घोषित किये गये शब्दों की तरह होगी, जो बिना किसी परिणाम के वातावरण में लय हो जाते हैं। कुत्ते तो भूँकते ही रहते हैं; उनके लिए कारवाँ क्यों रोका जाय? सरकार ने तो यही सोच रक्खा है।

आगे दिये हुए आँकड़ों से पता चलता है कि हमारा सेना-सम्बन्धी ख़र्च बराबर बढ़ता ही रहा है—

* पी० जैकाबसन—आर्मामेंट्स एक्सपेंडीचर आफ़ दि वर्ल्ड।

† देखिए लेटन रिपोर्ट, पृष्ठ २१६

भारत का सेना-सम्बन्धी ख़र्च

साल	करोड़ रुपये	साल	करोड़ रुपये
१८७५	२४	१९२०-२१	६९
१८९५	३०	१९२७-२८	५५
१९१३	३०	१९२९-३०	५०
१९१७-१८	४४	१९३०-३१	५५
१९१८-१९	६७	१९३१-३२	५५
		१९३७-३८*	४४½

(बजट का अनुमान)

१९१३ तक ख़र्च केवल ३० करोड़ रुपये ही था। लेकिन महायुद्ध में और महायुद्ध के पश्चात् ख़र्च में काफ़ी वृद्धि हुई। १९१७-१८ में यह ख़र्च ४४ करोड़ हो गया, और १९१८-१६ में ६७ करोड़! सन् १९२०-२१ में तो यह बढ़कर ६६ करोड़ तक पहुँच गया! लेकिन सन् १९२२-२३ में इंचकेप-कमिटी बैठी। इस कमिटी ने इस बात की राय दी कि भारतवर्ष का फ़ौजी ख़र्च घटाकर फ़ौरन ५८ करोड़ कर दिया जाय। कमिटी ने इस बात पर भी ज़ोर डाला कि सरकार को इतनी कमी से संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिए, बल्कि इस बात की चेष्टा करते रहना चाहिए कि जहाँ भी सम्भव हो, इस ख़र्च में काट-छाँट की जाय जब तक कि यह ख़र्च ५० करोड़ तक न घट जाय। कमिटी की राय को सरकार ने मान लिया। इस कारण १९२७-२८ में ख़र्च घटकर ५५ करोड़ हो गया और १९२९-३० में तो ठीक ५० करोड़ तक घट गया। लेकिन सेना के यंत्रीकरण के प्रोग्राम के अपनाने के कारण यह ख़र्च फिर बढ़ गया। इसके बाद आर्मी रिट्रेंचमेंट कमिटी फिर बैठाई गई। इस कमिटी की सिफ़ारिश के मुताबिक़ सेना का ख़र्च घटाकर ४४½ करोड़ रुपया कर दिया गया है†।

कुछ विद्वानों का मत है कि प्रतिशत ख़र्चवाली दलील से यह साबित नहीं किया जा सकता कि हिन्दुस्तान का सेना-व्यय ज़रूरत से ज़्यादा है। अन्य देशों में सरकारी आमदनी का कम भाग (या कम प्रतिशत) फ़ौज पर ख़र्च होता हो; पर भारतवर्ष के लिए अधिक भाग व्यय करना आवश्यक हो सकता है। एडम स्मिथ के स्मरणीय शब्दों में 'देश की रक्षा देश के धनी होने से अधिक ज़रूरी है'। यदि देश सुरक्षित नहीं होगा, यदि हमेशा लुट जाने का, लड़ाई का भय रहेगा, तो आर्थिक उन्नति को भारी धक्का लगेगा। सेना का ख़र्च प्रत्येक देश की ख़ास-ख़ास दशाओं पर निर्भर होता है जैसे कि देश के वैरियों की शक्ति और उनके विचार, देश की प्राकृतिक सीमा की संरक्षता और अभेद्यता इत्यादि। इसलिए यदि कोई देश अपनी आमदनी का अधिक हिस्सा सेना पर व्यय कर रहा है तो उसका ऐसा करना केवल इसी लिए नाजायज़ नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि अन्य देश इससे कम ख़र्च कर रहे हैं। बात ठीक भी है। लेकिन हमको यह ध्यान में रखना चाहिए कि हमेशा देश की रक्षा को ही सामने रखना और उसके लिए बड़े से बड़ा बलिदान करते रहना, ज़िन्दगी भर भूखों मरना और नंगे रहना, और सारे देश को फ़क़ीरों की बस्ती बना देना भी उचित नहीं। हमारा देश ग़रीब है। इसलिए हम अपनी सेना-शक्ति इतनी मज़बूत नहीं बना सकते कि हमें किसी विदेश का डर ही न रहे। असली सवाल रुपये का है। आख़िर ग़रीबों की हड्डियों में से कितना ख़ून चूसा जाय? उनकी मामूली आमदनी कहाँ तक कम की जाय? यदि हम चाहते हैं कि देश के मनुष्य ज़िन्दा रहें और कुछ सुख को समझें और भोगें तो यह ज़रूरी है कि उन पर से सेना-सम्बन्धी ख़र्च का बोझ हलका किया जाय।

फिर जैसा कि साइमन-कमीशन ने लिखा है कि—हिन्दुस्तान में सेना-व्यय का बोझ इसलिए और भारी प्रतीत होता है क्योंकि भारतीय सेना में विदेशी अफ़सरों और सिपाहियों का अंश बहुत अधिक है। ३ लाख सिपाहियों में क़रीब १ लाख अँगरेज़ सिपाही हैं। अफ़सर तो अधिकतर अँगरेज़ ही हैं। एक अँगरेज़ सिपाही पर का ख़र्च हिन्दुस्तानी सिपाही पर के ख़र्च से तिगुना अधिक बैठता है। इसके अलावा अँगरेज़ सिपाही केवल १० साल तक नौकरी करता है और १० साल के बाद पेंशन का हक़दार हो जाता है। सबसे अधिक मज़े की बात यह है कि उसे पेंशन तो मिलती है हिन्दुस्तान से, पर वह इँगलैंड की स्थायी सेना का सिपाही बनकर रहता है!

* १९३८-३९ में ख़र्च और बढ़ गया है।

† जी० एम० जी० ओगिलवी, सेना-मंत्री, का असेम्बली में भाषण।

ऊपरवाली विलायती सिपाही के ख़र्च की मिसाल से हमें पता चलता है कि सेना-व्यय में मितव्ययता के लिए काफ़ी स्थान है। इस प्रकार की एक नहीं, बीसियों मिसालें पेश की जा सकती हैं। सरकार तो हमेशा से यही कहती रही है कि सेना के व्यय में किफ़ायत की गुंजाइश ही नहीं, लेकिन सरकार के ऐसा कहने पर भी इंचकेप-कमिटी ने फ़ौजी ख़र्च को कम करने की सिफ़ारिश की, और सरकार ने उसके अनुसार ख़र्च में कमी भी की। इसलिए देशवासी स्वभावतः, तर्क से या वितर्क से, यह सारांश निकालते हैं कि सेना के व्यय में की गई किफ़ायतें इस बात का प्रमाण हैं कि इसमें काफ़ी मितव्ययता अभी और की जा सकती है।

निस्सन्देह जब तक सेना-व्यय के ऊपर देश के प्रतिनिधियों का कोई अख़्तियार न होगा और जब तक सेना की भीतरी कौंसिलों में भारतवासियों को कोई स्थान नहीं दिया जायगा तब तक लोगों की यह धारणा दूर नहीं हो सकती।

अब हम ज़रा इस बात पर भी विचार करें कि सेना-व्यय में किस प्रकार कतर-ब्योंत की जा सकती है। एक सीधा-सादा नुस्ख़ा तो यह है कि सेना-शक्ति, अर्थात् सिपाहियों की संख्या, कम कर दी जाय। जब सेना की शक्ति कम कर दी जायगी तब ख़र्च में स्वयं ही कमी हो जायगी। लेकिन हम इस नुस्ख़े को यहीं छोड़े देते हैं, क्योंकि इसमें मतभेद के लिए काफ़ी स्थान है। संभव है, ऐसा करना देश के लिए ठीक न हो। हम अब उन तरीक़ों को लेते हैं जिनको अख़्तियार करने से ख़र्च में तो कमी हो जायगी, साथ ही सेना की शक्ति में भी किसी प्रकार का ह्रास न होगा। सबसे पहली बात यह है कि हमारे पास ३ लाख सिपाही ऐसे हैं जो बात की बात में रण-भूमि में जाने के लिए तैयार किये जा सकते हैं। यदि यह संख्या घटाकर आधी कर दी जाय और इतने ही, अर्थात् १½ लाख या उससे भी अधिक सिपाही रिज़र्व सेना में बढ़ा दिये जायँ तो ख़र्च में काफ़ी कमी हो सकती है। (रिज़र्व सेना वह सेना है जो हमेशा लड़ने के लिए तैयार नहीं रहती, पर लड़ाई छिड़ने पर तैयार की जा सकती है।) रिज़र्व सेना में वृद्धि करने के लिए यह आवश्यक होगा कि स्कूल, कालेज और विश्व-विद्यालयों में अनिवार्य फ़ौजी-शिक्षा जारी की जाय। यदि ऐसा किया गया तो सेना की शक्ति में कमी नहीं होगी और ख़र्च भी कम हो जायगा।

दूसरी बात यह करनी चाहिए कि अँगरेज़ सिपाहियों की संख्या कम कर दी जाय और उनके स्थान पर हिन्दुस्तानी सिपाहियों की भर्ती कर ली जाय। यदि १ लाख विदेशी सिपाहियों के स्थान पर हिन्दुस्तानी सिपाही आ जायँ तो उन सिपाहियों का ख़र्च १।३ रह जायगा। सेना की शक्ति की दृष्टि से ऐसा करना अनुचित नहीं, क्योंकि हिन्दुस्तानी सिपाही अँगरेज़ सिपाहियों से किसी प्रकार कम होशियार नहीं। १९१४ का महायुद्ध इसका जीता-जागता प्रमाण है। पर इस प्रश्न का एक राजनैतिक पहलू भी है। १८५७ में फ़ौज में केवल ⅕ हिस्सा अँगरेज़ सिपाहियों का था। लेकिन उस साल की क्रांति ने सरकार के कान खड़े कर दिये और तब से सरकार ने अँगरेज़ी सिपाहियों को बढ़ाना शुरू किया। सरकार का कथन है कि वर्तमान फ़ौज में ⅓ भाग अँगरेज़ों का होना निहायत ज़रूरी है। अभी तक सरकार ने फ़ौज की केवल ८ टुकड़ियों में हिन्दुस्तानी सिपाहियों की भर्ती की है। अभी अधिक भर्ती नहीं की जा रही है और सरकार का कहना है कि भविष्य में किसी युद्ध में जब इनकी होशियारी देख ली जायगी तब अधिक हिन्दुस्तानी भर्ती किये जायँगे।

इसके अतिरिक्त आज-कल फ़ौज में विदेशी वेतन की दर के हिसाब से वेतन दिया जाता है। ऐसा करना ज़रूरी है; नहीं तो विदेशियों को यहाँ सेना में नौकरी मंज़ूर करने में रुकावट पैदा हो जायगी। यदि विदेशियों का यहाँ की सेना में रहना आवश्यक मान भी लिया जाय, तो भी यह तो करना ही चाहिए कि उनको वेतन भारतीय दर के हिसाब से दिये जायँ और इसके एवज़ में विदेशियों को "विदेशी या सामुद्रिक भत्ता" अधिक दिया जाय। ऐसा करने से कम से कम भारतीय अफ़सरों इत्यादि को तो भारतीय दर से ही तनख़्वाह मिलेगी और ऐसा करने से ख़र्च में कमी हो जायगी।

फिर सेना के ठेकों इत्यादि में भी काफ़ी किफ़ायतसारी की जा सकती है।

यदि ये ऊपर के उपाय काम में लाये जायँ तो लगभग १५ करोड़ रुपये की बचत हो सकती है।

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१-४—भारती-भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद की ४ पुस्तकें—

१—अग्निपूजक तथा अन्य कहानियाँ—लेखक, पण्डित केशवदेव शर्मा और मूल्य १) है।

२—मार्कोपोलो का यात्रा-विवरण—अनुवादक, श्रीयुत रामनाथलाल सुमन और मूल्य १) है।

३—कम्बख़्ती की मार—लेखक, श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव और मूल्य १) है।

४—त्रिपथगा—लेखक, श्रीयुत 'अज्ञेय' और मूल्य १॥) है।

५—मधूलिका—लेखक, श्रीयुत अंचल, प्रकाशक, साधनामन्दिर, प्रयाग हैं। मूल्य २) है।

६—भेंट—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत रामचरणलाल ह्यारण, मिलने का पता—साहित्यभवन लिमिटेड, प्रयाग है। मूल्य ॥=) है।

७—चीन का स्वाधीनता-युद्ध—लेखक, श्रीयुत कृष्णचन्द्र विद्यालंकार, प्रकाशक, विजयपुस्तकभण्डार, अर्जुन-प्रेस, दिल्ली हैं। मूल्य १) है।

८—सचित्र प्राणायाम और अनन्त शक्ति—अनुवादक, श्रीयुत प्रतापनारायण चतुर्वेदी, प्रकाशक, भारतवासी प्रेस, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य १।) है।

९—गीता-विज्ञान—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत रामगोपाल मेहता बीकानेर हैं। बिना मूल्य के दी जाती है। मयडाकव्यय =)॥ है।

१०—श्री व्यासगीता—लेखक, श्रीयुत रघुवीरसहाय चित्रांशी, प्रकाशक, साहित्यप्रकाशमण्डल, भारतीय विद्यालय, नयागंज, कानपुर हैं। मूल्य ॥=) है।

११—महापुरुष मुहम्मद साहेब तथा इस्लामधर्म के कुछ मूलभूत सिद्धान्त—लेखक, श्रीयुत कुमार यशःपालसिंह, प्रकाशक, सेमीनार बड़ौदा महाविद्यालय, बड़ौदा हैं। मूल्य।-)॥ है।

१२—जैनधर्म—लेखक, श्री मुनिराज श्री विद्याविजयजी, प्रकाशक, मंत्री, श्री विजयधर्म सूरि जैन-ग्रन्थ-माला, छोटा सराफ़ा उज्जैन (मालवा) हैं। मूल्य =) है।

१—वेदगीतांजलि—यह हरिद्वार के गुरुकुल-विश्व-विद्यालय की स्वाध्यायमंजरी का नवम पुष्प है। मूल्य २) है।

श्रद्धानन्दस्मारकनिधि के सदस्यों की सेवा में यह पुस्तक सप्रेम भेंट के रूप में समर्पित की गई है। प्रतिवर्ष इस निधि से स्वाध्याय के परिणाम-स्वरूप एक ग्रन्थ निकाला जाता है। इस वर्ष यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

इस ग्रन्थ में कुछ वैदिक मन्त्रों और सूक्तों का संग्रह है। जैसे ऋग्वेद के प्रातःसूक्त (भगसूक्त) और वरुणसूक्त और अथर्ववेद का ब्रह्मप्रकाशिसूक्त आदि। प्रत्येक मन्त्र का ऋषि, देवता, छन्द और स्वर देने के पश्चात् मन्त्र का पदच्छेद और अर्थ दिया गया है। तदनन्तर मन्त्र के भाव को लेकर हिन्दी-कविता दी गई है।

यद्यपि मन्त्र का पूरा भाव, उसके अनेक गम्भीर भाव—भाषा की कविता में—मनुष्यकृत कविता में लाना कठिन ही नहीं, वरन एक प्रकार से असम्भव ही है, तथापि कवितायें बड़ी बुद्धिमानी से लिखी और छाँटी गई हैं।

कुछ दिन पहले हमारे समाजी भाई केवल मस्तिष्क से ही काम लेते थे, किन्तु अब उनके वेद-भाष्यों में हृदय की भावुकता का अधिक परिचय मिलने लगा है। पुस्तक के प्रायः अन्त में ऋग्वेद का (६-३३-४) एक मन्त्र दिया है—

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत्।

अर्थ—(तिस्रः वाचः) तीन वाणियाँ [ओ३म्] (उदीरते) उठ रही हैं। मानो (धेनवः) दुधेली गायें [बछड़ों -

को] (मिमन्ति) बुला रही हैं। (हरिः) चितचोर (कनिक्रन्दत्) गरजता हुआ (एति) आ रहा है।

इसमें 'हरि' का अर्थ 'चितचोर' वस्तुतः चित्त को चुरा लेता है। अब इस मन्त्र के साथ दी हुई वेदव्रत जी की कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

दिन भर थक कर—भूखे बछड़े को
मा की सुधि हुई उसे अब?
वही रँभाना, सुन पड़ता है,
दिशा दिशा से। चैन कहाँ अब?
वह आई माँ, अहा रसीली, यह दुलार पुचकार।
तीन वाणियाँ--एक रूप हों, हों आन्तरिक्ष द्यौः भूमि एक हों,
हरि की आहट, मा की पगध्वनि,
एक भाव से, मिलती जावें इन ध्वनियों के बढ़ें सहारे,
देवि समर्पण यह ममता निस्सार।

क्या इन पंक्तियों से भगवान् कृष्ण के गोचारण से लौटते समय का दृश्य, उनकी मधुर मुरली की रसीली तानों का दूर से आनेवाला शब्द, प्रेमभरी गायों का घर दृष्टिगोचर होने पर सप्रेम रँभाना आदि सहसा रसिकजनों के हृदय में गुदगुदी पैदा नहीं कर देंगे?

इसी प्रकार सर्वत्र बड़ी रसीली भावपूर्ण कवितायें दी गई हैं।

यजुर्वेद (३२।११) का एक मन्त्र है—

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थाय प्रथमजा मृतस्य, आत्मानमभिसंविवेश।

इसका अर्थ "अनेक योनियों में, अनेक लोकों में घूमकर" आदि शब्दों में किया गया है। महीधर का अर्थ इससे अधिक अच्छा है—"सभी लोकों और प्राणियों को ब्रह्ममय देखकर"।

श्री सत्यकाम जी 'परमहंस' की कविता भी बड़ी भावमयी है। उसकी अन्तिम तीन पंक्तियाँ ये हैं—

यह बूँद बन चली सागर, थी क्षणभर पहले कण-सी।
इस एक रश्मि का आश्रय पाकर मैं पूर्ण हुआ हूँ।
अपने ही अन्दर अपने सम्मुख मैं आज हुआ हूँ॥

अथर्ववेद के ब्रह्मप्रकाशिसूक्त का पद्यात्मक अनुवाद देखिए—

तीन-तीन, बार बार!! आठ चक्र नव द्वार
अजेय देवनगरी।
हिरण्मयी यहाँ बनी
ज्योति में सदा सनी
स्वर्ग की कला निहार
तीन-तीन, बार बार।
कुबेर का हिरण्यकोष
पूजनीय विगत रोष
आत्मवान हीन दोष
सखि! अवाक जग री!
यक्ष कर रहा विहार
तीन-तीन, बार बार।

वरुणसूक्त के पहले मन्त्र में तो अनुवादक सायण से बाज़ी मार ले गये हैं—

मोषु वरुण! मृन्मयं, गृहं राजन्नहं गमम्।
मृला सुक्षत्र मृलय॥

मट्टी का घर बना बसेरा,
वरुण कहूँ क्या इसको मेरा।
विपदाओं के त्राण! निरन्तर
सुन्दर बरसो प्रिय उर अन्तर।

सायण ने तो मिट्टी के घर के स्थान पर सोने का घर माँगा है, परन्तु इस ग्रन्थ में मनुष्य-देह को ही मिट्टी का घर मानकर एक चमत्कार दिखा दिया है। परन्तु यह भाव भारतीय है अथवा पारसीय! "कहाँ तो देवानां पूरयोध्या" और कहाँ मिट्टी का घर! यह विचारणीय है।

इसी सूक्त के ४थे मन्त्र का अर्थ सन्तोषजनक नहीं प्रतीत होता—

अपां मध्ये तस्थिवांसम् तृष्णाऽविदज्जरितारं। मृला सुक्षत्र मृलय।

"खड़ा हुआ मैं बीच सरोवर
तृषित प्यास से हूँ व्याकुल पर।
यह खारी जल, हे प्रिय सुन्दर
मंगल घन बरसो उर अन्तर।"

हमारे विचार में खारी जल की कल्पना जो अनुवादक ने की है (और सायण ने भी की है) आवश्यक नहीं है।

मीठे जल में रहता हुआ भी जीव प्यासा रहता है। संसार ब्रह्ममय होते हुए भी जीव भटकता रहता है। यही माया है! परन्तु जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब वह दृष्टिगोचर होने लगता है—

"आंरा बचश्मे पाक तवाँ दीद चूँ हलाल"
"मन ऐसो निर्मल भयो जैसे गंगानीर?
पाछे पाछे हर फिरें कहत कबीर कबीर"
"निर्मल मन जन सोइ मोहि पावा"
"तमक्रतुः पश्यति वीतशोको" (कठ)

एक और मन्त्र के अनुवाद का उदाहरण देकर हम यह परिचय समाप्त करते हैं—

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोमधारया इन्द्राय पातवे सुतः।

बहती नवल नशीली धार।
झूम झूम मद-माती लाती
सुख संजीवन सार।
रोम रोम बन ओठ चूसता
ऐसा सरस खुमार।
मेरी देवपुरी के राजा
करो ग्रहण उपहार
बहती नवल नशीली धार।

पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। ऐसी पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए उपर्युक्त निधि के सूत्रधार धन्यवाद के पात्र हैं। प्रत्येक हिन्दू को इसका रसास्वादन करना चाहिए।

२—जीवनादर्श—लेखक तथा प्रकाशक पंडित ज्योतिःशरण जी रतूड़ी गोदी निवासी, टिहरी गढ़वाल हैं। मूल्य १) है।

यह पुस्तक पहले-पहल १९१५ ईसवी में छपी थी, दूसरा संस्करण अब १९३८ में छपा है। पुस्तक में ३ प्रकरण दिये हैं—पहले में मानसिक व्यवहार, दूसरे में शारीरिक व्यवहार और तीसरे में लौकिक व्यवहार पर विचार किया गया है। उपनिषदों, गीता आदि हिन्दू-ग्रंथों और पाश्चात्य विद्वानों और कवियों के अनेक वाक्य उद्धृत करके (स्माइल्स, कुमारी लिटिल, ज्योर्ज हर्बर्ट, बेकन, मिल्टन आदि) रतूड़ी जी ने अपने लेखों में चमत्कार कर दिखाया है।

वेदान्त किस प्रकार हमको मानसिक, शारीरिक और सामाजिक व्यवहार में सफल और सुखी बना सकता है, यही इस पुस्तक का मूल-मंत्र है। रतूड़ी जी को स्वर्गीय स्वामी रामतीर्थ जी के सत्संग का बचपन में सौभाग्य प्राप्त हुआ था, तदनन्तर आप पाश्चात्य देशों का भी भ्रमण कर आये। अतः आपके इन अनुभवपूर्ण निबन्धों से नवयुवक ही नहीं, वरन वयोवृद्ध सज्जन भी लाभ उठा सकते हैं।

सात्त्विक जीवन कैसा होता है और मनुष्य कैसे ऐसा जीवन बना सकता है, यह विषय इस उपयोगी पुस्तक में पूर्णरूप से प्रतिपादित किया गया है।

प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव,
एम० एस-सी०

३—शतपंच चौपाई—टीकाकार, पंडित विजयानन्द त्रिपाठी, प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर हैं। मूल्य ॥=) है।

गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में उत्तरकाण्डान्तर्गत १०५ चौपाइयों में भक्ति और ज्ञान का स्वरूप-निरूपण, और ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का उत्कर्ष प्रमाणित किया गया है। इन्हीं १०५ चौपाइयों पर विद्वान् टीकाकार ने 'भावप्रकाशिका' नामक टीका लिखी है। टीका में शास्त्रीय प्रमाणों तथा दार्शनिक युक्तियों के द्वारा विषय का विवेचन किया गया है तथा गोस्वामी जी के ग्रन्थों से ही उपयोगी उद्धरण दे देकर वर्ण्य विषय की पुष्टि की गई है। भाषा प्राञ्जल तथा विषय-प्रतिपादनशैली प्रौढ़ एवं मार्मिक है और नामानुसार भावप्रकाशिका टीका सचमुच भावों को प्रकाशित करने में सर्वथा सफल हुई है। मानसप्रेमी भक्तों तथा हिन्दी-काव्य-रसिकों को इसका अवश्य संग्रह करना चाहिए। पुस्तक की छपाई शुद्ध तथा सुन्दर है और मूल्य भी अधिक नहीं है। पुस्तक में दो रंगीन चित्र भी हैं।

४—जनसमुदाय की रामकहानी—लेखक, श्रीयुत राधाकृष्ण तोषनीवाल हैं। मूल्य।-) है। पता—श्री राजस्थान-पुस्तक-भंडार, अजमेर।

साठ पृष्ठों की इस छोटी सी पुस्तक में लेखक ने 'सात प्रकरण' तथा उनसठ प्रसंगों में सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर राजनीति, राजव्यवस्था, सामाजिक विकास आदि के वर्णन का प्रयास करके वर्तमानकाल तक के उन प्रयत्नों का उल्लेख किया है जो भारत ने अपनी स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए असहयोग-सिद्धान्त के आधार पर किये हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पुस्तक में किसी भी विषय का यथोचित और क्रमबद्ध वर्णन नहीं हो सका है।

भाषा की दृष्टि से भी पुस्तक एक असफल रचना है। शब्दों की अशुद्धियाँ, उनका अनुचित प्रयोग, भाषा की शिथिलता, तथा व्याकरण के नियमों की अवहेलना के अनेक उदाहरण पुस्तक से दिये जा सकते हैं। सम्पूर्ण पुस्तक पढ़ जाने के बाद पाठक पर यही प्रभाव पड़ता है कि यह ग्रन्थ आर्यसमाजी के व्याख्यान-मंचों से प्रकट किये हुए विचारों का क्रम-हीन संग्रह-मात्र है। प्रसंगों के शीर्षकों में तुक मिलाने का प्रयत्न किया गया है, जिससे वे और भी भद्दे हो गये हैं। पुस्तक अपने वर्तमान रूप में एक सदोष तथा असफल रचना है।

५—फूलों की माला—मालाकार श्रीयुत जवाहरलाल जैन, एम० ए०, विशारद, प्रकाशक, राजस्थान-पुस्तक-मन्दिर, जयपुर हैं। मूल्य ।\|।) है।

गद्य-काव्य की इस माला में ६७ फूल हैं। माला के प्रायः सभी फूल सुन्दर, सरस तथा चित्ताकर्षक हैं। इनके रचयिता के हृदय की भावुकता, कोमलता तथा भावाभिव्यक्ति की कुशलता हृदय पर प्रभाव डालती है तथा उसमें कोमल काव्यमय भावनाओं को जाग्रत करती है। कुछ एक फूल इसमें उच्च श्रेणी के हैं, परन्तु साथ ही कुछ एक फूल इतने साधारण कोटि के हैं कि उनका माला में न गूँथना ही हमारी सम्मति में उचित होता। पुस्तक की भाषा सरल तथा सुन्दर है। सब मिलाकर यह माला एक सफल रचना है। हिन्दी-रसिक, आशा है, इसका आदर करेंगे।

६—जीवन-ज्योति—लेखक, पंडित श्यामसुन्दर द्विवेदी, प्रकाशक, श्री बलदेवदास मेहता, साहित्यपरिषद्, ३५, बाँसतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य ।।) है।

इस पुस्तक की अधिकांश गल्पें पत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं। सभी गल्पें उद्देश्य-विशेष से अर्थात् देशभक्ति की भावनाओं को जाग्रत करने के उद्देश्य से ही लिखी गई हैं। कला की दृष्टि से इनमें से अधिकांश कहानियाँ साधारण कोटि की ही सिद्ध होंगी, परन्तु रोचकता तथा मनोरञ्जन की दृष्टि से ये गल्पें अच्छी हैं। जिस उद्देश्य से इनकी रचना की गई है उसमें लेखक को अच्छी सफलता मिली है। कहानी के बीच बीच में जो पद्य आये हैं वे अधिक स्वाभाविक नहीं जँचते। उनका न होना ही अधिक उत्तम होता। पुस्तक विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है और हमें विश्वास है कि सुकुमारमति बालकों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा। भाषा सरल तथा सुव्यवस्थित है और घटनाओं की वर्णन-शैली भी चित्ताकर्षक है। गल्प-प्रेमियों को इससे उपदेश तथा मनोरंजन दोनों ही प्राप्त होंगे।

७—भग्न-तंत्री—लेखक, श्रीयुत बलदेव शास्त्री, न्यायतीर्थ हैं। मूल्य ।\|।) है। पता—श्री मेहरचन्द्र लछमणदास, पुस्तकविक्रेता, लाहौर।

इस 'भग्न-तंत्री' काव्य में 'पाँच तार' हैं। चन्द्रोपालम्भ से काव्य प्रारम्भ होता है तथा सर्वत्र सभी तारों से पारतंत्र्य के प्रति क्षोभ, दीन और दुखियों के प्रति सहानुभूति तथा स्वातंत्र्य की मंगलाशा का उदय—इन तीन मुख्य भावनाओं के स्वर झंकृत हो रहे हैं। उत्प्रेक्षा और रूपक अलङ्कारों की प्रधानता है। कविता में युक्ति-प्रत्युक्ति के द्वारा आक्षेप तथा परिहार अंकित किये गये हैं तथा दार्शनिक भावों की झलक भी स्थान-स्थान पर दीख पड़ती है। अभिव्यंजनावाद की कसौटी पर कसे जाने से इसे हम 'सफल' रचना चाहे भले ही कहें, परन्तु इस 'भग्न-तंत्री' के तारों में वह शक्ति, वह रसपरिपाक, वह उक्ति-चमत्कार तथा वह प्रभावशालिनी कल्पना नहीं जिससे सहृदय तन्मय हो सकें। हृदय की अपेक्षा इस काव्य में मस्तिष्क का प्रयास ही अधिक कार्यशील है और यही इस कमी का कारण है। भूमिकालेखक ने जो प्रशंसा इस काव्य की की है वह काव्य पढ़ने के बाद अर्थवाद में ही परिणत-सी दीख पड़ती है। पदों में छन्दोभंग भी कहीं कहीं मिलते हैं। पाठकों के मनोरंजन के लिए कुछ पद यहाँ दिये जाते हैं—

उदासीन क्या तुम भी हृदयेश !
हुए हो हमसे, हम हैं दीन;
उपासक हम तेरे करुणेश !
बने हो क्यों फिर करुणा-हीन ?

× × ×

मानस में मम प्रेम-मराल
करता अविरल केलि-विलास;
फिर क्यों तुम हे ! विश्व-निवास !
हुए हो हमसे आज उदास ?

स्वाधीनता के दीवानों को कवि इस प्रकार उपदेशात्मक उत्तेजना देता है—

ओ ! स्वतंत्रता के दीवाने !
देखो, विचलित मत होना !
बिन बलि मोक्ष नहीं है मिलता !
देख, शलभ-तन का खोना !

पुस्तक की छपाई तथा काग़ज़ सुन्दर हैं। काव्य-रसिक इसे अपनाकर आशा है, लेखक को भविष्य में और अधिक उत्तम रचना करने के लिए उत्साहित करेंगे।

८—सौरभ (काव्य)—लेखक, श्रीयुत दुर्गाप्रसाद झुंझनूवाला, बी० ए० "व्यथित", प्रकाशक, श्रीयुत रघुनाथप्रसाद सिंहानिया, नव-राजस्थान ग्रंथमाला-कार्यालय, ७३/ए चासाधोबापाड़ा स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल्य १।) है।

कविवर "व्यथित" जी का यह 'सौरभ' करुण-वेदनाश्रुओं से सिक्त तथा अतीत-स्मृतियों की सुरभि से ओत-प्रोत है। 'मधुमयी व्यथामय स्मृति' को 'अनुपम उपहार' समझनेवाला तथा 'मधुर वेदना ही है, प्रियतम, मेरे जीवन का आधार' गानेवाला भावुक कवि-हृदय अपने ही करुण-सौरभ के वातावरण में तल्लीन है। उसके पास 'वेदना' का अक्षय भाण्डार है। उसी को मुक्तहस्त होकर वितरण करने के लिए वह कहता है कि "कुछ भी हो है यही कामना, रोकर मैं विश्व रुलाऊँ।" वेदना को जगाकर इस विश्व की प्रगतिशील, सुन्दर किन्तु विनश्वर सृष्टि से मानव-हृदय की गंभीर अनुभूति तथा स्मृति का मंगल-सूत्र बाँधकर कवि हमें भावनाओं के पावन दिव्य लोक में ले जाता है। कहीं वह 'जगद्व्यापी विरह' से चैतन्य होकर "मिलन ? कहाँ है मिलन ? अरे?' पूछ उठता है तो कहीं निस्तब्ध रात्रि में राहुलमाता को छोड़कर जाते हुए विरागी बुद्ध पर वह करुण-दृष्टि डालता है। उसके काव्य के विषय, करुणा और वेदना को सृजन करनेवाले दृश्य और वस्तुएँ हैं और उसकी कोमल भावुक हृदय-तंत्री वेदना-मन्दिर में करुण-विषाद की एक गम्भीर मींड निकाल रही है। भावों की सहज स्वाभाविकता के साथ भाषा की सरलता का सुन्दर संयोग है। काव्यरसिक 'व्यथित जी' की इस कृति का आदर करेंगे, यह हमें विश्वास है। सौरभ सर्वथा पठनीय तथा संग्रहणीय रचना है! सहृदयों को तन्मय कर देने के लिए इसमें प्रचुर सामग्री है।

कैलासचन्द्र शास्त्री, एम० ए०

९—प्राणायाम और अनन्त शक्ति—मूललेखक—स्वामी शिवानन्द सरस्वती, प्रकाशक, भारतवासी प्रेस, दारागंज, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या १५६ है। मूल्य १।) है।

विगत महायुद्ध के पश्चात् पश्चिम के देशों में भारत की प्राचीन योग-विद्या के विषय में बड़ी दिलचस्पी ली गई है। श्रीयुत पाल ब्रन्टन ने हमारे देश में भ्रमण कर अनेक साधु-महात्माओं से साक्षात्कार कर अपने रहस्य-गर्भित अनुभव कई अँगरेज़ी पुस्तकों में संकलित किये हैं। अभी हाल में अमेरिका के टोरोन्ट-विश्वविद्यालय-द्वारा वैज्ञानिक विश्लेषण के फलस्वरूप 'योग' पर एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है।

हमारे देश में भी अपने प्राचीन आध्यात्मिक विज्ञानों की ओर शिक्षित वर्ग की अभिरुचि बढ़ रही है। पांडुचेरी के तपस्वी अरविन्द घोष जी ने योग पर कई खोजपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। 'सूर्यनमस्कार' पर एक सुन्दर ग्रन्थ औन्ध-नरेश द्वारा प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तक अँगरेज़ी के 'साइन्स आफ़ प्राणायाम' का अनुवाद है। हृषीकेष के स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती अध्यात्म-विषय के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। आपने इस ग्रन्थ में पाश्चात्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए नवीन दृष्टिकोण से 'प्राणायाम' पर प्रकाश डाला है। पुस्तक अध्ययन तथा गवेषणा से लिखी गई है, परन्तु ऐतिहासिक तथा सामयिक महत्त्व-दिग्दर्शन के अभाव से अपूर्णता का आभास होता है।

अनुवाद शुद्ध तथा सरल है। चित्रों के कारण पुस्तक की उपादेयता बढ़ गई है। छपाई साधारणतः अच्छी है। यह पुस्तक साधकों और योग के अन्वेषकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है, साथ ही साधारण पाठकों के लिए भी विषय का अभिज्ञान तथा आहारादि-सम्बन्धी स्वास्थ्य-नियम लाभदायक सिद्ध होंगे।

१०—चाँदनी—रचयिता श्रीयुत चन्द्रप्रकाश वर्मा 'चन्द्र', प्रकाशक नेशनलिस्ट न्यूज़ पेपर्स लिमिटेड, प्रयाग हैं। मूल्य १) है।

प्रस्तुत पुस्तिका 'चन्द्र' जी की कतिपय प्रारम्भिक रचनाओं का संग्रह है। सभी पद गेय हैं, और मर्मस्पर्शी हैं। उदाहरण लीजिए—

मेरी कविता कह उठे मचल,
तुम पियो सुधा मत पियो गरल,
तुम बनो मधुर, तुम बनो सरल,
मेरी कविता से बट जावे;

तृषितों में भी दो बूँद प्यार 'मेरी कविता' की इन पंक्तियों में कवि ने स्वयं ही अपना मार्ग निर्दिष्ट कर लिया है।

यौवन के प्रभात में 'ससीम-असीम' की खोज में निकलना, एक वेदना का अनुभव करना, सिसकियाँ और आहें भरना इत्यादि इत्यादि का लोभ कवि को आकर्षित न कर सका। उसकी कल्पना के चित्र उसके हृदय से अधिक दूर न हो सके। सतर्क रहने पर भी रहस्यवाद के जो कुछ छींटे इन कविताओं में दृष्टिगोचर होते हैं उनमें कवि की आत्मीयता नहीं, केवल काल का प्रभाव है। 'मेरा परिचय' नाम की कविता कवि के उस हृदय की सच्ची परिचायिका नहीं है जो 'चाँदनी' की अन्य कविताओं में प्रकाशित हुआ है। आगे चलकर नहीं कहा जा सकता किसकी विजय होगी। अभी तक तो जीवन का जो सङ्कुचित अनुभव है उसी के सहारे कवि कभी पीछे दृष्टिपात कर 'माँ' और 'मेरा घर' को याद कर लेता है। वह कहता है—

'बचपन के दिन प्यारे-प्यारे,
गोदी में ही बीते सारे,
प्रतिपल प्रतिबिम्ब बने मेरे,
मेरी माँ के दो दृग-तारे,

सारे तन पर चुम्बन बरसे, अधरों पर बरसी दूध-धार।'

और कभी भावी जीवन के भावुक चित्र खींचते हुए अपनी 'भावी पत्नी के प्रति' लेखनी बढ़ाता है—

'किसी कोमल प्रभात में खोल,
कक्ष के वातायन के द्वार;
देखती होगी तुम चुपचाप,
विहग-जोड़ों का प्यार दुलार;'

देखकर यह सुन्दर व्यापार, कहो! आता है मेरा ध्यान?

'लौकिक प्रेम' का सन्देश वहन करते हुए कवि को जीवन की 'क्षण-भङ्गुरता' और 'शूलों' का ध्यान आ जाना स्वाभाविक है। ताजमहल का अस्तित्व ही उसे शाहजहाँ और मुमताज की करुण कथा का ध्यान दिलाता है। 'ताज की मुमताज' और 'मुमताज का उलाहना' ने करुण और शृङ्गार के अपूर्व संयोग से सौन्दर्य की अतीव वृद्धि हुई है—

'कलुषित जग में दैवी-छवि कुछ दिन ही तो रह पाई,
नवकलिका, तू असमय में धीरे-धीरे मुरझाई,
चली गई हूँ शाहजहाँ रोता रह गया अकेला,
ओ भोली! तूने दलना का करुण खेल क्यों खेला!'

प्रथम रचना होने के कारण कवि के काव्यगत दोषों का निरूपण यहाँ अभिप्रेत नहीं। अभी तो बचपन है—अङ्ग धूल से लिपटे हैं। पर कवि के शैशव के धूल-धूसरित अङ्ग किसको मनोमुग्धकारी न होंगे?

—श्री बैजनाथ चतुर्वेदी, विशारद

११—रूपाभ (मासिक पत्र)—यह प्रगतिशील मासिक पत्र पिछले जुलाई मास से हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत और श्री नरेन्द्र शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रहा है। अब तक इसके तीन अंक निकल चुके हैं। इन अंकों के देखने से प्रकट हो जाता है कि 'रूपाभ' का संपादन लगन, परिश्रम और सुरुचि के साथ किया जाता है। विश्वविद्यालयों के प्रोफ़ेसरों, कांग्रेस के नेताओं तथा हिन्दी के लेखकों के सामयिक और विचारपूर्ण लेख तथा कहानियाँ इसके प्रति अंक में प्रकाशित होती हैं। इसमें प्रकाशित कविताओं का अपना विशेष महत्त्व है। पंत जी की तथा अन्य कवियों की सुन्दर कवितायें इसमें विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं। हिन्दी-प्रेमियों और साहित्य-सेवियों को इस सुन्दर पत्र को अवश्य अपनाना चाहिए। वार्षिक मूल्य ४) है। मिलने का पता—मैनेजर 'रूपाभ' प्रकाश-गृह, कालाकाँकर (अवध)

—'निर्मल'

१२—बैस क्षत्रियेतिहास (प्रथम भाग)—रायबरेली ज़िले में बैस क्षत्रियों के दो घराने बसते हैं। उसकी डलमऊ-तहसील में तिलोकचन्दी बैस बसते हैं, पर महराजगंज-तहसील में जो बैस बसते हैं वे तिलोकचन्दियों से भिन्न एक दूसरी शाखा में हैं। इस शाखा के बैसों के पूर्व-पुरुष बन्नारशाह ने इटावा-ज़िले से आकर रायबरेली के इस भाग की धोबी-जाति को परास्त कर अपना राज्य क़ायम किया था। इनकी यहाँ अब तक १८ पीढ़ियाँ हुई हैं।
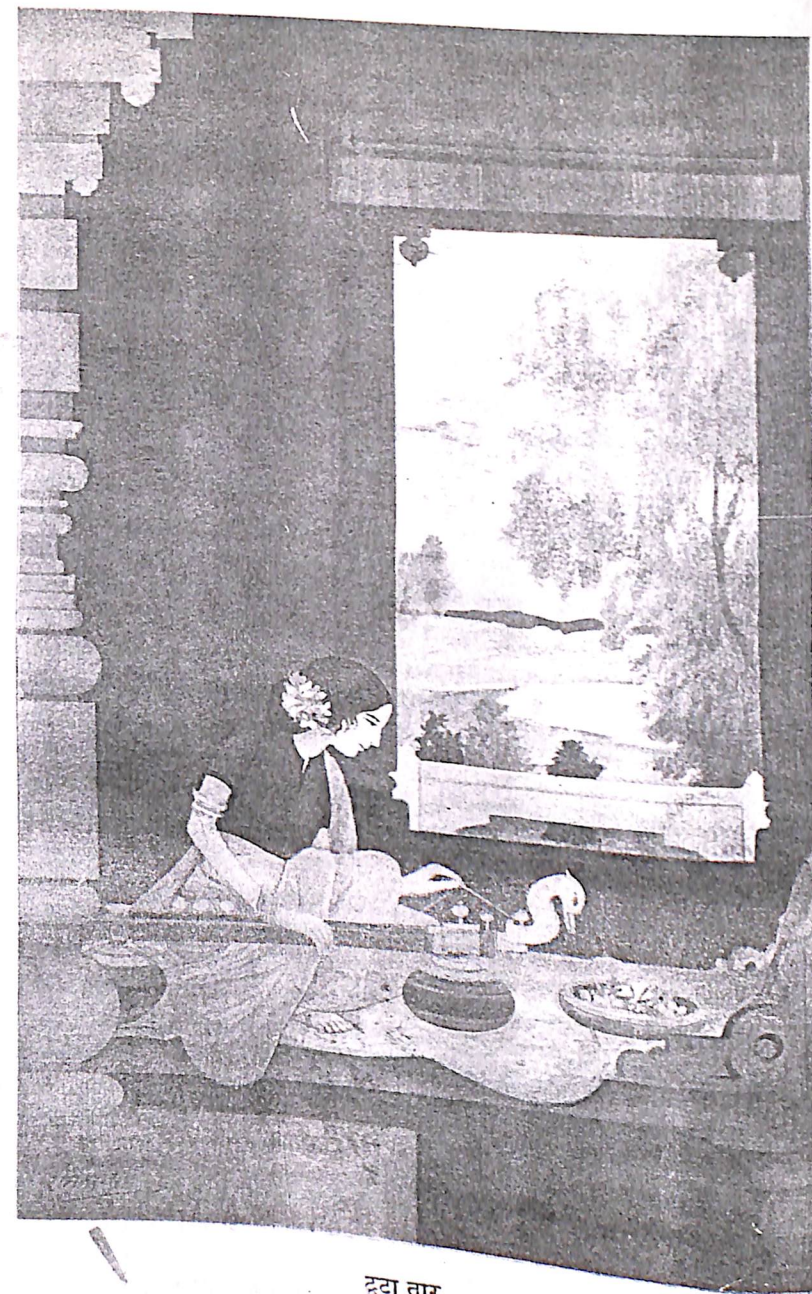
टूटा तार

[चित्रकार—श्रीयुत रामचन्द्र दुबे

इस पुस्तक में इस घराने के बैसें का जो विवरण दिया गया है और यदि इतना ही होता तो यह पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी होती। परन्तु लेखक महोदय ने इसमें बैस-जाति का इतिहास और सो भी पौराणिक काल से लिखा है। अतएव इसमें बहुतेरी ऐसी बातें आ गई हैं, जिससे इसका 'इतिहास' का रस ग़ायब हो गया है।

यह पुस्तक चार भागों में विभक्त है। पहले भाग में बैसवाड़ा और बैसें का पौराणिक परिचय लिखा गया है। दूसरे भाग में बैसें की उत्पत्ति और उनकी भिन्न भिन्न शाखाओं का वर्णन किया गया है। तीसरे भाग में रावत श्रेणी के बैसें का अर्थात् महराजगंज-तहसील के बैसों का विवरण विस्तार के साथ गद्य-पद्य दोनों में दिया गया है। चौथे भाग में बैस-वंश की वंश-सूची तथा राना, रावत, राजा और राव के वंश-वृत्त दिये गये हैं।

लेखक महोदय ने इसके लिखने में श्रम किया है और जो भी सामग्री उन्हें मिली है उस सबका उन्होंने इसमें उपयोग किया है। परन्तु उसका उपयोग ऐतिहासिक पद्धति से नहीं किया गया है, जिससे यह पता नहीं चलता है कि उसका कितना अंश प्रामाणिक है। तथापि इस पुस्तक से कम से कम महराजगंज-तहसील (रायबरेली) के बैस अपने वंश का प्रामाणिक इतिहास अवश्य जान सकते हैं। इसके प्रणेता ठाकुर भगवन्वत्ससिंह बैस हैं। पुस्तक पर मूल्य नहीं लिखा है। मिलने का पता भी नहीं लिखा है। शायद लेखक महोदय को—गाँव पेड़रिया, पोस्ट शिवरतनगंज, ज़िला रायबरेली के पते पर—लिखने से पुस्तक मिल सकेगी।

—पश्चात्ताप—लेखक, श्रीयुत देवनारायण द्विवेदी, प्रकाशक, भार्गव-पुस्तकालय, बनारस सिटी हैं। पृष्ठ-संख्या ३२४ और मूल्य १।।) है।

यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसके मुख्य पात्र दिनेश, विनोद, रेवा और मालती हैं। दिनेश एक बड़े धनी व्यक्ति बाबू चुन्नीलाल का एकलौता पुत्र है। वह अपने पिता से नाराज़ होकर घर से बाहर निकल जाता है। दिनेश में ज्वर से पीड़ित होने पर उसे रेवा ठहरने का स्थान देती है और अन्त में स्वस्थ होने पर उसकी रेवा के साथ शादी हो जाती है। रेवा की मा को विनोद का आचरण पसन्द न था, इसलिए दिनेश अपनी प्राण-प्यारी रेवा को छोड़कर अन्यत्र चला गया। चुन्नी बाबू ने अपनी जायदाद का कोई वारिस न समझ कर विनोद को गोद ले लिया और त्रिलोकी बाबू की लड़की मालती से उसकी शादी कर दी। मालती चुन्नी बाबू की सेवा बड़ी लगन के साथ करती थी। एक बार वह उनके साथ वृन्दावन गई थी। वहाँ रेवा और मालती से भी परिचय हो गया और चुन्नी बाबू को भी मालूम हो गया कि रेवा उनके इकलौते पुत्र की पत्नी है। अतः वे रेवा को उसके लड़के के साथ अपने घर ले आये और आनन्द से रहने लगे। विनोद को रेवा और शान्ति का आना पसन्द न था। अतएव उसने लड़ाई करके मालती को लेकर घर से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। उसको इस निर्वासन-काल में बड़ी बड़ी विपत्तियों का सामना करना पड़ा, जिससे मालती का स्वास्थ्य बिलकुल ही गिर गया।

इस दीनावस्था में एक दिन मालती ने अपने चिर-परिचित मदन को देखा, जो वास्तव में दिनेश था। मदन ने सब बातें विनोद और मालती से मालूम करके दोनों परिवार के लोगों को मालती की बीमारी की सूचना तार-द्वारा दी। दोनों परिवार के लोग रोगिणी मालती की सेवा के लिए आ पहुँचे। यहीं सबका मनमोटाव जो इधर-उधर के लोगों के बहकावे के कारण हो गया था, दूर हो गया और वे आनन्द से एक-दूसरे से मिले। मालती भी नीरोग हो गई और सानन्द दोनों परिवार अपने अपने निवासस्थान को चले गये। उपन्यास की कथा का यही सार है।

इस उपन्यास में रेवा और मालती दोनों का चरित्र भारतीय साध्वी स्त्रियों के ढंग पर अंकित किया गया है। प्रायः एक घर की स्त्रियों में कलह हुआ करता है, किन्तु रेवा और मालती का किसी भी स्थल पर मनमुटाव नज़र नहीं आता। यह इस उपन्यास की एक विशेषता है। दिनेश का चरित्र भी आदर्श कहा जा सकता है, किन्तु उसमें उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती जो रेवा और मालती के चरित्रों से होती है। इस उपन्यास से गृहस्थ-जीवन की बुराइयों को रोकने में सहायता मिलती है। इसकी भाषा सरल, और सुबोध है। पढ़ी-लिखी स्त्रियों के लिए उपयोगी है।

—गंगासिह

धूम्र के प्रति

लेखक, श्रीयुत रमाशङ्कर पाँड़े 'प्रभाकर'

(१)

निज रूप हो स्पष्ट दिखाते नहीं,
तम तोम स्वदेह बढ़ा रहे हो।
नभ पै चढ़े गर्व से गाजते हो,
अपने में न आप समा रहे हो।
उर फूँक किसी का चले अथवा,
नभ का उर दग्ध बना रहे हो।
कि कलङ्क को कालिमा धोने—
मयङ्क-सरोवर में तुम जा रहे हो।

(२)

गति मन्द हो प्रेम-रणाङ्गन से,
तुम चोट सी खाये हुए निकले।
अथवा किसी के दुखी जीवन का,
दुख भार उठाये हुए निकले।
जलते हुए बान्धवों की दशा का,
एक चित्र बनाये हुए निकले।
किसी दग्ध कलेजे की अन्तर में,
तुम दाह छिपाये हुए निकले।

(३)

अति हर्ष के वेग बढ़ी हुई थो,
वही ज्वाल हत-प्रभ हो रहो है।
यह देख तुम्हारी विरक्ति किसी—
विधि जोवनी-शक्ति सँजो रही है।
जलते जलते हुई शीतल सी,
तन-ताप शनैः शनैः खो रही है।
तन राख रमाये हुए ये वियोग में,
योग-समाधि में सो रही है।

(४)

भुवि से बड़े वेग से उत्थित हो,
तुम प्रान्त प्रभा का हिलाने लगे।
अति उच्च नभस्थित सूर्य्य को भी,
निज नन्हें करों से छिपाने लगे।
तरसा कर प्रेमिक चातकों को
वन मेघावलो मँड़राने लगे।
जिस अग्नि से जन्म लिया उसी को
जल-वृष्टि से आप मिटाने लगे।

(५)

भवसागर से निकले विष हो,
नभ-शम्भु के कण्ठ समा रहे हो।
कि तरङ्ग हो नील समुद्र को जो
अति उच्च उसे लहरा रहे हो।
कि नये नभ-कृष्ण से कालिया नाग हो,
जो तुम यों बिलला रहे हो।
छल के बलि-विश्व को क्या तुम
वामन विष्णु हो? पाँव बढ़ा रहे हो।

(६)

व्रज-विश्व से जा रहे हो घनश्याम,
है बुरा यहाँ क्या कहिए रहना।
जली जा रही राधिका-इन्धन हो
वियोगाग्नि में, ध्यान दिये रहना।
जिसके उर ज्वाल जगा के चले,
उसकी सुधि भी तो लिये रहना।
कुछ धारि हिये में दया, कृपा-वारि से
सिंचित आप किये रहना।

जाग्रत नारियाँ

पति दबे या पत्नी

लेखिका, श्रीमती रूपकुमारी वाँचू

थोड़े दिन हुए, हमने रेडिओ में एक वाद-विवाद सुना था, जिसमें पति की यह राय थी कि पत्नी को सदा दबना चाहिए और पत्नी की यह राय थी कि पति को ही सदा दबना चाहिए। यह वाद-विवाद पुराना है, परन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि यह आज-कल का फ़ैशन हो गया है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पति-पत्नी के बीच ऐसा प्रश्न उठे! शायद इसके पुराने इतिहास की जाँच करने से इसका कारण प्रकट हो जाय।

हज़ारों वर्षों से पुरुष स्त्रियों पर शासन करते आ रहे हैं और स्त्रियाँ दबती रही हैं। यह दशा सब देशों में पुरातन काल से चली आई है। जब मनुष्य जंगलों में रहा करते थे और उनकी मानसिक दशा जानवरों से कुछ ही ऊँची थी, उस समय शारीरिक बल की अधिक आवश्यकता रहती थी। जिसकी लाठी उसकी भैंस का वह युग था। और तब वह ठीक भी था। स्त्रियाँ शारीरिक बल में पुरुषों से कम होती थीं, इसलिए उनको घर का काम सौंपकर पुरुष बाहर हथियारबन्दी के काम सँभालने लगे। घर में हर समय रक्षित रहने से स्त्री में दुर्बलता और कायरता बढ़ती गई। नतीजा यह हुआ कि उसको अपने ऊपर स्वयं भरोसा नहीं रहा और वह हर बात में पुरुष के ऊपर निर्भर रहने के कारण उससे दबने लगी।

धीरे धीरे सभ्यता का विकास हुआ। जंगल में रहते रहते पुरुष ने अपनी बुद्धि के बल से अपने से अधिक भयानक और बलिष्ठ जानवरों को अपने बस में कर लिया। मानसिक बल की उन्नति हुई और वह शारीरिक बल के कारण अधिक शक्तिमान् माना जाने लगा। शहर बसने लगे, राज्य स्थापित होने लगे और शिक्षा का कुछ कुछ

[श्रीमती सीतादेवी (बम्बई) न्यूयार्क के विश्वस्वास्थ्य-सम्मेलन में भाग लेनेवाली प्रथम भारतीय महिला।]

[श्रीमती आर० कंसालम्बल कोयंबटूर म्यूनिसपैल्टी की सदस्या नियुक्त हुई हैं।]

[कुमारी सिल्लो जाल विरजी प्रथम पारसी महिला हैं जो मूर्ति-निर्माण-कला में विशेष योग्यता प्राप्त करने विलायत गई हैं।

प्रचार होने लगा। फिर भी पुरुष ने स्त्री को दबाये ही रखना मुनासिब समझा।

उस समय हर देश का यह नियम था कि सारा ख़ानदान एक साथ रहे। संयुक्त गृह-प्रणाली की व्यवस्था थी। एक कुटुम्ब के लोग एक घर में रहकर घर के सबसे बड़े-बूढ़े पुरुष का शासन मानते थे। तब भला स्त्रियों की बात कौन सुन सकता था? हमारे हिन्दू-शास्त्रकारों ने यह समझकर कि शायद स्त्रियाँ किसी समय सिर उठाने का प्रयत्न करें, शास्त्रों तक में उनके लिए लिख दिया कि स्त्री बचपने में पिता के शासन में रहे, शादी के बाद पति के, और बुढ़ापे में पुत्र के। इस तरह वे स्त्रियों को अच्छी तरह से दबा रखने की तदबीर कर गये।

परन्तु समय एक-सा नहीं रहता। हर पीढ़ी के बाद कुछ न कुछ परिवर्तन होते ही रहते हैं। जब शिक्षा का प्रचार बढ़ा, स्त्रियों में कुछ जाग्रति हुई। वे अपने हक़ समझने लगीं। उनके मन में यह प्रश्न उठा कि परमात्मा ने

[मिसेज़ कनिंघम जिन्हें संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने झाँसी में मैजिस्ट्रेट नियुक्त किया है।]
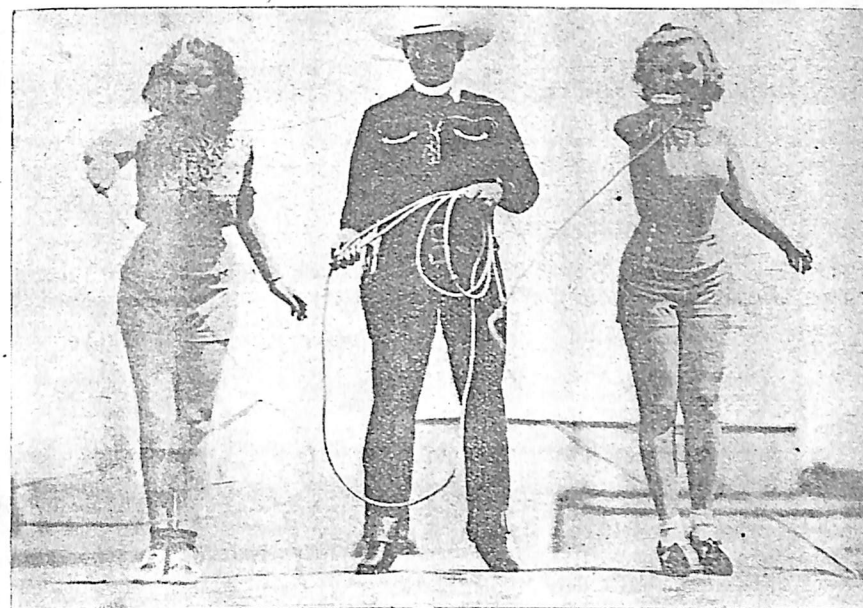
[अमरीका की स्त्रियाँ व्यायाम में योरप से पीछे नहीं हैं। यह खेल वहाँ बहुत लोकप्रिय हो रहा है।]

दो जीव एक ही साथ बनाये हैं तब एक-दूसरे से दबे क्यों? क्या बराबरी के साथ रहना असम्भव है? ज्यों ज्यों सभ्यता की बढ़ती हुई, शारीरिक बल का मान भी घटता गया और मानसिक बल का महत्त्व अधिकाधिक माना जाने लगा। स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करके पुरुषों के हर काम को समझने लगीं और उसमें सम्मिलित होने लगीं। केवल घर ही नहीं, देश के कार्य्य भी करने को वे समर्थ हो गईं। इधर संयुक्त-गृह-प्रणाली भी टूटती गई और पति-पत्नी के प्रभुत्व में गृह-प्रबन्ध होने लगा। स्त्रियों को दबाने की आदत पुरुषों को पड़ ही चुकी थी, अब वे बराबरी का दावा कैसे सुनते? जब पुरुषों की सहायता की आशा न रही तब स्त्रियों का मन दुखित हुआ और उन्होंने स्वयं अपने स्वत्वों की प्राप्ति का आन्दोलन शुरू कर दिया।

पहले-पहल यह आन्दोलन इँगलिस्तान में उठा। बीसवीं सदी के आरम्भ में मेसेज़ पैंखर्ट जैसी विदुषी महिलाओं के नेतृत्व में यह आन्दोलन वहाँ आग की तरह फैला। स्त्रियों ने अपने लिए वोट और बराबरी के अन्य हक़ माँगे और सुनवाई न होने पर क़ानून तोड़ने शुरू कर दिये। सैकड़ों स्त्रियाँ जेलों में बन्द कर दी गईं और अनेक अनेक तरह सताई गईं। अंत में उनकी जीत हुई। उसके बाद ही योरप में महायुद्ध छिड़ गया। पुरुष अधिकतर लड़ाई पर चले गये। उस समय स्त्रियों ने जिस मुस्तैदी से देश का सारा काम हाथ में ले लिया और जो जो कठिन काम कर दिखाये उससे पुरुष भी लजाये और फिर स्त्रियों को बाहर के कामों से रोकने का मुँह नहीं हुआ। हिन्दुस्तान में भी स्त्रियों ने देश की लड़ाई के समय सत्याग्रह-आन्दोलन में जिस उत्साह से तकलीफ़ें उठाईं उससे यह साबित हो गया कि पुरुषों के समान वे भी हर एक हिम्मत के काम में शरीक़ हो सकती हैं।

उपर्युक्त विवरण के द्वारा हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि दबाने और दबने का कटु भाव पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध में क्यों और कैसे उत्पन्न हुआ। अपने
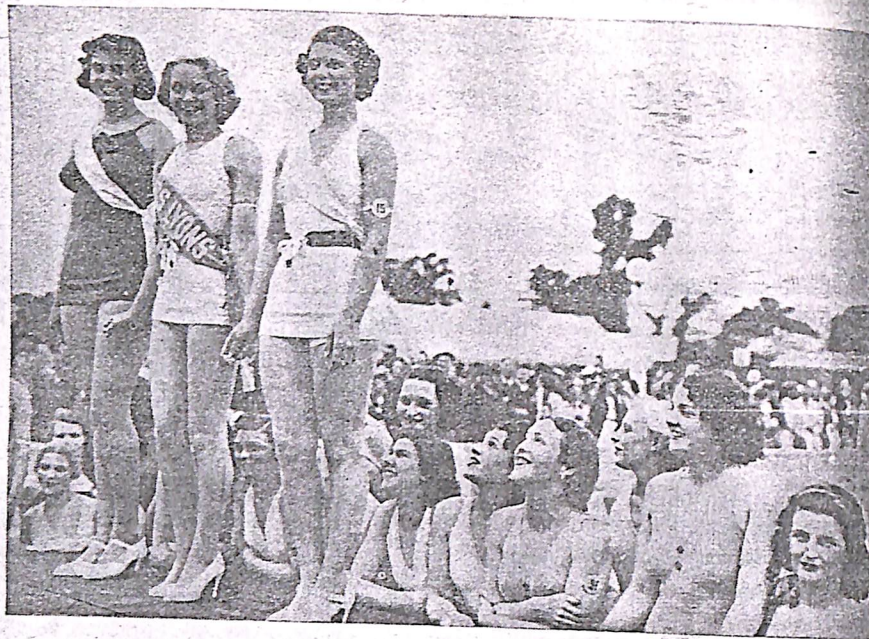
[ब्रिटेन की स्वास्थ्य और सौंदर्य की तीन जीवित प्रतिमायें जिनका चुनाव मूर्तिनिर्माण-कलाविद् श्री वारने सील ने हज़ारों युवतियों में से किया है।]

अपने पक्ष की तरफ़दारी करनी स्वाभाविक बात है, इसलिए लोग इस प्रश्न को पति और पत्नी के बीच भी उठाने लगे। कभी कभी हँसी के तौर पर और कभी कभी गम्भीर भाव से यह बहस समाज में उठती ही रहती है। और स्त्री व पुरुष अपने अपने पद को ठीक साबित करने के तरीक़े ढूँढ़ते रहते हैं।

पुरुष अक्सर यह कहते हैं कि स्त्री अच्छे अच्छे वस्त्र पहनकर और पाउडर, लिपस्टिक वग़ैरह लगाकर पुरुष को रिझाने की कोशिश करती है, इसलिए वह पुरुष की बराबरी नहीं कर सकती। परन्तु यह बात केवल स्त्री के लिए ही नहीं कही जा सकती है। पुरुष भी अच्छे अच्छे वस्त्र पहनने के शौक़ीन होते हैं और सूट-बूट डाटकर ब्रिलियन टीन से बाल जमाकर, लैवंडर लगाकर, मूँछ दाढ़ी घुटाकर अपने को सजाते हैं। तो क्या वे केवल स्त्रियों को ही रिझाने के लिए ऐसा करते हैं? असल बात यह है कि अपने को सजाने का शौक़ इन्सान में स्वाभाविक है और यह परम्परा से चला आया है। यह ख़ास किसी को रिझाने के लिए नहीं होता, वरन मनुष्य को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष अपने को सँवारकर रखने में एक भीतरी खुशी और उत्साह होता है और अपनी ही निगाह में वह अपने तईं बढ़कर समझने लगता है। पुराने ज़माने के जंगली लोग स्त्री व पुरुष अपने को फूल-पत्तियों, जानवरों की खालों व पत्थरों की मालाओं से सजाते थे। एक बच्चा जब अच्छे अच्छे कपड़े पहनने के लिए मचलता है इसलिए कि उसका मन अच्छे वस्त्र के लिए चलायमान होता है और वह स्वयं सजना चाहता है। उस छोटी उम्र में तो रिझाने-रीझने का कोई सवाल नहीं होता। मनुष्य बढ़ता जाता है, मगर उसकी आदतें क़ायम रहती हैं। यह उसकी कमज़ोरी भले ही हो, मगर क़ुदरत ने बनाई है और स्त्री-पुरुष दोनों के लिए एक-सी है। अपनी हैसियत और फ़ैशन के मुताबिक़ स्त्री-पुरुष दोनों सजते हैं। फ़ैशन भी हर सदी में या हर थोड़े थोड़े दिन पर बदलता रहता है, परन्तु जिस समय जो फ़ैशन आता है उसी पर स्त्री-पुरुष सब चलने लगते हैं। इसमें कोई ऐब नहीं। अब फ़ैशन अच्छा हो या बुरा, यह तो अपनी अपनी राय है। मगर सजने में दोनों बराबर हैं। यह दूसरी बात है कि पुरुष ने पाउडर के बदले स्नो लगा लिया।

दूसरा सवाल उठता है कमाने का। अधिकतर घर में पुरुष कमानेवाला होता है, इसलिए वह सोलह आने घर का मालिक समझा जाय, यह ठीक नहीं। बिना स्त्री के घर क़ायम नहीं हो सकता, न अकेला पुरुष घर सँभाल सकता है। ऐसा मनु जी भी कह गये हैं कि वास्तव में वह घर घर ही नहीं, यदि स्त्री नहीं। घर की देख-रेख, बच्चों का पालन-पोषण और मेहमानदारी, स्त्री पर ही निर्भर है, और यह घर के काम का एक बड़ा हिस्सा है। बिना उसकी सलाह लिये और कहा माने घर का प्रबन्ध ठीक नहीं रह सकता। अब तो ऐसा भी होने लगा है कि किसी किसी घर में स्त्री पुरुष से अधिक कमाती है या केवल स्त्री ही कमाती है और पुरुष बैठ कर खाता है। मगर उस घर में क्या पुरुष दब कर रहते हैं? कदापि नहीं। परन्तु दबने का प्रश्न जारी रहने से स्त्री के मन में भी केवल ज़िद के कारण यह भाव आ जाय तो आश्चर्य नहीं। दो पहियोंवाली गाड़ी की मिसाल बहुत पुरानी हो गई है, मगर इससे बढ़कर कोई मिसाल नहीं मिल सकती। एक तरफ़ सारा बोझ पड़ने से गाड़ी टूटने का डर है। शायद इसी वास्ते शास्त्रों ने विवाह के समय पुरुष से यह कहलवाया है कि "मैंने तुझको अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाया।"

तीसरी बात यह है कि परम्परा से स्त्री दबती चली आई है, अतएव अब भी दबती रहे, यह ग़लत है। समय के साथ साथ ज़रूरतें भी बदलती जाती हैं। जिस क़ायदे की आज ज़रूरत है, सम्भव है, कल न रहे। इसी हिसाब से रवाज भी बदलते जाते हैं। स्त्रियों ने बड़े बड़े काम करके संसार में अपने लिए जगह बना ली है, इसलिए वह अपनी आवाज़ भी कभी कभी सुनवाना चाहती है। ऐसा अवश्य है कि स्त्रियाँ कहीं कहीं शोर मचाती हैं कि पति को हमेशा दबना चाहिए, मगर जैसा हम कह आई हैं कि यह केवल ज़िद की बात है। यदि इतने वर्षों से वे दबाई न गई होतीं और अब भी दबाये रखने के यत्न न होते रहते तो उनके मन में यह भाव आ ही नहीं सकता था।

यदि समाज का यह उद्देश्य है कि पति और पत्नी प्रेम के साथ ज़िन्दगी बसर करें तो इस कलहकारी प्रश्न को हटाकर उसके बदले में यह प्रश्न आगे रखना चाहिए कि पति और पत्नी किस प्रकार एक-दूसरे का ख़याल रखते हुए साथ साथ निर्वाह करें। हमें अपने बच्चों के सामने शुरू से यह आदर्श रखना चाहिए कि पति और पत्नी का एक पवित्र और प्रेम का बन्धन है और उसमें पति को पत्नी का दिल रखना चाहिए और पत्नी को पति का। यदि दो रायें न मिलती हों तो अगर चार बार पत्नी पति का कहा करे तो उसका ख़याल रखते हुए पति अपना मन मारकर चार दफ़े पत्नी का भी कहा करे। सदा एक ही दबे, यह ठीक नहीं। शुरू से ही लड़के-लड़की को एक-सी शिक्षा होनी चाहिए। मा-बाप जब लड़के-लड़की से बचपने से एक-सा बर्ताव करेंगे और बराबरी से पालन-पोषण करके आगे के लिए भी ऐसी ही शिक्षा देंगे तब बड़े होकर वे पति-पत्नी के असल रिश्ते को समझेंगे और एक-दूसरे को दबाने की चाहना ही न रहेगी। यह बराबरी का दावा है और प्रेम-भाव से ही यह पूरा पड़ सकता है। ज़बर्दस्ती का काम कभी सफल नहीं हो सकता।

अनुभूति

लेखक, श्रीयुत विजय वर्मा

विनी ! विनी !"

विनीता ने स्पष्टतः सुन लिया कि उसे वही व्यक्ति बुला रहा है जिसे सैकड़ों बार उसने 'प्रियतम', 'प्राणाधार', 'प्रेम', 'सर्वस्व' आदि कहा और लिखा है, पर वह ज्यों की त्यों 'प्रेमसंगीत' के पठन में लवलीन रही। वह उन चित्रों में तन्मय हो रही थी जो उस पुस्तक के प्रत्येक संगीत की प्रत्येक कड़ी द्वारा उसके सामने खिंच जाते थे। साथ ही, वह 'प्रियतम' का वह रूप देख रही थी जो इस समय भी उसे 'विनी' या 'विनीता'—कहकर 'रूप' या 'रूपवती' कहकर पुकारता था। इसके लिए वह क्या करे, यदि वह रूप उसके वास्तविक प्रियतम अजय का न होकर 'प्रेमसंगीत' के रचयिता सुदर्शन जी का था!

"रूप! रूप!"

यह क्या? यह तो सुदर्शन जी की आवाज़ नहीं है, पर इसमें आज कर्कशता या रुखाई का तो आभास तक नहीं है। इसमें तो वही अमृत-रस, अपूर्व माधुर्य लबालब भरा हुआ है। यह तो अजय की वही पुरातन किन्तु चिर नवीन प्रेम-भरी आवाज़ है। ऐसी आवाज़ उसने सुदर्शन की कब सुनी है! अन्तर्यामी की भाँति आज अजय ने उसे इस समय कैसे इस प्रकार सम्बोधित किया!

वह उठकर खड़ी हो गई। पुस्तक खुली की खुली रह गई। वह दौड़ती हुई-सी आकर अजय के सामने खड़ी हो गई।

और तब? तब वह लज्जित, क्रोधित और करुणार्द्र दिखाई दी।

अपने भावों को उसने जितना ही छिपाना चाहा उतने ही वे प्रकट हो गये!

"देखो 'रूप' के नाम में कितना आकर्षण है! उस नाम से सम्बोधन सुनते ही तुम तुरन्त आ गईं और 'विनी' तथा 'विनीता' नामों से मैं कितनी देर चिल्लाता रहा, पर तुमने सुना तक नहीं। फिर भी तुम हठ करती हो कि मैं तुम्हें विनीता ही कहा करूँ। कदाचित् पहले के दिनों को जो इतने मधुर हैं और जिनकी स्मृति मुझे नवजीवन देती है, तुम भूल जाना चाहती हो—तुम्हें वे भी अच्छे नहीं लगते—वे भी रोगी-से जान पड़ते हैं। अपराध मेरा ही है। इसी लिए मैंने इस समय तुम्हें बुलाया है।"

विनीता मानो जग पड़ी। "यह सब आप क्या कह रहे हैं? मैं उन दिनों को जो मेरे लिए सुख का सर्वस्व हैं भूलना चाहती हूँ? 'रूप' अत्यन्त तुच्छ वस्तु है, वह अधिकतर विनम्रता का विरोधी ही होता है। मैं सचमुच विनीता बनना चाहती हूँ।" यह कहते कहते उसके सुन्दर नेत्रों में मोती-से आँसू आ गये। उनमें प्रायश्चित्त का कितना गहरा भाव है, यह देखनेवाले से छिपा न रहा, पर इससे उसे आश्चर्य ही हुआ।

वे दिन होते तो अजय इन आँसुओं का मूल्य किस प्रकार चुकाता! पर आज? आज तो वह रुग्ण शय्या पर पड़ा है—उसी शय्या पर जिससे उसका वश चले तो वह इसी समय भाग खड़ा हो और इसके बदले अपनी सारी सम्पत्ति दे दे! पर उसी पर पड़े पड़े उसे छः मास के निकट हो रहे हैं। एक दिन भी तो वह उससे उठकर थोड़ी दूर भी भाग नहीं सका।

वह पड़ा रहा! पर एक आह उसके हृदय को चीरती हुई-सी निकली। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। ज़रूरत भी न रह गई थी।

शब्दों को 'रूप' बहुत सुन चुकी है और 'विनी' से भी कुछ कम नहीं सुना। यह आह ही उसे सर्वथा नई जान पड़ी। इसके भीतर उसने मार्मिक वेदना और अपने प्रति शुद्ध प्रेम का भाव एक साथ देखा।

आँसू उमड़े, पर उनके दबाने में वह समर्थ हो गई। वह चुपचाप खड़ी रही।

× × ×

अजय ने कहा—"बैठ जाओ। मुझे बहुत कुछ कहना है। क्षमा ही स्त्रियों का सबसे बड़ा गुण है। रूप! तुममें वह इतना अधिक—इतना अधिक है कि तुम मुझे भी—मुझे भी—क्षमा कर सको? तुम मेरी उच्छृ-

ङ्खलताओं, कुवासनाओं और कमज़ोरियों को क्षमा कर सकती हो?"

विनीता ने खड़े ही खड़े मृदु स्वर में कहा—"यह सब आप क्या कहते हैं?"

"क्या आप ही", बात काट कर अजय कह उठा—"मैंने क्या अपने को कभी साधारण व्यक्तियों की तरह का समझा है? पर यह कैसी असाधारणता है? अपने को इस तरह असाधारण मानते हुए, मुँह से बड़े बड़े सिद्धान्तों को कहते हुए और लेखनी से उन्हें धड़ाधड़ लिखते हुए भी यह जान लेना कि वह व्यक्ति स्वयं वस्तुतः कहाँ खड़ा है, किसी भी व्यक्ति के लिए कितना कठिन है! विशेष घटनाओं के घात-प्रतिघात से ही वह इसके साधने में समर्थ हो सकता है। दूसरों को उपन्यासों का पात्र-सा मानने-वाला मैं स्वयं भी एक वैसे ही पात्र की तरह काम कर रहा था, यह मैं आँखें रखते हुए भी तनिक भी न देख सका। फिर भी क्या तुम मुझे क्षमा कर सकती हो?"

विनीता का सम्पूर्ण शरीर सिहर उठा। उसका मन कह उठा—ओह, यह बात है, यह बात है! हम सब उपन्यास के से पात्र हैं और घटनाओं के घात-प्रतिघात से अपने को कुछ जान पाते हैं। तब मानो उसका रोम रोम चिल्ला उठा—क्षमा तो तुम्हें ही माँगनी चाहिए। जब संयोग से इस समय ऐसी बात हो रही है, तुम अपना सब हृदय खोल दो, सब कुछ कह दो।

वह उस पलँग पर बैठ गई। अजय के दाहने हाथ को उसने अपने दोनों हाथों से पकड़ लिया और अपना सिर उसके पैरों के पास रख दिया। जो अजय अपने को सचमुच अजेय समझता था उसी ने आज अपनी पराजय स्वीकार की और क्षमा के लिए दीनता के साथ याचना की तब विनीता भी आज विनम्र होकर अपनी हार क्यों न माने और वह भी क्षमा की प्रार्थना कर अजय को वास्तविक अजेय पद पर स्थापित होने में सहायता क्यों न दे? इसी तरह तो वह अपनी सच्ची भलाई, अपनी रक्षा कर सकती है। उसका अपराध क्या कुछ कम है? सोचती हुई वह चुपचाप उसी तरह बैठी बैठी आँसू गिराने लगी।

अजय समझ न पाया। उसने कहा—"तुम इस तरह दुखी क्यों हो? मैं अब जल्दी ही अच्छा हो जाऊँगा। मैं अवश्य अच्छा हो जाऊँगा, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। तुम मुझे क्षमा कर दोगी, इस पर भी मैं अब विश्वास कर सकता हूँ। मुझे अब सन्देह है तो अपने जीवन के उद्देश्य में ही है"

और अवसर होता तो रूपाभिमानिनी विनीता जीवन के उद्देश्य की इस बात पर खिलखिला कर हँस पड़ती या बेहद झल्ला उठती—उसको तो यह भली भाँति मालूम है कि जीवन के उद्देश्य की बातें कर कर ही अजय एक अन्य युवती अपनी नई पड़ोसिन नलिनी के वास्तविक जीवन के उद्देश्य को छिन्न-भिन्न किये डालता था। पर इस समय इस बात को उसने जैसे सुना ही नहीं। उसने कहा—"क्या आप भी मुझे क्षमा कर सकते हैं?" और उसके आँसू और तेज़ होगये।

× × ×

"तुमने क्या किया है रूप—नहीं, विनीता!"

कुछ उत्तर न मिला।

अजय भी कुछ देर चुप रहा।

फिर बोला—"एक से—किसी न किसी से मिलने की इच्छा के मूल में अपना विकास ही असली बात है। ऐसे ही अनेक से मिलने की तीव्र इच्छा में भी आत्मा के सर्वव्यापी विकास—या सम्पूर्ण आत्मदर्शन की ही अभिलाषा वास्तविक है। हम एक नहीं, अनेक हैं और हम सब एक ही हैं। बन्धनमुक्त होकर मिलना चाहती है आत्मा और हम उस मिलन की चाह को क्या समझ लेते हैं!"

"यह सब जानते हुए भी"—न जाने कैसे ये शब्द विनीता के मुँह से अविनीत स्वर में निकल ही गये!

"जानने से क्या होता है—जाननेवाले तो एक से एक बढ़ कर पड़े हैं! पर अपने को धोखा देना दूसरों को धोखा देने की अपेक्षा कहीं सहल है। किन्तु मैं तो तुम्हारी बात कह रहा था—अपनी नहीं। मैं बताना चाहता था कि यश की चाह हमें क्यों आँधी या तूफ़ान की भाँति सहज ही उड़ा ले जाती है। वह तो बहुत क्षम्य है।"

अजय जानता है कि विनीता अब 'सभा', 'समाज' आदि के जलसों में कभी कभी जाने लगी है।

थोड़ा ठहर कर और उसी में मानो बहुत सोचकर वह फिर कह उठा—"हाँ, यही चाह अनेक शुद्ध और अशुद्ध रूप धर सकती है। विकृत होकर वह हमें तरह

तरह से धोखा दे सकती है। सम्भव है, तुमने भी उससे कुछ नाममात्र का धोखा खाया हो। ऐसा धोखा कौन नहीं खाता? उससे हानि नहीं, पर मैंने जैसा बड़ा धोखा—"

"यह आप क्या कहते हैं? आपने कुछ धोखा नहीं खाया। महत् उद्देश्य को सामने रखकर कोई धोखा नहीं खाता। उसमें धोखा या असफलता तो सफलता की ही एक श्रेणी है। दूसरों के लिए जो कुछ अपने नाममात्र के लिए और हानि मानते हैं उसे ही अपने आपको धोखा देकर इतना बड़ा कैसे मान लेते हैं? सबसे बड़ा धोखा यही है जो आप अपने आपको और दूसरों को देते हैं।—अब आप ऐसा न करें और मैं इसे अब तक समझ न पाई थी, यह मेरी सबसे बड़ी भूल थी, इसे आप क्षमा कर दें। पर मैं इससे भी बढ़कर अपराधिनी हूँ।"

जिस उच्छ्वास और सचाई के साथ विनीता ने ये बातें कहीं उनमें अमित प्रभाव था।

अजय हक्का-बक्का-सा हो गया।

अपने को सँभाल कर उसने कहा—"तुम तो आज सचमुच विनीता हो रही हो! तुम्हारे जीवन में यह बात कैसी? ज़बर्दस्ती अपने आपको अपराधी समझना, स्वयं एक अपराध है। क्या तुम्हें यह नहीं मालूम? मेरी ओर देखो, तुमने चाहे जो कुछ किया हो, मेरे लिए तुम बिलकुल निर्दोष हो।"

ज़ोर लगा कर अजय उठ बैठा। और विनीता ने 'आप लेटे रहिए, लेटे रहिए' कहते हुए उसकी ओर देखा।

उसी समय किसी ने दरवाज़ा खटखटाया।

× × ×

दरवाज़ा खटखटाने के बाद ही आवाज़ आई—"महराजिन, महराजिन!"

यह आवाज़ किसकी थी, यह 'रूप' से बढ़कर कौन जानता है। वह तेज़ी से उठ खड़ी हुई।

"नलिनी आ रही है, रूप! आज तुम यहीं बैठो।"

"मैं अभी आती हूँ।" कहकर वह उस कमरे से निकलकर जल्दी ही आँगन में आ गई।

उसी समय दूसरी ओर से आवाज़ आई—"कहारिन, कहारिन!"

और श्री सुदर्शन जी को अपने कमरे की ओर आते हुए 'रूप' ने देखा।

उसने महराजिन से कहा—"सुदर्शन जी को बुलाकर यहीं कमरे में लिवा लाओ। सब लोग यहीं बातचीत करेंगे।"

यह कहते कहते वह अजय के कमरे की ओर चली। मन ही मन वह कह रही थी—ख़ूब, ख़ूब!

नलिनी और सुदर्शन एक दूसरे को देखकर जैसे आश्चर्य में आ गये उससे विनीता और अजय को भी वैसा ही आश्चर्य हुआ।

"तुम यहाँ कहाँ नलिनी!"

"यह तो मैं आपसे पूछनेवाली थी कि आप यहाँ कहाँ। मैं तो यहाँ से बहुत दूर नहीं रहती।"

अजय ने नलिनी से पूछा—"आप सुदर्शन जी को कब से जानती हैं।"

नलिनी ने उत्तर दिया—"क़रीब तीन साल से।"

उसके मुख पर कोमल लज्जा की स्पष्ट छाप थी।

अजय ने उसे देखा और तुरन्त सुदर्शन जी से कहा—"क्या आप यह बतलाने की कृपा करेंगे कि आप लोगों का पहले-पहल कहाँ परिचय हुआ था?"

सुदर्शन जी ने हँसते हुए कहा—"मुझे तो भय होता है कि आप हम लोगों के बारे में बहुत कुछ जानते हैं—उससे भी बहुत अधिक जितना कि हम चाहते हैं कि आप जानते। फिर भी मैं सब बातें कहे देता हूँ। दो-ढाई वर्ष पहले इनसे मेरा विवाह एक तरह पक्का हो गया था। कुछ बातें ऐसी हो गईं जिनसे वह न हो सका। क़रीब दो महीने हुए तब इनकी माँ की ओर से यह प्रस्ताव फिर आया और इस बार मेरी माँ ने उसे मंज़ूर कर लिया है। इस ढाई वर्ष के बीच में न तो नलिनी के पिता रहे और न मेरे पिता।"

"आप लोग इधर अपना विवाह तय कर रहे थे और दो मास से नलिनी के दर्शन ही नसीब नहीं हुए।" अजय ने कहा।

और समय होता तो विनीता ने सुदर्शन जी की ओर देखा होता और उस दृष्टि में यही होता कि तभी आपके भी दर्शन बन्द हो गये, पर आज तो उसे उस ओर देखने की इच्छा हो ही नहीं सकती, न ऐसी बात कहने की।

इसकी जगह उसने अजय की ओर फिर कर कहा—"नलिनी और सुदर्शन जी विश्वविद्यालय में पढ़ते समय ही एक दूसरे से परिचित हो गये थे, क्योंकि दोनों का हिन्दी के प्रति एक सा प्रेम है।"

अजय ने रूप की ओर देखा।

उन दोनों की दृष्टियों में निर्मल प्रेम के स्रोत थे। "यह बात है, तब आप दोनों को अनेक अनेक बधाई!" अजय ने मुक्तकंठ से कहा। "मेरी ओर से भी आप लोगों को हार्दिक बधाई।" वैसे ही मुक्तकंठ से और हँसते हुए विनीता ने भी कहा।

पर अजय और विनीता, दोनों के आशा, हर्ष और नव उमंगपूर्ण मुख स्पष्टतः यह बतला रहे थे कि उन्होंने अपने जीवन के उद्देश्य की कुछ न कुछ अनुभूति पा ली है और सबसे अधिक बधाई के पात्र आज वे ही हैं।

प्रिय-विरह*

लेखक, श्रीयुत सुधीन्द्र बी० ए०, साहित्यरत्न

(१)

विश्व-व्यापी वेदना यह प्रिय-विरह की है,
अमित नभ में जो अगण्य स्वरूप रचती है।

यह विरह का शोक है नक्षत्र से नक्षत्र तक जो,
देखता है रात्रि की निःस्तब्धता में निष्पलक हो;
और सावन के बरसते तिमिर में जो,
मधुर मरमर शब्द करते पल्लवों में,
छेड़ देती तान मोहक गीत-सी है।
विश्वव्यापी वेदना यह प्रिय-विरह की है॥

(२)

सर्वव्यापी वेदना यह बसाती गम्भीर होकर,
प्रणय, वाञ्छा, दुःख, सुख के रूप धरकर मानवी घर।
और जो गल-गल पिघलकर,
सदा मेरे कविहृदय से,
गीत बनकर वह निकलती है।
विश्वव्यापी वेदना यह प्रिय-विरह की है।

* महाकवि रवीन्द्रनाथ की 'गीताञ्जलि' के ८४ वें नम्बर के गीत का अनुवाद।

तीन बातें

लेखक, श्रीयुत हनूमान शर्मा

१—भगवान् ने ही बचाये

हिन्दू-शास्त्रों में कई एक कथायें या आख्यान ऐसे हैं जिनमें प्रकृति के करने के स्वाभाविक विधानों में भी परमात्मा ने अस्वाभाविक परिवर्तन किये हैं।

(१) प्रह्लाद को दुःख देने के लिए उसके पिता ने आग से गर्म किये हुए खम्भे से चिपक जाने का उसे हुक्म दिया। उस वक़्त प्रह्लाद ने देखा कि खम्भे पर सजीव चींटियाँ चल रही हैं तब वह भी निस्संकोच चिपक गया और उसके कोमल बदन में पसीना तक भी नहीं आया।

(२) उन्हीं दिनों एक कुम्हार ने मिट्टी के कच्चे वर्तनों को धधकती हुई आग में रखकर पकाये थे। ठंडे होने पर देखा तब उन सैकड़ों घड़ों-मटकों या वर्तनों में एक बिलकुल कच्चा था और उसके अन्दर बिल्ली के सजीव बच्चे बड़े मज़े में मौज कर रहे थे।

(३) महाभारत में कौरव-पाण्डवों का युद्ध हो रहा था। युद्धभूमि में अगणित वीरों की भारी भीड़ से बड़े बड़े प्राणी पिसकर चूर्ण हो गये थे। ऐसे अवसर में एक टिटहरी के बच्चे गजघंट के नीचे दबे रहे और भीड़ के हटने पर यथास्थान उड़ गये।

किन्तु ऐसी बातों को आजकल के विशेषज्ञ सच्ची नहीं मानते। अतएव २६।४।३८ के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की दी हुई एक अद्भुत घटना का यहाँ उल्लेख किया जाता है जो उपर्युक्त घटनाओं से बिलकुल मिलती-जुलती है।

(४) शेख़ूपुरा में कोयले के व्यापारियों ने अभी हाल में लकड़ियों का एक बड़ा भारी ढेर करके उसमें आग लगाई और उनको जलाकर कोयला बना लिया। ठंडे होने पर देखा तब कोयलों के अन्दर से एक लकड़ा ऐसा निकला जो जला नहीं था और उसके अन्दर 'गोह' (पाटागुग्रह) नाम का जानवर जीवित बैठा था। ऐसी घटनाओं से निस्संदेह मानना चाहिए कि उनको 'भगवान् ने ही बचाये' थे। अस्तु।

२—प्रहसन

कस्त्वं भद्र खलेश्वरोऽहमिह किं घोरे वने स्थीयते।
शार्दूलादिभिः हिंसकैश्च पशुभिः खाद्योऽहमित्याशया ॥
कस्मात् कष्टमिदं त्वया व्यवसितं मद्देहमांसाशिनः
प्रत्युत्पन्ननृमांसभक्षणधियस्ते घ्नन्तु सर्वान् जनान् ॥१॥

कहो भले आदमी आप कौन हैं? महाशय! मैं ... मनुष्यों का प्रेसीडेंट हूँ। इस डरावने जंगल में क्यों ... हुए हैं? इसलिए कि सिंह, व्याघ्र, वराहादि हिंसक ... मुझे खा जायँ। ओह! ऐसे कष्ट का यह व्यवसाय आप क्यों करते हैं? सिर्फ़ इसलिए कि मुझे खा लेंगे तो उनको मनुष्यों का मांस खाने की आदत पड़ जायगी और वे (मेरे जैसे) सभी मनुष्यों को मारकर पूरा कर देंगे।

३—आशीर्वाद का एक अद्भुत श्लोक

इष्टं खचंद्रगुणितं शशिना समेतं
पक्षाहतं युगहतं निहतं शरेण।
यच्छेषकं शरकरेण वसुघ्नमब्द
त्वं जीव भो नरवरेंद्र सुखी ंकितांते ॥१॥

इस ज़माने में १२० वर्ष की आयु होना बहुत ... बात है, इसी लिए किसी गणितज्ञ ने अपने उक्त श्लोक में इस विधि से आशीष दी है कि उसके अनुसार ... १२० वर्ष की आयु आती है। आप जब चाहें उस दिन किसी भी समय अपने मनमाने इष्ट को १० से गुणा कर उसमें १ मिला दीजिए, फिर दो से गुणा कर ... से और उसे ही ५ से गुणिए—पूरे अंक में २५ का भाग लगाइए। जो बाक़ी रहे उसको ८ से गुणा कर दीजिए ... पूरे १२० होंगे। यथा—

इष्ट घटी ८ को १० से गुणाकर १ मिलाया, ८१ हुए। इनको २ से गुणा किया, १६२ हुए। ४ से गुणा किया ६४८ हुए और इनको ५ से गुणा किया तब ३२४० हुए। इनमें २५ का भाग दिया तब १५ शेष रहे। शेष को ८ से गुणा किया तब १२० हो गये। इस प्रकार दिन-रात में चाहे ... यथेच्छ इष्ट पर कीजिए वही एक सौ बीस वर्ष आवेंगे। ऐसे प्रयोग विद्वानों के मनोविनोद के मसाले या उनकी व्यापक बुद्धि के नमूने हैं।

—
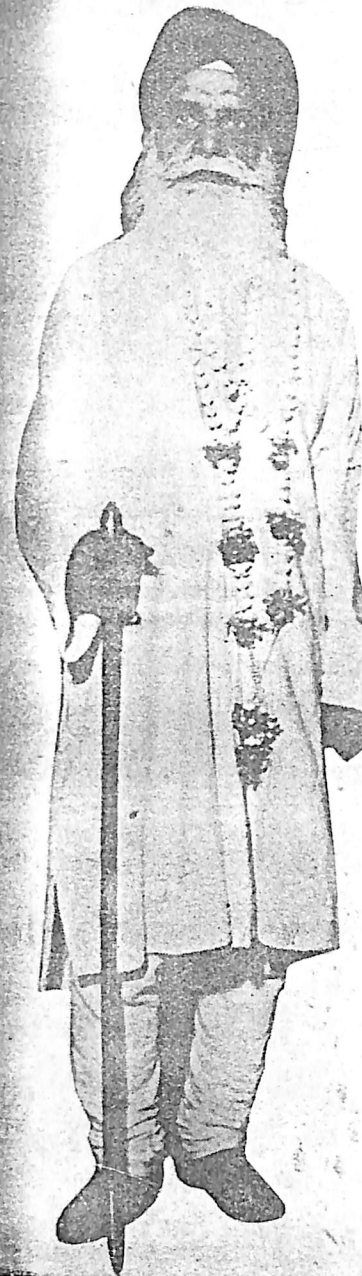
श्रीयुत पृथ्वीपालसिंह। इन्होंने हाल में लन्दन-यूनिवर्सिटी से सम्पादन-कला का डिप्लोमा प्राप्त किया है।

डाक्टर चोइथराम गिडवानी। सिंध-प्रान्तीय कांग्रेस-

डाक्टर सी० सी० घोष (कांग्रेसी एम० एल० ए०)। ये कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों की कार्य्यशैली का अध्ययन करने के लिए भिन्न भिन्न प्रान्तों की यात्रा करने निकले हैं।

श्रीयुत पी० नीलकण्ठ मेनन। ये कोचिन-हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस नियुक्त हुए हैं।

नाभा के नये महाराज। नाभा के पदच्युत महाराज के पुत्र हैं।

कोचीन के प्रथम चीफ़ जस्टिस वी० डी० आसैफ़ जिन्होंने अब अवकाश लिया है।

नर्मदा-तट पर त्रिपुरी गाँव, जहाँ इस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन होगा।

दीवान बहादुर पिंडीदास। ये पटियाला के न्याय-मंत्री

डाक्टर एम० ए० मोगे। लन्दन-यूनिवर्सिटी ने

श्रीयुत जे० एस० बूजमैन आई० सी० एस०, जो

हिन्दू-यूनिवर्सिटी के कृषि-विभाग के

हवाई जहाज़ों की आग बुझाने के लिए फ्रांस में यह नई मशीन आविष्कृत हुई है। यह तत्काल जलते हुए हवाई जहाज़ के पास

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर २७, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २५ आक्टोबर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २५ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध-पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

बायें से दाहिने

१–श्रीकृष्ण जी का बालकपन का एक नाम।
६–नवाबों और राजाओं के यहाँ आज भी इसकी संख्या में कमी नहीं।   ८–'भूठा' होता यदि "व" की जगह "ब" होता।
९–एक महीना जिसमें मुसलमान लोग रोज़ा रखते हैं।
१२–यह जितनी मुलायम होती है उतने ही इसके चाहनेवाले भी होते हैं।
१३–सत्य ही इसकी विशेषता है।
१४–जिस घर में यह हो उसमें दारिद्र्य नहीं टिक सकता।
१७–तपने में ही इसके नाम की सार्थकता है।
१९–नारियल।   २१–पुण्य।   २३–जल से युक्त।
२४–एक पौदा जिसके रेशे से टाट बोरे आदि बनते हैं।
२५–श्री रामचन्द्र जी के छोटे भाई।
२७–काँटा।   २८–बीच।
२९–सम्बन्धियों के यहाँ ख़ास अवसरों पर भेजा जानेवाला उपहार।   ३१–पेड़।
३२–संयुक्त-प्रान्त के ज़मींदारों का कहना है कि चाहे जो हो हम यह नहीं छोड़ेंगे।   ३३–जामवन्त।
३६–इसके आगे किसी की नहीं चलती।
३७–जहाँ जीवन है वहाँ यह भी है।
३८–वियोगी को यह भी पहाड़-सा प्रतीत होता है।

ऊपर से नीचे

१–स्त्री इसके लिए क्या मुसीबतें नहीं झेल सकती?
२–प्रेम की लगावट।   ३–सौन्दर्य।
४–कितने ही इसी को सर्वोत्तम वस्तु समझते हैं।
५–यह न हो तो ज़िन्दगी काटे न कटे।
७–छायावादी कवियों का एक अत्यन्त प्रिय शब्द।
१०–पृथ्वीलोक।   ११–आकाश।
१५–यदि यहाँ भी चुहल न होगी तो फिर कहाँ होगी?
१६–महात्मा गांधी दलितों को यही कहते हैं।
१८–जहाँ यह होगा वहाँ अन्याय नहीं हो सकता।
१९–मूर्ख।   २०–एक मीठा फल।
२१–तम्बाकू पीने की बड़ी घुमावदार नली।
२२–इस देश में कितने ही इसी के सहारे जीते हैं।
२४–इससे किसान सदैव शंकित रहते हैं।
२६–घुँघरू बजने की आवाज़।
२७–बैल का बहुत मज़बूत समझा जाता है।
२९–किसान इसकी बड़ी क़द्र करते हैं।
३०–कुछ ऐसे लोग भी हैं जो लाख मुसीबत पड़ने पर भी यह नहीं छोड़ते।
३१–प्रान्तीय सरकारें इसकी उन्नति के लिए बहुत कुछ कर रही हैं।   ३४–कपट।
३५–इसके होने पर मनुष्य ख़तरे का मार्ग कम पसन्द करता है।

आपनी याददाश्त के लिए वर्ग २७ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे नियम प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

बा	ल	गो	विं	द	■		■	दा	
ल		ा	■		म	ज़ा		■	ज
	ला	ई	■		ही	■	भ		ी
■	सी	■	ह	■		ा	■	न	■
आ	■	ना	ि	के	ल	■		वा	ब
ि	■	स	ज	ा	■	प	ट		न
ल	छ		न	■	कं		क	■	
■		भ	■	च	ा	या	■	ो	■
गा		■	ी	र	■	े	छ	ा	ज
	म	■	■	ा	र	■		ह	ा

बा	ल	गो	विं	द	■		■	दा	
ल		ा	■		म	ज़ा		■	ज
	ला	ई	■		ही	■	भ		ी
■	सी	■	ह	■		ा	■	न	■
आ	■	ना	ि	के	ल	■		वा	ब
ि	■	स	ज	ा	■	प	ट		न
ल	छ		न	■	कं		क	■	
■		भ	■	च	ा	या	■	ो	■
गा		■	ी	र	■	े	छ	ा	ज
	म	■	■	ा	र	■		ह	ा

वर्ग नं० २६ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २६ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

गृ	ह	प	ति	■	अ	नु	ग	म	न
ज	■	ल	ल	च	ना	■	दा	द	ग
गी	ति	का	■	म	का	न	■	न	ट
र	न	■	अ	ला	र	■	ना	क	■
■	प	ती	ली	■	■	का	ली	द	ह
न	ह	र	■	पि	अ	री	■	न	■
■	ला	व	नी	■	क	ग	र	■	द
ऐं	■	ठी	■	गो	ब	र	ग	णे	श
ग	न्ना	■	खे	च	र	■	ढ़	■	मु
ज	■	अ	त	र	■	■	■	स	ख

वर्ग नं० २६ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २६ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। १, २, ३, ४ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ____________

पता ____________

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म २० अक्टोबर के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २७
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

बा	ल	गो	विं	द	■		■	दा	
ल		ा	■		म	ज़ा		■	ज
	ला	ई	■		ही	■	भ		ी
■	सी	■	ह	■		ा	■	न	■
आ	■	ना	ि	के	ल	■		वा	ब
ि	■	स	ज	ा	■	प	ट		न
ल	छ		न	■	कं		क	■	
■		भ	■	च	ा	या	■	ो	■
गा		■	ी	र	■	े	छ	ा	ज
	म	■	■	ा	र	■		ह	ा

वर्ग नं० २७ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० २७ पूर्ति नं०... फ़ीस ।।)

रिक्त कोष्ठों के अक्षर मात्रारहित और पूरे हैं।

नाम

पता

मैंने प्रथम पुरस्कार कैसे प्राप्त किया ?

श्रीयुत वर्गसम्पादक जी,

सितम्बर की सरस्वती में प्रथम विजेताओं में अपना नाम देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस बार मुझे आशा बहुत कम थी। मैंने सोचा था कि चार ग़लतियाँ होंगी। उन चारों शब्दों को यहाँ लिखना दिलचस्पी से ख़ाली मत समझिए। वे शब्द ये हैं १—गाय, २—खल, ३—बहल और ४ छाज। इन शब्दों ने बहुत परेशान किया। अंत में तंग आकर यही निश्चय किया कि यही चारों सही हैं। सच तो यों है कि शब्दों को रखते समय मैंने आपके दिमाग़ को पढ़ने की भी कोशिश की। क्योंकि 'गाय' की जगह 'धाय'—रक्खा

श्री श्रीनाथ मिश्र, बनारस

जा सकता है। पर मैंने यही सोचा कि आप जिस शब्द को रक्खे होंगे वे परिपूर्ण होंगे। 'धाय'—सब तो रख ही नहीं सकते और संकेत में 'कितने ही' शब्द हैं। इसी प्रकार 'बहल' में रास्ता कटता है—यह हो सकता है पर मुझे राजपूताने में बहल में बैठकर चलने का अवसर मिला है। बहस में रास्ता क्या कटता है आफ़त हो जाती है। साथ ही 'विवाद'—झगड़े की जड़ भी है। इसी प्रकार की उधेड़बुन करते करते अंधे के हाथ बटेरवाली बातें समझिए। घंटे आध घंटे इन पहेलियों से दिल बहला लेता हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि आपके दिमाग़ की तारीफ़ में हारता था तब बराबर करता था—जीतने पर तो कहना ही क्या। मालूम नहीं आपने ऐसा दिमाग़ कहाँ से पाया। हो सके तो 'सरस्वती' में कभी लिखिएगा कि क्या खाने पीने और कैसे रहने-सहने से पहेली बनानेवाला दिमाग़ बनता है। धन्यवाद।

—श्रीनाथ मिश्र, c/o पं० देवराज मिश्र, नांग-कूंड़ी पोस्ट—बड़ागाँव, बनारस।

दो नई शङ्कायें

(१) (वर्ग नं० २५) बायें से दाहिने, नं० १० लिखा है, अधिक वर्षा से इसे हानि पहुँचती है, किसे ? नली या कली को ? नली का आपने यहाँ क्या अर्थ लगाया, जिसे अधिक वर्षा से हानि होती है। नल, चोंगा, हड्डी, पिंडली या बंदूक़ की नली, समझ में नहीं आता। अलबत्ता कली को अधिक वर्षा से अवश्य हानि है। वह नष्ट हो जाती है, ठीक प्रस्फुटित नहीं होती तथा बाद को यदि बीजवाली हो तो कमज़ोर बीज लगते हैं या लगते ही नहीं। (ऊपर से नीचे नं० १ जावक=महावर, यह थोड़ा ही प्रयुक्त होता है)—

(२) नं० २५ बायें से दाहिने, गाय क्यों धाय क्यों नहीं। ज़रा ध्यान से पढ़ें—बचपन में कितने ही इसी के सहारे जीते हैं क्या गाय के सहारे या गाय के दूध के सहारे। पर गाय का अर्थ गाय का दूध नहीं होता। संकेत वाक्य में केवल "कितने ही इसी के सहारे जीते हैं", ऐसा होता तो मान्य था, पर ऐसा नहीं है. हाँ बचपन में कितने ही (बच्चे) धाय के सहारे अवश्य जीते हैं, अतएव बिलकुल "फिट" शब्द धाय ही होना था।

विजयसिंह, बिलाईगढ़ सी० पी०

वर्ग नं० २५

द्वितीय पुरस्कार में एक और हिस्सेदार।

वर्ग नं० २५ के लिए आये हुए जाँच के फ़ार्मों के अनुसार जिनके उत्तरों की फिर से जाँच की गई उनमें श्री शिवदयाल साहु पो० कमतौल ज़िला दरभंगा का एक अशुद्धि होने का दावा सही निकला इसलिए द्वितीय पुरस्कार १५९) का बजाय ६७ व्यक्तियों के ६८ व्यक्तियों में बाँटा गया। इस प्रकार प्रत्येक को २।-) भेजा गया। आशा है पुरस्कार पानेवाले इसे नोट कर लेंगे।

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० २७ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर २७ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २८ आक्टोबर सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।
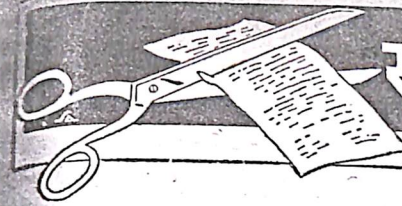
कवीन्द्र की उपदेशभरी फटकार

जापान के संसार-प्रसिद्ध कवि नागुची ने कवीन्द्र रवींद्र को एक पत्र लिखा है, जिसमें उन्होंने चीन पर जापान के आक्रमण को उचित बताया है और भारत के चीन का पक्ष लेने के बारे में शिकायत की है। इसका कवीन्द्र ने बड़े मार्के का उत्तर दिया है, जो पटना की 'नवशक्ति' में इस प्रकार छपा है—

मुझे आपके पत्र से बहुत धक्का लगा। मुझे विश्वास है कि एक दिन आपके देशवासियों की आँखें खुलेंगी और वे अपनी सभ्यता के खँडहरों को पश्चात्ताप कर कर खोदेंगे। चीन पर हमला करने की बात गौण है। प्रमुख है युद्ध-लिप्सा की वृद्धि, जो आपके देश को निगल जायगी। चीन दुर्जेय है। अबीसीनिया पर इटली के आततायीपन का आपने भी मेरे साथ विरोध किया था। चीन पर आपके देशवासी वही आततायीपन कर रहे हैं तब आप दूसरा रुख़ अख़्तियार कर बैठे हैं। किसी चीज़ का फ़ैसला सिद्धांतों पर ही हो सकता है। चाहे कितनी ही वकालत की जाय, किन्तु असलियत पर पर्दा नहीं डाला जा सकता। जापानी ध्वंसक-साधनों से लैस होकर चीन पर आक्रमण कर रहे हैं। नैतिकता को उन्होंने ताक़ पर रख दिया है। आप जापान की स्थिति को एक ख़ास प्रकार की बताते हैं। सभी सैनिकवादी अपनी स्थिति ख़ास प्रकार की बताया करते हैं। आप एशिया की उन्नति की आड़ ले लेते हैं। लेकिन नर-मुण्डों पर इस महाद्वीप की पवित्र इमारत नहीं खड़ी की जा सकती। एशिया सिर्फ़ एशियावालों के लिए हो, यह नारा भी ठीक नहीं है। और जापान ने इसका पालन भी तो नहीं किया है। जर्मनी और इटली से उसने मित्रता जोड़ी है। इस पर मुझे हँसी आती है कि 'यह गठबंधन आध्यात्मिक गुणों की समानता के लिए किया गया है।' युद्ध के ख़िलाफ़ आवाज़ उठानेवालों को जापान दबा रहा है। आपको गर्व है कि आपके ग़रीब से ग़रीब देशवासी युद्ध में सहायता दे रहे हैं। इसी से तो और भी दुख होता है। प्रचार का हमारे जीवन में बड़ा प्राबल्य हो गया है। बुद्धिजीवी भी प्रचार के लिए जनता के साथ दग़ा करते हैं। जापानियों ने मुद्दत से चीन और मंचूकों में जो कुछ निन्दनीय कार्य किये हैं उनके ख़िलाफ़ जापान के आप विद्वानों ने ज़बान तक न खोली। दुर्भाग्य से संसार के और लोग भी डरते हैं। जापान अबाधगति से अपने किये-धरे पर स्याही पोतता जा रहा है। जापान की बर्बरता से प्रभावित होने पर भी चीन आज नैतिक दृष्टि से उससे बहुत ऊँचा है। मुझे उदारचेता जापानी आकेकुरा का कथन आज बिलकुल सत्य मालूम हो रहा है कि जापान महान् है। क्या सचमुच आप मानते हैं कि अपना नुक़सान करके आप चीन की भलाई कर रहे हैं? क्या यही चीन की भलाई है कि उसके कला और संस्कृति के केन्द्रों को नष्ट किया जा रहा है? स्त्रियों और बच्चों के साथ भी तो पशुवत् व्यवहार किया जा रहा है! क्या मैं आशा करूँ कि आप उस दिन की बाट जोहेंगे जब जापान और चीन मिलकर सभ्यता एवं संस्कृति को बढ़ायँगे? कवि के नाते आपको भ्रातृहनन के ख़िलाफ़ अपना गीत गाना चाहिए और शान्ति का संदेश देना चाहिए।

'साधो, ई मुर्दन के गाँव!'

भारत-सरकार के स्वास्थ्य-विभाग की सन् १९३६ के साल की जो रिपोर्ट निकली है उसका सारांश खण्डवा के 'कर्मवीर' ने उपर्युक्त शीर्षक में दिया है—

सन् १९३६ में ब्रिटिश भारत में लगभग ६४,००,००० मौतें हुईं— अर्थात् प्रतिसहस्र २३ व्यक्ति मरे। इनमें से लगभग १,६०,००० अथवा ०·६ प्रतिसहस्र हैज़े से, लगभग १,०५,००० अथवा ०·४ प्रतिसहस्र चेचक से, १३,००० अथवा ०·०५ प्रतिसहस्र प्लेग से, ३६,००,००० अथवा १२·७ प्रतिसहस्र ज्वर से, ४,६०,००० अथवा

१·८ प्रतिसहस्र श्वास-यन्त्र के रोगों से और १७,३०,००० अथवा ६·१ प्रतिसहस्र मौतें अन्य कारणों से हुईं।

प्लेग

सन् १८९६ के बाद यह पहला ही साल है जब भारत में प्लेग से सबसे कम मौतें हुईं। उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त, उड़ीसा, आसाम, दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा प्लेग से पूरी तरह मुक्त रहे। उसका सबसे अधिक प्रकोप युक्तप्रांत में हुआ। प्लेग से समस्त ब्रिटिश भारत में होनेवाली कुल मौतों की लगभग ५६ प्रतिशत मौतें अकेले इसी प्रान्त में हुईं।

हैज़ा

आलोच्य वर्ष में ब्रिटिश भारत में हैज़े का प्रकोप अपेक्षाकृत कम रहा। इस साल लगभग ५७,००० मौतें कम हुईं। बंगाल को छोड़कर जहाँ पिछले साल की अपेक्षा २५ प्रतिशत मौतें अधिक हुईं, और सब प्रान्तों में इस संक्रामक रोग का प्रकोप कम रहा। दुनिया के सब देशों की अपेक्षा भारत में अधिक हैज़ा फैलने का कारण यह है कि देश के बहुत बड़े-बड़े क्षेत्रों में अब भी इस रोग की चिकित्सा और रोक-थाम का प्रबन्ध नहीं है और जहाँ है भी वहाँ पर्याप्त नहीं।

चेचक

भारत के विभिन्न भागों में चेचक का प्रकोप ज्यों का त्यों रहने का कारण यह है कि यद्यपि टीका के रूप में हमारे पास चेचक रोकने का एक बहुत बड़ा हथियार है, लेकिन अतीत में इस हथियार का प्रयोग उतना नहीं हुआ, जितना होना चाहिए था। फ़िलिपाइन्स में १९०५ और १९१५ के बीच चेचक का टीका अनिवार्य कर देने के फल-स्वरूप वहाँ चेचक निर्मूल हो गया है। किन्तु भारत की स्थिति ज्यों की त्यों है. जहाँ १९३६ में इस रोग से १,००,००० से भी अधिक मौतें हुईं। इस साल बंगाल में चेचक से सबसे अधिक मौतें हुईं।

इस साल १,१०,००,००० व्यक्तियों के पहले-पहल और १,३०,००,००० व्यक्तियों के दुबारा टीका लगाया गया। पब्लिक हेल्थ कमिश्नर का ख़याल है कि केवल बच्चों के लिए टीका अनिवार्य करने से काम न चलेगा। यह तो दुबारा और तिबारा लगवाना भी अनिवार्य होना चाहिए। दुबारा स्कूल में दाख़िल होने की उम्र से पहले और तिबारा १० से १२ साल की उम्र में।

मलेरिया

तख़मीना लगाया गया है कि ब्रिटिश भारत में हर साल १२,५०,००० मौतें मलेरिया ज्वर से होती हैं और लगभग १,००,००,००० व्यक्ति हर साल उससे बीमार पड़ते हैं।

इस रोग का प्रकोप भी शहरों की अपेक्षा देहातों में अधिक होता है, इसलिए इसे प्रधानतः देहात की समस्या समझना चाहिए। इसकी रोक-थाम के लिए जो भी प्रयत्न किये जायँ उनमें सबसे पहला प्रयत्न कुनैन का उपयोग बढ़ाना होना चाहिए।

इस साल की सबसे उल्लेखनीय बात यह रही कि भारत-सरकार-द्वारा आर्थिक सहायता दिये जाने के फल-स्वरूप दिल्ली में मलेरिया-नाशक कार्य आरम्भ कर दिये गये हैं।

मलेरिया ज्वर की चिकित्सा के लिए भारत में प्रति-वर्ष लगभग ६,००,००० पौण्ड कुनैन की आवश्यकता है। किन्तु भारत में अभी इसकी केवल एक तिहाई कुनैन ख़र्च होता है, जिसमें से लगभग १,१०,००० पौंड बाहर से आता है और ९०,००० पौंड भारत में बनता है। इसलिए भारत में यह तभी सस्ता हो सकता है जब इसका यहीं अधिक से अधिक उत्पादन होने लगे। इस समय भारत-सरकार कुनैन के पेड़ों की खेती के सम्बन्ध में विचार कर रही है।

क्षय-रोग

हाल के वर्षों में क्षय-रोग का प्रकोप बहुत अधिक बढ़ गया है। इस रोग की रोक-थाम के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता देश भर में क्षय-रोग के 'क्लिनिक' स्थापित करने की है, जहाँ रोगियों की चिकित्सा भी हो सके और सुन्दर परामर्श भी दिया जा सके

कुष्ठ-रोग

इस समय संसार में लगभग ५० लाख व्यक्ति कुष्ठ रोग से पीड़ित हैं, जिनमें से लगभग १० लाख भारत में हैं। इनके लिए अलग उपनिवेश बसाने की सिफ़ारिश की गई है।

हिन्दू-धर्म और बहु-विवाह

हिन्दू-विश्वविद्यालय के अध्यापक डाक्टर ए० एस० आल्टेकर ने अपने एक लेख में इस विषय का अच्छा विवेचन किया है, जो 'साप्ताहिक भारत' में छपा है। उसका सारांश इस प्रकार है—

केन्द्रीय असेम्बली की प्रथम महिला सदस्य श्रीमती राधाबाई सुब्बारायन ने हिन्दू-समाज में प्रचलित बहु-विवाह की प्रथा को तोड़ने के उद्देश्य से उक्त असेम्बली में एक बिल उपस्थित करने की सूचना दी है। इसी प्रकार का एक बिल कौंसिल आफ़ स्टेट में सम्माननीय सेठ गोविन्ददास उपस्थित कर रहे हैं।

इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि हिन्दू-धर्म में बहुत प्राचीनकाल से बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित रही है। उसका अस्तित्व वैदिक युग में पाया जाता है। इतिहास तथा पुराणों में अधिकांश राजा ऐसे मिलते हैं जिनके अनेक पत्नियाँ थीं। स्मृतियाँ भी स्पष्ट रूप से पति को यह अनुमति देती हैं कि वह अपना दूसरा विवाह कर ले। अतः इस बात में कुछ भी संदेह नहीं है कि प्रस्तावित क़ानून का उद्देश्य पुरुषों से एक ऐसे अधिकार को छीन लेना है जो उन्हें श्रुतियों तथा स्मृतियों के द्वारा दिया गया है।

किन्तु उस समय समाज में कुछ विचित्र परिस्थितियाँ मौजूद थीं जिनके कारण पुरुषों को बहु-विवाह करने की आज्ञा दी गई थी। वास्तव में हिन्दू विचारकों ने बहुत ही अनिच्छापूर्वक ऐसा करने की इजाज़त दी थी। उस समय समाज का विश्वास था कि आध्यात्मिक मुक्ति के लिए पुत्र बहुत ही आवश्यक है। आज-कल संतान न होने पर किसी लड़के को गोद ले लेना एक साधारण सी बात हो गई है। किन्तु प्राचीन समय में दत्तक पुत्र बहुत तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था। स्मृतिकारों का मत था कि दत्तक पुत्र का आध्यात्मिक मूल्य बहुत कम है। ऋग्वेद में घोषित किया गया है कि दत्तक पुत्र कभी भी औरस पुत्र का स्थान नहीं ले सकता।

उस युग में जब कि लोगों का यह विश्वास था कि आध्यात्मिक मुक्ति के लिए औरस पुत्र का होना बहुत आवश्यक है, यह अनिवार्य था कि पुरुष को दूसरी स्त्री करने का अधिकार दिया जाय, यदि पहली स्त्री से कोई लड़का न हो। अधिकांश स्मृतियाँ केवल उसी अवस्था में दूसरा विवाह करने की अनुमति देती हैं जब पहली स्त्री से कोई लड़का पैदा न हुआ हो। पत्नी का बाँझ होना यों ही जल्दी नहीं मान लिया जाता था। कम से कम १० वर्ष बीतने के बाद ही यह प्रमाणित समझा जाता था कि स्त्री बाँझ है। इस दीर्घकालीन प्रतीक्षा के उपरान्त भी अपनी प्रथम स्त्री की सम्मति से ही वह दूसरा विवाह करने के लिए तैयार होता था।

महाभारत में कहा गया है कि दूसरी स्त्री के लिए पहली स्त्री का परित्याग कर देना एक ऐसा काम है जो विवाह के अवसर पर पति-द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं के सर्वथा प्रतिकूल है। ऐसा करना एक पाप है जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।

कुछ दिनों के बाद उस रियायत अथवा अधिकार का जो कि अनिच्छापूर्वक और कुछ शर्तों के साथ दिया गया था, दुरुपयोग होने लगा। समाज और विशेषकर पुरुष लोगों ने बहु-विवाह के अधिकार को तो सुरक्षित रक्खा, किन्तु उसके साथ लगी हुई कड़ी शर्तों को एकदम भुला दिया। इसी कारण पिछले कई सौ वर्षों से समाज में दुरवस्था फैली हुई है।

बहु-विवाह की इजाज़त प्राचीन काल के धार्मिक संकल्प-विकल्प के कारण ही दी गई थी और वह भी अनिच्छापूर्वक। उस युग के शिक्षित विचारकों का दृढ़ मत था कि अगर पहली स्त्री पतिव्रता हो और उससे लड़के पैदा हुए हों तो दूसरा विवाह किसी अवस्था में नहीं करना चाहिए। वर्तमान समय के लोगों का यह ख़याल है कि धार्मिकदृष्टि से दत्तक पुत्र उतना ही अच्छा है जितना कि औरस पुत्र। अतः अगर स्त्री वन्ध्या भी हो तो भी हिन्दू पति के लिए और विवाह करना उचित नहीं। हिन्दू-धर्म अपने अनुयायियों के सामने विवाहित जीवन का जो आदर्श रखता है उसका आदर्श है एकपत्नीव्रत। दम्पति शब्द ही इस बात को स्पष्ट कर देता है कि वह कुटुम्ब के केवल दो संयुक्त स्वामियों के अर्थ का बोध कराता है। उसमें किसी तीसरे व्यक्ति के भाग लेने की वह कुछ गुंजाइश ही नहीं छोड़ता। इस कथन का समर्थन कि एक साथ एक से अधिक पत्नी रखना प्रत्येक युग में और प्रत्येक हिन्दू पुरुष का जन्मजात धार्मिक अधिकार है, किसी भी धार्मिक आधार पर नहीं किया जा सकता। हमारे धर्म की आधार

भूत भावना सदैव इस प्रथा के विरुद्ध रही है। असाधारण परिस्थितियों के लिए ही उसका विधान किया गया था।

बहु-विवाह की प्रथा को तोड़ना धार्मिक दृष्टि से भी आवश्यक हो गया है। हम सभी चाहते हैं कि हिन्दुओं का विवाह हिन्दू-धर्म के अनुसार हो और परम्परागत पवित्र मंत्रों का उच्चारण किया जाय। किन्तु आज-कल अनेक शिक्षित हिन्दू अपनी लड़कियों का विवाह सिविल मैरिज ऐक्ट के अनुसार कर रहे हैं, क्योंकि वे चाहते हैं कि अपनी पहली स्त्री के जीवित रहते दूसरा विवाह करना दामाद के लिए असंभव हो जाय। अगर हिन्दू-धर्म से बहु-विवाह की प्रथा न दूर की गई तो उक्त ऐक्ट के अनुसार उत्तरोत्तर और भी अधिक विवाह होते जायँगे और हिन्दुओं का विवाह-संस्कार लुप्त हो जायगा। अतः धार्मिक दृष्टि से विचार करने पर भी यह आवश्यक हो जाता है कि बहु-विवाह की प्रथा का अन्त शीघ्र से शीघ्र कर दिया जाय।

हिन्दू-समाज की एकता के लिए भी प्रस्तावित क़ानून बहुत आवश्यक है। हिन्दू-समाज में परित्यक्ता स्त्रियों की संख्या थोड़ी नहीं है। इन अभागिनी स्त्रियों को एक प्रकार से वैधव्य का जीवन व्यतीत करना पड़ता है और उनके पति दूसरी पत्नियों के साथ आनन्दपूर्वक विवाहित जीवन व्यतीत करते हैं। ये अभागिनी स्त्रियाँ अपना पुनर्विवाह नहीं कर सकतीं, क्योंकि इस समय हिन्दू-धर्म तलाक़ की इजाज़त नहीं देता। माता-पिता भी अनिश्चित काल तक उनका भरण-पोषण और रक्षा नहीं कर सकते। अतः बहु-संख्यक स्त्रियाँ दूसरे धर्मों का आश्रय ले लेती हैं, जिसका होना अनिवार्य है। इसके परिणामस्वरूप हिन्दुओं की संख्या उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। अतः हिन्दू-धर्म और समाज के हित में यह आवश्यक है कि हिन्दुओं की संख्या को कम करने के लिए बहु-विवाह प्रथा को अब जारी न रहने दिया जाय।

मिस्टर जिन्ना सरकार के साथ

केन्द्रीय असेम्बली में भारत-सरकार ने रँगरूटों की भर्ती के सम्बन्ध में एक क़ानून पास किया है। जो व्यक्ति रँगरूटों की भर्ती में किसी भी तरह बाधक सिद्ध होगा वह इस नये क़ानून के अनुसार अपराधी समझा जायगा। कांग्रेसी दल ने इसका ज़ोरों से विरोध किया, परन्तु मुस्लिमलीगी दल की सहायता से वह क़ानून पास हो गया। इस सम्बन्ध में दिल्ली के 'नवयुग' ने उसके 'जमुना-तट से' शीर्षक रोचक-स्तम्भ में मुस्लिमलीग के नेता मिस्टर जिन्ना की बड़े सुन्दर ढंग से ख़बर ली है। वह लिखता है—

"हमारी मरज़ी के ख़िलाफ़ इस हाउस में कुछ भी पास नहीं किया जा सकता"—उस दिन असेम्बली में सरकार का समर्थन करते हुए मिस्टर जिन्ना ने यह बात बड़े गर्व से कही थी। भारत के सात प्रान्तों में जिस दिन से कांग्रेस-सरकारें क़ायम हुई हैं, मिस्टर जिन्ना की आँख में कांग्रेस काँटा बनकर खटकती रही है। असेम्बली में सरकार का साथ देकर और जनता का गला-घोंटू क़ानून पास कराके मिस्टर जिन्ना को सन्तोष हुआ होगा। मिस्टर जिन्ना ने सरकारी बिल में तीन संशोधन पेश किये—'अपराधी को अधिक से अधिक एक साल का दण्ड मिले, बिना प्रान्तीय सरकार की स्वीकृति के कोई बिल किसी प्रान्त में लागू न किया जाय और किसी व्यक्ति पर उस समय तक मुक़द्दमा न चले जब तक प्रान्तीय सरकार की स्वीकृति प्राप्त न हो जाय।' सरकार ने उनके तीनों संशोधन स्वीकार कर लिये। मिस्टर लाहिड़ी चौधरी की यह शैतानियत थी कि उन्होंने बीच में ही कह दिया था कि मिस्टर जिन्ना ने संशोधन सरकार से मिलकर रक्खे हैं। मिस्टर जिन्ना यही कहते हैं कि "नहीं। यह तो मैंने सरकार से अपने समर्थन की क़ीमत वसूल की है।" जिस वक़्त उन्होंने यह बात कही, उनके इनकार में शेरवाली गर्ज थी। दिल में कँपकँपी होगी, यह तो मैं क्या कहूँ, लेकिन एक बात का मुझे यक़ीन हो गया है कि ये राजनीतिज्ञ "परस्परविरोधी बातों का संगठित समूह" ही होते हैं। उस दिन मिस्टर जिन्ना ने जो कुछ कहा उसका उलटा ही सच हो सकता है।

मिस्टर जिन्ना ने अपनी उसी 'चीतेवाली' आवाज़ में कहा था कि "सरकार आज भी शक्तिशाली है। कांग्रेस का विरोध उसको हिला नहीं सकता। अगर उसको यह मंज़ूर है कि युद्ध-विरोधी प्रचार करनेवालों को दण्ड मिले तो वह आर्डिनेन्स बनवा सकती है, और जनता की इच्छा का दमन कर सकती है।" एक तरफ़ यह कहना कि "हम

जिसे चाहेंगे वही क़ानून पास होगा" और दूसरी तरफ़ सरकार की शक्ति का आतंकपूर्ण चित्र खींचने की आशा किसी तर्क-शून्य व्यक्ति से ही की जा सकती है। सरकार तुम्हारी मर्ज़ी के बिना कुछ भी न कर सके; और फिर सरकार इतनी शक्तिशाली हो कि जनता की इच्छा का दमन कर दे, इसका मतलब यह है कि या तो आप सरकार की भी सरकार हैं या उसके इतने बड़े कृपापात्र कि आपको प्रसन्न किये बिना वह कुछ भी न कर सके।

मिस्टर जिन्ना वकील हैं! और वकील को व्याघात और परस्परविरोधी बातों का डर नहीं होता, क्योंकि उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य दलील देना होता है; सच का विशेषज्ञ बनना नहीं। "हर एक मुल्क में ठगिये और सनकी होते हैं, ये ही लोग शांति शांति की दुहाई दिया करते हैं," मिस्टर जिन्ना के ये शब्द भी इसी सिद्धान्त के अनुकूल हैं। असेम्बली में जब मिस्टर जिन्ना अपना भाषण दे रहे होंगे तब उनके चेहरे पर कौन कौन भाव होंगे, कैसे कैसे वे संकेत कर रहे होंगे; उनके होठों से कैसे कैसे शब्द गिर रहे होंगे, यह सब मेरे मस्तिष्क में कल्पना-चित्र बनकर आ रहा है।

गांधी और कांग्रेस को उन्होंने एक ही टिकटिकी पर लटकाने की कोशिश की। श्री भूलाभाई पर कीच उछाली तो किसी और पर धूल फेंकी। बात यह थी कि उनको यह आशंका थी कि श्री भूलाभाई ने जो आलोचना की थी, वह स्वयं उन्हीं की आलोचना थी। चोर की दाढ़ी में तिनका, मैं यह कहूँ तो शायद मुनासिब न होगा, इसलिए नहीं कहता! अहिंसावादियों और प्रशान्तवादियों को एक ही साँस में उन्होंने ठगिये और सनकी कह डाला। मुझे पता नहीं मिस्टर जिन्ना स्वर्गीय रैमज़े मैकडानल्ड को किस श्रेणी में रखना चाहेंगे, क्योंकि उनको तो अपने शांति-प्रेम के कारण जेल तक की हवा खानी पड़ी थी। बरनार्ड शा' रोम्यां रौला और उन्हीं जैसे अन्य महानुभावों की मिस्टर जिन्ना की नज़रों में क्या वक़्त है? वे ठगिये और सनकी हैं, क्योंकि मिस्टर जिन्ना अपने आपको मुस्तफ़ा कमाल पाशा की श्रेणी में समझते हैं। राजनीति में कौन किससे प्रेरणा लेता है, यह तो स्वयं वह भी नहीं जानता।

लेकिन मिस्टर जिन्ना शायद नहीं समझते कि वे औरों के लिए जो कुआँ खोदते हैं उसमें स्वयं ही गिर सकते हैं। वे तनिक सोचें कि ऐसी अवस्थायें पैदा हो सकती हैं जब उन्हीं को ठगियों और सनकियों की श्रेणी में रक्खा जा सकता है। वे 'ठगियों' में रहना अधिक पसंद करेंगे या 'सनकियों' में, कह नहीं सकता! एक तरफ़ वह प्रशान्तवादियों को 'ठगिये और सनकी' कह रहे थे और दूसरी तरफ़ आश्चर्यान्वित असेम्बली ने उनके मुँह से यह भी सुना कि मैं सम्पूर्ण प्रशान्तवाद के सिवा दुनिया में और कुछ चाहता नहीं हूँ। संसार में शांति और समृद्धि होनी चाहिए। ये शब्द प्रशान्तवादियों के मुँह से ही शोभा देते हैं। हाँ, वे शर्त के साथ प्रशान्तवादी हैं, इसलिए वे 'ठगियों या सनकियों' की श्रेणी में आगये।

एक खुली चिट्ठी

ईरोड के श्री पोन्नुचामि नाम के एक सज्जन की एक चिट्ठी खण्डवा के 'स्वराज्य' में छपी है। वह चिट्ठी हिन्दू-महासभा के अध्यक्ष बैरिस्टर सावरकर के नाम लिखी गई है। उससे प्रकट होता है कि दक्षिण-भारत के अब्राह्मणों का इस समय कैसा मनोभाव है। उस चिट्ठी की मुख्य मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

—गत कुछ महीनों से मैं मराठी-समाचार-पत्रों में यह पढ़ रहा हूँ कि मराठी में भाषा-शुद्धि का एक आन्दोलन चल रहा है। इस आन्दोलन का आप नेतृत्व ग्रहण किये हुए हैं। आप बड़े ज़ोरों के साथ इस बात का प्रचार कर रहे हैं कि मराठी-भाषा में आये हुए सभी विदेशी शब्दों को निकाल बाहर कर देना चाहिए। आप हिन्दू-महासभा के अध्यक्ष हैं। हिन्दू-महासभा के द्वारा आप हिन्दू-संस्कृति तथा हिन्दू-भाषा को शुद्ध रखना चाहते हैं। मेरा ध्यान आपके इस आन्दोलन की तरफ़ सहज ही खिंच आया।

मैं एक अब्राह्मण हूँ। ब्राह्मण-अब्राह्मण का झगड़ा मेरे प्रान्त के लिए नया नहीं है। यह झगड़ा हमारे लिए उतना ही पुराना है जितना कि आपका हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति। ब्राह्मणों ने हमारे देश तथा हमारे ऊपर किस तरह की ज़्यादतियाँ की हैं, इसके बारे में हमारे अन्नामलै-यूनिवर्सिटी के तमिल प्रोफ़ेसर सोमसुन्दर भारती तथा हमारे नेता ईरोड-निवासी श्रीरामस्वामी पेरियटर के द्वारा आप जान सकते हैं। शायद आपको मालूम होगा कि कई वर्षों

से हमारे प्रान्त में "स्वयं मर्यादयः" पार्टी चल रही है, जिसे हम लोग अँगरेज़ी में 'सेल्फ़-रेस्पेक्ट-पार्टी' कहते हैं। अब हमारे देश में कांग्रेस के अधिकारारूढ़ होने के बाद इस पार्टी का ज़ोर और बढ़ गया है। इस पार्टी का मुख्य उद्देश्य है कि हमारे सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक क्षेत्रों से ब्राह्मणों का प्रभुत्व हटा दें। ब्राह्मणों के प्रति अब्राह्मणों के बीच बड़ा अनादर तथा कहीं-कहीं बड़ी घृणा है। इस घृणा को प्रदर्शित करने के लिए हमारे प्रान्त में कहीं-कहीं मनुस्मृति और रामायण की प्रतियाँ खुले ग्राम जला भी दी गई हैं। इससे आप समझ सकते हैं कि हमारे प्रान्त में ब्राह्मण-अब्राह्मण का झगड़ा कैसा रूप धारण कर रहा है।

मैं तमिलियन हूँ। मेरी मातृभाषा तमिल है। भाषा-शास्त्र के अनुसार तमिल द्राविड-परिवार की भाषा है। द्रविड-परिवार की भाषायें आर्यभाषाओं से बिलकुल पृथक् हैं। संस्कृत से वे एकदम भिन्न हैं। हमारे देश में तमिल, तेलुगू, कन्नड, मलयालम भाषायें द्राविड-परिवार की कहलाती हैं। तमिल इन सबके मातृ-स्थान में है। इतिहासज्ञ हमें बताते हैं कि हमारी भाषा संस्कृत से भी पुरानी है। तमिल में इतना पुराना तथा ऊँचा साहित्य है, जो भाषा तथा विचारों की दृष्टि से तमिलियनों के द्वारा ही निर्मित कहा जा सकता है। हमारा शब्द-भाण्डार भी इतना परिपूर्ण है कि किसी अन्य भाषा की सहायता के बिना हम अपना काम चला सकते हैं और साहित्य का भी निर्माण कर सकते हैं। पर संस्कृत-शब्दों की इतनी प्रचुरता हो गई है कि तमिल का रूप ही बदल गया। खास कर हमारे यहाँ, ब्राह्मण लोग जो तमिल बोलते हैं, उसमें वे लोग ख़ाम-ख़्वाह संस्कृत के शब्द घुसेड़ देते हैं। फल यह होता है कि ब्राह्मणों की तमिल हमारी समझ में नहीं आती।

तमिल-प्रान्त में भी भाषा-शुद्धि का आन्दोलन चल रहा है। हम सबने यह निश्चय किया है कि संस्कृत के शब्द अपनी भाषा से हटा दें। जितने संस्कृत के शब्द तमिल में हैं उनको एक एक करके हटाते जा रहे हैं। संस्कृत के प्रभाव से हम लोगों ने कहीं-कहीं अपना नाम भी संस्कृत का रख लिया है। हमारे लोग इन नामों में भी परिवर्तन करने लगे हैं। अभी हाल में ही हमारे एक अच्छे नेता स्वामी वेदाचलम ने अपना नाम बदल कर 'मरमलयअडि-घल' रख लिया है। हमारे मुख्य नेता रामस्वामी [illegible] का नाम 'रामचामि पेरियार' हो गया है। हमारी [illegible] भी कई लोग इन आर्य तथा संस्कृत नामों को छोड़कर तमिल नाम लेते जा रहे हैं। इस तरह संस्कृत के [illegible] हमारे ऊपर सांस्कृतिक प्रभुत्व प्राप्त किया है, हम [illegible] बीच से हटा रहे हैं।

हमारे देश पर क़रीब ४५० वर्षों से कोई न कोई [illegible] तमिलियन ही राज्य करते आ रहे हैं। इन विदेशियों [illegible] राज्य-शासन में लाखों लोग हमारे देश में आकर [illegible] गये। पहले-पहल हमारे पड़ोसी आन्ध्रों ने आक्रमण किया, जो कई वर्ष तक शासन करते रहे। उसके बाद मुसलमानों का शासन हुआ। तदनन्तर मराठों ने राज्य किया। [illegible] अँगरेज़ों का बोलबाला है। आन्ध्र लोग हमारे बीच में हिल-मिल गये। लाखों की संख्या में रहने पर भी उन्होंने अपनी भाषा छोड़कर हमारी भाषा को अपनाया। मुसलमान तो केवल धर्म से मुसलमान हैं, लेकिन भाषा से तो [illegible] तमिलियन ही हैं। लेकिन मराठे लोग ही ऐसे हैं जो अपनी भाषा को क़ायम रक्खे हुए हैं और अपना मराठा [illegible] चाहते हैं। हम अपने सहदेशी 'मराठी लोगों' से तो पूछ सकते हैं कि वे अपना मराठी-पन क्यों नहीं छोड़ते! [illegible] विभिन्न देशों के लोगों के सम्पर्क से हमारी भाषा में [illegible] नये शब्द आये हैं। हमें मानना ही पड़ेगा कि ये लोग हमारे देश में विजेता बनकर आये हैं। उस हालत में जिन लोगों ने हमारी भाषा तथा संस्कृति नहीं अपनाई [illegible] उनकी भाषा के शब्दों का बहिष्कार करना हमारे आत्म-गौरव के अनुकूल तथा उपयुक्त मालूम पड़ता है। हमने यह निश्चय किया कि हमें भी इसका आन्दोलन चलाना चाहिए, जिससे हमारी भाषा से संस्कृत, तेलुगू, उर्दू, मराठी और अँगरेज़ी के शब्द निकल जायँ, क्योंकि उनके [illegible] यह सूचकता है कि किसी ज़माने में हम परतन्त्र थे।

हम लोग आज-कल हिन्दी-भाषा के बहिष्कार करने में लगे हुए हैं। जिस तरह इन पिछले सैकड़ों वर्षों से बाहर की भाषाओं ने आकर हमारी भाषा के स्वरूप [illegible] बिगाड़ने का प्रयत्न किया है, वैसे ही हमें डर है [illegible] हिन्दी-भाषा भी करेगी। जैसी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी [illegible] प्रचार आप कर रहे हैं उससे तो हमें विश्वास ही हो गया है कि हिन्दी-भाषा का वर्तमान प्रचार हमारी [illegible] द्रविड़-संस्कृति को नष्ट करने का एक नया उपाय है। अगर इसका हमने समय पर सामना नहीं किया तो हम लोगों का नामोनिशान नहीं रहेगा। इसलिए हमने पक्का इरादा कर लिया है कि हिन्दी को हम अपने घर में नहीं घुसने देंगे।

कुछ लोग हमसे कहते हैं कि संस्कृत का बहिष्कार करके तुम हिन्दू कैसे रह सकते हो। जब हमारे देश के मुसलमान क़ुरान की भाषा अरबी जाने बिना मुसलमान रह सकते हैं, हमारे देश के ईसाई बाइबिल की भाषा हीब्रू उसके बिना ईसाई रह सकते हैं, तब क्या संस्कृत जाने बिना हम हिन्दू नहीं रह सकते? धर्म के लिए जिस दार्शनिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है वह तो हमारी भाषा तथा साहित्य में भरा पड़ा है। तमिल सन्तों ने जिस सुन्दर तमिल में जीवन का संदेश सुनाया है वह तमिलियनों को सदियों तक ज़िन्दा रख सकता है। आर्य लोगों ने हमको अब तक अंधकार में रक्खा और हमारी आँखों पर पर्दा डाला है। हमारे और अपने देवताओं को ऐसा मिला-जुलाकर हमारी और अपनी धार्मिक विशेषताओं का सम्मिश्रण करके हमें इस क़दर माया में फँसाया है कि हम अपना पतन पहचान ही नहीं पाये। अब तो हम आगे बढ़ना चाहते हैं।

नैपाल का सवाल

नैपाल अभी तक अछूता था। उसके सम्बन्ध में अख़बारों में कभी किसी तरह की चर्चा नहीं की जाती थी। पर अब जान पड़ता है कि वह भी अख़बारों की चर्चा का विषय बनेगा। पटना के 'जनता' में नैपाल के सम्बन्ध में इधर कई लेख प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं को लक्ष्य कर उसने एक अग्र लेख लिखा है, जिसका कुछ अंश हम यहाँ देते हैं—

नैपाल हिन्दुस्तान का ही एक हिस्सा है। अपने नैपाली भाइयों से हम न केवल संस्कृति और सभ्यता के बन्धन में बँधे हैं, किन्तु भाईचारा और पारिवारिक बन्धन भी हम दोनों को मज़बूती से बाँधे हुए है। हमारा यह सौभाग्य है कि हमारा एक भाई अपने को स्वतन्त्र कह सकता है, जब कि हम बुरी तरह गुलामी में जकड़े हैं; किन्तु उसका स्वतन्त्र होना हमारे पारस्परिक नाता-रिश्ता में कुछ फ़र्क नहीं ला सकता। हाँ, वह हमारे अधिकाधिक सम्मान और आदर का पात्र ज़रूर है।

नैपाल हमारा है, इसलिए यह भी ज़रूरी है कि हम नैपाल के प्रति दिलचस्पी रक्खें, उसकी उन्नति की आकांक्षा करें और यदि वह अवनति की ओर जा रहा हो तो हम चेतावनी दें, रोकने की कोशिश करें।

इधर 'जनता' में तीन लेख नैपाल के बारे में हम प्रकाशित कर चुके हैं। उन लेखों से नैपाल की स्थिति का जो चित्र हमारे सामने आया है वह उपेक्षणीय तो नहीं ही है। हमें उस ओर ध्यान देना है और अपनी इस सुन्दर पवित्र भूमि को विनाश से बचाना है। बचाना है, नहीं तो यदि यही रवैया रहा तो फिर वह भयानक गर्त उसे निगल कर ही छोड़ेगा जो ऐसे कितनों को निगल चुका है!

नैपाल प्रजातन्त्र नहीं है; अतः हम उस कसौटी पर उसे कसना नहीं चाहते, ऐसा करना उसके प्रति अन्याय होगा। लेकिन इस युग में जो एक आदर्श राजतन्त्र होना चाहिए, वह उसका भी तो नमूना पेश करे।

प्रजा की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध नहीं, उन्हें न्याय-इन्साफ़ पाने की सहूलियत नहीं। भयानक पहाड़ी बीमारियों से उनकी रक्षा करने की किसे परवा—अस्पताल का तो नाम नहीं। सड़क नाम-मात्र की, नहर की चर्चा ही फ़िज़ूल। नैपाल के जंगलों में सम्पत्ति का प्रचुर भंडार पड़ा है, उसकी नदियों से बिजली के बड़े-बड़े कारख़ाने चलाये जा सकते हैं। किन्तु इस ओर कौन ध्यान देता है?

हमें प्रसन्नता है कि नैपाल के कुछ बुद्धिमान् और देशभक्त पुरुषों के मन में इसके लिए छटपटाहट पैदा हुई है। नैपाल का उद्धार उन्हीं लोगों पर निर्भर करता है। उन्हें चाहिए कि जहाँ-जहाँ वे हैं, 'नैपाली-संघ' या 'नैपाल-सुधार-संघ' क़ायम करें। इन संघों की नियमित बैठकें हों। इनमें नैपाल के सम्बन्ध में चर्चायें हों, लेख पढ़े जायँ, नैपालियों की माँगों की तफ़सील बनाई जाय और उन माँगों की पूर्त्ति के लिए अख़बारों में ज़ोरदार आन्दोलन शुरू किया जाय। जब हिन्दुस्तान के कोने-कोने से और विदेशों से नैपाल-सम्बन्धी आवाज़ें निकलने लगेंगी तब नैपाल की सरकार को अपना रवैया बदलने को बाध्य होना पड़ेगा।

नागरी-लिपि और राष्ट्र-भाषा

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के शिमला के २७ वें अधिवेशन के सभापति परिडत बाबू राव विष्णुपराड़कर जी ने सभापति के पद से जो महत्त्वपूर्ण भाषण किया है उसमें उन्होंने नागरी-लिपि और राष्ट्र-भाषा हिन्दी के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये हैं उनका सारांश यह है—

आज हमारा कर्तव्य है कि नागरी के प्रचार में कोई बात उठा न रक्खें। अत्यन्त खेद की बात है कि जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी है वहाँ की भी अदालतों में अभी तक नागरी-लिपि का प्रचार नहीं हुआ है। कई दशकों से इसके लिए प्रयत्न किया जा रहा है, पर अभी तक वह सफल नहीं हो रहा है। समन्स, नोटिसें आदि नागरी में जारी करने की आज्ञा दी जाती है, पर केवल भंग करने के लिए। उर्दू न जाननेवालों के पास भी उस लिपि में लिखे हुए समन्स पहुँच जाते हैं और बेचारों को उन्हें पढ़ाने के लिए न मालूम कहाँ कहाँ की खाक छाननी पड़ती है। इसका कारण उन लोगों की उपेक्षा है जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी है और जो नागरी-लिपि-द्वारा ही अपना नित्य का व्यवहार करते हैं। इसके विपरीत वे सम्प्रदायवादी मुसलमान भाई हैं जो सदा उर्दू के लिए प्रयत्न करते हैं। इनके यत्न का ही यह परिणाम है कि बिहार की अदालतों में भी उर्दू का प्रचार हो गया, यद्यपि वहाँ मुसलमानों की संख्या नगण्य है और अधिकतर मुसलमान कैथी में, जो नागरी का ही एक रूपान्तर है, [illegible] का कामकाज करते हैं। फिर भी अपने तीन ही महीने के शासन में बिहार के अस्थायी मन्त्रिमण्डल ने उस प्रान्त की अदालतों में उर्दू का प्रचार कर दिया। पर संयुक्त-प्रान्त की अदालतों में अभी तक नागरी का प्रचार नहीं हुआ है, यद्यपि उस प्रान्त में भी नागरी जाननेवालों की संख्या उर्दू-फ़ारसी जाननेवालों से पँचगुनी है और नागरी उर्दू-लिपि की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता के साथ पढ़ी जा सकती है। मुसलमानों के स्वत्वों और संस्कृति की रक्षा करना प्रत्येक राष्ट्राभिमानी का प्रथम और पवित्र कर्तव्य है इसमें सन्देह नहीं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि हम मुसलिम सम्प्रदायवादियों के असन्तुष्ट होने के भय से अपनी भाषा और अपनी लिपि की उपेक्षा करके अपनी संस्कृति की जड़ खोद। हिन्दी का कोई भी अभिमानी यह नहीं चाहता कि उर्दू के भक्तों पर ज़बरदस्ती नागरी लादी जाय। यदि हमारे मुस्लिम भाई उसी लिपि के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं तो वह उन्हें मुबारक हो। हम तो केवल यही कहते हैं कि जो अधिकार जीने का और अपनी संस्कृति की रक्षा करने का वे चाहते हैं और उन्हें प्राप्त भी है वही हम हिन्दी-भाषियों को भी लेने दें, यह ज़िद न करें कि औरों को भी उर्दू-लिपि से ही काम चलाते रहना पड़ेगा। हम प्रान्तों की कांग्रेसी और ग़ैर कांग्रेसी सरकारों से समानभाव से प्रार्थना करते हैं कि हिन्दी और नागरी के साथ भी न्याय करें। हम केवल न्याय के प्रार्थी हैं, पक्षपात या पुरस्कार के नहीं।

वही भाषा राष्ट्रभाषा का पद ग्रहण कर सकती है जो हिमाचल से कन्याकुमारी तक सर्वत्र अल्पाधिक परिमाण में बोली या समझी जाती और अल्प-आयास में सीखी जा सकती हो। वह भाषा हिन्दी ही है और हिन्दी ही हो सकती है। मैं हिन्दी उर्दू के मूल-सम्बन्धी झगड़े में यहाँ नहीं पड़ना चाहता पर इतना कहूँगा कि उर्दू के भी आधारभूत (बेसिक) शब्द जिस भाषा के हैं वह भाषा हिन्दी है। हिन्दी नाम उस भाषा का तब था जब उर्दू नाम की कल्पना भी नहीं हुई थी। हिन्दुस्तानी नाम तो हाल का है और इसका प्रयोग संकुचित अर्थ में ही किया जाता रहा है।

हिन्दुस्तानी से हमारे उर्दू-प्रेमी भाई उर्दू ही समझते हैं और इसमें से चुन चुनकर संस्कृत तत्सम शब्द और अधिक से अधिक तद्भव शब्द भी निकाल डालने पर तुले हुए हैं। यह प्रवृत्ति यदि केवल हिन्दीद्वेषियों और अरबी-फ़ारसी के प्रेमियों में ही पाई जाती तो हम इसका विरोध न करते, पर अत्यन्त खेद के साथ कहना पड़ता है कि सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता मौलाना अबुलकलाम आज़ाद के प्रमाण-पत्र के साथ जिस भाषा का प्रचार राष्ट्रभाषा के रूप में किया जाने लगा है उसमें से भी हिन्दी के प्रचलित शब्द निकाले जाने और अरबी के चलाये जाने लगे हैं। मौलाना अबुलकलाम आज़ाद जिसे सर्वप्रान्तीय वा राष्ट्रीय भाषा बनने की अधिकारिणी समझते हैं वही यदि 'हिन्दुस्तानी' है तो मैं निःसन्दिग्ध चित्त से साहित्य-सम्मेलन को सलाह दूँगा कि निर्भीकता के साथ स्पष्ट शब्दों में वह इसका विरोध करे। साहित्य-सम्मेलन को चाहिए कि कांग्रेस के कर्णधारों का ध्यान इस ओर दिलाकर राष्ट्रभाषा के नाम होनेवाले इस काण्ड ताण्डव को समय रहते रोकने की प्रार्थना नम्रता पर दृढ़ता के साथ करे।

भारतीय संस्कृति की रक्षा करने के लिए भी मैं कहता हूँ कि हमारी राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दी होना चाहिए और उसकी प्रवृत्ति भी हिन्दी यानी हिन्द की होनी चाहिए। शब्दों के सम्बन्ध में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। संस्कृत तथा विदेशों की प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं से जितने अधिक शब्द हिन्दी में आवेंगे उतनी ही उसकी सम्पत्ति बढ़ेगी और भिन्न-भिन्न भावों के प्रकट करने में उतनी ही अधिक सरलता होगी।

त्रावणकोर और निज़ाम

देशी रजवाड़ों में आज-कल ज़ोरों से राजनैतिक आन्दोलन छिड़ा हुआ है। अभी तक उसका कश्मीर और राजपूताना के कुछ राज्यों में ही अधिक ज़ोर था, परन्तु अब वह त्रावणकोर और हैदराबाद में भी जा पहुँचा है। नागपुर का 'नव-भारत' लिखता है—

भारतवर्ष में एक ओर जब कि पूर्ण स्वतन्त्रता की न केवल माँग ही की जा रही है, बल्कि ब्रिटिश भारत के ११ प्रान्त बड़ी तेज़ी से उस ओर बढ़ रहे हैं, ऐसे समय में भारत के देशी राज्य और उनमें भी त्रावणकोर और निज़ाम जैसे प्रगतिशील कहे जानेवाले देशी राज्य अपनी प्रजा को, नागरिकता की तुच्छ से तुच्छ माँग—विचार स्वातन्त्र्य तक से वंचित रखना चाहते हैं और अगर प्रजा उसके लिए आग्रह करती है, शान्ति, अहिंसा और नम्रता के साथ संगठित होकर इस 'माँग के लिए अपनी आवाज़ को ऊँचा करना चाहती है तो उसे दमन से दबाने की चेष्टा की जाती है।

त्रावणकोर में पिछले १५ दिनों में निरीह प्रजा के ऊपर केवल 'ज़बान खोलने' के अपराध में जो अत्याचार हुए हैं, मजिस्ट्रेट की आज्ञा को भंग करके शान्तिपूर्वक सभा करने के साधारण से अपराध के लिए जो गोली-वर्षा की गई है, वह त्रावणकोर जैसे समुन्नत राज्य के लिए कलंक की बात है।

त्रावणकोर के दीवान सर सी॰ पी॰ रामस्वामी आय्यर जब इस उच्च पद पर आसीन नहीं थे, अपनी 'ज़बाने मुबारिक' से ऐसे दमन की निन्दा कर चुके हैं, लेकिन दुःख है कि प्रजा के मतस्वातन्त्र्य की कुशलता-पूर्वक वकालत और हिमायत करनेवाला भारत का वही वृद्ध राजनीतिज्ञ आज घोर दमन पर उतर आया है।

निज़ाम-राज्य भी धीरे धीरे सर सी॰ पी॰ रामस्वामी के क़दमों की ओर बढ़ना चाहता है। उसने पिछले दिनों प्रजा की 'शान्ति-सुरक्षा' के नाम पर जो नया क़ानून जारी किया है वह हमारे कथन की पुष्टि करता है। अपनी वर्षगाँठ के अवसर पर माननीय निज़ाम ने यह घोषणा की थी कि 'मैं तो प्रजा के ऊपर तलवार के बल पर नहीं, बल्कि उनके हृदयों को जीत कर शासन करना चाहता हूँ।' सचमुच एक आदर्श नरेश का यही कर्त्तव्य है, लेकिन वहाँ आज जो कुछ हो रहा है वह तो इन पुनीत उद्गारों के सर्वथा विपरीत है। हमने दुःख के साथ पढ़ा है कि निज़ाम-सरकार ने वहाँ की 'स्टेट-कांग्रेस' को जन्म लेने से पूर्व ही ग़ैरक़ानूनी घोषित कर दिया और निज़ाम की प्रजा में इसके द्वारा जो बौद्धिक और राजनैतिक विकास होता वह रुक गया।

निज़ाम-सरकार साम्प्रदायिकता के ज़हर को रोकने के लिए जो बेचैनी प्रकट कर रही है और जो उद्योग करना चाहती है उसके साथ किसे सहानुभूति न होगी, मगर साम्प्रदायिकता को रोकने के नाम पर प्रजा के राजनैतिक विकास को रोकना और उसे देश तथा संसारव्यापी प्रजातन्त्रीय विचार-धारा के सम्पर्क में न आने देने की चेष्टा करना सर्वथा अवांछनीय है। हम चाहते हैं कि निज़ाम-सरकार अपनी पूर्व प्रतिष्ठा, अपनी महत्ता और अपने गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिए दमन की ओर अपना क़दम न बढ़ावे, बल्कि सचमुच जनता के हृदय पर शासन करने के लिए अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देकर जनता में विचार-स्वातन्त्र्य और राजनैतिक विकास की आवश्यक और सुखशान्ति-वर्द्धक मधुरिमा को प्रवाहित होने दे।

सम्पादकीय नोट
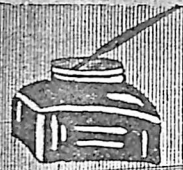
महायुद्ध की तैयारी

योरप में युद्ध के बादल मँड़रा ही नहीं रहे हैं, किन्तु वे बरसना भी चाहते हैं। कहीं एक बन्दूक़ दगी नहीं कि युद्ध छिड़ा। जर्मनी का क़दम इतना बढ़ चुका है कि वह अब पीछे नहीं लौट सकता। उधर फ़्रांस की भी अपार सेना जर्मनी की पश्चिमी सीमा पर समवेत होगई है। उत्तर-समुद्र और भूमध्य-सागर में ब्रिटेन के जंगी बेड़े सतर्क खड़े हैं। इतने पर भी ब्रिटेन के वृद्ध प्रधान मंत्री मिस्टर आस्टिन चैम्बरलेन जो आजतक कभी हवाई जहाज़ पर नहीं चढ़े थे, हवाई जहाज़ पर सवार होकर हिटलर को समझाने-बुझाने उनके पास जर्मनी दौड़े गये। पर कोई परिणाम नहीं निकला। जर्मनी चाहता है कि ज़ेचोस्लोवेकिया के जिन भूभागों में जर्मन लोग बसते हैं, चुपचाप जर्मनी को दे दिया जाय और जिन भूभागों में वे अल्प-संख्या में हैं वहाँ मत-संग्रह किया जाय कि वे किसके साथ रहना चाहते हैं या फिर आबादी की अदल-बदल हो। यही नहीं, वहाँ के पोज़ों और मगयरों के भूभाग भी पोलैंड तथा हंगरी को दे दिये जायँ। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जर्मनी की यह माँग ज़ेचोस्लोवेकिया के निवासियों को स्वीकार नहीं है। तभी तो उनकी उस सरकार को पदत्याग करना पड़ा जो ब्रिटेन और फ़्रांस के दबाव डालने पर जर्मनीवसित भूभाग जर्मनी को देने को तैयार हो गई थी। उसके स्थान पर जो सरकार बनी है उसको जर्मनी की माँग स्वीकार नहीं है। स्वीकार भी कैसे हो? उस दशा में वह एक छोटा-सा ज़िला भर रह जायगा, जो उसके लिए एक प्रकार की आत्म-हत्या होगी।

इसमें सन्देह नहीं कि जर्मनी की माँग स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार न्यायपूर्ण हो सकती है, परन्तु उसका निर्णय कराने का ढंग अनुचित है। किन्तु जर्मन जैसे प्रथम श्रेणी के राष्ट्र से यह कैसे आशा की जा सकती है कि वह अपने देश के भाग दूसरों की पराधीनता में देख सकेगा। जब तक वह असमर्थ था तब तक उसने सहन किया। परन्तु आज वह समर्थ है और तलवार के बल पर वह अपनी माँग कर रहा है। यदि वर्सेलीज़ का सन्धिपत्र लिखनेवाले यह भूल न करते तो आज यह अवस्था न उत्पन्न होती। परन्तु उन बातों की चर्चा से क्या होना है? यदि योरप को सर्वसंहार से बचाना है तो उसके लिए ब्रिटेन और फ़्रांस को हिटलर का प्रस्ताव स्वीकार करना ही होगा। अन्यथा महासंग्राम तो उन्हें ग्रास करने को सामने उपस्थित ही है। इटली के मुसोलिनी ने भी कह दिया है कि यदि ज़ेचेस्लेवेकिया का पक्ष लेकर कोई राष्ट्र जर्मनी पर आक्रमण करेगा तो वह जर्मनी का साथ देगा। उधर कहा जाता है कि रुमानिया ने रूस से वादा किया है कि वह रूस को ज़ेचोस्लोवेकिया की मदद के लिए अपने देश से सेनायें ले जाने देगा। यह सब जानते हुए भी जर्मनी संगीन चढ़ाये खड़ा है। बस, तोप में बत्ती लगने भर की देर है।

परन्तु इस सिलसिले में ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री युद्ध के रोकने के लिए जो भारी प्रयत्न कर रहे हैं उसकी मिसाल संसार के इतिहास में ढूँढ़ने से भी नहीं मिलती। यदि वे अपने प्रयत्न में सफल हो गये जिसकी बहुत कम आशा है, तो उनका नाम निस्सन्देह सदा आदर के साथ लिया जायगा।

---

२७ वाँ साहित्य-सम्मेलन

शिमला में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का २७ वाँ अधिवेशन धूमधाम के साथ सम्पन्न हो गया। इस बार सम्मेलन के सभापति पण्डित बाबूराव विष्णु पराडकर बनाये गये थे। पराडकर जी महाराष्ट्र होते हुए भी हिन्दी के पूरे विद्वान् ही नहीं हैं, किन्तु उन्होंने उसकी किसी हिन्दी-भाषी की अपेक्षा कम सेवा नहीं की है। यही क्यों, उन्होंने बनारस के 'आज' का ऐसे उत्तम ढंग से सम्पादन किया है कि वे किसी भी अँगरेज़ी-पत्र के सम्पादक के समकक्ष बैठ सकते हैं। ऐसे आदर्श सम्पादक को अपना सभापति बनाकर सम्मेलन ने अपने कर्त्तव्य का ही पालन किया है। सभापति के पद से पराडकर जी ने जो भाषण किया है वह कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने हिन्दी की बात बड़े ओजपूर्ण शब्दों में तर्क के साथ उपस्थित की है। हमें पराडकर जी जैसे स्वाधीनता के आजीवन पुजारी से ऐसे ही ज़ोरदार भाषण की आशा थी। आशा है, उनके कार्यकाल में 'सम्मेलन' अपनी क्रियाशीलता का अच्छा परिचय देगा। इस कांग्रेसी युग में उसे अपना रूप प्रकट करने के लिए अवसर भी प्राप्त है।

कांग्रेस का उत्तरदायित्व

देश के ग्यारह प्रान्तों में नये शासन-विधान के अनुसार शासन-प्रणाली जारी की गई है। इनमें से ७ प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें स्थापित हैं और अभी हाल में आसाम भी कांग्रेस के प्रभाव-क्षेत्र में आ गया है। वहाँ की असेम्बली में कांग्रेस का बहुमत नहीं है; अतएव कांग्रेसी दल ने दूसरे दलों के सहयोग से गंगा-यमुनी मंत्रिमंडल स्थापित किया है। इसी तरह सिन्ध-प्रान्त में भी इसी तरह का अड़ंगा लगा हुआ है। आश्चर्य नहीं कि वहाँ का वर्तमान मुस्लिम-मंत्रिमण्डल भी पूर्णरूप से कांग्रेसदल के सहयोग को ग्रहण कर शासन-प्रबन्ध करे। ऐसी दशा में कांग्रेस का प्रभाव दो अन्य प्रान्तों में हो जायगा और इस प्रकार उसकी प्रतिपत्ति इस दिशा में और बढ़ जायगी।

परन्तु इस उत्तरदायित्व के बढ़ने के साथ साथ कांग्रेस के आगे कठिनाइयाँ भी बढ़ती जा रही हैं। सारे देश में मुस्लिमलीग उसका विरोध करने को तुली ही हुई है। अब जब से मध्य-प्रान्त में डाक्टर खरे को मन्त्रिपद से हटना पड़ा है, महाराष्ट्रों ने विरोध का बवंडर खड़ा कर दिया है। इसी प्रकार मदरास-प्रान्त में कांग्रेस के विरोधी हिन्दी का विरोध उठाये हुए हैं। परन्तु कांग्रेस अपने सिद्धान्त पर अटल है। जब उसने सफलता के साथ अँगरेज़-सरकार का सामना किया है तब ये विरोध तो उसके लिए नगण्य हैं। फिर जब महात्मा गान्धी इतनी सजगता के साथ कड़े विनियमन के सिद्धान्त का मार्ग कांग्रेस के लिए निर्दिष्ट कर रहे हैं तब तो उसको किसी बात का भय ही नहीं रह जाता है। तथापि इतना भारी चौमुखी विरोध उपेक्षणीय भी नहीं हो सकता। परन्तु इसका कोई उपाय भी तो नहीं है। प्रगतिगामी और कुचक्री अपनी चालों से कब बाज़ आये हैं? और यह सारा उत्पात उन्हीं की प्रेरणाओं का फल, है यद्यपि इस समय संसार की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति को देखते हुए इस बात की आवश्यकता थी कि सारा विरोध हटाकर कांग्रेस को सारे देश का नेतृत्व करने का अवसर दिया जाना चाहिए था। परन्तु भारत के लिए ऐसा सौभाग्य नहीं प्राप्त हो सकता। यह वास्तव में बड़े दुःख की बात है।

विलायती पत्रकारों की अज्ञता

संयुक्त-प्रान्त की सरकार की मंत्राणी श्रीमती विजय-लक्ष्मी पंडित जल-वायु के परिवर्तन के लिए योरप गई हैं। ब्रिटेन पहुँचने पर उनके सम्बन्ध में वहाँ के पत्रों ने बड़ी विचित्र बातें छापी हैं। 'न्यूज़ क्रानिकल' ने लिखा है कि 'वे शीर्षासन का अभ्यास करने के बाद अपने नित्य के काम में प्रवृत्त होती हैं।' 'डेली एक्सप्रेस' ने लिखा है कि 'वे अपने माथे पर सिन्दूर की जो बिन्दी लगाती हैं वह जाति का सूचक नहीं है। पहले वह कल्याण का सूचक मानी जाती थी। परन्तु अब वह शृंगार का एक अंग मानी जाती है और रात में धो डाली जाती है।' 'इवनिंग स्टेंडर्ड' ने लिखा है कि 'श्रीमती पंडित विवाह होने के पहले अपने पति से जेल में मिली थीं। विवाह करने के लिए वे जेल से बाहर आई थीं।' स्त्रियों के एक पत्र ने यह छापा है कि 'श्रीमती पंडित की शादी हुए अभी तीन ही वर्ष हुए हैं।' इस असत्य बात का जब प्रतिवाद किया गया तब सम्पादक-विभाग के एक आदमी ने कहा कि 'ऐसा छापना उसके पाठकों के लिए रोचक होगा।' एक रिपोर्टर ने पंडित जवाहरलाल से पूछा कि 'आप अपनी बहन की आँखों का रंग बता दें।' जब श्रीमती पंडित क्रायडन में हवाई जहाज़ से उतरीं तब एक रिपोर्टर ने पंडित नेहरू से कहा कि 'आपकी पत्नी की यात्रा सुखद रही।' उसकी ग़लती बता देने के बाद ही उसने श्रीमती पंडित से पूछा कि 'आपकी पुत्री इन्दिरा का क्या हाल है।' फिर उसकी भूल बताई गई। यह हाल है उस देश के पत्रकारों का जो पत्रकार-कला में संसार का अगुआ माना जाता है।

सिनेमा की उपयोगिता

सिनेमा शिक्षा के प्रचार का एक उपयोगी साधन है, इस सम्बन्ध में अब किसी को सन्देह नहीं रह गया है। यह बात दूसरी है कि संसार की अधिक सभ्य सरकारें उसको उस क्षेत्र में उसका उपयुक्त स्थान नहीं दे रही हैं। परन्तु जो शिक्षा-प्रचार को व्यापक रूप देना चाहते हैं वे उसकी उपयोगिता का बराबर गुणगान करते ही रहेंगे। शिक्षा-सम्बन्धी चलचित्र दिखाने के अनुरागी श्रीयुत बी० एन० घोष ने उस दिन कलकत्ते में उसके सम्बन्ध में एक रोचक भाषण किया है। उन्होंने कहा है कि संसार के सभी देशों ने शिक्षा-प्रचार की पुरानी पद्धतियों को त्याग कर नई विधियों को ग्रहण किया है, परन्तु दुःख है कि हमारा भारत इस सम्बन्ध में अभी पीछे ही पड़ा है—वह भारत जिसमें ३५ करोड़ आदमी निवास करते हैं तथा जहाँ भिन्न भिन्न २२० भाषायें बोली जाती हैं। हमारे समाज के नेता यह जानते हुए भी कि चलचित्रों से शिक्षा-प्रचार में बड़ी सहायता मिलती है, अभी तक शिक्षा-प्रचार की पुरानी पद्धति से ही सन्तुष्ट हैं। यदि हमें देश की व्यापक निरक्षरता दूर करनी है तो उच्च शिक्षा की ओर से अपना ध्यान हटाना होगा। विश्वविद्यालयों को शिक्षा-प्रणाली में ऐसा सुधार करना होगा कि उसकी शिक्षा पाये हुए हमारे युवक स्वावलम्बी हो सकें। और जब तक हमारी यह शिक्षा-प्रणाली असन्तोषजनक है, वहाँ भी शिक्षा-प्रदान के लिए चलचित्रों का प्रयोग होना चाहिए।

हमारे ग्रामीण लोग तो संसार के ज्ञान से एकदम कोरे हैं। उनको चलचित्र दिखाकर हम उनका कितना उपकार कर सकते हैं, यह ज़रा सोचने की बात है। खेती, पशु-पालन, सिंचाई, स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध के चित्र दिखाकर उनकी अभिरुचि इस दिशा में पैदा की जा सकती है।

इस तरह मिस्टर घोष ने अपने भाषण में चलचित्रों की उपयोगिता का वर्णन किया और यह भी कहा कि ऐसे सिनेमा-घर भी शहरों में खोलने चाहिए जिनसे लड़कों और लड़कियों का मनोरञ्जन हो और वे अस्वास्थ्यकर चलचित्रों के देखने से बचाये जायँ। उन्होंने अपने भाषण के अन्त में चलचित्र-द्वारा जर्मनी के नक़ली रेशम के कारबार तथा भारत में रेशम तैयार करने की प्रणाली भी दिखलाई, जिसकी उपस्थित लोगों ने भूरि भूरि प्रशंसा की।

यह सब कुछ ठीक है। और जब तक पाश्चात्य देशों की तरह भारत में सिनेमा और रेडियो का यहाँ की अशिक्षित जनता में ज्ञान-प्रसार करने के काम में प्रयोग नहीं होगा तब तक घोष महोदय जैसे विद्वानों को इस सम्बन्ध में अपना प्रयत्न जारी ही रखना होगा।

संयुक्त-प्रान्त की बाढ़

इस बार वर्षा-ऋतु में संयुक्त-प्रान्त के पूर्वी ज़िलों में बाढ़ ने एक दम गज़ब ढाया है। कहा जाता है कि ४० वर्ष से इधर ऐसी बाढ़ कभी नहीं आई है। बाढ़ का प्रकोप गोरखपुर, बहराइच, गोंड़ा, बस्ती, बलिया के ज़िलों में अति भीषण रहा। इनके सिवा उन्नाव, बाराबंकी, खीरी और गाज़ीपुर के ज़िलों में भी बाढ़ का काफ़ी अधिक प्रकोप रहा। इस बाढ़ का प्रभाव लगभग ७ हज़ार वर्ग मील के भूभाग पर रहा और कोई २५ लाख आदमियों को इस भारी विपत्ति का सामना करना पड़ा। सन्तोष इतना ही है कि प्राणिहानि उसकी भीषणता को देखते हुए अति अल्प हुई है। परन्तु उसके फलस्वरूप बाढ़ के भूभाग के लोगों को तथा पशुओं को जो कष्ट अब भोगना पड़ रहा है वह दारुण है। यदि सरकार ने तत्परता से काम न लिया होता तो आज हज़ारों आदमी और उनके पशु भूखों मर जाते।

बलिया-ज़िले में नदियों के सारे बाँध नष्ट हो गये हैं और वहाँ के कोई एक लाख आदमी गृहविहीन हो गये हैं। बाढ़ ने उनके घरों को ध्वस्त कर दिया है।

बस्ती-ज़िले में ८०० गाँव नष्ट हो गये हैं। वहाँ चालीस हज़ार आदमियों की रक्षा की गई है। ४० हज़ार से अधिक लोग गृहविहीन हो गये है। खेती-बारी तो बिलकुल ही नष्ट हो गई है।

गोरखपुर में १२०० गाँवों को बाढ़ से हानि पहुँची है। ६० बस्तियों का तो चिह्न भी नहीं रह गया है।

गोंडा में ११०० वर्गमील भूमि पर बाढ़ का प्रभाव पड़ा है। और इस भूभाग की क़रीब आधी आबादियाँ नष्ट हो गई हैं।

बहराइच में ६,५०० आदमी गृहरहित हो गये हैं। यातायात की कठिनाइयों के कारण सरकार बाढ़ से पीड़ित स्थानों की पूरी हानि का ब्योरा नहीं प्राप्त कर सकी है, तो भी वह तत्परता के साथ लोगों की सहायता कर रही है, इसके लिए उसने ७५ हज़ार रुपया ख़र्च करने की मंज़ूरी दे दी है। बाढ़ के स्थानों में लोगों को सहायता पहुँचाने के लिए जगह जगह केन्द्र खोले गये हैं, जहाँ लोगों को अन्न और वस्त्र भी दिया जा रहा है। इसके सिवा इस दैवी विपत्ति के समय और क्या किया ही जा सकता है!

ब्रह्मदेश का विद्रोह

एक मुसलमान के धर्मोन्माद की बदौलत ब्रह्मदेश में जो साम्प्रदायिक कलह संघटित हो गया है उसका विवरण समाचार-पत्रों में ब्योरेवार छपता रहा है। इसके फलस्वरूप ५०० भारतीय जान से मारे गये हैं तथा ढाई हज़ार से अधिक लोग घायल हुए हैं। इस संघर्ष में मुसलमान लोग अधिक संख्या में मारे गये हैं, क्योंकि आक्रमण मुसलमानों पर ही अधिक हुए हैं। तथापि हिन्दू भी धोखे में मार खा गये हैं। अब तक दस हज़ार के लगभग भारतीय ब्रह्मदेश छोड़कर भारत चले आये हैं। वहाँ दस लाख के लगभग भारतीय रहते हैं। परन्तु अब जान पड़ता है कि उनका वहाँ रहना सरल न होगा। क्योंकि ब्रह्मदेशीय लोगों का मनोभाव भारतीयों के प्रति अत्यधिक तीखा हो गया है। और अब तो उसने आर्थिक रूप भी ले लिया है। चाहे जो हो, एक अपने पड़ोसी देश के साथ भारतीयों का ऐसा संघर्ष हो जाना अच्छा नहीं हुआ। इसमें सन्देह नहीं है कि परिस्थिति का सुधार करने में वहाँ की सरकार ने आवश्यक प्रयत्न तत्परता के साथ किया है और इस समय भी वह पूर्ववत् व्यस्त है, तथापि संकट-काल में उतनी सावधानी नहीं की गई, अन्यथा भारतीयों के जान-माल की इतनी हानि न होने पाती। इस दिशा में ब्रह्मदेशीय लोकनेताओं का भी कुछ कर्तव्य है। उन्हें भारतीय नेताओं के साथ सहयोग करके पहले का-सा सद्भाव स्थापित करने के लिए यत्नशील होना चाहिए, क्योंकि इन दोनों देशों के बीच सद्भाव का रहना दोनों देशों के हितों के लिए वाञ्छनीय है।

अफ़ग़ानिस्तान की राजनीति

अफ़ग़ानिस्तान इस समय उन्नति के पथ पर अधिक तेज़ी के साथ अग्रसर हो रहा है। शाह अमानुल्ला राष्ट्रीय भाव के जो बीज बो गये हैं और जिसके कारण उन्हें मुल्लाओं की बदौलत अपना राज्य छोड़कर योरप भाग जाना पड़ा वे अब उगते चले आ रहे हैं। अब वहाँ कठमुल्लों तथा प्रतिगामियों की नहीं चल पाती है और वहाँ के वर्तमान शासक राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत होने के कारण अपने देश को समुन्नत करने में संलग्न हैं। सामरिक दृष्टि से ही उसे वे शक्तिमान् नहीं बना रहे हैं, किन्तु आर्थिक दृष्टि से भी वे उसे वैभवपूर्ण करना चाहते हैं। परन्तु इधर उनके कुछ कार्यों से ऐसा जान पड़ने लगा है कि भारत के प्रति पहले का-सा सद्भाव वे नहीं रखना चाहते। कुछ दिन हुए वहाँ के मेवे के व्यापार में ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे जिनसे भारतीय व्यापारियों की पूरी हानि होने की सम्भावना हो गई थी। परन्तु इसका विरोध होने पर वहाँ की सरकार ने समझदारी से काम लिया और वे प्रतिबन्ध हटा लिये गये। अब उसने फिर कुछ निषेधात्मक आज्ञायें जारी की हैं। इनके हो जाने से भारतीय मोटर-ड्राइवर कुछ राजमार्गों से नहीं आ-जा सकेंगे। इसके सिवा वे अफ़ग़ानिस्तान में पाँच दिन से अधिक नहीं रह सकेंगे। यह भी कहा जाता है कि कोई भारतीय बिना ज़मानत दिये वहाँ व्यापार नहीं कर सकेगा और न वहाँ की स्थावर सम्पत्ति पर उसका अधिकार ही माना जायगा। यदि सचमुच वहाँ ऐसी आज्ञायें जारी की गई हैं तो यह दुःख की बात है। अफ़ग़ानिस्तान और भारत का आज का सम्बन्ध नहीं है। फिर भारत में भी कितने ही अफ़ग़ान स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करते हैं। वहाँ की सरकार को इसे भी तो देखना चाहिए। आशा है, भारत-सरकार का ध्यान इस अवस्था की ओर आकृष्ट होगा और अफ़ग़ानिस्तान में व्यापार करनेवाले अपने प्रजाजनों की स्वत्वों की रक्षा करने के लिए वह यत्नवान् होगी।

सरकार की सैनिक नीति

१३ सितम्बर की स्टेट-कौंसिल की बैठक में मदरास के सदस्य सर डेविड देवीदास ने इस आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित किया कि मदरास के लोग भी सेना में भर्ती किये जायँ। सर ए० पी० पात्रो ने यह संशोधन उपस्थित कि

कि मदरास के ही नहीं, सभी प्रान्तों के लोग सेना में भर्ती किये जायँ। अन्य सदस्यों ने प्रस्ताव और संशोधन दोनों का समर्थन किया। दो मुसलमान सदस्यों ने और एक सिक्ख सदस्य ने प्रस्ताव का विरोध किया। प्रधान सेनापति ने भी प्रस्ताव का विरोध किया और श्रेणी के आधार पर ही सेना में भर्ती करने के तरीक़े के उचित ठहराया। फलतः न प्रस्ताव, न संशोधन दो में से एक भी पास नहीं हो सका।

इसमें सन्देह नहीं है कि सरकार की भर्ती-सम्बन्धी फ़ौजी नीति देश के हित की विघातिनी है। देश के कुछ लोगों के ही फ़ौजी सेवा के उपयुक्त समझना देश के साथ अन्याय ही नहीं, किन्तु संकट-काल में उससे देश की ही भारी हानि होने का डर नहीं है, किन्तु स्वयं साम्राज्य के लिए भी कम डर नहीं है। और सो भी उस दशा में जब कि अँगरेज़ी भारत की सीमा के बाहर के पड़ोस के देशों के लोगों के सेना में भर्ती करने में विशेषता दी जाती है। अँगरेज़ राजनीतिज्ञों के यह बताने की ज़रूरत नहीं है कि भारत के अँगरेज़ी साम्राज्य के निर्माण में उन्हीं दाक्षिणी तिलंगों और पूर्वियों ने अपना ख़ून बहाया था जिनकी सन्तानें आज देशी फ़ौजों में भर्ती होने के पात्र नहीं समझी जा रही हैं और उनके स्थान में अँगरेज़ी भारत के बाहर के अफ़रीदी और गोरखे भर्ती किये जा रहे हैं। इस समय भारतीय सेना में कहाँ कहाँ के लोग भर्ती किये जाते हैं, यह बात निम्न आँकड़ों से प्रकट होगी, जिन्हें हमने 'आज' से लिया है—

भारत में साधारणतः ५८-६० हज़ार गोरे सिपाही और १॥ लाख देशी सिपाही हैं। हर साल ३९-४० हज़ार नये गोरे सैनिकों का पार्सल विलायत से आता है। काली फ़ौज में ४५ से ५० हज़ार तक सिपाही हर साल भर्ती किये जाते हैं। इस भर्ती का प्रान्तों के अनुसार लेखा यह है—

सीमा-प्रान्त	५,६००
काश्मीर	६,५००
पंजाब	८६,०००
बिलोचिस्तान	३००
नैपाल	१९,०००
संयुक्त-प्रान्त	१६,५००
राजपूताना	७,०००
मध्य-प्रान्त	२००
बम्बई इलाक़ा	७,०००
बिहार और उड़ीसा	३००
बङ्गाल और आसाम	१००
बर्मा	३,०००
हैदराबाद (दक्षिण)	७००
मैसूर	२००
मदरास	४,०००
फुटकर	१,६००
	कुल १,५८,२००

ऊपर के आँकड़ों से स्पष्ट हो जायगा कि क़रीब दो तिहाई सैनिक पंजाब से लिये जाते हैं।

परन्तु भारत-सरकार की यह नीति राष्ट्रीय भारत के स्वीकार नहीं है और अब जब उसके हाथ में बहुत कुछ शक्ति आ गई है तब वह उसका प्रतिकार करने का उपाय करेगा, क्योंकि एक विशाल राष्ट्र का यह कर्तव्य है कि वह आत्मरक्षा के लिए समर्थ रहे। किराये के सैनिकों से कब किस राष्ट्र की रक्षा हुई है?

भारत-सरकार के फ़ौजी विभाग ने फ़ौज में भर्ती करने का जो श्रेणी-विभाग किया है वह भ्रमपूर्ण है। महासमर के समय जब उसने सभी प्रान्तों से रँगरूट भर्ती किये थे तब तो उसने अपना उक्त श्रेणी-सिद्धान्त ताक़ पर उठाकर रख दिया था। 'आज' के निम्न आँकड़ों से प्रकट होता है कि महासमर के समय कहाँ कितने रँगरूट भर्ती किये गये थे—

मदरास	५१,२२३
बम्बई	४१,२७२
बङ्गाल	७,११७
संयुक्त-प्रान्त	१,६३,५७८
पंजाब	३,४९,६८८
सीमा-प्रान्त	३२,१८१
बिलोचिस्तान	१,७६१
बर्मा	१४,०९४
बिहार और उड़ीसा	८,५७६
मध्य-प्रान्त	५,३७६
आसाम	९४२
अजमेर-मेरवाड़ा	७,३४१
	कुल ६,८३,१४९

इनके अतिरिक्त नैपाल के ५८,९०४ रँगरूट और फुटकर ४,१४,४९३ मिलाकर कुल ११,५६,५४६ सिपाहियों ने महायुद्ध में भारत की ओर से भाग लिया था।

ऐसी दशा में भी यदि प्रधान मन्त्री अपने श्रेणी-सिद्धान्त के अनुसार ही लोगों के सेना में भर्ती करना चाहते हैं तो वे ख़ुशी से करें, परन्तु उनकी यह मनचाही अधिक समय तक न चल सकेगी। राष्ट्रीय भारत बहुत आगे बढ़ आया है, और जब सारे देश की सत्ता उसके हाथ में आ जायगी तब वह इस अन्याय का परिशोध अपने आप कर लेगा।

—

नानाराव पेशवा की कहानी

सन् ५७ के विद्रोह में बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र नानाराव पेशवा ने प्रमुख भाग लिया था। विद्रोह के जो नेता बच निकले थे उनमें एक ये भी थे। इन नेताओं के जीवित रहने के सम्बन्ध में वर्षों तक किंवदन्तियाँ उड़ती रही हैं। झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई के जीवित रहने की बातें आज भी प्रायः कही जाती हैं। ऐसी ही एक ख़बर नानाराव पेशवा के सम्बन्ध में हिन्दी के पत्रों में छपी है, जो इस प्रकार है—

कहते हैं, भावनगर के पास शिहोर नामक एक गाँव है। उस गाँव में दो मील पर पहाड़ की गुफा में शिव जी का एक मन्दिर है। मन्दिर के निकट जगह जगह गुफायें हैं। एक गुफा की रचना तो अत्यन्त सुन्दर है। उस गुफा के अन्दर तप करने के दो स्थान हैं। उनमें बैठकर तप करनेवाले दो मनुष्य एक-दूसरे को नहीं देख सकते। आस-पास के ग्रामों के रहनेवाले दो वृद्धों का कहना है कि इस गुफा में एक साधु रहा करता था—सारे अङ्ग में विभूति रमाये। जिन्होंने उसे देखा है वे कहा करते हैं कि उसके शरीर पर जहाँ-तहाँ तलवार के घाव और बन्दूक की गोली के निशान थे। वे नियत तिथि पर किसी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के घर जाकर अपने पूर्वजों का श्राद्ध किया करते थे।

जब अँगरेज़ों के यह मालूम हुआ कि नाना साहब श्राद्ध-दिवस का नियमित रूप से पालन करते हैं और उस दिन किसी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के घर पहुँच जाते हैं तब उन्होंने घोषणा की कि जो पुरोहित नाना साहब को पकड़वा देगा उसे अधिक से अधिक इनाम दिया जायगा। एक पुरोहित के मुँह में इनाम के लोभ से पानी छूट आया। संयोग की बात, नाना साहब उस साल उसी के घर श्राद्ध करने पहुँच गये। बगुला भगत पुरोहित ने उनका ख़ूब आदर किया और कहा कि ऊपर बैठिए, मैं अभी ब्राह्मणों के बुला कर लाता हूँ। उस लोभी ब्राह्मण ने गोरे अफ़सर के पास जाकर सारी कहानी सुना दी। गोरे अफ़सर ने कहा—ठीक है, तुम्हारे श्राद्ध में पाँच ब्राह्मणों की आवश्यकता रहती है न? तुम पाँच सर्जेण्ट ब्राह्मणों के वेष में ले जाओ। आनन्द में सराबोर होकर पुरोहित घर आया। नाना साहब चौकन्ने रहा ही करते थे। उन्होंने खिड़की से झाँककर देखा कि पुरोहित जी ब्राह्मणों के साथ द्रुत वेग से आ रहे हैं। वे ब्राह्मण नहीं हो सकते। ब्राह्मण के पैरों के लेफ़्ट-राइट की आदत कहाँ? अँगरेज़ ब्राह्मण का रूप धारण कर सकते थे, पर उनके पैरों की जो लेफ़्ट-राइट करने की आदत पड़ गई थी उसे कब छिपा सकते थे? नाना साहब समझ गये कि 'दग़ा' है। चेहरा तमतमा उठा। उन्होंने पुरोहित जी से कहा, देखिए पुरोहित जी! आप अन्दर न आइए। मैं श्राद्ध-विधि जानता हूँ। मैं स्वयं सब कर्म पूर्ण कर लूँगा। ब्राह्मणों के अन्दर भेज दीजिए। ब्राह्मण सोला (रेशमी धोती) पहनकर अन्दर आये। तीव्र दृष्टि से एक बार उन्हें निहार कर नाना साहब बोले—'आइए ब्राह्मण देवता, बैठिए।' ब्राह्मण-रूप में पाँचों अँगरेज़ पटों पर बैठ गये। नाना साहब ने सस्मित कहा, 'कुलश्रेष्ठ! आप श्राद्ध के कर्मों के जानते ही हैं। आँखों में पानी लगाइए और उन्हें बन्द कर लीजिए।' उन्होंने ऐसा ही किया। ब्राह्मणों की आँखें बन्द होते ही नाना साहब [illegible] पाँव घर से निकल गये। जब वे घोड़े पर सवार हो [illegible] तब पुरोहित के बुलाकर कहा—'पण्डित जी, मैं [illegible] हूँ; पर देश-द्रोह करना ब्राह्मणोचित नहीं।'

कहा जाता है कि गुजरात की बूढ़ी औरतें नाना साहब के बनाये गीत गाया करती हैं।

सन् १९२४ में भी महाराष्ट्र में यह अफ़वाह थी कि नाना साहब पेशवा अभी जीवित हैं। सन् १९[illegible] में वे पूरे सौ के हुए थे। इस किंवदन्ती में तथ्य हो सकता है।

—

ओलिम्पिक खेलों में भारत का तिरस्कार

इस बार ओलिम्पिक टूर्नामेंट फ़िनलेंड में होंगे। परन्तु उसके प्रोग्राम में हाकी का खेल नहीं रक्खा गया है, जिसका फल यह होगा कि भारत को उसमें अपना जौहर दिखाने का मौक़ा नहीं मिलेगा। इस सम्बन्ध में दिल्ली के 'हिन्दुस्तान' ने एक महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है, जिसका मुख्यांश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

खेलों का उद्देश्य पारस्परिक सद्भावना बढ़ाना बताया जाता है। इसी लिए अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना को बढ़ाने की दृष्टि से ओलिम्पिक खेलों की योजना की गई है। इस बार के खेल जापान में होनेवाले थे। चीन-जापान-युद्ध के कारण जापान के अपने यहाँ उन खेलों को करने में असमर्थता दिखाने पर वे अब फ़िनलेंड में खेले जायँगे। जो देश अकारण ही दूसरे देश पर आक्रमण कर अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की होली खेलने में लगा हुआ है उसमें ओलिम्पिक खेलों का होना उचित नहीं था। थोड़ा समय होते हुए भी फ़िनलेंड ने अपने यहाँ इन खेलों का प्रबन्ध करना मंज़ूर कर लिया, यह बहुत हर्ष की बात है। लेकिन थोड़ा समय होने का बहाना बनाकर वहाँ की ओलिम्पिक कमिटी ने उन खेलों को कार्यक्रम में से निकाल देने का निश्चय किया है जो अनिवार्य नहीं हैं। इस निश्चय का सीधा असर हाकी के खेल पर पड़ता है। पर एशिया से ओलिम्पिक खेलों में केवल चार देशों के खिलाड़ी शामिल होते हैं। चीन और जापान का युद्ध यदि जारी रहा, जिसके कि समाप्त होने की कोई उम्मीद नहीं, तो यह निश्चित है कि ये दोनों उसमें भाग नहीं ले सकेंगे। बाक़ी रह जाते हैं हिन्दुस्तान और अफ़ग़ानिस्तान। दोनों देशों से हाकी की टीमें ओलिम्पिक खेलों में शामिल होने जाती हैं। हिन्दुस्तान का ओलिम्पिक खेलों में भाग लेने का दारोमदार सिर्फ़ हाकी पर निर्भर है। यदि हाकी ओलिम्पिक खेलों में से निकाल दी जाती है तो हिन्दुस्तान के लिए उनमें भाग लेने का कुछ भी महत्त्व नहीं रह जाता।

हाकी के खेल में हिन्दुस्तान का नाम चमक चुका है। १९३६ के ओलिम्पिक खेलों में, जो जर्मनी में हुए थे, हिन्दुस्तान का गौरव केवल हाकी के खेल की वजह से क़ायम रह सका था। सम्भवतः उसको कुल तीन मार्क मिले थे और वे हाकी के लिए ही मिले थे। इस प्रकार विदेशों में हाकी के खेल में हिन्दुस्तान का सिक्का जम चुका है। उसी खेल को ओलिम्पिक खेलों में स्थान न देकर प्रकारान्तर से हिन्दुस्तान का ही बहिष्कार किया जा रहा है और उसे अपने सर्वश्रेष्ठ खेल में जौहर दिखाने के अवसर से वञ्चित रक्खा जा रहा है।

यदि इँग्लेंड, इटली, जर्मनी या किसी अन्य स्वतंत्र देश की टीम हाकी-खेल में सर्वश्रेष्ठ होती तो यह निर्णय इतनी आसानी के साथ नहीं किया जा सकता था।

यह पहला ही उदाहरण नहीं है। इँग्लेंड में क्रिकेट के खेल को लेकर हिन्दुस्तान के विरुद्ध एक आन्दोलन शुरू हो चुका है। हिन्दुस्तान की आबहवा को इँग्लेंड के क्रिकेट के खेल के लिए भयावह बताया जा रहा है। कहा जा रहा है कि इँग्लेंड के खिलाड़ी हिन्दुस्तान की विपरीत आबहवा में आकर निकम्मे हो जाते हैं। उनमें 'बाउल' करने की वह ताक़त नहीं रहती। एम० सी० सी० से यह अनुरोध किया जा रहा है कि हिन्दुस्तान में इँग्लेंड के खिलाड़ियों का जाना बन्द कर दिया जाय और अगली सर्दियों में आनेवाली टीम के कार्यक्रम को रद कर दिया जाय।

हिन्दुस्तान के प्रति खेलों के मैदान में भी घृणा और उपेक्षा का व्यवहार होना उसकी ग़ुलामी का ही अभिशाप है। मदरास के शिक्षा-मंत्री श्री सुब्बारायन इस वर्ष क्रिकेट-बोर्ड के प्रधान चुने गये हैं। उनका कर्त्तव्य है कि वे खेलों के मैदान में राष्ट्रीय अभिमान को जागृत करें, अन्तर्राष्ट्रीय खेलों में हिन्दुस्तान के गौरव की रक्षा करें। वैसे यह ज़िम्मेवारी भारत-सरकार पर है। लेकिन उससे कुछ उम्मीद रखना वृथा है। जो सरकार उपनिवेशों में रङ्ग-भेद के कारण हिन्दुस्तानियों के प्रति होनेवाले अपमानपूर्ण अन्याय का प्रतिकार नहीं कर सकी वह खेलों के मैदान में होनेवाले अन्याय, अपमान एवं तिरस्कार का प्रतिकार क्यों करने लगी?

भारत में मोटरकार-निर्माण करने का प्रश्न

अभी हाल में केन्द्रीय असेम्बली में उस दिन एक प्रश्न के उत्तर में सरकार के व्यवसाय-सदस्य ने साफ़ कह दिया है कि भारत में मोटर-गाड़ियाँ नहीं बनाई जा सकतीं। परन्तु यत्नशील लोग अपने प्रयत्न में लगे हुए हैं। इस सम्बन्ध में श्री मिहिरचन्द्र धीमान ने 'जाग्रति' में एक लेख लिखकर अच्छा प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—

मदरास प्रान्तीय कांग्रेस-सरकार के शिल्पकला और वाणिज्य-विभाग के सचिव श्री वी० जी० गिरी इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि भारत में मोटरकार का निर्माण होने लगे। इसके लिए सरकार के सामने उन्होंने एक पुख़्ता तजवीज़ भी पेश की है। उनका कहना है कि यदि इस तजवीज़ को कार्यरूप में लाया जाय तो पाँच सीटोंवाली बीस हज़ार मोटरें हर साल तैयार की जा सकती हैं। श्री गिरी जी ने एक बार फिर भारत में मोटरकार-निर्माण के प्रश्न को ख़ूब गरम कर रक्खा है। शीघ्र ही राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस के सभापतित्व में कांग्रेस-सरकारें सात प्रान्तों के शिल्पकला-विभाग के मन्त्रियों की एक सभा भी इसी प्रश्न पर विचार करने के लिए करने जा रही हैं।

मोटरकार-निर्माण करने का प्रश्न भारतवर्ष में इससे पहले भी कई बार उठ चुका है। कुछ ही वर्ष व्यतीत हुए, एक बंगाली नवयुवक ने कलकत्ते में मोटरकार-निर्माण करने का काफ़ी प्रयत्न किया था। कलकत्ता-कारपोरेशन ने अपने फ़ण्ड से उस नवयुवक की सहायता भी की थी। हज़ारों बंगाली भाइयों ने इसका ख़ूब विज्ञापन भी किया। मोटरकार के तैयार हो जाने पर कारपोरेशन के कतिपय आफ़िसरों के सामने इसका प्रदर्शन भी कराया गया।

इसी प्रकार कुछ दिन हुए बम्बई से भी ख़बर आई कि मोटरकार बनाने के लिए एक बड़ी भारी फ़ैक्टरी खोली जा रही है। करोड़ों रुपये ख़र्च किये जायँगे। लेकिन यह मनसूबा भी उसी प्रकार विचारसागर की तरङ्गों की तरह उत्पन्न होकर वहीं विलीन हो गया। अब आशा की जा रही है कि इस दफ़ा कामयाबी प्राप्त होकर ही रहेगी।

यह बता देना अप्रासंगिक न होगा कि हमारे देश में प्रतिवर्ष प्रायः २०,००० मोटर योरप से आते हैं और उनके लिए कोई छः करोड़ के लगभग रुपये प्रत्येक वर्ष देश से बाहर भेज दिये जाते हैं। जो स्कीम श्रीयुत वी० जी० गिरी ने अपने अन्य अनुभवी साथियों की सहायता से रक्खी है, अगर कामयाब हो जाय तो हमारे देश में हर साल बीस हज़ार पाँच सीटर मोटर तैयार हो सकेंगे और छः करोड़ सालाना की बचत होगी। साल में छः करोड़ रुपयों का देश में रह जाना इस ग़रीब देश के लिए कोई मामूली बात नहीं है।

हमारे भाग्यविधाताओं का कहना है कि भारत का वातावरण मोटर तैयार करने के उपयुक्त नहीं। क्योंकि ग्रीष्म-प्रधान देश होने की वजह से पेंट ठीक नहीं हो सकता, स्टील प्लेटें ख़राब हो जाते हैं, आदि आदि बहाने बनाये जाते हैं। ख़ाली मोटरकारों का ही सवाल नहीं, रेल के इंजन भी यहाँ नहीं बनाये जा सकते, विदेशों से आते हैं। समुद्र में चलनेवाले जहाज़ भी यहाँ नहीं बनाये जा सकते। स्काटलेंड की एक कम्पनी भारत में रेलवे इंजन निर्माण करने के लिए आई, टाटा नगर में उसने कारख़ाना खोल दिया और लाखों रुपये के इंजन बनाने की मशीनरी विलायत से मँगवा कर खड़ी कर दी। लेकिन उसे भी इंजन बनाने की आज्ञा नहीं मिली। जब आज्ञा प्राप्त होने की आशा में कई वर्ष बीत गये तब बेचारी विवश होकर मालगाड़ियाँ तैयार करने में लग गई। आख़िर में हताश होकर उसे अपना सब कुछ ई० आई० आर० को सँभलवाकर स्काटलेंड की राह लेनी पड़ी।

धन्यवाद दो, बीसवीं शताब्दी के लङ्गोटबन्द बाबा महात्मा गांधी को जो एक चरख़े को हाथ में लिये हुए खद्दर की महत्ता दिखा रहा है और देशवासियों का ध्यान देश की ओर लगा रहा है। आज इसी ध्यान का फल है कि खाँड बनाने का मसला हल हो चुका है, सैकड़ों चीनी के कारख़ाने खुल चुके हैं। अब सीमेंट की पारी है। सेठ रामकृष्ण डालमियाँ की कृपा से अब यह कमी भी दूर होती जा रही है। डालमियाँनगर आबाद हो रहा है। काग़ज़ बनाने के कारख़ाने खुलते जा रहे हैं। अब बाज़ारों में स्वदेशी वस्तुएँ सस्ती और विलायती की तरह सुन्दर, साफ़ प्राप्त होने लग गई हैं। देश की काया पलट चुकी है, फिर कोई वजह नहीं कि अब मोटरकारें न बनाई जा सकें। जिस देश में टाटा कम्पनी जैसी कम्पनी खोली जा सकती है, लाखों टन लोहा तैयार किया जा सकता है, जिस देश में क़ुदरत की ओर से पेटरोल के चश्मे बह रहे हैं, जो मोटरकार की असली ख़ूराक है और लाखों रुपये बर्मा शेल कम्पनी बना रही हो, जिस देश में विलायत की डनलप कम्पनी आकर अपना कार-

ख़ाना खोलकर टायर्स बना रही हो, उस देश में कहना कि मोटरकार का बनाना मुश्किल है, सरासर बेवक़ूफ़ी है।

ट्रिनीडाड के भारतीय प्रवासी

भारत इस समय अपनी राजनैतिक बेबसी से मुक्त होने की लड़ाई लड़ रहा है और वह सफलता के मार्ग पर बढ़ा चला जा रहा है। इसी से उसका ध्यान दूसरी बातों की ओर उतना नहीं जाता है। ऐसी अनेक बातें हैं जिनकी ओर हमारे नेताओं को अपना पूरा ध्यान देना चाहिए, परन्तु वे लाचार हैं। ध्यान देने के योग्य जो बातें हैं उनमें एक प्रवासियों की समस्या है, जिसका निराकरण करने के लिए प्रवासियों को अपने बल पर ही इस समय लड़ना पड़ रहा है। ज़ंज़ीबार की लौंग के व्यवसाय की समस्या को कांग्रेस ने ज़रूर अपने हाथों में लिया था, परन्तु दक्षिण-अफ्रीका, केनिया तथा अन्य उपनिवेशों की समस्याओं का निराकरण करने के लिए कांग्रेस के पास समय ही नहीं है। उदाहरण के लिए ट्रिनीडाड की ही बात लीजिए। वहाँ की श्रमिक-समस्या की मीमांसा करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने एक शाही कमीशन नियुक्त किया है, जिसके सभी सदस्य अँगरेज़ हैं। उसमें एक भी भारतीय नहीं लिया गया है, यद्यपि उसे जाँच करनी है उन्हीं मज़दूरों की जिनमें अधिकांश भारतीय लोग ही हैं। कहा जा सकता है कि वहाँ ऐसे योग्य भारतीयों का अभाव है। परन्तु यह बात भी नहीं है। यद्यपि वहाँ के अधिकांश भारतीय खेतों में मज़दूरी करते हैं या ख़ुद अपने खेतों में खेती करते हैं, तथापि ऐसे भी कुछ भारतीय हैं जो काफ़ी सम्पन्न हैं और जिन्होंने अपने लड़कों को उच्च शिक्षा भी दिलाई है। इन लोगों में से कोई भी एक कमीशन का सदस्य बनाया जा सकता था और उस दशा में कमीशन को जाँच-पड़ताल करने में विशेष सुविधा भी हो जाती। परन्तु ऐसा नहीं किया गया। इसमें सन्देह नहीं है कि ट्रिनीडाड के भारतीय मज़दूरों की अनेक शिकायतें हैं और आशा है कि इस शाही कमीशन के सामने वे दृढ़ता से रक्खी जायँगी, परन्तु यदि इस सम्बन्ध में भारत से भी उनके मामले में प्रभावात्मक ढंग का ज़ोर डाला जाय तो वहाँ के प्रवासी भारतीय मज़दूरों की शिकायतें भले प्रकार दूर हो सकती हैं।

पशुओं की रक्षा

'इम्पीरियल कौंसिल आफ़ अग्रीकल्चरल रिसर्च' ने एक योजना तैयार की है, जिसके अनुसार पशुओं के रोगों की जाँच हो रही है। यह योजना सन् १९३२ में जारी की गई थी और सन् १९४० तक जारी रहेगी। सन् १९३२ में बिहार, मध्य-प्रदेश, पंजाब, बम्बई और हैदराबाद में पशुओं के रोगों की जाँच करनेवाले अधिकारी नियुक्त किये गये थे। बाद को वैसे ही अधिकारी अन्य प्रान्तों में भी नियुक्त किये गये। ये अधिकारी मुक्तेश्वर के इन्स्टिट्यूट में विशेष शिक्षा देकर भिन्न भिन्न प्रान्तों में भेजे गये थे। ये प्रत्येक प्रान्त के वेटेरिनेरी डायरेक्टर के निरीक्षण में रक्खे गये और उनके तत्त्वावधान में रहकर इन्होंने अवश्य जाँच-पड़ताल की। उनकी सूचनाओं के आधार पर मुक्तेश्वर में समुचित विचारकर पशुओं के रोगों का निराकरण किया गया। उक्त अधिकारियों ने पशुओं के खाद्यों की भी जाँच-पड़ताल की और वह भी उन्हें दोषपूर्ण मालूम हुई। इस जाँच-पड़ताल से प्रकट हुआ है कि यहाँ के घरेलू पशुओं में कई तरह के छूत के रोग फैले हुए हैं। इन रोगों के फल-स्वरूप गत वर्ष ३,१८,८५५ पशु और ३७,५१३ भेड़ें मर गईं। उन अधिकारियों का यह भी कहना है कि पशुओं को उपयुक्त चारा नहीं दिया जाता है और इस त्रुटि के भी कारण वे छूत के रोगों के शिकार हो जाते हैं। ये अधिकारी अपनी जाँच के समय लोगों को पशुओं के रोगों और उनको उपयुक्त ढंग से रखने के सम्बन्ध में उपयुक्त सूचनायें भी देते रहे हैं। निस्सन्देह सरकार के इस विभाग का यह प्रयत्न श्लाघ्य है और यद्यपि यह अभी उतने व्यापक पैमाने पर नहीं हो रहा है, तथापि इस जाँच का परिणाम इस देश के घरेलू पशुओं की रक्षा के सम्बन्ध में अन्त में लाभकारी ही सिद्ध होगा।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD.

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

नवम्बर १९३८ } भाग ३९. खंड २ संख्या ५. पूर्ण संख्या ४६७ { कार्तिक १९९५

अन्तर्वासी*

लेखक, श्रीयुत सुधीन्द्र बी० ए०, साहित्यरत्न

अन्तर्वासी ही है वह रे ?
जो मेरा अस्तित्व जगाता देकर छिपे परस [illegible]

अरे वही इन विलोचनों पर
अपना जादू डाल डालकर
हृदय-विपंची के तारों पर
देता समुद पुलक-पीड़ा के,
विविध गीतस्वर छेड़-छेड़ रे।
अन्त०

स्वर्ण और [illegible]
नीले अं[illegible]
माया क[illegible]
और स्तरों में से जि[illegible]
जिनको छू छूकर जात[illegible]

[illegible]वर
[illegible]लेकर
बनाता,
[illegible]पने प्यारे चरण दिखाता
अपने को भूल भूल रे ?
अन्त०

आते हैं, जाते हैं वासर
बीत रहे युग एक एक कर
पर वह क्रीड़ाकार निरन्तर
घुमा रहा है मेरा अन्तर
कितने नाम-रूप धर धरकर।
फूट फूट पड़ती अगणित हो जिससे हर्ष-विषाद-लहर रे ! अन्त०

* महाकवि रवीन्द्रनाथ की गीताञ्जलि के ७२ वें गीत का अनुवाद।

कबीर साहब

लेखक, पण्डित वेंकटेशनारायण तिवारी

३०० साल से कुछ ज़्यादा अरसा गुज़रा, जब हमारे मुल्क के एक बहुत बड़े महात्मा इस दुनिया को छोड़कर स्वर्ग को सिधारे थे। उनका नाम महात्मा कबीरदास था और आज दिन भी लाखों की तादाद में उनके शागिर्द मौजूद हैं। इस जमात का नाम कबीरपंथी जमात है। कबीरपंथियों का सबसे बड़ा स्थान काशी के पास मगहर है। यहीं पर कबीरदास जी ने आज से ३०० साल पहले शरीर छोड़ा था। यहीं पर इनकी समाधि अब तक बनी हुई है। हिन्दू कहते हैं कि काशी में मरने से वैकुंठ मिलता है, लेकिन मगहर में मरने से सब पुण्य, सब सवाब, नष्ट हो जाते हैं। लेकिन कबीरदास जी इस ख़याल के न थे। उन्होंने कहा है—

"जो कबिरा कासी मरे रामहिं कौन निहोर"

इसलिए कहते हैं कि कबीरदास जी मरने के समय काशी छोड़ मगहर चले गये थे।

कुछ दिन हुए, मैं काशी से कबीरदास जी की समाधि देखने की ग़रज़ से मगहर* गया। धूप थी, इसलिए समाधि के दर्शन करने के बाद दूर एक पेड़ की छाया में जाकर बैठ गया और गर्मी और थकावट की वजह से झपकी लग गई। थोड़ी देर में मैंने देखा, एक बहुत वृद्ध साधु—ज़ईफ़ फ़क़ीर—एक तख़्त पर बैठे हुए हैं। मैं उस तख़्त के पास जाकर बैठ गया। मैंने पूछा कि महाराज, क्या आप ही कबीरदास जी हैं। उन्होंने कहा, हाँ। मैंने कहा, अगर बेअदबी न हो तो मुझे आप बतायें कि आपके हिन्दुस्तान में और आज-कल के हिन्दुस्तान में क्या भेद है?

"तुम कौन हो? यहाँ क्या करने आये हो?"

मैंने कहा—मैं एक यात्री हूँ।

"हिन्दू हो या मुसलमान?"

मैंने जवाब दिया—मैं न हिन्दू हूँ, न मुसलमान। मैं तो हिन्दुस्तान की ख़ाक का बना हुआ एक हिन्दुस्तानी पुतला हूँ—

"जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, यामें दो न समाहिं॥"

यह आप ही का तो वचन है।

कबीरदास जी ने फ़रमाया—ठीक है। मेरा जन्म एक हिन्दू घराने में हुआ था, लेकिन परवरिश मेरी हुई एक जुलाहे के घर में। मैंने रामानन्द जी से वैष्णव-धर्म की दीक्षा पाई और मानिकपुर के सूफ़ी फ़क़ीर शेख़ तक़ी के भी उपदेश सुने। मेरे लिए राम-रहीम में कोई फ़र्क़ नहीं है। दिल की सफ़ाई, ईश्वर में लगन और ख़ुदा के बन्दों की ख़िदमत—इन्हीं तीन का सहारा लेकर जो ज़िन्दगी के समुन्दर को पार करने की हिम्मत करेंगे वे ज़रूर पार कर जायँगे, चाहे वे बीच में ही डूब जायँ या किनारे पर जा निकलें। डूबि गये तो पार हैं, पार भये तो पार।

मैंने फिर बड़े अदब से पूछा—आपको यह दुनिया छोड़े ३०० साल हो गये और छोड़ने के पहले आपने इस मुल्क में १२० साल तक दिन और रात का निरन्तर उलट-फेर होते देखा। मेहरबानी करके बताइए, तब के और अब के हिन्दुस्तान में क्या फ़र्क़ है।

महात्मा ने फ़रमाया—मैं जब १३ साल का था तब पानीपत की लड़ाई में दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी ने शिकस्त खाई और वहीं उसकी मौत हुई। उसके बाद बाबर हिन्दुस्तान के बादशाह हुए। मेरे ज़माने में इब्राहीम लोदी, बाबर, हुमायूं, शेरशाह, इस्लामशाह, मुहम्मद अदलशाह, फिर हुमायूँ और उसके बाद अकबर और अकबर के बाद जहाँगीर—यानी १२० साल के अरसे में मैंने १० बादशाहों को गद्दी पर बैठते देखा। इनमें से बाबर, शेरशाह और अकबर ने हिन्दुस्तान की सयासी तवारीख़ में अपना नाम ऐसी क़लम और स्याही से लिखा है कि ज़माने की रफ़्तार उनके नामोनामी के हुरूफ़ों को न मिटा और न धुँधला कर सकेगी। लेकिन मुझे सयासी मामलात से न तब कुछ सरोकार था और न अब कुछ सरोकार है। मैं तो इस दुनिया में था ज़रूर, लेकिन इस दुनिया का न था। मेरी दुनिया तो निराली दुनिया थी। मेरे कानों में तो रात-दिन अनहद के डंके की चोट गूंजा करती थी।

*यह स्थान बस्ती और गोरखपुर के बीच में है।—लेखक।

[...]ही दरबार की तमन्ना न थी, मैं तो साईं के दरबार पहुँचने के लिए पागल हो रहा था। इस सबके होते हुए भी, मोटे तौर से, पिछले ३०० साल में हिन्दुस्तान में या दुनिया के और हिस्सों में जो तबदीलियाँ हुई हैं उनका ज़िक्र करना फ़िज़ूल है, क्योंकि राह चलता हुआ भी मोटे मोटे फ़रक़ों को तो आसानी से देख सकता है। यह सही है कि तब न रेल थी, न हवाई जहाज़ थे, न मोटर थी, न टेलीफ़ोन। कपड़े के तुम्हारे कारख़ानों को देखकर मुझे हैरत होती है। लेकिन उनके होते हुए भी चर्ख़े और करघे की तरफ़ हिन्दुस्तानियों के रुझान को देखकर मुझे कुछ तसल्ली होती है। अपने करघे पर अपनी बीबी के साथ मैंने "झीनी झीनी बीनी [...] चदरिया"—वह बावजूद झीनी झीनी होने के आज भी हिन्दुस्तान में बरक़रार बनी हुई है, क्योंकि उसका ताना प्रेम का ताना है और बाना [...]ाई पीर है।

[कबीर साहब]

मेरे ज़माने में पंडितों और मुल्लाओं की बेहद पूजा होती थी। छोटी छोटी उम्र की लड़कियों की शादियाँ होती थीं। छुआछूत का दौरदौरा था, बेकस विधवायें सती होती थीं। हिन्दू-मुसलमानों के मज़हबी तफ़रिके को मिटाने की शाहंशाह अकबर ने जो कोशिश की थी उससे मुझे यह उम्मेद हो चली थी कि हिन्दुस्तान के बाशिन्दे मज़हब को ख़ुदा की इबादत का ज़रिया समझने लगेंगे न कि ख़ुदा के बन्दों में भेद-भाव की उसे कसौटी करार देंगे। लेकिन तुम्हारे हिन्दुस्तान को देखकर मुझे अफ़सोस होता है। क्या आज-कल के हिन्दुस्तानी उस अकबर के हम-वतन हैं जिसने हिन्दू और मुसलमान में कभी कोई भेद न माना? ख़ुदा के कुछ बन्दे आज भी इस मुल्क में मौजूद हैं जो इस मज़हबी आग को बुझाने में हर तरह से कोशिश कर रहे हैं।

महात्मा यहाँ पर रुक गये। थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोले—हिन्दुस्तान का जो कोढ़ मेरे ज़माने में जैसा था वह वैसा ही आज भी नज़र आता है, उसमें कमी नहीं हुई है।

मैंने पूछा—कौन सा कोढ़?

जवाब मिला—अंत्यजों का—दलित जातियों का। जात-पाँत में मुझे कभी विश्वास न था। मैंने उसके ख़िलाफ़ जहाद की। हर तरह उसे मिटाने की कोशिश की। लेकिन अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि वह कोढ़ आज भी वैसा ही यहाँ पर नज़र आता है। मैंने कहा था, 'जाति

प्रीति जाने ना कोय। हरि का भजे सो हरि का होय। हरि से हरिजन बड़ा है, क्योंकि एक के पूजन से मुक्ति मिलती है और दूसरे की सेवा करने से हरि मिलते हैं। हिन्दुस्तान में जब तक ऊँच-नीच मौजूद रहेंगे तब तक उसकी भलाई के दिन दूर हैं। सिर्फ़ इस मुल्क में यही रोग नहीं फैला है। दुनिया इसका शिकार है। सब आदमी समान हैं—न कोई छोटा है न बड़ा।

आज-कल के हिन्दुस्तानियों पर मग़रबी ख़्यालात का काफ़ी असर दिखाई देता है। सयासी मामलात में बहुत कुछ तबदीली पिछले तीन सौ साल में हो चुकी है। लेकिन दुनिया आज कगार पर खड़ी है। मौत के बाजे बज रहे हैं, न जाने किस वक्त भूचाल आये और कगार दुनिया के बहुत बड़े हिस्से के साथ घसीटती हुई अँधेरे खड्ड में गिर कर नेस्त नाबूद हो जाय। ऐसे ज़माने में मर्दों की ज़रूरत है, और मर्द तो वही है जो लीक छोड़कर नये रास्ते पर चलने के लिए तैयार हो। "सायर सिंह सपूत" तो लीक पर नहीं चला करते। और वीर तो वह है जो तीर तुपुक से नहीं लड़ता।

तीर तुपुक से जो लड़े, सो तो वीर न होय
सूरा नाम कहाय के, का डरपत है वीर
मर रहना मैदान में सन्मुख सहना तीर

अभी मैंने तुम्हें बताया था कि मौजूदा ज़माने में जब हर वक्त मौत के डंके के बजने का ख़तरा है, हिन्दुस्तान को और दुनिया को ज़रूरत है उन लोगों की जो जान को हथेली पर रखकर दूसरों की ख़िदमत में अपने को क़ुर्बान करने के लिए तैयार हों—

वीरा सोइ कहावई जो जाने पर पीर
जो पर पीर न जानई सो का क़ाफ़िर बेपीर।

लेकिन सच्चा वीर कायर नहीं होता। उसको अपनी जान की ममता नहीं होती। उसे तो मेरे इस वचन को न भूलना चाहिए—

मरना है तो मर जाइए छूटि परे जंजाल।
ऐसा मरना को मरे दिन में सौ सौ बार॥

ज़रूरत है इस वक्त दुनिया को उन लोगों की जो इस दुनिया को बचाने के लिए हर तरह की क़ुर्बानी के लिए तैयार हों। मैंने एक बार कहा था—

सूली ऊपर घर करे विष का करे अहार।
काल ताहि का का करे आठ पहर तैयार॥

मैंने पूछा—आपकी राय में हम क्या करें जिससे हमारी बढ़ती हुई दिक़्क़तें रफ़ा हो जायँ?

जवाब मिला—तुम्हारी दुनिया अपने ज़माने की ग़ुलाम है। आज-कल रोज़गारियों का बोलबाला है। भलाई और बुराई का ज़ोरों का सौदा चारों तरफ़ नज़र आता है। नफ़े और नुक़सान की धुन में अमीर और ग़रीब, छोटे और बड़े, पागल हो रहे हैं। सौदा करनेवाले सौदाई हो रहे हैं। और तुम्हारे ज़माने को सौदे की बीमारी है। वह यह भूल जाते हैं कि यह दुनिया ख़ाला का घर नहीं है। यह तो घर है प्रेम का। और इसमें पैर रखने का वही हक़दार है जो अपनी हस्ती को मिटाने के लिए तैयार है—

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं
सीस काट भुहिं माँ धरै, तब पैठे इहि माँहिं
सीस का भुहिं में धरै, तापर राखै पाँव
दास कबीरा यों कहे, ऐसा होय तो आव

लेकिन प्रेम और अभिमान, मोहब्बत और घमंड एक साथ नहीं रह सकते। जो लोग—

चाखा चाहें प्रेम रस राखा चाहें मान

वे ख़ुदा के बन्दों की न सच्ची ख़िदमत कर सकते हैं और न दीन-दुनिया को सँभाल सकते हैं। मोहब्बत में अदलाबदल की गुंजाइश नहीं है। प्रेम की पाटी में लक्षा ला आज तक कोई नहीं लिख सका। उसमें तो सिर्फ़ दद्दा दा लिखा जाता है।

तन दे मन दे, नेह न दीजै जान

महात्मा ख़ामोश हो गये। ध्यान करने लगे। मेरे देखते देखते महात्मा-सिंहासन दोनों ही बादलों से घिर गये और थोड़ी देर में हवा का एक झोंका आया और बादलों को उड़ा ले गया। जहाँ महात्मा बैठे थे वहाँ एक टोकरी में फूल दिखाई दिये। उनकी ख़ुशबू इस दुनिया की न थी, वह दूसरी दुनिया की याद दिलाती थी—कबीर का यह दोहा दूर से रह रह कर मेरे कानों में गुंज जाता था—

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल

शिमला में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

लेखक, श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल, एम० ए०

नागपुर से मदरास और मदरास से शिमला जाकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने अपनी व्यापकता और राष्ट्रीयता पूरे तौर से सिद्ध की है। अन्य प्रान्तों के साहित्य-सम्मेलन केवल अपने अपने प्रान्तों की भाषा और साहित्य की चिन्ता करते हैं, किन्तु हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-द्वारा देश भर में जाग्रति और राष्ट्रीय भावना फैलाकर अद्वितीय और गौरवशाली संस्था बन गया है। यही कारण है कि हमारे देश के क़रीब सभी बड़े-बड़े नेता सम्मेलन के कार्य से सहानुभूति रखते हैं और समय समय पर उसमें सक्रिय भाग भी लेते हैं। जिस सम्मेलन के अध्यक्ष-पद को हिन्दुस्तान के अधिनायक और मार्गदर्शक महात्मा गांधी भी दो बार सुशोभित कर चुके हैं उसको राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हो जाना स्वाभाविक ही है। फिर टण्डन जी जैसे धुरीण देशभक्त सम्मेलन के प्राण हैं तब सम्मेलन का राष्ट्रीयता की सजीव मूर्ति बन जाना सर्वथा उपयुक्त ही है।

शिमला तो आज ब्रिटिश साम्राज्यशाही की राजधानी है। भारत की नङ्गी-भूखी जनता से दूर रहकर अँगरेज़-सरकार यहीं से हिन्दुस्तान का 'कल्याण' करती रहती है। ऐसी अवस्था में सम्मेलन का शिमला-शैल पर बुलाया जाना एक महत्त्वपूर्ण बात है। इससे प्रकट होता है कि लोकतन्त्र और राष्ट्रीय भावना देश में दिन दिन बढ़ रही है और साम्राज्यशाही अथवा नौकरशाही के पैर धीरे धीरे उखड़ रहे हैं। इस सम्बन्ध में विशेष आश्चर्य की बात तो यह है कि शिमला-अधिवेशन के बहुत से उत्साही कार्यकर्त्ता अँगरेज़-सरकार के विभिन्न विभागों के क्लार्क थे। फ़ौजी मुहकमा तक बाक़ी न बचा था। आख़िर हिमालय ही तो भारत की संस्कृति का जनक है। उसी हिमालय की गोद में फिर हमारी संस्कृति और राष्ट्रभाषा का विकास होना ठीक ही है। गंगा माता ने हिमाञ्चल से जन्म लेकर भारतवर्ष को पवित्र और पुण्यभूमि बनाया है। सम्मेलन के शिमला-अधिवेशन-द्वारा हिमालय की गोद से ही राष्ट्रभाषा की निर्मल गंगा वैभव-सहित बह निकली है।

सौभाग्य से सम्मेलन को श्री पराडकर जी जैसे सभापति भी मिल गये। महाराष्ट्रीय होते हुए भी उन्होंने जिस लगन से हिन्दी की सेवा की है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। हिन्दी की प्राचीन परम्परा के हिमायती होते हुए भी वे व्यापक राष्ट्रीयता से परिपूर्ण हैं। सौजन्य और सेवा-भाव उनमें कूट कूटकर भरा हुआ है। पिछले दो वर्षों से कुछ हिन्दी-सेवियों में इस बात का असन्तोष था कि सम्मेलन कांग्रेसी नेताओं के हाथों में जा रहा है। किन्तु इस वर्ष पराडकर जी के सभापति चुने जाने से वह ग़लतफ़हमी दूर हो गई है और सारे हिन्दी-प्रेमियों को सन्तोष और समाधान हुआ है।

स्वागत-समिति ने जिस सेवा-भाव और सहृदयता से काम किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। पञ्जाब के लोग तो आतिथ्य-सत्कार के लिए मशहूर ही हैं। सब कार्यकर्त्ताओं ने तन, मन, धन से सम्मेलन को सफल बनाने की कोशिश की। तो भी इस वर्ष के अधिवेशन में व्यवस्था और समय की पाबन्दी की काफ़ी कमी रही। इस कमी के लिए हम सभी ज़िम्मेदार थे। कम से कम समय की पाबन्दी का ख़याल रखना तो बहुत ज़रूरी है। आशा है कि भविष्य में इस ओर विशेष ध्यान दिया जायगा।

* * *

श्री पराडकर जी ने अपने अभिभाषण में हमारा ध्यान कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की ओर खींचा। नागरी लिपि के गुणों का विवेचन उन्होंने बड़ी सुन्दरता से किया और लिपि-सुधार के बारे में भी कई उपयोगी सूचनायें उपस्थित थीं। राष्ट्र-भाषा हिन्दी के स्वरूप के विषय में भी अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया। 'हिन्दुस्तानी' के नाम से जिस भाषा का प्रयोग किया जा रहा है उसकी कड़ी आलोचना की। श्री पराडकर जी ने कहा कि "हमारी राष्ट्रभाषा का नाम हिन्दी ही होना चाहिए और उसकी प्रवृत्ति भी हिन्दी यानी हिन्द की होनी चाहिए।" शब्दों के बारे में उनका मत था कि "हमारी भाषा में अन्य देशी व विदेशी भाषाओं के शब्दों का बहिष्कार न होना चाहिए। जितना ही अधिक हमारा शब्द-भांडार होगा, उतनी ही अधिक हमारी भाषा शक्तिशाली और समृद्ध बनेगी। लेकिन राष्ट्रभाषा के

[पण्डित बाबूराव विष्णु पराडकर]

नाम पर हिन्दी से संस्कृत शब्दों को चुन चुन कर निकालने और अरबी-फ़ारसी के शब्दों की भरमार करने की प्रवृत्ति सर्वथा निन्दनीय है। अन्य भाषाओं के जो शब्द हिन्दी में लिये जायँ वे हमारी भाषा में एकरस हो जाने चाहिए, अर्थात् उनकी ध्वनि और व्याकरण हिन्दी के अनुसार ही कर लिया जाय।"

हिन्दी-लिपि, भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में साहित्य-परिषद् के अध्यक्ष डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा जी ने भी मँजी और मुहावरेदार भाषा के कई सुन्दर और गम्भीर विचार व्यक्त किये। उन्होंने साफ़ साफ़ कहा कि हिन्दी और उर्दू में ज़मीन-आसमान का अन्तर है और उनका साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में मिलना असम्भव है, क्योंकि "हिन्दी-लिपि, शब्द-समूह तथा साहित्यिक आदर्श वैदिक काल से लेकर अपभ्रंश काल तक की भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत हैं, और उर्दू-लिपि, शब्द-समूह तथा साहित्यिक आदर्श हिन्दी-प्रदेश में कल आये हैं और अभारतीय दृष्टिकोण से लबालब हैं।" डाक्टर वर्मा ने दृढ़तापूर्वक अपनी राय प्रकट की कि "हिन्दियों की साहित्यिक सांस्कृतिक-

[डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, डि० लिट्०]

भाषा केवल हिन्दी है और हो सकती है"। भाषा की शैली के बारे में उनका मत है कि भाषा को अनावश्यक रूप से क्लिष्ट बनाना उचित नहीं है। किन्तु साथ ही शैली का नाश करके तथा साहित्यिक अभिरुचि को तिलांजलि देकर साहित्य को नीचे उतारने के पक्ष में भी वे नहीं हैं, क्योंकि "साहित्यिकों का चरम उद्देश्य तो समाज को ऊपर उठाना है।"

* * *

राष्ट्रभाषा-प्रचार का महत्त्व दिन दिन बढ़ता जा रहा है और साथ साथ हिन्दी और उर्दू बोलनेवाली जनता में ग़लतफ़हमियों के जाल भी फैलते जा रहे हैं। इसलिए हमें इस सम्बन्ध की सब बातें स्पष्टरूप से समझ लेना ज़रूरी है। इन्दौर के अधिवेशन में यह निश्चय हुआ था कि "राष्ट्रभाषा की दृष्टि से हिन्दी का वह स्वरूप मान्य समझा जाय जो हिन्दू, मुसलमान, आदि सब धर्मों के ग्रामीण और नागरिक व्यवहार करते हैं, जिसमें रूढ़ सर्व-सुलभ, अरबी, फ़ारसी, अँगरेज़ी या संस्कृत शब्दों या मुहावरों का बहिष्कार न हो और जो नागरी या उर्दू-लिपि में लिखी जाती हो।" यह निश्चय अब भी क़ायम है।

[श्री सत्यनारायणसिंह एम० एल० ए०
स्वागतकारिणी के अध्यक्ष]

[इतिहास-परिषद् के अध्यक्ष
श्री जयचन्द्रजी विद्यालंकार]

हाँ, इस वर्ष शिमला-अधिवेशन में साहित्यिक हिन्दी के सम्बन्ध में एक और महत्त्व का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है, जो यह है—"इस सम्मेलन के विचार में हिन्दी के आधुनिक साहित्य-निर्माण के लिए ऐसी भाषा उपयुक्त है जिसका परम्परागत सम्बन्ध संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से है, जिसकी शक्ति कबीर, तुलसी, सूर, मलिकमुहम्मद जायसी, रहीम, रसखान और हरिश्चन्द्र की कृतियों से आई है और जिसके पारिभाषिक शब्द प्राकृत अथवा संस्कृत के क्रम पर ढाले गये हैं, किन्तु जिसमें विदेशी रूढ़, सुलभ और प्रचलित शब्दों का भी स्थान है।"

उक्त दो प्रस्तावों के आधार पर हमारा निवेदन संक्षेप में इस प्रकार है—

(१) हिन्दी वह भाषा है जो अनेक बोलियों के रूप में संयुक्त-प्रान्त, महाकोशल, राजस्थान, मध्यभारत, बिहार, दिल्ली और पूर्वी पञ्जाब की आम जनता की मातृभाषा है। इस भाषा का वर्तमान साहित्यिक रूप खड़ी बोली है। इस भाषा का परम्परागत सम्बन्ध संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं से है। किन्तु इसमें अरबी, फ़ारसी, अँगरेज़ी इत्यादि भाषाओं के रूढ़, सुलभ और प्रचलित शब्दों को भी स्थान है। इसी हिन्दी का राष्ट्रभाषा की दृष्टि से प्रचार करना चाहिए।

(२) उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं है। वह हिन्दी की ही एक शैली है, जिसमें अरबी और फ़ारसी के शब्दों की बहुलता है। राष्ट्रभाषा की इस शैली को भी हम मान्य करेंगे, लेकिन इसका प्रचार करने की आवश्यकता नहीं है।

(३) राष्ट्रभाषा की उस शैली का प्रचार करना चाहिए जिसमें न तो संस्कृत और न अरबी-फ़ारसी के कठिन शब्दों की भरमार हो। आसान और प्रचलित शब्दों का ही उपयोग करना चाहिए।

(४) राष्ट्रभाषा से अन्य प्रान्तीय व विदेशी भाषाओं के उपयोगी, सुलभ व प्रचलित शब्दों का बहिष्कार न किया जाय। किन्तु वही शब्द अपनाये जायँ जिनको हम स्वाभाविकता से पचा सकें। विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं व अरबी-फ़ारसी के शब्दों को किसी विशेष अनुपात में मिलाकर एक कृत्रिम भाषा बनाना मूर्खता होगी।

(४) राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए देवनागरी और फ़ारसी दोनों लिपियाँ स्वीकार की जायँ। लेकिन देवनागरी लिपि श्रेष्ठ है। इसलिए उसी का प्रचार किया जाय।

राष्ट्रभाषा-प्रचार में यही स्पष्ट नीति होनी चाहिए। कुछ लोग शायद उर्दू की शैली और लिपि को राष्ट्रभाषा हिन्दी का अङ्ग न मानना चाहेंगे। लेकिन हिन्दी की व्यापकता को बनाये रखने के लिए यह ज़रूरी है कि हम

[विज्ञान-परिषद् के अध्यक्ष,
श्री फूलदेवसहाय वर्मा]

[कवि सम्मेलन के अध्यक्ष,
कविवर पण्डित गयाप्रसाद शुक्ल सनेही]

उर्दू का बहिष्कार न करें, बल्कि उसे भी हिन्दी की विशाल संस्कृति और भाषा में शामिल कर लें। उसका प्रचार करना या न करना दूसरी बात है।

* * *

इस वर्ष भी विभागीय या श्री काका साहब के शब्दों में 'अभागी' परिषदें पुराने ढर्रे के मुताबिक़ ही हुईं। नाटक की तरह दो दो घंटे के बाद एक दृश्य समाप्त होता था, जिसमें स्वागताध्यक्ष और अध्यक्ष के भाषण ही मुख्य होते थे। लेकिन अब समय आ गया है कि सम्मेलन गम्भीरतापूर्वक सोचकर इन परिषदों का ठीक तौर से संगठन करे, क्योंकि ये परिषदें सम्मेलन का ठोस अंग हैं। सम्मेलन के अध्यक्ष का भाषण तो सर्वसाधारण के लिए होता है। अध्यक्ष भी ऐसे पुरुष चुने जाते हैं जिनसे देश में सम्मेलन का वैभव बढ़े। लेकिन ये विभागीय परिषदें तो साल भर तक अपने अपने क्षेत्र में ठोस और रचनात्मक काम करने के लिए ही होनी चाहिए। नहीं तो फिर सम्मेलन में कुछ सुन्दर और भाव-पूर्ण प्रस्ताव पास करने के सिवा हम क्या करते हैं? साहित्य-परिषद् को ही लीजिए। यह परिषद् सम्मेलन का एक मुख्य अंग होनी चाहिए। सम्मेलन का काम राष्ट्र-भाषा का देश में प्रचार करना अवश्य है। किन्तु हिन्दी-साहित्य की अवहेलना करना क्या उचित है? क्या वर्ष में दो घंटे का समय इस परिषद् के लिए काफ़ी है? दूर दूर से हमारे साहित्यिक सम्मेलनों में आते हैं और चाहते हैं कि आपस में मिलकर कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार-विनिमय करें। लेकिन उनको बिलकुल निराश होकर लौट जाना पड़ता है। सम्मेलन का अधिकांश समय हिन्दी-प्रचार की चिन्ता में ही खप जाता है। क्या हम अपने साहित्य और साहित्यिकों की इसी प्रकार उपेक्षा करके राष्ट्रभाषा हिन्दी का गौरव बढ़ा सकेंगे?

विभिन्न विभागीय परिषदों का हमारी समझ में नीचे लिखे अनुसार संगठन होना आवश्यक है—

प्रत्येक परिषद् को स्थायीरूप देने के लिए यह ज़रूरी है कि जो सज्जन उस परिषद् के विषय में दिलचस्पी रखते हों उनको उसका सदस्य बनाना चाहिए। यह सदस्य प्रत्येक वर्ष अपनी कार्य-समिति और उपाधिकारियों को चुन लिया करें। प्रत्येक परिषद् को अपने अपने क्षेत्र में लगातार क्रियाशील रहना चाहिए। वर्ष भर का कार्य-विवरण सम्मेलन के अधिवेशन के समय सुनाया जाना चाहिए। प्रत्येक परिषद् को देश की अन्य प्रान्तीय भाषाओं के अपने क्षेत्र के साहित्य से परिचय बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए और कभी कभी अपनी बैठकों में अन्य प्रान्त के विद्वानों को भी विचार-विनिमय के लिए आमंत्रित करना चाहिए। साल भर में प्रत्येक परिषद् की कई बैठकें होनी चाहिए।

हर एक परिषद् के सामने बहुत-से महत्त्व के प्रश्न

[महिला-परिषद् की अध्यक्ष—श्रीमती कमलाबाई कीबे]

उपस्थित हैं, जिनका हल होना आवश्यक है। साहित्य-परिषद् को सुरुचिपूर्ण साहित्य का निर्माण और प्रचार करना है, नाटक के क्षेत्र में साहित्य को प्रोत्साहन देना है, साहित्यालोचन को एक गम्भीर कला बनाना है, उच्च-कोटि के साहित्य के प्रकाशन का प्रबन्ध करने की आवश्यकता है।

विज्ञान-परिषद् को पारिभाषिक शब्दों के निश्चय का काम शीघ्र ही हाथ में लेना चाहिए। जहाँ तक हो सके भिन्न प्रान्तीय भाषाओं के (जिनका संस्कृत से सम्बन्ध है) एक-से ही पारिभाषिक शब्द हों। गाँवों के प्रचलित शब्दों को भी उचित स्थान देना चाहिए। विज्ञान-साहित्य का निर्माण करना और प्रामाणिक विदेशी भाषाओं की पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद कराना चाहिए। ग्रामीण जनता के लिए उपयोगी साहित्य भी तैयार करना चाहिए, जिससे गाँव के लोगों को विज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो सके।

इसी प्रकार इतिहास और दर्शन-परिषदों को भी अपने अपने क्षेत्र में बराबर क्रियाशील रहने की आवश्यकता है।

पत्रकार-परिषद् को हिन्दी के दैनिक पत्रों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। हिन्दी-भाषियों की अधिक संख्या होते हुए भी अन्य भाषाओं के दैनिक व साप्ताहिक पत्रों की अपेक्षा हिन्दी-पत्रों की दशा शोचनीय है। पत्रकार-परिषद् का कर्तव्य है कि जनता में हिन्दी-पत्रों के प्रचार के लिए आन्दोलन करे। पत्रों का स्टेन्डर्ड भी ऊँचा उठाने की पूरी कोशिश करनी चाहिए।

कवि-सम्मेलन के बारे में भी दो शब्द लिखना ज़रूरी है। साधारणतः कवि-सम्मेलन के समय ही सबसे अधिक भीड़ रहती है। क्या इसलिए कि सब लोग कविताओं को गम्भीरतापूर्वक सुनने आते हैं? दर असल तो कवि-सम्मेलन जनता के लिए एक तमाशे और विनोद की चीज़ बन गये हैं। जो लोग ऊँची आवाज़ में अच्छे ढंग से गा सकते हैं उन्हीं की 'वाह' 'वाह' होती है। जिसके पास गाने की कला नहीं उसकी कविता चाहे कितनी ही उत्कृष्ट हो, कवि-सम्मेलनों में उसको कोई नहीं सुनता। यह उचित नहीं है। केवल गाने की कमी के कारण हम अपने अच्छे कवियों का अनादर नहीं कर सकते। जब तक साधारण जनता की इसी प्रकार भीड़ रहेगी तब तक वर्तमान स्थिति सुधर नहीं सकती। इसका यह मतलब नहीं कि कविता जन-साधारण के लिए नहीं होनी चाहिए। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि हर एक व्यक्ति कविता की कला को गम्भीरतापूर्वक नहीं समझ सकता, और अधिक भीड़ हो जाने से व्यवस्था में गड़बड़ हो जाता है।

कवि-सम्मेलनों में कविता के विषय के ऊपर प्रतिबन्ध लगाना भी ठीक नहीं है। सब कवियों से हम यह आशा नहीं कर सकते कि उनकी कवितायें केवल देश-भक्ति से भरी हों। हर एक व्यक्ति की भिन्न भावनायें होती हैं। उनको ज़ाहिर करने के लिए उसे पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। हाँ, ख़याल केवल इतना ही रखना चाहिए कि कविता में सुरुचि हो, भद्दापन अथवा अश्लीलता न हो।

× × × ×

अगला सम्मेलन बनारस में होगा। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को नागरी-प्रचारिणी सभा ने ही जन्म दिया है और उसी ने सम्मेलन को बनारस में आमंत्रित किया है। यह आनन्द की बात है। आशा है, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और नागरी-प्रचारिणी सभा का यह प्रेम-मिलन दोनों संस्थाओं के लिए हितकर होगा।

नेता

लेखक, श्रीयुत दयानन्द गुप्त बी० ए०, एल-एल० बी०

सेठ दामोदरदास दामले अपने आफ़िस में बैठे दैनिक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। उनके आफ़िस के तीन कमरे थे। पहला कमरा क्लर्कों के लिए था, दूसरा उनके प्राइवेट सेक्रेटरी तथा तीसरा उनके बैठने के लिए था। आगन्तुक को उनसे भेंट करने के लिए दो कमरे पार करके जाना पड़ता था। प्रातःकाल के सात बजे होंगे। गर्मी का मौसम था। सात बजे भी क़ाफ़ी दिन चढ़ आता है। उनकी मेज़ पर कई पत्र—अँगरेज़ी, हिन्दी, उर्दू तथा मराठी के पड़े हुए थे। उस समय उनकी आँखें एक अँगरेज़ी दैनिक के सम्पादकीय वक्तव्य पर पञ्जाब-मेल की रफ़्तार से दौड़ रही थीं। इसके बाद उन्होंने शीर्षक पंक्तियाँ तथा कहीं कहीं बीच से कुछ पंक्तियाँ पढ़ डालीं। इसी प्रकार कई पत्र बाँच डाले। लेकिन वे पत्रों का व्यावसायिक स्तम्भ अवश्य पढ़ लेते थे, क्योंकि यह उनका पैतृक गुण था। इसके बाद उन्होंने पत्रों की गिन गिन कर तह बनाई। अनेक पत्र थे—दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, साहित्यिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा मिश्रित। इन पत्रों की तह बना डालने के बाद उन्होंने कमरे के चारों ओर सजे हुए सामान पर दृष्टि दौड़ाई तथा सन्तोष की एक निश्वास छोड़ी। समाचार-पत्रों का सारांश, मुख्यांश, भावांश तथा रसांश ग्रहण करने के बाद उनका अपने कमरे की सजावट पर ध्यान गया। भैरवनृत्य करने की मुद्रायुक्त आबनूसी दीपक-वृक्ष कमरे के एक कोने में रक्खा हुआ था। उड़ते हुए पक्षियों के चित्र, झील के सूर्योदय और सूर्यास्त के चित्र तथा राकाइन्दु पर सिन्धु-उन्माद के चित्र आदि उनकी कक्षा की दीवारों से टँगे हुए थे। एक नग्न-रमणी-सौन्दर्य की प्रतिमा भी ऊँचे डेस्क पर खड़ी हुई थी। कमरे के ठीक मध्य में महात्मा गांधी का हँसता हुआ चित्र उनके आदर्श तथा राजनैतिक सिद्धान्तों को व्यक्त कर रहा था। नील कादम्बनी के रङ्ग के रँगे हुए पर्दों पर आँखें मारते हुए तारों के फूल हँस रहे थे। उनके नीचे नाचते हुए मोरों की भङ्गियाँ विलक्षण छवि ग्रहण कर रही थीं। मेज़ पर ताज़े प्रभात की सुरभि में मदहोश पुष्पदान की महक कमरे में बसी हुई थी। सेठ दामले एक बार अपने सौभाग्य पर सिहर उठे। वे प्रान्तीय शासन-मशीन के डायनमो थे। हिटलर के प्रोपेगेन्डा मन्त्री की अपेक्षा उनकी वाणी में प्रभाव और शक्ति कम नहीं थी। मिनिस्ट्री के कार्यों का प्रकाशन तथा प्रशंसा उनका प्रमुख कर्त्तव्य था। इस समय क्लर्कों के कमरे में अकेला टाइपिस्ट और दूसरे कमरे में उनका प्राइवेट सेक्रेटरी बैठे हुए थे। उन्होंने अपनी कलाई की घड़ी में समय देखते हुए प्राइवेट सेक्रेटरी से प्रश्न किया—

"मिस्टर नीलकण्ठ, आप आज के व्याख्यानों के लिए तैयार ही होंगे।"

"केवल एक व्याख्यान रह गया है—संगीत-परिषद् के लिए।"

"इस विषय से मैं बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। क्या समय दिया गया है?"

"कल ८ बजे सायंकाल।"

"आज कहाँ कहाँ जाना होगा और किस किस समय पर? डायरी देखिए तो।"

डायरी देखकर नीलकंठ ने कहा—सबसे पहले किसान सभा में ९ बजे, महावीरदल में १० बजे, रेलवे वर्कर्स असोसियेशन में १०½ बजे, मज़दूर-सभा में ११ बजे, दलितोद्धार-समिति में ११¾ बजे, ब्वायस्काउट्स असोसियेशन में १२ बजे जाना होगा। इसके बाद आराम और फिर श्रीयुत विजयकर राव के यहाँ भोज में जाना होगा।

"अच्छा फिर?"

"एक लम्बी व्याख्यानमाला—म्यूनीसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में ऐड्रेस ४ बजे तक, स्वदेशी-संघ में ४-१५ बजे, एन्टीकरप्शन सोसायटी में ४-३० बजे, सोशलिस्ट-लीग में ५ बजे, नागरीप्रचार-मण्डल में ६ बजे, धर्म-समाज

में ६-३० बजे, और फिर ७ बजे सायंकाल से ९½ बजे तक आज़ाद-पार्क में भाषण।

"ओह!"

"कल फिर आज का-सा चक्र। वही प्रचार, व्याख्यान और भाषणों का पिष्टपेषण, संवाददाताओं से मग़ज़पच्ची इन्टरव्यू, मुलाक़ात और काग़ज़ी कश्तियों की यात्रा।"

"यह तो सदैव लगा रहेगा, जब जीवन का ध्येय ही देश-सेवा बनाया गया है।"

"परन्तु सेठ जी बच्चे तरसते हैं हमसे बात करने को और हम उनसे। आपने तो अपने हृदय से कोमलता, ममता और स्नेह-सरसता निकाल कर फेंक दी है।"

"तुम्हारी भी सब कचकचाहट जाती रहेगी। धैर्य के साथ देश की सेवा करते रहो। प्रारम्भ में मेरा भी मन घबराता था और कभी कभी सार्वजनिक जीवन निष्प्राण, निराकर्षक तथा परीक्षाप्रद मालूम होता था। पर अब त्याग की पवित्रता ने दुर्बलताओं को दूर कर दिया है।"

"यह कहने में तो सुन्दर है, लेकिन वास्तव में धोखा है। इस तरह हम अन्याय करने के लिए अपनी नींव बना लेते हैं। अपनी पत्नी और सन्तति के प्रति भी हमारा कुछ कर्तव्य है।"

"हमें मानव मानव में विभिन्नता और अन्तर पैदा करने का अधिकार कहाँ है? अपने सम्बन्धियों को औरों से अधिक प्रेम करने का हमें कोई हक़ नहीं।"

नीलकण्ठ ने उत्तर देने के लिए मुँह खोला ही था कि डाकिये ने आवाज़ दी। टाइपिस्ट उन दोनों की बातों को बड़े ग़ौर से सुन रहा था। डाकिये की आवाज़ सुनकर वह चौंक कर खड़ा हो गया। डाकिये ने आकर नीलकण्ठ के सामने मेज़ पर लिफ़ाफ़ों व पत्रों का ढेर लगा दिया। उसने पत्र खोलने प्रारम्भ कर दिये। अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को पत्रों में व्यस्त होते देखकर सेठ जी ऊपर नाश्ता करने चले गये।

सेठ जी के छः या सात साल की एक कन्या थी। उनके केवल एक मात्र यही सन्तान थी। वह सेठ जी को देखते ही उनकी टाँगों से लिपट गई और कोई कहानी सुनाने के लिए अनुरोध करने लगी। सेठ जी ने टालने की ग़रज़ से कहा—"अच्छा कल तुम्हें एक बढ़िया कहानी सुनाऊँगा।"

"न, मैं तो अभी सुनूँगी।"

"नहीं बेटा, मुझे ज़रूरी काम से शीघ्र ही बाहर जाना है।"

"आप बाहर सबको रात-दिन कहानी सुनाते रहते हैं। फिर हमें क्यों नहीं सुनाते?"

"कल तुम्हें भी सुनायेंगे।"

"आप तो कल भी यही कहते थे।"

"लेकिन अब कल ज़रूर ही सुना देंगे।"

"मैं तो आज ही सुनूंगी।"

"अच्छा रात को सुनायेंगे।"

सेठ जी की पत्नी पिता-पुत्री का संलाप ध्यान से सुन रही थी। बच्ची की आँखों में आँसू छलछलाते देखकर उससे न रहा गया और उसने सेठ जी से भर्त्सना के मीठे शब्दों में कहा—"हम दोनों तुम्हारे लिए भटक गये हैं। लेकिन यह तो नादान बच्ची है। इसका जी रख दो। ज़्यादा से ज़्यादा दो-चार मिनट लगेंगे।"

"तुम्हीं न कोई कहानी सुना दो।"

"मैं तो रोज़ ही सुनाती रहती हूँ, लेकिन यह मानती नहीं। देखो, इसकी आँखों में आँसू भर आये हैं।"

पुत्री को पुचकारते हुए सेठ जी ने कहानी कहनी प्रारम्भ की—"एक पीपल पर एक गिद्ध रहता था। वह अन्धा था, लेकिन था बहुत ही ईमानदार और साहसी। उसी पीपल के तने में कोटर था, जिसमें एक तोते का जोड़ा और उनके बच्चे रहते। गिद्ध बुड्ढा हो गया था और तोते उसे दबाकर खाने को दे दिया करते थे।"

× × × ×

सेठ जी का नाश्ता समाप्त हो आया था और वे खाते हुए कहानी कहते जा रहे थे। इतने में उनके सामने नौकर आकर खड़ा हो गया। उन्होंने पूछा—"क्या है?"

"जवाबी तार आया है।"

"चलो, आ रहा हूँ।" सेठ जी ने अन्तिम ग्रास मुँह में देकर पानी पिया और नीचे जाने को उठ खड़े हुए। उन्होंने लड़की को पुचकारकर कहा—"बेटा, बाक़ी कहानी लौट कर सुनाऊँगा।" यह कह कर सेठ जी चले गये।

सेठ जी को आया देखकर उनके प्राइवेट सेक्रेटरी ने कहा—"यह तार विनायक राव जी आप्टे का आया है। पूछते हैं कि वर्किंग कमिटी की मीटिंग ४ मई को है। आप किस ट्रेन से आयेंगे?"

"गर्मी के मौसम में रात का सफ़र ठीक रहता है। लिख दीजिए, हम सवेरे पूना पहुँचेंगे। और दूसरा ?"

"वह दूसरा विश्वनाथ कालेलकर का है। उन्होंने भी आपको नागपुर-विश्वविद्यालय की सीनेट की मीटिंग में भाग लेने को बुलाया है। महत्त्वपूर्ण चुनाव होगा।"

"हमारी संख्या सीनेट में वैसे ही बहुत अधिक है। मेरी क्या आवश्यकता है? इस चुनाव में शरीक़ होना इतना ज़रूरी नहीं! लिख दीजिए, समय नहीं, क्षमा चाहते हैं।"

"अब यह अन्तिम तार रहा। ट्रेड-यूनियन के जनरल सेक्रेटरी देसाई जी का है। उन्होंने आपको १५ मई के लिए मौजूदा हड़ताल के सम्बन्ध में भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया है।"

"हाँ, बम्बई की कई मिलों में स्ट्राइक है। लेकिन समय होगा तभी तो जा सकूँगा। ज़रा डायरी तो देखकर बताइए।"

डायरी देखकर नीलकण्ठ ने कहा—"बिलकुल समय नहीं है।"

"तो लिख दीजिए कि हम समयाभाव के कारण असमर्थ हैं।"

"इन लोगों को इतना भी ख़याल नहीं कि दूसरों के भी कुटुम्ब है, पत्नी और सन्तान हैं। उन लोगों का भी कोई हक़ है। उनको भी एक मिनट छोड़ना नहीं चाहते।"

"रहने दीजिए। इन बातों की कोई ज़रूरत नहीं। हम लोग देश के सेवक हैं। ज़रा डायरी मुझे तो दीजिए।"

सेठ जी ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी से डायरी लेकर स्वयं देखना आरम्भ कर दिया। डायरी देखने के बाद उन्होंने कहा—"बेशक १५ मई को समय तो नहीं है, लेकिन मध्याह्न के बाद हमारा भोज का प्रोग्राम है। उसमें सम्मिलित न होकर वहाँ पहुँच सकते हैं। आप लिख दीजिए कि मैं आऊँगा। महाशय खोटे जी से क्षमा-याचना कर लीजिए, मैं भोज में सम्मिलित न हो सकूँगा।"

"बहुत अच्छा" कह कर नीलकंठ ने उनकी आज्ञा का पालन करना आरम्भ कर दिया और सेठ जी ऊपर कपड़े पहनने चले गये।

इस समय ८½ बज चुके थे। ऊपर पहुँचते ही सेठ जी की कन्या ने बाक़ी कहानी समाप्त कर देने का आग्रह करना शुरू किया। सेठजी कपड़े पहनते जाते थे और कहानी कहते जाते थे। उन्होंने कहा—

"गिद्ध इतना दुर्बल था कि वह उड़ नहीं सकता था। चिड़ियों की कृपा से उसके दिन सुख से बीत रहे थे। जब चिड़ियाँ दिन में अपने बच्चों को अकेला छोड़कर भोजन लाने के लिए उड़ जाती थीं तब वह गिद्ध उनके बच्चों की देख-भाल किया करता था। एक दिन एक बिल्ली उधर आ निकली। उसने चिड़ियों के बच्चों को फुदकते हुए देखा तब उनका कोमल मांस खाने के लिए उसकी जीभ तड़प उठी"।

× × ×

सेठ जी कहानी कह ही रहे थे कि उनका नौकर सामने आकर खड़ा हो गया। उसने कहा—"किसान सभा के 'नेता' नीचे आपकी प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं।"

एक बार फिर अपनी बच्ची को प्यार-भरे शब्दों में किसी और समय कहानी सुनाने का दिलासा देते हुए कपड़े शीघ्रातिशीघ्र पहनकर सेठ जी नीचे चले गये। उनकी बच्ची और पत्नी हृदय थामकर रह गईं। सेठ जी को कहानी पूरी करने को अवकाश ही न था। सार्वजनिक जीवन पराया हो जाता है, अपना नहीं रहता।

सेठ जी शाम को एक घंटे की जगह आध घंटे के लिए ही अपने घर आसके। वैसे तो वे अपने समय के बड़े पाबन्द थे, लेकिन जलसों का भारतीय समय ठहरा, पाँच पाँच मिनट की देर होते होते शाम तक आध घंटे की देर हो ही गई। उन्होंने जल्दी जल्दी खाना खाया। उनकी पुत्री कहानी कहने का आग्रह करती ही रह गई और वे चले गये। रात्रि को १०-२० पर घर लौटे। मा-बेटी दोनों सो गई थीं। सेठजी ने उन्हें जगाना उचित न समझा और वे भी सो गये।

सवेरे फिर और दिनों की तरह उन्होंने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी से दिन का कार्य्य-क्रम मालूम किया। आज उन्हें संगीत-विषय पर भाषण करना था, जो उनकी योग्यता के बाहर था। इसमें उनका दख़ल न था और वे बहुधा राजनीति, आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं पर ही बोला करते थे। लेकिन नेताओं से तो जनता सब विषयों के ज्ञान की आशा करती है और नेतागण भी अपने को सब कार्य्यों में नेता गिनने लगते हैं। उन्होंने अपने सेक्रेटरी से कहा—"संगीत विषय का भाषण किस प्रकार तैयार किया जाय?"

"मिस्टर गांगुली की जो नई पुस्तक कल आई है उसे देख जाइए या किसी का गाना सुनकर अपनी कल्पना कर लीजिए।"

सेठ जी ने कुछ विचार करने के बाद कहा—"संगीत-परिषद् के मन्त्री को ८-२० बजे सायंकाल का समय सूचित कर दो। मैं ८ बजे भाषण नहीं प्रारंभ कर सकूँगा।"

"जो आज्ञा"—सेक्रेटरी ने उत्तर दिया।

दिन भर के भारी कार्य्य के बाद सन्ध्या आई। भोजन करके सेठ जी ने अपनी पत्नी से प्यार-भरे शब्दों में कहा—"आज तुम्हारा संगीत सुनने को जी कर रहा है।"

पत्नी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"अहो भाग्य!"

सेठजी ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"समय ही नहीं मिलता कि दो-चार मिनट भी तुम्हारे पास बैठकर बात-चीत कर सकूँ। सार्वजनिक जीवनवालों को अपने साथ अन्याय करना पड़ता है।"

"और अपने सम्बन्धियों के साथ भी। सच जानो, तुम्हारे लिए मेरा हृदय कितना उत्कंठित रहता है! तुम हमें कितना भूल गये हो!" यह कहने के बाद उसके नेत्र डबडबा आये।

"नहीं, भूला नहीं, किन्तु विवश हूँ। मैं भी मनुष्य हूँ, हृदय रखता हूँ, पर संसार की सेवा का व्रत धारण कर चुका हूँ। तुम्हें भी अपना यही आदर्श रखना चाहिए।"

"और अपने कुटुम्ब के प्रति तुम्हारा कोई कर्त्तव्य नहीं। मुझे जीवन-सहचरी बनाते समय मुझसे ही प्रतिज्ञायें ली थीं और क्या स्वयं कोई वचन नहीं दिया था? परमार्थप्रेमी को किसी दूसरे को बन्धन में बाँधना ही नहीं चाहिए।"

"तुम्हें तो मैंने मुक्त कर रक्खा है, लेकिन तुम्हीं इस चहारदीवारी से बाहर नहीं जाना चाहतीं। तुम भी इस गृह के अँधेरे से निकलकर इस संसार के प्रकाश में क्यों न आ जाओ?"

"मेरे इस गृह से बाहर आने पर यहाँ अँधेरा हो जायगा। मेरे यहाँ रहने से अँधेरा नहीं, प्रकाश रहता है। लेकिन जब मैं ही यहाँ रहती हूँ, तुम्हीं क्यों न अपना कार्य-क्रम मेरा-सा बना लो। झगड़ा ही समाप्त हो जाय।"

"और देश की सेवा?"

"यह सब ढोंग है। जो कुछ पर अन्याय करते हैं वे दूसरों पर कैसे न्याय कर सकते हैं?"

"आज शास्त्रार्थ का समय नहीं है। मेरे ये आनंद के क्षण अमूल्य हैं। मैं इन्हें नीरस बातों में नष्ट नहीं करना चाहता हूँ। चलो कुछ गाना सुनाओ।"

सेठजी ने यह कहा ही था और वे अन्दर के कमरे में जानेवाले ही थे कि उनकी कन्या ने कहानी पूरी कर देने का आग्रह किया। मा-बाप की बात-चीत वह ध्यान से सुन रही थी और उसने कोई बाधा नहीं डाली थी, लेकिन अब उसका चपल शिशु-धैर्य देर तक कहानी टलते देखकर रुक न सका। एक बार गाना प्रारम्भ हो जाने पर न जाने कितना समय लगता, अतः उसने टोकना ही उचित समझा। पर इस बार मा ने झिड़क दिया।

गाना प्रारम्भ हुआ हारमोनियम के साथ। उसके स्वर में आज माधुरी घुस गई थी। उसके हर्ष का वारापार न था। उसने बहुत दिनों के बाद आज अपने प्रिय पति के कहने से गाया था। हृदय के सरस स्रोत सूख चुके थे, लेकिन आज उनमें अचानक उन्माद-ज्वार आगया था। सचमुच वह अपने प्राणों के स्वर फूँक रही थी। सेठजी गाने में तन्मय हो रहे, लेकिन वे गाने के प्रभाव से उत्पन्न विचारों को स्मृति-बद्ध करना नहीं भूले थे। व्याख्यान का भूत उनके सिर पर सवार था। वे गाना सुन रहे थे, लेकिन सोच कहीं और ही रहे थे। आनन्द के प्रवाह में अविराम गति से बहने का भी उनका भाग्य न था, क्रूर काल उन पर मन ही मन हँस रहा था। उन्होंने अपने विचार अंकित करने के लिए चुपके से काग़ज़-पेन्सिल उठा ली और संक्षिप्त नोट लेना शुरू कर दिये। उनकी पत्नी मीड़ की लहरी में नयन-निमीलित किये हुए डूब रही थी।

उसने नेत्र खोले तब सेठजी को काग़ज़ पर कुछ लिखते हुए देखा। उसका एकदम यह भाव हुआ कि वे केवल उसका मन बहला रहे हैं और उन्हें गाना नहीं सुनना है, अपना कार्य करना है। गाने का तो उन्होंने

एक वहाना उसे प्रसन्न करने के लिए निकाला है। उस समय वह गा रही थी—

'हाय तुम कैसे विमोही !
आज रुक जाओ निश्चय घर
यों न जाओ प्राणमोही ।

कि उसका कण्ठ एकाएक सिसकियों से रुद्ध होगया। आँसू आँखों में उतर आये। स्वरतार अनायास टूट गया। यह देखकर सेठ जी स्तम्भित रह गये। उन्होंने तत्काल खड़े होकर उसका हाथ पकड़कर पूछा—"क्यों, तुम्हें यह क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं—कुछ नहीं।" एक हाथ से आँसू पोंछते हुए वह संगीत-शाला को उजाड़ती हुई उठ खड़ी हुई। उसने कहा—"इतना धोखा ! इतना छल !"

"नहीं, धोखा कैसा ?"

"और क्या ? गाने का तो वहाना था।"

"मैं तो अपने भाव इकट्ठे कर रहा था, भाषण देने के लिए।" उन्होंने कहा।

"तो फिर मैं आपके व्याख्यानों का यन्त्र हूँ। मेरा गाना आनन्द के लिए नहीं है। सभाओं में भाषण देने के लिए इसका भी अस्तित्व है अन्यथा इससे क्या प्रयोजन ? तुम्हारे व्याख्यानों पर इसका भी जीवन निर्भर है। अब मैं कभी ऐसी ग़लती न करूँगी।" उसने दृढ़ता से उत्तर दिया। "तो इसमें तुम्हारा गया ही क्या ?"

"चोट पहुँचाकर अपमान करना भी जानते हो। यह काम तो किसी भी किराये की गायिका से निकाला जा सकता था। मेरी ही क्या ज़रूरत थी ?" उसने एकटक नेत्रों से सेठ जी की ओर देखा। उनमें अपमानित क्षीत की ज्वाला निकल रही थी।

सेठ जी कुछ कहने को मुँह खोल ही रहे थे कि नौकर देखकर वे पानी पानी हो गये। शायद उसने उनकी सब बातें सुनी होंगी। पता नहीं, कितनी देर से खड़ा हुआ है। उसकी ओर उनका ध्यान न जा सका। उनके पूछने पर उसने कहा—"संगीत-परिषद् के कार्य-कर्त्ता आये हैं।"

सेठजी ने अपनी कलाई की घड़ी देखी। देर हो चुकी थी। उन्हें संगीत की तरंग में समय का बोध न हो सका था। वे जल्दी जल्दी कपड़े पहनने लगे। उनकी कन्या ने फिर अपनी पुरानी हठ प्रारम्भ की। वह अधिक कह भी न पाई थी कि उसकी मा ने उसे बलपूर्वक गोद में उठा लिया और उसे लेकर दूसरे कमरे में चली गई। वह उससे कहती जा रही थी—"चल। मैं आज तुझे कहानी सुनाऊँगी।"

सेठजी अकेले कपड़े पहनते रह गये। कुछ मिनटों के बाद वे रंग-मंच पर आवेश के शब्दों में भाषण दे रहे थे। जनता अपलक दृष्टि से उनके मुख को देखती हुई ध्यानमग्न उनके भाषण-प्रवाह में बह रही थी। सभा में सन्नाटा था, केवल उनकी वाणी सुनाई देती थी। और उधर मा-बेटी सिसकी भरती हुई एक-दूसरे से चिपटी निद्रा का आवाहन कर रही थीं।

संसार

लेखक, श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

कौन कहता है कि है निस्सार यह संसार सारा ?
कौन कहता है मलिन है यह महा स्वच्छन्द धारा ?
दुख यहाँ पर मात्र सुख अनुभव कराने के लिए हैं,
रोग जो हैं स्वास्थ्य को सम्भव कराने के लिए हैं।
शोक सारा है यहाँ पर मोद का व्यवधान प्यारा,
कौन कहता है कि है निस्सार यह संसार सारा ?
काम क्रोध विकार सारे उचित अपने स्थान पर हैं,
हैं बड़े हितकर मनुज के घर समुन्नति के सुघर हैं।
है यहाँ आपत्ति जो सम्पत्ति-नद का है किनारा।
कौन कहता है कि है निस्सार यह संसार सारा ?
मृत्यु परिवर्तन मधुर गुप्त सुषमा-मूल-सी है,
बार बार महाप्रलय बस सृष्टि के अनुकूल ही है।
जो यहाँ होता वही आनन्द का कल्लोल न्यारा,
कौन कहता है कि है निस्सार यह संसार सारा ?
कौन कहता है मलिन है यह महा स्वच्छन्द धारा ?
यह अनादि अनन्त, सुन्दर बुलबुला जीवन हमारा।

आय-कर (इन्कम-टैक्स) बिल

लेखक, श्री अवनीन्द्र वेदालंकार

केन्द्रीय असेम्बली का इसी नवम्बर के दूसरे सप्ताह में एक विशेष अधिवेशन होगा, जिसमें आय-कर बिल पर विचार होगा। उसी क़ानून का इस लेख में थोड़े में दिग्दर्शन कराया गया है।

रत-सरकार के राजस्वसदस्य सर जेम्स ग्रिग ने ४ अप्रैल १९३८ को केन्द्रीय असेम्बली में 'इन्कम-टैक्स आयकर-बिल' पेश किया था। इस पर विचार करने के लिए केन्द्रीय असेम्बली का विशेष अधिवेशन १० नवम्बर से होगा।

यह बिल 'इण्डियन इन्कम-टैक्स-एक्ट १९२२' नाम के क़ानून में संशोधन करने के लिए पेश किया गया है। बिल पेश करने का उद्देश्य १९३६ की इन्कम-टैक्स-जाँच-कमिटी की रिपोर्ट की सरकार-द्वारा मान्य की गई सिफ़ारिशों को अमल में लाना और अनुभव में आई हुई त्रुटियों को दूर करना है।

इस बिल के पास हो जाने पर पुराना क़ानून सर्वथा बदल जायगा। पुराने क़ानून में ६७ धारायें हैं और इस बिल में ७५ धारायें हैं।

वर्तमान क़ानून में यह एक त्रुटि है कि आय-कर-दाता आय-कर देने से बचना चाहें तो क़ानून को भंग किये बिना भी आसानी से बच सकते हैं। इससे सरकार का प्रतिवर्ष २-३ करोड़ रुपये का घाटा होता है। आय-कर की आधी आमदनी प्रान्तीय सरकारों को मिलती है, इसलिए प्रान्तीय सरकारों की भी यही इच्छा है कि इस स्रोत से जितनी अधिक आमदनी हो सके, उतना अधिक अच्छा है। वे भी चाहती हैं कि वर्तमान क़ानून की त्रुटियाँ दूर हो जायँ।

क़ानून का आधार

नवीन प्रस्तावित आय-कर-क़ानून को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वह इन तीन बातों को नज़र में रखकर बनाया गया है—

१—अधिक आमदनीवालों पर आय-कर का बोझ ज़्यादा पड़े और कम आमदनीवालों पर कम पड़े।

२—आय-कर देने से बचने के जो अनेक उपाय निकले हुए हैं वे बन्द कर दिये जायँ।

३—जनता के मत का आदर कर क़ानून को अधिक लोकप्रिय बनाया जाय।

मौजूदा क़ानून के बारे में सबसे बड़ी शिकायत यह है कि छोटी आमदनीवालों की सर्वथा अवगणना की जाती है और उनकी फ़रियाद पर क़तई ध्यान नहीं दिया जाता। दूसरी बात यह कि आमदनी जोड़ने के समय यहाँ की आर्थिक और सामाजिक रीतियों-रवाजों का कोई ख़याल नहीं किया जाता। एकमात्र ब्रिटिश इन्कम टैक्स के क़ायदे का अनुकरण किया जाता है।

वेतन और पेन्शन

प्रचलित क़ायदे के अनुसार दीर्घ व अल्पकाल की छुट्टी पर भारत से बाहर जानेवालों की ख़ानगी पेढ़ियों व सरकार-द्वारा दिये जानवाले वेतन, भत्ता व पेन्शन गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकारों-द्वारा आय-कर से मुक्त हैं। नवीन क़ायदे के मुताबिक़ इन पर आय-कर लगेगा।

विशेष सभा

विशेषज्ञों की सिफ़ारिश है कि भारत से बाहर जानेवाले वेतन, भत्ता, बोनस और पेन्शन पर आय-कर लिया जाय। मगर भारत-सरकार जो पेन्शन भारत से बाहर देती है वह सब अब भी गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया एक्ट १९३५ की २७२वीं धारा के अनुसार आय-कर से मुक्त रक्खी गई है। इसलिए २७२वीं धारा में संशोधन की ज़रूरत है, जिससे भारत-सरकार-द्वारा भारत से बाहर दी जानेवाली पेन्शनों पर आय-कर लिया जा सके।

गवर्नर-जनरल को यह अधिकार है कि वह अपने अधिकार से किसी आमदनी को आय-कर से मुक्त कर दे। एक उच्च अधिकारी के पास यह अधिकार रहना उचित नहीं है। यह अधिकार नये क़ायदे में नष्ट हो जाना चाहिए। यदि किन्हीं कारणों से किसी आमदनी को आय-कर से मुक्त रखना हो तो उसका क़ायदे में समावेश होना चाहिए।

मिल्कियतदार

साझे में हिस्सा रखनेवाले दो या अधिक मिल्कियत-दारों की आमदनी की गणना अलग अलग होगी और एकत्र आमदनी गिनने की प्रचलित प्रणाली का अन्त हो जायगा। यह सुधार आज से पहले ही हो जाना चाहिए था।

बन्धन पर ब्याज

विशेषज्ञों ने सिफ़ारिश की है कि मिल्कियत ख़रीदने के लिए अथवा उसकी मरम्मत करने के लिए अथवा उसके पुनर्निर्माण के लिए जो मिल्कियत गिरवी रक्खी जाय उस पर आय-कर काट कर ब्याज दिया जाय। इस पर व्यापारी-वर्ग की ओर से आपत्ति की गई है। कहा जाता है कि गिरवी रक्खी हुई मिल्कियत पर ब्याज पाने का पूरा हक़ है, और नया क़ानून इस हक़ को छीन रहा है। कल्पना करिए कि एक मिल्कियतदार के शेयर अथवा किसी धंधे में नुक़सान होता है। उस हानि का पैसा भरने के लिए वह अपनी मिल्कियत गिरवी रखता है। इस पर उसे आय-कर देने के बाद ब्याज मिलेगा, चाहे उसका धंधा चलता हो या बन्द हो गया हो। इसलिए इसे अनुचित और अव्यावहारिक बताया जा रहा है।

गिरवी का ख़र्च-दलाली

गिरवी रखने के वक़्त जो क़ायदा और दलाली में रक़म ख़र्च होती है उसको आमदनी में से घटा देना चाहिए। जनता की इस माँग का विशेषज्ञों ने समर्थन नहीं किया है।

इस समय क़ायदा यह है कि जो कोई मिल्कियत धंधे में लगी हो उस मिल्कियत की आमदनी आय-कर से मुक्त रहती है। अब विशेषज्ञों की सिफ़ारिश है कि जो मिल्कियत धंधे में लगी हो और जिस धंधे की आमदनी पर आय-कर लगता हो वह मिल्कियत आय-कर से मुक्त रक्खी जाय। व्यापारी समाज इससे सन्तुष्ट नहीं है।

ब्रिटिश भारत से बाहर दिया जानेवाला ब्याज

यदि गिरवी रखनेवाला ब्रिटिश भारत से बाहर रहता हो व गिरवी के ब्याज की रक़म उसको ब्रिटिश भारत के बाहर मिलती हो तो गिरोदार को दी जानेवाली ब्याज की रक़म पर अधिक से अधिक लागू होनेवाली दर से आय-कर काट लेना चाहिए और उसको इन्कम-टैक्स-आफ़िस में अदा कर देना चाहिए, नहीं तो ब्रिटिश भारत के बाहर जानेवाली ब्याज की रक़म मिल्कियत में से काट ली जायगी।

आय-कर से बचने के अनेक मार्गों में से यह एक मार्ग था।

यह अधिक से अधिक दर से काटी गई कर की रक़म ब्रिटिश भारत से बाहर का निवासी होने के क़ायदे के अनुसार वापस माँगी जा सकती है।

आय-कर का सिद्धान्त

एक गवर्नमेण्ट उन्हीं लोगों पर कर लगा सकती है और उन्हीं से कर ले सकती है जो उस देश के निवासी हों अथवा जो बाहर रहते हों, मगर उनकी सम्पत्ति उस देश में हो जिससे कर वसूल किया जा सके। सरकार को इस सिद्धान्त का अनुसरण करना चाहिए कि वह इस देश के हर एक निवासी की आमदनी पर कर लगायेगी, चाहे वह इस देश में उत्पन्न होती हो या बाहर होती हो, चाहे इस देश में लाई जाती हो या न लाई जाती हो। मगर कर लगाते हुए उसकी देने की योग्यता उसे पहले देखनी चाहिए।

यह पद्धति इँगलैंड और अन्य देशों में प्रचलित है। सबसे पहले देने की योग्यता की कसौटी ठहरानी चाहिए। इसमें वैयक्तिक परिवारों व भागों के मानसिक मनोभावों और ख़र्चीली मितव्ययिता का स्वभाव व सामाजिक दायित्व आदि का विचार करना कठिन है। मगर फिर भी इन सब बातों का विचार करके जिन पर कर देने की योग्यता निर्भर है, कर देने की ऐसी योग्यता निश्चित करनी चाहिए जिससे न्यूनतम कठोरता आय-कर-दाताओं के साथ बरती जाय। इसकी मुख्य कसौटी होनी चाहिए कि एक आदमी को कितनों का भरण-पोषण करना है। क्योंकि गवर्नमेंट को प्रत्येक की दाल-रोटी की गारण्टी देनी चाहिए।

भरण-पोषण

मगर प्रचलित और प्रस्तावित क़ानून में इसकी गारण्टी नहीं दी गई है। दस बच्चोंवाला एक व्यक्ति और स्त्रीवाले एक पुरुष को एक समान आय-कर देना होगा यदि दोनों की आय बराबर हो। विशेषज्ञों ने अपनी रिपोर्ट में (१५ पैरा) इस वैज्ञानिक पद्धति पर कर लगाने और स्त्री और बच्चों को भत्ता देने पर विचार किया है, मगर उसको यह कह कर अस्वीकार कर दिया है कि 'भारत में विवाहिता-वस्था आम बात है' और 'आय-कर की कुल आमदनी बहुत घट जायेगी।' कमिटी के मुख से यह सत्य अनायास निकल आया है कि 'आय-कर की कुल आमदनी बहुत घट जायगी' और इसी विचार से उन्होंने वैज्ञानिक पद्धति का त्याग कर दिया है। मगर इसका तो इलाज था। वे अमीरों पर अधिक और भारी टैक्स लगा सकते थे।

मध्यम श्रेणी अधिक देती है

इस समय जिनकी आमदनी २००० रुपया है वे आय-कर अनुमानतः ज़्यादा देते हैं। यदि पारिवारिक भत्ता दिया जाय—कल्पना कीजिए १००० रुपया दिया जाता है—तो वह शेष १००० पर कर देगा और इस समय से आधा कर देगा। एक लाख रुपया की आमदनीवाला व्यक्ति भी उसी परिमाण का परिवार होने पर उतना ही पारिवारिक भत्ता पायेगा। यह अमीर आदमी के लिए मामूली छूट है, जिसकी वह क़द्र न करेगा। इसके विरुद्ध ग़रीबों को दी गई छूट को पूरा करने के लिए उसे ज़्यादा कर देना चाहिए। यह मामूली वृद्धि या हानि वह ख़ुशी ख़ुशी सहन कर सकता है। इसके लिए शायद उसको नये क़िस्म का एक सुन्दर सुनहरा सिगरेटकेस ख़रीदने का केवल मोह ही छोड़ना पड़ेगा।

उपर्युक्त बात सच है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। मगर धनी व्यक्ति का कहना है कि वह कर देने से जो रक़म बचायेगा उसको वह नये कारोबार में लगा देगा। मगर वास्तविक बात यह नहीं है। यह विला-सिता के आयात-माल को देखकर सहज ही जाना जा सकता है।

दूसरी बात हमें यह भी ध्यान में रखनी चाहिए कि शहरी लखपतियों की सुन्दर व शानदार दावतों की अपेक्षा देहात में रहनेवाले व्यक्ति के लिए 'पूजा' आदि पर्वों पर ख़र्च करना ज़रूरी है। वह इस सामाजिक दायित्व से बच नहीं सकता।

हिन्दू-संयुक्त-परिवार

मध्यम श्रेणी के संयुक्त हिन्दू-परिवार की हालत बहुत शोचनीय है। परिवार के सब भाइयों से पेशे की आय को छोड़कर परिवार की कुल आमदनी के आधार पर आय-कर लिया जायगा। मगर एक धार्मिक समाज के लिए यह विभेदात्मक क़ानून बनाने का कारण समझ में नहीं आता। धनी परिवार के मेम्बरों को आय-कर योग्य आमदनी पर न्यूनतम दर से—आज के समान कुल आम-दनी पर अधिकतम दर से नहीं— कर देना होगा। आश्चर्य की बात यह है कि जब यह परिवार हिन्दू-धर्म छोड़कर अन्य धर्म स्वीकार कर लेता है तब वह इस अयोग्यता से मुक्त हो जाता है!

हिन्दू संयुक्त परिवार के बारे में विशेषज्ञों ने अपनी रिपोर्ट में (पृ० २४) लिखा है—हम यह कहने को बाध्य हैं कि कठोरता का बर्ताव होता है......दूसरी ओर हिन्दू-संयुक्त परिवार की क़ानूनी सत्ता सदा बनी रहती है और वह मृत्यु-कर नहीं देता......। आय-कर देने का दायित्व सर्वथा उसके नियन्त्रण के अन्दर है।

इस समय मृत्यु-कर नहीं लिया जाता। केवल क़र्ज़ पर उत्तराधिकारी का सार्टिफ़िकेट लेने के लिए क़र्ज़दार को दो प्रतिशत कर देना पड़ता है और यह हिन्दू-संयुक्त-परिवार से भी लिया जाता है। कमिटी संयुक्त परिवार को पसन्द करती हुई दिखाई नहीं देती। मगर शिक्षक युवकों में बेकारी बढ़ने के कारण हिन्दू संयुक्त-परिवार का गौरव बढ़ गया है और बेकारी का फ़िलहाल यही सर्वोत्तम हल समझा जाता है।

विशेषज्ञ आगे चल कर स्वीकार करते हैं—

हमारी राय है कि हिन्दू-संयुक्त-परिवारों में कुछ मामले ऐसे हैं जिनकी विशेष परिस्थिति पर विचार होना चाहिए। मगर कोई रियायत देने का आय पर भारी असर पड़ेगा। इसलिए कमिटी ने एक बीच का मार्ग सुझाया है—जहाँ कहीं एक से अधिक जवान विवाहित पुरुष हों, वहाँ परिवार की आय दो भागों में बाँट दी जाय, मगर मेम्बरों की वैयक्तिक आय उसमें शामिल की जाय, और सुपर टैक्स की दर से हिन्दू-संयुक्त परिवार मुक्त कर दिया जाय।

खेद है कि उनकी इस साधारण सिफ़ारिश को भी गवर्नमेण्ट ने नहीं स्वीकार किया सरकार को पैसे की दरकार है, और इन्कम-टैक्स की अधिक आय प्रान्तों को जायगी, इस ख़याल से कांग्रेस-पार्टी भी सरकार का समर्थन करने के लिए बाध्य है। राजनैतिक दृष्टि से कमज़ोर हिन्दू-संयुक्त-

परिवार पर अन्यायपूर्ण कर लगाना इसलिए उचित है! संयुक्त-परिवार दूर गाँवों में रहते हैं। उनको इसका पता भी न लगेगा। अतः वे इसके विरोध में आवाज़ भी न उठायेंगे। मगर उन निस्सहायों की गिनती कुल ७ लाख आय-कर-दाताओं में ४ लाख है। ७ लाख आय-कर-दाताओं की ३० हज़ार से कम की दस हज़ार से अधिक आमदनी है।

पति-पत्नी की आमदनी

आय-कर लगाने के ख़याल से पति और पत्नी की आमदनी जोड़ी जायगी। कल्पना कीजिए 'क' की आमदनी ४,००० रुपया है और उसकी पत्नी की कुछ नहीं है। 'ख' की आमदनी ४००० रुपया है और उसकी पत्नी की पेशे व पूँजी लगाने से १८०० रुपया की आमदनी है। 'क' और 'ख' ४००० रुपया की आमदनी पर बराबर कर देंगे। मगर 'ख' और उसकी पत्नी को अब अपनी और अपनी पत्नी की कुल आमदनी का जोड़ ५८०० रुपया पर अलग अलग आय-कर देना होगा। हाँ, यदि पत्नी की आमदनी पेशे से होगी तो ५०० रुपया पारिवारिक हानि की क्षतिपूर्ति में दिये जायँगे।

शहरियों का स्वार्थ

शहरी उपर्युक्त कर के विरुद्ध हैं, मगर उसके औचित्य में सन्देह नहीं किया जा सकता। हाँ, यदि वे देहातियों के साथ मिलकर इस बात का आन्दोलन करें कि बच्चों व पत्नी के भरण-पोषण का ख़र्च आमदनी से काट कर आय कर लगाया जाय तो वे जहाँ अपना स्वार्थ सिद्ध करेंगे वहाँ ग़रीब देहातियों को भी कुछ राहत पहुँचेगी।

सरकार अपनी आमदनी की कमी कृषि की आमदनी को अन्य आमदनी के साथ मिला कर दोनों के योग पर आय-कर लगाकर पूरी कर सकती है।

अँगरेज़ों का स्वार्थ

कृषि की आमदनी को शेष आमदनी में शामिल न करने से सम्भवतः सरकार ब्रिटिश ख़ज़ाने के स्वार्थ का ख़याल करती है। भारत में बसे योरपीय और स्टर्लिंग कम्पनियाँ जैसे चाय, काफ़ी आदि की खेती से आमदनी करती हैं और ब्रिटिश ख़ज़ाने को कर देती हैं। यदि भारत में उनकी इस आमदनी पर कर लगाया जाय तो वे इन्कम-टैक्स-रिलीफ़-व्यवस्था के अनुसार ब्रिटिश ख़ज़ाने से छूट पा सकेंगी। इससे ब्रिटिश ख़ज़ाने को थोड़ा नुक़सान पहुँचेगा। मगर खेती की आमदनी को शेष आमदनी के साथ जोड़कर कर लगाने से भारत का ख़ज़ाना लाभान्वित होगा। योरपीय इस पर आपत्ति नहीं कर सकते। वे इँग्लैंड को न देकर भारत को देंगे, जहाँ से वे सम्पत्ति अर्जित करते हैं।

इस प्रणाली से छोटे ज़मींदारों को नुक़सान होगा, यदि स्त्री और बच्चों पर भत्ता दिया जायगा। हाँ, इसका बड़े ज़मींदारों पर असर पड़ेगा, मगर वे यह दे सकते हैं। बहुत से ज़मींदार क़र्ज़दार हैं, यह गौण बात है। क्योंकि क़र्ज़ पर दिये जानेवाले ब्याज की रक़म आय-कर लगाते समय आय में से घटा दी जायगी।

विदेशी पूँजी

भारतीय और योरपीयों में भेद रखने का कारण यह बताया गया है कि भारत में लगी योरपीयों की पूँजी भारी मात्रा में कर लगाने से यहाँ से चली न जाय और भारत की बाहर की सभी पूँजी इस देश में फिर वापस आ जाय। इसलिए इस समय उनको देश में लगी पूँजी के मुक़ाबिले में जो तरजीह दी हुई है वह छीन ली गई है।

विदेशी पूँजी पर कांग्रेस का प्रस्ताव है—हम किसी प्रकार की विदेशी पूँजी नहीं चाहते जब तक कि उसका लगाना भारतीयों के नियन्त्रण में न हो।

आय-कर-पद्धति

वर्तमान समय में जिस तरीक़े से आय-कर लगाया जाता है उसको 'स्टेप-सिस्टम' (सीढ़ी-पद्धति) कहते हैं। २००० से ५०००० रुपये से कम की आमदनी पर प्रति रुपया ६ पाई कर लिया जाता है। ५००० रुपये से १०००० रुपये से कम तक की आमदनी पर प्रति रुपया ९ पाई कर लिया जाता है। इसी प्रकार आगे ५००० रुपये के प्रत्येक मान पर यहाँ कर की दर बढ़ जाती है।

स्टेप सिस्टम (सीढ़ी-पद्धति) के अन्दर यह स्पष्ट है कि ५००० रुपयों पर ४९९९ की अपेक्षा अनुमानतः कर ज़्यादा है। इस विषमता को दूर करने के लिए ५००० रुपये मार्जिन पर विशेष राहत देने की व्यवस्था की गई है। वर्तमान क़ायदे की १७ वीं धारा में यह व्यवस्था की गई है कि यदि निश्चित सीमा से मार्जिन कम हो तो कर कम कर दिया

जाय। मगर इससे पूर्णतया दोष दूर नहीं हो सकता। इसलिए अब स्लैब सिस्टम (खण्ड पद्धति) स्वीकार की गई है। २००० रुपया कम की आमदनी पर अब भी आय-कर न लगेगा। १५०० रुपया स्पष्ट रूप से अधिक होने पर कर लिया जायगा। सुपर टैक्स इसी पद्धति से लिया जाता है। इस नये तरीक़े में गणना की अनेक कठिनाइयाँ हैं। ख़ास कर वेतन से काटी जानेवाली रक़म और बीमा-प्रीमियम काटने में अधिक कठिनाई होती है।

कर का तरीक़ा

विशेषज्ञों का ख़याल है कि कम आमदनीवाले अपेक्षाकृत अधिक देते हैं। इसलिए अब व्यवस्था की गई है कि ६००० रुपये तक की आमदनीवाले इस समय से कम देंगे, १०००० रुपये से कुछ ज़्यादा देंगे और १०००० से १२००० रुपये तक वाले फिर कुछ कम देंगे, मगर १२००० रुपये से १५००० रुपये तक वाले अधिक देंगे, फिर १५००० रुपये से १८००० रुपये तक आयवाले कम देंगे, मगर १८००० रुपये से २०००० रुपये तक वाले अधिक देंगे, और फिर २०००० रुपये से २४००० रुपये तकवाले कम देंगे। ३१००० से ३२००० रुपये तक वाले आज के समान देंगे। इस प्रणाली में पेचीदगी ज़रूर है, मगर इसमें कम आमदनीवाले पर कम और अधिक आमदनीवाले पर अधिक भार पड़ता है, इसलिए इसका स्वागत किया जायगा।

फ़ार्म भरने का फ़र्ज़

इस समय ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनियाँ ही १५ जून से पहले पहल स्वतः आय का फ़ार्म भरकर इन्कम-टैक्स आफ़िस को भेजती हैं और शेष लोग जब उनके पास फ़ार्म आता है तब उसकी ख़ानापूरी करके भेजते हैं। [...] नये क़ायदे के मुताबिक़ अब औसत दिन से ३० दिन [...] अन्दर सबको अपना फ़ार्म भर कर भेज देना चाहि[ए]। फलतः कोई व्यक्ति आय-कर देने का पात्र है या नहीं, निश्चय करने की ज़िम्मेदारी हर एक व्यक्ति पर छोड़ दी है। जो ऐसा नहीं करेंगे उनके लिए दण्ड की व्यवस्था [की] गई है। जो कोई एक साल कर देने से बच जायगा उ[से] पकड़े जाने पर बक़ाया दण्ड-सहित वसूल किया जायगा।

इन्स्पेक्टर और अफ़सरों का ज़्यादा अधिकार

सूर्योदय से सूर्यास्त के बीच किसी समय धंधेवाले आय-कर-दाताओं के मकान में बग़ैर नोटिस के जाकर [...] पाछ करने, बहियों की जाँच करने का इन्स्पेक्टरों [और] अफ़सरों को अधिकार दिया गया है। रिपोर्ट की सिफ़ारिश को क़ायदा का रूप देने की तजवीज़ की जा[ती] है। इससे अनेक अवाञ्छनीय प्रसङ्ग उपस्थित हो [सकते] हैं और उनका परिणाम बुरा हो सकता है। सरकार [का] कहना है कि झूठी बहियाँ पेश की जाती हैं, इसलिए [यह] ज़रूरी है। मगर इन्स्पेक्टरों और अफ़सरों को क़ानून [का] बारीक ज्ञान न होने से इस अधिकार का दुरुपयोग होने [की] सम्भावना है और इससे अनर्थकारी प्रसङ्ग उपस्थित [हो] सकते हैं।

यह और इस प्रकार की अनेक विरोधी आलोचन[ाओं] के होते हुए भी मानना होगा कि नवीन क़ानून पह[ले से] अधिक अच्छा है और आय-कर की आमदनी में प्र[ति वर्ष] दो-तीन करोड़ का जो नुक़सान होता है उसको रोक[ने के] लिए समुचित व्यवस्था की गई है।

कब तक होगा सहना !

लेखक, कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

कब तक होगा सहना !

निराधार इस काल-स्रोत में
क्षुद्र-पोत सा बहना।
पाया नहीं विराम यहाँ रे,
चलते ही चलते हम हारे,
दूर सतत पादाश्रित जिनके
स्थित होकर है रहना।
क्या पहुँची न पुकार हमारी,
खोई शून्य-मध्य बेचारी,
पर, अशून्य वह कौन धन्य
निज, ध्येय जहाँ हो लहना।

मेरी आस्ट्रेलिया-यात्रा

लेखिका, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

३० दिसम्बर १९३७ को पी० एण्ड० ओ० कम्पनी के स्ट्रैथनेवर जहाज़ से मैं आस्ट्रेलिया के लिए रवाना हुई। रवाना होने के समय तक उस विशाल महाद्वीप के सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं जानती थी। मेरा ऐसा विचार था कि वहाँ देखने के योग्य कुछ नहीं है और वहाँ के लोग भी पश्चिमीय सभ्य जातियों में पहली श्रेणी के नहीं हैं। इसलिए मेरे मन में आस्ट्रेलिया के लिए कुछ भी उत्साह नहीं था। परन्तु वहाँ जाकर मैंने जो कुछ देखा और यात्रा में जो रस लिया, 'सरस्वती' के पाठकों को मैं अपने साथ उसका भागी बनाना चाहती हूँ और आशा करती हूँ कि इस लेख में मैं जो कुछ लिखूँगी वह उन्हें रोचक मालूम होगा।

अब तक मैं जितने जहाज़ों पर यात्रा कर चुकी थी, स्ट्रैथनेवर जहाज़ उन सबसे बड़ा था। बम्बई के बैलेड पायर पर रात के ग्यारह बजे जब हम जहाज़ पर सवार होने को पहुँचे तब एक बड़े गढ़ के समान जहाज़ की ऊँचाई को देखकर मैं चकित रह गई। २२ हज़ार से अधिक टन के उस विशाल जहाज़ में लगभग दो हज़ार यात्रियों के रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध था। परन्तु आस्ट्रेलिया जानेवाले यात्री अधिक नहीं होते। स्ट्रैथनेवर जहाज़ पर हमारी श्रेणी में ढाई-तीन सौ से अधिक यात्री नहीं थे। [illegible]द्वीप पहुँचने तक उस श्रेणी में केवल पाँच ही [illegible]वासी थे। मैं, मेरे पति, माननीय पण्डित प्रकाश-[illegible]यण सप्रू, उनकी स्त्री और आगरे के रहनेवाले [illegible]क्टर बनारसीदास। शेष सब गोरे ही थे। काले-गोरों में [illegible] तक सच्चा मेल तो हो नहीं पाता, इसलिए अधिकतर [illegible] पाँच ही परस्पर मिलते और बातचीत करते थ। कुछ [illegible]रों से भी परिचय हो गया था, परन्तु उतना नहीं कि [illegible]समें कुछ मित्र-भाव आ सके।

मुझे समुद्र से प्रेम नहीं है। जहाज़ के तनिक भी हिलने से मेरा मन मचलाने लगता है, इसलिए मुझे भय था कि १७-१८ दिन की वह लम्बी यात्रा कौन जाने किस प्रकार काटने पड़े। मैं ऐसा समझती थी कि शायद सब दिन ही मन मिचलने के कष्ट से कैबिन में अथवा डेक पर ही पड़े पड़े बिताने पड़ें। परन्तु इसके विरुद्ध अनुभव हुआ। सिर्फ़ तीन दिन के बराबर समुद्र शान्त ही रहा। तीसरे दिन दूसरी जनवरी को सुबह हम लंकाद्वीप की राजधानी कोलम्बो पहुँचे। इन तीनों दिन हमारा जहाज़ अरब-समुद्र में भारतवर्ष के पश्चिमी किनारे के बराबर बराबर चलता रहा। भारत के किनारे से हम कभी दूर न हुए। बम्बई से चलकर कर्नाटक, मलाबार, कोचिन, ट्रावनकोर की धरती के भिन्न भिन्न दृश्य हमारे सामने से आकर निकल गये। कहीं सूखे नंगे पर्वत, कहीं हरे हरे वृक्षों से लदे हुए टीले, लाल लाल खपरैल के रहने के मकान सब इस बात के साक्षी थे कि उनके पीछे स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध-बालक जीवन के संग्राम में जुटे अपनी अपनी धुन में रत हैं। भूख, बीमारी, दरिद्रता, अन्याय, समाज-संगठन से पीड़ित जैसे-तैसे जीवन-यात्रा पूरी कर रहे हैं। उनके और हमारे बीच में बीस-बाईस मील चौड़ा गहरा नीला समुद्र था। देखने में शान्त और गम्भीर, परन्तु उसमें भी करोड़ों जीव भिन्न भिन्न योनियों में अपना भोगमान भोग रहे थे। कौन कह सकता है कि कितने प्रकार के जीव उसमें होंगे। मैंने भिन्न भिन्न स्थानों में मछली-गृह देखे हैं। उनमें जलचरों की सहस्रों क़िस्में देखकर बुद्धि चकित रह जाती है। और उनकी सुन्दरता तो अपार है। जलचरों के भाँति भाँति के रूप, भाँति भाँति के रंग, भाँति भाँति के आकार और जीवन-निर्वाह का भाँति भाँति का ढंग इन सब का पूरा एक शास्त्र बन गया है। फिर भी कौन कह सकता है कि पृथ्वी पर आच्छादित इस अनन्त समुद्र के पेट में कौन कौन रहता है, कैसे रहता है, क्या करता है? वह तो एक दूसरा ही लोक है, जिसका ज्ञान हमको केवल नाम-मात्र है।

भारत का किनारा छूट जाने पर हम खुले समुद्र में आ निकले। अब भारतीय समुद्र में पहुँच जाने पर एक-दम तेज़ हवा आने लगी और समुद्र की सतह पर भी लहरें तेज़ हो उठीं। परन्तु लंका-द्वीप भारत से है ही कितनी दूर! थोड़ी ही देर में उसका किनारा भी दिखाई देने लगा। समुद्र में फिर एक बार जान सी पड़ गई।

मछलीमारों की कोड़ियों नावें इधर-उधर आती-जाती दिखाई देने लगीं, सूर्य की तीव्र किरणों में नावों के चाँदी के समान श्वेत बादबान चमकते हुए ऐसे सुन्दर दिखाई देते थे, जैसे हंस धीरे धीरे अपनी राजसी चाल से तैरता आ रहा हो। ये चतुर मछली-मार हाथ हाथ भर की अपनी नन्हीं नन्हीं सी नावें लेकर समुद्र में दूर दूर तक निकल जाते हैं—किनारे से दस-दस बारह-बारह मील! आगे तक निकल जाना इन निर्भय चतुर शिकारियों के लिए कोई बड़ी बात नहीं है। विशाल समुद्र की शक्तिशाली लहरों का ये अपनी खिलौना सी छोटी छोटी नावों से कैसे मुक़ाबिला करते हैं सो जानना कठिन है। सम्भवतः जीवन पर्यन्त के संग से समुद्र से इनका परिचय मित्रता की सीमा तक पहुँच चुका हो और ये समुद्र के स्वभाव से इतने परिचित हो गये हों कि कब वह शान्त होगा, कब क्रोधित होगा, कब रुद्ररूप धारण कर भयावह हो जायगा, यह सब भले प्रकार जानते हों। और घर छोड़कर अपनी नावों पर बैठकर समुद्र की छाती पर उसी समय निकलते हों जब इनको यह पूरा विश्वास हो कि मित्रता की भावना से समुद्र परिपूर्ण है और प्रेमवश इस समय वह इनको कोई हानि नहीं पहुँचावेगा।

कोलम्बो का बन्दरगाह बहुत बड़े बन्दरगाहों में से है। यहाँ छोटी-बड़ी सैकड़ों नावें और जहाज़ खड़े दिखाई देते हैं। लड़ाई के जहाज़, तिजारती जहाज़, मुसाफ़िरों के जहाज़ सभी आते-जाते हैं। ब्रिटेन के, जापान के, अमरीका के, हालैंड के, फ़्रांस के सभी जीवित देशों के जहाज़ अपने अपने जातीय झंडे फहराते हुए खड़े और आते-जाते दिखाई देते हैं।

यह बन्दरगाह एक जीते-जागते नगर के समान मालूम होता है, जहाँ भाँति भाँति के लोग और वस्तुएँ दिखलाई देती हैं। लंका के गाँवों में भी बनी हुई अनेक प्रकार की वस्तुएँ, लकड़ी के काले आबनूस के हाथी, सियाही के काँटों के बने हुए बक्स और डिब्बे-डिबियाँ और अन्य कई प्रकार की इस्तेमाल की वस्तुओं से नावें भर भर कर बेचनेवाले जहाज़ के किनारे तक आ पहुँचते हैं और चिल्ला चिल्लाकर समुद्र की सतह को मछली-बाज़ार बना देते हैं। यहाँ इनकी बिक्री भी ख़ासी हो जाती है, क्योंकि यात्री सस्ता होने के कारण इनसे काफ़ी माल
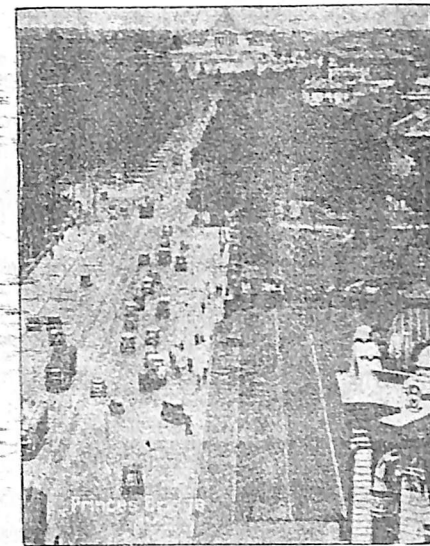
[यह मेलबोर्न का दृश्य है। सफ़ेद और बड़ी इमारत जो ऊपर दिख रही है वह वार मेमोरियल है।]

ख़रीद लेते हैं। दिन चढ़ने पर ८-१० बजे तक जहाज़ पर से उतरकर हम कोलम्बो नगर में पहुँचे, रावण की स्वर्णमयी लंका में पहली बार पाँव रक्खा। बड़े बड़े महल, आलीशान दूकानें, ऊँचे ऊँचे दफ़्तर और विशाल होटलों से नगर की शोभा अच्छी बनी हुई थी। अधिकतर दूकानें विदेशी माल से पटी पड़ी थीं। देशी बाज़ार की ओर भी हम गये थे, परन्तु वहाँ भी अधिकतर विदेशी माल ही दिखाई देता था। सड़कें और गलियाँ साफ़-सुथरी और अच्छी थीं। लोग भी सफ़ेद और साफ़-सुथरे वस्त्र पहने थे।

लंका में रबर की पैदावार अच्छी होती है। लगभग पचास वर्ष हुए, जब पहली बार इस देश में रबर का पौधा लगाया गया था। इन पचास वर्षों में रबर की काश्त करनेवालों को बहुत मुनाफ़ा हुआ। रबर की माँग संसार में बढ़ती ही जाती है, इसलिए रबर पैदा करनेवालों की अच्छी आय है। इधर कुछ दिनों से रबर के दाम घट गये हैं, फिर भी लंका के रबर के बाग़ों के मालिक बहुत धनी हैं और बड़े ठाट-बाट से रहते हैं। एक ऐसे ही ईसाई प्लैंटर से हमारा परिचय था। वे हमको अपने घर
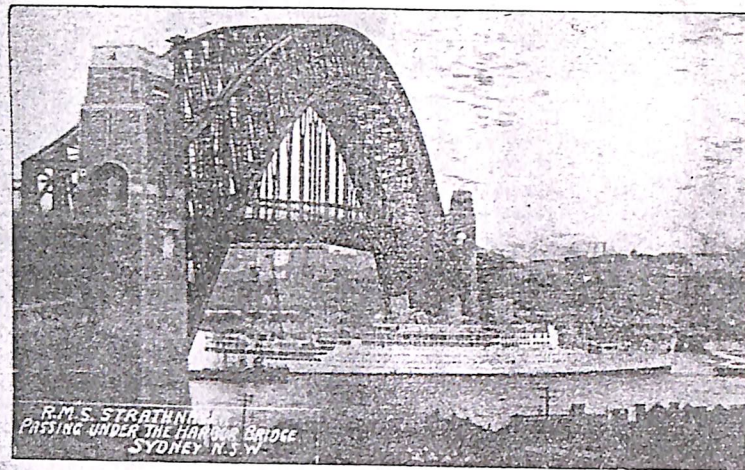
[सिडनी बंदरगाह पर एक पुल जिसके नीचे से बड़े बड़े जंगी जहाज़ गुज़र जाते हैं।]

ले गये। कोलम्बो से ३५ मील के फ़ासले पर एक सुन्दर पहाड़ी पर उनका रबर का बाग़ था और वहीं उनका रहने का घर भी था। वे हमें वहाँ भी ले गये। बड़ा मनोहर दृश्य था। एक पहाड़ की चोटी पर उनका मकान था। उसके चारों ओर रबर के वृक्षों से लदी हुई ऊँची-नीची पहाड़ों की चोटियाँ दिखाई देती थीं। मैंने पर्वतों पर इतने रंग-बिरंगे पत्तों से लदे हुए वृक्ष नहीं देखे थे। हल्का, भारी हरा, ऊदा, लाल, कत्थई आदि रंग-बिरंगे वृक्षों के कुंज ऊँची-नीची पहाड़ियों पर चित्र के समान सुन्दर दिखाई देते थे। रबर के वृक्षों के पत्ते समय पाकर रंग बदलते रहते हैं, इसी लिए एक ही जाति के वृक्ष होने पर भी इतने भिन्न भिन्न रंगों की बहार थी। रहने के घर के पास ही रबर का कारख़ाना था। इस रबर के बाग़ में लगभग दो हज़ार मनुष्य काम करते थे। घर बड़ा सुन्दर बना हुआ था और नल, बिजली और मैला साफ़ करने का सेनिटरी प्रबन्ध सब अपना निज का था, क्योंकि यहाँ किसी म्युनिसिपैलिटी आदि की पहुँच नहीं थी। इसी स्थान से आदम का शृंग नाम की ऊँची चोटी एक पर्वत-माला में दूर से गर्व के साथ आकाश की ओर उठी हुई दिखाई देती थी। वहाँ के ईसाइयों का विश्वास है कि हज़रत आदम पहले इसी चोटी पर आकर उतरे थे।

इस सुन्दर द्वीप में हम अधिक नहीं ठहरे। परन्तु जितना भी थोड़ा बहुत घूमे-फिरे और देखा बहुत सुन्दर रोचक दृश्य दिखाई दिये। यहाँ का दृश्य और पैदावार बहुत कुछ ट्रावनकोर के समान है—वैसे ही केले और नारियल के पेड़ और धान की खेती और जल की बहुतायत है। स्थान स्थान पर जलाशय, झीलें और नाले भरे पड़े हैं, जिनके कारण द्वीप की उपज बहुत अच्छी है। फिर भी लोग दरिद्र हैं और काफ़ी खाने को नहीं मिलता।

तीसरी जनवरी को हमारा जहाज़ यहाँ से आगे रवाना हुआ। समुद्र बराबर शान्त ही रहा। जहाज़ बिलकुल नहीं हिलता था। ऐसा जान पड़ता था, मानो एक बड़ा प्रासाद हर प्रकार के साज़-सामान से भरा हुआ फिसलता हुआ आगे बढ़ा जाता हो। मौसम भी बहुत सुहावना था—न जाड़ा, न गर्मी। हम बराबर भूमध्यरेखा की ओर बढ़े चले जा रहे थे, इसलिए दिन दिन गर्मी बढ़ती जाती थी, परन्तु ऐसी नहीं जो बुरी लगे। ज्यों ज्यों आगे चलते जाते थे, समुद्र अधिकाधिक शान्त होता जाता था, यहाँ तक कि भूमध्यरेखा पर पहुँचने पर समुद्र एक शीशे की चादर के समान दिखाई देने लगा। उसको देखकर यह जानना कठिन था कि वह पानी है या कोई चिकनी ठोस वस्तु। भूमध्यरेखा के निकट के गर्म आबोहवा-वाले समुद्रों में मैं पहले कभी नहीं गई थी, परन्तु सुना था कि पृथ्वी के इस भाग के समुद्रों में एक अद्भुत रसीला और सुहावनापन होता है। इस बार उधर की यात्रा करके इसका अनुभव मैंने स्वयं कर लिया। यहाँ के वायु-मंडल में ही कुछ ऐसी कौतुकता और शान्ति थी कि साँस के साथ ही मानो मनुष्य उसे भीतर भर लेता था। दिन भर यात्री लोग ऊपर के डेक पर जाकर भाँति भाँति

[जहाज़ का खाने का कमरा]

के खेल खेलते थे। तैरने के लिए दो दो तालाब थे। स्त्री-पुरुष तालाबों में स्नानकर धूप में लेट जाते और सूर्य भगवान् की किरणों से ख़ूब तपा करते। रात को नाच होता, सिनेमा होता, ब्रिज आदि और खेल होते। इसी भाँति हँसते-खेलते, खाते-पीते लगभग ७ हज़ार मील का रास्ता कट गया और ११ जनवरी को आस्ट्रेलिया का पहला बंदरगाह दिखाई दिया।

आस्ट्रेलिया भूमध्यरेखा के दक्षिण की ओर है। पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में हम और दक्षिणी गोलार्द्ध में आस्ट्रेलिया है। इसलिए हमारे जाड़े के दिनों में वहाँ गर्मी और हमारे गर्मी के दिनों में वहाँ जाड़ा होता है। दिसम्बर, जनवरी, फ़रवरी में वहाँ गर्मी का मौसम होता है। जब हम वहाँ पहुँचे, उनके कड़ी गर्मियों के दिन थे। हमने ऐसा सुना भी था कि वहाँ बहुत ताप होता है। परन्तु जहाँ जहाँ हम गये, हमें तो किसी स्थान पर भी कड़ी गर्मी नहीं मिली। ८०-९० डिग्री से अधिक गर्मी कहीं भी नहीं थी। वैसे तो आस्ट्रेलिया इतना विशाल देश है कि उसके किसी किसी भाग में विशेष कर केन्द्रीय भाग में इतनी कड़ी गर्मी होती है कि वहाँ कोई रह भी नहीं सकता। परन्तु समुद्र के किनारे किनारे के नगरों में जहाँ हम गये थे, इतनी गर्मी नहीं होती। ऐडेलेंड में जो दक्षिण आस्ट्रेलिया का एक बड़ा नगर है, कभी कभी ११६ डिग्री तक गर्मी हो जाती है। परन्तु बहुत कम।

आस्ट्रेलिया का पश्चिमीय भाग जो हमें सबसे पहले दिखाई दिया, बिलकुल सूखा, बंजर, सफ़ेद चूने और स्लेटी पत्थरों से भरा हुआ है। पेड़-पत्ते हरियाली कहीं कठिनाई से ही दिखाई देती है। फ़्रीमेंटल एक छोटा सा बन्दरगाह है, परन्तु उसके बीस मील के फ़ासले पर पर्थ नाम का एक बड़ा नगर है, जो पश्चिमीय आस्ट्रेलिया की राजधानी है। हमारा जहाज़ १० घण्टे फ़्रीमेंटल के बन्दरगाह पर ठहरा। इन १० घण्टों में हम ७०-८० मील मोटर पर घूमे। इस ७०-८० मील की यात्रा में कई गाँव और छोटे छोटे क़स्बे देखे। फ़्रीमेंटल से पर्थ तक तो २० मील तक बिलकुल ऐसा लगता था, मानो एक सिरे से दूसरे तक पूरा शहर ही बसा है। पर्थ की जन-संख्या १,८४,००० है। इतने थोड़े मनुष्यों के लिए रहने के मकान कितनी बड़ी संख्या में हैं, यह देखकर मैं चकित रह गई। विचार करने पर मुझे स्मरण हुआ कि मैं भारत-वर्ष में नहीं हूँ, जहाँ सहस्रों मनुष्य आकाश के नीचे रह कर जीवन बिता देते हैं अथवा एक एक कमरे में कई
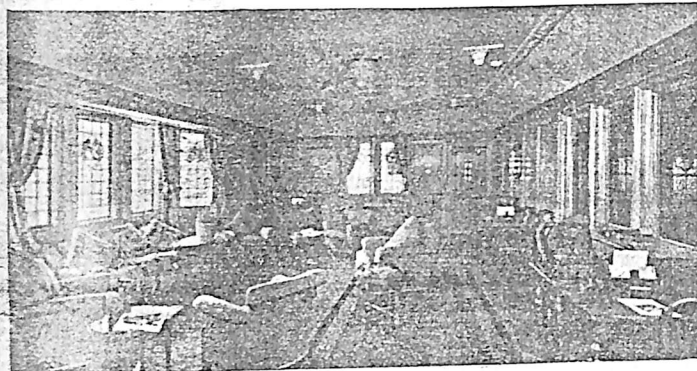
[जहाज़ का बैठने का कमरा]

कई आदमी रहते हैं, परन्तु मैं ऐसे देश में हूँ, जहाँ प्रत्येक छोटे से कुटुम्ब के लिए एक अलग मकान की आवश्यकता है। स्वैन नाम की नदी के किनारे सड़क और रहने के मकान बने हैं। नदी बल खाकर उस स्थान पर एक झील के समान होगई है। मकान अधिकतर छोटे छोटे बड़े सुन्दर हैं, सब के साथ पुष्पों से लदे हुए छोटे छोटे बाग़ हैं। यूनिवर्सिटी के एक प्रोफ़ेसर हमको आकर यूनिवर्सिटी ले गये। वहाँ खाना खिलाया और लगभग सारे दिन घूम-फिर कर हम वापस जहाज़ पर आगये।

फ़्रीमेंटल के बाद दूसरा बन्दरगाह जहाँ जहाज़ ठहरा ऐडेलेंड है। यह दक्षिण आस्ट्रेलिया की राजधानी है। इसकी आबादी ३,१६,००० है और यह काफ़ी बड़ा नगर है। शहर में ऊँचे ऊँचे कई मंज़िलों के मकान, सड़कें इतनी चौड़ी कि किसी दूसरे स्थान पर मैंने इतनी बड़ी बड़ी सड़कें नहीं देखी थीं। यहाँ भी हम दिन भर मोटर पर घूम-फिर कर शहर देखते रहे। इस नगर का फैलाव बहुत बड़ा है। मीलों तक लम्बा-चौड़ा है। कई अलग अलग बस्तियाँ हैं, जिनके बीच में काफ़ी ज़मीन छोड़ कर फलों के और अन्य वृक्षों के बाग़ लगा दिये हैं, जिससे नागरिकों को खुली हवा और ज़मीन मिल गई है। यह नगर मौंट लौफ़्टी नाम की पर्वत-माला के दामन में बसा है। हमें लोग इस पर्वत की चोटी पर ले गये। आस्ट्रेलिया के पर्वत कुछ बहुत ऊँचे नहीं होते। मौंट लौफ़्टी ढाई तीन हज़ार फ़ुट से अधिक ऊँचा नहीं है। पहाड़ की चोटी पर एक सुन्दर छोटा सा होटल है। वहाँ जाकर हमने कुछ खाया-पिया। लकड़ी का साफ़-सुथरा होटल परन्तु बहुत सादा था। वहाँ बढ़िया, सामान, कालीन आदि कुछ नहीं थे। परन्तु वायुमंडल शान्ति और सौन्दर्य से भरा हुआ था। सारा पहाड़ पाइन और योकलिप्टस के वृक्षों से लदा था। स्थान स्थान पर आस्ट्रेलिया की विख्यात जर्सी नाम की गायें चर रही थीं। सब्ज़ा बहुत नहीं, परन्तु पर्वत सूखा भी नहीं था। यहाँ से सारे नगर का दृश्य बड़ा सुन्दर दिखाई देता था। वहाँ भी हमें कुछ मित्र मिल गये थे, जो घुमाते-फिराते रहे। लीग आफ़-नेशंस की यूनियन की ओर से हमको खाना भी दिया गया, जिसमें काफ़ी स्त्री-पुरुष आये थे।

१७ जनवरी को सुबह को हम मेलबोर्न पहुँचे और वहाँ जहाज़ से उतर गये। मेलबोर्न वहाँ के विक्टोरिया-प्रदेश की राजधानी है। यहाँ की जन-संख्या ९,७५,००० है। बड़ा आलीशान नगर है। मेलबोर्न और सिडनी संसार के बड़े से बड़े नगरों का मुक़ाबिला कर सकते हैं। यहाँ की एक सेंटकिल नाम की सड़क है, जो कई मील लम्बी है। इसके बीचोबीच रंग-बिरंगे सुन्दर पुष्पों की क्यारियाँ बनी हैं। एक ओर पहाड़ी है, दूसरी ओर नदी बह रही है। ऐसी सुन्दर है कि वहाँ फिरते ही रहने को हृदय चाहता है। बड़े बड़े सुरक्षित बाग़ हैं, जिनमें दूर दूर से वृक्ष और पुष्प लाकर लगाये गये हैं। छोटे छोटे ताल, झीलें उनमें मुर्ग़ाबियाँ तैरती फिरती हैं। यहाँ मैंने काली बत्तख़ें देखीं, जो पहले नहीं देखी थीं। गत महा-युद्ध की यादगार में जो मंदिर बना है उसको ये लोग 'श्राइन' कहते हैं। इसके लिए मेलबोर्न-निवासियों को बड़ा गर्व है। यह मंदिर बड़ा आलीशान और सुन्दर है। इसके बीच में एक कुंड बना है और इसकी छत में छोटा सा छेद है, जिसमें से प्रत्येक ११ नवम्बर को

[हे स्ट्रीट (पर्थ) वेस्ट आस्ट्रेलिया।]

दिन महायुद्ध की संधि हुई थी, सूर्य्य का प्रकाश आकर कुंड में पड़ता है। चारों ओर पुस्तकें रक्खी हैं, जिनमें युद्ध में मरनेवाले शहीदों के नाम छपे हुए हैं। आस्ट्रेलिया ने महायुद्ध में बहुत बड़ा भाग लिया था। अपनी संख्या के हिसाब से काफ़ी पैसा भी दिया था और आदमी भी भेजे थे। इसी लिए यहाँ स्थान स्थान पर महायुद्ध की यादगारें बनी हुई हैं। इस बड़े 'श्राइन' के पास ही ताँबे का एक छोटा सा गधा बना है, जिसे एक सिपाही पकड़े हुए ले जा रहा है। कहते हैं कि इस गधे पर लाद-कर सिपाही बहुत-से आदमियों को युद्ध के मैदान से ले गये थे और इस प्रकार उनकी जानें बचाई थीं। गधे और सिपाही की छोटी सी मूर्ति बड़ी सुन्दर है और मनुष्यों ने गधे के प्रति अपनी कृतज्ञता इस प्रकार दरसाई, यह भावना भी बहुत उच्च है।

यहाँ का पुस्तकालय भी देखने के योग्य है। बड़े भारी गोल गुम्बद के भीतर धरती से छत तक हज़ारों पुस्तकें प्रत्येक विषय पर पटी पड़ी हैं। एक ओर प्रदर्शनी के ढंग पर विक्टोरिया प्रदेश की नव पैदावार के नमूने, वहाँ के कसब, उनके काम करने के औज़ार, आँकड़े आदि सब रक्खे हैं। यहीं एक अजायब-घर भी है, जिसमें आस्ट्रेलिया के आदि-निवासियों के सम्बन्ध में जो सामान, चित्र और अन्य वस्तुएँ दिखाई हैं वे बहुत शिक्षाप्रद हैं। अजायब-घर के इस विभाग में मनुष्य कई घंटे भले प्रकार बिता सकता है। मेलबोर्न के पास भी फर्न भली नाम का एक पहाड़ है, जहाँ हमें एक मित्र लेकर गये थे। यहाँ भी सुन्दर सुन्दर मकान हैं। बहुत लोग आबोहवा बदलने के लिए कुछ दिनों को जाकर यहाँ रहते हैं। सादे, सुन्दर होटल हैं, जहाँ खाने-पीने की सब सामग्री मिल जाती है। वहीं जाकर हमने भी खाना खाया था।

यहाँ और सिडनी में होटल काफ़ी अच्छे और शान के हैं। सामान बढ़िया, कमरे अच्छे और आराम के हैं। परन्तु आस्ट्रेलिया में कहीं भी होटलों में नौकर अच्छा काम नहीं करते। खाने की मेज़ पर एक एक घंटा बैठकर प्रतीक्षा करनी पड़ती थी तब खाना मिलता था। यह दशा बड़े से बड़े होटल में थी। कहते हैं, वहाँ नौकर बड़ी कठिनाई से मिलते हैं, इसलिए बुरा काम करने पर भी नौकर को निकाल नहीं सकते और जैसे-तैसे गुज़ारा करना पड़ता है। घरों में इससे भी अधिक बुरी दशा है। वहाँ तो नौकरों का मिलना असम्भव सा हो गया है, जिसके कारण बहुत लोग घरों को छोड़कर बोर्डिङ्घरों में रहना पसन्द करते हैं। नौकरों के न मिलने के कारण लोगों को अपनी आदतें और रहन-सहन का ढंग बिलकुल बदलना पड़ रहा है।
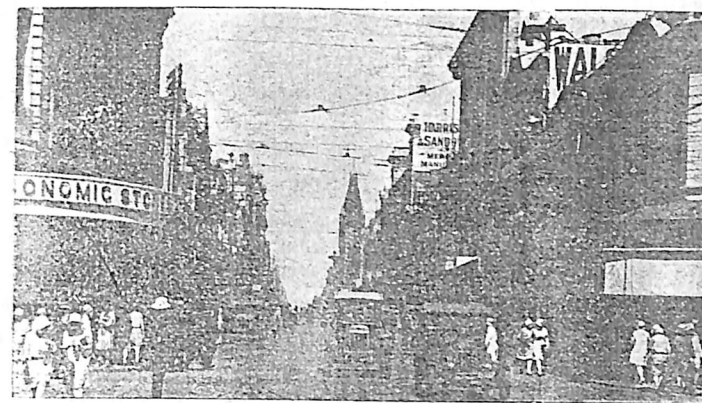
कैनबेरा आस्ट्रेलिया की राजधानी है। इस नगर की उपमा नई दिल्ली से बहुधा दी जाती है। यह आस्ट्रेलिया का नया शहर है और अभी बस रहा है। जब आस्ट्रेलिया संघराज्य में परिणत हुआ अर्थात् जब वहाँ की रियासतें सब मिलकर एक राजनैतिक प्रबन्ध में शरीक़ हुई तब उनकी राजधानी कहाँ हो, यह प्रश्न उठा। सब प्रान्त यही चाहते थे कि हमारे प्रदेश में राजधानी बनाई जाय, इसलिए इस प्रान्तिक झगड़े को मिटाने के लिए अलग ज़मीन ख़रीदकर वहाँ 'कैनबेरा' नाम का नगर बसाया गया। १९२४ में इसकी स्थापना हुई और तब से अब तक यह
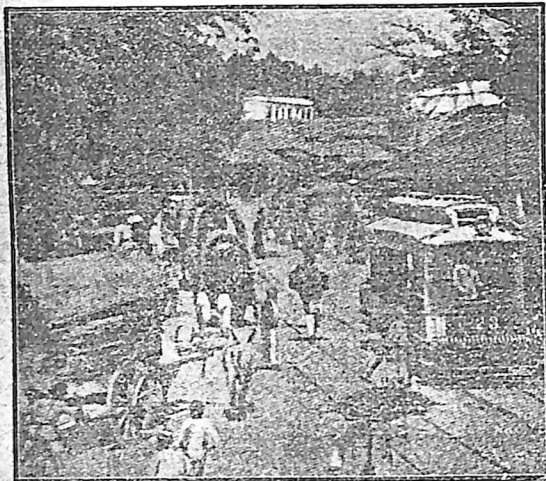
[कोलम्बो नगर की एक प्रसिद्ध सड़क ।]

बराबर बनता और बढ़ता ही जाता है। इसकी बनावट कुछ नई दिल्ली के समान है, परन्तु नई दिल्ली से आकार में बहुत छोटा है। इसके चारों ओर पर्वत हैं। शहर भी छोटी-बड़ी पहाड़ियों पर बसा है। नई दिल्ली के समान ही फूलों की बहुतायत है। एक पूरे बाग़ के बाग़ में निरा गुलाब ही गुलाब है।

वहाँ के लोगों का प्रयत्न है कि कैनबेरा को वे शिक्षा और सभ्यता का केन्द्र बनावें। भिन्न भिन्न विषयों के अनुसंधान के कार्यालय वहाँ खोले गये हैं। विश्वविद्यालय बनाने का विचार है। बड़े बड़े स्कूल हैं। सब दफ़्तर भी धीरे धीरे वहाँ उठकर आते जाते हैं और इस तरह वे अपने नगर को सुन्दर और महत्त्वपूर्ण बना रहे हैं। इस समय कैनबेरा की मनुष्य-संख्या ८,००० है, परन्तु दिनोंदिन बढ़ती जाती है। सिडनी न्यू साउथ वेल्स की राजधानी है। यह आस्ट्रेलिया का सबसे बड़ा नगर है और अँगरेज़ी साम्राज्य में इसका स्थान दूसरा है। इसकी आबादी १०,८३,००० है। इसकी सड़कें अन्य नगरों से तुलना करने में ज़रा छोटी हैं। आबादी भी गुंजान है। मकान उतने दूर दूर और खुले खुले नहीं, जैसे अन्य नगरों में हैं। यहाँ का चिड़िया-घर बहुत सुन्दर है। पशु-पक्षी तो ख़ैर संसार भर के एकत्र हैं ही, परन्तु उसकी बनावट और सजावट मुझे बहुत भली मालूम हुई। यह समुद्र के किनारे एक ऊँची पहाड़ी पर बना है और जो जानवर जिस प्रदेश का है उसके रहने के स्थान व उसके देश की सभ्यता और कला के अनुकूल बना है।

भारतवर्ष का हाथी जिस गृह में रहता है उसकी बनावट में भारतवर्षीय कला भरी हुई है। गुम्बज और मीनार दूर से ही देखकर भारत की याद हो आती है। इसी प्रकार अफ़्रीका के जानवर जहाँ रक्खे गये हैं वहाँ के मकान, जान पड़ता है, मिस्र अथवा मोरोको से उठा लाये गये हैं। जंगली पशुओं के लिए जङ्गली पहाड़ियाँ और गुफायें ठीक ऐसी बनी हैं, जैसी निर्जन जङ्गल में सचमुच देख पड़ती हैं। शेष स्थान रंग रंग के सुन्दर फूलों, क्यारियों और वृक्षों से भरा पड़ा है। वहीं एक बहुत अच्छा होटल भी है, जहाँ जाकर लोग खाते-पीते और नाश्ता करते हैं।

सिडनी का बन्दरगाह संसार भर में विशाल है और सचमुच वह है भी अद्भुत। समुद्र का बहुत बड़ा भाग तीन ओर से छोटी छोटी पहाड़ियों से घिरा हुआ है। केवल एक तरफ़ छोटा सा भाग खुले समुद्र से जा मिला है ऐसा लगता है, जैसे समुद्र में आने-जाने के लिए यह द्वार बना हुआ हो। चारों ओर की पहाड़ियाँ हरे वृक्षों और रहने के सुन्दर मकानों से भरी पड़ी हैं। शांत झील के समान इस बन्दरगाह में पचासों नावें स्त्री-पुरुष से भरी चलती फिरती नज़र आती हैं। सहस्रों स्त्री-पुरुष छुट्टी का समय बिताने के लिए इन क़िश्तियों में बैठकर समुद्र की सैर किया करते हैं। यहाँ नाच-गाना भी होता है। चाय-पानी भी चलता है। चाँदनी रातों में इन क़िश्तियों पर यह सैर बहुत पसन्द की जाती है।

जिन दिनों हम सिडनी गये थे। आस्ट्रेलिया की १५० वीं वर्षगाँठ मनाई जा रही थी। सारा नगर झंडियों और पताकाओं से सजाया गया था। रोशनी की गई थी, जलूस निकाले गये थे और इसी बन्दरगाह में आतशबाज़ी छोड़ी गई थी और बहुत-सी नावों को बिजली की रोशनी से सजाकर उनका जुलूस निकाला गया था। इस जुलूस को

विनिशन कार्निवल का नाम दिया गया था। उस रात हमारा निमंत्रण गवर्नर जेनरल के घर पर था और वहीं से हमने यह सब तमाशा देखा था। उस रात का दृश्य इतना सुन्दर और रमणीय था कि वह कभी भूल नहीं सकता। गवर्नर जेनरल के विशाल लानों पर सब मेहमान शान्ति से कुर्सियों पर बैठे थे। सामने समुद्र से नावों पर से भिन्न भिन्न रंग की आतशबाज़ी छुड़ाई जा रही थी, जो नीले आकाश को भाँति भाँति के और रंग-बिरंगे फूलों से ओत देती थी। तेज़ चमकती हुई सर्चलाइट की रोशनी चारों ओर से इस प्रकार चलाई जा रही थी कि आकाश पर काले बादलों में बिजली चमकती हुई सी प्रतीत होती थी।

[कोलम्बो बंदर का दृश्य।]

नावों का जुलूस भी बहुत चित्ताकर्षक था। उन पर भाँति भाँति से बिजली की रोशनी की गई थी। एक नाव पर कैप्टन फिलिप के प्रथम बार आस्ट्रेलिया पहुँचने का चित्र दिखाया गया था। एक नाव हंस के आकार की बनाई गई थी, जो सोने के चमकते हुए सुनहरे हंस जैसी तैरती हुई सी दीखती थी। इसी प्रकार नये नये आकार की नावें सजी-बनी दृष्टि के सामने से निकल गईं।

इसी वार्षिकोत्सव के कारण उन दिनों बहुत बड़े बड़े जशन मनाये जा रहे थे। अँगरेज़ी साम्राज्य के हर भाग से प्रतिनिधि आये थे। उनको सम्मानित करने के लिए गवर्नर, गवर्नर जेनरल, लार्ड मेयर सब ही बड़ी बड़ी दावतें दे रहे थे। उन अवसरों पर हमको वहाँ के बड़े बड़े स्त्री-पुरुषों से मिलने और उनसे वार्तालाप करने का अवसर मिला।

वहाँ के लोग जाति के तो अँगरेज़ हैं, परन्तु अँगरेज़ों के समान नकचढ़े नहीं हैं। हमको अजनबी देखकर वे लोग स्वयं ही पास आते और अपना परिचय कराकर वार्तालाप आरम्भ कर देते थे। 'वेलकम टु आस्ट्रेलिया' (आस्ट्रेलिया आने पर आपका स्वागत है) यह वाक्य पचासों स्त्री-पुरुषों ने हमसे कहा होगा। लोग बहुत हँसमुख हैं, परन्तु इन बड़े बड़े उत्सवों पर जहाँ देश के बड़े से बड़े लोग उपस्थित थे, वह शान नहीं थी जो ऐसे मजमों में लंदन में पाई जाती है। टाउन-हाल में एक बहुत बड़ा नाच दिया गया था जिसे पायनियरस बाल कहते थे। इसमें कई सौ स्त्री-पुरुष आये थे और सब सवा सौ डेढ़ सौ वर्ष पहले की पोशाकें पहने हुए थे। स्त्रियाँ सायों के नीचे कमर पर बड़े बड़े जाली के जँगले लगाये अपने असली आकार से कई गुना आकार बढ़ाये महारानी विक्टोरिया के समय के वस्त्र पहने फिर रही थीं और पुरुष बारीक जालियों को गले में बाँधे और हाथ के कफ़ों में लगाये उसी ज़माने के नाइट और लार्डों की पोशाक में उपस्थित थे। उन दिनों उन्होंने हाल की सजावट भी ऐसी कर रक्खी थी जिससे उस ज़माने की आस्ट्रेलिया की याद हो उठे। हाल में प्रवेश करते ही ऐसा आभास होता था, जैसे किसी पहाड़ की गुफा में घुस आये हैं, जहाँ चारों ओर दीवारों पर जङ्गली बेलें लगी हैं। आधी रात के बाद तक नाच होता रहा। १२ बजे के लगभग दो हज़ार स्त्री-पुरुषों को खाना खिलाया गया।
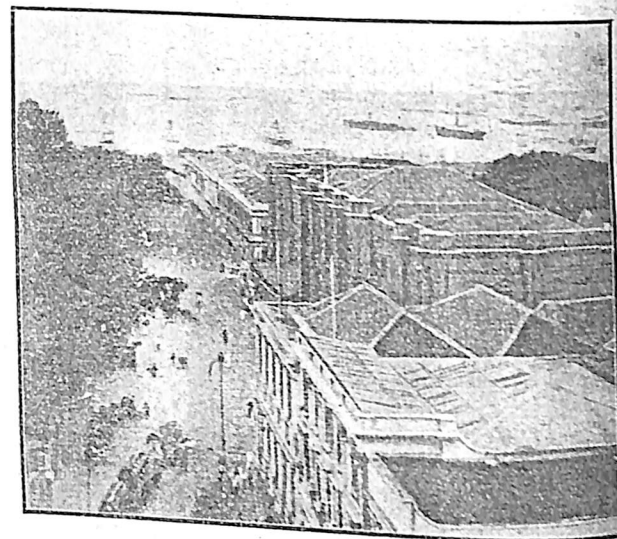
घट

लेखक, श्रीयुत नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द'

(१)

पहले हम मृत्तिका के कण थे,
किसी के करों से यहाँ लाये गये।
फिर सिंचित हो दया के जल से,
किसी चक्र के द्वारा फिराये गये ॥
कितनी ही विपत्ति की आँचें सहीं,
दुख-कूप में नित्य ही आये-गये।
कहाँ व्यर्थ थे और कहाँ जग में,
हम पूजने योग्य बनाये गये ॥

(२)

कंठ फँसा अपना पर-स्वार्थ में,
मुक्ति का ध्यान किया करते हैं।
हैं घटरूप वसुन्धरा में हम,
पुण्य महान किया करते हैं ॥
तत्त्व से और महत्त्व से पूर्ण हैं,
सत्व-प्रदान किया करते हैं।
स्नान किया करते पहले फिर,
जीवन दान किया करते हैं ॥

(३)

कितने क्षणभङ्गुर जान के भी हमें,
ठोकरें मारनेवाले मिले।
कितने ही 'मिलिन्द' उठा करके,
हमें शीस पै धारनेवाले मिले ॥
कितने हमें श्रय दे मंगल का,
निज काज सँवारनेवाले मिले
कितने ही पिपासित लोचनों से,
हमें हाय ! निहारनेवाले मिले।

(४)

निज कर्म कपाल के लेखानुसार,
सखे उड़ टूक के टूक गये।
तुम्हें क्या ? पता है कहने के लिए,
वह नेकी बदी के सलूक गये ॥
जब कूप के गर्भ से थे निकले,
तब तो भरे थे बन मूक गये।
पर विश्व की संसृति से ढलके,
हम बोल उठे यही चूक गये ॥

(५)

दुख है यहाँ पै जगते रहना,
सुख है यहाँ पै सदा सोना सखे,
सँग लाया न ले जा सकेगा कोई,
सबको मिला है यही खोना सखे।
कितने ही बने कितने बिगड़े,
किसका किसके लिए रोना सखे,
इस मोह में क्या ? है कभी न कभी,
सबका यही हाल है होना सखे ॥

एक गृह-जीवन-सम्बन्धी कहानी

कायाकल्प

लेखक, पंडित मोहनलाल नेहरू

"मैया ! यह बुड्ढा तो जान पड़ता है, इस दुनिया का ठेका ही लेकर आया है। जाने का नाम ही नहीं लेता। मैं तो तंग आ गया हूँ। कुछ समझ में नहीं आता। क्या करूँ ?" छोटेलाल ने बहुत झुँझला कर बड़े भाई से कहा।

"हाँ जी, मैं भी इसी सोच में हूँ। देखो न, परमेश्वर के दरबार में भी इन्साफ़ नहीं। जवान मुट्ठे तो आज बीमार पड़े, कल चल बसे। ये हज़रत आज बरसों से खाट पर पड़े हैं, किन्तु खिसकने का नाम ही नहीं लेते और बार बार उठ बैठते हैं।" बड़ेलाल ने उत्तर दिया।

"आख़िर हम भी ३०-३०, ३२-३२ साल पार कर चुके। बाल-बच्चेदार आदमी हैं। बुढ़ापे में दौलत हाथ लगी तो किस काम की ? खाने-खेलने के तो दिन निकले ही जाते हैं।" छोटेलाल ने तेज़ी से टहलते टहलते फिर कहा।

बूढ़े चाचा किशोरीलाल वास्तव में बहुत दिनों से बीमार रहा करते थे। उनके बदन की एक एक हड्डी गिनी जा सकती थी। खाट पर पड़े पड़े वे स्वयं अपने जीने से तंग आ गये थे। कई दफ़े तो यह नौबत आ चुकी थी कि खाट से उतारकर ज़मीन पर उन्हें डाल दिया था। परन्तु उनका समय अभी नहीं आया था।

चालीस वर्ष पहले किशोरीलाल के बड़े भाई मकुन्दीलाल पैतृक सम्पत्ति का बँटवारा करा के अलग हो गये थे। आदमी ज़रा शौक़ीन मिज़ाज थे। किसी बात में आगा-पीछा नहीं सोचते थे। जो भी काम उठाया उसमें घाटा हुआ और शीघ्र ही सम्पत्ति काफ़ूर हो गई।

किशोरीलाल ने मूलधन में कभी हाथ नहीं लगाया, न कभी चादर के बाहर पैर फैलाया। भाग्य ने भी उनका साथ दिया। जो कारबार उन्होंने उठाया उसमें काफ़ी लाभ हुआ। ज्यों ज्यों मकुन्दी की सम्पत्ति घटती गई, किशोरी की बढ़ती गई। इससे बड़े भाई इनसे द्वेष करने लगे। उनका मिज़ाज चिड़चिड़ा हो गया। अपने दुर्भाग्य का कारण वे भाई को ही समझते थे और उनसे सीधे मुँह कभी बात भी नहीं करते थे।

किशोरीलाल भाई की बेरुख़ी या बदमिज़ाजी की परवा न करते। फ़ुर्सत पाने पर भाई के घर जाते, भौजाई से बातचीत करते और बच्चों से खेलते। अपने बग़ीचे से बहुधा फल-फूल भेजते रहते। कभी कभी उनकी श्रीमती झुँझलाकर कहती कि वे तो ऐंठे जाते हैं। आप ख़ुशामद में ही मरे जाते हैं। पर वे हँसकर चुप हो रहते या कहते कि 'यदि वे बेवक़ूफ़ी करें तो मैं क्यों करूँ'।

बीस वर्ष की बात है। मकुन्दीलाल को संग्रहणी का रोग लग गया, बहुत इलाज हुआ, बचा-खुचा पैसा उसमें ख़र्च किया गया। कुछ लाभ न हुआ। ऊपर से काफ़ी क़र्ज़ चढ़ गया। एक दिन किशोरीलाल से एकांत में रोते रोते बोले—"भाई मैं तो अब जाता हूँ। ये दोनों बच्चे अभी छोटे हैं। इनकी क्या गति होगी, यह सोचकर कलेजा मुँह को आता है। मैं इन्हें तुम्हें सौंपता हूँ।"

उनके देहांत पर बड़ेलाल १२ वर्ष के और छोटेलाल १० वर्ष के थे। किशोरीलाल उन्हें और उनकी माता को अपने घर लिवा ले गये। उनकी जायदाद बेचकर क़र्ज़ अदा किया और जो पैसा बचा वह बैंक में लड़कों के नाम से ज़मा कर दिया। वह रुपया अभी तक उसी तरह जमा था। पढ़ाई-लिखाई, शादी-ब्याह, सवारी-शिकारी, मेला-तमाशा, बीमारी इत्यादि रोज़मर्रा का ख़र्च वे अपने पास से करते आये। स्वयं उन्होंने देर में विवाह किया था और उनकी श्रीमती थोड़े ही वर्षों में उन्हें छोड़कर चली गई थीं, फिर भौजाई और अन्य मित्रों के ज़ोर देने पर भी उन्होंने विवाह न किया। सबको एक ही उत्तर देते—"मेरे बाल-बच्चे मौजूद हैं। अब ब्याह करने की ज़रूरत ही क्या है ?"

वास्तव में वे बड़ेलाल और छोटेलाल को अपने ही

लड़के मानते थे। उनका उनके बच्चों से उन्हें बहुत प्रेम भी था और उन पर पानी की तरह पैसा भी ख़र्च करते थे। परन्तु भतीजों के हाथ में सिवा नियत किये हुए जेब-ख़र्च के और नहीं देते थे। लड़के इन्तिज़ाम अपने हाथ में चाहते थे। अपनी वृद्ध माता से बहुधा कहा भी करते कि "चाचा बूढ़े हो गये हैं हम जवानों के बराबर बुद्धि कहाँ हो सकती है? उन्हें तो रामभजन करना चाहिए। क्या दुनिया की घिस घिस में पड़े हैं?"

उनकी माता कभी समझाती, कभी डाँटती। वह कहती—"तुम्हें यह क्या हो गया है जो ऐसी बातें कहते हो? और उस चाचा के वास्ते जिसने तुम्हें पढ़ाया-लिखाया, शादी-ब्याह किया, लाखों तुम पर लुटा दिये। तुम्हें शर्म नहीं आती?"

बड़ेलाल कभी बिगड़ जाते तो कहते—"जो हो, सब देखा है। हमारे बाप का रुपया तो खाये बैठे हैं। बड़े भगत बने हैं। उसी की बदौलत यह विशाल सम्पत्ति आई है कि कहीं और से? जिस दिन चाहूँ बँटवा लूँ।"

इस पर रोना-धोना हो जाता, मगर असर इसका यह होता कि कुछ दिन फिर सब सीधे ढर्रे पर चलने लगते। पर माता के देहांत के बाद कोई रोक-थाम करनेवाला भी न रहा।

इधर कुछ वर्षों से किशोरीलाल स्वयं बीमार रहने लगे थे। लड़कों की बातों की भनक उनके कान में पड़ गई थी। जिन लड़कों पर उन्होंने हज़ारों-लाखों लुटा दिये उनकी बातें सुनकर उन पर मानो वज्रघात होता। आदमी समझदार थे। यह खूब जानते थे कि बुरा वही कहलाता है जो दूसरों की समय पर सहायता करता है। दुनिया का यही ढंग है तब वे बुरा क्यों मानें? और बुरा मानकर वसीयत दूसरों के हक़ में कर दें तो उन्हें क्या लाभ? बुरे हों या भले, हैं तो अपने ही लड़के।

मुनीम जी पुराने नौकर थे। मालिक का उन पर पूरा भरोसा था और वे भी मालिक के शुभचिंतक थे। बड़ेलाल बहुधा बँटवारे की धमकी उनके सामने दे चुके थे। मुनीम जी उनसे साफ़ कह देते कि ऐसा करना उन्हीं के हक़ में बुरा होगा। फिर भी मालिक को जता देना मुनासिब समझकर एक दिन उनसे बोले—"सरकार, आप बीमार रहते हैं। उम्र का कौन ठिकाना? अपने जीते जी बड़े लाला का हिसाब लड़कों को समझा दें तो अच्छा है। वे भी बाल-बच्चेदार आदमी हैं। बड़े हो गये हैं। स्वयं कुछ कारबार करें तो कैसा अच्छा हो!"

किशोरीलाल बोले—"और यह जो मेरी विशाल सम्पत्ति है, किसकी है? आख़िर यह भी तो उन्हीं की है।"

"हाँ सरकार, यह तो ठीक है, परन्तु वे भी कुछ काम-काज करें तो अच्छा ही है। जवान लड़के हैं। उन्हें भी कुछ स्वतन्त्रता चाहिए।"

"नहीं तो वे बँटवारा करा लेंगे। क्यों? हा! हा! मुनीम जी, मैं लड़कों की बातें सुन चुका हूँ। परन्तु जानता हूँ, बेवक़ूफ़ हैं। अच्छा मेरे पास भेज दो और भाई साहब के मामले के कुल काग़ज़ भी उठा लाओ।" किशोरीलाल ने आज्ञा दी।

मुनीम जी ने सारी मिस्ल लाकर मालिक को दे दी। पाई पाई का हिसाब रसीदों के समेत रक्खा था। मुकुन्दीलाल के मरने का, क्रिया-कर्म का ख़र्च, अदालती कारवाई की बाज़ाब्ता नक़लें, मकान और जायदादों के बेचने का हुक्म और हिसाब-किताब जो अदालत में दाख़िल होने पर मंज़ूर हो चुका था और बाक़ी रुपये की बैंक की रसीद जो हर साल बदलते बदलते आज सूद समेत दूनी हो चुकी थी, उसमें मौजूद थी। किशोरीलाल ने लड़कों को बुलाकर कहा—

'बेटा, मैं बीमार रहता हूँ। न मालूम किस दिन खिसक जाऊँ। इससे तुम अपने पूज्य पिता का तो हिसाब समझ लो और यह २४,०००) की रक़म मुझसे लेकर अपना जो काम चाहो चलाओ। यों तो सब तुम्हारा ही है। मगर जब तक मैं जीता हूँ तब तक मेरे ही क़ब्ज़े में रहेगा। मैं शायद सब तुम्हारे ही सुपुर्द कर देता, मगर यह देख चुका हूँ कि मेरे एक मित्र ने अपने लड़कों में अपनी पैदा की हुई कुल जायदाद बाँट दी और यह समझा कि बारी बारी से लड़कों के साथ रहेंगे। मगर किसी ने उन्हें घर में न रहने दिया। वे उससे ज़्यादा जी गये जितना चाहते थे और बड़ी दुर्दशा से मरे। मुझे न जाने कब तक भोगना है? पीछे तो सब तुम्हारा है ही, घरबार तुम्हारा है ही। जैसे रहते-सहते हो, रहो।"

बड़े और छोटेलाल एकदम बोले—"वे लड़के ही दुष्ट थे। हम थोड़े वैसे हैं!"

किशोरीलाल हँसकर चुप हो गये। रुपया लेकर वे चले गये।

दोनों भाई जब घर में बाल-बच्चों में बैठे तब आपस में बातचीत इसी विषय की चली। "बुड्ढे की नीयत में कुछ फ़र्क़ आ गया है। तभी तो हिसाब-किताब समझाया है और हमारे बेबाक़ी पर हस्ताक्षर करा लिये हैं।" बड़ेलाल ने कहा।

"और क्या? किसी ने चुग़ली की है। तुम्हीं बहुत बँटवारा बँटवारा लगाये रहते थे। लो मज़ा चखो।" छोटेलाल बोले।

"तो क्या मैं छोड़ दूँगा? एक एक दमड़ी वसूल करूँगा। कल ही वकील से सलाह लूँगा।" बड़ेलाल ने कहा।

वकील ने काग़ज़ात देखकर सलाह दी कि नालिश नहीं चलेगी। बड़ेलाल के होश उड़ गये। छोटे से एकांत में बोले—"भाई, यह तो सारी दौलत पैर के तले से खिसका चाहती है। चाचा हैं बड़े हज़रत। मीठा बोल है, परन्तु दिल में पाप भरा है। हमसे ख़फ़ा हो गये हैं। ऐसा न हो, दौलत दान-पुण्य कर दें तो हम कहीं के न रहें।"

"तो अब हो भी क्या सकता है? मामला तो बिगाड़ दिया। चलो कुछ रुपया तो हाथ में आ गया है। कुछ दिन सब्र से काम लो। फिर देखा जायगा।"

"सब्र गया ऐसी की तैसी में। कौन ऐसा गदहा होगा, जो इतनी बड़ी सम्पत्ति पैर के नीचे से खिसकती देखे और उसे रोकने का यत्न न करे?"

"रोक सको तो रोको। ख़ुशामद-बरामद से काम लो। बच्चों से उन्हें अब भी बहुत प्रेम है। शायद उन्हीं को दे जायँ।"

"इन बातों से काम नहीं चलेगा। बुड्ढा बीमार तो है ही। दो-चार बरस से ज़्यादा तो कोई बीमार चल नहीं सकता। डाक्टर रोज़ ही उनके अंत की आशा लगाये रहते हैं। यदि वे किसी दिन मरे पाये गये तो किसी को शक तक न होगा। अगर डाक्टर ने शक किया तो हमारे-तुम्हारे पास इतना पैसा है कि उन्हें चुप कर देंगे।"

"यह तो आप बेढब बात सुनाते हैं।"

"मगर भाई ज़रूरी है। अपना हक़ बचाने को आदमी क्या नहीं करता? अब रहा खिलाना सो मुश्किल अवश्य है। मगर उस मुश्किल को तुम्हें दूर करना होगा। तुम्हारी दुलहिन उनकी दवा-दारू करती हैं। उससे कहना तो हर्गिज़ नहीं। औरतें ऐसे गंभीर विषय में एतबार करने के क़ाबिल नहीं होतीं। बस, तुम चुपके से दवा की शीशी में यह चुटकी मिला दो। मैं इसे एक बंजारिन बुढ़िया से लाया हूँ। उसने कहा है कि किसी को पता नहीं चल सकता। पाँच-छः घंटे में असर करेगी।"

छोटेलाल ने पुड़िया ले ली और अपने कमरे में जाकर लेट रहे। वे इन्तज़ार करने लगे कि पत्नी भोजन करने जाय तो शीशी में मिला दें। मगर दिल धड़क रहा था और मुँह का रंग फीका पड़ गया था। स्त्री ने पूछा—"क्यों तबीयत कैसी है?" बोले—"ज़रा सिर में दर्द है"। कुछ देर वह सिर दबाती रही और उनका कलेजा बल्लियों उछलता रहा। रात हो गई तब बोले—"जाओ भोजन कर लो। मैं न खाऊँगा। तुम्हें फिर चाचा को दवा पिलानी होगी।"

ज्यों ही वह कमरे से गई, छोटेलाल चारपाई से उठे और दवा की शीशी को हाथ में उठाया तो हाथ काँपने लगे और दिल की धड़कन बहुत तेज़ होगई। शीशी को बार बार उठाते फिर रख देते। दवा डालने की हिम्मत न पड़ती। मगर फिर अपना और अपने बच्चों का भविष्य सोचकर शीशी उठा ही ली। इतने में किसी के आने का भ्रम हुआ तब झटपट चुटकी मिला कर रख दी और लेट रहे। रात को नींद न तो उन्हें ही पड़ी, न बड़ेलाल को। दोनों के दिलों में ख़लबली मची थी।

जाड़े के दिन थे। बड़ी कड़ी सर्दी पड़ रही थी। सब लोग लिहाफ़ों में घुसे थे। सिवा इन दो भाइयों के सब सो रहे थे। कोई तीन बजे रात में किशोरीलाल ने 'छोटी दुलहिन' को पुकारा। वह तुरन्त उठ खड़ी हुई और श्वशुर के पास जा पहुँची। "दुलहिन, डाक्टर को टेलिफ़ोन करके अभी बुला लो। मैं अब मर रहा हूँ। गर्मी के मारे फुका जा रहा हूँ। मालूम होता है, जैसे कोई कलेजा मसोस रहा है।" किशोरीलाल ने बेचैनी से कहा।

दुलहिन ने तुरन्त ही टेलीफ़ोन उठा लिया और डाक्टर को बुलाया। वे अपना बेग लिये १० मिनट में आ पहुँचे। इस वक़्त तक सारा घर जाग चुका था और लोग बीमार के सिरहाने खड़े थे। बिजली की रोशनी में डाक्टर ने नाड़ी देखने के बाद पहले शीशी देखी। उसमें कोई सफ़ेद

चीज़ नीचे जमी थी। शीशी को जेब में रख लिया। इस पर दोनों भाई एक-दूसरे की तरफ़ देखने लगे। उनके रंग ऐसे फीके पड़ गये कि यदि डाक्टर को फ़ुर्सत होती तो वह उसी वक्त चोर को पकड़ लेता।

पहले तो डाक्टर ने उन्हें उलटी कराई। फिर कोई दवा दी और ठण्डे पानी के हौज़ में उन्हें बैठा दिया। लड़कों और बहुओं ने कहा भी कि इतनी सर्दी में बदन ऐंठ जायगा, मगर डाक्टर ने उन्हें डाँट दिया। उस पर भी जब रोगी को अन्दर से गर्मी की शिकायत रही तब कच्चा घी पिलाया। सुबह तक कुछ तबीयत ठहरी, मगर दिन भर ठण्डे पानी से नहलाना और घी का पिलाना जारी रहा। डाक्टर को शक तो हो ही गया था। इससे उसने अपने सहायक कई डाक्टर बुला लिये थे, जो बारी बारी से रोगी की देख-भाल कर रहे थे।

तीन दिन तक किशोरीलाल मौत के मुँह में रहे, मगर तीन दिन के बाद उनकी हालत सँभलने लगी और यहाँ तक सँभल गई कि उनके पुराने रोग सब दूर होने लगे और दो महीने में वे बिलकुल स्वस्थ हो गये। इस बीच में डाक्टर साहब ने इतमीनान कर लिया था कि बीमार को विष दिया गया था और बड़ेलाल और छोटेलाल की आधी पूँजी उनको चुप कराने में व्यय हो चुकी थी। किशोरीलाल को पूरा विश्वास था कि उन्हें दवा में विष दिया गया था, परन्तु वे इस बात को मुँह से नहीं निकालते थे और लड़कों के प्रति व्यवहार में कोई भेद मालूम नहीं होता था।

साल भर के भीतर किशोरीलाल का कायाकल्प हो गया। साठ वर्ष की अवस्था में वे इतने स्वस्थ हो गये, जितने ३० वर्ष की अवस्था में भी न थे और अब यदि कोई मित्र कहता था कि तुम फिर से जवान हो गये हो, विवाह कर डालो तो वे वैसा इनकार भी न करते थे, जैसा २५ साल पहले किया करते थे।

यह उस काल की बात है जब ६० वर्ष की अवस्था में पुरुष का विवाह करना यों भी बुरा नहीं समझा जाता था, परन्तु इनका तो कायाकल्प हो चुका था और किसी अपने से आधी अवस्थावाले से भी नहीं जान पड़ते थे। जब इनकी तरफ़ से इन्कार न होने लगा तब बात करनेवाले भी काफ़ी पैदा हो गये और किसी ग़रीब आदमी की २० वर्ष की लड़की से इनका बहुओं और भतीजों की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ विवाह हो भी गया।

अपने विवाह के समय दोनों भतीजों को किशोरीलाल ने काफ़ी रुपया देकर अलग कर दिया। यथासमय उन्हें सन्तान भी हुई और जब दस वर्ष के बाद उनका एकाएक शरीरांत हो गया तब उनका ९ वर्ष का लड़का सरकारी स्कूल में पढ़ रहा था और ६ वर्ष की लड़की घर में खेला करती थी।

छोटेलाल-बड़ेलाल दोनों ने बहुत हाथ-पैर मारे, वकीलों से सलाहें कीं, धींगा-धींगी तक की ठानी, परन्तु कुछ बना न सके। ज़रा जल्दी धनाढ्य होने के फेर में विशाल संपत्ति खो बैठे।

मातृभूमि नमस्कार !

लेखक, श्रीयुत जमालुद्दीन मखमूर 'राजस्थानी'

नमस्कार ऐ मातृभूमि नमस्कार !
नमस्कार ऐ प्रिय जननि नमस्कार ॥
नमस्कार ऐ मान्यवरनि नमस्कार।
नमस्कार ऐ वीर-जननि नमस्कार ॥
नमस्कार ऐ रामोकृष्ण कुमारी।
नमस्कार ऐ वीर गौतम की प्यारी ॥
नमस्कार जय जय जगत् की दुलारी।
नमस्कार ऐ प्रिय माता हमारी ॥
नमस्कार जय जय रणधीर भारत।
नमस्कार जय जय गम्भीर भारत ॥
नमस्कार जय जय प्रिय वीर भारत।
प्रिय वीर भारत प्रिय वीर भारत ॥
नमस्कार गंगो जमुन की विधाता।
नमस्कार विंध्यो हिमालय की माता ॥
नमस्कार जगदीश्वरी अन्नदाता।
नमस्कार माता नमस्कार माता ॥

('श्री वेंकटेश्वर' से)

चिकोस्लोवेकिया

लेखक, श्रीयुत कुँवर राजेन्द्रसिंह

चिकोस्लोवेकिया योरप का एक छोटा सा स्वतन्त्र राज्य है। सन् ईसवी के ५०० वर्ष पहले यहाँ 'केल्टिक' जाति के लोग आकर आबाद हुए थे। यह एक बहुत पुरानी जाति है, जो अब भी स्काटलेंड, आयलैंड, वेल्स और उत्तरीय फ़्रांस में बसी हुई है। इसमें से एक वर्ग का नाम 'बोजी' था और उसी ने चिकोस्लोवेकिया के एक स्थान का नाम 'बोहेमिया' पड़ा। यह चिकोस्लोवेकिया-राज्य का एक विख्यात भूखण्ड है। सन् ईसवी की दूसरी शताब्दी में रोमन-राज्य के सम्राट् आर्लियस और उसके बाद सम्राट् कमोडस ने चिकोस्लोवेकिया को परास्त करने का इरादा किया था, परन्तु स्वयं रोम में अशान्ति फैल जाने की वजह से चिकोस्लोवेकिया पर चढ़ाई नहीं की गई। यह अनुमान केवल अनुमान ही है कि यह देश रोमन-राज्य के अधीन रहा है। हाँ, १८४९ से लेकर १९१८ तक चिकोस्लोवेकिया आस्ट्रिया-हंगरी-साम्राज्य के अधीन उसके एक प्रान्त के रूप में रहा।

[श्री टी० जी० मसरिक, जिनके प्रयत्न से चिकोस्लोवेकिया को स्वाधीनता मिली और जो उसके प्रथम राष्ट्रपति बनाये गये थे।]

जिस शताब्दी में रोम और चिकोस्लोवेकिया के बीच युद्ध छिड़नेवाला था उसी शताब्दी में 'स्लाव' जाति के लोग वहाँ आकर बसे थे। ये लोग 'आरियन' जाति के कहलाते थे। अँगरेज़ी-भाषा में यह संस्कृत-शब्द आर्य्य का विशेषण है। प्राचीन समय में ये जातियाँ उत्तरीय योरप और मध्य-एशिया में रहती थीं। 'स्लाव' जाति वास्तव में पूर्वी योरप की रहनेवाली थी। यह बहुत दिनों तक चिकोस्लोवेकिया में रही। जब हूणों ने चढ़ाई की तब ये लोग वहाँ से चले गये। हूण एशिया के रहनेवाले थे। चौथी शताब्दी में इन्होंने योरप पर आक्रमण किया था। इन्हीं के नाम से हंगरी देश का नाम पड़ा। चिकोस्लोवेकिया कई शताब्दियों तक 'एवर्स' के अधीन रहा। ये लोग भी एशिया के थे। ये सब १६२० ईसवी के बाद की बातें हैं। इसके पहले चिकोस्लोवेकिया पर किसी का आधिपत्य नहीं हुआ था।

जब मोर्विया (यह भी अब चिकोस्लोवेकिया-राज्य का एक प्रान्त है। यह नाम वहाँ की एक नदी के नाम पर पड़ा है) और जर्मन-साम्राज्य में अनबन हुई तब बोहेमिया के राजकुमार ने मोर्विया से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और जर्मन-सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके समय में उस देश की बड़ी उन्नति हुई। यह इतना लोकप्रिय था कि इसकी मृत्यु का वर्ष-दिवस अब भी वहाँ मनाया जाता है। स्वयं इसके भाई ने इसका वध किया था। २५० वर्ष तक चिकोस्लोवेकिया की संस्थापना में बाधायें उपस्थित होती रहीं। एक तो आपस के झगड़े और उस पर जर्मन सम्राट् का यह अधिकार कि वही उस देश का बादशाह नियुक्त होगा जिसे चुने हुए राजकुमारों में से वे पसन्द करेंगे और उसी को वे पसन्द करते थे जिसके बादशाह होने से आपस का वैमनस्य और बढ़ता था। ११८२

[डाक्टर एडुअर्ड वेनेस, जिन्हें वर्तमान संकटकाल में राष्ट्रपति का पद छोड़ना पड़ा है।]

ईसवी में उन्होंने यह तय किया कि तख़्त के दो हक़दारों में से एक बोहेमिया का बादशाह हो और दूसरा मोर्विया का। इच्छा दोनों की पूरी हो गई, परन्तु राज्य की संयुक्तता जारी रही। फ़ैसला करनेवाले की भी यही इच्छा थी। केवल यही नहीं, यह भी आज्ञा दी कि भविष्य के झगड़े बचाने के लिए मोर्विया का बोहेमिया से कोई सम्बन्ध न रहेगा और उसका प्रबन्ध बिलकुल उनकी आज्ञा से हुआ करेगा। स्वत्व शक्ति है। १२ वीं शताब्दी तक इसी तरह शनैः शनैः विच्छेद होता रहा।

११९७ में प्रथम ब्लैडी स्लेव के दो लड़कों ने आपस में यह समझौता कर लिया कि एक तख़्त पर बैठे और दूसरा मोर्विया का 'मार्गरेव' कहलाये। यह जर्मन देश का एक पुराना ख़िताब था। जर्मनी के सम्राट् से यह भी तय हो गया कि बोहेमिया राज्य समझा जाय और मोर्विया और प्रेग (यह चिकोस्लोवेकिया की अब राजधानी है) वैसे ही रहें जैसे पहले थे। जब चिकोस्लोवेकिया जर्मन-साम्राज्य के अधीन था तब बहुत-से जर्मन वहाँ आकर बस गये थे। यह उस राज्य के प्राचीन इतिहास का दिग्दर्शन है।

विगत योरपीय महायुद्ध के पहले चिकोस्लोवेकियावाले निराशा से भी आशा करते रहे कि आस्ट्रिया-हंगरी की सरकार शासन-पद्धति में सुधार करेगी। उन लोगों ने यह भी विदित कर दिया था कि साम्राज्य पर संकट पड़ने पर वे पूरी सहायता करेंगे। पर उनकी माँग पर कुछ भी ध्यान न दिया गया और महायुद्ध छिड़ गया। उस समय चिकोस्लोवेकियावालों ने यह कहा था कि जर्मनी का साथ न देकर रूस और सर्बिया का साथ दिया जाय। यह भी नहीं सुना गया। उनकी ऐसी प्रार्थनाओं से आस्ट्रिया-हंगरी की गवर्नमेंट को संदेह हुआ और उन लोगों के साथ उग्र नीति से काम लिया जाने लगा। चिकोस्लोवेकियावालों ने तब यह सोचा कि अगर देश को स्वतन्त्र करना है तो यह आवश्यक है कि साम्राज्य का पतन हो। फलतः अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन लोगों ने सभी कुछ किया—युद्ध में सभी तरह की बाधायें डालीं। बग़ली घूसा घातक होता है। युद्ध हो ही रहा था कि अशान्ति फैली और ज्यों ज्यों साम्राज्य की शक्ति घटती गई, त्यों त्यों क्रान्ति बढ़ती गई और अन्ततः आस्ट्रिया-हंगरी-साम्राज्य भंग हुआ और चिकोस्लोवेकिया स्वतन्त्र हो गया।

चिकोस्लोवेकिया योरप के मध्य में है। इसके उत्तर में पोलेंड और जर्मनी हैं, पश्चिम में जर्मनी है, दक्षिण में आस्ट्रिया, हंगरी और रूमानिया हैं। इसका क्षेत्रफल ५४,८७७ वर्गमील है। यह पहाड़ी देश है और कृषि-प्रधान है। खेती से इस देश को १५० मिलियन पौंड की आमदनी १९३० में हुई थी। एक मिलियन दस लाख का होता है और अपने देश में पौंड का भाव तेरह रुपया और कुछ आने है। वहाँ दूध और दूध से बनी हुई चीज़ों से अच्छी आमदनी होती है। गेहूँ, जौ, जई और जुवार की अधिक खेती होती है। थोड़े दिनों पहले तक गेहूँ की पैदावार इतनी नहीं होती थी कि उससे वहाँ का काम चल पाता। तब वहाँ की गवर्नमेंट ने चुक़न्दर की खेती कम करवा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ की ज़रूरत से ज़्यादा गेहूँ पैदा होने लगा। जो गेहूँ बच जाता है वह अब विदेश को बेच दिया जाता है। वहाँ के जौ की विदेशों में बहुत माँग है। इस व्यवसाय से उस देश को

बड़ा लाभ होता है। तिली, पोस्ता, सन और तम्बाकू से भी अच्छी आमदनी हो जाती है। पहले शकर पैदा करनेवाले देशों में चिकोस्लोवेकिया का दूसरा स्थान था। अब जब से गेहूँ की खेती बढ़ी है तब से इसका पाँचवाँ स्थान हो गया है। उस देश में चुक़न्दर से शकर बनाई जाती है और इसके व्यवसाय से वहाँवालों को इतना फ़ायदा होता है कि वे शकर को 'सफ़ेद सोना' कहते हैं। खनिज पदार्थों का व्यवसाय बहुत पुराने ज़माने से वहाँ होता है। चाँदी, लोहा और कोयला बहुत निकलता है।

[स्लोवाक प्रदेश का एक ग्राम-दृश्य]

चिकोस्लोवेकिया की आबादी घनी है। आठ वर्ष पहले इसकी जन-संख्या १,४७,२९,५३६ थी। घनी आबादी के हिसाब से इसका सातवाँ स्थान है। प्रत्येक किलोमीटर (यह ⅝ मील के लम्बाई के लगभग होता है) में १०८ आदमियों के रहने का औसत पड़ता है। ब्रिटेन और उत्तरीय आयर्लेंड में १९२ का औसत है। यहाँ के लोग हँसमुख और बहुत आदर-सत्कार करनेवाले होते हैं। चिकोस्लोवेकिया में सवा तीन मिलियन जर्मन हैं। उस देश की जन-संख्या पर २२ प्रतिशत इनका औसत पड़ता है। अपने देश की तरह वहाँ भी अनेक भाषायें हैं, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं पड़ी और न इसकी फ़िक्र हुई कि किसी नई भाषा का आविष्कार हो। वहाँ जिस ज़िला या प्रान्त में जिस भाषा को २० प्रतिशत से कम लोग बोलते हैं उस भाषा को वहाँ की गवर्नमेंट सरकारी ज़बान नहीं मानती है। अपने देश का रंग दूसरा है। यहाँ जिस भाषा को अधिक लोग बोलते हैं उसी पर आफ़त है। उस देश की दूसरी भाषा जर्मन है। वहाँ की राजनीति जाननेवालों का यह विश्वास था कि देश के स्वतन्त्र हो जाने पर जब इनकी आबादी के औसत से इनके निर्वाचित सदस्य पार्लियामेंट में पहुँच जायँगे तब आन्दोलन मिट जायगा, परन्तु यह नहीं हुआ। १९२० की मई में जब जर्मन देश वालों के प्रतिनिधि पार्लियामेंट में पहुँचे तब यह कहा कि चिकोस्लोवेकिया के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना उनकी इच्छा के विरुद्ध की गई है, इस वजह से अपना भविष्य निर्णय करने का केवल उन्हीं को अधिकार है। उन लोगों ने निर्वाचित समिति के बनाये हुए क़ानूनों को न मानने का भी अपना अधिकार समझा और यह माँग की कि जिन स्थानों में उनकी सख्या अधिक है, वहाँ उसी के हाथ में शासन हो जिसे वे निर्वाचित करें। जर्मनी चिकोस्लोवेकिया से नाख़ुश था ही। यह कैसे भूलता कि कभी यह देश उसके अधीन था? आस्ट्रिया-हङ्गरी भी ख़ुश नहीं था, क्योंकि चिकोस्लोवेकिया ने युद्ध में साथ नहीं दिया था। पोलेंड भी ख़ुश नहीं था। महायुद्ध में चिकोस्लोवेकिया की सहानुभूति रूस के साथ थी और पोलेंड रूस के विरुद्ध था। चिकोस्लोवेकिया के स्वतन्त्र होते ही फिर युद्ध छिड़ता, परन्तु तब किसी को हाथ-पैर हिलाने की शक्ति नहीं रह गई थी। दबी हुई आग सुलगती रही। चिकोस्लोवेकिया के रहनेवाले जर्मन
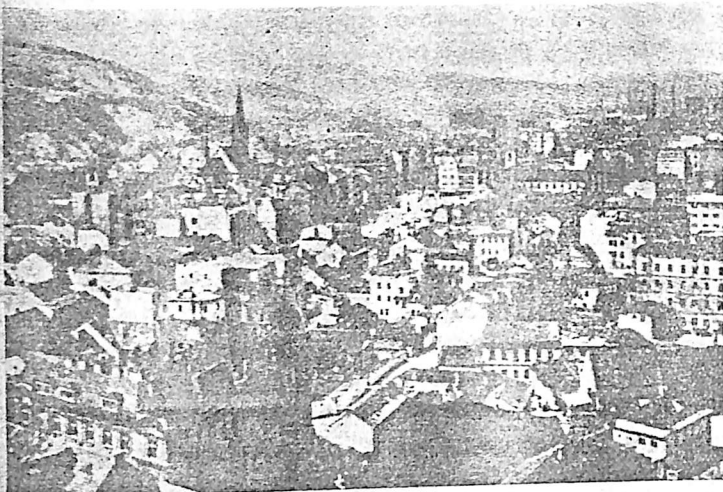
[सुडेटन जर्मन-प्रदेश का औसिग नाम का नगर। यहाँ से जर्मनी की सीमा समीप है।]

यह चाहते थे कि इस राज्य की सीमायें पुनः निर्धारित की जायँ।

ज्यों ज्यों जर्मनी की शक्ति बढ़ती गई, त्यों त्यों चिकोस्लोवेकिया के प्रति उसकी निगाह और टेढ़ी होती गई। १९३४ में 'स्यूडेट' पार्टी की स्थापना हुई। वहाँ के जर्मन देश के रहनेवालों में दो दल हो गये। 'ऐक्टीविस्ट' दलवालों का यह उद्देश्य था कि चिकोस्लोवेकिया स्वतन्त्र रहे और इसका शासन प्रजासत्तात्मक हो। दूसरी पार्टी मध्य-योरप में समाजवाद की पक्षपाती थी और उसका अप्रकट उद्देश्य यह था कि जर्मनी का प्रभाव बढ़ता जाय। 'सूडेट' जर्मनवालों का चिकोस्लोवेकिया के ख़िलाफ़ यह कहना था कि इन लोगों की राय नहीं ली गई और चिकोस्लोवेकिया के राज्य में वे स्थान भी सम्मिलित कर दिये गये जिनमें उनकी संख्या अधिक थी। यह सत्य है, उनकी सलाह नहीं ली गई थी। वास्तव में दोष उन्हीं लोगों का था। उनमें आपस में ही मतभेद था। ऐसे ही अवसरों के लिए कहा गया है कि एकता में शक्ति है और विच्छेद में निर्बलता है। यह भी कहा गया कि चिकोस्लोवेकिया के राजनीतिज्ञों ने संधि-संघ को धोखा दिया और असलियत को छिपाकर अपने अनुकूल निर्णय करा लिया। पर इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है। उनका यह भी कहना था कि चिकोस्लोवेकिया का यह उद्देश्य और उद्योग रहा है कि जर्मन-जाति की संख्या घटती जाय और इस वजह से चिकोस्लोवेकिया वालों के वहाँ अधिक बसाने जाने की कोशिश की जाती है जहाँ जर्मनों की संख्या अधिक है। यह सत्य है कि १९१८ से जब से चिकोस्लोवेकिया स्वतंत्र हुआ है, उन ज़िलों में उस देश वाले अधिक बसने लगे थे, परन्तु उसी के साथ यह भी सत्य है कि वहाँ की गवर्नमेंट पर इसका दोषारोपण नहीं किया जा सकता है। चिकोस्लोवेकिया के जर्मनों की यह भी शिकायत थी कि उन पर दबाव डाला जाता था कि वे लोग अपनी राष्ट्रीयता बदल दें और अपने लड़कों को उन स्कूलों में भेजें जहाँ चिकोस्लोवेकिया की भाषा पढ़ाई जाती है। यह भी शिकायत करते थे कि जर्मन देश-वासियों को उतनी नौकरियाँ नहीं दी जाती हैं जितना उनकी आबादी का औसत है। एक और शिकायत थी कि उनकी भाषा में उन्हें शिक्षा देने का उचित प्रबन्ध नहीं था। पर उनका यह कहना बिलकुल ठीक नहीं था। इस तरह की कथित और कल्पित न मालूम कितनी शिकायतें थीं।

चिकोस्लोवेकिया की भौगोलिक परिस्थिति ऐसी है कि इसके नज़दीक बड़े बड़े साम्राज्य हैं और यदि इसका समझौता इनसे न होता तो किसी न किसी के अधीन इसे होना पड़ता। निर्बलता और भय परस्परानुगामी शब्द हैं। चिकोस्लोवेकिया सबको ख़ुश रखने की कोशिश बराबर करता रहा। १९२६ में जब जर्मनी के राष्ट्र-संघ के सदस्य

होने का प्रश्न उठा तब डाक्टर बेनेस ने अपनी जगह जर्मनी के प्रतिनिधि के लिए छोड़ दी और हमेशा अपने भाषणों में यही कहते रहे कि चिकोस्लोवेकिया और जर्मनी के बीच में पूर्ण मैत्री है और उन्हीं डाक्टर बेनेस के लिए अभी थोड़े ही दिन हुए, हिटलर ने सगर्व कहा था कि लड़ाई डाक्टर बेनेस की और मेरी है। कमज़ोर को दबा लेना बहुत आसान है। ये शब्द मुँह से न निकलते अगर किसी सबल का सामना पड़ता।

[प्रेग में चिकोस्लोवेकिया के युवकों की मार्चिंग]

चिकोस्लोवेकिया की यह परिस्थिति थी जो दाँतों के बीच में ज़बान की होती है। कब तक बचता? स्वभावतः शक्ति बढ़ते ही जर्मनी को हाथ-पैर फैलाने की इच्छा हुई। सबल के सब साथी होते हैं—जर्मनी की इटली से दोस्ती बढ़ी, 'बाघ को बन्दूक़ मिल गई।' हिटलर की निगाह पहले आस्ट्रिया पर पड़ी। स्वार्थ की सीमा में कृतज्ञता का कोई स्थान नहीं है। १९१४ के युद्ध में आस्ट्रिया जर्मनी के साथ था। 'असमय मीत का को कौन'। आस्ट्रिया को चट कर जाने की हिम्मत कदापि हिटलर को न पड़ती यदि उसे ज़रा भी संदेह होता कि ब्रिटेन और फ़्रांस बीच में पड़ेंगे। इन दोनों के बीच में न पड़ने से हिटलर को आस्ट्रिया को हज़म कर जाने में कोई भी कठिनता नहीं हुई। 'मुँह में ख़ून लग ही चुका था,' हिटलर ने चिकोस्लोवेकिया की तरफ़ निगाह उठाई। इसे मानते हुए भी कि ब्रिटेन और फ़्रांस चिकोस्लोवेकिया को मदद देने के लिए वचन दे चुके थे, इन दोनों देशों के राजनीतिज्ञों ने वह कमज़ोरी दिखलाई कि हिटलर की हिम्मत बढ़ती गई। उद्देश्य यह था कि इस राज्य में जहाँ जहाँ जर्मनों की आबादी ज़्यादा है वे अलग सूबे समझे जायँ और वे सूबे जर्मनी के अधीन हों। बस, इसी पर ज़ोर दिया जाता था कि इस छोटे से देश की सीमायें फिर निर्धारित की जायँ।
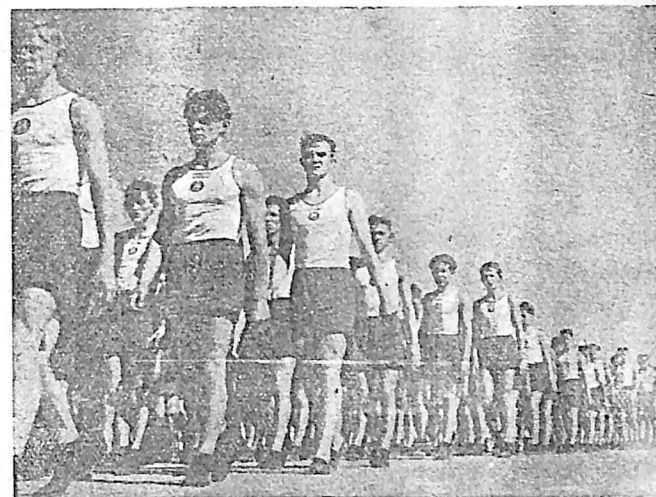
जर्मनी ने यह निश्चित कर लिया था कि चाहे जिस तरह हो वह उन सूबों पर अपना अधिकार प्राप्त करे जिनमें उस देश के रहनेवालों की संख्या अधिक है। जिनसे चिकोस्लोवेकिया की संधि थी या जिनसे सहायता की आशा थी वे बग़लें झाँक रहे थे। चिकोस्लोवेकिया ऐसे छोटे राष्ट्र के ख़ुश या नाख़ुश होने से किसी बड़े साम्राज्य को क्या डर हो सकता था? और दूसरे एक छोटे देश को बचाने के लिए बड़े साम्राज्य क्यों लड़ते? और अगर लड़ते तो केवल इसी वजह से तो कि अपने प्रण का पालन करते। 'जैसा वचन वैसा कर्मवाला' सिद्धान्त अँगरेज़ी में गदहों का गुण कहा जाता है। १७ फ़रवरी १९३८ की कामन्स सभा की बैठक में जब पूछा गया तब मिस्टर ईडन ने कहा था कि 'इस देश को चिकोस्लोवेकिया के प्रति मित्रता के भाव रहे हैं और उसे यह भी मालूम है कि कौन-कौन उससे और अन्य देशवालों से संधियाँ हुई हैं।' इसे उत्तर न कह कर शब्दों का मायाजाल कह सकते हैं। गवर्नमेंट की इस अनिश्चितता से उसी के देशवासी असन्तुष्ट थे। २४ मार्च को प्रधान मंत्री मिस्टर चेम्बरलेन ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा था कि 'वह स्थान

[हर हिटलर]

(चिकोस्लोवेकिया) ऐसा नहीं है, जहाँ गवर्नमेंट के स्वार्थ फ़ांस और बेल्जियम से अधिक हों।' यह दूसरा शाब्दिक मायाजाल था। जहाँ स्वार्थ है, वहाँ प्रण का प्रश्न कहाँ उत्पन्न हो सकता है? चिकोस्लोवेकिया की स्वतंत्रता को पहले ब्रिटिश गवर्नमेंट ने ही स्वीकार किया था। तब की और अब की आवश्यकताओं में अन्तर है। युद्ध में आस्ट्रिया की शक्ति घटाने के लिए चिकोस्लोवेकिया को उभारना था, क्योंकि आस्ट्रिया जर्मनी के साथ था। और अब जर्मनी को ख़ुश करना था, चाहे चिकोस्लोवेकिया नष्ट हो जाय, और हो ही गया। प्रधान मंत्री की इस नीति से इँग्लेंडवाले ख़ुश नहीं थे और १४ मार्च १९३८ की कामंस-सभा की बैठक में सर आर्कीवाल्ड सिंक्लेर ने कह ही डाला—"या तो प्रधान मंत्री बेवकूफ़ बनाये जा रहे हैं या वे इस देशवालों को बेवकूफ़ बना रहे हैं।" चाहे जो बेवकूफ़ बना, संधि हो गई और क्या अच्छी संधि हुई! हिटलर जो कुछ चाहता था वही हुआ। जब साथी ही साथ छोड़े हुए थे तब चिकोस्लोवेकिया क्या कर सकता था सिवा एक अन्तर्दाहनी आह भर के यह कहने के, "आँखों से आज देखा यह हाल बेकसी का, सुनते थे मुद्दतों से कोई नहीं किसी का।" ब्रिटेन के इस तरह दबने से उस देश के लोग अप्रसन्न हुए। पार्लियामेंट के एक प्रमुख सदस्य ने इस्तीफ़ा तक दे दिया और कहा कि इस समझौते की शर्तों को निगलना चाहा, परन्तु गले में अटक गईं।

[ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मिस्टर नेवाइल चैम्बरलेन]

पोलेंड और हंगरी के जो प्रजाजन चिकोस्लोवेकिया में रहते हैं वे भी अपना भविष्य निश्चित करने का अधिकार माँग रहे हैं—साफ़ बात यह है कि वे भी अलग हुआ चाहते हैं। पता चल ही गया है कि चिकोस्लोवेकिया का कोई साथी नहीं है तो फिर उन लोगों को भी इससे अच्छा और कब मौक़ा मिलेगा?

बहुतों की तरफ़ देख करके चिकोस्लोवेकिया यही कहता होगा, 'सितम करके शोख़ी से उनका यह कहना, रहे याद यह मेहरबानी हमारी।'*

* यह लेख लफ्टिनेन्ट-कमान्डर इड्गर पी० एंग आर० एन० की पुस्तक 'चिकोस्लोवेकिया' के आधार पर लिखा गया है।

मेरे संस्मरण

लेखक, श्रीयुत गोपालराम गहमरी

गहमरी जी बहुत वृद्ध हो गये हैं, तो भी उनका लिखने का चाव अभी तक ज्यों का त्यों बना हुआ है। उनके संस्मरण-सम्बन्धी तीन लेख हम छाप चुके हैं। यह उस लेखमाला का चौथा लेख है। इसमें उन्होंने एक प्रसिद्ध शिकारी का परिचय लिखा है।

(१)

बात बहुत पुरानी सन् १८९४ ई० की है। पूरे तैंतालिस वर्ष बीत गये। आज भी उन पुरोहित जी का वीर-वेष आँखों के सामने आ खड़ा होता है जब मण्डला-प्रवास की बातें याद आ जाती हैं।

उन दिनों पण्डित मुन्नालाल पुरोहित के पिता पण्डित बालमुकुन्द पुरोहित मण्डला के तहसीलदार थे। वे ज़िले के डिप्टी कमिश्नर के दाहने हाथ थे, क्योंकि डिप्टी-कमिश्नर सैयद आले मुहम्मद जैसे सच्चे और बे-लौस ज़िलाधीश थे, वैसे ही पण्डित बालमुकुन्द पुरोहित बे-लाग हाकिम थे। नीर-क्षीर-बिलगावने के न्याय से कचहरी का काम करने के बाद तहसील के लोगों में भी अपने प्रजा-पालन और ग़रीबपरवरी के गुण में पक्के होने के कारण वे बड़े लोकप्रिय हो गये थे।

वे हिन्दी के बड़े प्रेमी थे। मुझसे बहुत वर्ष पहले का उनसे पत्र-व्यवहार था। वहाँ के प्रधान रईस और तालुक़ेदार बाबू जगन्नाथप्रसाद चौधरी के हिन्दी-प्रेम के कारण पुरोहित जी की अनुकम्पा से मुझे वहाँ जाना पड़ा था। चौधरी साहब मुझसे उन दिनों बँगला पढ़ते थे। उन्हीं दिनों मैंने वहाँ हिन्दी में चार पुस्तकें लिखी थीं—भानमती, माधवी-कङ्कण, नये बाबू और बसन्तविकाश-काव्य। ये चारों पुस्तकें चौधरी साहब ने प्रकाशित करवा दी थीं। ये बातें प्रसङ्गवश कहना पड़ीं। अब मूल बात सुनाता हूँ।

घटना सच्ची है और सच्ची घटना उपन्यास से भी कितनी आकर्षक और मनोरञ्जनकारिणी होती है, इसका पाठक ही अनुमान करेंगे।

पण्डित मुन्नालाल पुरोहित चार भाइयों में सबसे बड़े थे। और भाइयों के यथास्थान लग जाने पर भी वे ऐसे स्वतन्त्र मिजाज़ के थे कि उन्होंने कभी कोई वैतनिक कार्य करके बन्धन में दिन बिताना पसन्द ही नहीं किया। पिता जी के बहुत समझाने पर भी उन्होंने कोई सरकारी या ग़ैर सरकारी नौकरी नहीं की। निशाने के वे इतने पक्के थे कि मैंने उनका 'बन्दूक़बहादुर पुरोहित जी' नाम रख दिया था।

उन दिनों पार्लियामेंट के प्रसिद्ध मेम्बर फ़ौलर साहब शेर का शिकार करने मण्डला आये थे। शिकार में उनकी सहायता करने के लिए जबलपुर के कमिश्नर का प्राइवेट आदेश-पत्र पण्डित बालमुकुन्द पुरोहित जी के नाम आया था। उसी के अनुसार उन्होंने ने अपने ज्येष्ठ पुत्र पण्डित मुन्नालाल को फ़ौलर साहब के साथ कर दिया।

डिंडोरी के भयावने जङ्गल में मुन्नालाल जी फ़ौलर साहब को शिकार खेलाने ले गये। शेर के शिकार में शिकारी लोग ऊँचे मचान से शेर का शिकार किया करते हैं। मौक़ा देखकर भैंसा बाँध देते हैं, और वहीं स्थान देखकर कुछ दूरी पर अपना इतना ऊँचा मचान बनाते हैं कि शेर कुलाँच मारकर उन तक पहुँच न सके। शेर आकर जब उस भैंसे को मारता और ताज़ा रक्तपान करके उसकी लोथ वहीं छोड़कर चला जाता है तब २४ घण्टे के बाद उसका मांस खाने के लिए वह वहाँ फिर आता है। शेर के भैंसा मारकर चला जाने को शिकारी लोग 'गारा करना' कहते हैं। जब गारे की ख़बर आती है तब शिकारी अपने सब सामान से लैस होकर मचान पर पहुँच जाते हैं।

ऐसे मौक़े की तलाश करके फ़ौलर साहब के लिए भैंसा बाँधने की तैयारी हो रही थी। मुन्नालाल जी फ़ौलर साहब के साथ जङ्गल में ख़ेमा डाले पड़े थे कि किसी दूत ने आकर उनको ख़बर दी कि एक जलाशय के पास चार शेर आराम कर रहे हैं।

मुन्नालाल जी अपने सामान के साथ तुरन्त चल पड़े। फ़ौलर साहब को समझाकर केम्प में ही छोड़ गये। उनको उत्साह तो बहुत था। वे लन्दन से इसी शौक़ के कारण

मण्डला आये थे। लेकिन जहाँ मचान से शिकार करना नहीं था, वहाँ का ख़तरा जब उन्होंने सुना तब उनकी सलाह मान ली।

✓मुन्नालाल जी जलाशय के पास पहुँच गये। वहाँ से एक फ़र्लाङ्ग पर एक ऊँचा टीला था। उस पर चढ़कर उन्होंने देख लिया कि चारों शेर विश्राम कर रहे हैं। एक जोड़ा मियाँ-बीबी का था और दो उनके बच्चे थे। बच्चों से कोई यह न समझ ले कि वे बच्चे बिल्ली के बच्चे थे। वे बच्चे शेर के बच्चे थे और आदमी के लिए वे भी ख़ूँख़ार शेर ही थे। मुन्नालाल जी ने मौक़ा देखकर उसी टीले पर अपना आसन लगाया। पास के किसी ऊँचे पेड़ पर मचान आदि बाँधने का मौक़ा व समय दोनों न थे। उन्होंने झट मँगनी पट ब्याह की बात सोची और दोनों बग़ल में भरी हुई राइफ़लें रखकर तीसरी छतियाली और शेर के सिर का निशाना लगाकर फ़ैर किया। शेर राम वहीं ढेर हो गये और शेरनी चट उठकर दाहने होती हुई भागने लगी और दोनों बच्चे फ़ैर करनेवाले की ओर झपटे।

मुन्नालाल जी ने दूसरा फ़ैर शेरनी पर किया। वह तड़फड़ा कर जलाशय के ऊँचे भीटे पर जा गिरी तब तीसरी और चौथी फ़ैर दोनों बच्चों पर करके उन्हें भी बीच राह में ही ख़त्म कर दिया।

इस तरह चार फ़ैरों में चारों शेर मारे गये। जब यह ख़बर फ़ौलर साहब के केम्प में और मण्डला में तहसीलदार साहब के घर पहुँची तब फ़ौलर साहब तो दौड़े हुए जलाशय को भागे, लेकिन मण्डला में मुन्नालाल की माता जी ने बहुत ही हाय-तोबा मचाया। वे इतनी मचल गईं कि उनको प्रबोध देने और पिताजी की डाँट का समाधान करने के लिए सब काम छोड़कर मुन्नालाल जी को मण्डला जाना ही पड़ा।

माता जी का प्रबोध करने के लिए मुन्नालाल जी पहले महल में गये। उन्होंने हाथ जोड़कर माता जी से निवेदन किया—सब हाल विस्तार-सहित बतलाया। लेकिन माताजी ने एक न सुनी। उनका यही कहना था कि बन्दूक़-कारतूस सब नर्मदा में प्रवाह करके घर बैठो। नौकरी करने को मैं नहीं कहती, न घर-गृहस्थी का भार चलाने के लिए तुम्हें कोई काम का बोझ देती हूँ। कहना यही है कि जिस काम में इतना जान-जोखों है वह सब छोड़कर चुपचाप घर बैठो। बेटा, जब तक मैं जीती रहूँ तब तक यह शिकार का काम त्याग दो।

बहुत अच्छा कहकर मुन्नालाल जी पिता के पास गये। यह सबको मालूम था कि मुन्नालाल जी नौकरी-चाकरी नहीं करते, लेकिन साल में चालीस-पचास शेर मारकर कम से कम ढाई-तीन हज़ार रुपया सरकार से इनाम प्राप्त कर लेते हैं। उनके लिए यह सौदा बहुत सुगम था। वह भी अब माता जी की आज्ञा से छूटना चाहता है। यह उनके लिए बड़े सङ्कट का सामना था।

यही सब विचारते हुए वे पिता के सामने पहुँचे। लेकिन यहाँ तो उनको अपने मान्य और नमस्य पिता तथा फ़र्स्ट क्लास के अनुभवी मेजिस्ट्रेट के सामने बा-ज़ाब्ता जवाबदेही करनी थी। पिता ने कड़ककर पूछा—"क्यों मन्नू! तुमने जब शेर को मार डाला तब शेरनी को क्यों मारने लगे। जो वे दो शेर तुम्हारी जान लेने को तुम पर झपटे थे उनका तुमने क्यों ख़याल नहीं किया। शेरनी को मार डालने को तुमने बन्दूक़ छोड़ी, लेकिन कुशल हुआ कि वह मर गई। और उसके बाद तुमने बच्चों को मारा। ऐसी नादानी तुमने क्यों की? तुम क्या अपनी देह से इतने आज़ाद हो कि दो शेरों को सौंपते वक़्त तुमने इतना भी नहीं सोचा कि तुम पर माता-पिता, स्त्री और बच्ची (खुक्की) का भी कुछ हक़ है?

मुन्नालाल जी ने नम्र होकर पिता के सामने सिर झुकाया और चरणरज माथे पर धर कर निर्भीक भाव से बोले—नहीं दद्दा, मेरी समझ में यह बात अभी तक नहीं आई है कि मैंने नादानी क्या की थी? शेर को जब मैंने मार डाला तब देखा कि शेरनी हाथ से निकलकर भागी जा रही है, इसलिए यही समझकर कि निकल जाने पर फिर वह नहीं मिलेगी। उस पर फ़ैर की और वे दो बच्चे जो मेरे ऊपर आरहे थे, मेरे हाथ से जाते नहीं थे। उनका मुक़ाबला तो मुझसे था ही। मैंने सोचा कि उसको मारकर इन्हें भी गिरा लूँगा।

पिता को और क्रोध हो आया। वे बोले—अरे! तुम तो मूर्ख की-सी बातें कर रहे हो मन्नू। उनसे तो तुम्हारी जान जाती ही थी। एक ही झपट्टे में वे तुम्हें ले डालते। तब तुम्हारा शिकार और तुम्हारी ज़िन्दगी सब खेल ख़त्म था।

"नहीं दद्दा! खेल ख़त्म की तो बात ही नहीं थी। ...न मेकअप की तो खेती थी। इतने में चारों ख़त्म हो गये। अपनी जान का ख़तरा तो तब था जब निशाने में चूक होने का सवाल होता। पन्द्रह बरस से तो कभी गोली चूकी नहीं। मैं नीम के पत्ते पर भी तो कभी छर्रा नहीं छोड़ता। ख़ाली गोली का इस्तेमाल इसी भरोसे तो करता आता हूँ।"

पिता जी बेटे की बात जब समझ गये तब बोले—शाबाश बेटा! जाओ। भगवान् तुम्हें सदा सफल करें। फ़ौलर साहब को ख़ुश रखना। वे लन्दन में तुम्हारे इस निशाने का बखान करेंगे।

मुन्नालाल जी ने प्रणाम किया और माता जी की बेकली की बात कहकर विनती की—उन्हें बड़ी अधीरता है! मैं फिर आकर समझाऊँगा। इस मौक़े पर मुझे फ़ौलर साहब को केम्प में छोड़कर यहाँ इन बातों में उलझने का अवसर नहीं है। क्षमा चाहता हूँ।

"जाओ बेटा! मैं सब समझा दूँगा। जब मैं अधीर हो रहा था तब उनका इतना अधीर होना तो स्वाभाविक ही है। मैं सब बतला दूँगा, फिर तुम आकर पूरा समाधान कर देना।"

पिताजी से अभयदान पाकर जब मुन्नालाल केम्प में पहुँचे, गारा हो चुका था। इस बार साथ में कथरी बाबू भी लग गये थे। इनका नाम था रजनीकान्त चटर्जी। मण्डला में लोग इनके नाम को बिगाड़कर कथरी काट कथरी बाबू हँसी में कहा करते थे। इनको मुन्नालाल जी की सङ्गत से शेर का शिकार देखने का शौक़ चर्राया था।

मुन्नालाल जी ने फ़ौलर साहब के सामने पहुँचकर सब बातें आदि से अन्त तक कहीं। साहब सब सुन-समझकर ख़ूब हँसे।

उसी दम मचान पर चलने की तैयारी हुई। सब सरञ्जाम कसा-कसाया था ही। फ़ौलर साहब, मुन्नालाल जी और कथरी बाबू तीनों अपनी अपनी बन्दूकें सँभाले हुए मचान पर जा विराजे। सब लोग साँस तक रोके हुए गारे पर शेर की अवाई ताकने लगे।

ठीक समय पर अँगड़ाता-जम्हाता हुआ शेर जब सिंहध्वनि से आ पहुँचा, कथरी बाबू बन्दूक़ छोड़कर वहीं मचान पर उतान हो गये और नीचे हदर हदर पानी गिरने लगा।

मुन्नालाल जी ने इशारा किया। फ़ौलर साहब ने आधे मिनट तक निशाना भिड़ाकर जब घोड़ा दबाया तब शेर वहीं से तड़पकर मचान की ओर उछला, लेकिन आधे ही रास्ते में गिर कर ढेर होगया।

कथरी बाबू की बेहोशी में ही यह सब होगया। जब सब लोग मचान से उतरे तब फ़ौलर साहब तो फ़ीता निकालकर शेर की दुम से कपारतक लम्बाई फिर चौड़ाई, सीना, कन्धा, हाथ, पाँव नापने और नाख़ून ताकने लगे, लेकिन कथरी बाबू उसे बूटों की ठोकर देकर कहने लगे "एही शाला आमाके बेहुस कोरेछिलो।"

परदेशी से

लेखक, श्रीयुत चन्द्रप्रकाश वर्म्मा 'चन्द्र'

आज कली फिर फूली,
नीरस से इस उर-आँगन में ममता भूला भूली।

कुटिया रही अँधेरी मेरी, दीपक आज जलाया,
बहुत दिनों के बाद हमारा परदेशी घर आया।
चित्र तुम्हारे रही बनाती, चपल कल्पना-तूली।
आँखों के आँसू बन...
इतने दिन तक...
मेरी स्मृति रो-रो...

मधु-प्यासे हम हे चिर मधुमय, मधु बरसा...
दूर देश से बोलो तो तुम, क्या सन्देशा...
प्रेम-राग-रंजित की तुमने जीवन की ...

———

आधुनिक रेडियो की ...न्त यही है। बिना किसी कोई संकेत भेजा जा सकता ...रंग ही है। अतएव शब्द-तरंगों जिस तरह रेडियो की सहायता ली ...काशचित्र भेजने के लिए भी रेडियो- ...ता लेनी पड़ी। वैज्ञानिकों को मानो ...रेडियो-तरंग के रूप में मिल गया है। ... भी हमें ध्यान में रखनी है कि रेडियो- ...। विद्युत्तरंगें ही आरूढ़ कराई जा सकती

शरत् का प्रथम प्रभात

लेखक, श्रीयुत इलाचन्द्र जोशी

वर्षाजल से स्नात आज इस पुण्य-प्रात की माया।
फैलाकर इस शैलाञ्चल में झिलमिल ऊर्मिल छाया॥

विमन पवन की लहर-लहर से सिहर-सिहर प्रतिपल में।
दोलन करती है रह-रहकर मेरे अन्तरतल में॥

किस रञ्जित जीवन का पुञ्जित वेदन? यह गिरिवाला।
निर्जल सूर्योज्ज्वल पारद-सम शुभ्र-जलद-दल-माला॥

रजत-मुकुट-सम धारण कर निज मस्तक में, है पहने।
नवालोक-कण से उत्कीरित इन्द्रधनुष-प्रभ-गहने॥

कनक-रश्मियों से उद्भासित रेशम-सा पट झीना।
ओढ़े यह प्रिय प्रकृति-कुमारी है वरवस उड्डीना॥

किस अनन्त उन्मुक्त गगन की ओर? खोल अवगुण्ठन।
बीच-बीच में झलका जाती है निज चित्रित यौवन॥

नव-हरीतिमा पुलक-प्रीतिमा से जो है आलिम्पित।
तरुण-अरुण कुसुमों की रेखावलियों से अवलेखित॥

दीर्घ विरह का आज अन्त है, पाया फिर से दर्शन।
विजनकुमारी, आज तुम्हारा! पुनः परस्पर-स्पर्शन॥

प्राण-प्राणमय अङ्ग, अङ्गमय पुलकजाल है तनता।
किस सलील कर-सञ्चालन से! सञ्जीवन-रस छनता॥

मन के अति सुकुमार सूक्ष्मतम तारों की छलनी से।
छर-छर छहर-छहरकर। हृद्-सरसी की नव-नलिनी से॥

भावों का अलिदल करता है मोहमयी कल-क्रीड़ा।
उमग उठी है चिर यौवन की पुलक-प्रकम्पित पीड़ा॥

कल्लोलित सरिता-प्रवाह से। द्रुतगति से है ढहता।
युग-युग का पाषाण-रोध। किस मत्त रोर से बहता॥

भीमवेग से, मुक्तस्रोत से मम प्राणों का निर्झर।
निखिल जगत के प्राणों में निज अन्तर का स्वर भरकर॥

अन्धगुहा का युगयुगव्यापी तिमिर-विदारण करके।
महामिलन के लिए चला यह पागल झरझर-झरके॥

अपनी बद्ध-परिधि के भीतर यह था घुर्णित होता।
इतने दिन तक; अन्धकूप में सड़ा हुआ था रोता॥

तुमने आकर उसका अर्गल खोल दिया सखि, पल में।
जाग पड़ी क्या महावेदना उसके अन्तस्तल में॥

किस गद्‌गद-क्रन्दन से! खोने को वह निज अपनापन।
है अधीर-अति। भूमा के जीवन से अपना यौवन॥

एक रूप कर देने को है उन्मुख, अतिशय व्याकुल।
कलना के कल-कल उद्वेलन से है वह करुणाकुल॥

निखिल प्राण-धारा के सँग समताल और समगति से।
उमड़ चला है विकल पुलकमय सामगान-संगति से॥

इसका विलय सावन। है यह धावमान निःसंशय।
मृत्युलोक के चिर-जीवन-सागर में होने को लय॥

महाविजन से महाविश्व का होता मिलन जहाँ पर।
सृष्टिव्यापिनी द्विविध प्रकृतियाँ हैं संयुक्त---परापर॥

वहीं आज तुम मुझे ले चली हो, प्रिय विजनकुमारी!
गगन-गगन में प्रेम-मगन स्तुति होती आज तुम्हारी॥

टेलिविज़न

लेखक, श्रीयुत भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०

लगभग ५० वर्ष बीते जब टेलिफ़ोन का आविष्कार हुआ था। उस समय किसी ने यह भी कहा था कि वह दिन दूर नहीं है जब सैकड़ों मील दूर बैठे हुए लोगों को हम देख भी सकेंगे। संभव है, यह बात मज़ाक में कही गई हो, किन्तु यह प्रश्न निस्सन्देह वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में उस समय भी था। दिन-रात इस समस्या के सुलझाने में वे लगे रहे। अन्त में उस स्वप्न को उन्होंने पूरा कर दिखाया।

टेलिविज़न-द्वारा हम घर बैठे दूर की घटनाओं को ठीक उसी समय जब कि वे होती रहती हैं, देख सकते हैं। जिस प्रकार हम रेडियो की सहायता से शब्दों को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेज सकते हैं, उसी प्रकार दृश्य भी टेलिविज़न के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजते हैं। टेलिविज़न के सेट और साधारण रेडियो के सेट में कम से कम सूरत-शकल में कुछ अधिक अन्तर नहीं होता। सुदूरवर्ती घटनाओं को देखने के लिए बस दो-एक स्विच खोले, कुछ डायल घुमाये कि सामने जार्ज-दि-फ़िफ़्थ बोलते हुए नज़र आये। ऐसे सेट में लाउड-स्पीकर के अतिरिक्त एक स्क्रीन भी होता है। तसवीरें इसी स्क्रीन—शीशे के पर्दे पर दिखाई पड़ती हैं, साथ ही उनकी बातें लाउड-स्पीकर के सहारे सुन पड़ती हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि रेडियो-द्वारा खबरें भेजने के पहले शब्दतरंगों को माइक्रोफ़ोन के द्वारा विद्युत्तरंगों में बदलना होता है। अब यही तरंगें रेडियो-तरंगों पर आरूढ़ कराकर दूर भेजी जाती हैं। उनकी गति प्रति सेकण्ड १,८६,००० मील होती है। ये रेडियो-तरंगें दूर के किसी एरियल से जब टकराती हैं तब वहाँ के सेट में अपनी जैसी रेडियो-तरंगें उत्पन्न कर देती हैं। इसी सेट में अब विद्युत्तरंगें जो रेडियो-तरंगों पर पहले आरूढ़ कराई गई थीं, अलग की जाती हैं। इसके पश्चात् उन विद्युत्तरंगों को टेलिफ़ोन के द्वारा पुनः शब्द-तरंगों में परिवर्तित करते हैं। थोड़े शब्दों में आधुनिक रेडियो की यही कहानी है।
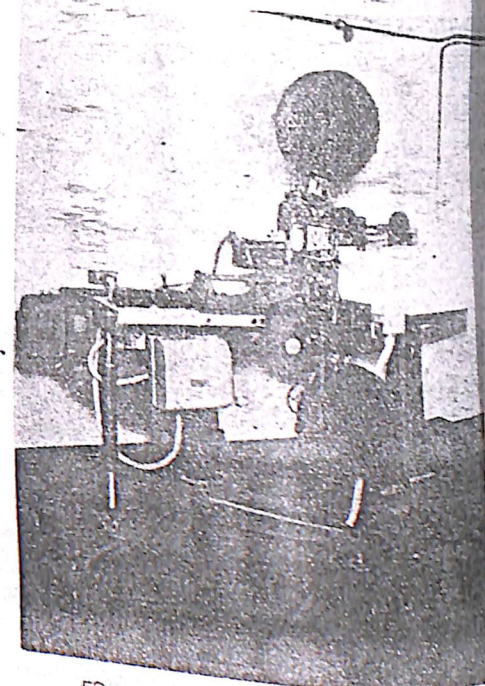
[फ़िल्म-द्वारा टेलिवाइज़ करने का केमरा]

टेलिविज़न का भी सिद्धान्त यही है। बिना किसी सहारे के दूर देश को यदि कोई संकेत भेजा जा सकता है तो वह रेडियो की तरंग ही है। अतएव शब्द-तरंगों को भेजने के लिए, जिस तरह रेडियो की सहायता ली गई, उसी तरह प्रकाशाचत्र भेजने के लिए भी रेडियो-तरंगों की ही सहायता लेनी पड़ी। वैज्ञानिकों को मानो एक उड़न खटोला रेडियो-तरंग के रूप में मिल गया है। साथ ही यह बात भी हमें ध्यान में रखनी है कि रेडियो-तरंगों पर केवल विद्युत्तरंगें ही आरूढ़ कराई जा सकती
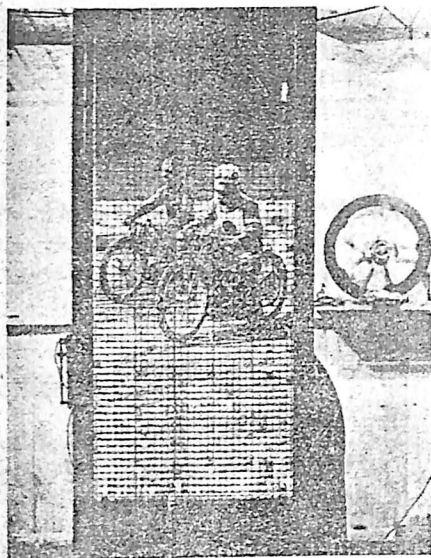
[नियान लैम्पों के जाल पर टेलिविज़न का चित्र]

हैं। इसी कारण आप पहले माइक्रोफ़ोन पर बोलते हैं तब आपके शब्दों से उत्पन्न हुई विद्युत्तरंगें रेडियो-तरंगों की सहायता से ब्राडकास्ट की जाती हैं। टेलिविज़न में शब्दों के स्थान पर प्रकाश को हम विद्युत्तरंगों में परिवर्तित करते हैं और तब उन्हें रेडियो-तरंग पर आरूढ़ कराते हैं।

सन् १८७३ में सेलीनियम धातु का पता लोगों को चला था। इस धातु की विशेषता यह है कि यदि विद्युत्-धारा उससे होकर गुज़र रही हो और उस पर ऐसी रोशनी डाली जाय जो घटती-बढ़ती हो तो यह विद्युत्-धारा भी ठीक प्रकाश के चढ़ाव-उतार के अनुसार चढ़े-उतरेगी। उसकी सहायता से तत्कालीन वैज्ञानिकों ने प्रकाशचित्र तार के सहारे भेजे थे। उन दिनों रेडियो की तरंगों के बारे में कोई जानता भी न था।

किन्तु जब हर्ट्ज़ महोदय ने प्रयोगशाला में रेडियो की तरंगें उत्पन्न कीं, जो एक स्थान से दूसरे स्थान को बिना किसी तार वग़ैरह की सहायता के गईं, तब यह आशा भी की जाने लगी कि रेडियो के द्वारा चित्र भी भविष्य में भेजे जा सकेंगे। अतएव टेलिविज़न की समस्या सुलझाने का वैज्ञानिकों ने एक नये उत्साह से प्रयत्न किया। संसार के सभी उन्नतिशील देशों में इस प्रश्न पर प्रकाश डालने की लोगों ने कोशिश की। पर सबसे पहले सफलता प्राप्त करने का श्रेय स्काटलैंड के एक इन्जीनियर बेयर्ड को मिला। स्वास्थ्य की ख़राबी के कारण आपको काम छोड़कर घर बैठना पड़ा था। अवकाश के समय में आप टेलिविज़न-सम्बन्धी प्रयोग निरन्तर करते रहे। निदान २७ जनवरी १९२६ को रायल इन्स्टिट्यूट के मेम्बरों के सामने आपने टेलिविज़न के प्रयोग का सफल प्रदर्शन किया। इस प्रयोग में कठपुतली के एक गुड्डे का चेहरा 'टेलिवाइज़' किया गया था। टेलिविज़न का यह सर्वप्रथम यंत्र लण्डन-म्यूज़ियम में रक्खा हुआ है।

बेयर्ड के प्रयोग के उपरान्त तो टेलिविज़न ने दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति की। और आज टेलिविज़न प्रयोगशालाओं के भीतर बन्द नहीं है। आज यह सर्व-साधारण की वस्तु हो रहा है। सिनेमा और वायरलेस की भाँति टेलिविज़न भी हमारे प्रतिदिन के जीवन का एक अंग बनने जा रहा है।

अब हम टेलिविज़न की कार्यप्रणाली पर आते हैं। हमने अभी देखा है कि सेलिनियम की सहायता से प्रकाश के चढ़ाव-उतार को विद्युत-तरंगों के चढ़ाव-उतार में हम परिवर्तित कर सकते हैं। फोटो इलेक्ट्रिक सेल और रेडियो बल्ब की ईजाद होने से इस काम में और भी आसानी होगई, क्योंकि प्रकाश को विद्युत्-तरंगों में बदलने के लिए सेलिनियम की अपेक्षा सेल और रेडियो बल्ब अधिक कारगर साबित हुए। फोटो इलेक्ट्रिक-सेल में यह विशेषता होती है कि जितना ही तेज़ प्रकाश उस पर पड़ेगा, उतनी ही अधिक तेज़ विद्युत-धारा उसमें से प्रवाहित होगी।

टेलिविज़न के तीन मुख्य भाग किये जा सकते हैं—

(१) चित्र या सीन के प्रकाश को विद्युत्-तरंगों में परिवर्तित करना।

(२) इन विद्युत्-तरंगों को रेडियो-तरंगों पर आरूढ़ करा कर बाहर भेजना।

(३) निर्दिष्ट स्थान पर इन विद्युत्-तरंगों को रेडियो-तरंगों से अलग कर उन्हें फिर प्रकाश में बदल कर भेजे हुए चित्र का पुनर्निर्माण करना।

[एक अभिनेत्री टेलिवाइज़ की जा रही है, उसके सिर के ऊपर माइक्रोफोन भी लगा है, जिसके ज़रिये उसके शब्द भी रेडियो-द्वारा ब्राडकास्ट किये जा रहे हैं।]

१—चित्र का टेलिवाइज़ करना

सस्ते समाचार-पत्रों के छपे चित्रों को देखकर हम जान सकते हैं कि प्रत्येक चित्र काले काले बिन्दुओं की सहायता से बनाया जा सकता है। ये बिन्दु जितने ही छोटे होंगे, चित्र भी उतना ही अधिक सुन्दर उतरेगा। इसी सिद्धान्त पर चित्रों को टेलिवाइज़ करते हैं। प्रत्येक चित्र को छोटे छोटे सहस्रों बिन्दुओं में बाँट देते हैं। और प्रकाश की एक तीक्ष्ण किरण तेज़ी के साथ चित्र के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ा दी जाती है। अब चूँकि चित्र के सभी बिन्दु समान रूप से काले नहीं होते, अतः भिन्न भिन्न स्थानों से प्रकाश भी भिन्न भिन्न मात्रा में मिलेगा, सफ़ेद स्थानों से ज़्यादा और काले से कम। यही प्रकाश जब फोटो-एलेक्ट्रिक-सेल पर पड़ता है तब चित्र के शेड के मुताबिक़ सेल की विद्युत्-तरंगों का भी चढ़ाव-उतार होता है। हमें निर्दिष्ट स्थान पर इन्हीं विद्युत्-तरंगों को प्रकाश में बदलना है। किन्तु उस दशा में तो पर्दे पर चित्र का एक बिन्दु ही एक बार में बन पायगा। तब पूरी तसवीर कैसे दिखाई देगी?

इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले आँखों की एक विशेषता की ओर हम आपका ध्यान ले जायँगे। यदि आप किसी वस्तु को ग़ौर से देखें और तब आँख मूँद लें तो फ़ौरन ही उस वस्तु का चित्र आपकी आँखों से मिट नहीं जाता। बिजली चमकती है तब उसकी चमक आपकी आँखों में कुछ देर तक बनी रहती है। प्रयोगों के सिलसिले में यह बात दिखाई जा चुकी है कि दृश्य ग़ायब हो जाने के १/१० सेकण्ड के बाद तक हमारी आँखों में उसका प्रतिबिम्ब बना रहता है। इसे दृष्टि-स्थिरता कहते हैं। आप सिनेमा में चलती-फिरती तसवीरें देखते हैं, पर पर्दे पर वास्तव में कोई तसवीर चलती-फिरती नहीं होती। सच्ची बात तो यह है कि पर्दे पर एक के बाद दूसरे फोटोग्राफ तेज़ी से आते रहते हैं। यदि तसवीरों में १/१० सेकण्ड से कम का अन्तर हुआ तो एक चित्र आपकी आँखों से मिट नहीं पाया कि दूसरा चित्र सामने आ पहुँचेगा, अतएव आपको वे सब एक ही तसवीर जान पड़ेंगे। सिनेमा की तसवीरें १ सेकण्ड में २५ की रफ़्तार से दिखाई जाती हैं।

टेलिविज़न में भी हम दृष्टि-स्थिरता की सहायता लेते हैं। रिसीविंग सेट पर तसवीर के छोटे छोटे टुकड़े एक के बाद दूसरे बनते जाते हैं—इनका क्रम वही होता है

[टेलिविज़न का केमरा]

दूसरे से मिली हुई जान पड़ेगी और हम चलते फिरते ऐक्टर देखेंगे।

स्केनिंग के कई तरीक़े प्रचलित हैं, किन्तु इनमें सब से नवीन और श्रेष्ठ तरीक़ा एक अमेरिकन वैज्ञानिक का ईजाद किया हुआ है। चित्र पर साधारण प्रकाश पड़ता है, फिर इसका एक चित्र लेंस की सहायता से एक ऐसे पर्दे पर बनाते हैं जिसमें बहुत से फ़ोटो-एलेक्ट्रिक सेल लगे होते हैं। अब विद्युत्-किरणों की एक बारीक किरण को चुम्बक की सहायता से इस चित्र पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक अत्यन्त तीव्र गति से दौड़ाते हैं ताकि पूरी तसवीर को स्केन करने में कम समय लगे। बढ़िया चित्र प्राप्त करने के लिए तसवीर को प्रतिसेकण्ड ५० बार स्केन करना पड़ता है। इस यन्त्र का नाम आइकानोस्कोप है। इस यन्त्र की यह ख़ूबी है कि ऐक्टर या सीन को साधारण रोशनी में भी टेलिवाइज़ कर सकते हैं। स्टूडियो की तेज़ चकाचौंध उत्पन्न कर देनेवाली रोशनी की दरकार नहीं। टेलिविज़न के इतिहास में 'आइकानोस्कोप' का आविष्कार एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसकी सहायता से अब स्टूडियो से बाहर की चीज़ें जैसे टेनिस के मैच, जलसे, तमाशे आदि भी टेलिवाइज़ किये जा सकते हैं। ठीक एक साधारण केमरे की तरह आइकानोस्कोप का प्रयोग करते हैं। बड़ी आसानी के साथ आइकानोस्कोप एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जा सकता है।

जो चित्र के टेलिवाइज़ करते समय होता है। अतएव किसी एक क्षण पर स्क्रीन पर तसवीर का केवल एक ही टुकड़ा मौजूद रहता है। किन्तु अगर तसवीर के शुरू से आख़िर तक के सभी टुकड़े १/१० सेकण्ड के अन्दर ही एक एक करके बन जायँ तो शुरूवाला टुकड़ा हमारी आँखों में आख़िरवाले टुकड़े के बनते समय तक मौजूद रहेगा। इस तरह हमें ऐसा अनुभव होगा, मानो हमने पूरी तसवीर एक ही बार में देखी है। और यदि इसी गति से ये टुकड़े दुहराये जायँ तो तसवीर बिलकुल स्थिर ज्ञान पड़ेगी। इस दुहराने की क्रिया को स्केनिंग कहते हैं।

चलती-फिरती तसवीरों को टेलिवाइज़ करने में कुछ अधिक चिन्ता नहीं करनी पड़ती। मान लीजिए, 'ऐक्टर' चल-फिर रहा है तो पहली स्केनिंग के बाद जब दूसरी स्केनिंग शुरू होगी तब हमें जो तसवीर मिलेगी वह पहली से अवश्य ही कुछ भिन्न होगी और तीसरी दूसरी से। यदि इन तसवीरों के बीच १/१६ सेकण्ड से अधिक का अन्तर नहीं पड़ता तो हमें प्रत्येक स्केनिंग की तसवीर एक-

२—चित्रों का भेजना

टेलिवाइज़ करने के उपरान्त विद्युत्-तरंगों के चढ़ाव-उतार को वायरलेस बल्ब की सहायता से अभिवर्द्धित कर हम उन्हें रेडियो-तरंगों पर ठीक उसी तरह आरूढ़ करते

हैं, जैसे दिल्ली के ब्राडकास्टिंग स्टेशन पर शब्द-तरंगों से उत्पन्न हुई विद्युत्-तरंगों को। तदुपरान्त ठीक उसी तरह हम इन्हें बाहर भेज देते हैं। केवल एक बात यह है कि टेलिविज़न में हम केवल ऐसी रेडियो-तरंगों का प्रयोग करते हैं जिनकी लहरों का प्रसार कम होता है। अन्यथा आरूढ़ करा कर भेजने की क्रिया में टेलिविज़न और रेडियो-ब्राडकास्ट में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

३—चित्रों का पुनर्निर्माण

रिसीविंग स्टेशन पर विद्युत्-तरंगों को रेडियो-तरंगों से अलग कर लेते हैं। अब इन विद्युत्-तरंगों के चढ़ाव उतार को प्रकाश के शेड में बदलना है। तदुपरान्त शेड के छोटे छोटे टुकड़ों को सही तरतीब से स्क्रीन पर दिखाना है। प्रकाश को विद्युत्-तरंगों में बदलने के लिए फ़ोटो-एलेक्ट्रिक-सेल का प्रयोग हमने किया है, किन्तु यह सेल उलटा काम नहीं करता। विद्युत्-तरंगों के चढ़ाव-उतार से इसका प्रकाश तेज़ या धीमा नहीं होता। अतएव इस विपरीत क्रिया के लिए हमें किसी अन्य उपाय की शरण लेनी पड़ेगी। इस काम के लिए सबसे पहले नियान गैस के बने लैम्पों के एक जाल का प्रयोग किया गया। विद्युत्-तरंग के चढ़ाव-उतार के साथ एक एक कर ये लैम्प भी कभी अधिक या कभी धीमा प्रकाश देते हैं, और पूरे जाल को देखने से मोटे तौर पर भेजे हुए चित्र का भान होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उच्च कोटि के टेलिविज़न के लिए नियन लैम्प बेकार हैं। बरसों के अथक परिश्रम के उपरान्त अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने इस जटिल समस्या को भी सुलझा दिया। विद्युत्-तरंगों का चढ़ाव-उतार बिजली के चुम्बक पर अभिवर्द्धित किया जाता है। अतएव इसी चढ़ाव-उतार के अनुसार इस चुम्बक की भी शक्ति घटती-बढ़ती रहती है। इसी चुम्बक के बीच से होकर विद्युत्-किरणों की एक बारीक़ किरण एक स्क्रीन पर पड़ती है, जिस पर मसाला पुता होता है। जहाँ जहाँ यह किरण पड़ती है, मसाला चमकने लगता है। चुम्बक की शक्ति के साथ साथ विद्युत्-किरण की बौछार भी तेज़ और धीमी हो जाती है, और तदनुसार स्क्रीन का मसाला भी कम और बेशी चमकने लगता है। और इस प्रकार भेजे हुए चित्र का प्रतिबिम्ब

[टेलिविज़न-द्वारा प्राप्त चित्र ४ फ़ीट लम्बा ३ फ़ीट चौड़ा सिनेमा-भवन में दिखाया जा रहा है।]

स्क्रीन पर दिखाई पड़ता है और रिसीवर के सामने बैठे हुए दूर की घटनायें हम स्क्रीन पर देख सकते हैं।

टेलिविज़न के ब्राडकास्ट का क्षेत्र

टेलिविज़न के लिए ऐसी रेडियो-तरंगें प्रयोग में लाई जाती हैं जिनकी लहरों का प्रसार ६ या ७ मीटर होता है। इतनी छोटी तरङ्गों का प्रयोग करने से आकाश की बिजली की चमक, बारिश या तूफ़ान के कारण टेलिविज़न में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचती। किन्तु इन तरङ्गों में एक भारी दोष भी है। ये रास्ते की रुकावटों जैसे पहाड़ आदि को पार नहीं कर सकतीं। बड़ी कठिनाई से यदि घूमकर आगे बढ़ती हैं तो उनकी शक्ति का भारी ह्रास हो जाता है। अतएव इन छोटी तरङ्गों के कार्यक्षेत्र का विस्तार बहुत कम होता है। ये तरंगें केवल उसी स्थान पर ग्रहण की जा सकती हैं जो दूरबीन के दृष्टिक्षेत्र के अन्तर्गत आ सके। अर्थात् दोनों स्थानों के बीच में कोई रुकावट न हो। इसका यह अर्थ हुआ कि ब्राडकास्टिंग-स्टेशन ऊँचे स्थान पर बनाने चाहिए, जिससे दूर तक वह दिखाई दे सकें और टेलिविज़न की तरंगें वहाँ तक बिना किसी अड़चन के पहुँच जायँ। ५०० फ़ुट की ऊँचाई से टेलिविज़न-तरंगें ३० मील की दूरी तक भेजी जा सकती

हैं। पेरिस का सुप्रसिद्ध ऐफ़िल-टावर टेलिविज़न के लिए अब इस्तेमाल में लाया जा रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साधारण रेडियो की भाँति दूर तक टेलिविज़न हम नहीं भेज सकते। देश की जनता को टेलिविज़न का प्रोग्राम देने के लिए हमें स्थान स्थान पर टेलिविज़न-ब्राडकास्ट के स्टेशन बनाने पड़ेंगे। प्रत्येक ४० या ५० मील के क्षेत्र के लिए एक ब्राडकास्ट-स्टेशन होना आवश्यक है। टेलिविज़न की इस कमी को दूर करने के लिए वैज्ञानिक लोग भी जान से प्रयत्न कर रहे हैं। आये दिन समाचार आते हैं कि टेलिविज़न का क्षेत्र बढ़ रहा है। अभी कुछ ही सप्ताह का ज़िक्र है कि टेलिविज़न की सहायता से इँग्लेंड में २०० मील दूर के दृश्य पर्दे पर दिखाये गये थे।

टेलिविज़न के लिए जर्मनी में फ़िल्म की भी सहायता लेते हैं। बाहर के दृश्य तथा घटनायें पहले सिनेमा के फ़िल्म पर फोटो-केमरा से अङ्कित कर ली जाती हैं, फिर स्टूडियो में उस फ़िल्म को साधारण रीति से टेलिवाइज़ करते हैं। इस कला में विशेषज्ञों ने इतनी दक्षता प्राप्त कर ली है कि फ़िल्म पर फोटो लिया जाना, उसका टेलिवाइज़ होना तथा रिसीविंग स्टेशन पर चित्र का पुनः दिखाई देना, सभी क्रियायें १० सेकण्ड के अन्दर सम्पादित होती हैं! इस रीति से ख़र्च में बड़ी बचत होती है और दृश्य भी क़रीब क़रीब तत्काल ही दिखाई पड़ते हैं। दो-चार सेकण्ड की देर तो नहीं के बराबर है।

टेलिविज़न सेट

टेलिविज़न के सेट जिसमें शब्द और आलोकचित्र दोनों के लिए प्रबन्ध रहता है, आज-कल लगभग ४०० रुपये में लन्दन में ख़रीदे जा सकते हैं। लन्दन के अलेक्ज़ेंडर पैलेस से प्रतिदिन दो घण्टे का टेलिविज़न का प्रोग्राम ब्राडकास्ट होता है। ५०० मील के घेरे के भीतर के लोग अपने घर पर या रेडियो की दूकानों पर जाकर इस प्रोग्राम का आनन्द लेते हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि बिक्री बढ़ने पर टेलिविज़न के सेट भी एक उत्तम श्रेणी के रेडियो-सेट के मूल्य में मिलने लगेंगे। किन्तु ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जब जगह जगह पर टेलिविज़न के ब्राडकास्ट करने का प्रबन्ध हो। इसमें काफ़ी धन की कम से कम शुरू में आवश्यकता पड़ेगी।

टेलिविज़न को सर्वप्रिय बनाने के लिए इसकी भी ज़रूरत है कि टेलिविज़न के चित्र सर्वसाधारण को भी सुलभ हो सकें। टेलिविज़न के चित्र का आकार इतना बड़ा हो कि बहुत-से लोग सिनेमा-हाल में बैठकर उसे देख सकें। अमरीका के उद्योगी वैज्ञानिकों ने इस दिशा में भी आश्चर्यजनक उन्नति की है। आइकोनोस्कोप और कैथोड रे ट्यूब की सहायता से बड़े आकार के चित्र उत्पन्न करने में वे सफल हुए हैं। लन्दन के कई सिनेमाघरों में बाहर होनेवाले मैच, नाव-प्रतियोगिता तथा अन्य खेल-तमाशे अब टेलिविज़न की सहायता से दर्शकों को प्रायः दिखाये जाते हैं। विशेष ढङ्ग की बनी हुई लारियों पर टेलिविज़न का ब्राडकास्ट करने के निमित्त आइकोनोस्कोप तथा अन्य यन्त्र लगे रहते हैं। घटना-स्थल पर लारियाँ पहुँची और ब्राडकास्ट का काम आरम्भ हो गया।

भविष्य की झलक

टेलिविज़न के पिछले १० वर्षों के इतिहास पर दृष्टि डालने पर हम देखेंगे कि इतने अल्पकाल में टेलिविज़न ने आश्चर्यजनक गति से उन्नति की है, और अभी उन्नति की इसमें काफ़ी गुंजायश भी है। हम नहीं कह सकते क्षितिज के उस पार क्या है? सम्भव है, साल दो साल के बाद हम अपने को ऐसी आश्चर्य-जनक वस्तुओं से घिरा पावें जिनका हम अभी स्वप्न में भी अनुमान नहीं कर सकते।

अभी हाल में आइन्सटाइन ने यह सिद्ध किया है कि पदार्थ भी शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है, और यदि विद्युत्-तरङ्गों की भाँति शक्ति को भी रेडियो तरंगों पर आरूढ़ करा कर हम बाहर भेज सके तो हमारे लिए पदार्थों को भी रेडियो की सहायता से अन्य स्थानों को भेज सकना कुछ कठिन न होगा। तब गन्ध और स्वाद भी रेडियो की सहायता से दूर भेजे जा सकेंगे। लन्दन में बैठे बैठे लखनऊ के सफ़ेदे आम का स्वाद रेडियो की सहायता से हम ले सकेंगे, यहाँ के गुलाब की गन्ध भी रेडियो की मदद से प्राप्त कर लेंगे। सुगन्धित रूमाल आप ब्राडकास्टिंग सेट के सामने रक्खेंगे, धीरे धीरे रूमाल ग़ायब होने लगेगा और रिसिविंग स्टेशन पर बैठी हुई आपकी प्रेमिका के हाथ में पुनर्निर्मित होकर पहुँच जायगा। ठीक वैसा ही रूमाल, वही सुगन्ध!

मुलतजी का सुदामा-चरित

लेखक, श्रीयुत शालिग्राम श्रीवास्तव

जसे हिन्दी में नरोत्तमदास का 'सुदामाचरित' अनुपम है, वैसे ही उर्दू में मुंशी गुरुसहाय 'मुलतजी' की इस विषय की रचना अद्वितीय समझी जाती है।

मुंशी जी मलीहाबाद (लखनऊ ज़िला) में सरकारी कर्मचारी थे। कृष्ण के भक्त थे। उनका अधिकांश समय कृष्ण की भक्ति और आराधना में बीतता था। अन्त में वे नौकरी और घर-बार छोड़ कर वृन्दावन में जा बसे और वहीं उन्होंने उपर्युक्त काव्य की रचना की।

हम इस लेख में इन दोनों कवियों की रचनाओं की तुलनात्मक आलोचना करेंगे।

संयोगवश ये दोनों कवि एक ही प्रान्त अवध के रहनेवाले थे। अर्थात् नरोत्तमदास बारी (सीतापुर ज़िला) और मुलतजी काकोरी (लखनऊ ज़िला) के निवासी थे।

नरोत्तमदास की कविता चार सौ वर्ष से कुछ ऊपर की है। मुलतजी की रचना विक्रम-संवत् १९६६ की है।

नरोत्तमदास की पुस्तक की कथा संक्षेप में है, पर मुलतजी ने कथा का कुछ अधिक विस्तार के साथ वर्णन किया है।

नरोत्तमदास की रचना समष्टिरूप से विशुद्ध व्रजभाषा में है। मुलतजी ने अधिकांश उर्दू, बीच-बीच में फ़ारसी और भाषा में कविता की है।

नरोत्तमदास ने छन्दों में धनाश्री, सवैया, कुंडलिया और दोहा को चुना है। मुलतजी ने भाषा में जो कविता की है उसमें कुंडलिया को छोड़कर ऊपर के कुल छन्दों तथा सोरठा को अपनाया है तथा कुछ भजन भी चौताला और पद के नाम से लिखे हैं।

निःसन्देह दोनों कवि प्रतिभाशाली और मँजे हुए थे, पर दोनों ने रचना-शैली में भिन्न-भिन्न मार्ग का अवलम्बन किया है। नरोत्तमदास का वर्णन सीधा-सादा और अत्यन्त स्वाभाविक है, जिसको पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है, मानो लोग साधारणतया वार्तालाप कर रहे हैं। इसके विपरीत मुलतजी की कविता रूपक और अलंकारों से लदी हुई है। फिर भी बहुत ही सरस और भावपूर्ण है तथा माधुर्य आदि गुणों से अलंकृत है।

अब हम दोनों कवियों की समानार्थक रचनाओं के कुछ नमूने देते हैं, जिनसे मालूम होगा कि एक ही विषय का दोनों ने किस-किस ढंग से वर्णन किया है।

नरोत्तमदास की कविता में सुदामा से उनकी पत्नी कहती है—

'कहत नरोत्तम' संदीपन गुरु के पास,
तुमही कहत, हम पढ़े एक साथ हैं।
'द्वारिका के गये, हरि दारिद हरेंगे पिय—
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं।

तथा— दानी बड़े तिहुँ लोकन में,
जग जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन को सुध लेत भली विधि,
सिद्ध करौ पिय मेरी मतौ लै॥
दीनदयाल के द्वार न जात सो,
और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्री जदुनाथ से जाके हितू,
सो तिहूँपन क्यों कन माँगत डोलै॥

मुलतजी लिखते हैं—

'आप अकसर यही कहते थे कि हैं श्याम नईम[1]।
एक उस्ताद के हम दोनों हैं शागिर्द-क़दीम[2]॥
क्यों नहीं रखते हो फिर उनसे तमन्नाय- अज़ीम[3]।
यह न समझो कि हमारी सी है उनकी भी गिलीम[4]॥
उनकी कमली पे फ़िदा[5] कीजिये नोमाय-दो कौन[6]।
आपकी कमली की क़ीमत तो है एक पाव न पौन॥
कृष्ण भगवान मुजस्सम हैं, सरापा यमे-नूर[7]।
नाम जदुनन्दनो जदुनाथ है, उनका मशहूर॥
सिफ़ते-फ़ैज़ अयाँ है[8] कि व अलताफ़े वफ़ूर[9]।
दूरो नज़दीक ख़बर लेते हैं भक्तों की ज़रूर॥

(१) धनवान् (२) पुराने शिष्य (३) बड़ी आशा (४) कम्बल—छोटी कमली (५) न्योछावर (६) दोनों लोक (स्वर्ग और पृथ्वी) की संपदा (७) सिर से पाँव तक प्रकाश की मूर्ति हैं (८) अर्थात् उनकी दान-दक्षिणा का गुण इसी से प्रकट है (९) असीम कृपा से।

आप यह हाले ज़बूँ[१] उनको जो दिखलायेंगे।
जल्द ऐयामे-मुसीबत[२] के पलट जायेंगे ॥'

नरोत्तमदास की रचना में घर की दरिद्रता का वर्णन सुदामा की पत्नी ने इस प्रकार किया है—

कोदो-सवाँ जुरतो भरि पेट न, चाहत हौं दधि दूध मिठौती।
सीत वितीत भयो सिसयात ही, हौ हठ्ती पै तुम्हें न पठौती॥
जो जनती न हितू हरि से, तौ मैं काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घर तें कबहूँ न गयो पिय, टूटो तवा अरु फूटी कठौती॥

इसी का चित्र मुलतजी ने इन शब्दों में खींचा है—

एक दिन उसने कहा ऐ! शहे-बेबर्गो-नवा[३]।
घर में लोटा है न थाली, न पतीली न तवा॥
कौड़ी पैसे का यह टूटा है, कि थैली भी नहीं।
उजली पोशाक पे क्या मैल हो, मैली भी नहीं॥
थाल-थाली की कहे कौन, कठैली भी नहीं।
ख़ैरियत है कि अभी बात यह फैली भी नहीं॥
कहीं ऐसा न हो पंडित की समझ के यारी[४]।
कोई आ जाय तो दुशवार[५] हो मिहमां दारी[६]॥
पैरहन[७] तन पे नहीं, जिल्दे-बदन[८] बाक़ी है।
अब पसे-मर्ग[९] तमन्नाय-कफ़न[१०] बाक़ी है॥
देख लो पास मेरे कौन सा धन बाक़ी है?।
दुरे-दन्दां[११] हैं कि यह दुर्जे-दहन[१२] बाक़ी है।
होगये पर्दये-नामूस[१३] के टुकड़े-टुकड़े।
कब तलक शर्मो-हया[१४] रक्खूँ मैं सुकड़े-सुकड़े॥
चूनरी है न डुपट्टा है न सारी सिर पर।
झूठा-सच्चा कोई गोटा न किनारी सिर पर॥
बाल उलझे हुए बरसों से हैं भारी सिर पर।
कंघी करती हूँ तो हो जाती है आरी सिर पर॥
मर्द के होते जो औरत का न सिंगार बना।
क्या बना? कुछ न बना, ख़ाक बना, ख़ार[१५] बना॥

मुलतजी ने फिर इसी बात को हिन्दी में इस प्रकार वर्णन किया है—

'विश्व-विदित हरि-विमल जस, नित नूतन सुन कान।
पति सम्मुख कर जोर के, बोली नार सुजान'॥
पिय जानत हौ तिय के हित की, पट-भूखन भोग निते चहिये।
बाखर सून, भँडार न चून, कहौ दुख दून कहाँ लग सहिये।
सील-सँकोच में प्रान उतै, इत सोच-गलान के पावक दहिये।
जो दुज चन्द्र के मित्र चकोर, अँगार भखैये तो क्या कहिये[१]?

इन सब बातों का जो उत्तर सुदामा ने अपनी स्त्री को दिया है उसको नरोत्तमदास ने इस प्रकार लिखा है—

सिच्छक हौं सिगरे जग को,
तिय! ताको कहा अब देति है सिच्छा?।
जे तप के परलोक सुधारत,
संपति के तिनके नहीं इच्छा॥
मेरे हिये हरि के पद-पंकज,
बार हजार लै देखु परिच्छा।
औरन को धन चाहिये बावरि,
बाँभन को धन केवल भिच्छा॥

अब लगभग यही भाव मुलतजी के निम्नलिखित पद्यों में देखिए—

बावरी ब्राम्हनी! धनी हैं तेरे ब्रजराज,
जाके नाम लीन्हे आज होत रंक रावरी।
रावरी कृपाल के पुरान-वेद गावैं बाल?
सर्वदा गोपाल जी को भावै भक्ति भाव री॥
भावरी बढ़ाओ नित राखौ चित्त सावधान,
वित्त के निमित्त ठानो और न उपाव री।
पाओ री जो माँगे भीख ताही में जिआओ प्रान,
मेरी सीख मान तू निदान मुँह न बाव री।

अन्त में सुदामा किसी तरह कृष्ण भगवान् के यहाँ जाने को तैयार हुए और वहाँ भेंट में देने के लिए नरोत्तमदास के कथनानुसार इस प्रकार कुछ माँगने लगे—

पाँच सुपारि तैं देखु बिचारिकै,
भेंट को चारि न चाउर मेरे।

यह सुनिकै तब ब्राह्मनी गई परोसिन पास।
पाव सेर चाउर लिये, आई सहित हुलास॥

अब इसी को मुलतजी के शब्दों में सुनिए—

भेजती है जो मुझे, स्याम दया-धाम के धाम।
कोई तुहफ़ा[१] मुझे देती है कि ख़ाली पैग़ाम[२]?॥
यार कुछ दे के मिले यार को, तब यार की बात।
ख़ाली बातों में बिगड़ जाती है, व्यवहार की बात॥
ज़ने-मिसकीं[३] जो न रखती थी ज़रो-सीम का[४] गंज।
दूर कर दिल से ग़रीबी का उसी दम शशो-पंज[५]॥
कोई हीला से, वसीला से, किसी के थे रंज[६]।
माँग लाई किसी हमसाया[७] से थोड़े से ब्रिंज[८]॥
दामने-जामये-पारीना[९] में शर्मा[१०] करके।
रिश्तये-मिह्र[११] से बाँधे उन्हें इकजा[१२] करके॥

इसके आगे सुदामा द्वारकापुरी पहुँचते हैं। नरोत्तमदास ने वहाँ की शोभा का थोड़ा [illegible] वर्णन इस प्रकार किया है—

मंगल संगीत धाम-धाम में पुनीत जहाँ,
नाचें वारवधू देवनारि अनुहारिका।
घंटन के नाद कहूँ बाजन के छाइ रहे,
कहूँ पिक कंक पढ़ैं सुक और सारिका॥
रतनन ठाट हाट बाटन में देखियत,
घूमैं अस्व गज रथपती नर नारिका।
दसौं दिशा भीर द्विज धरत न धीर मन,
उठत है पीर लखि बलबीर द्वारिका॥

और भी—

दीठि चकाचौंधि गई देखत सुबरनमई,
एक तें सरस एक द्वारिका के भौन हैं। इत्यादि।

मुलतजी ने वहाँ के राज-प्रासाद तथा आनन्द-वाटिकाओं की छवि का जो चित्र खींचा है तनिक उसको भी देखिए। यह वर्णन कुछ लम्बा है, हम उसमें से कुछ पद्य छाँटकर यहाँ उद्धृत करते हैं—

'जाके पहुँचे लबे-क़ुलज़ुम[१], जो बसद मौजे सुरूर[२]।
देखते क्या हैं? कि इकशह हैवाँ मतलय-नूर[३]॥
लाजवर्द[४] और ज़बरजद[५] का, बना शंह-पनाह[६]।
ठहरती देखनेवालों की, नहीं जिसपे निगाह[७]॥
कोठियाँ मतलये-ख़ुर्शेदो[८], मकाँ मसकने माह[९]।
शाख़े-मिर्जां[१०] के लगे, जिनमें कँवाड़े दिलख़्वाह[११]॥
कमरे सोने के बने, ख़ूबो[१२] ज़मुर्रद[१३] के सितूं[१४]।
सहने-बिल्लौर[१५] बरूँ साफ़तर[१६] अज़सद्फ़े दरूं॥
झालरां में दुरे-शहवार[१७], की है जलवा-गरी[१८]।
तारे-सीमीं के दरीचों[१९] में, चिकें हाल-हरी॥
ज़ीनते-औजे-तरब, अंजुमने हूरो[२०]-परी।
नाचते हैं कहीं ताऊस[२१], कहीं कब्के[२२]-दरी॥
दिल फड़क जाता है, मुतरिब[२३] की नवासंजी[२४] पर।
रात भर चाँदनी, लहराती है शतरंजी[२५] पर॥
तख़्ते बिल्लौर[२६] पे आरास्ता[२७], सोने के पलंग।
तोशकें क़ाक़मो[२८] देबा[२९], की बिछीं रंगा रंग॥
मोम[३०] हो जाता है, झाड़ों की दमक से दिले संग[३१]।
तुर्फ़ा[३२] तर जलवये-क़ुदरत[३३] है हज़ारों फ़र संग[३४]॥
जब नज़र चारों तरफ़, दौड़ के थक जाती है।
चश्मे-नाज़िर[३५] की, नदामत[३६] से झपक जाती है॥

---

(१) दीन-दशा (२) विपत्ति के दिन।
(३) बे सरो सामानी के स्वामी (४) मित्रता (५) कठिन (६) आतिथ्य-सत्कार (७) वस्त्र (८) शरीर की खाल (९) मरने के पश्चात् (१०) क़फ़न की आकांक्षा (११)(१२) अर्थात् मोतियों की जगह मेरे मुँह में केवल दाँत और उसके डिब्बे की जगह केवल मेरा मुँह बाक़ी है। (१३) लज्जावाले अंग छिपाने का वस्त्र अर्थात् धोती या लहँगा (१४) लज्जा की रक्षा करूँ (१५) अर्थात् कुछ न बना।

(१) लगभग यही भाव नरोत्तमदास के इस पद्य में भी है 'चंद को मित्र चकोर सदा तेहि भोजन आगि बिरंचि नै दीनी।'

(१) भेंट (२) कोरा संदेश (३) दीन स्त्री (४) सोने-चाँदी या रुपया अशर्फ़ी का ख़ज़ाना (५) संकोच (६) किसी को बिना कष्ट दिये (७) पड़ोसी (८) चावल (९) पुराने वस्त्र के एक खूँट में (१०) लजाकर (११) प्रेम-रूपी धागे (१२) इकट्ठा।

(१) समुद्र के तट पर (२) आनन्द-तरंग में (३) मानो प्रकाश का स्रोत था (४) (५) नीले रंग के बहुमूल्य रत्न (६) प्राचीर (७) दृष्टि (८) (९) अर्थात् कोठियों में ऐसी चमक-दमक है जैसे वहाँ से सूर्य उदय हो और भवनों में चन्द्रमुखी रमणियाँ निवास करती हैं (१०) मूँगे की शाख (११) इच्छानुसार (१२) सुन्दर (१३) हरित मणि-नीलम (१४) स्तंभ (१५) आइना जैसा स्वच्छ आँगन (१६) सीप के आन्तरिक भाग से भी अधिक साफ़ (१७) बड़े-बड़े मोती-गजमुक्ता (१८) चमक (१९) चाँदी के तार से मढ़ी हुई खिड़कियाँ। [नरोत्तमदास ने सुदामा-पुरी के वर्णन में एक पद्य कुछ इसी से मिलता-जुलता लिखा है] (२०) अर्थात् अत्यन्त आनन्दमयी मानो अप्सराओं की सभा थी (२१) मयूर (२२) राजहंस (२३) गवैया (२४) आलाप (२५) फ़र्श पर बिछाने की बड़ी दरी (२६) मोटा शीशा (२७) सुसज्जित (२८) (२९) एक प्रकार के बहुमूल वस्त्र (३०) भावार्थ= नर्म हो जाता है (३१) कठोर हृदय (३२) विलक्षण (३३) प्रकृति की छटा (३४) हज़ारों कोस तक अर्थात् बहुत दूर तक (३५) द्रष्टा की आँख (३६) लज्जा।

यथा:—'हीरालाल ललित झरोखन में झलकत,
झिमझिम झूमक झूलै हैं मुकतान के]।
खुल्द[1] को रश्क[2] है उस शह की तामीरों[3] से।
आइना पुश्त बदीवार[4] है तसवीरों से॥
नरोत्तमदास ने द्वारपाल के मुख से सुदामा की दीन-
शा का वर्णन श्रीकृष्ण जी के सामने इस प्रकार किया है—

सीस पगा न झगा तन में,
प्रभु ! जानै को आहि, बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी,
अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि,
रह्यो चकि सों बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयालु को धाम,
बतावत आपनो नाम सुदामा॥

मुलतजी ने इसको इन शब्दों में लिखा है—
'जाके दर्बां ने ख़बर दी कि महाराज कुमार।
हम सबक़[5] आपके आये हैं सुदामा कोई यार[6]॥
सूत के नाम से गर्दन में है उनके जुन्नार[7]।
यातो कोपीन गिरहदार[8] पे है दारोमदार[9]॥
दम के मिहमां[10] हैं, मगर भरते हैं दम यारी का।
दर हक़ीक़त[11] कि उन्हीं ग़म[12] नहीं नादारी[13] का॥'

कहना नहीं होगा कि सुदामा का ऊपर का चित्र
रोत्तमदास ने अधिक सफलता के साथ खींचा है।

कृष्ण-सुदामा-मिलन का वर्णन नरोत्तमदास ने इस
कार किया है—

देख सुदामा की दीन दसा,
करुना करके करुना-निधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं,
नैनन के जल सों पग धोये।

इसी को मुलतजी यों कहते हैं—
'जब चरन धोने को मिहमां के, दयानिधि लपके।
सोज़[1] सब दूर हुए उसके, 'दरूनी तप[2] के॥
फ़र्ते-ग़ैरत[3] से इधर[4], दीदये-गिरियां[5] झपके।
नैन से रुख़ पे उधर, प्रेम के आँसू टपके॥
करके करुना करुना-ऐन, यहाँ तक रोये।
कि चरन धोके उन्हीं, अश्कों[6] से पातक धोये'॥

जैसा हमने आरम्भ में कहा है सुदामा-चरित के ये दोनों रचयिता प्रतिभाशाली कवि थे। पर जैसा संसार का नियम है, इस क्षेत्र में कहीं नरोत्तमदास और कहीं मुलतजी आगे बढ़ गये हैं और कहीं दोनों लगभग एक ही सीमा तक पहुँचे हैं।

शैली की दृष्टि से दोनों की रचनाओं की तुलना करना व्यर्थ है। यदि एक की आभा ढाके की मलमल के समान स्वच्छ और निर्मल है तो दूसरी की छटा बनारस के कमख़ाब के सदृश रंजित और चमकीली है, पर सजीवता दोनों में है, इसमें सन्देह नहीं है।

हाँ ज़ोरे-बयान दोनों की रचना में सब जगह एकसाँ नहीं है, अर्थात् वर्णन के धारा-प्रवाह की गति कहीं तीव्र और कहीं कुछ मन्द पड़ गई है। उदाहरणार्थ मुलतजी ने जिस ज़ोर के साथ द्वारिका की शोभा का वर्णन किया है उसका दशांश भी सुदामापुरी के विषय में नहीं लिखा। जो कुछ लिखा भी है वह यहाँ-वहाँ बिखरा हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि वह वहाँ पहुँचते-पहुँचते थक-से गये थे। यही शिकायत नरोत्तमदास की कविता के बारे में भी है। तथापि ये दोनों रचनायें श्रेष्ठ हैं।

---

(१) स्वर्ग (२) ईर्ष्या (३) निर्माण-बनावट (४) आई-
ादार चित्र दीवारों से लगे हुए हैं (५) सहपाठी (६) मित्र
७) जनेऊ (८) गाँठें पड़ी हुई अर्थात् पैवन्द लगे हुए
९) आश्रय-भरोसा (१०) मरने के निकट (११) वास्तव
ं (१२) चिन्ता, (१३) दरिद्रता, ग़रीबी।

---

(१) जलन (२) आन्तरिक दाह (३) लज्जा के मारे (४) अर्थात् सुदामा के (५) नेत्र (६) आँसुओं।

पुरी की यात्रा

लेखक, पंडित लल्लीप्रसाद पाण्डेय

जो लोग पुरी की यात्रा कर आये हैं उनकी दृष्टि के सामने, इस वर्णन को पढ़ने से, वहाँ के दृश्य उपस्थित हो जायँगे और जो अभी तक नहीं जा सके हैं, वे वहाँ की बहुत सी बातों से परिचित हो जायँगे तथा वहाँ जाने का अवसर पाने पर—पहले से जानकारी होने के कारण—पूरा पूरा आनन्द प्राप्त कर सकेंगे। इतिहास, पुराण और परम्परा आदि सभी दृष्टियों का इस लेख में समावेश किया गया है।

पुरी के उत्सव

[२]

री में उत्सव-मात्र को प्रायः "यात्रा" कहते हैं। सभी यात्राओं में थोड़ी-बहुत धूम-धाम होती है। चन्दन-यात्रा, स्नान-यात्रा, रथ-यात्रा और दोल-यात्रा प्रधान मानी जाती हैं। यहाँ पर संक्षेप में प्रधान उत्सवों का वर्णन किया जाता है।

चन्दन-यात्रा वैशाख का प्रधान उत्सव है। शुक्ल पक्ष की तृतीया से लेकर ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी तक २१ दिन यह उत्सव होता रहता है। जगन्नाथजी के प्रतिनिधि मदनमोहनजी के अङ्ग में चन्दन लगाकर और उन्हें सुन्दर वस्त्रों, आभपणों तथा पुष्पों से सजाकर, मन्दिर से कोई आध कोस की दूरी पर, उत्तर-पश्चिम कोने में स्थित नरेन्द्र-सरोवर नामक बड़े तालाब पर जल-विहार के लिए ले जाते हैं। जगन्नाथजी की चल प्रतिमा मदनमोहनजी के सजे हुए विमान को मनुष्य कन्धों पर उठाकर ले जाते हैं। लक्ष्मीजी की प्रतिमा सुवर्णनिर्मित है। वह जड़ाऊ आभूषणों और वस्त्रों से सजा कर हाथीदाँत के छोटे से दोला पर रखकर वहीं पहुँचाई जाती है। साथ में पाँचों पाण्डवों की मूर्तियाँ भी जाती हैं।

इस यात्रा के समय ख़ासा जलूस निकलता है। तुरही, भेरी, शंख, घड़ी घंटे और नगाड़े आदि बजते जाते हैं। पताका, चमर और दण्ड आदि लिये हुए लोग मदनमोहनजी के साथ जाते हैं। सड़क के दोनों ओर और मकानों पर बड़ी भीड़ रहती है। भीड़ में कोई गाता है, कोई नाचता है और कोई जय जय ध्वनि करता है।

सरोवर के घाट पर पहुँचते ही मदनमोहनजी और लक्ष्मीजी को दो नौकाओं पर सवार कराकर सरोवर के मध्य भाग में स्थित एक मन्दिर में ले जाते हैं। वहाँ पूजा करके उनको भोग लगाया जाता है।

पूजा आदि हो चुकने पर मदनमोहनजी और लक्ष्मीजी को तो एक नाव पर और पाँचों पाण्डवों को दूसरी नाव पर रखकर गाते-बजाते हुए जल-विहार कराया जाता है। मन्दिर और तालाब के चारों ओर ख़ूब दिये जलाये जाते हैं। जल-विहार हो चुकने पर ठाकुरजी फिर मन्दिर में पहुँचाये जाते और धूम-धाम से चन्दनस्नान कराकर उनका वेश बदला जाता तथा आरती और पूजन करके भोग लगाया जाता है। भक्त लोग चन्दन लगाकर दर्शन करते और मिठाई का प्रसाद पाते हैं। बहुत रात बीतने पर फिर धूम-धाम के साथ लक्ष्मीजी सहित मदनमोहनजी शहर के मन्दिर में लौट आते हैं। यह उत्सव तीन हफ़्ते तक प्रतिदिन इसी तरह होता रहता है। चन्दन-यात्रा के नाम पर नरेन्द्रसरोवर का एक नाम 'चन्दनतालाब' भी हो गया है। इस तालाब के किनारे पर श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी (जटिया बाबा) की समाधि और मठ है।

ज्येष्ठ की पूर्णिमा को जगन्नाथजी की 'स्नानयात्रा' होती है। यह उत्सव देखने को पुरी में बहुत-से यात्री आ जाते हैं। इसके १६ दिन बाद ही 'रथयात्रा' होती है। वास्तव में यह यात्रा ही पुरी का सबसे बड़ा उत्सव है। रथयात्रा देखने को पुरी में पहले से ही यात्री आ जाते हैं और इन दोनों उत्सवों को देखकर मग्न हो जाते हैं। इन दोनों उत्सवों के लिए ही जगन्नाथजी को रत्नवेदी से उतारा जाता है।

उत्सव के दिन बड़े तड़के से मन्दिर में और सड़क पर दूर तक भीड़भाड़ हो जाती है। मन्दिर के दोनों प्राकारों के बीच में जगन्नाथजी की जो स्नान-वेदी बनी हुई है उसी
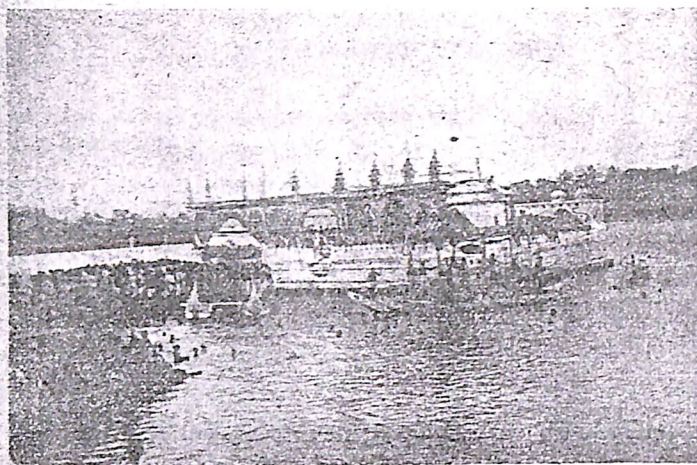
[जल-विहार का दृश्य ।]

और सब लोग हाथ जोड़े हुए देखते रहते हैं कि देखें उस पर भगवान् किस समय आकर विराजते हैं। स्नानयात्रा के दिन प्रायः पानी बरसता है। किन्तु भक्तों को भीगने की तनिक भी परवा नहीं रहती। वे तो दर्शन के उत्सुक रहते हैं। स्नानवेदी ऊँची और लम्बी-चौड़ी है। इसके दो भाग हैं। भीतरवाली वेदी बाहर की वेदी की अपेक्षा ऊँची और सँकरी है। इसके पीछे छोटी सी दीवार है। बड़ी वेदी के चारों ओर रेलिंग का घेरा बना है। सामने की ओर सीढ़ियाँ हैं जिन पर होकर मूर्तियाँ वेदी पर पहुँचाई जाती हैं।

सुभद्राजी को मनुष्य कन्धे पर उठाकर लाता है, किन्तु जगन्नाथजी और बलभद्रजी को पैदल चलकर आना पड़ता है। ये दोनों मूर्तियाँ बहुत वज़नी हैं, इस कारण उठाकर नहीं लाई जा सकतीं। पण्डे इनको अगल बग़ल से हाथ पकड़ कर ले चलते हैं और पीछे से पाट की डोरियों से इनको खींचे रहते हैं ताकि नीचे न गिर पड़ें। इस खींचतान के कारण मूर्तियाँ एक तरह से उछलती हुई चलती जान पड़ती हैं। इस प्रकार चलने को पाण्डवविजय या पाहुंडी कहते हैं।

घड़ी-घंटे आदि बजाये जाते और जय-जयकार किया जाता है जिससे ज्ञात हो जाता है कि भगवान स्नान करने को आ रहे हैं। उस समय स्नानवेदी के समीप पहुँचने के लिए बड़ी रेल-पेल मच जाती है। फिर भी कोई आगे नहीं बढ़ पाता, क्योंकि वहाँ स्थान ही नहीं होता। बड़ी मेहनत से जगन्नाथजी और बलरामजी की मूर्तियाँ सीढ़ियाँ पार करके स्नानमञ्च पर पहुँचाई जातीं और भीतरवाली वेदी की पिछली दीवार के सहारे खड़ी की जाती हैं। पहले ही से मन्दिर के "सर्वतीर्थ" नामक कुएँ से ताँबे के १०८ कलशों में जल भर कर रख लिया जाता है। वही सुगन्धित शीतल जल, मन्त्र पढ़ पढ़कर, उसी पीछे की दीवार के ऊपर से मूर्तियों पर डाला जाता है। साथ ही 'रोहिणी-कुण्ड' का जल भी उन पर छोड़ा जाता है। इस समय ठाकुरजी को छूने और उनके ऊपर के रङ्गीन वस्त्रखण्ड का टुकड़ा पाने के लिए यात्रियों में बड़ी रेलपेल और धक्का-मुक्की होती है। स्नानयात्रा और रथयात्रा के अवसर पर ही यात्रियों को भगवान् के स्पर्श करने का अवसर मिलता है। अन्य समय वे दूर से दर्शन ही कर सकते हैं। इस अवसर पर पण्डा लोगों को बहुत आमदनी होती है। यात्रियों से अच्छी रक़म वसूल करके वे उन्हें मूर्तियों के पास ले जाकर स्पर्श कराते हैं। भीड़ भाड़ के कारण बहुतों को इसके लिए दिन भर प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

स्नानवेदी ऊँची है, इस कारण मन्दिर के बाहर, सड़क पर, से ही लोग स्नान का दृश्य देख सकते हैं। स्नान के पश्चात् भगवान् को गणेशवेश में सज्जित किया जाता है। इस दिन मन्दिर के बाहर की स्नानवेदी पर मूर्तियाँ दिन भर रहती हैं। यहीं पर उनकी पूजा-आरती होती और भोग लगकर नित्य की सेवा होती है।

स्नान के दूसरे दिन भगवान् को ज्वर आता है। पन्द्रह दिन तक उनको ज्वर चढ़ा रहता है। इन पन्द्रह

दिनों तक मूर्तियाँ मन्दिर के भीतर रहती हैं और उनको अनेक प्रकार के पाचन का सेवन कराया जाता है। इस समय किसी को उनके दर्शन नहीं मिलते। पट की सहायता से नित्य पूजन और भोग आदि हुआ करता है। असल बात यह है कि इस १५ दिन की अवधि में मूर्तियों पर नये सिरे से रंग आदि चढ़ाया जाता है। १५ दिन हो चुकने पर भगवान् को पथ्य दिया जाता है और वे आरोग्य लाभ करके 'नवयौवन वेश' में भक्तों को दर्शन देते हैं। स्नान-यात्रा के दिन से रथयात्रा तक भगवान् रत्नवेदी पर नहीं विराजते। जगमोहन के सामने, जय-विजय द्वार के पीछे, मूर्तियाँ रक्खी जाती हैं।

पुरी के मन्दिर में नवयौवन वेश के दर्शन करने का एक विशेष प्रबन्ध रहता है। १) का टिकट जारी किया जाता है और टिकटवाले ही दर्शन करने को जा सकते हैं। इससे धक्का-मुक्की कम होती है। धनवानों के लिए यह प्रबन्ध है। ऐसा प्रबन्ध मन्दिर को नाट्यशाला और सिनेमा-भवन के समकक्ष पहुँचा देता है। भगवान् के यहाँ धनवान् तथा निर्धन का भेद-भाव! हद हो गई लोलुपता की। लेकिन रुपये कमाने का यह साधन नया नहीं, पुराना है। गया के विष्णुपदमन्दिर को भी, रुपया देकर, आप थोड़ी देर तक यात्रियों से ख़ाली करा सकते हैं। मन्दिरों पर लक्ष्मी के लाड़लों का यह प्रभुत्व!

लेखक इस यात्रा के सिलसिले में जिस समय कलकत्ते पहुँचा, ज्येष्ठ की समाप्ति समीप थी। एक दिन नगर में स्थित, बी० एन० आर० के, टिकटघर में गाड़ियों के समय और किराया आदि का पता लगाने गया तो पता चला कि अब तो जगन्नाथजी के बीमार होने का समय आ गया, ३ दिन में पट बन्द हो जायँगे। यह समाचार सुनकर सहयात्री शर्माजी बहुत उदास हुए। अधिक समय तक वे प्रतीक्षा कर न सकते थे। उनकी पत्नी और भावज भी खिन्न हो गईं। पुरी जाकर बिना दर्शन किये घर जाना उन्हें अच्छा न लगा। इससे अन्त में उन लोगों ने कलकत्ते से ही काशी लौट जाने का निश्चय कर लिया। किन्तु लेखक ने पुरी पहुँचकर देखा कि जगन्नाथजी की इस बीमारी के समय भी यात्री आते थे, और मन्दिर की प्रदक्षिणा करके, देवी-देवताओं के दर्शन करके—महाप्रसाद पाकर—लौट जाते थे।

रथ-यात्रा

रथयात्रा के लिए महीने भर पहले से तीन रथ बनाये जाते हैं। बहुत से मज़दूर और कारीगर काम करते रहते हैं। कुछ सामान तो पुराना काम में लाया जाता है और सब हर साल नया बनता है। जगन्नाथजी का रथ सबसे बड़ा और सुभद्राजी का सबसे छोटा होता है; लेकिन छोटे का अर्थ १९-२० का अन्तर समझना चाहिए। जग-न्नाथजी के रथ में १६, बलरामजी के रथ में १४ और सुभद्राजी के रथ में १२ लकड़ी के पहिये लगे रहते हैं। रथों पर रङ्ग कर दिया जाता और देव-देवियों की मूर्तियाँ बना दी जाती हैं। रथ बहुत ऊँचे होते हैं। नीचे के खंड में बावरी (एक अस्पृश्य जाति) लोग बैठे रहते हैं और आवश्यकता पड़ने पर संकेत पाते ही ब्रेक गिरा देते हैं। बात यह है कि बड़े बड़े रथों की रस्सियों को सैकड़ों आदमी खींचते हैं और यद्यपि झंडियों से बार बार संकेत किया जाता है कि रथ को दाहनी या बाईं ओर को खींचो फिर भी अव्यवस्था के कारण वह सड़क से इधर-उधर हो जाता या बेढङ्गा ढुलकने लगता है। उस समय ब्रेक की ज़रूरत होती है। यह एक मोटा सा लट्ठा होता है जो अगले पहियों के सामने लटकता रहता है। रथ पर जहाँ मूर्ति रक्खी जाती है उसके चारों ओर खम्भों के बाहर परिक्रमा करने को काफ़ी जगह रहती है। रथों पर पण्डों और नौकर-चाकरों के लिए भरपूर जगह रहती है। वे लोग ठाकुरजी के साथ साथ रथ पर खड़े खड़े 'गुंडिचाबाड़ी' जाते और जय-जयकार करते तथा शङ्ख और घंटा-घड़ियाल बजाया करते हैं। जगन्नाथजी के रथ का नाम नन्दिघोष, बलरामजी के रथ का नाम तालध्वज और सुभद्राजी के रथ का नाम देवदलन है। वैसे तो रथों के ऊपर लाल रङ्ग की बानात मढ़ी रहती है; किन्तु पहचान के लिए तीनों रथों के दाहिनी बाईं ओर विभिन्न रङ्ग का वस्त्र रहता है। नन्दिघोष पर सफ़ेद छत्र, देवदलन पर हरा और तालध्वज पर काला छत्र रहता है। नन्दिघोष के बगली रङ्ग पीला, देवदलन का काला और तालध्वज का हरा होता है। देवदलन रथ पर, सुभद्राजी की रक्षा के लिए, सुदर्शन चक्र रहता है। वैसे यह वेदी पर जगन्नाथजी के पास रक्खा रहता है। यह लकड़ी का होता है और आकार गदा का-सा होता है। आगे आगे बलरामजी का
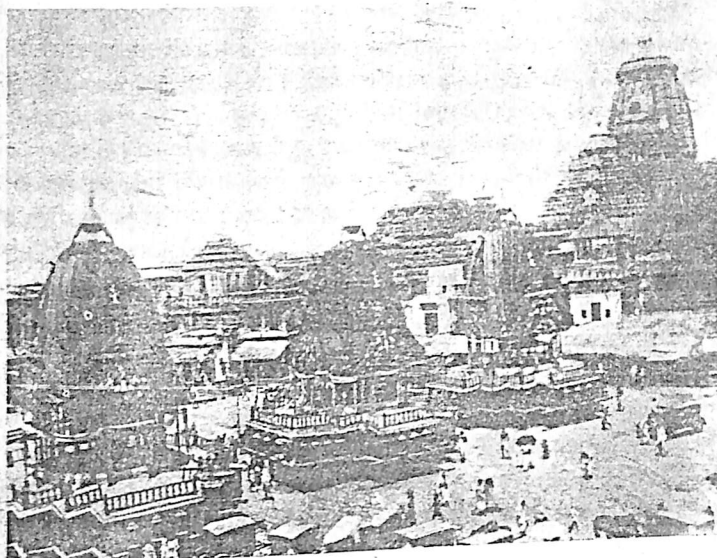
[सिंहद्वार के समीप तीनों रथ खड़े हैं।]

रथ जाता है, उसके कुछ दूर पहुँच जाने पर सुभद्राजी का और तब जगन्नाथजी का। तीनों रथों के बीच काफ़ी फ़ासला इसलिए रक्खा जाता है कि कहीं पीछे का रथ ढुलककर आगे के रथ से टकरा न जाय। मिस्त्री लोग भी साथ में रहते हैं ताकि मरम्मत की ज़रूरत होने पर रथ को तुरन्त सुधार दें। रथ खींचने के लिए पहले किसी राजा के यहाँ से नारियल की पतली-सी रस्सियाँ आती थीं। उनको मिलाकर बट लिया जाता था। बाबू सखीचन्द मैनेजर ने यह सुधार किया कि जिन मोटी रस्सियों से घाट पर स्टीमर बाँधे जाते हैं वही मँगाने की रीति चला दी। प्रत्येक रथ में चार चार रस्सियाँ बँधी रहती हैं। इनको सिपाही और यात्री मिलकर खींचते हैं। कभी तो रथ आसानी से खिंच जाता है और कभी ज़ोर लगाने पर भी जुम्बिश नहीं खाता।

द्वितीया के दिन मन्दिर में थोड़ा-सा ही भोग लग पाता है। १०-११ बजे तक मूर्तियाँ रथ पर आ जाती हैं। फिर रथ गुंडिचाबाड़ी की ओर रवाना होते हैं। वहाँ पहुँचने पर दूसरे दिन शाम तक मूर्तियाँ रथ पर ही रहती हैं। इस अवधि में मिठाई फल-फूल, चिउरा और पकी रसोई का ही भोग लगता है। तृतीया की शाम को मूर्तियाँ रथ से उतार कर गुंडिचाबाड़ी में पहुँचाई जातीं और विधि से पूजन होता तथा भोग लगने लगता है। वहाँ भी मंदिर की भाँति प्रसाद की बिक्री के लिए बाज़ार लग जाता है। एक हफ़्ते तक काफ़ी चहल-पहल रहती है। शहर के मन्दिर में एक तरह से सन्नाटा रहता है।

गुंडिचाबाड़ी मन्दिर से पश्चिम ओर डेढ़-दो मील के फ़ासले पर है। उससे कोई ३ फ़र्लाङ्ग के अन्तर पर इन्द्रद्युम्न सरोवर है। गुंडिचाबाड़ी में मुख्य दो दरवाज़े हैं। एक से मूर्तियाँ मन्दिर के भीतर पहुँचाई जातीं और दूसरे से, दुबारा रथ पर आने के लिए, बाहर निकाली जाती हैं। एक दरवाज़े से दूसरे दरवाज़े के समीप रथ को ले जाना भी परिश्रमसाध्य काम है। इसके लिए कई दिन मेहनत करनी पड़ती है। ज़मीन में बालू अधिक होने से रथ के खींचने और ठेलने में बहुत परिश्रम करना पड़ता है। यात्री कम होते हैं, इसलिए सिपाहियों को ही खींचना पड़ता है। पीछे से दो हाथी अपना माथा लगाकर आगे को ठेलते हैं। दशमी को रथ फिर मन्दिर को वापस आते हैं और सब कार्य वैसे ही होते हैं जैसे द्वितीया को हुए थे। शाम को मूर्तियाँ बस्ती में मन्दिर के द्वार पर आती हैं और दूसरे दिन की संध्या तक रथ पर ही रहती हैं।

रथयात्रा के तीसरे दिन लक्ष्मीजी मनुष्य के कन्धे पर सवार होकर गुंडिचाबाड़ी के बाहरी दरवाज़े तक जाती हैं लेकिन भीतर नहीं जातीं। उनको साथ नहीं लाया गया था इस कारण वे क्रुद्ध रहती हैं और जगन्नाथजी के रथ को तनिक तोड़फोड़ कर मन्दिर में लौट आती हैं। जगन्नाथजी जब गुंडिचाबाड़ी से लौटकर मन्दिर को आते हैं तब भी लक्ष्मीजी कोप प्रकट करती हैं, मन्दिर का दरवाज़ा बन्द करवा देती हैं जो ख़ुशामद करने पर खोला जाता है।

रथ चलने के पहले जगन्नाथजी के प्रधान सेवक पुरी के राजा का यह काम है कि वह एक जड़ाऊ झाड़ू से रास्ते को साफ़ करने का अभिनय करे, जल का छिड़काव करे और फूल बिखेरे; किन्तु आज-कल राजाओं में श्रद्धा-भक्ति की मात्रा कुछ कम हो गई जान पड़ती है। इससे राजा साहब को इसके लिए अवकाश नहीं मिलता तो उनकी ओर से एक पण्डा, एक ख़ास पहनावा पहनकर, इस रस्म को अदा कर देता है। इस साल यही हुआ था। पुरी के राजवंश में प्रायः राजकुमार का जन्म नहीं होता, इसलिए पुत्र गोद लिया जाता है और राजाओं के लिए यथाक्रम चार नाम निर्दिष्ट हैं। वही रख दिये जाते हैं। १–रामचन्द्रदेव वर्मा, २—वीरकेसरीदेव वर्मा, ३—दिव्यदेवसिंह वर्मा, ४—मुकुंददेव वर्मा। यही नामों का क्रम है।

अधिकांश यात्री रथयात्रा देखकर अपने अपने स्थान को चले जाते हैं। जगन्नाथजी की मन्दिर को वापसी देखने के लिए या तो नये यात्री आते हैं जो प्रायः उड़ीसा के ही होते हैं या ऐसे लोग रह जाते हैं जो पुरी में स्वास्थ्य सुधारने के लिए आकर किराये के मकानों में ठहरते हैं। इतने अधिक समय तक यदि यात्री को पंडा अपने यहाँ ठहरावे तो उसका दिवाला हो जावे और धर्मशालाओं में ठहरने का साधारण नियम ३ दिन का है।

मन्दिर से समुद्र-तट का मार्ग

मन्दिर के सिंहद्वार से पूर्व ओर समुद्र को जो सड़क जाती है उसका नाम स्वर्गद्वार रोड है। समुद्र-किनारे जहाँ यह सड़क पहुँचती है उसके दाहनी ओर पुरी का श्मशान है। बालू में श्मशान का कोई चिह्न नहीं रह जाता है। कुछ प्राचीन समाधियाँ ज़रूर बनी हुई हैं। स्वर्गद्वार से कुछ दूरी पर एक ओर, महाप्रभु गौराङ्गदेव के पार्षद, साधु हरिदासजी की समाधि बनी हुई है। वहाँ नाम-कीर्तन होता रहता है। मन्दिर में खीर का भोग लगता है। बहुत अच्छा स्थान है। सड़क के दूसरी ओर, कुछ फ़ासले पर, मलूकदासजी का स्थान है। समुद्र के किनारे-किनारे एक सड़क गई हुई है। इस पर लालटेनें लगी हुई हैं; पानी के नल भी हैं। इस सड़क के किनारे पचासों पक्के मकान बन गये हैं। पहले इनका नाम भी नहीं था। एक समय जहाँ झाऊ के जङ्गल थे वहाँ आज बढ़िया बँगले खड़े हैं। इनमें या तो सम्पन्न लोग रहकर जल-वायु के परिवर्तन का सुख प्राप्त करते हैं, या क्षय के रोगी रहते हैं। पचीस-तीस वर्ष से इस ओर क्षय के रोगी बहुत अधिक आने लगे हैं। समुद्र-किनारे ऐसा विरला मकान मिलेगा जिसमें क्षय का रोगी न रह चुका हो। इस कारण तन्दुरुस्त मनुष्य इन मकानों में रहने का साहस कम करता है। अहा! समुद्र का गर्जन, वहाँ की हवा और किनारे से लेकर क्षितिज तक फैले हुए नीले महोदधि के दर्शन मन में अपूर्व आनन्द की सृष्टि करते हैं। प्रातः-सायं समुद्र-किनारे बहुत-से स्वास्थ्य-कामी नर-नारी

[मकानों पर और नीचे दर्शक हैं। रथ रस्सों से खींचा जा रहा है। सिपाहियों ने बीच में इसलिए जगह ख़ाली करवा ली है कि कोई नीचे कुचल कर मर न जाय और रथ के चलने को जगह भी रहे।]
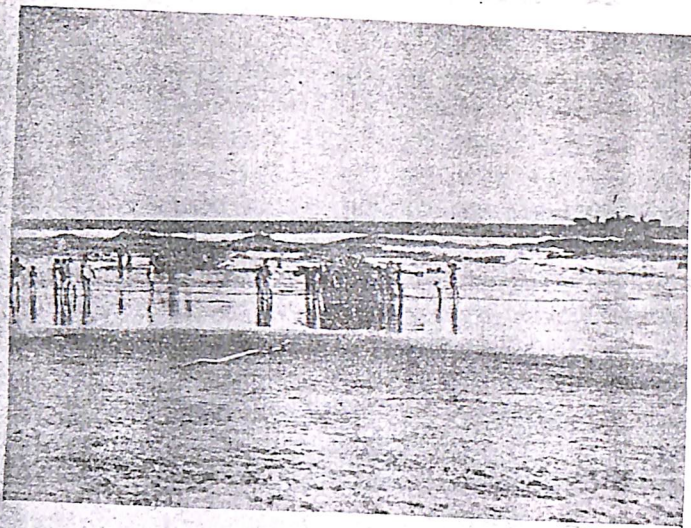
[समुद्र का दृश्य। सफ़ेद सफ़ेद ऊँची लहरें हैं। स्नानार्थी स्नान कर रहे हैं।]

टहलते पाये जाते हैं। कोई-कोई कुतूहलवश बालू में से सीपियों और घोंघे एकत्र किया करते हैं।

समुद्र-स्नान

क्या स्त्री-पुरुष और क्या बालक-वृद्ध सभी पुरी के समुद्र में एक-आध बार अवश्य स्नान करते हैं। जिनको स्नान करने की रीति मालूम हो जाती है वे तो प्रतिदिन घण्टों नहाते हैं। समुद्र का स्नान ख़ासा व्यायाम है। आरम्भ में समुद्र का गर्जन, उत्ताल तरङ्गों का ज़ोर से आना और पृथ्वी की ओर से तेज़ी से लौटना देखकर स्नानार्थी सहम जाता है, मुश्किल से आगे बढ़ता है। इस दशा में कुछ लोग उन तिलङ्गों की सहायता लेते हैं जो स्नान करने में सहायता देने को किनारे पर खड़े रहते हैं। ये नूलिया कहे जाते हैं। ये शरीर से हट्टे-कट्टे और औसत क़द के, काले रङ्ग के होते हैं। समुद्र-किनारे ही इनकी बस्ती है। डोंगी पर चढ़कर समुद्र से मछली मारना और लोगों को नहला देना ही इनका पेशा है। उड़ीसा में रहने से ये उड़िया बोली भी बोलते हैं। हिन्दी भी समझ लेते हैं और बङ्गालियों के सम्पर्क में रह कर बँगला बोल लेते हैं। २।४ पैसे देने से ये लोग हाथ पकड़े रहकर स्नानार्थी को नहलाते, नहाने की रीति बतलाते और ढाढ़स बँधाते हैं। कोई डूबने लगता है तो ये आगे बढ़कर उसको पकड़ लाते हैं। इसके लिए इन्हें सरकार से भी इनाम मिलता है। पुलिस के सिपाही भी निगरानी के लिए तैनात रहते हैं। अक्सर यात्री एक दूसरे का हाथ पकड़े रहकर नहाते हैं, किन्तु लहरों का वेग उनको कहीं का कहीं पटक देता है। कभी कभी पतिजी पत्नी का हाथ पकड़ कर उसे स्नान कराने लगते हैं तो लहर उनको पटक कर ऊपर नीचे कर देती है। सचमुच बड़ा अजीब तमाशा हो जाता है। यदि धोती कसकर न पहनी जाय तो दिगम्बर हो जाने का डर है। क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी को धोती बहुत कसकर पहननी पड़ती है। स्नान क्या है, एक प्रकार की कुश्ती है।

पुरी का रास्ता

पुरी को बङ्गाल-नागपुर रेल जाती है। इसके कुछ स्टेशन ई० आई० आर० और जी० आई० पी० आर० की शाखाओं से मिले हुए हैं। इसमें एक्सप्रेस और डाक गाड़ी का किराया अधिक लिया जाता है। लेकिन डिब्बे न तो साफ़ हैं और न अच्छे। चलती गाड़ी में कहीं कहीं टिकट देखा जाता है सही, पर बिना टिकट चलनेवाले निर्धन यात्री भी कम नहीं चलते। कभी कभी तो उनका जत्था एक ही डिब्बे में दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह का होता है। कोई चेक करनेवाला उन्हें धमका कर चला जाता है, कोई उतार देता है, एक आध कुछ भी नहीं बोलता। इस ढँग के यात्री बड़े साहसी होते हैं। वे पूरी बेंच पर आराम से सो जाते हैं। टिकट लेकर यात्रा करनेवाला भले ही एक ओर सिकुड़ कर बैठा रहे। लेखक पुरी से वापस आ रहा था। एक्सप्रेस के लिए १।) अधिक दिया था, जिसकी अलग रसीद मिली थी। रास्ते में टिकट चेक करनेवाले ने कहा कि यह तो पैसेंजर का टिकट है। रसीद देखने पर उसे सन्तोष हुआ; किन्तु पास ही ८-१० बुढ़िया बंगालिनें बिना टिकट की बैठी हुई थीं। चेक करनेवाला साहबी पोशाक में था। उसने उनसे कड़क कर बातचीत की तो बेचारी सिटपिटा गईं। उसने कहा कि अगले स्टेशन पर उतर जाना। वे इसके लिए तैयार होने लगीं कि गाड़ी की गति मंद हो गई। गाड़ी स्टेशन से पहले ही रुक गई। वे उतरने लगीं तो उसने कहा कि ठहरो, अभी स्टेशन नहीं है। स्टेशन आने पर वह तो उतर कर चला गया और वृद्धायें चुपचाप यात्रा करती रहीं। कुछ अन्धे यात्री भी बिना टिकट पुरी को जाते हैं। इन्हें दर्शन तो होने से रहे, फिर पता नहीं कि ये क्यों इतनी दूर की दौड़ लगाते हैं। इस श्रेणी के यात्री पुरी पहुँच कर यात्रियों से भिक्षा माँगना प्रारम्भ कर देते हैं। कपड़े पहने हैं, मुद्रा-तिलक लगा है, पान-तमाखू खा रहे हैं और भिक्षा की जीविका है। अधिकांश भिक्षुक उड़िया और बंगाली होते हैं।

पुरी में भीख माँगनेवाले तरह-तरह के ढोंग बनाकर माँगते हैं। जो लूला-लँगड़ा नहीं है वह हाथ में या पैर में एक काला-सा गन्दा चिथड़ा लपेट कर टाट पर, सड़क के किनारे, लेट जाता है और कपड़े से मुँह छिपाकर रोने का अभिनय करने लगता है। सामने फैले हुए कपड़े पर पैसा, पाई या चावल के दाने पड़े रहते हैं। यात्रियों का झुंड निकल जाने पर वह उठकर बैठ जाता और साथियों से गपशप करने लगता है। कोई अपनी देह को बालू में गाड़ लेता और कन्धे के ऊपर, लाग से, हाँड़ी में आग भर कर रख लेता है। कोई कीलों पर बैठा या लेटा रहता, कोई पाँच पैरों की बछिया दिखाकर माँगता और कोई यों ही तिलक-छापा लगाकर माँगता है। स्त्रियाँ और बच्चे तो यात्री का पीछा दूर तक करते हैं। कोई हलवाई की दूकान पर खाने को बैठता है तो उसे एक न एक भिक्षुक आ घेरता है जिससे दूकानदार ही रक्षा करता है। माँगनेवालों की कुछ कुछ ऐसी ही अधिकता गढ़वाल की यात्रा-लाइन में भी है। पुरी में मन्दिर के हाथियों से भी महावत, सूँड़ फैलवाकर, पैसे मँगवाता है। दो हाथी के बच्चे मन्दिर को कहीं से भेंट में मिल गये हैं। उन बेचारों से भीख मँगवाई जाती है। समुद्रस्नान करने के लिए यात्री जिस रास्ते से जाता है वहाँ मँगतों की जमात मिलती है और जब जगन्नाथजी गुंडिचाबाड़ी (जनकपुर) जाते हैं तब एक हफ़्ते के लिए भिक्षुक इस ओर की सड़क पर आ बैठते हैं।

पुरी के मठ

पुरी में बहुत-से मठ हैं। इनमें से किसी किसी के पास ख़ासी सम्पत्ति है। शङ्कराचार्यजी का गोवर्द्धन मठ स्वर्गद्वार रोड से ज़रा हटकर समुद्र के पास है। इसकी आय अधिक नहीं है। यह संन्यासियों का है। इसके अधिपति प्रकाण्ड विद्वान् होते आये हैं। सबसे मालदार एम्बार मठ है। एम्बार मद्रासी शब्द है। उक्त नामधारी किसी रामानुज सम्प्रदायी आचार्य के नाम पर मठ का यह नाम पड़ा। मुद्दत से इस मठ की गद्दी के महन्त बुन्देलखण्डी ब्राह्मण होते आ रहे हैं। वे अपने किसी रिश्तेदार को ही गद्दी सौंप जाते हैं। वर्तमान महन्त का नाम स्वामी गदाधर रामानुजदास है। इस समय इनकी अवस्था ६० वर्ष के लगभग होगी। लेखक जब पहली यात्रा में इनसे मिला था तब ये स्वस्थ और सुडौल थे। अब रोग और अवस्था ने इनको कुछ शिथिल और पीवर कर दिया है। बहुत अच्छी हिन्दी बोलते हैं। मठ का काम-काज उड़िया लिपि और भाषा में होता है, जिसको महन्तजी धड़ल्ले से लिखते और बोलते हैं। गद्दी की रक्षा के कारण ये सरकार-परस्त और कुछ प्रगति-विरोधी हैं। सुधारों को बिलकुल पसन्द नहीं करते। सुना है कि हरिजन-आन्दोलन से क्षुब्ध होकर इन्होंने मठ की संस्कृत-पाठशाला बन्द कर दी है। मठ के पास ख़ासी ज़मींदारी है। बहुत-से मकान हैं जिनका भाड़ा आता है। लेन-देन की आमदनी अलग है। इस मठ की सालाना आमदनी ३॥ लाख के लगभग है। मठ में एक पुस्तकालय है। बिजली उत्पन्न करने के लिए अपना "डाइनमा" है। एक दवाख़ाना है जिसमें ग़रीबों को दवा दी जाती है। महन्तजी मिलनसार भी हैं। उनसे प्रस्ताव किया कि अपने मठ का एक इतिवृत्त तैयार करवा लीजिए तो हाँ जी कहकर रह गये। इनके उत्तराधिकारी होनहार सुने गये थे, पर उनका अकाल में ही देहान्त हो गया। महन्तजी के यहाँ कचहरी के अमलों और अन्य कर्मचारियों की आवभगत होती है, आख़िर मुक़दमेवाले को यह तो करना ही पड़ता है।

अन्य मठों के नाम गम्भीरा अथवा राधाकान्त मठ, टोटा गोपीनाथ का मठ, हरिदास स्वामी का मठ, जगन्नाथ वल्लभ मठ, रामदास मठ, दक्षिण पार्श्व और उत्तर पार्श्व मठ आदि हैं। गम्भीरा में रहकर श्री गौराङ्ग महाप्रभु कीर्तन किया करते थे। उनकी कथरी, कमण्डलु और खड़ाऊँ आदि वस्तुएँ मठ में रक्खी हुई हैं। जगन्नाथ-वल्लभ मठ राय रामानन्द का स्थापित किया हुआ है। इसमें रहकर वे पुरी में गौराङ्ग महाप्रभु का सान्निध्य प्राप्त किया करते थे। इस मठ का प्रबन्ध एक कमिटी करती है। मठ की सालाना आमदनी १५ हज़ार रुपये के लगभग है। यह जगन्नाथजी के मन्दिर के अधीन है। दक्षिण पार्श्व, उत्तर पार्श्व मठ की सालाना आमदनी एक लाख रुपये के लगभग है।

मठों के महन्तों को विवाह करने का अधिकार नहीं है; परन्तु काञ्चन के संपर्क में रहने से कामिनी-समागम का विरोध कठिन होता है। फलतः कभी-कभी स्त्रियाँ महन्तों पर मुक़दमे तक चला दिया करती हैं। एक महन्त पर इस साल भी कचहरी में मुक़दमा चल रहा था। यों महन्तों में से किसी किसी को विवाह न करने पर भी विवाह के सुख-दुःख का अनुभव होता रहता है। जिन महन्तों के पास काफ़ी सम्पत्ति है वे चाहें तो देश का और धर्म का बहुत कुछ कार्य कर सकते हैं; किन्तु इसके लिए सदाचार और सद्बुद्धि अपेक्षित है। यदि वे देवोत्तर-सम्पत्ति बिल के विरोध का प्रपञ्च छोड़कर विधायक कार्य करने लग जायँ तो उनका भी भला हो और देश का भी। लेकिन उनकी नकेल न जाने किनके हाथ में है। वे यह समझकर घबराये हुए हैं कि नया क़ानून बन जाने से उनकी प्रभुता कम हो जायगी। आख़िर वे सम्पत्ति बढ़ाकर करेंगे क्या? क्या उनका कोई स्त्री-पुत्र बैठा है जिसकी उनको चिन्ता है!

पुरी की धर्मशालायें

पुरी में छोटी छोटी धर्मशालायें तो कई हैं, पर उनमें अधिक यात्री नहीं ठहर सकते। हाँ, ९ धर्मशालायें बड़ी बड़ी हैं। तीन का प्रबन्ध सरकार करती है; उनमें ठहरने के लिए यात्री को किराया भी देना पड़ता है। धर्मशाला में किराया देना पड़े तब तो वह सराय हो गई। ख़ैर, श्रीयुत देवीदत्त हजारीमल दुदवेवाला और श्रीयुत रामचन्द्र गोयनका की धर्मशालायें बहुत अच्छी हैं, खास हैं, सड़क पर हैं और मन्दिर के समीप हैं। दोनों में ट्यूब वेल लगे हैं जिससे पानी का सुबीता है। नहाने के लिए नल लगे हैं। पहली धर्मशाला में बिजली की रोशनी का भी प्रबन्ध है। इनमें सैकड़ों यात्री ठहर सकते हैं।

जगन्नाथजी का एक गीत

बस्ती में पहले पीने का पानी अच्छा नहीं मिलता था, लेकिन अब तो नल का प्रबन्ध है। रथयात्रा आदि मेले के समय हर वक्त पानी मिलता है। लेकिन शहर साफ़ नहीं है। सफ़ाई का महकमा भी अच्छा काम नहीं करता।

लेखक बचपन में पुरी के सम्बन्ध में एक गीत सुना करता था। वह गीत पुरी में एक पुस्तिका में, किसी हाट में, छपा मिल गया। उसका कुछ अंश यह है—

ठाकुर भले विराजो जी, ओड़ीसा जगन्नाथपुरी में भले विराजो जी। कब से छोड़ी मथुरा नगरी कब से छोड़ी काशी। झारखण्ड में आय विराजे वृन्दावन के वासी॥...उड़िया माँगे खीचड़ी बंगाली माँगे भात। भक्त माँगे दर्शन महापरसाद॥ दाल राँधूँ भात राँधूँ, परवर की तरकारी। मीन मार के भोग लगावें अधम जाति बंगाली॥ गाँव गाँव में बाग़-बगीचा माली गली फुलवारी। घर घर देखो केला नरियल घर घर ठाकुरबाड़ी॥ चट्टी चट्टी बनिया लूटे, लूटे और फिरंगी। सिंह दरवाजे पण्डा लूटे यात्री भये उदासी॥ तीन हाथ की साड़ी पहरे ऊपर धरे किनारी। सास ससुर की लाज न राखें आधी पीठ उघारी॥ नीलचक्र पर ध्वजा विराजे, मस्तक सोहे हीरा। ठाकुर आगे दासी नाचे गावे दास कबीरा॥

यह गीत प्रसिद्ध महात्मा कबीरदास का नहीं जान पड़ता। यह रचना किसी मनमौजी यात्री की ही हो सकती है। उसके ज़माने में जो हाल रहा होगा, उसका बयान उसने अपनी भाषा में, छन्द और लय की परवा छोड़कर कर दिया है। बहुत-सी बातें अब तक ज्यों की त्यों हैं। लेख को पढ़ने से पाठक इसका परिचय पा गये होंगे। साधारण उड़िया और छत्तीसगढ़ी स्त्रियों का पहनावा ऐसा होता है कि टाँग कुछ खुली रह सकती है। बलरामजी के मस्तक में, विशिष्ट समयों पर, हीरा चमचमाता रहता है।

उड़िया और बंगालियों के भोजन का हाल स्पष्ट ही है और पण्डाजी! उनका तो सदा से एक-सा व्यवहार रहा है।*

भुवनेश्वर

कटक और खुरदा जङ्क्शन के बीच में भुवनेश्वर स्टेशन है। भुवनेश्वर से पुरी, रेल के रास्ते, ३९ मील है। राजा राजेन्द्रलाल मित्र की राय में यह भुवनेश्वर ही प्रसिद्ध कलिङ्ग नगरी है। इसका प्राचीन नाम एकाम्रकानन है। पुरी जाने से पहले यात्री भुवनेश्वर में उतर पड़ता है। स्टेशन से कोई २ मील की दूरी पर भुवनेश्वर की बस्ती और मन्दिर हैं। बस्ती में एक बड़ा-सा तालाब है। घाट बँधे हुए हैं; किन्तु अब टूट फूट गये हैं। इस तालाब का नाम बिन्दुसरोवर है। यात्री इसमें स्नान करके भुवनेश्वर के दर्शन करने जाते हैं। मन्दिर बहुत पुराना है। उसकी मरम्मत के लिए पण्डे चन्दा माँगा करते हैं। उड़ीसा के राजा ययाति-केसरी, अपने राज्य-काल के अन्त समय में, राजधानी को जाजपुर से भुवनेश्वर ले गये थे। वहाँ उनकी २४ पीढ़ियों ने राज्य किया। कहा जाता है कि उड़ीसा से ययाति-केसरी ने ही बौद्धों को निकाला था। सातवीं शताब्दी में ययाति-केसरी के प्रपौत्र ललाटेन्दु-केसरी के राज्य-काल में यह मन्दिर बनकर तैयार हुआ था। मन्दिर पर पत्थर पर उत्कीर्ण अपूर्व काम है। ऐसी कारीगरी पुरी के मन्दिर में भी नहीं है। इस मन्दिर में भी पुरी के मन्दिर की तरह भोगमण्डप, नाटमन्दिर, जगमोहन और देवल (वह स्थान जहाँ मूर्ति स्थापित है) हैं। पूजाविधि और उत्सवों की व्यवस्था भी जगन्नाथ जी की ही तरह है। भुवनेश्वर महादेव का पूरा नाम त्रिभुवनेश्वर है। जहाँ पर मूर्ति स्थापित है वहाँ घोर अन्धकार रहता है। दिये के मन्द प्रकाश में दर्शन होते हैं। दिन दोपहर को मन्दिर के भीतर जाने पर यात्री को पहले तो अँधेरा ही जान पड़ता है। पीछे धीरे धीरे दर्शन होते हैं। भीतर सीढ़ियाँ उतर कर मूर्ति के पास पहुँचते हैं।

पार्वतीजी का अलग मन्दिर है। और भी बहुत-से

[भुवनेश्वर-मन्दिर]

देवताओं की मूर्तियाँ यत्र तत्र हैं जहाँ दक्षिणा चढ़ाने के लिए आग्रह किया जाता है।

भुवनेश्वर के प्रसाद को "पकाल" कहते हैं। भात, दही और मिठाई मिलाकर यह बनाया जाता है। बाहर दूकानें भी हैं। दुदवेवाले की धर्मशाला बन जाने से यात्रियों को बड़ा आराम मिलता है।

बस्ती से बाहर कोई ६ फर्लांग की दूरी पर राजा-रानी का मन्दिर है। अब यह खेतों के बीच में है। इस मन्दिर पर जो पत्थर की कारीगरी है उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। यह ख़ाली पड़ा रहता है। कोई देखनेवाला नहीं। न जाने कितने समय से इसकी यह दशा है।

राजा-रानी के मन्दिर से इसी ओर केदारेश्वर और सिद्धेश्वर का मन्दिर है। पास ही गौरीकुंड नामक तालाब है। चारों ओर घाट बँधे हुए हैं। मन्दिर के कोने पर एक छोटा-सा कुण्ड है। इसका पानी बहुत अच्छा बतलाया जाता है। पूछने पर एक उड़िया पुजारी ने बतलाया कि हमें तो किसी विशेष गुण का पता नहीं; पर बङ्गाली लोग इसको बहुत प्रशंसा करते हैं। वे इसे अजीर्ण-सम्बन्धी रोगों

---

* इस लेख की सामग्री अनेक लोगों की पूछ-ताछ का फल है। रसायनाचार्य श्रीयुत चुन्नीलाल वसु, सी० आई० ई० की पुस्तक 'नीलाचल' से भी सहायता मिली है। इसके लिए सबको धन्यवाद।

की दवा मानते हैं। इसमें या तो गन्धक का या और किसी खनिज का मिश्रण है। दुबेजी ने पेंचदार लोटा देकर कह दिया था कि इसमें उक्त कुण्ड का जल भर लाना।

सुनते हैं कि भुवनेश्वर में किसी समय सवा लाख मन्दिर थे। इस समय जहाँ तहाँ मन्दिरों के भग्नावशेष दृष्टि-गोचर होते हैं। यह शैवों का प्रधान क्षेत्र रह चुका है। यहाँ का जलवायु अच्छा माना जाता है। इसके लिए लोग यहाँ पर महीनों रहते हैं। छोटी बस्ती होने से यहाँ शान्ति है। किसी प्रकार का भब्भड़ नहीं। लेखक यहाँ के लिए एक दिन, ८ बजे सबेरे की गाड़ी से, पुरी से गया था। दिन भर यात्रा की। भुवनेश्वर की बस्ती से ५ मील दूर पर स्थित खण्डगिरि और उदयगिरि की गुफायें देखने को पैदल गया और वहाँ से लौटकर बस्ती में आया। लौटते समय वर्षा होने लगी। उसी दशा में पैदल स्टेशन और वहाँ से रात के ९ बजे पुरी पहुँच गया। भुवनेश्वर स्टेशन से बस्ती में जाने को बैलगाड़ियाँ, घोड़ागाड़ियाँ और मोटरलारियाँ हैं। अधिक बैलगाड़ियाँ ही हैं और सस्ती हैं। दो आना सवारी में पहुँचा देती हैं।

भुवनेश्वर में, दुरवेवाले की धर्मशाला में कुछ बङ्गाली यात्री ठहरे हुए थे। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे उदयगिरि और खण्डगिरि जायँगे उस गाड़ी में बैठ कर जिसे मनुष्य खींचेंगे। वहाँ पर बैलगाड़ी का ही अधिक चलन है, घोड़ागाड़ियाँ तो दो-चार ही होंगी। लेखक ने उदयगिरि से लौटते समय देखा कि बैलगाड़ी को दो आदमी खींचे लिये जा रहे हैं। उसमें यात्री जी बैठे हुए हैं। उनकी भावना यह है कि उस गाड़ी में नहीं बैठना चाहिए जिसमें मूक पशु - बैल—जुते हुए हों। इसी से वे बोलते-चालते मनुष्य से पशु का काम लेते हैं। कोई अपाहिज या बीमार आदमी यदि मनुष्य की सवारी पर चढ़े तो एक बात भी है, लेकिन तन्दुरुस्त आदमी हँसता और पान चबाता हुआ मनुष्य की सवारी से काम ले—यह तो कुछ असङ्गत-सा जँचा। पर सवाल पेट भरने का है। पैसेवाला जो चाहे करा ले। हिन्दी-भाषी प्रान्तों में इस सवारी का चलन न हो, यही लेखक की कामना है।

साक्षीगोपाल

खुरदा रोड स्टेशन से आगे, पुरी की ओर, सत्यवादी गाँव में साक्षीगोपाल का मन्दिर है। यह स्थान पुरी से उत्तर में कोई १० मील पर है। स्टेशन का नाम साक्षीगोपाल है। मन्दिर स्टेशन के समीप ही है। गुप्त वृन्दावन नामक एक बग़ीचे में यह मन्दिर है। मन्दिर के सामने एक छोटा सा तालाब है। उसके बीच में छोटा सा मन्दिर है। साक्षीगोपाल को मालपुओं का और मिठाई का भोग लगता है। यहाँ बढ़िया केले मिलते हैं। यात्री लोग पुरी से घर जाते समय यहाँ उतरकर दर्शन करते हैं। पंडा का लिखा हुआ एक पुर्ज़ा वे साक्षीगोपाल को चढ़ाते हैं। उसमें लिखा रहता है कि ये पुरी की यात्रा कर आये हैं। विश्वास यह है कि गोपालजी साक्षी देंगे कि यह यात्री पुरी को गया था। लेखक तो अपनी पहली यात्रा में साक्षीगोपाल हो आया था। और वहाँ के स्टेशन-कर्मचारियों के उत्पीड़न को वह अभी तक नहीं भूला है। पास में टिकट रहने पर भी वे बाड़े में बन्द कर, कुछ वसूल किये बिना, प्लेटफार्म पर न जाने देने के लिए तुले हुए थे। पता नहीं, स्टेशनवालों की उस प्रवृत्ति में अब कहाँ तक सुधार हुआ है। पुरी में और भुवनेश्वर में तो ऐसी कोई घटना देखने को नहीं मिली। शायद इसका कारण मेले के समय पर अफ़सरों की निगरानी हो। हाँ, भुवनेश्वर में टिकट लेने के लिए कोई घंटे भर प्रतीक्षा अवश्य करनी पड़ी थी। गाड़ी कुछ लेट थी और टिकटवाला कहता था कि अगर गाड़ी में जगह होगी तो टिकट बेचा जायगा, नहीं तो नहीं। मालूम नहीं, उसकी बात कहाँ तक सच थी।
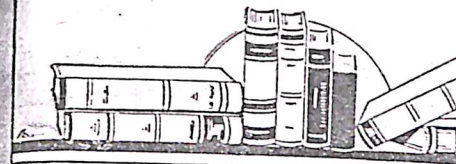
[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—सुमित्रानन्दन पन्त—लेखक, प्रोफ़ेसर नगेन्द्र एम० ए०, प्रकाशक, साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा हैं। मूल्य १) है।

२—सूर: एक अध्ययन—लेखक, श्रीयुत शिखरचन्द्र जैन साहित्य-रत्न, प्रकाशक, नरेन्द्र-साहित्य कुटीर, इन्दौर हैं मूल्य ॥) है।

३—चोरी—लेखक, श्रीयुत रघुनाथसिंह एम० ए०, एल-एल० बी०, प्रकाशक, हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी, ज्ञानवापी, काशी हैं। मूल्य १।) है।

४—दयानन्ददिग्विजय (सचित्र महाकाव्य)—लेखक, श्रीयुत मेधाव्रताचार्य, प्रकाशिका, श्रीमती सत्यव्रती स्नातिका 'भारती-समलंकृता', आर्यकन्या-महाविद्यालय, बड़ौदा हैं। मूल्य ३) है।

५—सदाचारी बालक—लेखक, श्रीयुत रामसुभग पाठक 'विशारद", प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-सदन, जहानाबाद (गया) हैं। मूल्य ॥।) है।

६-८—संत-कार्यालय प्रयाग की तीन पुस्तकें—

(१) शानदार मोती—अनुवादक, श्रीयुत दीवान वसधारी-लाल और मूल्य १=) है।

(२) आत्मिक आदर्श—लेखक, महर्षि शिवव्रतलाल एम० ए० और मूल्य ।।) है।

(३) सन्त—सम्पादक, महर्षि शिवव्रतलाल जी, और मूल्य ।।=) है।

९—निरतिवाद—प्रणेता, श्रीयुत दरबारीलाल सत्य-भक्त, प्रकाशक, श्रीयुत सूरजचन्द डांगी, सत्य-सन्देश-कार्यालय, वर्धा हैं। मूल्य ।=) है।

१०—नवधा भक्ति—लेखक, श्रीयुत जयदयाल गोयन्दका, प्रकाशक, गीताप्रेस, गोरखपुर हैं। मूल्य =) है।

११—जूजूत्सू वा जापानी कुश्ती—लेखक, स्वर्गीय प्रोफ़ेसर कालीदास माणिक, प्रकाशक, माणिककार्यालय काशी हैं। मूल्य =) है।

१२—कविवर भूधरदास और जैनशतक—लेखक श्रीयुत बाबू शिखरचन्दजी जैन साहित्यरत्न, प्रकाश[illegible] श्रीवीर सार्वजनिक वाचनालय, इन्दौर हैं।

१३—प्रणवीर क्षत्रिय अजीतसिंह और पति[illegible]व्रता राजबाला—लेखक, श्रीयुत खूबरामजी अग्रवा[illegible] प्रकाशक, श्री खूबराम अग्रवाल, बड़वा, भिवानी है[illegible] मूल्य =) है।

१४—हिन्दू महासभा ने क्या किया?—लेख[illegible] श्रीयुत माधव गोविन्द भट्टकमकर, प्रकाशक, प्रधान मंत्र[illegible] अखिल भारतीय हिन्दू-महासभा हैं। मूल्य)॥ है।

१५—श्री बजरंगविनती—प्रकाशक, श्री गौरीशङ्[illegible] देवड़ा, ७१, बड़तल्ला-स्ट्रीट, कलकत्ता हैं। मूल[illegible] 'भक्ति' है।

१६—चोटी-जनेऊ-कौंधनी—लेखक, मुंशी डो[illegible] लाल, प्रकाशक, श्री वासुदेव शर्मा, शान्त-सञ्चार[illegible] कम्पनी, चन्दौसी हैं। मूल्य ।) है।

१७—गीता-तत्त्व—प्रकाशक, श्रीयुत हरिप्रसा[illegible] कचहरी रोड, गया हैं।

१८-१९—सस्तुं साहित्यवर्धक कार्यालय, अह[illegible] मदावाद की दो पुस्तकें—

(१) आख्यानमाला प्रथम ग्रन्थ—लेखक, स्वर्गी[illegible] महात्मा अनन्तप्रसाद त्रिकमलाल श्री वैष्णव औ[illegible] मूल्य २।) है।

(२) श्री ज्ञानेश्वर महाराज अने महात्मा श्री एकनाथ—[illegible] अनुवादक, श्रीयुत त्र्यम्बकलाल मोहनलाल शुक्ल श्र[illegible] मूल्य १॥) है।

२०—श्री मानसरोवर कैलाशयात्रा—प्रकाश[illegible]

श्रीयुत मन्त्री श्री पञ्जाब प्रान्तीय कैलाशमानसरोवरक्षेत्र-कमेटी, २३ लोअर माल, लाहौर हैं।

२१—इण्डिया ऐण्ड दी फ़ार ईस्टर्न कानफ्लिक्ट—लेखक, श्रीयुत ए० एम० सहाय हैं।

२२—स्पिरिचुअल डोज़ेज़—लेखक, महात्मा शाहंशाह, प्रकाशक श्रीयुत के० एल० पुरी, रायल इंश्योरेंस अमीनाबाद, लखनऊ हैं।

१—शक्तिभाष्यम्—(ब्रह्मसूत्रस्य)—रचयिता, विद्वद्वर श्रीमान् पण्डित पंचानन तर्करत्न, प्रकाशक, श्री श्री जीवन्यायतीर्थ भट्टाचार्य, कालीघाट-समिति, कलकत्ता हैं। आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या ३२०, मूल्य १) है।

आस्तिक हिन्दुओं को वेद के बाद तीन ग्रन्थों का बड़ा भरोसा है—ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषद्। हिन्दू-धर्म में आज-कल जितने सम्प्रदाय हैं, उन सभी का साहित्य इन तीन स्तम्भों पर खड़ा है। परन्तु शाक्त-सम्प्रदाय अपने तंत्रों को ही लिये अलग बैठा रहा और उसने अपने मतवाद को दार्शनिक रूप देने का प्रयत्न अभी तक नहीं किया। पौराणिक शाक्त तो देवी-भागवत और दुर्गा-सप्तसती पर ही सन्तोष कर लेते थे, किन्तु तांत्रिक शाक्त वेद के मुक़ाबिले में तंत्रों का सहारा लेकर खड़े होते थे। प्रसन्नता की बात है कि काशी के प्रख्यात विद्वान् श्री पंचानन तर्करत्न जी ने इस महान् कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया है। आपने 'ब्रह्मसूत्रों' का एक अभिनव भाष्य लिखा है जो शाक्त-सम्प्रदायपरक है। भाष्यकार की विद्वत्ता, गूढ़ विचारशैली, परिपक्व मस्तिष्क का इस भाष्य में पूरा परिचय मिलता है। इस भाष्य के पढ़ने से यह मालूम होता है कि ब्रह्मसूत्रों का असली अभिप्राय—सच्चा अर्थ अभी तक छिपा हुआ था और वर्तमान भाष्यकार को ही अनेक शताब्दियों के बाद उनके असली रहस्य के खोलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। परमात्मा भाष्यकार को बल और दीर्घायु दे ताकि आप अपना यह महत्त्वपूर्ण भाष्य पूरा कर डालें, क्योंकि अभी यह भाष्य पूरा नहीं हुआ है।

अब हम यहाँ एक उदाहरण देकर यह दिखायेंगे कि भाष्यकार ने कितनी योग्यता से काम किया है—

'अक्षराधिकरण' का पहला सूत्र है—"अक्षरमम्बरान्तधृतेः १।३।१० इस सूत्र पर भाष्यकारों ने पहले यह प्रश्न उठाया है कि अक्षर का अर्थ—वर्ण, प्रधान (पदार्थ) और अथवा ब्रह्म है। अन्त में यह सिद्ध करके कि अक्षर से यहाँ ब्रह्म ही व्यक्त हो सकता है, भाष्यकारों का भाष्य समाप्त हो जाता है। किन्तु तर्करत्न महाशय ने अपने भाष्य में इतने भर से ही सन्तोष नहीं किया है। बृहदारण्यक उपनिषद् के जिस अंश के आधार पर इस सूत्र की शायद रचना हुई है और जिसका उद्धरण सभी भाष्यकारों ने किया है उसमें यह वाक्य आता है—"स होवाचैतद्वैतदक्षरं गार्गि इति।" इसको लेकर तर्करत्न जी आगे बढ़ते हैं और कहते हैं कि यहाँ श्लेष से दुर्गा का बीज इंगित है। वे इस प्रकार पदच्छेद करते हैं—"एतदु ऐ तत अक्षरम्।" एतदु को बहुव्रीहि-समास मानकर उसका अर्थ (आ + इतः दूः) किया "जिससे दूः की प्राप्ति हो वही" अक्षर ब्रह्म है। यह भाष्यकार की कोरी कल्पना नहीं है, क्योंकि "दुर्नामदेवता" का बृहदारण्यक उपनिषद् के आगे में ज़िक्र आया है—स वा एषा देवता दूर्नाम दूरꣳ ह्यस्या मृत्युर्दूरꣳ ह वा अस्मान् मृत्युर्भवति य एवं वेद (१-३-९) तन्त्र-शास्त्र में बीज को देवता का स्वरूप माना है। यह बात किसी से छिपी नहीं है। "प्रतिमादौ शिलाबुद्धिं मंत्रे चाक्षरभावनाम्। गुरौ मानुषबुद्धिं च कुर्वाणो नरकं व्रजेत्" अतएव मंत्र को देवता-रूप माननेवाले यदि मंत्र-द्योतक अक्षर को ब्रह्म कहें तो न्याय-युक्त है। वैदिक मतवाले भी सदा से ॐ को परमात्मा का रूप मानते आये हैं। इसी प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

भाष्यकार की अवस्था अब लगभग ८२ वर्ष की है। इस वृद्धावस्था में भी उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना करके जो पुरुषार्थ प्रकट किया है वह श्लाघ्योचित ही है। आपको महामाया ने स्वप्न में दर्शन देकर यह आज्ञा दी कि शक्ति-भाष्य की रचना करो। उसी आज्ञा के अनुसार आपने अपने भाष्य का एक खण्ड रचकर प्रकाशित किया है। ग्रन्थ-प्रकाशन का व्यय कलकत्ते के श्रीमद् गुरुपद हालदार ने दिया है। ग्रन्थकार अपने सिद्धान्तों के बड़े पक्के हैं और अपने भाष्य में उनका दृढ़ता के साथ समर्थन किया है। 'हिन्दू-विश्वविद्यालय के संस्कृत कालेज से आप इस कारण अलग हो गये कि मालवीय जी
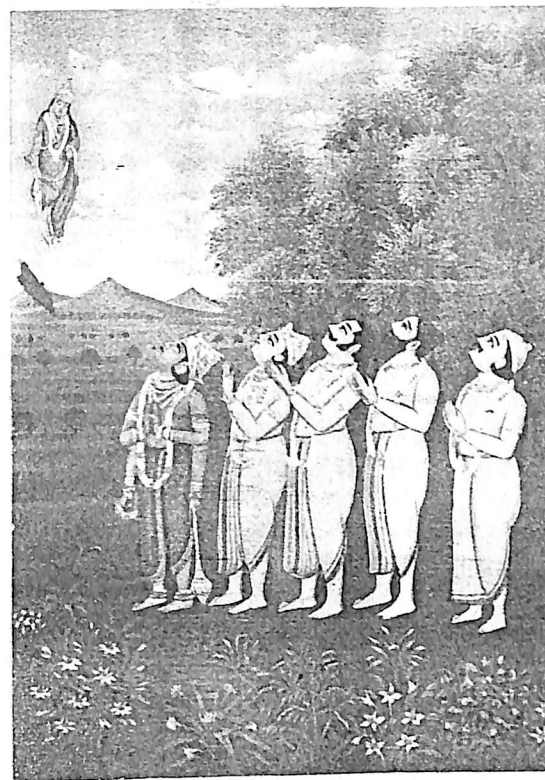
दुखित सुरों को जानके पहचान मान के।
सब जानती भी अम्बिका यों बोलि आन के॥
क्यों दीन से हो दीखते क्यों हो यहाँ खड़े।
क्या चाहते मुझसे कहो क्या दुःख हैं पड़े॥

से मतभेद हो गया था। गवर्नमेंट की दी हुई 'महामहोपाध्याय' की पदवी भी छोड़ दी। अब आप काशी-वास कर रहे हैं। क्या कोई शाक्त विद्वान् आपके साथ परिश्रम कर इस महान् प्रयत्न को पूरा कर देने का उद्योग करेगा ?

यदि ऐसा हो तो एक अनुपम ग्रन्थ की रचना हो जायगी। महामाया किसी को इतनी श्रद्धा और भक्ति दे कि वह इस काम में दत्तचित्त हो जाय।

अन्त में हम पूज्यपाद तर्करत्न जी को उनकी इस महान् रचना के लिए बधाई देते हैं और दर्शन-शास्त्र के प्रेमियों से अनुरोध करते हैं कि वे इस रचना का संग्रह कर इसका रसास्वादन करें।

प्रोफ़ेसर गोपाल स्वरूप भार्गव, एम० एस-सी०

२—**उदान**—अनुवादक, भिक्षु जगदीश काश्यप, एम० ए०; प्रकाशक, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस हैं। पृष्ठ-संख्या, १२७ और मूल्य एक रुपया है।

'उदान' महाबोधि-ग्रन्थ-माला का छठा ग्रन्थ है। मूल पाली से हिन्दी में इसका अनुवाद किया गया है। 'उदान' त्रिपिटक के खुद्दक निकाय विभाग के पन्द्रह ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ है। 'उदान' का अर्थ होता है 'प्रीति-वाक्य'। इस ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध के जीवन की ७९ लघु कथाओं तथा घटनाओं का संग्रह है, जिनके अन्त में तथागत के विवेकपूर्ण और मर्मस्पर्शी प्रवचन हैं। उदानों का अध्ययन करने से बौद्ध-तत्त्वज्ञान का तथा तात्कालिक सामाजिक जीवन का परिचय प्राप्त होता है।

पुस्तक का अनुवाद सरल हिन्दी में किया गया है। कुछ स्थलों पर वाक्य-विन्यास तथा अर्थ-विकास अस्पष्ट है। इसका कारण मूल-पाठ की अशुद्धियाँ हो सकता है। अनुवादक महोदय ने उस प्रकाशित सामग्री या हस्तलिपि का उल्लेख नहीं किया है, जिसके आधार पर यह अनुवाद किया गया है। अधो-टिप्पणियाँ देकर बौद्ध-संस्कृति-सम्बन्धी विशेष शब्दों का अर्थ-निरूपण किया गया है। हमारी सम्मति में पुस्तक के आरम्भ में बौद्ध संस्थाओं तथा दार्शनिक विचारों के द्योतक पारिभाषिक शब्दों के सरल और स्पष्ट अर्थ बतानेवाली सूची देना अधिक उपयुक्त होता। पुस्तक के अन्त में नाम-अनुक्रमणिका भी दी गई है। छपाई सादी तथा सुन्दर है। काग़ज़ अच्छा लगाया गया है। यदि पुस्तक का आवरण-पृष्ठ कड़े पुट्ठे का होता तो अच्छा होता।

बौद्ध-धर्म इस बीसवीं शताब्दी के बुद्धि-विज्ञान-युग में अधिक लोकप्रिय हो रहा है। राष्ट्रभाषा में बौद्ध-साहित्य का प्रकाशन कर महाबोधि-सभा दूरदर्शिता का कार्य कर रही है। अभी तक उसने सोलह पुस्तकें प्रकाशित की हैं।

यह ग्रन्थ धर्म, रोचकता तथा बौद्धकालीन कथा-साहित्य की दृष्टि से प्रत्येक साहित्य-प्रेमी तथा उदार धर्मानुरागी के द्वारा संग्रहणीय है।

—उत्तमचन्द्र श्रीवास्तव, एम० ए०

३—**मार्को पोलो की यात्रा-विवरण**—लेखक श्री रामनाथलाल सुमन, प्रकाशक, भारती-भण्डार, लीडर-प्रेस, इलाहाबाद हैं। मूल्य १) है।

हिन्दी में प्राचीन पर्यटकों के भ्रमण-वृत्तान्तों की कमी है। सम्भव है, यह हिन्दी-भाषा-भाषी जनता के पर्यटन प्रेम की कमी के कारण हो। संसार में सभी सम्पन्न साहित्यों में इस अंग की विपुलता और प्रचुरता है। संसार के उन यात्रियों में जिन्होंने अपने वृत्तान्त और यात्रा विवरण लिखकर भावी पीढ़ियों का कल्याण और मनोरंजन किया है, मार्को पोलो का विशेष और विख्यात स्थान है। कोलम्बस जैसे युगान्तरकारी खोजियों ने भी इस महा भ्रमणकर्ता की पुस्तक से प्रेरणा पाई थी। यह पुस्तक यद्यपि ६०० वर्ष पुरानी हो गई है, फिर भी बड़ी दिलचस्पी से पढ़ी जाती है। कारण है इसके विषय की ताज़गी। अनुवादक सुमन जी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। उन्होंने इस पुस्तक का सुन्दर अनुवाद किया है। मार्को पोलो ने एशिया की यात्रा की थी। उसी यात्रा का वर्णन इसमें विस्तार से किया गया है।

यह अनुक्रमण और परिचय, आरमीनिया का वृत्तान्त, ईरान का वृत्तान्त, अन्य देशों का हाल, चीन का वृत्तान्त, चंगेज़ ख़ाँ और तातारी, तूज़न का वर्णन, ख़ाँ आज़म का ग्रीष्मभवन, किबलाई ख़ाँ का दरबार, भारतीय चीन, ... का वर्णन, इन्डोचीन के अन्य नगर, जापान, चम्पा, ... द्वीप, भारतवर्ष का वर्णन, कोलम आदि देशों का हाल, मालाबार और गुजरात, खम्बात और सोमनाथ, ... और मेडागास्कर, अदनदेश, तुर्की-साम्राज्य का हाल ...

नाम के २३ अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक ज्ञान-पिपासु नवयुवक को यह रोचक पुस्तक पढ़कर अपने ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिए।

४—अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक नियम—लेखक, श्रीयुत प्रेमचन्द्र बी० ए० (कैन्टब), प्रकाशक, आक्सफ़ोर्ड-यूनिवरसिटी-प्रेस, बम्बई हैं। मूल्य १॥) है।

हिन्दी में अर्थशास्त्र की पुस्तकों की कमी है। हिन्दी में इस विषय के दो-चार ही उल्लेनीय लेखक हैं और उनकी कृतियों से अँगरेज़ी-भाषा न जाननेवाले पाठकों की तृप्ति नहीं होती है। अतएव इस विषय की ओर पुस्तकों के लिखे जाने की आवश्यकता है। यह पुस्तक ६ अध्यायों में विभक्त है। सम्पत्ति का उपभोग, सम्पत्ति की उत्पत्ति, मूल्य की समस्या, मुक्ता आदि सभी प्रधान और अन्य गौण विषयों पर इस पुस्तक में समुचित प्रकाश डाला गया है। अर्थशास्त्र की प्रारम्भिक बातों का सरल और सुबोध परिचय वैज्ञानिक ढंग के साथ इसमें दिया गया है। पुस्तक में आठ चित्र भी हैं, जिनसे इसकी उपयोगिता और सुबोधता बढ़ गई है।

हम लेखक से निवेदन करेंगे कि वे ऊँचे अर्थशास्त्र पर भी अपनी लेखनी उठावें। यह तो आरम्भिक विवेचना है, जो इन्टरमीडियेट स्टेन्डर्ड की कही जा सकती है।

५—कमबख़्ती की मार—लेखक, श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव, प्रकाशक, भारतीभण्डार, लीडर-प्रेस, प्रयाग हैं। मूल्य १) है।

यह हिन्दी के एक ख्यातनामा लेखक की रचना है। इसमें कमबख़्ती की मार, पते की बात, न कहनेवाली बात, तक़दीर की बात, बेपर की बात, जवानी के दिन, बुढ़ापे की रात, नाज़ुक बदन और एडिटर मियाँ की सूझ—ये ९ कहानियाँ संकलित हैं। कहानियाँ सभी सुरुचिपूर्ण और मनोरंजक हैं। कहानियों में हास्य के साथ 'विट' भी है, जो हास्य-रस की रचनाओं में कम मिलता है। श्रीवास्तव जी का हास्य-रस अपना विषय है। आशा है, कहानियों के पाठक इसका स्वागत करेंगे।

६—सोने का जाल—लेखक, श्रीयुत राजेश्वरप्रसाद सिंह, प्रकाशक, भारतीभण्डार, लीडर-प्रेस, इलाहाबाद हैं। मूल्य १) है।

लेखक की इसमें भ्रम, यह या वह, ज्ञान, स्वरक्षा, मिस्टर जान बोस, जुए का नशा, दुस्साहस, सोने का जाल, ख़ूनी और लालसा—ये १० कहानियाँ संकलित हैं। लेखक महोदय कहानी लिखने में सिद्धहस्त हैं और उनकी अपनी शैली है—कहने का अपना ढंग है और अपने ढंग की चरित्र-सृष्टि है। इस पुस्तक की कहानियों में दुस्साहस, सोने का जाल और ख़ूनी विशेष रूप से अच्छी हैं। कहानी के पाठकों को इसका संग्रह करना चाहिए।

७—मकरन्द—लेखक, श्रीयुत आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव, प्रकाशक, विश्वग्रन्थावली-कार्यालय, इलाहाबाद हैं। मूल्य १॥) है।

इस पुस्तक में लेखक की—और तब, मातृस्नेह, वहीं, परिवर्तन, चोर, बन्धन, चिन्ताभक्ति, कुवासना, अपरिचय, छल, वरपरीक्षा, भ्रम, सती का सौभाग्य आदि १५ कहानियाँ संकलित हैं। मौलिकता, कला और आकर्षक प्लाट की दृष्टि से 'और तब' कहानी सबमें श्रेष्ठ है। शेष कहानियाँ भी अपने ढंग की अच्छी कहानियाँ हैं। आरम्भ में उर्दू कहानियों के माने हुए अनुवादक मुंशी कन्हैयालाल जी की भूमिका है, जिसमें उन्होंने श्रीवास्तव जी की कहानियों की विशेषता दिखाई है।

८—अग्नि पूजक तथा अन्य कहानियाँ—लेखक, श्री केशवदेव शर्मा, प्रकाशक, भारतीभंडार, लीडर-प्रेस, प्रयाग हैं। मूल्य १) है।

प्रस्तुत पुस्तक में अँग्रेज़ी के कुछ सुन्दर प्रबन्ध काव्यों को कहानी का रूप प्रदान किया गया है। कार्लटेनसिन कृत इनौक आर्डन और डोरा, बाइरन कृत पैरीसीना, शेक्सपीयर कृत आथेलो, स्काट कृत लेडी आफ़ दि लेक और टामस मूर कृत फ़ायर वरशिपर्स नाम के काव्यों के आधार पर इसकी कहानियाँ लिखी गई हैं। छः कहानियों का यह संग्रह है। शर्मा जी 'भारत' के सम्पादक हैं। इन्होंने इन कहानियों को लिखकर कहानी के लेखकों के लिए एक नया दृष्टि-कोण रक्खा है। शर्मा जी हिन्दी के सुलेखक हैं। उनकी भाषा स्वच्छ, निखरी हुई और प्रवाहमय है और कथायें तो रोचक हैं हीं। पुस्तक संग्रहणीय है और अँगरेज़ी महाग्रन्थों का रसास्वादन करनेवाले पाठक भी कम से कम कथानक और उसमें पदानुवाद का आनन्द ले सकते हैं।

९—हमारी परिस्थिति—लेखक, सैयद क़ासिमअली

साहित्यालंकार, प्रकाशक, श्री बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, बनारस सिटी हैं। मूल्य १) है।

लेखक महोदय की २२ कहानियों का यह संग्रह है। जो लेखक की स्वाभाविक सरलता और सुरुचि की परिचायक हैं। पुस्तक बालकों के कोर्स के दृष्टिकोण से लिखी गई है। वह भी आठवें दर्जे से अधिक और ऊँची श्रेणीवाले छात्रों के लिए नहीं, वरन छोटे दर्जे के छात्रों के लिए। लेखक की विचारधारा नवीन युग की ओर बही है और एक अहिन्दू होने के नाते उनका राष्ट्रभाषा-प्रेम प्रशंसनीय है।

१०—रूसी साम्यवाद—लेखक, श्री गौरीशंकर मिश्र, मुद्रक और प्रकाशक, भारतवासी-प्रेस, इलाहाबाद हैं। मूल्य ।) है।

पुस्तक में रूसी साम्यवाद का जन्म, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद, रूसी साम्यवाद का रूप, साम्यवादी जादू, रूसी साम्यवाद की पोल, रूसी कंसशाही, साम्यवादी लोभ, साम्यवादी स्त्री पर बमबाज़ी, रूसी शाहीवाद और अन्नहीन शाही नाम के ११ अध्याय हैं। लिखने का ढंग रोचक है, मगर भाषा में लड़खड़ाहट है। साम्यवाद में दिलचस्पी रखनेवालों के लिए यह एक कम दाम की अच्छी और ज्ञानवर्धक पुस्तक है। पढ़ने में मन लगता है और बाद में रूस की और साम्यवाद की वास्तविक प्रगति का एकांगी दिग्दर्शन भी हो जाता है।

११—जवाहरलाल नेहरू के जीवन की एक झलक—लेखक, श्री शिवनारायण टंडन, प्रकाशक, श्री प्यारेलाल अग्रवाल, राष्ट्र-सेवक-संघ, कानपुर हैं। मूल्य =)॥ है।

देश-पूज्य और सर्वमान्य नेहरू जी के जीवन की बड़े ही रोचक ढंग से लिखी गई यह एक सुन्दर कथा है। पृष्ठ-संख्या १०४ और छपाई सफ़ाई टाइटिल पेज सब अच्छे हैं। भाषा में प्रवाह और शैली में दिलचस्पी है। टंडन जी हिन्दी के पुराने और सिद्धहस्त लेखक हैं और उनसे ऐसी ही अच्छी चीज़ की आशा की जाती है। यह पंडित जवाहरलाल की जीवनी ही नहीं, देश की वर्तमान जागृति और इन्क़िलाब का दास्तान है। वर्तमान राजनैतिक जीवन से प्रेम रखनेवालों को इसे पढ़ना चाहिए।

१२—तरुण राग—लेखक, श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद झा 'स्वतंत्र', प्रकाशक, नवयुग-साहित्यसदन, कलकत्ता हैं। मूल्य ॥) है।

एक उत्साही नवयुवक कवि की फुटकर रचनाओं का यह छोटा सा संग्रह है। भाषा साफ़ और सरल है। भाव ओजपूर्ण और उत्साहप्रद हैं। आशा है, यदि नवकवि को प्रोत्साहन मिलता गया तो भविष्य में और भी अच्छा लिख सकेंगे।

१३—ज्योतिर्मयी—लेखक श्री अनिरुद्ध, प्रकाशक ज्योतिष्पथ, झाँसी कैंट हैं। मूल्य ॥=) है।

कवि महोदय के व्रजभाषा के दोहों का यह संग्रह है। भाषा सरस और अलंकारमयी है। भाव भी कहीं कहीं चुटीले और व्यंजनापूर्ण हैं। पढ़कर आनन्द आता है। लेखक का प्रयत्न सराहनीय है।

१४—वीरवन्दन—लेखक श्री वीरभक्त, प्रकाशक, श्रीदीपचन्द्र बौठिया, मालवा हैं। मूल्य =) है।

विशुद्ध तुकबन्दी की यह पुस्तक उत्तम भावों से परिपूर्ण है। प्रभु की खोज, देश की परिस्थिति का चित्रण, महावीर भगवान (जैनधर्म के प्रवर्तक) का गुणगान आदि विषय हैं।

१५—मिस गौहर—सम्पादक, श्रीयुत हुनर, प्रकाशक, श्रीरामदास गुप्ता, सिनेमा-सीरीज़-आफ़िस, काशी है। मूल्य तीन आने।

मिस गौहर किसी समय की नामी और कुशल अभिनेत्री रह चुकी हैं। आज इधर प्रतिभाशाली अभिनेताओं और अभिनेत्रियों का जो दल आया है उसके सामने गौहर और बिलमोरिया के क़िस्म के अभिनेतागण धुँधले होते जा रहे हैं। अब लोग इस बात का अनुभव करने लग गये हैं कि उन दिनों के अभिनय में कोई "सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि" नहीं होती थी। मिस गौहर उसी ज़माने की एक मिटती-सी यादगार हैं अतएव उनकी यह जीवनी जो आकर्षक ढंग से लिखी गई है लोगों को मनोरंजनकारी होगी।

१६—अन्तर्वेदना—लेखक और प्रकाशक, श्री उग्रधारीसिंह मधुबनी स्टेट, दरभंगा हैं। मूल्य ।) है।

लेखक के गद्य काव्यों का यह संकलन है। भाषा मन्दगति और कुन्द है—भाव सुलझे हुए। 'अन्तर्वेदना' नाम तो है, परन्तु भीतर टीस का अभाव है। सम्भव है,

लेखक का यह पहला प्रयत्न हो और आगे वे अच्छा लिख सकें।

—अंचल

१७-१८—गुजराती के दो मासिकपत्र—(१) पुस्तकालय—बड़ौदा-राज्य से प्रकाशित होनेवाला गुजराती-भाषा का अपने विषय का यह एकमात्र पुराना मासिक है। इसके सम्पादक श्री नानाभाई चन्द्रशेखर दीवान जी तथा श्रीनाज़ुकलाल नन्दलाल चोकसी हैं। हमारे सामने सितम्बर १९३८ का अंक है। इस अंक के द्वारा हमें गुजराती-साहित्य की गतिविधि तथा पुस्तकालय-आन्दोलन की प्रगति के दर्शन होते हैं। इस प्रकार के पत्रों की अन्य भारतीय भाषाओं में बहुत कमी है।

प्रस्तुत अंक में 'वाचन नी समस्या' निबन्ध सुन्दर है। इसके अतिरिक्त तीन अन्य लघु लेख तथा तीन कवितायें हैं। 'पुस्तक-परिचय' स्तम्भ के अन्तर्गत नव प्रकाशित २६ गुजराती पुस्तकों की विशद समालोचनायें हैं। 'शुं वाच शो ?' के द्वारा सम्पादकों ने विभिन्न गुजराती मासिक पत्रों के पठनीय नवीन लेखों की सूची दी है। हिन्दी में पाठकों तथा लेखकों के हित की दृष्टि से पत्रों में इस प्रकार के सूचना-स्तम्भों की आवश्यकता है। प्रान्त के पुस्तकालयों के विवरण, राज्य-पुस्तकालय का आय-व्यय, हिसाब तथा पुस्तकालयों की प्रगति का मासिक इतिहास भी इस अंक में है। छपाई, सफ़ाई अच्छी और वार्षिक ३॥) है।

पता—व्यवस्थापक, 'पुस्तकालय', रावपुरा, बड़ौदा।

(२) पद्मिनी—गुजरात के नारी-समाज के सांस्कृतिक अभ्युत्थान के उद्देश्य से यह प्रकाशित की गई है। इसके सम्पादक श्रीवाडीलाल शाह तथा श्रीहृदयकान्त ओझा हैं। प्रस्तुत अंक सितम्बर १९३८ की प्रथम वर्ष की दशम संख्या है। आवरण-पृष्ठ पर गुजरात के कलाकार श्रीकनु देसाई जी द्वारा निर्मित एक सुन्दर भावपूर्ण चित्र है। गुजराती-साहित्य के नवयुग-सूत्रधार, गद्य-आचार्य स्वर्गीय कवि नर्मदाशंकर जी की १०५ वीं जयन्ती पर पत्रिका के मुखपृष्ठ पर उनकी जातीय कविता "जय जय गरवी गुजरात" का उद्धृत करना सामयिक है। इसके अतिरिक्त इस लघु पत्रिका में पाँच अन्य कवितायें हैं, जिनमें "हृदय ना राज ने" शीर्षक गरबा-गीत मनोहर है।

गद्य लेखों में तीन गल्पें, कवि नर्मद की संक्षिप्त जीवन-कथा तथा श्रीमती राजकुमारी अमृतकुँवरि, का अभिभाषण है। गल्पें साधारण कोटि की हैं। इसके अनेक स्तम्भों के अन्तर्गत स्वास्थ्य, समालोचना, नारी-जागरण, साहित्य, प्रगति आदि उपयोगी विषयों पर लघु लेख या संक्षिप्त टिप्पणियाँ हैं।

इस अंक में केवल एक महिला लेखिका हैं। गुजरात की अन्य महिला लेखिकाओं का सहयोग प्राप्त करने का उद्योग होना चाहिए। पता—पद्मिनी-कार्यालय, २४५६ भद्र, अहमदाबाद। वार्षिक मूल्य ४) है।

—उत्तमचन्द्र श्रीवास्तव एम० ए०

हिन्दी के विशेषाङ्क

१९—दैनिक वर्तमान, कानपुर—विजय-अंक।

'वर्तमान' का विजय-अंक सनेही जी की कविता और कौशिक जी, जिज्ञा जी और सन्तराम जी जैसे सुलेखकों की रचनाओं और बहुत-से चित्रों से सुशोभित है। पृष्ठ-संख्या ३८ और मूल्य दो आने है। अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष भी इस अंक में भिन्न भिन्न सज्जनों को सुन्दर उपाधियाँ बाँटी गई हैं।

२०—दैनिक शक्ति, लाहौर—विजय संस्करण। इसके कवर पर तिरंगा सुन्दर चित्र है। पृष्ठ-संख्या ४२ है। प्रोफ़ेसर रंगा, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल एम० एल० ए० आदि के लेख और हरिऔध जी जैसे सुकवियों की कविताओं से अंक विभूषित है। विशेषांक अच्छा और संग्रहणीय है। मूल्य सिर्फ़ डेढ़ आना है।

२१—जागृति, कलकत्ता—विजयांक।

यह विशेषांक १०० पृष्ठों का निकला है। कवर पर और भीतर एक एक तिरंगा चित्र है, जो सुन्दर और कलात्मक हैं। श्रीशिवदेव उपाध्याय श्रीशंकरदयालु श्रीवास्तव श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी शास्त्राचार्य, श्रीमाहेश्वरीसिंह महेश, श्रीगंगाप्रसाद उपाध्याय आदि के लेख और हरिऔध जी आदि कवियों की कवितायें हैं। अंक काफ़ी अच्छा है—सजावट और पाठ्य सामग्री दोनों की दृष्टि से। मूल्य सिर्फ़ ≡) है।

२२—हिन्दी-मिलाप (दुर्गा पूजा अंक),—लाहौर।

'हिन्दी-मिलाप' ने पूजा-अंक सुन्दर निकाला है। सुन्दर आवरण पृष्ठ, ३ तिरंगे चित्र तथा अनेक एकरंगे

चित्र हैं। श्री काका कालेलकर, सेठ गोविन्ददास एम० एल० ए०, प्रोफ़ेसर रंगा, श्री नरदेव शास्त्री आदि सुलेखकों के लेख और श्री हरिऔध, श्री रामकुमार वर्मा, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि सुकवियों की कविताओं से अंक विभूषित है। पृष्ठ-संख्या १०४ और मूल्य चार आने हैं।

२३—लोकमान्य, कलकत्ता—'लोकमान्य' ने पूजा के पुनीत अवसर पर अपना ५४ पृष्ठ का विशेषाङ्क निकाला है। बहुत-से विभिन्न विषयों पर कुशल लेखकों-द्वारा लिखे गये लेख तथा एकरंगे चित्र हैं। अंक सुन्दर है। कहानियाँ और कवितायें साधारण हैं।

२४—विजय—रामराज्य अंक।

मुरादाबाद के विजय ने रामराज्य अंक निकालकर पूजा के अवसर पर निकलनेवाले विशेषांकों में एक नये प्रकार का नामकरण किया है। राम का एक तिरंगा चित्र और कई एकरंगे चित्र हैं। पृष्ठ-संख्या २१ और लेखों का चयन साधारण है।

२५—प्रताप विजयांक कानपुर—

'प्रताप' ने भी अच्छा विशेषांक निकाला है। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल, श्री आनन्दमोहन आदि के लेख, श्रीकृष्णानन्द गुप्त आदि की कहानियाँ सुन्दर हैं। नवीन जी की कविता लम्बी और उनकी अन्य रचनाओं जैसी ही है। अंक सादा और पठनीय है।

२६—दैनिक विश्वमित्र कलकत्ता विजयांक—विश्वमित्र का भी विजयांक सुन्दर निकला है। श्री रामनाथ सुमन, श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र एम० ए०, बी० एल०, श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल, आदि के लेख, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्री ऊषादेवी मित्रा आदि की कहानियाँ और श्री आरसीप्रसादसिंह आदि की कवितायें अंक की सौन्दर्य-वृद्धि करती हैं। कहानियाँ सचित्र हैं, व्यंग चित्रों और सादे एकरंगे चित्रों की संख्या अधिक है। अंक संग्रहणीय है।

२७—'**मधूलिका**'—लेखक श्रीयुत रामेश्वर शुक्ल, एम० ए०, 'अंचल', प्रकाशक, साधना-मन्दिर, प्रयाग हैं। मूल्य २) है।

यह 'अंचल' जी की कविताओं का संग्रह है। अंचल जी हिंदी के उद्दीयमान कवियों में हैं। इसकी 'प्रवेश-पंक्तियों' में लिखा है कि अंचल जी हिन्दी के उठते हुए कवियों में सर्वोच्च हैं।

प्रस्तुत संकलन की कविताओं में आद्योपांत एक संबंध है, वे एक दूसरे से जैसे एक सूत्र के साथ बँधी हुई हैं, मुक्त गीतों की तरह बिखरी हुई नहीं। 'अंचल' जी की कविता की प्रवृत्ति संसारी तथा अवसानात्मक है। वे जीवन के उच्च लक्ष्यों और आदर्शों की ओर संकेत नहीं करते हैं। 'तृष्णा' शब्द का हर दूसरे-तीसरे छंद में प्रयोग हुआ है। 'आत्म-प्रलय', 'अंतर्गीत', 'आत्म-दाह', 'अंतर्ध्वनि' आदि कविताओं का 'अंतर' तथा 'आत्मा' भौतिक हैं। अंचल जी कहते हैं :—

"सर्वनाश फूत्कार कर उठा दुर्दिन की आँधी आई।
पीड़ित मानव ने जघन्य अंधे की सत्ता ठुकराई॥"

परन्तु अंचल जी शाश्वत भूख से ही क्रुद्ध हैं। वे कहते हैं—

"जल जाती है भरी जवानी एक भयङ्कर सपने-सी।
बुझ चलता यह रूप, न बुझती भूख-भूख सत्यानाशी॥

हाँ, मज़दूरों के दुःख-कष्ट निम्न पंक्तियों में मार्मिक चोट पहुँचाते हैं—

"किन्तु कहाँ वह उदर भरा रह पीता है सुख से दो दिन।
पीसा करते हैं पिशाच दे रोटी के टुकड़े गिन गिन॥

'अंचल' जी कविता के सम्बन्ध में कहते हैं—

"अरे कितनी घातक कविता है।"

जीवन और प्रेम के प्रति कवि का रुख़ देखिए—

"यह जीवन तो एक पाप है
अभिशापों की छाया"।

निज अभीष्ट एवं लक्ष्य की ओर कवि की उदासीनता देखिए—

"मंज़िल का क्या सोच स्वयं वह आधा मिल लेगी हमसे।
सागर स्वयं चले आयेंगे लख हमको बिलकुल प्यासे"॥

'मेरे भोले साक़ी', 'टूटते हुए तारे के प्रति', 'सखी' आदि कवितायें भावपूर्ण हैं। रचनाओं में छन्दोदोष खटकते हैं। 'प्रेम से लथपथ', 'लपझप करता', 'मलय पवन', 'प्रीति-तराने' आदि कानों को खटकते हैं। 'मधूलिका' और 'मधुंमाने' शब्द 'क्लिष्ट' हैं। संग्रह के प्रारम्भ में तालिका और पृष्ठों पर संख्या नहीं दी गई है।

—कान्तिचन्द्र सौनरिक्स।

भारत में लाख का व्यवसाय

ले०, श्रीयुत आत्मानन्द मिश्र, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०, विशारद

संसार भर में लाख की जितनी खपत होती है उसका नब्बे प्रतिशत भारतवर्ष से जाता है। यहाँ लगभग आठ-दस लाख मन लाख प्रतिवर्ष पैदा होती है, जिससे हमारा देश ढाई करोड़ रुपये से अधिक कमा लेता है। छोटानागपुर, उड़ीसा, मध्य-प्रान्त, बंगाल, संयुक्त-प्रान्त के कुछ भागों, आसाम तथा वर्मा में लाख की खेती होती है। भारतवर्ष की कुल पैदावार का पचास प्रतिशत भाग छोटा-नागपुर देता है। इसके अतिरिक्त लङ्का, जावा, मलाया, इण्डोचीन तथा स्याम में भी थोड़ी-बहुत लाख पैदा होती है, जिसका अधिकांश चपड़ा बनाने के लिए भारत भेजा जाता है। आजकल भारतीय लाख के सबसे बड़े ग्राहक अमेरिका तथा योरप हैं। जापान तथा रूस ने भी भारत से लाख मँगाना आरम्भ कर दिया है।

लाख से दो मुख्य पदार्थ निकलते हैं—एक रंग और दूसरा राल। पहले इसके रंग का व्यवसाय होता था। परन्तु अनीलीन रंगों की खोज होने पर इसका बाज़ार ठण्डा पड़ गया। तब तक राल का उपयोग करना भी ढूँढ़ निकाला गया। आजकल लाख के व्यापार में राल ही मुख्य पदार्थ है। लाख बहुत-सी चीज़ों के बनाने के काम में आती है। संसार में उत्पन्न होनेवाली कुछ लाख का ३४ से ४० प्रतिशत भाग ग्रामोफोन के रिकार्ड बनाने के काम में आता है। १५ से २० प्रतिशत तक बिजली के पृथक्करण में, १५ प्रतिशत रंग और वार्निश बनाने में, १० प्रतिशत [illegible] को सख्त करने के काम में, ५ प्रतिशत मोहर लगाने के चपड़ा बनाने में तथा शेष फोटोग्राफी, अस्त्र-शस्त्र, [illegible], चूड़ियाँ तथा खिलौने बनाने के काम में आती है।

लाख का कीड़ा

प्राकृतिक [illegible] के पदार्थों में से लाख इस बात में भिन्न है कि यह [illegible] कीड़े के शरीर से निकलती है। यह कीड़ा

[इण्डियन लैक रिसर्च इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर डाक्टर एच० के० सेन, एम० ए०, पी० आर० एस०, डी० आई० सी०, डी० एस० सी०]

लम्बाई में आध मिलीमीटर से भी छोटा होता है। प्रतिवर्ष लगभग चौदह पद्म कीड़े जन्म लेकर संसार के लिए साठ सत्तर हज़ार टन लाख पैदा करते हैं। इनमें नर लगभग तीस प्रतिशत होते हैं, जो लाख उत्पन्न करने में कोई विशेष भाग नहीं लेते। लाख उत्पन्न करनेवाली मादा ही होती है।

लाख के कीड़े को वैज्ञानिक लोग 'लैकसिफर लैका' कहते हैं। यह सैकड़ों की संख्या में पैदा होता है और जन्म लेते ही इसमें रेंगने की शक्ति आ जाती है। यह पीपल, पलाश, कुसुम, बेर, खैर तथा घोट आदि वृक्षों के रस को पीकर जीवित रहता है। ये वृक्ष 'लैक होस्ट' कहलाते हैं। नर कीड़ा मादा को गर्भित करके मर जाता है। अंडे देने के समय मादा अपने छत्ते में सिकुड़कर बैठ जाती है और छत्ते के रिक्त स्थान में अंडे आ जाते हैं। बड़े होने पर कीड़े एक
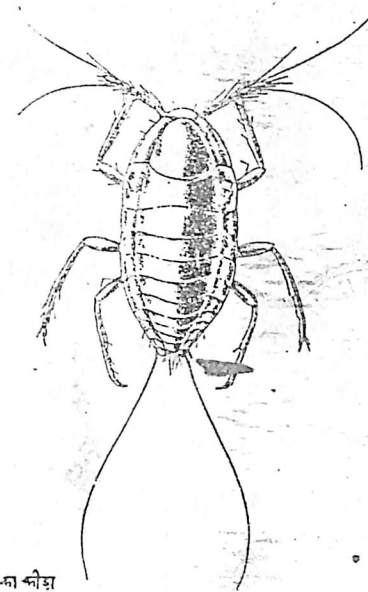
लाख का कीड़ा

[छि]द्र से बाहर निकल कर पेड़ों की नई टहनियों पर जमा हो [ज]ाते हैं। वे अपने मुँह को ऊपर की छाल में घुसेड़ कर [पे]ड़ की रस ले जानेवाली नसों तक पहुँच जाते हैं। वहाँ [वे] रस-पान करके अपना पोषण करते रहते हैं। कुछ और [बड़े] होने पर इन कीड़ों के शरीर से एक रालदार वस्तु [नि]कलकर इनके चारों ओर एकत्र हुआ करती है। इसी [से] इनके रहने का छत्ता बन जाता है। इन कीड़ों के छत्ते [ब]ढ़ने पर एक-दूसरे से मिल जाते हैं और वृक्ष की शाखा [क]ो आच्छादित कर लेते हैं। यह रालदार वस्तु ही [ल]ाख है।

अधिक से अधिक लाख पैदा करने के लिए पेड़ों को [त]राश देते हैं ताकि उनमें बहुत सी हरी शाखायें निकल आयें। इन नई शाखाओं में उन टहनियों को बाँध देते हैं [ज]िनमें लगे लाख के छत्ते से नये कीड़े निकलनेवाले होते [है]ं। इस प्रकार से एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष में लाख की [क़]लम लगा दी जाती है। जब शाखायें लाख से खूब लद [ज]ाती हैं और उनमें से नये कीड़ों के निकलने की सम्भावना [ह]ोती है तब उसे काट लेते हैं। फिर उन्हें या तो क़लम लगाने के काम में लाते हैं या लाख खरोंचकर बेच लेते हैं। लाख की साल में चार फ़सलें होती हैं। कुसुम के अतिरिक्त अन्य वृक्षों पर लगाई हुई लाख जून-जुलाई और आक्टोबर-नवम्बर में पैदा होती हैं। इसमें पहली फ़सल बड़ी होती है, जो बैसाखी कहलाती है और दूसरी छोटी कातकी। कुसुम के वृक्ष से अथवा कुसुम की क़लम लगाकर दूसरे वृक्षों से दो बराबर फ़सलें जून-जुलाई और फ़रवरी-मार्च में होती हैं। इन्हें क्रमशः जेठवी और अगहनी कहते हैं।

लाख से चपड़ा बनाने की विधि

वृक्ष से काट लेने पर लाख को या तो बिना बच्चों के बाहर निकले ही काम में लाते हैं—ऐसी लाख को 'अरी' कहते हैं—या फिर बच्चों के निकल आने पर उसका प्रयोग करते हैं—इसे 'फुनकी' कहते हैं। लाख में रंग, कई प्रकार के मोम, अंडे की सफ़ेदी सदृश पदार्थ तथा राल होती है। कारख़ानों में इसे शुद्ध करने की तीन मुख्य अवस्थायें होती हैं। पहले लाख लकड़ियों से खँरोची जाती है। साधारण लाख को हाथ से ही अलग कर लेते हैं। परन्तु यदि यह कुसुम की लाख हुई तो इसे लकड़ी के सहित कल में डालकर पीस लेते हैं और फिर उसमें से लकड़ी बीनते अथवा अनाज की तरह उसाकर साफ़ कर लेते हैं। दूसरी अवस्था लाख में से लाल रंग तथा अन्य घुलनशील पदार्थ को अलग करना है। इसके लिए लाख को फिटकरी के घोल तथा स्वच्छ पानी से बार बार धोते हैं, जिससे कुल रंग अलग हो जाता है। फिर अन्य पदार्थों को अलग करने के लिए नमक का घोल मिलाकर इसे कल में डालकर घुमाते हैं, जिससे अन्य पदार्थ कल की तह में बैठ जाते हैं और लाख निकल आती है। इन सबके निकल जाने पर जो पदार्थ बचता है उसे 'सीडलैक' कहते हैं। कुछ सीडलैक बेच दिया जाता है, परन्तु अधिकांश चपड़ा बनाने के काम आता है। तीसरी अवस्था चपड़ा बनाने की है। इसमें सीडलैक को लम्बे वर्त्तुलाकार कपड़े के थैलों में जिनका व्यास दो इंच होता है, कोयले की आग पर गरम करते हैं। गरम करते समय थैलों को उमेठते हैं। उमेठने में दबाव पड़ने से तथा आग की गरमी से पिघली हुई राल कपड़े के छेदों से बाहर निकल आती है। पिघली राल और मोम को लोहे के चमचे से खूब मिलाते हैं। यदि बटन चपड़ा बनाना हुआ तो इस

[लाख धोई जा रही है]

पिघले पदार्थ को जस्ते की चद्दरों पर टपकाते हैं। यह गोल बटन के आकार में फैलकर जम जाती है। यह टिकिया व्यास में तीन इंच और मुटाई में पाव इंच की होती है। यदि चपड़े की चद्दर बनानी होती है तो पिघले पदार्थ को चीनी मिट्टी के गोल लम्बे नलों पर डालते हैं, जिनके अन्दर गरम पानी भरा रहता है। नल पर के चपड़े के टुकड़े को उठाकर चारों किनारों से खूब खींचते हैं, जिससे उसकी लम्बी पतली चद्दर बन जाती है। ठण्डी होने पर इसे बेचने के लिए छोटे छोटे टुकड़ों में तोड़ लेते हैं।

यद्यपि चपड़ा बनाने की यह रीति बहुत ही सरल तथा उपयुक्त सिद्ध हुई है, तथापि इसमें कुछ ऐसे अन्य अप्रधान पदार्थ बच जाते हैं जिनमें बहुत सा चपड़ा नष्ट हो जाता है। इन अन्य पदार्थों में मुख्य किरी, मलम्मा, तथा पसेवा हैं। किरी उसे कहते हैं जो कपड़े के थैले में राल के पिघलकर निकल जाने पर बचता है। मलम्मा सीडलैक से अलग किया हुआ धूल-सदृश पदार्थ होता है। पसेवा थैलों को सोडा के घोल के साथ उबालने से निकलता है। इन सबमें चपड़ा बहुत मात्रा में रहता है। परन्तु बाज़ार में ये सब बहुत कम दामों में बिकते हैं। अतएव समस्त चपड़ा न मिल सकने के कारण इस रीति से वांछित लाभ नहीं होता।
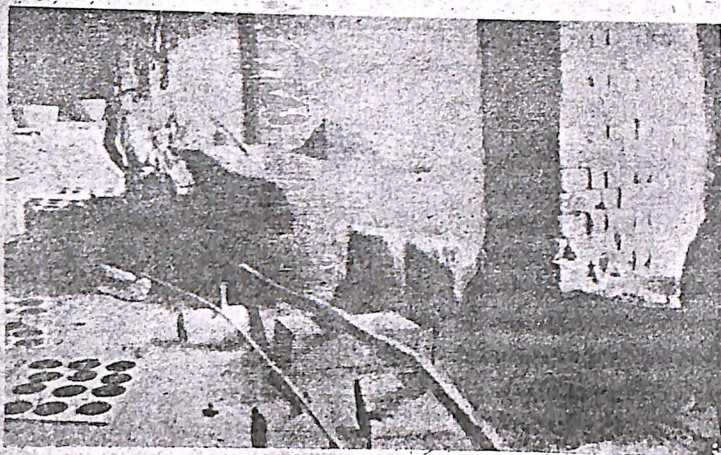
[शेलैक बनना। नीचे बाईं ओर बटन शेलैक रक्खी है।]

इंडियन लैक रिसर्च इन्स्टीट्यूट

सन् १९२५ में भारत सरकार ने लाख को अधिकाधिक उपयोगी बनाने के विचार से लाख-सम्बन्धी अनु-सन्धान के लिए राँची से पाँच मील दूर नामकुम में

[लाख लगा हुआ खैर का वृक्ष]

'इण्डियन लैक रिसर्च इन्स्टीट्यूट' खोला। यह लाख की उपज के स्थानों के मध्य में स्थित है। इसका मुख्य ध्येय लाख की खेती में उन्नति करके सर्वोत्तम लाख पैदा करना तथा उसे हानिकारक टिड्डियों से बचाना है। इसमें लाख के अन्य उपयोग तथा उससे मुक़ाबिला करनेवाली वस्तुओं को नीचा दिखाने के उपाय ढूँढ़े जाते हैं। इसके व्यय के लिए भारत-सरकार ने लाख पर दो से चार आना प्रति मन कर लगा दिया है, जिसका प्रबन्ध 'इण्डियन लैक सेस कमिटी' करती है। अन्वेषणशाला की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अगस्त सन् १९३६ में यह कर बढ़ा कर पाँच से सात आना तक प्रति मन कर दिया गया है।

आजकल लाख का अनुसन्धान-कार्य इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर डाक्टर हेमेन्द्र कुमार सेन की देख-रेख में हो रहा है। डाक्टर साहब ने लंदन तथा बर्लिन में उच्च शिक्षा पाई है। ये एक विद्वान् तथा अनुभवी वैज्ञानिक हैं।

इन्स्टीट्यूट में लाख-सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये गये हैं। लाख के कीड़े की रहन-सहन के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली गई है। वृक्षों के तराशने की विधि तथा समय पर भी बहुत कुछ खोज हुई है। जिन परिस्थितियों में लाख सबसे अधिक पैदा हो सकती है उनका पता लग जाने से अब लाख की खेती करनेवालों को बड़ी सुविधा हो गई है।

अन्य फ़सलों की तरह लाख को भी टिड्डी तथा पराश्रयी कीड़ों का बड़ा डर रहता है। वृक्ष में लगनेवाले कीड़े भी वृक्ष को निर्बल करके लाख को हानि पहुँचाते हैं। इन सबसे लगभग पैंतीस प्रतिशत लाख नष्ट हो जाती है। इन शत्रुओं को वश में करने के उपाय ढूँढ़े जा रहे हैं। ऐसे तो साधारण उपायों-द्वारा इन कीड़ों को वृक्ष से भगाकर अलग कर दिया जाता है। परन्तु अब एक नये कीड़े की खोज की गई है जो इन शत्रुओं का भी शत्रु है। यदि वे वृक्षों पर छोड़ दिये जायँ तो वे लाख को तो नष्ट न करेंगे, किन्तु लाख को नष्ट करनेवालों को नष्ट कर देंगे। पिछले वर्षों में लाख की खेती की वृद्धि के लिए एक नई योजना बनाई गई है। इसके अनुसार कामदारों को अच्छी से अच्छी लाख उपजाने के उपायों की शिक्षा दी जाती है। सीख जाने पर वे लाख के स्थानों में घूमकर किसानों को लाख की खेती की बातें बताते हैं और सफल खेती करने में उनकी सहायता करते हैं।

इसके अतिरिक्त अन्वेषणशाला में चपड़ा-लाख के अप्रधान पदार्थ तथा रंगों के विषय में भी खोज हो रही है। अच्छा सस्ता चपड़ा बनाने तथा अप्रधान पदार्थों को काम में लाने के उपाय ढूँढ़े जा रहे हैं। 'किरी' का उपयोग मूर्ति ढालने के काम में किया गया है। यदि इसमें कुछ और सफलता हुई तो भारतवर्ष के लिए एक नया व्यवसाय खुल जायगा। चपड़े को वार्निश बनाने के काम में लाते हैं, परन्तु उसकी वार्निश में एक अवगुण यह है कि वह पानी के आघात को नहीं सह सकती। अब उसको अन्य रसायनों में मिलाकर एक ऐसी वार्निश बनाई जा रही है

ज़िस पर पानी गिरने से सफ़ेद दाग़ न पड़ेंगे और जो फ्रेञ्च पालिश से अधिक सुन्दर होगी।

विदेशी लोग चाहते हैं कि लाख के लिए वे भारत पर निर्भर न रहें। वे ऐसी वस्तुओं की खोज में हैं जो लाख के स्थान पर काम में लाई जा सकें। उन लोगों ने बैके-लाइट तथा फिनाल फारमलडिहाइड नाम की चीज़ें बनाई हैं, जिनका बिजली के पृथक्करण तथा वार्निश में प्रयोग करते हैं। परन्तु ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड बनाने के लिए अभी तक कोई दूसरा पदार्थ नहीं मिल सका है। चपड़े को सिगरेट की डिबिया, पाउडर और साबुन के बक्स, आलपीन रखने की तश्तरी, छोटी कटोरियाँ तथा ग्लास बनाने के काम में भी लाते हैं। चपड़ा तथा उबले हुए तेल से एक प्रकार का लेप तैयार किया गया है, जो फ़र्श पर सीमेण्ट के स्थान पर रँगा जा सकता है। चपड़े का प्रयोग रबर की बनाई वस्तुओं जैसे जूते का तला, पायदान, मोटरटायर आदि में होने लगा है। यदि इस ओर चपड़ा लाभप्रद प्रमाणित हुआ तो लाख के व्यवसाय का भविष्य उज्ज्वल हो जायगा।

लाख-व्यवसाय-सम्बन्धी कुछ आँकड़े।

(१) आसाम तथा बर्मा को छोड़कर शेष भारतवर्ष में प्रत्येक फ़सल में पैदा होनेवाली लाख का ब्योरा मनों में—

वर्ष	१९३०	१९३१	१९३२	१९३३	१९३४	१९३५	१९३६
बैशाखी	७,९४,५००	५,९३,०००	५,५१,५००	४,९१,०००	६,३७,०००	६,३३,०००	७,५३,०००
जेठी	४६,०००	३०,५००	३७,०००	४५,०००	२३,०००	३०,०००	१,००,०००
कातिकी	२,७२,५००	१,२८,२५०	१,१४,०००	३,१८,२५०	२,१३,७५०	१,९०,५००	३,४६,२५०
अगहनी	१,५६,०००	९२,५००	१,५३,६००	१,२१,२५०	१,०३,५५०	२,०३,०००	३,८०,७५०
समष्टि	१२,६९,०००	८,४४,२५०	८,५६,०००	९,७५,५००	९,७५,८००	१०,५७,५००	१५,८०,०००

प्रतिवर्ष चपड़ा बनने के लिए भारत में अन्य देशों से आनेवाली तथा आसाम और बर्मा में पैदा होनेवाली लाख मनों में—

वर्ष	१९३०	१९३१	१९३२	१९३३	१९३४	१९३५	१९३६
आसाम (चारों फ़सलों में)	५५,०००	४५,०००	२८,५००	२२,०००	४५,०००	३६,०००	३१,०००
बर्मा (चारों फ़सलों में)	९२,०००	६३,२५०	३७,५००	२६,०००	५०,५००	५५,०००	×
बैंकाक से आनेवाली लाख	०	०	०	०	१०,३४०	१७,९००	२८,७००
सिंगापुर से आनेवाली लाख	४७,८००	१३,४००	३,४५०	१४,२००	१,७९,३००	६७,१००	१,१७,४००

(२) भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों में कहाँ और कितनी लाख पैदा होती है?

प्रान्त	लाख-उपजाऊ स्थान	प्रतिवर्ष पैदावार मन में
बिहार	राँची, डाल्टनगंज, मयूरभंज, सिरगुजा स्टेट, क्षत्र शेरघटी	३,१६,०००
मध्य-प्रान्त	दमोह, सागर, रायपुर, इटारसी	१,६०,०००
बंगाल	मालदा, मुर्शिदाबाद, नवाबगंज	८०,०००
बर्मा	उत्तरीय, मध्य, [illegible] तथा चिन्डविन के वनों में, शानस्टेट्स	५२,०००
आसाम	रांगखांग, मिकिर [illegible]लाघाट तथा गारो की पहाड़ियाँ, उसराव इलाक़ा	३७,०००

प्रान्त	लाख-उपजाऊ स्थान	प्रतिवर्ष पैदावार मन में
मध्य-प्रदेश	रीवाँ, सतनी-मैहर, ग्वालियर, धोलपुर, पूर्वीय राजपूताना	३६,०००
पंजाब	होशियारपुर, अम्बाला, कांगरा, गुरदासपुर, सियालकोट, रोहतक, रावलपिण्डी, अमृतसर	१०,०००
बम्बई-बड़ौदा	करांची, धारवार, बीजापुर	९,०००
संयुक्त-प्रान्त	गढ़वाल, सहारनपुर, मिर्ज़ापुर, मेरठ, बनारस, झाँसी	५,५००
उड़ीसा	गंगपुर स्टेट, सम्भल, कालीकोट	४,५००
सिंध	जमराव और नीरा के किनारे, जीरुक वन, हैदराबाद	४,०००
नैपाल	जंगलों में	२,०००
दक्षिण	हैदराबाद, वारंगल, आदिलाबाद, करीमनगर, मेडक	५००
भूपाल	जंगलों में	२००
राजपूताना, मदरास, भूटान, तिब्बत, बरार, कश्मीर, मैसूर, ट्रावनकोर बहुत कम मात्रा में		
कुल		११,१६,७०० मन

(३) बिना शुद्ध की हुई लाख का प्रत्येक फ़सल में विक्रयमूल्य प्रतिमन की दर से —

	वर्ष	१९३०	१९३१	[illegible]३२	१९३३	१९३४	१९३५	१९३६	१९३७
		रु०आ०पा०	रु०आ०पा०	रु०आ०पा०	रु०आ०पा०	रु०आ०पा०	रु०आ०पा०	रु०आ०पा०	रु०आ०पा०
जनवरी-फ़रवरी में	कुसुम की लाख	६१-०-०	२०) से २५)	१६-०-०	१३-०-०	३०) से ४५)	२९) से ३९)	१९-०-०	१५-०-०
	पलास की लाख	४३-०-०		१४-०-०					
अप्रैल-मई में	कुसुम की लाख	४५-०-०					२२-८-	१२-०-०	
	पलास की लाख	२४-०-०		७-८-०		२९-८-०			
	बेर की लाख	२७-०-०		६-८-०		३०-०-०			
जून-जुलाई में	कुसुम की लाख	२८) से ३६)	१५-०-०	१३-०-०	१२-०-०	४०-०-०	२६-०-०	१४) से १५)	१८) से २५)
	पलास की लाख	२०) से २२)	१२-०-०	११-०-०	११-०-०	२७-०-०	२२-०-०	१३-८-०	१२-०-०
	बेर की लाख	२०-०-०	१३-०-०	११-०-०	१०-०-०	३०-०-०	२२-८-	११-०-०	८-०-०
अक्टोबर-नवम्बर में	पलास की लाख	२६-०-०	१३-०-०	८-०-०	८-०-०	२४-०-०	२१-०-०	७-०-०	८-०-०
	बेर की लाख	२६-०-०	१३-०-०	११-०-०	८-०-०	२३-०-०	२१-०-०	५-०-०	

(४) एक एकड़ भूमि में लाख के उपजाने का व्यय —

	रु०आ०पा०
(१) जखेड़ा (पौधाघर) बनाना और बीज बोना	४–:–०
(२) खेत में गड्ढे खोदकर जखेड़े से उठाकर पेड़ लगाना	२७–०–०
(३) पाँस आदि	२–०–०
(४) निराई-सफ़ाई	४–०–०
(५) सींचने का पानी	६–०–०
कुल	४३–०–०

यह व्यय लगभग अंकों में दिया गया है। अधिक से अधिक यह ५०) हो सकता है, कारण कि पानी-पाँस का मूल्य कभी कभी घटबढ़ जाता है। एक बार जखेड़ा लगा लेने से फिर आगामी वर्षों के लिए उससे छुटकारा मिल जाता है, अतएव फिर व्यय केवल नीचे को तीन मदों में ही होता है, जो १२) है। इसमें खेत के चारों ओर खाई बनाने तथा चौकीदार रखने का व्यय सम्मिलित नहीं है।

एक मन पलास की लाख उपजाने तथा काटकर साफ़ करने में कुल ६) ख़र्च होता है। यदि आक्टोबर सन् १९३७ का भाव देखें जो ८) प्रतिमन है, तो दो रुपये प्रतिमन की बचत होती है। परन्तु इन दो रुपये में चौकीदारी, खाई, स्वयम् देख-भाल की मज़दूरी भी सम्मिलित है। अतएव लाभ बहुत अधिक नहीं होता।

सन् १९३५ में भारतवर्ष में लाख की कुल पैदावार ४०,२५० टन थी, जिसमें से ८५७ टन भारतवर्ष में ही खपी, शेष विदेश भेजी गई, जो १,५८,४६,३५५ रुपये की बिकी।

ज्वालामयि

लेखिका, श्रीमती सत्यवती शर्मा

ज्वाला से नेह लगाती हो?

हैं शलभों के पर झुलस रहे,
नयनों से दुख के नीर बहे।
इन आघातों को कौन सहे,
इस दुखगाथा को कौन कहे।
क्यों बनती तुम मदमाती हो?
ज्वाला से नेह लगाती हो?

सरिता की लोल हिलोरों में,
औ मलय समीर-झकोरों में।
शीतल शशि के शुचि डोरों में,
नयनों की सुन्दर कोरों में।
क्यों अनलताप बरसाती हो?
ज्वाला से नेह लगाती हो?

पत्तों में मृदु कम्पन होता,
सरसिज में है अलिनी सोती।
है ज्योत्स्ना सुमनों को धोती,
ओस बिखेर चुकी है मोती।
अंगार लिये क्यों आती हो?
ज्वाला से नेह लगाती हो?

मत जाओ ज्वाला में तपने,
न दो इन श्वासों को कलपने।
छोड़ो खेल पुराने अपने,
जीवन में हैं सुन्दर सपने।
क्यों इनको ठुकराती हो?
ज्वाला से नेह लगाती हो?

जाग्रत नारियाँ

ग्रामसुधार और महिला-समाज

लेखिका, कुमारी विलासप्रभा, एच० आफ़० एम० ए०, (फ़ाइनल)

ग्रामों के सुधार के सा[illegible]ज सारी समस्यायें पीछे छोड़ दी गई हैं। आज सरकार लाखों रुपया इस मद में उत्साह के साथ ख़र्च कर रही है। केवल इसलिए कि आज हम निश्चित रूप से समझ गये हैं कि हमारा भविष्य इसी कच्चे धागे में अटका हुआ है। ग्राम और ग्रामीणों को अन्धकार में रखकर अब तक दूसरे मालामाल होते रहे और हम आँखों के सामने अपना सर्वस्व लुटाते रहे हैं। गाँवों के भोले किसानों के कष्टों और उनके हितों की उपेक्षा करते रहने से ही हम किसी कार्य में सफल न हो सके। हमारे आन्दोलन कुछ आगे बढ़कर सदैव पीछे हटने के लिए विवश होते रहे। स्वदेशी-आन्दोलन को छेड़कर हम विदेशी माल को बन्द न कर सके, क्योंकि ग़रीब किसान को पहले से यह समझाने की आवश्यकता ही नहीं समझी गई थी कि अपनी रक्षा के लिए कभी कभी सस्ती चीज़ छोड़कर महँगी चीज़ ख़रीदना ही ठीक होता [illegible] अन्ततः हम उसे विदेशी वस्तु ख़रीदने से विरत न [illegible] सके। असहयोग-आन्दोलन को भी बीच में ही बन्द [illegible]ड़ा, क्योंकि किसान शिक्षित न थे। और इस अस्त्र [illegible] बनाई न किसानों के संयम पर ही निर्भर था। "[illegible] किसान उस देश की रीढ़ की हड्डी होते हैं"

[कुमारी विलासप्रभा एच० आफ़०, एम० ए० (फ़ाइनल)]

परिणाम पर पहुँचे हैं कि भारत के सर्वस्व किसान ही हैं। अब तक हम मूल न सींचकर वृक्ष की शाखा और पत्र ही सींचते रहे हैं।

आज के और अतीत के भारत में यही अन्तर है। आज हमारी चेतना का युग है। आज भारत आत्म-परिशोधन और शक्ति-संचय में लगा हुआ है। सैकड़ों वर्ष के संघर्ष—समुद्रमन्थन—के बाद निकले हुए इस अमृत का पानकर आज भला वह क्यों न अमर जीवन प्राप्त करे? और अवसरों की भाँति इस तथ्य का भी हमारे अग्रदूत—उस वृद्ध तपस्वी—ने ही सबसे पहले सेगाँव में बिस्तरा लगाकर संकेत किया, और आज हम यह

[कुमारी बी० आग़ा मुस्तफ़ाख़ाँ। आप श्रीमान् आग़ाख़ाँ की चचेरी बहन हैं।]

[कुमारी पुष्पारानी दास—ये चटगाँव के डाक्टर खास्तगीर के कन्या-विद्यालय की छात्रा हैं। इन्हें सीने की कला में अधिक निपुणता दिखलाने पर लेडी कार्माइकल एण्ड एलिज़ाबेथ कप मिला है।]

[...स्यों इन्दी के० मुरार्जी—इन्हें नाइटिंगेल स्कालरशिप ... ज्वाला से। अपनी शिक्षा पूरी करके इँगलैंड से लौट...]

और सचाई को आज हमने जितना समझा है, उतना पहले कभी नहीं समझा था। इसी से आज हम इस

समझने में समर्थ हैं कि हमारा कल्याण सचमुच ही भोले किसानों की सुख-समृद्धि में है।

इसमें सन्देह नहीं है कि ग्रामों की जैसी दयनीय दशा आज है, वैसी पहले कभी नहीं रही। इस विज्ञान के युग में भी वे सब प्रकार के साधनों से वंचित हैं। इस निर्दयता से उनका शोषण हुआ है कि हड्डी और चमड़े के अतिरिक्त उनके शरीर में कुछ नहीं बचा है। न तन पर कपड़ा, न पेट में भोजन। उनके पेट ही ख़ाली नहीं हैं, उनका हृदय और मस्तिष्क भी दिवालिया हो गया है। सब कुछ खोकर यदि उन्होंने कुछ पाया है तो वह यह कि आज उनकी आहों में जान है।

ऐसी परिस्थिति में शिक्षितवर्ग का कर्तव्य स्पष्ट है। वर्षों नहीं, सदियों की रटन के बाद आकाश से स्वाती के बिन्दु—अमृतबिन्दु—के तृषित चातक के मुख में पड़ने का अवसर आया है। ऊपर ही ऊपर इसको समेटकर

[श्रीमती जी० पी० मार्टीन मदरास के डिलारी ...ले में ये प्रथम श्रेणी की आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाई गई हैं।]

[स्वर्गीया श्रीमती शान्तिदेवी—आप अजमेर के श्री दत्तात्रेय काले की धर्मपत्नी थीं। सामाजिक कार्यों में आप विशेष उत्साह से भाग लेती रही हैं।]

यदि जीवन अमर न किया गया तो कौन कह सकता है कि हमें फिर कितना रोना पड़े और द्वार द्वार का भिखारी बनना पड़े। बड़ी से बड़ी संख्या में हमें देहातों में जाना चाहिए। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से हमें वहाँ के कष्टों का अध्ययन करना चाहिए और तुरन्त ही उनके दूर करने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

हमारे बहुत से कष्टों का मूल कारण निरक्षरता तथा दरिद्रता ही है। ये दोनों बातें आपस में इतनी सम्बन्धित हैं कि एक के आने पर दूसरी स्वयं ही आ जाती है। इसलिए इनका मूलोच्छेद सबसे पहले आवश्यक है। प्रसन्नता की बात है, इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयत्न हो रहे हैं।

हम भारतवासी स्वभावतः आशावादी होते हैं।

जीवन-रक्षा में इस गुण ने हमें लाभ भी अधिक पहुँचाया है, परन्तु कभी कभी इसकी झोंक में बने-बनाये खेल को भी हम बिगाड़ बैठते हैं। खेद है, ग्राम-सुधार की दिशा में भी हम वही कर रहे हैं। अब भी हम मूल को नहीं पकड़ पाये हैं। हमने ग्रामों में बड़े बड़े सुधारक नियुक्त किये हैं, जो उनके सुधार के उपाय कर रहे हैं। परन्तु वहाँ की स्त्रियों में चेतना लाने के लिए हमने अभी तक क्या किया है, उनको क्या कर्तव्य सुझाया है, कौन सा काम बाँटा है? स्त्रियों के सहयोग के बिना सफलता की कामना करना बालू में से तेल निकालना है। भारत के पारिवारिक जीवन में अब भी स्त्रियों का प्रभुत्व है। इसलिए ग्राम-सुधार के प्रत्येक मंडल में पुरुषों के साथ साथ ऐसी देशसेविकाओं की भी नियुक्ति होनी चाहिए जो तत्परता से वहाँ की स्त्रियों को सब प्रकार से शिक्षित कर सकें। किसी परिवार की एक स्त्री को पढ़ाना एवं परम्परागत रूढ़ियों को निकाल कर उसमें नये जीवन का संचार करना, मानो स्वतंत्रता के मूल को पाताल में गाड़ना है। परीक्षास्वरूप यदि हम किसी गाँव में सब स्त्रियों को शिक्षित कर दें तो कुछ ही दिनों में हम देखेंगे कि समूचा गाँव शिक्षित ही नहीं हो गया है, बल्कि उसका पूरा कायापलट हो गया है। स्त्रियाँ किसी बात को सहसा नहीं ग्रहण करती हैं और सहसा छोड़ती भी नहीं हैं। दूसरे रूप से यदि हम देखें तो पता लगेगा कि अन्धविश्वास, रूढ़ियों का मोह, निरक्षरता और बहुत कुछ अंश में देश की दरिद्रता स्त्रियों का आश्रय पाकर ही फल-फूल रही हैं, और अप्रत्यक्ष रूप से देश के पैरों में बेड़ी डालने का कारण बन रही हैं। परन्तु जिस घड़ी से इन दोनों से स्त्रियाँ मुक्त हो जायँगी, फिर कोई इन दोषों को आश्रय नहीं दे सकेगा। शिक्षित एवं सुलझी हुई स्त्रियों के प्रति एवं भाइयों को दुविधा की कोई शक्ति पददलित नहीं कर सकती। इसलिए कांग्रेसी सरकारें यदि ग्रामों का वास्तविक सुधार करना चाहती हैं और सर्वसाधारण की अनिवार्य शिक्षा को बहुत महँगी समझती हैं तो कम से कम सब अवस्थाओं की स्त्रियों की प्रारम्भिक शिक्षा को तो बिना विलम्ब अनिवार्य कर ही देना चाहिए।

स्त्रियों के सहयोग से सामाजिक एवं राजनैतिक नेताओं का एक ऐसा सम्मेलन करना चाहिए जिसमें एक ऐसी पंच-वर्षीय योजना तैयार की जाय जिसके द्वारा सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से परिवारों का आमूल सुधार हो सके। इस प्रकार जो परिवर्तन और सुधार होंगे वे अटल होंगे।

यहाँ स्त्रियों से भी एक प्रार्थना है। पुरुषों की अपेक्षा देश और जाति की सुख-समृद्धि का उत्तरदायित्व स्त्रियों पर ही अधिक है, क्योंकि मातृत्व के नाते उन्हें बिना किसी बाहरी प्रेरणा या सहायता के स्वयं अपना कर्त्तव्य निश्चित करना चाहिए। भारतीय स्त्रियाँ अपने कर्त्तव्य-पालन में किसी अवसर पर नहीं चूकी हैं, प्राणों की बाज़ी लगाने से भी नहीं झिझकी हैं। तब इस दिशा में इतनी देर और झिझक क्यों? कैसी भी सरकार हो, उसकी अपनी कठिनाइयाँ होती हैं—समस्यायें होती हैं, उसके कार्य में देर होनी सम्भव है। पारिवारिक जागृति और देश के रचनात्मक कार्य को तो स्त्रियों को खुद ही अपनाना चाहिए। यदि देश की प्रत्येक शिक्षित स्त्री यह प्रण कर ले कि साल भर में वह कम से कम पाँच अपठित बहनों को काम लायक पढ़ाने के अलावा उन्हें कुछ व्यावहारिक शिक्षा भी दे देगी और उन पाँच से इसी प्रकार औरों को शिक्षित करने की प्रतिज्ञा करा ले तो पाँच वर्ष के अन्दर देश का कुछ का कुछ रूप हो जाय। विभिन्न विश्वविद्यालयों के उत्साही विद्यार्थी तथा दूसरी सार्वजनिक संस्थायें इस ओर प्रयत्नशील हैं तब स्त्रियों का उपेक्षा के साथ हाथ पर हाथ रक्खे बैठी रहना कहाँ तक उचित है? इसलिए हमें भी महल्ले महल्ले ऐसे मंडल बनाने चाहिए, जहाँ ग़रीब बहनों की शिक्षा का प्रबन्ध हो। जो बहन बाहर नहीं जा सकतीं वे अपने सम्पर्क में आनेवाली साधारण कोटि की बहनों को घर में बैठाकर घंटा-आध घंटा नित्य पढ़ावें। नगरों की पढ़ी लिखी स्त्रियाँ जब देहात में इस संदेश को लेकर जायँगी तब हज़ारों का उद्धार हो जायगा।

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनी-आर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की किताबें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर २८, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २५ नवम्बर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २३ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा करके रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति का इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

बायें से दाहिने

१–उस सुन्दर लिपि का नाम जिसमें हिन्दी लिखी जाती है।
४–मनुष्य के लिए यह बनने का प्रयत्न करना स्वाभाविक है।
८–भारत में शक्कर के व्यवसाय की उन्नति तभी हो सकती है जब ऐसा गन्ना पैदा किया जाय।
९–........जीवन व्यतीत करनेवाले प्रायः बीमार पड़ते हैं।
१०–मनुष्य इसकी ओर आकृष्ट हो ही जाता है।
११–कोई ज़रूरी नहीं कि यह नशेबाज़ ही हो?
१३–या......अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारा। १५–श्रीकृष्ण जी के सखा।
१६–छोटा बोतल। १७–करील का पेड़।
१८–इस पहेली का उत्तर २५ तारीख़......पहुँच जाना चाहिए।
२०–प्राचीन ग्रन्थों में इसका बहुत वर्णन मिलता है।
२१–वर्षा-ऋतु में गाया जानेवाला एक राग।
२२–उम्र के साथ यह बढ़ता ही है।
२३–योरपीय युद्ध ऐसा ही जान पड़ता है।
२५–पृथ्वी।
२६–जिसके पास यह रहता है उसका लोग प्रायः आदर करते हैं।
२८–योरप के डिक्टेटर इसका अच्छा प्रयोग करते हैं।
३०–भारतवर्ष में कदाचित् ही कोई बड़ी नदी हो जिसके किनारे यह न दिखाई पड़े।
३१–कविता का आनन्द लेनेवाला।
३२–इसके बिना घर सूना लगता है।

ऊपर से नीचे

१–भीड़ भाड़ के समय भोजन इसी से मिलता है।
२–संपत्ति की व्यवस्था जो मरते समय मनुष्य करता है।
३–बैरगिया......जुलुम जोर तहँ बसत साधु के भेश चोर।
४–हनुमान। ५–इसका वियोग बहुत अखरता है।
६–सुन्दरी स्त्री। ७–प्रथा। ९–राज्य।
११–इसके लिए अक्सर लोग जान तक देते हुए देखे गये हैं।
१२–आधुनिक सभ्यता का यह एक बहुत बड़ा चिह्न माना जाता है।
१४–कुछ लोगों का ख़याल है कि प्राचीन ऋषि ऐसे मंत्र जानते थे।
१५–अच्छा कवि। १६–चेचक। १९–प्रेम।
२०–प्रातःकाल का यह बहुत ही आनन्ददायक प्रतीत होता है।
२१–बीच का। २२–इससे सब घृणा करते हैं।
२४–प्रेम के मार्ग में इसका मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।
२७–इसकी ओर सभी लोग आकर्षित हो जाते हैं।
२९–मनुष्य की नक़ल जितना यह कर सकता है उतना अन्य पशु या पक्षी नहीं।

आपकी याददाश्त के लिए वर्ग २८ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निर्णय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० २७ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २७ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

वा	ल	गो	विं	द		म		दा	र
ल	व	रा		र	म	ज्ञा	न		ज
क	ला	ई		स	ही		भ	र	नी
	सी		हु		त	वा		न	
आ		ना	रि	के	ल		स	वा	व
दि		स	ज	ला		प	ट	स	न
ल	छ	म	न		कं	ट	क		व
	म	भ		ब	धा	वा		कु	
गा	छ		खीं	र		री	छ	रा	ज
य	म			हा	र		ल	ह	रा

वर्ग नं० २७ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २७ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। / १, २, ३, ४, ५, ६ हैं।
मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर

पता

बिन्दीदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ नवम्बर के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २८
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

इस लाइन से काटिए

वर्ग नं० २८ मुफ़्त कूपन पूर्ति नं०...

वर्ग नं० २८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

वर्ग नं० २८ पूर्ति नं०... फ़ीस ।)

नाम

पता

नई शङ्कायें

सिविल लाइन्स,
बरेली
१२ अक्टूबर १९३८

वर्ग नं० २६ के सम्बन्ध में हमें निम्नलिखित शङ्कायें प्रकाशनार्थ मिली हैं।

२६वीं पूर्ति का अंक-परिचय, २१ दायें से बायें—आधुनिक सिनेमा में इसके दृश्य प्रायः दिखाये जाते हैं। इसकी पूर्ति है 'महर'। ज़रा कृपाकर यह तो बताइए कि यहाँ महर का क्या अर्थ है? कोष में तो केवल यह अर्थ दे रखे हैं। (१) एक आदरसूचक शब्द, जिसकी विशेषता ज़मींदारों आदि के सम्बन्ध में होता है। इस प्रकार इस महर का दृश्य तो हो नहीं सकता। अब दो अर्थ ब्रजभाषा के हैं। (२) एक प्रकार का पक्षी। किसी भी विशेष प्रकार के पक्षी के दृश्य प्रायः सिनेमा में नहीं दिखाये जाते। तीसरा देखो महरा! यदि महरा को भी देखें, तो उसमें दो अर्थ हैं। (१) कहार! कहार के भी दृश्य नहीं दिखाये जाते। दूसरा सरदार या नायक! यदि यह अर्थ, नायक मान भी लें, तो नायक के दृश्य कैसे? नायक के कर्तव्य तो हो सकते हैं। इस प्रकार इस पूर्ति के साथ दृश्य नितान्त असंगत है। यदि कर्तव्य भी लें तो क्या वे पहले नहीं दिखाये जाते थे, जो अभी दिखाये जाने लगे हैं?

दूसरा संकेत है ३३ दायें से बायें—'फ़ैशनेबुल स्त्रियाँ इसे अपने सौन्दर्य के अनुकूल बनाने का बराबर प्रयत्न करती रहती हैं।' इसकी पूर्ति आपने दी है 'सख'। अब ज़रा सख के अर्थों पर भी ध्यान दीजिए। इसके अर्थ सखा और मित्र हैं। सखा का स्त्री-वाचक सखी है। मित्र भी पुरुष वाचक सा ही, क्योंकि उसके अर्थ में सखा दे रखा है 'या सखी' नहीं दिया है। उन्हें वे सौन्दर्य के लअनुकू कैसे बनाती हैं। उनका सौन्दर्य तो प्रकृतिदत्त होता है, उसमें परिवर्तन कैसे हो सकता है? दूसरे वे कुरूप पुरुष से मित्रता ही कब करती हैं? अब यदि स्त्री मित्र भी लिया जाय, तो भी उन्हें अपने सौन्दर्य के अनुकूल बनाने का क्या प्रयत्न कर सकती हैं? हाँ यह अवश्य है, कि अपनी वेश-भूषा के अनुकूल उनकी वेश-भूषा बनाने का प्रयत्न करती रहती हैं। परन्तु सौन्दर्य और वेश-भूषा में पृथ्वी-आकाश का अन्तर है। क्या अंक है, और क्या पूर्ति है उसकी।

तीसरी पूर्ति है २६ ऊपर से नीचे। 'रगड़' हमें अभी तक यही ज्ञात नहीं हुआ है कि आपके पूर्ण और मात्रा-रहित अक्षर कौन से हैं? ज़रा इसको खोलकर तफ़सील उल्लेख कर दीजिए। थोड़ा भाषा-विज्ञान जाननेवाला भी यह जानता है कि टवर्ग के अक्षर संस्कृत में द्राविड़ भाषाओं से लिये गये हैं। उसका 'ड' पूर्ण अक्षर है। और 'ड़' की ध्वनि निकालने के लिए नीचे बिन्दु लगाकर यह आविष्कार किया गया है। यह आधुनिक शब्दों में ही प्रयुक्त होता है। इस प्रकार यह पूर्ण अक्षर नहीं। आगे जैसा आप मानें।

ऐसा ही अंक-परिचय है ३२ दायें से बायें। आजकल राह चलते आदमी भी थोड़ा-बहुत यह रखते हैं। शायद एक प्रतिशत व्यक्तियों के पास अतर निकल आये, तो निकल आये। यदि आज-कल फ़ैशनेबुल थोड़े से व्यक्ति रखते हैं, तो पुरानी चाल के शौक़ीन बुड्ढों के पास भी अतर, पानदान, पीकदान, ख़ासदान आपको अवश्य मिल जायगा।

भवदीय
सुरेशचन्द्र सेठ
बरेली

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० २८ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर २८ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २६ नवम्बर सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

चित्र-संग्रह

जर्मनी में राष्ट्र के निर्माण का कार्य ज़ोरों से हो रहा है। क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी, सभी दृष्टियों से राष्ट्र की सेवा करने के उपयुक्त बनाये जा रहे हैं। यहाँ तक अब वहाँ महिलाओं में स्वास्थ्य की बड़ी होड़ रहती है। चित्र में ये खुले मैदान में व्यायाम कर रही हैं।

प्रोफ़ेसर सुनीतिकुमार चटर्जी—कलकत्ता-यूनीवर्सिटी ने अपना प्रतिनिधि बनाकर इनको अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं में भाग लेने को योरप भेजा है।

मेजर पी० वर्धन—ये कलकत्ता के एक सुयोग्य डाक्टर हैं। चिकित्सा-शास्त्र में विशेष अनुभव प्राप्त करने के उद्देश्य से योरप गये हैं।
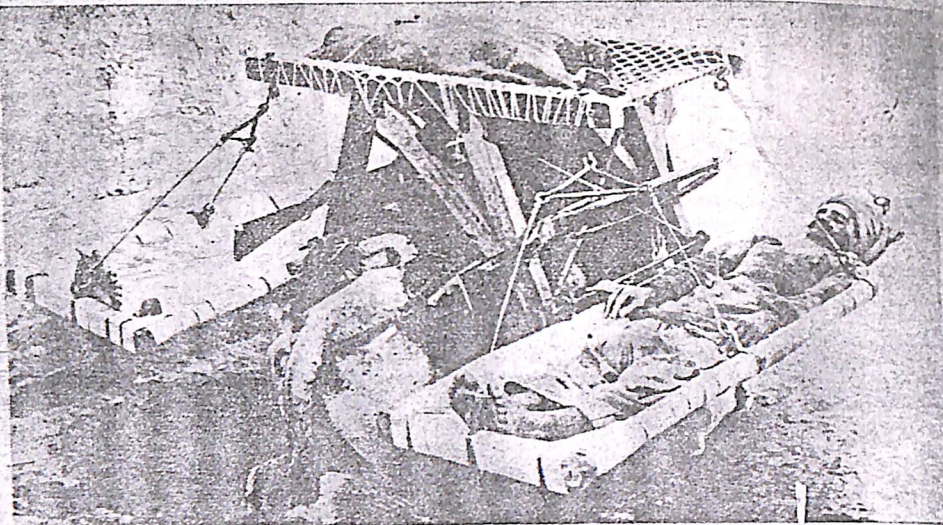
सीमाप्रान्त के संघर्ष में जो सैनिक आहत होते हैं, मार्ग की दुर्गमता के कारण वे ऊँटों-द्वारा स्ट्रेचरों पर रख कर सुरक्षित स्थानों को पहुँचाये जाते हैं। ऊपर के चित्र में ऐसे तीन घायल सिपाही एक ऊँट पर रक्खे गये हैं।
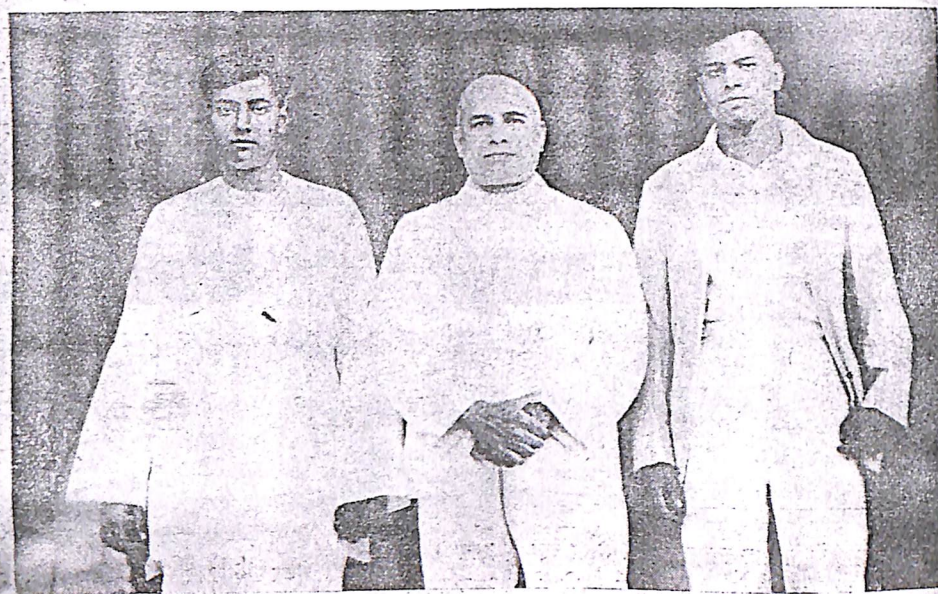
डाक्टर डी० मुकर्जी, डाक्टर चोटकर और डाक्टर रामेन्द्र सेन—कांग्रेस ने चीन को सहायता के लिए चिकित्सकों का जो एक दल भेजा है उसमें ये डाक्टर भी गये हैं।

ट्रावनकोर के महाराज—आज-कल आपके राज्य में प्रजाजनों का अधिकारियों से संघर्ष हो रहा है।

ओम्-मण्डली के संस्थापक—दादा लेखराज अपनी प्रधान शिष्या के साथ। इन्होंने स्त्रियों को अविवाहित रहने का हुक्म दिया है, जिससे इनके विरुद्ध कराची में आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है।

मिस जेसी ग्रीनउड नामक एक महिला ने ब्रिटेन की स्त्रियों के स्वास्थ्य और सौंदर्य की वृद्धि के लिए बहुत-से
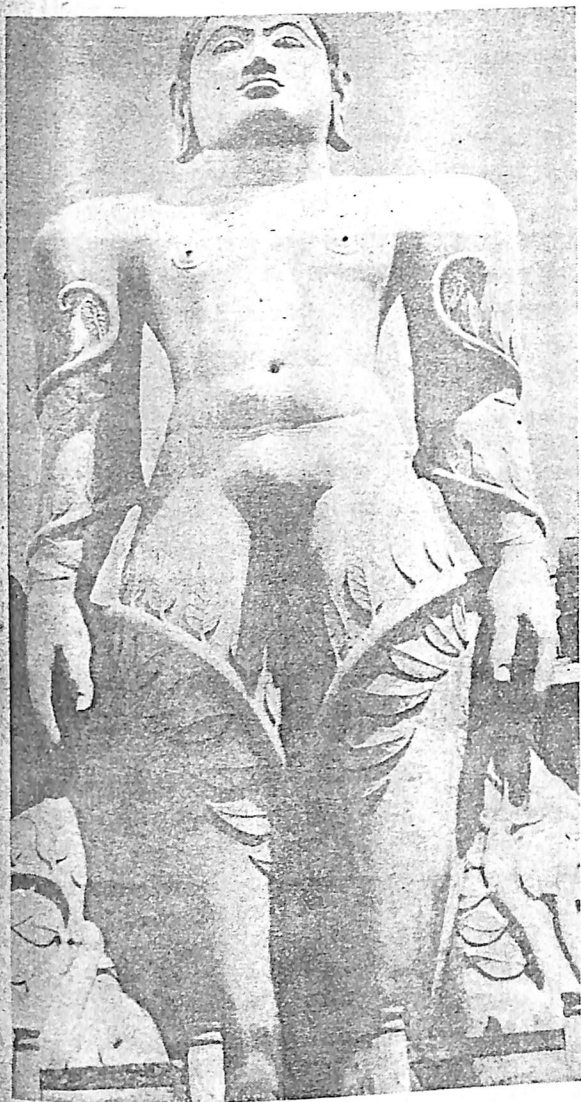
श्री गोमतेश्वर—यह विशाल जैन-मूर्ति मैसूर में है। सन् ९३३ में स्थापित हुई थी और ६० फ़ुट ऊँची है। हाल में इसमें दरार पड़ गई है, जिससे इसके भग्न हो जाने की आशंका की जा रही है।

स्त्रियों की अनुकरणशीलता। इन श्रीमती जी ने पुरुष का उसकी पोशाक में अनुकरण करना उचित समझा है।
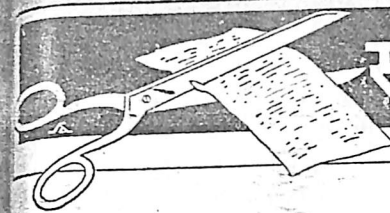
सामयिक साहित्य

ज़ेक-राष्ट्र के पतन पर महात्मा गांधी के विचार

महात्मा गान्धी ने 'हरिजन' में एक लेख लिखा है जिसमें उन्होंने ज़ेक लोगों को अहिंसात्मक वसूलों पर चलते हुए देश की स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने के विचार को ही अधिक श्रेष्ठ माना है। उक्त लेख के महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

मैं यह दावा नहीं करता कि योरप की राजनीति से मुझे वाक़फ़ियत है। लेकिन मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि योरप में छोटे राष्ट्र अपना सिर ऊँचा रखकर क़ायम नहीं रह सकते। उन्हें तो उनके बड़े-बड़े पड़ोसी हज़म कर ही लेंगे और उनके जागीरदार बनकर ही उन्हें रहना पड़ेगा।

योरप ने चार दिन की दुनियावी ज़िन्दगी के लिए अपनी आत्मा को बेच दिया है। म्यूनिच में योरप को जो शांति प्राप्त हुई है वह तो हिंसा की विजय है। साथ ही वह उसकी पराजय भी है। क्योंकि इँग्लेंड और फ़ांस को अगर अपनी विजय का निश्चय होता तो वे ज़ेकोस्लोवाकिया की रक्षा करने या उसके लिए मर मिटने के अपने कर्तव्य का पालन ज़रूर करते। मगर जर्मनी और इटली की संयुक्त हिंसा के सामने वे हिम्मत हार गये।

इन पंक्तियों के लिखने में उन बड़ी-बड़ी सत्ताओं से मेरा कोई वास्ता नहीं है। मैं तो उनकी पाशवी शक्ति से चैांधिया जाता हूँ। ज़ेकोस्लोवाकिया की इस घटना में मेरे और हिन्दुस्तान के लिए एक सबक़ मौजूद है। अपने दो बलवान साथियों के अलग हो जाने पर ज़ेक लोग और कुछ कर ही नहीं सकते। इतने पर भी मैं यह कहने की हिम्मत करता हूँ कि राष्ट्रीय सम्मान-रक्षा के लिए अहिंसा के शस्त्र का उपयोग करना अगर उन्हें आता होता तो जर्मनी और इटली की सारी शक्ति का वे मुक़ाबला कर सकते थे। उस हालत में इँग्लेंड और फ़ांस को वे ऐसी शान्ति के लिए आरज़ू-मिन्नत करने की बेइज्ज़ती से बचा सकते थे, जो वस्तुतः शान्ति नहीं है, और अपनी सम्मान-रक्षा के लिए वे अपने को लूटनेवालों का ख़ून बहाये बग़ैर मर्दों की तरह ख़ुद मर जाते। मैं यह नहीं मानता कि ऐसी वीरता या कहिए कि निग्रह मानव-स्वभाव से कोई परे की चीज़ है। मानव-स्वभाव अपने असली स्वरूप में तो तभी आयेगा जब यह बात पूरी तरह समझ ली जायगी कि मानव-रूप अख़्तयार करने के लिए उसे अपनी पाशविकता पर रोक लगानी पड़ेगी। इस वक़्त हमें मानव-रूप तो प्राप्त है, लेकिन अहिंसा के गुणों के अभाव में अभी भी हमारे अन्दर प्राचीनतम पूर्वज डार्विन के बन्दर के संस्करण विद्यमान हैं।

युद्ध तो सिर्फ़ टला है। साँस लेने के लिए यह वक़्त मिला, इसमें मैं ज़ेकों के सामने अहिंसा का रास्ता पेश करता हूँ। वे यह नहीं जानते कि उनकी क़िस्मत में क्या-क्या बदा है। लेकिन अहिंसा-मार्ग का प्रयोग करके वे कुछ खो नहीं सकते। प्रजातन्त्री स्पेन का भाग्य आज झूले में लटक रहा है। और यही हाल चीन का भी है। अन्त में अगर ये सब हार जायँ तो इसलिए नहीं हारेंगे कि इनका पक्ष न्यायोचित नहीं है, बल्कि इस लिए कि विनाश या जनसंहार के विज्ञान में वे अपने विपक्षी की बनिस्बत कम कुशल हैं या इसलिए कि उनका सैन्यबल अपने विनाशकारियों की अपेक्षा कम है। प्रजातन्त्री स्पेन के साथ अगर जनरल फ़्रैंको के साधन हों या चीन के पास जापान की-सी युद्धकला हो, अथवा ज़ेकों के पास हर हिटलर की जैसी कुशलता हो तो उन्हें क्या लाभ होगा? मैं तो कहता हूँ कि अपने विरोधियों से लड़ते हुए मरना अगर बहादुरी है, जैसी कि वह वस्तुतः है, तो अपने विरोधियों से लड़ने से इनकार करके भी उनके आगे न झुकना और भी बहादुरी है। जब दोनों ही सूरतों में मृत्यु निश्चित है तब दुश्मनों के प्रति अपने मन में कोई भी द्वेष-भाव रक्खे बग़ैर छाती खोलकर मरना क्या अधिक श्रेष्ठ नहीं है?

—

राष्ट्रभाषा का स्वरूप क्या हो ?

संयुक्त-प्रान्त के शिक्षामन्त्री माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी ने काशी के अपने एक भाषण में राष्ट्र-भाषा के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट बातें कही थीं और बताया था कि उसका कैसा रूप होना चाहिए। इस पर उर्दू के पत्रों में काफ़ी लिखा-पढ़ी हुई और उनके विचारों का विरोध किया गया। फलतः माननीय शिक्षामन्त्री को इस विषय को लेकर महात्मा जी से पत्र-व्यवहार करना पड़ा, जो 'संघर्ष' में प्रकाशित हुआ है। इस रोचक पत्र-व्यवहार से राष्ट्र-भाषा अर्थात् 'हिन्दी याने हिन्दुस्तानी' का स्वरूप बहुत कुछ स्थिर हो जाता है। वह पत्र-व्यवहार इस प्रकार है—

लखनऊ,
५ सितम्बर, १९३८

प्रिय महादेव भाई, नमस्कार,

मैं इस पत्र को सङ्कोच के साथ लिख रहा हूँ, क्योंकि महात्माजी इस समय मौन धारण किये हुए हैं और उनके सामने कई बड़े प्रश्न हैं। फिर भी, मैं जो बात लिख रहा हूँ, उसका विशेष महत्त्व है, इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप कृपया यह पत्र उन्हें सुना दें और वे जो आदेश दें उससे मुझे सूचित कर दें।

इधर मैं बनारस गया था। वहाँ काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की ओर से मुझे एक अभिनन्दनपत्र दिया गया। उसके उत्तर में मैंने जो भाषण किया उस पर उर्दू-पत्रों में बड़ी टीका-टिप्पणी हो रही है। कई पत्र जो कांग्रेस के घोर शत्रु हैं, आज कांग्रेस के प्रस्तावों की दुहाई दे रहे हैं और उनको मेरी बातों में साम्प्रदायिकता की दुर्गन्ध आती है। मेरे कहने का तात्पर्य यह था—कोई भाषा हो उसका स्वरूप उसके क्रियापदों पर, जो भाषा के मूलस्तम्भ bases हैं, निर्भर करता है। भाषा में अन्य भाषाओं से चाहे जितने शब्द लिये जायँ, उसका मूलरूप और नाम वही रहता है। मराठी, गुजराती, बँगला में फ़ारसी के शब्द हैं, अँगरेज़ी में लैटिन, ग्रीक, फ़्रेञ्च इत्यादि के शब्द हैं, ईरानी में फ़ारसी-अरबी के शब्द हैं, फिर भी इनके नाम नहीं बदले। इस तरह तो हमारी भाषा का नाम, चाहे उसमें फ़ारसी-अरबी के कितने ही शब्द आये हों, 'हिन्दी' होना चाहिए था। पुराने मुसलमान कवियों ने भी इसे बराबर 'हिन्दी ज़ुबान' कहा है। परन्तु बीच में यह प्रथा चल पड़ी कि इसके उस रूप को, जिसमें संस्कृत के तद्भव और तत्सम शब्द अधिक हों 'हिन्दी', और जिसमें फ़ारसी अरबी के शब्द हों उसे 'उर्दू' कहा जाय। अब 'हिन्दुस्तानी' शब्द चलाया जा रहा है। इसमें किसी को आपत्ति न होनी चाहिए। पर इसका स्वरूप समझ लेना चाहिए। हिन्दुस्तानी में न तो हठात् संस्कृत, अरबी, फ़ारसी के शब्द ठूँसे जाने चाहिए, न प्रचलित शब्द उसमें से निकाले जाने चाहिए। अँगरेज़ी में एक ही अर्थ में कई शब्द हैं, जो भिन्न भिन्न मार्गों से उसमें आये हैं। यही 'हिन्दुस्तानी' में होना चाहिए। इससे भाषा का शब्द-भण्डार भरा रहता है, साहित्य में सुगमता होती है और क्रमशः Shades of meaning उत्पन्न हो जाते हैं। आज-कल ख़राबी यह है कि कुछ लोग हिन्दुस्तानी के नाम से 'उर्दू' का प्रचार करना चाहते हैं। दिल्ली और लखनऊ के 'रेडिओ स्टेशन्स' गेहूँ न कह कर 'गन्दुम' कहते हैं, 'पक्ष' जैसे सीधे शब्द को न बोल कर 'सालिस' कहते हैं। पुस्तकों की समालोचना करते समय उर्दू की पुस्तकों को तो हिन्दुस्तानी पुस्तक कहते हैं, पर हिन्दी को हिन्दी रहने देते हैं। इससे बुरा असर पड़ता है।

एक बात मैंने और कही थी। अँगरेज़ों ने अपनी भाषा ज़बर्दस्ती चला दी, पर युक्तप्रान्तवाले तो सारे भारत में अपनी भाषा ज़बर्दस्ती नहीं चला सकते। हमको भाषा के स्वरूप का निश्चय करते समय यह देखना होगा कि राष्ट्र-भाषा होने के कारण, उसे महाराष्ट्र, गुजरात, बङ्गाल और मद्रास आदि के लोगों को भी व्यवहार में लाना है। इन लोगों के ख़याल से हमको संस्कृत से निकले शब्दों को पर्याप्त संख्या में रखना पड़ेगा। लिपियाँ तो दोनों हालत में अभी रहेंगी।

मेरा विश्वास है कि इसमें कोई बात ऐसी नहीं है जो कांग्रेस के किसी सिद्धान्त या मन्तव्य के विरुद्ध हो या देश की राजनैतिक, साहित्यिक या सांस्कृतिक प्रगति के लिए हानिकर हो। यदि हमने ईरान या तुर्की की भाँति अपनी भाषा में से संस्कृत या फ़ारसी-अरबी के शब्दों को निकालना शुरू किया तो बड़ा अन्धेर होगा। फिर संस्कृत-शब्दों का तो यहाँ की जन-संख्या के बहुत बड़े अंश के जीवन से ऐसा घना सम्बन्ध है कि उनके बहिष्कार से जो भाषा बनेगी, कृत्रिम होगी।

यदि आप इस सम्बन्ध में अवसर देखकर महात्मा जी से परामर्श ले सकें और मुझे सूचित कर सकें तो मैं ऋणी हूँगा।

आपका—
सम्पूर्णानन्द

पुनश्च—मेरी राय बहैसियत एक भारतीय, एक साधारण हिन्दी-सेवी और एक कांग्रेसमैन के है। पर इस समय मैं एक कांग्रेस-मिनिस्टर हूँ। मेरा विश्वास है कि मैं जो राय रखता हूँ वह इस पद के दायित्व के प्रतिकूल नहीं है, पर महात्मा जी की सम्मति मुझे अपनी स्थिति समझने में मदद देगी। यदि मैं देखूँगा कि मेरी भाषा-सम्बन्धी इस राय का मेरे सरकारी पद के साथ सामञ्जस्य नहीं है तो मैं इस प्रश्न पर अपने कर्त्तव्य को निश्चय करने का यत्न करूँगा।

सेगाँव, वर्धा ८-९-३८

भाई सम्पूर्णानन्द,

आपने लिखा है वह सब मुझे मान्य है, कांग्रेस ने भाषा का नामसंस्करण किया है और कोई क़ैद रखा नहीं है। जो सच्चे हैं वे तो किसी शब्द का हिन्दू या मुस्लिम होने के कारण बहिष्कार नहीं करेंगे। औरों का क्या कहना। और आज तो फ़ैशन बन गई है कि कांग्रेस या कांग्रेसी जो कुछ करें उसका विरोध ही करना, इस बारे में मेरा अभिप्राय ही चाहते हैं कि और कुछ? क्योंकि मैंने इस बारे में काफ़ी कहा और लिखा भी है।

आपका—
मो० क० गांधी

रियासतों के शासकों का विचित्र तर्क

देशी रियासतों में इधर कुछ समय से बड़ा जागरण दिखाई देने लगा है। इसको लेकर वहाँ राजा-प्रजा में जो संघर्ष छिड़ा हुआ है उसकी समाचार-पत्रों में बड़ी चर्चा रहती है। इस सिलसिले में 'अर्जुन' के अग्रलेख का एक अंश इस प्रकार है—

देशी रियासतों की प्रजा में सामूहिक जागृति होने के प्रत्यक्ष चिह्न यद्यपि अब तक केवल दक्षिण-भारत और गुजरात की कुछ रियासतों में ही प्रकट हुए हैं, तथापि इसका यह मतलब नहीं है कि अन्य रियासतों में उक्त जागृति का अभाव है। पूर्वी भारत, राजपूताना, मध्यभारत और पंजाब आदि की रियासतों में भी धीरे धीरे जागृति हो रही है। उड़ीसा की धेनाकनाल तथा तालचेर, पंजाब की कलसिया, मालेरकोटला, काश्मीर, मध्यभारत की इन्दौर, ग्वालियर, धौलपुर आदि और राजपूताना की जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर आदि रियासतों की जो घटनायें गत ४-५ मास से पत्रों में प्रकाशित हो रही हैं वे सब उस जागृति का सूचक हैं जो रियासती प्रजाओं में अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए धीरे धीरे हो रही है। इस जागृति के विरोधी भी अधिक से अधिक चाहें तो इतना ही कह सकते हैं कि अब तक यह जागृति जनता में नहीं फैली है, केवल कुछ उत्साही सार्वजनिक कार्यकर्ताओं तक सीमित है। परन्तु इस कथन से भी इस सचाई का प्रतिवाद नहीं होता कि रियासतों में जागृति हो रही है और धीरे धीरे फैल रही है।

इने-गिने कुछ अपवादों को छोड़कर, प्रायः सभी रियासतों के शासक इस जागृति को दक़ियानूसी दमनकारी उपायों-द्वारा दबाने का यत्न कर रहे हैं। कहीं क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्ट का प्रयोग हो रहा है, कहीं सभा-बन्दी के क़ानूनों पर अमल किया जा रहा है, कहीं प्रजा-मंडल, कांग्रेस आदि संस्थायें 'ख़िलाफ़ क़ानून' घोषित की जा रही हैं और कहीं कहीं ब्रिटिश भारत के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं का रियासत में प्रवेश निषेध करके जागृति का प्रवाह रोकने का यत्न किया जा रहा है। परन्तु ब्रिटिश भारत का और संसार के अन्य सब स्वतन्त्र देशों का इतिहास पुकार पुकार कर बतला रहा है कि उक्त उपायों से प्रजा की जागृति केवल कुछ दिन रोकी जा सकती है, विलम्बित की जा सकती है, कुचली नहीं जा सकती।

दमनकारी उपायों के अतिरिक्त, रियासती शासकों की एक और बात जो हमें हास्यास्पद लगती है, वह है उनका विचित्र तर्क। वे बार बार कहते हैं कि रियासती प्रजा कुछ करे तो करे, परन्तु हम बाहर के लोगों को रियासत में आकर आन्दोलन करने नहीं दे सकते। प्रथम तो भारतीयों के विषय में यह भीतर-बाहर का भेद ही ख़ासे मज़ाक की चीज़ है, तिस पर विचारणीय यह है कि यदि प्रजा को बाहर के आदमियों से मदद नहीं लेने दी जाती तो रियासत

अपने शासन-कार्य में बाहर के आदमियों की सहायता क्यों लेती है? शायद ही कोई देशी रियासत ऐसी हो जिसमें एक ख़ासी संख्या रियासत से बाहर के कर्मचारियों की न हो। यदि रियासतों के शासकों को बाहरवालों से ऐसा डर लगता है तो उन्हें अपने शासन-कार्य में भी उसी डर का सदा ध्यान रखना चाहिए।

अजीब फ़र्मान

युक्त-प्रान्तीय सरकार-द्वारा यह नई घोषणा हुई है कि ऐसे लोगों पर दफ़ा १८२ के अनुसार मुक़दमे चलाये जायँगे जो किसी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध की गई शिकायतों को साबित न कर सकेंगे। उक्त घोषणा जन-साधारण के हित के लिए किस प्रकार घातक होगी, इस विषय पर सहयोगी 'सैनिक' ने अग्रलेख लिखा है, जिसका मुख्यांश इस प्रकार है—

प्रान्तीय सरकार ने अभी हाल में घोषणा की है कि जो लोग सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध आरोप करके उसे प्रमाणित नहीं कर सकेंगे उनके विरुद्ध दफ़ा १८२ की कार्यवाही की जायगी। इस समय कांग्रेसी सरकार होने की वजह से एक ग़रीब से ग़रीब व्यक्ति को भी यह कहने का साहस हो गया है कि वह अपनी शिकायत माननीय पन्त जी और दूसरे उच्च अधिकारियों तक पहुँचा देता है। इसी कारण प्रतिदिन बीसियों शिकायतें मन्त्रियों के पास पहुँच जाती होंगी। हमारी सरकार का जाँच कराने का वही तरीक़ा है जो कांग्रेसी सरकारों से पहले की सरकारों का था। एक पुलिस के थानेदार की शिकायत एक दूसरे थानेदार या इन्स्पेक्टर या अन्य पुलिस के किसी उच्च अधिकारी से कराई जाती है। इसी प्रकार एक पटवारी की क़ानूनगो से, एक पतरौल की इलाक़ेदार से। हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि हमारे मंत्री-गण अब भी उसी रास्ते को क्यों अख़्तियार किये हुए हैं जिसको कल वे ख़ुद ग़लत कहते थे। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि इस प्रकार की जाँच व्यर्थ होती है, बल्कि शिकायत करनेवाले की मुसीबत और आ जाती है। एक दारोग़ा कान्सटिबिल की रिश्वत में शामिल होता है, क़ानूनगो पटवारी की में और इलाक़ेदार पतरौलों की में तब यह जाँच का मज़ाक़ ही क्यों किया जाता है?

इस घोषणा का नतीजा तो यह होगा कि रिश्वतख़ोर, ज़ालिम और अन्यायी नौकरों की हिम्मत बढ़ जायगी और ग़रीब आदमियों का अपने दुःख दूर कराने का जितना हौसला बढ़ा था वह पस्त हो जायगा। एक तो वैसे ही सैकड़ों शिकायतें होती हैं, उनका फल नहीं के बराबर निकलता है। इसलिए कांग्रेस-कार्यकर्ताओं और पीड़ितों के दिल बैठते जाते हैं। इस पर यह नंगी तलवार टाँग दी गई है।

हम चाहते हैं कि जिस नौकर की शिकायतों की जाँच हो उसकी उसी के विभाग-द्वारा जाँच न कराई जाय, बल्कि किसी ग़ैर सरकारी ट्रिब्यूनल-द्वारा हो। इसके लिए हर ज़िले में, अगर हो सके तो ट्रिब्यूनल नियुक्त कर दिये जायँ। यदि यह भी न हो सके तो किसी दूसरे विभाग के अफ़सर-द्वारा उसकी जाँच हो और साथ में एक ग़ैर सरकारी जाँच हो। दोनों अपनी अपनी रिपोर्ट सीधी भेजें और यदि यह भी सम्भव न हो तो किसी न्याय-विभाग के अधिकारी-द्वारा उसकी जाँच हो। क्या हम आशा करें कि हमारी सरकार हमारी प्रार्थना पर ध्यान देने की कृपा करेगी? हम अपनी सरकार से यह विनती करना चाहते हैं कि हमको यह सब इसलिए लिखना पड़ा कि हम अपने किसान और ग़रीब भाइयों की तकलीफ़ों को जितना महसूस करते हैं उतना वह दूर रहने के कारण महसूस नहीं कर पाती। हमारे पास प्रायः नित्य ही बेचारे रोते-कलपते आते हैं और अपनी दुख-दर्द-भरी कहानी सुनाते हैं। ज़िले के कार्यकर्ता उन शिकायतों की जाँच करते हैं और जब उनको सच पाते हैं तब उसे मंत्रीगणों तक पहुँचाने की कोशिश करते हैं। हम यह चाहते हैं कि जो सचमुच क़ुसूरवार हैं उन्हें ज़रूर सज़ा दी जाय, जिससे दूसरों को सबक़ मिले।

मौन एक दैवी रेडियो है

श्री महादेव देसाई 'हरिजन' में लिखते हैं—

उस दिन जब श्री शरत्चन्द्र बोस यहाँ आये तब मैंने उनसे पूछा, क्या आप सेगाँव गये थे। उन्होंने बतलाया कि हाँ, गया था और गांधी जी से देर तक बात-चीत भी की थी, लेकिन गांधी जी ने अख़बारी रैपर के एक टुकड़े पर यह लिखने के सिवा और कुछ नहीं कहा कि "परिवार

के सब लोगों को मेरा प्रेम पहुँचा देना।" इसके बाद उन्होंने बतलाया कि "मैंने महात्मा जी से पूछा कि क्या दिल्ली में भी वे अपना मौन जारी रक्खेंगे। इस पर उन्होंने हाँ का संकेत किया। क्या यह अचरज की बात नहीं है?"

मौन जारी रहेगा या नहीं, यह तो मुझे मालूम नहीं, लेकिन यह मुझे इत्मीनान है कि मौन को अनिश्चित काल तक जारी रखने की उन्हें बड़ी ख़्वाहिश है। इस मौन के दर्म्यान कई बार उन्होंने लिखा है कि "ईश्वर की यह कितनी अनुकम्पा है कि मैं मौन हूँ!" यह तो निस्सन्देह है कि मौन से उन्हें अपार आनन्द मिला है और बहुत-सी बातों से वे बच गये हैं, जो शायद क्रोधावेश से उनके मुँह से निकल जातीं।

जब इस बात का ख़याल आता है तब यह महसूस किये बिना नहीं रहा जाता कि हम बकवासी लोग अगर मौन के गुण को समझ जायँ तो दुनिया का लगभग आधा दुःख तो दूर हो ही जायगा। आधुनिक सभ्यता के फेर में पड़ने से पहले दिन-रात के चौबीस घंटों में से कम-से-कम ६ से ८ घंटे तो हम ख़ामोश रहते ही थे। लेकिन इस आधुनिक सभ्यता ने हमें रात को दिन में और निस्तब्धता को हल्ले-गुल्ले में तबदील करना सिखला दिया है। रोज़ के अपने काम-काज के बीच अगर हम कुछ घंटे ध्यान में भी लगायें और अपने मन को मौन-द्वारा ईश्वर की आवाज़ सुनने के लिए तैयार करें तो क्या अच्छा हो! वह तो ऐसा दैवी रेडियो है जो हमेशा गाता रहता है। ज़रूरत सिर्फ़ यह है कि हम उसे सुनने के लिए तैयार हों। लेकिन यह तब तक सम्भव नहीं जब तक मौनावलम्बन-द्वारा शान्ति के साथ उसे न सुना जाय।

अश्लील विज्ञापनों पर रोक

अश्लील विज्ञापन न छापने के सम्बन्ध में अब सरकार ख़ुद सामने आ रही है। उसकी रोक-थाम के लिए वह क़ानून बनाने जा रही है। इस सम्बन्ध में आगरे के 'आर्यमित्र' ने अपने सम्पादकीय में एक विचारपूर्ण नोट लिखा है, जो यह है—

केन्द्रीय असेम्बली में अश्लील विज्ञापन रोकनेवाला क़ानून बिल के रूप में पेश होनेवाला है। इस बिल से समाचार-पत्रों के ऊपर यह प्रतिबन्ध रक्खा जायगा कि दुराचार से उत्पन्न रोगों की ओषधियों के विज्ञापन न छापें।

बिल का जो स्वरूप अभी कानों में झनकार रहा है, बड़ा ही सौम्य मालूम होता है। परन्तु इसके बनाने में हेतु दिया जा रहा है वह बहुतों पर कुठाराघात करनेवाला है। इन विज्ञापनों पर इसलिए रोक लगाई जा रही है कि (१) उनमें बहुत से केवल लोगों का रुपया ऐंठने के लिए होते हैं। (२) उनमें बहककर लोगों के रोग अच्छे नहीं होते। रोग की उचित चिकित्सा अच्छे चिकित्सकों से होने पर ही होती है। कारण भी बिल बनाने में बड़े मौज़ूँ (उचित) हैं।

हम भी ऐसे अश्लील रोगों ही क्या, सभी अश्लील विज्ञापनों के विरोधी हैं। परन्तु इस बिल के समर्थन में जो युक्ति दी गई है, बड़ी लचर है। क्योंकि उचित चिकित्सा तो केवल पाप-रोग (अर्थात् सुज़ाक-सिफ़लिस) की ही इतनी आवश्यक नहीं है, प्रत्येक रोग की आवश्यक है। फिर केवल सुज़ाक-सिफ़लिस पर क्यों इतना प्रतिबन्ध है? और समाचार-पत्रों [illegible] ही इतना प्रतिबन्ध क्यों? ज्वर की भी उचित चिकित्सा न हो तो वह घातक हो जाता है। कौन-सा ऐसा रोग है जिसकी ओषधि के विज्ञापनों से लोग नहीं कमाते? समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्ध लग जाने पर भी क्या लोग अपना व्यवसाय छोड़ देंगे? वे समाचार-पत्रों में बड़ी सौम्य भाषा में भी उन रोगों के विज्ञापन दे सकेंगे। भाषा का प्रयोग तो अपने अधीन है। कोई सरकार ओषधि-व्यवसायियों को समाचार-पत्रों में स्पष्ट नहीं बोलने देगी तो व्यवसायी अपना नया सभ्यकोड बना लेंगे और उस भाषा में विज्ञापन देंगे जिसमें क़ानूनी पकड़ न हो। उचित चिकित्सा की युक्ति केवल इसलिए है कि विदेशी ओषधियों की एजेन्सी चले और यहाँ की ओषधियों पर पानी फिर जाय।

अश्लील विज्ञापनों की रोक पर उचित चिकित्सा की युक्ति नहीं होनी चाहिए। प्रत्युत वातावरण बिगड़ता है, यही युक्ति काफ़ी थी। सरकार इंडेसेन्सी की धारा से कामशास्त्री अश्लील साहित्य को रोकती है, तो भी गुप्त अश्लील साहित्य वा कोकशास्त्र, कामशास्त्र वा अनेक औषधालयों के विचित्र सूचीपत्र छपते ही हैं। उन पर

कोई प्रतिबन्ध नहीं, अश्लीलता रोकने के लिए सरकार सेंसर बिठा सकती है, लोग अपने विज्ञापनों में अनेक रोगों की ओषधियों से लोगों का रुपया ऐंठ रहे हैं। उन पर बिल क्यों नहीं बैठता? वह फ़ैशनेबुल वस्तुओं और हज़ारों अन्य व्यसनों के पदार्थों पर भी सेंसर लगा सकती है। क्या उनसे लोगों ने लाखों रुपये नहीं ऐंठे और नहीं ऐंठ रहे हैं?

हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि इस बिल को बनाते समय बिल बनानेवालों का ध्यान केवल ११ प्रतिसहस्र रोगों पर ही न होना चाहिए प्रत्युत ९८९ प्रति सहस्र रोगों की ओषधियों के विज्ञापनों से जो दुनिया लुट रही है, और योरप के भारत के जुआख़ोरी की लाटरियों से जो दुनिया लुट रही है उसको भी नहीं भूलना चाहिए।

बिल बनाने के समय बिल पास करनेवालों को ये सब पहलू विचारने चाहिए, केवल समाचार-पत्रों पर प्रतिबन्ध लगाने से काम नहीं चलेगा।

आराज़ी बिल पर सेलेक्ट कमेटी

हक़ आराज़ी बिल पर 'सेलेक्ट कमिटी' ने अपना निर्णय दे दिया है और वह प्रान्तीय असेम्बली में पेश भी हो गई है। उक्त रिपोर्ट का परिचय 'संघर्ष' में प्रकाशित हुआ है, जिसका मुख्यांश इस प्रकार है—

सेलेक्ट कमिटी में २१ मेम्बर थे और इसकी २२ बैठकें हुईं। आचार्य नरेन्द्रदेव इसकी केवल एक बैठक में शामिल हुए और उन्होंने कमिटी की रिपोर्ट पर दस्तख़त नहीं किये हैं।

रिपोर्ट के साथ पाँच मतभेद-सूचक पत्रक जोड़े गये हैं। पहला मुस्लिम-लीग-पार्टी के सदस्यों का है, दूसरा नवाब मुहम्मद यूसुफ़ (आगरा-जमींदार-एसोसियेशन), तीसरा श्री आर० पी० ताम्ता (हरिजन), चौथा राजा विश्वेश्वरदयाल सेठ और राजा जगन्नाथबख़्शसिंह (ब्रिटिश इण्डिया एसोसियेशन, अवध) और पाँचवाँ छतारी के नवाब सर अहमद सईद ख़ाँ की ओर से जोड़ा गया है।

बिल में १६ अध्याय और ३१५ धारायें हैं। यह आगरा-काश्तकारी-क़ानून १९२६ और अवध-लगान-क़ानून १८८६ को रद करता है।

सेलेक्ट कमिटी की रिपोर्ट में 'ज़मीन' की परिभाषा में इस तरह का संशोधन किया गया है, जिससे काश्तकार अपनी ज़मीन में गुलाब के पौधे, केला और पपीता आदि के वृक्ष रोप सकेंगे।

माफ़ीदारों के सभी काश्तकार शिकमी काश्तकार कहलाये जाने चाहिए। अगर माफ़ीदार मालिक या मालिक अदना घोषित कर दिया जाय तो उसका काश्तकार मौरूसी काश्तकार हो जायगा। बाग़ वाले और अनुकूल दर से लगान देनेवाले माफ़ीदार काश्तकार की परिभाषा में शामिल नहीं किये गये हैं।

छोटे छोटे ज़मींदार सीर के मौजूदा हक़ से वंचित न किये जायँ। जो ज़मींदार २५० रुपया से ज़्यादा मालगुज़ारी अदा करते हैं उनका शुमार बड़े ज़मींदारों में किया जाय।

बड़े बड़े ज़मींदारों की सीर के काश्तकारों को मौरूसी काश्तकार बना देना चाहिए। बड़े ज़मींदारों की सीर की ५० एकड़ की सीमा बाँध दी है।

यदि क़ानून बनते समय किसी काश्तकार के पास सीर होगी और उसे उस पर मौरूसी हक़ न हासिल होगा तो वह उस ज़मीन को ५ वर्ष तक उसी लगान की दर से बेदख़ल हुए बिना जोत सकेगा।

ज़मींदार का यह हक़ अस्वीकार किया गया है कि वह लगान के अतिरिक्त किसानों से किसी और प्रकार की फ़ीस वसूल करे।

लगान वसूलयाबी की रसीदबुकें सरकार से ली जायँ और कोई ज़मींदार अपनी रसीद-बुकें न रख सकेगा।

रबी की फ़सल बाद के बक़ाया लगान के लिए काश्तकार को नोटिस देना प्रभावोत्पादक होगा। किसान देने से इनकार करे तो बिल के अन्दर चार साल के बाद वह अपनी पूरी ज़मीन से बेदख़ल किया जा सकेगा। इस अर्से में ज़मींदार पहले के समान उसकी सम्पत्ति की बिक्री व ज़ब्ती से कुछ भी प्राप्त न कर सकेगा।

काश्तकार को बेदख़ल करने के बाद डिगरी इजराय करने का हक़ ज़मींदार को न रहेगा। अगर फ़सली साल के आख़िर तक लगान न अदा हो तो ज़मींदार १ जुलाई और ३१ अगस्त के बीच तहसीलदार के ज़रिये ज़मींदार किसान के पास एक नोटिस भेज सकता है।

जर्मनी की विजय

इस बार योरप में महायुद्ध छिड़ते छिड़ते से रह गया। [इस]के लिए ब्रिटेन और फ़्रांस को ज़ेकोस्लोवाकिया की [ब]लि देनी पड़ी है—उस स्वाधीन राष्ट्र की जिसकी रचना [पि]छले महायुद्ध की समाप्ति पर उस समय के विजयी राष्ट्रों [ने] एकमत होकर की थी तथा उसकी स्वाधीनता की रक्षा [क]रने का वचन भी दिया था। परन्तु आज बीस वर्ष के [ब]ाद जब जर्मनी ने उस राज्य के जर्मन-बसित अञ्चलों को [ब]लपूर्वक ले लेने का आयोजन किया तब पहले तो फ़्रांस [ने] ज़ेकोस्लोवाकिया के पक्ष [मे]ं जर्मनी से लड़ने की बात [ह]ी नहीं कही, किन्तु अपनी [से]नाओं को एकत्र तक होने [क]ा हुक्म दे दिया था और [क]हा था कि अगर ब्रिटेन नहीं [ल]ड़ेगा तो फ़्रांस अकेले [ल]ड़ेगा, परन्तु बाद को भिड़ने [क]ी उसे भी हिम्मत नहीं पड़ी [औ]र बेचारा ज़ेकोस्लोवाकिया [अप]ने मित्र फ़्रांस और रूस [के] भरोसे रहकर सेंतमेंत में [मा]रा गया। बात यह हुई कि [ग्रे]ट ब्रिटेन ने लड़ने से साफ़ [इन]कार कर दिया तब फ़्रांस [क]ी हिम्मत हार बैठा और अन्त में उनको म्यूनिच में [हि]टलर से समझौता करना पड़ा, जिसके फल-स्वरूप [हि]टलर को बिना गोली दागे ही उनकी सारी माँग की [पू]र्ति हो गई। यहाँ जो नक़्शा दिया गया है उससे प्रकट [हो]ता है कि ज़ेकोस्लोवाकिया का कितना और कैसा अंश [ज]र्मनी के क़ब्ज़े में चला गया है।

इस घटना पर दुःख प्रकट करने की कौन कहे, संसार [के] सभी बड़े बड़े राष्ट्र प्रसन्न हुए हैं, यही क्यों, उनकी जान में जान आई है। जो फ़्रांस पहले लड़ने-मरने को तैयार जान पड़ता था उसको पार्लियामेंट में उसके प्रधान मंत्री की उक्त कार्यवाही का ७५ के विरुद्ध ५३५ वोटों से समर्थन किया गया। हाँ, ब्रिटेन के प्रधान मंत्री सर नेवाइल चेम्बरलेन को अपनी पार्लियामेंट में सदस्यों का समर्थन प्राप्त करने में भारी कठिनाई का सामना करना पड़ा और उनके समर्थन का प्रस्ताव १४४ के विरुद्ध ३६६ वोटों से ही पास हुआ। इससे प्रकट होता है कि फ़्रांस की अपेक्षा ब्रिटेन में हिटलर की धींगाधींगी का कहीं अधिक विरोध था। चाहे सो हो, ब्रिटेन के प्रधान मंत्री सर नेवाइल चेम्बरलेन तथा संयुक्त-राज्यों के राष्ट्रपति श्री रूज़वेल्ट के प्रयत्नों से महायुद्ध छिड़ने से बाल बाल बचा है। इस प्रसंग में सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह हुई है कि रूस म्यूनिच के समझौते में नहीं शामिल किया गया। इससे प्रकट होता है कि अब रूस का साथ छोड़ दिया गया है, ताकि जर्मनी से मित्रता की जा सके। म्यूनिच के समझौते से यह बात भी स्पष्ट हो गई है कि सिवा जर्मनी

और इटली के योरप का कोई राष्ट्र इस समय लड़ने को तैयार नहीं है, और यही बात है जिससे लोग यह कहने लगे हैं कि जहाँ म्यूनिच के समझौते ने युद्ध को रोका है, वहाँ उसने महायुद्ध की नींव को और भी दृढ़ कर दिया है। चाहे जो हो, इस समय तो ज़ेकोस्लोवाकिया की बलि पाकर योरप के युद्ध देवता कुछ सन्तुष्ट हो गये हैं।

ज़ेकोस्लोवाकिया ने जर्मनी को आत्मसमर्पण क्या किया कि उसके पड़ोसी पोलैंड और हंगरी भी अपनी अपनी प्रजा के वसित भूभागों की छीना-झपटी करने को उतावले हो गये हैं और मज़ा तो यह कि ज़ेकोस्लोवाकिया को उनकी भी माँगें पूरी करने के लिए दबना पड़ा। इसमें सन्देह नहीं है कि यह घटना योरप में अपने ढंग की एक ही घटित हुई है और इससे योरप की वर्तमान परिस्थिति का भंडाफोड़ हो गया है और यह प्रकट हो गया है कि वहाँ न्याय का नहीं, किन्तु जिसकी लाठी उसकी भैंस का बोलबाला है। और इस समय लाठी जर्मनी और इटली के ही हाथ में है। अतएव अब दूसरे प्रमुख राष्ट्र भी अपनी अपनी लाठी सँभालने लगे हैं। इसी से लोग कहते हैं कि युद्ध स्थगित भर हुआ है। क्योंकि वे जर्मनी और इटली के आगे इस समय तनकर खड़े नहीं हो सकते, भले ही समरसज्जा से वे पूर्णतया लैस हों। आस्ट्रिया को एक छलाँग में हड़पकर और दूसरी छलाँग में ज़ेकोस्लोवाकिया को ध्वंस कर आज जर्मनी का सारे योरप पर आतंक छा गया है। देखना है कि जर्मनी इतने से ही सन्तुष्ट हो जाता है या वह अन्य पड़ोसी देशों के ऐसे ही अपने भूभागों तथा अपने खोये हुए उपनिवेशों को भी प्राप्त करने का उपक्रम करेगा। यद्यपि हिटलर ने कह दिया है कि वे योरप में अब ऐसी माँग नहीं करेंगे, परन्तु माँग न करके भी उनके प्राप्त करने का अन्य उपाय तो काम में लाया ही जा सकता है। जर्मनी आज शक्तिशाली है, और शक्तिशाली की ईश्वर भी सहायता करता है।

हक़ आराज़ी-बिल

जिस हक़ आराज़ी क़ानून के लिए संयुक्त-प्रान्त के किसान उत्कण्ठा के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे वह उनके सौभाग्य से प्रान्तीय असेम्बली में पेश कर दिया गया है। अभी तक यह सेलेक्ट कमिटी के विचाराधीन था, जहाँ इस पर कई महीने तक विचार होता रहा।

इस नये क़ानून के पास हो जाने पर किसानों को—उन किसानों को जो पट्टेदार हैं, उनकी जोत की ज़मीन पर स्वामित्व का हक़ प्राप्त हो जायगा और वे उसमें पेड़ लगा सकेंगे तथा ज़मींदार से आज्ञा लेकर मकान भी बना सकेंगे। परन्तु खेद की बात है कि इस क़ानून में शिकमी काश्तकारों के हक़ नहीं निर्धारित किये गये हैं, यद्यपि सच्चे काश्तकार वही हैं और संख्या में भी पट्टेदार किसानों की अपेक्षा उन की संख्या कहीं अधिक है। प्रान्तीय सरकार ने फ़ैक्टरियों में काम करनेवाले संघटित मज़दूरों की फ़रियाद जिस प्रकार सुनी है और इतर मज़दूरों की उपेक्षा की है, उसी प्रकार वोट का हक़ रखनेवाले किसानों के ही हितों की रक्षा करने की उसने इस क़ानून में व्यवस्था की है और शिकमी काश्तकारों के लिए कुछ नहीं किया है। यह इस नये क़ानून की बड़ी भारी त्रुटि है। और इस ओर किसान-सेवक असेम्बली के सदस्यों का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। यह बिल आक्टोबर की बैठक में ही पास कर दिया जाता, परन्तु अब यह नवम्बर की बैठक में पेश होगा, क्योंकि ज़मींदारों और तालुक़दारों ने कांग्रेस के उच्च अधिकारियों से समझौता करा देने का अनुरोध किया है।

भारत के खनिज पदार्थ

भूगर्भ-विद्या-सम्बन्धी नाप-जोख के विभाग ने जाँच कर बताया है कि १९३७ के साल में भारत में कौन कौन खनिज पदार्थ कितने मूल्य के खोद कर निकाले गये हैं। १९३६ की अपेक्षा १९३७ में ५ करोड़ ६९ लाख रुपये के मूल्य का अधिक माल निकाला गया और कुल माल २१ करोड़ ४३ लाख रुपये के मूल्य का निकाला गया।

सबसे अधिक कोयला निकला और यह ७ करोड़ रुपये के मूल्य का निकाला गया। इसके सिवा ४ करोड़ ५२ लाख रुपये की मैंगानीज़, ३ करोड़ ४ लाख रुपये का सोना, १ करोड़ ४४ लाख रुपये का अभ्रक, १ करोड़ सवा सैंतीस लाख रुपये का पेट्रोलियम निकाला गया। इनके सिवा और भी कतिपय खनिज पदार्थ निकाले गये और पहले से अधिक मात्रा में निकाले गये।

परन्तु यह वृद्धि भारत जैसे विशाल देश को देखते हुए नगण्य है। इस क्षेत्र में अभी बहुत अधिक गुंजाइश है और इस दिशा में आवश्यक प्रयत्न किया जाय तो इससे न केवल देश की समृद्धि की ही वृद्धि होगी, किन्तु इस देश के बेकार लोगों के लिए नये नये जीविका के द्वार भी खुल जायँगे।

नैपाल—उन्नति के पथ पर

संसार में हिन्दुओं का एक-मात्र नैपाल का राज्य ही स्वाधीन राज्य है। प्रसन्नता की बात है कि उसके वर्तमान प्रधान मन्त्री हिज़ हाइनेस श्री युद्ध शम्शेर राना एक प्रजारञ्जक शासक हैं। पिछले भूकम्प में जब बिहार का सर्वनाश हुआ था तब उसकी चपेट में नैपाल भी आ गया था। उस आपद्‌काल में अपने प्रजाजनों के सहायतार्थ नैपाल के

[नैपाल के वर्तमान प्रीमियर श्री महाराज युद्ध शम्सेर ने नैपाल का पुनर्निर्माण किया है।]

राज ने २५ लाख रुपया ऋण के रूप में दिया था। हाल में आपने वह सारा ऋण माफ़ कर दिया है। यही नहीं, यह भी आज्ञा दे दी है कि जिन लोगों ने ऋण चुका दिया हो उनका रुपया वापस कर दिया जाय।

शासन को अधिकाधिक लोकोपयोगी बनाने की ओर भी महाराज का ध्यान बराबर लगा रहता है। नैपाल में उद्योग-धन्धों की वृद्धि के लिए आप विशेष रूप से यत्न कर रहे हैं। हाल में वहाँ के आयात-माल पर भारी चुंगी लगा दी है, जिससे बाहर का माल देश में आवे तो कम आवे और स्वदेशी चीज़ों का प्रचार हो। उधर एक बैंक भी खोला गया है जिससे उद्योगी लोगों को उद्योग-धन्धे चलाने के लिए सुभीते से रुपया मिल सके। और शिक्षा तो अँगरेज़ी में बी० ए० तक तथा संस्कृत में आचार्य तक मुफ़्त ही नहीं दी जाती है, किन्तु योग्य तथा ग़रीब विद्यार्थियों को भोजन तथा पुस्तकें भी देने की व्यवस्था है। अभी हाल में सरकार ने नैपाली-भाषा के प्रचार के लिए वहाँ की एक संस्था को दस हज़ार रुपया दिया है। आशा है, अपने प्रगतिशील शासक के इन सद् प्रयत्नों से स्वाधीन नैपाल अधिकाधिक समुन्नत होता जायगा।

भारतीयों का देशाटन-प्रेम

भारतीयों को भी विदेशों की यात्रा का चस्का लग गया है। योरप आदि को जानेवाले भारतीयों की संख्या दिन दिन बढ़ती जाती है। इन विदेश जानेवाले भारतीयों का विदेशों में २० लाख पौंड प्रतिवर्ष ख़र्च होने लगा है। इस वर्ष कोई चार हज़ार भारतीयों ने योरप की यात्रा की है। अनेक लोग तो स्वदेश के पहाड़ी स्थानों में जाने के स्थान में योरप को ही जाना अधिक पसन्द करते हैं। उन्हें वहाँ अधिक समुन्नत समाज का रोचक अनुभव प्राप्त होता है, साथ ही अधिक रमणीक स्थान भी देखने को मिलते हैं। अधिकांश लोग तो सैर-सपाटे को ही जाते हैं। कुछ चिकित्सा कराने एवं स्वास्थ्य के सुधार के लिए भी जाते हैं। कुछ रोज़ी-रोज़गार के मतलब से जाते हैं। इन यात्रियों के ख़र्च का अन्दाज़ लगाया गया है कि चार महीने के प्रवास में इन यात्रियों का जो ख़र्च होता है उसका औसत फ़ी यात्री ४ पौंड प्रतिदिन पड़ता है। इसमें यात्रा-व्यय, होटल-व्यय, इष्ट-मित्रों को खिलाना तथा साधारण ख़रीद आदि का ख़र्च शामिल है।

सबसे अधिक भारतीय राजे-महाराजे ख़र्च करते हैं। नामी नामी होटलों में वे अपने मुसाहबों और नौकरों के साथ धूम मचाये रहते हैं। आम तौर से ये लोग ४० पौंड प्रति दिन अकेले अपने ही ऊपर ख़र्च कर डालते हैं। इनके बाद उन धनवान् भूस्वामियों का नंबर है जो सरकार से राजा या महाराज की पदवी पाये हुए हैं। ये लोग भी मुक्त-हस्त होकर ख़र्च करते हैं। इनका औसत २० पौंड प्रति दिन प्रति व्यक्ति पड़ता है। इनके बाद सेठ-महाजन आते हैं। योरप आकर ये लोग भी मुक्तहस्त हो जाते हैं और स्वदेश में रहते समय की सारी कंजूसी भूल जाते हैं। इनका ख़र्च का औसत १० पौंड प्रतिदिन प्रति व्यक्ति पड़ता है। इसके साथ ही यह भी अन्दाज़ लगाया गया है कि १ पौंड १० शिलिंग रोज़ाना ख़र्च करनेवाले एक चौथाई यात्री होते हैं। २ पौंड प्रतिदिन के हिसाब से ख़र्च करनेवाले १२,००३ पौंड प्रतिदिन के हिसाब से ख़र्च करनेवाले ८,००४ पौंड ख़र्च करनेवाले ४०० और ५ पौंड ख़र्च करनेवाले ३०० यात्री होते हैं। राजे-महाराजे ५०, भूस्वामी ५० और व्यवसायी २०० के लगभग जाते हैं।

इसमें सन्देह नहीं है कि इस यात्रा से उनका विशेष लाभ होता है। सुसभ्य देशों के भ्रमण का सुख तो उन्हें मिलता ही है, साथ ही वहाँ के निवासियों के सम्पर्क में आ जाने से उनका दृष्टिकोण भी विस्तृत हो जाता है।

म्यूनिच के समझौते का दुष्परिणाम

म्यूनिच के समझौते का जो दुष्परिणाम हुआ है वह काफ़ी भयानक है। मध्य-योरप तथा पूर्वी योरप पर जर्मनी का प्रभाव काफ़ी बढ़ गया है। यहाँ तक कि ज़ेकोस्लोवाकिया के प्रेसीडेंट बेनेस को पद-त्याग करना पड़ा है ताकि वहाँ की सरकार जर्मनों, पोलों और मगयरों से सुविधा के साथ मेल-जोल क़ायम कर सके। ज़ेच लोग तो फ़्रांस से इतना अधिक नाराज़ हो गये हैं कि उसके कितने ही लोगों ने फ़्रांस के तमग़े आदि तक प्रेग जाकर उसके राजदूत को लौटा आये हैं और मानो बदला लेने के भाव से जर्मनों के प्रति अधिकाधिक मैत्री बढ़ा रहे हैं। और तो और पोलों ने जब अपने भूभाग लेने की धमकी दी तब अँगरेज़ों और फ़्रांसीसियों ने मध्यस्थता करने का प्रस्ताव किया, परन्तु पोलों ने उनको मध्यस्थ बनाने से इनकार कर दिया। इन सब बातों से प्रकट होता है कि योरप के उस भूभाग से अँगरेज़ों और फ़्रांसीसियों की धाक उठ गई है और उधर के एक रूमानिया और तुर्की को छोड़कर प्रायः सभी देश जर्मनी के आतंक में आ गये हैं और वे उससे मित्रता क़ायम करने को उत्सुक हो उठे हैं। जो जुगोस्लाविया अभी कल तक फ़्रांस और ब्रिटेन के साथ रहने में अपना कल्याण समझता था उसने भी इस घटना के फल-स्वरूप अपना रुख़ बदल दिया है। यही नहीं, वह अब जर्मनी से व्यापारिक सन्धि करने जा रहा है। वास्तव में ज़ेकोस्लोवाकिया की इस घटना ने योरप के अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक नई विभीषिका खड़ी कर दी है। ऐसी दशा में अब इस बात की भी आशा नहीं रह गई है कि ब्रिटेन तथा फ़्रांस एवं अमरीका का संयुक्त-राज्य स्पेन और चीन के युद्धों के बन्द करवाने के लिए आगे आयेंगे। संसार के उपर्युक्त प्रमुख राष्ट्रों के सूत्रधार शान्ति के भारी हिमायती प्रतीत होते हैं। कहा गया है कि स्पेन का युद्ध बन्द करवाने के लिए भीतर ही भीतर बातचीत हो रही है। परन्तु चीन-जापान के युद्ध के सम्बन्ध में तो किसी को भी दिलचस्पी नहीं है। और इसी से जापान ने अब दक्षिणी चीन पर भी चढ़ाई कर दी है और उसने बात की बात में कैन्टन पर भी अधिकार कर लिया है। यह जानते हुए भी कि जापान अन्याय के पथ पर है, किसी भी राष्ट्र का साहस नहीं होता कि चीन की सहायता के लिए आगे आवे। म्यूनिच के समझौते से तो जापान को प्रोत्साहन सा मिला है। वह जान गया है कि चीन का पक्ष लेकर कोई भी महाशक्ति उसके विरुद्ध तलवार नहीं उठायेगी तब वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के मार्ग से क्यों हटे? यह अवस्था वास्तव में त्रास-जनक है। परन्तु उसके प्रतीकार का कोई उपाय भी तो नहीं है। जो शक्तिशाली हैं तथा जिनको न्याय से प्रेम भी है वे आज लड़ने से विमुख हो गये हैं। अतएव संसार में तानाशाही का बोलबाला होता जायगा।

'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधि

इस वर्ष हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने शिमला-अधिवेशन के अवसर पर हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यिकों और सहायकों को 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की है। उसका

यह कार्य अभिनन्दनीय है और उसके इस महत्त्वपूर्ण कार्य से सम्मेलन के गौरव की वृद्धि हुई है।

उक्त उपाधि निम्न महानुभावों को प्रदान की गई है—

डाक्टर जॉर्ज ए० ग्रियर्सन, महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, महात्मा गांधी, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, श्री जगन्नाथ-प्रसाद जी 'भानु' और श्री हंसराज जी।

इसमें सन्देह नहीं है कि उक्त उपाधि उसके उपयुक्त पात्रों को ही दी गई है, और दी गई है अनेक दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर। डाक्टर ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ़ इण्डिया' के द्वारा भारतीय आधुनिक भाषाओं पर भाषा-विज्ञान की दृष्टि से श्रेणी-विभाजन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रारम्भिक युग में मराठी, काश्मीरी आदि अनेक भाषाओं के व्याकरण तैयार किये हैं। ओझा जी ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर गवेषणा करनेवाले प्रतिष्ठित विद्वान् हैं। उनकी 'मध्य-कालीन भारतीय संस्कृति' हिन्दी में अपने ढङ्ग की एक ही पुस्तक है। वे हिन्दी के अनन्य भक्तों में हैं और हिन्दी छोड़कर और किसी भाषा में कभी नहीं लिखा है। महात्मा गांधी जी ने तो हिन्दी की महान् सेवा की है। एकमात्र उन्हीं के प्रयत्न से उसका देशव्यापी प्रचार हो सका है। 'हरिऔध' जी ने हिन्दी के काव्य-विभाग को अपनी मौलिक रचनाओं से समुन्नत किया है। बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने 'नागरी-प्रचारिणी सभा' के द्वारा तथा अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों से साहित्य की अमूल्य सेवा की है। 'भानु' जी ने साहित्य-शास्त्र पर अपनी गम्भीर रचना से हिन्दी को ऋणी बना लिया है। श्री हंसराज जी ने हिन्दी-प्रचार के लिए अनवरत उद्योग किया है।

इस प्रकार हिन्दी के साहित्यिक, शैली-निर्धारक, शिल्पी, प्रचारक तथा उन्नायक आदि व्यक्तियों को ध्यान में रखकर उक्त उपाधि प्रदान की गई है।

आशा है, उसका उपाधि-प्रदान का क्रम भविष्य में भी जारी रहेगा और धीरे धीरे हिन्दी के शेष अधिकारी विद्वान् तथा प्रेमी सम्मेलन-द्वारा इसी प्रकार सम्मान प्राप्त करेंगे।

—उत्तमचन्द्र श्रीवास्तव एम० ए०

संसार का एक अनूठा नगर

श्री आर० एम० मैकडानल्ड ने एक अँगरेज़ी-पत्र में लेख लिखकर यह बतलाया है कि प्रशान्त महासागर में एक प्राचीन और बड़ा सम्पन्न नगर जलमग्न पड़ा है। पाठकों के मनोरञ्जन के लिए हम उस लेख के अनुवाद का कुछ अंश यहाँ 'भारत' से देते हैं—

संसार का सबसे अधिक सम्पन्न नगर मेटालिमेन समुद्र में ९६ फ़ुट नीचे स्थित है। मेटालिमेन इस समय जापानियों के क़ब्ज़े में है। उस नगर में बहुत से मन्दिर हैं, जिनके अन्दर काफ़ी धन जमा है। उस नगर के निकटतम द्वीप पोनापे के निवासियों का कहना है कि मेटालिमेन किसी समय इस द्वीप का एक हिस्सा था। एक दिन अचानक बिना कोई चेतावनी दिये वह समूचा का समूचा प्रशान्त महासागर के जल में निमग्न हो गया। तब से वह नगर वहीं जल के नीचे स्थित है।

पोनापे द्वीप भूमध्यरेखा के आस-पास पूर्व से पश्चिम को १,००० मील तक फैला हुआ है। व्यापारी लोग इस द्वीप से बहुत दिनों से परिचित हैं। वहाँ सफ़ेद मोती निकलते हैं। पहले इस पर तथा आस-पास के द्वीपों पर जर्मनी का आधिपत्य था। उस समय बाहर के लोगों को उधर आने-जाने के लिए कोई रोक नहीं थी। किन्तु अब जापानी लोग किसी भी विदेशी जहाज़ को उस गुप्त नगर के पास नहीं जाने देते। उन्होंने वहाँ अपना एक बड़ा नाविक आधार स्थापित कर लिया है।

मोती निकालनेवालों ने इस जल-मग्न नगर को देखा है। उस स्थान का जल बिलकुल साफ़ और पारदर्शक है। ऊपर से देखने पर जलमग्न नगर के बहुसंख्यक स्तम्भ तथा पत्थर के मेहराब दिखलाई पड़ते हैं। कटे-छटे और गिरे हुए पत्थरों के ढेर के ढेर दिखाई पड़ते हैं। पत्थर के बड़े-बड़े स्तम्भ जिन पर अच्छे-अच्छे चित्र खुदे हैं, गिरे हुए दिखाई देते हैं। पोनापे के पुजारियों का कहना है कि उन जलमग्न खण्डहरों के बीच एक प्राचीन साम्राज्य का विपुल धन सञ्चित पड़ा है। यह साम्राज्य योरपीय लोगों के प्रशान्त महासागर में पहुँचने के पूर्व ही क़ायम था।

नगर में दो कोश हैं। पहले नम्बर का कोश वह है जिसमें साम्राज्य के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के शव सुरक्षित

रक्खे हुए हैं। इस ख़ज़ाने में १,००,००० शव रक्खे हैं। प्रत्येक शव एक बहुमूल्य धातु (जो सोने से बहुत अधिक महँगी है) के बने हुए ताबूत में रक्खा है। इस धातु को 'प्लैटिनम' कहते हैं। हिसाब लगा कर देखा गया है कि प्लैटिनम के एक ताबूत का वज़न कम से कम ६०० औन्स होगा। पोनापे से जापान को अब मोती, साबूदाना आदि चीज़ें नहीं भेजी जातीं बल्कि प्लैटिनम के टुकड़े भेजे जाते हैं। इस से ज्ञात होता है कि चतुर जापानियों ने जलमग्न नगर के खण्डहरों में छिपे हुए इस कोश का पता लगा लिया है।

जस्टिस श्री मुकुन्दीलाल जी

प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक तथा सार्वजनिक कार्यकर्ता श्रीयुत मुकुन्दीलाल जी बैरिस्टर अब टेहरी गढ़वाल-राज्य के नये हाईकोर्ट के जज बनाये गये

जस्टिस श्री मुकुन्दीलाल जी

हैं। आप हिन्दी के पुराने लेखकों में हैं और हिन्दी के मासिक पत्र सरस्वती, विशाल भारत, और पाक्षिक पत्र हिन्दुस्तानी में अब भी लिखते रहते हैं। पहले स्त्री-दर्पण, गृहलक्ष्मी, कमला, अभ्युदय में कई लेख-मालायें लिखी थीं। हिन्दी में महात्मा गांधी की जीवनी सबसे पहले आपने ही सन् १९१३ में लिखी थी, जो क्रमशः 'स्त्री-दर्पण' में निकलती थी, पीछे पुस्तकाकार अभ्युदय प्रेस से बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने छपवाई थी। इस समय भोलाराम की कविता और चित्र-कला पर एक सचित्र पुस्तक लिख रहे हैं। वह क्रमशः "हिन्दुस्तानी" में सन् १९३२ से निकल रही है।

आप १९२३ से १९३० तक गढ़वाल के प्रतिनिधि की हैसियत से प्रान्तीय कौंसिल में रहे हैं। सन् १९२८ में कौंसिल के डिप्टी प्रेसीडेंट चुने गये थे।

गढ़वाल के सार्वजनिक कार्यों में आपने सदा प्रमुख भाग लिया है। भगवान् करे, इस उच्च पद पर आसीन होकर और भी यशस्वी हों।

फ़ेडरेशन

फ़ेडरेशन की स्थापना का प्रश्न अब बहुत कुछ आगे आ गया है। कहा जाता है कि भारत के वायसराय लार्ड लिनलिथगो विलायत जाकर उसकी स्थापना के सम्बन्ध में बहुत कुछ तय करके आ रहे हैं।

परन्तु क़ानून के अनुसार उसकी स्थापना तभी होगी जब देशी रजवाड़े और प्रांतीय सरकारें राज़ी होंगी। फ़ेडरेशन स्वीकार करनेवाले राज्य कम से कम अपने ५२ प्रतिनिधि कौंसिल आफ़ स्टेट में भेजें। यह भी ज़रूरी है कि भारतवर्ष की आधी रियासतों के शासक तथा सभी गवर्नरों के प्रति इसे स्वीकार करें। इस स्वीकृति के मिल जाने पर सम्राट् फ़ेडरेशन स्थापित करने की घोषणा करेंगे। परन्तु यह बात तो स्पष्ट ही है कि हैदराबाद, मैसूर, कश्मीर, ग्वालियर, बड़ौदा, ट्रावनकोर, कोचीन, उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, इन्दौर आदि देशी रजवाड़ों ने अभी तक स्वीकृति नहीं दी है। बहुत ज़्यादा तादाद में रियासतें फ़ेडरेशन को स्वीकार कर लेंगी, ऐसे लक्षण तो नहीं दिखाई देते। तथापि कई रियासतों के प्राइम मिनिस्टर शिमला में उपस्थित हैं और शायद भीतर ही भीतर गहरी बातचीत हो रही है,

भारत-सचिव, गवर्नर-जनरल, लार्ड लोथियन, लार्ड हेमुएल आदि महानुभावों ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि भारत-सरकार इस सम्बन्ध में कौंसिल में अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए रियासत के शासकों से बातचीत करे।

इधर भारतवर्ष के ११ प्रांतों में आसाम को लेकर ८ कांग्रेसी प्रांत हैं। और कांग्रेस फ़ेडरेशन स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है। देशी रजवाड़े और कांग्रेस दोनों अपने अपने ढंग से उसमें तरमीम करवाना चाहते हैं। अँगरेज़ सरकार उसमें संशोधन करने को तैयार नहीं है। फ़ेडरेशन का प्रश्न ऐसा ही विकट है। तथापि सरकार निराश नहीं है।

भीतर भीतर वह जो अपनी कार्रवाई कर रही है, बिलकुल पता नहीं है। देखना है कि अब क्या होता है। फ़ेडरेशन की स्थापना के सम्बन्ध में सरकार ज़बरदस्ती करती है या लोकमत का आदर कर विधान में तरमीम करवाती है। परिस्थिति को देखते हुए आशा होती है कि सरकार को लोकमत का आदर करना होगा।

डाक्टर रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

प्रसन्नता की बात है कि इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी ने इस वर्ष अपने यहाँ के अध्यापक पण्डित रामशंकर शुक्ल 'रसाल' एम० ए० को हिन्दी में पी-एच० डी० की डिगरी दी है। रसाल जी इस यूनिवर्सिटी के हिन्दी के सर्वप्रथम 'डाक्टर' हुए हैं। उनकी इस सफलता के लिए बधाई है। इसके लिए वे सर्वथा अधिकारी भी हैं—व्रजभाषा के प्राचीन साहित्य के मार्मिक विद्वान् हैं। इस डिगरी के लिए उन्होंने अपने प्रिय विषय अलंकार-शास्त्र पर ही निबन्ध लिखा है। इस यूनिवर्सिटी से हिन्दी में डाक्टर होने का द्वार खोलकर रसाल जी ने दूसरों को प्रोत्साहन दिया है। आशा है, उनकी इस सफलता से हिन्दी के अन्य नवयुवक विद्वानों को काफ़ी प्रोत्साहन मिलेगा।

भारतीय इतिहास-कांग्रेस का द्वितीय अधिवेशन

भारतीय इतिहास-कांग्रेस का पहला अधिवेशन पूना में हुआ था। इस बार इसका दूसरा अधिवेशन प्रयाग में डाक्टर डी० आर० भंडारकर के सभापतित्व में हुआ। अधिवेशन के प्रारम्भ में काशी-नरेश ने भाषण किया।

इस अधिवेशन की बैठकें तीन दिन तक हुईं। पुरातत्त्व-विभाग, वर्तमान इतिहास-विभाग, प्राचीन भारतीय इतिहास, महाराष्ट्र का इतिहास-विभाग, मध्यकालीन और राजपूत-इतिहास-विभाग, मुग़ल-इतिहास-विभाग इत्यादि विभागों की अलग अलग बैठकें हुईं, जिनमें अनेक महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला गया।

भारतीय इतिहास-कांग्रेस के कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए १३ विद्वानों की एक कमिटी बनाई गई है, जिसके सभापति डाक्टर भंडारकर और सेक्रेटरी सर शफ़ात अहमद ख़ाँ हैं। इस कमिटी ने १६ विद्वानों की एक दूसरी कमिटी बनाई है, जो भारतवर्ष का एक विस्तृत इतिहास लिखेगी। इस कमिटी में भारत के मुख्य मुख्य इतिहास-वेत्ता रक्खे गये हैं। इन लोगों ने इतिहास-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण खोजें की हैं और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। ऐसे विद्वानों के सहयोग से भारत का जो इतिहास लिखा जायगा वह प्रामाणिक होगा। ऐसे भारी प्रयत्न के करने की व्यवस्था करके इतिहास-कांग्रेस ने अपने अनुरूप कार्य किया है और इस प्रकार अपने नाम को सार्थक किया है। उक्त कमिटी अपना यह महान् कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ भी कर देगी। बहुत दिनों से लोगों की यह इच्छा थी कि भारतवर्ष का एक व्यापक और वैज्ञानिक इतिहास लिखा जाय। इसमें सन्देह नहीं है कि हमारे इतिहास-वेत्ताओं ने भिन्न भिन्न कालों की काफ़ी अधिक खोज कर डाली है। उस सब तितर-बितर सामग्री से भारत का इतिहास लिखने में बड़ी सहायता मिलेगी। ऐसी अवस्था में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भारतवर्ष का इतिहास ख़ूबी के साथ तैयार हो सकेगा। हमें पूर्ण आशा है, इतिहास-कांग्रेस अपने इस विराट् आयोजन में पूर्णरूप से सफल होगी।

पेलेस्टाइन का विद्रोह

पेलेस्टाइन एक छोटा सा देश है—इतना छोटा कि वह भारत के किसी बड़े ज़िले से कुछ ही बड़ा होगा। ऐसे नन्हें से देश में इतनी बड़ी अँगरेज़ सरकार अभी तक शान्ति की स्थापना नहीं कर सकी। पिछले ढाई वर्ष से

वहाँ विद्रोह मचा हुआ है। इस समय तो वहाँ देहात से अँगरेज़ी सत्ता ही उठ गई है। देहातों में तो अरबों ने अपनी कचहरियाँ तक खोल ली हैं और केवल शहरों में ही अँगरेज़ों की सत्ता शेष रह गई है और सो भी अँगरेज़ी सेना की उपस्थिति के कारण।

इधर ११वीं आक्टोबर को कैरो में मुस्लिम इन्टर पार्लियामेंटरी कांग्रेस की बैठक हुई थी, जिसमें इस मर्म का एक प्रस्ताव पास किया गया कि सभा बालफ़ोर की घोषणा को रद समझती है और यह माँग करती है कि पेलेस्टाइन में यहूदियों का आना रोक दिया जाय, अन्यथा सारे अरब लोगों से कहा जायगा कि वे अँगरेज़ों और यहूदियों को अपना शत्रु समझें। इधर यहूदी लोग इस बात के प्रयत्न में हैं कि अँगरेज़ लोग बालफ़ोर की घोषणा को क़ायम रक्खें और पेलेस्टाइन पूरा का पूरा यहूदियों का देश बना दिया जाय।

कहा जाता है कि इस विद्रोह के संचालक जेरूसलेम के भूतपूर्व मुफ़्ती हज अमीन अल हुसेनी हैं। ये इस समय सीरिया के करनायल नाम के गाँव में रहते हैं और वहीं से विद्रोह का सञ्चालन बड़ी सावधानी के साथ कर रहे हैं। यह भी कहा जाता है कि असली विद्रोहियों की कुल संख्या ४०० है और अवसर पर उनकी सहायता के लिए ३००० आदमी और एकत्र किये जा सकते हैं। इस विद्रोह के सञ्चालन में दस हज़ार पौंड मासिक ख़र्च हो रहा है।

ऐसे ही संगठित विद्रोह का दमन करने के लिए अब अँगरेज़ सरकार को फ़ौजी कार्रवाई करने को लाचार होना पड़ा है। इस समय वहाँ पैदल सेना के १७ बटालियन, घुड़सवार सेना की दो रेजीमेंटें तथा एक तोपख़ाना मौजूद है। देखना है कि इस संघर्ष का क्या परिणाम निकलता है।

ताँबा और उसकी खपत

ताँबे का उपयोग संसार में दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। इस धातु के द्वारा कई प्रकार के आभूषण, बर्तन, सिक्के, खिलौने, मशीनें इत्यादि बनती हैं। बिजली के आविष्कार तथा वर्तमान शस्त्रीकरण ने ताँबे का महत्त्व और भी बढ़ा दिया है। बिजली के तार ताँबे के ही बनते हैं। इसी प्रकार युद्ध की बहुत-सी सामग्रियों के बनाने में भी ताँबे का उपयोग होता है। १९०० ईसवी में दुनिया भर में ५,१२,००० टन ताँबा ख़र्च हुआ था और अब १९३७ ईसवी में उसका ख़र्च २०,६२,००० टन हो गया है।

गत आठ साल के बीच में अमरीका के संयुक्त-राज्यों में पहले से ताँबे का दुगुना अधिक ख़र्च बढ़ गया है और सोवियट रूस और जापान में तिगुना। इन देशों में लोग बिजली का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में करने लगे हैं। ब्रिटेन में भी ताँबा की बहुत ज़्यादा खपत होती है। गत वर्ष सन् १९३७ में निम्न देशों में ताँबे के ख़र्च का औसत प्रतिव्यक्ति इस प्रकार रहा—

ब्रिटेन १४·२९ पौंड;
संयुक्त-राज्य १३·५६ पौंड;
जर्मनी ७·४३ पौंड;
फ्रांस ६·२६ पौंड थी।

दुनिया भर में सबसे अधिक मात्रा में ताँबा संयुक्त-राज्य में निकलता है। गत वर्ष मार्च में ताँबा की क़ीमत ७८ पौंड प्रतिटन थी। इस वर्ष मई महीने में उक्त क़ीमत घटकर ३२ पौंड १० शिलिंग हो गई। पर अब क़ीमत फिर बढ़ रही है और निकट भविष्य में ४८ पौंड तक आ जाने की आशा है क्योंकि अमेरिका दिन पर दिन अधिक मात्रा में ताँबे का उपयोग करता जा रहा है।

इस शस्त्रीकरण के युग में ताँबे का उपयोग बढ़ जाने की और भी सम्भावना है। भारत में भी ताँबा दक्षिण-भारत, राजपूताना तथा हिमालय के कतिपय भागों में पाया जाता है। महायुद्ध के दिनों में ताँबा यहाँ भी अधिक मात्रा में निकाला गया था, परन्तु बाद को फिर उसके निकालने की वैसी प्रवृत्ति नहीं रही। इस ओर केन्द्रीय सरकार का ध्यान जाना चाहिए।

Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., ALLAHABAD.

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

दिसम्बर १९३८ } भाग ३९, खंड २
संख्या ६, पूर्ण संख्या ४६८ { मार्गशीर्ष १९९५

मिलन

लेखक, श्रीयुत नर्मदाप्रसाद खरे

मैं विजन का फूल सुन्दर।
विजन में ही भर रहा हूँ, एक सुखमय साध लेकर॥
फूल कर मोहक हुआ था, प्रेममयि! तुमको रिझाने;
वायु में सन्देश भेजे, मानिनी! तुमको बुलाने,—
मिलन की मनुहार ले अब, बिछ रहा हूँ प्रेम-पथ पर॥ मैं०—
प्रात आता प्यार लेकर, साँझ नव अनुराग लाती,
इन्दु पलकें चूमता है, चाँदनी मुझको सुलाती;
पर प्रतीक्षा में खड़ा हूँ, लोचनों में नीर भर-भर॥ मैं०—
सिन्धु से मिलने सदा-सी, आज सरिता जा रही है,
एक नव सन्देश लेकर, आज बुलबुल गा रही है;—
'चिर-विरह ही चिर-मिलन है' गूँजता सब ओर यह स्वर।
मैं विजन का फूल सुन्दर॥

रावबहादुर गोविन्द सखाराम सरदेसाई

लेखक, प्रोफ़ेसर बेनीमाधव अग्रवाल, एम० ए०

महाराष्ट्र के विख्यात विद्वान् श्री सरदेसाई एक ऐसे महापुरुष हैं जिन पर भारत को अभिमान होना चाहिए ! वे महान् इतिहासकार हैं, इतने से ही उनका पूरा परिचय नहीं दिया जा सकता। उन्होंने मराठा-इतिहास की आधार-भूत सामग्री को बड़ी चेष्टा और योग्यता के साथ संकलित और संपादित कर, अपनी साधना और प्रेरणा से, इतिहास-लेखकों का मार्ग बहुत ही सुगम बना दिया है। इस कार्य को हाथ में लेने और निबाहने के लिए असाधारण धैर्य, अध्यवसाय एवं योग्यता की ज़रूरत थी। सौभाग्य से सरदेसाई में इन गुणों के सिवा और भी महान् गुण हैं, जिन्होंने उनकी जीवनी को गौरव-पूर्ण एवं शिक्षाप्रद बना दिया है।

वंश और जन्म

सरदेसाई रत्नागिरी के रहनेवाले महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। उनके पूर्वज पेशवाओं तथा कोल्हापुर के नरेशों के यहाँ नौकरी करते रहे और उन्होंने धन और मान प्राप्त किया। बाद में उनकी दशा ख़राब होगई, यहाँ तक कि वे कृषक की स्थिति को पहुँच गये। श्री सरदेसाई के पिता सखाराम खेती करने लगे और गोविल गाँव में उन्होंने मकान बनाया। दुर्भाग्य से उनकी हालत बिगड़ती ही गई और वे क़र्ज़ में फँस गये। एक साहूकार उन पर बड़ी सख़्ती करता था, परंतु उसका रुपया तमादी हो गया। धीरे-धीरे सखाराम के दिन फिरे, उनके पुत्रों ने अच्छे-अच्छे पद पाये, और क़र्ज़ चुकाने के लिए रुपया भेजा। परन्तु उन्होंने यह साफ़ लिख दिया कि उस अत्याचारी साहूकार का रुपया न चुकाया जाय। क़ानून के बल पर वह रुपया नहीं पा सकता था, परंतु सखाराम ने पहले उसी का हिसाब चुकताकर अपनी ईमानदारी का परिचय दिया। सादगी और सचाई,

[रावबहादुर गोविन्द सखाराम सरदेसाई]

परिश्रमशीलता और कष्टसहिष्णुता, ये सखाराम के प्रधान गुण थे और इनकी छाप हम उनके पुत्रों में भी पाते हैं।

सखाराम की धर्मपत्नी का नाम गंगाबाई था। हमारे चरितनायक गोविंदराव उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं। इनका जन्म १७ मई १८६५ ईसवी को गोविल के समीप हसोल गाँव में हुआ था। सखाराम की मृत्यु ७२ वर्ष की आयु में १९०७ ईसवी में हुई। गंगाबाई ने १९१६ ईसवी में काशी में प्राण त्यागे।

शिक्षा

गोविंदराव ने प्रारंभिक शिक्षा शिपोशी ग्राम में पाई। फिर वे रत्नागिरी-हाईस्कूल में भर्ती हुए। इस समय उनके घर की हालत ठीक नहीं थी, इसलिए उन्हें बड़ी सादगी से काम चलाना पड़ता था। वे स्कूल में ही सोते और १॥) महीने में एक होटल में भोजन करते। उनके एक शिक्षक मोरेश्वर वामन कीर्त्तने बहुत ही योग्य थे। गोविंदराव के गुणों को देखकर उन्होंने अपनी कन्या सौभाग्यवती लक्ष्मीबाई का विवाह उनके साथ कर दिया। १८८४ ईसवी में उनकी शादी हुई और इसी साल उन्होंने मैट्रिक पास किया। इसके बाद उन्होंने पूना के फ़र्ग्युसन-कालेज तथा बम्बई के एल्फिंस्टन कालेज में शिक्षा पाई और १८८८ ईसवी में बी० ए० पास किया।

नौकरी

१८८९ ईसवी में गोविंदराव सरदेसाई ७०) मासिक पर बड़ोदा-नरेश श्री सयाजीराव गायकवाड़ के रीडर नियुक्त हुए। बाद में वे राजपुत्र व राजपुत्रियों के शिक्षक बने। फिर राजमहल के आय-व्यय-लेखक व निरीक्षक का काम करते रहे। इन सभी पदों पर उन्होंने अपनी योग्यता का परिचय दिया और अनेक बार महाराज ने उनकी कार्य-कुशलता की प्रशंसा की। महाराज के साथ सरदेसाई पाँच बार योरप भी गये। ३६ वर्ष की सेवा के बाद उन्होंने बड़ोदा से विदा ली। इस समय उनको ४८५) वेतन मिलता था। कुछ दिनों तक उनको पेंशन मिलती रही, परंतु महाराज से मतभेद हो जाने के कारण वह घटा कर ९५) के लगभग कर दी गई। अँगरेज़ी सरकार और देशी रियासत की नौकरी में कितना अन्तर है! इस समय सरदेसाई की अवस्था ६१ से अधिक थी और वे अपने एकमात्र पुत्र को खो चुके थे।

पुत्र-वियोग

सरदेसाई के दो पुत्र हुए। छोटा श्रीवत्सलांच्छन १९०३ ईसवी में पैदा हुआ। बड़ा ही सुन्दर और कुशाग्रबुद्धि बालक था। परंतु उसे मन्द-ज्वर ने धर दबाया और दो साल की बीमारी के बाद १९१५ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गई।

बड़े पुत्र श्यामकान्त का जन्म १८९८ ईसवी में हुआ था। अत्यन्त सुशील एवं होनहार बालक था। श्री रवीन्द्रनाथ के शान्तिनिकेतन में वह भर्ती हुआ और कलकत्ता से मैट्रिक पास किया। इस महाराष्ट्रीय बालक ने एक साल में बँगला सीखी और परीक्षा में प्रथम हुआ। इसके बाद १९२० ईसवी में उसने बम्बई से बी० ए० पास किया और १९२१ में बी० एस-सी०। फिर उच्च औद्योगिक शिक्षा पाने के लिए वह योरप गया और १९२४ ईसवी में उसने बर्लिन से पी-एच० डी० की उपाधि पाई। दैवकोप से इस सदाचारी नवयुवक को योरप में ही राजयक्ष्मा ने धर दबाया। उसे बचाने के सब प्रयत्न निष्फल हुए। भयंकर रोग की यातना को धीरता से सहन करते हुए श्यामकान्त को एकमात्र चिन्ता थी सुदूर भारत में अपने माता-पिता की, जिनका वह एकमात्र आधार था। डाह्वोस स्विट्ज़रलैंड में है—२८-११-२५ को उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। जिस अतिमानुषी वीरता के साथ सरदेसाई ने इस वज्राघात को अपनी छाती पर लिया वह स्तुत्य है। ऐसे आघात के बाद भी जो पुरुष अपनी उजड़ी गृहस्थी में, स्वाभाविक स्फूर्ति एवं स्थिरचित्तता के साथ, अपने कर्त्तव्य एवं उद्देश्य की आराधना में संलग्न रहता है, वास्तव में उसकी शिक्षा-दीक्षा धन्य है। श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर ने ठीक ही लिखा था—"इतिहास को आपने अपना पुत्र मान लिया वह तो अमर है।" जीवनसंध्या के नैराश्यमय एकान्त में सरदेसाई की इस साधना ने उनका साथ दिया।

इतिहास-लेखन और अनुसंधान

(अ) मराठी रियासत—इतिहास-लेखन तो सरदेसाई ने बड़ोदा में ही शुरू कर दिया था, लेकिन नौकरी छोड़ने के बाद उन्होंने अपना सारा समय इसी में लगा दिया। उन्होंने दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से विशेष उल्लेखनीय 'मराठी रियासत' है। इसी से वे 'रियासतकार' के नाम से विख्यात हैं। यह अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है और ३० वर्ष के परिश्रम का फल है। इसका अन्तिम भाग (आठवाँ) १९३२ ईसवी में प्रकाशित हुआ था। इस विस्तृत ग्रन्थ में मराठों के उत्थान और पतन की कथा है। इसकी भाषा सरल और शैली सरस है। भारतीयता की दृष्टि से, ऐतिहासिक सत्य के आधार पर, इतिहासकार ने इस ग्रंथ में हमारे एक उल्लेखनीय युग का शिक्षापूर्ण एवं हृदयग्राही चित्र खींचा है। निश्चय ही यह अपने विषय का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इस कोटि का ग्रन्थ किसी भी इतिहासकार को अमरकीर्ति प्रदान कर सकता है, परन्तु इसी से सरदेसाई के कार्य का अन्त नहीं हो गया।

(ब) पेशवा-दफ़्तर—मराठा-शासन के हस्तलिखित काग़ज़-पत्रों के २७,००० बंडल ब्रिटिश सरकार के पास पूना में थे। इनको पूना-दफ़्तर, मराठा-दफ़्तर व पेशवा-दफ़्तर कहते हैं। इनमें पेशवाओं के रोज़नामचे, हिसाब-लेख,

आज्ञा-पत्र तथा सामन्तों, राजदूतों अथवा अन्य अधिकारियों के पत्र आदि हैं। इनसे मराठा-युग की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक अवस्था पर प्रकाश पड़ता है। परन्तु इन काग़ज़-पत्रों को पढ़ना, इतिहासोपयोगी पत्रों को चुनना, उनकी तिथि निश्चित करना तथा उनको सम्पादित कर प्रकाशित कराना साधारण काम नहीं था। गणना की गई थी कि इसे पूरा करने में ३० वर्ष लगेंगे और ८ लाख रुपया ख़र्च होगा। मराठा-इतिहास की यह सामग्री शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित हो, ऐसा आन्दोलन महाराष्ट्र में फैलने लगा। १९२९ ईसवी में बंबई-सरकार ने यह कार्य सरदेसाई को सौंपा और तीन साल के लिए १०,०००) सालाना ख़र्च स्वीकार किया। असाधारण कठिनाइयों के बीच, अथक परिश्रम के साथ, सरदेसाई ने उस कार्य को शुरू किया और यह आशा की कि ४ वर्ष में वह समाप्त हो जायगा। परन्तु चौथे साल सरकार ने रुपया देने में असमर्थता प्रकट की। फलतः सर यदुनाथ सरकार और सरदेसाई ने महाराष्ट्र में दौरा किया और १२,०००) चन्दा जमा किया। इसी के बल पर काम आगे चला और १९३३ ईसवी में समाप्त हुआ। पेशवा-दफ़्तर के उपयोगी काग़ज़-पत्रों की ४५ जिल्दें छपवाकर प्रकाशित कराई गई। ४६वीं जिल्द में सरदेसाई ने इस सामग्री का संक्षिप्त वर्णन लिखा है। सामग्री मराठी में है, परन्तु उसके स्पष्टीकरण के लिए सरदेसाई ने अँगरेज़ी में फ़ुटनोट दे दिये हैं। उनके उद्योग से आज इतिहास के विद्यार्थियों को यह बहुमूल्य सामग्री सुलभ हो गई है।

(स) महादजी शिंदे के काग़ज़-पत्र—महादजी शिंदे (१७२७-९४) मराठा-इतिहास के एक उल्लेखनीय महापुरुष हो गये हैं। उनकी नीति और कार्य के बारे में इतिहासकारों में मतभेद रहा है। उनके काग़ज़-पत्र नाना फडनीस के मकान में (मिनावली गाँव में) संग्रहीत पाये गये। फिर श्री पारसनीस के हाथ में आये। किस प्रकार सर यदुनाथ सरकार और सरदेसाई के प्रयत्न से तथा ग्वालियर-दरबार की उदार सहायता से यह अमूल्य ऐतिहासिक सामग्री प्रकाशित हो सकी, इसकी अपनी अलग कथा है। सरदेसाई ने इन पत्रों का सम्पादन किया है। इनकी सहायता से महादजी की नीति व उनके व्यक्तित्व का समुचित अध्ययन हो सकेगा।

(ड) पूना-रेज़ीडेन्सी-रिकार्ड—१७८६ ईसवी से पेशवा की राजधानी पूना में अँगरेज़ रेज़ीडेन्ट रहने लगे। उनके इतिहास-सम्बन्धी काग़ज़-पत्र मराठा-इतिहास के लिए अत्यन्त आवश्यक एवं उपयोगी हैं। आज-कल सर यदुनाथ सरकार, सरदेसाई तथा तीन अन्य विद्वान् इनका सम्पादन कर रहे हैं और बम्बई-सरकार इनको प्रकाशित करा रही है।

उनके कार्य का महत्त्व

सरदेसाई मराठा-इतिहास के सर्वोच्च ज्ञाता हैं। वे राष्ट्रीय इतिहास के पक्षपाती हैं। वे चाहते हैं कि मराठा-इतिहास का वैज्ञानिक अनुसन्धान किया जाय और समस्त मौलिक एवं प्रामाणिक सामग्री के आधार पर इतिहास लिखा जाय। ऐतिहासिक सत्य के बल पर वे अपनों की आलोचना तथा दूसरों की प्रशंसा करने में कदापि नहीं हिचकते। उन्होंने नाना फडनीस की नीति के अनेक अंशों की आलोचना की है। किसी मराठा-इतिहासकार के लिए ऐसा करना मामूली बात नहीं है। मराठा-इतिहास की सामग्री का जैसा संग्रह उनके पुस्तकालय में है, वैसा शायद ही और कहीं हो। उनकी जिज्ञासा अनन्त और अध्ययन-शीलता अद्भुत है। प्रत्येक पुस्तक को वे अच्छी तरह पढ़ते हैं और नवीन खोज व सूझ के आधार पर अपने नोट उसमें लिखते जाते हैं। उनका उद्देश्य उच्च एवं उदार है। वे विद्वानों के सहयोग का स्वागत करते हैं, और जिज्ञासुओं की सब प्रकार की सहायता देने के लिए तैयार रहते हैं। सर यदुनाथ सरकार ने उन्हें आधुनिक भारत का सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार कहा है। वास्तव में सरदेसाई के साथ साथ सर यदुनाथ को भी यह गौरव प्राप्त है। ये दोनों महापुरुष हमारे देश के अमूल्य रत्न हैं। इनका पारस्परिक प्रेम एवं सहयोग विविध प्रान्त के इतिहासकारों के लिए आदर्शस्वरूप होना चाहिए।

सरदेसाई धन-मान के इच्छुक नहीं, उनकी समस्त साधना स्वान्तःसुखाय है। सरकार ने उन्हें 'रावबहादुर' की उपाधि दी है। उनकी ७४वीं वर्षगाँठ पर बम्बई में उन्हें गत पहली अक्टूबर को जस्टिस जयकर के सभापतित्व में दो अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित किये गये। इसके अनन्तर कामशेट में इतिहास-परिषद् की बैठक हुई।

सरदेसाई का व्यक्तित्व—कामशेट का आश्रम

आज-कल कई वर्षों से सरदेसाई कामशेट में रहते हैं। यह ग्राम पूना के समीप है। आस-पास प्राकृतिक सौन्दर्य है, पास ही एक छोटी नदी है इन्द्रायणी। ग्राम से कुछ दूर उनके भाई डाक्टर दिनकरराव ने एक बँगला बनवा दिया है। आस-पास ३-४ मकान और बन गये हैं। यहाँ का जलवायु बहुत अच्छा है, सीधे-सादे ग्रामीण पड़ोसी हैं, शान्तिमय वातावरण है। यहीं अपनी धर्मपत्नी के साथ सरदेसाई साधना में तल्लीन रहते हैं। गौरवर्ण, छोटा क़द, इकहरी देह, मुखमण्डल पर गम्भीर विचार-चिन्तन की रेखायें, सफ़ेद बाल जिनका कालापन बहुत धीरे धीरे दूर हो रहा है, आत्मिक शान्ति की ज्योति से भूषित नेत्र—यही चित्र सरदेसाई का हमारे सामने आता है। आज ७४ वर्ष की अवस्था में उनकी स्फूर्ति किसी नवयुवक से कम नहीं। लकड़ी काटना, नदी में तैरना, ऊँची पहाड़ियों पर घूमना; ये आज-कल उनके व्यायाम हैं। उनकी जीवनचर्या अत्यन्त नियमित है। भोजन और वस्त्र में सादगी और सफ़ाई का सुन्दर मेल है। खुली हवा उन्हें पसन्द है और वे बारहों महीने बरामदे में सोते हैं। उनका हृदय पवित्र एवं उदार है, स्वभाव बालकों के समान सरल है। कृत्रिमता तथा स्वार्थपरता से कोसों दूर सरदेसाई शिष्टाचार की मूर्ति हैं।

कामशेट के इस रमणीय ग्राम में सरदेसाई की विद्वत्ता, सात्विकता तथा एकान्त-साधना के वातावरण में शरीर को स्वास्थ्य, बुद्धि को तेज, हृदय को उत्साह तथा आत्मा को बल मिलता है और यह स्पष्ट अनुभव होने लगता है कि प्राचीन काल के ऋषि और उनके आश्रम कैसे रहे होंगे। भारत का यह आधुनिक ऋषि चिरजीवी हो और राष्ट्रीय इतिहास की उसकी कल्पना फलवती हो, यही हमारी ईश्वर से प्रार्थना है।

मुक्ति-पथ

लेखक, श्रीयुत अंचल

पाल प्रलय श्वासों से फूले नौका मत्त चली जल में।
कुछ वैसा ही खेनेवाला बेहोशी के हिमतल में॥

फिर न अनय होगा जीवन में ऐसा प्राणों में न प्रलय।
उठता धुन्ध महासागर से जल जल उठता तृषित हृदय॥
आज अकल अञ्चल में बिछने को उतावले चिर चंचल।
प्राण धुँआ देते मरघट से, मेरे निर्मोही उज्ज्वल!

कालारूप फटा पड़ता तूफ़ानी लहरों में किस पर।
दूर जलधि में वातायन से कौन झाँकता रूप-प्रखर॥
आज उसी के नूपुर बजते रक्त-तरंगों में झन झन।
पाल प्रलय श्वासों से फूले, आज न रुकने का यौवन॥

किस सुदूर ने आज पुकारा मेरु गीत के स्वर भर भर।
शस्यश्यामला आज न रुचती टूट चले बन्धन हर हर॥
जीवन के शुभ स्पर्श चिह्न तो आज अमंगल ही लाते।
कूल-कूल में छिपे मरण क्यों मुक्ति-दूत बनते जाते॥

उस अनदेखी जलकन्या का असमय मोह उमड़ आया।
आज निधन चीत्कार सजाये अपनी बस्ती में लाया॥
तीखी-तीखी प्यास लगाये देता यह आह्वान कठिन।
आज रुकूँ भी तो मैं कैसे, ढूँढ़ रहे मुझको दुर्दिन॥

भूख की ज्वाला से जर्जर, धनिकों के तिरस्कार के आखेट एक मज़दूर-हृदय का करुण और भावपूर्ण चित्रण।

प्रगति

लेखक, श्रीयुत अमृत

दिन पूरे होने को आये, जब मनोहर ने थोड़ी-सी मटर चबा ली थी। वह मटर भी इस तरह मिल गई कि कोई छोटी-सी लड़की गाँव के भड़भूँजे के पास भुनाने को ले जा रही थी। राह में डलिया हाथ से गिर गई और मटर बिखर गई। वह उसे बीनने लगी। मनोहर जो कुछ दूर खड़ा था, मटर को गिरी देखकर बेतहाशा दौड़ा और लड़की के बहुत हाँ-हाँ करने पर भी बहुत-कुछ बीनकर कुत्तों की तरह मुँह में भर ली। खा चुकने पर उसने अजीब तरीक़े से लड़की की तरफ़ देखा और हँस दिया। उसके दिमाग़ को जैसे पेट की आग ने शराब के पीपे की तरह ख़ाली कर दिया हो। वह हँसता रहा और लड़की घबराकर भाग गई। मनोहर फिर अपने टीले पर लौट आया। वह कुछ सोच रहा था।

भूखे पेट उस मटर के चबा डालने से कुछ तकलीफ़ तो ज़रूर हुई, यानी पेट में बड़े ज़ोर से दर्द उठा, जिससे वह घोड़े की तरह पैर फटकारने लगा और उसने अपने को धुनकर रख दिया, परन्तु भूख हमेशा की तरह अन्दर कीड़े की तरह कुतरती रही। मनोहर समझ न सका कि किस प्रकार वह इस भूख को एक तेज़ छूरी लेकर पेट चीर कर हमेशा के लिए हटा दे।

वह अभी ज़मींदार के यहाँ से ईंटें चढ़ाकर आया है। इस आशा से कि कुछ ताँबे के सिक्के मिल जायँगे जिनसे वह कुछ लेकर खायेगा। थोड़े से भी पैसे मिल जाते तो फिर चबेना और नमक लेकर ही पेट भर लेता। ईश्वर ने जब एक ख़ाली ढोल बनाया है तब उसमें भरने के लिए भी कुछ न कुछ चाहिए ही। कुछ नहीं तो पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े लेकर ही पानी के सहारे निगल जाऊँ तो कुछ तो मालूम होगा ही। इस भाड़ में घुसकर जो कीड़ा अपने नुकीले दाँतों से कुतर रहा है......पागल......उसे तो दबा देंगे वे निगले हुए पत्थर!

मनोहर रात भर बँसवारी में पड़ा करवटें बदलता रहा। उसे नींद न आई। शरीर टूट रहा था, थकान से चूर था। उसका पिछला दिन दूसरे गाँवों में मज़दूरी ढूँढ़ने में बीता था। तो भी क्या?......थोड़े से चने और एक डला नमक भी मिल जाता तो कुछ भूख मरती! उसने प्रश्न किया—"भूख मरती?" उसे आश्चर्य हुआ कि भूख कभी कम भी हो सकती है। रात हो गई और वह आकर उस भद्दी बँसवारी में लेट रहा जहाँ बचपन में दौड़ता था और आज अपना एक झोंपड़ा न होने से सोता है।

बँसवारी में वह अधमरा लेटा रहा, उसकी आँखों में नींद न थी, वह जागता पड़ा रहा, सपनों का भोजन करता हुआ—"सुबह वह ऐसे देश में जायगा जहाँ पैसे—...हुँः, कैसे ओछे हो? रुपये और अशर्फ़ियाँ डालों में फलती होंगी। सेब, अङ्गूर वग़ैरह ज़मीन पर महुए की तरह पड़े होंगे। मक्खन लगी हुई रोटी के टुकड़े...कितने नीचे... सिर्फ़ पाँच फ़ुट ऊँचे पेड़ में होंगे...और जब उन्हें जो चाहे तोड़कर खा ले। फल लगे हैं...खाने के लिए ही नहीं तो क्या देखने के हैं? मालिक मुझे खाने को बहुत कहेगा, पर मैं खा न सकूँगा। मुझे भूख नहीं है।"

उसने पीपल के कुछ गोदे खाये थे। वह फिर अपने पर हँसा और उसने जैसे अपने को समझाने को कहा—"भूख में सपने भी कैसे आते हैं भाई! पर चुप, चुप मुझे ये सब बेवक़ूफ़ी की बातें पसन्द नहीं हैं। कैसे गधे हो!"...

उसी हालत में पड़ा-पड़ा वह चौकीदार का पहरा सुनता रहा। उसे कब झपकी आ गई, वह नहीं जानता।

मनोहर जब सो कर उठा, धूप फैल चुकी थी। लोग कुदालें लेकर काम पर जा रहे थे। कुछ लोग मनोहर के बग़ल से भी गुज़रे और उन्होंने मनोहर को चिथड़े में लिपटा और बँसवारी में पड़ा देखा। मनोहर की हालत इस वक़्त बुरी हो रही थी क्योंकि पेट कुछ दानों के लिए बेताब था। मचलते पेट को बहलाने के लिए जो कुछ गोदे खा लिये गये थे [illegible]तली पैदा कर रहे थे। वह

[सो]चता था—'बड़े गन्दे थे वे गोदे! कुत्तों के रौंदे हुए!' [म]नोहर की आँखों में आँसू आ गये। क़ै नहीं हो रही थी। [व]ह हलक़ में उँगली डालकर क़ै कर डालना चाहता था। [प]र भी उसे घबराहट न थी। वह जानता था कि मौत [ऐ]से ही वीभत्स साज के साथ आया करती है।

शरीर की उस गिरी हुई दशा में मनोहर को पूरा [इत्मी]नान हो गया कि वह मरने जा रहा है। ये आँख के [आ]गे उड़नेवाली तितलियाँ आँख मींचने भर में न [र]हेंगी। एक असीम अँधेरे में न मालूम कब तक अपने भूखे [पे]ट को धोखा देते हुए वह पड़ा रहेगा। एक घटाटोप अँधेरे [क]ी चादर उसे अपनी ठण्डी गोद में छिपा लेगी; पर फिर [भ]ी मनोहर अच्छी तरह जानता है, उस काली चादर में [क]ी रोटी का टुकड़ा या भात हर्गिज़ न होगा। मनोहर [न]े एक बार फिर सोचा—"वह भी कैसा अभागा है कि [उ]सके पास खाने को कुछ नहीं है।" पर दूसरे पल ही जैसे [सो]ते हुए अभिमान ने जागकर कहा—'कौन कहता है, [ख]ाने को नहीं है? हुँः जब खाने की इच्छा न हो तो?'

और वास्तव में मनोहर सहज रूप से हँसा।

मनोहर को फिर मरने का ध्यान आया। 'कुछ भी [हो], जब मरना ही है तो वह लेटे हुए नहीं, दौड़ते हुए [मरे]गा! अगर वह सोते हुए मरा पाया जाय तो उसके [लि]ए शर्म है।' उसने सहस्र क़समें गले के नीचे उतार लीं [कि उ]समें वह किसी भी सूरत से सोते में मरा न पाया जाय। [वह] उठ कर खड़ा हो गया। वह कुछ दूर चला [थ]ा कि किसी ने उस पर दया करके बतलाया कि ज़मींदार [के] यहाँ ईंटें चढ़ाने के लिए आदमियों की ज़रूरत है। मनो-[ह]र ने उस आदमी की आँखों में देखा और विश्वास करना [च]ाहा कि जो कुछ वह कह रहा है, झूठ नहीं है। भूख [मा]नव में अविश्वास का पहला बीज डालती है; [म]नोहर ने अविश्वास के उस संसार के पार आकर विश्वास [रख]ना चाहा। वह आदमी किसी प्रश्न की प्रतीक्षा में [ख]ड़ा था, पर मनोहर के मुख से 'जैरामजी' भी न निकली। [वह] केवल खड़ा रहा। उसकी ख़ुशी का ठिकाना न था। [उ]से लगा कि वह भूख के परे है। फिर वह एकाएक पूरे [बल] से दौड़ने लगा। सोचता जाता था—हुँः हुँः—भूख? [भू]ख? भूख क्या? भूख कोई चीज़ नहीं होती। मुझे भूख [लग]ती ही नहीं; हाँ, नहीं तो क्या? अगर किसी की खाने की तबीअत ही न हो तो कोई क्या करे? दो रोज़ से मन ज़रा बिगड़ा हुआ है। और क्या? इसी लिए खा नहीं रहा हूँ। 'हाँ, नहीं खा रहा हूँ। ज़मींदार कितना कह रहा था बेचारा "आओ मेरे साथ खाओ"—यही सब न? हाँ, "बड़ा एहसानमन्द हूँगा"। पर तुम्हीं सोचो न? कहाँ का एहसान कहाँ का क्या, जब किसी की खाने की मन्शा ही न हो? मुझे बेचारे ज़मींदार को निराश करना पड़ा, पर मैं अब भूख की उस दशा में करता भी क्या? बेचारा ज़मींदार!'

उसकी आँखों में उस ज़मींदार के लिए आँसू आ गये जिसके यहाँ वह सिर्फ़ भूख न होने से न खा सका!

वह फिर सोचने लगा—'मेरे खाने के लिए क्या? नहीं तो—कमी काहे की? दो-तीन रोज़ से कुछ खाने की इच्छा ही नहीं है। मन का मेल कहो, अनोखापन कहो! और क्या? और फिर मुझे जो आनन्द बँसवारी में लेटने में मिलता है भला वह मुझे उस हालत में मिलता, अगर मैं उस बेचारे मोदी पर एहसान करने के लिए उसके महल में रहता? छिः!! ये महल भी क्या चीज़ हैं, बेकार, निकम्मे, ऊटपटाँग! महल का मतलब सिवाय इसके क्या कि अबाबील और चमगादर घोंसले लगायें? हुँः! मुझे महल बहुत नापसन्द हैं। बिलकुल बेवक़ूफ़—बेईमान चीज़ हैं। महल के नाम से मुझे क़ै होती है, तभी तो मैं दस लोगों के कहने पर भी उसमें रहना नहीं पसन्द करता। राम! राम!!

मनोहर फिर सोचने लगा 'कुछ भी हो भाई, कभी-कभी सपने भी बड़े अटपटे आते हैं! है न? उड़ा चला जा रहा हूँ, न मालूम कहाँ! कहीं साँड़ से जा भिड़ा, कहीं बर्र का छत्ता खुद गया, कहीं पर भूत और चुड़ैल!...पर यह क्या है इन सबके ऊपर? अलेमूनियम के कटोरे में थोड़ा सा सड़ा हुआ भात! यह यहाँ पर कैसे!...ओफ़, ये सब बातें हटाओ—कुछ काम की बात कहो—मुझे बेकार बैठकर गप्प मारने की फ़ुरसत नहीं—हाँ, तो इस वक़्त मैं ज़मींदार के यहाँ काम करने जा रहा हूँ। फिर? इसके आगे! वह मुझे चार आने पैसे तो ज़रूर देगा। इसके आगे? उसमें से एक आना तो मैं उस छोकरे को दूँगा जिसने मुझे हरामख़ोर कहा था। कितनी प्यारी गाली है यह भी? फिर मुझे वह गाली देता क्यों न, जब

मैंने उसकी गोली उठा ली थी? कुछ भी हो, मुझे गाली बकनेवाले छोटे लड़के बड़े पसन्द हैं। तबीअत का अनोखापन कहो, मन का मेल कहो, और क्या? इसी तरह दो रोज़ से कुछ खाया नहीं। तबीअत का अनोखापन कहो मन का मेल कहो और क्या? नहीं तो क्या मैं झूठ-मूठ बेचारे ज़मींदार को निराश......करता?"

मनोहर की अन्तःप्रेरणा ने ठठरियों में नया बल भर दिया। वह दौड़ता हुआ ज़मींदार के दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ।

छः घंटे के पसीने के बाद जब मनोहर ने चार आने पैसों की आस लगाई तो थोड़ा-सा बासी खाना लाकर उसके सामने रख दिया गया। वह गुस्से से काँपने लगा और उसने पत्तल में इतने ज़ोर से लात मारी कि वह वहीं फैल गई। क्रोध तो इतना आया कि जलती आग में कूद पड़े।

मनोहर चुपचाप चला आया और पीपल के पेड़ के नीचे खड़े होकर पके गोदे बीन-बीनकर खाने लगा। वहीं उसे दो छोटे-छोटे आलू पड़े मिले। आलू बहुत छोटे थे और दोनों में काले निशान थे। "पर फिर भी आलू हैं"—मनोहर ने सोचा। उसे भुने आलू खाने का बड़ा शौक़ है। मन में कल्पना उठी, 'यदि एक मोहर मुझे पड़ी मिल जाय तो क्या करूँ?' उसने बड़े विश्वास से उत्तर दिया—जैसे इसमें सोचने की कोई बात न हो और प्रश्न के दो उत्तर सम्भव ही न हों—"पन्द्रह गाड़ियाँ आलू भर लाऊँ और ख़ूब भून-भून कर खाया करूँ"। इस कल्पना से उसे सुख मिला।

मनोहर ने दोनों सड़े-से आलुओं को बड़ी सतर्कता से उठा लिया और अपनी फटी मिर्ज़ई की अन्दरवाली जेब में छोड़ लिया जिसमें उसका धन कोई उससे छीन न ले जाय!

आलू मिलने के बाद उसके भूनने की समस्या आ खड़ी हुई। आग कहाँ पाई जाय? दूर पर चौधरी की चौपाल में आग सुलग रही थी।

उस वक़्त चौपाल में कोई न था। खाट ख़ाली पड़ी थी और कोने में दो गुड़गुड़े टिकाकर रखे हुए थे।

वह चुपके से चौपाल में घुस गया और उसने झटपट आलुओं को राख के भीतर गाड़ दिया। फिर चोरों की भाँति देखने लगा कि कहीं कोई आ तो नहीं रहा है! कुछ ही देर बाद बाहर खड़ाऊँ की खटपट सुन पड़ी। मनोहर ने आँख उठाई तो उस चौपाल के डरावने मालिक जम्मू महतो को पाया। मनोहर को और उसके फटे चीथड़ों को देखकर महतो को इतनी घृणा हुई कि उन्होंने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। फिर एकाएक उनका क्रोध असंयत हो पड़ा और उन्होंने खड़ाऊँ निकालकर मनोहर को मारा। ख़ून बहने लगा और वह भागकर बाहर निकल आया। मनोहर का ध्यान अपनी चोट पर बिलकुल न था। उसे रह-रहकर यही विचार आ रहा था कि उसके आलू छूट गये। हृदय से मानों उन हारे हुए आलुओं के लिए एक हूक निकली, पर वह कमज़ोर आवाज़ किसी को चीर न सकी, अपने में समाकर और गूँज कर रह गई।

अन्ततः जब वह उन राख में गड़े हुए आलुओं की ओर से निराश हो गया, तब उसे अपनी चोट महसूस हुई। वह घुटने मोड़कर बैठ गया।

उसने ख़ून को देखा। वह एक-सा बह रहा था। मनोहर आपे में न रह सका और उसने अपनी तर्जनी मुँह में डाल ली, जिससे दर्द कुछ कम मालूम हो। उसे बेहद तिलमिलाहट हो रही थी। उसने जब अपनी उँगली बाहर निकाली तो देखा कि वह ख़ून में डूबी हुई है और गरम ख़ून बहुतायत से निकल रहा है।

मनोहर को एकाएक ख़याल आया कि वह भूख को भूलने के लिए उसी गरम बहते हुए ख़ून से ही खेल करे। उसने सोचा कि अब से वह गिने कि ख़ून की कितनी बूँदें गिरीं। ज़्यादा कुछ नहीं, सिर्फ़ ज़रा खेल के लिए, मनबहलाव के लिए। मनोहर ने सोचा, मेरे लहू की क़ीमत ही कितनी! अगर थोड़ा-सा बहा देने से बहुत-सा मज़ा मिलता हो तो क्या बुरा है? उसने थोड़ी-सी मिट्टी की एक समाधि-सी बना ली और उस पर टपटप बूँदों को गिराते हुए वह एक, दो, तीन, गिनने लगा। इकसठ तक पहुँचकर वह आगे गिनना भूल गया। वह अपने पर हँसा—"सिर्फ़ इकसठ ही!" और दूसरे ही क्षण फिर आगे की गिनतियाँ गिनने लगा।

इस खेल के ख़तम हो जाने के बाद उसने बहते हुए लहू से शकलें बनानी शुरू कीं... पतंग, चिड़िया, हँसिया, हथौड़ा, आदि—आदि।

जब तक वह अपने में भूला हुआ उस बहते हुए

ख़ून से चित्रकारी कर रहा था काफ़ी ख़ून निकल चुका था। उसे कमज़ोरी महसूस होने लगी। उसका सिर एक ओर को लटकने-सा लगा। पर दूसरे ही क्षण मनोहर उछल पड़ा, मानों पैर-तले चिनगारी पड़ गई हो। वह उठकर खड़ा हो गया और घाव में मुँह लगाकर ख़ून पीने लगा। उसने बकना शुरू किया—'अभागे को मौत भी नहीं आती...मेरा आलू छीनकर . काश, उसे मालूम होता कि मैं मरने के कितने किनारे आ लगा हूँ ..शायद उसका मन खड़ाऊँ उठाने की गवाही न दे सकता...पर उसे क्या मालूम और ज़रूरत भी क्या . उसने तो खींचकर मार ही दिया . और यह ख़ून? ..इनको आख़िरी बूँदें जानो हा ईश्वर . हुँः ईश्वर? ईश्वर? हुँः...ढोंग का पुतला, हाँ हाँ ढोंग का पुतला! . एक जानवर जो ऊपर बैठा है और अपनी बुराइयाँ छुपाने में जिसे कमाल हासिल है . काश, वह ज़मीन पर होता तो मैं जी भर कर देखता कि वह भी किसी जेल में, क़ैदी की काली पोशाक में, चक्की चलाता हुआ कीड़े की मौत मर रहा है.. ।'

मनोहर हँसने लगा, "आ हा हा हा! . तब उसे भी भाव मालूम होता.. आटे-दाल का.. लोग उसे कहते हैं न्यायी ...कैसा उपहास है!! .."

मनोहर के पास सोचने को बहुत है; पर कमज़ोरी उसकी आँखों को मूँद रही है। आँख मींचते-मींचते उसने ऊपर की ओर मुँह कर जैसे ईश्वर पर थूक दिया। उसके मुँह से फिर ये शब्द निकले—'अभागे ने मेरा आलू छीन लिया', बेताबी की उस हालत में, उसने लाचार होकर अपने चीथड़ों पर थूक लिया। वह लस्त होकर गिर पड़ा और वहीं सो गया।

जब वह सोकर उठा, उसका मन भारी था और साँझ घिर-सी आई थी।

उसका पराजित मन सोचने लगा कि अगर वह भिखमंगा ही हो जाय तो क्या बुरा है? शकल तो यूँ ही भिखमंगों की है।

वह एक फूटी हँड़िया ढूँढ़ने निकल पड़ा जिसमें वह गेहूँ और चावल के टूटे और अधटूटे कन सँजोकर रक्खेगा।

पहले दरवाज़े वह माँगने चला। उसकी ज़बान ही न खुली और वह बिना पुकारे आगे के दरवाज़े पर बढ़ गया; उसने कम-से-कम उस दरवाज़े पर पुकारने का पक्का इरादा किया।

उसके सारे अस्तित्व को कुचलकर एक मरा-सा शब्द निकला—'बाबूजी!'.... ..

उतनी धीमी आवाज़ पर कोई न निकला। उसने और ज़ोर से पुकारा—'बाबूजी!'

पर दूसरे ही क्षण इस आशंका से कि उसकी आवाज़ को सुनकर कोई निकल आयेगा, तो वह क्या कहेगा, उसने एकदम भाग जाना चाहा। वह अपने भिखमंगेपन पर हँसा। फिर दरवाज़ा छोड़ भाग निकला और बहुत दूर जाकर साँस ली। उसने अधफूटी हँड़िया को ज़ोर से पटक दिया। उसके प्रगतिशील अस्तित्व को उसके भिखमंगे बनने पर विश्वास न आया। उसे उन लोगों पर घृणा हुई जो भीख माँगते हैं।

× × × ×

जब अँधियारी पूरी तरह छा गई तो वह अपनी बँसवारी की ओर बढ़ा।

रास्ते में उसका कोई पुराना परिचित मिल गया।

उसने पूछा—'कहो भाई? क्या हाल है? तुम तो दीखते भी नहीं? इतने रुखड़े-रुखड़े क्यों हो?'

इसका उत्तर मनोहर ने नहीं, मनोहर की सजग प्रगति ने मुक्तहास्य करते हुए दिया—'तुम अपनी कहो? मुझे तो फ़ुरसत ही नहीं मिलती। कहीं इसके यहाँ का नेवता, कहीं उसके यहाँ का! . पूछने की क्या बात है? अभी ज़मींदार के यहाँ से लौट रहा हूँ। क्या करूँ खिलाये बिना मानता ही न था। फिर तो वह सोलहो मोहनभोग आये कि क्या बताऊँ!...पूरी, तरकारी, मिठाई, चटनी, नमकीन, फल . सब कुछ। पर मैं खा सकूँ तब न? सब रखा रह गया, पर मैं खा ही न पाया। ज़िन्दगी से मैं भी कितना ख़ुश हूँ, कितना?' मनोहर इस समय प्रसन्न था।

इसके बाद मनोहर और उसके साथी ने एक स्थान पर पहुँच कर चिलम सुलगाई।

चिलम मनोहर के हाथ में देते हुए, उसके साथी ने कहा—'लगाओ दम, भैया। ज़िन्दगानी तो ज़िन्दगानी है। कटै जायगी।'

मनोहर ने चिलम का दम लगाते हुए और फैली हुई अँधियारी की तरफ़ देखकर मानों साथी के कथन के तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा—'कहो भैया, क्या एक चिलम तमाखू में भी विहान न होगा?—'होगा, ज़रूर होगा। रोज़-रोज़ अँधियारी थोड़े ही रहेगी। भगवान् हमारा भी तो है। ज़िन्दगानी भी है रहने जोग।'

भीनी भीनी रे बीनी चदरिया।
हाँ रे भीनी भीनी रे बीनी रे बीनी चदरिया॥
दास कबीर जतन से ओढ़ी
हाँ दास कबीर जतन से ओढ़ी
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया,
हाँ ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।
उस रात उन दोनों ने दो पैसे की तमाखू पी डाली।

आश्वासन

लेखक, कुँवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा 'चातक' कविरत्न

पीला पत्ता गिरा भूमि पर
और उसे ले उड़ा समीर।
कम्पित-गात हृदय-उद्वेलित
बोली लतिका वचन अधीर—
"हाय! अकेला बिछुड़ा जाता;
कोई नहीं उसे लौटाता।
अरे! यही क्या जग का नाता?
रह रह कर मेरे मानस में
होती है अति दारुण पीर।
पीला पत्ता गिरा भूमि पर
और उसे ले उड़ा समीर॥
कौन जानता उसका पथ है
कितने कष्टों से भरपूर?
यह भी नहीं जानता कोई
वह समीप है अथवा दूर।
सन सन करता क्रुद्ध प्रभंजन
छीन ले गया वह मेरा धन
रही देखती मैं पत्थर बन
सुमनधारिणी कहो न मुझसे,
मैं तो हूँ अभागिनी क्रूर।
किसे ज्ञात है उसका पथ है
कितने कष्टों से भरपूर"?

फर फर करके और दूसरे
पत्ते बोल उठे तत्काल—
"निज भाई का पता लगाने
जाते हैं हम तजकर डाल।

जीवन है तो फिर आयेंगे—
बिछुड़ा बन्धु खोज लायेंगे—
या कि वहीं आश्रय पायेंगे—

जहाँ निराश्रय को भी आश्रय,
भूमाता देती सब काल"।
फर फर करके और दूसरे
पत्ते बोल उठे तत्काल।

मेरी आस्ट्रेलिया-यात्रा

लेखिका, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू

(गताङ्क से आगे)

आस्ट्रेलियावालों को अपने देश से बहुत प्रेम और उसकी उन्नति का बड़ा अभिमान है। अमरीकनों की भाँति वे भी जाति के अँगरेज़ हैं, परन्तु अब अपने आपको कभी अँगरेज़ नहीं कहते—सदा 'आस्ट्रेलियन' ही कहते हैं। अमरीकनों में और अँगरेज़ों में तो बड़ा भारी वैमनस्य है, बहुत प्रतिस्पर्धा है और उन दोनों के अलग-अलग स्वतन्त्र देश भी हैं। पर आस्ट्रेलिया अँगरेज़ी राज्य का एक अङ्ग है और अन्य सब उपनिवेशों से अधिक राजभक्त भी है। परन्तु फिर भी आस्ट्रेलियनों के मन में यह बात चुभती रहती है कि अँगरेज़ लोग हमको अपने बराबर नहीं मानते। उनको ऐसा लगता है और यह बात सच भी है कि साधारण रीति से अँगरेज़ लोग आस्ट्रेलियनों को अपने से नीची श्रेणी का मानते हैं। असल बात तो यह है कि जिस भाँति स्वयं आस्ट्रेलियन अँगरेज़ों को और इँग्लिस्तान को आदर्श रूप में ग्रहण करते हैं उससे भी यह स्पष्ट होता है कि वे अपने आपको अँगरेज़ों से कुछ घटकर समझते हैं। फिर भी जब अँगरेज़ों की ओर से उनके प्रति अभिमान का व्यवहार होता है तब वे बहुत बुरा मान जाते हैं। जो हो, जाति से अँगरेज़ होने के कारण उन्होंने अपने जीवन को अँगरेज़ी साँचे में ढाला है। उनके शहर लंदन, बर्मिंघम, ग्लासगो आदि के समान हैं। उनकी बड़ी-बड़ी इमारतें ऐसी ही बनी हैं जैसी रानी विक्टोरिया के समय में इँग्लिस्तान में बना करती थीं। पालियामेंट हाउस में प्रवेश करने पर ऐसा लगता है मानो लंदन के हाउस आफ़ कामन्स में आ गये। दीवारों पर वैसी ही सजावट-बनावट, वैसी ही मूर्तियाँ, यहाँ तक कि कुर्सी, मेज़ आदि के भी वही नमूने दिखाई देते हैं। 'अपर हाउस' में राजसी सत्ता का लाल रंग और लोअर हाउस में प्रजातन्त्र का हरा रंग। फ़र्श पर क़ालीनों में बेल-बूटे बने हुए हैं, जिससे आस्ट्रेलिया की विशेषता दिखाने का अभिप्राय है। आस्ट्रेलिया अभी तक कृषि-प्रधान देश है, इसलिए बेल-बूटों में उसकी विशेषता दिखाई जाती है। यह सब तो है, फिर भी आस्ट्रेलियावाले अँगरेज़ों से बहुत अंशों में भिन्न हैं। निस्सन्देह वे अपने ही ढंग पर विकसित हो रहे हैं, और हों भी क्यों न? आस्ट्रेलिया इँग्लिस्तान से १४,००० मील की दूरी पर है। वहाँ की ज़मीन दूसरी है, आबो-हवा दूसरी है, हाल-चाल दूसरे हैं। वहाँ के रहनेवाले अपने पुराने देश की नक़ल करेंगे भी तो कहाँ तक? सब जानते हैं कि इँग्लिस्तान में क्रिसमस के साथ घोर जाड़े का अटूट सम्बन्ध है। क्रिसमस का ध्यान आते ही जाड़ा-पाला—कलेजा कँपानेवाली शीतल वायु ध्यान में आ जाती है और साथ ही सुनहरी आग जलती हुई चिमनी-युक्त आराम का कमरा, खाने के लिए गरम-गरम टर्की और जलती हुई शराब के साथ, सूखे मेवों से भरी हुई पुडिंग—ये सब मन की आँखों में दिखाई देने लगते हैं। पर आस्ट्रेलिया में क्रिसमस ठीक गर्मी के दिनों में आता है। जो मास इँग्लिस्तान में और हमारे देश में सर्दी के होते हैं, वे वहाँ गर्मी के और जो हमारे देश में गर्मी के हैं वे वहाँ सर्दी के होते हैं। अतएव दिसम्बर के अन्त में क्रिसमस के दिनों में वहाँ ऐसी कड़ी गर्मी पड़ती है कि घरों में बैठना दूभर हो जाता है। इसलिए वे लोग क्रिसमस मनाने का अपना ढंग बदलने का प्रयत्न कर रहे हैं। मनुष्य में रूढ़ि-पालन का जो भाव है उसके कारण अभी तक तो क्रिसमस उसी पुरानी रीति से मनाया जाता है। खाने के लिए उबलती हुई गर्मी में ठीक वही चीज़ें बनाई जाती हैं जो हिम गिरते हुए ठंडे मौसम के लिए उपयुक्त थीं। परन्तु लोग इस रूढ़ि-पालन की मूर्खता को अब समझने लगे हैं और देश और काल और स्थिति के अनुसार ही अपने रीति-रवाज बनाते जाते हैं।

वे लोग खुली हवा में रहने के बड़े शौक़ीन हैं। इसी लिए उनके सब खेल ऐसे हैं जो उन्हें घरों से बाहर आकाश के तले खुली हवा में रखते हैं। क्रिकेट, टेनिस, फ़ुटबाल, घुड़दौड़, तैरना, नावें चलाना अर्थात् समुद्र
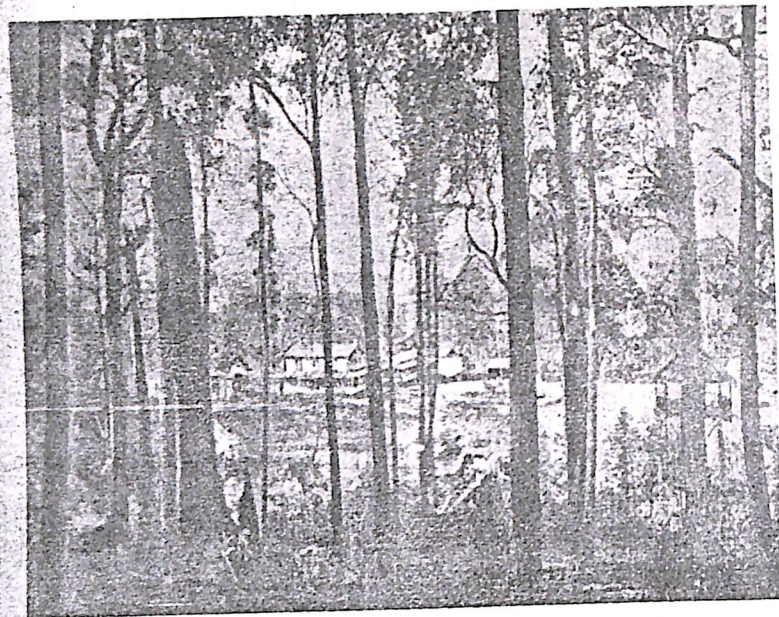
[आस्ट्रेलिया के वन-प्रदेश में बस्ती]

पर नौका दौड़ करना और समुद्र की लहरों के साथ खेलना। हज़ारों बल्कि लाखों स्त्री पुरुष इन सब खेलों को रात-दिन खेला करते हैं। सब नगरों और बड़े नगरों के मोहल्लों में खेल खेलने के लिए क्लब और सोसायटियाँ बनी हुई हैं। शनिश्चर, एतवार को जिधर जाओ क्रिकेट, फ़ुटबाल और टेनिस होता हुआ दिखाई देता है। यही कारण है कि कई खेलों में इस समय आस्ट्रेलिया ही संसार में सबसे अग्रसर है।

यहाँ का समुद्र का किनारा मीलों तक फैला हुआ है और नहाने की उपयुक्तता के लिए संसार भर में विख्यात है। यहाँवाले इसका पूरा-पूरा लाभ उठाते हैं। लाखों स्त्री-पुरुष रात-दिन समुद्र में घुसे रहते हैं। गर्मियों में कभी-कभी सारी-सारी रात जल-क्रीड़ा होती रहती है। समुद्र के किनारे पर बिजली की रोशनी और हर प्रकार की सुविधा है। स्वयंसेवक-तैराकों की पल्टनें बनी हुई हैं जिनके मेम्बर किनारों पर फिरते रहते और एक प्रकार से पहरा देते हैं कि जहाँ कोई ख़तरे में पड़ा कि वे सहायता के लिए आगये। इन सेवकों की अलग अलग रंगों की वर्दियाँ रहती हैं और उन्हीं को पहन-कर वे अपना काम करते हैं। गर्मी के दिनों में किनारों पर रंग-बिरंगे बड़े-बड़े छाते फैलाये हुए, चमकती हुई धूप में एक एक स्थान पर कई-कई हज़ार स्त्री-पुरुष नहाने के वस्त्र पहने रेते में लेटे-बैठे और खेल करते दिखाई देते हैं। इसी प्रकार समुद्र की लहरों के साथ जो खेल होता है वह भी बहुत रोचक और साहसबढ़ानेवाला है। स्त्री-पुरुष उठती हुई लहरों के साथ उठते और लौटती हुई लहरों के साथ नीचे जाते हैं। इसी प्रकार मीलों तक समुद्र में निकल जाते हैं। जिसने समुद्र की लहरों का कभी मुक़ाबिला किया है वह अनुमान कर सकता है कि इस खेल के लिए कितने साहस की आवश्यकता होगी। यहाँ के घोड़े जगद्विख्यात हैं। दूर दूर से यहाँ के हेलरों की माँग आती है। इन्हीं घोड़ों पर यहाँ के स्त्री-पुरुष ख़ूब सवारी करते हैं। बहुतेरी स्त्रियाँ वैसी ही अच्छी सवार होती हैं, जैसे पुरुष। जब से मोटर-गाड़ियाँ निकली हैं और देश में सड़कें भी बन गई हैं तब से तो सवारी का रवाज कम हो गया है, फिर भी देश के भीतरी भागों में अभी तक अधिकतर घोड़ों से ही काम लेना पड़ता है, इसी लिए घोड़े की सवारी की रुचि लोगों में बहुत है। यहाँ के लोग पिकनिकों के बड़े शौक़ीन हैं। सप्ताह में एक-दो बार तो अवश्य ही खाना-पीना लेकर घर से बाहर निकल खड़े होते हैं। बस्ती से दूर पहाड़ों और जंगलों में स्थान-स्थान पर यह लिखा हुआ दिखाई

देता है कि "यहाँ गर्म पानी मिलता है"। मेरी समझ में नहीं आया कि इस गर्म पानी के मिलने का क्या अर्थ है। पीछे मालूम हुआ कि पिक-निकवालों की चाय के वास्ते यह पानी तैयार रहता है। वहीं जंगलों में धूप-पानी से बचने के लिए फूस की छोटी छोटी कुटियाँ भी बनी रहती हैं, जिनमें मेज़ और लकड़ी की दो-चार बेंचें पड़ी होती हैं। कुछ मित्रों के साथ ऐसे ही एक स्थान पर हमने जाकर पिकनिक किया था।
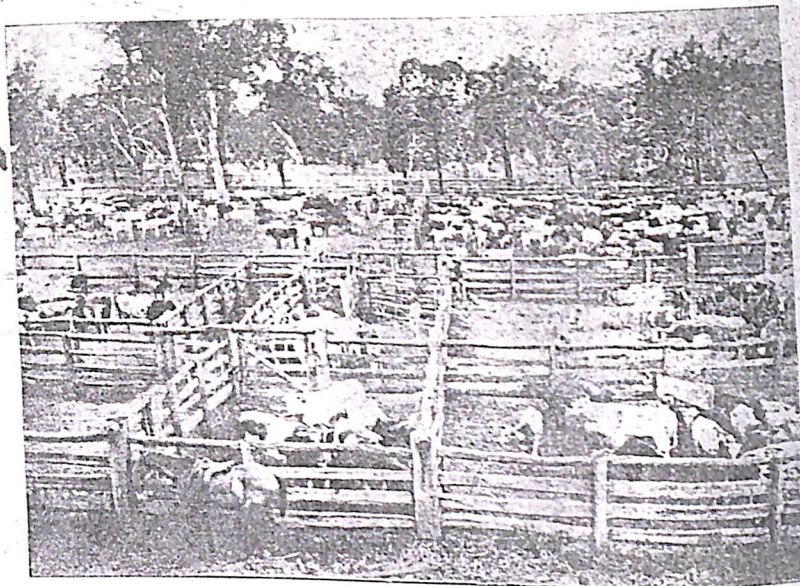
[कीन्सलेंड में पशुओं का एक बाड़ा]

भू-शास्त्रज्ञों का विचार है कि आस्ट्रेलिया पृथ्वी का सबसे पुराना प्रदेश है। कितना पुराना है सो तो कौन जाने, परन्तु सिडनी के पास ७१ मील की दूरी पर ग्लेनोलेन केव्स के नाम की कुछ Stallegtile और Stallegmite की गुफ़ायें हैं। पर्वतों के भीतर नदियों की तेज़ धाराओं ने इन गुफ़ाओं का निर्माण किया है और इन गुफ़ाओं के भीतर भिन्न-भिन्न प्रकार की जो मूर्तियाँ बनी हैं वे जल की एक एक बूँद गिरने से उसके अन्दर के लाइम-स्टोन (चूने) के जम जाने से बनी हैं। ये गुफ़ायें संख्या में दस हैं और इतनी विशाल हैं कि इनको २-३ दिन में भी घूम-फिर कर देख लेना कठिन है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि एक-एक बूँद जल के गिरने से जब इतनी विशाल आकृतियाँ बन गईं तब उनके बनने में कितने करोड़ वर्ष या कितने मन्वन्तर लगे होंगे।

समय के अभाव के कारण इन गुफ़ाओं में से केवल एक को देखने के लिए हम गये थे। इस गुफ़ा का हाल लिखे बिना हमारी यात्रा का वर्णन अपूर्ण ही रह जाता है, इसलिए मैं आवश्यक समझती हूँ कि उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करूँ। ये सब गुफ़ायें पास पास ही हैं, सरकार की ओर से इनकी देख-रेख का प्रबन्ध है। आदि से अन्त तक सारी गुफ़ाओं में बिजली की रोशनी है। यात्रियों को दिखाने और समझानेवाले 'गाइड' मौजूद रहते हैं। जो लोग जिस गुफ़ा को देखना चाहते हैं उसका गाइड १५-२० यात्रियों का एक गुट बनाकर ले जाता है और देखने के योग्य जो जो वस्तुएँ हैं उनको दिखाकर समझाता जाता है। हम सबसे छोटी गुफ़ा में गये थे, जिसको लगभग ३ घण्टे में देख पाया। विशाल पर्वत में एक छोटे से द्वार के समान छेद में से घुसकर हम पर्वत के पेट में दूर तक चले गये। बिजली की रोशनी में चमकती हुई लाइम-स्टोन की संगमरमर के समान सफ़ेद और गुलाबी और कहीं-कहीं नीली और काली भिन्न-भिन्न आकृतियाँ देखकर मैं तो स्तम्भित सी रह गई। बाहर से पर्वत को देखकर कौन अनुमान कर सकता था कि इसके पेट में प्रकृति ने ऐसा अद्भुत अजायबघर बना रक्खा है! कहीं गोल-गोल सफ़ेद लम्बे स्तम्भ धरती से उठकर छत तक पहुँचे हुए दिखाई देते
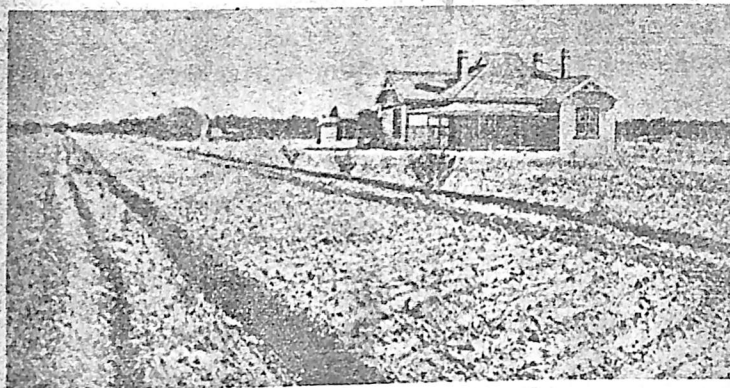
[आस्ट्रेलिया का एक कृषि-फ़ार्म]

थे। कहीं तरकारीवाले की दूकान सी जान पड़ती थी, जिसमें सफ़ेद मूलियाँ, गुलाबी गाजरें रक्खी दीखती थीं। कहीं मुर्ग़ी, कहीं बत्तख़ बनी हुई मालूम देती थी। एक स्थान पर एक मूर्ति थी, जिसे हमारे गाइड ने 'शार्लोटे-मूपल' का नाम दे रक्खा था। एक स्थान 'क्रिस्टल-पैलेस' कहलाता था वहाँ सफ़ेद क्रिस्टल का बग़ीचा सा लगा हुआ दिखाई देता था। वृक्ष, शाखायें, पत्तियाँ, पौधे सब इस अद्भुत प्रस्तर में बने हुए दिखाई देते थे। मुझे तो स्थान स्थान पर शिवलिंग का आकार भी दीखता था। सारांश यह कि ये गुफ़ायें क्या थीं, प्रकृति के निर्माण-कार्य का ख़ज़ाना थीं, जिसको देखकर मुझे ऐसा लगा कि ७,००० मील की यात्रा यदि केवल उन गुफ़ाओं को ही देखने के लिए की जाती तो अनुचित न था।

आस्ट्रेलिया इतना पुराना होने पर भी सभ्यता में सारे संसार में सबसे छोटा और नया है। यह बड़ी आश्चर्यजनक बात है कि जो प्रदेश पृथ्वी पर सबसे पहले बना हो, वहाँ किसी प्रकार की पुरानी सभ्यता के कोई चिह्न न मिलें। लगभग सारे संसार में पुरानी-पुरानी सभ्यताओं का पता चल रहा है। भारतवर्ष में तो पग-पग पर कोई न कोई पुरानी इमारत, पुरानी मूर्तियाँ, पुराने सामान दिखलाई देते हैं। मेंहजोदारो और हड़प्पा में ईसामसीह से ढाई-तीन हज़ार वर्ष पहले तक के चिह्न निकले हैं। एशिया भर में, योरप में, अमरीका तक में और बहुतेरे द्वीपों में धरती में छिपे हुए ऐसे सामान मिले हैं जिनसे साबित होता है कि शताब्दियों पहले सभ्य मनुष्य-जातियाँ उन देशों में बसती थीं। परन्तु आस्ट्रेलिया में ढूँढ़ने पर भी कहीं ऐसे चिह्न नहीं दिखाई देते जिनसे सभ्य जातियों के वहाँ रहने का पता चलता। डेढ़ सौ वर्ष हुए, १७८८ में कप्तान आर्थर फिलिप १,००० आदमियों को लेकर आस्ट्रेलिया के पश्चिमी भाग में, जिसे अब 'न्यू साउथ वेल्स' कहते हैं, पहुँचा था और ऐसा माना जाता है कि उसने ही आस्ट्रेलिया-उपनिवेश की बुनियाद डाली। परन्तु इस महाद्वीप की खोज पहले-पहल अँगरेज़ों ने नहीं की। सबसे पहले पुर्तगालवालों ने, फिर स्पेनवालों ने और फिर हालेंड के निवासियों ने इस ज़मीन का पता लगाया। इन देशों के जहाज़ समुद्रों पर फिरते-फिरते आस्ट्रेलिया के किनारों तक पहुँचे, परन्तु किसी ने भी उसको अपनाकर वहाँ अपना राज्याधिकार नहीं जमाया। बात ऐसी जान पड़ती है कि यहाँ की ज़मीन ऐसी सूखी-रूखी, पहाड़ी और बंजरीली थी कि जिन जातियों को इसकी स्थिति का पता भी लगा उनको भी इसे बसाने और रहने के योग्य बनाने में कोई नफ़ा नहीं दिखाई दिया। वे क्या जानते थे कि जो पहाड़ियाँ और ज़मीन ऊपर से ऐसी बंजर दिखाई देती हैं उनके भीतर इतना सोना, चाँदी, लोहा और अन्य धातु भरे पड़े हैं कि जिससे उनका देश मालामाल हो सकता है। निदान इस प्रदेश के बसाने का सेहरा अँगरेज़ों के ही सिर रहा। कप्तान फ़िलिप के बाद समय समय पर उत्साही और साहसी अँगरेज़ आते रहे और वे इस देश में बसते गये। जब वे लोग यहाँ आये तब उन्हें यहाँ जंगली मनुष्य बसे हुए मिले। ये लोग इतने जंगली थे कि जोतना,

बोना, कातना, बुनना, मकान बनाना कुछ भी नहीं जानते थे। वृक्षों की खालों से तन ढँकते, उन्हीं की डाल और पत्तों से बारिश के पानी से बचने को झोपड़ियाँ बना लेते थे। शिकार पर गुज़र करते थे। बूमरेंग नाम की लकड़ी की एक प्रकार की तलवार बनाते थे और उसको शिकार पर ऐसी दक्षता से फेंकते थे कि शिकार मारकर बूमरेंग फिर उनके पास लौट आती थी। अभी तक ये लोग इसी दशा में रहते हैं। बूमरेंग फेंकते हुए मैंने एक जंगली मनुष्य को देखा था। बड़ी चतुराई से वह बूमरेंग को फेंकता था जो गोल चक्कर काटकर फिर उसके पास ही लौट आती थी। मैंने भी उससे सीखने का प्रयत्न किया, परन्तु बूमरेंग का प्रयोग तो महीनों बल्कि वर्षों के अभ्यास के बाद आता है।

इन सीधे-सादे जंगली मनुष्यों के साथ आगन्तुक अँगरेज़ों ने बहुत बुरा व्यवहार किया। सभ्यता के छल-कपट और स्वार्थपरता से वे नितान्त अपरिचित थे। अजनबी मनुष्यों को देखकर न वे उनसे डरे, न उन पर आक्रमण किया। अँगरेज़ लोगों ने उनकी सारी ज़मीन उनसे ले ली। कोई कोई उदाहरण तो ऐसा है कि एक दियासलाई के बक्स के लिए या एक पीतल या काँच की चूड़ी के लिए उनके अँगूठे लगवाकर सैकड़ों एकड़ भूमि लोगों ने अपने नाम लिखवा ली। अँगूठे लगवाने और पर्चा लिखवाने की बात उन जंगली आदि-निवासियों के सम्बन्ध में आवश्यक नहीं थी, बल्कि इस भाँति भूमि इन नामधारी स्वामियों को अपनी सरकार और अपने ही लोगों के साथ निबटारा करने के लिए इस आडम्बर की आवश्यकता थी। अतएव इन लोगों के यहाँ बसने के कुछ काल पीछे जब यहाँ क़ानूनी शासन-विधान का प्रबन्ध हुआ तब अँगूठे लगे हुए ये पर्चे इन दूरदर्शी आगन्तुकों के बहुत काम आये। उन्हीं के ज़ोर पर ज़मीन की मिलकियत का उन्होंने दावा किया।

आनेवाले अँगरेज़ों ने उनसे केवल ज़मीन लेकर ही संतोष नहीं किया, बल्कि अकारण और बिना उनके कोई नुक़सान पहुँचाये ही उन्हें अपनी बन्दूक़ों से इस प्रकार मार मारकर भगाया जैसे कोई शिकारी जंगल में जाकर जानवरों का शिकार कर उनका नाश करे। सहस्रों-लाखों की संख्या में ये आदि-निवासी मार डाले गये यहाँ तक
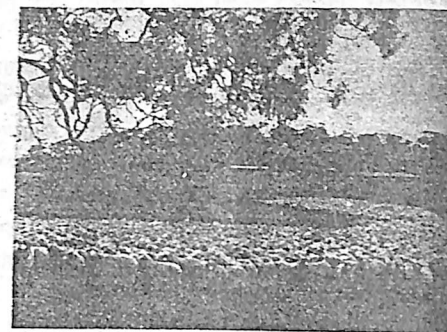
[आस्ट्रेलिया की भेड़ों का एक झुंड]

कि उनकी जाति ही लगभग ख़त्म हो गई। अब ये लोग यहाँ संख्या में ५४,००० रह गये हैं, जो पीछे हटते-हटते अब महाद्वीप के केन्द्रीय भाग में जा बसे हैं, जो पानी की कमी और गर्मी की ज़्यादती के कारण किसी के रहने के योग्य नहीं है। इसलिए इन बेचारों को बहुत कष्ट है। यहाँ तक कि पीने और नहाने को पानी नहीं मिलता और न खाने को शिकार। जिन जानवरों का शिकार कर ये लोग खाया करते थे वे अधिकतर गोरों ने मार-मारकर समाप्त कर दिये हैं। साँप, छिपकली, केमरू, ख़रगोश आदि इन लोगों का आहार था। इनमें से बड़े जानवर केमरू, कोआला आदि अब बहुत कम हो गये हैं। परिणाम यह है कि इन आदि-निवासियों में से बहुत से अब भीख माँगते हैं। दक्षिण-आस्ट्रेलिया में रेलगाड़ियों और मोटरकारों पर यात्रियों से भीख माँगते हुए ये अक्सर दिखाई देते हैं। आस्ट्रेलियन सरकार ने इनको शिक्षा देने और सभ्य बनाने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया। कुछ मिश्नरियों ने उत्तरी भाग में जहाँ इनकी संख्या अधिक है, इनके लिए स्कूल खोले हैं और इन्हें पढ़ना-लिखना और वस्त्रादि पहनना सिखाया है और उन्हें ईसाई-धर्म की दीक्षा दी है। परन्तु इनका अनुभव यह है कि वे अपने निवास-स्थानों से जिन्हें वहाँ 'बुश' कहते हैं, बहुत काल तक अलग नहीं रह सकते। और थोड़े दिनों में ही वे उदास होकर कपड़ा-लत्ता उतारकर अपने 'बुश' में फिर भाग जाते हैं। आज-कल सरकार का भी ध्यान इस ओर आकर्षित हो रहा है कि अब इस जाति के

जो बचे-खुचे लोग रह गये हैं उनकी रक्षा करके उन्हें सभ्य बनाने का उद्योग करना चाहिए। इस विचार से उसने इनके लिए कुछ बस्तियाँ बनाई हैं, जहाँ वे रक्खे गये हैं और उनके स्त्री-पुरुषों को काम सिखाया जाता है। उन्हें अधिकतर गृहस्थी में नौकरी करने का काम सिखाया जाता है। परन्तु इन बस्तियों में उनके साथ इतनी रोक-टोक की जाती है कि यह स्वतन्त्र मिज़ाज के लोग उसे सहन नहीं कर सकते और बार-बार जंगलों में भाग जाते हैं। परन्तु मेहनत करने और सहानुभूति के साथ व्यवहार करने पर वे लोग सभ्यता की बातें सीख भी जाते हैं।

१७८८ ईसवी के कुछ दिन बाद ही अँगरेज़ी सरकार ने आस्ट्रेलिया को अपराधियों के रहने का स्थान बना दिया और उसका वैसा ही प्रयोग करने लगे जैसा हमारी भारत-सरकार एन्डमन द्वीप का करती है। जहाज़ भर-भरकर अपराधी वहाँ भेजे जाने लगे और देश को बनाने-सँवारने में रहने के योग्य बनाने में इन अपराधियों का बहुत बड़ा हाथ रहा। अब तक वहाँ जो लोग जाकर बस गये थे ये अपराधी उनके सुपुर्द कर दिये गये और वे इनसे मेहनत-मज़दूरी लेने लगे। आस्ट्रेलिया एक वीरान जंगल था, जिसे एक प्रकार से मनुष्य का हाथ तक नहीं लगा था। सड़कें बनाना, जंगल साफ़ करना, पेड़ लगाना, मकान बनाना, खेती-बारी के लिए धरती तैयार करना आदि सब काम बिलकुल नये सिरे से करने थे, जो मनुष्यों के हाथों ही हो सकते थे। इसलिए इस समय में इन अपराधियों का वहाँ पहुँच जाना देश को बनाने में बहुत काम आया। अन्य उपनिवेशों में गोरों ने मेहनत-मज़दूरी का काम बहुत कुछ काले लोगों से लिया है, परन्तु आस्ट्रेलिया में वे ऐसा नहीं कर सके। कारण यह कि वहाँ के काले आदिम-निवासी कोई परिश्रम नहीं कर सकते। वे पशु-पक्षियों के समान जंगल में फिरनेवाले स्वतन्त्र जीव थे, जिनके लिए काम के बन्धन में फँसना असम्भव था। इसलिए गोरे लोग उनसे कोई काम नहीं ले सके और इसी लिए शायद उन्होंने इतनी बड़ी संख्या में और इतनी निर्दयता से उनका संहार कर डाला।

इस सम्बन्ध में एक बात बहुत रोचक सुनने में आई, जो उल्लेखनीय है। अपराधी लोग उन दिनों किसी-न-किसी स्वतन्त्र प्रवासी के अधीन रहकर ही का[र्य कर] सकते थे। उनको स्वाधीन रूप से रहने और कार्य [करने] की आशा नहीं थी। एक प्रकार से उनको अपने स्वा[मी] के गुलाम बनकर ही जीवन बिताना होता था। [इन]से कइयों ने ऐसा किया कि अपनी स्त्रियों को इँग्लिस्तान [से] बुलवा लिया। थोड़े रुपयों में ज़मीन ख़रीद कर वे [वहाँ] बस गई और आज़ाद प्रवासी की हैसियत से अपने [अपराधी] पतियों को अपनी ज़मीन पर काम करने के लिए [रख] लिया। इस उपाय से वे अपराधी अपनी ही पत्नियों [के] दास बनकर रहने लगे और दण्ड भुगत चुकने पर आनन्द से आज़ादी का गार्हस्थ्य-जीवन बिताने लगे।

समुद्र के किनारे-किनारे पूर्व, पश्चिम और दक्षिणी भाग में अँगरेज़ लोग बड़ी संख्या में आकर बसने लगे और खेती-बारी और भेड़, घोड़े आदि पालने का काम करने लगे। इन लोगों को परिश्रम तो बहुत कड़ा करना पड़ा, किन्तु उसका फल भी बड़ा मीठा मिला। थोड़े ही दिनों में इनको मालूम हो गया कि इस द्वीप की धरती बड़ी उपजाऊ है, जहाँ गेहूँ, भाँति भाँति की तरकारियाँ और मेवे सहज में ही उत्पन्न होते हैं। इसके सिवा पशुओं के पालने के लिए घास के बड़े बड़े खुले चरागाह इतने हैं कि लाखों पशु गाय, बैल, भेड़, घोड़े बिना बहुत परिश्रम किये पाले जा सकते हैं। अतएव उन्होंने पशुओं का पालना आरम्भ किया और उनकी पैदावार से माला-माल हो गये। धीरे धीरे यह भी पता लगा कि वहाँ की ज़मीन में भिन्न भिन्न धातुओं की खानें भी हैं। १८[५१] ईसवी में सोने की खान का पता लगा, जिसका समाचार मिलते ही संसार भर में सनसनी फैल गई। हज़ारों स्त्री-पुरुष स्थान-स्थान से विशेष करके इँग्लेंड से रुपया-पैसा लेकर सोने की खोज में आस्ट्रेलिया आ पहुँचे। दम के दम में जहाँ कल जंगल था, वहाँ हज़ारों स्त्री-पुरुषों का जमाव हो गया। देखते देखते नगर के नगर बसने लगे। इतने जल्दी मकान कहाँ से आते? डेरे-तम्बू डाल कर ही लोग रहने लगे और छाती फाड़कर ज़मीन खोद खोदकर सोने की खोज़ करने लगे। १९३५ में यहाँ की खानों से कुल २,३५,००,००० पौंड की धातुएँ निकलीं। बहुतेरे लोग कुछ दिनों में कंगाल से लखपति हो गये। इस प्रकार एकदम पैसा हाथ में आ जाने से बाज़ लोग पागल

[हो] गये। शैम्पेन में नहाने और पौंडों, नोटों से [...]रने की बातें उन्हीं दिनों में सुनाई देती थीं।

आज-कल समस्त आस्ट्रेलिया की जन-संख्या [...]र लाख के बीच में है। इनमें केवल ५४,००० आदिम-निवासी और शेष लगभग सभी अँगरेज़ [...]के हैं। योरप के अन्य देशों के कुछ लोग हैं अवश्य, [पर] उनकी संख्या नहीं के बराबर है। आस्ट्रेलिया-[वा]सी सिवा अँगरेज़ों [के] किसी अन्य जातिवालों का अपने [देश] में आना पसन्द नहीं करते। देश को केवल गोरे ही [लोगों] से बसाने की नीति तो उनकी है ही, जिसके अनुसार [किसी] काले आदमी को अपने देश में रहने के लिए [...] नहीं देते। परन्तु इसके उपरान्त अँगरेज़ों के सिवा [अन्य] गोरों के आकर बसने में भी वे भाँत-भाँति की [अड़]चनें डालते हैं। अँगरेज़ बड़ी संख्या में वहाँ आकर [बसें], इसके भिन्न-भिन्न उपाय करते हैं। परन्तु जितनी [जल्दी] वे अपनी संख्या बढ़ाना चाहते हैं, उतनी जल्दी इस नीति के रहते हुए उनकी संख्या बढ़ नहीं सकती। उनके सामने यह एक बहुत जटिल प्रश्न उपस्थित रहता है कि किस भाँति वे अपनी संख्या को बढ़ावें। इतना बड़ा देश जो आकार में भारतवर्ष से भी बड़ा है; जिसके समुद्री किनारे हज़ारों मील तक फैले हुए हैं, उसकी रक्षा ६० लाख या ७० लाख की आबादी से कैसे हो सकती है? जापान जब से चीन में अपना पसारा फैला रहा है तब से वहाँवालों के मन में एक भय सा बैठ गया है और वे रात-दिन इसी चिन्ता में रहते हैं कि किस उपाय से जन-संख्या बढ़ाकर वे अपनी रक्षा का प्रबन्ध करें। अभी तक तो उनकी रक्षा अँगरेज़ी समुद्री बेड़े के द्वारा होती है, परन्तु वे यह नहीं जानते कि यह प्रबन्ध कब तक चल सकेगा। इसी लिए उनमें से कुछ दूरदर्शी लोग यह कहने लगे हैं कि आस्ट्रेलिया में भारतवासियों को आने देना चाहिए, जिससे आपद् समय पर वे उनका बचाव कर सकें।

एकाकी

लेखिका, श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा

ऊषे! वातायन से आकर मत अरुण अधर से मुसकाओ,
इस उर में सोती ज्वाला को, उकसाकर आह! न धधकाओ;
मुझको एकाकी रहने दो!

अम्बर के नीरद! उमड़ घुमड़ मत अविरल धारा बरसाओ,
अन्तर के शतशत घावों पर अब नमक छिड़क मत तड़पाओ;
बस एकाकी ही रहने दो।

शीतल समीर! सौरभ लेकर इस शून्य अजिर में मत आओ,
मेरे विषाद को, दिखलाकर उन्माद-मार्ग, मत बहलाओ।
मुझको एकाकी रहने दो।

अनवरत 'कुहू' का स्वर अधीर मत पिकी सुना, कर दुख दूना,
मत कूक कूक यह टीस जगा, रहने दे अन्तस्तल सूना।
बस एकाकी ही रहने दो।

वर-निर्वाचन

लेखक, श्रीयुत उदयशंकर भट्ट

एक नगर की सिविल लाइन में सड़क के किनारे चौड़े मैदान में एक साधारण कोठी है। कोठी के सामने छोटा-सा पोर्च बना हुआ है। चार सीढ़ियाँ चढ़कर एक बरामदा, सीढ़ियों के दोनों किनारे पर कुछ फूलों के गमले सजे हैं। बरामदे में दो स्टेण्ड रक्खे हैं। दोनों तरफ़ दो बड़े कमरे हैं। बाईं ओर के कमरे में चारों तरफ़ क़ानून की बड़ी बड़ी पुस्तकों की आल्मारियाँ हैं। बीच में बड़ी मेज़, चारों तरफ़ एक मख़मली सोफ़ासेट, मेज़ के पास एक रिवाल्विंग चेयर तथा एक शेल्फ़ है। इस कोठी के मालिक श्री के० पी० चौधरी बैरिस्टर हैं। इनकी उम्र लगभग चालीस साल है। ये विधुर हैं, मुँह चौड़ा, साँवला रंग, मूछें साफ़। शरीर पर एक काली सर्ज का सूट है। गले में टाई, मुँह में सिगार है। मेज़ पर रक्खी हुई चिट्ठियों के ढेर पर ध्यान है। सामने चौधरी का मुंशी खड़ा हुआ बस्ता जहाँ का तहाँ रख रहा है। डाढ़ी वाला बूढ़ा मुंशी सफ़ेद लट्ठे की अचकन पहने है। धोती में से टाँगें बहुत पतली दिखाई दे रही हैं। चौधरी की एक लड़की है। उसका नाम है शारदा। उम्र बीस साल; सुन्दर, पतला शरीर, बोलने में बहुत तेज़। विद्या का घमण्ड। स्वतन्त्र प्रकृति। समय गर्मियों के दिन शाम के पाँच बजे।

चौधरी—(एक पत्र पढ़कर दूसरा पत्र फाड़ते हुए) मुंशी जी, आज मैं सात बजे तक कोई केस न देखूँगा। समझे! कल के केस रात में देखने के लिए मेरी मेज़ पर रख दो। ओहो, एकदम 'अनकल्चर्ड'। भले आदमी ज़रा पहले चिट्ठी नहीं भेजी जा सकती थी। टाइम अप्वाइण्ट कर लेना चाहिए। हिन्दुस्तानी बड़े बेतकल्लुफ़ होते हैं। ओफ़! बहुत काम है।

मुंशी—(पास जाकर) क्या दीनू बाबू का केस भी रख दूँ हुज़ूर?

चौधरी—(घूरते हुए) उसकी पैरवी कब है?

मुंशी—(सकपका कर) परसों ही तो।

चौधरी—परसों का केस कल! कितनी बार तुमसे कहा, दूसरे दिन का केस ही मेरे सामने आना चाहिए। जैसे जैसे बूढ़े हो रहे हो, बुद्धि भी गिर्वी रखते जा रहे हो।

मुंशी—(डरते हुए) हुज़ूर, आपने ही तो कहा था, यह बड़ा टेढ़ा केस है। कुछ दिन लगेंगे।

चौधरी—हाँ हाँ, वह तो बड़ा टेढ़ा मामला है। किन्तु इस समय—ओफ़! बड़ा काम है। लोग तनिक भी नहीं सोचते। विलायत हो आने से क्या होता है? 'कल्चर' एटीकेट, बिलकुल अलग चीज़ है। और महेशप्रसाद सेठ की सुनवाई किस दिन होगी?

मुंशी—(फ़िहरिस्त निकालकर देखता हुआ) आज से छठे दिन जनाब!

चौधरी—(हड़बड़ाकर) हाँ हाँ, अभी जाना है। (घड़ी जेब से निकालते हुए) पाँच बजकर बीस हुआ है। ठीक साढ़े पाँच। अभी जाना होगा। ड्राइवर से कहो, मोटर तैयार करे। शारदा को, ओह! बहुत काम है। शारदा कहाँ है? (बिगड़ते हुए) शारदा! तुम क्या सुन रहे हो? शारदा को बुलाओ। (बेचैनी से एकदम उठकर टहलने लगता है) चपरासी!

(मुंशी जाता है। चपरासी आकर सलाम करता है) ड्राइवर से कहो। ओह, बहुत जल्दी! समझा, हाँ। (घड़ी हाथ में लेकर) नहीं आई। शारदा! ओ शारदा! मैं चाहता था, खुद बातचीत करूँ। बहुत तेज़ है। अब किसी तरह मैं शादी कर देना चाहता हूँ। आई० सी० एस०, उसकी निगाह में कोई जँचता ही नहीं। करना ही होगा। (चिट्ठी फिर हाथ में लेकर पढ़ता हुआ) साढ़े पाँच बजे ठीक!

(मुंशी के साथ शारदा हाथ में अँगरेज़ी की एक किताब लिये आती है)

शारदा—(हैरान होकर) आज कहीं जा रहे हैं क्या? हाँ,

मैं भी। आप कहाँ जा रहे हैं? आज बहुत अच्छा रहेगा। 'ए० थांक एट आक्सफ़ोर्ड' बहुत बढ़िया खेल है। मैंने सुशीला से कह दिया है।

चौधरी—पगली, मैं ज़रा जल्दी में हूँ। ओह बहुत काम है। तुम्हें मालूम नहीं (घड़ी निकालकर) अभी साढ़े पाँच बजे ज़रा डिप्टी-कमिश्नर की पार्टी में जाना है। हाँ, देखो।

शारदा—और मैं! मैं भी जा रही हूँ। अभी मुझे बहुत काम है, कपड़े बदलना है। आपने मुझे बुलाया था। ओह वण्डरफ़ुल बुक। क्या आपने इसे पढ़ा है? शा भी खूब लिखता है। एनी जौन का करेक्टर। अरे तो क्या आप जा रहे हैं?

चौधरी—हाँ, पार्टी में जाना है बेटी। आज जुगलकिशोर साढ़े पाँच बजे आ रहा है। वह अभी विलायत से आई० सी० एस० करके आया है। सुन्दर युवक है। सहारनपुर में मैजिस्ट्रेट के पद पर उसकी नियुक्ति भी हो चुकी है। ऐसा अवसर फिर हाथ न आवेगा शारदा! चाय आप पिला देना। मैं साढ़े छः बजे तक आ सकूँगा। वह बड़ा योग्य लड़का है। समझी!

शारदा—(कुछ सोचकर) लेकिन मुझे...। हमारे कालेज में बड़ा मज़ा रहा आज! तो क्या मैं खेल देखने न जा सकूँगी? वह जुगलकिशोर कौन है? पिताजी, आपने सुना है? आज डिबेट में 'डिमोक्रेटिक' पार्टी वाले हार गये। लेकिन सुशीला खूब बोली।

चौधरी—होगा। मैं जा रहा हूँ। अरे समझी? जुगलकिशोर आ रहा है। ओह! बहुत काम है। (घड़ी देखता हुआ एकदम बाहर चला जाता है)।

शारदा—एकदम सिली। स्त्रियों की भी क्या ज़िन्दगी है। मैं सिनेमा भी न देख सकूँगी। मुंशी, तुम यहाँ बैठो (बीच के दरवाज़े से गैलरी में चली जाती है)।

मुंशी—(बस्ता सँभालकर केस मेज़ के एक कोने में रखता हुआ) इन अमीरों के भी क्या चोचले हैं। बाप पूरब जाता है, बेटी पच्छिम।

(चपरासी का प्रवेश)

चपरासी—इस घर की भी अजीब माया है!

मुंशी—सब अँगरेज़ी का प्रभाव है भाई।

चपरासी—हम ग़रीबों की लड़कियाँ ऐसा करें तो नाक कट जाय।

मुंशी—क्या किसी की रह जाय?

चपरासी—अभी दोपहर को कालेज के किसी लड़के के साथ ख़ूब हा-हा, हू-हू होती रही। मकान सिर पर उठा लिया।

मुशी—वह सुरेश बाबू की लड़की भी होगी साथ। चौबीस साल की लड़की। कोई ठीक है! न मालूम यह संसार किधर जा रहा है? ब्याह हुआ होता तो चार लड़कियों की मा होती।

चपरासी—इन बड़े आदमियों के बड़े काम हैं। 'समरथ को नहिं दोस गुसाईं'।

मुंशी—(चपरासी के पास आकर) तुम ठीक कहते हो रामू। गीता में लिखा है, रुपये से बुराई भी अच्छाई हो जाती है।

चपरासी—अरे, तो क्या तुम गीता पढ़ते हो मुंशी जी?

मुंशी—हाँ, कभी पढ़ता था भाई। अच्छा देखो। मैं ज़रा बाहर जा रहा हूँ। साढ़े छः बजे तक लौटूँगा—साहब से पहले। (जाता है)

चपरासी—कहता है, गीता पढ़ता था। यह सूरत है गीता पढ़नेवालों की। होगा। हमीं कौन रोज़ रामायण पढ़ते हैं! इस नौकरी के मारे तो नाक में दम है।

(पुस्तक लिये नये ढंग की वेश-भूषा में शारदा का प्रवेश)

शारदा—मुंशी! रामू, मुंशी जी कहाँ गये? हाँ रे! सुशीला का टेलीफ़ोन आया था क्या?

चपरासी—जी हाँ। उन्होंने कहा है, आज मैं सिनेमा देखने नहीं जा रही हूँ। दिनेश को एक ख़ास काम है। बीबी जी से कह देना!

शारदा—मैं जानती हूँ। सब जानती हूँ। दिनेश बाबू को क्या काम होगा? और उस चुड़ैल सुशीला को? बहाना है। रामू, बैरा से कहो साढ़े पाँच बजे एक आदमी के लिए चाय तैयार रक्खे। जाओ (जाता है) मैं उल्लू बनाई जा रही हूँ। जैसे मैं कुछ नहीं जानती, कुछ नहीं समझती। यही न! दिनेश तेरा है। (क्रोध से टहलने लगती है। और शीशे के सामने खड़ी होकर) देखूँगी। दिनेश, तुमने गुलाब को छोड़कर गेंदा पसन्द किया। ओह! दोपहर का वादा

भूल गये ? (किताब खोलकर पढ़ने लगती है। फिर बन्द करके धम से सोफ़े पर बैठ जाती है) मैं यह सब नहीं सह सकती (घड़ी में देखकर) जुगलकिशोर न मालूम कैसा होगा ? पिताजी तो बड़ी तारीफ़ करते थे। आई० सी० एस०, इँग्लैंड रिटर्न। सुन्दर युवक। क्या दिनेश जैसा ? कहीं भी मन नहीं लग रहा है। रामू, रामू, कोई आदमी आवे तो फ़ौरन भीतर भेज दो।

(चपरासी अन्दर आकर बहुत अच्छा कहकर फिर बाहर चला जाता है। शारदा कभी तस्वीरें देखती है, कभी शीशे के सामने खड़ी होकर अपने सौन्दर्य की मानसिक कल्पना करने लगती है। इतने में पचीस-छब्बीस साल का एक नवयुवक अपटूडेट फ़ैशन में भीतर आता है। शारदा जो उस समय तक शीशे की ओर देख रही थी, सामने आते हुए युवक को शीशे में देखकर उसके रूप-रंग पर एक नज़र डालती हुई उसका स्वागत करने को आगे बढ़ती है। आइए। बैठिए। बैठिए।

(वह आगन्तुक एक ओर को कुछ झेंपता-सा बैठता हुआ)

आगन्तुक—क्या चौधरी साहब..... ?

शारदा—जी हाँ, जी हाँ, बैठिए, (कलाई की घड़ी की ओर देखकर) आते ही होंगे। ओह ! कितनी गरमी है ?

आगन्तुक—जी। (आँखें ज़रा नीची कर लेता है)

शारदा—(पंखे के पास जाकर उसे और तेज़ करती हुई) बैरा, बैरा। आपको आने में कोई कठिनाई तो नहीं हुई !

आगन्तुक—(हैरान होकर) जी नहीं। क्या चौधरी साहब से मैं मिल सकता हूँ ?

शारदा—(आगन्तुक के सोफ़े की सीट के पास दूसरी सीट पर बैठती हुई) क्यों नहीं ? ज़रूर। मनुष्य का स्वभाव कितना परिवर्तनशील है ? असल में मनुष्य के सम्बन्ध में कुछ भी ठीक-ठीक कहा नहीं जा सकता। साहित्य में सब करेक्टर एक से एक अलग। यही बात दुनिया में भी दिखाई देती है।

आगन्तुक—जी हाँ। यह तो है ही। (फिर नीची नज़र कर लेता है) पुरुष की ही क्या, स्त्री की भी यही दशा है।

शारदा—लेकिन, स्त्री और सब हो सकती है, विश्वासघातिनी नहीं। (एकदम आवेश में आकर) किन्तु पुरुष में हृदय को समझने की क्षमता......ओह बैरा, बैरा, चाय लाओ।

आगन्तुक—(एक नज़र से शारदा की ओर देखकर कुछ हैरान हो जाता है, फिर नीची नज़र कर लेता है।)

शारदा—आप समझते होंगे, मैं स्त्रियों की तरफ़ से वकालत कर रही हूँ। नहीं, रोज़ ही हम लोग क्लास-रूम में देखती हैं। लड़के कितने गँवार होते हैं ! ऐसे घूरते हैं, मानो साबित निगल जायँगे। (उसकी ओर घूरकर देखती है)

आगन्तुक—(ऊपर निगाह उठाकर) इस दिशा में हम लोग पाश्चात्य लोगों से बहुत पीछे हैं। (जेब में हाथ डालकर कुछ टटोलने लगता है)

शारदा—हियर यू आर, आप बिलकुल सही कह रहे हैं। हमारे समाज को अभी बहुत कुछ आगे बढ़ना है। अब दो गाड़ियों में पाँव रखकर नहीं चला जा सकता। हमें इस पुरानी सभ्यता को छोड़ना ही पड़ेगा। इस पश्चिमी सभ्यता के सामने आपको हार माननी होगी। इसके अतिरिक्त मनुष्य का दृष्टिकोण कितना बदल गया है। मनुष्य आज मनुष्य को नये दृष्टिकोण से पहचानने लगा है। हमारी सुन्दरता का मापदण्ड भी तो बिलकुल बदल गया है।

आगन्तुक—(ऊपर देखकर) जी।

(बैरा चाय की ट्रे लेकर सामने छोटी मेज़ पर उसे रख देता है और सब चीज़ें जहाँ की तहाँ रखकर एक तरफ़ खड़ा हो जाता है।)

शारदा—(बैरे को तरफ़ देखकर) सब आ गया न ?

बैरा—जी हुज़ूर !

शारदा—जाओ। (जाता है) आइए। चाय पीजिए। (अपने हाथ से चाय तैयार करने लगती है) आइए !

आगन्तुक—अभी पीकर ही आ रहा हूँ। आप.....!

शारदा—इसमें संकोच की कोई बात नहीं, आइए।

आगन्तुक—(हैरान-सा होकर प्याला हाथ में ले लेता है।)

शारदा—मैं यह मानती हूँ, हमें इस समाज को बदलने के लिए रेवोल्यूशन (क्रान्ति) करना होगा। हमने आज तक स्त्री-पुरुष को जिस ढंग से देखा है उसे बदलना होगा। हवाई-जहाज़ों के समय में घोड़ा-गाड़ी और

ऊँटों पर चलना मूर्खता है। (चाय पीती हुई आगन्तुक की ओर देखने लगती है)

आगन्तुक—ठीक है। आपका कहना सही है। किन्तु रेवोल्यूशन या क्रान्ति हमारे इस मध्य-वित्त समाज का काम नहीं है। जिस दिन यह भावना साधारण समाज में आ गई, उसी दिन क्रान्ति होगी।

शारदा—(अपनी बुद्धिमत्ता पर प्रसन्न होती हुई) आप ही नहीं, कालेज की लड़कियाँ भी मेरे सम्बन्ध में यही विचार रखती हैं। मैं डेस्डिमोदन के पातिव्रत्य में विश्वास नहीं रखती। मैं सीता चाहती हूँ तो दशरथ मुझे बिलकुल पसन्द नहीं हैं। राम के ठीक होने पर भी उनमें कमज़ोरी थी। (चाय पीती है) कोई कोई मनुष्य कितने सुन्दर होते हैं.. अपने विचारों के कारण। पर आसमान में चमकनेवाले सभी तारे एक से प्रकाशमान नहीं होते।

आगन्तुक—मैं समझता हूँ, दुःख-सुख, पाप-पुण्य जीवन में आदि काल से रहते आये हैं। यह दूसरी बात है कि अनुपात में कभी कोई बढ़ या घट जाय। (पीकर ख़ाली प्याला मेज़ पर रख देता है) क्या चौधरी साहब कहीं बाहर गये हैं ? मुझे उनसे...।

शारदा—आप ठीक कहते हैं। (आगन्तुक की ओर देखकर) क्या आप कह सकते हैं, यह प्रेम क्या वस्तु है ? मुझे तो यह जितनी सुन्दर मालूम होती है, उतनी ही अजीब भी।

आगन्तुक—मैं स्वयं इस सम्बन्ध में बहुत-कुछ नहीं जान पाया। देखता हूँ, काग़ज़ या इसी प्रकार की चीज़ों के जोड़ने में जो सफलता गोंद की है; धातु के दो टुकड़ों को जोड़ने में 'टाँके' या कील की जो आवश्यकता है, वही मनुष्यरूपी प्राणी की रुतह को ठीक-ठीक रखकर न टूटने देने के लिए प्रेमरूपी 'लहेस' की कही जा सकती है।

शारदा—(गद्गद सी होकर हँसती हुई) विचित्र व्याख्या है। पर एक बात है। वह दो विरोधी तत्त्वों अर्थात् स्त्री-पुरुष में ही अधिक रूप से क्यों है ?

आगन्तुक—इसलिए कि दो विरोधी तत्त्व ही एक तीसरे तत्त्व की सृष्टि सफलता से कर सकते हैं। दिन और रात के संयोग से ही उषा और संध्या की उत्पत्ति है।

शारदा—(सोचकर कुछ मुस्कराहट के साथ झेंपती हुई) स्त्री के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

आगन्तुक—मुझे इस सम्बन्ध में कोई अधिक जानकारी तो नहीं है, परन्तु इतना जानता हूँ, जीवन में श्वास की तरह इस संसार में स्त्री की सत्ता है। चाहे वैराग्य-मोक्ष की साधना में वह कोई ऊँचा स्थान न रख सके, परन्तु संसार की स्थिति में उसकी सत्ता प्रकृति के सौन्दर्य से किसी प्रकार भी कम नहीं है। प्रकृति में फूल का जो स्थान है, शरद्-ऋतु की पूर्णिमा के दिन चन्द्र की किरणों का जो महत्त्व है, घनघोर बादलों में बिजली की चमक का जो सौन्दर्य है, वही स्थान, वही महत्त्व, वही सौन्दर्य संसार में स्त्री का है। त्याग, कोमलता, प्रेम, सौन्दर्य और दया की उत्पत्ति स्त्री से ही है।

शारदा—परन्तु हम हिन्दू लोग तो स्त्री को वैसा ऊँचा स्थान कभी नहीं देते। क्या द्रौपदी-सीता की कष्ट-कथाओं से इतिहास इनकार कर सकता है ?

आगन्तुक—हिन्दुओं के आचरण की भूल को मैं स्वीकार करता हूँ, परन्तु उन्होंने मर्यादा की दृष्टि से स्त्री को सदा ऊँचा माना है। जो मनुष्य का आदि-कारण है, जो सृष्टि का समग्र सौन्दर्य—मूल सुख अपने प्राणों के साथ अनादि-काल से वहन करती आ रही है और जिसने मनुष्य की स्निग्धता, उसकी कला-प्रियता को सजीव बनाये रक्खा है, उसे हिन्दू हीन कैसे कह सकते हैं ?

शारदा—परन्तु मैं तो जहाँ तक सुन और समझ सकी हूँ, स्त्री एकमात्र सन्तानोत्पत्ति के लिए ही हिन्दुओं में सुरक्षित मानी गई है !

आगन्तुक—मैं तो इस व्यंग्य की कटुता को छोड़कर उसके अर्थ में पूर्णतया विश्वास रखता हूँ। सन्तानोत्पत्ति क्या जीवन और संसार से पृथक् है ? क्या आप बता सकती हैं, आपकी माता आपको क्यों प्यार करती हैं ?

शारदा—इसलिए कि प्यार करना उनका कर्तव्य है।

आगन्तुक—इसका आशय यह हुआ कि किसी की सौतेली माता भी उस बच्चे को कर्तव्य की प्रेरणा से उतना ही प्यार करती है जितना सगी मा। हृदय का आकर्षण कर्तव्य से भी बहुत ऊँचा होता है। हमारा

मानसक्षितिज · हृदय से ऊँचा होकर भी उसके सामने नत होकर ही रहता है।

शारदा—क्या ये सब मानने की बातें नहीं हैं? मैं तो देखती हूँ, हमारी भ्रान्त धारणायें हमें बहुत-कुछ आगे बढ़ाती हैं और वास्तविक रूप जानने के बाद हम उन्हें भूल भी जाते हैं।

आगन्तुक—तर्क की कसौटी पर कसे जाने के बाद धारणाओं का जो रूप निश्चित होगा वह तो सर्वमान्य ही समझा जायगा। अस्तु, जब हम देखते हैं कि परम्परागत चली आई हुई धारणाओं में जीवन के निकास का एक क्रम है और उनके भीतर एक नैतिक मेल भी है तब हमें मानना पड़ेगा कि वे सत्य हैं। विश्वास और वस्तु दो भिन्न पदार्थ हैं, परन्तु एक दूसरे से सम्बद्ध भी।

शारदा—क्या अकेले-अकेले जीवन पूरा नहीं किया जा सकता?

आगन्तुक—व्यक्तिगत रूप से यह सम्भव हो सकता है, सामाजिक रूप से नहीं। समाज स्त्री-पुरुष के सम्मिलित प्रयत्न का दूसरा नाम है।

शारदा—आपकी बातें अद्भुत हैं।

आगन्तुक—(जेब टटोलकर कुछ चौकन्ना-सा होकर) मैं अभी आया। (बाहर चला जाता है)

(चौधरी-महाशय का प्रवेश)

चौधरी—(कुर्सी पर बैठते हुए) शारदा, शारदा बेटी! बताओ। जुगल आया या नहीं।

शारदा—हाँ पिता जी, अभी बाहर गये हैं। बड़े अच्छे आदमी हैं। मैंने निश्चय किया है इनसे......। बड़े विचारशील व्यक्ति जान पड़े।

चौधरी—मैं इसी पक्ष में हूँ बेटी। कन्या को वर का निर्वाचन करने में स्वतन्त्र होना चाहिए। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। लड़का आई० सी० एस० है, अभी विलायत से लौटा है। सुना है, सहारनपुर में उसकी नियुक्ति मैजिस्ट्रेट के पद पर हो गई है। अब देखूँगा, रत्नकुमार मित्र कैसे मेरी बराबरी करते हैं। (ओह! बड़ा काम है!)

(आगन्तुक का प्रवेश)

शारदा—लीजिए, वे आ गये।

(आगन्तुक चौधरी को प्रणाम करके कुर्सी पर बैठने लगता है। चौधरी उठकर हाथ मिलाते हैं और सूरत देखकर हैरान रह जाते हैं)

चौधरी—तुम्हारी सूरत तो बिलकुल बदल गई है जुगल बाबू!

आगन्तुक—क्षमा कीजिए। मैं तो एक मुवक्किल की हैसियत से आपसे कुछ सलाह लेने आया हूँ। मेरा नाम तो मनमोहन है। मेरे पिता के अस्सी हज़ार रुपये कुछ दुष्टों ने जाली प्रोनोट लिख कर ले लिये हैं। (चौधरी की ओर देखता है)

शारदा—क्या आपका नाम जुगलकिशोर नहीं है?

आगन्तुक—जी नहीं।

(चपरासी का प्रवेश)

चपरासी—हुज़ूर एक आदमी यह पत्र दे गया है। (देता है)

चौधरी—(तपाक से, पत्र खोलकर पढ़ता है) शारदा, जुगलकिशोर मोटर-एक्सीडेण्ट के कारण आज नहीं आ सका।

आगन्तुक—मुझे क्या आज्ञा है?

चौधरी—आप कल शाम को आइए। इस समय मुझे फ़ुर्सत नहीं है।

(आगन्तुक जाता है)

चौधरी—शारदा!

शारदा—(गुमसुम-सी होकर) पिताजी!

(पटाक्षेप)

ी स्वराज्य में हिन्दुओं की स्थिति

लेखक, श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०

इस महत्त्वपूर्ण लेख में श्रीयुत सन्तराम जी ने हिन्दुओं की भावी स्थिति का भयावह चित्र अंकित किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि बिना जाति-भेद को दूर किये उनका निस्तार नहीं है।

कुछ दिन हुए काशी के विद्वद्वर डाक्टर भगवानदास जी का एक लम्बा लेख अँगरेज़ी पत्रों में प्रकाशित हुआ था। उसमें आपने हिन्दुओं के ह्रास के कारणों पर विचार करते हुए लिखा था कि महात्मा गांधी का अछूतोद्धार, आर्य-समाजियों की शुद्धि और हिन्दू-महासभा का संगठन-आन्दोलन हमारे जाति-भेद के कारण विफल हो गये हैं; भारत में हिन्दुओं की संख्या दिन पर दिन कम होती जा रही है, जाति-भेद के कारण ये विधर्मियों को अपने में मिला नहीं सकते। लन्दन-प्रवासी प्रसिद्ध देशभक्त डाक्टर हरदयाल, स्वातंत्र्यवीर बैरिस्टर सावरकर और प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री रासबिहारी बोस भी हिन्दुओं को बार-बार यही कह रहे हैं। मैं उनसे भी एक पग आगे जाता हूँ। मैं कहता हूँ कि जाति-भेद के रहते न हिन्दू-मुस्लिम-एकता सम्भव है और न स्वराज्य-प्राप्ति ही। परन्तु स्मृतियों के धर्म ने हिन्दुओं को जाति-भेद का ऐसा नशा पिलाया है कि मृत्यु को सम्मुख मुँह बाये खड़ा देखकर भी ये होश में नहीं आते। सब हिन्दू इस वर्ण-भेद से दुःखी हैं। परन्तु पुरोहितशाही ने वर्ण-व्यवस्था के रूप में सामाजिक अधिकारों का ऐसी चालाकी से बँटवारा किया कि ब्राह्मण से लेकर भङ्गी तक सब हिन्दुओं को इससे एक समान दुःख नहीं। सबसे कम दुःखी ब्राह्मण हैं, उनसे अधिक क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। भङ्गी में तो जातिभेद रूपी फोड़ा नासूर बन कर फूट रहा है। जाति-भेद के कारण प्रत्येक हिन्दू अपने को किसी न किसी दूसरे हिन्दू से ऊँचा समझता है और उसी में सन्तोष मान रहा है। यही कारण है कि सब हिन्दू मिलकर वर्ण-भेद के विरुद्ध जेहाद करने को उद्यत नहीं होते।

हमारी इस सामाजिक फूट से विदेशी शासकों का लाभ उठाना स्वाभाविक था। ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर, किसान और अकिसान, सैनिक और असैनिक जातियों का विभाग इसी वर्ण-भेद के कारण ही सम्भव हुआ है। पजाब के काले बिल और भूमि के क्रय-विक्रय-सम्बन्धी क़ानून, जिनसे हिन्दू मर्माहत हुए हैं, सब जाति-भेद का ही दुष्परिणाम है। जब आप घास खोदनेवाले व्यक्ति को भी जन्म के कारण ब्राह्मण मानकर पूजते हैं तब स्कूल में पढ़ानेवाले व्यक्ति को जन्म के कारण ही सरकार कृषक क्यों नहीं मान सकती? जाति-भेद के विनाशकारी परिणाम को देखते हुए भी हिन्दुओं को इससे बड़ा मोह हो गया है जैसे मद्यप मद्यपान नहीं छोड़ सकता, वैसे ये इसे छोड़ने में अपने को असमर्थ पाते हैं। हिन्दू चाहे आर्य-समाजी हो जाय, सिक्ख बन जाय, ब्राह्म हो जाय या राधास्वामी हो जाय, वह अपनी ब्राह्मण, बनिया, कायस्थ या अहीर बिरादरी के संकीर्ण क्षेत्र को छोड़कर सारी हिन्दू-जाति के कल्याण में ही अपना कल्याण समझने को तैयार नहीं होता। रेल में, बस में, बाज़ार में किसी भी जगह हिन्दू से पूछिए कि आप कौन हैं तो वह अपने को हिन्दू न बताकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, बरन तिवारी या राठौर ही कहेगा। इसके विपरीत किसी मुसलमान से पूछने पर वह अपने को मुसलमान ही बतायेगा।

यह ठीक है कि भारत के मुसलमानों में भी जात-पाँत है। परन्तु वे इसे एक बुराई समझते हैं। इसके विपरीत हिन्दू जात-पाँत को धर्म का एक अंग समझ रहे हैं और इसे तोड़नेवाले को दण्डनीय ठहराते हैं। असेम्बली, म्युनिसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की मेम्बरी के चुनाव के समय जब जाति-भेदरूपी राक्षस अपना भयंकर रूप प्रकट करता है अथवा जब कुछ अछूत मुसलमान होने लगते हैं तब थोड़े समय के लिए हिन्दू जाति-भेद की हानियों का अनुभव करने लगते हैं। परन्तु इनका रक्त इतना ठंडा और निर्जीव हो चुका है कि संकट टलते ही ये फिर आलस्य की नींद में सो जाते हैं। हमारे बड़े-बड़े नेता भी जो हिन्दुओं की फूट पर आँसू बहाते हैं, जो अछूतोद्धार और शुद्धि की विफलता पर खिन्न हैं, जात-

पाँत तोड़ने का नाम सुनते ही अवाक् हो जाते हैं। अपनी जात-बिरादरी का मोह छोड़ने का साहस उन्हें भी नहीं होता। ब्राह्मण नहीं चाहते कि देश एवं जाति के कल्याणार्थ वे अपनी अलग सत्ता को मिटाकर महान् हिन्दू-जाति में लुप्त हो जायँ। ऐसी मनोवृत्ति के मालिक हिन्दू क्या कभी एक राष्ट्र के रूप में संगठित हो सकते हैं? बीज जब गलता है तभी भीमकाय वृक्ष का रूप धारण करता है। वह अपनी सत्ता को अलग बनाये रखकर गगन-चुम्बी महावृक्ष नहीं बन सकता। इसी प्रकार जब तक हिन्दुओं की ये छोटी-छोटी जातियाँ और उप-जातियाँ अपने पृथक् अस्तित्व को खोकर मिट नहीं जातीं तब तक हिन्दू-राष्ट्ररूपी विशाल वृक्ष का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता।

गत ८ आक्टोबर को शिव-मन्दिर-सत्याग्रह के सम्बन्ध में व्याख्यान देते हुए पंजाब-हिन्दू-सभा के प्रधान डाक्टर सर गोकुलचन्द ने दिल्ली में कहा था—"हमारा रोग जितना आप समझ रहे हैं उससे कहीं अधिक गहरा है। शिव-मन्दिर का गिराया जाना आदि घटनायें उस गहरे घुसे हुए रोग के केवल बाह्य लक्षण हैं। हिन्दू आज इस लिए दुर्बल और दलित हैं कि उनमें संगठन नहीं। प्रत्येक हिन्दू को अनुभव करना चाहिए कि मैं अकेला नहीं हूँ, वरन महान् हिन्दू-जाति का एक अंग हूँ। उसे कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे हिन्दू-जाति की हानि हो।" परन्तु जब तक जाति-भेद है तब तक एक हिन्दू अपने को ब्राह्मण, कायस्थ या बनिया अनुभव करने से रुक नहीं सकता; वह अपनी पीठ पर २३ करोड़ हिन्दुओं की शक्ति का अनुभव नहीं कर सकता। जिन लोगों में रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं उनमें संगठन कैसा? इस्लाम सब मोमिनों (मुसलमानों) को भाई मानता है। सब मुसलमान आपस में रोटी-बेटी का व्यवहार कर सकते हैं। अतएव प्रत्येक मुसलमान अपनी पीठ पर आठ करोड़ मुसलमानों की सामूहिक शक्ति का अनुभव करता है। इसलिए यदि हिन्दू-सभा हिन्दुओं में नवजीवन का संचार करके उन्हें एक जीवित-जाग्रत जाति बनाना चाहती है तो उसे वर्ण-भेद के विरुद्ध खुल्लम-खुल्ला जेहाद करना होगा। अन्यथा हिन्दू निर्जीव ही बने रहेंगे। केवल मुसलमानों को कोसते रहने से हिन्दुओं में शक्ति नहीं आ सकती और न इनमें एक-दूसरे के प्रति प्रेम ही पैदा हो सकता है।

वर्ण-भेद और हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य

हिन्दुओं के वर्ण-भेद को मिटाना केवल हिन्दू-सभा का ही काम नहीं, वरन कांग्रेस का भी परम कर्तव्य है। कांग्रेस इस प्रश्न पर आँखें बन्द रखकर अपने उद्देश्य में कभी सफल नहीं हो सकती। जाति-भेद का उच्छेदन उतना धार्मिक प्रश्न नहीं जितना कि राजनैतिक है। यदि वर्ण-भेद नहीं मिटाया जायगा तो कांग्रेस चाहे मुसलमानों को भारत का सारा राज्य ही क्यों न सौंप दे, हिन्दू-मुस्लिम फ़िसाद कभी बन्द न होंगे। मुसलमान बढ़ई, दबगर, कुँजड़े, मोची, क़साई, रँगरेज़ और जिल्दसाज़ हिन्दुओं से इसलिए फ़िसाद नहीं करते कि मुसलमानों को सरकारी नौकरियों और असेम्बलियों में पर्याप्त भाग नहीं मिल रहा है, वरन इसका कारण यह है कि प्रत्येक मुसलमान स्त्री, पुरुष, बच्चे और बूढ़े के हृदय में हिन्दुओं के विरुद्ध द्वेष का भाव है। वे जानते हैं कि हिन्दू हमसे घृणा करते हैं, हमारे हाथ का खाते नहीं, छू जाने पर खाना फेंक देते हैं, वे हमको बराबर के भाई क्या मनुष्य समझने को भी तैयार नहीं। ऐसी दशा में भारत में रहते हुए मुसलमान अपने को सुरक्षित नहीं समझते। वे जानते हैं कि यदि हिन्दुओं का आधिपत्य हो गया तो हमें दबकर रहना पड़ेगा। ये मुसलमान हिन्दुओं में से ही इस्लाम में गये हैं। वे अछूतों और शूद्रों की भाँति सवर्ण हिन्दुओं के दास बनकर रहने को तैयार नहीं। आरम्भ में इन मुसलमानों ने चेष्टा की कि हम पुनः हिन्दू बन जायँ। परन्तु वर्ण-भेद के शिकार हिन्दुओं ने उनको बराबर के सामाजिक अधिकार देकर हिन्दू बनाने से इनकार कर दिया, वरन उनको ताने से मुग़लों के साले, पतित और म्लेच्छ कहा। फलतः इन नव-मुस्लिमों के मन में बदला लेने का भाव उत्पन्न होना अनिवार्य था। इसलिए उनका यह बराबर यत्न रहता है कि ये जन्माभिमानी हिन्दू किसी प्रकार मुसलमान बना लिये जायँ, अन्यथा हम भारत में स्वतंत्रता एवं सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत न कर सकेंगे। मुसलमान चाहे इन शब्दों में अपने हार्दिक भावों को प्रकट करना उचित न समझते हों, परन्तु उनके विचार इसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकते। ऐसी अवस्था में उनको कोरा चेक दे देने से भी क्या हिन्दू-मुसलिम-फ़िसाद बंद हो सकते हैं?

गत १० वीं आक्टोबर को कराची में सिंध-मुस्लिम-लीग का सम्मेलन था। श्री मुहम्मदअली जिन्ना उसके प्रधान थे। उसमें पेश करने के लिए फ़ेडरेशन के सम्बन्ध में एक लम्बा प्रस्ताव तैयार किया गया था। उसका एक अंश निम्नलिखित है—

"भारत की बहुसंख्यावाली जाति ने सहस्रों वर्षों से जात-पाँत की एक ऐसी कड़ी व्यवस्था बना रक्खी है जो राष्ट्रीयता, न्याय, समता, प्रजातन्त्र और उन सब उच्च आदर्शों का प्रतिवाद है जिनको प्राप्त करने के लिए नूतन संसार यत्नशील है और जिनका वह अपने को समर्थक प्रकट करता है। इस जात-पाँत ने इस देश के बहुसंख्यक लोगों पर सामाजिक और आर्थिक रुकावटें लगा रक्खी हैं और करोड़ों मनुष्यों को दासता के ऐसे गहरे गर्त में ढकेल दिया है जहाँ से उनका निकलना संभव नहीं।

"बहुसंख्यावाली जाति की जात-पाँत की मनोवृत्ति और मुस्लिम-विरोधी नीति के कारण और दो बड़ी जातियों के धर्म, भाषा, लिपि, संस्कृति, सामाजिक नियम एवं जीवन के मानसिक दृष्टिकोण में और अनेक स्थानों में दोनों के वंश में भारी अन्तर होने के कारण एक संयुक्त भारत और एक संयुक्त भारतीय राष्ट्र का बनना असम्भव है।"

मुस्लिम-लीग के इन विचारों से संभव है, हमारे अनेक कांग्रेसी देश-बंधु मर्माहत हों, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो उसकी राय अधिकांश में ठीक ही है। किसी स्वराज्य-भोगी बड़े देश में दो धर्म, दो भाषायें और दो संस्कृतियाँ चिरकाल तक नहीं रह सकतीं। उनमें से जो भी प्रबल होगी वह शनैः शनैः दूसरी को हड़प कर जायगी। यदि आज भारत स्वतन्त्र हो और किसी व्यक्ति को उसके हिन्दू या मुसलमान होने के कारण ही सरकारी नौकरी और राजनैतिक अधिकार न मिलें तो थोड़े ही दिनों में आप देखेंगे कि लोग उस धर्म को ग्रहण कर लेंगे जो दो में से उनके लिए अधिक सुभीते का होगा। इस समय हिन्दू-धर्म की अपेक्षा इस्लाम में जीवन अधिक सहज और सुखदायक है। उसमें जात-पाँत, छूत-छात और लम्बे-चौड़े सामाजिक बंधन नहीं। इसलिए वह बढ़ रहा है और हिन्दू दिन पर दिन कम हो रहे हैं। यही बात भाषा की है। हिन्दी में यदि अधिक गुण होंगे तो स्वराज्य हो जाने पर उर्दू का लोप हो जायगा, हिन्दी उसे हज़म कर जायगी और यदि उर्दू अधिक उपयोगी सिद्ध हुई तो हिन्दी मर जायगी। जो लोग समझते हैं कि यहाँ हिन्दू-मुस्लिम भाई भाई बनकर रहेंगे वे मानव-प्रकृति और इतिहास के ज्ञान से कोरे हैं। स्विटज़लैंड जैसे एक आध छोटे से देश में कुछ काल के लिए शायद ऐसा संभव भी हो जाय, परन्तु भारत जैसे बड़े देशों में यह बात संभव नहीं। देखते नहीं हो, ज़ेकोस्लोवेकिया से सुडेटन जर्मन, पोलिश और हङ्गेरियन किस प्रकार जुदा हो गये हैं। जो जात-पाँत ब्राह्मण और शूद्र को बराबर अधिकार देने को तैयार नहीं, जिस जाति-भेद के कारण हिन्दू का सारा जीवन, जन्म से मरण-पर्यन्त न केवल साम्प्रदायिक है, वरन अपनी छोटी-सी संकीर्ण बिरादरी तक ही परिमित रहता है, उस जाति-भेद के दलदल में फँसे हुए हिन्दू मुसलमानों के साथ समता और बंधुता का बर्ताव कर सकेंगे, यह मानने को जी नहीं होता।

कराची के लीग के उक्त अधिवेशन में मुसलमानों ने हिन्दी का भी विरोध किया है और इसके लिए कारण यह दिया है कि "इसके द्वारा कांग्रेस भारत में हिन्दू-धर्म का प्रचार और ब्राह्मणी संस्कृति की फिर से प्रधानता करना चाहती है।" मदरास के अब्राह्मण भी हिन्दी का विरोध इसी लिए कर रहे हैं कि इससे ब्राह्मणी संस्कृति का प्रचार होता है। इस प्रकार मुसलमानों और अब्राह्मणों दोनों का ब्राह्मणी संस्कृति का विरोध करना किस बात का द्योतक है? यही कि इस संस्कृति में कोई ऐसी चीज़ है जो दोनों के लिए हानिकारक है और केवल उच्च जाति के ब्राह्मणों के लिए ही हितकर है। ब्राह्मणी संस्कृति सिवा जात-पाँत अथवा वर्ण-भेद के और कुछ नहीं। इस वर्ण-भेद को मिटा दीजिए, हिन्दू और मुसलमान, ब्राह्मण और अब्राह्मण सबका झगड़ा मिट जायगा और सब हिन्द-वासी भाई-भाई बनकर रहने लगेंगे।

भगवान् बुद्ध के प्रताप से भारत में छः-सात सौ वर्ष के लिए वर्ण-भेद का अन्त हो गया था। जाति-बंधन की कड़ी शृङ्खलाओं से मुक्त होते ही हिन्दुओं में वह पराक्रम, वह साहस, वह आत्मविश्वास और वह कार्य-शक्ति आ गई थी कि भारत के सैकड़ों विद्वान् पहाड़ों और समुद्रों को लाँघ कर ब्रह्मा, चीन, जापान, सायबेरिया, चीनी तुर्किस्तान, बलख़, बुख़ारा और अफ़ग़ानिस्तान में पहुँचे थे और वहाँ जाकर उन्होंने भारतीय संस्कृति, भारतीय साहित्य और

भारतीय धर्म का प्रचार किया था। सत्तर-सत्तर वर्ष के बूढ़े हिमालय को पार करके तिब्बत में धर्म-प्रचारार्थ पहुँचे थे। इसी काल में शक, यूची और हूण आदि विदेशी जातियों को हिन्दुओं ने अपने में मिलाकर हज़्म कर लिया था। इसके बाद जब शङ्कराचार्य ने आकर पुनः ब्राह्मणी धर्म का प्रचार किया और हिन्दुओं में वर्ण-भेद का रोग बढ़ा तबसे इनका सारा साहस, पराक्रम, कर्मण्यता और धर्म-प्रचार की लगन नष्ट हो गई। इनमें किसी विधर्मी को स्वधर्म में लाने की शक्ति न रही। समुद्र-यात्रा करना और अटक से पार जाना पाप ठहराया गया। जो लोग बौद्धों को भारत की गिरावट का कारण बताया करते हैं उन्हें सोचना चाहिए कि यदि बुद्ध-धर्म में ही लोगों को वीर्यहीन बनाने का दोष होता तो चीन, स्याम, अनाम, जापान और तिब्बत आज तक स्वतन्त्र रहते।

हमारे कांग्रेसी हिन्दू प्रसन्न हैं कि योरप में विश्वव्यापी युद्ध छिड़ जाने से इँग्लेण्ड को अपनी रक्षा की पड़ जायगी और भूमध्य-सागर तथा स्वेज़-नहर के बन्द हो जाने से अँगरेज़ी सेना भारत न आ सकेगी, उस समय हमें स्वतन्त्र होने का अवसर मिल जायगा। परन्तु ये भोले भाई यह नहीं सोचते कि क्या अँगरेज़ों के चले जाने के बाद हम भारत में अपनी रक्षा कर सकेंगे? पहले तो यहाँ हिन्दू-मुस्लिम का भयंकर गृह-युद्ध होगा। मुसलमान संगठित हैं और हिन्दू असंगठित। इसी लिए ७ करोड़ होते हुए भी वे २३ करोड़ हिन्दुओं के लिए भारी हो रहे हैं। फिर तुर्की, अरब, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, सिंध, काश्मीर, बलोचिस्तान और पंजाब को मिलाकर पाकिस्तान या मुस्लिम फ़ेडरेशन बनाने की जो योजना तैयार की जा रही है और जिसका प्रचार मुस्लिम-लीग बड़े ज़ोर-शोर से कर रही है, उससे स्पष्ट प्रकट है कि इस गृह-युद्ध में भारत के मुसलमान दूसरे मुस्लिम देशों को भारत पर राज्य करने के लिए बुलायँगे। ऐसी दशा में हिन्दुओं ने अपनी रक्षा का क्या उपाय सोचा है? क्या सीमा-प्रान्त की बर्बर जातियों के सामने हिन्दू स्त्रियों का सत्याग्रह और महात्मा गांधी का अहिंसा-व्रत देश को लूट-मार और रक्तपात से बचा सकेगा? क्या औरङ्गज़ेब के मस्त हाथी के सामने सतनामी साधुओं का "जज़िया" के विरुद्ध सत्याग्रह बादशाह को पराङ्मुख करने में सफल हो सका था?

हिन्दुओं को परावलंबी होने की टेव-सी पड़ गई है। उनमें स्वावलम्बन का अभाव-सा हो गया है। वे प्रत्येक बात में दूसरे का सहारा ढूँढ़ते हैं। कांग्रेसी हिन्दू मुसलमानों के मुँह की ओर ताक रहे हैं कि जब तक वे नहीं मिलेंगे, हम स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकेंगे। आत्म-रक्षा की शक्ति प्राप्त करने का कुछ भी यत्न न करके वे मुसलमानों की कृपा को ही अपनी टेक समझ रहे हैं। सनातनधर्मी स्वयं कुछ न करके वंशीवाले नन्दलाल को बुला रहे हैं। आर्य-समाजी वेदोंवाले दयानन्द को पुकार रहे हैं। सिक्ख बाड़ोंवाले गोविन्दसिंह की प्रतीक्षा में हैं और हरिनाम-कीर्तनवाले आधी-आधी रात तक गउओंवाले गिरिधारी को आवाज़ें देते नहीं थकते। कुछ लोग महात्मा गांधी की जय पुकार कर ही स्वराज्य-प्राप्ति की आशा कर रहे हैं। अछूतोद्धार के लिए वास्तव में स्वयं सवर्ण हिन्दुओं को अपनी गंदी मनोवृत्ति को ठीक करने की आवश्यकता है। परन्तु ये अपना सुधार न करके अछूतों को शुद्ध होने को कह रहे हैं। स्वर्गीय श्री मोतीलालजी नेहरू से जब एक बार किसी ने पूछा कि कोई एक बात ऐसी बताइए जिसके करने से भारत को स्वराज्य मिल जाय तब उन्होंने सोचकर कहा था—"जाति-भेद को मिटा दो, स्वराज्य मिल जायगा।" परन्तु हिन्दू जाति-भेद को मिटाने के बजाय अँगरेज़ों को कोसकर और मुसलमानों का पद-लेहन करके ही स्वराज्य-भोगी बनना चाहते हैं। ऐसी दशा में कौन कह सकता है कि भारत में स्वराज्य हो जाने पर भी हिन्दू उस स्वराज्य का उपभोग कर सकेंगे।

विश्व के अर्थ-संकट की पहेली

क्या दुनिया की माली हालत फिर ख़राब होगी?

लेखक, श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा

राज्यलिप्सा, शस्त्रीकरण की होड़ और बेकारी ने संसार की आर्थिक पहेली को बहुत उलझा दिया है। सब राष्ट्र इसे सुलझाने में परेशान हैं। लेखक ने इस विषय पर विशेष विचार किया है और इस लेख-द्वारा अपना अनुभव पाठकों के सामने रखा है। आशा है कि पाठकों को यह विषय रुचिकर होगा।

सार के व्यापार-व्यवसाय की कहानी बड़ी विचित्र है। आज अगर व्यवसायी-रोज़गारी लाभ और यश की नदी में बह रहा है तो कल उसकी क्या दशा होगी, यह नहीं कहा जा सकता। लड़ाई छिड़ने की ज़रा-सी ख़बर पर बाज़ार में इतनी हलचल मच जाती है कि लाखों-करोड़ों रुपयों का हानि-लाभ हो जाता है। इसलिए व्यवसाय-क्षेत्र के विशेषज्ञों को बहुत ही सतर्क और सचेत रहने की ज़रूरत है।

दुनिया का सारा दारोमदार उसके रोज़गार पर निर्भर करता है। संसार की सभी परेशानी महज़ व्यापारिक उलझन का परिणाम है। जर्मनी का ज़ेकोस्लोवाकिया की सरकार से कोई झगड़ा नहीं है, उसे सुडेटन-सीमा के भीतर बसनेवाले जर्मनों से इतना प्रेम नहीं है कि वह उनके लिए अपने साम्राज्य को ख़तरे में डाले, उसे रूस से कोई ज़ाती परहेज़ भी नहीं, पर जर्मनी के पास तेल की कोई खान न होने के कारण उसका राष्ट्र बहुत दुर्बल है। उसके लिए यह ज़रूरी है कि वह तेल की किसी बड़ी खान पर क़ब्ज़ा कर ले और इसके साथ एशिया के तुर्किस्तान ऐसे प्रसिद्ध खनिज देशों पर अपना व्यापारिक प्रभुत्व जमाये। ऐसा करने के लिए उसके पास सिर्फ़ एक ही उपाय है। वह मध्य-योरप के छोटे-छोटे राष्ट्रों का गढ़ तोड़कर दर्रे दानियाल की ओर बढ़े, कुस्तुन्तुनिया की ओर क़दम बढ़ाये और ज़ेक-राज्य का अङ्ग-भङ्ग कर रूस के उक्रेन नामक प्रदेश पर धावा बोल सके—उस पर अधिकार कर सके और उस अधिकार के परिणाम-स्वरूप उसकी तेल इत्यादि की प्रसिद्ध खानों पर क़ब्ज़ा कर ले। यह एक बड़ी भारी बात है जिसे रूस भी ख़ूब समझता है और आज योरपीय अशान्ति का यही रहस्य है। इटली को एशिया की ओर बढ़ने की फ़िक्र नहीं है। उसे अफ़्रीका में पैर जमाने का मौक़ा मिल गया है और वह उधर ही बढ़ना चाहता है। इसलिए उसे भूमध्य सागर पर अपना प्रभुत्व अक्षुण्ण बनाये रखना है ताकि ब्रिटेन और फ़्रांस दोनों का दम फूलता रहे। पर इसके लिए ज़रूरी यह है कि ब्रिटेन और फ़्रांस दोनों को मध्य-योरप के झगड़े से दम मारने की फ़ुर्सत न मिले और इटली अपना काम करता रहे। इसी लिए मुसोलिनी हिटलर की पीठ ठोंकता रहता है, यद्यपि जर्मनी का आस्ट्रिया तक बढ़ आना उसे बहुत ही बुरा लगा था।

संसार की गति

अस्तु, आदिकाल से, जबसे योरप ने अपना तन ढँकना सीखा और जङ्गलों में घूमना छोड़ा तब से, समूचा विश्व-इतिहास व्यापार की पहेली में उलझा हुआ है। बैबिलेन, कार्थेज, मिस्र, यूनान और रोम तथा भारत की स्वाधीनता के पतन की कारुणिक कहानी इसी व्यावसायिक संघर्ष का इतिहास है। दुनिया बनती और बिगड़ती रही—व्यापार की धुरी पर। कहीं पानी के मार्ग के लिए झगड़ा हुआ, कहीं सोने की खान के लिए। इसलिए आज जब संसार की इतनी बुरी हालत हो रही है और रोज़ लड़ाई का डर लगा रहता है, व्यापार की परिस्थिति का अध्ययन कर लेने पर हम दुनिया की राजनैतिक उथल-पुथल को अच्छी तरह से समझ सकेंगे।

सन् १९२९ में दुनिया के रोज़गार की हालत बहुत

अच्छी थी। चीज़ों की काफ़ी माँग थी। बेकारी कम थी। रुपये का लेन-देन काफ़ी हो रहा था। पर १९२९ से ही विश्व-व्यवसाय का पतन प्रारंभ हो गया। १९२९-३३ तक दुनिया की माली हालत बहुत ख़राब हो गई। रोज़गार एकदम मन्दा हो गया। प्रतिस्पर्धा का नशा बहुत ही तीव्र हो उठा। मुद्रा का लेन-देन कठिन हो गया। घबराकर राष्ट्रों ने नई-नई डिग्रियाँ जारी कीं। सोने में भुगतान बन्द कर दिया गया। कहीं चाँदी और काग़ज़ में लेन-देन करने पर मजबूर किया गया। स्वर्ण-मुद्रा का बाँध टूटते ही सोना ख़रीदने की दौड़-सी मच गई। ग़रीब भारत जैसे देश का अरबों का सोना विलायत जाने लगा। अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन और फ़्रांस ने संसार का आधे से अधिक सोना ख़रीद लिया और अपना ख़ज़ाना भर लिया।

इतनी उथल-पुथल का कुछ परिणाम तो होना ही था। १९३४ के शुरू से हालत सुधरने लगी। इस वर्ष औद्योगिक-उत्पत्ति १९२९ की सीमा तक आगई थी। संसार का व्यापार भी उसी १९२९ के पैमाने तक आ गया था। अर्थात् साधारण चीज़ों की उत्पत्ति काफ़ी बढ़ी और आम रोज़गार का पैमाना भी काफ़ी बढ़ गया।

सन् १९३५ से चीज़ों की क़ीमत बढ़नी शुरू हुई। १९३६ में आम तौर पर और भी मूल्य बढ़ गया और १९३७ में वह स्थायी रूप-सा ग्रहण करने लगा। इसका बहुत कुछ कारण तो १९३३-३४-३५-३६ में की प्रचलित अनेक सरकारों की मुद्रा-नीति और स्वर्णमान का छोड़ना भी था—यद्यपि यही एकमात्र कारण नहीं था। १९३५ में थोकभाव बढ़ा था, १९३६-३७ में आम तौर पर क़ीमत महँगी हो गई थी। दाम बढ़ते-बढ़ते (जिसमें क्षणिक उलट-फेर भी होते रहे) १९२९ की हद तक पहुँच गया और जापान, चीन, डेन्मार्क, ग्रीस और नार्वे ऐसे उद्यमी देशों में तो १९२९ के पैमाने को भी पार कर गया था। इस परिस्थिति में एक और विचित्र बात थी। सन् १९२९-३३ के बीच दाम जल्दी गिरा, पर जीवन का ख़र्च धीरे-धीरे गिरा, अतएव लोगों को भयंकर कठिनाई का सामना करना पड़ा। पर १९३५ से थोकभाव जल्दी बढ़ा, पर जीवन-व्यय धीरे-धीरे बढ़ा, अतएव लाभ भी बहुत काफ़ी हुआ। इससे सार्वजनिक सम्पत्ति ठोस रूप से बढ़ी।

आर्थिक नीति की यही विचित्रता है। [उ]ज्ज्वल है और समानता तथा अनुकूलता के स्थायी लक्षण शुरू [ह]ी दीखता है।

बेकारी भी दूर होने लगी। अन्तर्राष्ट्रीय चैम्[बर ऑफ़] कामर्स की रिपोर्ट के ताज़े आँकड़े देखने से पता [चलता] है कि कुछ देशों में ४१-४२ प्रतिशत तक बेका[री घट] गई। ज़ेकोस्लोवाकिया ऐसे देश में भी हज़ार पीछे [...] आदमी बेकार रह गये और बेकारी ३९ प्रतिशत घट[ी]। अमरीका में हज़ार पीछे ५,१५५ आदमी बेकार रहे [...] यह भी ३१.८ प्रतिशत की घटती होने पर !!! यह १९३७ की है और केवल उदाहरणार्थ दी गई है। [...] व्यापार भी ५ प्रतिशत बढ़ गया—यानी सन् [...] ५ प्रतिशत अधिक सन् ३६ में और उससे [...] अधिक सन् ३७ में।

[ए] विश्व-मात्र [...] के लिए [...] हालत पर [...] क अजीब [...] वही अपने [...] चाहता है। [क]ोई भी राज्य [...] भूख को कम [...] है कि लड़ाई [...] उनका एक [...] करे लड़ाई न [...] का प्रश्न [...] निर २६ तक [...] की [...] विरोध [...] फ़ाड़-चे [...] [१]९३० [...] विश्वास [...] प्राप्त कर[...]

राष्ट्र-परिषद्-द्वारा सन् ३७-३८ के लिए '[इको]नोमिक सर्वे' नामक जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है [उससे] यही पता चलता है कि सन् १९३७ से आर्थिक [...] बदलने लगा। सन् १९२९-३३ के युग में जो [...] छाई हुई थी उसका निवारण १९३४ से शुरू हु[आ]। सन् ३७ के शुरू के महीनों में इस क़दर पासा [पलटा कि] १९२९ का ज़माना आता हुआ मालूम पड़ा। प[र वर्ष] के आख़िर होते-होते ऐसा प्रतीत हुआ कि पिछला [...] का ज़माना आनेवाला है, अर्थात् विकास के [...] पुनः लुप्त-से होने लगे। अब अर्थ-पण्डितों में यह [...] छिड़ा कि क्या यह उन्नति अस्थायी थी और मन्दी पुन[ः आ] जायगी और इससे घबराने की कोई बात नहीं है! [...] में भी इस प्रश्न का निपटारा नहीं हो पाया और [...] समस्या हम सबके सामने विकट रूप धारण किये हु[ए है] कि क्या मन्दी का ज़माना आ गया—आ रहा है [या] विश्व-अर्थ-संकट पुनः आया चाहता है—क्या रोज़गा[र ...] अपनी बर्बादी की पुनः तैयारी कर लें—क्या संसार [को] चैन से बैठने के लिए थोड़ा भी समय न मिलेगा?

पवित्र कल्पना की बात

'इकोनोमिक सर्वे' ने एक बात लिखी है, जो सम्भ[व] है या नहीं, अभी नहीं कहा जा सकता। उसके अनुसा[र] यदि राजनैतिक शान्ति बनी रही तो मन्दी का भय करने का कोई कारण नहीं है। अभी संसार में इधर-उधर व्यापारिक अभ्युदय के लक्षण दीख पड़ते हैं और उनसे

[...] कठिन नहीं [...] [संसा]र की राजनीति [...] [...]ा अपनी सरकार [...] [...] करते तो वे रोज़ग[ार ...] [...]ना पर क्या भरोसा [...] [...]ज शस्त्री-करण पर [...] [...] राज्य की समूची श[क्ति ...] [...]ी जा रही है। इतना ख़र्च [...] [व्य]ावसायिक प्रगति तथा ज[...] [...]शक्ति के बल पर। यह बड़ी [...] [...] देश की आर्थिक शक्ति इतना [...] [...] इसका भयङ्कर परिणाम न होगा [...] [...] सरकार आर्थिक प्रयत्नों में, अ[...] [...] तथा सैनिक नीति के कारण [...]

[...] प्रसन्न रखने के अतिरि[क्त ...] [...]ी भुला देने में कोई [...] [संय]ुक्त-राज्य की हाल[...] [...]वत्ता इतने [...] [...]ा है कि [...] [...] अन्य देश [...] [...]ण्डर्ड' नीचा [...] [...], इस समस्या [...] [...]न के स्टाक-[...] [...]ता ही जा रहा [...] [...]का तो दिवाल[...] [...]ली के गले की [...] [...]शान्ति फैली हुई [...] [...] तरह है। फ़्रांस [...] [...]ण सरकारें उलट[...] [...] और नये-नये प्र[...] [...] लिए सोने का ख़ज़ान[...] [...] भी शङ्कित हो [...] [...]त पोली है—औ[...] [...]ष्ट्रों की दशा ऐसी [...] [...]व समस्त संसार पर [...] [...] सेना बन[...]

[...]जाती है कि अभ्युदय की सुनहली रेखा [...] जायगी। किन्तु, क्या होगा, इसका उत्तर [...]तक से मिलता है, न अन्य किसी औद्योगिक [...] व्यावसायिक पत्र-पत्रिका से। पुस्तक का वह [...] है कि संसार का आर्थिक उत्थान-पतन बहुत [...]रेका के संयुक्त-राज्य के उत्थान-पतन पर निर्भर [...] और आज वहाँ जो बेकारी की कमी, रोज़गार [...] व्यवसाय का फिर से पनपना दीख पड़ता है, [...]स्थायी रह गया तो संसार का बड़ा कल्याण [...]वान् जाने, इस पवित्र कल्पना का क्या परिणाम [...] जहाँ वैज्ञानिकों-पण्डितों की बुद्धि ख़ामोश हो [...]ीं ईश्वरीय सत्ता का स्मरण हो आता है। [...] यह होता है कि १९३७-३८ तथा १९२९-३३ [...] क्या एक समान हैं? उस समय मन्दी के [...] जो कारण थे, क्या इस समय भी वही [...]ो सकते हैं? इसी प्रश्न से वर्त्तमान समस्या [...] समझा जा सकता है। अब पक्ष और [...] बातें समझ लेनी चाहिएँ। अवस्था को [...]ती बतानेवाले निम्न-लिखित कारण हो [...] व्यापारियों में और औद्योगिकों में [...] उत्पन्न कराना, तथा सरकारी कार्यों में [...] देशव्यापी सामूहिक प्रयत्न करना, [...]का यह अर्थ नहीं था जितना आज है। आज [...]ण्डा पड़ रहा है इतनी डाँवाडोल है कि लोग [...]ी तीव्र न थी [...] की ही माली हालत पर भरोसा [...]ाने भर को पार और रोज़गारी की आर्थिक [...]ने पर भी बेका[...] करेंगे? [...] मज़दूरों की इतना धन व्यय हो रहा है [...] अधिक [...] एक ही ओर केन्द्रीभूत [...] कम [...] आख़िर होगा तो समूची [...] उससे [...]न-समूह को कर देने की [...] दूसरे सन्देह-जनक बात है कि [...] है। बोझा ढो सकेगी और [...] का! [...] अपनी पर-राष्ट्र-नीति [...] कम कर[...]त्य नये हस्तक्षेप

करती जा रही है। इससे व्यवसायी-वर्ग सरकारी नीति पर पूरा भरोसा नहीं कर सकता। दूसरे सरकारी नियन्त्रण से व्यवसाय की स्वतः प्रेरणा-शक्ति मारी जाती है। वह जकड़ता जाता है और उतना लाभ-दायक नहीं रह जाता।

(४) सरकारी कार्यों में इतने अधिक और गुणी आदमी खपा लिये जाते हैं कि निजी व्यवसाय के लिए अच्छे और योग्य आदमियों की भी कमी होती जा रही है।

(५) स्वर्ण-विनिमय का परित्याग करने के कारण जहाँ व्यापार को कुछ लाभ भी पहुँचा है, राज्य स्वतन्त्र रीति से अपने देश की भीतरी माली हालत सुधारने में समर्थ हो सके हैं, वैसे ही इसके कारण विनिमय-दर की अनिश्चितता से व्यवसायी बड़ा शंकित रहता है और उतनी लगन से विदेशी व्यापार करने की हिम्मत नहीं करता। यह अनिश्चितता भी व्यापार के विकास के लिए बड़ी हानिकर सिद्ध हुई है।

अब पक्ष में—विकास और अभ्युदय की सम्भावना के पक्ष में—दलीलें पढ़ें:—

(१) औद्योगिक शेयरों का मूल्य बढ़ गया है, जिससे उनके लाभ-प्रद सिद्ध होने की सम्भावना होती है। दाम बढ़ने से ही बाज़ार के हर कोने में एक शुभ सूचना का वातावरण फैल जाता है। शेयर का दाम बढ़ने से उद्योग-धन्धों की ओर भी दिशाओं में उन्नति दीख पड़ती है।

(२) शेयर-भाव बढ़ने से चीज़ों का दाम भी कुछ बढ़ा है। कच्चे मालों का मूल्य तो अवश्य ही बढ़ा है।

(३) कम्पनियों के गोदामों में पड़ा हुआ माल बहुत-कुछ ख़ाली हो गया है और बाज़ार में खपत बढ़ी है।

(४) चीज़ों का दाम बढ़ते देखकर लोगों ने चीज़ें ख़रीद कर अपने यहाँ माल भरना शुरू कर दिया है ताकि काफ़ी दाम बढ़ने पर फ़ायदा उठायें।

(५) चीज़ों की उत्पत्ति और उसके साधन में भी तरक़्क़ी मालूम होती है।

पक्ष-विपक्ष की तो ये बातें हुईं। अब १९२९-३३ तथा ३७-३८ के युग में जो अन्तर है वह भी समझ लेना चाहिए।

युगान्तर

(१) स्वर्णमान अब नहीं रहा। चुंगी की दीवारें ज़्यादा ऊँची हैं। व्यवसाय-नीति बड़ी कड़ी और जटिल हो गई है। मुद्रा-चलन में अपने देश की पूँजी बाहर जाने में बड़ी रोक-थाम है। यह स्थिति तो १९२९-३३ के समय थी।

(२) उस समय सरकार व्यवसाय-नीति में इतना दख़ल नहीं देती थी। व्यवसायी मनमानी करने के लिए आज़ाद थे। अब यह दशा बिलकुल बदल गई है।

(३) इस समय शस्त्रीकरण के कारण सरकारी कार्य में धन-जन दोनों बहुत अधिक लगे हुए हैं। मुद्रा-चलन बढ़ाया जा रहा है। सार्वजनिक कार्यों पर अधिकतम ख़र्च कर लोगों की बेकारी दूर की जा रही है। उनके पास पैसा आ रहा है। क्रय-शक्ति बढ़ रही है। उधर कुछ देशों ने सोने-चाँदी का ख़ज़ाना इतना ज़्यादा बढ़ा लिया है कि उनकी साख ठोस हो गई है और वे अपने देश में मुद्रा या करेंसी का काफ़ी विस्तार कर लोगों की क्रय-शक्ति को बढ़ाने में काफ़ी समर्थ हुए हैं। यह है कुछ वर्षों के भीतर आर्थिक युगान्तर। इसका क्या अर्थ है? क्या इससे यह आशा की जा सकती है कि निकट-भविष्य में इन्हीं कारणों के द्वारा संसार की माली हालत तरक़्क़ी पर होगी या उसके जो साफ़ लक्षण नहीं दिखलाई पड़ रहे हैं उनसे यही पता चलता है कि तबाही का ज़माना फिर आया चाहता है?

भारत एक गुलाम देश है। इसकी गुलामी ही इसका सबसे बड़ा शत्रु है। इस गुलामी के कारण यह सोचना या कहना असम्भव है कि हमारे देश पर क्या असर पड़ेगा। हमारी मुद्रा-नीति, विनिमय-नीति, व्यापारिक नीति विदेशी सरकार के हाथ में है। अगर लड़ाई छिड़ जाय तो वह हमें काग़ज़ी मुद्रा से लाद देगी—विनिमय के उलट-फेर से लड़ाई के समय की हानि की कसर निकाल लेगी। अगर शान्ति ही बनी रही तो स्टर्लिंग की दुम में हमारा रुपया बाँध कर अपना माल हमारी मण्डी में खपाने का सब उपाय करती रहेगी और जब कभी जो भी अवसर आयेगा उससे लाभ उठाती रहेगी। इसलिए हम चाहे लाख पूँजीवादी या साम्यवादी आन्दोलन करें, हमारा आर्थिक भविष्य न तो कोई बहुत उज्ज्वल है और न हमें बिना स्वाधीनता के विशेष लाभ ही दीखता है। अतएव विश्व की समस्या के विचार के लिए विश्व-मात्र का विचार करना होगा, भारत को कुछ देर के लिए भुला देना होगा। अब ज़रा संसार की मौजूदा हालत पर ग़ौर करें।

शस्त्रीकरण का अभिशाप

संसार की आर्थिक समस्या इस समय एक अजीब उलझन का शिकार बन रही है। जिसे देखिए वही अपने देश को लड़ाई के सामान से ढँक देना चाहता है। पारस्परिक अविश्वास इतना बढ़ गया है कि कोई भी राज्य अपनी सेना—तोप-बन्दूक़ या हवाई जहाज़ की भूख को कम नहीं कर सकता। इसका परिणाम यह हुआ है कि लड़ाई के सामान बनानेवालों की बन आई है। उनका एक गुट बन गया है जो चाहता है कि भगवान् करे लड़ाई न हो, वर्ना उसके बाद कुछ दिनों तक शस्त्रीकरण का ख़र्च वैसे ही मन्दा रहेगा जैसा सन् १९२० से १९२६ तक था (कुछ देशों को छोड़कर)—पर परस्पर का वैर-विरोध इतना बढ़ा रहे कि लड़ाई की तैयारी ज़ोर-शोर से होती रहे। कहा तो यह भी जाता है कि ऐसे रोज़गारियों के रुपये से योरपीय ही नहीं, समस्त संसार की राजनैतिक हलचल का नियन्त्रण हो रहा है। जो हो, चाहे सैनिक सड़कें बनती हों, ख़ाइयाँ खोदी जा रही हों, सरहद की क़िलेबन्दी हो रही हो या जो कुछ भी होता हो, इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि बेरोज़गारों को काम करने के लिए, मज़दूरी कमाने के लिए अच्छा मार्ग खुल गया। इसी लिए हर एक देश में बेकारों की तादाद घटती चली जा रही है जिसका अर्थ राष्ट्रीय समृद्धि लगाया जा रहा है। पर यह भी सोचना चाहिए कि लड़ाई के साज-सामान का ख़र्च उठाने के लिए भी तो रुपया चाहिए और वह रुपया कहाँ से आयेगा? संयुक्त-राज्य, ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी, इटली—सबके सामने यही समस्या है कि इसका ख़र्च कैसे पूरा किया जाय। राष्ट्र की आय इतनी नहीं कि इन ख़र्चों को निभा सके। राष्ट्र के सामने सामाजिक सेवा के ही इतने कार्य पड़े हुए हैं कि उसे बड़ी उलझन मालूम हो रही है कि या तो शस्त्रीकरण कम करें या समाज-कार्य। जिन देशों में एकतन्त्र शासन है, वहाँ एक विशेष दल

प्रसन्न रखने के अतिरिक्त और कोई सामाजिक ज़िम्मे-
री भुला देने में कोई हानि नहीं है। पर ब्रिटेन, फ़्रांस और
युक्त-राज्य की हालत नाज़ुक होती जा रही है। रूस ने
त्वत्ता इतने अधिक समय से नियमित रूप से कार्य
या है कि उसकी हालत हर तरह से ठोस है।
अन्य देश क्या करें? या तो रहन-सहन का
टैण्डर्ड' नीचा किया जाय या राष्ट्र की आमदनी बढ़ाई
य, इस समस्या का विकट रूप सामने भी आ गया है।
लैन के स्टाक-एक्सचेञ्ज में सरकारी हुण्डी का दाम
रता ही जा रहा है। इटली की हालत बहुत ख़राब है।
तका तो दिवाला-सा निकला चाहता है। अबीसीनिया
टली के गले की फाँसी-सा हो रहा है। वहाँ अभी तक
शान्ति फैली हुई है और सेना का ख़र्च बराबर पहले
ी तरह है। फ़्रांस में बजट में लगातार घाटा रहने के
ारण सरकारें उलटीं और बनीं। नये-नये क़ानून बनते
े और नये-नये प्रयोग होते रहे। सरकारी साख की रक्षा
लिए सोने का ख़ज़ाना बढ़ाया जाने लगा, जिससे लोग
ौर भी शङ्कित हो गये। ब्रिटेन की भी हालत भीतर से
ुत पोली है—और संसार के इन अगुआ और ठोस
ष्ट्रों की दशा ऐसी शोचनीय और मननीय है कि इनका
ाव समस्त संसार पर पड़ेगा।

सेना बनाम व्यवसाय

इसका यह अर्थ नहीं है कि विश्व का औद्योगिक
िकास ठण्डा पड़ रहा है। कदाचित् उसकी गति
भी इतनी तीव्र न थी। पर उससे सैनिक सत्ता
ी प्यास बुझाने भर को पानी नहीं निकल सकता।
र्मनी में खोजने पर भी बेकार कम मिलेंगे। निरंकुश
ासन के कारण मज़दूरों की कोई सुननेवाला नहीं है,
तएव अधिक से अधिक काम और फ़्रांस इत्यादि
ी तुलना में कहीं कम मज़दूरी मिलती है। पर
ितनी आमदनी होती है, उससे कहीं ज़्यादा सेना के
ाम में लग जाता है। दूसरे आयात-निर्यात पर
रकार का कड़ा नियन्त्रण है। विदेशों का पावना
ढ़ने के भय से बाहरी माल पर कड़ी रोक है। इसका
रिणाम यह होता है कि जनता अपनी माँग न तो
ी कर पाती है और न माँग कम करने को तैयार है।
वह एक अजीब असंतोष की आग में जली जा रही है। इसका परिणाम ईश्वर जाने क्या हो। पर जर्मनी के पास जब बाहरी माल ख़रीदने के लिए पैसे का अभाव है तब उसके लिए उन्हें प्राप्त करने का एक ही मार्ग बच जाता है—उन स्थानों पर ज़बर्दस्ती क़ब्ज़ा कर लेना—और अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए वह उन स्थानों पर क़ब्ज़ा करना चाहता है—जो उसकी कमी पूरी कर सकें। ऐसे स्थान ज़ेकोस्लोवाकिया, आस्ट्रिया, रुमानिया और हंगरी में हैं। और सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान रुमानिया के उस पार रूस में है, जिसका नाम यूक्रेन है। यूक्रेन के तेल के सोते यदि जर्मनी को मिल जायँ तो वह संसार का मुक़ाबला कर सकता है। तेल-पेट्रोल के अभाव से ही वह अभी दबता है। ज़ेकोस्लोवाकिया को हड़पने, हंगरी को उभाड़ने और रूस के विरुद्ध भयङ्कर गुटबन्दी करने की जर्मन-नीति का यही रहस्य है और यह बात दुनिया साफ़ तौर पर समझती है कि हिटलर का यह कहना कि उसका योरप में सुडेटन एरिया लेने के अतिरिक्त और कोई स्वार्थ नहीं है—सरासर चाल की बात है।

जो हो, यह तो सत्य है कि इस प्रकार आर्थिक उलझन नहीं सुलझा करती। फ़्रांस और ब्रिटेन में मज़दूर-आन्दोलन के ज़ोर के कारण आनुपातिक रूप में श्रम का मूल्य सबसे ज़्यादा बढ़ा, पर काम करने के घण्टे भी कम होते गये। फ़्रांस में ४० घण्टे फ़ी हफ़्ते का नियम है। अतएव यह सोचने की बात है कि जनता की माँग ज़्यादा, उपज कम, रहन-सहन क़ीमती—पर सरकार को सैनिक कार्य के लिए अधिक से अधिक द्रव्य की ज़रूरत! इसका फल क्या होगा? स्वर्ण-कोष बढ़ाने से काम नहीं चल सकता। काग़ज़ी-मुद्रा विदेशी विनिमय में काम नहीं देती। चुंगी की दीवारें तथा ग़लत व्यापार-नीति के कारण व्यापार यों ही मन्दा पड़ा हुआ है। जनता अपनी रहन-सहन के स्टैण्डर्ड के अनुसार बाहरी सस्ता माल ख़रीद नहीं पाती। कर का भार इतना ज़्यादा है कि उसे सँभालना ही कठिन है। उधर मज़दूर काम के घण्टे बढ़ाना नहीं चाहते। मज़दूरी वे किसी भी हालत में कम करने के लिए तैयार नहीं हैं। मज़दूरी व कम काम के कारण उद्योग-व्यवसाय से लाभ का

औसत बहुत कम हो गया है और यह समस्या गम्भीरतम होती जा रही है।

आख़िर इस उलझन से छुटकारा कैसे मिले? मज़दूरी बिना घटाये और काम के घण्टे बिना बढ़ाये उद्योग-व्यवसाय कैसे पनप सकता है, जिससे राष्ट्र का सैनिक-करण भी सँभला रहे और रहन-सहन का स्टैण्डर्ड भी कम न हो। एक तरीक़ा यह सोचा गया कि मुद्रा का मूल्य घटा दिया जाय, जिससे उसकी क्रय-शक्ति घट जाय। यानी एक रुपये में अगर आठ पेंसिलें मिलती थीं तो अब छः मिलने लगें। इसलिए १००) वेतन पानेवाले का वेतन उतना ही बना रहा, पर उसका मूल्य घट गया। फ्रांस ने फ्रैंक सिक्के का मूल्य घटाकर यह प्रयोग करना भी चाहा, पर मज़दूर या नौकरी-पेशा लोग इसके असली माने काफ़ी समझते हैं और उन्होंने इतनी हलचल की, इतना विरोध किया कि सरकार को मूल्य घटाने—मुद्रा का मूल्य गिराने—का उद्देश्य ही ग़लत कर देना पड़ा। यानी एक ओर सिक्के का मूल्य गिराया गया, दूसरी ओर चीज़ों का दाम बढ़ाना भी जुर्म क़रार दिया गया। इससे तो काम नहीं चला।

अतः जिन देशों का बड़ा व्यापक औद्योगिक विस्तार हो गया है उनकी दशा कच्चा माल पैदा करनेवालों से भी ज़्यादा गिरती जा रही है। बाहरी माल ख़रीदने के लिए पैसा नहीं है—इच्छा नहीं है। उन देशों का मज़दूर-आन्दोलन देश का उद्योग इस क़दर जकड़े हुए है कि उसका साम्राज्य-लोलुप कार्यों में सहयोग असम्भव हो रहा है। उधर राज्य-लोलुपता भी कम नहीं होती। भारत का तो कोई महत्त्व विश्व-अर्थ-शास्त्र में है भी या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। कम से कम अर्थ-शास्त्री हमारे विषय में कोई गम्भीर विचार करते नज़र नहीं आते। अस्तु, जो हो—यह तो प्रकट है कि एक ओर भारतीय परतन्त्रता, दूसरी ओर देश के महत्त्वपूर्ण साधनों का अपव्यय, खनिज पदार्थों को प्राप्त करने की चेष्टा का अभाव, चौथे, उद्योग-व्यवसाय के बचपन में ही वर्गवादी या कम्यूनिस्ट—सिद्धान्त का विनाशकारी परिणाम—इन सबसे तो यही प्रकट होता है कि हमारा आर्थिक भविष्य विशेष उज्ज्वल नहीं है।

जहाँ तक संसार का सम्बन्ध है, उसकी मौजूदा हालत बतला कर पाठकों के मन में एक समस्या पैदा कर देना ही इस लेख का उद्देश्य है। वे स्वयं सोचें-समझें और मेरे ऐसे अल्पज्ञों को बतलाने का कष्ट करें कि क्या दुनिया में तबाही का ज़माना फिर आनेवाला है? या वर्तमान अस्थायी मन्दी सचमुच अस्थायी है? अर्थशास्त्री भविष्य-वक्ता नहीं हो सकता। वह तो पिछले अनुभवों के बल पर अनुमान-मात्र करता है। मेरा अनुमान तो यह है कि संसार में—यदि युद्ध न छिड़ा—तो व्यापारिक अभ्युदय का बड़ा सुनहरा समय आनेवाला है; जब लोग तन-मन-धन से काफ़ी सुखी हो जायँगे। और उसके लिए एक-मात्र प्रयत्न है विश्व-शान्ति को (किसी भी मूल्य पर) क़ायम रखना।

गीत

लेखक, श्रीयुत सुबोध अदावाल

आज अपनापन जगाकर
शून्य में द्रुत आ समाओ
कर तड़ित का वेग धारण।
सकल नभ में एक रव हो,
मेघ का हो चीर जारण।
शुभ्र निर्झर बह उठे
प्रिय मिलन की अनुभूति पाकर।

तत्त्व निज अस्तित्व भूलें
तीक्ष्ण विद्युत्तेज में जल।
शक्ति श्वासों की प्रबल हो;
अमर सागर-भाप का बल।
मंद इच्छा-दीप कर
ज्योतित करे जग ज्योति-आकर,
आज अपनापन जगाकर।

महात्मा हंसराज

लेखक, श्रीयुत एम० पी० केदार

बीस दिन की कड़ी बीमारी भोगने के बाद आख़िर १५ नवम्बर १९३८ की रात को ग्यारह बज कर पाँच मिनट पर महात्मा हंसराज जी का देहान्त हो गया। यह दुःखद समाचार दिन निकलने से पहले ही सारे लाहौर और उसके निकटवर्ती शहरों और क़स्बों में जंगल की आग की तरह फैल गया। चारों तरफ़ पंजाब-निवासियों विशेषकर आर्य्य-जनता पर शोक के बादल छा गये। प्रातःकाल से पूर्व ही महात्मा जी के मकान पर सैकड़ों स्त्री-पुरुष एकत्र हो गये। दोपहर तक वहाँ दर्शकों की संख्या हज़ारों तक पहुँच गई। स्कूल, कालेज और यूनिवर्सिटी सब बन्द हो गये और शहर में पूर्ण हड़ताल रही।

ठीक साढ़े बारह बजे उनकी अर्थी का जुलूस निकाला गया। कुछ नहीं तो पचास-साठ हज़ार स्त्री-पुरुष जुलूस के साथ थे। हाईकोर्ट के जज, वकील, बैरिस्टर, प्रोफ़ेसर, अध्यापक और बड़े-बड़े नेता सब जुलूस में सम्मिलित थे। जुलूस जहाँ-जहाँ से गुज़रा, अर्थी पर फूलों की वर्षा की गई और उससे भी कहीं अधिक प्रत्येक दर्शक ने मन ही मन उस महान् आत्मा की पुण्य स्मृति में श्रद्धा के फूल चढ़ाये। "जीवन हो तो ऐसा हो!" ये शब्द थे जो जुलूस के उस दृश्य को देखकर प्रत्येक व्यक्ति के मुख से अपने आप निकल पड़ते थे। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

मरना भला है उसका जो अपने लिए जिये।
जीता है वह जो मर चुका है औरों के लिए॥

महात्मा हंसराज निस्सन्देह परहित और परोपकार में अपने समूचे जीवन की बलि देकर आज अमर हो गये हैं।

इस महान् आत्मा का जन्म सन् १८६४ में पंजाब के एक छोटे से क़स्बे बजवाड़ा में एक निर्धन खत्री-घराने में हुआ था। पिता का नाम लाला चूनीलाल और माता का श्रीमती हरदेवी था। दैवगति से माता और पिता दोनों की छत्रच्छाया छोटी आयु में ही आपके सिर से उठ गई। आपका बोझ आपके बड़े भाई लाला मुलकराज जी ने

[स्वर्गीय महात्मा हंसराज]

अपने ऊपर लिया और अन्त तक वे बराबर अपने इस कर्तव्य को निभाते रहे।

महात्मा हंसराज जी की शिक्षा लाहौर में ही मिशन-स्कूल से प्रारंभ हुई थी। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" के अनुसार अपनी प्रारंभिक शिक्षा के दिनों में ही आपकी विलक्षण बुद्धि का स्पष्ट परिचय मिलता था। अपनी श्रेणी में सदा सर्व-प्रथम रहते थे। आर्य-धर्म और संस्कृत से भी आपको अपने स्कूल के दिनों में ही अनुराग हो गया था। एक बार स्कूल के हेडमास्टर ने आर्य्य-सभ्यता पर कुछ अनुचित कटाक्ष किया, जिस पर आपने हेडमास्टर का कड़े शब्दों में विरोध किया। इसके परिणाम-स्वरूप दो दिन के लिए आप स्कूल से निकाले भी गये।

सन् १८८० में आपने मिशन-स्कूल से मैट्रिक पास किया और उसी वर्ष गवर्नमेंट कालेज में दाख़िल हो गये। कालेज में आपको स्वर्गीय लाला लाजपतराय और पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी जैसी महान् आत्माओं का साहचर्य प्राप्त हुआ। इन तीनों महापुरुषों के मनोमन्दिरों में

[महात्मा हंसराज मृत्यु की गोद में]

आर्य्य-सभ्यता के उत्थान और प्रसार के लिए आत्म-समर्पण की ज्योति यहीं जगी थी। कालेज भर में यह त्रिमूर्ति आदर-भरी ईर्ष्या की दृष्टि से देखी जाती थी। यहीं लाला साईंदास जी के सम्पर्क में आने से इन तीनों व्यक्तियों का आर्य्य-समाज से निकटवर्त्ती सम्बन्ध पैदा हुआ। यह वह समय था जब पंजाब में आर्य्य-समाज को क्या जनता और क्या सरकार सब संदेहयुक्त और कड़ी दृष्टि से देखती थी और समाज-सुधार का अंकुर अभी भलीभाँति फूट भी नहीं पाया था।

लाला साईंदास की दूरदर्शी आँखों ने इन तीनों व्यक्तियों के भावी जीवन में आर्य-समाज का उज्ज्वल भविष्य निहित देखा। शीघ्र ही वे इन तीनों व्यक्तियों को लोक-सेवा के राज-मार्ग का अविरत पथिक बनाने में भी सफल हो गये। अभी ये कालेज में ही शिक्षा ग्रहण कर रहे थे कि लाला साईंदास ने महात्मा हंसराज और पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी के कोमल कंधों पर एक साप्ताहिक पत्र 'रेजेनेटर आफ़ आर्यावर्त' के सम्पादन-कार्य का बोझ डाल दिया। इसमें महात्मा हंसराज का पहला लेख छपते ही लाला साईंदास और अन्य आर्य-समाजियों पर उनकी प्रतिभा की धाक बैठ गई।

३० आक्टोबर १८८३ को आर्य-समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती का देहावसान हुआ। उनकी पवित्र स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए लाहौर में दयानन्द-ऐंगलो-वैदिक-कालेज के स्थापित करने का निश्चय किया गया। उसके लिए थोड़ा-बहुत धन भी एकत्र हो गया, परन्तु वह सब एक बड़े कालेज के चलाने के लिए पर्याप्त न था। ऐसे ही कड़े समय पर महात्मा हंसराज आगे बढ़े।

सन् १८८५ में आप बी० ए० पास कर चुके थे। अपने बड़े भाई की अनुमति लेकर आपने कालेज के लिए अपनी सेवायें अवैतनिक तौर पर पेश कर दीं। महात्मा हंसराज जी के इस अनुपम त्याग से निरुत्साहित आर्य-समाजियों की हिम्मत बँध गई और सबके सम्मिलित प्रयत्नों से उसी वर्ष डी० ए० वी० कालेज की आधार-शिला रख दी गई। वह नन्हा बीज फल-फूलकर आज एक
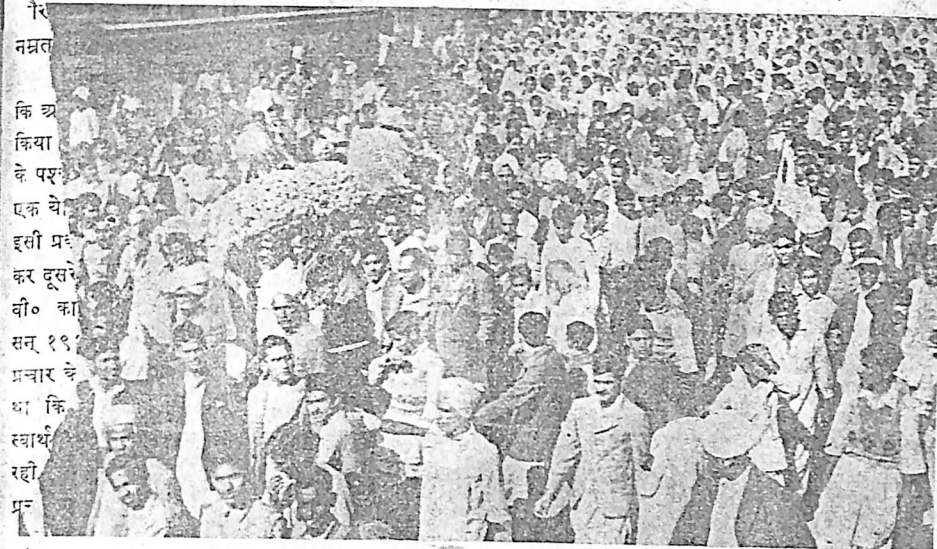
[महात्मा हंसराज की अर्थी का जुलूस]

विशाल वृक्ष के रूप में असंख्य नर-नारियों को अपनी सुखद छाया में विश्राम दे रहा है।

डी० ए० वी० कालेज और उसकी शाखाओं के सम्बन्ध में यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि पञ्जाब में शिक्षा के प्रसार का श्रेय बहुत कुछ इन संस्थाओं को ही प्राप्त है। इस बात को सरकारी यूनिवर्सिटी के अधिकारी भी खुले तौर पर स्वीकार कर चुके हैं कि इन संस्थाओं के अभाव में पञ्जाब-प्रान्त में शिक्षा को सर्वसाधारण तक पहुँचाना और उसे लोक-प्रिय बनाना अत्यन्त कठिन था। वस्तुतः डी० ए० वी० कालेज की प्रज्वलित ज्योति से अनेक छोटे-मोटे दीपक जगकर इस प्रान्त का अज्ञानान्धकार मिटाने में सहायक हुए हैं।

कहना न होगा कि इस महान् ज्योति के जलाने में महात्मा हंसराज जी का मुख्य हाथ था। सच्चे अर्थों में आर्य-समाज के इस दिव्य दीपक में महात्मा जी की अथक निःस्वार्थ सेवाओं ने स्नेह का काम दिया। महात्मा हंसराज के महान् व्यक्तित्व के अभाव में पञ्जाब कदाचित् ज्ञान की विमल वृष्टि से वञ्चित रह जाता।

शिक्षा-प्रबन्ध के साथ ही महात्मा हंसराज का ध्यान वैदिक धर्म के प्रचार की ओर भी बराबर लगा रहता था। आप आर्य-समाज के प्रचार में सदा सहयोग देते रहते थे। इससे प्रभावित होकर तथा आपकी कार्य-कुशलता को देखकर ही आर्य-जनता ने सन् १८८९ में जब लाला साईंदास जी का स्वर्गवास हुआ तब लाहौर के आर्य-समाज तथा पञ्जाब की आर्य-प्रतिनिधि-सभा का आपको सर्वसम्मति से प्रधान चुना। इस समय आपकी आयु केवल २५ वर्ष की थी। इतनी छोटी आयु में इतने ऊँचे और उत्तर-दायित्व-पूर्ण पद की प्राप्ति निस्सन्देह एक विशेष गौरव की बात थी। महात्मा हंसराज जी ने अपने उत्तरदायित्व को लोगों की आशाओं से बढ़कर निभाया। कई वर्ष तक लगातार आप प्रधान पद को सुशोभित करते रहे, परन्तु सन् १८९३ में लाला लाजपतराय जी के लिए स्थान बनाने के विचार से आपने प्रधान बनना अस्वीकार कर दिया।

दूसरों को शिक्षा देने तथा सर्वसाधारण में सच्चे ज्ञान का प्रचार करने के लिए महात्मा हंसराज यह आवश्यक समझते थे कि मनुष्य अपने आपको सुशिक्षित बनाये और
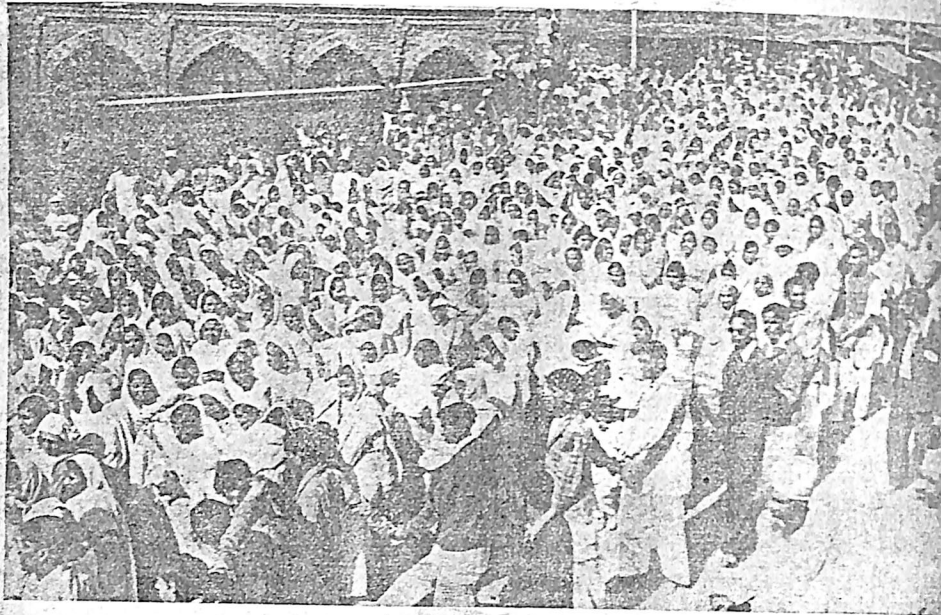
[महात्मा हंसराज की अर्थी के जुलूस में कन्या छात्राओं का समूह]

ज्ञान-रत्नों की प्राप्ति करे। इस उद्देश्य से अन्य सब कामों को करते हुए भी उन्होंने स्वयं संस्कृत-भाषा पढ़ी और वेद-शास्त्रों का अच्छी तरह से अध्ययन किया। शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को समझने की ओर आपने विशेषरूप से ध्यान दिया। इस सम्बन्ध में डाक्टर ह्यूम जब लाहौर में भारतवर्ष के आदि-इतिहास पर व्याख्यान करने आये थे तब आपसे बात-चीत करते हुए आपके शास्त्र-ज्ञान और तत्त्वदर्शिता पर आश्चर्य-चकित हुए थे।

एक आदर्श त्यागी

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि महात्मा हंसराज पञ्जाब में अपने समय के एक आदर्श त्यागी थे। शिक्षा और धर्म-प्रचार का कार्य जिस प्रकार स्वार्थ-रहित होकर आप आयु-पर्यन्त करते रहे वह आपका ही काम था। पचीस वर्ष तक आप डी० ए० वी० कालेज के अवैतनिक प्रिन्सिपल रहे। आपके इस त्याग-भाव का ही शुभफल था कि शिक्षा-कार्य के क्षेत्र में अनेक नवयुवक निःस्वार्थ सेवा-भाव को लेकर कूद पड़े। इसी के परिणाम-स्वरूप सन् १९०२ में डी० ए० वी० कालेज में आजीवन सदस्य की प्रथा का प्रारम्भ हुआ।

महात्मा हंसराज जी का त्याग केवल अवैतनिक काम तक ही समाप्त न हो जाता था। आपका समूचा जीवन एक आदर्श त्यागी और तपस्वी का ज्वलंत उदाहरण था। आपके रहन-सहन और खान-पान में पहले दर्जे की सादगी झलकती थी। स्वदेशी का व्रत तो आपने तब से ले रक्खा था जब इसका कोई नाम भी न जानता था। ज़ाहिरदारी और बनावट को तो कभी पास भी न फटकने देते थे। एक बार बम्बई से सोशल-सर्विस-लीग के मिस्टर कुलकर्नी आपसे मिलने के लिए आपके मकान पर गये। परन्तु आपको वहाँ न पाकर आपके प्राइवेट सेक्रेटरी की तलाश करने लगे। तुरन्त ही उन्हें यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि महात्मा जी अपना कोई प्राइवेट सेक्रेटरी नहीं रखते। महात्मा हंसराज बिलकुल साधारण मकान में रहते थे, सादा वस्त्र पहनते थे, सादा भोजन करते थे

और नित्य नियम-पूर्वक पैदल सैर को जाते थे। आप सबसे नम्रता-पूर्वक मिलते थे।

आपके ऊँचे त्याग का यह भी एक बड़ा प्रमाण है कि आपने कभी किसी पद से चिपटे रहने का प्रयत्न नहीं किया। डी० ए० वी० कालेज में २५ वर्ष तक प्रिंसिपल रहने के पश्चात् जब आपको अपने स्थान पर काम करनेवाला एक योग्य व्यक्ति मिल गया तब तुरन्त रिटायर हो गये। इसी प्रकार आर्य्य-समाज के प्रधान पद को भी सुअवसर देखकर दूसरे के लिए छोड़ दिया। कई वर्षों तक डी० ए० वी० कालेज की प्रबन्ध-कमिटी का अध्यक्ष रहने के बाद सन् १९१८ में यह भार भी दूसरों पर डाल कर स्वयं वेद-प्रचार के काम में लग गये। आपके त्याग का यह हाल था कि अन्त-समय में भी आपको अपने किसी निजी स्वार्थ की अपेक्षा धर्म और समाज के हित की ही चिन्ता रही। मृत्यु से कुछ दिन पहले आपने कहा कि वेद का प्रचार केवल ऊँची आत्माओं के त्याग और बलिदान से ही हो सकता है और उसका प्रत्यक्ष नमूना आपका अपना समूचा जीवन था।

ईश्वर पर दृढ़ विश्वास

महात्मा हंसराज में एक सर्वोत्तम गुण था ईश्वर पर दृढ़ विश्वास। जीवन-पर्यन्त प्रभु पर आपका भरोसा बना रहा। आपको जीवन में अनेक संकटों और विपत्तियों का सामना करना पड़ा। सन् १९१४ में आपके बड़े पुत्र बलराज को लाहौर-षड्यन्त्र केस में कालेपानी की सज़ा हुई। उस समय सारे पञ्जाब ने सहायता के लिए अपने आपको पेश किया, परन्तु आपने ईश्वर के भरोसे वह सहायता स्वीकार नहीं की। मुक़द्दमे का ख़र्च आदि भी केवल अपने भाई से ही लेना स्वीकार किया।

कहते हैं, विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। जब आप अपने लड़के के सम्बन्ध में चिन्ता-ग्रस्त थे उन्हीं दिनों आपकी विदुषी धर्मपत्नी श्रीमती ठाकुरदेवी आपका साथ छोड़कर चल बसीं। परन्तु ऐसे विकट समय में भी आपका पैर नहीं डगमगाया और ईश्वर पर अटल विश्वास रहा। वास्तव में भगवान् का आँचल आपने अन्त समय तक नहीं छोड़ा। प्राण त्यागने तक आप गायत्री का जाप करते रहे। अन्त-समय में आपने यही कहा कि 'प्रभु की इच्छा पूर्ण हो'। आख़िरी श्वास से पूर्व आपने शुद्ध रूप से "ओ३म्" का उच्चारण किया।

महात्मा हंसराज जैसी महान् आत्मायें अपने किसी विशेष उद्देश्य को लेकर ही संसार में जन्म लेती हैं। इसमें कुछ भी संदेह नहीं, महात्मा जी अपने उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णतया सफल हुए। ऐसे महापुरुष किसी भी देश व जाति के लिए गौरव का स्थान हो सकते हैं।

यात्रा

लेखक, श्रीयुत जानकीवल्लभ शास्त्री, साहित्याचार्य-साहित्यरत्न

दूर देश है जाना।
जहाँ न कोई भी मेरा—
अपना जाना-पहचाना।
एक 'द्वन्द्व' चल रहा साथ,
बहुतों को ले क्या करना?
हँसना सूनी राह देख,
या नभ लख आहें भरना,
चलते ही रहना या रुक-रुक
पग-पग पर पछताना।
'तपना तनिक धूप में,
पलभर छाँह देख सो जाना,
धीरे-धीरे धूप छाँह से
अजी! पार हो जाना!
फिर आने की कौन बताये—
आज—अभी तो जाना।

प्रणाम

लेखक, स्वर्गीय पंडित रामचरित उपाध्याय

(१)

सिर पर भूखी मृत्यु खड़ी है,
अंगों में वेदना बड़ी है।
अन्धन्तम है चारों ओर,
मेरे लिए समय अतिघोर॥

(२)

नहीं हुआ यह 'कैंसर'-रोग,
पाता हूँ कर्मों का भोग।
नहीं दूसरे का कुछ दोष,
यही समझ मन में सन्तोष॥

(३)

छूट गया है अन्न हमारा,
केवल जल हो रहा सहारा।
फिर भी है जीने की आशा,
माये! तेरा अजब तमाशा॥

(४)

हाथ-पैर दोनों बल-हीन,
आँखों की भी ज्योति विलीन।
अस्थि-चर्म-अवशिष्ट शरीर,
फटा-पुराना उसपर चीर॥

(५)

बिना बोलाये जो आते थे,
आकरके कुछ ले जाते थे।
वे आते अब कभी न भूल,
कुसमय की घड़ियाँ दुख-मूल॥

(६)

कोई नहीं रहा अब अपना,
हो जावेगा जग भी सपना।
हे जगदीश्वर हे विश्वम्भर,
मुझे भरोसा है तेरे पर॥

(७)

उन्निस उन्तिस संवत विक्रम,
कार्तिक कृष्ण मास मासोत्तम।
तिथि थी चौथ रहा रविवार,
मिला मुझे भव-कारागार॥

(८)

अमृता देवी मा का नाम,
हरिप्रपन्न थे पिता ललाम।
ब्राह्मण थे सरजूपारीण,
विमल विवेकी धर्मधुरीण॥

(९)

यदि हिन्दी-सेवा कर पाता,
तो भी जन्म सफल हो जाता।
वह भी इच्छा हुई न पूरी,
भाग्य-विवश रह गई अधूरी॥

(१०)

शत्रु-मित्र का मुझे न ध्यान,
मेरे सम्मुख सभी समान।
जाति-धर्म से क्या है काम?
मेरा सबको सदा 'प्रणाम'॥

भारत में शक्कर का व्यवसाय

लेखक, श्रीयुत चैतन्यस्वरूप भटनागर, बी-काम०

भारत के औद्योगिक व्यवसायों में शक्कर का यदि प्रथम नहीं तो द्वितीय स्थान अवश्य है। यदि पैदा के हिसाब से देखा जाय तो संसार के शक्कर पैदा करनेवाले देशों में भारत का प्रथम स्थान है। इस व्यवसाय से यहाँ के १,००,००० मनुष्यों का निर्वाह होता है।

भारत में शक्कर तीन प्रकार से बनाई जाती है—(१) मशीनों-द्वारा गन्ने से, (२) गुड़ से और (३) राब से। मशीन से शक्कर बनाने की सबसे पहली फ़ैक्टरी बरेली के पास खुली थी। इसका नाम 'रोज़ शूगर फ़ैक्टरी' था। सन् १९३२ तक भारत में ऐसी फ़ैक्टरियाँ कुल ३१ थीं।

सन् १९३०-३१ में सरकार का ध्यान शक्कर के व्यवसाय की ओर गया। उसने टेरिफ़-बोर्ड को इस सम्बन्ध में जाँच करने को कहा और मार्च सन् १९३१ में ७।) प्रति-हंडरवेट चुँगी नियत कर दी। इसके सिवा सितम्बर सन् १९३१ में २५ प्रतिशत [१॥।-) प्रतिहंडरवेट] अतिरिक्त कर लगा दिया। टेरिफ़-बोर्ड की सिफ़ारिशों के अनुसार सरकार ने ३० जनवरी सन् १९३२ को एक विज्ञप्ति निकाली। इसके अनुसार सब प्रकार की शक्कर पर ७।) प्रतिहंडरवेट का संरक्षण-कर सन् १९३८ तक के लिए लगा दिया गया। सन् १९३४ तक शक्कर पर आयात-कर मय अतिरिक्त करके ९-) प्रतिहंडरवेट था। १ अप्रैल सन् १९३४ को संरक्षण-कर बढ़ाकर ७॥) कर दिया गया, परन्तु अतिरिक्त कर घटाकर १।-) कर दिया गया, जो अब आबकारी की चुंगी के बराबर हो गया है। इस प्रकार कुल आयात-कर ९-) ही रहा। २८ फ़रवरी सन् १९३७ को संरक्षण-कर घटाकर ७।) कर दिया, परन्तु अतिरिक्त कर २) प्रतिहंडरवेट कर दिया। आबकारी-चुंगी भी बढ़ाकर २) प्रतिहंडरवेट कर दी गई। इस प्रकार भारत में शक्कर पर २८ फ़रवरी सन् १९३७ से आयात-कर ९।) प्रतिहंडरवेट लगा हुआ है।

उपर्युक्त व्यवस्था के फल-स्वरूप भारत में शक्कर के व्यवसाय ने बड़ी जल्दी तरक्क़ी की, जो निम्नलिखित आँकड़ों से स्पष्ट होता है—

वर्ष	कारख़ानों की संख्या	गन्ने से मशीनों-द्वारा बनाई हुई शक्कर	गुड़ से बनाई हुई शक्कर	राब से बनाई हुई शक्कर
१९२७-२८		६७,६८४ टन	अज्ञात	अज्ञात
१९२९-३०	२७	८९,७६८ ,,	२१,१५०	२,००,०००
१९३०-३१	२९	१,१९,५८६ ,,	३१,७९१	२,५०,०००
१९३१-३२	३२	१,५८,५८१ ,,	६९,५५९	२,५०,०००
१९३२-३३	५७	२,९०,१७७ ,,	८०,१०६	२,७५,०००
१९३३-३४	११२	४५,३९,९६५ ,,	६१,०९४	२,००,०००
१९३४-३५	१३०	५,७८,११५ ,,	३०,१०३	१,५०,०००
१९३५-३६	१३७	९,१२,००० ,,	५०,०६७	१,२५,०००
१९३६-३७	१४०	११,२८,६०० ,,	१८,५००	१,००,०००
१९३७-३८	१४६	१०,२५,००० ,,	१५,०००	१,००,०००

शक्कर की पैदावार में सन् १९३५-३६ की अपेक्षा सन् १९३६-३७ में करीब २१ प्रतिशत और सन् १९२७-२८ की अपेक्षा १,५०० प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके दो कारण थे—(१) गन्ने की क़ीमत का कम होना और (२) फ़सल का अधिक समय तक रहना।

शक्कर के व्यवसाय की वृद्धि के साथ साथ भारत में

गन्ना बोई जानेवाली ज़मीन का क्षेत्रफल भी काफ़ी बढ़ गया है। देखिए—

१९२९-३०	में	२६,७७,०००	एकड़
१९३६-३७	में	४२,३२,०००	,,

परन्तु सन् १९३७-३८ में यह क्षेत्रफल कम होकर ३८,५५,००० एकड़ हो गया है।

सन् १९३५-३६ में अच्छी जाति के गन्ने की खेती ३०,७१,००० एकड़ ज़मीन में हुई, यानी कुल क्षेत्रफल के ७४ फ़ी सदी भाग में। सन् १९३४-३५ में केवल ६७ फ़ी सदी ज़मीन में ही अच्छी जाति का गन्ना बोया गया था।

ऊपर के आँकड़ों से यह भी स्पष्ट होता है कि राब और गुड़ की शक्कर का बनना कम होता जा रहा है और सीधा गन्ने से मशीनों-द्वारा शक्कर बनाने का कारबार बढ़ता जा रहा है। सन् १९२६-२७ में गन्ने से शक्कर बनानेवाली कुल २५ फ़ैक्टरियाँ थीं और गुड़ से शक्कर बनाने की २२ फ़ैक्टरियाँ थीं। परन्तु सन् १९३३-३४ में गन्ने से मशीनों-द्वारा शक्कर बनानेवाली ११२ फ़ैक्टरियाँ हो गईं और गुड़ से शक्कर बनानेवाली कुल १६ फ़ैक्टरियाँ रह गईं।

शक्कर के व्यवसाय की इस वृद्धि का फल ऊपर के आँकड़ों के अतिरिक्त नीचे दिये आयात के आँकड़ों से अधिक स्पष्ट हो जाता है।

सन् १९३०-३१ में भारत में शक्कर बाहर से १५ करोड़ रुपये की आई, परन्तु सन् १९३४-३५ में क़रीब ४५ फ़ी सदी की कमी हो गई। इस विषय के आँकड़े इस प्रकार हैं—

१९२८-२९ से १९३१	१५ करोड़ रुपये की	
१९३०-३१	९,०१,२००	टन
१९३२-३३	७,४ करोड़ रुपये की	
१९३३-३४	२,५०,०००	टन
१९३४-३५	२,२१,०००	,,
१९३५-३६	२,०१,२००	,,
१९३६-३७	१३,९७१	,,
१९३७-३८	१३,०००	,,

सन् १९३७ में भारत में जावा से १७२५ मेट्रिक टन शक्कर आई थी। ज़्यादा चुंगी के लगने से ही आयात में यह कमी हुई। परन्तु इससे सरकार की चुंगी की आमदनी १० करोड़ रुपये से घटकर ३१ मार्च सन् १९३५ में ३·८१ करोड़ रह गई और सन् १९३६ में ३·२३ करोड़ और सन् १९३६-३७ में केवल ५० लाख रह गई।

सरकार ने शक्कर के व्यवसाय की वृद्धि को देखकर सन् १९३४-३५ में १।) आबकारी-चुंगी लगा दी। उसने यह भी तय किया कि उसमें का =) आना प्रतिहंडरवेट प्रान्तों को बाँट देना चाहिए, जो गन्ना बोनेवाले किसानों के लिए सहकारी-समितियाँ क़ायम करने में ख़र्च किया जाय। २८ फ़रवरी सन् १९३७ को यह चुंगी बढ़ाकर २) प्रति-हंडरवेट कर दी गई। सन् १९३७-३८ में आयात-कर से सरकार को पचास लाख रुपये की आय हुई। १।-) आबकारी-कर फ़ैक्टरी की शक्कर पर और ॥=) खँडसारी शक्कर पर लगाने से सरकार को पहली अप्रैल सन् १९३४-३५ में ९७,२२,०००) की आय हुई, सन् १९३५-३६ में १,५८,२४,०००) की और १९३६-३७ में २,५२,६२,०००) की हुई। सन् १९३६-३७ में खँडसारी शक्कर पर भी आबकारी-चुंगी बढ़ाकर १) प्रतिहंडरवेट कर दी गई। सरकार का अनुमान है कि सन् १९३७-३८ में क़रीब ३५,००,०००) की आय होगी। इस आबकारी-चुंगी के बढ़ जाने के बाद से राब की अर्थात् खँडसारी शक्कर का बनना बहुत ही कम होगया है।

भारत में शक्कर की पैदावार और खपत का पूरा पता आगे दिये हुए आँकड़ों से चलता है—

सन् १९३४ में सरकार ने शक्कर-सम्बन्धी एक विधान बनाया, जिसके अनुसार कोई भी फ़ैक्टरी सिवा किसान के या लाइसेन्सदार एजेंट के और किसी से गन्ना नहीं ख़रीद सकती। इस विधान के अनुसार सरकार गन्ने की कम से कम क़ीमत नियत कर सकती है।

अब यह देखना है कि शक्कर के व्यवसाय की इस समय क्या अवस्था है। भारत में क़रीब १४६ शक्कर-मिलें हैं। इनमें सीधा गन्ने से मशीनों-द्वारा शक्कर बनाई जाती है।

सन् १९३७-३८ में इस फ़ैक्टरी-शक्कर के अलावा ७१,००,००० टन गुड़ बना था। शक्कर के व्यवसाय में क़रीब २५ से ३० करोड़ रुपये की पूँजी लगी हुई है।

वर्ष	पैदावार	खपत	बचत
१९३२-३३	४,७८,१२० टन	८,९५.२८४ टन	+ ४,१७,१६० टन
१९३३-३४	६,४५,२८३ ,,	८,८०,७५७ ,,	+ २,३८,४७४ ,,
१९३४-३५	७,१५,०५९ ,,	९,३२,००० ,,	+ २,१६,९४१ ,,
१९३५-३६	७,५७,२१८ ,,	१०,१५,००० ,,	+ २,५७,७८२ ,,
१९३६-३७	१०,८७,१६७ ,, (अनुमानित)	१०,१०,००० ,,	− ७७,१६७ ,,
१९३७-३८	१२,४७,००० ,,	११,५०,००० ,,	− ९७,००० ,,
१९३८-३९	११,४०,००० ,,	११,१५,००० ,,	+ १०,००० ,,

कुल क्षेत्रफल जिस पर गन्ना बोया जाता है, क़रीब ४३,३२,००० एकड़ है।

यद्यपि भारत में शक्कर का व्यवसाय उन्नति पर है, तो भी इसके सामने कुछ बहुत बड़ी कठिनाइयाँ हैं, जिनमें ये चार मुख्य हैं—

१. शक्कर के व्यवसाय की अव्यवस्था और उसमें संगठन की कमी।

२. प्रान्तीय प्रतिस्पर्धा।

३. शीरे की समस्या।

४. अधिक पैदावार का प्रश्न—निर्यात की आवश्यकता।

१—पहली समस्या में शक्कर के क्रय-विक्रय का प्रश्न भी आ जाता है। जब हम अपने देश के कारख़ानों का जावा के कारख़ानों से मुक़ाबिला करते हैं तब अपने देश की शक्कर की दुर्व्यवस्था स्पष्ट हो जाती है। जावा में कोई भी ऐसी फ़ैक्टरी नहीं जिसकी पैदावार १,००० टन प्रतिदिन से कम हो। परन्तु हमारे देश में १०० टन प्रतिदिन से कम पैदा करनेवाली फ़ैक्टरियाँ भी हैं। जावा के मिल-मालिक जानते हैं कि केवल फ़ैक्टरियाँ बढ़ाने से लाभ नहीं। जितनी माँग हो, उतनी ही पैदावार होनी चाहिए। जावा में १९२९ में १७८ फ़ैक्टरियाँ थीं। परन्तु आजकल क़रीब ४७ फ़ैक्टरियाँ हैं। जावा की कुल शक्कर की पैदावार इन्हीं फ़ैक्टरियों से होती है। ये सब १३ प्रबन्ध-कारिणी समितियों के अधिकार में हैं। हर फ़ैक्टरी की पैदावार ५,००० टन प्रतिदिन से कम नहीं है। भारत में भी इसी प्रकार के संगठन की आवश्यकता है। छोटी छोटी फ़ैक्टरियाँ तोड़ देनी चाहिए या इन्हें आपस में मिला देनी चाहिए। आपस की प्रति-द्वन्द्विता में सिवा हानि के लाभ नहीं। सरकार को एक ऐसा विधान बनाना चाहिए कि प्रत्येक फ़ैक्टरी के लिए प्रतिदिन २०० टन शक्कर बनाना लाज़िमी हो जाय।

दूसरे शक्कर के बेचने का ठीक ठीक प्रबन्ध होना चाहिए। एक ऐसी संस्था होनी चाहिए जो सब मिलों से शक्कर ख़रीद कर बेचे। भारत में शक्कर की कुल पैदावार का ६० फ़ी सदी संयुक्त-प्रान्त और बिहार में पैदा होता है, और यहाँ जितनी पैदावार है, उतनी खपत नहीं। परन्तु बम्बई जैसे प्रान्तों में पैदावार से २½ गुना अधिक खपत है। इस बात की आवश्यकता है कि एक ऐसी केन्द्रिक संस्था हो जो सब शक्कर लेकर व्यय के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में उसे बेचे। श्रीयुत एम० पी० गांधी की यह राय है कि जावा के 'निवास' की भाँति एक केन्द्रीय क्रय-विक्रय की संस्था यहाँ भी होनी चाहिए।

तीसरी समस्या यह है कि गन्ने की किस्म में तरक़्क़ी की जाय। साथ ही शक्कर बनाने में नये नये प्रकार के तरीक़ों का उपयोग होना चाहिए।

चौथे इस बात का ख़याल होना चाहिए कि बेचारा किसान बे मौत न मारा जाय।

इस सिलसिले में सबसे बड़ा काम जिसकी बड़ी आवश्यकता थी, यह हुआ है कि कलकत्ते में एक 'इन्डियन शुगर सिन्डीकेट' स्थापित किया गया है। यह सिन्डीकेट बिहार और संयुक्त प्रान्त की सरकारों-द्वारा स्वीकृत है। इस सिन्डीकेट के मुख्य ध्येय निम्नलिखित हैं—

१—शक्कर-बाज़ार की परिस्थिति को ठीक रखना।

२—अपने मेम्बरों की बची हुई शक्कर को लेकर बेचना।

३—शक्कर के क्रय-विक्रय की सुव्यवस्था करना।

संयुक्त-प्रान्त और विहार की सब मिलें इस सिन्डीकेट के द्वारा शक्कर बेचने को बाध्य हैं।

१२ मार्च सन् १९३८ को सिन्डीकेट की ख़ास मीटिंग में यह तय हुआ कि सिन्डीकेट के सब मेम्बरों को अपनी शक्कर २१. अप्रैल सन् १९३८ से सिन्डीकेट के द्वारा बेचनी पड़ेगी।

सरकार का यह भी विचार है कि भारत कई हिस्सों में विभाजित कर दिया जाय और प्रत्येक भाग की फ़ैक्टरियाँ अपने ही भाग में शक्कर बनाने के लिए गन्ना ख़रीद सकेंगी। इसका फल यह होगा कि फ़ैक्टरीवाले अपने भाग में अच्छे प्रकार के गन्ने उगाने की कोशिश करेंगे।

२—दूसरी समस्या है अन्तर्प्रान्तीय प्रतिद्वन्द्विता। बम्बई की फ़ैक्टरियों के पास अपने खेत हैं। उनमें ४५ टन से ६० टन प्रतिएकड़ गन्ना पैदा होता है। संयुक्त-प्रान्त में केवल १५ टन प्रतिएकड़ गन्ना पैदा होता है। बम्बई की सरकार ने दूसरे प्रान्त से आनेवाली शक्कर पर चुंगी लगा दी है। इस समय इस बात की आवश्यकता नहीं। इस प्रतिद्वन्द्विता का फल भारत के लिए बहुत ख़राब होगा, क्योंकि एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को शक्कर नहीं जायगी। इसका यह अर्थ होगा कि जहाँ शक्कर कम पैदा होती है, यदि खपत ज़्यादा है तो लोगों को शक्कर कम मिलेगी और जहाँ अधिक पैदा होती है और खपत कम है, शक्कर ख़राब जायगी। नीचे दिये आँकड़ों से यह सिद्ध हो जायगा कि भारत में इस समय किस प्रकार के संगठन की आवश्यकता है।

स्थान	पैदावार	खपत
बम्बई	३७,०००	१,२५,०००
पञ्जाब, कश्मीर	१४,०००	१,००,०००
बङ्गाल	२३,०००	१,५०,०००
मदरास-हैदराबाद	२२,०००	२,००,०००
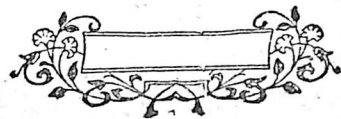
पीछे के आँकड़े देखने से यह प्रतीत होता है कि बम्बई अपनी पैदावार से ३½ गुना अधिक व्यय करता है, पञ्जाब सात गुना और बङ्गाल ६ गुना, मदरास-हैदराबाद ९ गुना। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि संयुक्त-प्रान्त और विहार जहाँ की शक्कर की पैदावार अधिक है और खपत कम है, और प्रान्तों को अपनी शक्कर भेजें।

३—तीसरी समस्या है शीरे की। श्रीयुत के० एम० परिख ने लिखा है कि भारत में शक्कर का व्यवसाय शीरे पर निर्भर है। सादे क़िस्म के शीरे में ३० फ़ी सदी शक्कर होती है। भारत में ६,००,००० टन शीरा होता है। यदि इसमें से शक्कर का भाग निकालकर बेचा जाय तो ७,५०,००,००० रुपये की आमदनी हो सकती है।

आज-कल मुश्किल से आधा शीरा काम में लाया जा सकता है और बाक़ी ख़राब जाता है। परन्तु किन प्रकारों से शीरे का उपयोग किया जा सकता है, इसकी खोज की जा रही है।

४—चौथी समस्या है अत्युत्पादन की। भारत का शक्कर का कुल सालाना व्यय १०,००,००० टन है। पैदावार ११,२८,००० टन है। इस कारण यह आवश्यक है कि भारत से शक्कर का निर्यात होना चाहिए, पर यह एक कठिन समस्या है। बड़ी मज़े की बात तो यह हुई है कि ऐसे समय पर अन्तर्राष्ट्रीय शक्कर-कान्फ़रेन्स में श्रीयुत डी० बी० मीक ने जो भारत-सरकार की ओर से प्रतिनिधि होकर गये थे, इस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर दिये कि भारत सिवा बर्मा के और कहीं भी शक्कर नहीं भेजेगा। यह एक हद दर्जे की ग़लती हुई है। २७ सितम्बर सन् १९३७ को केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा में श्रीयुत रमज़े स्काट ने यह प्रस्ताव पेश किया था कि सर मीक का किया हुआ राज़ीनामा रद कर दिया जाय। यह प्रस्ताव १४ वोटों से पास हो गया। परन्तु सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। यदि यह राज़ीनामा रद नहीं किया जायगा तो भारत के शक्कर के व्यवसाय को बड़ी क्षति होगी।

रेडियो और ग्राम-सुधार

लेखक, श्रीयुत महेशचन्द्र, बी० एस-सी०, विशारद

रत में भी रेडियो का प्रचार बढ़ चला है। परन्तु पश्चिमी देशों के मुक़ाबिले इस सम्बन्ध में भारत अभी बहुत पीछे है। योरप, अमरीका आदि देशों का साधारण आदमी भी आपको बता देगा कि रेडियो क्या चीज़ है।

रेडियो वह यंत्र है जिसके द्वारा हम सुदूर स्थित 'ब्राडकास्टिंग-स्टेशन' से बोलने और गानेवाले मनुष्यों की आवाज़ सुन सकते हैं। परन्तु अब इसका उपयोग बढ़ता जा रहा है। जर्मनी में रेडियो के द्वारा घर की बिजली जलाई जाती है।

ग्रेट ब्रिटेन में पौधों की नस्ल सुधारने के लिए रेडियो से काम लिया जाता है। केलीफ़ोर्निया में 'बेतार के तार' से इस बात का पता लगाते हैं कि किस बीज में कितनी उत्पादक शक्ति है। इस प्रकार वहाँ ख़राब बीजों को बोने की नौबत ही नहीं आती। रेडियो से लाभ उठाने के मामले में अमरीका सबसे आगे है। वहाँ पहले केकों और बिस्कुटों में भुकड़ी लग जाने से हज़ारों पौंड का नुक़सान होता था। परन्तु अब रेडियो-तरङ्गों के प्रयोग से बिस्कुटों में भुकड़ी नहीं लगने पाती और वे ख़राब होने से बच जाते हैं। दूसरी ओर डाक्टर रेडियो-द्वारा तरह तरह के विषैले कीड़ों को मारकर रोगियों को आसानी से नीरोग करते हैं।

प्रोफ़ेसर ए० एम० लो ने ऐसा हवाई जहाज़ बनाया है जो बिना किसी पाइलट के हवा में उड़ता है। केवल लो महोदय मैदान के एक कोने में बैठे रेडियो-किरणों को भेजकर वायुयान का संचालन किया करते हैं। लीसेस्टर कालेज ऑव साइन्स के प्रोफ़ेसर शेडफ़ील्ड ने ऐसी विद्युत्-धारा ढूँढ़ निकाली है जो दूर खड़े हुए आदमी, जानवर, पक्षी सबको ख़त्म कर देती है। रोम और आर्टिया के बीच सड़क पर चलनेवाले सब मोटर एक बार एकाएक रुक गये। पता लगाने पर मालूम हुआ कि रोम के निकट बोसिआ के क़िले में जगत्-विख्यात स्वर्गीय मारकोनी चलते-फिरते मोटरों को रोकनेवाली वायरलेस-तरङ्गों का प्रदर्शन कर रहे थे।

परन्तु हम भारतीय इन बातों का अभी स्वप्न में भी ख़याल नहीं कर सकते। यहाँ तो अभी केवल गाना सुनानेवाले रेडियो का ही प्रचार काफ़ी नहीं है, फिर रेडियो के अन्य उपयोग तो दूर की बात है। सचमुच केवल जादू के इस डिब्बे में ही वह शक्ति भरी पड़ी है जो भारत के कोने कोने में क्रान्ति मचा सकती है। परन्तु खेद है, हमारी कांग्रेसी सरकार ने अभी इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है। कारण स्पष्ट है। ब्राडकास्टिंग का प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार के हाथों में है। तब भी प्रांतीय सरकारें अपने-अपने प्रान्तों में स्थित ब्राडकास्टिंग-स्टेशन के डाइरेक्टरों से मिलकर गाँवों के लिए उपयुक्त ब्राडकास्टिंग-प्रोग्राम का प्रबन्ध कर सकती हैं। जहाँ तक मेरा ख़याल है ब्राडकास्टिंग-डाइरेक्टर को यह हिदायत कर दी गई है कि जब तक प्रान्तीय गवर्नमेंट रेडियो-सेट का इन्तज़ाम करे तब तक प्रान्तीय स्टेशनों से ग्रामोचित प्रोग्राम ब्राडकास्ट किया जाय।

पिछले दो-तीन वर्षों के प्रयोगों से यह भली भाँति सिद्ध हो गया है कि ग्रामोचित ब्राडकास्टिंग-प्रोग्राम में वृद्धि की जाय। यों तो ये प्रयोग बङ्गाल, बम्बई, दिल्ली व सीमाप्रान्त में किये गये थे, परन्तु इस ओर बम्बई की सरकार ने जितना ध्यान दिया है उतना औरों ने नहीं। बाम्बे गवर्नमेंट की ओर से ऐसे मोटर तैयार करवाये गये हैं जिनमें रेडियो-सेट के अलावा ग्रामोफ़ोन, सिनेमा, मैजिक लैंटर्न तो हैं ही, साथ में आदमी और पशुओं का इलाज करने की सामग्री, अच्छे उम्दा बीज आदि भी रक्खे रहते हैं। बम्बई-प्रान्त के कैरा-ज़िले में होनेवाले प्रयोगों से यह मालूम पड़ता है कि आदमियों की अपेक्षा स्त्रियाँ और बच्चे अधिक चाव से रेडियो सुनते हैं।

यह तो हम जानते हैं कि ग्रामीण जीवन में स्त्रियाँ एक विशेष स्थान रखती हैं। किसी-किसी का मत है—और मैं समझता हूँ कि वे बहुत कुछ अंशों तक ठीक भी हैं कि ग्राम-सुधार के कार्य में हम तब तक सफलता नहीं पा सकते जब तक हम गाँवों की स्त्रियों से मदद न लें। गाँव के किसान करते ही क्या हैं? खा पी लिया, खेत पर हो आये और चौपाल पर बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाया। किसान की स्त्री घर की देखभाल करती है, गाय-भैंसों को सानी-पानी
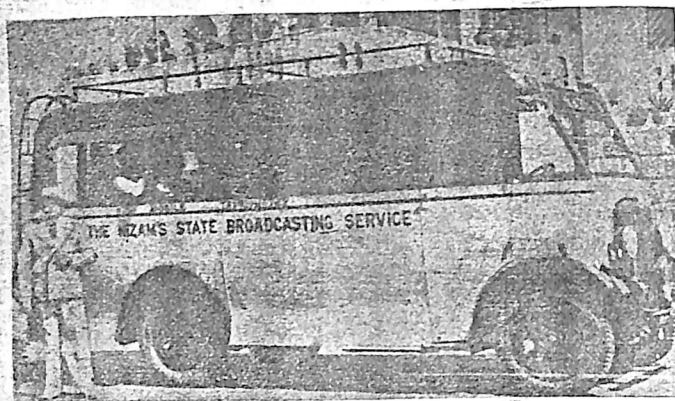
देती है और लड़कों की देख-रेख भी करती है। इसको उसे ही समझाना चाहिए कि गोबर कहाँ फेंका जाय, गंदे तालाब की अपेक्षा कुएँ के स्वच्छ जल को काम में लाने से क्या लाभ होता है तथा कुएँ की जगत पर क्यों कपड़ा-लत्ता न धोना चाहिए। कहने का मतलब यह कि ब्राडकास्टिंग-प्रोग्राम में ऐसी बातों को अधिक स्थान देना चाहिए जिनसे ग्रामीण स्त्रियों का अधिक सम्बन्ध रहता है।

अस्तु, वर्षों से बम्बई-रेडियो-स्टेशन ठीक समय पर एक घंटा तक ग्रामीण प्रोग्राम ब्राडकास्ट करता है। जाड़ा हो चाहे गरमी, बरसात हो चाहे वसंत, गाँवों में सुननेवालों की संख्या सौ हो चाहे हज़ार, हर रोज़ निश्चित समय पर ग्राम-सम्बन्धी लेक्चर सुने जा सकते हैं। परन्तु ऐसा ख़याल किया जाता है कि दिनोंदिन सुननेवालों की संख्या घटती जाती है। यदि यह बात सच है तो सरकार को चाहिए कि इस ओर तुरन्त ध्यान दे तथा पता लगावे कि यह गड़बड़ क्योंकर हुआ। उसका कर्तव्य है कि वह इस बुराई को दूर करे।

रेडियो-द्वारा ग्राम-सुधार करनेवालों में हैदराबाद-रियासत भी काफ़ी उच्च स्थान रखती है। निज़ाम-सरकार का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय श्री सैयद महबूबअली को है जो रियासत के ब्राडकास्टिंग-स्टेशन के डाइरेक्टर हैं। आपके गुणों को पहचान कर रियासत ने

आपको रेडियो के सम्बन्ध में विशेष अध्ययन करने के लिए अमरीका और योरप भेजा था। वहाँ से लौटकर आपने एक ख़ास तौर की लारी तैयार करवाई है, जिससे रेडियो-समाचार लिये भी जाते हैं और ब्राडकास्ट भी। कल्पना कीजिए, पास-पास कुछ गाँव हैं। उनके बीच किसी स्थान पर लारी को खड़ी कर ब्राडकास्ट करने से उन सब गाँवों में रेडियो सुना जा सकता है। ख़बर तो यहाँ तक लगती है कि महबूबअली साहब आज-कल टेलीविज़न अर्थात् बेतार के तार के सिनेमा का भी प्रबन्ध कर रहे हैं।

[निज़ाम-सरकार की ख़ास रेडियो-मोटर]

बङ्गाल में रेडियो-द्वारा ग्राम-सुधार करने का इतना प्रबन्ध नहीं किया जा रहा है जितना स्कूल और कालेज में शिक्षा-प्रचार का। रेडियो-द्वारा शिक्षा-प्रचार करने का प्रयत्न बम्बई-सरकार भी कर रही है। बङ्गाल-गवर्नमेंट ने अभी तक कोई ख़ास नीति नहीं निश्चित की है, परन्तु बम्बई में डाइरेक्टरों की राय से प्रौढ़-शिक्षा-प्रचार में व्यवस्थापूर्वक सहायता ली जा रही है। पढ़ाई या अन्य क्षेत्रों में रेडियो विदेशों में क्या कर रहा है और भारत में क्या कर सकता है, इस पर हम किसी अन्य लेख में विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

अस्तु, सबसे आश्चर्य की बात यह है कि बम्बई, बङ्गाल, दक्षिणी भारत आदि जगहों में तो ब्राडकास्टिंग-द्वारा ग्राम-सुधार करने का प्रयत्न हो रहा है, परन्तु भारत की नाक दिल्ली का ब्राडकास्टिंग स्टेशन बिलकुल चुप बैठा है। ख़ुशी की बात है कि इसी आनेवाले जाड़े से दिल्लीवाला स्टेशन त्रिवर्षीय ब्राडकास्टिंग योजना आरम्भ करेगा। दिल्ली-प्रान्त के एक सौ बीस गाँवों में से हर एक को एक रेडियो-सेट दिया जायगा। दिल्ली की ग्रामीण जन-संख्या दो लाख के लगभग है। इस हिसाब से फ़ी १६६६ मनुष्यों के बीच एक सेट पड़ेगा। ये सेट एक ख़ास तरह के होंगे और इनको चालू रखने के लिए

बिजली की बैटरियाँ पर्याप्त होंगी। इन तीन वर्षों में इस बात का पता लगाया जायगा कि गाँवों के लिए किस प्रकार का प्रोग्राम सर्वोत्तम है तथा ब्राडकास्टिंग से गाँवों पर क्या असर पड़ता है। उस काम के लिए मिलनेवाली एक लाख की रक़म में से क़रीब पैंतालीस हज़ार तो रेडियो-सेट और बैटरियों को ख़रीदने में ख़र्च हो जायँगे और बाक़ी रुपये से तीन वर्ष तक ये सेट चालू रक्खे जायँगे। एक इंस्पेक्टर की अध्यक्षता में पाँच सुपरवाइज़र रहेंगे जो बैटरियों की बिजली ख़त्म हो जाने पर फिर से बैटरियों को तैयार करेंगे। साथ ही वे यह जानने की कोशिश करेंगे कि गाँवों में रेडियो-समाचार ग्रहण करते समय किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तथा रेडियो का ग्रामीण जनता पर क्या प्रभाव पड़ता है।

कहना नहीं होगा कि अभी संयुक्त-प्रांत में भी इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया गया है। शायद इस वर्ष सरकार के पास इतना रुपया नहीं था कि वह रेडियो-सेट ख़रीद सके या शायद गाँवों के लिए ब्राडकास्ट करने के लिए कोई उपयुक्त स्टेशन नहीं ठीक हुआ। वास्तव में ब्राडकास्टिंग से गाँवों को लाभ पहुँचाने के रास्ते में यही दो कठिनाइयाँ अड़ंगा लगाती हैं। पहले तो यह नहीं समझ में आता कि किस प्रकार का प्रोग्राम ग्रामीण ब्राडकास्टिंग के लिए निश्चित किया जाय। इस समस्या को हल करने का भार अखिल भारतीय रेडियो को उठाना चाहिए। दूसरी कठिनाई रेडियो-सेट प्राप्त करने की है। जैसा कि हाल में स्कैन्डिनेविया की रेडियो-विद्वान् मिस एस्ट्रिड ब्याम ने कहा है कि हमारे गाँवों के लिए रेडियो-सेट अनिवार्य हैं। चाहे उसका इन्तज़ाम सरकार करे और चाहे पब्लिक में चंदा करके वे ख़रीदे जायँ, उनको ख़रीदना अवश्य पड़ेगा।

कुछ दिन पहले लखनऊ में आल इंडिया रेडियो-स्टेशन खोलते समय प्रान्त के गवर्नर सर हेरीहेग ने भी यही कहा था। उन्होंने गाँवों में दिलचस्पी रखनेवाले अमीर आदमियों से अपील की थी कि वे उपहार-रूप में गाँवों को रेडियो-सेट ख़रीद दें। इसमें शक नहीं कि 'आल इंडिया रेडियो' हर एक गाँव के लिए रेडियो नहीं ख़रीद सकता और इसमें प्रांतीय गवर्नमेंट को हाथ बँटाना चाहिए। परन्तु
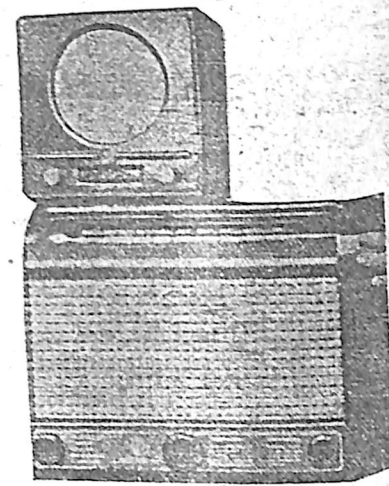
[पैंतीस शिलिंगवाला जर्मनी का रेडियो सेट]

मद्यनिषेध आदि अनेक योजनाओं के कारण प्रांतों में यों ही पैसों की कमी पड़ रही है, फिर भला रेडियो-सेट के लिए रुपये कहाँ से आवें। हम यह भी जानते हैं कि भूखे मरनेवाले बेचारे ग़रीब ग्रामीण रेडियो-सेट नहीं ख़रीद सकते। अतएव यही कहना पड़ता है कि बड़े बड़े ज़मींदार और अमीरों को ही एक एक रेडियो-सेट का दान करना चाहिए। यदि इन सेटों को ख़रीदते समय आल इंडिया रेडियो की सलाह से काम किया जायगा तो गाँवों में समाचार ग्रहण करने में कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी।

एक सेट का दाम लगभग चार सौ रुपया होता है, और उसको चालू रखने का ख़र्च तीन सौ रुपया साल पड़ता है। परन्तु जर्मनी में जो रेडियो-प्रदर्शनी हुई है उसमें एक सेट का दाम केवल पैंतीस शिलिंग है। और वह दिन दूर नहीं है जब हिन्दुस्तान के लिए उपयुक्त सेट पचास रुपये में मिलेंगे। सरकार चाहे तो ऊपरी ख़र्च को बहुत कुछ घटा सकती है। क्या अब भी यह आशा की जाय कि सेठ-साहूकार और ताल्लुक़ेदार रेडियो-दान करेंगे जिनका इन्तज़ाम प्रान्तीय सरकार करे और जिनके लिए आल इंडिया रेडियो ग्रामोचित प्रोग्राम ब्राडकास्ट करवाये

काया या छाया

लेखक, श्रीयुत कालीचरण चटर्जी

स दिन थी छुट्टी। दिन भर आकाश मेघाच्छन्न रहा। कभी-कभी बूँदा-बाँदी भी होती थी। छोटा-सा किराये का मकान था; उसमें एक प्रकार की नग्नशून्यता विराजमान थी। सजावटहीन कमरे में बैठकर मैंने एक किताब पढ़ने की भरसक कोशिश की, परन्तु तबीअत नहीं लगी। मस्तिष्क के अन्दर भावना की बाढ़ आ गई, अतीत की बहुत-सी बातें याद आने लगीं। मानस-पट के पर्दे मानो एक-एक कर उठ रहे थे और बहुत दिन की भूली हुई एक बात, एक सुर या एक घटना पहले की सजीवता लेकर लौट आ रही थी। कहने का तात्पर्य यह है कि मैं अपने कमरे में खाट पर लेटा अतीत जीवन की पड़ताल में भरपूर निमग्न हो गया। सहसा मुझे रोमांच हुआ और मैं निश्चेष्ट मन्त्र-मुग्ध की भाँति एक घटना में डूब गया।

× × ×

बहुत दिन के बाद मैं ससुराल जा रहा था। ससुराल! अहा-हा, आनन्द का निकेतन, नव-विवाहित जीवन का भूस्वर्ग! परन्तु जिसके न रहने से ससुराल ससुराल ही नहीं रहती, मैं तो उसको प्रथम यौवन के उन्मेप में ही खो बैठा था।

वह भी दो साल की बात है। तीन साल पहले जब उसको गौने के बाद बिदा कराकर अपने कार्यस्थान मेरठ ले आया था, उस समय स्वप्न में भी नहीं सोच सका था कि एक साल के अन्दर ही उसको चिकित्सा के लिए नैहर वापस भेजना पड़ेगा। परन्तु उसकी इच्छा के विरुद्ध उसको जाना ही पड़ा और वही जाना हुआ अन्तिम जाना।

पत्र पर पत्र आये उसके रोगग्रस्त देह-लतिका के प्राण-स्पर्शी वर्णनों को लेकर; तार पर तार आये एक बार-एक बार ही उसकी मृत्यु-शय्या पर उसको देखने के लिए आवेदन को लेकर। वे आते और अश्रुसिक्त होकर पत्रों की फ़ाइल में आश्रय पाते। सब अच्छी तरह पढ़ भी नहीं मिलते। उनके एक-एक अक्षर मानो एक-एक तीव्र विद्रूप की जीवित मूर्ति थे; वे थे चिर-वियोग के आख़िरी आश्रय, शक्ति और शान्ति का शेषहीन वेदनामय उत्स, अनन्त पथ-यात्री का अन्तिम दर्शन पाने का आकुल निवेदन; जिनमें भाषा नहीं थी, थी केवल अनन्त भावों की द्योतना; जिनमें उष्ण-स्पर्श या एक भी सुर नहीं था, थी केवल नीरव अश्रुमोचन और मुख तथा आँखों के संचालन से सैकड़ों अनाहत ध्वनियों की एक अपूर्व व्यञ्जना। ये भी इस हतभाग्य के भाग्य में नहीं बदे थे।

हिन्दुस्तान में जन्म लेकर मैं नौकरी का लालच त्याग-कर थोड़े ही दौड़ा जा सकता था पत्नी की रोगशय्या के पास! क्योंकि अगर नौकरी किसी कारण खो बैठा तो फिर मिलना बिलकुल असम्भव है; ख़ासकर इस बेकारी के दौरान में जब हज़ारों नवयुवक नौकरी के लिए लाला-यित हैं। निहंग, निराहार, निर्धनता के नंगे स्वरूप तथा दीनता, विवशता, विफलता की जीती-जागती प्रतिमूर्ति आँख के सामने घूमने लगी। अतः मेरा जाना तो हुआ ही नहीं; परन्तु उसका जाना इससे नहीं रुका। हाय रे गुलामी के बंधन में जकड़ा हुआ जीव!

× × ×

हाँ, तो मैं ससुराल के लोगों का आग्रह चरितार्थ करने के लिए ससुराल जा रहा था। रेलगाड़ी जा रही थी अपनी गति के अनुसार; मैं अपनी चिन्ता में विभोर था। जब दूसरे दिन लखीमपुर पहुँचा तब दिन के तीन बज चुके थे। आषाढ़ का महीना था; परन्तु इस समय पानी नहीं बरस रहा था, यद्यपि आसमान के एक छोर से दूसरे छोर तक बादलों की दौड़ जारी थी—वर्षणाक्रान्त बादलों के काले-काले टुकड़ों से ढँके हुए आकाश ने स्वप्नाच्छन्न कुहेलिका की सृष्टि की थी।

मुझे अढकोहना जाना था, जो लखीमपुर के स्टेशन से ७ कोस दूर था। जब मैं रेल से उतरकर अड्डे पर सवार हुआ तब चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था; एक भी पत्ती हिल नहीं रही थी; उमस के मारे लोग हैरान थे। स्तब्ध, निथर प्रकृति की इस रहस्य-निगूढ़ नीरवता

को भङ्गकर अद्धा चलने लगा। मैं परलोकगत पत्नी की चिन्ता में मग्न था। एक ही साल उसके सहवास में रहने का अनुकूल अवसर तथा सौभाग्य मिला था। इस एक साल की न जाने कितनी छोटी-छोटी घटनायें आँखों के सामने नाचने लगीं—उसकी सारी बातें इस समय नये रूप में हृदय-पटल पर अंकित होने लगीं। ओफ़, उस समय क्या मेरे गुमान में आया था कि उसका सौन्दर्य, उसकी कमनी-यता एक दिन बहा लायेगी अनन्त शोक, अशेष वेदना और उनके साथ-साथ अनुताप की एक सर्वग्रासी ज्वाला!

चिन्ता-स्रोत नहीं रुका। सायंकाल का अन्धकार धीरे-धीरे अवनीतल पर अवतीर्ण हो रहा था। अद्धा ग्राम के समीप आने पर एक-एक कर नज़र आया गाँव का चरान, मुखिया का चबूतरा, प्राइमरी स्कूल की इमारत, आम का बाग़; और—और उसी के पास थोड़ी-सी खुली हुई जगह मूर्तिमान विभीषिका-सी पड़ी हुई थी; उसी जगह पर उसका नश्वर शरीर जलाकर ख़ाक में परिणत किया गया था (यह सूचना ससुर जी के पत्र से मिली थी)। जल्दी उधर से मुँह फेर लिया—उस तरफ़ दृष्टि निबद्ध रखने का साहस मानो सञ्चय नहीं कर पाता था। परन्तु अद्धावाला ऐसा बेवक़ूफ़ निकला कि अद्धा उस स्थान के निकट रोककर दौड़ता हुआ गया मेरी ससुराल में दामाद का आगमन-समाचार देने के लिए।

मैं अद्धे पर बैठा रहा उस ओर न देखने का सुदृढ़ संकल्पकर। किन्तु न जाने कौन अदम्य शक्ति मेरे मस्तिष्क की कुल नसों को उत्तेजित कर रही थी मेरे संकल्प के विरुद्ध विद्रोह घोषणा करने की उत्कट इच्छा से। मेरा संकल्प और उस अशरीरी शक्ति के द्वन्द्व में आख़िरकार उस अदृश्य शक्ति की ही विजय हुई; मैं उस तरफ़ देखने के लिए मजबूर हो गया। परन्तु यह क्या!......यह क्या! पहले-पहल अपने चर्म-चक्षुओं पर विश्वास नहीं हुआ। फिर जब आँखें मल-मल कर देखा तब मालूम हुआ कि एक अभिनव प्रकाश से वह जगह छा गई है। केवल एक ही प्रकाश से! एक क्षण के बाद उस प्रकाश के अन्दर से एक मोहिनी मूर्ति ने मानो अवयव ग्रहण करना आरम्भ किया। रहस्यमयी कविता-सी वह प्रतिमूर्ति एक रमणी की थी—सुन्दरता के नवल उत्थान में अनंग-लतिका-सी युवती की थी। हरे! हरे! यह तो वही कमनीय कान्ति, वही आवेग-भरी दृष्टि, वही हास्य-मधुर ओष्ठाधर, पर चेहरा कुछ मलिन-सा। वह मानो हाथ के इशारे से मुझे अपने पास आने के लिए बुला रही थी। मैं परिस्थिति भूल गया और अद्धे से उतर पड़ा। त्रस्तभाव से तथा हौले-हौले पग धरता हुआ उसकी तरफ़ बढ़ने लगा; वह भी दो-चार क़दम अग्रसर होती चली आती प्रतीत हुई; फिर रुक गई, मैं भी रुक गया। आकुल आवेग से उसको बुलाना चाहा, किन्तु कण्ठ शुष्क हो गया था—कोई शब्द नहीं निकला। उसके ओंठ काँप उठे; वह मुस्कराई—वही चिर-परिचित मुस्करा-हट! मुस्कराते हुए वह मानो कुछ बोली—उसने मानो कहा—"आख़िर आये न!" उन ओठों की दो पतली अरुण रेखाओं के प्रकम्पन से जो स्वर-लहरी बह निकली वह मधुर वीणा के मानिंद आज भी इन कर्ण-कुहरों में ठीक पहले की तरह झंकृत हो रही है।

अब मैं उसका नाम लेकर प्राणपण से चिल्लाया। इसके बाद क्या हुआ, मुझे बोध नहीं है। जब मैं होश में आया तब रात्रि के दस बज रहे थे। उस समय मेरे ससुर जी और एक डाक्टर मेरे पास कुर्सी पर बैठे हुए थे। मेरे आँखें खोलने पर ससुर जी ने मेरे मस्तक पर हाथ रखकर भयाकुल वाणी में पूछा—'कमल-बेटा, अब कैसे हो?'

मैं बहुत धीमे स्वर में बोला—"अच्छा हूँ।"

दूसरे दिन कुछ स्वस्थ होने पर सुना, मैं किसी का नाम लेकर चीख़ मारकर मूर्च्छित हो गया था। सास जी के लाख पूछने पर भी मैंने कुछ नहीं बतलाया। और कहता ही क्या? वही प्रकाश! वही मूर्ति!

और दो दिन कट गये। मैं बिलकुल स्वस्थ हो गया; परन्तु वही प्रकाश! वही मूर्ति!

× × ×

एक हफ़्ते के बाद स्मृति तथा अनुशोचना का बोझ लेकर चला आया कार्यस्थान पर। परन्तु वह चित्र चित्त पर इतना स्वच्छ, इतना स्पष्ट और इतना मनोहर अंकित हो गया है कि भुलाये नहीं भूलता। क्या वह चित्र कभी भुलाया भी जा सकता है? प्रतिध्वनि से उत्तर मिलता है, "क्या?"

आचार्यवर श्री द्विवेदी जी का दर्शन*

लेखक, श्रीयुत इक़बाल वर्मा 'सेहर'

४ से ७ मई सन् ३३ तक प्रयाग में 'द्विवेदी-मेला' का उत्सव था, जो पूज्य आचार्यवर की आयु के ७० वर्ष पूरे होने की यादगार में किया गया था। उसी समय ७ मई की शाम को मुझे सर्व प्रथम उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मित्रवर लमगोड़ा जी भी साथ थे। उन्होंने तत्काल ही प्लेटफ़ार्म पर जाकर द्विवेदी जी के पैर छुए जब कि मैं भीड़ के कारण वहाँ पहुँचने का साहस न कर नीचे से ही देखता का देखता रह गया। मुझ जैसे अकिंचन के लिए यही बहुत था। उनकी भव्य मूर्ति, उनका विशाल व्यक्तित्व, उनकी सादगी, मिलनसारी और संजीदगी, और साथ ही उनकी बुज़ुर्गाना चाल-ढाल—सभी मेरे दिल पर अपनी-अपनी छाप डाल रहे थे। वह छाप प्रायः अमिट थी।

मैं निस्तब्धता एवं तन्मयता की-सी दशा में खड़ा सोच रहा था कि यही महान् व्यक्ति आधुनिक हिन्दी गद्य-पद्य का निर्माता और आधुनिक लेखकों एवं कवियों का पथ-प्रदर्शक है, और मेरी आँखें असीम आन्तरिक पुलक से सजल हो-होकर उस सामने ही खड़े हुए व्यक्ति को अपना मूक अर्घ्य अर्पित कर रही थीं।

तभी से मन में बड़ी लालसा थी कि उनसे मिलकर दो-चार बातें करूँ। कोई दस वर्ष पूर्व वे लमगोड़ा जी की रामायणी व्याख्याओं से प्रभावित होकर उनसे मिलने फ़तेहपुर आये थे। उनके आने की बात से लमगोड़ा जी ने पहले से ही मुझे सूचित अवश्य किया था, पर एक तो आगमन-तिथि निश्चित न थी, दूसरे अपने घर पर होते मेरा शीघ्रता से कहीं बाहर जाना भी कठिन हो जाता है, अतः समय पर पहुँच न सका। हाँ, पीछे जाकर लमगोड़ा जी से बार बार यह कहना ज़रूर शुरू किया कि मुलाक़ात का फ़र्ज़ जल्द से जल्द अदा हो जाना चाहिए।

अस्तु, वर्षों के बाद राम राम करके वह शुभ समय भी आया जब १५ अप्रैल ३८ को हम लोग अपनी साहित्यिक तीर्थ-यात्रा को चल पड़े। उस समय मेरे पैर और कमर में कई दिन पहले से बड़ी पीड़ा हो रही थी। और कहीं जाना होता तो वैसी दशा में कदापि न जाता, परन्तु आचार्यवर का प्रबल आकर्षण मुझे बरबस दौलतपुर ले ही गया। पक्की सड़क छोड़ने पर हम लोगों को प्रायः पैदल ही चलना पड़ा और मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि मैं कैसे वह ३-४ कोस का लम्बा फ़ासला तय कर सका। गर्मियों की ठीक दोपहर में दौलतपुर पहुँचा। द्विवेदी जी नहा-धोकर अपने कमरे में एक तख़्त पर पड़े हुए व्यायाम-सा कर रहे थे। मेरे यह पूछने पर कि आप क्या कर रहे हैं, उन्होंने पास की मेज़ पर से अँगरेज़ी की एक व्यायाम-पुस्तक उठाकर मुझे दे दी, जिसका नाम शायद 'सत्तर वर्ष की आयु में युवा होना' था। कुछ उलट-पलट कर देखा और फिर हम लोग अतिथि-गृह में चले गये।

थोड़ी देर में आचार्य जी भी व्यायाम से निवृत्त होकर वहाँ पधारे। लमगोड़ा जी से हँसकर कहा कि आप तो चौके-चूल्हे के मामले में पक्के सनातनी होंगे और मैं हूँ बंधन-मुक्त, अतः क्या आप मेरे यहाँ की पकी रोटियाँ खा सकेंगे। मैं तो हँस पड़ा, पर लमगोड़ा जी शर्मा-से गये। उन्होंने विनोद-मात्र समझा और मैंने यथार्थ। मैंने इसके बारे में फ़तेहपुर से लिखकर कुछ अधिक पूछना चाहा तब आचार्यवर ने अपने ३१-७-३८ के कृपापत्र में केवल संक्षिप्ततः इतना ही लिखा कि "मैं खाने-पीने के विषय में 'कनवजियापन' से कोसों दूर हूँ।"

शाम को सरकारी ग्राम-पंचायत की बैठक थी। द्विवेदी जी सरपंच हैं। ख़त्म होने पर मैंने कहा कि यह आपने क्या रोग पाल रक्खा है। बोले—"इस बखेड़े से बचना तो बहुत चाहा, पर बच न सका। रायबरेली के डिप्टी कमिश्नर श्री लोबो प्रभु से बहुत कुछ कहा, पर वे किसी तरह न माने और मुझी को इस काम के योग्य समझा।" ठीक। यह साहब की क़द्रदानी थी जो होनी ही चाहिए थी, पर मेरी राय में वही क़द्रदानी ठीक है जो क़द्र किये जानेवाले की ठीक कार्य-विधि के अनुसार हो। लमगोड़ा जी इसे ग्राम-सेवा भले ही समझें, पर मैं तो एक तुच्छ साहित्यिक होने के नाते ऐसी ग्राम-सेवा को दूर से ही प्रणाम करना पसन्द करूँगा। किसी अँगरेज़ विद्वान् ने 'क़ानून' के बारे में कहा है कि "वह एक ऐसी प्रेमिका है जो अपने प्रेमिक से दिन-रात की सेवा चाहती है और किसी सौत को तनिक भी नहीं सह सकती।" मैं तो यही बात 'साहित्य' पर भी पूर्णतः लागू समझता हूँ।

* इस लेख को श्री लमगोड़ा जी के उस लेख का परिशिष्ट समझना चाहिए जो जुलाई, ३८ की 'सरस्वती' में छपा है।—लेखक।

[आचार्य श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी]

फिर आचार्य जी के स्वास्थ्य की जो दशा है, क्या उसे देखते यह अभीष्ट नहीं कि उनकी जीवन-शक्ति अधिक से अधिक सुरक्षित रहे, जिससे साहित्य-सेवियों को अधिक से अधिक दिनों तक उनके अनुभव, प्रेरणा तथा दर्शन-स्फूर्ति मिल सके? मैंने वहाँ अपनी 'रुबाइयाते-ख़ैयाम' की एक प्रति भेंट की थी। बोले—"हो सका तो थोड़ा थोड़ा करके कुछ पढ़ जाने पर कोई राय दे सकूँगा।" मैंने याददिहानी की तब अपने उस पत्र में लिखा कि "भाई साहब, कुछ समय से मेरी तबीयत बहुत ख़राब है। स्मृति-शक्ति लोप-सी हो गई है। नींद न आने का रोग बढ़ रहा है। इस दशा में आपकी पुस्तक पढ़कर उस पर कुछ लिखने में मैं असमर्थ हूँ। हाथ जोड़कर माफ़ी माँगता हूँ।"* ये शब्द जहाँ आपकी सज्जनोचित विनम्रता के परिचायक हैं, वहाँ आपकी स्वास्थ्य-सम्बन्धी असमर्थता एवं अशक्तता के भी।*

हाँ, उन्होंने उसी समय पुस्तक को एक स्थान पर पढ़कर एक ऐसी बात अवश्य कही थी जिससे उनकी सूक्ष्म-दर्शिता प्रकट हुई। बोले—"जान पड़ता है, आपने हिंदी पीछे पढ़ी है"। मैंने स्वीकार किया। बोले—"तभी आपने 'हे ईश्वर' की जगह 'ए ईश्वर' लिखा है। 'ए' उर्दूवाले लिखते हैं, हिन्दी में तो 'हे' का प्रयोग ही समीचीन है।" यहीं उनकी तीव्र सूक्ष्मदर्शिता का एक और उदाहरण लमगोड़ा जी ने बतलाया कि द्विवेदी जी ने फ़तेहपुर आकर उनकी रामायणी व्याख्याओं के विषय में कहा था कि "ऐसी व्याख्याओं को पढ़कर आपके और लेखक के बीच में एक आवरण सा प्रतीत होता है।" लमगोड़ा जी ने कहा कि असल मसविदा उर्दू में था, जिसे सेहर जी ने अनूदित किया है। आदेश या उपदेश मिला कि स्वयं बोल कर लिखाया कीजिए।

* मैंने कई वर्ष पूर्व सादीकृत करीमा (प्रसिद्ध फ़ारसी पुस्तक) का स्वरचित हिन्दी-पद्यबद्ध अनुवाद (प्रकाश-पुस्तकालय कानपुर-द्वारा प्रकाशित) आचार्य जी की सेवा में भेजा था तब आपने २३।२।२८ के कृपाकार्ड में लमगोड़ा जी को लिखा था—"मैं" उर्दू-फ़ारसी बहुत ही थोड़ी जानता हूँ, तथापि मुझे अनुवाद पसंद आया। लड़कपन में मैंने करीमा का कुछ अंश पढ़ा था। 'चहल साल उम्रे अज़ीज़त गुज़श्त' आदि कुछ सतरें मुझे अब तक याद हैं। मैंने तो अनुवाद को प्रायः सरस और सरल पाया। सेहर जी को मेरी तरफ़ से बधाई दे दीजिएगा।"

* उनके भानजे श्री कमलाकिशोर त्रिपाठी से ज्ञात हुआ था कि अब द्विवेदी जी का खाना दिन में केवल शाक-भाजी, पपीता, सन्तरा और रात में सिर्फ़ थोड़ा दूध है।—लेखक

द्विवेदी जी हिन्दी और उर्दू में प्रायः कोई अन्तर नहीं मानते। मुझे शाम को आज्ञा हुई कि कोई कविता सुनाओ। मैंने कहा कि मैं तो अधिकांश उर्दू में ही लिखता हूँ। बोले—"अरे भाई! तो उर्दू और हिन्दी में कोई फ़र्क़ थोड़ा ही है। जो लिखा हो वही सुनाओ।" मैंने एक नई कविता 'जहाँगीरी इन्साफ़' पढ़ी। मुग़ल-सम्राट् की विनोद-प्रिय रानी नूरजहाँ ने अपने महल पर से यमुना में उछलती हुई मछली पर तमंचा छोड़ा। गोली मछली को न लगकर धोबी को लगी, जो वहीं ढेर हो गया। धोबिन जाकर सम्राट् से फ़रियादी हुई। सम्राट् ने उसके विलाप से प्रभावित होकर अपना तमंचा उसके हाथ पर रक्खा और अपने को मार डालने का हुक्म देते हुए कहा—

क्योंकि इन्साफ़ का वे शुबह तक़ाज़ा है यही,
बेवगी ही में हो बेगम की भी अब उम्र बसर!

मेरा यह पद पढ़ना था कि द्विवेदी जी को रोमांच हो आया। वे काँप से गये और बोले कि बस आगे न पढ़ो। मैं कुछ चकित-सा हो गया। मुझे मालूम हुआ कि इस महापुरुष में कितनी भावुकता, कितनी करुणा और उसके कोमल स्नायुओं में कितनी संवेदना है। पूछने पर बोले कि "मुझे प्रायः इसी प्रकार रोमांच हो आया करता है। इसे भी मेरी निर्बलता समझिए।" मैंने तो यह अनुभव किया कि उन्हें अधिक बोलने और सुनने में भी कष्ट होता है।

शाम रात में बदल रही थी। लमगोड़ा जी ने सफ़र में होने के कारण दोपहर में विधिवत् पूजा-पाठ न किया था, अतः वे तो अपनी पुस्तकों का बंडल लेकर सामने श्री महावीर जी के स्थान में पूजा के लिए चले गये। वे उधर गये और इधर मैं वहीं लम्बे-चौड़े चबूतरे पर सन्ध्या करने बैठ गया। निवृत्त होकर उठा तब आचार्य जी ने अपने पास बुलाया। पूछा—"कैसी सन्ध्या थी?"

मैंने कहा, आर्यसमाजी। बोले—"भाई, मैंने भी बहुत दिनों तक भाँति भाँति की सन्ध्या-पूजा की, पर मुझे तो कुछ जँचा नहीं।" इसकी बाबत मैंने फ़तेहपुर से लिखकर अधिक पूछा तब आपने अपने ऊपरवाले कृपापत्र में यह लिखा—"मैं पूजा-पाठ करना जानता हूँ। १४ वर्ष की उम्र से ३० वर्ष की उम्र तक 'दुर्गा-सप्तशती' का पाठ मैंने किया। स्कूल जाता था तब पाठ करके जाता था। सन्ध्या तो ३०-४० वर्ष तक की है। पर जब से कुछ संस्कृत सीखी और सन्ध्या के मंत्रों का अर्थ जाना तब से बन्द कर दिया। अब मैं राम राम कहा करता हूँ और भागवत इत्यादि के प्रार्थनामूलक श्लोक पढ़ पढ़कर रोया करता हूँ।"

कुछ वार्ता काव्य के विषय में भी हुई। बोले—"४०-४२ वर्ष की आयु तक कविता करता रहा, पर यह जान कर कि मैं वस्तुतः कवि हो नहीं सकता, उस व्यसन को त्याग दिया।" पता नहीं, इसमें कितना विनोद था और कितना तथ्य। वस्तुतः इतनी आयु में भी आपकी वार्ता में विनोद का इतना अंश होता है कि तबीयत फड़क जाती है, और फिर विचित्रता यह कि उस विनोद में भी आपकी गंभीरता अपना काम करती हुई बराबर नज़र आती है। 'द्विवेदी-मेला' के बाद मैंने उन पर 'ज़माना' में लेख लिखा था। उस 'ज़माना' की एक प्रति उनकी सेवा में भी भेज दी थी। उस पर जो पोस्टकार्ड आया उसे अपनी उक्ति के समर्थन में यहाँ पूरा का पूरा नक़ल किये बिना नहीं रह सकता। ७-१-३४ को लिखते हैं—"महरबानमन, नवम्बर के 'ज़माना' की कापी मिली। आपका लेख पढ़ा। विश्वास कीजिए, वह मेरी इस ज़ईफ़ी की हालत में मकरध्वज का काम देगा। उससे मेरी उम्र कुछ ज़रूर बढ़ जायगी। इसलिए कि मेरे मेहरबान दोस्त मेरी हस्ती को बेकार गई नहीं समझते। आपको बहुत बहुत धन्यवाद।" अन्त में उर्दू लिपि में "ख़ाकसार महावीरप्रसाद द्विवेदी" दर्ज है।

उर्दू-फ़ारसी पढ़ने के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर आपने कहा कि शुरू में कुछ पढ़ा अवश्य था, पर परिस्थितिवश वह अभ्यास बिलकुल जाता रहा। अब तो आप हिन्दी के ही अनन्य उपासक हैं। लमगोड़ा जी को हिन्दी लिखने की महारत कम है, अतः बहुधा अँगरेज़ी में ही पत्र-व्यवहार करते हैं। अभी थोड़े दिन हुए कि ऐसे एक पत्र के उत्तर में आचार्य जी ने उन्हें अँगरेज़ी में ही लिखा था "Why this partiality for a language spoken six thousand miles away?" (६००० मील के दूर-दराज़ फ़ासले पर बोली जानेवाली भाषा के लिए इतना पक्षपात क्यों?)

अपनी लाइब्रेरी के बारे में कहा कि "अब लाइब्रेरी कहाँ है। वह तो श्री काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को समर्पित की जा चुकी।" फिर भी इस समय कमरे में दस छोटी-बड़ी अलमारियाँ पुस्तकों से ठसाठस भरी हैं और साथ ही कई मेज़ों पर भी पुस्तकों के ढेर लगे हुए हैं।

इसके बाद आप यह कह कर उठने लगे कि "कल रात में बिलकुल नींद नहीं आई। अभी से जाकर सोने की कोशिश करूँगा, शायद कुछ सो सकूँ।" मैंने कहा—"आप चाय का इस्तेमाल ज़्यादा करते हैं, और नींद न आने का यह भी एक बड़ा सबब है।" बोले—"पहले आदत थी, अब तो उसे भी छोड़ दिया है।"

लमगोड़ा जी सोते समय भी दातून करने के आदी हैं। रात में जब हम लोग खा-पीकर बाहर आये तब उन्होंने पंडित कमलाकिशोर जी से दातून की फ़र्माइश की। चबूतरे पर ही नीम के दो बड़े पेड़ हैं। दातून तुड़ा दी गई, पर साथ ही पंडित जी ने कहा कि "मामा जी की मौजूदगी में यह काम असम्भव था, क्योंकि उनका कहना है कि इससे वृक्ष को पीड़ा होती है और परपीड़न से सर्वथा बचना ही चाहिए।" प्रकट है कि आचार्य जी सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्ममय मानते हुए अपने दिल में कितनी दया एवं सहानुभूति रखते हैं। वे स्वच्छता के साथ सुव्यवस्था के भी बड़े क़ायल हैं और प्रत्येक वस्तु को उसके नियत स्थान पर ही देखना चाहते हैं।

हम लोग बड़े सवेरे ही आचार्य जी के चरण स्पर्श कर फ़तेहपुर के लिए वापस चल पड़े। मार्ग में जहाँ लमगोड़ा जी ने पानी पीने आदि का ज़िक्र किया है वह स्थान सौंरा है, बरौरा नहीं। अस्तु। मेरी तो हार्दिक इच्छा थी कि जब इतने कष्ट से दौलतपुर गया था तब वहाँ एक दिन तो पूरा का पूरा रहा जाय।

आकांक्षा

लेखिका, श्रीमती रूपकुमारी वाजपेयी

इस हरियाली में मेरे, प्राणों की नूतन व्रीड़ा;
अवलोके किलक उठती है, पावस की मधुमय क्रीड़ा।

अम्बर-अवनी के तट पर, वह सजल घनों सा फैला-
गिरि दिखता कितना धूमिल! कुछ नीला कुछ मटमैला
तरु-शाखावलियाँ बढ़कर, आपस में हाथ मिलाये
हँस स्वागत करतीं झुक-झुक, धरती पर सुमन बिछाये।

लकुटी ले झूम-झूम कर, मस्ती में तन्मय गाता,
गोपाल गऊ ले अपनी अब लौटा घर को आता।
इस सान्ध्य-गगन में उड़ती, फिरती बक-पंक्ति निराली
लख थिरक उठी है देखो!, आश्चर्य-विमुग्ध मराली।

ले रंग रँगीले तन में, सरला का मुग्ध कुतूहल
फूलों-फूलों पर खिलखिल, उड़ता शत-शत तितली-दल।
थक किरणों के कौतुक से, खग नीड़ बसाने आये;
सीमान्त गगन में झिलमिल, नक्षत्र-लोक चमकाये।

यह कौन रागिनी गाता, नित कहता मर-मर मर-मर
उन्मुक्त अलस गति में बह, इठलाया करता निर्झर?
चातक के प्यासे स्वर से, यह किसकी प्रतिध्वनि आती?
जग के पीड़ित प्राणों को, कैसा सन्देश सुनाती?

निस्तब्ध सृष्टि के ले कुछ, अनुराग भरे सा[illegible] स्वर
इस शैल-तटी में मैं भी, इक कुटिया रचती सुन्दर।
चपला की चञ्चल लपकें आतीं आभा भर जातीं;
नन्हीं-नन्हीं बूँदों में तन-मन अर्पण कर जातीं।

मदमत्त समीर उठाता, कुछ ऐसी तरल तरंगें
घुल जातीं अन्तस्तल की, जिनमें सब मधुर उमंगें।
आकर्षित पल-पल करती, कुटिया नित प्रतिभा कवि की;
आलोक छटा बिखराये, बन जाती शान्ति जगत की।

मिस्र की राजनीति में नवयुग का प्रादुर्भाव

लेखक, प्रोफ़ेसर प्रेमनारायण माथुर, एम० ए०

मिस्र की राजनीति में वहाँ के प्रसिद्ध वफ़्द-दल का प्रमुख स्थान रहा है। परन्तु दुःख की बात है कि इधर उसका पराभव हो गया है। यह सब कैसे हुआ, इसी का वर्णन इस लेख में किया गया है।

इस वर्ष के आरम्भ में मिस्र की राजनीति में जो उथल-पुथल देखने को मिली है तथा उसमें जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं वे अवश्य ही प्रत्येक पराधीन राष्ट्र के लिए, जो आज अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़ फेंकने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहा है, अत्यन्त विचारणीय है।

१९वीं शताब्दी के अन्त से लगाकर मार्च १९३६ तक मिस्र के राजनीतिज्ञों, नवयुवकों और वहाँ के रहनेवालों के सामने केवल एक ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न था, और वह था अपने देश की स्वाधीनता का। गत महायुद्ध के आरम्भ होने पर तो मिस्र ब्रिटेन का रक्षित-राज्य तक घोषित कर दिया गया और उसकी नाममात्र की स्वतन्त्रता का भी लोप होगया। अँगरेज़ों की अधीनता से मुक्त होने के लिए मिस्र को एक नहीं तीन बार आन्दोलन करने पड़े। सबसे पहला आन्दोलन १९वीं शताब्दी के अन्त में अरबी पाशा के नेतृत्व में हुआ और यद्यपि अरबी पाशा अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका तथापि उनके प्रयत्न के फल-स्वरूप मिस्र में राष्ट्रीय भावना का उदय होगया। अरबी पाशा के उपरान्त मुस्तफ़ा कमाल आगे आये और उन्होंने देश की बढ़ती हुई स्वतन्त्र भावना को एक संगठित आन्दोलन का रूप प्रदान किया और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिस्र के मध्यम-वर्ग में स्वतन्त्रता के भावों को जाग्रत किया। इस बार का मिस्र का स्वतन्त्रता का आन्दोलन मध्य-श्रेणी के लोगों का आन्दोलन था। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने मुस्तफ़ा कमाल के नेतृत्व में होनेवाले इस आन्दोलन को भी दबा दिया। किन्तु जिस देश अथवा जाति के लोगों में एक बार आज़ादी की भावना उत्पन्न हो जाती है वह उस समय तक शांत नहीं होती जब तक उसके लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो जाती। मिस्र का इतिहास इसी अटल सत्य का साक्षी है।

जब अँगरेज़ी साम्राज्यशाही मिस्र की स्वतन्त्रता की भावना को कुचल डालने का विफल प्रयत्न कर रही थी, मिस्र के नवयुवकों में एक ऐसे नये व्यक्ति का उदय हो रहा था जिसने आगे चलकर देश के अन्तिम स्वाधीनता-संग्राम का सफल नेतृत्व किया। इस व्यक्ति का नाम था सअद ज़गलुल पाशा। योरपीय महायुद्ध के समाप्त होने पर मिस्र के भावी विधान का प्रश्न उपस्थित हुआ, और ब्रिटिश सरकार ने इसके लिए एक कमीशन की नियुक्ति की। किन्तु इस कमीशन की सिफ़ारिशें इतनी प्रतिक्रियावादी थीं कि स्वतन्त्रता के लिए लड़नेवाले मिस्रवासियों को वे संतुष्ट नहीं कर सकीं। ज़गलुल पाशा के नेतृत्व में इन सिफ़ारिशों के विरुद्ध देश में एक बड़ा भारी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। फलतः वे दो बार गिरफ़्तार किये गये। उनकी गिरफ़्तारी से देश की स्थिति उत्तरोत्तर गम्भीर होती गई। अँगरेज़ राजनीतिज्ञों ने भी उसकी गम्भीर अवस्था का अनुभव किया और २८ फ़रवरी सन् १९२२ को लार्ड एलेनबी के प्रयत्नों से मिस्र की स्वतन्त्रता की घोषणा की गई। इस घोषणा के उपरान्त मिस्र में पहले की अपेक्षा अधिक शांति और सुव्यवस्था क़ायम हो गई, परन्तु मिस्र के राष्ट्रीय नेताओं को उससे पूर्ण संतोष नहीं हुआ। ज़गलुल पाशा १९२२ की घोषणा की कमियों के पूरा करने का प्रयत्न जीवन पर्यन्त करते रहे। १९२७ में उनकी मृत्यु हो गई, और उनके नेतृत्व के उत्तराधिकारी नाहस पाशा हुए, जो अपने गुरु के लक्ष्य के लिए बराबर लड़ते रहे। उपयुक्त सन्धि करने के लिए मिस्र और ब्रिटेन में कई बार बातचीत हुई। अन्त में मार्च १९३६ में इँग्लेंड और मिस्र के वफ़्द (ज़गलुल पाशा का दल) मंत्रि-मण्डल में समझौते के लिए वार्तालाप शुरू हुआ और ३० अगस्त को लन्दन में मिस्र और इँग्लेंड में नई सन्धि हुई। इसके अनुसार इँग्लेंड ने अपने विशेषाधिकार छोड़ दिये। इस प्रकार मिस्र की राजनैतिक स्वतन्त्रता का प्रश्न हल हो गया और भविष्य में दोनों पक्षों का केवल इतना ही कर्तव्य रह गया कि वे संधि की शर्तों का ईमानदारी के साथ पालन करते रहें। यहीं मिस्र के उत्थान के प्रथम युग का अन्त होता है।

परन्तु राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेने पर भी मिस्र

की समस्त समस्याओं का हल नहीं हो सका। वास्तव में समस्याओं को सुलझाने का अवसर तो उसे अब प्राप्त हुआ था। और मिस्र के राष्ट्र-नायकों का यह कर्तव्य था कि वे अपनी शक्ति का देश की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के सुधारने में उपयोग करते। यहाँ के सामाजिक संगठन में मुख्यतः दो श्रेणियों की प्रधानता है। एक ओर तो विदेशी पूँजीपति और देशी ज़मींदारों का उच्च वर्ग है, जो धनवान् और शिक्षित हैं, राज्य पर जिनका पूरा प्रभाव और नियंत्रण है और जो अपने वर्ग के आर्थिक हितों की ओर सदा जागरूक रहते हैं। इनमें देशी ज़मींदार तो प्रतिक्रियावादी और समस्त सुधारों के कट्टर विरोधी भी हैं। समाज के दूसरे छोर पर किसान और मज़दूर हैं, जो सर्वथा निर्धन, अशिक्षित और रूढ़िवादी हैं। शहर के मज़दूरों में संगठन और अनुशासन का पूर्ण अभाव है। अधिकांश मज़दूर गाँवों के रहनेवाले होते हैं, जो कुछ समय के लिए शहर में मज़दूरी करने आते हैं। उनमें वर्ग-चैतन्य का अभी तक सर्वथा अभाव है। यद्यपि उनको अपनी वर्तमान स्थिति से असंतोष है, तथापि अभी तक वे निर्बल और अव्यवस्थित हैं। सामाजिक सीढ़ी के इन दोनों छोरों के बीच में एक छोटा-सा मध्य-वर्ग है, किन्तु उसमें कुछ लोग ऐसे हैं जो अभी तक अपनी शक्ति और आर्थिक हितों को समझते तक नहीं और जो समझते हैं वे अधिक प्रभावशाली नहीं हैं। पहली श्रेणी में देशी व्यापारी आदि का समावेश हो जाता है और दूसरी श्रेणी में थोड़े से पढ़े-लिखे लोगों का जो बेकार हैं या जिनके सामने विद्यार्थी-जीवन के समाप्त होने के पश्चात् कोई विशेष लक्ष्य नहीं। किन्तु मिस्र में अभी तक इन लोगों का कोई प्रभावशाली वर्ग नहीं है।

उपर्युक्त विश्लेषण से सिद्ध होता है कि देश में अनेक सामाजिक और आर्थिक समस्यायें उपस्थित थीं जिनकी ओर अब ध्यान आकर्षित करना आवश्यक था। किन्तु राष्ट्रीय दल के नेता नाहश पाशा ने इन समस्याओं को उचित महत्त्व नहीं दिया।

प्रत्येक आन्दोलन के पीछे एक विशेष आदर्श होता है। मिस्र के राष्ट्रीय आन्दोलन के पीछे भी एक विशेष आदर्श था। किन्तु वह आदर्श था केवल विशुद्ध राजनैतिक स्वतन्त्रता। जब तक मिस्र अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ, राजनैतिक स्वतन्त्रता का उद्देश्य उसके नेताओं को उत्तरोत्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा करता रहा और समस्त जनता को भी एक सूत में बाँध रखने में भी कारगर सिद्ध हुआ। किन्तु इस उद्देश्य की पूर्ति होते ही वहाँ का आन्दोलन और उससे राष्ट्रीय नेता आदर्शहीन हो गये। उनके समक्ष कोई कार्य-क्रम न रह गया। जिस आन्दोलन के वे प्रवर्तक थे वह किसी सामाजिक और आर्थिक आदर्श की भित्ति पर नहीं खड़ा किया गया था। अतः यह स्वाभाविक था कि देश की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को हल करने में वह अपने आपको सर्वथा अयोग्य पाता। हुआ भी वास्तव में यही।

लंदन और मिस्र में अगस्त १९३६ में समझौता हो जाने के उपरान्त देश में जिस नवयुग का प्रादुर्भाव हुआ है वह ऐतिहासिक दृष्टि से सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता का युग है। अतः अब देश का नेतृत्व उन्हीं लोगों के हाथ में जानेवाला था जो सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के समर्थक थे। किन्तु वफ़्द-दल और उसके नेता नाहश पाशा इस परीक्षा में असफल हुए और पिछले चुनाव में जिस ज़बर्दस्त हार का उनको सामना करना पड़ा है उसका यही कारण है। उन्होंने देश के आन्तरिक, सामाजिक और आर्थिक सुधारों की ओर आवश्यक ध्यान नहीं दिया। १९३६ की सन्धि के उपरान्त (यद्यपि उससे पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिली है) समस्त देश में एक नवीन उत्साह और उमंग दिखाई पड़ने लगी थी। लोगों का ध्यान ग्रामोद्धार, शिक्षा और स्वास्थ्य की समस्याओं की ओर केन्द्रित होने लगा था। जन-साधारण में नवीन आशायें उत्पन्न हो रही थीं और वर्षों की पराधीनता के बाद अब लोग एक ऐसे युग का स्वप्न देखने लग गये थे जिसमें सुख और शांति का प्राधान्य होगा, जिसमें वर्ग-शोषण के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा और प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का विकास करने का पूरा अवसर मिलेगा। किन्तु वफ़्द नेताओं ने इन नवीन परिस्थितियों की अवहेलना की और इस ओर से सर्वथा आँखें बन्द कर लीं। वफ़्द-दल के नेता नाहश पाशा विलियम मेकरम एबिद के प्रभाव में थे। और विलियम मेकरम, जो कोप्ट-जाति के एक वकील हैं, पूर्णतया प्रतिगामी विचारों के व्यक्ति हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि वफ़्द-सरकार

ने वास्तविक समस्याओं के सुलझाने की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत अपने शासन काल के डेढ़ वर्ष में उनकी अधिकतर शक्ति का अपने मित्रों और सम्बन्धियों को सरकारी नौकरियाँ दिलवाने में ही व्यय होने लगा। किस व्यक्ति को कौन सा टाइटिल देकर सम्मानित करना चाहिए, इसी प्रश्न को मन्त्रि-मण्डल की बैठकों में महत्त्व दिया जाने लगा। यद्यपि जनता को बड़े बड़े रचनात्मक कार्य करने के वचन दिये गये थे, वास्तव में कुछ भी नहीं किया गया। ऐसी स्थिति में लोगों में असंतोष उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। मज़दूरों ने कई स्थानों में हड़तालें कीं, समाचार-पत्रों में एक दल की दूसरे दल-द्वारा कड़ी आलोचनायें प्रकाशित होने लगीं। लोगों के दिलों में वफ़द-दल के प्रति पूर्व की श्रद्धा और विश्वास का अन्त हो गया और यह आशंका भी की जाने लगी की संभवतः वफ़द एक अल्पजन-तन्त्र का रूप धारण करना और राज्य-शासन की बागडोर सदा अपने अधिकार में बनाये रखना चाहता है। इस प्रकार वफ़द-दल के प्रति प्रजा में अविश्वास का आरम्भ हुआ।

प्रजा के असंतोष के अतिरिक्त वफ़द-पार्टी में स्वयं भी मत-भेद उत्पन्न हो गया। वफ़द-दल के नेता नाहश पाशा विलियम मेकरम के प्रभाव में थे। उधर मेकरम और नेकरशी पाशा में अनबन थी। और नेकरशी पाशा महोदय वफ़द-पार्टी के एक योग्य नेता थे। जब मिस्र के राजसिंहासन पर फ़रुक बैठे तब प्रथानुसार तत्कालीन वफ़द-सरकार ने पद-त्याग कर दिया। अब नाहश पाशा ने एक नया मन्त्रि-मण्डल बनाया और उसमें नेकरशी पाशा को जो अब तक पिछले मन्त्रि-मण्डल के एक सदस्य थे, नहीं लिया। इस पर नेकरशी पाशा नाहश पाशा के विरोधी हो गये। उनको अन्य असंतुष्ट राजनीतिज्ञों और निराश नवयुवकों की सहानुभूति प्राप्त हो गई। वफ़द-पार्टी में इस प्रकार मत-भेद उत्पन्न हो गया, जिससे उसकी स्थिति कमज़ोर हो गई।

इधर वफ़द-दल के प्रति जनता में भी असन्तोष था, जिससे उसका पहले का सा प्रभाव नहीं था। ऐसी स्थिति में बादशाह फ़रुक और वफ़द-दल में झगड़ा प्रारम्भ हो गया। वैसे तो ज़गलुल पाशा की मृत्यु के बाद ही भूतपूर्व बादशाह फ़ौद और वफ़द-दल में कटुता उत्पन्न हो गई थी, किन्तु फ़रुक के गद्दी पर बैठने के पश्चात् स्थिति और भी बिगड़ने लगी। फ़रुक अपने प्रमुख सलाहकार अलीमहर पाशा को रायल केबिनेट के प्रधान पद पर नियुक्त करना चाहते थे। नाहश पाशा ने बादशाह के इस प्रस्ताव का विरोध किया, परन्तु महर-अली पाशा शाही केबिनेट के प्रधान बना दिये गये। इससे बादशाह और वफ़द-पार्टी में और भी गहरा मतभेद हो गया। मतभेद का दूसरा कारण 'नीली-कमीज़-दल' का संगठन था। यह दल वफ़द-पार्टी की फ़ौज का कार्य करता था। बादशाह इस दल को तोड़ देना चाहते थे। परन्तु नाहश पाशा इसके विरुद्ध थे। उनका कहना था कि विधान की रक्षा के लिए एक ऐसे दल की आवश्यकता है।

बादशाह फ़रुक को ज्ञात ही था कि देश में वफ़द लोगों के प्रति काफ़ी असन्तोष है, अतएव उन्होंने उसके प्रति कड़ा रुख़ अख़्त्यार कर लिया। यही नहीं, उन्होंने ३० दिसम्बर १९३७ को नाहश पाशा को प्रधान मन्त्री के पद से पृथक् कर दिया और मोहम्मद महमूद पाशा को नया मन्त्रि-मण्डल बनाने की आज्ञा दी। मोहम्मद महमूद पाशा ने अपने मन्त्रि-मण्डल में अत्यन्त योग्य और अनुभवी व्यक्तियों को लिया। इस नये मंत्रि-मण्डल ने शिक्षा और कृषि-सम्बन्धी सुधारों की ओर अपना ध्यान दिया। महमूद पाशा ने वफ़द-दल के नील-कमीज़-दल को भंग कर दिया और पार्लियामेंट की अवधि बढ़ा दी। पार्लियामेंट की बैठक में वफ़द स्पीकर ने नाहश पाशा का विरोध किया। इस पर स्पीकर महोदय अपने अन्य साथियों के साथ वफ़द-दल से निकाल दिये गये। इन लोगों ने सादिस्ट-वफ़द नाम की एक नई पार्टी का संगठन किया। इसी बीच में बादशाह फ़रुक ने २ फ़रवरी १९३८ को पार्लियामेंट को बरख़ास्त कर दिया। मार्च के अन्त और अप्रैल के आरम्भ में नया चुनाव किया गया। इस चुनाव में वफ़द लोगों की बहुत बुरी हार हुई। यहाँ तक नाहश पाशा और मेकरम भी चुनाव में हार गये। पार्लियामेंट में इस समय विभिन्न दलों की स्थिति इस प्रकार है—

सम्मि[illegible] सरकारी दल	९९
सादि[illegible]	८४
इन्डि[illegible]न्ट	६४
वफ़द	१२
	२५९

ऊपर के कोष्ठक से प्रकट होता है कि पार्लियामेंट में 'सादिस्ट' लोगों का यथेष्ट बल है। उनके नेता डाक्टर अहमद महर हैं, और नेकरशी पाशा भी इस दल के सदस्य हैं। ये लोग मोहम्मद महमूद पाशा की सरकार के विरोधी दल में रहेंगे, और आगे चल कर अपने दल का मंत्रिमंडल बनाने का प्रयत्न करेंगे और यह असम्भव नहीं है। क्योंकि समय आने पर, आशा है, इन्डिपेन्डेन्ट दल के लोग इनका साथ देंगे। पिछले चुनाव के समाप्त होते ही उसने वर्तमान सरकार का साथ देकर पार्लियामेंट में उसका बहुमत स्थापित किया ही है।

इस समय पार्लियामेंट में वफ़द लोगों के केवल १२ सदस्य हैं। परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना ग़लत है कि देश में उसका प्रभाव नहीं रहा। वह प्रयत्न करके पहले की तरह फिर लोकप्रिय हो सकती है।

मिस्र की राजनीति के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि भविष्य में देश उसी राजनैतिक दल का साथ देगा जो प्राप्त राजनैतिक स्वतन्त्रता का उपयोग राष्ट्र की पीड़ित और शोषित जनता का उद्धार करने में करेगा। किन्तु यदि किसी दल ने इसका उपयोग अल्प-जन-तन्त्र स्थापित करने के लिए किया तो राष्ट्र उसको कभी नहीं सह सकेगा, चाहे उस दलविशेष का इतिहास कितना ही गौरवपूर्ण क्यों न रहा हो। मिस्र की वर्तमान राजनैतिक उथल-पुथल किसी भी देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अत्यन्त ही शिक्षाप्रद सिद्ध हो सकती है।

पल भर जाने दो भूल आज

लेखक, श्रीयुत कुँवर सोमेश्वरसिंह बी० ए०, एल-एल० बी०

पल भर जाने दो भूल आज
सीमा के नियमों के वितान
जीवन की विह्वलता महान
पग-पग पर पैर पकड़ने को
उत्सुक निष्फल आत्माभिमान
पल भर जाने दो भूल आज
भावी की अति भीषण पुकार
बीते अतीत का सब ख़ुमार
इस संशयालु उर के रह रह
उठनेवाले कातर विचार
पल भर जाने दो भूल आज
जग के निष्ठुर उपहास हास
गम्भीर ज्ञान के जटिल पाश
प्रत्येक पुलक पर जीवन की
निष्फलता का क्रन्दन हताश
पल भर जाने दो भूल आज
कहते सब जिसको लोक-लाज
कल और, और कुछ और आज
हरदम लकीर ही का फ़क़ीर
अपनी धुन में पागल समाज
पल भर जाने दो भूल आज
इस उर-तन्त्री से भिन्न तान
अपने स्वर से बेसुरे गान
हम पर जो आँख उठाते हैं
उनकी नीरस आँखें अजान
पल भर जाने दो भूल आज

पुष्पभूति और भैरवाचार्य

लेखक, श्रीयुत अज्ञात

श्रीकण्ठ नामक देश में स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) नामक एक छोटा-सा प्रदेश है। राजा पुष्पभूति वहीं हुआ था। शिशु-काल से ही उसे शिव के प्रति सहज और अनन्य भक्ति थी। शिव की पूजा किये बिना वह स्वप्न में भी भोजन नहीं करता था। शिव की शरण में आकर उसने त्रैलोक्य को अन्य देवताओं से शून्य समझा। अनुजीवियों की प्रकृति स्वामी के चित्त का ही अनुसरण करती है, अतएव वहाँ घर घर में शिव की पूजा शुरू हो गई। राजा के पुण्य प्रदेश में बहनेवाली वायु भी होम के कुण्डों में पिघलते हुए गुग्गुल की गंध से युक्त थी, वह (शिव को) स्नान करवाने के दूध के सीकर चारों-ओर फैलाती और बेल के पत्तों को उड़ाती रहती थी। शिव की पूजा के योग्य उपहारों से पुरवासियों, सचिवों और सामन्तों ने उस राजा की सेवा की। संध्या की पूजा के योग्य विशालकाय वृषभों से, जो कैलास की चोटी के समान धवल थे और जिनके सींग सोने की पत्र-लताओं से अलंकृत थे, शिव के स्नान कराने के सुवर्णनिर्मित कलशों से, अर्घ्य-भाजनों से, धूप-पात्रों से, फूलदार वस्त्रों से, मणियों की यष्टि पर रक्खे प्रदीपों से, यज्ञोपवीतों से और बहुमूल्य रत्नों से खचित मुखकोषों[1] से उन लोगों ने राजा के मन को सन्तुष्ट किया। रानियों ने भी स्वयं चावल कूटना आरम्भ कर दिया, देव-मन्दिर लीपने से उनके कर-किसलय और भी लाल हो गये तथा उनके समस्त परिजन फूलों के गूँथने में व्यग्र हुए।

उस परम शैव भूपाल ने लोगों से भैरवाचार्य नामक दाक्षिणात्य महाशैव के बारे में सुना। शील की समानता अदृष्ट व्यक्ति को भी हृदय के निकट ले आती है। इसी-लिए तो सुनने के साथ-ही उसे दूसरे शिव के समान उस भगवान् भैरवाचार्य के प्रति दूरस्थ होने पर भी बड़ी भक्ति हो गई और उसने मन-रूपी रथ से भी उसे सभी प्रकार से देखना चाहा।

'हर्षचरित' में सम्राट् हर्षवर्द्धन का चरित वर्णित है। उसके प्रारम्भ में उनके पिता का भी हाल दिया गया है। यहाँ उसी का एक अंश दिया गया है। इसमें उस समय के धर्मभाव का कविसम्राट् बाण ने बहुत ही रोचक चित्रण किया है।

एक दिन अन्तःपुरवर्ती राजा के निकट आकर प्रतीहारी ने निवेदन किया—"देव, द्वार पर एक परिव्राजक है और कहता है कि वह भैरवाचार्य की आज्ञा से आया है।" यह सुनकर राजा ने सादर कहा—"वह कहाँ है? यहीं ले आओ। उसे भीतर लाओ।" प्रतीहारी ने वैसा ही किया। राजा ने उस अभ्यागत को उचित आदर से अनुगृहीत किया और उसके बैठने पर पूछा—"भैरवाचार्य कहाँ हैं?" राजा के आदर-युक्त वचन से आनन्दित होकर उस परिव्राजक ने कहा—"वे नगर के निकट सरस्वती नदी के तटवर्ती वन के शून्य मन्दिर में हैं।" उसने फिर कहा—"आशीर्वाद से भगवान् आप भाग्यवान् की पूजा करते हैं।" यह कहकर योग-भारक से भैरवाचार्य के भेजे चाँदी के बने पाँच कमल निकाल कर उसने राजा को समर्पित किये। ये कमल रत्नों से युक्त थे और अन्तःपुर को अतिशय आलोक से लिप्त कर रहे थे। सुजनता के वश में होकर राजा ने कमलों को ले लिया और कहा—"कल मैं भगवान् के दर्शन करूँगा।" इतना कहकर उसने परिव्राजक को विसर्जित किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही उठकर राजा एक घोड़े पर सवार हुआ। राजा के ऊपर श्वेत आतपत्र लगा था और दोनों ओर दो धवल चामर डुलाये जा रहे थे। कुछ ही राजपुत्रों के साथ वह भैरवाचार्य को देखने चला, जैसे चन्द्र सूर्य को देखने जा रहा हो। जीर्ण मातृ-गृह से उत्तर की ओर बेल की वाटिका के पास जाकर वह घोड़े से उतर पड़ा और बेल की वाटिका में घुस गया।

तब कौपीन-धारियों के एक बड़े दल के बीच उसने साक्षात् शिव के समान भैरवाचार्य को देखा। वह प्रातःकाल ही स्नान कर चुका था, अष्टपुष्पिका दे चुका था और होम कर चुका था। वह भस्म-रेखा से घिरे हुए तथा हरे गोबर से लिपी भूमि पर बिछाये हुए व्याघ्रचर्म पर बैठा था। वह काला कम्बल ओढ़े हुए था। बिजली के समान आत्म-तेज से शिष्य-लोक को लिप्त कर रहा था। उसके

1—ये शिव-लिङ्ग पर दिये जाते होंगे।

शिखा-पाश में शङ्ख-गुटिकायें लटक रही थीं। कतिपय केशों के धवल हो जाने से वह पचपन वर्ष से अधिक आयु का जान पड़ता था। उसके ललाट पर के बाल क्षीण हो रहे थे। उसके कानों के भीतरी भाग लोमश थे। उसका ललाट-तट चौड़ा था। ललाट पर भस्म से तिरछा तिलक लगा हुआ था। ललाट पर सिकुड़नें थीं। आँखों की पुतली पीली थी, अपाङ्ग लाल थे, (आँखों का) मध्य भाग धवल था और उनसे किरणें निकल रही थीं। नाक की नोक कुब्ज थी। होठ लटके हुए थे। कपोल सिकुड़े हुए थे। दाँत कुछ-कुछ बड़े थे। लम्बे कानों में स्फटिक के बने दो कुण्डल झूल रहे थे। विविध ओषधियों और अभिमन्त्रित सूत्र से बँधे हुए तथा लोहे के वलय से युक्त प्रकोष्ठ पर वह शङ्ख का एक टुकड़ा धारण किये हुए था। वह दाहने हाथ में रुद्राक्ष की माला फेर रहा था। वह छाती पर दोलायमान श्मश्रु से अपनी भीतरी रज को मानो झाड़ रहा था। अत्यन्त घने नीले बालों से उसकी छाती भरी थी। श्वेत और पवित्र वस्त्र से उसका कौपीन ढँका था। पैरों के नखों से निर्मल मयूख निकल रहे थे। दो पवित्र और धवल पादुकायें उसके चरणों की सेवा कर रही थीं। बाँस की लाठी के सहित, जिसके ऊपर काले लोहे की टेढ़ी काँटी गड़ी हुई थी, वह विराजमान था। वह मित-भाषी और मन्दहासी था। सर्वोपकारी और नैष्ठिक ब्रह्मचारी था।

दूर से ही राजा को देखकर भैरवाचार्य इस तरह चलायमान हो गया, जैसे चंन्द्र को देखकर समुद्र। उनके शिष्य-गण पहले ही उठ खड़े हुए और पीछे स्वयं भी उठ-कर उसने राजा की अगवानी की। श्रीफल की भेंट देकर उसने गङ्गा-प्रवाह की ध्वनि के समान गम्भीर वाणी से 'स्वस्ति' शब्द का उच्चारण किया। राजा ने दूर से ही झुककर प्रणाम किया। "आइए, यहाँ बैठिए" यह कह आचार्य ने अपने व्याघ्रचर्म की ओर संकेत किया। राजा ने विनय-पूर्वक कहा—"भगवन्, दूर-स्थित होने पर भी यह व्यक्ति मनरूपी रथ के द्वारा आपका शिष्य हो चुका है। गुरु का आसन गुरुवत् माननीय है। वहाँ आप ही बैठें।" इतना कहकर वह परिजन के लाये वस्त्र पर बैठ गया। भैरवाचार्य भी पूर्ववत् अपने व्याघ्रचर्म पर बैठ गया।

राजपुत्रों, परिजनों और शिष्यों के बैठने पर भैरवाचार्य ने समुचित अर्घ्यादि किया। नृप के माधुर्य ने उसका अन्तःकरण हर लिया। उसने राजा से कहा—"हे तात, आपकी अति नम्रता ही आपके गुणों के उत्कर्ष को बता रही है। आपका ज्ञान भी आपकी सम्पत्ति के ही अनुरूप है। जन्म से ही मैंने धन को नहीं देखा। मेरे प्राण भिक्षा के अन्न से रक्षित हैं। यहाँ जो कुछ उपयोग के योग्य हो उसे आप स्वीकार करें।" राजा ने उत्तर में कहा—"आपके दर्शनों से मैंने अपरिमित कुशल-राशि उपार्जन कर ली है। इस आगमन से मैं गुरु के द्वारा स्पृहणीय पद पर पहुँचा दिया गया हूँ।" इस तरह विविध कथायें कहता हुआ राजा देर तक ठहर कर घर को लौट गया।

दूसरे दिन भैरवाचार्य भी राजा से भेंट करने के लिए गया। राजा ने अन्तःपुर, परिजन और कोष के सहित अपने को उसे अर्पण किया। उसने हँसकर कर कहा—'हे तात, कहाँ तो विभव और कहाँ वनवर्द्धित हम! आप-सरीखे ही सम्पत्ति के पात्र हैं।" इस तरह कुछ काल ठहर-कर वह अपने स्थान को चला गया।

परिव्राजक राजा को नित्य पूर्व-क्रम से चाँदी के पाँच पाँच कमल भेंट करता। एक बार श्वेत कपड़े में आवृत कुछ लेकर उसने राजभवन में प्रवेश किया और पूर्ववत् बैठकर, मुहूर्त भर ठहरकर, कहा—"हे महाभाग्यशाली! भगवान् भैरवाचार्य ने आपसे कहा है कि उनके पाताल-स्वामी नामक एक ब्राह्मण शिष्य है। उसने ब्रह्मराक्षस के हाथ से अट्टहास नामक एक बड़ी तलवार छीन ली है, जो आपकी भुजा के योग्य है। आप उसे ग्रहण करें।" यह कह उसने कपड़े के आवरण को हटाकर म्यान से कृपाण को बाहर खींच लिया।

राजा उसे हाथ में लेकर देर तक देखता रहा। फिर वह बोला—"भगवान् भैरवाचार्य से कहिएगा, पर-द्रव्य-ग्रहण की अवहेलना करने में मेरा मन अत्यन्त अभ्यस्त होने पर भी आपके विषय में वचन के उल्लङ्घन करने का अपराध नहीं कर सकता।" उसके स्वीकार करने पर परिव्राजक चला गया। राजा ने उस कृपाण से मेदिनी को अपने कर-तल पर स्थित माना।

कुछ दिनों के बीतने पर एक बार भैरवाचार्य ने राजा से एकान्त में कहा—"कल्प में विहित काले माल्य, वस्त्र और अनुलेप से महाश्मशान में महाकाल हृदय नामक

महामन्त्र की एक करोड़ जप से पहले ही सेवा कर चुका हूँ। वैताल के साधने पर ही उस मन्त्र की सिद्धि होगी। और सहायकों के बिना वह सिद्धि दुष्प्राप्य है। आप इस काम के लिए समर्थ हैं। आपके भार लेने पर तीन और सहायक हो जायँगे। एक तो वही टीटिभ नामक परिव्राजक जो हमारा बाल-मित्र है और जो आपके यहाँ उपस्थित होता है, दूसरा पातालस्वामी और तीसरा कर्णताल नामक हमारा द्राविड़ शिष्य है। यदि आप उचित समझें तो एक रात अट्टहास लेकर दिग्गज की सूँड़ के समान आपकी यह लम्बी बाहु एक दिशा का अर्गल बने।"

उसके इतना कहने पर, अन्धकार में प्रवेश कर प्रकाश देखनेवाले व्यक्ति की भाँति, उपकार का अवसर पाकर प्रसन्न हो नरेन्द्र ने नम्रता-पूर्वक अपनी स्वीकृति दे दी। तब आनन्दित हो भैरवाचार्य ने संकेत दिया—"आगामी कृष्ण-पक्ष चतुर्दशी की रात में इसी वेला में महाश्मशान के निकटवर्ती उस शून्य मन्दिर में शस्त्र-सहित आप दीर्घायु हमसे मिलें।"

कुछ दिनों के बीतने पर कृष्ण-पक्ष की वह चतुर्दशी आई। शैव-विधि से दीक्षित होकर राजा ने व्रत का ग्रहण किया। उसने अट्टहास की पूर्व-विधि सम्पादित की और गन्ध, धूप, माल्य आदि से उसकी पूजा की। दिवस परिणत हुआ। दिशायें लाल हो गईं, मानो किसी ने कर्म-सिद्धि के लिए रक्त की बलि दी। सूर्य की किरणें इस तरह लटकने लगीं, जैसे रक्त की बलि के प्रति लम्पट वेताल की जिह्वायें हों। पश्चिम-दिशा में पहुँचा हुआ सूर्य मानो नरेन्द्र के अनुराग से स्वयं दिक्पाल का काम करना चाहता था। वृक्ष की बढ़ती हुई छाया राक्षसी की तरह दीखती थी। पाताल-वासी दानवों की तरह तिमिर-मण्डल विघ्न के लिए उठने लगे। नक्षत्रगण मानो रौद्र कर्म देखने की इच्छा से आकाश में इकट्ठे होने लगे। रात गाढ़ी हो गई। लोग सो गये। निःशब्द निशीथ में अन्तःपुर और परिजनों को छोड़कर राजा नगर से अकेला ही निकल गया। उसने साथ में अट्टहास ले लिया था। तलवार के फैलते हुए प्रभा-पटल से, मानो नीले रंग के रेशमी वस्त्र से, देख लिये जाने के भय से, उसका समूचा शरीर ढँका हुआ था। कुछ ही देर में वह उस स्थान पर पहुँच गया।

तेज़ तलवारों, छुरों और चर्म-फलकों से सज्जित टीटिभ, कर्णताल और पातालस्वामी वहाँ पहले से ही उपस्थित थे। उन लोगों के पास से निकलकर वह निःशब्द, गम्भीर और भीषण साधन-भूमि में गया। वहाँ जाकर उसने कुमुद की धूल के समान धवल भस्म से रचित बड़े घेरे के बीच में स्थित भैरवाचार्य को देखा। लाल चन्दन से लिपे, लाल माला, लाल वस्त्र और लाल अलङ्कार से युक्त, चित पड़े हुए शव की छाती पर बैठकर उसने उसके मुखरूपी कुहर में उत्पन्न अग्नि में होम आरम्भ कर दिया था। उसकी (भैरवाचार्य की) पगड़ी काली थी, अङ्गराग काला था, हाथ का सूत काला था और वस्त्र काला था। काले तिलों की आहुति के बहाने वह मानो विद्याधर होने की तृष्णा से (अपने) मानुष-निर्माण के कारण-स्वरूप कलुषित परमाणुओं को नष्ट कर रहा था। धुएँ से उसकी आँखें लाल हो गई थीं। मुख से मंत्र जप रहा था। होम के श्रम से हुए स्वेद-सलिल में समीपवर्ती द्वीप प्रतिबिम्बित हो रहे थे। कंधे पर बहुगुना यज्ञोपवीत लटक रहा था। निकट जाकर राजा ने नमस्कार किया। भैरवाचार्य से अभिनन्दित हो राजा ने अपना काम शुरू किया।

पाताल-स्वामी ने पूर्व दिशा अङ्गीकार की, कर्णताल ने उत्तर, परिव्राजक ने पश्चिम, और राजा ने दक्षिण दिशा को अलंकृत किया।

दिशाओं के इन रक्षकों के इस प्रकार स्थान ग्रहण करने पर, उनके भुजा-रूपी पिंजड़े में प्रविष्ट हो भैरवाचार्य निश्शङ्क भाव से भयानक कर्म करने लगा। विघ्न-कारी राक्षसों ने बहुत देर तक कोलाहल किया। पर निष्फल-प्रयत्न होकर वे शान्त हो गये। अर्ध-रात्रि का समय ढलने पर घेरे से कुछ ही दूर उत्तर की ओर पृथ्वी अकस्मात् फट गई और उसके विवर से [illegible]लय-दल के सदृश एक श्यामल पुरुष सहसा ऊपर निकल आया। वह हाथी बाँधने के लोह-स्तम्भ-सा था। उसका चौड़ा कंधा महावराह का सा मोटा था। वह भूगर्भ से निकले नरक नामक राक्षस के समान था। पाताल फोड़कर उठे हुए बलि नामक दानव के समान था। चिकने, नीले, घने और कुटिल कुन्तल से सुन्दर दीखनेवाले मस्तक पर मालती फूलों की माला चमक रही थी। उसकी आँखों में स्वाभाविक लाली थी,

मानो वह यौवन-मद से मत्त था। उसके गले में एक माला झूल रही थी। करों के सम्पुट में मली हुई मिट्टी से वह दिग्गज के कुम्भ के समान अपने कंधों को बार बार पङ्किल कर रहा था। उसके शरीर पर जहाँ-तहाँ गाढ़े चन्दन के बिन्दु थे। श्वेत चण्डातक[1] के ऊपर के बन्धन से उसका उदर क्षीण हो गया था। उसका धवल कटि-वस्त्र पृथ्वी पर लटक रहा था। उसकी जाँघें स्थूल थीं। वह मानो भूमि-भङ्ग के भय से धीरे धीरे पैर रख रहा था। उसका शरीर शैल-सदृश भारी था। अभिमानपूर्वक बार बार छाती पर वाम भुजा को द्विगुण कर, दक्षिण भुजा को तिरछा उठाकर, जङ्घा को झुकाकर वह भुजाओं के प्रचण्ड आघात से मानो कर्म में विघ्न डालने के लिए निर्घात[2] उत्पन्न कर रहा था। वह मानो जीव-लोक को एक एक इन्द्रिय अर्थात् कान से विहीन कर रहा था। उस पुरुष ने हँसकर नरसिंह के निनाद के समान भयानक वाणी में कहा—"हे विद्याधरी की कामना करनेवाले, क्या यह विद्या का गर्व है अथवा सहायकों का अभिमान है, जो इस व्यक्ति को बलि दिये बिना ही मूर्ख की भाँति सिद्धि की अभिलाषा करते हो ? तुम्हारी यह कैसी दुर्बुद्धि है ? मैं श्रीकण्ठ नामक देश का श्रीकण्ठ नामक नाग हूँ। क्या इतने समय तक यह तुम्हारे कानों में नहीं आया ? मेरे नहीं चाहने पर ग्रहों की भी क्या शक्ति है कि वे गगन में भ्रमण करें ? यह राजा भी अनाथ और बेचारा है, जो तुम्हारे जैसे अधम शैवों के द्वारा सहायक बनाया गया। अब इस दुर्नरेन्द्र के साथ दुर्नय का फल चक्खो।" इतना कहकर उसने दौड़कर आये हुए टिटिभ आदि तीनों को प्रकोष्ठ के निष्ठुर प्रहारों से कवच और कृपाण-सहित गिरा दिया।

अपूर्व अपमान सुनने के कारण क्रुद्ध राजा ने अवज्ञा-सहित कहा—"अरे भुजङ्ग, अरे काक, मुझ राजहंस के रहने पर बलि माँगने में लाज नहीं लगती ? अथवा इन कठोर वचनों से क्या ? वीर्य भुजा में रहता है, न कि वचन में। शस्त्र ग्रहण करो। तुम रह नहीं सकते। जो शस्त्र न ग्रहण किये हुए उन पर प्रहार करना मेरी भुजा ने नहीं सीखा।" नाग ने और भी अनादरपूर्वक कहा—"आओ, शस्त्र से क्या ? भुजाओं से ही तुम्हारा दर्प चूर्ण करता हूँ।" इतना कहकर उसने ताल ठोंकी। राजा ने भी निःशस्त्र को युद्ध में शस्त्र से जीतने में लज्जित हो, चर्मफलक-सहित अट्टहास को छोड़कर बाहु-युद्ध के लिए कमर कसी। दोनों युद्ध युद्ध करने लगे। निर्दय प्रहारों से फटी हुई भुजाओं के रुधिर-सीकर से दोनों सिक्त हो गये। शिला-स्तम्भ के समान बाहु-दण्डों के गिरने से दोनों ने भुवन को मानो शब्दमय कर दिया। कुछ ही देर में राजा ने उस भुजङ्ग को भू-तल पर गिरा दिया और केश पकड़कर शिर काटने के लिए अट्टहास निकाला। किन्तु उसकी वैकक्षमाला के बीच राजा ने यज्ञोपवीत देखा और शस्त्र-व्यापार बन्द कर कहा—"दुर्विनीत, दुर्नय-निर्वाह के लिए तुम्हें यह बीज प्राप्त है, जिससे निश्शङ्क हो तुम चपलताओं का आचरण कर रहे हो।" यह कहकर उसे छोड़ दिया।

अनन्तर सहसा राजा ने अत्यधिक ज्योत्स्ना देखी। शरत्काल में विकसित होते कमलों की-सी घ्राण को लिप्त करनेवाली सुगन्धि सूँघी। तुरन्त ही नूपुरों का शब्द सुना और शब्द के अनुसरण करने में दृष्टि को प्रेरित किया। तब उसने एक स्त्री को देखा। उसके हाथ में तामरस था। हाथ की अँगुलियाँ लाल और कोमल थीं। उसके स्तन-मण्डल अति उन्नत थे। उसके वक्षःस्थल पर एक पर एक उज्ज्वल हार था। उसके कान ज्योत्स्नावर्षी दन्तपत्र[1] और अशोक-किसलय से अलङ्कृत थे। उसका ललाट हाथी के मद से रचित तिलक से अशून्य था। पाद-तल से सीमन्त तक चाँदनी के समान धवल-चन्दन से वह लिपी थी। उसके गले में धरणि-तल-चुम्बिनी मालायें लटक रही थीं। मृणाल-सदृश कोमल अवयव बिना बोले ही उसकी कमलोत्पत्ति की घोषणा कर रहे थे।

ऐसी स्त्री को देखकर उसने पूछा—"भद्रे ! आप कौन हैं ? अथवा आप किसलिए दर्शन-पथ पर आई हैं।" वह बोली—"वीर, तुम्हें विदित हो कि मैं नारायण की उरःस्थली में स्वेच्छा-विहार करनेवाली हरिणी हूँ। पृथु, भरत, भगीरथ नामक आदि राजाओं की वंश-पताका

१—एक तरह का पहनावा।

२—तूफ़ान, आकाश में टकराती हुई वायुओं का शब्द।

१—हाथी-दाँत का बना कान में पहनने का एक आभूषण।

हूँ। वीरों के भुजारूपी विजय-स्तम्भ पर की विलास-पुत्तलिका हूँ। युद्ध में रक्त-नदी की तरङ्गों में क्रीड़ा करने की अभिलाषा से दुर्ललित हुई राजहंसी हूँ। राजाओं के श्वेत आतपत्रों के वन की मयूरी हूँ। अति तीक्ष्ण शस्त्रों के धारारूपी वन में विलासपूर्वक भ्रमण करनेवाली सिंही हूँ। तलवारों के धारारूपी जल की कमलिनी हूँ। लक्ष्मी हूँ। तुम्हारे इस शौर्य-रस से मुग्ध हूँ। माँगो। तुम्हें अभिलषित वर दूँगी।"

उसे प्रणाम कर स्वार्थ-विमुख राजा ने भैरवाचार्य की सिद्धि माँगी। प्रसन्न हो लक्ष्मी ने "एवमस्तु" कहा। फिर भी कहा—"आप सूर्य-वंश और चन्द्र-वंश की तरह पृथ्वी पर एक तीसरे अविच्छिन्न महान् वंश के कर्त्ता होंगे। उस वंश का अभ्युदय दिन दिन बढ़ता रहेगा और उसमें प्रायः पवित्र, सुभग, सच्चे, त्यागी और धीर पुरुष-श्रेष्ठ होंगे। उसमें हरिश्चन्द्र के समान सभी द्वीपों के भोक्ता तथा द्वितीय मान्धाता के समान त्रिभुवन-विजय के इच्छुक हर्ष नामक चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होंगे। कमल छोड़कर यह हाथ स्वयं उनका चामर ग्रहण करेगा।" इतना कहने के बाद वह अदृश्य हो गई।

यह सुनकर राजा हृदय से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। भैरवाचार्य भी उसी समय कुन्तल, किरीट, कुंडल, हार, केयूर, मेखला, मुद्गर और खड्ग प्राप्त कर विद्याधर हो गया। राजा के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन कर और टीटिभ आदि को दृढ़तापूर्वक आलिङ्गन कर भैरवाचार्य आकाश में उड़ गया और सिद्ध के योग्य धाम को चला गया। श्रीकंठ ने कहा—"हे राजन्, पराक्रम से क्रीत इस व्यक्ति को जिसे आपने विनय सिखाई है, कर्तव्य के आदेश से अनुगृहीत किया करेंगे।" राजा के अनुमोदन करने पर वह फिर उसी भू-विवर में घुस गया।

रात प्रायः क्षीण हो गई थी। शीतल, मन्द, सुगन्ध जङ्गली वायु बह रही थी। पक्षी नींद से उठ रहे थे। कानन जहाँ मृदु पवन से लतायें नचाई जा रही थीं, फूलों के समान तुहिन-कणों को बरसा रहा था। ऐसे ही समय में टीटिभ आदि तीनों को लेकर राजा ने नाग-युद्ध से मलिन हुए अङ्गों को वन-वापी के निर्मल जल में धोकर नगर में प्रवेश किया। कुछ दिन बीतने पर राजा के निषेध करने पर भी परिव्राजक (टीटिभ) वन को चला गया। पाताल-स्वामी और कर्णताल राजा की शूरता से अनुरक्त हो उसी की सेवा करने लगे। उन्हें मनोरथ से अधिक सम्पत्ति दी गई। कथा के अवसर पर बीच बीच में आदेश पाकर वे भैरवाचार्य के विचित्र चरित और अपने शैशव के वृत्तान्त कहते थे। उसी के साथ उन दोनों ने वृद्धावस्था प्राप्त की।*

---

* यह निबन्ध बाण-रचित 'हर्ष-चरित' के तृतीय उच्छ्वास के आधार पर तैयार किया गया है।

विस्तार

लेखक, श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव

एक दिन वह था कि था अति क्षुद्र-सा संसार मेरा,
भान तेरा कुछ हुआ, बस हो गया विस्तार मेरा।

लीन अपने में प्रथम था, ध्यान पर का अब मुझे है,
मान अपना ही प्रथम था, मान नर का अब मुझे है,

छिन्न है जो था हृदय के ओर चारों तार घेरा।
भान तेरा कुछ हुआ, बस हो गया विस्तार मेरा।

देख ली अपने हृदय में दिव्य झाँकी सब नरों की
एक लघु घर में दिखी है व्याप्ति मुझको सब घरों की

नाथ कब होगा वही मेरा कि जो व्यवहार तेरा
भान तेरा कुछ हुआ बस हो गया विस्तार मेरा

क्या कहा ? होगा जभी सब सृष्टि पर गुरु प्यार तेरा
बस तभी हो जायगा संसार यह संसार तेरा

हृदय आज

लेखक, श्रीयुत शमशेरबहादुरसिंह

हृदय आज भर भर आता है,
सारा जीवन रुक-सा जाता;
वह आँखों में छाये जाते,
कुछ भी देख नहीं मैं पाता!

कौन पाप हैं पूर्व-जन्म के
जिनका मुझको फल मिलता है ?
मैंने नगर जलाये होंगे
जो मेरा सब तन जलता है!

नदियों के पथ मोड़े होंगे
देश देश तरसाया होगा,
विकल सहस्र मीन-सा तब तो
यह पापी मन पाया होगा!

अनगिनती हृदयों की बस्ती
मैंने आह उजाड़ी होगी।
तब तो इतनी सूनी मेरे
प्राणों की फुलवाड़ी होगी!

अपने लघु जीवन में कैसा
छवि का निर्दय स्वप्न बसाया,
जो सब कुछ हो स्वप्न गया है
मुझे बनाकर अपनी छाया!

घेर-घेर लेती हैं मुझको
कैसी पतझर की-सी आहें!
बरसे आँसू का धुँधलापन
रोक रहा है उर की राहें!

कितने करुणा के बादल हैं
मेरी काल-क्षितिज से बाहर,
जिनकी शीतल गति की छाया
कभी-कभी पड़ती है मुझपर!

उठता सुख से सिहर मरुस्थल
मेरे उर का,—दो कण पाकर
उस सुषमा की छाँह-निमिष का
जिसमें अस्फुट-सा आशा-स्वर।

इस प्रकार कितनी आशायें
छोड़ गईं निज शान्त प्रतिस्वर,
कितने प्रश्न हो गये उत्तर
मौन हृदय में ही उठ-उठ कर!

× × ×

आज न जाने किसको खोकर
धन्य हुए हैं प्राण-पुजारी,
रुकती है तम की चौखट पर
यह जीवन आरती हमारी!

आदि सत्य के मौन कठिनतम
सुन्दरता के ध्यान-रूप-लय,
चिर निर्ममता से ढँक लो यह
मेरा चिर-आकर्षण का भय!

तुम पाषाण हुए हो, सुन्दर!
युग-युग तुमको शीश नवायें!
आगत के चिर आत्म-समर्पण
मानव-उर के दीप दिखायें!

एक करुणरस की कहानी

होटल की भैयादूज

अनुवादिका, श्रीमती सौभाग्यवती विजया, उबीर

"भैया, कल 'भैयादूज' है। मा कहती हैं, सवेरे यहीं नहाने आ जाना।" यमुना भोजन समाप्त करती हुई बोली। माधव ने उसकी ओर देखा। पास ही यमुना की माता खड़ी थी, पूछा—"क्यों काकी, आज यमुना ने क्या सोच रक्खा है ?"

"किस काम का ग़रीबों का सोचना, भैया ?" —चाची उदास मन कहने लगी—"भैया ! आज यदि काल कठोर न होगया होता तो तुम्हारे ही बराबर मेरे भी दो बच्चे होते ! ज्यों ही दोनों ने इस संसार में प्रवेश किया और खेलने-कूदने लगे, त्यों ही निष्ठुर काल उन्हें उठा ले गया। किसी को विश्वास तक न होगा। परमात्मा की इच्छा।" आँखों में छलकते हुए आँसू पोछने के लिए काकी ने अपनी धोती का पल्ला हाथ में लिया। माधव भी यह देखकर ठण्डी साँस लेकर कहने लगा—"चाची, परमात्मा की माया अपार है। ईश्वर पत्थरों के बनाये जाते हैं, इस प्रश्न का उत्तर उसकी ऐसी ही कठोर करनी से मिलता है।"

"अपना भाग्य खोटा है तब परमात्मा को दोष लगाने से क्या लाभ ? गत जन्म में किसी माता को दुखी किया होगा उसी के शाप का फल भोग रहे हैं आज !"

"यदि मेरे उन किशोर कन्हैया की जोड़ी आज सही-सलामत होती तो मुझे क्यों किसी का मुँह ताकना पड़ता ? बेटी भी ऐसी बदनसीब ·······"

"चाची ! बहन यमुना की माँग का सिन्दूर निष्ठुर काल ने पोछ डाला, यह भी उसी का अपराध है ?"

"नहीं भैया, भाग्य ही हमारे ऐसे फूटे ! तभी तो तुम्हारे सरीखे चार बच्चे घर आते हैं। उन्हीं को प्यार करें और सन्तोष मानें। भैया, आओगे न फिर कल ? सभी लोग अपने घर चले गये हैं। तुम्हीं अकेले यहाँ हो, इसी लिए कहा।"

"हाँ, पर मुझे भी तो कल यहाँ रहना मुश्किल ही है·······।"

"क्या तुम्हें घर जाना है भैया ?" अभी तक यमुना चुपचाप खड़ी थी। उसने पूछा—

"माने ?·······"

"माने यही कि यों तो पत्थरों का तो मेरा भी बड़ा भारी मकान है, पर वैसे घर का भूखा नहीं हूँ चाची ! जहाँ अपने प्रेमी वहीं अपना घर। महारानी भले ही विशाल राजवैभव की छाया में रहे, पर उसे भी वह प्रेम की आत्मीयता के बिना वनवास होगा और किसी भिखारी को भी प्रेम की छाया में राह पर के दोपहर का प्रचंड सूरज भी सुखशांतिदायी होगा।"

भैया का कहना सच है, यमुना ने दिल में कहा, चाची ने भी वैसा ही कहा। परन्तु प्रकट रूप में उन्होंने कहा—"तो फिर कल कहीं बाहर जाओगे ? भाई जाओ। एक दिन भी तो इस होटल के भोजन से छुटकारा होगा।"

"कारागृह के भोजन से तो यह ठीक ही है न ?" यह वाक्य उसके होठों पर आ ही गया था, पर उसका उच्चारण करने की हिम्मत न हुई ! जेल से मुक्त होकर वह सीधा इन्दौर का मार्ग छोड़कर अमरावती पहुँचा। इन्दौर में सब कोई उसकी ओर क़ैदी कहकर अँगुली उठायेंगे—उसके ये विचार असत्य भी तो न थे। ईश्वर के सिवा अमरावती के समान बड़े नगर में उसे जाननेवाला था ही कौन ? रोटी का प्रश्न तो छापाख़ाने की नौकरी से हल हो गया था। कारागृह में सीखी हुई कंपोज़िंग ने अनायास ही उसे इस आपत्ति में सहारा दिया था।

उसने अमरावती की आधुनिक सभ्यता का ख़ूब नाम सुना था। उसकी सत्यता का भी उसने अनुभव किया था। इसके सिवा सभी यहाँ उसके अपरिचित थे। क़ैदी कहकर उपहास सहने की कोई आवश्यकता ही न थी। बड़ी बहन वर्धा में ही रहती थीं, शायद उससे भी भेंट हो जाय।

"भैया, क्या सोच रहे हो ?" यमुना ने उसकी विचार-पूर्ण मुद्रा की ओर देखकर पूछा।

उसने स्वस्थचित्त होकर उत्तर दिया—"कल मैं किसी काम के लिए वर्धा जाऊँगा।"

"ऐसा है ? ठीक। तब बेटी कल चंद्रमा को ही अपना भैया मान लेना—बस।" चाची ने कहा।

यमुना मन ही मन अपने नसीब को कोस रही थी। सभी बहनों को भाई के रहते इतना अच्छा भाग्य कैसे प्राप्त हो ?

(२)

भोजन के बाद माधव अपने कमरे में आया। यमुना की करुण मूर्ति का उसे ध्यान न था। उसका सारा ध्यान तो अक्का (छोटी बहन) की ओर लगा था।

उसे आज जेल से मुक्त हुए तीन महीने बीत गये थे। इस बीच में उसने अक्का के पति को कई पत्र भेजे थे। पर एक का भी उत्तर नहीं मिला था। उसकी प्यारी बहन अक्का क्या उसे भूल जायगी ? शायद उसे पत्रोत्तर भेजने की स्वाधीनता ही न हो।

उसने अपनी पेटी में से एक सुन्दर महेश्वरी साड़ी निकाली। शादी के पहले अक्का ने ऐसी धोती के लिए कितना हठ किया था। परन्तु उसकी वह इच्छा माधव उस समय पूरी न कर पाया था। पैसों की कमी से और उसकी शादी की चिन्ता के मारे उस समय उसे बहन की अभिलाषा पूर्ण करना कठिन हो गया था। और बाद में·······

कुछ भी हो, आख़िर अक्का की शादी तो हो गई। परवा नहीं, उसे क़ैद भोगनी पड़ी। यदि वह दहेज़ के पैसे भरने के लिए हिसाब में गोलमाल न करता तो उसे बहन के ब्याह की आशा यों ही दूर कर देनी पड़ती। अक्का के सुख के लिए विष पीने तक का उसका निश्चय था। फिर केवल कारागृहवास तो उसका सौभाग्य ही क्यों न कहा जाय ?

"अक्का को मेरे जाने में कितना आनन्द होगा। अब वह कैसी सुन्दर दिखाई देती होगी। जेल से मुक्त होते ही इस साड़ी को भेंट न कर मैंने अपनी मूर्खता ही दर्शाई। वह नाराज़ हो गई होगी। शायद—मना लूँगा किसी प्रकार। मेरी बहन, प्यारी अक्का बहन, तुझे कैसे मनाऊँ ? आज मेरे यहाँ न रहने से यमुना दुःखी हुई—भाई के बिना हर एक बहन को ऐसा ही दुःख होता होगा। बहन के प्रेम की भला कौन बराबरी करेगा ?"

वह अपने कपड़े गठरी में बाँध रहा था। अपने कपड़ों पर उसने उस धोती को रक्खा। ऊपर से तौलिया लपेटा। पर इतने में उसे थोड़े ही समय के पहले ख़रीदे हुए ज़री की किनारी के सुन्दर 'ब्लाउज़पीस' का स्मरण हो आया। उसने गठरी खोली। बिस्तरे के सिरहाने रक्खा हुआ ब्लाउज़ का कपड़ा उसी धोती में बड़े प्रेम से रक्खा और फिर गठरी बाँध ली।

पड़ोस के घर से एक स्त्री का मधुर संगीत उसके कानों में गूँजने लगा। एक बेचारी ग़रीब किसान-स्त्री अपनी टूटी-फूटी आवाज़ में—किये कष्टों को प्रसन्नता प्रदान करने के लिए—निर्व्याज हृदय से गा रही थी। उस गीत का भावार्थ कितना कोमल—कितना सुन्दर था—

"ऐ मेरी प्यारी बहन ! पानी की झारी पाँव धोने के लिए लेकर आना।"

"द्वार पर तेरे कलेजे का टुकड़ा तेरा भाई कब से खड़ा है।"

दिया बुझाकर वह बिस्तरे पर लेटा था। सारे दिन के परिश्रम की थकावट भी उसे निद्राधीन न कर सकी। वह पड़ोसिन का गीत सुनने में मग्न हो रहा था। उसके भावों में वह अपने विचारों की प्रतिमा को देखने का प्रयत्न कर रहा था।

सचमुच कल ऐसा ही होगा ! कल अक्का ऐसा ही दौड़कर मेरे लिए पानी लावेगी ! ऐसे ही मुझे नहलायेगी ! ऐसे ही मेरे सामने पाँचों पकवानों की थालियाँ लाकर रक्खेगी। बहन—भाई, परमात्मा ! पृथ्वी पर ऐसे अगाध प्रेम का स्वर्ग उपस्थित होते हुए क्यों तू तारिकाओं के इस कोलाहल में वास करता है ? कल भैयादूज है। कल तुझे घर घर में स्वर्ग दिखाई देगा।

नींद में भी उसे भैयादूज के आनन्द के सुखस्वप्न दिखाई दे रहे थे। जब वह जगा तब सूरज काफ़ी चढ़ चुका था। वह वैसा ही शीघ्र स्टेशन की ओर भागा। गाड़ी में बैठते तक उसका जी ठिकाने न था। गाड़ी ने सीटी दी और उसने संतोष की साँस ली।

अपनी बहन का नगर उसके लिए नया-सा था। तो भी आत्माराम देशपांडे के मकान का पता उसे शीघ्र ही लग गया। उसने द्वार पर लगी हुई तख़्ती को पढ़ा। भीतर प्रवेश किया। सामने बरामदे में वकील साहब सिगरेट का आनन्द लूटते हुए आरामकुर्सी पर शान से बैठे थे। माधव के अभिवादन को उन्होंने बैठे-बैठे ही स्वीकार किया, और कहा—'बैठिए उस बेंच पर। आज मैंने काम से अवकाश लिया है। कल आइएगा। तभी

आपके काग़ज़ देखूँगा।" यह हाल देखकर माधव प्रथम तो अवाक् हो गया। दिल पर ठेस-सी लगी। बहनोई को अपने को न पहचानते देखकर उसने धीरे से कहा—"आत्माराम पंत, ऐसा समझ में आता है कि आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं माधव चाँदेकर हूँ। क्या मेरी चिट्ठियाँ आपको नहीं मिली हैं?"

"मैं तुझे अच्छी तरह जानता हूँ। पोस्टआफ़िस से पैसे चुराकर एक पल में पोस्टमास्टर का क़ैदी बननेवाले की पहचान कौन भूलेगा? तेरी चिट्ठियों का जवाब नहीं दिया, इसी से आज तू यहाँ आया है। इसका पता यदि लोगों को चल जाय तो मुझे मुँह तक दिखाने की जगह न रहेगी।"

माधव ने स्वप्न में भी ऐसे स्वागत की कल्पना न की थी।

"चल उठ यहाँ से—वह देख हार्न सुनाई देता है। मैं समझता हूँ, मोटर आ गया। यहाँ के सेशनजज उत्तमराव पुरुषे आ रहे हैं। आज उन्हें तेरी बहन ने भैयादूज के लिए भोजन को बुलाया है। इस समय तुझे यहाँ नहीं आना था। उसे जब से मालूम हुआ है कि तू यहाँ आनेवाला है, वह घबराई हुई है। ऐं! कार तो आगे निकल गया। जान पड़ता है, किसी दूसरे का था। अच्छा यहाँ से जल्दी चला जा।"

माधव को अपने जड़ शरीर का बन्धन असह्य हो रहा था। उसने कहा—"तो क्या अक्का की इच्छा है कि मैं न आऊँ? ऐसा ही सही!"

"यह मैंने कहा है, इसलिए शायद विश्वास नहीं हुआ।" यह कहकर उन्होंने पुकारा—"कमल कमल।"

अभी तक अक्का पर्दे के पीछे खड़ी थी। बड़ी गम्भीरता से आगे बढ़कर कहने लगी—

"भैया, ऐसा करने से क्या होगा? हमें भी अपनी इज़्ज़त की परवा करनी होगी न? तू यहाँ आया है, यह यदि मालूम हो जाय तो महिला-मंडल की सभी स्त्रियाँ न जाने क्या-क्या कहेंगी।"

इतने में "अरे आ गये भैया। ओफ़!" कहती हुई वह आगे दौड़ी। मोटर के पोर्च में आते ही उत्तमराव उससे बाहर आये। उन्होंने कहा—"क्यों अक्का, आया न मैं ठीक समय पर?"

माधव के सिर पर मानो पत्थरों की वर्षा हो रही थी। परमात्मा इस दुनिया में क्यों नहीं रहता, इसका कारण उसकी समझ में आ गया। जिसके लिए वह आज अपनी इज़्ज़त, सम्मान, धन, सभी खो बैठा था वही उसकी प्यारी बहन उसकी ओर न देखती हुई एक पराये के वैभव में फँसकर उसको आज धोखा दे रही थी। जिसके लिए उसके प्राण भूखे थे वही उसकी बहन उसे घर की ड्योढ़ी भी चढ़ने न दे रही थी, प्रेम-भरे दो शब्द भी नहीं बोली। उसे भूखे पेट बाहर निकाल रही थी। जिसके सुख के लिए उसने पैसे की चोरी की, ३ वर्ष तक यातनायें भोगीं, उसी के घर के द्वार, उसी के हृदय के किवाड़ आज उसके लिए बंद हो गये थे। उसके सम्मुख कई प्रश्न आ खड़े हुए। क्या परमात्मा के समान इस संसार के मनुष्य भी पाषाण-हृदय ही हैं? लक्ष्मी की प्रतिमूर्त्ति नारी के हृदय में कृतघ्नता के भयानक विष का निवास है?

चंद्रमा के आकाश में प्रवेश होते ही घर घर में मंगलपूजन होने लगा। आनन्द ने अपने दिव्य तेज से सारे संसार को नहलाया, परन्तु यमुना अपने भाग्य को कोसती हुई अँधेरे में ही बैठी थी।

"बेटी, देखो, चंद्रमा दिखाई देने लगा है। चलो, कर लो पूजा और छुट्टी पाओ।" चाची ने चूल्हे के पास से ही पुकारकर कहा। यमुना होश में आ गई। वह खिड़की की ओर चंद्रमा देखने जा ही रही थी। इतने में द्वार पर किसी ने खटखटाया। वह वैसे ही आगे बढ़ी। दरवाज़ा खोलते ही देखा, माधव खड़ा है।

"भैया, तुम तो... ..बाहर जानेवाले थे।"

"पर आज भैयादूज है। बहन से टीका लगवाने का हक़ आज किसी भी भाई को गँवाना नहीं चाहिए। इसी लिए मैं यहाँ आ गया हूँ। जाओ। यमुना तैयारी करो"—बग़ल की गठरी उसके हाथों में देते हुए उसने कहा।

"यह लो टीका—लगाई......यह महेश्वरी साड़ी पसंद तो आ गई न!"*

---

* श्रीयुत व्यंकटेश बकोल की एक मराठी कहानी से।
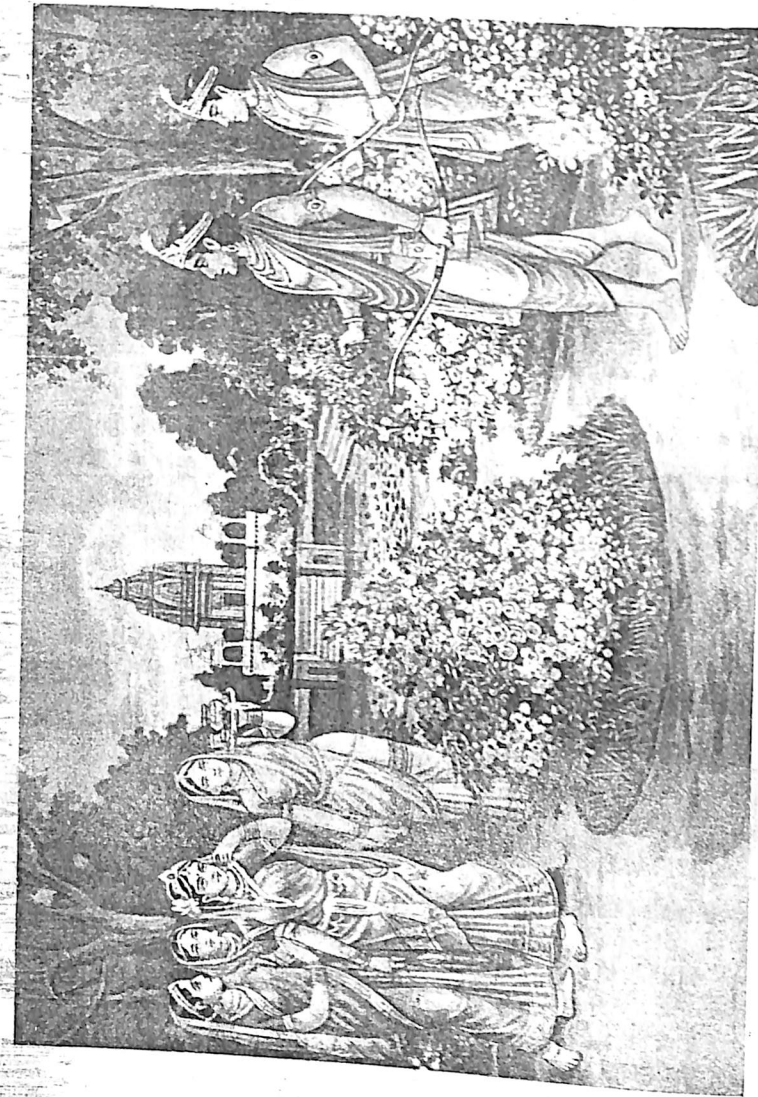
तात जनक-तनया यह सोई। धनुष-यज्ञ जेहि कारण होई ॥
पूजन गौरि सखी लै आई। करति प्रकास फिरति फुलवाई ॥
—गोस्वामी तुलसीदास

...ति के ठाकुर अब तक

[प्रतिमास प्राप्त होनेवाली नई पुस्तकों की सूची। परिचय यथासमय प्रकाशित होगा।]

१—श्रुति-बाल-संगीत—(प्रथम भाग)—लेखक, श्रीयुत श्रुतिरत्न शर्मा, प्रकाशक, संगीत-महाविद्यालय, लायलपुर हैं। मूल्य ।।=)

२—कृषि-उद्यान विद्यासागर—लेखक, श्रीयुत त्र्यं० गो० करदीकर, प्रकाशक, श्रीयुत पु० त्र्यं० करंदीकर, इक्ज़ेक्यूटिव इंजीनियर्स ऑफ़िस, इन्दौर सिटी हैं। मूल्य २॥) है।

३—हरिजन-आन्दोलन-रहस्य - उद्घाटन—लेखक, पंडित बालमुकुन्द शास्त्री, प्रकाशक, श्रीयुत श्रीशचन्द्र शर्मा, नं० २, पञ्चक्रोशी-रोड, नगवा, काशी हैं।

४—ग्राम्य-शिक्षा का इतिहास—लेखक, पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०, प्रकाशक, सरस्वती-पब्लिशिंग-हाउस, इलाहाबाद हैं। मूल्य १) है।

५—वाटिका-तत्त्व-प्रकाश—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत रघुनाथमल राय, रिटायर्ड असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट, रिवेन्यू-डिपार्टमेंट, जोधपुर हैं। मूल्य १॥) है।

६—रक्त-रंजित स्पेन—लेखक, श्रीयुत शिवदानसिंह चौहान, बी० ए०, प्रकाशक, लक्ष्मी-आर्ट-प्रेस, दारागंज, प्रयाग हैं। मूल्य १) है।

७—मतवाली मीरा—लेखक व प्रकाशक, पंडित तुलसीराम शर्मा, मीरा-मन्दिर ३३६—ए कालबादेवी रोड, बम्बई हैं। मूल्य ।।।) है।

८—स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के धर्मोपदेश—संग्रहकार, लाला लब्भूराम जी नय्यड़, हैं। मूल्य ।।) है। पता—गुरुकुल 'कांगड़ी', सहारनपुर।

९—महारानी मैनाबाई—लेखक, मुंशी मुहम्मद इस्माईल ख़ाँ साहब 'नज़्म', प्रकाशक, मध्यभारत-प्रिंटिंग-प्रेस, चाँदनी चौक, रतलाम हैं। मूल्य ।≤) है।

१०-११—राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, एम० ए०, राजराजेश्वरी-साहित्य-मंदिर-सूर्यपुरा, शाहाबाद (बिहार) की दो पुस्तकें—

(१) गांधी-टोपी

(२) सावनी समाँ

१२—संस्कृत-साहित्य का इतिहास प्रथम व द्वितीय भाग—लेखक, सेठ श्री कन्हैयालाल पोद्दार, प्रकाशक, श्रीयुत जवाहिरलाल जी जैन, एम० ए०, 'विशारद', श्री रामविलास-पोद्दार - स्मारक-ग्रन्थमाला - समिति, नवलगढ़ हैं। मूल्य प्रत्येक भाग का १) है।

१३—हिन्दू-जाति का स्वातंत्र्य प्रेम—लेखक, श्रीयुत देशव्रत, प्रकाशक, साहित्य-भवन, लिमिटेड, प्रयाग हैं। मूल्य ।।।≤) है।

१४—व्याख्यान-वाटिका—अनुवादक, पंडित नटवर लाल के० शाह न्यायतीर्थ, प्रकाशक, श्री पुंगलिया सरदार, जैन-ग्रंथ-माला, इतवारी बाज़ार, नागपुर हैं।

१५—श्री हिमांशु विजय जी ना लेखो—सम्पादक, मुनि विद्याविजय जी, प्रकाशक, श्रीयुत दीपचन्द्र खांडिया छोटा सराफ़ा, उज्जैन हैं। मूल्य १॥) है।

१६—अपने देश की कथा—लेखक व प्रकाशक, श्रीयुत सत्यकेतु विद्यालंकार, गुरुकुल - कांगड़ी हैं। मूल्य ।|) है।

१७—प्रिया या प्रजा—लेखक, श्रीयुत गोविन्ददास 'विनीत', प्रकाशक, विनीत-ग्रन्थमाला, ताल बेहट, झाँसी हैं। मूल्य ।) है।

१८—बंधु भरत—लेखक, श्रीयुत तुलसीराम शर्मा 'दिनेश', प्रकाशक, मीरा-मन्दिर, लखनऊ हैं। मूल्य ।=) है।

१९—संगीताञ्जलि - लेखक व प्रकाशक, पंडित

ओंकारनाथ गौरीशंकर ठाकुर, खेतवाड़ी मेन रोड, बंबई नं० ४ हैं। मूल्य १।) है।

२०—सौरभ—लेखक, श्रीयुत उदयराजसिंह, प्रकाशक, श्री राजेश्वरी बाल-हिन्दी-पुस्तकालय, सूर्यपुरा (शाहाबाद) हैं। मूल्य =) है।

२१—फ़ैसिज़्म और जर्मनी—लेखक, श्रीयुत एस० पी० त्रिपाठी, प्रकाशक, वसुन्धरा-निकेतन, काशी हैं।

१—हर्षवर्द्धन—लेखक, श्रीयुत गौरीशङ्कर चटर्जी, एम० ए०, लेक्चरर, प्रयाग-विश्व-विद्यालय, प्रकाशक, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या २९० और मूल्य २॥) है।

बौद्ध-काल के ह्रास और हिन्दूकाल के अभ्युदय की संधि में हर्षवर्द्धन एक परम प्रतापी और इतिहास-प्रसिद्ध सम्राट् हुए थे। कन्नौज को राजधानी बनाकर अपने बाहुबल के आधार पर उन्होंने भारत के एक विशाल भू-भाग पर राज्य किया था। चीन का प्रसिद्ध यात्री सुएन-च्वांग उन्हीं के राज्य-काल में आया था। उन्हीं के दरबार में बाण कवि थे, जिनकी अमरकृति 'हर्ष-चरित्र' संस्कृत-साहित्य की प्रख्यात विभूति है। इस सम्राट् की निरापद छत्रच्छाया में बौद्ध-धर्म और हिन्दू-धर्म दोनों शान्तिपूर्वक कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने लगे थे और एक धर्म के सिद्धान्तों का दूसरे धर्म के सिद्धान्तों में शीघ्रता से समावेश होने लगा था। पुरातत्त्व-विभाग के अन्वेषणों, प्राप्त ताम्र-पत्रों, शिला-लेखों, सिक्कों और विदेशी यात्रियों व देशी कवियों के वर्णनों-द्वारा इस राजा के राज्य-काल का बहुत कुछ इतिहास ज्ञात है। फिर भी अनेक स्थलों पर पुरातत्त्व के विद्वान् एक-दूसरे से असहमत हैं। प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने तत्संबंधी प्राप्त समस्त सामग्री का बड़ी विद्वत्ता-पूर्वक विवेचन किया है और जहाँ-कहीं वह अन्य लेखकों से असहमत है, वहाँ अपने पक्ष की सिद्धि के लिए उसने प्रबल तर्क-पूर्ण प्रमाण दिये हैं।

परन्तु हर्षवर्द्धन को 'वैश्य' जाति का बतलाने में लेखक ने शीघ्रता से काम लिया है। संस्कृत-ग्रन्थों में इस संबंध में कुछ भी नहीं लिखा है। केवल सुएनच्वांग ने राजा को "फै-शे" जाति का लिखा है, जिसका अर्थ 'वैश' भी हो सकता है और 'वैश्य' भी। वैश जाति के ठाकुर अब तक कन्नौज के आस-पास आबाद हैं।

पुस्तक इतिहास-प्रेमियों और पुरातत्त्व के विद्यार्थियों के काम की है।

२—पशु-चिकित्सा—सम्पादक, डाक्टर कमरुलहुदा जी, बी० एस-सी०, वेटेरनरी सर्जन, प्रकाशक, किसान-हितकारी पुस्तक-माला, छपरा हैं। पृष्ठ-संख्या १३५ है। मूल्य लिखा नहीं।

इस पुस्तक में पशु-रोगों के लक्षण, निदान और दूर करने के उपाय दिये गये हैं। पुस्तक ग्रामीणों के लिए अधिक उपयोगी है, क्योंकि इसमें प्रायः वे ही दवाइयाँ दी गई हैं जो देहातों में सुलभ हैं। देहातों में पाले जानेवाले सभी प्रकार के पशुओं की चिकित्सा इस छोटे आकार के ग्रन्थ में देने का प्रयत्न किया गया है, फलतः विषय को अच्छे प्रकार से समझाने का कम अवकाश मिला है। भाषा भी अधिक अशुद्ध है, जो विज्ञान-संबंधी, विशेषतया चिकित्सा-संबंधी पुस्तक के लिए भयानक बात है। कहीं-कहीं "शौतरी" आदि अप्रसिद्ध नाम देने से पुस्तक की उपादेयता कुछ कम हो गई है। फिर भी पुस्तक है बड़े काम की।

३—फल-संरक्षण—लेखक, डाक्टर गोरखप्रसाद, प्रकाशक, विज्ञान-परिषद्, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या पौने दो सौ। मूल्य १) है।

वैज्ञानिक विषयों पर सरल हिन्दी में पुस्तकें लिखकर लेखक ने हिन्दी-साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। अपनी 'फ़ोटोग्राफ़ी' आदि पुस्तकों के द्वारा डाक्टर साहब हिन्दी-पाठकों के सुपरिचित हो चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक में फलों को रखने का वैज्ञानिक ढंग बतलाया गया है। हरे और ताज़े फल किस प्रकार अधिक समय तक रक्खे जा सकते हैं, उनसे भाँति-भाँति के अचार, मुरब्बे और चटनियाँ किस प्रकार बनती हैं, इसी को सरल भाषा में समझाया है। पुस्तक फलों के छोटे-बड़े व्यापारियों के अतिरिक्त घर-गृहस्थीवालों के भी बड़े काम की है।

४—देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम्—मूललेखक, श्रीमच्छंकराचार्य महाराज, भाषान्तरकार व प्रकाशक, श्रीयुत

मेहता बलदेवदास व्यास, चौखम्भा, बनारस हैं। पृष्ठ-संख्या २६ और मूल्य ।) है। छपाई-सफ़ाई उत्कृष्ट।

शंकराचार्य-विरचित संस्कृत-स्तोत्रों को स्तोत्र-साहित्य में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। उनके स्तोत्रों में भक्ति और आत्मनिवेदन की भावनाओं के अतिरिक्त काव्यगत माधुर्य का भी समावेश हुआ है। पाठ करते समय भक्त तो तन्मय हो ही जाता है, श्रोताओं पर भी उसके पवित्र आकर्षण का प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत स्तोत्र में केवल १२ छन्द हैं, पर हैं वे बड़े मधुर और भक्ति-रसपूर्ण। साथ ही मेहता जी ने उनका हिन्दी, गुजराती, मराठी, बँगला और अँगरेज़ी अनुवाद देकर इसे भारत के सब प्रान्तों के भक्तों के समझने योग्य बना दिया है। जहाँ तक अनुवादों का सम्बन्ध है, वे अत्यन्त शुद्ध तथा आकर्षक हुए हैं। दुर्गा जी के भक्तों को इसकी एक-एक प्रति अवश्य अपने पास रखनी चाहिए। ऐसे सर्वांग पूर्ण प्रकाशन के लिए प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

५—श्रीहरिगीता—अनुवादक, श्रीयुत दीनानाथ भार्गव 'दिनेश', प्रकाशक, गीता-मंडल, दिल्ली हैं। पृष्ठ-संख्या ३१३ और मूल्य २) है। पता—गौतम-बुकडिपो, नई सड़क, दिल्ली।

श्रीमद्भगवद्गीता के आजकल अनेक अनुवाद निकल रहे हैं। इनमें से कुछ अच्छे भी हैं। प्रस्तुत अनुवाद भी अच्छा है। बायें ओर के पृष्ठ पर गीता के मूल श्लोक देकर दाहिनी ओर हरिगीतिका छन्दों में उनका प्रति-श्लोकी अनुवाद दिया गया है। जहाँ तक अनुवाद का सम्बन्ध है वह काफी सरस, मूलानुसारी और सुन्दर हुआ है। भरती बहुत कम है। नमूना देखिए—

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः॥

इसका अनुवाद इस प्रकार है—

जिस भाँति जलती ज्वाल में जाते पतंगे वेग से।
त्यों मृत्यु-हित ये नर मुखों में आपके जाते धँसे॥

दूसरा उदाहरण लीजिए—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

यह त्रिगुण दैवी घोर माया अगम और अपार है।
आता शरण मेरी वही जाता सहज में पार है॥

गीता-प्रेमियों के लिए पुस्तक संग्रहणीय है।

६—मेरा देश—लेखक, श्रीयुत भगवतप्रसाद शुक्ल, 'सनातन', प्रकाशक, ग्रामोत्थान-पुस्तकालय बहादुरगढ़, मेरठ हैं। पृष्ठ-संख्या ६० और मूल्य ।) है।

सामयिक कविताओं की यह एक छोटी-सी पुस्तक है। स्वतन्त्र राष्ट्र के निर्माणकाल में देश के बालक-वृद्ध, युवक-युवती, मित्र-शत्रु सबके हृदय किस ध्वनि से प्रतिध्वनित होने चाहिए, इसमें लिखी गई कवितायें उसका उत्तम उदाहरण हैं। देश के कोने-कोने से, हृदय-हृदय से, जब ऐसी आवाज़ें निकलने लगेंगी, जब छोटे-छोटे बच्चे आग्रह करने लगेंगे कि—

"मेरी अच्छी अम्मा! ला दो, मुझे तिरङ्गा झंडा एक,
झंडे लिये घूमते फिरते, मेरे साथी आज अनेक।
'झंडा ऊँचा रहे हमारा, गा लेते हैं अपने आप।
मुझको याद नहीं है इससे सुनता रहता हूँ चुपचाप।"

जब युवक अपनी अन्तर्गत वेदना का अनुभव करके कहने लगेंगे कि—

"पराधीनता की लपटों में झुलस रहा है मेरा देश।
कूद पड़ूँ मैं उसे बुझाने यह है यौवन का सन्देश!"

तब स्वराज्य सचमुच पास आ जायगा। ईश्वर कवि के स्वप्न को शीघ्र सच करे। सरल भाषा और परिमार्जित शैली के द्वारा हृदयस्पर्शी भाव-व्यञ्जना में लेखक ने काफ़ी सफलता पाई है।

७—उच्छ्वास—लेखक, श्रीयुत प्रभुदयाल अग्निहोत्री, प्रकाशक, श्रीयुत रामेश्वरदयालु अग्निहोत्री, धन्योरा, शाहजहाँपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ८८ और मूल्य ॥=) है। छपाई-सफ़ाई आकर्षक।

यह अग्निहोत्री जी की विविध-विषयों की कविताओं का संग्रह है। कुछ रचनायें सुन्दर हैं, शेष साधारण हैं। लेखक में कवि-हृदय मौजूद है और अभ्यास करने पर वह हिन्दी-साहित्य को वास्तविक कविता प्रदान कर सकेगा, ऐसी आशा है। समस्त पदों का प्राचुर्य लेखक के काव्य-तीर्थ व शास्त्री होने की ओर चुपचाप संकेत कर देता है। भाषा में सफ़ाई की काफ़ी गुंजाइश है।

८—जीवन-संघर्ष—अनुवादक व प्रकाशक, श्रीयुत लक्ष्मीचन्द्र जी "चन्द्र", कानपुर हैं। पृष्ठ-संख्या ७६ और मूल्य ॥।) है।

यह पुस्तक बम्बई के पण्डित महाबलीप्रसाद त्रिवेदी

जी की आत्मकहानी है जिसे उन्होंने अँगरेज़ी में लिखा है। त्रिवेदी जी ने साधारण शिक्षा पाकर साधारण परिस्थितियों में पलकर किस प्रकार अपने जीवन में क्रमशः उन्नति की और विभिन्न क्षेत्रों में सफलतापूर्वक काम किया, इसका इसमें रोचकतापूर्ण वर्णन है। प्रत्येक मनुष्य की अवस्था-व्यवस्था स्वभावतः विभिन्न होती है, अतः यह आवश्यक नहीं कि जो अवसर त्रिवेदी जी को प्राप्त हुए वे ही सबको मिल जायँगे। फिर भी उन्नत-जीवन की कहानियाँ—यदि सचमुच इसे उन्नत-जीवन कहा जा सकता हो—नवयुवकों में आशा और उत्साह का संचार अवश्य करती हैं। इस नाते पुस्तक को एक हद तक उपयोगी कह सकते हैं।

९—नव-प्रसून—लेखक, श्रीयुत यशपाल जैन, प्रकाशक, भारतीय-साहित्य-मन्दिर, चाँदनी चौक, दिल्ली हैं। मूल्य १) और पृष्ठ-संख्या १३२ है।

इस पुस्तक में श्री यशपाल जी की ९ कहानियों का संग्रह है। ऐसी सरल और हृदयग्राही शैली में वर्तमान समस्याओं पर लिखी गई कहानियाँ बहुत कम देखने में आती हैं। हमारे नौसिखिये लेखक तो 'रोमांस' के पीछे दीवाने हो रहे हैं। यदि भूले-भटके देश की मौजूदा समस्याओं पर कभी क़लम भी उठाते हैं तो वह इधर-उधर की बात हो जाती है। उसमें उनकी अनुभूति की छाया देखने को नहीं मिलती। सामयिक संघर्ष मानो उनकी कला पर कोई छाप ही नहीं छोड़ता। पर ये कहानियाँ ऐसी नहीं हैं। लेखक के भावुक और वस्तुस्थिति-विश्लेषक हृदय की छाप हर कहानी में मौजूद है। सभी कहानियाँ रोचक, स्वाभाविक, मौलिक और सुरुचिपूर्ण हैं। इन्हें पढ़कर किसी भी रुचि के पाठक को निराशा न होगी। नवयुवक लेखक के लिए इतनी सफलता कम नहीं है।

१०—मदशाला—लेखक, श्रीयुत कृष्णचन्द्र शर्मा 'चंद्र', प्रकाशक, चैत्यधाम; मेरठ हैं। मूल्य ।।) है।

इस समय हिन्दी में विभिन्न काव्य-धारायें प्रवाहित हो रही हैं। उनमें एक उमरख़ैयामी धारा भी है।

ईरान में उमर ख़ैयाम नाम के एक कवि हुए हैं। उन्होंने अपनी कविता में अपने समय के मज़हबी व्यापारियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी और आध्यात्मिकता के जाल को छिन्न भिन्न कर जीवन के भौतिक सत्यों की ओर मुड़ने का संकेत किया था। लोगों ने उनका विरोध किया। परन्तु आज उनका काव्य संसार भर में लोक-प्रिय हो रहा है। यहाँ तक कि उनकी शैली की एक नई धारा ही चल पड़ी है। इधर हिन्दी में जब बाल की खाल खींचनेवाली रहस्यात्मकता की बाढ़ आगई तब उसकी प्रतिक्रिया हुई और भौतिक जीवन के आनंदोल्लास का संदेश कुछ कवियों की वाणी में सुनाई देने लगा। इस कविता में न केवल काव्य की परंपरा से ही विद्रोह था, प्रत्युत समाज के वर्तमान वैषम्य के प्रति भी एक प्रकार की उग्र विरोध की भावना थी। साक़ी, मधुबाला, मधुशाला, प्याला, हाला और 'ला' 'ला' का चारों ओर शोर मच गया। 'मदशाला' के लेखक महोदय ने भी ख़ैयाम का नाम स्मरण कर उसी में अपना सुर मिलाया है। 'उस मादक को' जिसे यह 'मदशाला' समर्पित की गई है, चाहे हम साक़ी या 'माधुबाला' के नाम से पुकारें, चाहे 'पी' के नाम से, उसका स्वरूप तो यह है—

"झूम रही है मादक मतवाली
आली वह प्यार पगी।" और—
जब अंगूरी परिधान पहिन
कर अंगूरी का पात्र लिये।

परन्तु यह 'मदिरा नहीं' स्वप्न में पिये हुए 'पी' के अधरामृत की याद है जिसे इनकी (?) साक़ी बाँट रही है। कहते हैं :—

"ऐसे पी 'उस पी' का पागल,
अंतिम दिन तक रहे ख़ुमार।"

'उस पी' का क्या पी? पागल तो कोई चीज़ नहीं जो पी जा सके! कवि जी 'राष्ट्र-भाषा' में लिखने बैठे हैं, पर उनकी 'राष्ट्र-भाषा' यह है :—

"मुद्दत से जब बरगश्ता थे
तो क्या करते शादाब मुझे?"

और उनका पिंगल :—

"इतने में तृप्ति हो (हु) जायेगी"
... ...
"उसकी इक तलछट दिलवा दे
जिसका फिर कोइ उतार नहीं।"

और माँगते हैं 'तेरी सुकृपा की कोर' जिससे वे दीवाने बन सकें। 'इन अलस कनखियों ही में उन्होंने अपना मैख़ाना ढूँढ़ लिया। और पाठकों से उनकी अपील है कि वे भी उनके 'साक़ी' को अपने प्यार की चीज़ बना सकें जिससे चारों ओर से सुनाई देने लगे—

"पी ले पी ले हाँ पी भी ले। तथा—
"ये और और वो और और।
वो और और, ये और और।"

[illegible]म्भव है कुछ भावुक युवक जिन्हें 'साक़ी बाला' की [illegible] तथा 'मधु के ख़ुमार का नया शौक़ है, लेखक [illegible] संतोष दे सकें।

[illegible]वि की भावुकता की क़द्र करते हुए भी हमारी दृष्टि [illegible] एक साधारण रचना है। —व्रजेश्वर, बी० ए०

[illegible]—राष्ट्र भाषा क्या हो?—लेखक, श्रीयुत चन्द्र-[illegible]दालंकार, गुरुदत्तभवन, लाहौर हैं। मूल्य)।। है। [illegible]खक उसी भाषा को राष्ट्र-भाषा के रूप में देखना [illegible] है जिसकी नींव साठ साल पहले स्वामी दयानन्द [illegible] ने डाली थी।

[illegible]ौदा में अदालत का 'न्यायमन्दिर' तथा फ़ायर [illegible] का 'अग्निशांति गृह' बनाकर हिन्दी के साथ जो [illegible] किया गया है उससे लेखक को विशेष प्रसन्नता है। [illegible]न्तु पं० जवाहरलाल जी के हिन्दी-आन्दोलन और महात्मा जी के 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' के प्रस्ताव के रूप में जो ज्वालामुखी फट पड़ा है उसने लेखक का दिल दहला दिया। 'सम्मेलन' राजनैतिक नेताओं के हाथ की कठपुतली बनकर हिन्दुओं के पैसे से जो उर्दू का प्रचार कर रहा है उससे लेखक को बहुत रोष है और वह हिन्दुओं से अपील करता है कि वे उर्दू को अपने देश से निकाल भगायें, क्योंकि वह अरब की भाषा है।

लेखक महोदय से हम इतना ही कहना चाहेंगे कि वे शांत-चित्त से, साम्प्रदायिक चश्मे को उतारकर भाषा के प्रश्न पर ग़ौर करें और इस प्रश्न को सोचते समय यह न भूल जायँ कि किसी भी समाज या समुदाय-विशेष पर कोई भाषा थोपी नहीं जा सकती। —व्रजेश्वर, बी० ए०

[illegible]२—वातायन—फ़र्रुख़ाबाद के कवि-कोविद-संघ के [illegible] ने इसका प्रकाशन किया है। यह उक्त संघ के [illegible] की कविता का संग्रह है। इस संग्रह में श्री राम-कुमार अवस्थी की कवितायें अच्छी हैं। 'एक सवेरे' में [illegible] वैज्ञानिक तथा कलात्मक ढंग से कविता की [illegible] की विविध श्रेणियों का वर्णन किया है—

"प्रतिभा कर से पा परिमार्जन
इन गालों पर आँसू के कण—
पायेंगे निज अभिव्यक्ति सरस—
भाषा में कल कविता बन-बन"।

कुमारी विद्या सक्सेना ने 'प्रेम पाठ' में प्रेम का स्वच्छ और उच्चतम आदर्श रक्खा है—"प्रेमी के शुभ-चिन्तन में, प्राणों की होड़ लगाना।" 'हुक्का', ठेलेवाला, और कौडा आदि कवितायें हास्यरसात्मक और उपदेश-पूर्ण होने के कारण बालोपयोगी हैं।

आशा है, कवि-कोविद-संघ हिन्दी के पाठकों के सम्मुख अपने नवयुवक कवि सदस्यों की और भी उन्नत तथा परिमार्जित रचनायें इसी प्रकार उपस्थित करेगा। इस संग्रह का मूल्य ।=) है।

१३—देहाती पंछी—लेखक, श्रीयुत 'दिनेश', बी० ए०, बी-टी०, प्रकाशक, सावित्रीसदन, बारासिवनी, (सी० पी०) हैं। पृष्ठ-संख्या १४ और मूल्य -) है।

प्रस्तुत पुस्तक श्री 'दिनेश' जी द्वारा रचित कुछ ग्रामगीतों का संग्रह है। ये गीत १९३५ में ही 'जार्ज अनविन' प्रकाशक, लंदन के यहाँ से अँगरेज़ी में अनूदित होकर छप चुके हैं। इन गीतों की भाषा मुख्यतः राजस्थानी बोली है। सभी गीत रागबद्ध हैं। लेखक के अनुसार ये गीत सी० पी० के ग्रामीणों में अधिक प्रचलित हैं। इस सफलता के लिए लेखक को बधाई।

—कान्तिचन्द्र सौनरिक्सा

१४—समाज और साहित्य—(दूसरा भाग) लेखक, श्रीयुत आनंदकुमार, प्रकाशक, हिन्दी-मंदिर, प्रयाग है। पृष्ठ-संख्या ६४, और मूल्य ।।।) है।

यह लेखक के पाँच निबंधों का संग्रह है। वे हैं—साहित्य, राष्ट्र-निर्माण, नाम, समालोचना की दुर्दशा और बाबू मैथिलीशरण गुप्त। इनमें 'नाम' शीर्षक निबंध अधिक रोचक और उपयोगी है। 'समालोचना की दुर्दशा' में मिश्र-बंधुओं के विनोद के चौथे भाग का उल्लेख कर सत्य को सत्य रूप में प्रकाशित करने की चेष्टा की गई है। इसी प्रकार गुप्त जी के सम्बन्ध में भी साहस के साथ लिखा गया है। निबन्धों की शैली सरल और स्पष्ट है। पुस्तक पढ़ने और संग्रह करने के योग्य है।

जाग्रत नारियाँ

अमरीकन स्त्रियाँ और समाज

लेखिका, श्रीमती विद्युत्तमा मिश्र

मध्यकालीन पराधीनता के वातावरण में रहनेवाली तथा पुरुष-जाति-द्वारा आक्रान्त भारतीय महिला के लिए अमरीकन स्त्रियों की सामाजिक स्थिति बहुत सी बातों में आदर्श एवं स्पृहणीय हो सकती है। सामाजिक क्षेत्र में क्रमशः उन्नति करते करते अमरीकन स्त्रियाँ उस स्थान पर पहुँच गई हैं जिसे उन्नति की चरम सीमा कह सकते हैं। इस दिशा में इँग्लैंड की स्त्रियाँ भी उनसे बहुत पीछे हैं। अमरीकन समाज में स्त्रियों का प्रमुख स्थान प्राप्त है। उनके अधिकार में देश की आधे से अधिक संपत्ति है। चालीस प्रतिशत भू-सम्पत्ति की वे स्वामिनी हैं। इसी प्रकार सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं के ४० प्रतिशत पर उनका अधिकार है। रेल रोड कारपोरेशनों के स्टाक का ४८ प्रतिशत उनके हाथ में है और पतियों की मृत्यु के पश्चात् सत्तर प्रतिशत स्त्रियाँ उनकी उत्तराधिकारिणी होती हैं। जितने मोटर बिकते हैं उनमें से आधे से अधिक की ख़रीदार स्त्रियाँ ही होती हैं। सरकारी नौकरियों में से २५ प्रतिशत पर वे अधिकार जमाये हुए हैं। ये आँकड़े भारतीय पुरुषों के लिए भी रश्क के क़ाबिल हैं।

अमरीका में स्त्रियों के आर्थिक उत्कर्ष का मुख्य कारण यह है कि वहाँ पुरुषों की संख्या स्त्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक है। स्त्रियों के हक़ में यह बात बड़े लाभ की है। फलतः उन्हें विवाह करने के लिए, इँग्लैंड और फ़्रांस आदि देशों की स्त्रियों की अपेक्षा, अधिक सुविधायें प्राप्त रहती हैं। लड़की के दिल में ब्याह करने की इच्छा हो, बस उसे सुयोग्य पति प्राप्त करने में दिक़्क़त न होगी। न वहाँ प्रतियोगिता ही होती है, न किसी तरह की परेशानी। विवाह-द्वारा स्त्री को अर्थ-प्राप्ति भी होती है। सम्पन्न जीवन के लिए विवाह वहाँ एक निश्चित साधन माना जाता है। पुरुष कमाते हैं और स्त्रियाँ मज़े से ख़र्च करती हैं। स्त्रियाँ भी बहुत-सी सम्पत्ति विरासत में पाती हैं। इँग्लैंड की संस्कृति पुरुष-प्रधान है तो अमरीका की 'स्त्री-प्रधान'। सभी जगह स्त्रियों का बोलबाला है। जिन्होंने अमरीका में भ्रमण किया है उन्हें ज्ञात है कि उनके श्रोताओं में स्त्रियों की संख्या अधिक रहती है। थियेटरों, चित्रगृहों, सभा-सोसाइटियों में स्त्रियों का प्राधान्य रहता है। आरम्भिक और माध्यमिक शिक्षा-संस्थाओं में स्त्री-अध्यापिकाओं का ही बाहुल्य है। फलतः शिक्षा के विचार और सिद्धान्त दोनों पर स्त्रियों का एकाधिपत्य दिखाई देता है। सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र तक लड़कों का पालन व शिक्षण प्रायः केवल स्त्रियों के ही हाथ में रहता है। परिणामतः लड़के स्त्रियों के सामने दब्बू और उनसे नफ़रत करनेवाले हो जाते हैं। निस्सन्देह यह शुभ लक्षण नहीं है। पर इसका कोई इलाज भी नहीं हो सकता। क्योंकि वेतन बहुत कम मिलने के कारण शिक्षण के पेशे की ओर पुरुषों का आकर्षण नहीं होता। इस दृष्टि से शिक्षण बहुत प्रतिष्ठित पेशा नहीं समझा जाता और बहुत थोड़े पुरुष उसे ग्रहण

[कुमारी प्रेमलता गुप्त, बी० ए०]
(आप लन्दन-विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का उच्च अध्ययन करने के लिए इँग्लैंड गई हैं।)

[श्रीमती कमलाबाई त्रिलोकेकर]
(आप गिरिराव मेमोरियल थियासोफिकल स्कूल की प्रिन्सिपल हैं। आप मदनापल्ली में आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।)

[मिस अर्सिया हसन]
(आपको कलकत्ता यूनीवर्सिटी ने उच्च अध्ययन के लिए विशेष छात्र-वृत्ति दी है। आप शिक्षा-प्राप्ति के लिए इँग्लैंड को रवाना हो गई हैं।)

करते हैं। स्त्रियाँ भी इस पेशे की श्रेष्ठता के कारण इसकी ओर आकर्षित नहीं होतीं, प्रत्युत वे इसे विद्यार्थी-जीवन और वैवाहिक जीवन के बीच का समय बिताने के लिए एक अच्छा साधन समझती हैं।

अमरीका में शिक्षा और संस्कृति पर स्त्रियों के प्रभुत्व के दो मुख्य कारण हैं; प्रथम तो यह, जैसा कि पहले कह चुके हैं कि शिक्षा-विभाग में अल्प वेतन होने से उन पुरुषों का उस ओर आकर्षण नहीं होता जिनके सामने अधिक आयवाले पेशे हैं। दूसरे मध्य-श्रेणी की स्त्रियों के पास अपने पतियों की अपेक्षा अवकाश अधिक रहता है। वस्तुतः सम्पत्ति के अधिकांश पर स्त्रियों का प्रभुत्व रहता है, यद्यपि उसे कमानेवाले पुरुष ही होते हैं। विवाह-द्वारा सम्पत्ति का उत्तराधिकार पाने के अलावा इस प्रभुत्व का एक और कारण है। बहुधा स्त्रियाँ अपने पति के बाद भी जीवित रहती हैं और इस प्रकार वे उनकी सम्पत्ति की स्वामिनी होती हैं। अमरीका में पैदाइश का औसत गिर रहा है, फलतः प्रसव-संबंधी उपद्रवों के ख़तरे बहुत कुछ कम होगये हैं। उनका जीवन भी निश्चिन्त है। इन्हीं कारणों से स्त्रियाँ अधिक दिनों तक जीवित रहकर कौटुम्बिक सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती हैं।

परन्तु वहाँ स्त्रियों को एक स्पष्ट घाटा भी है। अमरीकन पति अपनी पत्नी को सब कुछ देता है—केवल 'समय' और 'ध्यान' नहीं देता। अमरीकन पत्नी इँग्लिश या फ्रेंच पत्नी की अपेक्षा अपने पति के व्यवसाय के विषय में बहुत कम ज्ञान रखती हैं। अतएव अमरीकन जीवन में कौटुम्बिक सामञ्जस्य तथा गृहजीवन के अनुराग का अभाव-सा हो गया है। मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार दुनिया भर की स्त्रियों की अपेक्षा अमरीका की स्त्रियों में असन्तोष की मात्रा अधिक रहने का शायद यही कारण है।

मध्य-वर्ग की अधिकांश स्त्रियों की यही अवस्था है।

[मिस मित्थू एन० चीनाय बी० ए०]
(आपको हैदराबाद राज्य ने स्कालरशिप दिया है। आप कैम्ब्रिज में अध्ययन कर रही हैं।)

[मिस मुक्ताबाई सुब्बाराव [म० ए०, आनर्स]
(आपको कैम्ब्रिज में अध्ययन करने के लिए निज़ाम सरकार ने स्टेट-स्कालरशिप दिया है।)

परन्तु मज़दूर स्त्रियों का जिनका औसत आबादी में अधिक है, जीवन और ही प्रकार का है। उनका निर्वाह कठिन परिश्रम-द्वारा होता है। उत्तराधिकार में स्त्रियों के प्रभुत्व के प्रति बढ़ते हुए विरोध की प्रतिक्रिया अभाग्यवश उन स्त्रियों पर होती है जो मज़दूरी करके पेट पालती हैं। भीषण बेकारी के ज़माने में पुरुषों-द्वारा यह आवाज़ उठाई गई थी कि स्त्रियाँ पुरुषों के काम न करें।

११० लाख स्त्रियाँ या यों समझिए कि अमरीका की स्त्री-आबादी का चतुर्थांश मज़दूरी-द्वारा पेट पालता है। इनमें से अधिकांश बाप-दादों के पेशों में लगी हुई हैं, जिन्हें वे घर से बाहर फ़ेक्टरियों में, या अन्य बाहरी संस्थाओं में करती हैं। मज़दूर स्त्रियाँ सबसे अधिक संख्या में अब भी गृह-चाकरनियाँ हैं। इसके बाद अध्यापिकाओं की संख्या है। यह ऐसा पेशा है जिसे पुरुष पसन्द नहीं करते। जिन दस्तकारियों में अमरीकन स्त्रियों का प्रभुत्व है वे ये हैं—बुनाई-कताई, मिश्री बनाना, सिगरेट बनाना।

लेकिन कुछ ऐसे पेशे जो परम्परा से स्त्रियों के थे, पुरुषों ने हथिया लिये हैं। शृंगार-सजावट-संबंधी कार्यों में पुरुषों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। जल-पान-गृहों और होटलों में सबसे अधिक वेतन पुरुष रसोइयों का ही है। स्त्रियाँ 'स्टेनोग्राफरों' और 'टेलीफोन आपरेटरों', का काम करती हैं, क्योंकि अनुभव-द्वारा वे इस काम के अधिक उपयुक्त प्रमाणित हुई हैं। उद्योग-धन्धों में स्त्रियाँ पुरुषों का मुक़ाबिला करके सफल नहीं हो सकतीं। अतः वे प्रायः उन्हीं पेशों में लगी रहती हैं जिनमें जाना पुरुष पसन्द नहीं करते।

अमरीकन स्त्री की औसत मज़दूरी ११ डालर (लगभग ३२ रुपया) प्रतिसप्ताह है। अमरीकन जीवन का उच्च-स्टैंडर्ड देखते हुए वास्तव में यह रक़म अत्यन्त तुच्छ है। यह न समझना चाहिए कि स्त्रियाँ इन कम आयवाले पेशों को काम करने के शौक़ से करती हैं, बल्कि उनके भूँखों मरने से बचने के लिए और कोई साधन नहीं है।

मज़दूर स्त्रियों के काम के घंटे नियत करने तथा उनकी परिस्थिति सुधारने के संबंध में क़ानून बनाने के
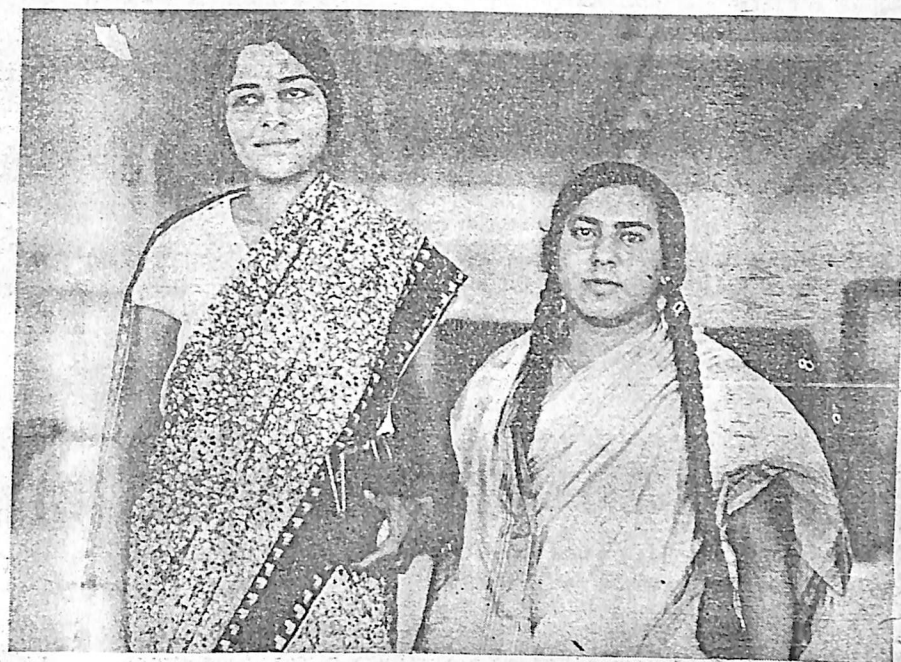
[कुमारी हंससिंह बी० ए० (दाहिनी ओर) और कुमारी गुलाम मुहम्मद एम० बी० बी० एस०, जो क्रमशः 'टीचर्स डिप्लोमा' और बी० एस-सी० तथा एफ़० आर० सी० एस० की शिक्षा के लिए इँग्लैंड गई हैं।]

लिए आन्दोलन हुआ था, जिसका नेतृत्व स्त्रियों और विशेषकर उच्चवर्गीय महिलाओं के हाथ में था। ये महिलायें अपनी मज़दूर बहनों के कष्ट-निवारण के लिए चिन्तित थीं। अमरीका की अनेक रियासतों में कम-से-कम मज़दूरी और अधिक-से-अधिक काम के घंटे निर्धारित करने-वाले तथा कई तरह के कामों, विशेष कर रात्रि के कामों, के निषेध-सम्बन्धी क़ानून बनाये जा चुके हैं। कुछ पेशों में स्त्रियों की परिस्थितियाँ सचमुच भयानक हैं। धुलाई के काम में नाममात्र मज़दूरी पर उनसे निर्दयतापूर्वक बहुत देर तक काम लिया जाता है। और पेशों में भी कठिनाइयाँ असीम हैं। क़ानून कितना ही आवश्यक क्यों न हो, उसका परिणाम तो स्त्रियों की बेकारी बढ़ानेवाला ही होगा। और इसी लिए स्वयं स्त्रियों के द्वारा क़ानून का विरोध किया गया। इस विशेष संरक्षण के परिणाम-स्वरूप स्त्रियों के काम में रुकावट पड़ेगी और पुरुषों के कम्पीटीशन में वे घाटे में रहेंगी। रात्रि के कामों का निषेध स्त्रियों को बहुत से कामों से वंचित कर देगा। जैसे—होटलों की चाकरी, मनोरंजन के व्यवसाय तथा समाचार-पत्रों की कुछ नौकरियाँ। मज़दूरी निर्धारण का विशेष क़ानून सस्ते दामों पर चीनी या फिलीपायनी पुरुषों को स्त्रियों के मुक़ाबिले में भरती करने की मनोवृत्ति पैदा करेगा। इन्हीं कारणों से स्त्री-आन्दोलन के नेता स्वयं शासन-विधान में ही संशोधन के लिए आन्दोलन कर रहे हैं, जिससे स्त्रियों के हित सुरक्षित रहें।

व्यापारिक क्षेत्रों में, विशेषतया विज्ञापन और विक्रय के कामों में, स्त्रियों को अधिक सफलता नहीं मिल सकी।

[कुमारी कुसुम वेंकटाराव एम० बी० बी० एस०]
(आप "इलेक्ट्रोलॉजी" और "रेडियोलॉजी" की शिक्षा प्राप्त करने के लिए इँग्लेंड गई हैं।)

[मिस कार्थी यायारी अम्मल बी० ए०, बी० एल०]
(आप कोचीन रियासत में वकालत करनेवाली प्रथम महिला हैं।)

[मिस कमला भागवत एम० एस-सी०]
(आप बम्बई की प्रसिद्ध रिसर्च स्कालर हैं। आपको १९३८-३९ का प्रख्यात 'क्रूशेड-फ़ेलोशिप' प्राप्त हुआ है।)

यद्यपि ग्राहकों में स्त्रियों की अधिक संख्या रहने के कारण उनसे इसके विपरीत आशा की जाती थी। परन्तु अन्य क्षेत्रों में स्त्रियों ने काफ़ी नाम कमाया। यथा—राजनीति, काव्य और कला।

जर्मनी में हिटलर के अभ्युदय ने संसार में फ़ासिज़्म की क़दर चला दी है। सैनिकवाद और नात्सीवाद स्त्रियों के मज़दूर और विचारक होने के विरुद्ध हैं। वे उन्हें महज़ सिपाही पैदा करने की मशीन समझते हैं। हो सकता है कि इसी कारण अमरीकन स्त्रियों का बहुमत फ़ासिज़्म के विरुद्ध हो।

अमरीकन स्त्री-आन्दोलन में भारी परिवर्तन हो रहे हैं। पहले वे पुरुषों-द्वारा संगठित समाज में स्थान पाने का प्रयत्न करती थीं, पर आज-कल अमरीकन स्त्रियाँ इस बात के लिए चिन्तित हैं कि संसार सभ्य मनुष्यों के रहने के योग्य रहेगा भी या नहीं—वह संसार जिसमें स्त्री और पुरुष समकक्ष और सम-साधन-सम्पन्न हों।

पर यह सच है कि आज अमरीका स्त्री-जाति का आधुनिक स्वर्ग है।

पत्थर फोड़नेवाली

लेखक, श्रीयुत दिनेश पालीवाल, बी० ए०, बी० टी०

शैल के दृढ़ खंड झट-झट फूट चल, शक्ति अवयव में नहीं बिलकुल रही।
भूख-तृष्णा ने सुखाया ख़ून सब, हाथ निर्बल हो गया उठता नहीं॥
हैं त्वचा में झुर्रियाँ पड़ने लगीं, अंग सब विद्रूप फट-फट हो गये।
रात-दिन लग लग हथौड़े, हाय नख, फूट चपटे लाल नीले हो गये॥

जेठ की दुपहर धरा को भूनती, हाँक अंधड़ अग्नि का भीषण महा।
फोड़ता पत्थर हथौड़ा हाय कर, छटपटाता प्राण आँसू से नहा॥
जिस घड़ी पड़ता हथौड़ा हाथ पर, ख़ून एकदम मारता पिचकारियाँ।
खा पछाड़ें बाप-मा की याद कर, दर्द से होतीं शिथिल सब नाड़ियाँ॥

भू उगलती आग बनती सेज फिर, अग्नि बरसाता गगन चादर तना।
तब कहीं रुकता हथौड़ा दो घड़ी, मार्ग का राही स्वजन जब हो बना॥
मार्ग के वट-वृक्ष हैं विश्राम-गृह, जल नदी का प्यास थकन निकालता।
फूस तृण-शय्या हमारी है मृदुल, पेड़ का महुवा सकल घर पालता॥

अंग पर कपड़ा बराबर है नहीं, बैल-भैंसे हैं कहीं हमसे भले।
जो धनिक के श्वान खाते हैं सदा, वह नहीं त्योहार पर हमको मिले॥
जब किसी ने सदय हो ओषधि न दी, पुत्र मेरा ताप से ही मर गया।
व्याधि से हम दीन तो मरते नहीं, भूख कपड़ों से हमारा घर गया॥

आयगा जाड़ा कँपाते शैल को, हाय हम दुर्दैवियों के पास में।
एक भी तन पर फटा कपड़ा नहीं, काट लेंगे शीत ऋतु को घास में॥
फ़िक्र है पर बालकों की जिस घड़ी, बर्फ़ का अंधड़ कँपावेगा ज़मीं।
शाल कम्बल ओढ़ नर करते चुहल, हाय होंगे भक्ष्य उसके भी हमीं॥

'मर गया, अम्मा! बचा मुझको बचा', पुत्र मेरा चीख़ देगा जब सिहड़।
शीतहत निर्जीव हाथों को बढ़ा, पेट में उसको सँभालूँगी पकड़॥
काल बीतेगा कँपाते रातभर, आग का आश्रय करेगा कुछ दया।
हम जलों पर ओस का गिरता नमक, फिर मुसीबत का दिवस निकले नया॥

भूख दृढ़ पीती रुधिर इस पेट का, रक्त तर्पण कर हथौड़ा हाथ का,
काम निष्ठुर हो करेगा फिर शुरू, हो न ज्यों कुछ स्नेह मानव-गात का॥
'पेट ख़ाली या भरा' इस प्रश्न को, पूछनेवाला हमारा है नहीं।
मौत पर आँसू बहाने के लिए, आँख शायद ही मिले भू पर कहीं॥

निठुर ठेकेदार के जूते कभी, पीठ
है बदा हमको नहीं कोई दिवस, जब
शीत ऋतु में जब धनिक घर में दवें, वन
हाथ दिनभर फोड़ता है गिट्टियाँ, पीठ प

शेर खाता या बचाता है हमें, लेश भी इसका किसी को ध्यान
मूल्य पशुओं का कहीं मिलता अधिक, इस तरह सस्ती हमारी जान
डेढ़ आने रोज़ बस हमको मिलें शाक-भाजी भी अधिक सस्ती
हम ग़रीबों के क्षणिक सुख के लिए, एक भी भू पर नहीं बस्ती

× × ×

मौत शायद लायगी शय्या मृदुल, मार्ग का रज ही
हम ग़रीबों की वहीं बस्ती सुखद, हाथ से उस दिन

मंत्री हर वानरविन ट्राप (बाईं ओर)
...ा रहे हैं।

विसर्जन

लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह

(१)

तू मा, मेरी प्रिय पुष्करिणी;
मैं तेरी पद्मा सुकुमार!
एक स्पर्श में उमड़ पड़ी जो,
पाकर तेरा मञ्जुल प्यार!
खिला भानु, जाता प्रतिवासर;
होते शलभों से न्यौछावर!
राशि-राशि मधु-लोभी मधुकर!
यह तो तेरा ही सौरभ, जो
व्याकुल बना सकल संसार;
तू न अगर होती, तो जीती
कैसे यह पद्मा सुकुमार?

(२

सफल हुई य
आई अब जग
मुखरित सिन्धु-

(३)

तू मा, मेरा महिम-हिमाद्रि-ग्राम;
मैं तेरी लघु सरिता-धार!
एक पुलक पर मचल पड़ी जो,
पाकर तेरा मञ्जुल प्यार!
उत्पल-उपलों में स्वर भरती,
विजन-वनों में गिरती-पड़ती;
शैल-शिखर से मन्द उतरती!
छन्द नहीं मेरे
यह तो तेरी ही
तू न अगर होती,
आती मैं लघु सरित

ज़ेकोस्लोवेकिया का एक करुण दृश्य—ज़ेक पिता फ़ौज में नौकर है। सीमान्त पर जाने की आज्ञा सरकार से मिली है। वह सजल नेत्रों से अपनी एक-मात्र सन्तान का चुम्बन कर रहा है। ट्रेन का समय समीप है। पुत्र का हृदय फट रहा है। वह किसी प्रकार अपने पिता को छोड़ना नहीं चाहता। कौन जाने फिर मिलन होगा या नहीं! परन्तु ज़ेकोस्लो-वाकिया के आत्म-समर्पण कर देने से ऐसा अवसर नहीं आया।

वर्ग मं... ...चित्र-संग्रह

इस बार प्र...

सुडेटन जर्मन युवक स्वस्तिक झंडे के ...प इँगलेंड से सँभाल लिया है।

ब्रह्म-समाज के प्रतिष्ठाता स्वर्गीय राजा राममोहन राय। हाल में आपका शतादि-उत्सव मनाया गया है।

जर्मनी के आक्रमण की आश... ...ह वक्तृता झाड़ रहे हैं जिसकी प्रतीक्षा पिछले दिनों समस्त संसार ने बड़ी उत्कण्ठा से की थी।

इस बार प्रति...

फ्रेंच-प्रीमियर मोशिये दालादियर (दाहनी ओर) और जर्मनी के वैदेशिक मंत्री हर वानरिबन ट्राप (बाईं ओर) म्यूनिख की चार-शक्तियों की कान्फ्रेंस के लिए जा रहे हैं।

ज़ेकोस्लोवेकिया का एक करुण दृश्य—ज़ेक पिता फ़ौज में नौकर है। सीमान्त पर जाने की आज्ञा सरकार से मिली है। वह सजल नेत्रों से अपनी एक मात्र सन्तान का चुम्बन कर रहा है। ट्रेन का समय समीप है। पुत्र का हृदय फट रहा है। वह किसी प्रकार अपने पिता को छोड़ना नहीं चाहता। कौन जाने फिर मिलन होगा या नहीं! परन्तु ज़ेकोस्लोवाकिया के आत्म-समर्पण कर देने से ऐसा अवसर नहीं आया।

सुडेटन जर्मन युवक स्वस्तिक झंडे के साथ सीमा पार कर रहे हैं। इनकी प्रसन्नता के लिए ज़ेकोस्लोवेकिया को गहरा मूल्य चुकाना पड़ा है।

जर्मनों के आक्रमण की आशङ्का से ज़ेक-सेना सीमान्त पर जाने के लिए ट्रेन पर चढ़ रही है। एक सैनिक के ...

रेल के डिब्बे में—ज़ेक-पुत्र आँसू दबाकर, मुसकाते हुए अपने सिपाही पिता को सीमान्त पर जाने के लिए विदाई दे रहा है। दोनों के चेहरों पर करुणा की छाप देखिए।

मिस्टर आर्थर ट्रेवर हेरीज़—जो इलाहाबाद में छोटे जज थे, अब पटना में चीफ़ जज के पद पर गये हैं।

हैदराबाद और बरार के निज़ाम—आप अलीगढ़ के मुसलिम यूनिवर्सिटी के चांसलर बनाये गये हैं। आजकल आपके राज्य में स्टेट कांग्रेस-कमेटी का ज़ोरों से आन्दोलन हो रहा है।

वर्ग नं० २८ का नतीजा

इस बार प्रतियोगियों ने वर्गनिर्माता को बुरी तरह हराया। शुद्ध पूर्ति एक व्यक्ति की आई।

प्रथम पुरस्कार ३००) (शुद्ध पूर्ति पर)

श्रीमान् भगवान कृष्ण श्रीवास्तव, मुक़ाम फ़तहगंज, दाल की मंडी, रामभरोसे महाजन के मकान के पास, फ़ैज़ाबाद।

द्वितीय पुरस्कार ७८) (एक अशुद्धि पर)

श्रीमती भगवान कृष्ण श्रीवास्तव, मुक़ाम फ़तहगंज, दाल की मंडी, रामभरोसे महाजन के मकान के पास, फ़ैज़ाबाद।

तृतीय पुरस्कार १०४) (दो अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित ८ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १३) मिला।

(१) पं० रामनिरंजन, विहारी जी का मन्दिर, पो० विसाऊ, जयपुर।
(२) पं० रामभरोसे, पश्चिम टोला, पुरवा, उन्नाव।
(३) हरवल्लभ झा, जोन्सगंज, अजमेर।
(४) ताराचन्द, मारफ़त लाला सूरजभान क्लर्क सी० ए० वी० हाईस्कूल, हिसार, पंजाब।
(५) शम्भूनाथ वर्मा, गौरीगनेस, बनारस सिटी।
(६) जगेश्वरसिंह, पो० गढ़वा, जि० पलामू।
(७) मोहनलाल गुप्त, मारफ़त लक्ष्मीनारायण गुप्त वकील, सरैयागंज, मुज़फ्फरपुर, बिहार।
(८) सुश्री तारावती नायक, मारफ़त राधिकाप्रसाद नायक 'नायकनिवास' दीचितपुरा, जबलपुर।

चतुर्थ पुरस्कार १८) (तीन अशुद्धियों पर)

यह पुरस्कार निम्नलिखित १८ व्यक्तियों में बाँटा गया। प्रत्येक को १) मिला।

(१) बाबू द्वारिकासिंह, स्थान तिघरा, पो० पीपीगञ्ज, ज़िला गोरखपुर।

(२) कमलादेवी सक्सेना, c/o डाक्टर के० नरायन, मनीपुर स्टेट, आसाम।

(३) डी० वी० पीटर्स, चर्च रोड धमतरी, ज़िला रायपुर सी० पी०।

(४) शिवनारायणलाल विशारद, ग्राम गूढ़, पो० आ० खजुरौं, ज़िला रायबरेली।

(५) परमात्माशरण पेंशनर, मु० ज़काती, बरेली।

(६) एन० कुमार ब्रिज, निकलसन रोड, लाहौर।

(७) बाबू श्यामाप्रसादसिंह, पंजवारा लॉज, जोगसर, भागलपुर (बिहार)।

(८) शिवप्रसाद कोठी, बलिया।
(९) किशोरीलाल, हेडमास्टर डी० बी० स्कूल दुहाना, हिसार (पंजाब)।
(१०) पंडित हरिदत्त विष्ट, असिस्टेन्ट मास्टर, म्यूनिसिपल स्कूल अलमोड़ा।
(११) जे० सी० श्रीवास्तव, c/o एफ० डी० सिंह रुड़की इंजीनियरिङ्ग वर्क्स, इलाहाबाद।
(१२) सूरजसहाय सक्सेना, क्लर्क, कलेक्टरी, उरई।
(१३) शकुन्तलादेवी, c/o सूरजसहाय सक्सेना क्लर्क कलेक्टरी, उरई।
(१४) शशिभूषणप्रसाद गुप्त, c/o लक्ष्मीनारायण गुप्त वकील सरैयागंज, मुजफ्फरपुर, बिहार।
(१५) मिसेज़ प्रभूदयाल गुप्ता, c/o डाक्टर हरशे, लार्डगंज, जबलपुर।
(१६) बालाप्रसाद वर्मा, मास्टर सरदार नर्मदाप्रसाद सिंह २२; लूकर रोड, इलाहाबाद।
(१७) उदयप्रसाद 'उदय' बोड़े गाँव, पो० आ० नन्दकठी, ज़िला दुर्ग, सी० पी०।
(१८) सुमरनलाल हेडमास्टर केवलारी, छिदवाड़ा, सी० पी०।

उपर्युक्त सब पुरस्कार २८ दिसम्बर को भेज दिये जायँगे।

नोट—जाँच का फ़ार्म ठीक समय पर आने से यदि किसी को और भी पुरस्कार पाने का अधिकार सिद्ध हुआ तो उपर्युक्त पुरस्कारों में से जो उसकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बाँटा जायगा।
केवल वे ही लोग जाँच का फ़ार्म भेजें जिनका नाम यहाँ नहीं छपा है, पर जिनको यह सन्देह हो कि वे पुरस्कार पाने के अधिकारी हैं।
जिनको १) का पुरस्कार मिला है उन्हें १) के दो प्रवेश-शुल्क-पत्र भेज दिये जायँगे, जो नियम के अनुसार तीन महीने के भीतर इसके साथ दो पूर्तियाँ भेज सकेंगे।

नियम :—

(१) किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह जितनी पूर्ति-संख्यायें भेजना चाहे, भेजे, किन्तु प्रत्येक वर्ग-पूर्ति सरस्वती पत्रिका के ही छपे हुए फ़ार्म पर होनी चाहिए। इस प्रतियोगिता में एक व्यक्ति को केवल एक ही इनाम मिल सकता है। इंडियन प्रेस के कर्मचारी इसमें भाग नहीं ले सकेंगे। प्रत्येक वर्ग की पूर्ति स्याही से की जाय। पेंसिल से की गई पूर्तियाँ स्वीकार न की जायँगी। अक्षर सुन्दर, सुडौल और छापे के सदृश स्पष्ट लिखने चाहिए। जो अक्षर पढ़ा न जा सकेगा अथवा बिगाड़ कर या काटकर दूसरी बार लिखा गया होगा वह अशुद्ध माना जायगा।

(२) प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए जो फ़ीस वर्ग के ऊपर छपी है, दाख़िल करनी होगी। फ़ीस मनीआर्डर-द्वारा या सरस्वती-प्रतियोगिता के प्रवेश-शुल्क-पत्र (Credit voucher) के द्वारा दाख़िल की जा सकती है। इन प्रवेश-शुल्क-पत्रों की कितावें हमारे कार्यालय से ३) या ६) में ख़रीदी जा सकती हैं। ३) की किताब में आठ आने मूल्य के और ६) की किताब में १) मूल्य के ६ पत्र बँधे हैं। एक ही कुटुम्ब के अनेक व्यक्ति जिनका पता-ठिकाना भी एक ही हो, एक ही मनीआर्डर-द्वारा अपनी-अपनी फ़ीस भेज सकते हैं और उनकी वर्ग-पूर्तियाँ भी एक ही लिफ़ाफ़े या पैकेट में भेजी जा सकती हैं। वर्ग-पूर्ति की फ़ीस किसी भी दशा में नहीं लौटाई जायगी। मनीआर्डर व वर्ग-पूर्तियाँ 'प्रबन्धक, वर्ग-नम्बर २९, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद' के पते से आनी चाहिए।

(३) लिफ़ाफ़े में वर्ग-पूर्ति के साथ मनीआर्डर की रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र नत्थी होकर आना अनिवार्य है। रसीद या प्रवेश-शुल्क-पत्र न होने पर वर्ग-पूर्ति की जाँच न की जायगी। लिफ़ाफ़े की दूसरी ओर अर्थात् पीठ पर मनीआर्डर भेजनेवाले का नाम और पूर्ति-संख्या लिखना आवश्यक है।

(४) जो वर्ग-पूर्ति २८ दिसम्बर तक नहीं पहुँचेगी, जाँच में शामिल नहीं की जायगी। स्थानीय पूर्तियाँ २६ ता० को पाँच बजे तक बक्स में पड़ जानी चाहिए और दूर के स्थानों (अर्थात् जहाँ से इलाहाबाद को डाकगाड़ी से चिट्ठी पहुँचने में २४ घंटे या अधिक लगता है) से भेजनेवालों की पूर्तियाँ २ दिन बाद तक ली जायँगी। वर्ग-निर्माता का निर्णय सब प्रकार से और प्रत्येक दशा में मान्य होगा। शुद्ध वर्ग-पूर्ति की प्रतिलिपि सरस्वती पत्रिका के अगले अङ्क में प्रकाशित होगी, जिससे पूर्ति करनेवाले सज्जन अपनी अपनी वर्ग-पूर्ति की शुद्धता-अशुद्धता की जाँच कर सकें।

(५) वर्ग-निर्माता की पूर्ति से, जो मुहर लगा कर रख दी गई है, जो पूर्ति मिलेगी वही सही मानी जायगी। यदि कोई पूर्ति शुद्ध न निकली तो मैनेजर शुद्ध पूर्ति इनाम जिस तरह उचित समझेंगे, बाँटेंगे।

अङ्क-परिचय

बायें से दाहिने

१–मार्क्स के अनुयायियों का सिद्धान्त।
५–काव्यों में इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।
७–सीता और द्रौपदी इसके वायुमंडल में भी रहीं थीं।
८–शीघ्र। १०–आकर्षण।
११–इसे देवता ही दे सकते हैं।
१३–अधिक ठहरे तो मन को दुर्बल करता है।
१४–इसका घर भूलोक का स्वर्ग है।
१५–एक वृक्ष। १६–अपना...दूर से दिखाई देता है।
१९–सौन्दर्योपासक। २१–पार्वती।
२४–दूसरों के हाथ से इसे पाने की इच्छा मनुष्य में स्वाभाविक होती है।
२५–ज़री। २८–मनुष्य, पशु इत्यादि।
३०–इसके बिना आदमी बेकार हो जाता है।
३१–कानों को सुखद है।
३२–कोमलता और सौन्दर्य का प्रतीक।
३४–इसकी अनुकूलता में धन की कमी नहीं।
३५–इसके बिना काम कैसे चले?

ऊपर से नीचे

१–ऐसे की सभी प्रशंसा करते हैं।
२–हंस यहीं निवास करते हैं। ३–एक लाल फूल।
४–'संतत सुरानीक हित जेही।" ५–शरीर का एक अंग।
६–'सरस्वती' के कुछ पाठक ऐसे भी हैं।
८–इसके उद्धार के लिए सब ओर प्रयत्न हो रहे हैं।
९–क्या मानव-जाति के पूर्वज यही थे?
१२–इसके बिना जीवन फीका है।
१७–भोजन का एक अंग। १८–प्यारा सम्बन्धी।
२०–गंगा-जल में भी पाई जाती है। (१९ के आगे 'सि' पर २० नंबर पढ़िए।)
२२–राष्ट्र की नौका के कर्णधार यही तो हैं!
२३–ये तो यों ही चला करते हैं।
२६–फलित ज्योतिष की एक शाखा।
२७–इसका रंग लाल है।
२८–बिना जल के इसकी कल्पना भी सम्भव नहीं।
२९–जितनी बढ़ाओ उतनी ही बढ़ती है।
३१–बहुत-से लोग इसी पर निर्वाह करते हैं।

आपकी पाठवारस्व के लिए वर्ग २९ की पूर्तियों की नक़ल यहाँ पर कर लीजिए। और इसे निश्चय प्रकाशित होने तक अपने पास रखिए।

वर्ग नं० २८ की शुद्ध पूर्ति

वर्ग नम्बर २८ की शुद्ध पूर्ति जो बंद लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दी गई थी, यहाँ दी जा रही है।

दे	व	ना	ग	री	■	अ	धि	का	री
र	सी	ला	■	■	अ	नि	य	मि	त
■	य	■	■	क	म	ल	■	नी	■
म	त	वा	ली	■	ल	कु	टी	■	व
हि	■	स	■	सु	दा	मा	■	शी	शी
मा	■	न	■	क	री	र	■	त	क
■	अं	■	ह	वि	■	■	म	ला	र
अ	नु	भ	व	■	अ	सा	ध्य	■	सा
ध	रा	■	न	गी	■	ध	म	की	■
म	ग	र	■	र	सि	क	■	श	मा

वर्ग नं० २८ (जाँच का फ़ार्म)

मैंने सरस्वती में छपे वर्ग नं० २८ के आपके उत्तर से अपना उत्तर मिलाया। मेरी पूर्ति

नं०...में } कोई अशुद्धि नहीं है। / १, २, ३ हैं।

मेरी पूर्ति पर जो पारितोषिक मिला हो उसे तुरन्त भेजिए। मैं १) जाँच की फ़ीस भेज रहा हूँ।

हस्ताक्षर ____________

पता ____________

बिन्दुदार लाइन पर काटिए

नोट—जो पुरस्कार आपकी पूर्ति के अनुसार होगा वह फिर से बँटेगा और फ़ीस लौटा दी जायगी। पर यदि पूर्ति ठीक न निकली तो फ़ीस नहीं लौटाई जायगी। जो समझें कि उनका नाम ठीक जगह पर छपा है उन्हें इस फ़ार्म के भेजने की ज़रूरत नहीं। यह फ़ार्म १५ दिसम्बर के बाद नहीं लिया जायगा।

इसे काटकर लिफ़ाफ़े पर चिपका दीजिए

मैनेजर वर्ग नं० २९
इंडियन प्रेस, लि०,
इलाहाबाद

मुफ़्त कूपन की नक़ल यहाँ कीजिए।

मुफ़्त कूपन — वर्ग नं० २९ — पूर्ति नं०...

फ़ीस।) — वर्ग नं० २९ — पूर्ति नं०...

इस लाइन से काटिए

फ़ीस।) — वर्ग नं० २९ — पूर्ति नं०...

नाम — पता —

शंका-समाधान

"खीर, सीर, धीर"

वर्ग नम्बर २७ में बायें से दाहिने ३२ वाँ संकेत इस प्रकार है "संयुक्त-प्रान्त के ज़मीन्दारों का कहना है कि चाहे जो हो हम यह नहीं छोड़ेंगे"। इसके ३ उत्तर होते हैं:—खीर, सीर, धीर। अधिकांश उत्तर भेजनेवालों ने जैसा कि वर्गनिर्माता को आशा थी 'सीर' लिखा है। यह बात तो अख़बारों के मामूली पाठक भी जानते हैं कि संयुक्त-प्रान्त के ज़मीन्दारों ने सीर के प्रश्न को लेकर एक ख़ासा आन्दोलन उठा रखा है इसी लिए इस पहेली के उत्तर सोचनेवालों को सीर का ध्यान सबसे पहले आया। और अगर यह सामयिक आन्दोलन न होता तो उनका ध्यान सीर की तरफ़ कभी न जाता। क्योंकि तब बहुत से लोग यह जानते भी नहीं कि सीर किसको कहते हैं। इसी लिए पत्र-प्रेषकों ने अपनी शंका में इस ख़ास शब्द पर बड़ा रोष प्रकट किया है। उन्होंने यही लिखा है कि इस संकेत का उत्तर 'सीर' ही हो सकता है और कोई उत्तर हो ही नहीं सकता। कई एक ने तो यहाँ तक लिखा है कि सम्भव है कि 'सीर' की जगह उत्तर में भूल से 'खीर' छप गया हो। वर्गनिर्माता ने इस सम्बन्ध में आये हुए सब पत्रों को पढ़ा है और उनके तर्कचातुर्य की वे प्रशंसा करते हैं। परन्तु ये सब बातें वर्गनिर्माता के दिल में यह बात नहीं जमा सकीं कि संकेत का उत्तर 'सीर' ही हो सकता है। ये सब उत्तर पढ़ने के बाद भी वर्गनिर्माता का यही दृढ़ विश्वास है कि इस प्रश्न का उत्तर 'खीर' ही हो सकता है।

ज़मीन्दारों और किसानों में क्या फ़र्क़ है? फ़र्क़ सिर्फ़ यही है कि एक को आराम से ज़िन्दगी बसर करने के साधन प्राप्त हैं और दूसरे को नहीं। 'खीर' का यहाँ पर यही अर्थ है।

"चाहे जो हो हम यह नहीं छोड़ेंगे" इसके यह माने हैं कि ज़मीन्दार यह कहते हैं कि हम आराम से ज़िन्दगी बसर करना नहीं छोड़ेंगे। इस आन्दोलन में जो किसानों के नेता हैं उन्होंने ज़मीन्दारों से साफ़ कहा है कि वे प्रान्त की जनता के लिए और ख़ासकर किसानों के लिए कुछ त्याग करें, कुछ कष्ट सहें। परन्तु वे इस कष्ट को सहन करने के लिए तैयार नहीं हैं। इस क़ानून पर जिनकी दृष्टि है वे जानते हैं कि ज़मीन्दारों से सीर छीनी नहीं जा रही है। हर एक ज़मीन्दार को ख़ास हद तक सीर रखने का हक़ है, इसलिए ज़मीन्दारों के सीर छोड़ने का प्रश्न ही नहीं है। सवाल तो यह है कि उन्हें आराम को छोड़ने के लिए कहा जा रहा है जिसकी वह पूर्ति किसानों की बेगार और मेहनत पर करते चले आ रहे हैं। और उस आराम को व्यक्त करने के लिए अगर कोई शब्द है तो वह 'खीर' है। इसी लिए वर्गनिर्माता ने इस प्रश्न का उत्तर 'खीर' रखा। प्रश्न हो सकता है कि 'धीर' क्यों नहीं? इसका उत्तर एकमात्र यही है कि ज़मीन्दारों ने 'धीर' तो एकदम छोड़ ही दिया है। अगर उन्होंने 'धीर' न छोड़ दिया होता तो इस ऐक्ट को लेकर इस तरह का वे लोग पागल-प्रलाप नहीं करते। वर्गनिर्माता को यह ख़ुशी है कि वे बहुत से उत्तर भेजनेवालों को जिस भ्रम की तरफ़ ले जाना चाहते थे उस भ्रम की तरफ़ वे सब चले गये और इसी में वर्गनिर्माता अपने को सफल समझते हैं। इस तरह यह स्पष्ट है कि इस संकेत का उत्तर 'सीर' तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि 'सीर' ज़मीन्दारों से छीनी नहीं जा रही है। क़ानून में उनके लिए 'सीर' की व्यवस्था है। अब रहा 'धीर', उसको वे छोड़ ही चुके हैं। उन दोनों शब्दों के निकल जाने के बाद अब तीसरा शब्द सिर्फ़ 'खीर' रह जाता है जिसको वे नहीं छोड़ना चाहते हैं। इसलिए इस प्रश्न का ठीक उत्तर 'खीर' ही है।

आशा है इससे शंका करनेवालों को सन्तोष हो जायगा। और अगर इस पर भी उन्हें सन्तोष न हो और अपना फ़ैसला भेजें तो वर्गनिर्माता उन्हें फिर उत्तर देने के लिए तैयार हैं।

आपका
वर्ग-मैनेजर

—

सूचना

दुबारा जाँच के लिए आये हुए फ़ार्मों की जाँच करने पर विदित हुआ कि ५ अशुद्धियोंवाले इनाम के हक़दार निम्न महाशय और हैं, इस प्रकार कुल सात नाम हो जाते हैं। इसलिए प्रत्येक प्रतियोगी को ७) के स्थान पर ६) मिलेंगे।

श्रीयुत सुन्दरलाल साह गंगोला, विद्यार्थी कक्षा १२ आर्ट्स, गवर्नमेंट इंटर कालेज, अल्मोड़ा।

—

आवश्यक सूचनायें

(१) इस बार पाठक देखेंगे कि एक कूपन में एक नाम से अधिक भरने की गुंजाइश नहीं है परन्तु प्रत्येक कूपन में ऐसी सुविधा की गई है कि वर्ग नं० २९ की तीन पूर्तियाँ एक साथ भेजी जा सकेंगी। दो आठ आठ आने की और तीसरी मुफ़्त। मुफ़्त पूर्ति सिर्फ़ उन्हीं की स्वीकार की जायगी जो दो पूर्तियों के लिए १) भेजेंगे। और तीनों पूर्तियाँ एक ही नाम से भेजेंगे। एक पूर्ति भेजनेवाले को भी पूरा कूपन काटकर भेजना चाहिए और दो ख़ाने ख़ाली छोड़ देने चाहिए।

(२) स्थानीय पूर्तियाँ 'सरस्वती-प्रतियोगिता-बक्स' में जो कार्यालय के सामने रक्खा गया है, दिन में दस और पाँच के बीच में डाली जा सकती हैं।

(३) वर्ग नम्बर २९ का नतीजा जो बन्द लिफ़ाफ़े में मुहर लगाकर रख दिया गया है, ता० २९ दिसम्बर सन् १९३८ को सरस्वती-सम्पादकीय विभाग में ११ बजे दिन में सर्वसाधारण के सामने खोला जायगा। उस समय जो सज्जन चाहें स्वयं उपस्थित होकर उसे देख सकते हैं।

नागपुर विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर श्रीयुत केदार जी मध्यप्रान्त के एक प्रसिद्ध क़ानूनदाँ हैं। हाल में आप उस प्रान्त की शिक्षा-परिषद् के सभापति हुए थे। लोगों ने समझा होगा कि केदार साहब वर्धा-योजना और विद्यामन्दिर की चौकस वकालत करेंगे। पर जब उन्होंने अपने भाषण में एक ही साँस में वर्धा-योजना, विद्यामन्दिर, कांग्रेसी मंत्रिमण्डल, चर्खा, सूत, खादी और गांधी-वाद के धुर्रे उड़ाये तब उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा होगा। श्रीमान् केदार जी ने विद्यामन्दिर की बिल्डिङ्ग का मज़ाक़ उड़ाते हुए कहा है कि—"इसमें टीचरों की पत्नियों के रहने के लिए तो कमरे बनाये ही नहीं गये। श्रीमान् ने बिलकुल जा फ़रमाया है। उनकी इस मौलिक सूझ-बूझ के लिए नागपुर-विश्वविद्यालय के अध्यापकों की पत्नियों को हृदय से कृतज्ञ होना चाहिए क्योंकि श्रीमान् केदार जी उनके लिए बँगले बनवाने की अपनी योजना को शीघ्र ही कार्य में परिणत करेंगे।

× × ×

संसार के प्रसिद्ध तानाशाह हिटलर का एक दूसरा रूप भी है, इसका पता मिस केथेरिन रेज़ेविल ने लगाया है। उनका कहना है कि 'हर हिटलर स्त्री-सौन्दर्य-कला के पक्के पारखी हैं। उनके पहलू में भी नाज़ुक और फ़िदा होने वाला दिल है। लेनी रेफ़ीन्ताल नामक लड़की ने उन पर अपना गहरा रङ्ग चढ़ा दिया है। नाज़ी-प्रचारक फ़िल्मों में उसका अभिनय देखकर हिटलर उसके प्रशंसक हो गये। यही नहीं, उन्होंने अपने हाथ से उसे पुरस्कार दिया और उसे बर्लिन में लाकर रक्खा। अब दोनों एक दूसरे के जीवन में दूध-शकर की भाँति घुल-मिल रहे हैं। पाठकों को यह जानकर और भी आश्चर्य होगा कि लेनी यहूदी माता पिता की सन्तान है। यह बात हिटलर को तब मालूम हुई जब वे बहुत दूर निकल आये थे। फिर भी उनके प्रेम-व्यवहार में कोई अन्तर न आया। वही हिटलर जो यहूदी जाति के जानी दुश्मन हैं।

अभिज्ञान-शाकुन्तल में दुष्यन्त ने हिरणों को देखकर कहा था कि "मैं अब इन पर बाण कैसे चलाऊँ! इन्हीं ने तो मेरी प्रियतमा को मधुर-निरीक्षण की कला सिखलाई है।" क्या आश्चर्य कि लेनी की मुहब्बत भी हिटलर के हृदय में बसनेवाले यहूदी-विद्वेष को निकाल बाहर कर दे। दो विरोधी रसों का एक स्थल पर रहना नहीं हो सकता। अब हिटलर अवश्य यहूदी जाति के सबसे बड़े हिमायती हो जायँगे। आख़िर सुन्दरी लेनी भी तो इसी जाति की देन है। 'नारि-नयन-शर काहि न लागा'?

× × ×

हैदराबाद (सिंध) में, हिन्दुओं का 'भाई-बन्धु' नामक एक फ़िरक़ा है। इस जाति की स्त्रियाँ अपने पतियों से इस कारण आजिज़ आ गई थीं कि वे लोग इन्हें घर पर छोड़ कर दूर-दूर देशों में व्यापार करने चले जाते थे और दो-दो, तीन-तीन वर्ष के बाद घर लौटते थे। केवल एक आध महीने घर पर ठहर कर फिर चले जाते थे। पतियों की यह ग़ैरहाज़िरी स्त्रियों को बहुत खलती थी। आख़िर दादा लेखराज जी ने इसका अमोघ उपाय निकाल दिया। उन्होंने ऐसी सब स्त्रियों को ब्रह्मज्ञान सिखा दिया। अब ये स्त्रियाँ 'ओम्-मंडली' की सदस्या हो गई हैं, आध्यात्मिक चर्चायें करती हैं और विवाहिता, कुमारी, सबकी सब, शुद्ध ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करती हैं। यह हाल देख कर वहाँ के पुरुष बड़े चक्कर में पड़ गये हैं। अदालतों के दरवाज़े खटखटाये जा रहे हैं। देखिए, दादा जी का नुस्ख़ा कैसा अचूक निकला! अब पति लोग जहाँ चाहें जायँ और जब तक चाहें रहें, पत्नियों को ज़रा भी एतराज़ न होगा। भागवत में भी भगवान् स्त्रियों के वास्तविक पति बतलाये गये हैं। तब लौकिक पति की आवश्यकता ही क्या है? हम भी दादा जी की सामयिक सूझ-बूझ के क़ायल हैं। आख़िर धर्म-संकट के समय संत लोग ही काम आते हैं।

× × ×

संस्कृत व्याकरण के लोच ने भाषा-विज्ञान के मार्ग को एकदम आसान कर दिया है। शब्द सुना नहीं कि उसका मूल रूप संस्कृत में मिल गया। यास्क जी तो मनुस्मृति और ब्राह्मण-ग्रन्थों की अनर्गल व्युत्पत्तियों से ही

परेशान थे अब आधुनिक वैयाकरणों ने तो उधर ग़दर ही मचा डाला है। बिहार के पण्डित अक्षयवट मिश्र जी एतादृश व्युत्पत्ति-व्युत्पन्न हैं। आपके मतानुसार 'माशूक़' संस्कृत का शब्द है। उसकी व्युत्पत्ति है—मा शोकः यस्मात्—जिससे शोक न हो। इसी प्रकार 'माहताब' भी संस्कृत का 'महातापः' शब्द है। अर्थात् जिसमें बहुत गरमी हो। विरहिणी को चन्द्रमा गरम लगता ही है। आपकी यह व्युत्पत्ति भी चौकस है।

आपने 'जनाब' को 'जनावः' (जो जनों की रक्षा करे) 'मेहमान' को 'महामान्य' और 'वकील' को 'वाक्कीलः' (जो अपनी बातों द्वारा जजों की बुद्धि को कील दे) बतलाया है।

खेद है कि संस्कृत-कोषों में रहने पर भी कालिदास आदि महाकवियों ने इन शब्दों का प्रयोग नहीं कर पाया और अरबी-फ़ारसी वाले इन्हें उड़ा ले गये। संस्कृत-कवियों को भविष्य में सावधान रहना चाहिए। हम पटना-यूनीवर्सिटी से सिफ़ारिश करेंगे कि वह इस मौलिक व अन्वेषणात्मक 'थीसिस' पर मिश्र जी को 'डाक्टर ऑफ़ लिटरेचर' की उपाधि प्रदान कर दे।

* * *

'पति' योरपीय स्त्रियों के लिए अब तक एक मनोरञ्जन की वस्तु थी, पर अब वह उनकी माले-तिजारत भी बन गई है। फ्रांस की एक अदालत में इस सम्बन्ध का एक मनोरञ्जक केस चल रहा है। एक फ्रेंच महिला ने आठ वर्ष के वैवाहिक जीवन के पश्चात् जब अपने पति को अपने लिए मौजूँ न समझा तब एक इँग्लिश युवती के हाथ उसे तीन हज़ार पौंड में बेंच दिया, और यह शर्त्त हुई कि रक़म माहवारी क़िस्तों में चुकाई जाय। कुछ क़िस्तें चलाने के बाद आर्थिक उलझनों के कारण इँग्लिश युवती ने क़िस्तें चलाने से इनकार कर दिया। मामला अदालत में पहुँचा तब अपनी सफ़ाई देते हुए इँग्लिश युवती ने बयान दिया "इस पति की उपयोगिता की बाबत मैंने जो अनुमान किया था वह ग़लत निकला। अतएव इसके लिए मैं इतनी बड़ी क़ीमत चुकाने के लिए तैयार नहीं हूँ।" दलील चौकस है। यदि सौदा शर्त्त के मुताबिक़ न हो, तो उसकी क़ीमत में भी कमी होनी चाहिए। सभ्यता के इस बढ़ते हुए युग में पति देवताओं को अपने बाज़ार-भाव की भी ख़बर रखनी होगी।

कलकत्ते में मारवाड़ी महिलाओं ने गत ६ नवम्बर को परदा-विरोधी दिवस मना डाला। बड़ी गरमागरम स्पीचें हुईं। परदे के विरुद्ध कहने में कुछ उठा न रक्खा गया। यही नहीं, 'परदे का अन्त' नामक ड्रामा भी खेला गया और उसमें सफल अभिनेत्रियों को खुले आम पदक भी बाँटे गये। संसार की हवा इन 'असूर्यपश्याओं' को भी लग गई है, यह देखकर मारवाड़ी-जाति के बड़े-बूढ़े अवश्य भौंचक्के रह गये होंगे। सबसे अधिक चिन्ता तो उन भलेमानसों को हुई होगी जिनका सारा कारोबार इस जाति के परदे पर ही चलता था। ख़ैर, 'देर आयद, दुरुस्त आयद'।

* * *

रेडियो छोटे-मोटे मज़ाक़ तो रोज़ करता है, कभी कभी बड़ा मज़ाक़ भी कर बैठता है। गत महीने में न्यूयार्क में उसने एक ऐसा ही मज़ाक़ कर डाला। बात यह हुई कि वहाँ के एक रेडियो स्टेशन से एच० जी० वेल्स का उपन्यास 'इनवेज़न बाई मार्स सुपरमैन' ब्राडकास्ट किया गया। भूमिका में कहा गया—"एक महा भयानक दानव ने, जो विध्वंसकारी शस्त्रास्त्र से सुसज्जित है, पुलस्की (जरसी नगर का प्रधान राजपथ) के आकाश को आच्छादित कर लिया है। न्यूयार्क-निवासियो, शहर छोड़कर भागो।" यह सुनते ही जनता के देवता कूच कर गये। लोग समझे कि न्यूयार्क पर दुश्मन के ऐरोप्लेन आ पहुँचे। फिर क्या था! लगे हज़ारों टेलीफ़ोन खटकने, लोग कम-से-कम सामान साथ लेकर, कोई मोटरों पर, कोई पैदल, घर छोड़-छोड़ भागने लगे। इस भगदड़ में हज़ारों कुचल गये, सैकड़ों बेहोश हो गये और सैकड़ों का हार्टफ़ेल हो गया। औरतें और बच्चे जिन्हें भागने का अवसर न मिला, गिरजों में इकट्ठे होकर ज़ोर-ज़ोर से प्रार्थना करने लगे। मोटरों की अन्धाधुन्ध रफ़्तार से पुलिस भी परेशान हो गई। सैकड़ों लोग तो क़समें खा-खा कर कहने लगे—'हमने दुश्मनों की फ़ौजों और बमों को अपनी आँखों देखा है।' कई घंटे यह तमाशा रहा। रेडियोवालों के बड़े उद्योग के बाद जनता का भ्रम दूर हो सका।

क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि अमरीका की सरकार हो या न हो, कम से कम वहाँ के निवासी तो भावी महायुद्ध के लिए अवश्य ही अभी से तैयार बैठे हैं।
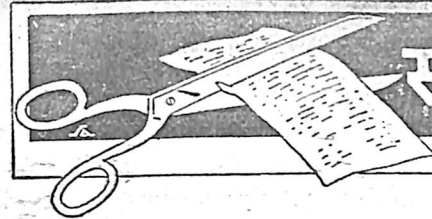
श्रीमती सरोजिनी नायडू का दीक्षान्त-भाषण

प्रयाग-विश्वविद्यालय के कन्वोकेशन के अवसर पर इस वर्ष श्रीमती सरोजिनी नायडू नें जो दीक्षान्त-भाषण दिया था, उसका आवश्यक अंश यहाँ देते हैं—

"आजकल बेकारी का दुःखद प्रसंग बहुत अधिक सुनने को मिलता है। विविध प्रकार की पुस्तकें पढ़ने में ही समय नष्ट होने के कारण निराशावादी लोग कभी कभी यह प्रश्न पूछ बैठते हैं—"इस दुःखद घटना को और अधिक क्यों बढ़ाया जाय?"

"बहुत से अन्य युवकों का भी जीवन उसी प्रकार के लोगों के जीवन की तरह क्यों बनने दिया जाय, जिन्हें अब तक आत्माभिव्यक्ति का अवसर नहीं प्राप्त हुआ है?" 'युवकों की बढ़ती हुई आपदाओं को और क्यों बढ़ाया जाय?' किन्तु फिर भी मैं निराशावादी नहीं हूँ। मैं नवयुवकों के प्रति विश्वास रखती हूँ। मुझे विश्वास है कि नवयुवकों में नैसर्गिक योग्यता होती है जिसके द्वारा वे स्वतः अपने भाग्य का निर्माण तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

"यदि एक विश्वविद्यालय से ऐसे लड़के तथा लड़कियाँ निकलते हैं जो जीवन के साधारण प्रवाहों से अपने को सर्वथा अलग रखते हैं तथा वे साधारण व्यक्तियों के साथ अपना सम्पर्क नहीं स्थापित कर सकते तो उस अवस्था में वह विश्वविद्यालय ज्ञान-प्रकाश का केन्द्र किस प्रकार बन सकता है? फिर एक विश्वविद्यालय की उपादेयता ही क्या रहेगी? यह बात सत्य है कि जब तक भारत के विश्वविद्यालय राष्ट्रीय आदर्श तथा राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षा को लेकर नहीं खड़े होते तब तक उन्हें राष्ट्रीय जीवन में कोई स्थान प्राप्त नहीं हो सकता।

आपने आगे चलकर कहा—"केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि लोग केवल इसी बात के प्रति विचार करें कि देश में किस प्रकार बड़े-बड़े उद्योग-धन्धे किये जा सकते हैं। इसके लिए ऐसे भी व्यक्तियों की आवश्यकता है जो अपनी एकान्त प्रयोग-शालाओं में बैठकर उन उद्योग-धन्धों को बढ़ाने के साधनों का अनुसन्धान करके लोगों के समक्ष उपस्थित कर सकें।"

श्रीमती नायडू ने नागरिक जीवन में प्रवेश करनेवाले इन छात्रों के प्रति कहा कि उन्हें समझ लेना चाहिए कि आदमी की ज़िन्दगी केवल रोटी पर ही नहीं निर्भर है। उन्हें किसी न किसी प्रकार ज़िन्दगी बितानी ही पड़ेगी और उन्हें किसी न किसी रूप से भोजन भी मिलता रहेगा। किन्तु यदि उनकी आत्मा महान् आदर्श, भविष्य के स्वप्न तथा सफलता से वञ्चित होकर दुबली तथा अतृप्त रहे तो इससे उन्हें क्या लाभ हो सकता है? देश के नवयुवकों और लड़कियों के लिए एकमात्र यही कार्य है कि वे अपने को राष्ट्रीय सेवाओं में लगायें।

"हम आगे बढ़ेंगे—आगे बढ़ेंगे! हमारा सम्पूर्ण जीवन विकास की ओर अग्रसर हो रहा है—उन्नति करता जा रहा है। इसलिए आज से १० वर्ष पूर्व जो बात सत्य, आवश्यक तथा उपयुक्त कही अथवा समझी जाती थी वह आज सत्य, आवश्यक तथा उपयुक्त नहीं ठहर सकती। दस साल के द्वन्द्व के उपरान्त लोगों में यह उत्तरोत्तर अधिक विस्तृत भावना आ गई है कि जिससे कि ... समझ रहे हैं कि राष्ट्रीय कर्तव्य तथा राष्ट्रीय उत्तरदायित्व क्या है?"

हिन्दी-उर्दू प्रश्न के सम्बन्ध में आपने कहा—

"भाषा-सम्बन्धी यह झगड़ा अब बहुत ही उपहासास्पद बन गया है। आज-कल सीधी-सादी तथा आसानी से समझ में आ जानेवाली भाषा न बोलकर उसमें लच्छेदार संस्कृत तथा अरबी के शब्द भरे जाने की कोशिशें हो रही हैं। हमारे दैनिक जीवन में बोली जानेवाली मधुर तथा सीधी-सादी भाषा को ही माध्यम क्यों न बना लिया जाय? इस प्रश्न के प्रति गला फाड़कर भाषण देने और समाचार-पत्रों के कालम भरने की क्या आवश्यकता है? वस्तुतः यहाँ पर बहुत-से दंगे केवल इसी लिए हुए कि देश

वक्ता लोग अपने भाषणों के ही द्वारा लोगों के शान्त करना चाहते थे। जिन्हें ईश्वर ने ज्ञान दिया है वे लोग ऐसे सत्साहित्य तैयार कर सकते हैं जिससे बड़े-बड़े विद्वान् तथा एक मामूली ग्रामीण दोनों आनन्द उठा सकते हैं। आजकल के युवकों के यही सबसे बड़ा कार्य करना है।"

"देश के युवकों के लिए इसके अतिरिक्त जो दूसरा कार्य होगा वह फिर से भारतीय इतिहास का लिखा जाना है। आपने कहा कि मुझे विश्वास है कि इस देश में जो कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई हैं वे अधिकतर इस कारण से हुई हैं कि आजकल के तथा कथित शिक्षित स्त्री-पुरुष इस दुःखद विश्वास को लेकर बड़े हैं कि हम लोग तुच्छ कोटि के जीव हैं। आजकल देश के लिए ऐसे निष्पक्ष इतिहास-लेखकों की आवश्यकता है जो अपने व्यक्तिगत पक्षपात को दूर करके केवल ऐतिहासिक सत्यों का ही उल्लेख करें।"

अपने भाषण के अन्त में श्रीमती नायडू ने नव-युवकों तथा लड़कियों को बताया कि राष्ट्र का पुनर्निर्माण तथा जनता के बीच मेल स्थापित करना उनका मुख्य [illegible] है। आपने आगे कहा कि 'जब मैं बालक थी उस [illegible] मैंने कभी गहरे साम्प्रदायिक झगड़ों के सम्बन्ध [illegible] नहीं सुनी थी। मुझे ऐसी बातें सुनने का अवसर ही [illegible] दिया गया था। जहाँ पर मेरा लालन-पालन हुआ था [illegible] स्थान में बचपन में यही बताया गया था कि वे सज्जन [illegible] पगड़ी पहने तथा लम्बी दाढ़ी रक्खे हैं, मुसलमान [illegible] वे जो चुटिया बाँधे तथा ललाट पर भभूत लगाये [illegible] न्दू हैं। मुझे तो केवल यही बताया गया था कि [illegible] सज्जन बड़े भारी विद्वान् हैं, जिनका जीवन बालकों [illegible] देकर उन्नत बनाने में व्यतीत हो रहा है।

हिन्दुस्तानी हिन्दी और उर्दू

'हरिजन' में महात्मा गांधी ने 'हिन्दुस्तानी' के [illegible] में एक लेख लिखकर कांग्रेस का दृष्टिकोण [illegible] कर दिया है। इससे प्रकट होता है कि अन्त-[illegible] प्रान्तीय सम्पर्क बढ़ाने के लिए 'हिन्दुस्तानी' नाम की [illegible] तीसरी भाषा की रचना होगी जो मूलतः हिन्दी और उर्दू की खिचड़ी होगी। उक्त महत्त्वपूर्ण लेख [illegible] अंश इस प्रकार हैं—

"हिन्दुस्तानी ही वह भाषा है जिसे कांग्रेस ने अन्त-प्रान्तीय सम्पर्क के लिए बाज़ाब्ता अखिल भारतीय भाषा स्वीकार किया है। असली प्रतिस्पर्धा हिन्दी और उर्दू में नहीं बल्कि हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ी में है। हिन्दुस्तानी के बारे में कांग्रेस की जो धारणा है, उसको अभी मूर्त रूप प्राप्त होना है। और ऐसा तब तक नहीं होगा जब तक कांग्रेस की कार्यवाही एक मात्र हिन्दुस्तानी में ही न होने लगेगी। कांग्रेस जनों के उपयोग के लिए कांग्रेस को हिन्दुस्तानी के कोष बनाने पड़ेंगे और एक ऐसा विभाग खोलना पड़ेगा जो उन कोषों के अलावा प्रयुक्त होनेवाले नये-नये शब्द मुहैया करेगा। यह विभाग इस बात का निर्णय करेगा कि उर्दू या देवनागरी लिपियों में लिखे हुए प्रस्तुत साहित्य के ग्रन्थों और मासिक, साप्ताहिक तथा दैनिक पत्रों में से किन किन के हिन्दुस्तानी का समझा जाय।

× × ×

बंगाल या दक्षिण के श्रोताओं के सामने जो हिन्दुस्तानी बोली जायगी उसमें स्वभावतः संस्कृत से उत्पन्न शब्दों का प्राचुर्य होगा। वही भाषण पंजाब में किया जायगा तो उसमें अरबी-फ़ारसी से पैदा हुए शब्दों की काफ़ी मिलावट होगी। यही हाल उन श्रोताओं के सामने भी होगा जिनमें मुसलमानों की ज़्यादा तादाद होगी, जो संस्कृत से बने अनेक शब्दों के नहीं समझ सकते। जिन्हें सारे हिन्दुस्तान में भाषण करने पड़ते हैं उनका हिन्दुस्तानी का शब्द-भण्डार ऐसा होना चाहिए जिसकी मदद से भारत के सभी भागों के श्रोताओं के सामने वे बिना किसी हिचकिचाहट के बोल सकें।

× × ×

कुछ लोग इस बात का सपना देखते हैं कि यहाँ ख़ाली उर्दू या ख़ाली हिन्दी ही रहेगी। मेरा ख़याल है कि यह अपवित्र सपना है और सदा सपना ही रहेगा। इसलाम की अपनी ख़ास संस्कृति है, इसी तरह हिन्दू-धर्म की भी अपनी संस्कृति है। भावी भारत में इन दोनों संस्कृतियों का पूर्ण और सुखद सम्मिश्रण रहेगा। जब वह शुभ दिन आयेगा तब हिन्दू-मुसलमानों की सामान्य भाषा हिन्दुस्तानी होगी। शिब्ली ने जिस भाषा में लिखा है वह मर नहीं सकती, सूरदास और तुलसीदास की भाषा भी नहीं मर सकती। लेकिन उन दोनों की अच्छाइयाँ हिन्दुस्तानी ज़बान में बिलकुल घुलमिल जायँगी।

भारतीय मुसलमान अरबों के साथ

फ़िलस्तीन की समस्या के सम्बन्ध में सम्राट् की सरकार ने हाल ही में जो घोषणा की है उसकी बाबत अखिल भारतीय मुसलिमलीग के सभापति श्री मुहम्मदअली जिन्ना ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया है।

उस वक्तव्य में श्री जिन्ना ने कहा है—"फ़िलस्तीन और इसके नज़दीकवाले राष्ट्रों के अरब-नेता इतनी दूर रहनेवाले किसी भी भारतीय नेता की अपेक्षा फ़िलस्तीन की समस्या को ज़्यादा अच्छी तरह जानते हैं। अरब-नेता ज़्यादा योग्य हैं और उसी स्थान पर रहने के कारण परिस्थिति के ज़्यादा अच्छी तरह समझते भी हैं। इसलिए ऐसी हालत में मैं उनके सामने किसी स्पष्ट नीति के रखने का दुःसाहस नहीं करूँगा, लेकिन मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि भारतवर्ष के मुसलमान भी अरबों की आज़ादी की लड़ाई में उनके साथ हैं।

पिछले महीनों में भारतीय मुसलमानों-द्वारा खुले विद्रोह रोकने में हमें सबसे ज़्यादा कठिनाई पड़ी है। भारतीय मुसलमानों की भावनायें बार बार ब्रिटिश सरकार पर प्रकट की जा चुकी हैं। पिछले सितम्बर में मैंने वाइसराय से लम्बी मुलाक़ात करके इन सब ख़यालों का इज़हार किया था। अब तक ब्रिटिश सरकार ने अरबों के साथ जो सलूक किया है वह अरब-राष्ट्रीयता का सबसे बड़ा अपमान है। मुझे विश्वास है कि ब्रिटिश राष्ट्र और सम्राट् की सरकार अपनी पुरानी ग़लतियों के अविलम्ब दुरुस्त करेगी और बालफ़ोर-घोषणा की शरण नहीं लेगी।

मेरी राय में ग्रेट ब्रिटेन के अपने वादे के कभी नहीं तोड़ना चाहिए था और उनकी वादा की हुई आज़ादी कभी की मिल जानी चाहिए थी। ब्रिटेन के हक़ में फ़िलस्तीन के यहूदियों की बस्ती बनाना सबसे ज़्यादा निर्दयतापूर्ण कार्य है, क्योंकि इससे वहाँ बसनेवाले यहूदी बहुत बुरी हालत में पड़ गये हैं। मैं अरब-नेताओं के एक बात से सावधान कर देना चाहता हूँ कि यदि वे गोलमेज़-सम्मेलन में हिस्सा लेना तय करें तो उन्हें उसमें अपने इच्छानुसार ऐसे प्रतिनिधियों के भेजना चाहिए जिन पर अरबों का विश्वास हो। वे वहाँ जाकर देखें कि गोलमेज़-सम्मेलन में बन्दर और न्यायवाली कहानी चरितार्थ न होने पाये।"

क्या अँगरेज़ हिन्दुस्तान की रक्षा कर सकेंगे ?

भविष्य के विश्वव्यापी महायुद्ध में भारत की क्या दशा होगी, इस पर श्री श्रीनिवास बालाजी हार्डीकर, बी० ए०, ने प्रताप में एक लेख लिखकर अच्छा प्रकाश डाला है। उसका विशेषांश इस प्रकार है—

जब पं० जवाहरलाल नेहरू इँग्लैंड में थे तब वहाँ के राजनीतिज्ञों ने आपसे प्रश्न किया था—"आप पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग तो करते हैं, पर अगर कोई दूसरा राष्ट्र हिंदुस्तान पर चढ़ाई कर दे तो क्या आप अपने देश की रक्षा करने में समर्थ होंगे ?" १५० वर्षों तक हिन्दुस्तान पर राज्य कर उसकी वीरवृत्ति को कुचलने में कुछ भी बाक़ी न रखनेवाली अँगरेज़ जाति के राजनीतिज्ञों के इस प्रश्न से अधिक निर्लज्जतापूर्ण प्रश्न हो ही क्या सकता है ?

अब हमें यह देखना है कि अँगरेज़ भावी महायुद्ध में हमारी रक्षा करने में कहाँ तक सफल हो सकते हैं ? ५० करोड़ सालाना ख़र्च करने के बाद आज हिन्दुस्तान की सैनिक दृष्टि से जो हालत है उसे देखते हुए हमको अँगरेज़ जाति की वीरता और ताक़त पर भरोसा रखकर बैठ जाना संकट से ख़ाली नहीं दिखाई देता।

अब की बार जो युद्ध होगा उसका क्षेत्र सीमित नहीं रह सकता। यह युद्ध दुनिया के दोनों हिस्सों—पूर्व और पश्चिम—में होना अवश्यंभावी है। इँग्लैंड और हिन्दुस्तान का मुख्य मार्ग भूमध्यसागर है। युद्ध के समय यह अधिक दिनों तक सुरक्षित नहीं रह सकेगा। अफ़्रीका का पूरा चक्कर लगानेवाले मार्ग में इतना अधिक समय लगता है कि युद्ध के समय यह मार्ग विशेष सहायक नहीं हो सकता। अतएव यह निश्चित है कि पूर्व और पश्चिम को अपनी-अपनी रक्षा के लिए अपनी-अपनी ताक़त और अपने-अपने साधनों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। इँग्लैंड अगर संकट में पड़ जाय तो पूर्व की सारी ताक़त और सारे साधन इँग्लैंड की रक्षा के लिए उधर ही बुला लिये जायँगे। ऐसी हालत में हिन्दुस्तान अरक्षित हालत में ही रहेगा।

खुश्की फ़ौज

आज हिन्दुस्तान में ५७,००० ब्रिटिश सैनिक और १,४१,००० हिन्दुस्तानी सैनिक हैं। पर युद्ध की दृष्टि से वे काफ़ी सुसज्जित नहीं हैं। इस बात को तो स्वयं कमान्डर इन-चीफ़ केन्द्रीय धारा सभा में मान चुके हैं। अविश्वासी अँगरेज़ों ने भारतीयों के हाथों में अच्छे शस्त्र देना सदा अपने लिए ख़तरनाक समझा है! इँग्लैंड ने बड़ी उदारता (!) से इस वर्ष हिन्दुस्तान को फ़ौज के यन्त्रीकरण के लिए ८० लाख पौंड प्रदान किये हैं। शिकायत तो यह है कि इस रक़म में से अधिकतर रक़म ब्रिटिश सैनिकों को युद्ध में अधिक परिणामकारक बनाने के लिए ख़र्च की जा रही है। युद्ध के समय यह सारी ब्रिटिश सेना योरप में बुला ली जा सकती है। हिन्दुस्तानी फ़ौज का भी बड़ा हिस्सा वहाँ भेजा जा सकता है। ऐसी हालत में हिन्दुस्तान की रक्षा का भार बची खुची कुसज्जित सेना पर ही आ पड़ेगा।

जल-सेना

यद्यपि आज-कल के युद्धों में वायुयानों का उपयोग बढ़ रहा है, तथापि जल-सेना की उपयोगिता कम नहीं हुई है। वायुयान किसी भी देश पर बम बरसाकर उसको नुक़सान पहुँचा सकते हैं, पर उस देश पर अपना अधिकार जमाने में उनका विशेष उपयोग नहीं हो सकता। जब तक उस देश में शत्रु की सेना न पहुँच जाय तब तक उस पर अधिकार जमाना असंभव है। जल-सेना शत्रुओं को देश में घुसने से रोक सकती है।

भारतीय जल-सेना का नाम भले ही 'रायल इंडियन मेरीन' ऐसा भड़कीला हो, पर वास्तव में हमारी जल-सेना बच्चों के खिलौनों से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। रायल इण्डियन मेरीन में केवल ५ स्लूप, १ पेट्रोलवेसिल, १ सर्वेशिप, १ डेपोशिप, और ८ छोटे जहाज़ हैं। इसी विशाल (!) जल-सेना का नाम 'रायल इण्डियन मेरीन' है!! प्रथम श्रेणी के किसी एक लड़ाकू जहाज़ के सम्मुख यह बेड़ा थोड़े समय के लिए भी नहीं टिक सकता।

६ हज़ार मील लम्बे समुद्री किनारे की जिसमें ७ बड़े-बड़े बन्दरगाह और ९६ साधारण बन्दरगाह हैं, यह जल-सेना कहाँ तक रक्षा कर सकती है? सिंगापुर का फ़ौजी केन्द्र पूर्व से होनेवाले आक्रमण को भले ही रोक ले, पर अगर अफ़्रीका की ओर से आक्रमण हुआ तो हिन्दुस्तान की रक्षा कौन करेगा? बहुत सम्भव है, शत्रुओं के जहाज़ हवाई जहाज़ लादकर हिन्दुस्तान के पूर्वी किनारों पर आयें और वे हवाई जहाज़ बम्बई, करांची आदि पश्चिमी तट के बन्दरगाहों को नष्ट-भ्रष्ट कर पुनः वापस लौट जायँ। भूमध्य-सागर का मार्ग बन्द होने पर अदन का बेड़ा कहाँ तक परिणामकारक कार्य कर सकता है, इसकी शंका है।

हवाई बेड़ा

हिन्दुस्तान के १०० सैनिक हवाई जहाज़ों को हवाई बेड़े का नाम देना अत्यन्त हास्यास्पद है। हिन्दुस्तान में जो हवाई जहाज़ हैं वे अधिकतर बम बरसानेवाले ही हैं और जिनका उपयोग सीमान्त-प्रदेश पर बम बरसाकर वहाँ के निवासियों को भयभीत कर देना ही है। शत्रुओं के वायुयानों का तेज़ चाल से पीछा करके उन्हें भगा देने की क्षमता रखनेवाले जहाज़ों की संख्या बहुत कम है। रक्षा के कार्य में यह हवाई बेड़ा बिलकुल निरुपयोगी सिद्ध होगा।

करोड़ों रुपये ख़र्च करने के बाद अँगरेज़ों ने हिन्दुस्तान में जो सेना रक्खी है उसकी यह हालत है। अँगरेज़ राजनीतिज्ञों ने पं० जवाहरलाल नेहरू से जो निर्लज्जतापूर्वक प्रश्न किया था उसके उत्तर में नेहरू जी ने उनसे कहा था—"आप हिन्दुस्तान की रक्षा करने की चिन्ता न करें यह हमारा काम है। हम उसे देख लेंगे। यह बात निश्चित है कि हम अँगरेज़ों से अथवा अन्य किसी राष्ट्र से सहायता की कभी प्रार्थना न करेंगे।" हमारे तेजस्वी नेता पं० जवाहरलालजी ने जो उत्तर दिया वही हमारे राष्ट्र का उत्तर है।

पर्वतराज हिमालय की उत्पत्ति

इस विषय का श्री जी० आर० जैन ने 'जयाजी प्रताप' में एक रोचक लेख लिखा है, जिसका सारांश इस प्रकार है—

वसुन्धरा के गर्भ में जो पुरानी से पुरानी चट्टानें पाई जाती हैं उनकी आयु लगभग एक अरब साठ करोड़ वर्ष अनुमान की गई है। जिस पृथ्वी पर हम निवास करते हैं स्वतः इसकी आयु लगभग दो अरब वर्ष कूती गई है। आर्यों का सृष्टि-संवत् भी इस अनुमान की साक्षी देता है।

[अनु]मानतः आज से एक अरब २० करोड़ वर्ष पहले जल [मे]ं उसमें रहनेवाले जीवों की उत्पत्ति हुई।

इस दीर्घकाल में पृथ्वी की आकृति में भी समय-समय [प]रिवर्तन हुए हैं। सन् १९१४ में 'अटलांटिस' नाम [की] पुस्तक प्रकाशित हुई थी उसका नवीन संस्करण भी [अभी] निकला है। उसमें भारतवर्ष के चार चित्र बनाये [गये] हैं। पहले नक़्शे में ईसा से पूर्व १० लाख से आठ [लाख] वर्ष तक की स्थिति बताई गई है। उस समय भारत [के] उत्तर में समुद्र नहीं था। बहुत दूर अक्षांश ५५ तक [स्थ]ल ही था। उसके ध्रुव-पर्यन्त समुद्र था। नारवे, स्वेडन [आ]दि देश भी विद्यमान न थे।

दूसरा नक़्शा ईसा से पूर्व ८ लाख से २ लाख वर्ष [की] स्थिति बतलाता है। चीन, लासा और हिमालय आदि [उस] समय समुद्र में थे। दक्षिण की ओर वर्तमान हिमालय [की] चोटी का प्रादुर्भाव हो गया था। उसे उस समय [के] तीय लोग उत्तरगिरि कहते थे।

तीसरा चित्र ईसा से पूर्व २ लाख से ८० हज़ार वर्ष की स्थिति को बतलाता है। इस काल में पर्वतराज [हिम]ालय समुद्र के गर्भ से बाहर निकल आया। चौथे [चित्र] से हमारे विषय का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

जिआलोजिक सर्वे आफ़ इंडिया के डाक्टर डी० एन० [वाड]िया ने अभी थोड़े दिन हुए अपने एक भाषण में बतलाया [था] कि बहुत समय हुआ अङ्गारालैंड और गोंडवानालैण्ड [के म]ध्य में टीथिस नाम का एक सागर था, जिसके गर्भ [में प]र्वतराज हिमालय छिपा हुआ था। टीथिस सागर के [उत्त]रीय देश (आधुनिक उत्तरी योरप और साइबेरिया) का [प्राच]ीन नाम अङ्गारालैण्ड था और दक्षिण-अफ़्रीका, अरे[बिया], सीलोन और आस्ट्रेलिया, जो किसी समय में ज़मीन[से] मिले हुए थे, मिलकर एक महाद्वीप बनाते थे जिसका [नाम] भूगर्भवेत्ताओं ने गोंडवानालैण्ड रखा है। लोगों का [अनु]मान है कि यही गोंडवानालैंड रावण की लंका [रही हो]गी।

भूगर्भ-अन्वेषकों का निश्चित मत यह है कि हिमालय [के उ]भरने की क्रिया तीन बार में पूरी हुई। कुछ वर्ष हुए हिमालय की सबसे ऊँची चोटी गौरीशङ्कर की ऊँचाई [२९]००२ फ़ुट थी, अब उसकी ऊँचाई २९१४१ फ़ुट है। पृथ्वी की जो ठोस सतह हमें दिखाई देती है इसकी मोटाई ५० अथवा १०० मील से अधिक नहीं, पृथ्वी की ८,००० मील की मोटाई में बाक़ी पिघला हुआ लोहा अथवा अन्य गले हुए द्रव्य भरे पड़े हैं, कारण कि पृथ्वी के गर्भ में गरमी बहुत है। कहा जाता है कि संसार का सबसे ऊँचा पर्वत हिमालय १,५०० मील लम्बा और दो-ढाई सौ मील चौड़ा है, वह पृथ्वी-गर्भ में भरे हुए पिघले लोहे में इसी प्रकार तैर रहा है जिस प्रकार बर्फ़ का एक खण्ड—कुछ भाग अन्दर, कुछ भाग बाहर—पानी में तैरता रहता है। सर्वे के महकमे ने, नाप-तौल द्वारा यह भी सिद्ध किया है कि गिरिराज हिमालय अन्दर से खोखला है, ठोस नहीं। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि उत्तरी भारत में जो भूचाल आते हैं उनका कारण हिमालय का खोखला होना ही है। बिहार और क्वेटा के महानाशकारी भूचालों का कारण भी यही बतलाया गया है। कुछ भी हो, यह निस्सन्देह सत्य है कि लगभग २ लाख वर्ष पूर्व हिमालय पर्वत समुद्र के गर्भ में था। आज जो शङ्ख, कौड़ी व समुद्री जानवरों के भग्न शरीर हिमालय की चोटी पर पाये जाते हैं। उनसे इस बात की पूर्ण पुष्टि होती है।

ओम-मण्डली

हैदराबाद (सिन्ध) की 'ओम-मण्डली' उस प्रान्त के हिन्दुओं के लिए एक टेढ़ी समस्या हो गई है। कुछ दिनों से उसका वहाँ बड़ा विरोध हो रहा है। यह संस्था क्या है, और इसके कारण वहाँ कैसी विसीपिका है, इस विषय पर पटना के 'योगी' में एक ज्ञातव्य लेख प्रकाशित हुआ है जिसका मुख्यांश नीचे दिया जाता है—

हैदराबाद की ओम-मण्डली का दावा है कि गीता के शिक्षण पर आधारित यह स्त्रियों का एक नया आन्दोलन है और इसका मूल सिद्धान्त है—'मनुष्य, तू अपने को पहचान।' दादा लेखराज सिन्ध का नया 'मसीहा' है जिसे कृष्ण का अवतार बतलाया जा रहा है! वह अपने समाज के आदमियों के द्वारा उत्पीड़ित हो रहा है। इन आदमियों ने अपने पारिवारिक जीवन के बिखर जाने के भय से और इस भय से कि स्त्रियों की अविवाहिता रहने की प्रतिज्ञा से समाज का सत्यानाश हो जायगा—ओम-मण्डली पर पिकेटिंग शुरू कर दी है। नतीजा यह हुआ है कि

६१५

महाशय
में गाड़ने
किसी तरह
हो जाती
है ये तब
यहाँ तो
बना हुआ
मित्र को
सम्भ्रान्त
चौकके-से
को दिया
का नाश
के पीछे

आये थे।
यहीं रह
'शक-
है। किसी
ी' अलग
भी 'पूर्वी
सी प्रकार
में रोटी-
परिवर्तन
वर्ष पहले
ये और
हर एक
जाते तो
तो होटल
कि बेचारे
कि "अरे
खाओ।
की चर्बी
की शुद्धि
ई० सी०

सी० पी० सी० की १०७ वीं धारा के अनुसार सिटी मैजिस्ट्रेट की अदालत में, पिकेटिंग करनेवालों के अलावा, ओम-मण्डली के संस्थापक और चार अन्य और सदस्याओं पर मुक़द्दमा चल रहा है।

'दादा' लेखराज खूबचन्द कृपालानी एक अवकाश-प्राप्त व्यवसायी हैं। अपने गुरु के कहने पर उसने ४ लाख की सारी सम्पत्ति त्याग दी और ओम-मण्डली नाम से एक ट्रस्ट क़ायम किया।

ओम राधे अध्यक्षा है। संस्था के प्रबन्ध में स्त्रियों की एक कमिटी उसकी सहायता करती है। संस्था की ओर से रोज़ 'सत्संग' या धार्मिक वाद-विवाद होते हैं और पीछे भजन होते हैं।

हैदराबाद के भाई-बन्द (व्यापारी) समाज की स्त्रियाँ [illegible] धर्म-गुरुओं के फेर में पड़ जाती हैं। इस संस्था का [illegible] यह है कि उन स्त्रियों को उनके चंगुल से छुड़ाया [illegible]। अपंगों को सिलाई का काम सिखाया जाता है, [illegible] वे अपनी जीविका कमा सकें। ज़ोर इस बात पर [illegible] जाता है कि विवाहित जीवन में प्रवेश करने के पहले [illegible] हासिल कर लो। अधिक से अधिक लाभ उठाने [illegible] आल से स्त्रियों से कहा जाता है कि यह 'ज्ञान' अपने [illegible] में भी फैलाओ, ताकि एक सुसंस्कृत और सुन्द- [illegible] समाज की नींव डाली जा सके।

[illegible] मण्डली के इस रूप के कारण ही समाज का विरोध [illegible] खड़ा हुआ है। लोगों का कहना है कि स्त्रियाँ [illegible] कर रही हैं। पंचायत के पास तीन ऐसे निराश पतियों के प्राथना-पत्र पहुँचे हैं जो फिर दूसरी शादी करना चाहते हैं।

मण्डली के ख़िलाफ़ दूसरा लांछन यह है कि स्वर्ग में [illegible] स्थान 'सुरक्षित' रखने की इच्छा से स्त्रियाँ अपने पति, घरबार और बालबच्चों को त्याग कर चलती बनती हैं। भाई-बन्द समाज की जन-संख्या ६०,००० है। ये व्यापारी हैं। हिन्दुस्तान के बाहर संसार के और देशों में १२,००० पुरुष व्यापार-व्यस्त हैं। तीन साल से लेकर पाँच साल तक वे अपने घरों से ग़ैर-हाज़िर रहते हैं; कम से कम छः महीने भी घर में आराम नहीं करते!

सत्संग के अवसर पर ओम-मण्डली की सदस्यायें बेहोश हो जाती हैं [illegible] से 'दादा' लेखराज का जादू-टोना बतलाया जाता है! दादा लेखराज शान्त और गम्भीर रहता है। वह कहता है कि उत्पीड़न और बलिदान साथ साथ चलते हैं! 'अज्ञानी' जो कुछ करना चाहें करने दो। उचित अवसर पर ही वे ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं'।

ओम-मण्डली का भवन भी २१ जून को गिर पड़ा। १००० आदमियों की भीड़ ने उसे घेर लिया, भवन और माल-असबाब का सत्यानाश कर धूम मचा दी! फिर मण्डली ओम-निवास में चली गई। मण्डली की यह एक शाखा है। विरोधी वहाँ भी पहुँचे और पिकेटिंग शुरू कर दी।

भीड़ दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी। इसलिए पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ा। ५ पिकेटिंग करनेवाले और ५ मण्डली की नायिकायें गिरफ़्तार की गईं। मर्दों- औरतों की संयुक्त बैठकों पर अड़ंगा डाल दिया गया। इस अड़ंगे के विरोधस्वरूप मुक़द्दमा होने तक मण्डली ने अपने तमाम सत्संगों को स्थगित कर दिया है।

सामाजिक परिवर्तन

मूलगंधकुटी विहार के ७ वें वार्षिकोत्सव के उपलक्ष में १ से ४ नवम्बर तक काशी के टाउनहाल में बौद्ध-व्याख्यानमाला का आयोजन हुआ था, उसमें उन्होंने परिवर्तनों का रोचक वर्णन किया है। उसमें अन्तिम व्याख्यान महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का हुआ था। उसका तत्सम्बन्धी अंश हम यहाँ 'आज' से उद्धृत करते हैं—

आज मुझे यह देखकर बहुत अफ़सोस हो रहा है कि हमारे भाई बुद्धधर्म की मोटी-मोटी बातों से भी अनभिज्ञ हैं। पिंडा पारने इत्यादि एकाध बहाने से जो गया जाते हैं वे बौद्ध-गया इत्यादि देख आते हैं। बस इसके सिवा और कुछ नहीं। विदेश में जाने पर उनसे इन बातों के सम्बन्ध में कुछ पूछा जाता है तो वे अनजान से मालूम पड़ते हैं। ख़ैर, आज मैं आपको बुद्धधर्म की कुछ विशेषतायें बतलाऊँगा।

'अनित्यं दुःखम्'—संसार में जितने पदार्थ हैं सब परिवर्तनशील हैं। परिवर्तन के भीतर हमें सदा लाभजनक परिणामों की ओर ध्यान रखना चाहिए। पतञ्जलि इत्यादि बहुत-से विद्वानों के ग्रन्थों से पता लगता है कि ब्राह्मण वे

ही कहला सकते हैं जिनका 'कपिल वा पिंगल केश और आग के समान वदन गोरा' हो, परन्तु अब तो इन लक्षणों से युक्त शायद ही कोई ब्राह्मण मिले। हाँ, उनका स्थान गोरे अँगरेज़ ग्रहण कर सकते हैं। एक बार मैं अपने एक बंगाली मित्र के साथ तिब्बत गया था। वहाँ एक महन्त ने पूछा—"ये किस जाति के हैं?" मैंने कहा "ब्राह्मणजाति के।" यह सुनते ही वह कह उठा—"इनके बाल तो भूरे नहीं?" क्योंकि उसने ग्रन्थों द्वारा जान रक्खा था कि ब्राह्मण के ये लक्षण हैं। बाहर के लोग केवल पुस्तकों द्वारा जानते हैं कि हिन्दुस्तान में ४ जातियाँ हैं, क्योंकि इस तरह का जाति-भेद-भाव और कहीं नहीं है। रूस के बड़े भारी विद्वान् डाक्टर शेर्बास्की अपने छात्रों को 'दशकुमारचरित' नामक संस्कृत नाटक पढ़ा रहे थे। उसमें 'काम-मंजरी' में वेश्या के नेत्रों का वर्णन 'नील सरोज-सा' किया गया है। लड़कों ने पूछा कि वहाँ 'नील' शब्द देने की क्या ज़रूरत थी? इस पर डाक्टर शेर्बास्की ने कहा कि यों ही दे दिया गया है, लेकिन शायद ऐसी स्त्रियाँ कभी होती होंगी जिनके नेत्र नीले रंग के होंगे। 'श्यामा' शब्द से भी बहुत आदमी काला अर्थ लगाते हैं, पर मेरे ख़याल में जिस तरह किसी भूरे केशवाली स्त्री को 'पिंगला' कहा है उसी प्रकार काले केशवाली के लिए 'श्यामा' शब्द का प्रयोग हुआ है। ख़ैर, इन सब बातों के कहने से यही मतलब है कि हिन्दू जाति का या ख़ासकर ब्राह्मण का जो वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है, वैसा ब्राह्मण अब कहीं नहीं दिखाई पड़ता। इसका कारण बहुत सी जातियों का आपस में मिलजुल जाना हो सकता है। उस समय जाति-भेद इसलिए था कि अपने ख़ून और रंग की रक्षा होती रहे, परन्तु जिस कारण से भी हो, जब यह बात ख़तम हो गई तब साँप के निकल जाने पर उसकी लकीर पीटने से क्या फ़ायदा होगा?

जिस समय यहाँ महात्मा गांधी के द्वारा अछूतों के उद्धार का आन्दोलन होने जा रहा था, उस समय मैं इँग्लैंड में था। मेरे एक चीनी मित्र ने 'अछूत' का अर्थ पूछा। वह 'कोढ़ियों या अन्य किसी घृणित मनुष्य' के बारे में अनुमान कर रहा था। अन्त में मैंने अमरीका में यूरोपीय तथा हबशी के सम्बन्ध को समझाते हुए 'अछूत' शब्द का अर्थ उसे समझाया। एक जापानी महाशय अपनी मा की हड्डी को लेकर भारत की भूमि में गाड़ने आये थे, क्योंकि जापानियों का विश्वास है कि किसी तरह उनकी हड्डी भारत पहुँच जाय तो उनकी सद्गति हो जाती है। गया से जब वे महाशय बुद्ध-गया को जा रहे थे तब रास्ते में पानी माँगने पर लोगों ने नहीं दिया। यहाँ तो 'हिन्दू-पानी', 'मुसलमान-पानी' जैसा घृणित भेद बना हुआ है। एक अमरीकन विद्यार्थी किसी हिन्दुस्तानी मित्र की चिट्ठी लेकर यहाँ भारत में आकर पटने के एक सम्भ्रान्त वकील के यहाँ पहुँचा। उसको देखते ही वे भौचक्के-से हो रहे, फिर बहुत बुरी तरह से उसे खाने-पीने को दिया गया, क्योंकि उसे वे अस्पृश्य तथा अपने धर्म का नाश करनेवाला समझते थे। यह घटना लाहौर-कांग्रेस के पीछे घटित हुई थी।

यवन (ग्रीक), शक, इत्यादि लोग बाहर से आये थे। उनमें से कोई भी फिर यहाँ से गया नहीं। सब यहीं रह गये और उनमें से आज कोई 'नागर' और कोई 'शाकद्वीपी' बना बैठा है। जातिभेद तो हद दर्जे तक है। किसी वैष्णव-सम्प्रदाय को ले लीजिए। उसमें 'रामानुजी' अलग हैं। रामानुजी में 'तिंगल' अलग हैं, तिंगल में भी 'पूर्वी तिंगल' और 'पश्चिमी तिंगल' का भेद है। इसी प्रकार ब्राह्मणों में भी हज़ारों भेद हैं और आपस में ही उनमें रोटी-बेटी का नाता नहीं है। लेकिन पहले से अब बहुत परिवर्तन होता जा रहा है। यहीं बनारस में बहुत थोड़े वर्ष पहले बहुत से लोग कल के पानी से सिर्फ़ पैर धोते थे और आज कोई भी नहीं मिलेगा जो उस पानी को हर एक काम में न लाता हो। पहले लोग कहीं बाहर जाते तो अपने हाथ से रसोई बनाकर खाते थे। अब तो होटल इतने खुल गये हैं और उनकी इतनी चलती है कि बेचारे हलवाई तक परेशान हैं। अब कहा जाता है कि "अरे चलो, दो आने में दाल-भात, दो तरकारियाँ खाओ। हलवाई न मालूम घी में बनाये होगा या अजगर की चर्बी में।" इँग्लैंड जाकर लौटने पर पंचगव्य से उसकी शुद्धि कराई जाती थी, परन्तु अब तो जिस जाति में आई० सी० एस० नहीं है उसे दुःख है।

संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने मज़दूरों के लिए क्या किया ?

इस विषय पर श्री सूर्यप्रसाद अवस्थी ने 'स्वराज्य' में एक लेख लिखा है, जिसका मुख्य अंश इस प्रकार है—

ज्यों ही कांग्रेस-मंत्रि-मण्डल की स्थापना हुई, उससे कुछ ही दिनों के बाद कानपुर के सूती मिलों में हड़ताल हुई। इस आमहड़ताल में लेबर-मिनिस्टर माननीय डाक्टर कैलाशनाथ काटजू ने दिन-रात एक करके स्वयम् कई बार कानपुर आकर मज़दूरों और मालिकों के दर्मियान सम्मान-जनक समझौता करवाया। मज़दूरों की हालत की जाँच करने के लिए मज़दूर-जाँच-कमेटी मुक़र्रर की और उसकी सिफ़ारिश के अनुसार मज़दूरों की तनख़्वाहें बढ़वाईं। गत वर्ष सरकार ने इस प्रांत के लिए डाक्टर राजबहादुर गुप्ता को लेबर-अफ़सर मुक़र्रर किया। इस वर्ष सरकार ने अपने मुहकमे के सबसे तजुर्बेकार और सबसे योग्य व्यक्ति मिस्टर पी० एम० ख़रेघाट को लेबर-कमिश्नर नियुक्त किया। मिस्टर खरेघाट ने कानपुर आकर तत्परता के साथ विभिन्न मिलों के मज़दूरों की शिकायतों की छानबीन की और अब भी कर रहे हैं। सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों के लिए सरकार ने पारसाल १० हज़ार और इस साल २० हज़ार रुपया दिया है। इन रुपयों से अकेले कानपुर शहर में ५ सेण्टर खोले गये हैं, जिनके द्वारा मज़दूरों को फ़ायदा पहुँचाया जा रहा है। ये केंद्र सेण्टर ग्वाल-टोली, डिप्टी का पड़ाव, चमनगञ्ज, जरीब की चौकी और जुही में खोले गये हैं और इनमें काम करने के लिए हर जगह योग्य आर्गेनाइज़र और उनके सहायक दिये गये हैं। हर सेण्टर में एक-एक दवाख़ाना है, जहाँ अँगरेज़ी डिग्री एम० बी० बी० एस० प्राप्त सुयोग्य डाक्टर मज़दूरों को देखते हैं और उनका मुफ़्त में इलाज होता है। इन सेण्टरों से सैकड़ों मज़दूर रोज़ फ़ायदा उठा रहे हैं। दवाख़ानों के अलावा हर सेण्टर में एक-एक पुस्तकालय है, जहाँ हिन्दी और उर्दू ज़बान में दैनिक, साप्ताहिक अख़बार मँगाये जाते हैं और मासिक समाचार-पत्रों के मँगाने का भी प्रबन्ध हो रहा है। इन पुस्तकालयों में भी मज़दूर जाकर मुफ़्त में अख़बारों से फ़ायदा उठा रहे हैं। हर केन्द्र में खेलने-कूदने और व्यायाम के सामान रक्खे गये हैं, जिनसे मज़दूरों का स्वास्थ्य सुधर सके और मनोरञ्जन भी हो सके। सरकार की ओर से सिनेमा दिखाने की मशीन ख़रीदी गई है और समय-समय पर उनके मनोरञ्जन के लिए अच्छे ढङ्ग के फ़िल्म मँगाकर दिखाये जाते हैं। बरसात के कारण अब तक जल्दी-जल्दी खेल नहीं दिखाये जा सके, पर अब यह प्रबन्ध हो रहा है कि महीने में कम-से-कम दो बार हर सेण्टर में सिनेमा का इन्तज़ाम किया जाय। यह भी तय हो चुका है कि हर सेण्टर में रेडियो की मशीन लगाई जाय जिसके द्वारा मज़दूरों का मनोरञ्जन भी हो सके और दुनिया के बारे में वे जानकारी भी हासिल कर सकें। तजुर्बे के तौर पर इस प्रकार का एक रेडियो डिप्टी के पड़ाववाले सेण्टर में लगाया गया था, जिसको मज़दूर भाइयों ने बड़े चाव से सुना और उसके साथ ही चीफ़आर्गेनाइज़र श्री सूर्यप्रसाद अवस्थी और आर्गेनाइज़र्स श्री दुर्गादत्त पंत और श्री रामदाससिंह के भी भाषण हुए। यह तजवीज़ भी सरकार ने मंज़ूर कर ली है कि इन सेण्टरों के अलावा शहर के पाँच अन्य हिस्सों में वाचनालय खोले जायँ जहाँ मज़दूर अख़बार पढ़ सकें। रात्रि-पाठशालाओं की स्कीम भी विचाराधीन है।

इनके अलावा सरकार ने २० हज़ार रुपया और भी दिया है, जिनसे मज़दूरों के रहने के क़ाबिल साफ़, सुथरे, हवादार मकान वाजिब किराये पर दिये जा सकें। और यह भी इन्तज़ाम हो रहा है कि इन मकानों को जो मज़दूर लेंगे वे निश्चित वर्षों तक लगातार किराया देने के बाद इनके मालिक हो जायँगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सरकार मज़दूरों के साथ केवल ज़बानी हमदर्दी नहीं रखती, बल्कि उसका दिली इरादा है कि मज़दूरों के लिए अपनी हमदर्दी का व्यावहारिक नमूना पेश करे। एक तरफ़ तो मिलों के अन्दर उनकी नौकरी की हालत दुरुस्त करने की ओर सरकार का पूरा ध्यान लगा है, दूसरी तरफ़ सरकार की यह भी ख़्वाहिश है कि मज़दूरों की सामाजिक हालत सुधरे, वे शिक्षित हों और हर मानी में उनका जीवन सुखमय हो सके।
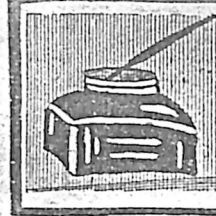
स्वर्गीय कमाल अतातुर्क

तुर्की के पिता—तुर्की के भाग्य-विधाता, उसे पद-दलित देशों की श्रेणी से उठाकर संसार के समुन्नत राष्ट्रों के समकक्ष बिठानेवाले—ग़ाज़ी मुस्तफ़ा पाशा अतातुर्क—और न जाने क्या-क्या—'कमाल' आज संसार में नहीं हैं। उन्होंने अपने जीवन में तुर्की को ही नहीं—एशिया को भी—बहुत कुछ दिया। उनका जीवन एक वीर सैनिक का जीवन था। आज यह वीर अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर चुका है, पर उसका यशःशरीर संसार के इतिहास में अजर-अमर रहेगा।

महायुद्ध के बाद संसार में जिन महापुरुषों का उदय हुआ, कमाल पाशा उनमें अन्यतम थे। उन्होंने अपने देश की स्वाधीनता की बाहरी और भीतरी शत्रुओं से रक्षा करने में अपूर्व कौशल और साहस का परिचय दिया। फलतः जनता ने उन्हें अपना उद्धारक समझा और उन्हें अपना राष्ट्रपति बनाया। वे जैसे सफल सेनापति थे, वैसे ही कुशल राजनीतिज्ञ भी थे।

कमाल पाशा का जन्म सन् १८८० में सालोनीका में हुआ था। इनकी माता का नाम ज़ुबेदा और पिता का नाम अली रज़ा था। घर की आर्थिक दशा अच्छी न थी, फिर बचपन में ही पिता की मृत्यु हो गई, अतः कमाल को अच्छी शिक्षा न मिल सकी। कुछ दिनों के बाद आप सैनिक शिक्षा के लिए प्रवेशिका-परीक्षा में सम्मिलित हुए और उसमें उत्तीर्ण भी हो गये। इसके बाद आपने सैनिक विद्यालय में प्रवेश किया और वहाँ से सर्वोच्च परीक्षा पास करने के बाद विशेष सामरिक शिक्षा पाने के लिए कुस्तुन्तुनिया चले गये।

अपने देश की शासन-सम्बन्धी बुराइयों की ओर आपका ध्यान बालकपन से ही गया और आपने अपने कुछ मित्रों को संगठित कर एक 'गुप्त-समिति' बनाई। एक गुप्त-समाचारपत्र भी निकाला। किसी तरह ये सब बातें सुलतान के कानों तक पहुँच गईं और उसने कमाल तथा उनके साथियों को चार-चार महीने की सज़ा दे दी।

जेल से लौटने के बाद भी आप सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करते रहे और जनता में प्रजासत्तात्मक भावों का प्रचार करते रहे। आख़िरकार १९०८ ई० में सुलतान को विवश होकर गद्दी छोड़ देनी पड़ी और तुर्की में वैध-शासन की स्थापना होगई।

[स्वर्गीय कमाल अतातुर्क]

कमाल पाशा तुर्की-सेना का सुधार कर ही रहे थे कि बालकन-युद्ध छिड़ गया। इस समय आप ट्रिपोली में थे। वहाँ से आप तुरन्त कुस्तुन्तुनिया चले आये। वहाँ आप एक सेना के प्रधान बना दिये गये। आपने बड़ी वीरता से शत्रु-सेना का मुक़ाबिला किया और शत्रुओं-द्वारा जीते हुए स्थान फ़िर अपने अधिकार में कर लिये।

योरपीय युद्ध के अन्त में तुर्की ने जब आत्मसमर्पण क

दिया और विजयी राष्ट्र उसका अंग-भंग करने लगे तब कमाल ने अपने देश की रक्षा करने के लिए कमर कसी। वे इसके लिए अंगोरा में अपना संगठन करने लगे, जिससे सुलतान उनसे नाराज़ हो गये और उन्हें राज-द्रोही घोषित कर दिया, परन्तु उन्होंने इसकी परवा नहीं की और जब यूनान ने लघुएशिया पर चढ़ाई की और स्मर्ना आदि कई स्थानों पर क़ब्ज़ा कर लिया और कुस्तुन्तुनिया पर भी उसका अधिकार हो जाने की आशंका होने लगी तब कमाल ने शीघ्र ही यूनान का मुक़ाबिला किया और उसे युद्ध में परास्त कर अपने देश से मार भगाया।

इस विजय ने कमाल का यश चारों ओर फैला दिया। मौक़ा पाकर उन्होंने सुलतान को पदच्युत कर दिया और देश में पूर्ण प्रजातन्त्र की स्थापना की।

इस प्रजातन्त्र के साथ ही तुर्की में नवयुग का सूर्योदय हुआ। ख़लीफ़ा का पद तोड़ दिया गया। अरबी के मक़तब बन्द कर दिये गये और उनका स्थान आधुनिक ढङ्ग की शिक्षा-संस्थाओं ने लिया। स्त्रियाँ पर्दे से बाहर निकलीं। तुर्की टोपी और चोग़ों के स्थान पर कोट-हैट दिखाई देने लगे। न्याय और क़ानून में सुधार हुआ, व्यापारिक और आर्थिक उन्नति के लिए व्यापक योजनायें बनाई गईं। कृषि की हालत सुधारी गई।

सारांश यह कि तुर्की का कायापलट हो गया। यही नहीं, उसकी देखा-देखी पड़ोस के दूसरे मुसलमानी राज्यों में नवयुग का प्रादुर्भाव हो गया। कमालपाशा ऐसे ही कमाल के आदमी थे। उनके निधन से संसार का एक महापुरुष उठ गया है।

जापान की जीत

उधर योरप में हिटलर की विजय हुई, इधर जापान ने चीन के कैंटन और हैंको पर अधिकार कर चीन का एक प्रकार से पराभव कर दिया। हैंको पर अधिकार हो जाने से यह बात भले प्रकार सिद्ध हो गई है कि चीन जापान के आगे नहीं ठहर सकेगा। यह सच है कि चीन में राष्ट्रीय भावना का काफ़ी ज़ोर है और उसने अब तक शत्रु का सामना वीरता के साथ किया है और पूर्णतया हार जाने पर ही उसने अपने नगरों पर शत्रुओं का अधिकार होने दिया है। परन्तु इस लोक-संहारक विज्ञान के युग में कोरी देशभक्ति या वीरता से ही तो काम नहीं चलता है। इस काल में आत्मरक्षा के लिए सभी वैज्ञानिक साधनों का अवलम्ब चाहिए। और चीन में उनका अभाव है। तब वह जापान जैसे वैज्ञानिक साधनों से पूर्णतया सम्पन्न राष्ट्र के सम्मुख कैसे ठहर सकता है? जर्मनी के हवाई आक्रमणों से डर कर जब ब्रिटेन और फ्रांस के नेता शान्ति शान्ति चिल्लाने लगे और ज़ेचोस्लोवेकिया की मदद करने से साफ़ इनकार कर बैठे तब यदि चीन जापान के आगे न जम सके तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। ऐसी दशा में यदि इन दोनों राष्ट्रों में शीघ्र ही सन्धि नहीं हो जाती तो इथोपिया की-सी गति चीन की भी होगी। कैंटन पर अधिकार हो जाने से चीन का सारा समुद्र-तटवर्ती भूभाग जापान के हाथ में चला गया है।

उत्तर से दक्षिण तक चीन के जो चार प्रमुख प्रान्त—होपे, कियांगसू, हुपेह, और क्वान्टुंग—हैं तथा जिनमें उसके छः प्रधान नगर—पीपिंग, टिंटसिन, शंघाई, नानकिंग, हैंको और कैन्टन—विद्यमान हैं वे सबके सब आज जापान के क़ब्ज़े में हैं। प्रमुख प्रान्तों में ज़ेचुआन भर बाक़ी रह गया है। यह देश के पश्चिम में है और यहीं का प्रमुख नगर चुंगकिंग इस समय राष्ट्रीय सरकार की राजधानी है। इधर अपने हाथ में आये हुए चारों प्रान्तों में जापान नई चीनी सरकारों की स्थापना का प्रयत्न कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मंचूरिया की तरह वह चीन के अपने इन अधिकृत भूभागों में भी प्रान्तीय 'स्वराज्यों' की रचना करेगा। जापान की उक्त हाल की जीतों से चीन की राष्ट्रीय सरकार की सबसे बड़ी हानि यह हुई है कि उसका बाहर के देशों से सम्बन्ध भंग हो गया है और यदि उसे कुछ सहायता मिल सकती है तो एकमात्र रूस से—उस रूस से जो अपने मित्र ज़ेचोस्लोवेकिया के संकट के समय एकदम चुप साध गया। तब कैसे आशा की जा सकती है कि वह चीन का साथ देगा? और हारे गोइयाँ की मदद ही कौन करता है?

हब्शियों की प्रगति

सन् १८६३ की पहली जनवरी को अमरीका के हब्शी दासता से मुक्त हुए थे। इस वर्ष की समाप्ति से इस महत्त्वपूर्ण घटना को घटित हुए पूरे ७५ वर्ष हो गये। संयुक्त राज्यों के स्वाधीन हब्शी उसी की हीरक जुबली मनाने जा रहे हैं।

इन ७५ वर्षों में वहाँ के हब्शियों की कैसी अभूतपूर्व उन्नति हुई है, पददलित राष्ट्रों के लिए यह ध्यान देने की बात है। जिस दिन उनकी स्वाधीनता की घोषणा संयुक्त-राज्य के तत्कालीन प्रेसीडेंट अब्राहम लिङ्कन ने की थी उस समय हब्शियों में मुश्किल से १० फ़ी सदी लोग साक्षर रहे होंगे, परन्तु आज ७५ वर्ष के बाद उनमें साक्षरों की बाढ़-सी आ गई है। यही नहीं, सन् १९३५ तक २६,००० हब्शी ग्रेजुएट हो चुके हैं और प्रतिवर्ष ४५०० और नये ग्रेजुएट होते जाते हैं। कम से कम २०० स्त्री-पुरुषों ने पी० एच० डी० की डिगरी प्राप्त की है। ६५,००० हब्शी अध्यापकी का काम कर रहे हैं।

यह तो हुई शिक्षा-दीक्षा की बात। इसी प्रकार उनकी आर्थिक अवस्था भी उन्नत हो गई है। उनके पास इस समय २,५०,००,००,००० डालर की सम्पत्ति है। उनके अधिकार में ३१,००० वर्गमील भूमि है। जहाँ ७५ वर्ष पहले उनके पास २०,००० खेत थे, वहाँ अब उनके अधिकार में ८,८०,००० खेत हो गये हैं। ७,५०,००० हब्शियों के पास अपने घर भी हो गये हैं। उनके अपने १५० समाचार-पत्र भी निकलते हैं, जिनके पाठकों की संख्या ६३,००,००० से ऊपर होगी, इनके सिवा उनकी १७५ सामयिक पत्रिकायें भी निकलती हैं। उनके अपने बैरिस्टर भी हैं, जो सरकारी अदालतों में अपनी जाति के स्वत्वों की रक्षा के लिए सदा प्रस्तुत रहते हैं।

संयुक्त राज्य के १,२०,००,००० हब्शियों की उन्नति उनके जैसे अवनत लोगों के लिए एक प्रकार से आदर्श-स्वरूप है। और एक पददलित जाति का जो यह अभिनव उत्थान हुआ है उसका सारा श्रेय वहाँ की प्रजातंत्र-सरकार को है, साथ ही वे हब्शी भी बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने अपनी उन्नति करने के लिए प्राप्त अवसर का ऐसा सदुपयोग किया है।

भारत का [illegible]करण

भारत के उद्योग-धन्धों के पुनरुज्जीवन करने की ओर लोक-नेताओं का सदा ध्यान रहा है। परन्तु अभी तक वे उसकी चर्चा भर करने का अधिकार रखते थे। संयोगवश प्रान्तों का शासन-सूत्र अब उनके हाथों में आ गया है। फलतः वे इस दिशा में बहुत कुछ कर सकते हैं और उस ओर प्रवृत्त भी हुए हैं। राष्ट्रपति सुभाषबाबू के निर्देश के अनुसार विशेषज्ञों की एक कमिटी नियुक्त की जा चुकी है, जो शीघ्र ही अपना काम शुरू करेगी। यह कमिटी उन उपायों का निर्देश करेगी जिनसे देश के वर्तमान उद्योग-धन्धों को तो नव-जीवन प्राप्त होगा ही, साथ ही देश में बड़े बड़े नये कारबार भी चालू किये जायँगे और कदाचित् इस पिछली बात की ओर उसका अधिक ध्यान रहेगा। इसमें सन्देह नहीं है कि इस समय भी देश में अनेक उद्योग-धन्धे चल रहे हैं और इस बात की ज़रूरत है कि उनका समुचित ढंग से सञ्चालन किया जाय और विदेशी प्रतिद्वन्द्विता से उनकी रक्षा की जाय। नये उद्योग-धन्धों के प्रचलन करने की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि पहले से प्रचलित उद्यमों के संरक्षण की है। इस कथन से हमारा यह मतलब नहीं है कि देश में नये धन्धे छेड़े ही न जायँ। ज़रूर छेड़े जायँ और बड़े से बड़े धन्धे छेड़े जायँ। परन्तु सर्व-प्रथम आवश्यकता इसी बात की है कि जो धन्धे यहाँ पहले से चल रहे हैं वे उन्नत किये जायँ। आशा है, उक्त कमिटी इस महत्त्व की बात की ओर समुचित ध्यान देगी। कहा भी है—आधी तजि सारी का धावै, आधी रहै न सारी पावै।

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के नये वाइस-चांसलर

प्रसन्नता की बात है कि प्रोफ़ेसर अमरनाथ झा जो अभी तक एवज़ वाइस-चांसलर थे, हाल के चुनाव में यूनिवर्सिटी के वाइस-चांसलर बनाये गये हैं। प्रोफ़ेसर झा उन कुछ सफल अध्यापकों में हैं जो अपने छात्रों तथा अपनी संस्था को ही अपनी दुनिया समझते हैं। और उन्होंने अपनी यूनिवर्सिटी के प्रति अपने ऐसे ही अनन्य अनुराग के फलस्वरूप यह गौरवपूर्ण पद इतनी जल्दी प्राप्त किया है।

इसमें सन्देह नहीं कि इससे अच्छा चुनाव और दूसरा नहीं हो सकता था। प्रोफ़ेसर झा इस पद के लिए सर्वथा एक उपयुक्त पात्र थे। वे कोरे विद्वान् तथा अनुभवी शिक्षक ही नहीं हैं, किन्तु वे प्रबन्ध-पटु और बड़े क्रियाशील भी

है। ऐसे व्यक्ति के हाथ में यूनिवर्सिटी का प्रबन्ध-भार आ जाने से उसके गौरव की वृद्धि होनी एक मानी हुई बात है। प्रोफ़ेसर झा की इस सफलता पर बधाई है। हमें विश्वास है कि उनके कार्यकाल में इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी की विशेष उन्नति होगी और साथ ही उनका नाम भी चरितार्थ हो जायगा।

महात्मा हंसराज का स्वर्गवास

आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध नेता महात्मा हंसराज जी का गत १५ नवंबर को स्वर्गवास हो गया। पंजाब के शिक्षा-क्षेत्र और आर्यसामाजिक क्षेत्र में आप युवावस्था से ही प्रख्यात होगये थे। आपकी यह ख्याति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। पंजाब में डी० ए० वी० कॉलेज और डी० ए० वी० स्कूलों का जो जाल बिछा हुआ है उसका श्रेय आपके ही अध्यवसाय को है। आपने श्री गुरुदत्त विद्यार्थी और लाला लाजपतराय के साथ लाहौर में डी० ए० वी० कॉलेज स्थापित किया और फिर ७५) मासिक पर आप उसके आजीवन सदस्य बन गये। ग्रेजुएट होते ही आपने त्यागमय जीवन आरंभ किया और अन्त तक आप कॉलेज के आत्मा और प्राण बने रहे।

पिछले कुछ वर्षों से आपका स्वास्थ्य ख़राब था। आप अपनी आँख बनवाने के लिए इँग्लैंड गये थे। फिर भी आपका स्वास्थ्य सुधरा नहीं। मृत्यु के समय आपकी अवस्था ७५ वर्ष की थी। पंजाब के अधिकांश शिक्षित महात्मा जी के डी० ए० वी० कॉलेज और डी० ए० वी० स्कूलों के शिष्य हैं।

गया का 'भारत-सेवा-संघ'

हिन्दू-तीर्थ-स्थानों में पंडे-पुजारी यात्रियों को जिस तरह तंग करते हैं, उसकी अपनी कथा अलग है। यात्रा में होने के कारण कुछ तो अपने धर्मभाव के कारण और कुछ अपनी असमर्थता के कारण एक ज़माने से लोग पंडों और पुजारियों के अत्याचार चुपचाप सहते चले आ रहे हैं। परन्तु जान पड़ता है, यह सब कुछ अब नहीं होने दिया जायगा। कलकत्ते के आचार्य स्वामी प्रणवानन्द जी महाराज ने इसी के लिए 'भारत-सेवा-संघ' नाम की एक संस्था की स्थापना की है और इसके द्वारा यात्रियों को सब तरह की सुविधायें देने एवं पंडों-पुजारियों की लूट-खसोट से उनको बचाने का काम उन्होंने गया जैसे प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान में प्रारम्भ भी कर दिया है। गया एक ऐसा स्थान है, जहाँ भारत के सभी प्रान्तों के हिन्दू आते हैं और यहाँ के पंडे और गयावाल यात्रियों को 'सुफल' बोलते समय ख़ूब तंग करते हैं। यह सब देखकर सन् १९२४ में इसके विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा गया और उसके बाद ही उक्त संघ की स्थापना की गई, जिसके सदस्य अब तक यात्रियों की भले प्रकार सहायता करते चले आ रहे हैं। इस व्यवस्था के कारण पंडों और गयावालों की लूट-खसोट कम हो गई है, जिससे उनकी आर्थिक हानि होने लगी। अतएव उन्होंने पहले की भाँति फिर यात्रियों को तंग करना शुरू कर दिया है, जिससे उक्त संघ के आगे गम्भीर समस्या उठ खड़ी हुई है। इसमें सन्देह नहीं कि गया के पंडों और गयावालों की धींगा-धींगी अब नहीं चलने पायेगी, परन्तु अब जब पंडों और गयावालों ने अपना वास्तविक रूप फिर प्रकट किया है तब कुछ न कुछ झगड़ा-बखेड़ा हो जाना अनिवार्य-सा दिखाई देता है। यह प्रकट है कि अन्त में जीत संघ की ही होगी, क्योंकि वह यात्रियों के पक्ष में ही काम करने को आगे बढ़ रहा है। तो भी बिहार की सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट होना चाहिए और उसे ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि उक्त संघ के लोक-सेवा के कार्य में पंडे या गयावाल किसी तरह की बाधा न डाल सकें।

संयुक्त-प्रान्त में ग्राम-सुधार

ग्राम-सुधार के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकार कोई ठोस योजना कार्य में परिणत करना चाहती है, इसी से कदाचित् इस दिशा में कोई व्यापक कार्यवाही अभी नहीं हो रही है। हाँ, नवम्बर के पहले हफ़्ते में एक ग्राम-सुधार-सप्ताह बड़ी धूमधाम से ज़रूर मनाया गया। इस अवसर पर छोटी-बड़ी प्रदर्शनियाँ की गईं तथा ग्राम-सुधार के सम्बन्ध में व्याख्यान किये गये। इस प्रकार ग्रामों के सुधार के सम्बन्ध में प्रचार किया गया और लोगों को बताया गया कि ख़ूब सफ़ाई से रहो ताकि स्वास्थ्य न ख़राब हो, अच्छे